Reg NO. A 708

ग ५ मेष, १९७३। April 1917. संख्या १

ol. V. No. 1

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [१ प्रतिका मूल्य ।)

Reg NO. A 708

ग ५ मेष, १९७३। April 1917. संख्या १

ol. V. No. 1

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [१ प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग ५ { मेष, संवत् १९७४ । एप्रिल, सन् १९१७ । { संख्या १

शक्ति

[ले० सालग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

सम्भव है कि पाठक शक्ति नापनेकी इकाई अर्थात् डाइनसे अपरिचित हों इसलिए इसका और इसके संबन्धी और चीज़ोंका जिनसे काम पड़ेगा संक्षिप्त वर्णन यहां दिये देते हैं। सब चीज़ोंके नापनेकेलिए दो पद्धितियां प्रचलित हैं। एकमें लम्बाई नापनेकी इकाई फ़ुट, मात्रा नापनेकी इकाई पौंड और काल नापनेकी इकाई सेकंड है इसको संक्षेप में फ प. स. पद्धति कहेंगे। दूसरीमें लम्बाई नापनेकी इकाई एक शतांश मीटर (सेंटीमीटर), मत्रा नापनेकी इकाई ग्राम और काल नापनेकी इकाई सेकंड है। इसको संक्षेपमें श. ग. स. पद्धति कहेंगे। वैज्ञानिक संसारमें यह ही पद्धति अधिक प्रचलित है क्योंकि इसमें बड़ी बड़ी चीज़ोंके नापनेकी बड़ी बड़ी इकाइयां छोटी इकाइयोंकी १०, १००, १००० गुनी और छोटी छोटी चीज़ोंको नापनेकेलिए छोटी इकाइयां दसवां, सौवां, हज़ारवां, इत्यादि इकाईके भाग होती हैं। छोटी रेलकी पट्रियोंके बीचकी दूरी एक मीटर होती है इसीके सौवें भागको शतांश मीटर कहते हैं। फ्रांसकी राजधानी पेरिसमें (Paris) (Bureau of standards) परिमाणों के दफ़तरमें रखे हुए एक छड़के ऊपरके दो चिन्होंके बीचकी दूरीको ०°श पर मीटर कहते हैं। ग्राम उस बाटका हज़ारवां हिस्सा है जो उसी दफ़तरमें रखा है और किलोग्राम (kilogram) कहलाता है। यह रेलवालोंका किलो है और अपने सेरके लगभग है। जब आप किसी वस्तुको अपनी ओर खेंचना चाहते हैं, तो आपको कुछ शक्ति लगानी पड़ती है। पृथ्वी प्रत्येक वस्तुको अपनी ओर खींचती है और इसी कारण चीज़ें हाथसे छोड़नेपर पृथ्वीपर गिरती हैं। पृथ्वी भी वस्तुओंको किसी शक्तिसे खींचती है। इसी शक्तिसे शक्तिकी इकाई निकाली गई है। मान लो कि आपने हाथमें १ ग्रामका बाट

गति बिद्या Dynamics]

थाम रखा है, उसे हाथमें थामे रखनेकेलिए शक्ति लगानी पड़ती है। जितनी शक्ति आप लगाते हैं, वही १ ग्राम-भार या ग्रामका बोझ कहलाता
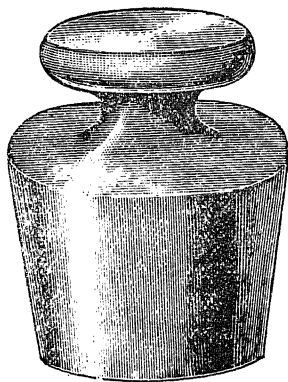
चित्र नं० १—किलोग्राम

है। पृथ्वी भी इतनी ही शक्तिसे इस ग्राम बाटको अपनी ओर खींचती है। पृथ्वीतलके प्रत्येक स्थान-पर यह बोझ एकसा नहीं है। इसका हाल पाठक 'चतुरबैरिस्टर' शीर्षक* लेखमें पढ़ चुके हैं। प्रयाग-में एक ग्रामका जो बोझ है, उसका $\frac{१}{९७८.९८}$ भाग शक्तिकी इकाई डाइन, श. ग. स. पद्धतिमें मानी जाती है। इस विशेष भागके लेनेका कारण फिर कभी बतलाया जायगा।

डाइन १ तोलेके (एक तोला ११.५ ग्रामके बराबर होता है) भारका ११ वें हज़ार हिस्सेसे भी कुछ कम ही निकलेगी। पाठकोंके दिलमें यह प्रश्न उठेगा कि यह इकाई तो चींटियोंके लायक़ है। मनुष्यको कहीं बड़ी बड़ी शक्तियोंसे काम पड़ता है उसकेलिए ऐसी छोटी इकाई क्यों चुनी गई। जब बड़ी बड़ी चीज़ोंको नापना होता है तो बड़ी बड़ी इकाइयां इसके बड़े बड़े गुणकोंके बराबर मान ली जाती हैं। हमको बहुधा छोटी ही शक्तियोंसे काम पड़ेगा और हमारे कामकेलिए यही छोटी इकाई ठीक है।

*विज्ञान भाग ४ संख्या २,३,४

शक्ति एक नियत परिमाणकी होती है और एक नियत दिशामें लगाई जाती है। इसी कारण काग़ज़पर इसे एक रेखासे सूचित करते हैं। रेखा भी एक नियत दिशामें ही खेंची जाती है और नियत लम्बाईकी होती है। कोई एक प्रमाण मानकर शक्तिको एक रेखासे सूचितकर सकते हैं, जैसे यह निश्चय करलें कि १ डाइनकी शक्ति $\frac{१}{१०}$ इंचसे सूचित किया करेंगे तो १० डाइन को १ इंच लम्बी रेखा शक्तिकी दिशामें खेंचकर बतला सकते हैं।

कोई शक्ति केवल अपनी दिशामें ही किसी वस्तुको चला सकती है, पर घुमा नहीं सकती। घुमानेकेलिए दो समान शक्तियोंकी अवश्यकता होती है जो विपरीत दिशाओंमें लगाई जाती हैं किंतु एकही स्थानपर नहीं जैसे श के बराबर, दो शक्तियां एक छड़ कग के दो सिरे क और ग पर लगायी जावें और यह छड़ म स्थानपर एक अक्ष अ पर इस प्रकार रखी हो कि घूम सकती है, तो यह छड़, घूम जायगी। इनमेंसे एक शक्ति क स्थानपर लगायी गयी और दूसरी ग पर। यदि दोनों एक ही स्थान क या ग पर लगा दी जातीं तो उनका कोई
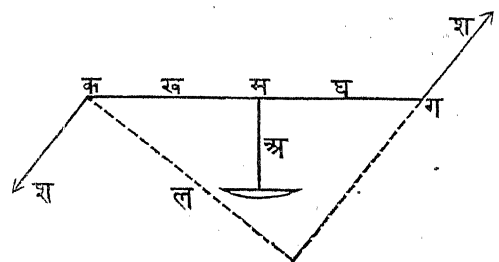
चित्र नं० २

असर नहीं होता। ऐसी दो शक्तियोंके जोड़ेको युगल कहते हैं। इनमेंसे एक शक्तिको दोनों रेखाओंके बीचके लम्बसे गुणाकर देनेसे युगलका घूर्ण मिलता है। चित्रमें लम्ब ल के बराबर है तो चित्रवाले युगलका घूर्ण शल हुआ। ल को युगलका

भुजदण्ड कहते हैं। जिन दो युगलोंका घूर्ण बराबर है उनका असरभी बराबर ही होता है चाहे उनकी शक्तियां बराबर हों या न हों। चित्रमें ख और घ स्थानोंपर जो क और ग की अपेक्षा म से आधी दूरीपर हैं २श और -२श के बराबर दो शक्तियां श वाली शक्तियोंकी दिशामें लगानेसे वही असर होता जो श के बराबर शक्तियां क और ग पर लगानेसे हुआ है। इसकी जांच एक बहुत साधारण यंत्रसे, जिसका चित्र नीचे दिया जाता है हो सकती है। एक तार लो जिसका एक सिरा एक चुटकीमें (clamp) इस प्रकार दबा हो कि घूम न सके, और जिसका दूसरा सिरा एक बेलनके सिरेके बीचमें फंसा दो। बेलनपर एक छोटी कील

चित्र नं० ३

च—चुटकी। स—सूचक। क—डिगरियोंवाला काग़ज़। च१ चक्रियां। ब—बेलन।

लगी होनी चाहिए जिससे एक डोरा इस प्रकार लपेटा जा सके कि बेलनके चक्कर खानेसे दोनों ओर डोरा खुले। तारमें एक सूचक (pointer) भी लगा रहना चाहिए और सूचकके नीचे एक ऐसा घेरा लगा लो जिसमें कोण बने हों। डोरेके सिरोंको दो चकरियोंपरसे होते हुए नीचे लटकने दो। स्थिर दशामें सूचकका स्थान देख लो। डोरेके दो सिरोंमें दो समान बाट (एक एक या दो दो तोलोंके बराबर) लटका दो। बेलन थोडासा घूम जावेगा सूचकका यह स्थान देख लेनेसे घुमाव मालूम हो जावेगा। यहां शक्तियोंकी रेखाएं बेलनको स्पर्श करती हैं इसलिए युगलका भुजदण्ड
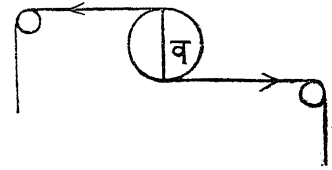
चित्र नं० ४

बेलनके व्यासके बराबर हुआ। युगलका घूर्ण हुआ बव के बराबर, यदि ब बोझ और व बेलनका व्यास हो। आधे व्यासका बेलन लगाकर पहलेके बराबर घुमाव पैदा करनेकेलिए दुगना बोझ लगाना पड़ेगा। इस प्रयोगमें यह भी देखनेमें आया कि बेलन बराबर घूमता नहीं रहता है किंतु तारमें ऐंठन पड़नेसे ठहर जाता है अर्थात् तारकी ऐंठन इस युगलकी तुलना कर लेती है। कभी कभी युगलकी दो शक्तियोंमेंसे एक गुप्त होती है जैसे यदि एक डांडी डड१ अ स्थानपर एक अक्षके ऊपर तुल्य हो तो एक तरफ़ एक छोटासा बोझ ब रखनेसे घूम जावेगी और कक१ स्थानपर आ ठहरेगी यहां एक ही शक्तिसे डांडी घूम गई। वास्तवमें अक्षपर दूसरी शक्ति विरुद्ध दशामें अपने आप पैदा हो जाती है और यह दोनो मिलकर एक

युगल बना लेती हैं और इस युगलका घूर्ण बद के बराबर है यदि "ब" बोझ अक्षसे द दूरीपर
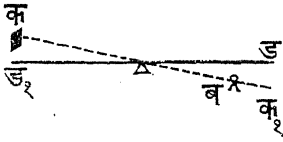
चित्र नं० ५

रक्खा हो। ऐसी अवस्थामें इस गुणकको युगलका घूर्ण न कहकर शक्तिका कहते हैं। एक दूसरा बोझ $ब_{१}$ अक्षके दूसरी ओर रखकर डांडीको सीधा रख सकते हैं। वह बोझ ऐसी दूरी $द_{१}$ पर अक्षसे होना चाहिए कि इसका घूर्ण $ब_{१}द_{१}$ पहले बोझके घूर्णके बराबर हो अर्थात् $ब_{१}द_{१} = ब द$

युगलोंकी तुलनासे तो काम बहुत पड़ेगा पर थोड़ा सा काम शक्तियोंकी तुलनासे भी पड़ेगा। इसलिए उनके संबन्धी बातें भी यहां बतला देना उचित समझते हैं। यदि दो शक्तियां एक ही विन्दुपर लगाई जावें तो उनका असर उतना ही होगा जितना कि उस तीसरी शक्तिका हो सकता है जो उस समानान्तर चुतर्भुजके कर्णकी (diagonal) दिशामें और प्रमाणुसार उसके बराबर है जो दो शक्तियोंको सूचित करनेवाली रेखाओंको दो भुज मानकर खेंचा गया है।

इस नियमकी जांचकेलिए यह प्रयोग करना चाहिए। एक डोरा लेकर उसके बीचमें एक गांठ लगा लो और एक सिरेपर ३ तोलेके बराबर और दूसरे सिरे पर ४ तोलेके बराबर बोझ बांध दो। एक तख़तेमें दो चक्रियां च लगाकर बोझोंको इस प्रकार लटकाओ कि एक बोझ एक चक्रीके एक तरफ़ और दूसरा दूसरी चक्रीके दूसरी तरफ़ हो। गांठको किसी जगह तख़तेपर रोककर गांठपर मिलती हुई डोरेसे मिलती हुइ दो रेखाएं खेंचलो चित्र में यह दो रेखाएं ग घ और गक हैं। ४ तोलेके बोझकी तरफ़ ४ भाग और ३ तोलेके बोझकी तरफ़ ३ भाग इन रेखाओं- पर ले लो और इन दो बाजुओंपर समानान्तर
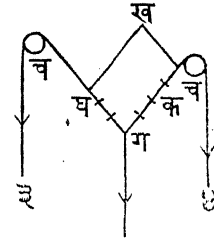
चित्र नं० ६

चतर्भुज ग घ ख क बना लो। ग ख इस चतर्भुज- का कर्ण हुआ। यदि गांठ छोड़ दी जावे तो ग ख की दिशामें ऊपर जावेगी अर्थात् दोनों शक्ति- योंका असर वही है जो ग ख की दिशामें लगायी हुई शक्तिका होता। यदि ग ख को नापकर इसकी बराबर एक डोरेमें बाट बांधकर नीचे- की ओर लटका देवें गांठ अपनी जगह ठहरी रहे- गी। इससे यह मतलब हुआ कि यह नयी शक्ति असरमें उन दोनों शक्तियोंके बराबर है और विरुद्ध दिशामें होनेसे गांठको चलने नहीं देती है, अर्थात् दोनों शक्तियोंका असर कर्णके बराबर वाली शक्तिके असरक बराबर और इस कर्णकी दिशा- में है। इस शक्तिको दोनों शक्तियोंका लब्ध कहते हैं।

जब दो शक्तियां एक दूसरेसे सम कोण बनाती हों तो लब्ध और लब्धकी दिशा निकालना आसान है। यदि इसी चित्रमें घ ग क कोण समकोण होता

तो $ग ख = \sqrt{ग घ^{२} + ग क^{२}}$ (रेखा गणितके नियमानुसार)

$ग घ = ३$ और $ग क = ४$ इसलिए

$$ग ख = \sqrt{९ + १६}$$
$$= ५$$

ग ख (लब्ध) और ग क (एक शक्ति) के बीचमें जो कोण ख ग क है उसकी स्पर्श रेखा

$$= \frac{खक}{गक} \quad = \frac{गघ}{गक}$$

(और इस उदाहरणमें) $= \frac{३}{४}$

$$= \frac{दूसरी\ शक्ति}{एक\ शक्ति}$$

अर्थात् शक्तियोंके भाग फलसे स्पर्शरेखा मालूम हो जाती है और स्पर्श रेखासे कोण मालूम हो सकता है। कौण मालूम होनेसे दिशाका पता चल जाता है।

त्रिकोणमितिकी निषपत्तियां

[ले० सालग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

थोड़ेसे त्रिकोणमितिके नियमोंकी भी विज्ञानके पाठकोंको आवश्यकता पड़ेगी उनको हम यहां संक्षेपमें दिये देते हैं जिससे पाठकोंको सुविधा हो जाय।

क ख ग एक त्रिभुज लो जिसका क ख ग कोण समकोण हो। क ग, क ख और ख ग त्रिभुजके कर्ण, आधार और लम्ब कहलाते हैं। (चित्र १)

$\frac{गख}{कग}$ क कोणका ज्या (sine) कहलाता है।

$\frac{कख}{कग}$ क कोणका कोज्या (cosine) ”

$\frac{गख}{कख}$ क कोणका स्पर्श रेखा (tangent) ”

$\frac{कख}{गख}$ क कोणका कोटि स्पर्श रेखा (cotangent) ”

$\frac{कग}{कख}$ क कोणका छेदन रेखा (secant) ”

$\frac{कग}{गख}$ क कोणका कोटि च्छेदन रेखा (cosecant) ”

इन निषपत्तियोंका महत्व यह है कि त्रिकोण चाहे कितना बड़ा क $ख_२$ $ग_२$ अथवा क $ख_१$ $ग_१$ छोटा क्यों न हो यह निषपत्तियां सदैव एक ही होंगी, जबतक कोण क न बदले इसलिए प्रत्येक

Trigonometry त्रिकोणमिति]

कोणकेलिए यह निकालकर एक पुस्तकमें जिसे गणित सारिणी कहते हैं छाप दी गयी हैं। इनकी सहायतासे किसी समकोण वाले त्रिकोण-

चित्र नं० १
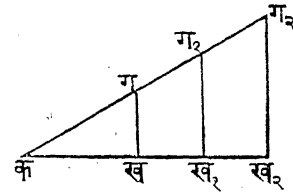
का एक भुज और कोण मालूम होनेसे तीनों भुज मालूम हो सकते हैं। उदाहरणकेलिए मान लो कि एक बुर्ज या पहाड़ीकी उचाई मालूम करना है, ब बुर्ज है जिनकी च चोटी और द दामन है।
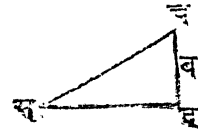
चित्र नं० २

दामनसे एक नियत दूरीके स्थान स पर खड़े होकर च स द कोण नाप लो

$$\frac{चद}{दस} = कोण\ चसद\ की\ स्पर्श\ रेखा$$

यहां द स और च स द मालूम हैं इसलिए च द बुर्जकी उचाई मालूम हो जावेगी।

इन निषपत्तियोंके आपसमें जो संबन्ध हैं नीचे दिये जाते हैं।

$$\frac{ज्या}{कोज्या} = स्पर्शरेखा$$

$$\frac{कोज्या}{ज्या} = कोटिस्पर्शरेखा$$

$$\frac{१}{ज्या} = कोटिच्छेदनरेखा$$

$$\frac{१}{कोज्या} = छेदनरेखा$$

$$\frac{१}{स्पर्शरेखा} = कोटिस्पर्शरेखा$$

अङ्कगणितकी शिक्षा

[ले० शतीशचन्द्र घोषाल, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०]

(गताङ्कसे आगे)

भिन्न

प्रारम्भीय

पूर्णांक संख्याओंका अर्थ समझनेमें बालकोंको विशेष कठिनता नहीं मालूम होती। भिन्नका विचार करना कुछ मुश्किल है। यथार्थमें भिन्नका विचार करनेके समय हमें इकाईका गुणा और भाग दोनों एक साथ किये जानेका विचार करना पड़ता है। किसी भिन्न जैसे $\frac{२}{३}$ को लो, $\frac{२}{३}$ का एक अर्थ यह है कि १ को दो बार लेकर उसमें ३ का भाग दो। इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि एकको तीन हिस्सोंमें बांटकर इनमेंसे दो हिस्से लो। सारांश यह है कि भिन्नके उपर्युक्त अर्थोंमेंसे किसीपर भी विचार करें तो भी गुणा और भागके एक साथ किये जानेका विचार अवश्य करना पड़ेगा। साधारण भिन्नोंका मतलब तो बालक छोटी अवस्थासे ही समझते हैं। हर एक बालकको आधी व तिहाई रोटीका ज्ञान होता ही है। यथार्थमें पदार्थोंके सहारे भिन्नका मतलब समझनेमें उन्हें बड़ी सरलता होती है। इसीलिए भिन्नका साधारण ज्ञान करानेमें हमें पदार्थोंका उपयोग करना चाहिये।

$\frac{१}{२}$ का मतलब समझना

सबसे सरल भिन्न $\frac{१}{२}$ है। इसका मतलब समझानेकेलिए कक्षाके प्रत्येक बालकको कागज़का एक एक चौकोर टुकड़ा दो। अब विद्यार्थियोंसे कहो कि वे उसके कोने मिलाकर ठीक बीचसे घरी करके फाड़ लें। निम्नलिखित प्रश्नोत्तर द्वारा समझाना ठीक होगा।

Arithmetic अङ्कगणित]

कागज़के तुमने कै टुकड़े किये? उत्तर-दो।

क्या दोनों टुकड़े बराबर हैं? मिलाकर देखो। उत्तर-हां,

हर एक हिस्सा पूरे कागज़का कौनसा हिस्सा है? उत्तर-आधा।

कै आधे कागज़ = १ पूरा कागज़? उ०-दो।

अब विद्यार्थियोंसे प्रश्नोत्तर द्वारा निम्नलिखित बातें निकलवाओ।

२ आधे इंच = १ पूरा इंच।
२ आधे गज़ = १ पूरा गज़।
२ आध सेर = १ पूरा सेर।

किसी चीज़के २ आधे आधे हिस्से = १ पूरी चीज़। २ अध्धा = १ पूरी चीज़।

अब बताओ कि यदि १ के दो बराबरके हिस्से करें तो प्रत्येक हिस्सेको आधा कहते हैं और आधेको इस भांति लिखते हैं—$\frac{१}{२}$। $\frac{१}{२}$ का मतलब यह है कि एकके दो तुल्य खंड किये गये और उनमेंसे एक लिया गया है।

तख़्तेपर एक बड़ा वर्ग बनाकर उसके दो तुल्य खंड करके इस भांति लिखो—

आधा वर्ग
आधा वर्ग

कागज़की पट्टियोंद्वारा विद्यार्थियोंको समझाओ कि—

२ इंच = ४ आध इंच, २ = ४ अध्धा, २ = $\frac{४}{२}$

३ इंच = ६ आध इंच, ३ = ६ अध्धा, ३ = $\frac{६}{२}$

४ इंच = ८ आध इंच, ४ = ८ अध्धा, ४ = $\frac{८}{२}$

देखो $\frac{४}{२}$ = २; यदि हम ४ में २ का भाग दें तो लब्धि क्या आवेगी? उ० २।

इससे क्या समझे? बताओ कि भिन्नका मान निकालनेकेलिए अंशमें हरका भाग दो अथवा भिन्नका मान = अंश ÷ हर।

इसी भांति $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{४}$, $\frac{२}{७}$, $\frac{५}{६}$ इत्यादि भिन्नोंका मतलब कागज़की पट्टियों तथा वर्गोंके ऊपरसे समझाओ।

पूर्णांक सहित भिन्न और विषम भिन्न

कागज़की पट्टियों और उनके तुल्य खंडो द्वारा विद्यार्थियोंको समझाया जाय कि—

२ पट्टियोंका आधा = १ पट्टी।

४ पट्टियोंका $\frac{१}{२}$ = २ पट्टियां।

६ पट्टियोंका $\frac{१}{२}$ = ३ पट्टियां।

कागज़के वर्गों द्वारा अब निम्नलिखित बातें निकलवाई जायँ;

३ पट्टियोंका $\frac{१}{२}$ = १ पट्टी और $\frac{१}{२}$ पट्टी = १ $\frac{१}{२}$ पट्टी

५ पट्टियोंका $\frac{१}{२}$ = २ पट्टी और $\frac{१}{२}$ पट्टी = २ $\frac{१}{२}$ पट्टी

७ पट्टियोंका $\frac{१}{२}$ = ३ पट्टी और $\frac{१}{२}$ पट्टी = ३ $\frac{१}{२}$ पट्टी

समझाओ कि ३ पट्टियोंके आधेसे ३ पट्टियोंके दो तुल्य खंडोंसे आशय है इसलिए ३ पट्टियोंका $\frac{१}{२} = \frac{३}{२}$; इसी तरह ५ पट्टियोंका $\frac{१}{२} = \frac{५}{२} = २\frac{१}{२}$ इत्यादि।

पूर्णांक सहित भिन्नको विषम-भिन्नके रूपमें लाना और इसका उलटा

इसी तरह तिहाई, चौथाई इत्यादि भिन्नोंको बताओ और समझाओ। विद्यार्थियोंद्वारा यह भी निकलवाओ कि ये भिन्न किस प्रकार लिखे जाने चाहिए। कागज़की पट्टियोंद्वारा नाना प्रकारके भिन्न बनवाकर लिखवाओ। निम्न प्रकारकी बातें प्रत्यक्ष उदाहरणों द्वारा निकलवाओ,

१ = ३/३, २ = ६/३ ३ = ९/३, १ = ४/४, २ = ८/४, ३ = १२/४, ४/३ = $१\frac{१}{३}$, ५/३ = $१\frac{२}{३}$, ७/३ = $२\frac{१}{३}$, $\frac{८}{३}$ = $२\frac{२}{३}$, ५/४ = $१\frac{१}{४}$, ६/४ = $१\frac{२}{४}$, ७/४ = $१\frac{३}{४}$ ९/४ = $२\frac{१}{४}$, १०/४, = $२\frac{२}{४}$ इत्यादि।

इस प्रकार उदाहरणोंद्वारा पूर्णांकं सहित भिन्नको विषम भिन्न और विषम भिन्नको पूर्णांकं सहित भिन्नमें बदलनेका नियम विद्यार्थियोंद्वारा निकलवाओ। यह बात हमें स्मरण रखना चाहिये कि यह सब साक्षात पदार्थोंके उपयोग द्वारा बताया जाय और ऐसे उदाहरण दिये जायँ जो लड़कोंको प्रत्येक्ष बताये जा सकें,

यथा—(१) यदि हमारे पास १) रुपया हो तो बदलेमें कितनी चौअन्नी आवेंगी?

(२) यदि हमारे पास ७ चौअन्नी हों तो भुंजानेपर कै रुपये आवेंगे?

(३) यदि मैंने ५ फुट कपड़ा खरीदा तो बताओ कै गज़ और कै फुट कपड़ा ख़रीदा?

समान हरोंवाले भिन्नोंको जोड़ने और घटानेकी विधि

समान हरवाले भिन्नोंको जोड़ने और घटानेमें कोई विशेष अड़चन नहीं होती। यथार्थमें इस प्रकारके भिन्नोंका जोड़ और बाक़ी पूर्णांकं संख्याओंके जोड़ और बाक़ीके समान ही हैं। यथा ३/२, ५/२ और १/२ को जोड़ो। विद्यार्थियोंको समझाओ कि यह प्रश्न उसी प्रकार है जैसा कि ३ बिही, ५ बिही और एक बिहीको जोड़ना। इस पिछले प्रश्नको जिस प्रकार हम करते हैं उसी प्रकार ऊपरका प्रश्न भी किया जा सकता है। भेद सिर्फ़ यही है कि बिहीके स्थानमें अद्ध जोड़ना है। जैसे—

३ बिही		३ अध्धे
५ बिही	इसीप्रकार	५ अध्धे
१ बिही		१ अध्धा
९ बिही		९ अध्धे

बातलाओ कि सरलताकेलिए हम इस भांति लिखते हैं, ३/२+५/२+१/२= $\frac{३+५+१}{२}$ =९/२=४$\frac{१}{२}$।

उदाहरण २ — $\frac{११}{३}$ मेंसे $\frac{७}{३}$ घटाओ।

बतला दो कि यह उसी प्रकारका प्रश्न है जैसा ११ आमोंमें से ७ आम घटाओ। जिसप्रकार ११ आम − ७ आम =४ आम उसी प्रकार ११ तिहाई−७तिहाई=४तिहाई, (सुभीतेकेलिए) $\frac{११}{३}$−$\frac{७}{३}$=$\frac{११—७}{३}$ $\frac{४}{३}$=१ $\frac{१}{३}$।

इस प्रकार कई उदाहरण देकर विद्यार्थियोंको समान हरवाले भिन्नोंके जोड़ने और घटानेकी विधिका अभ्यास करा दो।

भिन्नके रूपांतर—'$\frac{१}{२}$=$\frac{१\times२}{२\times२}$' और इसका उलटा

असमान हरोंके भिन्नोंका जोड़ व बाक़ी बतानेके पहले विद्यार्थियोंको यह बताना आवश्यक होगा कि यदि भिन्नके अंश और हर दोनोंको हम एक ही संख्यासे गुणा कर दें या उनमें एक ही संख्याका भाग दें तो भिन्नके मानमें कोई अंतर नहीं पड़ता। सिर्फ़ उसका रूपांतर ही होता है। काग़ज़के चौकोर टुकड़ों द्वारा यह बात बड़ी सरलतासे समझाई जा सकती है।

काग़ज़की एक चौकोर पट्टी लो। बीचमेंसे उसके दो तुल्य खंड करो। इन खंड़ोंमेंसे प्रत्येकके फिर दो तुल्य खंड करो। इसी भांति आठ व सोलह तुल्य विभाग करके समझाओ कि $\frac{१}{२}$=$\frac{२}{४}$ $\frac{४}{८}$ =$\frac{८}{१६}$ इत्यादि। वर्गों द्वारा भी यह बात आसानीसे समझाई जा सकती है।

काले तख़्तेपर एक वर्ग बनाकर लकीरों द्वारा उसके क्रमशः दो, चार, आठ और सोलह तुल्य खंड करके विद्यार्थियोंको समझाओ कि जितना $\frac{१}{२}$ वर्ग है उतनाही $\frac{२}{४}$,$\frac{४}{८}$,$\frac{८}{१६}$ वर्ग है।

इस प्रकार उदाहरणों द्वारा समझाये जानेपर सम्भव है कि 'भिन्नके रूपांतर' का नियम विद्यार्थी स्वतः निकाल लेंगे। यदि नहीं तो अध्यापक उनका ध्यान नियमकी ओर आकर्षित करें और स्वतः बता दें। नियमका अभ्यास करानेकेलिए विविध उदाहरण दिये जायं। यदि यह बताना हो कि $\frac{३}{४}$=$\frac{६}{८}$ तो काग़ज़की दो पट्टियां बराबर लम्बीं लो और एक पट्टीको तुल्य ४ खंड़ोंमें तथा दूसरीको आठ खंडोंमें विभक्त करो। अब पहिलीके चार खंडोंमेंसे तीन, और दूसरीके आठ खंडोंमेंसे ६ लेकर दोनोंकी तुलना करो, और प्रत्यक्ष दिखा दो कि $\frac{३}{४}$=$\frac{६}{८}$।

इस प्रकार उपर्युक्त नियमकी सत्यताको जांच लेनेके पश्चात् कई उदाहरण देकर विद्यार्थियोंद्वारा निकलवाओ कि यदि दो तुल्य भिन्न लिये जायं तो पहिलेका अंश × दूसरेका हर = दूसरेका अंश × पहिलेका हर।

भिन्नके रूपांतरका नियम—समझानेकी दूसरी रीति

जैसा हम ऊपर बता आये हैं कि साक्षात पदार्थोंद्वारा भिन्नके रूपांतरका नियम समझनेमें विद्यार्थियोंको कोई दिक़्क़त नहीं होती। परंतु सिर्फ़ गणितके नियमोंपरसे ही इस नियमको समझ लेना बिलकुल आसान नहीं। नीचेकी कक्षाओंमें तो सिर्फ़ व्यवहारिक परीक्षाओं द्वारा ही उसे बता देना काफ़ी है, परंतु ऊपरकी कक्षाओंमें यदि अध्यापक, विद्यार्थियोंको इस नियमका विशेष ज्ञान कराना चाहते हों तो उसे भिन्नके तत्वपरसे ही समझाना सरल होगा। यदि यह बताना है कि $\frac{३}{४}$,$\frac{६}{८}$ के बराबर क्यों है तो पूछो कि $\frac{२}{३}$ का क्या मतलब है? उ० २ का तिहाई भाग। अच्छा यदि $\frac{२}{३}$ को ३ से गुणा करें तो क्या फल आवेगा? उ० २। इसी भांति $\frac{३}{४}$ का अर्थ क्या है? उ० ३ का चौथाई

भाग । $\frac{३}{४} \times ४$ का अर्थ क्या ? उ०–३ । इसी भांति $\frac{३}{४} \times ८$ का अर्थ क्या ? उ० ६ । तो ६ का आठवां हिस्सा क्या हुआ ? उ० $\frac{३}{४}$ ।

साधारणतः ६ का आठवां हिस्सा किस प्रकार लिखते हो ? उ० $\frac{६}{८}$ तो $\frac{३}{४} = \frac{६}{८}$ । काले तख्तेपर इस भांति लिखो,

$\frac{३}{४} = \frac{१}{४} \times ३$ याने $\frac{१}{४}$ का तिगुना । $\frac{३}{४} \times ४ = \frac{१}{४} \times ३ \times ४ = \frac{१}{४} \times ४ \times ३ = ३ \therefore \frac{३}{४} \times ४ \times २ = ३ \times २$

$\therefore \frac{३}{४} = \frac{३ \times २}{४ \times २}$ (नियमानुसार) $= \frac{६}{८}$ ।

इस प्रकार भिन्नका रूपांतर सिखाये जानेपर विद्यार्थियोंको असमान हरों वाले भिन्नोंका जोड़ व बाक़ी सिखाना चाहिये ।

$\frac{१}{२}$ और $\frac{३}{४}$ को जोड़ना है ।

समझाओ कि इस प्रश्नका अर्थ इन प्रश्नोंकी नाईं है– २ घोड़े और ३ बन्दरोंको जोड़ो अथवा ४ आम और ५ निंबूको जोड़ो या एक गिन्नी और चार रुपयोंको जोड़ो। देखो जिस प्रकार घोड़े और बंदर एक जातीय नहीं उसी प्रकार $\frac{१}{२}$ और $\frac{३}{४}$ ये भिन्न समान जातीय नहीं हैं। अच्छा तो क्या घोड़े और बन्दरोंको जोड़ सकते हो ? उत्तर नहीं। तो क्या इसी भांति $\frac{१}{२}$ और $\frac{३}{४}$ को भी नहीं जोड़ सकते । देखो यदि घोड़े और बंदरोंको 'जानवर' रूपमें लाकर यदि हम कहें कि २ घोड़े और ३ बन्दर कुल पांच जानवर हुए तो जोड़ सकते हैं। इसी भांति ४ आम और ५ निम्बू कुल नौ फल हुए तथा १ गिन्नी और ४ रुपये कुल १५×४=१९ रुपये हुए । सारांश यह कि जोड़ी जानेवाली दोनों राशियोंको समान जातीय बनाना चाहिये । अब $\frac{१}{२} + \frac{३}{४}$ को देखो, १ आधा = कै चौथाई ? उत्तर–२ चौथाई, अथवा $\frac{१}{२} = \frac{२}{४}$ और $\frac{३}{४} = ३$ चौथाई । अतएव $\frac{१}{२}$ और $\frac{३}{४}$ मिलकर हुए ५ चौथाई अथवा $\frac{५}{४}$ के बराबर ।

$$\frac{१}{२} + \frac{३}{४} = \frac{२}{४} + \frac{३}{४} = \frac{२+३}{४} = \frac{५}{४} = १\frac{१}{४}$$

इसी भांति $\frac{१}{३} + \frac{३}{४}$ में

$$\frac{१}{३} = \frac{१ \times ४}{३ \times ४} = \frac{४}{१२} ; \frac{३}{४} = \frac{३ \times ३}{४ \times ३} = \frac{९}{१२}$$

इसलिए $\frac{१}{३} + \frac{३}{४} = \frac{४}{१२} + \frac{९}{१२} = \frac{४+९}{१२} = \frac{१३}{१२} = १ \frac{१}{१२}$

इस प्रकार असमान भिन्नोंके जोड़ और बाक़ीके प्रश्न समझाये जावें और उदाहरणों द्वारा रीति पक्की कराई जावे ।

भिन्नको पूर्णांकसे गुणा करना

भिन्नको पूर्णांकसे गुणा किस भांति करना चाहिये यह समझनेमें विद्यार्थियोंको कोई अड़चन न पड़ेगी । सिर्फ़ यही बात समझाना यथेष्ट होगा कि भिन्नका पूर्णांकसे गुणा करना—पूर्णांकका पूर्णांकसे गुणा करनेके समान ही है । मान लो कि $\frac{५}{६}$ को ८ से गुणा करना है । यह प्रश्न ठीक वैसा ही है जैसे ५ आमको ८ बार लेना । जिस प्रकार इस प्रश्नका उत्तर ४० आम है उसी प्रकार $\frac{५}{६} \times ८$ का उत्तर ४० षडाशं है। इस प्रकारके कई उदाहरण यदि दिये जायं तो विद्यार्थी नियमको स्वतः ढूंढ़ लेंगे । विषय यह है कि अंशको पूर्णांकसे गुणा करके, यथा अंश बना लो और पहले हरको ही नवीन भिन्नका हर रखो ।

———

बीज परम्पराका नियम

[ले० कर्मनारायण, एम. एस-सी.]

(कुम्भ १९७३ की संख्यासे सम्मिलित)

अधम दर्जेवाले माता पिताओंको भी लाभ

साधारणमें बच्चा माता और पिता दोनोंकी ओरसे अपने गुण लेता है, क्योंकि उसकी उत्पत्तिमें दोनों हिस्सा लेते हैं। कई बार बच्चेमें माता और पिता दोनोंके लक्षण पाये जाते हैं, कई बार एक ओरके गुण प्रधान होते हैं और दूसरी ओरके बहुत थोड़े, और कई बार ऐसा भी होता है कि एक ओरके गुण सर्वथा गुप्त रहते हैं और केवल एक ही ओरके प्रत्यक्ष होते हैं। इन बातोंके होते हुए भी गाल्टनने बहुतसे मनुष्योंकी लम्बाई और कुत्तोंके रङ्गकी परीक्षा करके और उनके बाप दादोंमें भी इन्हीं गुणोंकी परीक्षा करके एक नियम स्थापित किया है और वह यह है कि प्रत्येक मनुष्य अपने विरसेका आधा हिस्सा माता पितासे पाता है और बाक़ीका आधा और पूर्वजोंसे। निम्नलिखित चित्रमें १ एक बच्चेका विरसा दिखलाया गया है, जिसमेंसे आधा माता पितासे है (१/४ पितासे और १/४ मातासे) चैाथाई हिस्सा नाना, नानी दादा और दादीसे लिया हुआ है। सोलहवां हिस्सा ८ पर-पूर्वजोंसे लिया हुआ है इत्यादि इत्यादि। इस नियमसे यह सिद्ध होता है कि विरसा केवल माता पितासे ही नहीं परन्तु सब पूर्वजोंसे आता है और पूर्वजोंकी दूरीके अनुसार विरसेका परिमाण भी घटता जाता है।

विरसेके नियमोंकी खोजमें बहुतसे प्रयोग भी हुए हैं। यह दो नियम, जिनका हम अभी वर्णन कर चुके हैं, बहुतसे मनुष्यों तथा अन्य प्राणियोंकी गणनापर निर्भर है, परन्तु हम अब बीज परम्पराके गणना सम्बन्धी विचारोंको छोड़कर प्रायोगिक भागकी ओर ध्यान करते हैं। विरसेके सम्बन्धमें १९२२ बि० में मेंडल नामी एक पादरीने प्रयोग करने आरम्भ किये। कई वर्ष धीरतासे मटरके पौदेपर प्रयोग करता रहा और अन्तमें बड़े उपयोगी सिद्धान्त निकाल सका।

माता १/४	नानी १/८	माता
		पिता
	नाना १/८	माता
		पिता
पिता १/४	दादा १/८	माता
		पिता
	दादी १/८	माता
		पिता

चित्र १

इस नतीजेकी वैज्ञानिकोंने उस समय बहुत परवाह न की क्योंकि डार्विनका सिद्धान्त अभी नया ही निकला था और उसपर बहुत विचार और चर्चा हो रही थी। किसीको मेंडलके सिद्धान्तपर विचार करनेका ध्यान न हुआ क्योंकि सब डार्विनके सिद्धातमें लगे हुए थे। सन् १९५६ बि० में डी व्रीस (De Vries) नामक वनस्पतिशास्त्रवेत्ताने मेंडलवाले प्रयोगोंको स्वतः फिर किया और उसके से ही परिणामोंको सिद्ध किया। यही सिद्धान्त आजकल मेंडलिज़्म-(Mendelism) के नामसे प्रसिद्ध है।

एक नीले रङ्गका कुक्कुट होता है जिसे ऐराडेलूसियाका (Andalusia) कुक्कुट कहते हैं। यह जाति दोगली है, जब इस जातिके एक नर व एक मादाका जोड़ा बनाया जाए तो इनकी सारी संतान नीले रङ्गकी नहीं होती परन्तु केवल आधे बच्चे नीले रङ्गके होते हैं बाक़ी आधोंमें-

Heredity बीज परम्परा]

से एक चौथाई बिलकुल काले होते हैं और बाक़ी एक चौथाई श्वेत रङ्गके होते हैं, केवल थोड़ेसे काले धब्बे उनपर होते हैं। यदि ४ बच्चे उत्पन्न हों तो उनमेंसे दो नीले एक काला और एक सफ़ेद होगा। अब यदि इन एक चौथाई काले कुकुटोंको आपसमें जोड़ा मिलाया जाय तो उनकी संतान काली ही काली उत्पन्न होती है और इसी प्रकार यदि श्वेत कुकुटोंको आपसमें जोड़ा जाए तो उनकी संतान सारी सफ़ेद होगी परन्तु यदि नीले कुकटोंको आपसमें जोड़ा जाय तो इनमेंसे फिर आधे नीले, एक चौथाई काले और एक चौथाई सफ़ेद निकलेंगे। अब यदि कालोंकी संतानमेंसे एक कुक्कट या कुकुटीका सफ़ेदोंकी संतानमेंसे एक कुकुटीसे या कुकुटसे जोड़ा मिलाया जाय तो सारीकी सारी संतान नीले रङ्गकी उपजेगी। निम्नलिखित वंशावलीसे इन प्रयोगोंका तत्त्व विदित हैः—
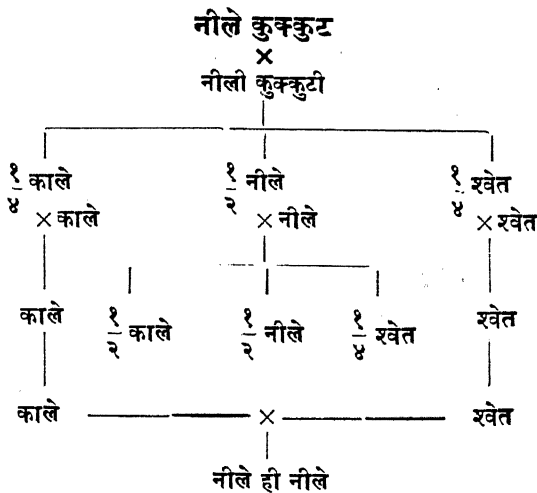
नोट— × जोड़ा मिलानेका चिह्न है।

चित्र २

अब हमको यह मालूम करना है कि इस कुकुटमें ऐसी विचित्र बीजपरम्पराके होनेका क्या अर्थ है ? नीले रंगके कुकुटकी संतानमें काले और श्वेत बच्चे क्योंकर उत्पन्न हो जाते हैं ? और काली, श्वेत और नीली संतानमें $\frac{१}{४} : \frac{१}{४} : \frac{१}{२}$ इस अनुपातके (proportion) होनेका क्या प्रयोजन है ?

अन्यत्र लिखा जा चुका कि संतानोत्पत्तिमें केवल एक वीर्य्याणुका एक अंडके साथ संयोग होता है। जब काले कुकुटका संयोग श्वेत कुकुटीके साथ होता है तो वास्तवमें काले लक्षणवाले वीर्य्याणुओंका संयोग श्वेत लक्षणवाले अण्डोंसे होता है। काला कुकुट और श्वेत कुकुट यह कुकुटोंकी दो उपजातियां हैं, जिस प्रकार कबूतरोंमें लका लोटनादि नामवाली कई उपजातियां हैं। दो भिन्न भिन्न जातियोंके (उपजातियां नहीं) नर व मादाके संयोगसे प्रायः एक सर्वथा भिन्न जन्तु निकलता है। जैसे घोड़े और गधेके संयोगसे खच्चर निकलता है, इसी प्रकार काले और श्वेत कुकुटके संयोगसे एक तीसरी उपजाति नीले कुकुटोंकी उपजती है परन्तु खच्चर और इस नीले कुकुटमें बड़ा भेद है और वह यह है कि मादा खच्चर बांझ होती है और बच्चे, नहीं देती परंतु नीली कुकुटी बच्चे देती है। कहा जाता है, कि खच्चरका भी पेट फाड़कर बच्चा (अस्तर) निकालते हैं परन्तु यह बच्चा खच्चर जैसा ही होता है। विपरीत इसके नीलीकुकुटीके बच्चे सारे नीले नहीं होते परंतु उनके लक्षणोंमें बांट हो जाती है $\frac{१}{४}$ श्वेत $\frac{१}{४}$ काले और $\frac{१}{२}$ नीले निकलते हैं। अब प्रश्न यह है कि नीले कुकुट कुकुटियोंकी संतानमें काले और श्वेत कुकुट क्योंकर उत्पन्न हो जाते हैं।

कुकुटोंके इस प्रयोगसे प्रतीत होता है कि नीला लक्षण स्थिर नहीं है क्योंकि आधी संतानमें इस लक्षणका संक्रमण नहीं होता। नीले लक्षणके स्थिर न होनेसे ही नीले कुकुटोंकी संतान सारी नीली नहीं निकलती। वास्तवमें श्वेत और काले कुकुटोंके संयोगसे जो नीली

संतान उत्पन्न होती है वह स्थिर उपजाति ही नहीं है। श्वेत और काले लक्षण आपसमें मिल नहीं जाते वरंच केवल साथ साथ ही रहते हैं। और बाहर नीले रंगको प्रगट करते हैं। जब एक काले लक्षणवाला वीर्य्याणु एक श्वेत अण्डेसे मिलता है तो सन्तान बेशक नीली निकलती है परन्तु जब उस नीली संतानके कुकुट कुकुटियों-के शरीरमें वीर्य्याणु और अण्डे बनने लगते हैं तो उनमें नीला लक्षण नहीं होता परन्तु काला और श्वेत ही होता है हर एक नीले कुकुटमें आधे वी-र्य्याणु श्वेत और आधे काले होते हैं और हर एक नीली कुकुटीमें आधे अंड काले और आधे श्वेत होते हैं। इसलिए जब नीले कुकुट कुकुटियोंका संयोग होगा तो वास्तवमें काले और श्वेत वीर्य्याणुओंका काले और श्वेत अंडोंसे संयोग होगा। यदि एक कुकुट और एक कुकुटीके चार बच्चे उत्पन्न हों तो बहुधा दो काले और दो श्वेत वीर्य्याणुओंका संयोग दो काले और दो श्वेत अंडोंसे इस प्रकार होगा—

काले वीर्य्याणु......................काला अण्ड
श्वेत वीर्य्याणु......................काला अण्ड
काले वीर्य्याणु......................श्वेत अण्ड
श्वेत वीर्य्याणु......................श्वेत अण्ड

अब यह दैवयोगकी बात है कि काला वीर्य्या-णु काले या श्वेत अण्डसे मिले और श्वेत अण्ड श्वेत या काले वीर्य्याणुसे मिले। क्योंकि सम्भा-वना सबकेलिए एक जैसी है इसलिए प्रायः जैसे ऊपर चित्रमें दिखाया गया है एक काले वीर्य्याणुका काले अण्डसे संयोग होता है और काला कुकुट उत्पन्न होता है। एक श्वेत अण्डका श्वेत वीर्य्याणुसे संयोग होकर श्वेत कुकुट निक-लता है और एक काले वीर्य्याणुका श्वेत अण्डके साथ और एक श्वेत वीर्य्याणुका काले अण्डके साथ संयोग होनेसे दो नीले कुकुट उत्पन्न हो जाते हैं। संतानमें १ काला २ नीले और १ श्वेत कुकुट होते हैं।

मेंडलके समयमें इन कुकुटोंपर प्रयोग नहीं हुए थे परंतु उसने मटरके पौदोंपर प्रयोग किए। मटरके दाने दो प्रकारके साधारण तौरपर उगाये जाते हैं एक हरे रंगके और दूसरे पीले रंगके। दोनों प्रकारके दानोंसे भिन्न भिन्न उपजातिके पौ॰ होते हैं और हम उनको पीले और हरे लक्षणवाले पौदे कहेंगे। पीले और हरे पौदोंके फूलोंका आपसमें संयोग किया गया और जब मटरोंकी फलियें पक गईं तो उनको खोलकर देखनेसे विदित हुआ कि सारेके सारे मटरोंके दाने पीले रङ्गके थे कोई भी हरे रङ्गका दाना न था। मेंडल पादरीको बहुत आश्चर्य हुआ कि हरे रंगके लक्षणका बिलकुल लोप हो गया परन्तु उसने प्रयोग यहां ही बन्द न कर दिये पर-न्तु इन पीले मटरोंके दानोंको फिर बोया और जब पौदे बढ़े और फूल निकल आए तो उनको आपसमें संयोग होने दिया और पके हुए मटरों-के दानोंको इकट्ठा किया। देखा तो कई दाने पीले और कई हरे निकले और गिननेपर यह नतीजा निकला:—

पीले दाने	१९५८२	या ७४·५ प्रतिशत
हरे दाने	५९८१	या २५·५ प्रतिशत

इसका अर्थ यह है कि पीले दानोंकी संख्या हरे दानोंसे तिगनी है और हरे रंगका लक्षण जो पहली पीढ़ीमें बिलकुल गुप्त हो गया था अब फिर निकल आया है। इससे स्पष्ट है कि यह लक्षण पहली पीढ़ींमें भी विद्यमान था परन्तु छिपा हुआ था।

अब हमको यह मालूम करना है कि क्यों पहली पीढ़ीमें सारेके सारे दाने पीले थे और अब क्यों पीले और हरे दानोंमें ३:१ का अनुपात है? वास्तवमें पीले और हरे लक्षणोंमें पीला प्रधान (dominant) लक्षण है और इसलिए जब पीले और हरे लक्षणवाले पौदोंके फूलोंका संयोग होता तो सब बीज (दाने) पीले ही निकलते हैं और हरे रंगका लक्षण गौण (recessive) रहता है। दूसरी

पीढ़ीमें ३ पीले दानोंके साथ एक हरा दाना प्राप्त होता है इसका अर्थ समझनेकेलिए हमें एण्डेलूसियाके कुक्कुटोंका दृष्टान्त स्मरण रखना चाहिये। जिस प्रकार वहाँ दूसरी पीढ़ीमें १ श्वेत १ काला और दो नीले कुक्कुट निकले थे उसी प्रकार यहाँ भी १ हरा १ पीला और दो हरे पीले निकलने चाहिएं परन्तु दो "हरे पीले" पीले रंगके प्रधान होने बाहरसे बिलकुल पीले ही दिखाई देते हैं इसलिए एक पवित्र पीलेके साथ दो प्रधान पीले मिलकर तीन पीले हो जाते हैं और ३ पीले और १ हरा प्रतीत होता हैं। नीचेके चित्रसे यह अनुपात स्पष्ट हो जावेगाः—

चित्र ३
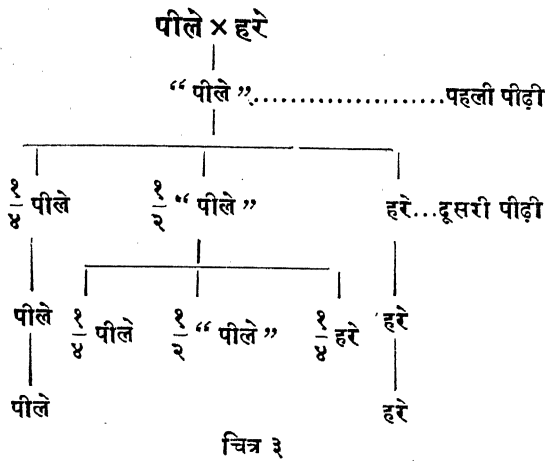
"पीले" = प्रधान पीले; पीले = पवित्र पीले।

पहली पीढ़ीमें सबके सब पीले थे परन्तु दूसरीमें $\frac{1}{4}$ वास्तविक पीले थे जिनकी संतान भी पीली ही निकलती है और $\frac{1}{2}$ पीले हैं जो वास्तवमें दोगले हैं और जिनकी संतानमें फिर हरे दाने निकल आते हैं और बाक़ी $\frac{1}{4}$ हरे हैं।

गुरुदेवके साथ यात्रा

(अनु० महावीरप्रसाद, बी. एस. सी., एल. टी.)

[कुम्भ १९७३ की संख्यासे आगे]

मैदाघाटीवाली प्रयोगशाला

अब मैं गुरुजीकी मैदाघाटीवाली प्रयोगशालाका वर्णन करूंगा, जो ऐतिहासिक दृष्टिसे भी चित्ताकर्षक हो गयी है। यह तुरंत ही इंगलैंडके प्रमुख विचारशील विद्वानोंके मिलनेका केन्द्र हो गयी। इसको देखनेकेलिए जितने दर्शक आये उन सबका वर्णन करना असम्भव है। इसलिए अत्यन्त प्रसिद्ध दर्शकोंमेंसे केवल कुछ लोगोंका वृत्तान्त यहां संक्षेपसे लिखा जाता है।

सर विलियम क्रुक्स

पहले दर्शकोंमें एक तो रायल सोसाइटीके सभापति सर विलियम क्रुक्स हैं। इनके आधी शताब्दीसे भी अधिक समयके किये हुए वैज्ञानिक काम इतने प्रसिद्ध हो गये हैं कि उनके वर्णन करनेकी आवश्यकता ही नहीं मालूम पड़ती है। शायद इनका सबसे बड़े महत्वका आविष्कार पदार्थकी विसर्जनीय (radiant) अवस्थाका आविष्कार है। इनकी (Crookes' tube) क्रुक्सनलीकी नवकल्पनाके (invention) कारण खोजकी दो बड़ी प्रणालियां अर्थात् एक्स किरण और विद्युत् अणुकी (electron) नीव पड़ी है। इन्होंने अपनी चतुराईसे ऐसा अपूर्व और पूर्ण वायु-शून्य बनाया जिसमें ऐसा प्रकाशका दृश्य देख पड़ा जिसका उद्गम ऋण-विद्युत्-भाग (kathode) था। क्रुक्सने समझा कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थके कणोंकी वर्षा इसका कारण है परन्तु बहुतसे जर्मन भौतिकवेत्ताओंने यह समझकर विरोध किया कि यह नया दृश्य प्रकाशका ही है। यह ऋण-विद्युत्-भाग-विसर्ग अलुमिनियमकी चद्दरको बेधकर पार कर जाता था, इसलिए समझा गया कि विसर्ग

किसी पदार्थका नहीं हो सकता। परन्तु क्रुक्स इसपर दृढ़ रहे कि कोई पदार्थ वास्तवमें बिलकुल ठोस नहीं है वरन उसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म आकारके असंख्यों रन्ध्र हैं। यदि ऋण-विद्युत्-भागके कण अत्यन्त छोटे हों तो ये उन सूक्ष्म रन्ध्रोंमें होकर दूसरी ओर जा सकते हैं। इस घटनाके पश्चात् यह निश्चय पूर्वक सिद्ध हो गया कि ये ऋण-विद्युत्-भाग-विसर्ग यथार्थतः पदार्थके सूक्ष्म कण हैं जिससे यह प्रत्यक्ष हो गया कि परमाणु और भी सूक्ष्म कणोंमें विभाजित किया जा सकता है। परमाणुसे भी सूक्ष्म कणोंको विद्युत्-अणु (electron) कहते हैं।

यह कहा गया है कि ये सूक्ष्म कण ठोसोंको (solids) बेधकर आर पार चले जा सकते हैं। जब ये चित्र उतारनेके (photographic) प्लेटोंपर टकराते हैं तब आभ्यान्तरिक चित्र (latent image) बन जाता है जैसा प्रकाशके टकरानेसे बनता है। क्रुक्स-नलीके पास ही पड़े हुए अंधेरे सन्दूकमें (dark slide) चित्र उतारनेके प्लेटके धुंधले हो जानेसे ही राँजनने (Rontgen) एक्स-किरणके आश्चर्ययुक्त गुणोंका पता पाया था। इससे उस अद्भुत लाटिन* कहवातका तात्पर्य्य समझा जा सकता है जो क्रुक्सकी मुहरपर खुदा हुआ है और जिसका स्वतन्त्र अनुवाद यों किया जा सकता है "क्रासके† बिना प्रकाश नहीं है।" परन्तु उन लाटिन शब्दोंके दूसरे अर्थ भी हो सकते हैं जो यह हैं—"जहां क्रुक्स हैं वहां प्रकाश है"।

वैज्ञानिक संसारमें जितना सम्मान इस विज्ञानवेत्ताका है उतना और किसीका नहीं। ८३ वर्षकी अवस्था होनेपर भी ज्ञानके प्रसारका स्वागत करनेमें इनका उत्साह वैसा ही रहता है जैसा युवावस्थामें था। रायल इन्स्टीट्यूशनमें गुरुजीके पहले दो व्याख्यानोंमें यह उपस्थित थे और इस समय भी वनस्पतिके खिंचते हुए स्व-शक्ति प्रेरित अंकनको देखनेकेलिए आये। गुरुजीने उसी समय एक और नवीन और अद्भुत आविष्कार किया था जिससे यह प्रत्यक्ष हो गया कि स्नायविक धक्कोंका नियन्त्रण सम्भव है। इससे शरीर-धर्म-विज्ञानपर ही बड़ा प्रभाव नहीं पड़ा वरन् मनोविज्ञानपर भी। यह आविष्कार उस समयतक किसी वैज्ञानिक सभाको नहीं बतलाया गया था। गुरुजीकी इच्छा थी कि इसे रायल सोसाइटीको ही बतलाना चाहिये। इस विषयपर वाद विवाद पूर्वक विचार करनेकेलिए सर विलियम क्रुक्स अपने साथ प्रसिद्ध शरीर धर्म-वेत्ता सर रोज़ ब्रैडफ़ोर्डको भी लाये जो रायल सोसाइटीके मंत्री थे। यह दोनो बड़े चावसे प्रायोगिक निरूपणोंको देखते रहे और खोजकी इन नवीन प्रणालियोंके महत्वको पूर्णतः समझ गये। दूसरे ही दिन रायल सोसाइटीके सभापतिने गुरुजीको निम्नांकित पत्र भेजा :—

"मुझपर आपकी विलक्षण बुद्धिका सूचक उस अपूर्व स्वयम्-सूचक-यंत्रका बड़ा गम्भीर प्रभाव पड़ा जिसके द्वारा आप पौदोंसे ही विद्युत वा और प्रकारकी उत्तेजनाका प्रत्युत्तर अथवा बाहरी उत्तेजनाके अभावमें उनकी ही गति लिखवा देते हैं। इसके द्वारा शरीर-धर्म-विज्ञान सम्बन्धी खोजोंके जो साधन ज्ञात हुए हैं वह बड़े ही महत्वके हैं। मैं आपकी गवेषणाओंकी समालोचना 'केमिकल निउज़में' (Chemical news) छपवाऊंगा जिससे और लोग भी आपकी बुद्धिसे निकली हुई विलक्षण बातोंको पढ़कर समझ जायं।"

यहां यह लिख देना युक्तिसंगत होगा कि गुरुजीके वे प्रयोग जिनसे उन्होंने यह सिद्ध किया था कि स्नायविक धक्कोंका नियन्त्रण सम्भव है,

* लाटिन प्राचीन रोमन लोगोंकी भाषाका नाम है। इटली देशमें रोम एक नगर है जहांके निवासी रोमन कहलाते थे। विक्रमकी पहली शताब्दीमें यह लोग बड़ी उन्नत दशामें थे और इंगलैंड फ्रांस इत्यादिपर राज्य करते थे।

† क्रास शूलीको कहते हैं। जिसपर ईसाको फांसी दी गयी थी। इससे यहां आत्मत्यागका अर्थ निकलता है।

ऐसे विश्वास-प्रद समझे गये कि रायल सोसायटीने स्वयम् उनको प्रकाशित कर दिया।

शरीर धर्म वेत्ता

इसको बहुत कम लोग सच मानेंगे कि युरोपमें भी वैज्ञानिक संसारमें प्रबल जाति भेद है जिसके कारण यह मजाल नहीं है कि विज्ञानकी एक शाखाका तत्वविद् किसी दूसरी शाखाके विषयोंपर तर्क करके निकल जाय और क्रोधकी आग न भड़के। यही कारण था कि गुरूजीकी जीवन-विज्ञान सम्बन्धी खोजोंका लोगोंने पहले घोर विरोध किया क्योंकि आरम्भमें यह भौतिक-विज्ञान सम्बन्धी खोजोंमें लगे हुए थे। बहुत से शरीर-धर्म-वेत्ता समझते थे कि जीवनकी घटना एक अपरोक्ष प्राणि-शक्तिके कारण है। परन्तु हमारी अनभिज्ञताके छिपानेको यह एक पर्दा मात्र था। गुरूजीने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया कि जीवित और अजीवित पदार्थकी प्रतिक्रियामें क्रम-बद्धता (continuity) है और अबतक जीवन सम्बन्धी दृश्योंका कारण जो भौतिक रसायनके आधारपर बतलाया जाता था उसको भी स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया। इन्होंने सारी कठिनाइयोंसे बचनेकेलिए एक ऐसी अज्ञात शक्तिकी कल्पना करनेसे इनकार कर दिया जिसके सुगम गुण अस्पष्ट होनेके कारण जब जब कठिनाई पड़ती सामने किये जाते थे। गुरूजीके दृढ़ निश्चयपर डटे रहनेका इतना प्रभाव पड़ा कि 'नेचर' में गुरूजीके कामकी समालोचना करते हुए यह प्रशंसा लोगोंको लिखनी ही पड़ी कि "जीवन-विज्ञानके रहस्योंके जाननेवाले पाठकोंको डाक्टर वसुकी उस युक्ति-युक्त उन्नतिशील प्रणालीकी प्रशंसा करनी ही पड़ेगी जिससे वसु महाशयने तीन सरल कल्पनाओंको लेकर एक सर्व प्रकारेण कर्मशील पौदा शब्दोंमें ही नहीं वरन् सच्चे प्रयोगोंद्वारा सिद्ध करके खड़ा किया है।" शरीर धर्म-वेत्ताओंको ऐसे प्रयोग देखनेका अभीतक अवसर नहीं मिला था इस कारण बहुत लोगोंको विश्वास नहीं हुआ। यथार्थ निर्दृशनसे (demonstration) लोगोंके विचारमें कितना परिवर्तन हो गया इसका अनुमान इस बातसे किया जा सकता है कि प्रयोगोंको देख लेनेपर एक प्रसिद्ध शरीर-धर्मवेत्ताने कह भी दिया कि अबतक तो वह इस भ्रममें पड़ा हुआ था कि डाक्टर बसुके यह परिणाम सच्चे प्रयोगोंद्वारा नहीं प्राप्त हुए हैं वरन् प्राच्य कल्पना शक्तिकी बाहुल्यता द्वारा। इतना ही नहीं उसने यह भी मान लिया कि यदि उस समयतक रायल सोसाइटीने गुरूजीके लेख नहीं प्रकाशित किये तो इसका मूल कारण वही था क्योंकि उसीके नहीं करनेसे प्रकाशित करनेके विरोधी दलका पक्ष बलवान हो गया था। उसने कहा "डाक्टर वसु! अब मैंने समझ लिया कि आप ही ठीक थे और हम लोग भूलमें पड़े थे। अबसे ऐसे प्रयोगकर्त्ताके परिणामोंके विषयमें कोई प्रश्न नहीं उठेगा, जिसने ऐसी पूर्णताके साथ शुद्धताकी सीमाको बढ़ा दिया है।"

जितने वनस्पति-शरीर-धर्मवेत्ता आये थे उनमें एक रायल कालेज आव् सायन्सके अध्यापक फार्मर थे। इम्पीरियल कौलेज आव् सायन्सकी ओरसे उसने यह निमन्त्रण दिया कि एक व्याख्यान उनके सामने भी दिया जाय। अध्यापक ब्लैक-मैनने बानस्पतिक परिषद्के (Botanical society) सामने भी एक व्याख्यान देनेकेलिए निमन्त्रित किया। यूनीवर्सिटी कालेजके अध्यापक आलि-वर जो गुरूजीके सिद्धन्तोंके पूरे समर्थक थे "मैदाघाटीकी प्रयोगशालाके निर्दृशनोंके विलक्षण और महत्वपूर्ण ढंगको" देखकर दंग रह गये। प्रसिद्ध प्राणि-शरीर-धर्मवेत्ता अध्यापक स्टार्लिंग-ने "अपूर्व और नवकल्पित यन्त्र जिन्हें आपने बन-स्पतिसे किये गये प्रश्नोंका उत्तर पानेकेलिए रचा है" के सम्बन्धमें बहुत उत्साहके साथ लिखा था। अध्यापक शेरिंगटन जिनकी गणना स्नाय-विक प्रतिक्रियाओंके पूरे विद्वानोंमें है यह देखकर दंग रह गये कि बनस्पति और जीवधारियोंकी

स्नायु सम्बन्धी क्रियाओंमें कैसी अद्भुत समता है और इन खोजोंसे बहुतसी नयी बातोंके पता लगानेकी कैसी अच्छी सम्भावना है।

इस प्रकार वे शरीर धर्मवेत्ता जो पहले गुरूजीसे द्वेष करते थे अब उनके कामके सच्चे प्रशंसक बन गये।

अब मैं उन प्रसिद्ध साहित्यिकोंका वर्णन करूंगा जो प्रयोग देखनेकेलिए आए थे।

मिस्टर गार्डनर

लन्दनके "डेलीन्यूज" के सम्पादक, मिस्टर गार्डनर इंगलैंडके उन महापुरुषोंमें हैं जिन्होंने इंगलैंडके कूपमंडूकत्वको दूर करनेमें बहुत बड़ा भाग लिया है। हमारी प्रयोगशाला देखनेके पश्चात "डेलीन्यूज़" में इन्होंने मानव-तरुपर (human plant) एक महत्वपूर्ण लेख निकाला। इसमें लिखा है कि

"इन दिनों यह असम्भव मालूम होता है कि एक साथ कुछ सप्ताह ऐसे बीत जांय जिनमें कम वा अधिक गम्भीर मानसिक धक्के न खाने पड़ें......। इस समय अध्यापक जे० सी० बोस मैदाघाटीमें लोगोंको चकाचौंधमें डाल रहे हैं। यदि पाठक इनके उन आश्चर्यमय प्रयोगोंको देखें जो यह पौदों और फूलोंके साथ करते हैं तो पुराना संसार पीछे छोड़कर नये संसारमें घुसना पड़ेगा। वह संसार जहां पौदे पौदे ही समझे जाते हैं बिलकुल पुराना समझ पड़ेगा और एक ऐसी दुनियामें पैर रखना पड़ता है जिसमें पौदे प्रायः मानवजीव हो जाते हैं। जिस समय अध्यापक बसु यह दिखलाने लगते हैं कि पौदोंकी स्नायविक व्यवस्था वैसी ही है जैसी मानव-जातिकी और जिस समय वे पौदोंसे ही अपना (पौदोंका) जीवन-वृत्तांत लिखाने लगते हैं उस समय आश्चर्यके मारे पाठक उछलने लगेंगे। इस प्रकार मनुष्यका प्रवेश एक नयी दुनियामें हो जाता है........।"

एक दूसरे प्रसिद्ध लेखकने जिसका नाम लेन्स है और जिसके सुप्रसूति-विज्ञान सम्बन्धी तथा अन्य विषयोंके ग्रन्थोंसे लोगोंको अच्छी तरह परिचय है, "न्यू स्टेट्समैन"में (Ex orient lux) एक्स ओरिएण्ट लूक्स शीर्षक महत्वपूर्ण लेख लिखा था। उसके परिशिष्टमें था—

"पहले लोगोंका विचार था कि विश्वविद्यालय पुस्तकोंका संग्रहमात्र है। यह विचार अभीतक सत्य माना जाता रहा है। भारतीय विश्वविद्यालयोंका संस्थापन केवल परीक्षा लेनेकेलिए हुआ था। इसमें संदेह नहीं कि इनमेंसे कुछने शिक्षणका भी काम किया है परंतु उनके यथार्थ विकासकेलिए बहुत कुछ करना है। इन विश्वविद्यालयोंको ऐसी अवस्थाओंमें परिणत करना चाहिए जहां अज्ञातसे उस सत्यका ज्ञान होता हो जिससे मानवजातिकी भलाई होती है। सर टामस ब्राउनने लिखा था 'इसलिए मैं अपने मस्तिष्कको ज्ञानकी समाधि नहीं वरन् ज्ञानका भाण्डार बनाता हूं'। पुस्तकालय अथवा पुस्तकोंका संग्रह बहुधा ज्ञानका क़बरस्थान ही होता है। सच्चा विश्वविद्यालय ऐसी बहुमूल्य वस्तुओंका भाण्डार है जो बे रोकटोक सबकेलिए है और जो सदैव बढ़ता ही जाता है। मुझे विश्वास है कि सच्चा विश्वविद्यालय डाक्टर बोसके काम जैसे जीवन प्रदान करनेवाले ज्ञानकी ऐसी बढ़ती हुई अवस्थाके महत्वको उचित रीतिसे समझनेमें कभी नहीं चूकेगा।"

मिस्टर मसिंघम

इसमें संदेह नहीं है कि इंगलैंडका सबसे बड़े महत्वका साहित्यिक पत्र 'नेशन' है। इसके सम्पादक मिस्टर मसिंघम अपने सुयोग्य लेखकोंकी सहायतासे राष्ट्रीय न्याय-परताकेलिए महान उद्योग कर रहे हैं। अर्थ-शास्त्री हाब्सन और मिस्टर ग्राहम वैलेस उनके सहकारियोंमेंसे हैं। 'नेशन'में जो वर्णन ब्योरेके साथ प्रकाशित हुआ था उसका सारांश नीचे दिया जाता है—

"मैदाघाटीके पास एक कमरेमें एक भाग्यहीन गाजर बिना लैसन्सवाले जीवित-शरीरच्छेदककी (vivisecter) मेज़पर जकड़ी पड़ी है। विद्युत-बाटरीके तार श्वेत वस्तुसे भरी हुई दो कांच-नलियोंमें लगे हैं। ये तार ऐसी दो टांगोंकी नाईं मालूम होते हैं जिनके पैर मानो गाजरके गूदेमें गड़े हुए हैं। जब गाजर चिमटीसे दबायी जाती है बेचारी कांपने लगती है। यह ऐसी जकड़ी हुई है कि पीड़ाके मारे कांपते रहनेपर भी इसे एक विद्युत्-अंकी खींचना पड़ता है जिसमें नन्हासा दर्पण लगा हुआ है। इससे प्रकाशकी किरणें कमरेकी दूसरी ओर दीवालपर पड़ती हैं जिससे गाजरकी कंपकपीका आकार बड़ा विशाल हो जाता है। दहिनी नलीके पास चुटकी दबायी जाय तो प्रकाश ७,८ .फुट दहिनी ओर पड़ता है और बायीं नलीके पासकी चुटकी प्रकाशको उतना ही बांयी ओर ले जाती है।

इस तरह विज्ञान गाजर जैसी बेसमझ जड़के भावोंको भी प्रकटकर सकता है......... ।

"इन्होंने अपनी कल्पना शक्तिके सहारे बहुतसी उलझनोंको ठीक उस स्थानसे सुलझाना आरम्भ किया है जहां वैज्ञानिक वनस्पति-वेत्ताओंने उन्हें अपनी पहुंचके बाहर समझकर छोड़ दिया था। इन्होंने पौदोंके ज्ञात जीवनको भी नवीन सूक्ष्मताके साथ नापा है। मनुष्य पौदोंसे दृष्टांतका (parable) काम लेते रहे हैं, यद्यपि यह समता भी कवियोंकी अतिशयोक्तिके सिवा सर्वरूपेण ठीक नहीं समझी जाती। यद्यपि एक समय ऐसा था जब जंगम जीवधारी और स्थावर वनस्पतिवर्गमें आकाश पातालका अंतर समझा जाता था तथापि सूक्ष्मता पूर्वक जांच की जाय तो वनस्पतिवर्गसे जीवनके ऐसे नियम मालूम हो सकते हैं जो चलते फिरते जीवधारियोंकेलिए भी वैसे ही लागू होते हैं। जीवधारियोंकी नाईं पौदे भी श्रमित, आनन्दित और निराश होते हैं। वनस्पत्योद्यानमें (green house) रहनेसे वे अपनी प्राकृतिक अवस्थासे अधोगतिको प्राप्त हो जाते हैं और सीमासे अधिक बढ़कर कोमल हो जाते हैं जिससे बाहरी धक्के खानेपर उस समयतक दुर्बलताके साथ प्रतीकार कर सकते हैं जबतक वह सावधानीके साथ अपनी प्राकृतिक और पूर्ण दशामें रहकर कड़े नहीं हो जाते......।

"भौतिक वनस्पति विज्ञानके कुंडमें अध्यापक बोसने जो मानस पत्थर फेंका है उसके प्रभावका अनुमान करना असंभव है। ऐसी दिशाएं बहुतसी हैं जिनमें छोटी छोटी तरंगे जायंगी। हमें आश्चर्य है कि बोसका यंत्र उन पौदोंकी नाड़ियों और भावोंके संबंधमें क्या सम्मति देगा जो एक मूलमें पुरुष और दूसरे मूलमें स्त्री हैं। फिर, इनसे उन वैज्ञानिकोंको कौनसी सहायता नहीं मिल सकती जो चयन द्वारा (selection) नयी नयी संकरज जातियां उत्पन्न करते हैं: इस तरंगके विस्तृत क्षेत्रमें क्या यह जानने योग्य नहीं है कि अर्जित चरित्रकी वंश परम्पराके (inheritance) विषयमें जो कठिन मतभेद है उसके साथ क्या संबंध है? इसके सिवा सारे जीवनको दशा सिद्धकर देनेकेलिए पौदा अधिक योग्य साक्षी हो गया है। ऐसे पौदोंको यह भी सिखलाया जा सकता है कि भाव साहचर्य्य (association of ideas) द्वारा वे किसी धक्केको पहलेसे ही समझकर उसका प्रतिकार कैसे करें? ऐसे असंख्यों प्रश्न हैं जिनके उत्तरकेलिए हमारे वनस्पति-योनिज छोटे भाई कसौटीपर कसे जायंगे।"

जार्ज बर्नार्ड शा—

वर्त्तमान लेखकोंमेंसे शायद किसीका भी अंग्रेज़ी साहित्यपर इतना गम्भीर प्रभाव नहीं है जितना प्रतिभाशाली और विरोधाभासी बर्नार्ड शाका है। अंग्रेज़ी बोलनेवाली जातियोंमें इनका स्थान अनुपम है और इनकी कहावतें इंगलैंड और अमेरिका दोनों देशोंमें एक समान प्रयोग की जाती हैं। बातचीतमें अपनी वाक्पटुताके कारण श्रोताओंपर जादूका सा प्रभाव डाल देते हैं और इसमें सन्देह नहीं कि इनकी उपस्थितिमें किसीकी मजाल नहीं जो एक बातमें भी इनका सामना कर सके। हमारी प्रयोगशालामें जो कुछ इन्होंने देखा उसके कारण आश्चर्यसे नहीं वरन उससे भी गम्भीर भावसे एक बार अवाक् रहे। यह बात इनके साथियोंको बड़ी अनोखी जंचीं। इन्हें मानवीयवादियोंसे (humanitarian) भी आगे बढ़ जानेका बड़ा अभिमान रहा है, क्योंकि इन्होंने अपने सजीव बंधुओंको भक्षण करके अपना जीवन निर्वाह करनेकी रीति बंदकर दी थी और बड़े कट्टर शाक-भोजी थे। किसी जीवको न सतानेके कारण इन्हें जो सहज प्रफुल्लता थी उसपर उस समय बड़ा भारी धक्का पहुंचा जब इन्होंने देखा कि गोभीका टुकड़ा भी चुटकीसे दबनेपर कांपने लगता है और जब उबाला जाता है तब मरते समय बेचारा खूब तलफ़ तलफ़कर मर जाता है।

अध्यापक गिल्बर्ट मरे

आक्सफ़ोर्डमें यवनानी भाषाके प्रसिद्ध अध्यापक गिल्बर्ट मरेका प्रभाव भी अंग्रेज़ी साहित्यिकोंपर बहुत बड़ा है। दूसरे राष्ट्रोंमें भी इनका मान है। अपने व्यक्तिगत आचरण और बड़े बड़े आन्दोलनोंमें सच्ची सहानुभूति रखनेके कारण सारे राष्ट्रीय कामोंमें इनका भाग लेना बड़े महत्वका समझा जाता है। हमारी प्रयोगशाला देख लेनेपर इन्होंने लिखा—

"मैंने रायल इन्स्टीट्यूशनमें आपका व्याख्यान दो बार बड़ी चाव और असाधारण आनन्दसे

सुना, मुझे यह बोध होता है कि मैं उस अपार कौशलयुत और धैर्ययुत कामका अनुभव कर सकता हूं जिसका फल आपका छोटा परन्तु स्पष्ट वक्तव्य है। इससे अवश्य मालूम होता है कि संसार अबतक जैसा प्रतीत होता था उससे भी अधिक आश्चर्यमय है।"

खाद्य

[ले० डा० बी. के. मित्र, एल. एम. एस.]

(गताङ्कसे आगे)

परिशिष्ट

भोजनके पहिले हाथ, मुंह धोना खानेके स्थानमें पानी छिड़कना, चौकेमें बूट पहनकर न जाना आदि हमारे देशके नियम स्वास्थ्य विधिके अनुकूल हैं। कारण, ऐसा न करनेसे हानिकर जीवाणु शरीरमें प्रवेश कर सकते हैं। भोजनके अनन्तर मुख शुद्धिकेलिए प्राचीन कालसे हरीतकी तथा ताम्बूलकी व्यवस्था चली आ रही है। हरीतकीके गुणके विषयमें आयुर्वेद प्रणेतृगण बहुत पक्षपाती थे। इसको 'प्राणदा' 'सुधा' 'भिषक् प्रिया', आदि सार्थक संज्ञायें दी गई हैं। इसके व्यवहारसे कुछ कोष्ट बद्धता भी दूर होती है।

पान

साधारणतः कत्था, चूना तथा इतर सुगन्धित मसालों यथा सौंफ़, अजवायन, दालचीनी, लौंग, जावित्री, आदिके साथ व्यवहार होता है। यह न केवल मुखकी शुद्धि करता है प्रत्युत पूर्वोक्त पदार्थोंके कारण कियत् परिमाणसे लाला निस्सारक तथा पचन निवारक भी होता है। इसके व्यवहारसे आमाशयके भीतर मुक्त द्रवका विकार तथा अजीर्णादि व्याधि नहीं होने पातीं। पानमें चूना होनेके कारण उसकी प्रकृति (एल्केलाइन) क्षार होती है और चर्बणके कारण तथा पान और इतर द्रव्योंके उत्तेजक प्रभावसे मुखसे अधिक परिमाण लाल निसृत होकर श्वेत सारादिके पाचन कार्य्यको सहायता करता है। आमाशयके अन्दर भी लाल द्वारा श्वेत सारका पाचन प्रायः $\frac{१}{२}$ घण्टा काल होता रहता है परन्तु कत्थेमें टेनिक एसिड(काषय वीर्य्य) होनेके कारण यह आमाशयकी पाचन क्रियाको रोकता है। अत एव एक बार पीक थूक देना चाहिये। सड़ी कच्ची सुपारी भी शिर पीड़ा तथा क्षुधा मान्द्यादि उपद्रव उपस्थित करती हैं। और इसके खण्ड दन्त गहरोंमें उपस्थित रहकर बहुधा दन्तरोगके कारण होते हैं। यद्यपि पान एक निर्दोष स्वास्थ्यानुकूल जातीय आचार है, और सुश्रुतजीके समयसे इसका गुण वैद्य ग्रन्थोंमें गाया गया है, तथापि आधुनिक पण्डितोंने इसका दोष दिखाया है। इसका प्रधान कारण यह प्रतीत होता है, कि साहब लोग इसको पसन्द नहीं करते, अतएव भोजनके अनन्तर यदि पानसे मुख शुद्धि करनेमें एक मात्र साहब लोगोंकी आपत्ति है तो उचित है कि भोजनान्तर कुछ काल विश्रामकर और फिर मुख प्रक्षालनकर साहब लोगोंके सामने कार्य क्षेत्रमें उपस्थित हों। पान चबाते चबाते गुरुजनोंमें जाना हमारे यहां भी नीति विरुद्ध है। मुखके अन्दर कोई पदार्थ चर्वण करते हुए सो जाना अनुचित है, कारण निद्रावस्थामें उनका कोई खण्ड खास पथमें जानेसे अत्यन्त अनिष्ट हो सकता है।

तम्बाकू

जिस पदार्थका आधुनिक ग्रन्थ कारोंने ताम्रकूट नाम रक्खा है भारतमें १६ वीं शताब्दीके आरम्भमें पोर्चुगलवासियों द्वारा लाया गया; और अकबरशाहके राज्य कालमें ही सर्वत्र उसका प्रचार हुआ। वह भी मुसलमान और नानक पन्थियोंके अतिरिक्त सब ही जातियोंने इसकी अधीनता स्वीकार की। इसको जलाकर पीते हैं वा इसके

पत्ते चाबते हैं वा पीसकर नासरूपसे व्यवहार करते हैं। इसके अन्दर, "निकोटीन" नामक एक विष है जो नाड़ी मण्डलीका कुछ उत्तेजक है परन्तु अधिक मात्रामें इससे शिरोघूर्णन, वमनेच्छा वमन, आलस्य, निद्रालुता, घर्मोत्पादन, तालु शुष्कता, श्वास कृच्छता, दर्शन और श्रवण शक्तिकी क्षीणता आदि उपद्रव होते हैं। और प्रायः शिशुओंमें हृत्पिंडकी अवसन्नता होकर मृत्यु भी हो जाती है। किशोरावस्थातक इसका व्यवहार सर्वथा अनुचित है। क्योंकि यह नाड़ी मण्डली तथा शरीरके अन्य यन्त्रादियोंको विकृत करता है। परन्तु पूर्णावस्थामें संयमके साथ इसका व्यवहार दोष हीन है, विशेषतः इस प्रकारसे जैसे हमारे देशमें हुक्के द्वारा व्यवहार होता है। हुक्केमें तम्बाखू जलकर इसका निकोटीन विष एक और पदार्थ "कोलीडोन" नामकमें परिणत हो जाता है जो इतना विषधर्म युक्त नहीं है। परन्तु पैपकी कुठालीके बीचमें व्यवहार करनेसे वायुके अभावसे एक और पदार्थ पिरीडीन, उत्पन्न होता है जो पूर्वोक्तसे विषक है। अधिक परिमाणमें तम्बाखू सेवनसे कण्ठ देशमें प्रदाह, अजीर्ण फुसफुसमें क्षत होता है और हृत्पिण्डका स्वाभाविक स्पन्दन अनियन्त्रित होकर अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। कभी दृष्टि लोप भी हुआ है। इसका सेवन हुक्का द्वाराही सबसे अच्छा है। मुखसे चर्वण तथा नस्यरूपसे ग्रहण करना न केवल कदर्प्प अभ्यास है किन्तु स्वास्थ्यकेलिए भी हानिकारक है। संयमके साथ व्यवहारसे शरीरका अवसाद मिलता है। यह आमाशयका थोड़ासा उत्तेजक भी है और शौचसे पूर्व व्यवहारसे कोष्ठ बद्धताको भी दूर करता है।

सुरा

दुर्भाग्यसे इस विदेशीय अभ्यासमें हमारी जाति ऐसी ग्रस्त हो गई है कि उससे उद्धार होना केवल परमात्मा और राज प्रतिनिधियोंके हाथमें है। तथापि इससे देशको मुक्त करनेकेलिए प्रत्येक स्वदेश प्रेमीको कुछ न कुछ प्रयत्न करना उचित है। हम यह नहीं कहते कि सुरापान भारतमें अज्ञात था। इसका व्यवहार वैदिक युगमें भी दृष्टिगत होता है। आयुर्वेदीय ग्रन्थोंमें बहुतसे आसव और सुराओंका वर्णन है। तथापि सुराका व्यवहार जनसाधारणमें ऐसा बद्धमूल नहीं था जैसे आजकल देखनेमें आता है। वह केवल नितान्त निम्न श्रेणि वा उच्चश्रेणीके लोगोंमें प्रचलित था। हम महाभारतमें देखते हैं कि एक निशाद अपने पांच पुत्र सहित सुरासे संज्ञाहीन होकर जतुगृहमें जल मरती हैं; वा श्रीकृष्णके जाति भाई यदुवंश वाले सुरोन्मत्त होकर परस्पर अनर्थ युद्ध कर विनष्ट होते हैं। अतएव महाकवि व्यासजी कहते हैं, कि सुराका परिणाम मृत्यु है। विज्ञानकी दृष्टिसे सुरा एक प्रबल विष है जिसका आभ्यान्तरिक सेवन केवल अभिज्ञ चिकित्सककी अनुमतिसे होना ही अभीष्ट है। पान भोजनादिमें इसका स्थान कदापि नहीं है।

छाया चित्रण *

[ले० दुर्गादत्त जोषी, बी. ए. एम. एस-सी.]

सूर्य देवताके निकलते ही अंधारका नाश होता है और सब पदार्थ उनकी ज्योतिसे प्रकाशित हो जाते हैं। ज्योति पदार्थोंको केवल प्रकाश ही नहीं करती, परन्तु अपने तेजसे उनमें एक तरहका परिवर्तन भी कर देती है। कोई पदार्थ तो इस परिवर्तनसे अन्य पदार्थमें पूर्ण रूपसे बदल जाते हैं और उनके गुण, स्वरूप, अणुओंमें परिवर्तन हो जाता है, परन्तु कई ऐसे हैं जिनमें आभ्यन्तरिक परिवर्तन नहीं होता, केवल बाहरी रूप बदलता है। कितने ही ऐसे रंगीन

*यह व्याख्यान श्रीयुत दुर्गादत्त जोषी, बी. ए. एम. एस-सी ने परिषत्के तुला १९७३ के अधिवेशनमें दिया था।

Photography छाया चित्रण]

पदार्थ हैं जो रोशनीमें धीरे धीरे हल्के पड़ जाते हैं, रंग इन पदार्थोंका रोशनीके प्रभावसे फीका पड़ जाता है। परन्तु कई ऐसे हैं जो रोशनीके पाते ही रंगीन होने लगते हैं। (Agcl) रजत हरित जो चांदी और (chlorine) हरिनके संयोगसे बनता है, रोशनी पाते ही बैजनी रंगका हो जाता है। चांदीके प्रायः सभी लवणोंका (salts) यही स्वभाव है। यह गुण केवल चांदीके ही लवणोंमें (salts) नहीं देखा गया; कई और भी ऐसी धातु हैं जिनके लवणोंमेंसे (salts) बहुतोंमें यही बात पाई जाती है। रोशनी और इन लवणोंके (salts) इस सम्बन्ध द्वारा अपना अथवा किसी अन्य वस्तुका चित्र लेनेकी कोई सुगम रीति निकल आवेगी इसका स्वप्नमें भी किसीको ज्ञान न था। पर धन्य उन हमारे वैज्ञानिकोंको, जिन्होंने इसके प्रयोगसे एक ऐसी कला निकाली कि जिसके द्वारा वह कार्य जिसके करनेमें हमारे चित्रकार बहुतसा समय और परिश्रम नष्ट करते थे अब थोड़े ही समयमें और थोड़े ही परिश्रमसे बड़ी सुगमतासे किया जा सकता है। इस कलाका नाम आलोक चित्रण (photography) है। और इन दिनों यह ऐसी पूर्णताको प्राप्त हो चुकी है, कि स्वाभाविक रंग (natural colours) भी जिनका कुछ दिन हुए छाया चित्रमें (photograph) दिखलाना असम्भव था अब बड़ी सुगमता तथा पूर्णरूपसे दिखाये जाते हैं। चित्रमें स्वाभाविक रंगोंका (natural colours) अभाव कैसे पूरा हुआ इस बातपर किसी अन्य दिन आप लोगोंके समक्ष हमारे प्रतिष्ठित डाक्टर सरकार अपने व्याख्यानमें दर्शाएंगे।

पुराने ग्रन्थोंसे यह पता लगता है कि भारतवर्षके निवासी हाथसे चित्र खीचनेकी कलामें कुशल थे, और उन्हें कांचका बनाना, तथा दर्पण और तालका (lenses) उपयोग भी मालूम था, किन्तु मुझे इस बातका पता कहींसे भी नहीं लगता, कि उन लोगोंको आलोक चित्रण कलाका (photograph) भी ज्ञान थी अथवा नहीं।

१८५८ वि. में वेजउड (Wedgwood) और डेवीने पहिले पहिल चित्र बनानेकी एक नई रीति निकाली। इसमें कोई चित्रकारकी आवश्यकता नहीं। एक अंधेरी जगहमें काग़ज़के एक तरफ़को काष्टिकके घोलसे भिगोकर सुखा लेते हैं। तब उस काग़ज़के उस सतहपर जिधर काष्टिकका घोल लगा हुआ है, जिस वस्तुका चित्र लेना होता है उसे लगा देते हैं और सूर्यकी रोशनीकी तरफ़ रखते हैं। काग़ज़का वह भाग जिसपर रोशनी पड़ती है धीरे धीरे काला पड़ जाता है, काले पड़ जानेके बाद काग़ज़को अंधेरी जगहपर ले आते हैं और वहां चित्र देनेवाले पदार्थको निकाल लेते हैं। चित्र देनेवाला पदार्थ सूर्यकी रोशनीको अपने भीतरसे नहीं जाने देता इसी कारण काग़ज़का उतना भाग जिधर पदार्थसे होकर रोशनी नहीं पहुंचती ज्योंका त्यों रहता है और काला नहीं पड़ता। पदार्थका ठीक आकार सफ़ेद रंगका काले ज़मीनपर बना हुआ मालूम पड़ता है इस तरहके चित्र बहुत दिनोंतक नहीं ठहरते रोशनी पाकर धीरे धीरे काले पड़ जाते हैं। इस रीतिसे केवल समतल वस्तुओंका चित्र लिया जा सकता था। उभरे हुए अथवा और किसी रूपके ठोस पदार्थ काग़ज़पर ठीक तरहसे नहीं लगाये जा सकते थे और यही कारण था कि ऐसे पदार्थोंका चित्र इस रीतिसे नहीं लिया जा सकता था। पर इस रीतिने इङ्गलेण्ड और फ्रांसके वैज्ञानिकोंमें एक तरहका नया उत्साह उत्पन्न किया, और वे लोग इसकी खोजमें लगे जिससे हर वस्तु चाहे वह किसी रूपकी हो चित्र लेनेवाले (sensitised) काग़ज़पर आ जाय और सदाकेलिए बनो रहे।

किसी अंधेरी कोठरीके भीतर, किसी एक छोटे छिद्रके द्वारा यदि रोशनी आवे तो छिद्रके ठीक सामनेकी जगहपर जिस वस्तुसे होकर रोशनी आती है उसका ठीक उलटा समतल

चित्र दिखाई देता है*। इस दृश्यको प्रथम इटली-के पोर्टा नामक वैज्ञानिकने १६ वीं शताब्दीमें देखा। इस घटनाके आधारपर एक ऐसा यंत्र बनाया गया जिससे समतल चित्र किसी वस्तुका चाहे वह किसी रूपकी हो यंत्रके भीतर पड़ता है। छिद्रकी जगह तालके (lens) प्रयोगसे चित्र और स्पष्ट आता है। किसी ऐसे वस्तुको लेकर, जिसको पार करके रोशनी नहीं जा सकती चारों तरफ़से जोड़कर खुले हुए सन्दूकके आकार-का बना लेते हैं। खुले हुए भागको एक ऐसे वस्तुसे जिसके भीतरसे रोशनी पूरी तौरसे नहीं पर कुछ कुछ जा सकती हो, बन्द कर देते हैं। ठीक इसीके पीछेवाली भीतिपर बीचों बीच छिद्र बनाकर ताल (lens) लगा देते हैं। जब किसी-का चित्र लेना होता है, तो उसके सामनेकी तरफ़ इस यंत्रका तालवाला भाग करते हैं। ठीक उलटा चित्र उसका तालके सामनेकी भीतपर पड़ता है और तब चित्रकार बड़ी सुगमतासे लेखनी-द्वारा उसे उतार लेता है। इस यंत्रको अंधेरा केमरा (camera obscura) कहते हैं। जिसपर चित्र दिखाई देता है उसे परदा (screen) कहते हैं, यह परदा धुंधले शीशेका (ground glass) होता है। वेजवुड (Wedgwood) और डेवीने (Davy) अंधेरे केमरेके परदेको (screen) जगह-पर कास्टिकसे ढका हुआ कागज़ लगाया और कई घन्टोंतक उसे चित्रकी रोशनीमें रखा पर कई घन्टोंतक रहनेपर भी कागज़का उतना भाग जहां चित्रकी रोशनी पड़ती थी, काला न पड़ा। इसपर दो शङ्काएँ उनके मनमें उत्पन्न हुईं। या तो चित्रकी रोशनी इतनी तेज़ न थी कि अपना प्रभाव कागज़-पर डाले अथवा कागज़ ही ऐसी न था जो चित्रकी उस रोशनीसे काला पड़ जाता। तबसे वैज्ञानिक उन पदार्थोंकी खोजमें लग गए जिनपर अंधेरे केमरेमें (Camera Obscura) आये हुए चित्रकी रोशनीका प्रभाव पड़ सके। फ्रांसके निकोफ़ोर नाईपी (Nicophore Niepee) नामक एक व्यक्तिने अस्फाल्ट नामका एक काला पदार्थ ऐसा खोज निकाला जो तारपीन, मिट्टी तथा अन्य इसी प्रकारके तेलोंमें घुल जाता है पर प्रकाशमें कुछ देर रहनेके पीछे इन तेलोंमें नहीं घुलता। इस काले पदार्थको अंधेरेमें मिट्टीके तेलमें घोलकर नाइपीने धातुकी एक तख्तीपर (metal plate) लगाया और सुखा लिया। ऐसे तैयार किये हुए पत्रको अंधेरे केमरेके परदेकी (screen) जगह पर रखा और चित्रका प्रतिबिम्ब काली सतहपर कई घन्टोंतक पड़ने दिया। इसके बाद वे पत्रको अंधेरे कमरेमें ले आये और उसे एक बर्तनमें रखकर मिट्टीके तेलसे उसे ढंक दिया। धातु-पत्रके वे भाग जिनपर प्रकाश पड़ा था ज्योंके त्यों काले बने रहे पर शेष भागोंका अस्फाल्ट मिट्टीके तेलमें घुलकर पत्रसे छुट गया। चित्र देखनेमें बहुत साफ़ तो नहीं था, पर इसमें कोई संशय नहीं कि उन्होंने पहिले पहिल अंधेरे केमरेमें बने हुए चित्रको लेकर स्थायी (fix) कर दिया, अपने इस प्रयोग द्वारा चित्रके साफ़ साफ़ न उतरनेपर उन्होंने कुछ बर्षतक इस ओर ध्यान न दिया पर सं० १८७५ विक्रमीमें डेग्वेरे-से (Daguerre) मिलनेपर वे इस प्रयोगके साधनमें फिर से उद्यत हुए, और अपने अन्त समयतक उन्होंने डेग्वेरेका (Daguerre) साथ दिया। सं० १८८६ विक्रमीमें उनका देहान्त हो गया, और डेग्वेरे अकेले ही उस कार्यको करते चले गये। अकस्मात एक घटना डेग्वेरेके समयमें ऐसी हो गई, जिससे कि उनका नाम सदैवकेलिए विख्यात हो गया।

डेग्वेरे चांदीके पत्रोंको नैलकी (iodine) भापके ऊपर रखते थे। पत्रका वह भाग जो धुआंकी तरफ़ होता था रजत-नैलमें (silver iodide) परिणत हो जाता था। ऐसे पत्रको

* इसका विस्तृत विवरण जाननेकेलिए विज्ञान धन १९७२ में ब्रजराज लिखित "ग्रहण कैसे लगते हैं" पढ़ना चाहिये।

अंधेरे केमराके परदेकी (screen) जगहपर लगाते थे और चित्रकी रोशनी उस भागपर पड़ने देते थे, जिसपर, रजत-नैल बन गया था कई घन्टों तक चित्रकी रोशनीमें रहनेसे पत्रका रजत-नैल वाला उतना भाग जिसपर रोशनी पड़ती थी, अपने स्वाभाविक पीले रंगसे भूरे रंगमें बदल जाता था। एक दिन उन्होंने अपने बनाये हुए कुछ चांदीके पत्रोंको जो कि अंधेरे केमरेके चित्र-की रोशनीमें थोड़े ही समयतक रखे गये थे और जिनमें किसी तरहका आकार चित्रका नहीं आया था, ख़राब समझकर अपनी अंधेरी कोठरीमें रख दिया। कोठरीमें उनके कामकी कई एक रसायन द्रव्य भी थीं। थोड़ी देर पीछे किसी कार्यवश वे कोठरीके भीतर आए और उन ख़राब पत्रोंपर सुन्दर उभरे हुए चित्र देखकर बड़े आश्चर्यमें पड़े। उन्होंने अपने मनमें यह अनुमान किया कि हो न हो कोठरीमें रखी हुई रसायन द्रव्योंके मेलसे पत्रपर चित्र उभरे हैं। वे तब अपने बनाये हुए तीन चांदीके पत्रोंको बाहर जाकर अंधेरे केमरेके चित्रकी रोशनीमें थोड़ी देर रखकर, भीतर ले आये और कोठरीमें उसी जगहपर रखकर उनकी तरफ़ ध्यानपूर्वक देखने लगे। धीरे धीरे पत्रपर चित्र उभरने लगा। तब उन्होंने एक एक करके रसायन द्रव्योंको वहांसे हटाना आरम्भ किया और इस तरह जितनी रसायन द्रव्य वहां थीं सब हटा दीं। परन्तु चित्रका उभरना बन्द न हुआ। तब तो वे और भी आश्चर्यमें हुए और अन्तमें प्रायः उन्हें यही कहना पड़ता कि निस्संदेह कोठरीमें किसी तरहका जादू है जिससे यह घटना होती है पर कुछ पीछे उन्होंने ज़मीनपर एक टूटे हुए बर्तनको देखा जिसमें पारा था। उसे देख उन्हों-ने निश्चय कर लिया कि वर्तमान घटनाका मुख्य कारण पारा ही है और अपने इस विचारको दृढ करनेके निमित्त एक नये पत्रको अंधेरे केमराके चित्रकी रोशनीमें कुछ समयतक रखकर कोठरीके भीतर ले आये और एक बर्तन-में पारेको रखकर गरम करने लगे उस पत्रको उन्होंने उस बर्तनके ऊपर ज्यों ही रखा त्यों ही चित्रका आकार उसमें आने लगा और थोड़ी देरके बाद एक सुन्दर चित्र उस चीज़का बन गया जिसका प्रतिबिम्बके कमरेके द्वारा उस पत्र-पर डाला गया था। उन्हें यह देख बड़ी प्रसन्नता हुई और अपने इस प्रयोगकी सफलताको उन्होंने अपने तीन प्रतिष्ठित् मित्रों हमबोल्ट (Humboldt) बायो (Biots और अरागोको (Arago) १८९५ वि. में बतलाया। अपने मित्र अरागो के कहने सुननेपर केवल ६००० फ्रैंक्स सलाना वेतन-पर डेग्वेरेने अपना यह प्रयोग श्रावण सं० १८९५ विक्रमीमें सब लोगोंके सामने दिखा-कर प्रकाशित कर दिया। यों तो इस प्रयोग द्वारा मकान, तथा दृश्य इत्यादिके अनेक चित्र उतारे जाते थे, परन्तु पहिले पहिल मनुष्यका चित्र इस प्रयोग द्वारा सं० १८९५ विक्रमीमें सेक-सेने (Sachse) लिया, और तभीसे यह प्रयोग मनुष्यके चित्र उतारनेमें भी काममें आने लगा। चित्र उतारनेकी यह रीति "डेग्वेरे कला" के नामसे प्रसिद्ध है। [असमाप्त]

होमियोपेथिक चिकित्सा

[ले० अयोध्याप्रसाद भार्गव]

बच्चोंकी बीमारियां

दांत निकलना, पसलीचलना, सूखा मुंह और बदनका ऐंठना—ये चार बच्चोंके ख़ास रोग हैं। हम इन रोगोंकी चिकित्सा (इलाज) उनके निदानके चिन्होंके अनुसार लिखते हैं। बच्चोंके अन्य रोगोंका वर्णन आगे चलकर करेंगे।

दांत निकलना

बच्चोंके छः महीनेके होनेके उपरान्त, दस्त लगना

Medicine वैद्यक]

सरमें पीड़ा होना, बुख़ार खांसी होना, बदनकी ऐंठन, चिड़चिड़ापन, कमज़ोरी इत्यादि दांत निकलनेके चिन्ह हैं*। नीचे लिखी हुई दवाओंमें-से जिसकी आवश्यकता हो देनी चाहियेः—

कौनसी दवा कब देनी चाहिए, यह दवाओंके पीछे दी हुई टिप्पणियोंसे मालूम हो जायगा—

एकोनाइट (Aconite)—अगर प्यास ज़्यादा हो, बच्चा चिल्लाये, बेचैन मालूम हो, ज़्यादा रोवे, ज़्यादा प्यासा हो, शरीर गर्म रहे, शरीरपर खुश्की मालूम हो सिर गर्म रहे, नींद न आवे, पतले हरे दस्त आवें या कब्ज रहे, मसूड़े ज़्यादा सूजे हों।

एपिस (Apis)—रातकोजाग पड़े, चीख़ उठे, पेशाब कम हो,बदनपर लालचित्तियां पड़ जायं, जंम्हाई आवें और पतला हरा पीला पाखाना हो।

आरसेनिक (Arsenic)—थोड़ा थोड़ा पानी जल्दी जल्दी मांगे, बेचैन रहे, शरीर खुश्क और झुर्रीदार मालूम हो, बदबूदार पाखाना हो, कमज़ोर और पीला चेहरा हो, पतली चीज़ पीकर क़ै करदे।

इगनेशिया (Ignatia)—पाख़ानेमें आंव और खून मालूम हो, ज़्यादा रोवे और सिसके, किसी हिस्सेमें फड़कन मालूम हो, मुंह तमतमा आवे, पसीना आ जाय, सोते हुये कांपे और चीख़े।

आईपीकाक (Ipecac)—मुंह और आँखोंके नीचे नीलापन दिखाई दे, पतला हरे रंगका पाखाना हो, जो मिचलाये और क़ै हो, पेटमें गड़गड़ाहट हो, खांसी हो और दम घुटता हो।

बलेडोना (Belladonna)—कराहे, सोतेमें चौंके, आंख और चेहरा लाल पुतलियां फैली हुई मालूम हों, सिर गर्म हो मसूड़े सूजे हुये हों, और नींद आनेसे पहले बदनमें ऐंठन मालूम हो,

फ़ैरम (Ferrum)—पाख़ानेमें आंव, और बिना हज़म हुआ खाना निकले या खानेके बाद क़ै हो जाय, पसीना आनेके बाद कमज़ोरी मालूम हो, ज़्यादा दस्त आवें।

बोरेक्स या सुहागा (Borax) -ज़रासे शोरसे चौंक पड़े, मुंहमें छालेहों, दूध पीते समय रोवे, और चीख़कर किसी चीज़को पकड़े।

ब्राइनिया (Bryonia)—मुंह और होठ सूखे हों, ज़्यादा पानी पीये पाख़ाना सूखा हो या पतला दस्त सबेरेके बक्त हो, चुपका सुस्त पड़ा रहे, खानेके बाद क़ै करदे, चीज़ मांगे और जब दी जाय तो फेंक दे, चिड़चिड़ापन हो।

पोडोफ़लम (podophyllium)—आधी आंख खोलकर सोवे, बेचैनीके साथ सोवे, दांत किटकिटावे, सरको कभी इधर कभी उधर पटके, गर्मीमें और खाने पीनेके बाद ज़्यादा तकलीफ़ हो, बदबूदार हरा, सफ़ेद या खरियाके रंगका पख़ाना हो, सुबह दस्त आवे और उबकाई आवे।

चाइना (China)—पेट फूला हो, पतले दस्त आवें, दुबला हो, हरारत होती हो।

रीओम [Rheum]—दस्तोंमें खारी बदबू आवे. पख़ाना होनेसे पहले मड़ोड़ हो, तमाम बदनमें बू आवे जो नहानेसे भी न जाय, सोतेमें बेचैनी हो; चांदपर पसीने ज़्यादा आवें।

---

* छः महीनेकी अवस्थामें दूधके दोनों बीचके कांटेवाले नीचेके दांत निकलते हैं फिर ऊपरके दो दांत इसके बाद दो नोकीले ऊपरके दांत, इसके बाद ऊपरके दो नुकीले दांत फिर पहली डाढ़ इसके बाद दूसरी डाढ़ निकलती है ये सब १८ महीनेकी उम्रतक पूरे हो जाते हैं।

बाज़े बच्चे कमज़ोर होते हैं उनके दांत देरमें निकलते हैं और कभी पैदा होनेके समय भी बच्चेके दांत निकल आते हैं। दूधके दांत ४,५ वर्षकी अवस्थाके बाद टूटने लगते हैं और उनके दांतकी पिछली ४ डाढ़, ६ या ७ सालकी उम्रमें निकलती हैं। कांटेवाले बीचके ४ चार दांत सात सालकी उम्रमें, बराबरके काटेवाले ४ बीचके दांत ८ या ९ वर्षकी उम्रमें, अगली ४ डाढ़ ९ या १० वर्षकी उम्रमें, अगली दूसरी ४ डाढ़ १०से १२ वर्षतक, कमेली ४ चार दांत १०से १३ वर्षतक, पिछली दूसरी चार डाढ़ ११से १२ वर्षतक, और अक्कल डाढ़ जो चार दोनों जबड़ोंमें होती हैं १४से १७ वर्षतककी अवस्थामें निकलती हैं (ये तरताब दांतोंके निकलनेकी अनुसार डाक्टर लाइन साहब वहादुर लिखी गई है)। जो दांत बचपनमें दूधके निकलते हैं वह ६ वर्ष तककी उम्रमें टूट जाते हैं और बाज़ बच्चोंके बहुत दिनमें टूटते हैं।

डलकेमरा [Dulcamara —मुंह पीला और गाल लाल हों; बार बार छीकें आवें, खुश्क जीभ, कै आवे या जी मिचलाये हरा पीला या सफ़ेद और हरा पतला पखाना हो।

सिना [Cina]—नाक और मुंहके आसपास पीलापन हो, नथनेमें उंगली दे, नाकको मले चिड़चिड़ापन और सोतेमें बेचैनी हो, दांत किटकिटावे दूधकी तरह सफ़ेद रंगका पेशाब करे।

सीक्यूटा [Cicuta]—दांत कटका ावे; जबडों- को दबाए, बदनमें एंठन और ीलपन या सख़्ती मालूम हो, कुछ जागे और कुछ सोवे।

सिलिशिया [Silicea]—सिर बड़ा हो, सिरकी हड्डीमें चाँदपर गड्ढा हो, सिरपर बदबूदार पसीना हो, पेट गर्म कड़ा, और फूला हुआ हो, क़ब्ज़ हो थोड़ा पाख़ाना निकले और अंदर चला जाय, मांका दूध न पिये।

सलफ़र [Sulphur]—तमाम बदनपर दाने हों, जिसपर खुजली उठे, चाँदपर गड्ढा हो, खाना खाकर कै कर दे, आँव खून और हरे रंगके या सफ़ेद और हरे रंगके दस्त आवें।

सलफ़्यूरिक एसिड [Sulphuric acid]—राल ज़्यादा बहे बहुत ही कमज़ोर हो जाय, मुंह और मसूड़ेमें दाने निकल आयें चिड़चिड़ा हो और हर वक्त रोता रहे पीले दस्त हों और आंव आवे।

केलकेरिया कार्ब [Calcaria carb]—बच्चेके सोतेमें सरसे पसीना ज़्यादा निकले, चांदपर गढ़ा पड़ता हो, चिड़चिड़ा हो जाय, कम सोवे, दूध जो पिये वह जमा हुआ कै करदे, पेट फूला हुआ रहे, पख़ाना मटीला खरियाकी तरह हो, बहुत ही कम सोवे, भूख न लगे। चौथे दिन एक खुराक़ सलफर देनेसे इस दवाका फ़ायदा जल्द होता है।

कैमोमिला [Chamomilla]—सोतेमें उचके और चीख़े, चौंक पड़े गोदमें रहना पसंद करे जिद्द और गुस्सा करे, पाख़ाना बू दार आंव मिला हुआ हरा, पीला या सफ़ेद रंगका हो, हाथ पैरमें एंठन होती हो, दस्त आते हों।

क्यूपरम [Cuprum]—पैरोंमें एंठन और उंगलियां अंदरको खिचें, मुहँमें फेन आ जाय दम घुटे, बेचैनी और घबराहट हो, पाख़ाना दर्दके साथ हरे रंगका हो।

क़ाफ़िया [Coffea]—बच्चा कभी रोवे और कभी हंसे बेचैन, रहे और चैनसे न सोवे, हरारत हो, और नींद न आनेसे कमज़ोर हो जाय।

क्रियाजोट [Kreosote]—क़ब्ज़ रहे, खुश्क पाख़ाना हो, निहायत बदबूदार या भूरा स्याहीसा पतला पाख़ाना हो, मसूढ़ोंमेंसे कालेरंगका लुआब निकले, दर्दसे दांत निकले, दांत जल्दी सड़ जायं।

ग्रेफाईटीस [Graphites]—गर्दन और कानके नीचे खाज़ चले, सर और मुंहमें दाने निकल आवें, जिनमेंसे रसदार शहदकी भांति पानी निकले, क़ब्ज़ रहे, बड़े सुद्दे पाखानेमें निकलें, बू दार पाखाना हो, हाथपैरमें गुलझट पड़ जायं।

लैकेसिस [Lachesis]—सोनेके पहले एंठन मालूम हो, जब सोकर उठे तो तकलीफ़में रहे, किसी चीज़के निगलनेमें रोवे, हलक़में दर्द हो, गर्दनपर कोई चीज़ न सुहावे, मसूढ़े काले और नील मालूम हों, छूनेसे रोवे।

लायको पोडियम (lycopodium)—सोनेकी हालत- में बच्चेकी कुछ आँख खुली और कुछ बन्द रहें, सरको इधर उधर पटके, तीसरे पहर तकलीफ़ ज़्यादा हो, पेटमें गड़गड़ाहट हो, पेशाब करनेसे पहले रोवे, पेशाबमें लाल तलछट नीचे जम जाय।

मेगनेशियाकार्ब (magnesia carb)—पाखाना बदबूदार हो, और पतला हरे रंगका हो, कभी २ कै बदबूदार हो।

मरक्यूरियस (mercurius)—राल बहे, मुंह और जीभपर छाले, ज़बानकी रंगत चिकनी हरी, पाख़ानेके साथ ख़ून आवे और मड़ोड़के साथ हो, पख़ाने जाते समय पसीना निकल आवे, पेशाब पीला हो।

नक्सवोमिका (Nuxvomica)----पाख़ाना पतला पीले रंगका हो,पाख़ाना होनेके बाद नींद आ जाय, जो बच्चे गायके दूधपर पाले जाते हैं या जिनकी मा ज़्यादा मसालेकी चीज़ें खाती हैं।

विरेट्रम एल्ब (Veratrum Alb)–उबकाइयाँ आवें हिलने झुलनेसे कै हो जाय, हाथ पैर ठंडे हों, पसीना ठंडा आवे, प्यासमें ठंडा पानी पसंद करे, नब्ज़ कमज़ोर और दुबला रहे।

हैपरसल्फ (Hepar-Sulph) बदनपर खुश्की, बग़लमें दाने निकल आवें, जांघ मुंह और सिरपर खुजली हो, मेदा ख़राब हो, दस्त आवें, पाख़ाना बदबूदार सफ़ेद रंगका हो, मसूढ़े छूनेसे रोवे।

हैयासिमस (Hyoscyamus)—बच्चा मुंहमें उंगली डालकर दबावे, हाथ पैरमें ऐंठन, मुंह बनावे, ऐंठनके वक्त पतला पाखाना निकल जाय।

नमक और नमककी खानें

[ले॰ गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.]

(गताङ्कसे आगे)

समुद्रके पानीमेंसे नमक निकालनेके उपरान्त जो घोल शेष बच रहता है, पहले यह समुद्रमें बहा दिया जाया करता था, पर अब उसे ठंडा करके उससे पोटासियम हरित निकाल लिया करते हैं। एक एकड़ भरमें फैली हुई क्यारियोंसे कोई १५००० मन नमक सालभरमें तैय्यार हो सकता है। अबतक हमने इस बातपर विचार किया कि पानी उड़ाकर नमक निकाला जा सकता है। ऊपर जो विधि बतलाई गई है उसमें पानी सूर्य-की गरमीसे उड़ाया गया है, जहां ईन्धन सस्ता
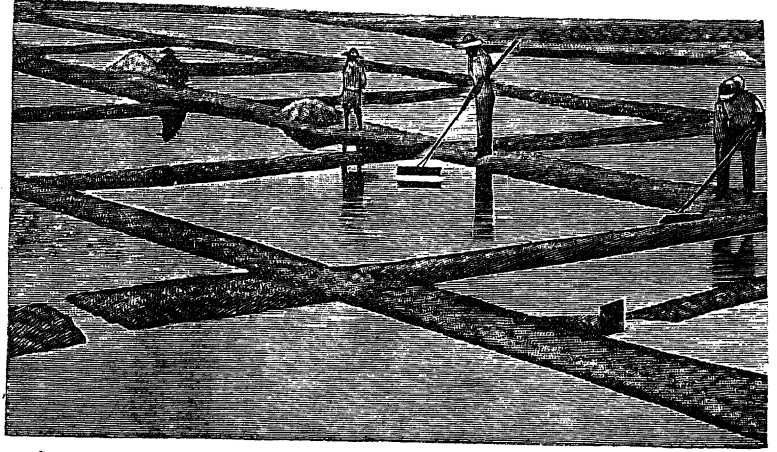
चित्र १—नमककी क्यारियां; क्यारियोंकी पाड़ोंपर नमक इकट्ठा कर रहे हैं।

है, वहांपर अन्तमें गाढ़े घोलको औटाकर नमकके रवे जमाना आसान है। ठंडे देशोंमें नमकके घोलको ठंडा किया जाता है। बहुत ठण्ड देनेसे घोलमेंसे पानी जम जमकर अलग होने लगता है। घोलमें इस प्रकार नमककी मात्रा बढ़ती जाती है, जब घोल काफ़ी गाढ़ा हो जाता है, तो उसे कड़ाहोंमें औटाकर नमक निकाल लेते हैं।

खानोंसे नमक निकालना

खानोंसे नमक निकालनेकी कई तर्कीबें हैं, जो खानकी स्थिति, नमककी तहकी निचाई, ईंधनके भाव और मज़दूरोंकी मज़दूरीपर निर्भर हैं। कहीं कहीं तो नमक खानोंसे खोदकर निकाल लिया जाता है, कहींपर पानी खानमें पहुंचाया जाता है। यह नमकको घुला लेता है। फिर नमकका घोल पम्पोंद्वारा निकालकर उससे नमक तैय्यार कर लेते हैं। कहीं कहीं प्रकृति देवी स्वयं पानी पहुंचा देती हैं, यह पानी या तो किसी खानमें पहुंचकर नमकका अच्छा घोल तैय्यार कर देता है, जो कि मनुष्यों द्वारा निकाल लिया जाता है, या स्वयं घोल बनकर पृथ्वी तलपर किसी झरनेके

स्वरूपमें आ उपस्थित होता है। इन तीनों विधियों पर अब हम विचार करेंगे।

संसार भरमें सबसे बड़ी नमककी खान आस्ट्रिया देशान्तर्गत, गेलिशिया प्रान्तमें है। इसका नाम वाईलिकज़ाकी खान है। कहा जाता है कि इसमेंसे बहुत ही शुद्ध नमक निकलता है। नमककी तह १२०० फुट मोटी बीस मीलसे अधिक चौड़ी और पांच सौ मीलके लगभग लम्बी है। इन्सानी चूहोंने पृथ्वीके गर्भमें नमककी चट्टानोंको काट काटकर ६०० वर्षसे भी अधिक समयमें एक देदीप्यमान नगर तैय्यार कर लिया है। विस्चुलाकी (Vistula) कार्पेथियन घाटीमें, क्रेको रेलवेसे कई मीलकी दूरीपर, यह शहर पृथ्वीके अन्दर बना हुआ है। कभी आपने बिल्लौरके और मणियोंके बने हुए नगरोंका हाल सहस्र रजनी चरित्रमें (अलिफ़ लैला) शायद पढ़ा होगा, पर वास्तवमें अगर ऐसा शहर आप देखना चाहें तो यही नगर जाकर देखिये। इस नगरमें, मकान गली, कूचे, रेलवे स्टेशन, मन्दिर, गिरजे, तालाब, इत्यादि अनेक आश्चर्यजनक वस्तुएं ख़ाली नमककी बनी हुई हैं। यहांके निवासी सूर्य्य देवताके उपासक नहीं हैं, वे शक्तिके-विद्युच्छक्ति, परमशक्तिके भक्त हैं, अतएव यद्यपि सूर्य्य भगवानने इन्हें अपनी रश्मियोंसे बंचित रखा है, तदपि महामाया भगवती विद्युच्छक्ति, इन्हें सहारा दिये हुए हैं। बिजलीकी लम्पों, मशालों और हन्डोंके तीव्र प्रकाशमें कुल शहर मणि जटित सा प्रतीत होता है। इस नगरमें प्रवेश करनेकेलिए कई विवर (lifts) हैं, पर एक ज़ीना भी नमकमें काटकर बनाया गया है। इस ज़ीनेपर चढ़ने उतरनेमें
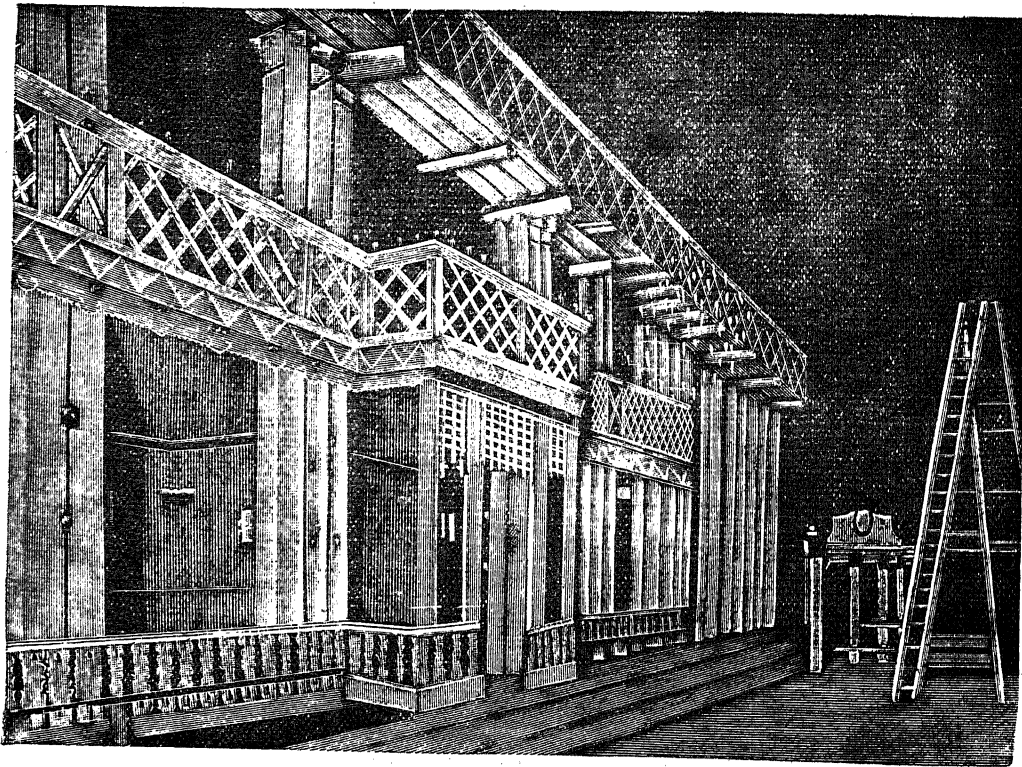
चित्र २—रेलवे स्टेशन
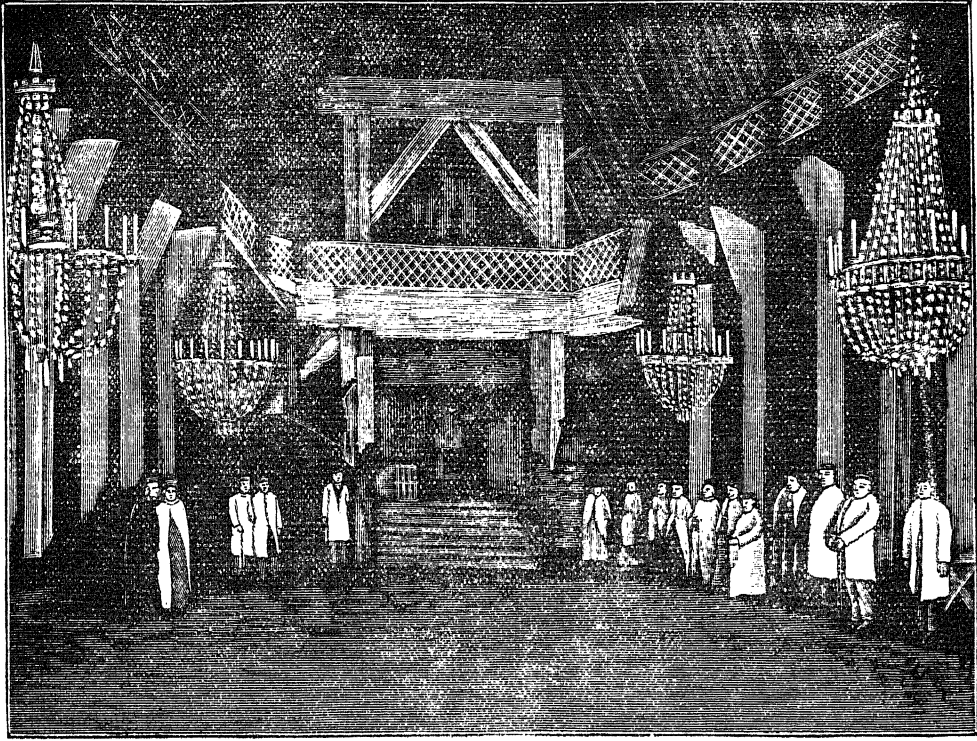
चित्र ३—नत्यशाला

चित्र ३ में जो झाड़ टंगे हैं, वह भी नमकके ही बने हैं कांच या बिल्लौरके नहीं।
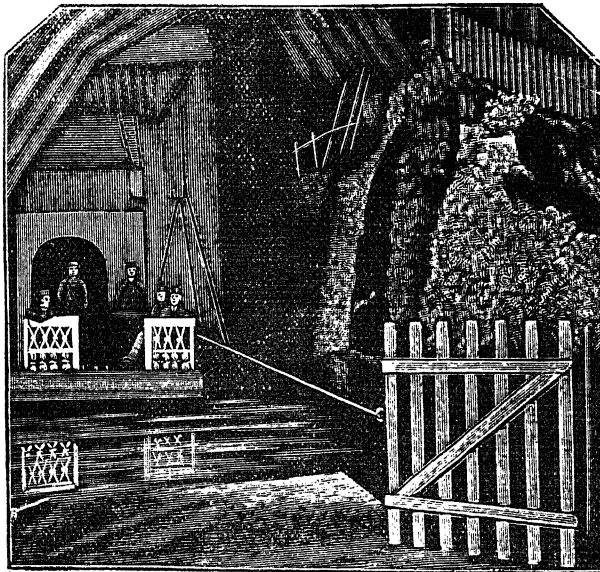
चित्र ४—नहर

चित्र ४—में एक नहर दिखलाई गई है जिसमें एक नाव-पर कुछ मनुष्य सैर कर रहे हैं। इन नहरोंमें प्राकृतिक झरनोंसे पानी आता है।

प्रकाशके परावर्तनसे अनूठा और अद्भुत दृश्य देखनेमें आता है। क़रीब क़रीब दो हज़ार आदमी इसमें दिन रात काम करते हैं। प्रत्येक मज़दूर ।।।) रोज़ पैदा कर लेता है। सं १२५१ से इस खानमें काम जारी है। पर कहना चाहिए कि अभी सेरमें पौनी भी नहीं कती। यहांके मज़दूरोंको मूर्त्तियां बनानेका बड़ा शौक़ है। इस खानमें हज़ारों मूर्तियां बनी हुई हैं। सातवीं शताब्दीमें इसी खानमें एक गिरजा बनाया गया था जो अभीतक मौजूद है। इस गिरजेसे दो सौ क़दमकी दूरीपर एक गुम्बद बनी हुई है, जिसमें अनेक मूर्तियां नमककी चट्टानोंमें तराशी हुई हैं। इसी तहख़ानेमें एक राज सिंहासन बना हुआ है, जब कभी नमककी कोई नई तह खोली जाती है, तो इस शुभ अवसरपर खानमें नाच भी हुआ करता है। इस नृत्य शालाका चित्र यहांपर दिया जाता है। (चित्र ३)

इस आंतरभौम नगरके केन्द्रमें एक अच्छा रेलका स्टेशन भी है। यहांसे ही चारों तरफ़ छोटी रेलें जाती हैं। गाड़ियोंको छोटे छोटे टट्टू खेंचते हैं। यह टट्टू प्रायः (सदैव खानमें रहनेसे) जन्मान्ध होते हैं। स्टेशनपर ४०० आदिमियोंके बैठनेका इन्तज़ाम है। (देखो चित्र २)

इन खानोंमें दो झीलें भी हैं, जो २० से ३० फ़ुटतक गहरी हैं। इन्ही झीलोंपर सैर करनेकेलिए वहांके मज़दूर प्रायः जाया करते हैं। हर एक नावमें २४ यात्रीके लगभग बैठ सकते हैं। इन झीलोंपर नावमें यात्रा करके मनुष्य पुराने स्थानोंतक पहुंच सकता है, जहां कि पुरानी मूर्तियोंके चारों ओर बड़ी सुहावनी प्राकृतिक महादेवकी मूर्तियां बन गई हैं। (देखिये चित्र ४)

अब हमें ज़रा इन खानों के खोदनेकी तर्कीबपर विचार करना भी उचित है। खानोंमें एक या अधिक उर्ध्व गामी रास्ते (vertical shafts) होते हैं। इन रास्तोंमें झूले खटोले या डोलकी क़िस्मकी चीज़ें बराबर नीचे ऊपर आती जाती हैं। इन्हींमें बैठकर बाहरके लोग खानके अन्दर और खानके भीतरके लोग बाहर आ जा सकते हैं। डोलोंमें नमक या अन्य चीज़े खानमेंसे ऊपर पहुंचाई जाती हैं। इस उर्ध्वगामी विवरमें बहुत
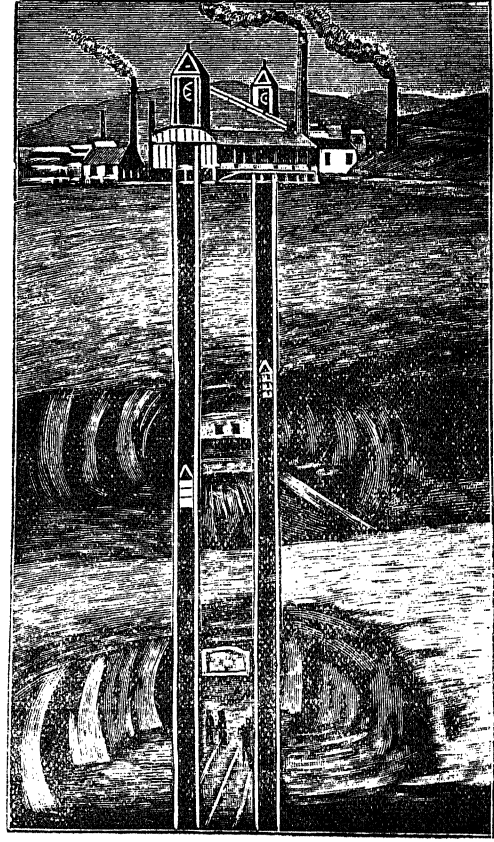
चित्र ४—ऊध्वगामी रास्ते और सुरंगें

सी सुरंगें आकर मिलती हैं। यह सुरंगें पृथवी तलके समानान्तर होती हैं, और ऊर्ध्व विवरसे समकोण बनाती हैं। एक ही विवरमें कई सुरंगे भिन्न भिन्न ऊंचाइयोंपर मिलती हैं। इस प्रकार खानमें एकके ऊपर एक करके कई सुरंगें होती हैं। एक ऊर्ध्व विवरका चित्र यहांपर दिया जाता है। इस विवरमें दो सुरंगे आकर मिली हैं। विवरमें कई डोल फांसे हुए हैं। सेलोनिकामें ऐसे एक विवरसे २३ लाख मन नमक प्रति वर्ष निकाला जाता है।

किसी सुरंगको जब खोदना आरम्भ करते हैं, तो बीच बीचमें मोटे मोटे खम्भे छोड़ते जाते हैं, जिससे छत न टूट जाय। कहीं कहीं छत क़ायम रखनेकेलिए लकड़ीकी बड़ी मोटी मोटी बल्लियां भी काम आती हैं। इतना इन्तज़ाम रखनेपर भी कभी कभी छत टूटकर सैकड़ों आदमी दबकर मर जाते हैं। जिन झीलोंका अभी मैंने ज़िक्र किया था, उनमें भी कभी कभी बाढ़ आ जाती है और सबसे नीची सुरंगोंमें काम करनेवाले डूब जाते हैं।

झीलोंमें बाढ़ आनेसे डूब मरना, आग लगना सकड़ों हज़ारों मनके पत्थरोंके गिरनेसे चूर्ण हो जाने आदिका भय रहते हुए भी इन खानोंमें हज़ारों मनुष्य काम करते और रहते सहते हैं। वहीं बच्चे पैदा होते हैं वहीं उनका विवाह हो जाता है और बड़े होकर वहीं वे अपने बाप दादोंका काम करते रहते हैं।

खारी झरनोंसे नमक निकालना

वर्षाका पानी ज़मीनमें रिस रिसकर बहुत नीचेतक पहुंच जाता है। जितनी वस्तुएँ इसमें घुली हुई होती हैं वे सब पृथ्वीकी ऊपरी तहमें ही सोख जाती हैं। तीन चार फुट नीचेतक जानेमें पानी शुद्ध हो जाता है। इससे और भी अधिक नीचेतक पहुंचनेपर, जब कोई कड़ी चट्टानसे जाकर पानी टकराता है, तब ऊपरकी ओर आनेकी कोशिश करता है। कभी कभी तो पृथ्वीतलतक आ पहुंचता है। पर प्रायः पृथ्वीतलसे कुछ दूर ही रह जाता है। पहिली अवस्थामें सोते, चश्मे झिरने आदि बन जाते हैं। दूसरी अवस्थामें कुएं खोदनेपर पानीको इकट्ठा होनेको स्थान मिल जाता है और फिर निकाला जा सकता है।

अब यह सोचना चाहिए कि यदि पानीको इस यात्रामें नमककी कोई तह मिल जाय तो क्या होगा। स्पष्ट है कि झरनेका पानी बहुत ही खारी हो जायगा। ऐसी-अवस्थामें कुएका पानी भी खारी निकलेगा। झरने या कुएके खारी पानीसे नमक बनाना भी सम्भव है।

भारतवर्षमें खारी झरने और कुए बहुत मिलते हैं, पर इनसे नमक नहीं बनाया जाता।

इंगलैण्डमें पुराने ज़मानेमें बहुत खारी झरने थे, पर अब वे झरने पृथ्वीतलतक नहीं आते। झरनोंसे पानी पम्पोंद्वारा खींच लिया जाता है और ईंटके तालाबोंमें भर दिया जाता है। यहांसे नमकका घोल छनकर दूसरे हौज़में जाता है। इस हौज़मेंसे घोल फ़ैक्टरीके अन्दर पम्प कर दिया जाता है। ४० फुट लम्बी और २२ फुट चौड़ी कड़ाहियोंमें घोल औटाया जाता है। कहीं कहीं दुगनी बड़ी कड़ाहियां भी होती हैं।

खानोंमेंसे नमक निकालनेकी दूसरी तर्कीब

जब नमक पृथ्वीतलसे बहुत नीचाईपर मिलता है, तो वहांतक उर्ध्व विवर बनानेमें बड़ी कठिनाई होती है। दर्हममें (Durham) नमककी तह पृथ्वीतलसे १००० फुट नीचे है। वहांपर दस इंच व्यासवाला एक छेद बर्मोंसे किया गया है। इस छेदमें, कुछ दूरतक लोहेकी नली लगा दी है जिसमें मिट्टी खिसककर छिद्रके बन्द हो जानेका भय न रहे। इसके बीचमें एक नल ४$\frac{१}{४}$ या ३$\frac{१}{२}$ इंच व्यासका लगा हुआ है। इन दोनों नलोंके बीचके स्थानमें होकर पानी ऊपरसे डाला जाता है। यह पानी नीचे नमककी तहतक पहुंचता है और नमकको घुला लेता है। फिर छोटी नलीमें होकर यह घोल पम्पोंद्वारा निकालकर गरम किया जाता है, जिससे नमक निकल आता है।

इस रीतिसे नमक बनाना ख़तरेसे ख़ाली नहीं है। यह आपको स्मरण होगा कि नमककी खानोंमें प्रत्येक सुरंगमें बड़े बड़े खम्भे छोड़ दिये जाया करते हैं। यहांपर नमककी तहकी तह गला ली जाती है, अतएव ऊपरकी ज़मीन जगह जगहसे

धंसने लगती है। इसलिए उपर पृथ्वीतलपर या तो ज़मीन फटने लगती है या बैठ जाती है।

चीशायरमें घर या उनकी चिमनियां बहुत कम सीधी पाई जायंगी। दर्वाज़े और खिड़कियां ऐसी टेढ़ी मेंढ़ी हो रही हैं मानों कारीगरोंने सोतेमें बनाई थीं। मकानोंके फ़र्श तो बिलकुल खेतोंकी क्यारियोंकी तरह दिखलाई देते हैं। ज़मीनके धंसनेसे बड़े बड़े गड्ढे हो गए हैं। जहां पहिले हरियाली लहलहा रही थी, वहां अब पानी बहता दीखने लगा है। किसी समयमें यह पानी भी ज़मीनमें घुसकर उन स्थानोंको भर लेगा, जहां पहले नमककी तहें जमी हुई थीं।

हिन्दुस्थानमें प्रति वर्ष चार करोड़, तेतीस लाख साठ हज़ार मन नमककी खपत है। इसमेंसे तीन करोड़ मन तो यहां ही पैदा हो जाता है, और १$\frac{१}{२}$ करोड़ मनके लगभग विदेशसे आता है। भारतवर्षमें जितना नमक बनता है उसमेंसे ६१·८% तो समुद्रके जलसे निकाला जाता है, २७% सांभर आदि झीलोंसे निकाला जाता है और ११·२% खानोंसे निकाला जाता है।

भारतवर्षमें सबसे बड़ी खान खेवड़ामें (Khewra) है। इसका नाम मेयो—खान (Mayo mines) है। कोहाट, मंडी वरछा और काला बाग़में भी नमककी खानें हैं।

खेवड़ामें नमककी तह ५५० फुट मोटी है, पर शुद्ध नमककी तह केवल २७५ फुट मोटी है। वरछामें तह केवल २० फुट मोटी है।

ब्रह्मदेश और मदरासमें नमक समुद्रके पानीसे ही बनाया जाता है, बम्बई और सिंधमें भी ८०% नमक समुद्रके पानीसे ही बनाते हैं।

लवणमई मिट्टीसे नमक निकालना

एक और उपाय नमक बनानेका जिसका अभी तक मैंने वर्णन नहीं किया यह है, जिसमें नमक लवणमयी मिट्टीसे बनाते हैं। समुद्रमें जितना नमक है वह पृथ्वीतलपरसे ही बह बह कर गया है और जमा हो होकर इतना अधिक हो गया है। पृथ्वीतलपर बहुतसे ऐसे भी स्थान हैं जहांका पानी समुद्रतक नहीं पहुंचने पाता। अतएव इन स्थानोंका पानी किसी नीची ज़मीनमें इकट्ठा होता जाता है। राजपूतानेका बहुत कुछ पानी हज़ारों वर्षोंसे समुद्रतक न पहुंचकर सांभर झीलमें एकत्रित होता रहा है। अतएव सांभरमें हज़ारों वर्षोंसे नमक इकट्ठा हो रहा है। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि अरावलि पर्वत मालाके बीचमें यह बड़ा भारी निचाव (depression) था, जिसमें ७५ फुटके क़रीब मिट्टी, नमक, कंकड़ और चूनेकी तह जमा हो गई है। इस मिट्टीमें २ से लगा १२ प्रतिशततक नमक पाया जाता है। बर्षामें ६० वर्गमीलतक दो या तीन फुट गहरा पानी इस झीलमें इकट्ठा हो जाता है। यह पानी थोड़े दिनोंमें पूर्व संचित मिट्टीमेंसे नमक निकाल लेता है और नमकका अच्छा ख़ासा घोल तैयार हो जाता है।

१९२८ वि० से लेकर अबतक सांभरमेंसे ११ करोड़ मन नमक तैय्यार हो चुका है, लोगोंका ख़्याल है कि अब सांभर झीलमें पहलेका सा शुद्ध नमक नहीं निकलता पर प्रयोगोंसे सिद्ध हुआ है कि नमक लगभग उतना ही शुद्ध है, जितना कि पहले था। यह बात अवश्य है कि हर साल झीलमें मिट्टी बहुत चली आती है, जिससे कि पहिलेकी लवणमयी मिट्टी ढक जायगी। अनुमान लगाया गया है कि ऊपरकी १० फुट मिट्टीमें इतना नमक मौजूद है कि आगामी ३०० वर्ष पर्य्यन्त उत्तरीय भारतकेलिए काफ़ी होगा। सांभर जयपुर और जोधपुरके बीचमें स्थित है। जोधपुरमें पचभद्रा और डिडवानामें भी नमक निकाला जाता है।

नमक क्या है ?

नमक एक ठोस धातु सोडियम और एक

पीली गैस हरिनके संयोगसे बना हुआ पदार्थ है। यदि इन दोनोंका अलग अलग सेवन किया जाय तो कुछ और ही आनन्द मिले। सोडियम जीभपर रखते ही आग ले जाय और जीभ और मुंह-दोनोंको जला दे। ज़बानपर क्षार बन जाय, जो खानेपर आंतोंको भी काट दे। हरिनकी तो बू ही निराली है। यदि उसे थोड़ी देर भी सूंघें तो सरमें दर्द हो जाय। ऐसी वस्तुओंके संयोगसे नमक जैसी उपयोगी वस्तु बनी है। यदि आप उस समयका ख़्याल करें जब संसार-में उत्तप्त गैसें भरी हुई थीं और गैसें ठंडी होकर तारों ग्रहों और सूर्योंके केन्द्र मात्र बन चुके थे। उस समय पृथ्वीपर समस्त पदार्थ वायु रूप ही थे। कुछ अधिक ठंडे होनेपर लोहे, चांदी आदि पदार्थोंकी वर्षा हुआ करती थी, पानी न बरसता था। उस समय, विचार कीजिये कि पृथ्वीपर यदि हरिनसे मिलकर नमक बनानेकेलिए सोडि-यम विद्यमान न होता, तो क्या होता। सोडियम तो ख़ैर किसी न किसी पदार्थके साथ मिल ही जाता, पर हरिन मुक्त दशामें पृथ्वीपर हवा-में मिली हुई किलोलें मारती और पृथ्वीपर जीवो-त्पत्ति असम्भव कर देती। इस पृथ्वीकी दशा ही निराली होती। न गुलाबकी लाली, न रङ्ग बिरंगे फूलोंकी मनमोहनी रंगत, न तरह तरहके रंग इस संसारमें दिखाई देते। हरिन सबको शहादतका लिबास पहनाकर चित्रकारीका नाम संसारसे मिटा देती।

अब भी हम लोगोंको हरिनके इस गुण-से लाभ उठाना पड़ता है। सफ़ेद कागज़ या सफ़ेद कपड़े बनानेमें पीली घास या मटीले सूतको हरिनसे ही सफ़ेद करते हैं। नमकका जब विश्लेषण किया जाता है तो सोडियम और हरिन पैदा होते हैं। सोडियमसे कास्टिक सोडा बना लेते हैं और हरिनसे बिरञ्जक चूर्ण। नमक और भी कितने ही व्यवसायोंमें काम आता है।

गणितका इतिहास

हिन्दू काल

[ले० जी. के. गर्दे, एम. ए.

प्रायः सभी यूरोपियन लेखकोंका मत है कि हिन्दुओंने गणित संबंधी कोई ऐसा ग्रंथ नहीं लिखा, जिसमें यवनानी ग्रंथों की छाया न हो। भारतीय ज्योतिष और हिपार्कस तथा टालमी कृत ग्रंथोंके बीच संबंध दर्शानेका प्रयत्न वे लोग किया ही करते हैं। कुछ लेखकोंने यह सिद्ध करना चाहा है कि आर्यभट्टका बीज-गणित डायोफ़ैंटिसके पाटीगणितके आधारपर रचा गया है। यद्यपि कोई कोई यह स्वीकार करते हैं कि डायोफ़ैंटिसकी रचनामें ही उसके प्राच्य मित्रोंका प्रभाव विद्यमान है। इतने दीर्घ कालके अनन्तर इस बातका निर्णय करना अत्यंत कठिन है कि एकने दूसरेसे कितना ऋण लिया। पं० शङ्कर बालकृष्ण दीक्षितने मराठी भाषामें भार-तीय ज्योतिषका इतिहास रचा है। उन्होंने उसमें यह सिद्ध किया है कि पञ्च सिद्धान्तोंके रूपमें भारतीय ज्योतिष उस प्राचीन कालमें भी विद्य-मान थी जब यवनानी गणितका जन्म भी न हुआ था। "वेदाङ्ग ज्योतिष" का रचना काल विक्रमसे पूर्व कमसे कम ११०० वर्षका है। उसमें ४३ श्लोक हैं जिनसे गणित संबंधी योग्यताका अच्छा परि-चय मिलता है। इस ग्रंथका रचना काल किस भांति स्थिर किया गया, यह बता देना यहां आव-श्यक जान पड़ता है। प्राचीन कालमें ब्राह्मण जिस भांति वेदोंका पाठ किया करते थे उसी भांति इस ग्रंथका भी। उस समय वे उन श्लोकोंका अर्थ समझते थे और उसके अनुसार वैदिक कृत्योंकी तिथियां स्थिर किया करते थे। उनमें वह सामग्री सञ्चित थी, जो उन दिनों इस कार्यकेलिए उप-योगी थी। धीरे धीरे क्रान्तिवृत्त और नाड़ी मंडल-की पारस्परिक स्थितिमें अन्तर पड़ा। अब हम

Mathematics गणित]

लोग जानते हैं कि यह अन्तर प्रतिवर्ष केवल ५०''·२ के हिसाबसे पड़ता है। जिस समय उन श्लोकों-की रचना हुई थी उस समय इतनी सूक्ष्म बातका पता किसीको न था। अतः पांच छः शताब्दियोंमें उस ग्रंथकी उपयोगिता जाती रही। परन्तु अपनी प्राचीनताके कारण वह ग्रंथ बड़ी पूज्य दृष्टिसे देखा जाने लगा। यद्यपि अब उसका उपयोग नहीं होता था तथापि ब्राह्मणोंने वेदाङ्गकी भांति उसका भी पाठ करना नहीं छोड़ा। अब उसके अर्थ जाननेकी परवाह न की जाने लगी। इस-लिए धीरे धीरे वह समय आ गया जब उसका अर्थ किसीसे न बनने लगा।

कई टीकाकारोंने उन श्लोकोंका अर्थ लगानेका प्रयत्न किया परन्तु उन्हें अच्छी सफलता न हुई। पं० बालकृष्ण दीक्षितजीकी संस्कृत तथा ज्यो-तिषमें असाधारण गति थी। उन्होंने १८ श्लोकोंका अर्थ भली भांति लगाया। उनके बाद औरोंने भी बहुत सिर मारा। अन्तमें डाक्टर थिबो तथा लाला छोटेलाल साहब जैसे पंडितोंका परिश्रम सफल हुआ। हर्षकी बात है कि उन सभी श्लोकों-का अर्थ अब लग गया है, जो पहले निरर्थक प्रतीत होते थे। उनमें क्रान्तिवृत्त और नाड़ी मंडल-की पारस्परिक स्थिति अथवा अयनान्तवृत्तके स्थानका वर्णन है, जिससे उनके रचना कालका अनुमान हो जाता है। "वेदांग ज्योतिष" की चर्चा करते हुए डा० थिबो महोदय ने लिखा था---

If we have an inclination to be sceptical, we therefore might choose to agree with Professor Whitney—who has discussed the subject with equal learning and sagacity—when giving it as his opinion that if we take account of all possible sources of error (on the part of the observers as well as of those who have to interpret the meaning of the observation) it will be safest to say that the observation may have been made up to 500 years later, or on the other hand up to 500 years earlier than 1100 B. C.

इसका भावार्थ है—जिसे इस बात पर विश्वा-स न हो वह प्रोफ़ेसर ह्विटनीका ही मत स्वीकार कर ले। उन्होंने इस विषयका विवेचन बड़ी वि-द्वत्ता और खोजके साथ किया है। उनका मत है कि सब प्रकारकी भूलोंपर दृष्टि रखते हुए, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जिस वेधका वर्णन यहां उदाहरणार्थ है। वह ई० पू० ११०० के ५०० वर्षतक आगे पीछे अर्थात् ई० पू० १६०० से ई० पू० ६०० तककी अवधिमें किसी समय किया गया होगा।

वराहमिहिर प्रभृति अनेक परवर्त्ती लेखकोंने पांच सिद्धान्तोंका उल्लेख किया है जो सभी अब अप्राप्य हैं। पैतामह सिद्धान्तको कई लेखक वैदिक ज्योतिष मानते हैं। आश्चर्य नहीं कि "वेदाङ्ग ज्योतिष" उसीके अन्तर्गत रहा हो। शल्व सूत्र नामक एक ग्रंथ विद्यमान है जिसमें पेथागोरसके प्रसिद्ध साध्यका वर्णन है। पश्चिमी विद्वानोंने उसका रचना काल स्थिर किया है–वि० पू० ७५०, अर्थात् पैथागोरससे प्रायः २०० वर्ष पूर्व।

अतएव यह स्पष्ट है कि जिस समय यवनानमें गणितका अध्ययन आरंभ ही न हुआ था, उस समय भारतमें ज्योतिषकी (अतएव पाटीगणित-की भी) अवस्था बहुत समुन्नता हो चुकी थी। इसलिए यह कहना बिलकुल निस्सार है कि भार-तीय ज्योतिषकी रचना केवल हिपार्कस, टालमी अथवा हेरनके ग्रंथोंके आधारपर हुई है। सच तो यह है कि आर्य्य-भट्टसे पूर्वके सभी ग्रंथ नष्ट हो गये। आर्य-भट्टकी रचना भी भारतवर्षमें दुष्प्राप्य है। यूरोपके विश्वविद्यालयोंमें उसकी कापियां मिल जाया करती हैं।

आर्य-भट्ट

आर्य-भट्टका जन्म सं० ५०१ विक्रमीमें हुआ। उसका जन्मस्थान कुसुमपुर (आधुनिक पटना)

था। २३ वर्षकी अवस्थामें उसने आर्यभट्टीयम् नामक ग्रंथकी रचना की।

यूरोपियन लेखकोंका मत है कि जिस रीतिसे संख्याएं आजकल लिखी जाती हैं वह रीति उसीने चलाई। उनका विश्वास है कि आर्य-भट्टसे पूर्व किसीने शून्यका उपयोग नहीं किया था। सिंहलद्वीपके बौद्ध लेखोंमें संख्याओंकेलिए जो सङ्केत पाये गये हैं वे कुल ६ हैं उनमें शून्यका अभाव है। उनका प्रचार वहां महाराज अशोककी सन्तान अथवा उन बौद्धोंने किया होगा जो भारतसे जाकर वहां बसे थे। आर्य-भट्टने शून्यको प्रचलितकर संख्याओंके लेखनमें बड़ा सुभीत कर दिया। उसने अपने ग्रंथमें वर्गमूल और घनमूल निकालनेको रीतियां दी हैं। वे ही रीतियां आजकल स्कूलोंमे पढ़ाई जाती हैं। यवनानियोंको उन रीतियोंका ज्ञान नहीं था। यवनानमें पाटीगणितकी उन्नति इसलिए न हो पाई कि वहांकी संख्या लेखन प्रणाली बड़ी भद्दी थी। संख्या बोधक यवनानी सङ्केतोंसे गुणा अथवा भाग करना भी कठिन है। भारतीय प्रणालीने अपनी उत्कृष्टताके कारण यहां यवनानियोंकी अपेक्षा पाटीगणितमें अधिक उन्नति करना सहज कर दिया। अनिर्णीत समीकरणोंके समाधान करनेके कारण आर्यभट्टने विशेष प्रसिद्धि पाई। उसने सभी अभिन्न मूलोंके प्राप्त करनेकेलिए सूत्र दिए।

डायोफ़ैंटसका उद्देश रहता था केवल एक मूल प्राप्त करना। इस दृष्टिसे डायोफ़ैंटसकी रचनाकी अपेक्षा आर्यभट्टकी कृति अधिक समुन्नत कही जायगी। आर्यभट्टने डायोफ़ैंटसका ग्रंथ देखा था या नहीं-इसमें बहुत संशय है। महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदीजीके अनुसार वह यवनानी ज्योतिष् अवश्य जानता था, जिसकी शिक्षा उसे किसी पटना निवासी यवनानी शिक्षकसे मिली। परन्तु उस समय ऐसे शिक्षक ऐथेन्ससे पटना आया करते थे, यह बिना प्रमाणके मान लेना बड़ा कठिन है। यवनानियोंके संख्या सूचक वर्णात्मक सङ्केतोंमें तथा जिन सङ्केतोंका आर्यभट्टीयममें प्रयोग हुआ है उनमें जो सादृश्य है वही इस कल्पनाका आधार जान पड़ता है। परन्तु इस सादृश्यसे केवल इतना ही सिद्ध हो सकता है कि आर्यभट्टको यवनानी सङ्केतोंका ज्ञान था। इसका समाधान यों कर सकते हैं, जिस समय सिकंदर यूरोप लौटा प्रायः उसी समय यवनानियोंके कुछ घराने यहीं बस गए। महाराज चन्द्रगुप्तके वंशजोंकी राजधानी पाटलिपुत्रमें उन लोगोंका बस जाना असंभव नहीं था-क्योंकि मौर्य्योंका सिकन्दरसे घनिष्ठ संबंध था। इन्हींमेंसे किसीने आर्यभट्टको यवनानी सङ्केतोंका ज्ञान कराया हो। केवल सङ्केतोंके जाननेकेलिए सारे यवनानी गणित और ज्योतिषका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक नहीं। फिर, जो लोग सिकन्दरकी चढ़ाईके समय यहां बसे थे उन्हें यूक्लिड, आर्कीमीदिस, हिपार्कस प्रभृति परवर्त्ती लेखकोंके ग्रंथोंसे परिचय हुआ ही न था। अतः आर्यभट्टीयम्की रचना इन्हीं बहुत प्राचीन भारतीय ग्रंथोंके आधारपर हुई, यवनानी ग्रंथोंके आधारपर नहीं।

आर्यभट्टका विश्वास था कि पृथ्वी अपनी धुरीपर घूमती है।

ब्रह्मगुप्त (जन्म सं० ६५४ विक्रमी)

ब्रह्मगुप्तने ब्रह्म-स्फुट-सिद्धान्त नामक प्रसिद्ध ग्रंथ रचा। उस ग्रंथके एक साध्यमें चार छड़ोंकी लम्बाई क, ख, ग, घ, ज्ञात है और उनसे घिरे हुए चतुष्कोणके महत्तम क्षेत्रफलका सूत्र स्थिर किया गया है। उस सूत्रका रूप है—

$$\sqrt{(स-क)\ (स-ख)\ स-ग)\ (स-घ)}$$

यह वही सुपरिचित सूत्र है जो आजकल चक्रीय (cyclic) चतुष्कोणकेलिए दिया जाता है।

श्रीधर तथा पद्मनाभ कृत बीजगणित भी प्रसिद्ध हैं।

भास्कराचार्य (सं० १२०६ विक्रमी)

भास्कराचार्य्यके ग्रंथोमें भारतीय गणित अपने

अत्यन्त समुन्नत रूपमें पाया जाता है। पूर्ववर्त्ती ग्रंथकारोंको यवनानी अथवा अरबी रचनाओंसे परिचय पानेका अवसर नहीं मिला था। परन्तु भास्कराचार्य्यको वह सारा यवनानी गणित मालूम था, जिसका प्रचार अरबवालोंने भारतमें किया। इसी समयके लगभग किसी अज्ञात लेखकने सूर्य सिद्धान्त नामक ज्योतिष ग्रंथ प्रायः यवनानी ग्रंथोंके ही आधार पर रचा। इन आचार्य्यकृत 'लीलावती' और 'बीजगणित' अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। यदि सूक्ष्म रूपसे भी इन ग्रन्थोंका वर्णन यहां किया जायगा तो यह लेख और भी लम्बा हो जायगा, इसलिए इनका उल्लेख अलग लेखमें ही होना आवश्यक है।

[भारतीय विद्वानोंने अभी हमारी गणितके इतिहासमें बहुत कम खोज की है। आवश्यक है कि हमारे देशके प्रसिद्ध गणितज्ञ इस ओर भी ध्यान करें। हमें पूर्ण विश्वास है कि ऐतिहासिक खोजमें जो परिश्रम किया जायगा वह निरर्थक न होगा क्योंकि देशके बच्चे जब अपने पूर्वजोंके महान कामकी कहानी सुनेंगे तो उत्साहित तथा आनंदित होंगे। आजकल तो बिचारे यही समझते हैं कि ज्ञानके सूर्य्यका उदय पश्चिममें ही हुआ है और उस सूर्य्यकी उपासनाकेलिए पाश्चात्य पण्डितोंसे विना दीक्षा लिये कुछ होनेका नहीं। जिन्होंने स्कूलों अथवा कालेजोंमें पढ़ानेका पुण्य काम किया है उन्हें याद होगा कि यदि कभी किसी हिन्दू विद्यार्थीको हिन्दू गौरवकी बात सुननेमें आयी है तो उस विद्यार्थीको कितना आनन्द हुआ है। अतः गणितके अध्यापकोंसे हमारा विशेष अनुरोध है कि **विज्ञान** में भारतीय विज्ञानके इतिहासपर लेख लिखें। डा० ब्रजेन्द्रनाथ सील महोदयकी सुन्दर सुपाठ्य पुस्तक "Pos'tive sciences of the Ancient Hindus" (प्राचीन भारतीयोंका विज्ञान) बड़े महत्वकी है; पर यह पुस्तक विदेशी भाषामें होनेके कारण सर्वसाधारणके किसी कामकी नहीं। भारतीय भाषाओंमें ऐसी पुस्तकोंकी जितनी अधिक आवश्यका है उतना ही अभाव है-सम्पादक **विज्ञान**]

स्वर्णकारी

[ले० गंगाशंकर पचोली]

पत्तर चढ़ाना

चांदी या तांबापर सोनेके पत्तरको (पत्र) जमाकर तार खींचने या ज़ेवर बनानेको पत्तर चढ़ाना कहते हैं। पत्तर चाहे जिस केरटके सोनेका चढ़ाया जा सकता है, इसलिए पत्तर चढ़ी वस्तु सोनेके हिसाबसे न्यूनाधिक मोलकी हो सकती है।

पत्तर चढ़ानेकी पहली रीति

धातुओंपर सोनेका पत्तर इस रीतिसे चढ़ाते हैं—एक लगड़ी अभीष्ट नम्बरके सोनेकी और धातुकी लेकर उनको प्रेसमें वा दाबमें देकर चपटी और एकसी सतहकी कर लेते हैं और फिर दोनों लगड़ियोंको साफ़कर छीलते हैं वा रेतते हैं जिससे जब वे दोनों मिलाई जाती हैं तो दोनों चिमटकर मिल जाती हैं। जब दोनोंकी सतहें ठीक हो जाती हैं तो सतहोंके ऊपर गहरा सुहागा रगड़ते हैं और दोनों धातुके पत्तर मिला लोहेके तारसे खूब जकड़कर बांध देते हैं। फिर उनको बंद अंगीठीमें तपाकर लाल कर लेते हैं और अग्निको इतना बढ़ाते हैं कि धातु पिघलनेपर आ जाती है। इस समय बड़ी सावधानीसे काम करते हैं जिससे धातु तो गलने न पाये पर दोनों छड़ एक दूसरेसे ठीक मिल जायं। जब दोनों छड़ मिली हुई जान पड़ती हैं तो उनको निकाल लेते हैं और फिर उनको मामूली रीतिसे ठोक पीटकर ज़ेवर इत्यादि बनाते हैं। इस प्रकारकी वस्तुओंमें एक ओर सोना और दूसरी ओर और कोई धातु रहती है।

पत्तर चढ़ानेकी दूसरी रीति

इस रीतिमें दोनों धातुके पत्तरों वा लगड़ियोंको टांकेसे आपसमें जोड़ देते हैं। सोनेके पत्तर वा लगड़ीकी अपेक्षा धातुके पत्तर वा लगड़ीको चारों ओर कुछ निकलती रखते हैं जिससे उसपर टांकेके

महीन पत्तर रक्खे जाते हैं। ये टांकेके पत्तर एक ओरको और दोनों बगलपर आधी दूरतक रखते हैं। तेज़ अंगीठीमें रख टांकेको चलाते हैं जो पत्तरके नीचे फैल जाता है और दोनों पत्तरोंको चारों ओरसे जोड़ देता है। इसके पीछे उन जुड़े हुए पत्तरोंको चाहे जैसा बढ़ा सकते हैं और उससे वस्तु बना सकते हैं।

इस सोनेके पत्तर चढ़ी हुई धातुको पीटकर पतली करते हैं और फिर जितना मोटा तार बनाना अभीष्ट होता है उसके अनुसार पत्तरमेंसे पतली लम्बी छज्जी काटते हैं और उसको ताव देकर मुलाइम करते हैं, तदनन्तर किसी सलाईपर लपेटकर मोड़ते हैं जिससे सोनेका पत्तर ऊपर रहता है और दोनों सिरे आपसमें सटकर मिल जाते हैं। सिरोंके आपसमें मिल जानेपर टांका रख जोड़ देते हैं, और फिर तार खेंचनेकी जत्तीमें जितना पतला अभीष्ट होता है, तार खेंचते हैं। यह तार भीतरसे कुछ पोला रहता है।

इस देशके सुनार कठला बनानेमें ऊपरकी ही रीतिसे काम करते हैं परन्तु इतना अन्तर है कि यहांके सुनार चांदीकी शलाका बनाकर उसपर अभीष्ट तोलका सोनेका पत्तर इस प्रकार लपेटते हैं कि सोनेका पत्तर चांदीकी शलाकासे खूब चिपट जाता है और फिर उस शलाकाको जत्तीमें खींचकर महीनसे महीन तार खैंच लेते हैं या उसको पीटकर पतलेसे पतला पत्तर बढ़ाते हैं। इस प्रकार खिंचे तार वा बढ़ाये हुए पत्तरके चारों ओर सोना रहता है और भीतर चांदीका तार वा पत्तर रहता है।

पालिश अर्थात् जिला करना

सोनेकी वस्तु जब बन चुकती है तब उसपर सोनेका रंग अच्छा चढ़ानेकेलिए निखार देते हैं और वस्तुपर चमक उत्पन्न करनेकेलिए पालिश अर्थात् जिला देते हैं। इस देशके सुनार सोनेकी वस्तुपर निखार देकर उस वस्तुको पानीमें डुबोकर मानक रेतसे रगड़ते हैं और जब पूरी चमक आ जाती है तब वस्तुको सुखाकर उसपर महीन पिसा हुआ गेरू रूइके फोयेसे रगड़ देते हैं जिससे सोनेमें ललाई आ जाती है। विलायतमें इस पालिशके कामको प्रायः लड़कियां करती हैं और वे ख़रादके कड़े बालोंके पहियेपर रखकर पहियेको घुमाती हैं, जिससे पहियेके बाल सोनेकी वस्तुके सब अंगोंमें घुसकर जिला कर देते हैं। साधारण रीतिमें तो कुरंड, मानक रेत तथा 'क्रोकस' का मिश्रण काममें आता है जो तेलमें मिलाकर लेहीसा बना लिया जाता है और ब्रुश वा कूचीसे सोनेकी वस्तुपर रगड़ा जाता है। यदि ऊपर लिखी रीतिसे प्रथम 'पालिश' में वस्तु पूरी साफ़ नहीं होतीं तो दूसरी बार राटनस्टोनको महीन पीसकर तेलमें मिला लेते हैं और एक विशेष प्रकारके ब्रुश या कुचीसे जिला देते हैं। जिला देनेका मुख्य तात्पर्य यही है कि वस्तुपर जो रगड़ आदिके चिन्ह हों वे दूर हो जायं और वस्तुमें चमक और चिकनापन आ जावे। 'बफ़' चमड़ेपर बत्तीका मोम लगाकर वस्तुको रगड़ते हैं और ऐसा करनेसे बहुत अच्छी जिला आ जाती है।

जो सोनेकी वस्तुकी बनावट नाज़ुक होती है तो विलायती सुनार 'वाटर-आव-आयर-स्टोन' से पालिश करते हैं। बहुत महीन स्थानोंमें नोकदार सलाई और रुईके फोयेसे मसाला पहुंचाते और रगड़ते हैं। पालिश करनेसे पूर्व बीस भाग पानीमें एक भाग गंधकका तेज़ाब मिलाकर सोनेकी वस्तुको उबालते हैं जिससे वस्तु साफ़ स्वच्छ हो जाती है। पालिश हो चुकनेपर सोडा साबुन और पानीके ऊष्ण मिश्रणमें धोते हैं और फिर लकड़ीके ऊष्ण बुरादेमें रखकर सुखा लेते हैं। एक 'पाइंट' पानीमें अढ़ाई तोला सोडा और थोड़ा साबुन मिलानेसे मिश्रण बन जाता है।

सोनेका पानी चढ़ाना

कभी कभी वस्तुके बिलकुल तैयार हो जानेपर

उसपर सोनेका पानी चढ़ाना पड़ता है। यह काम बिजलीकी बाटरीसे होता है। यह विषय सुनारी विद्यासे जुदा ही है पर इस स्थलपर सोनेका पानी चढ़ानेकी बात आ गई है इसलिए एक सुगम रीति पानी चढ़ानेकी यहांपर लिखना अनुचित न होगा। एक मिश्रण 'सायेनाइड-आव-गोल्ड' नामका 'सायेनाइड-आव-पोटासिअम' से बनाकर उसे चीनीके वा पत्थरके पात्रमें रखकर उस पात्रको एक दूसरे पानीके पात्रमें रखते हैं और पानीके उबलनेतक गरम करते हैं। 'बाटरी-में 'कारबनसे' जुड़े तारमें शुद्ध सोनेका पत्तर लगा उसको ऊपरके मिश्रणके पात्रमें डुबोते हैं और 'बाटरी' के जस्त भागसे लगे तारमें उस वस्तुको बांधते हैं जिसपर सोनेका पानी चढ़ाना अभीष्ट है। इस वस्तुको ऊपरके मिश्रणमें इस भांति लटकाते है कि वह सोनेके पत्तरके सामने मिश्रणमें डूबी रहै। इस रीति व्यवहार करनेसे सोनेका पानी तत्क्षण चढ़ने लगता है।

मीनाकारी

मीनाकारी वह विद्या है जिसके जाननेसे और क्रिया कुशलता प्राप्त करनेसे सोनेकी वस्तुपर अनेक प्रकारकी कारीगरी जुदे जुदे रंगोंमें करके दिखाई जाती है और वह वस्तु बड़ी शोभायमान और चित्ताकर्षक हो जाती है। मीना चमकीला पदार्थ होता है। यह दो प्रकारका होता है एक पारदर्शक दूसरा अपारदर्शक। दोनों प्रकारके मीनोंमें ये गुण अवश्य होने चाहियें। प्रथम वे ऐसे हों जो सोनेसे लगे रहें जुदे न हो जावें। दूसरे सोना जितनी गरमीमें पिघल जाता है उससे कम गरमीमें गल जायं। तीसरे पानी और साधारण तेज़ाबमें पिघल न सके और वायुमें रंग न बदले। अन्तिम गुण यह भी होना चाहिये कि ताव देने और निखारनेमें ख़राब न होवे।

मीनेके जुदे जुदे रंग बनानेकेलिए पारदर्शक ज़मीन अर्थात् 'फ्रिट्ज़' वा 'फ्लक्स' बनाये जाते हैं जिनमें धातुके 'ओक्साइड' अर्थात् 'मैल' वा 'खार' 'ज़ंग' को मिलानेसे जुदे जुदे रंगका मीना बन जाता है। 'फ्रिट्ज़' भी कई प्रकार बनते हैं। इस स्थानपर पांच प्रकारके 'फ्रि.ट्ज़' लिखे जाते हैं।

नं० १ 'फ्रि.ट्ज़

'रैड लेट' (सिंदूर) १० भाग, 'फ्लिंट' काच ६ भाग शोरा २ भाग और सुहागा २ भाग लेकर एक मिट्टीकी घरियामें कुछ समयतक गलाते हैं। जब सब गलकर एक जीव हो जाते हैं तब उसको जलके घड़ेमें उड़ेल देते हैं। पानीमें जो नीचे बैठ जाता है उसको सुखाकर अकीकके खरलमें पीसकर महीन बुरादा करते हैं और रख छोड़ते हैं। यह 'फ्रि.ट्ज़' पारदर्शक होता है।

नं० २ 'फ्रि.ट्ज़'

रांग ४ भाग, शीशा ४ भाग दोनोंको लोहेकी कूलड़ीमें लाल अग्निमें गलाते हैं और गलानेमें जो मैल ऊपर आ जाता है उसको निकालते जाते हैं पर इतना ध्यान अवश्य रखते हैं कि सिवाय मैल-के धातुका अंश न आ जावे। इस मैलको पीसकर महीन कर लेते हैं और फिर पानीमें रगड़ पानीको थिरने देते हैं। तलेमें बैठे हुए मैलको सुखा और महीन पीसकर रख लेते हैं। इस प्रकार प्राप्त महीन मैलको 'कैलसाइन' वा फूला कहते हैं। यह फूला ४ भाग, 'सिलिका' (शुद्ध रेत) ८ भाग, शोरा २ भाग, और समुद्र नोन २ भाग लेकर मिट्टीकी घरियामें गलाकर मिलाते हैं।

नं० ३ 'फ्रि.ट्ज़

स्वच्छ बिल्लोर काचके टुकड़े १२ भाग, फूला हुआ सुहागा ४ भाग, 'ग्रास-आव-ऐंटीमनी' (सुरमेका मिश्रण) २ भाग और शोरा १ भाग। सब द्रव्य लेकर नं० १ की रीति गलाते हैं और महीन बुरादा करते हैं। पर इस 'फ्रि.ट्ज़' को जितनी बेर गलाया जाता है उतना ही अच्छा बनता है।

ऊपर लिखित 'फ्रि.ट्ज़' सोनेपर मीना करने-में अच्छी ज़मीनका काम देते हैं। जो इनमें सुहा-

गेके भाग बढ़ा दिये जाते हैं तो शीघ्र, पिछलजाने-वाले 'फ्रि.ट्ज़, बन जाते हैं।

नं० ४ 'फ्रि.ट्ज़'

'फ़िलएट' काच पिसा हुआ १६ भाग, 'पर्ल-एश' (कार्बोनेट पुटास) ६ भाग, मामूली नोन २ भाग, और फूला हुआ सुहागा १ भाग। इन सबको पूर्ववत् गलाकर बहुत महीन चूर्णकर रख छोड़ते हैं और फिर रंग मिलाकर मीना चढानेके काममें लाते हैं।

नं० ५ 'फ्रि.ट्ज़'

स्वच्छ रेता १२ भाग, फूला हुआ सुहागा १२ भाग, सुरमेका ग्लास (मैल) ४ भाग, शोरा १ भाग और 'चाक' खड़िया २ भाग एकत्रकर पूर्वकी रीति गलाते हैं और महीन चूर्ण करते हैं। कई बेर गलाने और महीन पीसनेसे बहुत अच्छा 'फ्रि.ट्ज़' बनता है।

यहांतक तो मुख्य मुख्य 'फ्रि.ट्ज़' लिखे गये जिनमें जुदे जुदे धातु-मैलको मिलानेसे जुदे जुदे रंगके मीना बन जाते हैं। जुदे जुदे रंगके मीना बनानेमें किस 'फ्रि.ट्ज़' के संग कौनसा धात्विक मैल (ओक्साइड) मिलाते हैं यह नीचे दिखाया जाता है।

काला मीना

'फ्रि.ट्ज़' नं० ५ के १४ भाग, 'पेरोक्साईडमें-गेनीज़' २ भाग, स्वच्छ महीन 'सेक्सनी कोबाल्ट' (एक नीला रंग) १ भाग गलाकर मिलानेसे काले रंगका मीना बनता है।

अथवा 'प्रोटोक्साईड-आव-आइरन' १२ भाग' 'ओक्साईड-आव-कोबाल्ट' १ भागको बराबरके 'फ्रि.टज' में मिलाने और पिघलानेसे काला मीना बनाते हैं।

नीला मीना

'फ्रि.ट्ज़' नं० ४ चौबीस भाग, बारीक 'सेक्सनी कोबाल्ट' ५ भाग और शोरा १ भाग गलाकर मिलानेसे नीले रंगका मीना बनता है।

लालरंगका मीना

'फ्रिट्ज़' नं० ३ भाग ८ में 'पर्पिल-आव-केसि-अस' १ भाग, वा लाल 'ओक्साइड कापर' (सोन गेरू) १ भाग मिलाकर गलानेसे बनता है। जो 'टैलो' मिलावे तो भी लाल रंगका मीना बनता है।

सफेद मीना

'फ्रि.ट्ज़' नं० २ के १ भागमें महीन स्वच्छ बिल्लोर काच २ भाग और 'पेरोक्साईड मेंगेनीज' सोलहवां भाग मिलाकर सफ़ेद मीना बनाते हैं।

हरे रंगका मीना

नं० १ 'फ्रि.ट्ज़' ३६ भागमें 'ओक्साईड का-पर' २ भाग और लाल 'ओक्साइड-आइरन' दश-मांश मिलाकर बनाते हैं।

पीले रंगका मीना

सफ़ेद सीसा २ भाग, सफ़ेद 'ओक्साइड एँटीमनी' (सुरमेका सफ़ेद ज़ंग) १ भाग, नोसादर १ भाग और फिटकिरी १ भाग। प्रत्येक वस्तुको जुदी जुदी पीस मिलाते हैं और इतनी गरमी अग्निमें रख देते हैं जिससे नोसादरका असर जाता रहता है। सबके गलनेमें रंग मालूम पड़ जाता है।

'फ्रिटज़' तथा रंगदार मीने बनानेकी पूर्व लिखित रीतियोंके सिवाय और भी कई रीतियां हैं, उनमेंसे कुछ यहांपर लिखी जाती हैं।

नरम 'फ्रि.टज़' बनाना

'पेबिल'को (एक जातिका पत्थर) अग्निमें लाल करके कई दफ़े मनुष्यमूत्रमें बुझाते हैं जिस-से वह इतना नरम हो जाता है कि हाथ लगानेसे बिखर जाता है। इस प्रकार 'पेबिल' को बुझा पीस महीन कर लेते हैं। यह महीन चूर्ण ६ रत्ती, सफ़ेदा २२ तोला, सिंदूर ७॥ माशे मिला बंद मूस-रख कपड़ मिट्टीमें दे दो घड़ी तीव्र अग्नि देते हैं और वहीं ठंडा होनेतक रखते हैं। फिर घरियामेंसे निकाल महीन पीस रख छोड़ते हैं। रंगतका मीना बनानेके समय 'स्पाइक नार्ड' तेल (जटा-

मांसीका तेल) वा 'स्पाइक लेवण्डर' तेल मिला काम लेते हैं ।

पीला मीना

किंग्स येलो (एक पीला रंग) घरियामें रख अग्निपर लाल करते हैं और उसमें तिगुना 'फ्रि.ट्ज़' मिलाते हैं जिससे रंग पीला हो जाता है। गहरा पीला रंग करनेकेलिए हरा तूतिया और 'फ्रि.ट्ज़' मिलाकर 'स्पाइक आइलमें' (जटामांसीका तेल) घोटते हैं।

काला मीना

'मैंगनीज़' को ठीकरेमें रख अग्निपर तपाकर काली कर लेते हैं और उसमें तीन भाग 'फ्रि.ट्ज़' मिलाकर 'स्पाइक आइल' में घोटते हैं जिससे काला मीना बन जाता है ।

लाल मीना

महीन पिसे हुए हीराकसीसको धूपमें सुखा बंद मूसमें रख कपरोटीकर अग्निमें रख लाल करते हैं और ठंडा होनेपर मसालेसे ढाई गुना 'फ्रि.ट्ज़' मिलाकर घरियामें गलाते हैं और ठंडा कर रख छोड़ते हैं। काममें लानेके समय 'स्पाइक आइल' में घोट काममें लाते हैं।

नीला मीना

'स्माल्टको' (नीले रंगका सीसा) पानीमें धोकर साफ़ करते हैं, थोड़ा 'फ्रि.ट्ज़' उसमें मिलाते हैं और 'स्पाइक आइलमें' घोटते हैं जिससे नीले रंगका मीना बन जाता है।

हरा मीना

'डिस्टिल्ड' (शोधी) जंगालको घरियामें अग्निपर लाल करते हैं और फिर उसमें साढ़े तीन गुना 'फ्रि.ट्ज' मिलाकर 'स्पाइक आइल'में घोट गहरा हरा मीना बनाते हैं ।

ऊदे रंगका मीना

'क्रोकस मार्टिस' (लोहे और नाइट्रिक एसिडसे बनी वस्तु) एक भाग, 'स्माल्ट' एक भाग और 'फ्रि.ट्ज़' तीन भागको 'स्पाइक आइल' में घोटनेसे जामुनी रंगका मीना हो जाता है ।

इंगलैंडके मीनाकार मीनोंके रंग गहरा करनेकेलिए 'ओक्साइड' (खार) अधिक मिलाते हैं। जो गहरा नीला रंग देना होता है तो 'ज़ेफ़र' (शोधित 'कोबाल्ट') आधा भाग और मिलाते हैं। काले रंगको गहरा करनेमें 'प्रोटोक्साइड आइरन' (लोहेका चार विशेष) या 'ज़ेफ़र' या तांबेका काला चार (ब्लैक औक्साइड कापर) मिलाते हैं। लाल रंगको भड़कानेकेलिए तांबेका लाल चार (रैड औक्साइड कापर) और पीले रंगको तेज़ करनेमें सीसेका चार (औक्साइड लैड), और गहरे हरे रंगकेलिए लोहका 'प्रोटोक्साइड' और 'क्रोमिअम् औक्साइड' ऊपरसे मिलाते हैं। अर्थात् पूर्व जो रंगके मीने लिखे गये हैं उनके रंगोंको और गहरा करनेकेलिए इस स्थानपर लिखे जुदे जुदे रंगके मीनोंमें उनके सामने दिये हुए धात्विक चारोंको विशेष मिलाते हैं।

रंगीन मीने बनाकर उनको या तो जैसे वे घरियामेंसे निकलते हैं वैसी ही सूरतमें रख छोड़ते हैं और कामके समय मीनोंको पैने हथोड़ेसे कुचल अक़ीकके खलबत्तेमें पीस साफ़ पानीसे कई बार धोते हैं और फिर काममें लाते हैं। या जो घरियामेंसे निकलनेपर ही कूट अक़ीकके खरलमें पीसकर रखते हैं तो उस पिसे हुए और धोये हुए मीनेको मज़बूत ढक्कनके पात्रमें रख पानीके भीतर रखते हैं।

जिस सोनेकी वस्तुपर मीना चढ़ाना होता है उसको इस रीति बनाते हैं। वस्तुपर जो कुछ लिखना वा खेंचना होता है उसको खुदाई करनेकी लोहेकी सलाईसे लिखते हैं और जिस भागपर मीना चढ़ाना होता है उसको एकसा छीलते हैं। पारदर्शक मीना चढ़ानेकेलिए छिलाई एक सी चिकनी और चमकदार होनी चाहिये । इसके पश्चात सोनेकी वस्तुको सोडा साबुन और पानीसे धोकर साफ़ करते हैं और फिर जहां जिस रंगका मीना लगाना होता है वहां उस रंगका मीना अंदाज़से लगाते हैं। फिर लोहेके पत्तरपर उस

वस्तुको रख अग्निमें तपाते हैं जिससे मीना पिघलकर ठीक बैठ जाता है। मीना जितना गहरा चढ़ाना होता है उसीके अन्दाज़से कई बार मीना जमाया जाता है। जब मीना ठीक ठीक गलकर फैल जाता है तो जो शेष भाग रहता है वह छील दिया जाता है। वस्तुको पानीमें खंगारकर साफ़ करते हैं और अग्निमें फिर तपाकर मीनेको एकसा करते हैं जिससे मीना साफ़ चिकना हो जाता है। मीनेको अग्निमें गलाने और तपानेके समय पूरी पूरी होशयारी चाहिये क्योंकि जो अग्नि अधिक लग जाती है तो सब काम ख़राब हो जाता है। जुदे जुदे रंगके मीनेको जुदी जुदी अग्निकी गरमी चाहिये और इस गरमीका अन्दाजा बिना अनुभवके नहीं हो सकता। कितने ही रंगके मीने घटिया सोनेकी गरमीपर पिघलते हैं इसलिए घटिया सोनेपर वैसा मीना चढ़ानेमें इस बातका भय रहता है कि कहीं मीना गलानेमें सोनेकी वस्तु ही न गल जाय। इस आपत्तिके दूर रखनेकेलिए मीनेकार लोग मीनेमें थोड़ासा सुहागा और मिलाते हैं जिससे मीना कम दर्जेकी गरमीमें ही पिघल जाता है।

जुदे जुदे बट्टेके सोनेपर जुदे जुदे रंगका मीना खिल उठता है जैसे कि पीला और हरा पारदर्शक मीना फीके रंग अर्थात् चांदीके बट्टेवाले सोनेपर खिलता रहता है और लाल रंगका मीना तांबेके बट्टेवाले सोनेपर अच्छा रहता है।

मीनेके कामपर जिला देने और अधिक मीनेको कम करनेकेलिए साम रखनेवाले पहियेको काममें लाते हैं। भीगो 'इमेरी'से रगड़नेसे मीना साफ़ और चिकना हो जाता है। बैलके चमड़ेपर 'पट्टो' (रांगका औक्साइड) बुकनी फैलाकर रगड़नेसे शीघ्र और अच्छी जिला चढ़ती है।

मीनाकारी सुनारोंका काम नहीं है। यह एक जुदा हो धंधा है। इस धंधेके सफलतासे चलानेकेलिए अभीष्ट अलंकारका खेंचना, सोनेपर उसका खोदना और मीनाकारीके उपयोगी वस्तुओंके रासायनिक गुण व प्रभाव जानना अत्यावश्यक है। इनके सिवाय मीनाकारको यह भी जानना आवश्यक है कि अमुक केरटका सोना अमुक धातुके बट्टेसे बनता है और इतने दर्जेकी गरमीमें पिघल जाता है और कौनसे निखारका क्या प्रभाव पड़ता है। इन सब बातोंके साथ मीनाकारको और भी अनेक बातोंसे जानकारी होनी चाहिये।

इस स्थानपर जो मीनाकारीके विषय कुछ लिखा है वह केवल दिग्दर्शन मात्र है क्योंकि यह धंधा विशेषकर अनुभवपर निर्भर है।

प्लेग (महामारी)

(अनु० नागरी प्रचारिणी सभा, सेंट जांस कालेज आगरा)

इस रोगके विषयमें सर्वसाधारणकी धारणा इतनी प्रबल है और ऐसे मिथ्या विचार फैले हुए हैं कि इसका विचार विशेष प्रकारसे करना अत्यन्त आवश्यक है।

गिल्टीदार प्लेग योरपमें १५ वीं और १६ वीं शताब्दिमें बहुत फैला था। यह इंगिलिस्तानमें १४ वीं शताब्दिमें ब्लैक डेथ (black death) और १७ वीं शताब्दिमें प्लेगके नामसे फैला और बहुत प्रभाव दिखाता रहा।

फ़ारिस और सीरियामें तो यह सदा ही रहा है और आजकल तो सारे संसारमें फैला हुआ है। यह दुर्दैव किसी एक भागमें उपद्रव मचाकर कुछ समयकेलिए लोप हो जाते हैं। फिर कुछ समय उपरान्त अकस्मात आ विराजमान होते हैं। ऐसा केवल भारतवर्षमें ही नहीं हुआ है किन्तु फ़ारस सीरिया, चीन और योरपमें भी हो चुका है।

इसके चार लक्षण हैं—अधिक ज्वर, चित्त भ्रम, अधिक खिन्नता, और सन्निपात। यदि रोगी जीवित रहे तो कभी कभी शरीरके भीतर रुधिर

भी बहने लगता है। बहुधा बड़ी बड़ी गिल्टियां दूसरे या तीसरे दिन बग़ल या जाँघमें निकल आती हैं। कभी कभी फेफड़ोंपर भी असर हो जाता है इस दशामें इस रोग और न्यूमोनियामें भेद पहिचानना अत्यन्त कठिन होता है।

इस रोगका उत्पादक एक प्रकारका कीटाणु है जिसका पता एक जापानी डाक्टरने सं० १६५० वि० में लगाया था। यह इतना कोमल होता है कि किसी जीवधारीके शरीरके सिवाय और कहीं जीवित नहीं रह सकता। यह बहुत समयसे देखा गया है कि इस रोगके फैलनेके पहिले चूहे बहुत मरते हैं। इस कीटाणुका पता लगनेके बाद यह बात निश्चय की गई कि चूहोंकी बीमारी ही असली प्लेग है। प्लेग और चूहोंके सम्बन्धपर वर्त्तमानमें सारे संसारमें ध्यान-पूर्वक विवेचन हुआ है। प्लेग कमीशनको विशेषकर बंबईमें और पंजाबके दो गावोंमें इस विषयमें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है उसका सारांश मेजर लैंब साहिबने बंबई मेडिकल कांग्रेसमें इस प्रकार वर्णन किया था।

(१) कि मनुष्यके शरीरमें इस रोगका संचार पूर्णतया चूहेके रोगपर निर्भर है।

(२) यह रोग चूहेसे दूसरे चूहेको और पिस्सुओं द्वारा चूहेसे आदमियोंको लग जाता है।

(३) इस रोगका संचार केवल रोगी मनुष्य द्वारा कदापि नहीं होता क्योंकि मनुष्यमें प्रवेश किये हुए कीटाणु चूहोंकी सहायता विना प्लेगका संचार कदापि नहीं कर सकते।

(४) शहरके गन्देपनका प्लेगके फैलनेसे कोई संबन्ध नहीं है परन्तु गन्दा स्थान. चूहोंके रहनेके-लिए अवश्यमेव सुःखकर होता है और ये चूहे ही प्लेगका कारण होते हैं।

(४) प्लेग एक स्थानसे दूसरे स्थानपर चूहोंके पिस्सुओं द्वारा प्रवेश करता है। ये पिस्सु या तो हमारे कपड़ों या हमारे शरीरमें चिपटकर स्थान स्थानपर पहुँच जाते हैं और वहांके मनुष्योंपर आक्रमण करके प्लेगका संचार करते हैं। मनुष्य शायद ही कभी इनके हमलेसे बचता हो।

प्रथम घरके चूहोंको प्लेग होता है परन्तु जब वे इस रोगसे मरने लगते हैं तो मरनेसे बचे हुए चूहे अपने स्वभावाऽनुसार उस घरको छोड़कर भाग जाते हैं और इस प्रकार अनगिनित पिस्सु अपने अपने बिलोंमें छोड़ जाते हैं। अब चूंकि इन पिस्सुओंने रोगी चूहोंका खून चूसा है इसलिए उनके अन्दर प्लेगके कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं। ये पिस्सु चूहोंके चले जानेके कारण भूखे होनेपर बिलोंसे निकलकर घरके निवासियोंको काटते और प्लेगका मनुष्योंमें संचार करते हैं।

ऊपरके वर्णनसे हमें दो शिक्षा ग्रहण करनी चाहियें। प्रथम, यह कि प्लेगका रोगी स्वयं प्लेग नहीं फैला सकता और इसलिए उसके समीप जानेमें किसी प्रकारका भय नहीं करना चाहिये।

द्वितीय, यह कि प्लेगका रोकना केवल घरकी स्वच्छतापर निर्भर है। केवल जनताको यह मालूम हो जाना चाहिये कि वे कूड़ा करकट अपने घरोंमें इकट्ठा न करें जिससे कि चूहे उनके समीप अपना निवास स्थान न बना सकें और न वे अपने घरोंके समीप भोज्य पदार्थ फेंकें क्योंकि उनके फेंकनेसे चूहे वहाँ अपना निवास स्थान बना लेते हैं। तात्पर्य्य यह है कि चूहोंको घेरलू जानवर न होने देना चाहिये। चूहे अधिकतर यूरूप निवासियोंके यहाँ घरेलू जन्तुओंकी तरह नहीं पाये जाते-परन्तु एक प्रथा है जो चूहोंको इनके यहां भी घरेलू बनानेमें सहायक होती है और वह यह है कि साईस घोड़ोंका दाना न चुराएं इसलिए स्त्रियाँ उसे घरमें रख लिया करती हैं। सदा इस बातकी सावधानता रखनी चाहिये कि अपने अथवा अपने सेवकोंके घरोंमें चूहे न फैल जायं क्योंकि इससे इस बातका सर्वदा भय है कि नौकरके घरके प्लेगका चूहा

अपने यहाँ आकर न मर जाय क्योंकि ऐसा होनेपर चूहेका मृतक शरीर ठंडा होते ही चूहेके पिस्सु उसे खाकर संभव है कि हमको काटें और हम इस रोगसे ग्रसित हो जायँ।

प्लेगके बहुतसे आक्रमण इसी कारणसे होते हैं। एक ग्रन्थकारका कहना है कि एक यूरूपीय महिलाको प्लेग हो गया और खोजनेपर यह ज्ञात हुआ कि एक चूहा उसके शृङ्गार करनेकी मेज़में मर गया था। एक बात और ध्यान देने योग्य है—कि प्लेग एक स्थानसे दूसरे स्थानमें बहुधा उन मनुष्योंके कपड़ों इत्यादिके साथ साथ आये हुए चूहोंके पिस्सुओंसे पैदा हो जाता है जो प्लेग ग्रसित स्थानोंसे आते हैं। अब प्रश्न यह है कि इस आपत्तिसे बचनेका क्या उपाय है। सौभाग्यसे इस प्रश्नको कप्तान कनिंघमकी (Cunningham I. M. S.) वर्त्तमान खोजने तै कर दिया है। उन्होंने बतलाया है कि इसकेलिए किसी बड़े और ख़र्चीले उपायकी आवश्यकता नहीं है। बस इतना ही आवश्यक है कि कपड़े और बिस्तरोंको धूपमें कुछ देरतक रख देना चाहिये जिससे सूर्य्य-की किरणें चूहेके पिस्सुओंका नाश कर दें। कप्तान कनिंघमने नीचे लिखे हुए नियम बतलाये हैं हम अपने पाठकोंसे आग्रह करते हैं कि वे उनपर ध्यान दें—

(१) इस कामकेलिए ऐसा स्थान होना चाहिये जहाँपर धूप प्रातःकालसे सायंकालतक बराबर रहे।

(२) स्थान चौरस हो और घास पत्थर इत्यादिसे रहित हो जिससे इन पिस्सुओंको बचने-का अवसर न मिले।

(३) वहाँपर तीन इंच गहरी बालू बिछी होनी चाहिये।

(४) बालूका तापक्रम १२०° फ़० = ४४°.५ श होना चाहिये।

(५) कपड़े इकहरे बिछाए जाने चाहियें और उनको धूपमें १ घंटे पड़ा रखना चाहिये। रुईके कपड़े या रज़ाईको एक या दो बार पलट देना चाहिये।

(६) बालूके किनारोंसे तीन फुटकी दूरीतक कोई कपड़ा नहीं होना चाहिये।

(७) सम्पूर्ण स्थानके चारों ओर एक घेरा होना चाहिये जिससे कि पशु कपड़ों पर न आ सकें।

इसलिए यह प्रकट है कि प्लेग रोकनेका प्रश्न बहुत सरल है। इस रोगसे हमारी पराजयका कारण हमारी ज्ञानकी न्यूनता नहीं है परन्तु जनता कि अज्ञानता और इसीसे प्लेगके निवार-णमें उनका बाधक होना है।

विद्याका प्रचार इसकी परम औषधि है और हम आशा करते हैं कि यह हमारा थोड़ासा लिख-ना इस रोगके निवारणमें बहुत सहायक होगा।

जीवाणु

[ले० एम. दर, बी. एस-सी]

रोगके जीवाणु (germs) मनुष्य जातिके सबसे बड़े शत्रु हैं। हर रोज़ यह सहस्रों मनुष्योंकी जान लेते हैं और न जाने कितना समय और धनका नाश करते हैं। अगर आप इनके द्वारा रोग, दुःख, और हानिका अनुमान करना चाहें तो एक ऐसे देशका ध्यान कीजिये जहां न तो कभी सर्दी, ज़ुकाम, नज़ला दिक़ अथवा क्षय, सर्दीका बुख़ार वा निमोनिया (pneumonia) होता हो—एक ऐसा देश सोचिये जहां न तो कभी शीतला, छोटी शीतला अथवा ख़सरा, लाल बुख़ार खांसी, वा गलसुए बढ़नेकी बीमारी होती हो, एक ऐसा देश जहां जूड़ी बुख़ार हैज़ा, कोढ़, मरकांन, ताऊनका नाम न हो—एक ऐसा देश जो मोतीजरा, पेचिश, और और रोगोंसे जो मनुष्य मात्रको पीड़ित करते हैं

मुक्त हो। ऐसे देशकी कल्पना कीजिये जो इन सब बीमारियोंसे रहित हो और जहांके रहनेवाले बाल्यावस्थासे वृद्धावस्थातक कभी रोगी नहीं होते तब आपको ज्ञात होगा कि रोग जीवाणुसे मुक्त देश कैसा होगा।

अब यह प्रश्न होता है कि यह जीवाणु germs क्या हैं। पानीमें और पृथ्वीपर सहस्त्रों नहीं करोड़ों नन्हें नन्हें पौधे और कीड़े हैं—जो ऐसे छोटे और बारीक हैं कि आंखकी क्या मजाल जो उनके रचनाके गूढ़ रहस्यको मालुम कर सके यह केवल क्षुद्र अनुवीक्षण यन्त्र (microscope) द्वारा ही देखे जा सकते हैं। यह छोटे छोटे कीड़े और पौधे केवल एक कोष्ट मात्रके बने हुए होते हैं। इनमेंसे एक कोष्टवाले (cell) पौधे बैक्टीरिया (bacteria) कहलाते हैं और एक कोष (cell) वाले कीड़े प्रोटोज़ोआ (protozoa)

बस यही बैक्टीरिया और प्रोटोज़ोआ रोगके कारण हैं। यह मनुष्यके शरीरमें घुसकर अपना घर बना लेते हैं और शरीरकी कोषोंको (cells) अपने विषसे नाश कर देते हैं

जीवाणु कहांसे आते हैं

यह तो मालुम हो गया कि रोगके कारण यही बैक्टीरिया और प्रोटोज़ोआ हैं। अब यह एक साधारण सी बात है कि जैसे एक चीड़का पेड़ अपने ही बीजसे पैदा हो सकता है या जैसे एक कबूतर अपने ही अंडेसे पैदा हो सकता है उसी तरह एक रोगका जीवाणु भी एक उसी तरहके दूसरे जीवाणुसे ही पैदा हो सकता है और किसीसे नहीं। बहुतोंका यह ख़याल कि यह रोग जीवाणु गंदे और सड़े और गले पदर्थोंसे पैदा होते हैं बिलकुल ग़लत है। ये गंदी वस्तुओंमें पाये जाते तो अवश्य हैं और इसीलिए ऐसी वस्तुओंका पास रहना बुरी बात ही नहीं बल्कि हानिकारक भी है (क्योंकि ऐसे स्थानोंमें यह शीघ्र बढ़ सकते हैं) लेकिन यह ऐसी वस्तुओंसे वैसेही नहीं पैदा हो सकते जैसे कि एक गाय एक घासके तिनकेसे जिसको कि वह चरती है या एक गेहूंकी बाल आपसे आप जहां उसका बीज न पड़ा हो। प्रायः जितने जीवाणु हमको सताते हैं सबके सब उन रोगियोंके बदनसे आते हैं जो ऐसे रोगोंसे पीड़ित हैं।

अब यहां यह आपको समझ लेना चाहिए कि सारा संसार इनसे भरा हुआ नहीं है जो हमको हमेशा हानि पहुंचाने की ताकमें लगे हों। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बैक्टीरिया और प्रोटोज़ोआ पानीमें और पृथ्वीपर बहुतायतसे हैं और वे बराबर हवाके झोंकोंसे उड़ते रहते हैं परन्तु उन हज़ारों और करोड़ोंमेंसे जो इस दुनियामें घूमते फिरते रहते हैं केवल थोड़े ही ऐसे हैं जो रोगका कारण होते हैं बाक़ी जितने हैं सब हानिरहित हैं और अगर वे हमारे शरीरमें घुस भी जायं तो उससे उल्टा उन्हींको नुक़सान पहुंचता है। बहुतसे रोगोंके जीवाणु शरीरसे निकलते ही मर जाते हैं। इसलिए यह समझना बड़ी भूल है कि हर एक श्वास हानिकारक है या सब खाने पीनेकी वस्तुमें जीवाणु होते हैं। हवा जो हरे हरे खेतोंमें होकर चलती है, मेंह जो अकाशसे गिरता है जंगलके सुहावने दरख्त और मैदानोंकी हरी भरी घास और प्रायः जितनी बाहरकी कुदरती चीज़े हैं सब जीवाणु रहित हैं। उन लोगोंके शरीरमें जो जीवाणुवाले रोगोंसे पीड़ित हैं, उन मकानोंमें जहां ऐसे रोगी रहते हैं और जहां कहीं ऐसे रोगियोंका मल मूत्र जाता हो इन्ही जगह और प्रायः ऐसी ही जगहोंमें यह जीवाणु पाये जाते हैं।

ऐसी बीमारियोंको रोकनेकेलिए पहिली बड़ी बात तो यह है कि रोगियोंके शरीरसे जो जीवाणु निकलें सब नाश किये जायं। जैसे अगर शीतलाके सब जीवाणु नाश किए जा सकें तो फिर शीतला न हो।

बाहर फैलनेसे पहिले रोगीके शरीरके जीवाणुका नाश करना सहल है क्योंकि जब वह एक दफ़ा बाहर फैल जाते हैं तो उनका रोकना

मुश्किल पड़ता है। अगर इस काममें ज़रा सावधानीकी जावे तो प्रत्येक वर्ष करोड़ों मनुष्योंकी जान बचे।

सिवाय दो चारके प्रायः सभी जीवाणु शरीरमें या तो घावोंके द्वारा या मुहं या नाकसे जाते हैं परन्तु कुछ ऐसे भी जीव (जैसे खटमल मच्छड़ इत्यादि) हैं जो हमारे कवच रूपी खालको काटकर उसमें जीवाणु रख देते हैं, कुछ ऐसे जीवणु हैं जो नाकके द्वारा शरीरमें घुसते हैं, कुछ ऐसे भी हैं जो मक्खियोंसे मुहं द्वारा जाते हैं कुछ झूठे गिलासोंसे, अथवा हाथोंसे और खाने पीनेकी वस्तुओंसे लेकिन इन सबोंमेंसे नाक, मुहं और घाव यह तीन बड़े दरवाज़े हैं जिनके द्वारा यह शरीरमें घुसते हैं।

अब दूसरी बात इन रोगोंसे बचनेकेलिए यह है कि घावोंकी रक्षा करना चाहिये, काटनेवाले कीड़ोंसे (मच्छड़, खटमल इत्यादि) बचना चाहिए और मुंह और नाककी रक्षा करनी चाहिये।

इसमें कोई शक नहीं कि अगर हम इनमें से किसी भी बातके करनेसे असावधानी करेंगे तो ऐसे किसी न किसी रोगसे कभी न कभी अवश्य ग्रसित होंगे।

यह इसी असावधानीका कारण है कि इस देशकी मृत्यु संख्या इतनी है कि जितनी किसी सभ्य देशमें नहीं।

सूर्य शक्ति

[ल० महेशचरनसिंह, एम. एस-सी.]

नक्षत्रोंका राजा सूर्य है, उसकी शक्ति बड़ी अद्भुत है और हमारे सारे प्राकृतिक संसारका वही प्राणदाता है। वही आदि और अन्त भी मालूम होता है। उसकी तुलना किसी भौतिक वस्तुसे नहीं की जा सकती, क्योंकि वह, जहां-तक हमारा ज्ञान है अद्वितीय है। कुछ लोग सूर्यको ही मुक्त आत्माओंका निवासस्थान मानते हैं, तब ही तो सूर्यकी राशियोंके संमुख पित्रोंको पानी देते हैं ताकि उनका दिया हुआ जल राशियों द्वारा सूर्यलोक पहुंचे। यह पानी सचमुच अन्तरिक्षवासी आत्माओंका तृप्तकरता है वा नहीं ईश्वर जाने परन्तु इसमें संदेह नहीं कि सूर्यकी शक्ति ऐसी महान है कि वह सब कुछ अपनेमें ग्रहण कर सकता है। उसकी महानता इसीसे सिद्ध है कि वह सारे ग्रह, नक्षत्र, तारे तथा सब पिण्ड जो इस अन्तरिक्षमें दृष्टिगोचर होते हैं उन सबके योगसे भी ६०० गुना बड़ा है। जिस भूमंडलमें हम रहते हैं यह पृथ्वी प्रदेश तो सूर्यकी अपेक्षा एक बिन्दू मात्र है क्योंकि सूर्य हमारे भूमंडलसे १,३००,०००, तेरह लाख गुना बड़ा है, जिस पृथ्वीको हम बड़ा भारी प्रदेश माने बैठे हैं वह तो ग्रहोंमें सबसे कम दरजेका ग्रह है। मंगल, बुध, शुक्र, शनि, वृहस्पति, यूरेनस नेपचून सब ही हमारे भूमंडलसे बड़े हैं।

पृथ्वी मंडलका परिभ्रमण एक सालमें किया जा सकता है परन्तु उसी गतिसे सूर्य मंडलके परिभ्रमणकेलिए ३०० साल चाहियें। सूर्य मंडलमें वस्तुओंका भार भी हमारी पृथ्वीके अपेक्षा बहुत है, जो वस्तु हमारे भूमंडलमें मन भरकी होती है उसकी तौल सूर्य मंडलमें ३० तीस मनकी होती है। यदि ऊंचे स्थानसे कोई चीज़ ढकेल दी जाय तो पहले सेकंडमें ४ मीटर ९ शतांशमीटर पृथ्वीकी ओर जावेगी परन्तु यदि सूर्य-मंडलमें वस्तुओंको गिरावें तो पहले सेकंडमें १४९ मीटर सूर्यकी ओर जावेंगी।

सूर्यकी सबसे विलक्षण बात यह है कि वह स्वयं जलता है और सारे ब्रह्माण्डको ताप और प्रकाश पहुंचाता है। अन्य सारे ग्रह, उपग्रह, ताप और प्रकाश शून्य हैं। यदि सूर्य न होता तो वह नितान्त अन्धकारमय और ठंडे होते। इसके अति-

Astro-physics खगोल-विद्या]

रिक्त दूसरी विशेषता सूर्यमें यह है कि उसका ताप और प्रकाश स्थिर तथा अटल है।

भौतिक विद्याके आचार्योंने सूर्यका वास्तविक तापक्रम निकाल लिया है। पृथ्वी और उसके चारों ओरके वायुमंडलको जितना ताप सूर्य्य भगवान देते हैं यदि वह एक स्थानपर एकत्र करलें और एक वस्तुको तप्त किया जावे तो उसका तापक्रम कितना होगा? फ्रांसीसी म० पूले (Pouillet) पदार्थ विद्या विशारदका कथन है कि यदि हमारी पृथ्वीके बराबर बरफ़का गोला इतने सूर्य तापसे प्रभावित हो तो सूर्यका ताप केवल एक मिनट-में ग्यारह ११ मीटर और ८० अस्सी शतांशमीटर मोटी बरफ़की तह गलाकर पानी कर दे, और यदि दिन भर ताप लगे तो १७ किलोमीटर मोटी बरफ़की तह गलकर पानी हो जावे। इसी प्रकार प्रो० टिण्डलने हिसाब लगाया है कि यही ख़ालिस सूर्यकी किरण २६०,००,००,००,००,०० उन्तीस खरब घन किलोमीटर बरफ़ीले पानीको (०° श तापक्रमवाले) एक मिनटमें उबाल सकता है।

प्रोफ़सर हरशेलकी गणना है कि सूर्यको ठंडा करनेकेलिए एक ऐसी पिचकारीकी ज़रूत है जिसका व्यास ५४ मीलका हो और जिसमें बर्फ़ी-ला पानी दो लाख दस हज़ार मील प्रति सेकंडकी गतिसे फेंका जा सके।

भौतिक विद्याने बताया है कि एक सालमें सूर्यका ताप उतना ही ख़र्च होता है जितना हमारी पृथ्वी मंडलके बराबर १, ३००,००० तेरह लाख गोलोंपर इक्कीस मील मोटी तह प्रत्थरके कोयले-से मंढकर एक दम जलानेसे ताप होगा। पूर्ण चांदनी रातका प्रकाश हमारे सारे भूमंडलको प्रकाशित कर देता है परन्तु सूर्यका प्रकाश चांदके प्रकाशसे ३००, ०००, तीन शाख गुना ज़्यादा तदण है।

सूर्यका प्रकाश यदि मोमबत्तीके प्रकाशसे तोला जाय तो उसकी शक्ति ७५,२०० पिछत्तर हज़ार बत्तीकी होगी। हाइड्रोजन अथवा अभिद्रजन गैस-के जलानेसे २०० बत्तीका प्रकाश होता है, और मेग-नीशियमके जलानेसे ५०० बत्तीका प्रकाश होता है—विद्युत्का प्रकाश १००० बत्तीका होता। मां० फ़ीज़ो और मां० फ़ूकोने विद्युत्का प्रकाश ३००० बत्तीका करके दिखाया है परन्तु यह याद रहे कि सूर्यका प्रकाश असीम दूरीसे और असीम आकाश तथा गैसोंमें गुज़र कर आता है। फिर भी उसका प्रकाश ७५, २०० बत्तीके बराबर है।

सूर्यकी दूसरी विशेषता यह है कि सारे ही तारागण ग्रह, उपग्रह पार्श्ववर्ती धूम्रकेतु सूर्यके चारों ओर अनुचरकी भांति घूमते हैं और यह नक्षत्राधिपति अचल अपने ही स्थानपर रहता है। वस्तुतः सूर्य ही सारे संसारका हृदय है, उसी-की ओर सारी वस्तुएं खिचती हैं और वही सब-का आचार्य है। इसी कारण वेदोंमें सूर्यका नाम आता है और उसकी शक्तिको परमात्माकी शक्ति-का रूप माना जाता है और इसीलिए परमात्मा-को अलंकारिक भाषामें ज्योति स्वरूप कहते हैं।

साधारण दृष्टिसे देखकर कोई कोई कह उठेंगे कि ग्रहों और तारोंका सूर्य मंडलके चारों ओर घूमना आश्चर्य जनक नहीं क्योंकि हमको पता है कि बड़ा पिण्ड सदा छोटे पिण्डको अपनी ओर पिण्डकी बड़ाईके अनुपातमें घसीटता है और चूंकि सूर्य सर्व तारागणोंके योगसे ६००० गुणा बड़ा है इसलिए दूसरे तारोंका उसकी ओर खिचना स्वाभाविक है। इसमें आश्चर्य्य क्या है और सूर्यको परमात्माकी शक्तिसे उपमा देनेसे लाभ क्या है? ऐसी शंका करनेवालोंकी एक बड़ी भूल यह है कि यह लोग केवल नामके बदलनेको सिद्धान्तकी व्याख्या समझते हैं। न्यूटनने तो स्वयं ही लिखा है कि सूर्यकी इस शक्तिके रहस्यका किसीको पता नहीं। कोई कारण नहीं जान पड़ता कि क्यों बड़े मंडलकी ओर छोटा पिण्ड खिचता है। यदि यह बात ठीक है तो सूर्याकर्षण शक्तिका रहस्य तो आश्चर्यजनक बना ही रहा।

प्रश्न यह नहीं है कि वस्तु खिंचती है। प्रश्न यह है कि वह क्यों खिंचती है और उसका रहस्य क्या है? जिस प्रकार हम यह कहते हैं कि सूर्य अपनी आकर्षण शक्तिसे सारे नक्षत्रों और तारोंको द्युः मंडलमें स्थित रखते हुए चलायमान करता है उसी प्रकार यह क्यों नहीं कहा जा सकता कि सूर्य देव अपने नियम वा आज्ञासे सारे तारागणों-को शासित करते हैं और सर्व जीव जंतुओंके जीवनको प्रतिपादित करते हैं। कहीं उनका नियम यह है कि प्राकृतिक बड़े पिण्ड छोटे पिण्डोंको अपनी दूरीके वर्गके उलटे अनुपातमें घसीटें और कहीं अपने रश्मियोंके भिन्न भिन्न रंगों द्वारा भिन्न भिन्न जीवनका प्रतिपादन जीवन और मरण निश्चित करते हैं। हम उनके नियमोंका पता लगा लें लेकिन उनकी शक्तिका वास्तविक कारण कभी नहीं जान सकते। सूर्यकी अबाध्य शक्तिके कारण ही नक्षत्र और ग्रह घूमते हैं, खिंचते हैं और ताप प्रकाश और विद्युतमय होते हैं। यह सूर्यकी रश्मियोंका प्रताप है कि जीवनका प्रारम्भ होता है। सूर्य ही तारोंका मार्ग निश्चित करता है और नक्षत्रोंमें रात दिन, सम्वतसर, ऋतु और सरदी गरमीकी सीमा बांधता है। और यह उसीकी उन्नत शक्ति है जो द्युः मंडलमें रातको बड़े बड़े दीवे लटकाये रहता है। विज्ञान तो नित्यप्रति यही सिद्धकर रहा है कि सूर्यकी महिमा महान् है क्यों कि बिना उसके पृथ्वी, चंद्रमा, तारागण कोई भी स्थिर नहीं रह सकते। बिना उसकी सहायताके कोई जीवन नहीं हो सकता है। इस अवस्थामें यदि उसको देवता कहा गया तो इसमें नादानी क्या हुई?

सुर्य ही वनस्पति, पशु, मनुष्य तथा अन्य सारे प्राणियोंका मूल कारण है। उसीके कारण वायु, जल, पृथ्वीमें गति होती है और उसीके प्रभावसे मंडलमें सारी क्रियायें होती हैं। यही टिन्डलका भी मत है।

वायुका और हमारा घनिष्ट सम्बन्ध है। परन्तु इस वायुमें गति कैसे होती है? सूर्यका ताप ही गतिका कारण है। उसके तापसे भूमिके भाग असमतासे गर्म हो जाते हैं उसीके प्रभावसे भूकक्षा निरक्षदेश तथा अयनवृत्त अधिक तप्त हो जाते हैं परन्तु दूसरे अक्षांशोंमें अत्यन्त शीत रहती है। अतः तप्त भागोंकी भूमि अपने निकटवर्ती वायुके परमाणुओंको गरम करके हलका कर देता है जिसके कारण वह वायु अपना स्थान छोड़कर ऊपरको जाती है और उसके स्थान-पर अन्य प्रदेशोंकी ठंडो वायु प्रवेश करती है। सामयिक वायु चलनेका यही कारण है। इसी कारण भूकक्षासे दो प्रकारकी वायु निरन्तर चला करती है। एक तो ऊपरको चढ़ती हुई पूर्व उत्तरकी ओर जाती है और दूसरी दक्षिण-पश्चिमकी ओर चलती है। इसोके उल्टे दिशामें दो प्रकारकी वायु नीचेकी ओर चलती है। इन दिशाओंके अतिरिक्त जो अन्य दिशाओंसे वायु चला करती हैं उनका कारण समुद्र तथा भूमिके वाष्पोंका ताप है। इन्हीं कारणोंसे आंधी, बौछा चला करती है।

इसी प्रकार सिन्धु समीर भी सूर्यके तापके कारण प्रवाहित होती है; क्योंकि जब समुद्रके कि-नारेकी पृथ्वीको सूर्य तप्त कर देता है वहांकी वायु गर्म होकर ऊपर जाती हैं, और उसके स्थानपर समुद्रकी ठण्डी वायु स्थलकी ओर चलती है, परन्तु रातको स्थलकी वायु ठण्डी रहती है और समुद्रकी वायु गर्म रहती है जिसके कारण स्थल-से जलकी ओर वायु बहती है। अतः वायुकी गतिका कारण भी हर प्रकारसे सूर्य ही है।

संसारके जीवनकेलिए एक दूसरे पदार्थकी आवश्यकता है जिसका नाम जल है। परन्तु इस जलका हमतक पहुंचानेका कार्य भी सूर्यका ही है। समुद्र, नदी, नाले, वृक्ष, इन सबोंपर सूर्यकी रश्मियां अपना कार्य करके इनका जल भापके रूपमें उड़ाती हैं, और फिर वही भाप जमकर बादल रूपसे बरसता है अथवा बर्फ़ रूपमें पहाड़ोंपर एकत्र होता है। यह बह कर फिर हमारे कुवों और नदी नालोंको भरता है। इस

प्रकार यदि सूर्यकी कृपा न हो तो ताज़ा पानी भी संसारको न मिले।

समुद्रके अन्दर लहरें चलनेका कारण भी सूर्य है क्योंकि जहां जहां गर्मी अधिक होती है उस स्थानपर समुद्रकी धारा बहती है और दूसरे स्थानका ठण्डा पानी उस स्थानपर आ जाया करता है। यही वजह है कि उत्तरी ध्रुवकी ओरसे मध्यरेखातक समुद्रमें धारा चला करती है। दूसरा कारण समुद्रमें गति होनेका यह भी है कि भूमध्य रेखाके पास अधिक भाप बननेके कारण नमक अधिक होता है इसलिए उस स्थानके जलका गुरुत्व अधिक होता है और ध्रुवोंके पासके जलका गुरुत्व कम होता है और इस असमताके कारण भी समुद्रमें गति होती है।

एम्पियर महाशयका कथन है कि पृथ्वीकी चुम्बकीय शक्तिका कारण भी भूमिके तापकी असम अवस्था ही है जिसका घटाव बढ़ाव सूर्यकी रश्मियोंके न्यून वा अधिक होनेपर निर्भर है।

भौतिक परिवर्तनके अलावा जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है रासायनिक क्रियाएं भी सूर्यके प्रभावसे होती हैं। सूर्यका ताप और उसका प्रकाश भूमिपर क्रियाएं करता है। गेहूं दाल तरकारी जिनको हम रोज़ खाते हैं सब प्रकृतिकी रसायनशालाका परिणाम हैं इस रसायन शालामें सूर्यका प्रकाश आवश्यक अंग है। बिना इसकी सहायताके पौधोंमें हरा रंग पैदा हो नहीं सकता और बिना हरे रंगके माण्ड नहीं हो सकता बिना मांड शक्कर नहीं बनती और जहां शक्कर न हो तो भोजनमें पुष्टि कहां? यदि सूर्य न हो तो जीवन कौन दे सकता है? दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि वही जीवनदाता है अथवा सूर्य देव ज्योतिः स्वरूप परमात्मा घटघटमें रूप परिवर्तन करके विराजमान है और स्वयम् ही कारण और कार्य है।

फ़ोटो चित्रण भी सूर्यके प्रकाशके रासायनिक गुणका उदाहरण है। चांदी सोना, प्लेटिनम कोबाल्ट इत्यादिके यौगिकोंमें प्रकाश द्वारा परिवर्तन होना सूर्यके रासायनिक गुणोंका सबूत है। यदि हरिनको अभिद्रवजन गैसके साथ बोतलमें मिलाकर धूपमें रक्खा जाय तो वह फ़ौरन पड़ाकेकी आवाज़ करके मिलते हैं। यह प्रकाशकी शक्तिका प्रत्यक्ष उदाहरण है। केवल यही नहीं प्रत्युत प्रकाशका प्रभाव ऐसा तीक्ष्ण है कि यदि एक बोतलमें हरिन और अभिद्रवजन मिलाकर तेज़ धूपमें आकाशकी ओर फेंके जायें तो बोतलके गिरनेसे पहलेही वह दोनों गैस इतनी ज़ोरसे मिलकर फूलेंगे कि गिरनेसे पहलेही बोतलके टुकड़े टुकड़े हो जायेंगे।

प्रकाशका रासायनिक प्रभाव वृक्षोंमें स्पष्ट देखा जाता है। सामयिक विज्ञानकी एक बहुत बड़ी खोज यह है कि पौधे भी सांस लेते हैं। और यह सांस प्रकाशकी उपस्थितिपर निर्भर है। जो कार्बनद्विओषिद कि पौधे लेते हैं उनमेंसे कार्बन लेकर वह अपने कार्यमें लाते हैं और ओषजनको वायुमें छोड़ देते हैं। इसीसे दिनके समय सूर्यके प्रकाशके कारण वृक्ष वा बाग़के आस पास ओषजन अधिक मिलता है जिसके सेवनसे स्वास्थ्य अच्छा रहता है और शहरोंका वायुमंडल शुद्ध होता रहता है। यदि सूर्य इस प्रकार ओषजनकी वृद्धि दिनको न करता तो मनुष्य, जानवर, आदि जितना ओषजन दिनको ख़र्च करते हैं उसकी राशि इतनी अधिक हो जाती कि वायु मंडल श्वास लेने लायक़ ही न रहता। सच पूछो तो सूर्यका प्रकाश ही संसारके ख़र्चकेलिए प्रतिदिन नया ओषजन भेजा करता है। सूर्यका प्रकाश पौधोंके जीवनकेलिए इतना आवश्यक है कि यदि दिनको पौधा अंधेरेमें रक्खा जाय तो वह पाला पड़ जाता है और उसके श्वासनसे ओषजनके स्थानपर कार्बन द्विओषिद निकलता है जिसके अर्थ यह हैं कि पौधा कार्बनको हज़्म करनेके स्थानपर उल्टा उसको उगल रहा है जैसे कि वह रातको करता है। मि० बूसिंगोलने यह भी सिद्ध किया है कि यदि

कोई बीज अंधेरेमें उगाया जावे तो उसके श्वासन-से सिवा कार्बन-द्विऔषिद् कुछ नहीं निकलता और चूंकि वह बीजांकुर बाहरसे लेकर खा नहीं सकता इसलिए उस बीजका संचित कार्बन जब खर्च हो जाता है तब वह पौधा मर जाता है। मि० सैचका कथन है कि जिन पौधोंको प्रकाश नहीं मिलता उनकी पत्तियोंमें स्वाभाविक अन्त-रीयगति भी नहीं होती अथवा वे सदा सोते रहते हैं। जर्मन मालीशाट तो यहांतक कहते हैं कि पत्ती फलफूल सब कुछ प्रकाश कृत अवयव हैं और सुन्दर फूल उनके मनोरञ्जक रंग तथा मीठी गन्ध सब ही प्रकाशके फल हैं। जहां सूर्य-की किरण नहीं तहां वृक्ष नहीं। इसी कारण ध्रुव प्रदेशमें पहले तो वृक्ष नहीं बढ़ते और आगे चल-कर वृक्ष होते ही नहीं। जहां सूर्यका ताप और प्रकाश अधिक होते हैं वहां वृक्ष अधिक होते हैं जैसे अफ़रीका और भारतवर्षमें। जब यह सिद्ध हो चुका कि सूर्य ही वनस्पतिका जीवनदाता है और पशु तथा मनुष्यका जीवन बिना वनस्पतिके रह ही नहीं सकता तो सूर्य ही मनुष्य तथा पशु जीवनका भी कारण है। केवल इतना ही नहीं बल्कि सूर्यकी किरणोंका सीधा प्रभाव भी मनु-ष्य जीवनपर अत्यन्त प्रभाव डालता है। यही कारण है कि जिन मनुष्योंको अधिक धूप तथा वायुमें रहना पड़ता है वह अधिक बलवान और स्वस्थ होते हैं।

समालोचना

१—सनाढ्योपकारक। सनाढ्य महामण्डल-का पाक्षिक मुख पत्र। डबलक्राउन, अठपेजी, वार्षिक मूल्य २)। पं० ब्रजबिहारी लाल, बी.ए. एल. एल बी. द्वारा सम्पादित। यद्यपि, जैसा कि इस-के नामसे ही ज्ञात होगा, यह पत्र एक सम्प्रदा-यिक पत्र है, तदपि इसमें सर्वसाधारणके उपयोगी अच्छे अच्छे लेख रहा करते हैं। कविताएं और आख्यायिकाएँ भी अच्छी अच्छी निकलती हैं। हमारे सामने इस समय २३ भाग की २३वीं संख्या है। उसमें कुल १४ लेख हैं, जिनमेंसे भारतकी भावी उन्नति, तुलसी के गुण, तैल आदि लेख बड़े मनोरंजक और उपयोगी हैं।

यदि इसमें समाज सुधार, अर्थ शास्त्र, शिक्षा आदि विषयोंपर भी लेख निकला करें तो इस पत्रके ग्राहकोंको अधिक लाभ होगा और ऐसा करना समयानुकूल भी होगा।

२—प्रभात— पूर्वके तारेकी सम्प्रदायका यह मासिक मुख पत्र है। इसका वार्षिक मूल्य १॥) है। इसमें अधिकांश पूर्वके तारेकी सम्प्रदायके विषयपर ही लेख रहा करते हैं। जिन सज्जनोंका सम्बन्ध इस सम्प्रदायसे है, उन्हें इस पत्रके पढ़नेसे बड़ा लाभ होगा, पर हम नहीं कह सकते कि इस पत्रसे हिन्दी सहित्यकी कितनी उन्नति होगी और उससे सर्वसाधारणको कितना लाभ होगा। जनवरीके अङ्कमें 'शिक्षक और प्रेम' शीर्षक लेख बहुत अच्छा है।

३—कृषि सुधार—यह कृषि सम्बन्धी मासिक पत्र है जो मैनपुरीसे प्रकाशित होता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देशमें ऐसे पत्रकी बड़ी आवश्य-कता थी, जिसकी पूर्त्तिकेलिए ही इस पत्रका जन्म हुआ है। हमें आशा है कि इसके संचालक इसे वास्तवमें किसानोंके उपयोगका बनाएंगे और देशको लाभ पहुचाएँगे।

नवम्बरका अङ्क हमारे सामने है, इसमें आठ लेख हैं। लेख सबके सब उपयोगी हैं और सरल सुबोध भाषामें लिखे गये हैं। इनमेंसे एक लेख बर्म्मी भाषापर भी है। ऐसे लेख कृषि सम्बन्धी मासिक पत्रमें न देने चाहियें। आशा है कि कृषि करनेकी आधुनिक वैज्ञानिक रीतिपर भी इसमे लेख रहा करेंगे।

४—वैष्णवधर्म पताका—वैष्णव धर्म सम्बन्धी मासिक पत्र है। इसके सम्पादक और प्रकाशक पं० माधव शर्मा

चन्दा वाड़ी बम्बई निवासी हैं। इसमें ३२ पृष्ठ रहा करते हैं और इसकी वार्षिक न्योछावर २) है।

हम इस पत्रका स्वागत करते हैं। इसका प्रकाशन पौष, १९७३ से आरम्भ हुआ है। पहिले अङ्कमें वैष्णव धर्म सम्बन्धी अच्छे अच्छे लेख निकले हैं। आशा है कि यह पत्र वैष्णव सम्प्रदायके पुनरुत्थानमें सहायक होगा।

५ मुनि—मासिक पत्र, वार्षिक मूल्य २)। सम्पादकः—श्रीयुत विश्वम्भर दास गार्गीय। आर्ट प्रेस, चौक काशीसे प्राप्य।

यह पत्र महावीर मुनि मण्डलीका मुख पत्र है। इसका प्रकाशन श्रावण १९७३, वि० से आरम्भ हुआ। हम इसका स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि हिन्दू साहित्य और हिन्दू जातिकी उन्नतिका यह भी एक साधन होगा।

इसका रूप, रङ्ग, आकार, अच्छा है। लेख भी इसमें उपयोगी निकलते हैं। यदि वैज्ञानिक विषयोंपर, (स्वास्थ्य रक्षा आदि) भी लेख इसमें रहा करें तो अत्युत्तम हो।

गोपाल स्वरूप भार्गव।

प्राप्ति-स्वीकार

नवम्बर १९१६

१. श्री. गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए. प्रयाग (१९१६–१७) १२)
२. पं. रामभद्र ओझा, एम. ए., एल-एल. बी. अलवर (१९१५–१६) ६)
३. श्री. शालगराम भार्गव एम. एस-सी. प्रयाग (१९१६–१७) १२)
४. श्री गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री प्रयाग (१९१६–१७) १२)
५. श्री. मुख्तारसिंह, वकील, मेरठ, ५)
६. श्री. भैरोंप्रसाद तिवारी. म्योर कालेज ३)
७. पं. सत्यनारायण कविरत्न, आगरा (१९१५–१६) ६)
८. पं. श्री. हरनारायण बाथम, एम. ए. कानपूर (१९१६–१७) १२)
९. श्री. सैयद इशहाकहुसेन, (१९१६–१७) २)

दिसम्बर १९१६

१०. श्री. रामजीदास भार्गव. बी. ए. प्रयाग (१९१६–१७) १२)
११. श्री. चन्द्र बली राय एम. ए. डिप्टी कलेक्टर (१९१५–१६) १२)
१२. पं. सुदर्शनाचार्य, बी. ए. इलाहाबाद (१९१६–१७) १२)
१३. श्री. चिरंजीलाल माथुर बी-ए. एल. टी. जोधपुर १०)
१४. श्री. डी. जी. डांडेकर ४)

जनवरी १९१७

१५. श्री. सी. पी. राम स्वामी अइयर. बी. ए. एल एल बी. मद्रास. (१९१५–१६) ६)
१६. श्री. भदेले पृथ्वीनाथ, रईस बेरारी, इटावा (१९१६–१७) १२)
१७. श्री. प्रयागनारायण, चंदवासा. ३)
१८. महामोपाध्याय. डा. गङ्गनाथ झा. एम. ए. इलाहाबाद १२)
१९. श्री. मुख्तारसिंह वकील, मेरठ (१९१५–१६) ५)
२०. श्री. रगनप्रसाद गोयल, अजमेर (१९१५–१६) ७)
२१. श्री. बी. एस. तम्मा, एम. एस-सी. मेरठ (१९१६–१७) ४)
२२. पं. प्रेमवल्लभ जोशी. बी. एस-सी. अजमेर (१९१५–१६) ६)

कुल १८७)

ब्रजराज, बी. एस-सी, एल. एल बी, कोषाध्यक्ष

साहित्य समाचार !

मनोरमा

हिन्दीकी यह एक सचित्र मासिक पत्रिका है। परिडत प्यारेलाल ओ दीक्षित और उनके शिष्य परिडत रामकिशोर शास्त्री इसके सम्पादक हैं। इसकी आख्यायिकायें, विशेष प्रकारसे बड़ी चटकीली और लच्छेदार होती हैं। सब पत्र पत्रिकाओंने इसकी बड़ी प्रशंसा की है; सरस्वती-की समालोचना देखिये—

आकार सरस्वतीके सदृश है। चित्र भी रहते हैं। वार्षिक मूल्य तीन रुपया है। इसके सम्पादक संस्कृतज्ञ हैं। काव्योंके गद्य पद्यमय अनुवाद आप इसमें विशेष करके छापते हैं। अन्यान्य कवितायें और लेख भी इसमें रहते हैं, पत्रिका साहित्य सम्बन्धिनी है, अच्छी निकलती है इत्यादि। ऐसी अच्छी पत्रिका यदि आप देखना चाहते हैं तो आज ही मैनेजर "मनोरमा" मंडी धनौरा यू. पी. को लिख दीजिये।

विज्ञान-परिषद् ग्रन्थ माला ।

पशु-पक्षियोंका श्रृङ्गार रहस्य ... -)

ज़ीनत वहश व तैर (उपरोक्तका उर्दू अनुवाद) ... -)

केला ... ... -)

स्वर्णकारी-सुनारोंके बड़े कामकी है। इसमें इस कलाका विस्तृत वैज्ञानिक वर्णन सुन्दर सरल भाषामें दिया है। सर्वसाधारण इससे सुनारोंके रहस्योंको भली भांति जान सकते हैं।

गुरूदेवके साथ यात्रा-जगद् विख्यात विज्ञानाचार्य्य जगदीश चन्द्र बसुके भूमण्डल भ्रमण और संसारके विश्वविद्यालयोंमें व्याख्यानोंका वर्णन है। भाषा अत्यन्त सरल है।

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग-दूधकी शुद्धता, बनावट, और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।)· २-ईख और खांड-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-)· ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रह साधन रीति ॥।)· ४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न कर वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -)· ५-सनातनधर्म रत्नत्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धी ।)· ६-कागज़ काम-रद्दीका उपयोग-)

इनके सिवाय केला, नारंगी सन्तरा, सुवर्णकारी, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप-रहे हैं। खेत (कृषिविद्या), कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगी सूत्र (ज्योतिष), रसरत्नागर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जारहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलने का पताः—गंगाशंकर पचौली—भरतपुर

इस पत्र सम्बन्धी रुपया, चिट्ठी, लेख, सब कुछ इस पतेसे भेजिए—

पता—मंत्री

विज्ञान-परिषत् प्रयाग।

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषत्- प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबाद में सी. वाइ. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Reg NO. A 708

भाग ५ | वृष, १९७४। May 1917. | संख्या २

Vol. V. | No. 2

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] | [१ प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानके नियम

(१) यह पत्र प्रति संक्रान्तिको प्रकाशित होता है। पहुँचनेमें एक सप्ताहसे अधिक देर हो तो प्रकाशकको तुरन्त सूचना दें। अधिक देर होनेसे दूसरी बार विज्ञान न भेजा जायगा।

(२) वार्षिक मूल्य ३) अग्रिम लिया जायगा। ग्राहक होनेवालोंको पहले वा सातवें अंकसे ग्राहक होनेमें सुविधा होगी।

(३) लेख समस्त वैज्ञानिक विषयोंपर लिये जायँगे और योग्यता तथा स्थानानुसार प्रकाशित होंगे।

(४) लेख कागज़की एक ओर, कमसे कम चार अंगुल हाशिया छोड़कर, स्पष्ट अक्षरोंमें लिखे जायँ। भाषा सरल होनी चाहिए।

(५) लेख सचित्र हों तो यथा संभव चित्र भी साथ ही आने चाहिएं।

(६) लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्त्तनमें सामयिक पत्र और पुस्तकें, मूल्य, तथा सभी तरहके पत्र व्यवहारकेलिए पता—

सम्पादक 'विज्ञान' प्रयाग

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग ५ { वृष, संवत् १९७४ । मई, सन् १९१७ । { संख्या २

वायुमंडलपर विजय

[ले० रामदास गौड़, एम्. ए.]

पहले विमानमें भाफका इंजन लगाने-का प्रयत्न इसीलिए असफल हुआ कि इंजन बहुत भारी था। परन्तु जबसे पिट्रोलका इंजन आविष्कृत हुआ यह कठिनाई दूर हो गयी।

विमानका पिट्रोल-इंजन ठीक हवा गाड़ी-वाले इंजनसा होता है। एक बहुत बारीक छेदसे बड़ी तीव्र और बारीक धारा पिट्रोलकी निकलती है। इस धाराके वेगसे साथ ही साथ हवा भी खिचती जाती है। पिट्रोल एक प्रकारका बहुत ही पतला और तरल मिट्टीका तेल है जो थोड़ी ही गरमी पाकर भाफ बन जाता है और वायुसे मिली हुई दशामें अगर इसमें आग लग जाय तो भयंकर धड़ाका होता है। अतः वह तेलकी बारीक धारा वायुसे मिलकर एक बिस्फोटक वायव्य मिश्रण बनाती हुई विस्फोटन ढोलमें प्रवेश करती है जिसमें पिचकारी जैसी मुठियासी लगी होती है। इस हवाके दबावसे पिचकारी पीछे हटती है, फिर लौटती हुई इस मिश्रणको दबाती है कि हवा और पिट्रोल गैस खूब मिल जाएं। इतनेमें बिजलीकी चिनगारी द्वारा इसी ढोलमें विस्फोटन होता है जिसके धक्केसे पिचकारी फिर ज़ोरसे लौट जाती है। लौटनेमें एक छेद खुल जाता है जिससे धड़ाके-के बादकी हवा निकलती है और इस तरह दबाव घटनेपर पिचकारी लौट आती और फिर विस्फोटक मिश्रणको खींचती और पहलेकी नाईं चारों क्रियाएं होती हैं। इसमें वस्तुतः विस्फोटन-की शक्तिसे ही काम लिया जाता है। पिचकारी-से चरखीका सम्बन्ध होता है, और चरखीसे गाड़ीके पहियोंका, जिससे गाड़ी चलती है। विमानमें चलनेवाले पहियोंकी जगह एक बृहददा-कार दो फलका पंखा बहुत तेज़ घूमता है, जिसे हम प्रेरक चक्र कह आये हैं। विमानकेलिए पिट्रोल-का इंजन ऐसा हलका बनता है कि एक आदमी

Aviation वायु यात्रा]

अपने कंधेपर रखकर उसे ले जा सकता है। हम कह चुके हैं कि प्रेरकचक्र इतने वेगसे घूमता है कि एक मिनिटमें १२०० से अधिक फेरे होते हैं। यदि १००० से कम फेरे हों तो विमान चल ही नहीं सकता। इस वेगको जारी रखनेकेलिए कमसे कम चार और सामान्यतः आठ आठ विस्फोटन बेलनों-का इंजन काममें आता है। ऊपर जो क्रिया वर्णन की गई वह केवल एक ही विस्फोटन बेलन की क्रिया थी।

विमानके डगमगाने और उलट जानेसे बचनेकेलिए फ़रासीसियोंका एक अमोल आ-विष्कार नोम इंजन है। नोम इंजनमें साधारण विमानके पिट्रोलइंजनके ही विस्फोटन बेलन हैं, परन्तु यह सभी पहियाके छड़की नाईं एक धुरेसे लगे हैं, आठ वा आठसे अधिक इस प्रकार लगे होते हैं, और विस्फोटन क्रियाके साथ ही साथ यह बेलनयुंज भी चक्कर खाता जाता है। इसके चक्कर भी सामन्यतः मिनिटमें १२०० से कम नहीं होते। लाभ यह होता है कि प्रेरक चक्र तो चलता ही है, साथ ही पूरा इंजन घूमता हुआ, विमानको उसी तरह एक ही समतल-पर रोके रहता है जिस तरह जैरस्कोप यंत्र या साधारण लट्टू स्थितिको घूमनेकी दशामें स्थिर रखता है। [पाठक जैरस्कोपका चित्र विज्ञान भाग १ संख्या २ पृष्ठ ८६ पर देख लें।] सिद्धान्त यह है कि चाप-केन्द्र (दबावका केन्द्र) यथा-संभव गुरुत्त्वकेन्द्रके पास ही रहे और नोम मोटर-केद्वारा सिद्धान्ताका बहुत उत्तम रीतिसे निर्वाह हो सकता है।

उत्तरण चक्र

विमानके अंगोंमें उत्तरण चक्र कम महत्त्व-का नहीं है इसीपर विमानी और यात्रीकी जीवन रक्षा निर्भर है, साथ ही विमानका जीवन भी अवलम्बित है। जो विमान घन्टेमें डेढ़ सौ मीलकी चालसे मँडलाता हुआ उतरेगा उसका वेग, उसका धक्का भूमिपर उतरते समय कितने ज़ोरका होगा बिना अनुभवके समझमें आना कठिन है। उत्तरण चक्र अर्थात् उतरनेका यंत्र जबतक अच्छा नहीं बना था विमान और विमानी दोनोंकेलिए जोखिमकी बात थी। आज-कल उत्तरण चक्रमें पैर गाड़ीके ही रबरटैर और ट्यूबवाले चार पहिये लगाकर धक्केका प्रभाव कम कर देते हैं।

विमानके सब अंगोंपर विचार करनेके बाद अब सोचिए कि विमानकी यात्रा किस प्रकार होती है। इस यात्राको थोड़ा विस्तारपूर्वक सोच लेना इस अवसरपर अरोचक न होगा।

मान लीजिए कि आप विमानी हैं। आपको विमानकी यात्रा करनी है, सो भी इस युद्धके दिनोंमें इसलिए आपको अच्छी तय्यारी करके चलना होगा।

आपने पहले विशेष प्रकारके कपड़े पहने जो हाथ पाँवमें बड़े चुस्त इसलिए होते हैं कि ऊपर-की ठंढी हवा प्रवेश न करे। याद रहे कि ऊपर ऐसी ठंढी हवा मिलती है जो कपड़ेसे तनिक तनिकसे दरजोंसे तीरकी नाईं घुसती है और कटारकी नाईं लगती है। कपड़े पहन आप विमानागारको चले। यह ऊँचा छतदार घर है जो विमानका घोंसला समझा जा सकता है। विमानको पहियोंके सहारे बाहर लाइये और बैठ जाइये। मशीनके द्वारा पहियोंके सहारे साधारण मोटरगाड़ीकी नाईं आप थोड़ी दूर पृथ्वीपर ही ले चले। बस थोड़ासा चलकर ही यंत्रने भूमि छोड़ दी पर आपको कोई हचका न लगा। मालूम भी न पड़ा कि विमानने धरती छोड़ दी है। अब आप मंडलाते हुए ऊपर चढ़ते जा रहे हैं। आपने देखा होगा कि पहाड़पर चढ़नेको मंडलाते हुए रास्ते बनाये जाते हैं। बस, विमान-पर भी आपको मंडलाते हुए ऊपर चढ़ना है। पड़ी पतवारको आठ अंश ऊपरको रखिये। देखिये, वायुभारमापकसे पता लगेगा कि आप कितने

ऊंचे उठ आये। आपने तापमापक तथा लड़ाई-का सामान भी साथ रख ही लिया है। उचित ही था। परन्तु, अरे! यह क्या हो गया। आपका विमान अकारण रुका क्यों जाता है। मशीन तो ठीक चल रही है? कलपुरज़े दुरुस्त हैं। कितना-ही उसे तेज़ करनेकी कोशिश करते हैं वह रुका ही जाता है। अपने बल भर तेज़ कीजिए। अहा! अब विमान पहलेकी तरह चलने लगा। ठीक है। अब याद आयी। वायुमंडलमें कहीं कहीं

वायु-भ्रमर

भी होता है। जहां वायु नहीं होती वा अत्यन्त पतली होती है वहां विमनको बड़ा जोखिम है। वायु भ्रमरोंकी अभी पूरी खोज नहीं हो पायी है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वायुमंडलमें कहीं कहीं ऐसी जगह भी होती है जिसे हम वायुसे खोखली समझ सकते हैं।

किसी न किसी प्रकारसे इन विघ्नोंसे पार हो-कर आप आगे बढ़े। इतनेमें आपको अपनेसे नीचे एक बीड़ी जैसी उड़ती हुई वस्तु दिखाई दी। दूरबीन लगायी। अरे! यह तो शत्रुका पवनपोत है! अब क्या करना चाहिए। वहींसे आक्रमण करनेमें हमको जोखिम है क्योंकि एक तो हम धरतीसे अति दूर नहीं, दूसरे पवनपोतपर दूरसे ही आक्रमण करनेमें अपने बच रहनेकी भी आशा है। इसीलिए हम लोगोंने अपनी चाल बढ़ायी और ऊपरको उठ चले। जब काफ़ी ऊपर जायँगे वहांसे पवनपोतपर गोला बरसा देंगे। हमारे मंसूबेमें बहुत देर नहीं थी क्योंकि हम बहुत तेज़ी-से, घंटेमें सौ मीलके रेटसे चढ़े जा रहे थे, पर इतनेमें देखते क्या हैं कि पवनपोत भी बड़े वेगसे हमारी ओर ऊपरको चढ़ रहा है। क्यों? क्योंकि आकाशकी लड़ाईमें भी ऊपरके रहनेवालेकी ही जीत है। हमने अपने वेगको और ज़रा बढ़ाया। बातकी बातमें हम १०-१२ हज़ार फ़ीट चढ़ गये। पवनपोत इतना चढ़ नहीं सकता। उसने न मालूम कितने बोरे बालूके गिरा डालेपर उसे सफलता न हुई। इतनेमें आपको मौक़ा मिला। बड़ी फुर्तीसे विमानको ठीक पवनपोतके ऊपर लाकर गोला गिराया। बस आनकी आनमें पवन-पोतसे आकाश मंडल ख़ाली हो गया। और विमान आनन्दसे मंडलाता हुआ नीचे उतरने लगा। बहुत नहीं उतरा था कि एकाएक पिट्रोल घट गया। अब इंजन कैसे चले? प्रेरकयंत्र किस-के बलसे घूमे? परन्तु घबरानेकी बात नहीं है। केवल खड़ी और पड़ी पतवारसे दिशा ठीक करते हुए मँडलानेवाली रीतिसे १५० मील प्रतिघंटेकी तेज़ीसे उतरना आरंभ किया। हां, उतरनेकेलिए मैदानका होना आवश्यक है। ऊंचाईसे मैदानका ठीक ठीक दिखाई देना भी सहज नहीं है। ऊपरसे सब कुछ हरियाली ही दीखती है। घनी दूब और पेड़में वहांसे कुछ अन्तर ही नहीं दीखता। धरती-पर तो मकान, सैन-बोर्ड, खंभे, पुल, पेड़ आदि सब साफ़ दीखते थे, ऊपरसे तो दीखते नहीं, स्थान पहचाना कैसे जाय? विमानियोंकी आसानीके-लिए अब आकाशोन्मुख बहुत बड़े बड़े सैनबोर्ड बनवाएं तब कुछ पता चले। ख़ैर आपने दूरबीन-से पता लगा लिया है। मैदान मिल गया। आप नीचे आये, परन्तु विमान धरतीपर पद धरते ही धरते रेलसे भी तेज़ दौड़ा, पर आपने दो तीन चक्करमें ही उसे ठहरा लिया और उतर पड़े।

यदि आपकी यह पहली यात्रा थी तो आपको स्वर्गारोहणका आनन्द न आया होगा, क्योंकि चक्कर और मतलीने मज़ा किरकिरा कर दिया होगा और शत्रुके पवनपोतसे जानके लाले पड़ रहे थे। विमान होना ही पवनपोतके नाशका कारण हुआ। कुछ भी हो यदि अनुभव पहला है तो आप अवश्य कहेंगे कि हमारा तो आज नया जीवन हुआ है।

जिस विमानपर आज साहसी विमानी उड़ते फिरते हैं उसकी तैय्यारीमें लिलिएंथलने अपने

प्राण खोए, औरोंने अनेक चोटें सहीं, अंग भंग हुए, पर साहसियोंने इस विद्याको ऊंचे दरजेपर पहुँचानेमें कोई कसर न रखी बल्कि केल्विन-सरीखे वैज्ञानिकोंकी कल्पना निर्म्मूल ठहरा दी। इन वैज्ञानिकोंका साहस, परिश्रम, धृति सचमुच सराहने योग्य है।

अङ्कगणितकी शिक्षा।

[ले०-शतीशचन्द्रघोषाल, बी. एस-सी., एल-एल. बी.]

(गताङ्कसे आगे)

भिन्नका भिन्नसे गुणन

यह बात स्पष्ट है कि भिन्नसे भिन्नका गुणा करनेमें हमें दो क्रियाएं गुणा और भाग एक साथही करनी पड़ती हैं। यह बात विद्यार्थियों-को पहले ही बता देना अच्छा है अन्यथा भिन्नको भिन्नसे गुणा करनेकी रीति उन्हें कभी स्पष्ट रूपसे समझमें न आवेगी। बात यह है कि इस प्रकारके प्रश्नोंमें विद्यार्थी गुणन करनेका ही विचार करते हैं परंतु जब शिक्षक अंशको अंशसे और हरको हरसे गुणा करता है तो उन्हें बड़ा संशय होता है। विद्यार्थियोंको भली भांति रीति समझमें आ जाय इस अभिप्रायसे हम उसे तीन श्रेणियोंमें विभक्त करते हैं।

प्रथम श्रेणी $\frac{१}{अ} \times \frac{१}{ब}$

भिन्नमें पूर्णाङ्कका भाग किस प्रकार देना चाहिये यह सबसे पहिले सिखाना होगा। पूर्णाङ्कसे भाग देनेका मतलब यह है कि ऐसे भिन्नसे गुणा करना जिसका अंश १ और हर पूर्णाङ्क हो। पहिले प्रत्यक्ष उदाहरणोंद्वारा यही विषय समझाते हैं। मान लो कि एक मखमलके टुकड़ेको ४ विद्यार्थियोंमें इस भांति बांटना है कि पहिलेको एक तिहाई दूसरेको एक तिहाई, तीसरे और चौथेको बाक़ी एक तिहाईका आधा आधा मिले।

विद्यार्थी काग़ज़का एक चौकोर टुकड़ा लें और उसको बराबर तीन हिस्सोंमें विभक्त करके हर एक हिस्सेको फाड़ लें। अब शिक्षक चार विद्यार्थी सामने खड़े करें, उन तीन हिस्सोंमेंसे दो तो दो विद्यार्थियोंको दे दें। अब बाक़ी बचा एक हिस्सा जो दो विद्यार्थियोंमें बराबर बांटना है। इस बाक़ी एक तिहाईके बराबर दो हिस्से करके देखो कि ये हिस्से पूरे काग़ज़के कौन भाग हैं। मिलाकर देखनेपर मालूम होगा कि प्रत्येक $\frac{१}{६}$वां हिस्सा है। इसलिए मालूम हुआ कि $\frac{१}{३} \div २ = \frac{१}{६}$। पूछो कि दोनों विद्यार्थियोंमेंसे प्रत्येकको क्या मिला?

उ० $\frac{१}{३}$का आधा अथवा $\frac{१}{३}$का $\frac{१}{२}$

ये बातें विद्यार्थियोंसे निकलवाओ।

१/३ का १/२ = १/३ ÷ २ = १/६
२/३ का १/२ = २/३ ÷ २ = २/६
१/२ का १/३ = १/२ ÷ ३ = १/६
१/२ का १/४ = १/२ ÷ ४ = १/८

अब विद्यार्थियोंको बताया जाय कि $\frac{१}{२}$का $\frac{१}{३}$को $\frac{१}{२} \times \frac{१}{३}$ इस भांति भी लिख सकते हैं। ऊपरके उदाहरणोंसे अब स्पष्ट हो गया कि १/२×१/३ = १/६; १/४×१/२ = १/८ इत्यादि।

इस प्रकारके भिन्नोंका गुणन करनेका नियम कई उदाहरणोंद्वारा विद्यार्थियोंसे बनवा लिया जाय।

द्वितीय श्रेणी $\frac{अ}{ब} \times \frac{स}{उ}$

इन नवीन प्रकारके प्रश्नोंके समझानेमें कोई नवीन अड़चन नहीं है। ऊपरके प्रश्नोंद्वारा आसानीसे ये सवाल समझाये जा सकते हैं।

Teaching शिक्षा]

बात केवल यही है कि इन प्रश्नोंमें दुबारा गुणा करना पड़ता है। यथा,

$$\frac{३}{४}\times\frac{५}{७}=\left(\frac{३}{४}\times\frac{१}{७}\right)\times\frac{५}{१}=\frac{३\times५}{२८}=\frac{१५}{२८}$$

लिये हुए उदारहणोंका मतलब अच्छी तरह समझाकर ऐसे उदारहण लिये जायं जिनमें भिन्न राशियां दूसरी पूर्णाङ्क राशियोंमें बदली जा सकें। ऐसे प्रश्नोंके चुननेसे फ़ायदा यह होगा कि विद्यार्थी प्रश्नको दो रीतियोंसे करके दोनों उत्तरोंका मिलानकर सकेंगे।

यथा—यदि एक गज़ रेशमकी क़ीमत $\frac{३}{४}$ रुपया है तो $\frac{२}{३}$ गज़की क़ीमत क्या होगी?

रीति—१ गज़की क़ीमत है $\frac{३}{४}$ रु०

$\therefore \frac{२}{३}$ गज़की क़ीमत है $\frac{३}{४}\times\frac{२}{३}$ रु०

$\frac{३}{४}\times\frac{२}{३}$ का मतलब यह है—पहिले $\frac{३}{४}$ का तिहाई हिस्सा लो और फिर उसे दुगना करो।

$\frac{३}{४}$ का तिहाई $=\frac{३}{४}\times\frac{१}{३}=\frac{३}{४\times३}$ है

इस तिहाईका दूना $=\frac{३}{४\times३}\times२=\frac{३\times२}{४\times३}$

इसलिए $\frac{२}{३}$ गज़की क़ीमत है $=\frac{३\times२}{४\times३}$ रु० $=\frac{१}{२}$ रु०

अब प्रश्नमेंकी भिन्न राशियोंको दूसरी पूर्णाङ्क राशियोंमें बदलनेपर प्रश्न इस भांति हो जाता है—यदि ३ फ़ुट रेशमकी क़ीमत १२ आना है तो २ फ़ुटकी क्या होगी?

(१ गज़ = ३ फ़ुट $\therefore \frac{२}{३}$ गज़ $=३\times\frac{२}{३}=\frac{३\times२}{३}=$ २ फ़ु०)

३ फ़ुटकी क़ीमत १२ आना

$\therefore$ १ फ़ुटकी क़ीमत १२ ÷ ३ = ४ आना.

$\therefore$ २ फ़ुटकी क़ीमत हुई ८ आना.

इस प्रकार दोनों उत्तरोंका मिलान करनेपर विद्यार्थियोंको विदित होगा कि भिन्नगुणा और साधारण गुणाका तत्व बहुत कुछ मिलता जुलता ही है; और इसीलिए भिन्न गुणन शब्द सार्थक है।

तृतीय श्रेणी—नियम बनाना और उसकी व्यवहारिक जांच

इस प्रकारके कई उदाहरण योग्य रीतिसे किये जानेपर विद्यार्थी भिन्न गुणनके नियमको स्वतः ढूंढ़ निकालेंगे। नियमका अभ्यास हो जानेपर कई ऐसे उदाहरण दिये जायं जिनके द्वारा वे इस नियमका साक्षात् व्यवहार देख लें। निम्नलिखित उदाहरणद्वारा विद्यार्थियोंको नियमकी सत्यता प्रत्यक्ष दीख पड़ेगी।

काले तख़्तेपर एक ऐसा आयत बनाओ जिसकी लम्बाई ७ इंच और चौड़ाई ४ इंच हो। विद्यार्थी वर्ग काग़ज़ोंपर स्वतः ऐसा आयत खींचें। इस आयतका वर्गफल भीतरके छोटे छोटे वर्ग गिनकर निकालें। अब लम्बाईमेंसे ५ इंच और चौड़ाईमेंसे ३ इंचकी रेखाएं काटकर समानान्तर रेखाएं खींच नवीन आयत बनावें।

चित्र
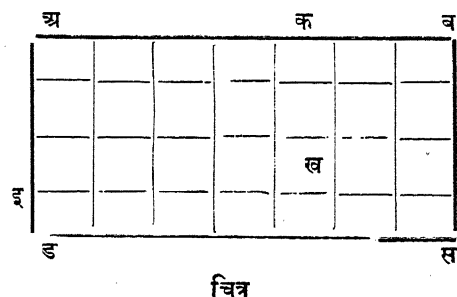
इस नवीन आयतका क्षेत्रफल पहिले वर्गोंको गिनवाकर निकलवाओ। चित्रमें अबसड बड़ा आयत है उसका क्षेत्रफल २८ वर्ग इंच है छोटा आयत अइकख अब और अड भुजाओंमेंसे खंड काटकर बनाया गया है इसका क्षेत्रफल १५ वर्ग इंच है दूसरा क्षेत्रफल पहिलेका $\frac{१५}{२८}$ वां भाग है। गणितकी रीतिसे निम्न प्रकार समझाओ,

अक $=\frac{५}{७}$ अब, अइ $=\frac{३}{४}$ अड

$\therefore$ अख वर्ग क्षेत्र = अक × अइ

$$= \frac{५}{७} \text{ अब} \times \frac{३}{४} \text{ अड}$$

$$= \left(\frac{५}{७} \times \frac{३}{४}\right) \text{ अब} \times \text{ अड}$$

$$= \frac{१५}{२८} \times \text{ अस क्षेत्रफल}$$

लम्बाईको नापकर भी विद्यार्थी भिन्न गुणाके नियमकी सत्यताकी जांच कर सकते हैं। जांचना है कि $\frac{५}{६} \times \frac{१}{२} = \frac{५}{१२}$ होते हैं या नहीं। विद्यार्थी अलग अलग अपनी अपनी स्लेटोंपर एक लम्बी लकीर खींचें और इस लकीरके तुल्य ६ खंड करके इनमें से पांच खंड ले लें। अब इस $\frac{५}{६}$ का आधा लेना है। इसके दो तुल्य खंड करो। पूरी लकीरके तुल्य बारह खंड करके देखो कि $\frac{५}{६}$ का आधा पूरी लकीरका कौनसा भाग है। इस प्रकार क्रिया करनेपर विद्यार्थियोंको मालूम हो जायगा कि $\frac{५}{६}$ का आधा कुल लकीर का $\frac{५}{१२}$ वां भाग है। अथवा $\frac{५}{६} \times \frac{१}{२} = \frac{५}{१२}$

भिन्न भाग

भिन्न भागके सिखाते समय यदि हम निम्न लिखित अनुक्रमसे चलें तो विद्यार्थियोंको यह विषय आसानीसे समझमें आ जायगा।

(१) भिन्नमें पूर्णाङ्कका भाग देना
(२) पूर्णाङ्कमें भिन्नका भाग देना
(३) ऐसे भिन्नोंका भाग जिनमें भाजक भिन्न भाज्य भिन्नसे छोटा हो।
(४) ऐसे भिन्नोंका भाग जिनमें भाजक भिन्न भाज्य भिन्नसे बड़ा हो।

यह स्मरण रखना चाहिये कि प्रत्येक विषय विभागको समझनेके पहले ऐसे उदाहरण दिये जायँ जिनमें वस्तुओंका उपयोग हो और जिनको बालक स्वयं उपयोग कर सकें। इनके बाद ऐसे उदाहरण लिये जायँ जिनमें सिर्फ़ अङ्क मात्र ही हों।

भिन्नमें पूर्णाङ्कका भाग देना

भिन्नका भिन्नसे गुणा किस प्रकार करना चाहिये, यह विषय समझाते समय हमने भिन्नमें पूर्णाङ्कका भाग किस प्रकार दिया जाता है इसका विवरण दिया है। इसीलिए इस स्थानपर उसका फिर उल्लेख करना निष्प्रयोजन है।

पूर्णाङ्कमें भिन्नका भाग देना

इस विषयको सिखानेकेलिए पहले निम्न प्रकारके उदाहरण लिये जायं।

(१) ६ इंच लम्बी काग़ज़की पट्टीमें पौन इंच लम्बे कै टुकड़े निकलेंगे ?

(२) यदि एक सेर घीकी क़ीमत $\frac{३}{२}$ रु० हैं तो १२) रु० में कितना घी आवेगा ?

(३) अगर एक गज़ मख़मलके $\frac{३}{५}$ हिस्सेकी क़ीमत ३) हो तो गज़भरकी क्या क़ीमत होगी ?

रीति—उदाहरण (१) विद्यार्थी ६ इंच लम्बी काग़ज़की पट्टी लेकर उसमें पौन इंच लम्बे टुकड़े नापकर निकालें और सबको गिनें। कुल टुकड़े कितने हैं ? उ०—८। अब $६ \div \frac{३}{४}$ इस प्रश्नको किस प्रकार करना चाहिये यह बताया जावे। पूछो कि ६ मेंसे ३ कै बार लिये जा सकते हैं ? उ०—२ बार। बताओ कि भिन्नमें इस प्रकार कहना ठीक होगा कि $\frac{६}{३}$ बार।

$\frac{३}{४}$ तीनका कौन सा हिस्सा है ? उ०—चौथाई। तो तीनमें $\frac{३}{४}$ कै बार है ? उ०—चार बार। इसलिए जब ६ मेंसे ३ ठीक $\frac{६}{३}$ बार लिये जा सकते हैं तो ६ मेंसे $\frac{३}{४}$ ठीक $\frac{६}{३} \times ४$ बार लिये जा सकते हैं। इसलिए $६ \div \frac{३}{४} = \frac{६ \times ४}{३} = ८$ बार।

उदाहरण (२) समझाओ कि १२) रु० में उतने ही सेर घी आवेगा जितनी बार १२ में $\frac{३}{२}$ आ सकते हैं। अर्थात् घीका भार = १२ ÷ $\frac{३}{२}$ रु०। अब समझाओ कि १२ में ३, $\frac{१२}{३}$ बार जा सकते हैं।

पूछो कि $\frac{३}{२}$ तीनका कौनसा हिस्सा है ? उत्तर–आधा। इसलिए $\frac{३}{२}$ बारहमें $\frac{१२}{३}$ × २ बार जायँगे, अर्थात् १२ ÷ $\frac{३}{२}$ = $\frac{१२ \times २}{३}$।

इस प्रकार कई उदाहरण समझानेपर विद्यार्थियोंको इस प्रकारके भाग करनेका नियम मालूम हो जायगा।

एक भिन्नमें दूसरे छोटे भिन्नका भाग

पहले इस प्रकार सवाल लिये जायं:—

(१) $\frac{१५}{४}$ इंचमेंसे $\frac{३}{४}$ इंच कैबार लिये जा सकते हैं ?

(२) $\frac{९}{२}$ इंचमेंसे $\frac{३}{४}$ इंच कै बार लिये जा सकते हैं ?

समझाओ कि पहिले प्रश्नका मतलब यही है कि १५ पाव इंचोंमेंसे ३ पाव इंच कै बार लिये जा सकते हैं। अब इस प्रश्नका उत्तर निकालनेमें कोई कठिनाई नहीं है। दूसरा प्रश्न इस भाँति समझाया जाय—प्रश्न यह है कि ९ आध इंचमेंसे ३ पाव इंच कै बार लिये जा सकते हैं। देखो यदि ९ आध इंचके बदले हम पाव इंच रख सकें तो प्रश्न कितना सरल हो जायगा।

कै पाव इंच = ९ आध इंच ? उ० - १८

अर्थात् $\frac{९}{२} = \frac{१८}{४}$

इसलिए $\frac{९}{२} \div \frac{३}{४} = \frac{१८}{४} \div \frac{३}{४} = ६$

एक भिन्नका दूसरे बड़े भिन्नसे भाग

निम्नलिखित उदाहरणद्वारा हम इस प्रकारके प्रश्नोंको समझानेकी रीति बताते हैं।

उदाहरण–यदि $\frac{४}{५}$ रु० में एक गज़ साटन आती है तो $\frac{२}{३}$ रु० में कितनी आवेगी ? समझाओ कि साटन उतनी ही आवेगी जितनी बार $\frac{२}{३}$ रु० में $\frac{४}{५}$ रु० आ सकते हैं।

अथवा साटनकी लम्बाई = $\frac{२}{३} \div \frac{४}{५}$ जैसा कि ऊपर बता आये हैं यदि दोनों भिन्नोंके हर समान हों तो भाग आसानीसे दिया जा सकता है; परंतु तृतीयांशको हम पंचमांशमें नहीं बदल सकते और न पंचमांशको तृतीयांश ही बना सकते हैं। परंतु दोनोंको हम पन्द्रहवें अंशमें सरलतासे बदल सकते हैं अच्छा तो बदलो

$\frac{२}{३}$ = कै पन्द्रहवें अंश ? उ० $\frac{२ \times ५}{३ \times ५} = \frac{१०}{१५}$

$\frac{४}{५}$ = कै पन्द्रहवें अंश ? उ० $\frac{४ \times ३}{५ \times ३} = \frac{१२}{१५}$

इसलिए $\frac{२}{३} \div \frac{४}{५} = \frac{२ \times ५}{३ \times ५} \div \frac{४ \times ३}{५ \times ३} = \frac{२ \times ५}{३ \times ४} = \frac{५}{६}$

अर्थात् $\frac{५}{६}$ गज़।

विद्यार्थी $\frac{२}{३}$ रु. और $\frac{४}{५}$ रु. के आना पाई तथा १ गज़के फुट इंच बनाकर इस प्रश्नको ऐकिक नियम द्वारा निकालकर उत्तर मिलावें और देखें कि ऊपरका उत्तर सही है या नहीं। इस प्रकार के कई उदाहरण समझाये जानेपर विद्यार्थी भिन्न भागके नियमको स्वतः ढूंढ़ निकालेंगे।

ऊपरके प्रश्नका कौनसा मतलब लिया जाय

पाठकोंको मालूम होगा कि उपर्युक्त उदाहरण जैसे प्रश्नोंका मतलब स्पष्ट रीतिसे समझ लेना आसान नहीं है। यथार्थमें ऊपरके उदाहरणका मतलब यह नहीं है कि $\frac{२}{३}$ मेंसे $\frac{४}{५}$ कै बार लिया जा सकता है,

न उसका मतलब यह है कि $\frac{२}{३}$ गज़का $\frac{४}{५}$ वां भाग क्या होगा जैसा कि हम $\frac{२}{३}$÷३ से समझते हैं। यथार्थमें $\frac{२}{३}$÷$\frac{४}{५}$ का मतलब यह है कि ऐसा भिन्न ढूंढ़ निकालो जिसका $\frac{४}{५}$ वां भाग $\frac{२}{३}$ के तुल्य हो अथवा दूसरा मतलब है कि $\frac{२}{३}$, $\frac{४}{५}$ का कौनसा भिन्न है।

विद्यार्थियोंकी समझमें यह मतलब आसानीसे आ जाय इसलिए नीचे लिखी रीतिका प्रयोग करना चाहिये।

प्र० (१) ४ का कौनसा भिन्न अथवा भाग २ है?

उ०—२÷४=$\frac{२}{४}$=$\frac{१}{२}$ अर्थात् २, ४ का $\frac{१}{२}$ भाग है।

प्र० (२) ६ का कौनसा भिन्न ३ है? उ० $\frac{३}{६}$ =$\frac{१}{३}$ अर्थात् ३, ६ का $\frac{१}{३}$ भाग है।

प्र० (३) $\frac{१}{२}$ का कौनसा भाग $\frac{१}{४}$ है?

$$उ०—\frac{१}{४}÷\frac{१}{२}=\frac{\frac{१}{४}}{\frac{१}{२}}=\frac{२}{४}=\frac{१}{२}$$

अर्थात् $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{२}$ का $\frac{१}{२}$ वां भाग है।

प्र० (४) $\frac{४}{५}$ का कौनसा भिन्न $\frac{२}{३}$ है?

$$उ०—\frac{२\times५}{३\times४} \text{ वां हिस्सा } \left(\frac{४}{५} \text{ का}\right)$$

अथवा $\frac{४}{५}$ का $\frac{१०}{१२}$ वां भाग

उसका मतलब यही है कि यदि दी हुई लम्बाईके $\frac{४}{५}$ के हम तुल्य १२ खंड करें और इनमें १० खंड लेलें तो हम पूरी रेखाका $\frac{२}{३}$ भाग ले रहे हैं। काले तख़्तेपर लकीर खींचकर इस प्रकार उसके खंड करके भिन्न भागका मतलब साक्षात दिखा देनेसे विद्यार्थियोंको कुल रीति स्पष्ट हो जायगी।

भिन्नके गुणा और भागका मतलब विद्यार्थियोंकी समझमें पहिली बारमें आ जाना संभव नहीं है। इसलिए शिक्षक कई बातें बार बार समझावें और समय समयपर कई कठिन बातें भविष्यकेलिए छोड़ना होंगी। ज्यों ज्यों विद्यार्थियोंका भिन्न सम्बन्धी ज्ञान बढ़ता जायगा इन रीतियोंको अधिक अधिक समझ सकेंगे।

बीजपरम्पराका नियम

[ले०—कर्म्मनारायण, एम. एस-सी.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

पादरी मेंडलके इन प्रयोगोंसे दो बातें बिलकुल स्पष्ट हो जाती हैं। पहली यह कि विरसेका विचार करनेमें हमें जन्तुओंके हर एक लक्षणको भिन्न भिन्न देखना चाहिये और परीक्षा करनी चाहिये कि यह लक्षण दो तीन पीढ़ियोंतक स्थिर रहता है या नहीं। कुक्कुटोंके दृष्टान्तमें कुक्कुटोंका नीला लक्षण बिलकुल स्थिर लक्षण नहीं है क्योंकि दूसरी पीढ़ीमें नीले कुक्कुटमेंसे काले और श्वेत कुक्कुट निकल आते हैं। इसी प्रकार मटरोंकी पहली पीढ़ीमें होता है। दूसरी बात यह है कि यदि दो उपजातियोंका आपसमें संयोग किया जाय या दो विपरीत लक्षणोंवाले समजाति जन्तुओंका जोड़ा मिलाया जाय तो उनकी संतान या तो किसी और ही लक्षण वाली होगी या माता और पिताके लक्षणोंमें मध्यममान होगी, या उसमें माता और पितामेंसे एकके लक्षण प्रधान होंगे। परन्तु इस संतानकी जो आगे संतान होगी उसमें-

Heridity बीजपरम्परा]

से कईके लक्षण दादा जैसे होंगे और कईके दादी जैसे। मैंडलिज़्मसे यह नतीजा निकलता है कि व्यक्तियोंके लक्षण चाहे वह अच्छे हों या बुरे दूसरी जातियोंके मिलापसे दूर होने बहुत कठिन हैं—यदि एक पीढ़ीमें गौण रहें तो दूसरी पीढ़ीमें झट प्रकाशित हो जाते हैं।

मैंडलिज़्मके संक्षिप्त वृत्तान्तके बाद प्राप्त लक्षणोंका वृत्तान्त दिया जायगा। बीजपरम्पराके विचारसे जन्तुओंके लक्षण दो प्रकारके हो सकते हैं। (१) सहज लक्षण (२) प्राप्त लक्षण। कई बच्चोंकी आंखकी पुतली काली नहीं होती परन्तु बिल्लीकी न्याईं भूरी होती हैं। यह सहज लक्षण है। कई मनुष्योंके बाल बचपनसे कक्के होते हैं और कईयोंके काले यह भी सहज लक्षण हैं। यह लक्षण माता पितामें विद्यमान हैं और बच्चेकी उत्पत्तिके साथ ही उत्पन्न हो जाते हैं इसलिए सहज कहलाते हैं। इसके विपरीत प्राप्त लक्षण उनको कहते हैं जो क़िसी व्यक्तिके उत्पत्ति समयपर विद्यमान न हों परन्तु उसके जीवन समयमें प्रतिवेश तथा वृत्तिके बदलनेके कारण शरीरकी बनावटमें तबदीलीके तौरपर उत्पन्न हो जायं। प्राप्त लक्षणोंके निम्नलिखित उदाहरण हैं:—

(१) बैलकी गर्दनका चमड़ा उत्पत्तिके समय बिलकुल नरम होता है परन्तु जब बैल बड़ा होता और बैलगाड़ीको खैंचता है तो गर्दनपर प्रतिदिन दबाव पड़ता रहता है नतीजा यह होता है कि गर्दनका चमड़ा मोटा और सख़्त हो जाता है। अब गर्दनके मोटे और सख़्त चमड़ेके लक्षणको प्राप्त लक्षण कहते हैं और यह लक्षण हर एक बैलके जीवन समयमें दबाव और रगड़के कारण उत्पन्न होता है।

(२) जो मनुष्य बाहुसे बहुत काम करता है (जैसे लुहार हथौड़ा चलाता है) उसके भुजाओंके पट्ठे बहुत मोटे हो जाते हैं; यह भी प्राप्त लक्षण है।

(३) किसी जन्तु या मनुष्यका कोई अङ्ग रेलगाड़ी या किसी और तरह कट जाय तो कटे हुए अंगका लक्षण प्राप्त लक्षण होगा।

(४) रोग भी बहुधा प्राप्त लक्षण ही होते हैं। बुरी वायु, बुरे भोजनके सेवनसे जो रोग हों, वह भी प्राप्त ही कहने चाहिएँ।

सहज और प्राप्त लक्षणोंमें भेदको जानकर अब हमें यह जानना चाहिये कि यह लक्षण संतानमें कैसे जा सकते हैं।

अब यह सिद्ध हो चुका है कि सहज लक्षण तो संतानमें अवश्य चले जाते हैं परन्तु प्राप्त लक्षण नहीं जाते। आप जानते हैं कि यदि एक मनुष्यकी भुजा कट जाय तो उसके बच्चे सर्वाङ्गपूर्ण उत्पन्न होते हैं, उनकी भुजा कटी हुई नहीं होती। यहूदी और मुसलमान लोगोंमें एक रीति है जिसे ख़तना या सुन्नत कहते हैं, सैकड़ों वर्षोंसे इनमें यह रीति चली आई है और हर एक पुरुषको यह ख़तना करना पड़ता है परन्तु सैंकड़ों वर्षोंके करनेसे भी कोई बच्चा ऐसा उत्पन्न नहीं होता जिसका ख़तना जन्मसे ही हुआ हो।

यदि हम अपने शरीरकी बनावटपर ध्यान दें तो हम देखते हैं कि हमारा शरीर दो प्रकारकी सेलोंका बना हुआ है एक तो वह भाग जिसे हम शारीरिक भाग कहते हैं। यह हिस्सा बिना संतानके मर जाता है। दूसरा वह भाग जिसके द्वारा हम संतानोत्पत्ति करते हैं अर्थात् नारीका अण्डाशय और पुरुषमें वीर्य्यकोष। यह दूसरा भाग इस अर्थमें अमर है कि मरनेके पहले अपना बीज कई बच्चोंमें बांट देता है। इस भांति आपको विदित होगा कि बच्चा अपना विरसा अपने माता पिताके शरीरसे नहीं लेता परन्तु केवल उसी भागसे लेता है जिससे संतानोत्पत्ति होती है। इस प्रकार शरीर बीजकी एक शाखा ही है। जहां विरसेका विचार हो वहां शारीरिक भागसे कोई मतलब नहीं। बीजपरम्परा केवल बीजवाले भागका है। इस विचार-

से यह कहना कि प्राप्त लक्षण संतानमें चले जाते हैं ऐसा ही होगा जैसा यदि कोई कहे कि व्यायामसे मैं अपने पट्ठे मोटे कर लेता हूं और मेरे भाईके बच्चोंके पट्ठे मोटे हो जायंगे।

सर फ्रैंसिस गाल्टनने यमज (जोड़ियें) बालकोंपर बड़ी प्रसिद्ध परीक्षाएं की हैं। कदाचित् आप जानते हैं कि यमज दो प्रकारके होते हैं एक तो वह जो प्रायः भिन्न लिंगोंके होते हैं एक लड़का और एक लड़की। यह तो जब बड़े होते हैं तो साधारण भाई बहिनोंकी तरह हो जाते हैं इनमें भेद भी बहुत आ जाते हैं और सदृशता विशेष बिलकुल नहीं रहती। वास्तवमें यह जोड़े तब उत्पन्न होते हैं जब दो अण्डोंके साथ दो वीर्य्याणुओंका संयोग होता है। एक और प्रकारके यमज होते हैं जिनमें विशेष बात यह होती है कि वह दोनों एक ही अण्डसे उत्पन्न होते हैं। यह ऐसा है जैसे एक व्यक्तिको दो हिस्से कर दिये गये हों। इनको (identical twins) समान-लिंग यमज कहते हैं। यह प्रायः एक ही लिंगके उत्पन्न होते हैं। गाल्टनने ऐसे ८० यमजोंका वृत्तान्त इकट्ठा किया जिससे उसे यह पता लगा कि इन ८० यमजोंमें लगभग सभी बड़ी आयुतक स्वभावमें, रंगरूपमें एकसे रहे। कई बहुत भिन्न भिन्न स्थानोंपर और भिन्न भिन्न प्रभावोंमें रहे परन्तु तो भी उनकी सदृशतामें ज़रा भी त्रुटि नहीं हुई। स्वाभाविक रुचियें दोनोंकी एक जैसी थीं और ८० मेंसे किसी उदाहरणमें भी ऐसा नहीं हुआ कि भिन्न भिन्न बाह्य प्रभावोंके कारण उनमें भेद हुआ हो। विपरीत इसके साधारण भिन्न लिंग यमजोंमें चाहे उनको कितने ही समान स्थान और प्रभावोंमें रखा जाय कभी भी इतनी अधिक सदृशता नहीं होती।

इन बातोंसे आवश्यक सार यह निकलता है कि मनुष्यके सहज स्वभाव (अर्थात् जो उत्पन्न होते ही साथ हों) बहुत प्रधान होते हैं और शिक्षा तथा बाह्य पदार्थोंका और पालन पोषणका प्रभाव बहुत कम होता है और यदि होता है तो संतान-तक नहीं पहुंचता। आप पीढ़ी दर पीढ़ी लोगोंको शिक्षा देते रहें परन्तु देखेंगे हर एक बालकको ठीक वहींसे आरम्भ करना पड़ता है जहांसे उसके माता पिताने आरम्भ किया था। अंग्रेज़ीमें कहावत है कि Some are born great, some achieve greatness, some have greatness thrust upon them कुछ महानता सहित उत्पन्न होते हैं, कुछ अपनेको महान बना लेते हैं और कुछके सर महानता मढ़ी जाती है। इन तीनों समुदायोंमेंसे पहली प्रकारके ही लोग ऐसे हैं जिनसे हमें मनुष्य जातिके भविष्यत महत्त्वकेलिए आशा करनी चाहिये।

यदि यह बात ठीक है कि प्राप्त लक्षणोंका प्रभाव संतानपर नहीं होता तो हमें अपनी
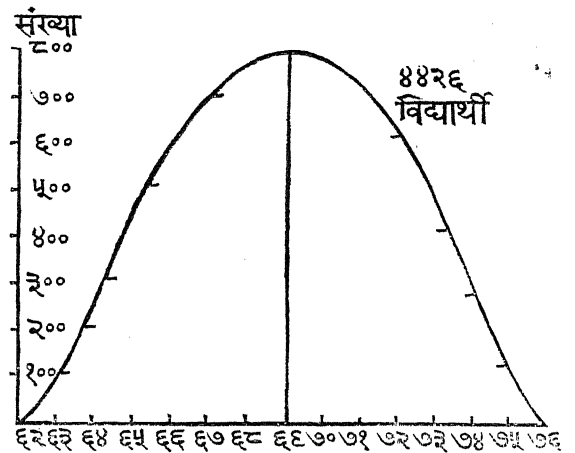
चित्र नं० १—इस चित्रमें विद्यार्थियोंकी औसत लम्बाई दिखलाई गयी है। देखिये विज्ञान भाग ४ संख्या ५ बीज-परम्परा नामक लेख।

सामाजिक प्रणालीमें बहुत अदल बदल करना चाहिये। शिक्षा और स्वास्थ्यवृद्धि आवश्यक बातें हैं परन्तु इनका प्रभाव बहुत परिमित है—असली बात यह है कि कौन अच्छे विद्वान कुलका है और कौन छोटे कुलका। यदि हमारी सामाजिक

संस्थासे निकृष्ट मनुष्योंमें अधिक वृद्धि होती है और श्रेष्ठ और विद्वान कुलोंमें वृद्धि कम है तो हमें अपना घर अवश्य ही संभालना चाहिये। दुर्भाग्यसे यह ठीक बात है कि हमारे समाजमें अधिक संतानोत्पत्ति निकृष्ट पुरुषोंमें होती है। हम लोग हज़ारों और लाखों रुपये दान करते हैं हमें देखना चाहिये कि यह दान अच्छे कामोंमें लगे और श्रेष्ठ और विद्वान पुरुषोंकी वृद्धि हो। क्या लाभ है ऐसे दानका जिससे चोर और डाकू, बीमार और रोगियोंकी संतान ही बढ़े।

पेशी और जीवाद्यम

[ले० केशव अनन्त पटवर्धन, एम. एस-सी.]

पेशी

ताज़ी ताड़ीका एक बूंद सूक्ष्म-दर्शक यंत्रसे देखा जाय तो मालूम होता है कि उसमें बहुतसे गोल गोल पदार्थ हैं। हर एक गोल चीज़ एक पेशी है, जिसको ईस्ट कहते हैं वह वनस्पति है। हर एक गोलेमें उसका बाहरी परदा, केंद्र, और उसके चारों तरफ़के पेशी द्रव्य साफ़ दिखाई देते हैं। उस गोलेमें दो प्रकारकी चीजें नज़र आती हैं, ज़िन्दा और मुर्दा। ज़िन्दा चीज़ोंमें जीवाद्यम और केंद्र हैं। गोलेका बाहरी परदा सिर्फ़ मुर्दा है। ज़मीनमेंकी धातु जिस दशामें हैं उसी दशामें अर्थात् ठोस अवस्थामें पेशीमें नहीं आ सकती हैं। किन्तु यदि वही चीज़ें पानीमें घुल जायं तो वह उस पानीके साथ पेशीमें सोख जाती हैं। जैसे जैसे ज़्यादा पानी पेशीमें इस शोषण क्रियासे जमा होता जाता है वैसे वैसे पेशी फूलती जाती है। पहले कुछ देरतक वह पानी जीवनरसमें मिलता है और वह जीवनरस इस कारणसे पतला होने लगता है। यह अवस्था अधिक समयतक नहीं रहने पाती। ज़्यादा होनेके कारण वह पानी पेशीमें ख़ास जगह जमा होता जाता है। इस ख़ास जगहको जड़स्थान या शून्य स्थान कहते हैं। इस जडस्थानमें अनांगारिक द्रव्य मिला हुआ पानी रहता है, और जीवाद्यम बाहरकी तरफ़ रहता है इस पानीको जो कि जड़-

चित्र १—पेशी
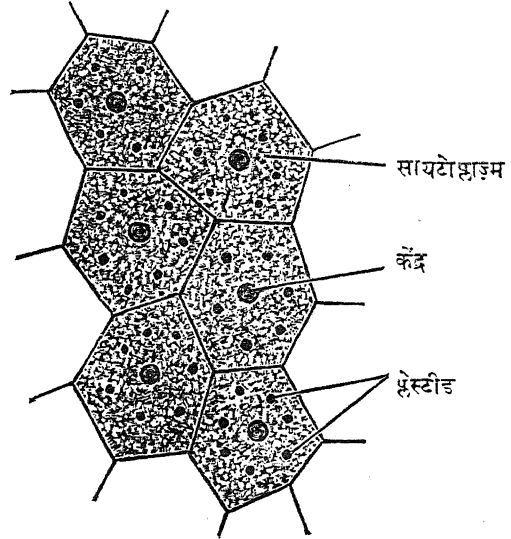
स्थानमें रहता है पेशीरस कहते हैं। इस पेशीरसमें बहुतसे अनांगारिक द्रव्य, जैसे—नत्रित, गन्धित, फ़ासफेट्स, बहुतसी तरहकी शकरें—जैसे अंगूर गन्ने, और बहुतसी और तरहकी चीज़ें भी होती हैं। वह (पेशीरस) एक पेशीसे दूसरी पेशीमें शोषण क्रियासे (आसमासिस) जा सकता है। यह पेशीरस जीवाद्यममें और पेशीभित्तिकामें घुस सकता है और इसी कारण जीवाद्यम अपने आवश्यक खाद्य पदार्थोंको, जो पेशीरसमें घुले होते हैं, उससे ले लेता है।

जीवाद्यम

पेशीके अन्दरकी वस्तुओंमें जीवाद्यम (प्रोटोप्लाज़्म) असल चीज़ है और इसीके कारण पेशीके अन्दरके चलनादि धर्म जारी रहते हैं। जीवाद्यमके ही कारण अनांगारिक द्रव्योंको अन्दर लेना, और उससे आंगारिक चीज़ें बनाना

Botany वनस्पतिशास्त्र]

श्वास लेना, तथा और बहुतसे काम होते हैं। जीवद्यममें इतनी चीज़ें हैं—कर्बन, ओषजन, नत्रजन, अभिद्रवजन, फ़ासफ़ोरस, और गन्धक। यह चीज़ें किस प्रमाणसे मिलकर जीवाद्यमको बनाती हैं वह अभी ठीक ठीक नहीं बताया जा सकता, क्योंकि विश्लेषण करते समय जीवाद्यम मरा हुआ होता है और यह बहुत सम्भव है कि ज़िन्दा जीवाद्यममें मरे हुए जीवाद्यमसे कुछ न कुछ अधिक चीज़ें ज़रूर होंगी और इसी कारण ऊपर दी हुई चीज़ें मरे हुए जीवाद्यमके घटक द्रव्य हैं न कि ज़िन्दा जीवाद्यमके।

केन्द्र (nucleus)

केन्द्र बहुधा वर्त्तुक अथवा अण्डेकी तरह होता है परन्तु कभी कभी थोड़ा चपटा और कम ज़्याद: लम्बा भी होता है। वह केन्द्र स्वयंभु अर्थात् केवल जीवाद्यमके कणोंके जमावसे नहीं बनता है किंतु हमेशा एक पहले केन्द्रका टुकड़ा होता है। केन्द्रका विभाग सरल रीतिसे हो सकता है या वक्र रीतिसे। पहली रीतिके (सरल) अनुसार केन्द्रके केवल दो
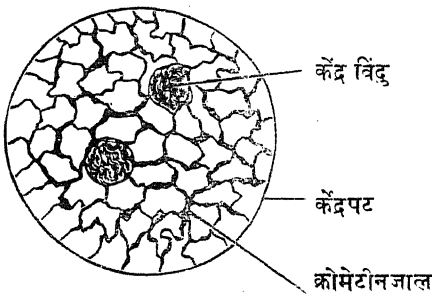
चित्र २—केंद्र

टुकड़े होते हैं और उसके विभागके साथ पेशीका विभाग नहीं होता। इस प्रकारके विभागको फ्रेगमेंटेशन कहते हैं। दूसरे प्रकारके विभागको मायटोसिस या केरीओकायनेसिस कहते हैं। केन्द्रके इस प्रकार विभागके बाद पेशीका भी विभाग होता है। केन्द्रके बीचमें एक केन्द्र विन्दु होता है। केन्द्रके चारों ओर एक केन्द्रका परदा होता है जो कि ताद्यसे (सायटोप्लाज़्म) बना हुआ होता है। केन्द्र एक पतलीसी चीज़से भरा होता है और उसमें एक जालेकी तरहसे क्रोमेटीनजाल फैला होता है। इसी जालेके रेशाओंके बीचमें कहीं कहीं केन्द्र-विन्दु भी होते हैं। केन्द्रबिन्दु और क्रोमेटीन यह दोनों ऐसी चीज़ें हैं जिनमें रङ्ग बहुत जल्दी चढ़ता है। बाज़ बाज़ पेशियोंमें कभी २ एक और कभी २ दो गोल चीज़ें केन्द्रके पास नज़र आती हैं और इनको सेंट्रोस्फीयर कहते हैं। जानवरोंकी पेशियोंमें यह बहुत कामके होते हैं परन्तु पौधोंकी पेशियोंमें यह अधिक कामके नहीं होते।

पेशीके अन्दरकी चीज़ोंमें परिवर्तन

हमने ऊपर दिखलाया है कि एक छोटी पेशी जीवाद्यम और केन्द्र वगैरः से भरी हुई होती है। पेशी जैसे बढ़ती जाती है उसमेंका जीवाद्यम इस तेज़ीसे नहीं बढ़ सकता कि बढ़ी हुई पेशीको पूरी तरह भर सके। इसका नतीजा यह होता है कि छोटी छोटी जगहें (केविटोज़) जीवाद्यमके अन्दर बनना शुरू होती हैं। इन जगहोंको जड़स्थान या शून्यस्थान कहते हैं। यह स्थान एक पतले रससे भरे होते हैं और इसको पेशोरस कहते हैं। यह छोटे छोटे जड़स्थान धीरे धीरे बढ़ते जाते हैं और आख़िरमें मिलकर एक बड़ा स्थान बनाते हैं। ऐसी हालतमें जीवाद्यम पेशीभित्तिकाके पास बाहरकी ओर हो जाता है और यह जीवाद्यमका बाहरी हिस्सा केन्द्रसे जीवाद्यमकी धारियोंसे मिला होता है। पेशीकी ऐसी अवस्थामें केन्द्र या तो पेशीके बीचोंबीचमें रहता है, या किनारेके जीवाद्यममें रहता है। यह दूसरी अवस्था बहुधा पूरी तरहसे बढ़ी हुई पेशीयोंमें पाई जाती है।

पेशीभित्तिका

छोटी छोटी पेशियोंकी और बहुतसी बड़ी पेशियोंकी पेशीभित्तिका सेल्यूलोज़ नामके-

पदार्थकी बनी होती है। यह पदार्थ मदिराके समान गाढ़ी, न बहुत पतली और न बहुत जमी हुई चीज़के बने हुए होते हैं। यह पदार्थ उन चीज़ोंमें शामिल हैं जिनको कर्बोज कहते हैं और जो कर्बन, ओषजन, और उदजन इन तीन वस्तुओंसे बने हुए होते हैं। कपासके एक रेशेमें जो चीज़ें होती हैं वही चीज़ें पेशीभित्तिकामें होती हैं। कई रासायनिक द्रव्योंकी सहायतासे सेल्यूलोज़ बड़ी जल्दी पहचाना जाता है। (१) स्क्वीज़र्स रीएजंटमें (जो क्युप्रिकहायड्रेटको अमोनियामें घोलनेसे बनता है) सेल्यूलोज़ घुल जाता है। (२) स्कूल्ट्स सोल्युशनसे यह नीला हो जाता है। (३) नैल और गन्धकाम्लसे यह फूल उठता है और फिर नीला हो जाता है। सेल्युलोज़के रेणु बहुधा जमा होकर कण बनाते हैं और हर एक कणके चारों ओर पानी सा पतला रस होता है। इसी कारण बहुतसे पानीमें घुले पदार्थ पेशीभित्तिकामेंसे होते हुए उसके अंदर जा सकते हैं। पेशीभित्तिका जीवाद्यमसे पतले परदेके समान बाहरकी तरफ़ बनती जाती हैं। जीवाद्यमकी चैतन्य शक्तिके कारण नये नये कण बाहरके परदेके सूक्ष्म रंध्रमें जाकर बैठते हैं। जैसे जैसे ज़्यादा कण बाहरके परदेपर जमा होते जाते हैं वैसे वैसे परदा या पेशीभित्तिका मोटी होती जाती है। जीवाद्यमकी चैतन्य शक्तिके कारण भित्तिका बढ़ने लगती है परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि यह सब तरफ़से बराबर बढ़ती है। पेशीकी बाढ़ अन्दरी घड़ामोड़के कारण कम ज़्यादा होती है उसी तरहसे बाहरी परिस्थितिका असर पेशीके आकारपर होता है। पेशियोंके आकार बहुत तरहके होते हैं—चौकोन, गोल किरणाकृति, तिकोने इत्यादि। पेशीकी बाढ़ शुरू होनेपर जीवाद्यमका अन्दरसे बाहरकी तरफ़ कणोंके थरोंपर थर भेजते रहनेसे पेशी भित्तिकाकी अन्दरकी ओरसे कम ज़्यादा मोटाई होती रहती है। और ये कण जिस आकारमें जमा होते जाते हैं उसी प्रकारका आकार पेशीभित्तिकाके अंदरकी तरफ़से होता जाता है। इस तरहसे सर्पिल (spiral) मंडलाकार (annular) आकार उत्पन्न होते हैं। कभी कभी जगह जगह बड़े बड़े थर जमा होकर बीचमें गढे या खाचें रहते हैं। ऐसी पेशीको खांचेदार (pitted) पेशी कहते हैं। ऐसी कम ज़्यादा मोटाईकी जुदा जुदा आकारकी पेशियोंसे जो वाहिनी (vessels) बनती हैं उनका भी वही आकार आता है, यह फिर कहनेकी ज़रूरत नहीं। सरोके पेड़में खांचेदार पेशी वा वाहिनी बहुत रहती हैं।

रंजित शरीर क्लोरोप्लास्ट

जीवाद्यममें विशिष्ट घटनासे उससे रंजित शरीर तय्यार होते हैं। हम ऊपर कह आये हैं कि प्लेस्टीड जीवाद्यमके ही हिस्से हैं परन्तु दूसरी शकलमें उन हिस्सोंमेंके क़रीब क़रीब सब प्लेस्टीड जिनमें धूप लग सकती है—यानी पत्तियां, तनेके बाहरी हिस्सेके पेशी जाल इत्यादि—एक पदार्थ बनाते हैं जिसका नाम हरित् वर्ण पदार्थ (क्लोरोफ़िल) है और इन प्लेस्टीड्ज़को हरित वर्ण शरीर का नाम दिया गया है। इस तरहके सफ़ेद ल्युकोप्लास्ट
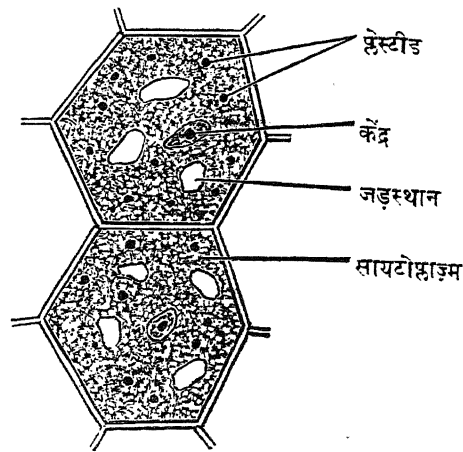
चित्र ३—छोटी पेशियां जिनमें जड़स्थान बनना शुरू हुए हैं।

अथवा और रंगोंके शरीर वनस्पति पेशीमें मिलते हैं। उन शरीरोंसे जो कि सूरजकी रोशनीमें सफ़ेद या रंगके होते हैं अंधेरेमें फीके शरीर उत्पन्न होते हैं इससे यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि शरीरोंका रंग बदलनेमें प्रकाश बड़ा भारी कारण है। गरमीमें कोमल पत्तोंमें लालीमायल शरीर होते हैं और वही आगे हरित्वर्ण शरीर बन जाते हैं। इसका कारण केवल प्रकाश है। हरिद्वर्ण शरीरोंका दोहरा उपयोग है। श्वेत शरीरोंकी तरह वह घुलनेवाले कर्बोजसे मांड (स्टार्च) बना सकते हैं और इसके सिवाय उस हरित् वर्ण पदार्थसे जो उनमें होता है वह पानी और कारबॉनिक एसिड गैससे रोशनीमें कर्बोज बना सकते हैं। बड़े बड़े पेड़ोंमें यह गोल या वर्तुलाकार होते हैं। कभी कभी इनका हरा रङ्ग, पेशी रसमें और और चीज़ें घुली हुई होनेके कारण, छिपा रहता है। जितना हरित्वर्ण पदार्थ पत्तियोंमें अथवा वनस्पति शरीरमें अधिक होता है उतना ही वह वनस्पतिकेलिए अधिक उपयोगी होता है इसीलिए जिस वनस्पतिमें बहुतसी सतेज हरी

चित्र ४—एक पूरी बढ़ी हुई पेशी

पत्तियां हों वह वनस्पति आरोग्य दृष्टिसे बहुत अच्छा समझना चाहिये। इसी तरह अगर किसी वनस्पतिमें असली हरित्वर्णके बदले फीका रंग होता है तो उस वनस्पतिकी आरोग्यता रोगीकी भांति बिगड़ी है ऐसा कहनेमें कोई हरज न होगा। अगर उस बनस्पतिका जल्द इलाज न किया जाय तो वह वनस्पति जल्द ही मर जायगी। पेड़के बाहरी हिस्सोंमेंके प्लेस्टीड्ज़में अक्सर हरित्वर्णके सिवाय और भी बहुतसी रंगीन चीज़ें होती हैं। इनको क्रोमोप्लास्ट कहते हैं। यह कई फूलोंकी कलियोंमें पाये जाते हैं—सब पीले फूलोंकी और बहुतसे लाल फूलोंकी कलियोंमें और फलोंमें। बहुतसे पीले फूलोंका और बहुतसे लाल फूलोंका रंग पेशीरसमें घुली हुई रंगीन चीज़ोंकी वजहसे होता है। क्रोमोप्लास्ट बहुधा हरित्वर्ण शरीरसे परन्तु एक दम श्वेत वर्ण शरीरसे भी बन सकते हैं।

छाया-चित्रण

[ले० दुर्गादत्त जोशी, बी. ए., एम. एस-सी,]

(गताङ्कसे आगे)

डेग्वेरे कला

तांबेके पत्रपर एक पतला चांदीका पत्र लगाते हैं, और इस पत्रको एक खुले हुए चैाकोन बकसके ऊपर रखते हैं। पत्रका चांदीवाला भाग बकसके भीतरको ओर रहता है। नैल पहिलेसे ही बकसके भीतरवाले पेंदेमें छितराकर बकसके पेंदेको मन्द आंचसे बाहरसे गरम करते हैं। नैल धुंएके रूपमें होकर उपर उड़ता है और चांदीसे मिल जाता है। चांदीके पत्रपर एक तह रजत-नैलकी बन जाती है। पत्र पीला, लाल, बैंजनी रंगका होकर अन्तमें नीले रंगका हो जाता है। इस नीले पत्रको अंधेरेमें बनाते हैं। ऐसे बने हुए पत्र मसालेदार, रोशनीके प्रभावको बतलानेवाले पत्र कहे जाते हैं और अंधेरेमें ही

Photography छाया चित्रण]

रखे जाते हैं। जब कभी किसीका चित्र उतारना होता है तब अंधेरे-केमरेके परदेमें उसका चित्र पहिले देख लेते हैं। जब चित्र साफ़ दिखाई देता है तब अंधेरे केमरेको उसी जगहपर स्थायी कर देते हैं और केमरेकी तालको एक ढंकनेसे बन्द कर देते हैं। ढंकना केमरेके भीतर बिलकुल प्रकाश नहीं पैठने देता। जिसका चित्र उतारना होता है उसे उसी जगहपर जहांसे उसका चित्र केमरेके परदेपर साफ़ दिखाई देता था, रहने देते हैं। तब अंधेरी कोठरीमें जाकर एक तरहके बने हुए अन्धकार बकस में (dark slides), मसालेदार पत्रको रखकर बाहर केमरेके निकट एक काले कपड़ेसे ढांककर लाते हैं, केमरेसे परदा हटा लेते हैं और उसकी जगहपर उस अंधकार बकसको (dark slide) बैठा देते हैं। अंधकार बकसके भीतर तरफ़वाली तख़्तीको धीरे धीरे ऊपरकी ओर उठा लेते हैं इससे मसालेदार पत्र खुल जाता है और परदेकी जगहपर खड़ा रहता है। तालके ढंकनेको तब हटा लेते हैं और थोड़ी देर (लगभग २० मिनिट) खुला छोड़कर फिर ढंकनेको लगा देते हैं। अंधकार-बकसके तख्तेको फिर नीचे ले आकर पत्रको बन्द कर देते हैं। इसके पीछे अंधकार बकसको केमरासे निकाल लेते हैं और काले कपड़ेसे ढंककर अंधेरी कोठरीमें ले जाते हैं। वहां उस पत्रको निकालकर एक खुले हुए सन्दूकके उपर रजत-नैलवाला भाग भीतरकी ओर करके रखते हैं। सन्दूकके नीचेवाले पेंदेमें पारा पहिलेसे ही रखा रहता है। पारेको बाहरसे मन्द आंच देकर गरम करते हैं। पारा धुएंके रूपमें ऊपर उठकर पत्रके उस भागमें जहां जहां रोशनी पड़ी थी धीरे धीरे जम जाता है और चित्र उभर आता है। पत्रमें इस तरहसे चित्र उभारनेको (developing) संवर्द्धन कहते हैं। चित्र उभरे हुए पत्रको तब hypo-sulphide of soda के घोलमें जो हैपो पुकारा जाता है, डालदेते हैं। हैपो बचे हुए रजत-नैलको निकाल लेता है और उभरे हुए चित्रको स्थायी (fix) कर देता है। पानीसे पत्रको कई बार धोते हैं और सुवर्ण हरिदके (gold chloride) घोलसे धोकर पानीसे धो डालते हैं और सुखा लेते हैं। इस तरहपर चित्र तैयार हो जाता है।

डेग्वेरेकी बताई हुई कलामें दिन दिन उन्नति होती ही रही यहांतक कि वेनिसके अध्यापक पेट्ज़्वलके (Petzval) बनाये हुए ताल और नैल तथा ब्रोमीनसे शोधे हुए चांदीके पत्रोंके प्रयोगसे इस कला द्वारा चित्र पत्रपर केवल कुछ ही पलोंतक चित्रकी रोशनीमें रखनेसे आ जाता है।

जिस वर्ष डेग्वेरेने चांदीके पत्रपर चित्र निकालनेकी रीति निकाली उसी वर्ष विलायतके प्रसिद्ध टेलबाटने (Talbot) रोशनीके प्रभावसे क़ागज़पर चित्र उतार लेनेकी रीति आविष्कृत की। इनका बनाया हुआ क़ागज़ वेजवुडके (Wedgwood) क़ागज़से कहीं उत्तम था। ये क़ागज़को नमकके घोलमें डुबोकर सुखा लेते थे, फिर अंधेरी जगहमें जा काष्टिकके घोलमें उसे डालते थे। नमक और काष्टिकसे क़ागज़पर एक नया पदार्थ रजत हरिद (Agcl) बन जाता था। इस रजत हरिद लगे हुए काग़ज़पर रोशनीका प्रभाव अधिक और शीघ्र होता था और चित्र भी कहीं बढ़िया आता था। काग़ज़पर चित्र आ जानेके पश्चात टैलबाट काग़ज़को नमकके गरम घोलमें डालकर धो लेते थे। इस कारण चित्र रोशनीमें रहनेपर भी शीघ्र काला नहीं पड़ता था और कुछ दिनोंतक स्थायी रहता था। सर जान हर्शलने नमकके गरम घोलकी जगहपर हैपोके घोलका प्रयोग किया और रजत हरिदका वह भाग जहां रोशनी नहीं पड़ी थी और जो काला नहीं हुआ था और जो ठीक चित्र, चित्र देनेवाले पदार्थका बना हुआ था, इस हैपोके घोलसे धो डाला। इस प्रकार सदाकेलिए काग़ज़पर चित्रको स्थायी कर दिया। वेजवुड चित्रके स्थायी करनेमें फली भूत नहीं

हुए थे। इस कार्यको पहिले पहल टैलबाटने किया और उनके पीछे सर जान हर्शलने (Sir John Herschel) पूर्ण रूपसे कर दिखाया। टलबाट-की इस रीतिसे समतल पदार्थोंका चित्र बड़ी सुगमतासे और स्पष्ट रूपमें लिया जाता था। इस रीतिसे बनाये हुए चित्र बैठकके कमरोंके सजानेके काममें आते थे। इस रीतिसे लिया हुआ चित्र, असली वस्तुसे वही सम्बन्ध रखता है जो कि किसी वस्तुका प्रतिबिम्ब उस वस्तु-से रखता है। इस तरहके चित्रको असली वस्तुका निगेटिव (negative) कहते हैं। निगे-टिवसे (negative) लिये हुए चित्रको असली वस्तुका पाज़िटिव (positive) कहते हैं। नि-गेटिवमें असली वस्तुका सफ़ेद भाग काला, और काला भाग सफ़ेद आता है। क्योंकि सफ़ेद भागसे रोशनी आकर मसालेदार (sensitised) काग़ज़को काला कर देती है और काले भागसे रोशनी नहीं आती और मसालेदार काग़ज़का उतना भाग वैसा ही रहता है। पाज़िटिवमें निगेटिवका काला सफ़ेद और सफ़ेद काला उतरता है और वह असली वस्तुके सदृशसा होता है। मसालेदार काग़ज़ जिसपर इस रीति-से चित्र उतारा जाता है (Litchpans) काग़ज़-के नामसे पुकारे जाते हैं। टैलबाटने अपनी निकाली हुई रीति द्वारा केमराके (camera) भीतर आये हुये चित्रोंको उतारना चाहा परन्तु (Litchpans) काग़ज़पर चित्र न आया। तब उन्होंने एक नई तरहसे काग़ज़को तैयार किया। काग़ज़को पहिले काष्टिकके घोलमें डाला, तब उसे पोटासियम-नैलके (K I) घोलमें डालकर रजत-गैलिकके (gallate of silver) घोलमें दिया। यह सब उन्होंने अंधेरेमें ही किया। इस तरहसे बनाये हुए काग़ज़को उन्होंने केमराके परदेकी जगहपर रखा, और थोड़े समयतक चित्रकी रोशनी उसपर पड़ने दी। काग़ज़पर कोई चित्रका आकार न उतरा। तब काग़ज़को केमरासे निकालकर रोशनीसे बचाते हुए अंधेरेमें ले जाकर रखा। कुछ देर बाद अंधेरेमें काग़ज़पर चित्र धीरे धीरे उभरने लगा पर रजत गैलिकके (gallate of silver) डालते ही चित्र और ज़्यादा उभर आया और स्पष्ट रूपसे उतर आया। यह निगेटिव चित्र था। चित्रके स्पष्ट रूप-से उभर आनेके पश्चात् उन्होंने हैपोमें डालकर उभरे हुए चित्रको स्थायी कर लिया। तब काग़ज़-को पानीसे कई बार खूब धोकर हैपोको हटा-कर,सुखा लिया और निगेटिव तैयार कर लिया। फिर इस निगेटिवको (Litchpans) काग़ज़पर लगाकर, एक चौकोन शीशेके टुकड़ेको उसपर रखकर, एक फ़र्ममें (printing frame) दबाकर, शीशेको रोशनीकी ओर करके रख दिया। चित्र-का आकार उभर आनेपर फ़र्मको अंधेरीमें ले आये और काग़ज़को फ़र्मसे निकाल, हैपोमें डाल उभरे हुए चित्रको स्थायी कर लिया। यह चित्र पाज़िटिव था इसी तरहसे उन्होंने एक निगेटिवसे कई पाज़िटिव बनाये।

एक और रीति जिससे किसी वस्तुकी सैकड़ों कापी ली जा सकती हैं निकाली। इस रीतिको टैलबाटने डेग्वेरेकी निकाली हुई रीतिके दो वर्ष पश्चात् निकाला और यह डेग्वेरेकी रीतिसे कहीं अच्छी थी। नीपी डीसैंटविक्टरने (Niepce de St-victor) टैलबाटकी रीतिमें उन्नतिकी और काग़ज़-की जगह शीशेका प्लेट (plate) प्रयोग कर उस-पर निगेटिव लिया। पहिले शीशेके प्लेटको अच्छी तरह साफ़कर उसपर एक पोत पोटासि-यम-नैलके (KI) घोलका जिसे अन्डेकी सफ़ेदी-में अच्छी तरह मथकर बनाया था, चढ़ाया और सुखा लिया। ऐसा करनेसे पतली झिल्लीकी तरह-का एक पोत शीशेपर चढ़ गया। तब शीशेको काष्टिकके घोलमें डाल, मसालेदार शीशा बनाया। इस शीशेसे वही काम लिया जो टैलबाट अपने बनाये हुए काग़ज़से लेते थे। इस शीशेके निगेटिव-से उतारे हुए पाज़िटिव टैलबाटके काग़ज़के

निगेटिवसे उतारे हुए पाज़िटिवसे कहीं साफ़ और अच्छे होते थे। इस तरहके शीशे बनानेमें गन्दा काम करना पड़ता था और कुछ दिनों बाद झिल्ली भी सड़कर ख़राब हो जाती थी। इसको आर्कर-ने (Archer) सुधारा और अन्डेकी सफ़ेदीकी जगह कलोडियनको (collodian) काममें लाकर गन्दगीको हटाकर शीशेपर ऐसी झिल्ली बैठाई जो न तो सड़ती थी और न ख़राब होती थी। साफ़ धुनी हुई रुई गंधक और शोरेके तेज़ाब या अम्लमें डालनेसे एक ऐसा पदार्थ बनाती है जो सूखनेपर ज़रा सा धक्का लगनेसे तुरन्त बन्दूककी सी आवाज़ करता है और बारूदसे कहीं अधिक तोड़ रखता है। इस पदार्थको गनकाटन (gun cotton) कहते हैं। यह शराबमें घुल जाता है और घोलके सूखनेपर पतली झिल्लीकी तरहकी वस्तु रह जाती है जिसमें चिपकनेकी बड़ी सामर्थ होती है। इस वस्तुको कलोडियन (collodian) कहते हैं। आर्कर-(Archer) ने ऐसे कलोडियनको जिसमें पहिलेसे ही पोटासियम--नैल पड़ा हुआ था शीशेपर चढ़ाया और तब काष्ठिकके घोलमें डाल शीशेको मसालेदार कर लिया। इस शीशेपर टैलबाटकी रीतिद्वारा निगेटिव बनाया और निगेटिवसे मनमाने पाज़िटिव बनाये। पाज़िटिव लेनेवाले काग़ज़ोंमें भी नीपी डी विकूरने अंडेकी सफ़े-दीके प्रयोगसे एक सुधार किया। उसके बनाये हुए काग़ज़पर पाज़िटिव चमकदार उतरता था और देखनेमें सुन्दर होता था। आर्करके सुधार-से टैलबाटकी रीतिसे उतारे हुए चित्रोंकी इतनी मांग बढ़ी कि १९०८ विक्रमीसे डेग्वेरे-की रीतिसे उतरे हुए चित्रोंकी लालसा घट गई और लोग टैलबाटवाली रीतिकी ओर अधिक प्रस्तुत हुए।

सूर्यकी रोशनी देखनेमें तो सफ़ेदसी आती है परन्तु वास्तवमें यह सात रंगकी रोशनियोंसे मिलकर बनी है। अगर किसी ऐसे सफ़ेद परदेको देखें जिसमें किसी छोटे छिद्रसे आई हुई सूर्यकी रोशनी त्रिपार्श्वमेंसे होकर पड़ती हो, तो सात रंगकी लकीरें एक दूसरेके ऊपर परदेमें दिखाई देती हैं। ठीक उसी जगहपर जहाँ सात रंग दिखाई देते हैं अगर मसालेदार काग़ज़-को रखें तो यह मालूम होता है कि पीली और लाल किरनें मसालेदार काग़ज़पर कुछ प्रभाव नहीं डालतीं; नीली, आसमानी(indgo)और बैंजनी रंग-की पृथक किरनोंका प्रभाव काग़ज़पर पड़ता है। रंगीन किरनोंका यह पृथक स्वभाव छाया चित्र खीचनेवालोंकेलिए बहुत उपयोगी है। उनका प्रयोजन कभी तो एक स्वभावकी किरनोंसे पड़ता है और कभी दूसरे स्वभाव रखनेवाली किरनोंसे। सिवाय दो कामके उनके सब काम अंधेरेमें ही होते हैं। अंधेरेके जितने काम हैं उनकेलिए पीली अथवा लाल रोशनीसे ये लोग काम लेते हैं और इन रंगोंकी रोशनीसे अंधेरेके जितने कृत्य हैं उनको बड़ी सावधानी और सुगमतासे कर लेते हैं। इन रंगोंकी रोशनी अपनी अंधेरी कोठरीमें लानेकेलिए छाया चित्रकार या तो कोठरीकी खिड़कीका शीशा लाल रंगका रखता है या उस कोठरीके भीतरके लैम्पका वह भाग जहांसे रोशनी आती है लाल रंगके शीशेसे बन्द कर देता है। नीले रंगकी रोशनी छाया चित्र उठानेकेलिए अत्युतम् समझी जाती है। इन दिनों छाया चित्रके लेनेकेलिए सूर्यकी रोशनीकी आवश्यकता नहीं; बिजली इत्यादि अनेक तरहकी रोशनियोंकी सहायतासे छाया-चित्र ले लिये जाते हैं।

कई प्रकारके तालके बननेसे इस कलामें बड़ी उन्नति हुई और छायाचित्र भी बहुत साफ़ उतरने लगा। तालकी शुद्ध बनावटपर छायाचित्रका बनना निर्भर है। जैसा ही बढ़िया ताल होता है वैसा ही बढ़िया छायाचित्र आता है। कई तरह-के ताल इन दिनों प्रचलित हैं। इनमेंसे तो कोई केवल दृश्यके छायाचित्र लेनेमें काम आते हैं, कोई केवल मनुष्यके छायाचित्र लेनेमें पर कई

इस तरहके हैं जो दोनों दृश्य और मनुष्यके छाया चित्र लेनेमें प्रयोग किये जाते है।

(Dry plates) सूखे प्लेट बननेसे इस कलामें और भी उन्नति हुई और छाया-चित्र लेनेकी रीतिका प्रयोग बढ़ता ही गया। ऐसे बने हुए शीशेके आविष्कृत होनेसे वह कष्ट जो छाया-चित्रकारको छायाचित्रके लेनेके थोड़े ही समय आगे शीशेके बनानेमें उठाना पड़ता था दूर हो गया। साथ ही साथ छाया-चित्र उतरवानेवाले-का भी जो बहुत समय व्यय होता था कम हो गया। पहिले छाया-चित्र उतरवानेवालेको छाया-चित्रकारके यहां उतने समयतक रहना पड़ता था जितनेमें छाया चित्रकार अपनी अंधेरी कोठरीमें जाकर शीशेको तयार करके बाहर केमरेमें रखके उसपर उसका छाया-चित्र न लेले। परन्तु सूखे प्लेटकी (dry plates) महिमासे न तो छाया-चित्रकारके यहां जानेकी आवश्यकता है और न अधिक रोशनीमें रहनेकी। छायाचित्रकार कई एक ऐसे शीशोंको अपने समीप रखते हैं और एक एकको मनमाने वस्तुकी छायाचित्रकी रोशनीमें रखकर एक अंधेरी जगहमें रखते हैं, फिर अपने इच्छानुसार किसी दिन छाया-चित्रको उभार लेते हैं और स्थायी कर लेते हैं। जिन दिनों सूखे प्लेटका (dry plates) प्रचार नहीं था उन दिनों छाया-चित्रकारको इन सब बातोंकी सुगमता नहीं थी। उन्हें शीशेको छायाचित्रकी रोशनीमें रखनेके ठीक पहिले ही बनाना पड़ता था और छायाचित्र-की रोशनी पड़ जानेके पश्चात् ही चित्रको उभार-कर स्थायी करना पड़ता था। लेकिन केरी लिया (Carey Lea) और बेनेटने (Bennett) अपने आविष्कृत इन शीशोंसे छायाचित्रकारोंकी पुरानी कठिनाइयोंको हटा दिया और आलोक चित्रणकी दशामें इतना सुधार किया कि इस कलाका प्रयोग हर मनुष्यकेलिए सुगम हो गया।

"आलोक चित्रण" से जो जो लाभ हुए हैं, उनकी गणना करनी बहुत कठिन है। ज्योतिष-को लीजिये, यहां भी यह बड़े काम आती है! शिक्षा विभागको देखिये यहां भी यह विराज-मान है। कहांतक कहें जिधर देखिये उधर ही इसकी महिमा दिखाई देती है।

ताल जड़ित एक महल बना है।
अंधकार भी वहां घना है॥
बेधि ताल जो अन्दर जावै।
वहां अपनेको उलटा पावै॥
दानव छिपा खड़ा है उसमें।
जादू एक बड़ा है उसमें॥
जो कोई उसको छू जावै।
फिर उससे वह छूट न पावै॥
गोरा कैसा ही कोई होवै।
दानवसे वह काला होवे॥
रंग विरंगा जाय महलमें।
हो सफ़ेद वह जावै पलमें॥
बूझो महल बना वह कैसा।
चमत्कार जिसमें है ऐसा॥

महीनोंके नाम

[ले०-पीतमलालगुप्त, एम. एस-सी.]

पाठकगण, इस लेखद्वारा हम युरोपीय (ईसाई) तथा हिन्दू पंचांगोंकी तुलना करना चाहते हैं; और यह दिखाना चाहते हैं, कि हिन्दू पंचांगमें कुछ विशेषता है। दृष्टान्तकेलिए हम पहिले महीनोंके नाम लेते हैं और यह दिखानेका प्रयत्न करेंगे कि युरोपीय तथा हिन्दू पंचांगमें बारह महीनोंके प्रचलित नाम क्या हैं, उनके शब्दार्थ क्या हैं।

युरोपीय महीनोंके नाम

जनवरी (January)—यह वर्षका प्रथम मास

Astronomy ज्यौतिष]

है जिसे रोमनिवासियोंने एक देवता जेनसको समर्पित किया और उसके नामपर महीनेका नाम रखा। उनका विश्वास था कि इस देवताके दो शीर्ष थे इसलिए यह दोनों ओर (आगे, पीछे) देख सकता था। यह देव आरम्भ देव था जिसको प्रत्येक कामके आरम्भमें मनाया जाता था। चूंकि जनवरी वर्षका प्रथम मास है इसलिए इसका नाम जेनसदेवके नामपर रखा गया।

फर्वरी (February)—प्रायश्चितका महीना।

मार्च (March)—लड़ाईके देवता 'मार्स'के नामपर रखा गया।

अप्रैल (April)—वह महीना जब पृथ्वीसे नये नये पत्ते, कलियां, और फलफूल उत्पन्न होते हैं। यह नाम उस महीनेकी ऋतुका द्योतक है।

मई (May)—जीवनका प्रारम्भिक भाग। भावार्थ यह है कि इस मासमें ऋतु ऐसी शोभायमान होती है जैसे नवयुवक तथा नवयुवतियां।

जून (June)—छुठा महीना जो आरम्भमें केवल २६ दिनका होता था। इसके नामका शब्दार्थ छोटा महीना है। महाराज जूलियस सीज़रके समयसे ३० दिनका मानने लगे हैं।

जौलाई (July)—जूलियस सीज़रके नामपर, जो इस महीनेमें पैदा हुआ था, यह नाम रखा गया।

अगस्त (August)—महाराज अगस्टस सीज़रके नामपर यह नाम रखा गया। चूंकि जूलियस सीज़रके नामपर रखा जानेवाला जौलाईका महीना ३१ दिनका होता था और है, इसलिए अगस्टस सीज़रने अगस्तका महीना भी उतने ही अर्थात् ३१ दिनका रखा। और यह महीना ३१ दिनका चला आता है।

सितम्बर (September)—शब्दार्थ सातवां महीना क्योंकि रोमनिवासी अपना वर्ष मार्चसे प्रारम्भ करते थे।

अक्तूबर (October—शब्दार्थ आठवां महीना। रोमनिवासियोंके अनुसार आठवां महीना।

नवम्बर (November)—शब्दार्थ, नवां महीना। रोमनिवासियोंके अनुसार नवां महीना।

दिसम्बर (December,-शब्दार्थ, दसवां महीना। रोमनिवासियोंके अनुसार दसवां महीना।

ऊपर दिये हुए शब्दार्थोंसे ज्ञात होगा कि अंग्रेज़ी महीनोंमें कुछके नाम देवताओंके नामपर, कुछके ऋतुके अनुसार, कुछके महाराजोंके नामपर और शेषके क्रमके अनुसार नाम रखे गये हैं।

हिन्दू महीनोंके नाम

महीनोंके नामोंके शब्दार्थ समझनेसे पहिले, हमें कुछ ज्योतिष सिद्धान्त समझ लेने चाहियें, क्योंकि इनके बिना शब्दार्थ समझमें न आवेंगे।

१. हिन्दू ज्योतिषके अनुसार पृथ्वी सूर्यके चारों ओर एक अंडाकार वृत्तमें ३६५·२४ दिनमें घूमती है। यह अंडाकार मार्ग बारह भागोंमें विभाजित है और उन १२ भागोंके नाम मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ, मीन हैं। इन १२ भागोंके नाम भी, जो १२ राशियोंके नामसे विख्यात हैं, ज्योतिषकी एक विशेष बात बतलाते हैं (इस अवसरपर उसके सविस्तार वर्णनसे लेख लंबा हो जायगा।)

२. यदि हम सूर्य और पृथ्वीकी सापेक्षगतिको (relative motion) समझ लें तो विदित हो जायगा कि पृथ्वीको स्थिर मानकर, सूर्यको पृथ्वीके चारों ओर घूमता मान लें तो भी वही दृश्य दीखेंगे जो सूर्यको स्थिर और पृथ्वीको घूमता हुआ मानकर वास्तवमें होते हैं। इसका साधारण दृष्टान्त यह है कि यदि किसी रेलवे स्टेशनपर दो रेलगाड़ी खड़ी हों और उनमेंसे एक चलना आरम्भ करदे तो प्रत्येक गाड़ीके मुसाफ़िरोंको दूसरी गाड़ी चलती दीख पड़ेगी। इसी सिद्धान्तके आधारपर शास्त्रकारोंने—यद्यपि वह मानते हैं कि पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है—सरलताके-लिए पृथ्वीको स्थिर और सूर्यको उसके चहुं ओर घूमता हुआ मानकर गणना की है। परन्तु हिन्दू

ज्योतिष शास्त्रसे अनभिज्ञताके कारण सर्वसाधारण यह मान बैठे हैं कि वास्तवमें सूर्य ही घूमता है और पृथ्वी नहीं।

यदि पृथ्वी घूमते घूमते अपने मार्गके किसी विशेष भाग कन्या में होती है तो पृथ्वी आज कन्या नामके भाग अथावा कन्या राशिमें है यह कहनेके स्थानमें हम कहते हैं कि सूर्य आज कन्या राशिके हैं अथवा आजकल कन्याकी संक्रान्ति वर्त्तमान है। सौर वर्षमें यही बारह महीनोंके नाम पड़े हैं।

३. जिस प्रकार पृथ्वी सूर्यके चारों ओर एक अंडाकार वृत्तमें घूमती है, ठीक उसी प्रकार चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओर एक अंडाकर वृत्तमें २७ दिन ८ घंटेमें घूम आता है। इसका मार्ग २७ भागोंमें विभाजित है और प्रत्येक भागको नक्षत्र कहते हैं। २७ नक्षत्रोंके नाम यह हैं।

१. अश्वनी २. भरणी ३. कृत्तिका ४. रोहिणी ५. मृगशिरा आर्द्रा ७. पुनर्वस ८. पुष्य ९. अश्लेषा १०. मघा ११. पूर्वा-फाल्गुनी १२. उत्तराफाल्गुनी १३. हस्त १४. चित्र १५. स्वाति १६. विशाखा १७. अनुराधा १८. ज्येष्ठा १९. मूल २०. पूर्वाषाढ़ २१. उत्तराषाढ़ २२. श्रावण २३. धनिष्ठा २४. शतविषा २५. पूर्वाभाद्रपद २६. उत्तराभाद्रपद २७. रेवती।

आज स्वाति नक्षत्र है इसका अभिप्राय यह है कि आज चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओरके मार्गके स्वाति नामक भागमें है।

४. हम पृथ्वीपर रहनेवाले हैं, पृथ्वीके साथ साथ घूमते हैं। इस कारण हमको पृथ्वी स्थिर प्रतीत होती है और सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों घूमते दीख पड़ते हैं।

५. जब सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें पृथ्वी होती है तो चन्द्रमाका वह अर्ध भाग जिसपर सूर्यका प्रकाश पड़ता है पृथ्वीकी ओर होता है। इसी कारण ऐसी अवस्थामें चन्द्रमा सम्पूर्ण प्रकाशवान् दीखता है। अतः पूर्णमासीको जब चन्द्रमा पूर्ण प्रकाशित होता है चन्द्रमा और सूर्य पृथ्वीके दोनों ओर उलटी दिशामें होते हैं।

हिन्दू महीनोंके नाम नक्षत्रोंके नामपर रखे गये हैं। पूर्णमासीको जैसा नक्षत्र होता है उस महीनेका नाम उसी नक्षत्रपर रखा गया है क्योंकि पूर्णिमाको सूर्य, चन्द्र, पृथ्वीके दोनों ओर उलटी दिशामें होते हैं।*

१२ नक्षत्रोंके नाम नक्षत्रानुसार इस प्रकार हैं।

	महीना	नक्षत्र	महीना	नक्षत्र
१	चैत्र	चित्रा	७. आश्विन्	अश्वनी
२	वैशाख	विशाखा	८. कार्त्तिक	कृत्तिका
३	ज्येष्ठ	ज्येष्ठा	९. मार्गशिर	मृगशिरा
४	असाढ़	पूर्वासाढ़	१०. पौष	पुष्य
५	श्रावण	श्रवण	११. माघ	मघा
६	भाद्रपद	पूर्वाभाद्रपद	१२. फाल्गुन	उत्तरफाल्गुनी

सर डबल्यू जोन्सकी (Sir W. Jones) यह भी सम्मति है कि हिंदुओंके महीनोंके नाम इत्यादि-से पूरा पता लगता है कि हिन्दू ज्योतिष अत्यन्त पुरानी है। हिन्दुओंमें प्राचीन कालमें वर्ष पौष माससे प्रारम्भ होता था जब दिन अत्यन्त छोटा और रात अत्यन्त बड़ी होती है। इसी कारण मार्गशिर मासका द्वितीय नाम अग्रहनय था जिसका अर्थ यह है कि वह महीना जो वर्ष आरम्भ होनेसे पहिले हो।

पाठकगण, आपने अंग्रेज़ी और हिन्दू महीनों-के नामोंकी कहानी सुनी इस विवरणसे विदित हो जायगा कि एक ओर जहां अंग्रेज़ी महीनोंके नाम देवता, महाराजा ऋतु इत्यादिके अनुसार रखे गये हैं, दूसरी ओर हिन्दू महीनोंके नाम वैज्ञा-निक रीतिसे रखे गये हैं जिनके केवल नाम मात्र-से ज्योतिषके बड़े बड़े सिद्धान्तोंका पता चलता है।

---

* इसमें सूर्य सिद्धान्त प्रमाण है।

भचक्र भ्रमणं नित्यं नाक्षत्रं दिनमुच्यते।

नक्षत्र नाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्त योगतः॥

अर्थात् दैनिक भचक्रका भ्रमण करना ही नाक्षत्रिक दिन है।

पूर्णिमान्ताधिष्ठित नक्षत्रके नामसे मासका नाम जानना चाहिये।

प्राचीन आर्य पुरुष ज्योतिषमें अवश्य विशेष ज्ञान प्राप्त कर चुके थे और उनके ज्ञानके टूटे फूटे चिन्ह आजतक हिन्दू समाजमें पाये जाते हैं। क्या अच्छा हो यदि हम प्राचीन आर्य सभ्यताका मान करें और उसके बचे बचाये चिन्होंसे उसका पता लगाकर समाजके सामने रखें जिससे देशका कल्याण हो।

पञ्चतत्त्व

[ले० प्रेमवल्लभ जोषी, बी. एस-सी., एल-टी.]

मुकुन्द, शास्त्रीजी और विज्ञानाचार्य्य

मुकुन्द-मामूली बोलचालमें जब हम कहते हैं कि देवदत्त पञ्चत्वको प्राप्त हुआ हमारा यह मतलब होता है कि वह मर गया लेकिन् शास्त्रीजी, मेरे समझमें यह नहीं आया कि पञ्चत्वका, यह अर्थ कैसे हुआ।

शास्त्रीजी—पञ्चत्व निश्चय ही कुछ विशेषार्थको प्रगट करता है। पञ्च = पांच त्व-भाववाचक प्रत्यय। इससे पूर्वोक्त वाक्यका यह शब्दार्थ हुआ कि देवदत्त पांचोंके भावको प्राप्त हुए। अब ये पांच क्या हैं। कणाद, गौतम आदि दर्शनकारोंका यह मत है कि जब शरीरसे प्राण निकल चुकता है तो धीरे २ उसका शरीर पांच तत्त्वोंमें मिल जाता है। इनके मतसे पांच मुख्य तत्त्व ये हैं—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, मनुष्यका शरीर इन्हीं पांच तत्त्वोंके संयोगसे बना है। जब दवदत्त मर गया तो फिर पांच तत्त्व अलग अलग होकर अपने अपने भावको प्राप्त होते हैं। यह सारा ब्रह्माण्ड इन्हीं पांच तत्त्वोंका बना है और प्रलय कालमें इन्हीं पांच तत्त्वोंमें लय हो जायगा। प्रलय कालमें पांचों तत्त्व अणु रूप हो जाते हैं और फिर सृष्टि कालमें यही अणु मिलकर सारे ब्रह्माण्डको प्रगट करते हैं। हमारे दर्शनोंमें सृष्टि-क्रम बड़ी ही अच्छी युक्तियोंसे समझाया है। अब तो

Physics भौतिक-शास्त्र]

तुम समझ गये होगे पञ्चत्वका अर्थ मरना क्यों कर हुआ।

मुकुन्द—जी, हां! मगर यह तो बतलाइये तत्त्व शब्दका क्या अर्थ है।

शास्त्रीजी—पूर्वोक्त व्याख्यासे तुमको मालूम हो गया होगा कि तत्त्व किसे कहते हैं। तत्त्व, (तत्+त्व।) तस्य भावः तत्व = उसका भाव। (असली स्वरूप)जो हमेशा एकसा रहे अर्थात् जिसके दो या उससे अधिक ऐसे भाग न हो सकें जिनके गुण भिन्न हों और जो असली पदार्थसे जिनके कि ये टुकड़े हों गुणोंमें भिन्नता रखते हों। उदाहरण—आकाश एक तत्त्व है, 'शब्दगुणमाकाशम्' आकाशका शब्द गुण है। आकाशद्वारा हम शब्दको सुनते हैं। जब कोई चीज़, दूसरी चीज़से टकराती है तो समीपवर्ती आकाशमें स्पन्दन, कम्पन (vibration) होता है। हमारे कानके आकाशका, उस टकराती हुई वस्तुके समीपवर्ती आकाशका पूरा अविच्छिन्न सम्बन्ध है, इसलिए यह स्पन्दन हमारे कानके आकाश· तक सहजमें ही चला जाता है और कानकी झिल्लीसे टक्कर खाता है और हमको शब्द बोध होता है। चाहे कानका आकाश हो या घटाकाश (घड़ेके भीतरका आकाश) या घरके भीतरका आकाश सभी आकाश ही हैं और इन सब आकाशोंका गुण शब्द ही है। आकाशके ऐसे हिस्से अबतक कोई नहीं कर सका है जिनके गुण महद् आकाशसे (शब्द गुणसे) भिन्न हों। ऐसे ही उदाहरण और तत्त्वोंके भी दिये जा सकते हैं।

मुकुन्द—शास्त्रीजी, अब तो तत्त्व शब्दका अर्थ मेरे समझमें आया। परन्तु तत्त्व शब्दकी जैसी परिभाषा (definition) आपनेकी तदनुसार पूर्वोक्त पांच तत्त्व हो ही नहीं सकते। विज्ञानके प्रयोगोंसे सिद्ध हो चुका है कि जल वायु और पृथिवीके ऐसे ऐसे हिस्से किये जा सकते हैं जिनके गुण उनसे बिलकुल भिन्न हैं और यह भी अच्छी तरह सिद्ध हो चुका है कि शब्द गुण आकाशका नहीं

है। आकाशके अणुवोंका यह गुण कभी नहीं है कि वे स्पन्दनको ले जाकर शब्द बोध कानको करा सकें। यह गुण तो हवा, गैस और पार्थिव पदार्थोंका है।

शास्त्रीजी—पश्चिमीय विद्याने (western culture) तुम लोगोंकी बुद्धिमें हो न हो भ्रम पैदा कर दिया है जिसकी वजहसे तुम सीधेको उलटा और उलटेको सीधा देखते हो। अगर तुम मुझे इन सब प्रयोगोंको दिखला सको तो मैं तुम्हारा बुद्धि भ्रम दूर कर सकूंगा।

मुकुन्द—शास्त्रीजी, मुझे पूरा निश्चय है कि मुझे भ्रम नहीं है। मैंने और मेरे साथियोंने प्रयोग (experiment) करके प्रत्यक्ष सिद्ध कर लिया है। पृथिवी, जल, तेज, वायु तत्त्व नहीं है। और आकाशका गुण शब्द नहीं हैं, चलिये प्रयोगशाला-में (laboratory) चलें वहां विज्ञानाचार्य भी होंगे। प्रयोगों व युक्तियोंद्वारा तत्त्व विषयक सिद्धान्त स्थित हो जायगा।

प्रयोगशालामें पहुंचनेपर शास्त्रीजीसे जो वादानुवाद हुआ था उसका ब्यौरा मुकुन्दने विज्ञानाचार्य्यसे कह सुनाया। विज्ञानाचार्य्यजी-ने शिष्टाचारके अनन्तर एक (air pump) वायु निस्सारक यंत्र अलमारीसे निकाला, वार्तालापका आरम्भ हुआ।

विज्ञानाचार्य्य—यह एक ऐसा यन्त्र है जिसके द्वारा किसी बर्तनकी हवा निकाली जा सकती है। अगर हम इसके भीतर बजती हुई घण्टी रख दें और फिर बादको इस यन्त्रसे हवा निकाल दें तो यद्यपि घण्टीका डंडा हिलता हुआ रहेगा लेकिन शब्द न सुनाई देगा।

शास्त्रीजी—और बातोंको छोड़कर पहिले आप हमको इस यन्त्रके अलग अलग हिस्सोंके कार्य्य समझाइये फिर पूर्वोक्त प्रयोग कीजियेगा।

विज्ञानाचार्य्य—बहुत अच्छा। देखो अ से ब तक यह एक बेलनाकार नली है। प एक पिस्टन (piston) है। अ और ब दो कब्जे (valve) हैं जो ऊपर की ओर खुलते हैं और म भी एक
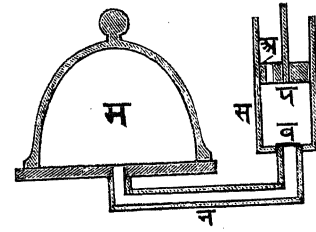
चित्र १

ऐसा कब्ज़ा है जो नीचेकी तरफ़को खुलता है। उसपर बर्तन है जिसकी कि हवा निकालनी है। न एक नली है जो कि बर्तन और बेलन-से सम्बन्ध रखती है। कब्ज़े (valves) पिस्टन और बर्तन इस तरह कसे हुए रहते हैं कि हवाका आवागमन बिना कब्ज़े खुले हुए नहीं हो सकता। देखिये जब मैं प (piston) को ऊपरको उठाता हूं तो अ और ब कब्ज़े (valves) ऊपरको उठ जाते हैं और म दबा हुआ रहता है। अ के खुलनेका सबब यह है कि अ और पिस्टन-के बीचकी हवा पिस्टनके ऊपरको उठाये जाने-के कारण दब (compress) जाती है। और बाहरको निकलनेकी कोशिश करती है। इसीलिए अ कब्ज़ा (valve) खुल जाता है। ब कब्ज़ाके खुलनेका सबब यह है कि जब प पिस्टन ऊपरको उठाया जाता है तो प और ब में ज़्यादा जगह हो जानेसे हवा फैल जाती है और दबाव कम होनेसे ब कब्जा खुल जाता है और बर्तन-से कुछ हवा बेलनके भीतर आ जाती है। जब पिस्टन नीचेको सरकाया जाता है तो बाहरकी हवाके दबावसे अ बन्द हो जाता है म खुल जाता है और ब भी बन्द हो जाता है। फिर पिस्टनको उठानेसे बेलनकी हवा बाहर निकल जाती है और बर्तनमें हवा घनत्त्वमें कम होती जाती है।

शास्त्रीजी—यन्त्रके भिन्न भिन्न भागोंका कार्य्य तो मैं देख चुका अब प्रयोग आरम्भ कीजिये।

विज्ञा०-मुकुन्द, घण्टीको बर्तनमें कस दो। शास्त्रीजी, इस समय तो घन्टी आप खूब सुनते होंगे।

शास्त्रीजी-जी हां। आगे चलिये।

विज्ञानाचार्य्य-मोहन, बताये हुए तरीक़ेमें पिस्टनको ऊपर नीचे लेजा करके हवा निकाल डालो।

जब मुकुन्द हवा निकालने लगा तो घन्टेकी आवाज़ भी कमती होने लगी और थोड़ी देर बाद बिलकुल न सुनाई दी। शास्त्रीजीने देखा कि डंडी ज़ोरमें हिल रही है मगर शब्दका नाम नहीं।

शास्त्रीजी-आश्चर्य्यकी बात है घन्टा हिल रहा है मगर आवाज़ नहीं सुनाई दे रही है।

मुकुन्द-शास्त्रीजी, आकाश सर्वव्यापक है इसलिए हवा निकाले जानेके बाद भी बर्तनमें आकाश रहेगा ही और चूंकि इस बर्तनके आकाशका महदकाशके साथ और कानके आकाशके साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है और घन्टा बराबर हिल रहा है तब यदि आकाशका गुण शब्द होता तो क्या शब्द नहीं सुनाई देते। अतः शब्द गुणमाकाशम् यह परिभाषा ठीक नहीं है। जब इसका गुण शब्द नहीं है तो और इसका क्या गुण है। जब यह कहो कि सभी चीज़ोंको (वायु आदि) निकाल देनेके बाद जो बच रहता है तो वेदान्तियोंके नेति नेतिकी तरह ब्रह्म समान कोई एक अनुमानगम्य, नकि पञ्चेन्द्रिय ज्ञान विषय, वस्तु है, वही आकाश है तो निर्गुण होनेसे उसकी तत्त्व संज्ञा भला कैसे कर सकते हैं।

शास्त्रीजी-आप लोगोंकी युक्तिमें सार तो अवश्य है परन्तु हम इस बातका समाधान यों भी कर सकते हैं कि हवाके निकाले जानेसे किसी क़िस्मका व्यवधान (obstacle) बीचमें पड़ जाता है जो कि शब्दके सुनाई देनेमें रुकाव डालता है। यह अनुभवकी बात है कि जब बड़ी भारी मोटी दीवाल बीचमें पड़ जाती है तो दीवालके इधरके लोग, दीवालके उधरवालोंका चिल्लाना बिलकुल नहीं सुन सकते। ऐसी ही कुछ हालत यहां भी हुईसी मालूम होती है।

मुकुन्द-शास्त्रीजी, यहां व्यवधान कैसा। यहां तो पूरी तरह शुद्ध आकाश बर्तनके अन्दर विद्यमान है। आप व्यवधानको पहिले निश्चय कर लीजिये।

विज्ञानाचार्य्य-दीवालसे जो व्यवधान या रुकाव पड़ा उसका कारण तो यह है। बोलनेसे हवामें स्पन्दन (vibration) होता है और इस स्पन्दनको हवाके कण एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाते हैं। लेकिन जब इन स्पन्दनोंको दीवाल बीचमें मिलती है और चूंकि मिट्टी या पत्थर हवाके कणोंकी तरह सहज हिलनेवाले और मामूली स्पन्दनोंको ले नहीं जाते हैं इसलिए दीवालके उस तरफ़ कुछ नहीं सुनाई देता। इसके विरुद्ध अगर ज़ोरसे शब्द किया जाय, तोप दागी जाय तो तोपका दागा जाना उस तरफ़ ज़रूर सुनाई देगा। तोपके दाग़नेमें जो स्पन्दन होता है वह बड़े ज़ोरका होता है और दीवालकी मिट्टी या पत्थरको ही नहीं नीचेकी धरतीको भी थोड़ा बहुत हिला ही देता है। इस बातका आपने ख़्याल किया ही होगा। लेकिन ऐसा कोई रुकाव पूर्वोक्त प्रयोगमें नहीं दिखाई देता इसके विरुद्ध वहांसे तो जितने रुकाव आपके मतानुसार हो सकते हैं हवाके निकाले जानेमें और भी कम हो जाते हैं।

शास्त्रीजी-निश्चय ही आपका किया हुआ प्रयोग और युक्ति विचारणीय हैं,इस वक्त तो मुझे आपकी हो युक्ति सच मालूम पड़ रही है। मगर क्या विज्ञान इस अवशिष्ट आकाशके विषयके कुछ विशेष गुण नहीं मालूम कर सका है?

विज्ञानाचार्य्य-आप पूर्वोक्त प्रयोग और युक्तिपर विचार व मननकर लीजिये और अपने खण्डन मण्डन **विज्ञान**में प्रकाशित कीजिये। **विज्ञान** सत्यका पक्षपाती है न कि विशेष किसी मतका। इस शून्याकाशपर (vacuum) प्रयोग

करनेपर ऐसा मालूम पड़ा है कि गुरुत्वाकर्षणशक्ति (gravitaton) चुम्बकत्व (magnetism) आदि शक्तियां .खूब काम कर सकती हैं। बिजुली-की (current) धाराका अवरोध आकाशके अणु (molecule of ether) कुछ बहुत करते है अगर बिजुली बलवती होती है तो आरपार जाती ही है मगर अपने सारे मण्डलको ज्योतिः पूर्ण बना डालती है । ऐसी हालत बिजुलीके लम्पमें (electrical lamp) देखनेमें आती है। प्रकाश और ताप अविच्छिन्न रूपसे आकाशमें इधरसे उधर जा सकते हैं।

शास्त्रीजी-तब तो यह शून्याकाश (vacuum) बिलकुल शून्य नहीं है परन्तु कुछ वस्तु विशेष है जो कि बिजुलीकी धारामें कुछ रुकाव डालता है और ताप और प्रकाशको आर पार जाने देता है।

मुकुन्द-मैं भी यही सन्देह कर रहा हूं कि यह क्यों तत्त्व नहीं हो सकता है। आचार्य्यजी इसके क्या और कोई गुण नहीं हैं।

विज्ञाना०-अभीतक विज्ञानके प्रयोग आकाश-(ether) को प्रत्यक्ष तो कर नहीं सके हैं लेकिन बतहुसी बातोंसे यह मानना पड़ा है कि जिस-को हम (vacnum) शून्याकाश कहते हैं वह बिलकुल शून्य तो नहीं हैं परन्तु वह ऐसे पदार्थ विशेषसे (ether) व्याप्त है जो बहुत ही सूक्ष्म बड़े ही शक्तिसम्पन्न अणुवीक्षण यंत्रके द्वारा भी हमें दृष्टिगोचर नहीं हो सकता है । इसमें ७००,००० गुना ज़्यादा (elasticity) स्थिति-स्थापकता बनिस्बत हवाके है। इस पदार्थकी कल्पना यों करनी पड़ी है,ताप किरणें बिना रोक टोकके शून्य में संचार पा सकती हैं। ऐसे ही प्रकाशकी किरणें भी। विकिरणके (radiation) प्रयोगसे सिद्ध हुआ है कि ताप एक स्थानसे दूसरे स्थानको बिना बीचके मार्गको गरम किये हुए चला जाता है। क्या ताप क्या प्रकाश सभी स्पन्दनकेद्वारा (vibration) ही पैदा होते हैं। और इसी स्पन्दनको आकाश द्रव्यके अणु एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाते हैं। इसका उदाहरण सूर्यका ताप और प्रकाशका पृथिवी-की ओर आना है। और भी बहुत सी बातें इस पादर्थके विषयमें कल्पना करनी पड़ी हैं जिनका इस समय ज़िक्र करना योग्य नहीं है।

सौ मीलसे ऊपर, वायुमण्डलके ऊपर दहरमें यही वस्तु व्याप्त है। अगर इस द्रव्य विशेषमें शब्द स्पन्दनको ले जानेकी शक्ति होती तो दहरमें स्थित जो नाना प्रकारके ग्रहादिक या अन्य पदार्थ हैं उनमें नाना प्रकारकी गड़बड़ी-से पैदा हुए जो भयानक शब्द हैं उसीसे हमारे कान रात व दिन फोड़े जाते और हमको बहुत दुःख होता। इसके विरुद्ध अगर वायुमें शब्द स्पन्दन ले जानेकी शक्ति न होती तो हम यह नहीं जानते कौन क्या कह रहा है कौन चीज़ किसमें टकराती है इत्यादि। हमको इस सब कृपाकेलिए ईश्वरको धन्यवाद देना चाहिये।

शास्त्रीजी—आपकी आकाश विषयक वैज्ञा-निक बातें सुनकर कुतूहल और आश्चर्य्य होता है। गीतामें ठीक ही कहा है 'आश्चर्य्यवत् पश्यति कश्चिदेनं आश्चर्य्यवद्‌ वदति तथैव चान्यः। आश्चर्य्य वत् कश्चिदन्यः शृणोति श्रुत्वोप्येनं वेदनचैव कश्चित्।'

अब तो संध्याकाल हुई चाहती है और हमें संध्याबन्दना करना है आज्ञा दीजिये।

किशोरावस्था

[ले० गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए.]

हमारे जीवनके प्रत्येक पलमें कोई न कोई विलक्षणता होती है। जन्म कालको ही लीजिये, उसमें कैसे कैसे क्लेश और भय आते हैं। सद्यःजात शिशु उन्हें लेकर इस संसारमें जब पहले पहल आंखे खोलता है तो वह कितना चकित

होता है। इस नवीनावस्थाके अनुकूलवर्ती होनेमें उसे कितना प्रयास करना पड़ता है। परन्तु इसपर भी वह काल यौवनकालके समान महत्व नहीं रखता, क्योंकि आखिर जन्म केवल दशाका एक परिवर्तन है। इधर जब तरुणावस्था आती है तो एक बिलकुल अपूर्व और अनुपम घटना घटती है। उस समय मनुष्यका केवल रंग ढंग ही नहीं बदल जाता, वरन उसका मन और शरीर भी सम्पूर्ण रूपसे नया हो जाता है। उसमें अद्भुत शक्तियां जाग उठती हैं। उसका सारा कलेवर औरका और हो जाता है।

यों तो प्रत्येक पगपर नयी अवस्थाकी नयी आवश्यकतायें होती हैं। अस्तु जिन लोगोंपर नवयुवकोंके रक्षाका भार है उन्हें सदैव इसका ध्यान रखना चाहिये। पर बालक वा बालिकाओं-का १४ वां वर्ष विशेष संकटका समय होता है। वह समय उनके प्रौढ़ होनेका समय है। उस अवस्थामें उनका बनना बिगड़ना मानो जीवन पर्यन्तका बनना बिगड़ना है। यदि आत्मीय स्वजन कुछ कष्ट उठाकर अपने अल्पवयस्क लड़के लड़कियोंका इस समय निरीक्षण करें तो आगेकी बहुतसी निराशा और दुश्चिन्तासे वे छुट्टी पा जांय।

जिस तरह प्रकृतिके और काम नियमसे होते हैं वैसेही प्रौढ़ावस्थाके भी अनुभव नियमके अंतर्गत हैं। प्रायः सबकी चाल इस वयसमें एक सी होती हैं। आपका छोटा भाई वा लड़का इससे अलग नहीं। जैसे और लोग चंचल होते आते हैं वैसे वह चंचल होता है। जो औरोंके क्षय और पुष्टिके मार्ग हुए हैं वही उसके भी होंगे। इसलिए आपके-लिए उसके गुण और दोषोंका परिचय पाना संभव है। यथासाध्य आप उन युवकोंके निग्रहका उपाय कर सकते हैं।

यौवन कालका आना कोई आकस्मिक बात नहीं है यद्यपि कभी कभी वह सहसा प्रकट होकर हम लोगोंको विस्मयमें डाल देता है। साधारणतः १५ वें सालसे २५ सालतक प्रायः १० वर्षकी इसकी अवधि होती है। पर सबकी एक दशा नहीं होती और उनमें थोड़ा थोड़ा भेद होता है। इतना अवश्य है कि २५ वां वर्ष लगते लगते सभी आदमी जवान हो जाते हैं।

यहां एक बात और ध्यानमें रखने योग्य है और वह यह कि चाहे जीव-विज्ञानवाले किसी प्राणी-को जब वह बच्चा पैदा करने योग्य हो जाता है प्रौढ़ कह दें, पर मनुष्य इस नियमके अधीन नहीं है। जिस दिनसे मनुष्य प्रौढ़ होने लगता है उसी दिन-से भले ही वह गर्भाधानका कार्य संपादन करनेकी क्षमता रखता हो पर इस कारण वह पूरा प्रौढ़ नहीं कहा जा सकता। इसमें मनुष्य अन्य सभी प्राणियोंसे पृथक है। जैसे मनुष्यके व्यक्तिगत विकास और उन्नतिकी कोई सीमा नहीं है और इस पक्षमें कोई दूसरा जीव उसकी बराबरी नहीं कर सकता, वैसे ही वह बहुत दिनोंतक क्रमशः थोड़ी थोड़ी प्रौढ़ता प्राप्त करता रहता है, यहांतक कि सम्पूर्ण रूप प्रौढ़ होनेमें अनुमान १० सालसे कम नहीं लगते। दूसरे जीवोंको इतनी शीघ्रतासे प्रौढ़ होते देखकर यह जान पड़ता है कि उनसे प्रकृतिका केवल यही अभिप्राय है कि जैसे तैसे वे मैथुन क्रियाके योग्य हो जांय, बच्चे जनें और मर जांय। उनके जीवनका दूसरा उद्देश्य ही नहीं। इसके प्रतिकूल संतानोत्पत्तिसे ही मनुष्यका जीवन सार्थक नहीं होता। जितने दिन वह पृथिवीपर रहता है वह अपनी जाति और राष्ट्रके शारीरिक मानसिक और नैतिक स्वभावमें अपने उद्योगसे सुधार करके अपने युगके धर्म और सभ्यतामें योग देता है। जैसा उसके कार्यका गुरुत्व होता है वैसा ही कठिन उसका शिक्षाकाल (probation) होता है। उतावलीसे हानि सर्वथा निश्चय है। लौकी वा कुम्हड़ेकी लतामें पहला फूल देखकर जो यह समझ लेते हैं कि उसमें अब फल आनेवाले हैं उन्हें बड़ा धोखा होता है क्योंकि पहले फूल थोड़े ही दिनोंमें मुर्झाकर झड़ जाते हैं और उसमें बहुत दिनोंतक फल नहीं लगता। ठीक वैसे ही

किशोरावस्थाके क्षणिक उत्तेजना और बलका अनुभव कर जो अविवेकी युवक अपनेको सब प्रकार समर्थ पुरुष मान बैठते हैं और संसारके सब कामोंमें दख़ल देने लगते हैं उनको अपनी दुर्बलता और अयोग्यताका बहुत जल्द पता लग जाता है और वे अपनी तरलता और अधीरताकेलिए खूब पछताते भी हैं।

कविने जो कहा है "छुटी न शिशुताकी झलक, यौवन उमग्यो अंग" अक्षरशः ठीक है। देखनेमें वे अबोध बच्चोंसे मालूम होते हैं। बात बातमें रूठना और मचलना, ज़रासा डाटनेपर आंखोंमें छल छल आंसू लाना, उठने बैठनेमें अलढ़पना, तनिकसे आनन्दमें मस्त हो जाना, झूमकर चलना अट्टहास करना, सब बातोंमें उद्वेग दिखलाना, मुंह लगे बात करना, बड़ोंसे बहस करना, अहंकारमें किसीको कुछ न गिनना, ये सब लक्षण संगति शिक्षाके ऊपर निर्भर नहीं हैं। ये अवस्था पाकर स्वभावतः प्रकट होते हैं। यौवनकालमें जो " आंतरिक परिवर्तन " होते हैं उनके ये बाहरी चिह्न मात्र हैं। पर कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि शिक्षाका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। एक सीमाके भीतर उपदेशसे निस्सन्देह लाभ होता है।

इस सम्बन्धमें जब हम विचार करते हैं तो एक ओर देखते हैं कि छोटी अवस्थामें लड़के कितने भी हठी और अपने मनके क्यों न हों तथा उन्हें समझाना बुझाना और सन्मार्गमें लानेका प्रयत्न कितना ही निष्फल प्रतीत होता हो पर उनसे निराश नहीं हो बैठना चाहिये। दूसरे यह भूलना भी उचित नहीं है कि हमारे हज़ार कहने सुननेपर भी युवकोंकी जिधर प्रवृत्ति होगी उधर ही वे जायंगे। बहुत अंशमें प्रकृतिकी बलवती शक्तियोंको अतिक्रम करना असंभव है। हम अपनी युक्ति लिये हो रहेंगे, और उधर संस्कारके अनुसार युवकोंका भविष्यत निर्धारित हो जायगा।

साथ ही साथ यह भी कहना पड़ता है कि यद्यपि भावी बलवान है पर कौमारकालमें हम अपने बच्चोंके विचारको शुद्ध और चरित्रको निर्दोष रखनेका यथेष्ट उद्योग करें तो उनके ऊंचा नीचा पांव रखने और किंचित कालकेलिए नष्ट होनेपर भी उनकी दशा वैसी शोचनीय नहीं हो सकती। विचारनेकी बात है कि ६-७ वर्षकी अवस्थासे जो बालक उचित व्यायाम, आहार, धार्मिक विचार और आचारमें शिक्षा पा चुका है उसे वर्ष छः महीनेके व्यसन वा दुष्ट व्यवहारसे क्या धक्का पहुंचनेवाला है। एक तो वह बिगड़नेपर भी बहुत शीघ्र चेत जायगा और दूसरे उसपर दुष्कर्मोंका उतना गहरा प्रभाव नहीं पड़ेगा, उसे उतनी क्षति न उठानी होगी।

माता पिता अपने बच्चोंको अच्छासे अच्छा भोजन और वस्त्र देते हैं;उनकी दशा अच्छी नहीं हुई तो आप भूखे रहते हैं पर उन्हें खिलाते हैं; स्वयं चिथड़े लगाते हैं पर उनका अंग ढापते हैं, निद्रा, विश्राम सुखमें, अपने ऊपर कष्ट सहनकर, उन्हें किसी तरहकी कमी नहीं होने देते ; उनके मुखपर किसी प्रकारकी चिंताकी छाया नहीं देख सकते; राह बाटमें उन्हें मृतकतक देखनेसे बचाते हैं। कहां तो अपने संतानकी ओर यह कोमल भाव और कहां उन दूषित क्रियाओंकी ओर जिन्हें सीखकर उनके बच्चे अपने हाथसे अपना खून करते हैं, यह उदासीनता! बहुतेरे मातापिताको तो यह भी सुध नहीं होती कि हमारे लड़कोंको किस बातका ज्ञान हो रहा है और उसका कैसा परिणाम होगा। वह यही कहते रह जाते हैं कि अभी तो हमारे लड़केके दूधके दांत भी नहीं टूटे हैं, वह कुछ नहीं समझता। उधर बालकोंके नसनसमें एक नयी शक्तिका संचार होने लगता है। उसके हृत्पिण्ड, मस्तिष्कमें अद्भुत तेज भर जाता है। "ऊपरसे देखनेसे बालक कैसा ही भोला मालूम पड़ता हो, वास्तवमें वह रहस्योंकी पोटली वा अलौकिक

चमत्कारका घर, वैज्ञानिक घटनाका द्योतक वा वियोगान्त अभिनयका रंगस्थल, दैवाधीनताका प्रमाण वा स्वतंत्रताका परिचय, भयकी तर्जनी, आशाका संकेत, सभी एक साथ साथ है।

ऐसी स्थितिमें हम लोगोंका कर्तव्य स्पष्ट है। जहांतक हो इस यौवनकालके भय और कष्टसे हमें लड़कोंकी रक्षा करनी चाहिये और उस समयतक उन्हें संभाले रहना चाहिये जबतक वे स्वयं अपनेको सम्भालनेके योग्य न हो जायँ। संभव है इसमें हमारा बहुत वश न चले पर इसमें हम उन्हें थोड़ा बहुत भी सहारा दे सकें तो वही बहुत है। बालकोंकी शुभ कामनासे यहां जो कुछ हम सत्यकी चर्चा करेंगे वह अवश्य कल्याणकारी होगी। "स्वल्पमस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" (गीता)

यौवनकालको जीवन संग्रामकेलिए तैयारीका समय समझना चाहिये। उस समय जो भुजाओंमें बल, अंगमें स्फूर्ति, हृदयमें साहस और ओज आता है उनका यह मतलब नहीं है कि अब आप पूरे मर्द हो गये और सयाने आदमियोंकी तरह बेखटके अनेक प्रकारके भोग विलासमें लिप्त हों। उनसे केवल इतनी सूचना मिलती है कि अबसे आप कोरे बालक नहीं रहे। प्रकृति आपको सावधान करती है कि खेलने कूदनेके अलावे आप अपने कर्तव्याकर्तव्यका भी ध्यान रखिये। आर्य धर्ममें उपनयनकी विधि और यवनोंमें "टौन्शर" का संस्कार इस अवसरपर आपको सतर्क करते हैं। गुरूका आदेश हैः—

"उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च॥
मनु-दि ६९

अर्थात् अपने आचार विचारकेलिए अब आप उत्तरदाता हुए। कुलकी मर्यादाकी रक्षा, देश और रीति नीतिका पोषण आपका धर्म हुआ, उसके आदर्शका मान और गौरव बढ़ाना आपका कार्य ठहरा। यदि आप पूछें कि यह भार आपपर क्यों सौंपा गया तो उत्तर मिलेगा कि आप स्वयं अपने शरीरको तौलिये और अंतःकरणको परखिये। आपको जान पड़ेगा कि हालमें आपके स्वभावमें भीतर ही भीतर एक रासायनिक परिवर्तन हुआ है आपके अन्दर जीव-तन्तुकी (germ plasm) क्रिया बदल गयी है, और आपका एक दूसरा जन्म हो गया है। ब्राउन सेकार्ड और बौनकौर्ड (Brown, Sequard, Bonchord) आदि नामी वैज्ञानिकोंके मतसे जबसे यह क्रिया आरम्भ हुई है तबसे आपके देहमें भीतर ही भीतर एक द्रव्य पसीजकर आपके रुधिरमें मिलने लगा है। यह एक अनमोल द्रव्य है तथा इसके मिश्रणकी जितनी महिमा बताई जावे वह थोड़ी होगी। ज़रा सोचिये जब गरम हवाका झोंका लगता है तो आंखोंमें पानी कहांसे भर जाता है। स्वादिष्ट भोजन वा मनोहर पके फलको देखकर मुंहसे राल कैसे बहती है। सुनिये, मनुष्यके शरीरमें जगह जगहपर छोटी छोटी थैलियां होती हैं जिन्हें ग्लैन्ड (gland) कहते हैं। यह अश्रु अथवा राल उसीसे निकलता है। ठीक उसी ढंगसे शरीरके एक भागमें जो जन्मसे ही थैलियाँ थीं पर आजतक नहीं उभरी थीं, वह अब काम करने लगी हैं। इन थैलियों और दूसरी थैलियोंके बीच केवल इतना अन्तर है कि और थैलियोंका पसीजा हुआ द्रव्य बाहर निकलकर नष्ट हो जाता है पर इन थैलियोंका द्रव्य अभी भीतर ही भीतर घुल रहा है और क्रमशः आपके प्रत्येक अवयवमें फैलफैलकर उसे दृढ़ और कान्तिमय बना रहा है। यह उसीका प्रभाव है कि आपकी आंखोंमें इतनी ज्योति है; मुखपर लावण्य है; छातीमें अकड है और चालमें गर्व; अंग अंगमें सुघराई और चुलबुलापन है; जिससे आप मुस्कराकर बात करते हैं; जिधर आप झूमते हुए निकल जाते हैं और सुरसे गुनगुनाते जाते हैं लोग विवश हो आपको घूरते हैं। आप यह समझनेकी भूल न कीजिये कि आपके

नैसर्गिक रूप सुन्दरताके कारण आपपर लोग मोहित होते हैं। यह सारा खेल उस रसका है जो आपके १४वें वर्षमें पैर रखते ही देहमें उमड़ता आ रहा है और इतनी कमनीयता बरसा रहा है। इन सबमें केवल एक बात फीकी है। ज्यों ज्यो दिन बीतते हैं अब आपका वह कोकिलकंठ सुननेमें नहीं आता। धीरे धीरे वह क्षीण मधुर स्वर भारी और मोटा होता जाता है। दूसरे, गालोंपर भूरी लोम राशि कुछ रंग पकड़ती जाती है और अजब नहीं कि १६, १७ लगते लगते वे चिकने काले बाल आपकी ठुड्डियोंको छिपा दें। ये तो ऊपरी और साधारण परिवर्त्तन है। युवकके मानसिक और नैतिक जीवनमें और भी एकसे एक बढ़कर हेर फेर हो जाते हैं। पर यहांपर यदि बिना इस बातके बताये कि इस रसका स्रोत कहांसे और कैसे चलता है हमने उस फेर फारका सविस्तार उल्लेख किया तो कदाचित उसपर कोई विश्वास न करे। इससे लाचारी हमें कहना पड़ता है कि उस रसका निर्गम स्थान पाश्चात्य विद्वानोंके मतसे अण्डकोष है। नाक, कान, जिह्वा इत्यादि इन्द्रियोंके निकट जैसी थैलियां हैं वैसी यहांपर भी हैं। उनमें दो प्रकारका स्राव होता है। एक भीतरी और दूसरा बाहरी। अण्डकोषवाली थैलियोंका बाहरी स्राव सुख स्पर्शसे वा काम चिन्तनसे होता है। पर भीतरी स्राव किशोराव-स्थासे लेकर २५ वर्षतक निरन्तर होता रहता है। जांच करके देखा गया है कि जिन बकरे या घोड़ोंके अण्डकोषकी थैलियां चीरकर निकाल ली गयी हैं वे निर्जीव, भग्न-हृदय और बड़े ही मन्द हो गये हैं। उनका शिर सदा झुका रहता है, वे तनकर खड़े नहीं हो सकते। वे परिश्रम करने-से जी चुराते हैं और लड़नेके समय भाग खड़े होते हैं। देखनेमें शरीर स्थूल और बलवान मालूम होता है पर होते हैं वे एक दम निकम्मे। मनुष्य श्रेणीमें ख़ोजों और हीजड़ोंकी दशा देखिये। वे कैसे नीच और हीन हो जाते हैं। दासत्व और चुगलखोरीमें उनका समय जाता है। थाली बजा बजाकर वे भीख मांगते फिरते हैं। इन सब दोषों-की जड़ कोषकी थैलियोंका न होना है। बचपनके बाद उन थैलियोंसे रस निकलनेका जब समय होता है और वहां थैलियोंका नामतक नहीं रहता तो देह पुष्ट नहीं हो पाती। साहस, सहन-शीलता, स्वाभिमानका स्वभावमें लेश भी नहीं होता। मन्दमति और निष्कर्म रहकर वे कालयापन करते हैं। इस दृष्टान्तसे यही सिद्ध है कि वह रस-स्राव क्या है मानो स्वास्थ्य, और सौजन्यता-का मूल कारण है।

तैरना, स्नान और स्वास्थ्य

[ले०-व्रजराज, बी. एस-सी., एल. एल-बी.]

सब जानते हैं कि हमारे जीवनकेलिए पानी कैसी आवश्यक वस्तु है। पानीको पीकर हम अपने शरीर-के भीतर उसे पहुंचाते हैं। सबको इस बातका अनुभव है कि यदि पानी हमारे शरीरके भीतर उचित समयपर न पहुंचता रहे तो हमारी क्या दशा हो जाय- गरमीमें तो एक घण्टे भी बिना पानी पिये रहना भारत जैसे गरम देशमें असम्भव सा प्रतीत होता है। पानी हमारे शरीरके बाहर भी हमारे कितने कामकी चीज़ है-यह समझाना आवश्यक नहीं। पानी हमारे किन किन कामोंमें आता है और कैसे कैसे हमें आराम देता है यह सब जानते हैं पर यदि हम उन सब रीतियोंकी सूची बनावें और उनकी छान बीन करें तो हमें पता चलेगा कि मनुष्य ने अनेक आविष्कार किये हैं जिनकेद्वारा पानी मनुष्यके आरामकेलिए बड़े बड़े काम करता है। उदाह-रणार्थ रेलगाड़ीका ध्यान कीजिये जहां पानी भाप बनकर मनुष्यकी चाकरी करता है। परन्तु एक विधि ऐसी है जिसका आविष्कार मनुष्यने

Hygiene स्वास्थ्य रक्षा]

नहीं किया और जो स्वाभाविक है, वह एक कसरत–चाहे उसे विनोद कहिये–तैरना है।

साधारणतः और स्वाभाविक रूपसे तैरनेके साथ सुन्दर स्वच्छ और खुली हुई हवाका ध्यान आ जाता है। हम यह नहीं कहते कि बन्द कमरेमें कुण्डमें नहानेसे कुछ लाभ ही नहीं; हमारा मतलब है कि बन्द स्थानमें तैरनेकी अपेक्षा खुलेमें तैरनेसे अच्छी कसरत होती है। बहुत कम लोगोंका ध्यान तैरनेकी कसरतके ओर आकर्षित हुआ है। बहुत कम ऐसी पाठशाला हैं जिनके संचालक विद्यार्थियोंको तैरना सिखलानेकी आवश्यकता समझते हों। यदि एक आध ऐसी पाठशाला हमारे देशमें हैं भी तो वहां तैरना विनोदकेलिए एक ढंग विशेष समझा जाता है। पाश्चात्य देशोंमें प्रायः सभी स्कूल और विश्वविद्यालय तैरनेकेलिए उचित प्रबन्ध करते हैं। यदि भारतकी सुशिक्षित समुदायने किसी दिन अपने बच्चोंकी शिक्षाकी ओर ध्यान दिया तो हमें आशा है कि एक दिन वह भी आवेगा जब हमारे देशका प्रत्येक बच्चा तैरना सीखेगा। हमारी इस समयकी अवस्थाका पता इसीसे चल जायगा कि ऐसा कोई भी नगर हमारे देशमें नहीं है जहां तैरनेका विशेष प्रबन्ध सरकार, म्युनिसिपेलटी अथवा सर्व साधारणकी ओरसे हो। नदियोंके किनारेके नगरों और ग्रामोंके निवासी तो कुछ ऐसे हैं भी जो तैरना जानते हों पर यदि जांचकी जाय तो ज्ञात होगा कि सैकड़े पाछे ३ या ४ से अधिक संख्या ऐसे लोगोंकी न होगी। आवश्यकता इस बातकी है कि जहां तहां सर्वसाधारणकेलिए स्नानागार और स्नानकुण्ड बनाये जायं। लेखकका अभिप्राय है कि जहां खुले तैरनेका प्रबन्ध नहीं हो सकता, जैसे ऐसे स्थानोंमें जहां नदियां नहीं हैं, वहां स्नानागार और स्थानकुण्ड बनवाए जायं। निःसन्देह खुलेमें स्नान करना और तैरना अधिक लाभदायक है और नदी स्नान और भी, पर यदि नदी या नहर न हो तो कुण्ड ही सही, खुलेमें नहाना और तैरना न हो सके तो स्नानागारमें ही सही। नौसिखियोंकेलिए स्नानागार अधिक लाभकारी है। भारतवर्ष प्रायः गरम देश है और यहां स्नागार और स्नाकुण्डोंको ढकनेकी आवश्यकता नहीं; जाड़ेमें भी लोग नदियोंमें तैरकर आनन्द और लाभ उठाते हैं। फिर भी स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों था जाड़ेकी ऋतुकेलिए ढके हुए स्नानागार हों, तो भी उचित है।

स्थिर खारी पानीमें, स्थिर मीठे पानीमें, बहते हुए मीठे पानीमें, नदीमें अथवा समुद्रमें तैराई हो सकती है। खुले हुए तथा ढके हुए खारी पानीके स्नानागारमें पानीके नमकका लाभ अवश्य है पर पानीकी स्थिरता बड़ी भारी कमी है। निःसन्देह तैरने और डुबकी लगानेवाला स्वयं गति उत्पन्न करके जलके स्थिरताकी कमीको कुछ अंशमें दूरकर लेता है और इस प्रकार नमक और रगड़ दोनों ही पा लेता है। नदीस्नान अत्यन्त हितकर है इसीलिए हिंदू अवसर पानेपर नदी स्नान करनेसे नहीं चूकते। चाहिये कि बच्चोंको नदीमें तैरना सिखलाया जाय। हिंदूलोग नदियोंको पूज्य दृष्टिसे देखते हैं और इसीलिए नदीमें कूड़ा करकट और मैला तथा मोहरीका पानी डालना बुरा समझते हैं, यही नहीं हिंदू नदीमें थूकना और कुल्ला करना शिष्ट व्यवहार नहीं समझते। परंतु हमारे देशकी म्युनिसिपेलिटियोंने अभीतक नदियोंके जलको स्वच्छ रखनेकी अवश्यकताको नहीं समझा है। यही कारण है कि नगरकी मोहरी और मैली नाली नदीमें ख़ाली कर देना ही नगरकी सफ़ाईका उचित ढंग समझा जाता है। दुर्भाग्यवश अभी हमारे देशकी म्युनिसिपेलिटियोंकी समझमें यह नहीं आया है कि नगरसे ले जाकर आगेके ग्रामों और नगरोंमें बीमारी और गन्दगी फैलाना नदियोंका काम नहीं है। परमात्माकी दी हुई प्राकृतिक पदार्थोंसे काम लेना और लाभ उठाना

जब हम सीख लेंगे तब नदियोंको स्वच्छ रखनेका मन्तव्यभी निश्चित हो जायगा और तब नदी-स्नान और तैरना बिलकुल हानिरहित हो जायंगे। अभी तो बड़े बड़े नगरोंमें श्रीगंगा अथवा श्रीजमुनामें स्नान करनेवाला स्वास्थ्य विद्याके नियमोंसे विज्ञ पुरुष नदीमें उतरते घबड़ाता है। परंतु यह कठिनाई झीलों और पोखरोंमें उपस्थित नहीं होती यदि वह शुद्ध और स्वच्छ रक्खे जांय।

लन्दन जैसे विशाल नगरमें भी सर्वसाधारणकेलिए स्नागारोंकी बड़ी कमी है। तैरने योग्य स्नानकुण्ड तो बहुत ही कम हैं। चाहिये तो यह कि यथासम्भव तैरने और स्नान करनेकेलिए सुविधाएं पैदा की जांय। रक्षा और परदेका उचित प्रबन्ध करके बच्चों और स्त्रियोंको तैरना सीखनेकेलिए उद्यत करना चाहिये। नगरोंकी दूषित वायुमें रहनेसे स्वास्थ्यको जो हानि पहुंचती है उसके प्रभावसे बचनेकेलिए तैरना शरीरपोषक और शक्तिदायक कसरत है इसलिए यदि सम्भव हो तो म्युनिसिपेलिटीकी ओरसे ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि स्नागारोंमें जानेकेलिए ट्राम गाड़ियोंका भी सस्ता किराया लिया जाय। हमारे देशमें तो बहुत ऐसे मनुष्य होंगे जिन्होंने स्त्रियोंके तैरनेकी बात भी न सुनी हो। यदि लेखक आग्रह करे कि बालिकाओंको तैरना सिखलानेकेलिए प्रत्येक पुत्री पाठशालामें कुछ न कुछ प्रबन्ध होना चाहिये तो पाठकगण मुसकरा कर इस विषयको टालनेके सिवा कुछ न करेंगे। परन्तु प्रत्येक स्वास्थ्य विद्या विशारदका धर्म और कर्त्तव्य है कि इन बोलते हुए गूंगोंकेलिए जो कुछ बन पड़े करे। भारतवर्षकी तो कौन कहे लन्दन नगरके सुविख्यात सर्पेण्टाइन नामक स्नानागारके नहानेवाले प्रायः सबही पुरुष हैं, स्त्रियां देखनेमें भी नहीं आतीं। राष्ट्रका आधा अंग इस प्रकार वंचित ही रहा। भारतीय राजनीतिज्ञों तथा स्वदेश प्रेमियोंका कर्तव्य है कि जितनी जल्दी हो सके इस अभावको दूर करके भावी राष्ट्रकी माताओंके बिनोद और कसरतका उचित प्रबन्ध करें। जैसे शिक्षा, सेना, व्यायाम इत्यादिकेलिए मंत्री होंगे यदि उसी प्रकार राष्ट्रकी स्वास्थ्यरक्षाकेलिए एक स्वास्थ्य मंत्री भी हमारे देशमें हुआ तो वह निःसन्देह इस बातपर ध्यान देगा कि राष्ट्रकी माताओं और संतानकेलिए कोई ऐसा प्रबन्ध किया जाय जिससे तैरने और नहानेका सुरक्षित और समर्याद प्रबन्ध हो जाय। पर न जाने कब वह दिन आवेगा।

कुण्ड स्नानसे अधिक लाभदायक नदी स्नान और इससेभी अधिक लाभदायक समुद्र-स्नान है। जिन्होंने तीर्थयात्रा की है और श्रीजगन्नाथजीके दर्शनको पुरी गये हैं अथवा परमपूज्य श्रीकृष्णकी नगरी द्वारिकाकी सुन्दर सड़कोंपर टहले हैं उनको समुद्र-स्नानका सुअवसर प्राप्त हुआ होगा। समुद्रतटके निवासी तो जब चाहें समुद्रमें डुबकी लगा लें तथा आधुनिक नगरों जैसे कलकत्ता बम्बईमें जो लोग जा बसे हैं वह भी भूले भटके कभी कभी समुद्र-स्नानके आनन्दको लूट सकते हैं। जिन लोगोंको कभी ऐसा अवसर प्राप्त हुआ है वही भले प्रकार इस आनन्दको समझ सकते हैं। पुराने हिंदू भी कैसे समझदार और प्रकृति देवीके सौन्दर्य्योपासक थे, जिन्होंने तीर्थोंकी मर्यादा बांधीं? क्या ही अच्छा हो यदि हम भी अपने पुरखोंकी चलाई हुई रीतियोंको समझें और उनका अनुकरण करें?

वर्षा और सिंचाई

[ले०—हरनारायण बाथम, एम. ए.]

शास्त्रकार जलको जीवन कहते हैं। इसलिए उसका दूसरा नाम आपोनारायण है अर्थात् जल ही परमेश्वर है। जल प्राणी मात्रकेलिए आवश्यक है यदि जल न हो तो संसारमें कुछ भी पैदा न हो।

Agriculture कृषि विद्या]

जलकेद्वारा पौधे अपनी खुराक पृथ्वीसे लेते हैं। यदि पृथ्वीमें जल न होता तो पौधे अपनी खुराक न पा सकते। फिर खुराक बिना वे ज़िन्दा कैसे रह सकते हैं। भूमि द्रव्यके परमाणुओंसे बनी है। ये परमाणु एक दूसरेसे मिले हुए नहीं रहते बल्कि उनके बीचमें कुछ ख़ाली जगह रहती है, जिसमें वायु और जल, रहता है। जल परमाणुके चारों ओर चिपका रहता है। पौधेकी जड़ ज़मीनमें रहती है। जड़के छोटे रेशे परमाणुओंकी ख़ाली जगहमें घुस जाते हैं और परमाणुओंमें जो पानी चिपटा हुआ है उसको अपनी ओर खींच लेते हैं। इस पानीके साथ साथ अन्य पदार्थ भी जो पानीमें गले हुए हैं वृक्षके भीतर पहुंचकर उसके सब अंगोंमें जहां जैसी ज़रूरत हुई फैल जाते हैं। जड़ भूमिसे बराबर पानी खींचती रहती है, जो वृक्षके अवयवोंके बननेमें ख़र्च होता है और बाक़ी भाप बनकर पत्तियोंके छेदोंसे हवामें उड़ जाता है। यदि भूमिमें उतना जल जड़ोंको न मिले जितना पत्तियोंकेद्वारा उड़ता है तो वृक्ष सूखने लगता है और फिर उसमें फलफूल नहीं होता। इसी कारण खेत करनेकेलिए किसानका ध्यान आरम्भसे ही जलकी ओर जाता है और वह विचारता है कि किन किन रीतियोंसे जल मिल सकता है।

पहला और मुख्य उपाय जलकेलिए वर्षा है, दूसरा छोटी छोटी नदी और झील, तीसरा तालाब चौथा नहर और पाँचवां कुएं हैं।

यद्यपि बरसातके बारेमें सभी लोग कुछ न कुछ जानते हैं तौ भी उसका कृषि-सम्बन्धी कुछ हाल यहां लिखना आवश्यक है।

पहले यह मालुम करना चाहिए कि मेघ किसे कहते हैं और वे किस तरह बनते हैं? जब किसी कटोरे अथवा थालीमें पानी भरकर रख दिया जाता है तब वह पानी भापकी शकलमें होकर हवामें मिल जाता है। इसी प्रकार जब कोई गीली वस्तु जैसे कपड़े धोती इत्यादि हवामें फैला दी जाती है तब हवा उसका पानी सोख लेती है और कुछ देर बाद गीली वस्तु सूख जाती है। इससे मालूम हुआ कि पानी सदा और सर्वत्र उड़ उड़कर भापके रूपमें हवासे मिला करता है और हवा ही इसे जिधर चाहती है उधर ले जाती है। यह देखा जाता है कि गरमियोंमें चीजें बहुत जल्दी सूख जाती हैं, जाड़ोंमें कुछ देर और बरसातमें बहुत देरमें सूखती हैं। इससे सिद्ध है कि और मौसमके मुक़ाबले गरमियोंमें सबसे ज़ियादह पानी नदी, झीलों तथा समुद्रोंसे उड़कर हवामें मिलता है। हवा सदा चला फिरा करती है और उसके साथ यह भाप रूपी जल भी घूमा करता है।

अहरों तथा अलाओंके पास बैठनेसे मालूम होता है कि गरम हवा ऊपर चढ़ती है और उसकी जगहमें ठंडी हवा आ जाती है जो आगको प्रज्वलित रखती है। इसी प्रकार गरमियोंकी गरम हवा पानीकी भापको लेकर ऊपर चढ़ती है। जब ये हवा ऊपरके ठंडे स्थानोंमें पहुंचती है तब वही भाप जलके रूपमें हो जानेके कारण मेघ बनकर दिखाई देने लगती है। पहाड़ोंके ऊपरकी हवा मैदानोंकी हवासे अधिक ठंडी होती है इसलिए वहां ठंडक पानेसे भाप जमकर जल हो जाती है। यदि एक आबख़ोरा या गिलास ऊपरसे अच्छी तरह कपड़ेसे पोंछ डाला जाय और फिर उसमें थोड़ी बरफ़ रख दी जाय तो थोड़े समय पीछे पानीकी नमी और कुछ बूंदें भी गिलासके ऊपरी भागपर दिखाई देंगी। यह पानीकी नमी और बूंदें कहांसे आईं, गिलास फोड़कर तो निकल नहीं सकतीं। यह वही पानीकी भाप है जो गरमीके कारण भापके रूपमें होकर हवामें मिल गयी थी अब ठंडक पानेसे अपने पूर्व जल रूपमें आ गई है। बस इसी तरहसे मेघ आकाशमें बनते हैं और जब उनका भार इतना हो जाता है कि हवा उनको साध नहीं सकती तब वे जलके रूपमें पृथ्वीपर गिरते हैं और हम कहते हैं कि वर्षा हो रही है।

जब यही जलवाले मेघ और ऊपर ऐसे ठंढ़े स्थानपर पहुंच जाते हैं जहां सरदीके कारण जल जम जाता है और जब हवा इनके भारको साध नहीं सकती है तब वे ओलोंके रूपमें भूमिपर गिरते हैं ।

हवा पानीको अपनेमें सोख लेती है और जितनी अधिक गरमी पड़ती है उतना ही अधिक जल हवा सोखती है ; यदि यही जलवाली हवा किसी प्रकारसे ठंडी हो जाय तो वह उस अधिक जलको अपनेमें नहीं रख सकती बल्कि उसको छोड़ देती है ; जैसे बरफ़वाले गिलासमें दिखाया है ।

जाड़ोंमें दिन और रातके तापक्रममें (temperature) बहुत अन्तर होता है। दिनमें गरमी होनेके कारण हवा अपनेमें पानीको सोखती है पर जब रातमें अधिक ठंडक होती है तब हवा जलकी अधिकताको अपनेसे अलग कर देती है, वही जल हमको ओसके रूपमें जगह जगह सबेरे दिखाई देता है। जब रातको पानी जमने लायक़ ठंडक पड़ती है तब यही ओस पालेका रूप धारण कर लेती है ।

इन प्रान्तोंमें वर्षा दो प्रकारकी होती है । एक तो गरमीकी वर्षा जो चैत्र वैशाष जेष्ठ आषाढ़से कुआँरतक रहती है । दूसरी जाड़ेकी वर्षा जो कातिक अगहन पौष माघमें होती है और जो गरमीकी वर्षाके बनिस्बत बहुत कम और बहुत थोड़े समयकेलिए होती है । इसी कारण यहांकी फसलें भी दो प्रकारकी होती हैं, एक ख़रीफ़ दूसरे रब्बी । ख़रीफ़की फसल असाढ़में बोई जाती है जब गरमीकी वर्षा आरम्भ होती है। इस फसलके पौधोंको बहुत गरमी और बहुत पानीकी आवश्यकता होती है परन्तु रब्बीके पौधोंको ज़्यादा ठंडक और कम पानीकी आवश्यकता है ।

अकसर लोग जब जल ज़्यादा होता है तब वर्षाको अच्छा कहते हैं और जब जल कम होता है तब उसको ख़राब बताते हैं, पर इस ज़्यादती या कमीसे किसानको विशेष लाभ-हानि नहीं है उसकेलिए बरसात जभी अच्छी है जब जल निम्नलिखित समयोंपर होता जाय ।

पहले थोड़ा जल ज्येष्ठके अन्तमें अर्थात् आषाढ़के आरम्भमें हो जाना चाहिए जिससे खेतोंका जुतना शुरू हो जाय ऐसी कहावत भी है चढ़ते बरषे आर्द्रा उतरत बरषे हस्त। कितनो राजा डांड़ ले आनंद रहे गृहस्थ ॥ उसके बाद आषाढ़के मध्य भागमें एक गहरा जल हो जाय जो भूमिको अच्छी तरह नर्म करदे और आसानीसे जुत बो जाय। दशी आषाढ़ी कृष्णको मंगल रोहिणी होय। सस्ता धान विकाय गो हाथ न छुइ है कोय ॥ आषाढ़ मास पूनो दिवस बादल घेरे चन्द । तो भड्डर जोशी कहे होवे परमानन्द। आषाढ़ पूनो दिवस गाज बीज बरसन्त। भाषैं लक्षण कालिका आनन्द मानो संत। फिर श्रावण और भादों भर खूब गहरे जल चार चार पांच पांच रोज़ बाद होने चाहिएं यदि आसमान १० या १२ दिनोंकेलिए खुल जाय तो फ़सलको हानि पहुंच जाती है। कुआरमें केवल रब्बीकी फ़सल बनानेकेलिए दो पानोकी ज़रूरत है । रब्बीकेलिए कातिक और अगहनमें बादल बिलकुल साफ़ रहना चाहिए परन्तु पौषके आरम्भमें एक हलका पानो लाभदायक होता है, इसकेलिए कुछ मसलें भी हैं। पूस अंधेरी सप्तमी भिन २ बादल होय। सावन सुदी पूनो बरषा अच्छी होय ॥ पूस बदी दसमी दिवस बादल चमके बीज । तो बरषे भादों भरे साधो खेलो बीज ॥ उसके बाद आधे माघमें भी एक पानी हो जाना चाहिये और फिर पानीकी कुछ ऐसी ज़रूरत नहीं और यदि एक आध झाला और हो जाय तो कुछ नुक़सान भी नहीं। जाड़ेमें मेघ और जलको बहुत समयतक नहीं रहना चाहिए बल्कि बरसनेके बाद एकदमसे खुल जाना चाहिए नहीं तो वृक्षोंमें गेरुही इत्यादिकी बीमारियोंके फैल जानेका भय रहता है जैसे इस कहावतमें कहा है "नीचे ओदर उपर बदराई,

घाघ कहैं अब गेरुई आई"। बाक़ी जाड़ेका मौसम सूखा होना चाहिए और पछिआवकी हवा चलना चाहिए नहीं तो फ़सलोंको हानि पहुंचती है। "माघै पूस बहे पुरवाई, तब सरसोंको माहू खाई। फागुन माहिं बहे पुरवाई तब गेहूंमा गेरुई धाई"। अनुभवी किसानोंकी सम्मति यही है कि उत्तम खेतीकेलिए उपरोक्त समयोंपर जल वृष्टि होना चाहिए परन्तु ऐसी वर्षा होना ईश्वरके हाथमें है इसमें किसान कुछ नहीं कर सकता, अपनी इच्छा और अनुभव प्रगटकर सकता है।

जल ईश्वरकी इच्छाके अनुसार समय कुसमय-पर हुआ ही करता है परन्तु किसानको रब्बीकी फ़सलमें जलके दो रूपान्तरसे मुक़ाबला करना पड़ता है और उनके सामने किसानकी कुछ भी नहीं चलती। वे दो शत्रु हैं एक पाला दूसरे ओला। इनके सामने हिन्दुस्तानी किसान कुछ नहीं कर सकता। वह केवल हाथपर हाथ रक्खे बैठा रहता है परन्तु पश्चिमीय कृषकों और विज्ञान-वेत्ताओंने इनके मारनेका यत्न निकाला है।

इटली देशमें हर वर्ष ओलोंसे क़रीब ६ व ७ करोड़ रुपयोंकी हानि अंगूरकी काश्तको हुआ करती थी। सं० १६३६ वि० में इटालीके एक वैज्ञानिकने अनुभव किया कि उन जगहोंकी हवा, जहां बन्दूक़ तथा तोपें छुड़ानेका अभ्यास होता है खूब हिल जाती है और उसमें धुआं भर जाता है। इसके बाद अमेरिकामें कुछ विज्ञान-वेत्ताओंने इस बातकी ईजादकी कि बिना बादलके पानी बरसे परन्तु उन्हें पूरी सफलता न हुई। सं० १६५२ वि० में आष्ट्रिया देशके एक किसानने एक दिन बड़ी ज़ोरोंसे बादलको आते देखा और उसे ओलोंका भारी भय हुआ, तब उसे यह सूझी कि जैसे तोपोंसे मनुष्य बड़े बड़े दुश्मनों और क़िलोंको मारकर गिरा देते हैं उसी तरह मैं आज इन ओलोंके बादलोंको मारकर गिरा दूंगा। बस उसने बादलोंके ऊपर तोपें दागना आरम्भ कर दिया जिसका फल यह हुआ कि सारे बादल एक झाला पानी बरसाकर ओलों सहित भाग गए।

इसके बाद जब जब उसको ओलोंका भय होता था तब वह तोपोंको छुड़ाता था और मेघ या तो बिलकुल उड़ जाते थे या थोड़ासा पानी छोड़ जाते थे परंतु ओले कभी नहीं गिरने पाए। कई अन्य देशोंमें ऐसा ही किया गया परन्तु हर स्थानमें एकसा फल नहीं हुआ। इस ईजादसे जैसी सफलता घाटियों इत्यादि स्थानोंमें हुई वैसी मैदानमें नहीं हुई। इस कारण अभी इसपर भरोसा नहीं किया जाता।

चौथी रीति खेतोंको सींचनेकेलिए नहर है। नहर किसी बड़ी नदीसे निकाली जाती है। इस नहरसे और छोटी छोटी नहरें निकलती हैं। फिर इनसे ज़िमीदार अथवा काश्तकार अपनी नालियें निकालते हैं जो कि खेतोंमें पानी पहुंचाती हैं। ये नालियें कहीं ऐसी ख़राब होती हैं कि बहुतसा पानी बेकार जाता है यहांतक कि किसानको पूरी तौरसे पानी नहीं मिलता। यदि यही नालियें ठीक बनी हों तो पानी बेकार बरबाद न होने पाए। इसकेलिए हर ज़िमीदार और काश्तकारको चाहिए कि नालियें अच्छी बनावे। अगर उससे यह न हो सके तो मुहकमे नहरके किसी अफ़सरसे सलाह ले।

दूसरी रीति सिचाईकी छोटी छोटी नदियें और झीलें हैं। इनके पानीका व्यवहार गांव गांवके रिवाजके अनुसार होता है। झीलोंमें इतना पानी नहीं होता कि रब्बीकी फ़सल पूरी तौरसे सिंच सके। इसके पानीसे रब्बीकी फ़सली सिचाई तो हो जा सकती है अथवा उन धानोंकी सिचाई हो सकती है जो देरमें बोए गए हैं परन्तु दूसरी सिंचाई मुश्किलसे होती है। यदि बरसातमें कम पानी हुआ तो रब्बीकी फ़सली सिंचाईमें भी मुश्किल पड़ जाती है।

तीसरी रीति तालाब है। इन प्रान्तोंमें तालाब कई प्रकारके होते हैं। बुन्देलखंड मिर्ज़ापुर, इलाहाबाद, और आगराके ज़िलोंमें जहां पहाड़ियें

हैं वहां बरसातका पानी रोकनेकेलिए घाटियोंमें बांध बांध दिए जाते हैं अथवा दो पहाड़ियोंके बीचमें जो गढ़े हैं उनमें भी पानी भर जाता है। इस जलसे वे ही खेत सींचे जा सकते हैं जो तालाबसे नीची जगहमें हैं। इसके अतिरिक्त इन तालाबोंके पासकी ज़मीन जितनी नीची ज़मीन है वह सब नर्म रहती है और वहांके कुओंमें पानी भी खूब भरा रहता है। परन्तु ऐसे तालाब हमवार भूमिपर नहीं मिलते। ऐसी ज़मीनपर तालाब खोदे जाते हैं और जो मिट्टी निकलती है वह इसीके किनारे किनारे लगा दी जाती है। इसलिए यह तालाब उथले ही रहते हैं क्योंकि खोदाईकी क़ीमत गहराईके साथ बढ़ती जाती है। इसीसे इन तालाबोंमें बहुत पानी इकट्ठा नहीं होता। और जो होता भी है वह जल्दीसे उठ जाता है। अतएव ऐसे तालाबोंसे ज़्यादा सिंचाई नहीं हो सकती। हां ऐसे तालाब यदि गांवके पास हों तो उनसे आदमियों और जानवारोंका बहुत निस्तार होता है।

जिस साल अनावृष्टि होती है उस साल ऐसे तालाबोंसे खेतीकी रक्षा कुछ नहीं हो सकती है, परन्तु औसत दर्जेकी वर्षाकी सालमें रब्बीके फ़सलको वे एक बार पानी अच्छी तरह पहुंचा देते हैं। ऐसे तालाब बनानेवालेको इस बातकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि तालाबका तली या पेंदेमें एक मोटी तह चिकनी मिट्टीकी आ जाय जिससे उसमें पानी ठहरे। अकसर देखा गया है कि तालाबको गहरा करनेकेलिए चिकनी मिट्टीकी तह खोदकर फेंक दी गई और पेंदेमें बालूकी तह रहने दी जिसका नतीजा यह हुआ कि तालाबमें पानी ज़्यादा देरतक न ठहर सका।

जलका पांचवां अति उत्तम स्रोत कुआं है। जब कहीं कुआं खोदा जाता है तो यह देखनेमें आता है कि पहले तो सूखी मिट्टी मिलती है उसके बाद कुछ नर्म मिट्टी निकलती है और जैसे ही गहराई बढ़ती जाती है वैसे ही नमी भी बढ़ती जाती है, फिर एक जगह ऐसी आ जाती है जहां थोड़ा थोड़ा पानी रसिया रसियाकर चूने लगता है जिसको चुआन कहते हैं। यदि और थोड़ा आगे खोदा जाता है तो कुआं पानीसे भर जाता है इस पानीके निकाल लेनेसे दूसरा नया पानी कुएंकी दीवारोंसे झरकर उसी जगहको भर देता है। ऐसे कुओंके बनानेमें ज़्यादा लागत नहीं लगती परन्तु इनसे पानी भी ज़्यादा नहीं मिलता। क्योंकि दीवारोंसे जब पानी झरता है तो उसके साथ साथ दीवारोंकी मिट्टी भी कट कटकर नीचे जमा होती जाती है यहांतक कि झरनोंको बन्द कर देती है। इस कारण ऐसे कुए चिरस्थायी नहीं होते, इसके अतिरिक्त ऐसे कुओंमें पानी बहुत कम जमा होता है। कुआं खोदनेके समय एक और बात देखी जाती है कि ज़मीनके भीतर कई प्रकारकी मिट्टीकी तहें निकलती हैं, जैसे मिट्टीकी तह, बालूकी तह। उपरोक्त झरनोंके नीचे यदि कुआं और ज़्यादा गहरा खोदा जाय तो एक बालूको तह ऐसी निकलती है कि जिसमें पानी खूब भरा रहता है और इस जगह पहुँचनेसे कुओंमें पानीकी बम्ब फूट जाती है पानी बड़ी ज़ोरोंसे ऊपर निकलने लगता है, और तमाम कुआं पानीसे भर जाता है। ऐसे कुओंमें पानी बहुत रहता है और सूखा पड़नेपर भी इनसे सिंचाईका काम अच्छी तरहसे लिया जा सकता है। परन्तु इनमें पानीका वेग ज़्यादा रहनेसे इनकी दीवारोंके बैठ जानेका भय भी ज़्यादा रहता है। इस कारण गलो बहुधा कंकड़, पत्थर, बालू इत्यादि बोरोंमें भर कर तुरंत कुओंमें डालकर इस सोतेको बन्द कर देते हैं। यदि ऐसे कुओंकी दीवारें बिलकुल चिकनी मिट्टी अथवा द्रुमटकी हैं तो उनके बैठनेका इतना भय नहीं रहता और कुआं बहुत दिनोंतक बना रह सकता है। तब भी जो पानी दीवारोंसे चू कर निकलता है और जो

पानी खींचनेके समय कुओंमें गिरता है दोनों मिलकर दीवारोंकी मिट्टीको धीरे धीरे गलाकर नीचे गिराते जांयगे और यदि कुओंकी दीवार बालूकी है तो कुआं शीघ्र बैठ जा सकता है। इस कारण किसान लोग ऐसे नुक़सानसे बचनेकेलिए कहीं कुओंकी दीवारोंमें अरहरकी बीड़ बनाकर लगा देते हैं, और कहीं कहीं लकड़ीके बेलन अथवा ईंटोंको लगा कर दीवारोंको बचाते हैं। ऐसे कुओंको चिरस्थायी रखनेकेलिए दो तरीक़े हैं, एक तो यह कि एक लोहेका नल पानीके पेंदे-से लेकर जगतसे तीन फ़ुट ऊपरतक लगवा दें और कुएंका मुंह बन्द करके ऊपर पानी निकाल-नेका पम्प लगा दें। जब पानी निकालनेकी आवश्यकता हो तो पम्प खोल दें और इच्छानु-सार पानी ले लें जब ज़रूरत नहो तो पम्प-को बन्द कर दें। दूसरा तरीक़ा यह है कि कुएं-को शुरूसे अख़ीरतक पक्का बनवा दें परन्तु जब ऐसे पक्के कुएं बनवाना हों तब कई बातोंपर ध्यान रखना चाहिए। पहली बात यह कि कुआं खोदनेवाले अपने काममें बहुत होशियार हों यदि ऐसा नहीं है तो मुमकिन है कि कुआं टेढ़ा बेढ़ा खुद जाय जिसका नतीजा यह हो कि वह बैठ जाय। तीसरी बात यह कि कुएंकी दीवा-रोंकी ईंट जिस गारेसे जोड़ी गई हैं वह अच्छा होना चाहिए क्योंकि जब जल निकाला जायगा तब जल कुछ न कुछ दीवारोंके ऊपर गिरेगा जो गारेको गलाकर नीचे ले जायगा। जब गारा छूट जायगा तो मुमकिन है कि ईंटे भी अपनी जगह छोड़ दें और ईंटोंके हटनेसे कुएंके बैठनेमें कम संदेह रह जायगा। तीसरी और बहुत ज़रूरी बात यह है कि जिस जगह कुआं खोदना हो वहां यह मालूम होना चाहिए कि वह बालूकी तह जो पानीसे भरी हुई है बहुत दूर तो नहीं है और इस-के ऊपर चिकनी मिट्टीकी तह काफ़ी मोटी है कि जो अपने ऊपर कुएंकी पक्की दीवारोंको साध लेगी। इस चिकनी मिट्टीकी पर्तको मोट कहते हैं। इस बातके जाननेवाले अकसर देहातोंमें मिलते हैं और यदि न मिलें तो सरकारी कृषिवि-भागसे सहायता लेनी चाहिए, क्योंकि इस विभा-गने बड़े बड़े होशियार कुआं खोदनेवाले नौकर रक्खे हैं जिनका काम केवल कुआं खोदनेका है और जहां लोग बुलाते हैं वहां वे जाते हैं।

मामूली तरहसे जल नीची जगहमें होता है और खेत ऊँची जगहमें। कहीं कहीं ऐसा देखा जाता है जैसे कि पहाड़ी जगहोंमें कि तालाब ऊंचेपर हैं और खेत नीचेपर हैं। अथवा कहीं कहीं नहर ऊंची जगहपर है और खेत नीचेपर। ऊंची जगहसे नीची जगहको जल लाना बहुत सरल है परन्तु नीचेसे ऊपर पानी ले जानेमें कुछ कठिनता पड़ती है। इसकेलिए मनुष्योंने अनेक रीतिएं निकाली हैं परन्तु प्रायः निम्नलिखित उपाय-का प्रयोग खेतोंकी सिंचाईमें होता है। सबसे गहरी जगहमें अर्थात् कुओंसे पानी निकालनेकेलिए चरसेका प्रयोग होता है। यह दो प्रकारका होता है एक कीली और दूसरा लागौर। कीली चरसोंके-लिए दो जोड़ी बैल इस्तेमाल होते हैं। एक जोड़ी पैढ़ीके नीचे दूसरी जोड़ी पैढ़ीके ऊपर खड़े किए जाते हैं, जब चरसेमें पानी भर जाता है तो रस्से-का सिरा ऊपरवाले बैलोंके जुएंमें अटका दिया जाता है और ये पानीसे भरा हुआ चरसा लेकर नीचे आते हैं और उसी समय नीचेवाली जोड़ी ऊपर चलना आरम्भ करती है। जब यह पहली जोड़ी नीचे पहुंचती है तब कीली खींच लेते हैं और रस्सा जुएंसे अलग हो जाता है, अलग होते ही वह ऊपर चढ़ जाता है और पुर पानीसे भर जाता है फिर रस्सा दूसरी जोड़ीके जुएंमें बांध दिया जाता है और वे उसको लेकर नीचे आते हैं और नीचे वाली जोड़ी ऊपर आती है बस ऐसे ही बार बार हुआ करता है। लागौर चरसेमें केवल एक जोड़ी बैल काम करते हैं। रस्सा जुएंमें बांधा रहता है और बैल ऊपर नीचे जाते आते हैं और उसके साथ ही साथ पुर भी

कुएंके भीतरसे पानी भर कर ऊपर लाता है और फिर भीतर जाता है। परन्तु इस चरसेमें बैलोंको परिश्रम बहुत करना पड़ता है और कीली चरसेके बनिस्बत इसमें पानी भी कम निकलता है।

चुम्बक

[ले० शालग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

चुम्बकीय हटाव तथा दिक्सूचक।

पाठकोंको याद होगा कि चुम्बकका चुम्बकत्व दूरकरनेकेलिए यह बतलाया गया था कि उसको गरम करके चुम्बकीय पूर्व पश्चिम दिशामें रखकर ठंडा कर लो। उस समय उनके चित्तमें यह प्रश्न अवश्य ही उठा होगा कि यह चुम्बकीय पूर्व पश्चिम दिशा कहांसे आयी। इस लेखमें उसका उत्तर देना चाहते हैं।

पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण चार दिशाओंमेंसे दो पूर्व और उत्तर-दिशाओंमें एक एक चीज़ ऐसी है जिसके देखनेसे दिशाका पता चल जाता है—पूर्वमें सूर्य्य और उत्तरमें ध्रुव। दोनों दिशाओंका पता चलानेकी तो आवश्यकता नहीं है केवल एकके पता चलनेसे चारोंका पता चल जाता है, इसीलिए सूर्य्यको दिनमें और ध्रुवको रात्रिमें लोग काममें लाते हैं। यदि एक स्थानपर दो रेखाएं एक उत्तर दक्षिण और दूसरी पूर्व पश्चिम दिशामें खेंची जावें तो वह एक दूसरेसे समकोण बनायेंगी, इसीलिए यदि दो रेखाओंमेंसे एक खेंच ली जावे तो दूसरी भी खेंची जा सकती है। इनमेंसे उत्तर दक्षिण दिशाकी रेखाका खेंचना सुलभ है। ध्रुव* अपनी जगह बिलकुल स्थिर रहता है परन्तु सूर्य्य २२ मार्चसे २३ सितम्बरतक सायनके उत्तरमें और २३ सितम्बरसे २२ मार्चतक सायनके दक्षिणमें रहता है। २२ मार्च और २३ सितम्बरको भी जब सूर्य्य सायनमें होता है केवल भूमध्य रेखावाले स्थानोंपर पूर्व पश्चिम रेखा खेंची जा सकती है। पर उन स्थानोंपर जो भूमध्य रेखापर नहीं हैं बिना इस बातके जाने कि वह कितने उसके उत्तर या दक्षिणमें हैं यह रेखा नहीं खेंची जा सकती। उत्तर दक्षिण दिशावाली रेखा कोई भी मनुष्य इस प्रकार अपने स्थानपर खेंच सकता है। एक बारीक छेदवाली नली या दूरबीन न को एक डट्टे में इस प्रकार लगाओ कि वह ऊर्ध्वतलमें घुमायी जा सके। इसमेंसे ध्रुव तारेकी ओर देखो, इसको इसी ही दिशा मेंरक्खे हुए इसके बिलकुल नीचे एक रेखा उ द खेंच लो यह उत्तर दक्षिण दिशा वाली रेखा हुई। यह पृथ्वीके अक्षके समानान्तर होगी और उस ऊर्ध्वतलका (याम्योत्तर) पृथ्वीपर चिह्न है जो उस स्थान और पृथ्वीके दोनों ध्रुवोंमेंसे गुज़रता है। इस रेखासे समकोण बनाती हुई जो रेखा खेंची जावेगी वह पूर्व पश्चिम दिशामें होगी।

न

द उ
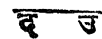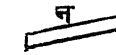
चित्र नं० १

चुम्बकके दोनों केन्द्रोंको जोड़ती हुई रेखाको चुम्बकीय अक्ष कहते हैं। स्वतंत्रतापूर्वक घूमनेवाले चुम्बकका चुम्बकीय अक्ष सदैव एक ही दिशामें रहता है। उस उर्ध्वतलको जिसमें यह रेखा है चुम्बकीय याम्योत्तर कहते हैं। इस रेखाकी दिशाको चुम्बकीय उत्तर दक्षिण दिशा कहते हैं। इस रेखासे समकोण बनाती हुई जो रेखा खेंची जावे उसे चुम्बकीय पूर्व पश्चिम दिशाकी रेखा कहना चाहिये। चुम्बकीय उत्तर दक्षिण दिशावाली रेखा और उत्तर दक्षिण दिशावाली रेखा कोई कोई स्थानोंपर मिलती हैं और बाकी स्थानोंपर भिन्न होती हैं। इन दोनों रेखाओंके बीचके कोणको चुम्बकीय हटावका कोण कहते हैं। कहीं यह हटाव पूर्वकी ओर होता है और

* वास्तवमें ध्रुवके पास एक ऐसा तारा है जो बिलकुल अचल है, ध्रुव तो कुछ चलता है।

Physics भौतिक शास्त्र]

कहीं पश्चिमकी ओर। प्रयागमें यह पूर्वकी ओर है और हटावका कोण १°.२५' है। इस हटावके मालूम होनेसे चुम्बकसे दिशाका पता हर समय और हर ऋतुमें बड़ी आसानीसे लग सकता है। चुम्बकसे चुम्बकीय उत्तर दक्षिण दिशाका पता चला और हटाव मालूम होनेसे उत्तर दक्षिण दिशाका पता चल गया। यह हटाव स्थिर नहीं है किन्तु प्रतिदिन प्रतिवर्ष बदलता रहता है। कुछ कालतक एक स्थानपर पूर्वीय रहता है फिर पश्चिमीय हो जाता है। ऐसा समझा जाता है कि यह हटाव ९६० वर्षमें एक ओर पूर्व या पश्चिम महत्तम दिशासे चलकर दूसरी ओर (पश्चिम या पूर्व) भी उतना ही होकर फिर पहली ओर उतना ही हो जाता है। इसकी जांचका अभी अवसर नहीं मिला है क्योंकि इस सम्बंधमें वैज्ञानिकोंको काम करते हुए केवल ३०० वर्ष हुए हैं।

चुम्बकमें चुम्बकीय अक्ष बड़े भारी महत्वकी चीज़ है। यह चुम्बकके अक्षसे बहुत चुम्बकोंमें भिन्न ही मिलेगा और प्रयोगोंद्वारा निकालना पड़ेगा इसीलिए वह प्रयोग जिससे यह मालूम हो सकता है नीचे दिया जाता है।
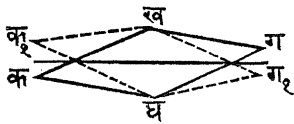
चित्र नं० २

एक चुम्बकको डोरेसे लटकाओ और उसीके आकारका एक चित्र पेंसलसे बिलकुल नीचे एक कागज़के टुकड़ेपर बना लो (चित्रमें क ख ग घ बनायी गयी है)। फंदेमें चुम्बकको इस प्रकार लौट दो कि ऊपरका पृष्ठ नीचे और नीचेका पृष्ठ उपर हो जावे और फिर एक दूसरा चित्र बनालो (चित्रमें $क_1$ ख $ग_1$ घ बनायी गयी है)। पहले चुम्बकका अक्ष क ग दिशामें था और अब $क_1$ $ग_1$ में है। इन दोनों दिशाओंके बीचके कोणको दो बराबर भागोंमें विभक्त करनेवाली रेखा चुम्बकीय अक्षकी दिशामें होगी। चुम्बकको सीधा (उलटा) रखकर यह कागज़का टुकड़ा उसपर इस प्रकार चिपकाया जावे कि चुम्बक पहले चित्रके बिलकुल नीचे हो और चुम्बक फिर कीलीपर रख दिया जावे इससे हर जगह दिशाका पता चल जाया करेगा क्योंकि उ द सदा चुम्बकीय उत्तर दक्षिण दिशामें रहा करेगी। इसी कागज़पर चुम्बकके बीचमेंसे होती हुई और उ द से समकोण बनाती हुई जो रेखा खेंची जावे वह पूर्व पश्चिम दिशामें होगी। ऐसा कागज़ लगा हुआ चुम्बक, जिसमें दिशाओंके चिन्ह बने हों दिक्सूचकका काम करता और दिक्सूचक कहलाता है। ऐसे दिकसूचक प्रायः जहाज़ोंमें यात्रा करनेमें बड़ी मदद देते हैं। जहाज़ी दिक्सूचक ऐसे सरल नहीं होते। इनका वर्णन नीचे
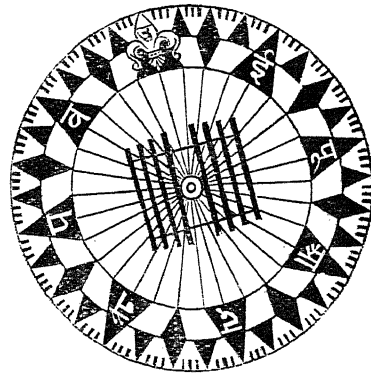
चित्र नं० ३

दिया जाता है। बीचमें एक टोपी है जिसका चंदवा किसी क़ीमती पत्थरका है और बाड़ पीतलकी, इसके एक अल्यूमीनियमका छज्जा लगा है जिसके किनारेपर ३२ छोटे छोटे छेद बने हैं। एक अल्यूमीनियमकी १० इंच व्यासकी चपटी चूड़ी जिसके अन्दरके हिस्सेमें भी ३२ छेद बने हैं रेशमके मज़बूत

डोरोंसे टोपीके साथ बंधी रहती है। ६ या ८ छोटे छोटे चुम्बक दो रेशमके डोरोंसे सीढ़ीके डंडोंकी तरह बांधे जाते हैं। दोनों डोरोंके चार सिरे चार डोरोंसे इस प्रकार बांध दिये जाते हैं कि आधे चुम्बक केन्द्रके (टोपी) एक ओर और आधे दूसरी ओर रहें। चूड़ीके बराबर काग़ज़का घेरा काटकर चूड़ीपर चिपका दिया जाता है और इस काग़ज़पर दिशाओंके चिन्ह बना दिये जाते हैं। १० इंचसे थोड़े ही बड़े व्यासका एक पीतलका प्याला लेकर उसके पेंदेमें कीली लगाकर उसपर यह चुम्बकोंका जुट्ट क्षितिज धरातलमें स्वतंत्रतापूर्वक झूलनेकेलिए रख दिया जाता है। ऊपर नीचेकी दिशावाले अक्षपर रखा हुआ चुम्बक जहाज़ जैसे चलने हिलने और घूम जानेवाली चीज़के अन्दर स्थिर नहीं रह सकता इसीलिए इसके प्यालेको दो चूड़ियोंके अन्दर इस तरह रखते हैं कि यह प्याला उत्तर दक्षिण और पूर्व पश्चिम दिशावाले दो अक्षोंपर घूम सके। इसका असर यह होता है कि प्याला ही घूमकर रह जाता है चुम्बक बहुत कम घूमता है। अंगरेज़ोंमें
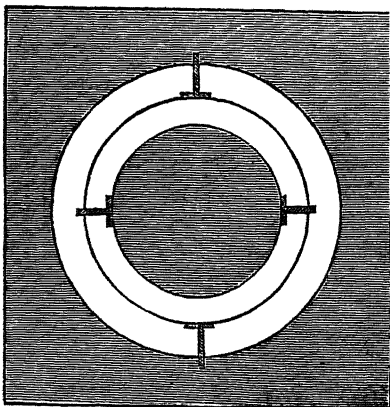
चित्र नं० ४

इन दोनों चूड़ियोंको जिम्बल (gimbals) कहते हैं। यह जिम्बलोंपर रखा हुआ दिक्सूचकका बक्स उचित रीतिसे जहाज़में लटका दिया जाता है। यह केलविनका (Kelvin) जहाज़ी दिक्सूचक कहलाता है। इन्होंने इसे दस वर्षकी महनतसे बनाया। दिक्सूचकके चुम्बकका पहला गुण तो यह होना चाहिये कि उसका चुम्बकीय अक्ष सदैव एकही दिशामें रहे। इसकी दिशा बदल जानेसे कार्डके दिशाके चिह्न झूटे हो जाते हैं और दिशाका पताभी चलना असम्भव हो जाता है। इसलिए चुम्बक कई शक्लोंके बनाये गये उनमेंसे एकभी संतोषजनक नहीं निकला। दूसरे, कीली और टोपीके चंदवेमें कुछ न कुछ रगड़ अवश्य ही रहती है जिसके कारण एक बार हट जानेपर चुम्बक फिर लौटकर अपने पहले स्थानपर नहीं आता था। इससे भी दिशाके जाननेमें भंग पड़ जाता था। केलविनके जहाज़ी दिक्सूचकके सब हिस्से इतने अच्छे बने हैं कि चुम्बक हिलनेके बाद $^1/4°$ से अधिक कभी नहीं हटता है। केन्द्रकी प्रबलता और दोनों केन्द्रोंकी दूरीका गुणक चुम्बकका चुम्बकीय घूर्ण कहलाता है। जितना यह बड़ा होता है उतना ही रगड़का हटाव भी कम होता है। साधारण दिक्सूचकके चुम्बक दीर्घाकार मिलते हैं क्योंकि इसका चुम्बकीय घूर्ण बराबर बोझवाले गोल या चैाकोर चुम्बकोंके चुम्बकीय घूर्णसे २५ प्रतिशत अधिक होता है। तीसरे जहाज़के चक्कर खानेके समय चुम्बक बहुत झूलना नहीं चाहिये। जहाज़के चक्कर खानेकेलिए १८ सेकंड लगते हैं चुम्बकके झोटेका समय इससे जितना कम या इसके बराबर होता है उतना ही चुम्बक ज़्यादा हिलता है। इसलिए झोटेके समयका बड़ा होना भी आवश्यक है। केलविनके दिकसूचकके चुम्बकके झोटेका समय ४२ सेकंडतक होता है इसलि एजहाज़के चक्कर खानेके समय यह बहुत कम हिलता है।

पृथ्वीके मुख्य मुख्य स्थानोंका चुम्बकीय हटाव निकाल लिया गया है और ऐसे नक़शे बनाये गये हैं जिनमें समान हटानेवाले स्थानों-

को मिलाती हुई रेखाएं खेंच दी गयी हैं। इनसे जहाज़ चलानेवालोंको बड़ी मदद मिलती है। इनकी सहायतासे उनको प्रत्येक स्थानपर दिशा-का पता चल जाता है। बहुतसे स्थान ऐसे हैं जहां हटाव बिलकुल नहीं है। अर्थात् चुम्बकीय अक्ष उत्तर दक्षिण दिशामें रहता है ऐसे स्थानों-मेंसे जो रेखा खेंची जाती है उसे बिना हटावकी रेखा कहते है।

चुम्बकीय झुकाव और झकाव सूचक

दिक्सूचकका चुम्बक उर्ध्व अक्षपर क्षितिज धरातलमें रहता है। परन्तु चुम्बकमें टोपी न लगाकर एक गोल तारका टुकड़ा ढोकलें और इसको एक आधार पर इस प्रकार रक्खें कि यह तार क्षितिज अक्षका काम दे और चुम्बक उर्ध्वतलमें स्वतंत्रतापूर्वक घूम सके (जैसा चित्रमें दिखलाया गया है) तो आप देखेंगे कि यह चुम्बक
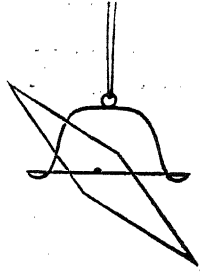
चित्र नं० ५

सीधा कभी नहीं रहता किन्तु थोड़ासा झुका हुआ ठहरता है। इसका कारण अक्षका बीचों बीच न लगाना नहीं है; चुम्बक बनानेके पहले अक्ष लगाकर अच्छी तरहसे देख लो कि यह सीधा रहता है। चुम्बक बनाओ और आधारपर रक्खो अब सीधा नहीं रहता। चुम्बकके बीचमेंसे जो क्षितिज रेखा खेंची जावे उसके और चुम्बकके चुम्बकीय अंशके बीचमें जो कोण होता है उसे चुम्बकीय झुकावका कोण कहते हैं। प्रयागमें झुकाव ४६° है। जैसे हटावका कोण प्रत्येक स्थानपर एक नहीं होता है उसी प्रकार यह झुकावका कोण भी हर एक स्थानपर एक ही नहीं होता है। कुछ स्थान पृथ्वीपर ऐसे हैं जहां झुकाव बिलकुल नहीं होता है उन स्थानोंको जोड़ती हुई जो रेखा नकशेपर खेंची जाती है उसे चुम्बकीय भूमध्यरेखा कहते हैं। समान झुकाव-वाले स्थानोंको जोड़ती हुई जो रेखाएं खेंची जाती हैं उनको चुम्बकीय शरसमानान्तर रेखा कहते हैं। चुम्बकीय भूमध्यरेखा और शरसमानान्तर रेखाएं भूमध्य और शरससमानान्तर रेखाओंकी तरह सीधी नहीं होती हैं किन्तु टेढी मेढी होती हैं।

चुम्बकीय भूमध्यरेखाके उत्तरमें उत्तरी सिरा नीचे और दक्षिणी सिरा ऊपर रहता है पर इस रेखाके दक्षिणमें उत्तरी सिरा ऊपर और दक्षिणी सिरा नीचे हो जाता है। जिस स्थानपर यह झु-काव सूचक चुम्बक बिलकुल सीधा खड़ा हो जाता है और उत्तरी सिरा नीचे होता है उस स्थानको पृथ्वीका उत्तरी चुम्बकीय ध्रुव कहते हैं और जहां दक्षिणी सिरा नीचे होता है उसको पृथ्वीका दक्षिणी चुम्बकीय ध्रुव कहते हैं। उत्तरी ध्रुवपर सर जेम्स रौस (Sir James Ross) १८८७ में पहुंचे। इस ध्रुवके देशान्तर ६६°४३'पू और शर ७३°३१' उ हैं। दक्षिणी ध्रुवपर सर अरनेस्ट शेकल्टन (Sir Ernest Shackleton) सं० १६६५ विक्रमीको पहुंचे। इस ध्रुवके देशान्तर १५५° १६'पू और शर ७२° २५'द हैं। इससे स्पष्ट है कि दोनों ध्रुव पृथ्वीके व्यासके सिरेपर नहीं हैं। उत्तरी ध्रुवका शर ७३°३१ उ की बजाए ७३° उ मान लें और इसी प्रकार दक्षिणी ध्रुवका शर ७२°२५ द° को बजाय ७°३६ मान लें ता ७३°उ और ७३°द को जोड़ती हुई जो रेखा खेंची जावे उसे चुम्बकीय अक्ष कहते हैं। पृथ्वीकी चुम्बकीय अक्ष और अक्षमें १७° का कोण हुआ।

झुकाव मापकका चित्र ६ में दिया जाता है। चुम्बक क्षितिज अक्षपर रक्खा हुआ ऊर्ध्व-तलमें घूम सकता है। एक ऊर्ध्व घेरा है जिसमें कोण बने हैं। चुम्बक और घेरा एकही ऊर्ध्वतलमें हैं और बकसके अन्दर बन्द हैं बकस ऊर्ध्व अक्ष पर घूमता है। क्षितिज घेरा (कोणवाला) बकसके नीचे लगा हुआ है इस घेरेपर बकसमें

लगा हुआ एक सूचक घूमता है जिससे बकसके स्थान जाननेमें सुभीता होता है।
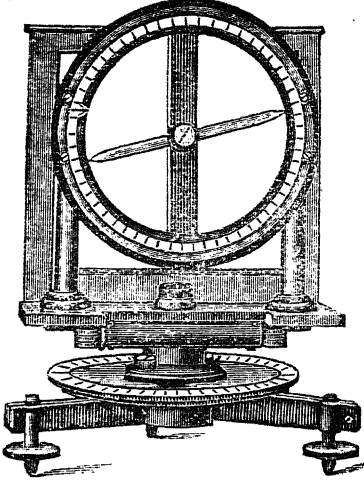
चित्र नं० ६

झुकाव नापनेकेलिए पेचवाली टांगोंकी सहायतासे बकस पहले सीधा रख लिया जाता है। बकस फिर ऊर्ध्व अक्षपर घुमाया जाता है जबतक चुम्बक बिलकुल सीधा न हो जावे। इस समय घेरे और चुम्बकका ऊर्ध्वतल चुम्बकीय यामयोत्तरसे समकोण बनावेगा। इसलिए अब बकसको एक समकोणमें घुमा दो जिसमें चुम्बक चुम्बकीय यामयोत्तरमें आ जावे। घेरेपर क्षितिज रेखाके चिह्न रहते हैं। इस रेखा और चुम्बकके अक्षके स्थानके बीचका कोण देखनेसे झुकावका कोण मालूम हो जावेगा।

गुरुदेवकेसाथ यात्रा

[अनु० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी. एल. टी., विशारद]

गुरुदेवकी प्रशंसा

आंगल देशके प्रसिद्ध दार्शनिक और मनोविज्ञानवेत्ता भी गुरुजीके कामके कुछ अंशसे बहुत प्रसन्न थे।

अध्यापक कार्वेथ रीड

(Metaphysics of Nature) 'प्रकृतिकी अध्यात्मविद्या' के प्रसिद्ध रचयिता अध्यापक कार्वेथ रीडने अपने प्रामाणिक ग्रन्थमें लिखा है कि

उसी समय अंडेसे निकले हुए बच्चेको सचेतन और उसी समय दिये हुए अंडेको जो कोई अचेतन कहता है—अनुवर्तनके (continuity) सिद्धान्तको नहीं मानता—उसका विश्वास यही हो सकता है कि बच्चेमें किसी जादूके बलसे सचेतनता आ गयी है। जीवनके सरल रूप जीवधारी हैं अथवा वनस्पति, यह कोई स्पष्टतया नहीं बतला सकता, और यदि सबसे सरल वानस्पतिक-जीवन उस प्राणि-जीवनसे अलग नहीं किया जा सकता, जिसको लोग सचेतन माने हुए हैं तो यह मान लेना कि वानस्पतिक जीवन अचेतन है धींगाधींगीके सिवा और कुछ नहीं है। मानव सहानुभूतिकी सीमासे बहुत दूर वानस्पतिक जीवनतक पहुंच चुकनेपर, अनुवर्तनका सिद्धान्त हमको और आगे ले जाता है और सूचना देता है कि प्राणि-प्रकृतिकी नाई निरेन्द्रिक प्रकृतिमें भी कुछ जीवन तत्व है चाहे यह बहुत अस्पष्ट और अव्यवच्छेदित (undifferentiated) ही क्यों न हो। जे. सी. बोसने अपने (Response in the living and nonliving) 'जीवितों और अजीवितोंका प्रतिस्पन्दन' नामक ग्रन्थमें जहां यह दिखलाया है कि उत्तेजकोंके प्रभावसे पौदोंमें थकानका अनुभव होता है और वेदनावरोधक (anaethestics) औषधियों तथा विषोंका जैसा प्रभाव जीवधारियोंपर पड़ता है वैसा ही पौदोंपर भी पड़ता है, वहां यह भी सिद्ध किया है कि यही गुण रांगा और प्लेटिनमके तारमें भी पाये जाते हैं। यह भी थकते हैं; प्रतिस्पन्दनका आरम्भ होता है; अनाविर्भूत उत्तेजक (subliminal stimuli) दो बार दुहरानेसे कार्यकारी होते हैं; उत्तेजकको तीक्ष्णकर देनेसे कुछ सीमातक स्पन्दन बढ़ता है, कुछ औषधियां रांगा

Miscellaneous फुट]

और प्लेटिनमको उत्तेजित कर देती हैं ; परन्तु कुछ ऐसी भी हैं जो विषका काम करके सब प्रकारके प्रतिस्पन्दन बन्द कर देती हैं ; थोड़ी मात्राके प्रयोगसे प्रतिस्पन्दन बढ़ जाता है परन्तु उसी ओषधिकी अधिक मात्रा इसको रोक भी सकती है। इन परिणामों और शरीर-धर्म विषयक मनोविज्ञानके कुछ परिणामोंमें जो सादृश्य है वह स्पष्ट है। निरेन्द्रिक पदार्थ ऐन्द्रिक पदार्थसे बहुत सरल है और शरीर जितना ही सरल होता है उसकी चेतनता भी उतनी ही सरल होती है। इसलिए इसमें कोई सन्देह नहीं कि निरैन्द्रिक पदार्थोंकी चेतनता सबसे सरल होती है।

पौदोंमें भी स्नायविक धक्का होता है ऐसा देखनेपर इन्होंने लिखा था "मैंने कई वर्षसे जीव विज्ञानमें ऐसी अनोखी बात नहीं देखी थी जैसे आपके प्रयोग हैं। जीवधारियोंके सम्बन्धमें विचार करनेकी हम लोगोंकी जो साधारण प्रणाली है उसपर इन प्रयोगोंका बड़ा गम्भीर प्रभाव पड़ा है इसलिए मनोविज्ञानमें इनका गहरा प्रभाव पड़े बिना न रहेगा"।

लार्ड क्रू

आंगलदेशमें गुरुजीके कार्यकी गुणग्राहकता और रोचकता ऐसी फैली कि उसका प्रभाव इंडिया आफ़िसपर भी पढ़ा जिससे लार्ड क्रूने प्रयोगशाला देखनेकी इच्छा प्रकट की। इनकी इच्छा ऐसी सच्ची थी कि इन्होंने प्रकट किया कि इंडिया आफ़िसके स्थायी पदाधिकारी भी उस कामसे अवश्य परिचय प्राप्त करें जो उनकी समझमें ज्ञानके विस्तृत करनेवाले महत्वके कामोंमेंसे एक है और जो भारतवर्षद्वारा लोगोंको ज्ञात हुआ है। यह महाशय अपने साथ अपने सहकारियोंको भी लाये थे जिनमें सर टामस होल्डरनेस भारतसचिवके स्थायी सहकारी भी थे। भारत सचिवने प्रत्येक प्रयोगके देखनेमें ही अपनी तीव्र रुचि नहीं प्रकट की वरन् इसका भी प्रयत्न किया कि उनके सहकारी अच्छी तरह समझ लें कि जांचकी नवीन प्रणालियां किन किन बातोंमें लाभदायिनी होंगी। प्रयोग देख लेनेपर उन्होंने प्रकट किया कि स्वयम् वह और भारत सरकार गुरुजीके कामकेलिए अपना बड़ा गौरव समझते हैं। उनकेलिए यह बड़ी ही सन्तोषजनक बात थी कि भारतवर्ष एक बार फिर संसारकी बुद्धि विषयक उन्नतिमें हाथ बटानेके योग्य हुआ है।

जर्मनी जानेका निमन्त्रण

मैं पहले लिख चुका हूं कि हम लोगोंका जर्मनी जानेका विचार अगस्त मासकेलिए क्यों स्थगित कर दिया गया। गुरुजीको हार्दिक निमन्त्रण दिया गया और आग्रहपूर्वक कहा गया कि वह प्रमुख विश्वविद्यालयोंमें एक विस्तृत और क्रमबद्ध व्याख्यान दें। अध्यापक पी. वान् डर बुल्क्सने लिखा—

आपके आविष्कारोंके परिणामोंसे मुझे वानस्पतिक क्रियाओंकी ठीक ठीक व्याख्या करनेमें बड़ी सहायता मिली और मैं आपका ही अनुसरण करता हुआ अनुसंधान कर रहा हूं।

बान विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध शरीर धर्म--वनस्पति-वेत्ता अध्यापक फ़िटिंगने लिखा था—

अपने विश्वविद्यालयमें आपका स्वागत करनेके योग्य होनेमें मैं अपना विशेष गौरव समझता हूं। मैं बड़ी उत्कंठासे उस समयकी बाट देख रहा हूं जिस समय मैं आपसे परिचय प्राप्त कर सकूंगा और आपके स्वनिर्मित अद्भुत यन्त्रोंकी क्रियाओंको अपनी आँखोंसे देख सकूंगा। मैं आपके कार्यको बड़ी रुचिसे समझता आया हूं और आशा करता हूँ कि वार्तालापसे बहुत सी ऐसी बातें जान पड़ेंगी जो बहुत ही चित्ताकर्षक होंगी।

वर्तमान शरीरधर्म-वेत्ताओंमें अध्यापक वरवोर्न श्रेष्ठ समझे जाते हैं। इन्होंने भी वैसा ही हार्दिक निमन्त्रण भेजा था।

पीछे एक पत्रसे ज्ञात हुआ कि बान विश्वविद्यालयमें ४ थी अगस्तको गुरूजीके व्याख्यान-

केलिए प्रबन्ध किया जायगा इसलिए हम लोगोंको तीसरी अगस्त सोमवारको ही वहां पहुंच जाना चाहिए। निश्चित रूपसे सूचना देनेकेलिए प्रबन्ध हो चुकनेपर तारसे समाचार देनेका विचार निश्चय हो गया था। इसीके अनुसार हमें यह तार मिला—बानसे; बसु केपास, १३६ सदरलैंड एवेन्यू, लंदन; सोमवारका दिन अच्छा होगा। हमने तदनुसार उसी दिन पहुंचनेकी तैयारी कर ली। हमने कान्टीनेन्टको लिखा कि पौदों और यन्त्रोंकी रक्षाकेलिए एक डिब्बा रिज़र्व कर दें, परंतु रेलके कर्मचारियोंने उत्तरमें लिखा कि सेना पहुंचानेकी जल्दीके कारण ऐसे प्रबन्धका निश्चित रूपसे ठीका नहीं लिया जा सकता। उस समय सर्वियाके सम्बंधमें भिन्न भिन्न राजदूतोंकी परस्पर लिखा पढ़ी हो रही थी और युरोपीय शक्तियोंके नाना प्रकारके निर्दशन केवल शेख़ी समझे जाते थे। हमें आशा थी कि कोई निश्चित समाचार तुरंत ही प्रकाशित होगा और यह आशा करके कि बानमें व्याख्यानके समय पहुंच जायँगे अपनी यात्राकी तिथि ३ री अगस्तको टाल दी। तीसरी अगस्तको हम लोग सचमुच विक्टोरिया स्टेशनको गये परन्तु कुछ अनिश्चित पूर्व सूचनाके कारण लौट आये। दूसरे दिन समाचार मिला कि युद्ध छिड़ गया। गुरूजीके भतीजे अरविन्द मोहन वसु जो हमसे पहले ही चले गये थे लौटने न पाये और अबतक जर्मनीमें ही हैं।

इम्पीरियल कालेज आव सायन्स

गुरूजीने लन्दनके इम्पीरियल कालेज आव सायन्सके सामने अपना व्याख्यान देना निश्चय किया। कई विशेष कारणोंसे गुरुजीने यह अवसर बड़ा ही उत्तम समझा। बात यह थी कि इस कालेजका एक प्रसिद्ध शरीरधर्मवेत्ता गुरुजीसे बड़ा द्रोह रखता था क्योंकि गुरूजीने अपने अविष्कारोंद्वारा उसके सारे सिद्धान्तोंको पलट दिया था। इस कारण गुरूजीको यह विश्वास था कि उसके सब साथी इस अवसरपर बड़े धूमधामसे एकत्र होंगे। प्रतिवादियोंसे उन्हींके केन्द्रमें सामना करनेसे बढ़कर उत्तेजना उत्पन्न करनेवाला और कौन अवसर होगा? यह स्पष्ट था कि उस अधिवेशनका सभापति पक्षपात-पूर्ण था परन्तु उसने निरपेक्ष रहनेका यत्न किया। व्याख्यानके आरम्भमें परिचय करानेके समय उसने कहा कि व्याख्याताने भौतिक विज्ञानमें बड़े बड़े काम किये हैं और शरीर-धर्म-विज्ञानके क्षेत्रमें भी इन्होंने प्रसिद्धि प्राप्त की है जिसको स्वीकार भी करते हैं क्योंकि इन्होंने अपने अपूर्व शुद्धताके साथ बने हुए यन्त्रोंद्वारा बहुतसे चकित कर देनेवाले दृश्योंका अनुभव किया है। परन्तु इनके परिमाण शरीर-धर्मवेत्ताओंके बहुतसे उन सिद्धान्तोंके विपरीत हैं जिनको लोग अबतक सच मानते आए हैं। दर्शकोंको अभी उन सब प्रयोगोंको देखनेका अवसर मिलेगा जिनसे इन विरुद्ध परिणमोंका पोषण होता है।

गुरूजीने इस अस्पष्ट प्रतियोगिताको स्वीकार कर लिया। इन्होंने आरम्भमें उन अंधोंकी प्रसिद्ध भारतीय कहानी कह सुनाई जिन्होंने हाथीके अंगोंकी जांच अपने अपने ढंगपर की थी। फिर गुरूजीने इन अंधोंकी समानता उन भिन्न भिन्न प्रकारके अविष्कर्ताओंसे की जो जीवनके गूढ़ रहस्योंकी मीमांसा अपने अपने ढंगपर करते हैं। कुछने तो ढांचेकी रचना देख दाख कर इस साध्यको सिद्ध करनेका प्रयत्न किया और कटे हुए जीवधारियोंके टुकड़ोंको लेकर, रंगमें रंगकर मृत तन्तुओंको अणुवीक्षण यंत्रसे देखा। औरोंने रक्त स्रवित बड़े अंगोंको लेकर इनपर धक्के पहुंचाये और कम्पन उत्पन्न करनेवाली प्रतिक्रियाकी मात्रा नापी। कभी कभी क्रमगत प्रतिक्रियाएं मंद होती दीखती थीं जिसे वे लोग कहा करते थे कि यह फूटनेवाले अवनतिशील रासायनिक परिवर्तन अथवा अपरिपाकके कारण हैं। परन्तु जब जब यह प्रतिक्रियाएं बढ़ती हुई मालूम होती थीं तब

तब यह कहा जाता था कि तंतुओंके बनने अथवा परिपाकके कारण यह दशा होती है। परन्तु कभी कभी ऐसा होता था कि पारी पारीसे प्रतिक्रियाएं मंद पड़ती थीं और बढ़ती थीं। यहां तन्तु एक ही समय बनते बिगड़ते थे। इस प्रकार शरीर-धर्म-वेत्ताओंको जैसी जैसी विशेष आवश्यकता पड़ती थी वैसे ही वैसे उनके आज्ञानुसार सताये और घबड़ाये हुए जीवित तन्तु कभी तो बनने लग जाते थे और कभी बिगड़ने और कभी दोनों क्रियाएं एक साथ करने लग जाते थे। गुरूजीने दर्शकोंसे पूछा - क्या आप लोग ऐसी एक दूसरेके विरुद्ध बातोंको सच मानकर संतुष्ट रहना चाहते हैं अथवा अपने पुराने विचारोंको त्यागकर उन उत्तरोंको प्रत्यक्ष जानना चाहते हैं जो जीवन स्वयम् हमारे प्रश्नोंपर देता है? पौदे शुद्ध वायु और सूर्यके प्रकाशमें रहकर यह साधारण (normal) जीवन प्राप्त करते हैं और इसमें ऐसी असाधारण प्रतिक्रियाएं नहीं पायी जातीं जैसी उन कटे हुए अंगोंमें पायी जाती हैं जो जीवित शरीरोच्छेदककी (vivisector) मेज़पर अलग किये जाते हैं। एक समय ऐसा भी था जब लोगोंको दृढ़ विश्वास था कि प्रकृतिके सर्वोत्तम जीवधारी मनुष्यके जीवनकी प्रतिक्रियाएं निम्न योनिके प्राणियोंके जीवनकी प्रतिक्रियाओंसे नितान्त भिन्न हैं। बहुत से पशु-शरीरधर्मवेत्ता इस बातका दावा करते थे कि जो पद जीवधारियोंको दिया जा सकता है वह पौदोंको कदापि नहीं प्राप्त हो सकता। सर बर्डन सैन्डरसनने घोषणा कर दी थी कि पौदोंकी स्थिर प्रकृति और प्रबल anabolism के कारण उनकी विद्युत-प्रतिक्रियाएं जीवधारियोंकी विद्युत्-प्रतिक्रियाओंसे सर्वथा भिन्न हैं। इस प्रकार कोई क्रमबद्धता (continuity) नहीं है वरन् एक प्रकारकी अस्तव्यस्तता है जहाँ भिन्न भिन्न श्रेणीके जीवधारियोंकेलिए भिन्न भिन्न स्वभाव मानने पड़ते हैं। परन्तु मैं सिद्ध करूंगा कि ऐसी अस्तव्यस्तता कदापि नहीं है वरन् एक ही नियम सब प्रकारके जीवनमें व्याप्त है चाहे यह जीवन सरलसे सरल प्रारम्भिक जीवधारीका हो और चाहे सर्वश्रेष्ठ जीवधारीका।

इसके पश्चात् बहुतसे प्रयोग दिखलाये गये जिनसे सिद्ध कर दिया गया कि सब प्रकारके पौदे और जीवधारियोंके तन्तुओंकी प्रतिक्रियाओंमें सादृश्य है। चाहे यह तन्तु आकुञ्चनशील हों, चाहे स्नायविक हों और चाहे आनुप्रासिक हों। ऐसे बड़े व्यापक नियमकी घोषणा कर देनेपर जो श्रोतागण बड़े चक्करमें पड़ गये थे इस समय बड़े उत्साहके साथ प्रशंसा करने लगे।

जब प्रश्न करनेका समय आया और वादविवादकेलिए अवसर दिया गया, एकके पश्चात् दूसरे वक्ताओंने कहा कि यह नई कल्पनाएं जो इस समय प्रयोगद्वारा सिद्ध कर दी गयी हैं बहुतसे ऐसे साध्योंका उद्घाटन करेंगीं जो अन्वेषण कर्त्ताओंको अबतक चक्करमें डाले हुए थे। आरम्भमें सभापतिजी उदासीन थे परंतु अब प्रशंसा करनेमें सीमाको भी लांघ गये। इस समय मैं एक बातका उल्लेख कर देना चाहता हूं जिसका अनुमान जैसा होना चाहिये वैसा शायद यहाँ नहीं किया जा सकता। बड़े बड़े गम्भीर साध्योंके रहस्योंको प्रकाशमान कर देनेकी गुरूजीमें जो अद्भुत शक्ति है उससे सारी जनता आश्चर्य और हर्षके कारण गद्गद हो गयी थी। सभापतिने पहले तो उन अद्भुत प्रयोगोंका नाम लिया जिनसे शरीरधर्मविज्ञानके बहुतसे साध्योंपर नया प्रकाश पड़ गया, फिर वक्ताकी अनोखी शक्तिकी प्रशंसा की जिसके द्वारा वह बहुत ही कठिन और गूढ़ बातोंको अत्यन्त रोचकताके साथ प्रतिपादन करते हैं, और जिसने उन लोगोंको सारे प्राणि जगतके नाड़ी स्पन्दनके सुरमें सुर मिलाते हुए दिखा दिया। व्याख्याताने दिखला दिया कि बाहरी उत्तेजकके प्रयोग करनेके समयसे लेकर जीवित प्राणीके प्रत्युत्तरके समयतक कितना अधिक अदृश्य समय (lost time or latent period)

होता है और यदि बाहरी उत्तेजक दुर्बल हो तो यह अदृश्य समय कितना बढ़ जाता है। वह और उसके सहकारी अपने शरीरधर्म विज्ञान सम्बंधी व्याख्यानोंमें यह अनुभव कर चुके थे कि शिक्षार्थियोंकी ग्रहण-शक्तिमें कितनी अनिश्चितता होती है; प्रतिक्रिया (responses) बहुत मंद मालूम पड़ती थी और कभी कभी उसका अभाव समझ पड़ता था। व्याख्याताने जो सादृश्य उसी समय अपने और अपने श्रोताओंके बीच उपस्थित किया था उससे उसको (सभापतिको) प्रेसीडेन्सी कालेजके विद्यार्थियोंसे ईर्षासी मालूम होती थी और उसको यह अनुभव हुआ कि उनकेलिए यह अदृश्य समय कितना कम होता होगा और वे अपने महान गुरूकी शिक्षा कितनी जल्दी ग्रहण करते होंगे।

सर लाडर ब्रन्टन

एक दिन तीन महाशय हमारी मैदाघाटीवाली प्रयोगशाला देखने आये। जिस समय इनमेंसे दो गुरूजीसे बातें करते थे मैंने तीसरे महाशयका स्वागत किया जो विशेषतया परोपकारी और बूढ़े दीख पड़ते थे। गत सप्ताह हमारी प्रयोगशालामें साहित्यिकोंका आगमन हुआ था इसलिए मैंने समझा यह महाशय भी उसी श्रेणीके होंगे। संयोगसे मेज़पर स्पन्दन करती हुई पत्ती पड़ी थी जो अपनी गति दोलन अंकीपर लिखती जाती थी इसलिए मैं इनको हृदय-स्पन्दनकी कुछ प्रारम्भिक बातें समझाने लगा क्योंकि हृदय-स्पन्दन और उस पौदेके स्पन्दनमें एक अद्भुत सादृश्य था। (systolic contraction) आकुंचनीय स्पन्दन और (diastolic expansion) प्रसारणीय स्पन्दन मिलकर हृदयका पूर्ण स्पन्दन बनाते हैं। विशेषकर ऐसे समय जबकि दर्शक महाशय मेरी बातें बड़ी रुचिसे ध्यानपूर्वक सुनते थे मैं उनको इस गूढ़ क्रियाके समझानेमें इस प्रकार मग्न हो गया था कि मेज़की दूसरी ओरसे आती हुई मेरे मित्र ज्योतिप्रसाद सरकारकी ठोकरोंके शब्दका रहस्य मुझे कुछ भी न मालूम हुआ। चित्तमें शान्ति लानेकेलिए मुझे कोई बहाना ढूंढकर तुरंत ही बाहर जाना पड़ा। उस समय ज्योतिने धीरेसे मेरे कानमें कहा कि मैं जिसको हृदयकी क्रियाओंकी आरम्भिक बातें समझा रहा था वह इस विषयमें सबसे बड़ा पंडित है। यह वही महाशय वही शरीरधर्मवेत्ता हैं जिसने बड़े डार्विनके कीटभोजी पौदे संबंधी आविष्कारोंमें हाथ बंटाया था और ओषधि विज्ञानके बड़े बड़े पंडितोंमें भी इनकी गणना है। यह हंसमुख महाशय प्रसिद्ध सर लाडर ब्रन्टन ही थे। और दो दर्शकोंमेंसे एक तो महाराजाधिराजके डाक्टर सर जेम्स रीड और दूसरे रायल सोसाइटी आव मेडिसिनके प्रेसीडेन्ट सर फ्रांसिस चेम्पनी थे। इन सब महाशयोंने बड़ी रुचिसे सारे उपपादनोंको देखा और पौदेके अव्यवच्छेदक जीव विन्दुपर (undifferentiated protoplasm) ओषधियोंका क्या प्रभाव पड़ता है इसको विशेषकर देखा। इन्होंने यह मत प्रगट किया कि ओषधि-विज्ञान अबतक तो एक प्रकारसे अनुभवमूलक (empirical) था परंतु इन आविष्कारोंसे ओषधिके व्यवहारिक कार्योंमें अधिक प्रकाश पड़ जायगा। इसके पश्चात् सर लाडर ब्रन्टनने गुरूजीको जो पत्र लिखा वह यह है—

मैंने उन पुस्तिकाओंके रोचक संग्रहको पढ़ा है जिनमें आप सिद्ध करते हैं कि धातुओंमें भी ऐसी क्रियाएं देखी जाती हैं जो प्राणियोंकी क्रियाओंसे बहुत कुछ सादृश्य रखती हैं। १८८९ वि० से जबसे मैंने वनस्पतिशास्त्रका अध्ययन आरम्भ किया और इससे भी अधिक १९६१ वि० से जब मैंने कुछ प्रयोग ऐसे किये थे जिनसे पौदोंपर विषोंका प्रभाव मालूम हुआ, पौदोंकेस्पन्दनकी ओर मेरा चित्त आकर्षित रहा है। मिस्टर डार्विनकेलिए १९३१ वि० में मैंने कीटभोजी पौदोंकी पाचन क्रियाके सम्बन्धमें कुछ प्रयोग किये थे। जो कुछ प्रयोग मैंने अबतक देखे हैं आपके उन प्रयोगोंके सामने असंस्कृत हैं जिनमें आप दिखला देते हैं कि पौदों और जीवधारियोंकी क्रियाओंमें कितना अधिक सादृश्य है।

मनुष्यका नया नौकर

जब चाहो तब उससे काम लो

[ले० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.]

पाठकोंको अनुभव होगा कि इस दीन दुखिया देशमें भी नौकरोंका मिलना कितना कठिन होता जाता है। इङ्गलैण्ड, अमेरिका श्री-सम्पन्न देशोंका तो कहना ही क्या है, वहां तो नौकरोंका मिलना कठिन ही है, पर रखनेकी श्रद्धा भी बहुत कम लोगोंमें है। नौकरोंके सभी काम, खाना पकाना, झाड़ू लगाना, कपड़े धोना रोशनी करना इत्यादि बिजलीसे लिये जाते हैं, पर अभीतक यह कमी थी कि जिस समय चाहते थे उस समय यह दास काम किये हुए तैयार नहीं रहता था। यह उस नौकरके भांति था, जिसे काम करनेकेलिए गोदना पड़े। अच्छा नौकर वही है जो, एक बार आज्ञा पाकर, स्वयं उचित समयपर काम तैयार रखे। यह कमी भी अभी हालमें दूर कर ली गई है। ऐसे बिजलीके चूल्हे तैयार किये गये हैं, जिनमें जौनसा तापक्रम आप चाहें पैदा कर सकते हैं। इनको बिजलीकी रेंज (electric ranges) कहते हैं। इन रेञ्जोंके सबसे अधिक उपयोगी दो भाग हैं, एक तो वह कैंची, जो इच्छित समयपर खुलकर बिजलीकी धारा रेञ्जमें आने देती है, दूसरा ताप-संस्थापक (वह यन्त्र जो तापक्रम ठीक रखता है, उसको न्यूनाधिक नहीं होने देता। इसे (thermostat) थर्मास्टेट कहते हैं) जो विशेष तापक्रमतक गरम होकर बिजलीका आना बन्द कर देता है।

स्विच या कैंची साधारण एलारम घड़ीकी नाईं होती है। जैसे मामूली घंटोंमें एक विशेष सुई एक निश्चित समयपर चलकर एलारम बजाना आरम्भ कर देती है, उसी भांति इन कैंचियोंमें एक विशेष सुई किसी निश्चित समयपर चलकर बिजलीकी धारा चूल्हेमें आने देती है। मान लीजिये कि किसी मनुष्यको चार बजे खाना खाकर घरसे बाहर जाना है। गृहणी रातको सोते समय स्विचमें सुई तीन बजेपर कर देगी। तीन बजेसे खाना पकना आरम्भ होगा। पहले ताप-व्यवस्थापक उचित तापक्रमतक गरम हो जायगा, तदनन्तर स्वयमेव बिजलीकी धाराका आना बन्द हो जायगा और खाना उसी ताप-व्यवस्थापकमें पकता रहेगा। चूल्हा इस प्रकारका बनाया गया है कि उसमें रखा हुआ यह यंत्र बहुत देरतक गरम रहे। जब जब ताप व्यवस्थापक ठंडा होगा, बिजलीकी धारा आकर उसे फिर पहलेके तापक्रमतक गरम कर देगी। साढ़े तीन या चार बजे, गृहणी जाकर बिजलीकी धारा रोक देगी और पका हुआ खाना उतारकर खिला देगी इन नए रेंजोंकी वजहसे लोग बाग आनन्दसे रात्रिमें शयनकर सकते हैं और प्रातः उठते ही बिना प्रयास ही उन्हें खाना बना हुआ तैय्यार मिलेगा।

बिजलीका एक नए प्रकारका कुकर (कन्दु)

यह कन्दु या कुकर पहले पहल अण्डे पकानेकेलिए बनाया गया था पर अब बोतलोंके गरम करने या दाल, चावल, तरकारी बनानेमें काम आ सकता है। इसमें पानीके विद्युत्-विश्लेषणद्वारा पैदा हुई गर्मीका प्रयोग किया जाता है। पकनेवाली चीज़ पानीमें नहीं रखी जाती, पर थोड़ेसे पानीके ऊपर एक गोल आधारपर रखी जाती है। पानीमेंसे विद्युत् धारा जाती है पानीका विश्लेषण होता है और इसी क्रियामें गरमी पैदा होती है, गर्मी पाकर पानीकी भाप बनती है, जो कि अंडे आदि पदार्थोंको पकाती है। थोड़ी देरमें पानी सब भाप रूपमें परिणत होकर निकल जायगा। पानी न रहनेसे बिजलीकी धाराका आना भी बन्द हो जायगा। अतएव, यदि नापकर पानीकी उचित मात्रा रखी जाय, तो वस्तु पककर तैयार हो जायगी। जो चित्र दिये गये हैं, उनसे

इस कन्दुकी बनावट भली भांति समझमें आ जायगा।
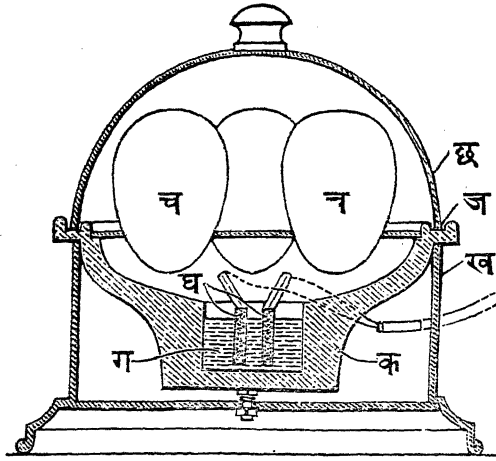
चित्र १
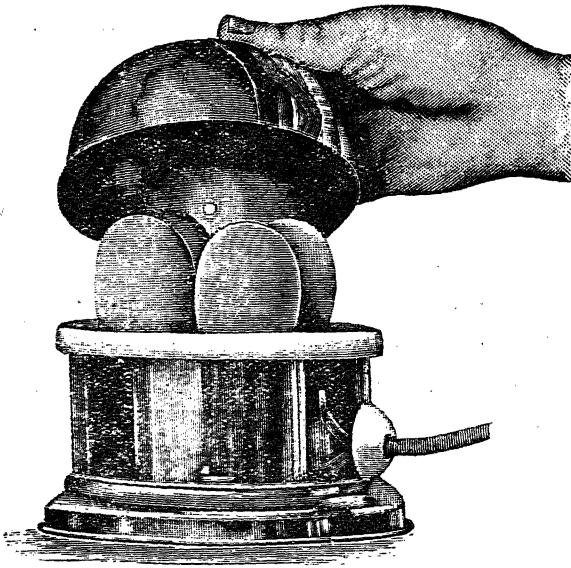
चित्र २

ख एक निकिल चढ़ी हुई प्याली है, जिसमें एक गोल ढकनेवाली चीनीकी प्याली क रखी हुई है। चीनीकी प्यालीके बीचमें एक बेलनाकार स्थान ग है, जिसमें पानी भरा हुआ है। घ घ दो कर्बनके दो छड़ हैं जिनके द्वारा बिजलीकी धारा प्यालीमें आती है और निकल जाती है। यह दोनों बिजलीके तारोंसे, जैसा चित्र १ में दिखलाया है, जुड़े हुए हैं। छ प्यालीका ढकना है और ज एक छोटी नाली है, जो प्यालेके किनारेपर खुदी हुई है। जब बिजलीकी धारा एक कर्बनकी छड़पर पहुंचकर बाहर दूसरे तारमें चली जाती है, विद्युत् प्रवाहके कारण पानीका विश्लेषण होता है, जो पानीको भापमें परिणत करके उड़ाने लगता है। यह भाप उड़कर उस छिद्र युक्त आधारतक पहुंचती रहेगी जो चीनीकी प्यालीके ऊपर, जैसे चित्रमें दिखलाया है, एक आगे निकले हुए हिस्सेपर डटी हुई है। इसी भापसे अंडे गरम होते हैं और पकते हैं। भाप ऊपरके ढ़क्कनतक पहुंचकर जम जाती है और टपक टपककर ज नालीमें जमा हो जाती है। इस प्रकार भाप फिर ग में लौटकर नहीं पहुंचने पाती। थोड़ी देरमें सब पानी भाप रूपसे उड़कर ज में पहुंच जायगा। तदनन्तर बिजलीकी धारा, पानीके न होनेसे एक कर्बन छड़से दूसरी-तक न पहुंच सकेगी और बन्द हो जायगी।

यह स्पष्ट है कि किसी चीज़का पकना, उस पानीकी मात्रापर निर्भर है, जो ग में रखा जायगा, क्योंकि जितना अधिक पानी ग में होगा, उतनी ही अधिक देरतक चीज़ गरम होती रहेगी। वास्तव-में यह अन्दाज़ा कर लिया जाता है कि अमुक पदार्थ अमुक समयमें पकेगा। उतना ही पानी ग में रखते हैं, जितना कि इस अन्दाज़ किये हुए समयमें भाप बनकर उड़ जायगा। कितना पानी कितने समयमें उड़ सकता है यह यंत्रपर खुदा हुआ है। जिस वस्तुको जितनी देरतक गरम करने-की आवश्यक होती है, उतना ही पानी ग में भर दिया जाता है। उचित समयपर पदार्थ पका हुआ मिलेगा।

वैज्ञानिकीय

बच्चोंका एक अनोखा खिलौना

[ले० डा. बी. के. मित्र, एल. एम. एस.]

पाठको ! मैं अबतक आप लोगोंकी सेवामें शुष्क और जटिल विषय लेकर उपस्थित होता रहा हूं, लीजिये अब एक ऐसा ही रोचक विषय भी आपकी भेंट करता हूं।

मैंने एक आदमीके पास एक बड़ा सुन्दर खिलौना देखा यह दो खण्डोंमें बना हुआ था। एकमें एक चबूतरेपर एक मन्दिर था और उसमें एक ओर कृष्णजीका और दूसरी ओर शिशुपालका चित्र लगा हुआ था। दूसरा खण्ड कुएंके आकारका था जिसके ठीक बीचमें एक हाथ जोड़े हुए नारी मूर्ति बनी हुई थी। यह एक कीलीपर खड़ी थी जो उसकी सारीसे छिपी थी। जब कृष्णजीका चित्र उस नारी मूर्तिके पास रखा जाता था तो वह कृष्णजीकी ओर मुड़कर खड़ी हो जाती थी और यदि शिशुपालका चित्र उसके पास रखा जाता था तो वह पीठ मोडकर खडी हो जाती।

पाठक ! आप समझते होंगे कि मैं आपके साथ होली या नव वर्षकी दिल्लगी कर रहा हूं परन्तु जो मैं कह रहा हूं वास्तवमें ठीक ही है। हमारे अभिज्ञ पाठक तो समझ ही गये होंगे कि मामला क्या है यह केवल चुम्बकका अद्भुत खेल है। दोनों खिलौनोंमें एक एक चुम्बक मौजूद है। मन्दिरके चबूतरेके नीचे एक चुम्बक जड़ा हुआ है इसी तरह नारी मूर्तिकी कीलीके नीचे एक चुम्बक है जो एक दूसरी कीलीपर नाविकोंके दिक्सूचक यन्त्रकी (कुतुबनुमा) तरह चौरस भावसे घूम रहा है जब दोनों चुम्बकोंके सजातीय प्रान्त पास लाये जाते हैं तब नारी मूर्तिके नीचेका कीलीपर टिकाया हुआ चुम्बक मुडकर विरुद्ध दिशाको चला जाता है। परन्तु विषम जातीय प्रांत समीप आनेसे उनमें आकर्षण शक्ति पैदा होती है अवएव नारी मूर्ति सदैव कृष्णजीके चित्रकी ओर आकर्षित होती है और शिशुपाल मूर्तिसे हट जाती है।

जिन्होंने विज्ञान का समुचित सत्कार नहीं किया है उनको मैं पिछले दो संख्याओंके दो चार पत्र उलटनेका कष्ट दूंगा। ज़रा विज्ञानकी पिछली संख्यामें निकालिये और देखिये कि इस रहस्यकी कुंजी आपको कहीं मिलती है या नहीं। सम्वत् ७२ धन मासकी संख्या खोलकर सालिग्राम भार्गवका चुम्बक विषयके लेखकी भूमिका पढ़कर देखिये और यह बताइये यदि मन्दिरके चबूतरेमें चुम्बकके स्थानमें एक खण्ड लोहा होता तो उसका प्रभाव नारि मूर्ति पर क्या होता?

* * * *

सूर्य्यदेवकी कृपा

[ले० महेश चरण सिंह, एम. एस-सी,]

म० मालीनशाटने यह सिद्ध किया है कि पशु तथा मनुष्य, रातको दिनका अपेक्षा कम श्वास लेते हैं और अंधेरेकी अपेक्षा प्रकाशमें अधिक श्वास लेते हैं जिसका सीधा अर्थ यह है कि सूर्यका प्रकाश पशुओंकी आणविक गतिको उत्तेजित करता है तथा उनकी कामशीलताको बढ़ाता है। हमारी कृत्तिम अग्नि भी सूर्यकी अग्नि है। हम बड़े बड़े पत्थरके कोयले जलाकर ताप और प्रकाश पैदा करते हैं और विद्युतद्वारा सूर्यके समान चकाचौंध प्रकाश पैदा कर सकते हैं परन्तु वास्तवमें यह सब सूर्यकी सञ्चित शक्तिका ही उपयोग है। हम सूर्यकी सहायता बिना एक चिनगारी भी प्रकाशित नहीं कर सकते हैं।

* * * *

जहां कहीं ताप तथा प्रकाश है वह सूर्यका ही रुपान्तर है, कोयला कहांसे आया? खानसे। खानोंमें पहले कभी वृक्षोंके जंगल थे जो दबकर पानीकी सहायतासे पीट अथवा पाषाणिक काष्ठ बने, फिर वही अधिक दबाव और तापके कारण पाषाण स्वरूप काले पहाड़ बन गये, जिनको

खोदकर जब जलाते हैं तो वही ताप और प्रकाश प्रगट होता है जिसने उनको जन्म दिया था। दूसरे शब्दोंमें वही सूर्य जो कोयलेमें छिपा था फिर विद्यमान होकर कलाकौशल चलानेका साधन बनता है। सच कहा है. जहां देखता हूं तहां तू ही तू है तेरा ज़िक्र है और तू दू बदू हैं। और तंग है और न तू है संग में व लेकिन चमकता है हर रंग में। इसीसे सिद्ध है शक्तिका विनाश नहीं हो सकता।

* * * *

प्रोफ़ेसर टिन्डलने भी लिखा है कि जिस प्रकार घड़ी चलानेवाली शक्ति उसी हाथसे आती है जिस हाथने घड़ीमें कूक भरी है, उसी प्रकार सारी पार्थिव शक्ति सूर्यसे ही उत्पादित है। समुद्रका ज्वारभाटा और ज्वालामुखी पहाड़की गति छोड़कर सारा यान्त्रिक बल, सारी शक्ति चाहे वह ऐन्द्रिक हो चाहे अनैन्द्रिक हो, जीव सम्बन्धी वा शरीर सम्बन्धी हो, सबकी सब क्रियाका श्रोत सूर्य है। उसीके तापके प्रतापसे समुद्रमें जल और वायुमें गैस विद्यमान हैं और उसीकी यान्त्रिक शक्तिसे इन दोनोंमें तूफ़ान उठते हैं। वही नदियों तथा ग्लेशियरोंको पहाड़ोंकी चोटीपर ले जाता है और उसीकी शक्तिके कारण भूमण्डल, ग्रह और तारे बल पूर्वक गति करते हैं। तड़ित तथा चकाचौंध बिजलियां भी उसीका परिवर्तित स्वरूप हैं। यह हर एक चूल्हेमें आग और हर एक घरमें दीप उसीकी संचित गरमीका फल है। लड़ाईमें तोप बन्दूक तथा अन्य प्रकारके अस्त्र शस्त्र सब उसीकी महिमासे मिले हैं। सूर्य हमें ताप रूपसे दर्शन देता है और ताप रूपमें ही हमसे बिदा होता है। और उसके आने जानेके कारण हमारे सारे संसारकी भिन्न भिन्न शक्तियां उत्पन्न होती हैं अथवा मानो जगतकी शक्तियां केवल भिन्न भिन्न सांचेके रूपमें हैं और उन साचोंमें सूर्य देवही क्षणकेलिए ढले हैं।

ऊपरके कथनसे यह पता लग गया कि सारी भौतिक, सांसारिक और जीवन-सम्बन्धी क्रियाएं केवल सूर्यके ताप और प्रकाशके सहारे ही होती हैं। यदि सूर्य न हो तो पृथ्वीपर कोई जीव न रह सके, इसलिए जीवनका हेतु सूर्य कहा जा सकता है। पशुओंके मरनेपर उनमेंसे तापका ही अभाव पहले होता है, और जीवनके पहले तापका भाव ही आवश्यक होता है। चिड़ियोंके अण्डोंको भी तापकी आवश्यकता है इससे अनुमान होता है कि जिस तरह तापके यान्त्रिक-बलमें परिवर्तन कर सकते हैं उसी प्रकार तापको संभव है कोई जीवन शक्तिमें भी परिणत करके विज्ञानकी वृद्धि करे।

समालोचना

रोशनी

लाहौरकी 'सोसायटी फ़ार प्रोमोटिंग साइंटिफ़िक नालेज' का मासिक मुख पत्र। उर्दू भाषामें। अवैतनिक सम्पादक प्रोफ़ेसर बेनीप्रसाद एम-एस-सी.। वार्षिक मूल्य २); विज्ञान परिषद् प्रयागके सभ्यों तथा परिसभ्योंको १॥) में मंत्री विज्ञान परिषदद्वारा मिल सकता है। अप्रैल सन् १९१७ का अंक हमारे सामने उपस्थित है, इसमें कई अच्छे २ लेख हैं—

(१) प्रेमानन्द विद्यार्थीका जीवनचरित्र-यही सज्जन उक्त सभाके जन्म दाता हैं (२) दूसरे देशोंमें स्त्रियोंके काम (३) दूधमें बैक्टीरिया, इत्यादि। दो शिक्षाप्रद नोट, रेडियम घड़ियां और रेडियम क्लाक, और हिन्दोस्तानमें पेंसिल साज़ीपर एक नज़र, भी हैं। इनके अतिरिक्त दो और लेख हैं (१) बुरीदा एज़ाका ताल्लुक रूहसे (२) इल्म उल अरज़ और हरकात ज़मीन।

यह पत्रिका पंजाबमें उर्दूकेलिए और उर्दू जाननेवालोंकेलिए वही काम कर रही है जो **विज्ञान** हिन्दीकेलिए कर रहा है। उर्दूके प्रेमियोंको इसकी सहायता करनी चाहिये।

* * * *

[आगे देखिये आवरण पृष्ठ ३]

समालोचना

[पृष्ठ ९६ से सम्मिलित].

[ले० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.]

लक्ष्मी—वार्षिक मूल्य २) सम्पादक पं० मिश्र इश्वरीप्रासाद शर्म्मा। सचित्र मासिक पत्रिका गयासे प्रकाशित होती है।

कुछ कालकेलिए इसका प्रकाशन बन्द हो गया था। ईश्वरकी कृपासे फिर निकलने लगी है। ईश्वर करे कि इसकी उन्नति हो और यह चिरायु हो। छपाई, काग़ज़ लेख सभी अच्छे हैं।

बाल सखा—प्रकाशक इण्डियन प्रेस, प्रयाग। सम्पादक पं० बद्रीनाथ भट्ट, बी०ए०। वार्षिक मूल्य २)। हिन्दी संसारमें बालक बालिकाओंकेलिए अभीतक एक मात्र पत्र शिशु था। अब सौभाग्य-से यह दूसरा पत्र प्राकाशित होने लगा है। पत्र बहुत अच्छे काग़ज़पर बड़ी सुन्दरतासे छापा गया है। कई अच्छे अच्छे चित्र भी हैं। बालकोंकेलिए वास्तवमें लेख लिखना बड़ा कठिन काम है। केवल अनुभवी सिद्ध- हस्त लेखक हो ऐसे लेख लिख सकते हैं। बालकोंकेलिए लेख लिखनेमें दो बातोंका विचार रखना पड़ता है - एक तो लड़कोंको उपदेश मिले, जिससे उनके चरित्र संगठनमें सहायता मिले, दूसरे उनके ज्ञानकी (genral knowledge) वृद्धि हो। पहले उद्देश्य-की पूर्त्तिकेलिए उपदेशप्रद कहानियाँ देनी चाहिएँ पुराणोंको हज़ारों गाथाएँ इसकेलिए बड़ी अच्छी सामग्री देती हैं। ज्ञानकी वृद्धिके-लिए कुछ ऐसे खेल इत्यादि देने चाहिएँ जिनसे बालकोंका ज्ञान बिना जाने ही और बिना विशेष परिश्रम किये ही बढ़े। बाल-सखाकी पहली संख्यामें इन दोनों उद्देश्योंकी पूर्त्तिका साधन किया गया है। बच्चोंका मुरलीधरकी नौकरी, धर्म बीर हक़ीक़तराय, पैन्सिलकी कथा, कुम्भकरणकी रातें शीर्षक लेख बहुत रुचिकर प्रतीत होंगे। एक दो लेख बहुत क्लिष्ट भी हैं जैसे गोदी भरे लाल। ईश्वरसे प्रार्थना है कि यह पत्र यथेष्ट उन्नति करे और बालक बालिकाओंके शिक्षणमें सहायक हो। हम इसका स्वागत करते हैं।

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषद्-प्रयाग। लीडर प्रस, इलाहाबाद में सी. वाइ. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Reg NO. A 70

भाग ५ मिथुन, १९७४ । June 1917. संख्या ३

Vol. V. No. 3

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [१ प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानके नियम

(१) यह पत्र प्रति संक्रान्तिको प्रकाशित होता है। पहुँचनेमें एक सप्ताहसे अधिक देर हो तो प्रकाशकको तुरन्त सूचना दें। अधिक देर होनेसे दूसरी बार विज्ञान न भेजा जायगा।

(२) वार्षिक मूल्य ३) अग्रिम लिया जायगा। ग्राहक होनेवालोंको पहले वा सातवें अंकसे ग्राहक होनेमें सुविधा होगी।

(३) लेख समस्त वैज्ञानिक विषयोंपर लिये जायँगे और योग्यता तथा स्थानानुसार प्रकाशित होंगे।

(४) लेख कागज़की एक ओर, कमसे कम चार अंगुल हाशिया छोड़कर, स्पष्ट अक्षरोंमें लिखे जायँ। भाषा सरल होनी चाहिए।

(५) लेख सचित्र हों तो यथा संभव चित्र भी साथ ही आने चाहिएं।

(६) लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्त्तनमें सामयिक पत्र और पुस्तकें, मूल्य, तथा सभी तरहके पत्र व्यवहारकेलिए पता—

सम्पादक 'विज्ञान' प्रयाग

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग ५ { मिथुन, संवत् १९७४। जून, सन् १९१७। { संख्या ३

रसायनविद्याका प्राचीन इतिहास

[ले०-डा० बी के. मित्र, एल. एम. एस.]

यद्यपि आधुनिक रसायनविद्या हमें युरोपवालोंसे मिली है, तथापि अध्यापक प्रफुल्लचन्द्रराय तथा अन्य मनीषियोंकी गवेषणाओंसे प्रमाणित हुआ है कि इस विद्याकी चरचा हमारे देशमें अति प्राचीन कालमें हो चुकी है। वास्तवमें यह विद्या युरोपमें भी मिश्रदेशसे आई थी। मिश्रदेशके विषयमें भी ऐसे प्रमाण मिले हैं कि वह भारतका ही एक उपनिवेश था। परन्तु यह बात अभीतक सब लोगोंको स्वीकृत नहीं हुई है। मिश्रवाले इस विद्याको 'कीमिया' कहते थे जिसका कोषार्थ गुप्तविद्या है। इसका उद्देश्य अधिकतर तांबा सीसा आदि हीन धातुओंको सोना चांदी आदि श्रेष्ठ धातुओंमें परिवर्त्तन करना वा अमरत्व लाभ करना था।

युरोपके मध्ययुगोंके अंधियारेमें बहुतसे मानव रूपधारी राक्षस इस विद्याके प्रभावसे अपने वैरियोंको गुप्त रीतिसे विनाश किया करते थे। इसी कारण यह विद्या बहुत दिनोंतक पैशाचिक समझी जाती थी। इसका और एक कारण यह भी था कि युरोपमें इस विद्याके सिद्ध अधिकतर मुसलमान थे जिन्होंने उस समयपर इसकी यथेष्ट उन्नतिकी थी। यद्यपि मुसलमान कीमियागर भी पारस पत्थर वा अमृतके तरह किसी पदार्थके अन्वेषणमें मग्न रहे, तथापि इन्हींके अनुसन्धानमें उनको बहुतसे पार्थिव पदार्थोंके गुण मालूम हो गये। यही असली रसायन विद्याकी भित्ति है। आधुनिक रसायन विद्यामें कीमियागरोंके बहुतसे पारिभाषिक शब्द पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हींकी प्रक्रियाओंकी क्रमोन्नतिसे कीमियागरी मन्त्र तन्त्रोंकी अवस्थासे निकलकर विज्ञानकी कक्षातक पहुंच गई।

इस लेखमें हमारा उद्देश्य अधिकतर रसायन विद्याके इतिहासके आदि पर्वमेंसे केवल एक पत्रका उद्घाटन करना है, जिसमें नागार्जुन, वृन्द,

Chemistry रसायन विद्या]

चक्रपाणि आदि भारतीय रससिद्धोंका कार्य्य कलाप साधारण पाठक वर्गको विदित हो जाय।

हमारे देशमें रसायनविद्याने कई बार काया पलट की है। प्राचीन वैदिक युगमें भी हमें रसायन शब्द मिलता है। चरकने इसका लक्षण यह किया है—

"लाभोपायाहि शस्तानां रसादीनां रसायनम्" ॥

अर्थात् प्रशस्त (उत्तम) रस रक्तादियोंकी प्राप्तिका जो उपाय है वह रसायन है। और इसके गुण इस तरह वर्णन किये हैं:—

दीर्घायुं स्मृतिं मेधां आरोग्यं तरुणं वयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रिय वलं परम्
वाक्सिद्धिं प्रणतिं कान्तिं लभते ना रसायनात् ॥

अर्थात् मनुष्य रसायनके सेवनसे दीर्घायु, स्मरण शक्ति, धारण शक्ति, आरोग्य, नई जवानी प्रभावर्ण, स्वर, उदारता, शरीरका श्रेष्ठ बल, इन्द्रियोंका उत्तम बल, वाक्सिद्धि, प्रणति और कान्तिको प्राप्त करता है। इसके अनुसार त्रिफला, हरड, वहेडा, आंवला आदि औषधियां बलबर्द्धक होनेके कारण रसायनके अन्तर्गत हैं। वैदिक युगमें हमारे पूर्वज शतायु कामनाके अतिरिक्त विषयोंके उपभोग वृद्धिकेलिए सदासे ही लालायित थे। च्यवन ऋषि और राजा ययातिके उपाख्यान इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। परन्तु मध्ययुगमें जाकर हमारे पूर्व पुरुष इसी भोग विलासके अन्वेषणमें काष्ठादिकके अतिरिक्त धात्वादि खनिज पदार्थोंपर भी हाथ डालने लगे। इससे कोई यह न समझे कि वैदिक युगमें सोना चांदी वा मणि मुक्ता आदिका भैषज्य रूपमें व्यवहार विलकुल ही न था, केवल उनका प्रचार कम था।

वैदिक युगके अनन्तर हमारे देशमें एक और युग हो गया है जिसका ऐतिहासिक नाम बौद्ध युग है। इस युगमें यद्यपि आयुर्वेदीय शास्त्रोंके साथ साथ द्रव्यगुण विद्याकी यथेष्ट उन्नति हुई तथापि इस युगमें भी रसादिकोंका (खनिज पदार्थों) व्यवहार बहुत न हुआ। इसी युगमें चरक सुश्रुत, वाग्भट आदि मनीषियोंने अष्टाङ्ग आयुर्वेद विषयमें प्रामाणिक ग्रन्थ संकलित करके भिषग् जगतमें अमरत्व लाभ किया। अतएव इस युगको भारतका आयुर्वेदीय युग भी कहते हैं। इसका काल १००० वर्ष अर्थात् विक्रम पूर्व ५०० से विक्रमीय ५०० वर्षतक माना जाता है।

इसके अनन्तर हमारे देशमें एक और युगका प्रादुर्भाव हुआ जिसका काल १००० वर्ष अर्थात् विक्रमीय ६०० से १५०० वि० तक माना जाता है। इस युगमें भारतमें खनिज पदार्थोंके गुणोंका विशेष अनुसन्धान हुआ। आयुर्वेदीय परिभाषामें इसका नाम तान्त्रिक युग है।

यह तान्त्रिक कौन थे? किस समयमें इनका आविर्भाव हुआ? इसविषयमें मत भेद है। आचार्य प्रफुल्लचन्द्रजीका मत है, कि वैदिक ऋषियोंके आध्यात्मिक उद्योगोंके साथ ही साथ आर्य जातिमें एक बडा पन्थ ऐसे लोगोंका भी था जिनकी मानसिक वृत्तियां कुछ तामसिक मार्गमें लिप्त रहीं। यद्यपि यह लोग प्राचीन कालमें ऋक्-यजुः साम प्रणेता ऋषियोंकी श्रेणीके अन्तर्गत न हो सके, तथापि पीछेसे आर्य्य जातिकी एक बड़ी संख्याके अनुमोदनके कारण इनकी रीति विधियां भी अथर्ववेदके नामसे प्रामाणित समझी गईं। सम्भवतः यह अथर्ववेद पन्थी लोग ही तान्त्रिकोंके आदि गुरू हैं। हम पहिले कह चुके हैं कि वैदिक युगके बाद बौद्ध युगका प्रादुर्भाव हुआ था। इसमें जनसाधारणके खान पानके विषयमें कुछ कठिनाइयां उपस्थित हुई होंगी। यह एक प्राकृतिक नियम है कि जब किसी देशके प्रचलित आचारोंके विरुद्ध कोई कठोर नियम उपस्थित होते हैं तो उस समय कुछ लोग पूर्व संस्कारके हेतु अपने अभ्यासको चरितार्थ करनेकेलिए कोई न कोई गुप्त उपाय निकाल लेते हैं। यही कारण था कि बौद्ध युगके कठोर शासनके अन्तरालमें बौद्ध और अबौद्ध दोनों मिलकर इस तान्त्रिक मतको पोषण करते रहे। यद्यपि यह पन्थ आगे चलकर

अत्यन्त कुत्सित वाम मार्गी प्रथाओंका प्रवर्तक बना तथापि सारे तान्त्रिक केवल तामसिक वृत्तियोंमें लिप्त न रहे। इसमेंसे कितने ही यथार्थ विद्याके उपासक भी हुए इनके द्वारा प्रकृतिके बड़े बड़े गूढ रहस्य आविष्कृत हुए जिनके प्रमाण हमारे मध्य युगके अनगिनत रस ग्रन्थ दे रहे हैं।

हम पहिले बता चुके हैं कि वास्तवमें भारतीय रसायनविद्याकी उत्पत्ति तान्त्रिक युगमें हुई। इसका नाम रसायनी विद्या उसी युगके एक ग्रन्थ रुद्रयामलान्तर्गत धातु क्रिया नामके तन्त्रमें पाया गया है, जिससे अध्यापक प्रफुल्लचन्द्रजीने अंग्रेज़ी शब्द केमिस्ट्रीका पर्याय रसायनी विद्या दिया है। यद्यपि इस देशके अन्य विद्वानोंने केमिस्ट्री पदकेलिए 'रसायन' 'रसतन्त्र' वा 'रस शास्त्र, व्यवहार किया है, तथापि हम पूर्वोक्त प्रामाणिक संज्ञाको सादर ग्रहण करते हैं।

मैं यह कह देना चाहता हूं कि तान्त्रिक युगके बहुत पहिले भी हमारे आयुर्वेदमें पदार्थ विद्या सम्बन्धी ज्ञान यथेष्ट पाया जाता है। सुश्रुत संहितामें जो मृदु, मध्यम और तीक्ष्ण क्षार बनानेकी रीति दी है, वह कार्य्यतः आधुनिक वैज्ञानिक प्रणालीके अनुसार है। वे पलाश आदि वृक्षोंको जलाकर उनकी क्षारात्मक भस्मको लेकर जलमें घोल लेनेके अनन्तर उसको छान लेनेसे जो 'परिश्रुत' जल निकलता है उसको पकाकर मृदु क्षार (माइल्ड अलकली) बनाते थे। इसी मृदुक्षारमें शंख जातीय पदार्थोंका भस्म जो कि एक प्रकार का फुंका हुआ चूना होता है मिलाकर पका लेनेसे सुश्रुतका मध्यक्षार (कास्टिक अलकली) बन जाता है। इसी मध्यक्षारमें दन्ती, द्रावन्ती आदि औषधि मिलाकर तीक्ष्ण क्षार प्रस्तुत होता था। ऐसे क्षारोंको लौह पात्रमें मुंह बन्द करके रखना भी हमारे पूर्वजोंका वैज्ञानिक ज्ञान विषयक परिचय दे रहा है। पाठकने देखा होगा कि साबुन बनानेका क्षार इसी प्रकारसे अब भी बनाया जाता है, और लोहेके पीपोंमें बन्द रक्खा जाता है।

क्षार वस्तुओंके तेज प्रशमन (neutralisation) करनेकेलिए सुश्रुतजीने न केवल अम्लरसकी (एसिड) व्यवस्था की है प्रत्युत इसकेलिए एक युक्ति पूर्ण कारण भी दिया है। इसके अतिरिक्त सुश्रुतमें पञ्च लवण, छः धातु भिन्न भिन्न खनिज पदार्थ आदि भैषज्य रूपसे व्यवहार हुए हैं। उस प्राचीन कालमें, प्रायः आजसे २५०० वर्ष पूर्व, भौतिक पदार्थोंके विषयमें इतनी अभिज्ञता हमारे देशकेलिए कुछ कम गौरवका विषय नहीं है। सुश्रुतसे पूर्वलिखित संहिता चरकमें भी हमें सर्जीका क्षार (carbonate of sodium) और यवक्षार (carbonate of potassium) इन दोनों पदार्थोंका पार्थक्य बताया गया है, जो कि युरोपमें बहुत शताब्दियोंके अनन्तर ज्ञात हुआ।

उपरोक्त बातोंसे यह जाना जाता है कि रसायनी विद्याका विकाश हमारे देशमें आयुर्वेदके साथ ही साथ क्रमशः हुआ। यह सदासे ही आयुर्वेदकी सहेलिन बनकर उसकी सेवामें नियुक्त रही। परंतु अपनी पूर्णावस्थामें जाकर इसकी भिन्न शाखाएं और और कलाओंके प्रयोगमें आने लगीं। कदाचित् यह भ्रष्ट होकर अरबीय कीमियाके सदृश हीन धातुओंको सुवर्ण बनानेके अन्वेषणमें भी मग्न रही। परन्तु इसका मुख्य उद्देश्य कभी भी युरोपीय कीमियागरीकी तरह गर्हित न था, प्रत्युत आरम्भसे लेकर १५ वीं शताब्दीतक उससे सर्वथा उच्चावस्थामें विराजमान रही। परन्तु शोकका विषय है, कि इसके अनन्तर युरोप खण्डमें ज्यों ज्यों विज्ञानका अरुणोदय होने लगा हमारे देशमें विद्यादेवी अन्तर्ध्यान होती गई।

रसायनी विद्याका इस तरहसे क्रमशः विकाश होनेपर भी यह कहा जा सकता है कि भारत तथा युरोपमें इसके एक एक ऐसे धुरन्धर सेवक हुए जिनको हम इन शास्त्रोंका प्रणेता कह सकते हैं। यदि भारतीय रससिद्धोंमेंसे किसी एक पुरुषको इस गौरवका अधिकारी समझें तो वह नागार्जुन है। यद्यपि यह मनीषी चरक सुश्रुत

आदिके सदृश पौराणिक नहीं हैं, और इनके जीवन के विषयमें चीन तिब्बत आदि देशोंके बौद्ध साहित्यसे बहुतसे ऐतिहासिक तत्थ्य जाने गये हैं तथापि इनका काल और व्यक्तित्व लेकर बहुत वादविवाद भी हुआ है। अध्यापक नियोगीजीके मतमें यह विक्रमकी द्वितीय शताब्दीमें आविर्भुत हुए। सम्भवतः इन्होंने ब्राह्मण कुलमें जन्म लिया था, पीछे बौद्ध धर्म्ममें दीक्षित होकर नलेन्द्र विहारमें अपने गुरु श्रीरहभद्रके स्थान अध्यक्ष नियुक्त हुए थे, और बौद्ध धर्म्मके माध्यमिक मतके प्रतिष्ठाता होनेके अतिरिक्त इन्होने आयुर्वेदमें सुश्रुत संहिताका प्रति संस्कार किया। रसशास्त्रमें भी इन्होंने सम्यक् उन्नति की थी। "त्रिर्यक् पातन यन्त्र (भभका)" तथा अन्य रासायनिक प्रक्रियाओंके आविष्कर्त्ता होनेके कारण उन्होंने तत्कालीन रासायनिक जगतमें बड़ी प्रसिद्धि पाई थी।

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि नागार्जुनका आविष्कृत भभका यन्त्र अति साधारण रीतिका था। इस यन्त्रमें केवल दो सुराहीदार गर्दनवाले मिट्टीके घड़े होते थे जिनको टेढ़ा रखकर उनके दोनों मुँह एक तरफ़से घिसकर एक दूसरेसे जोड़ दिये जाते थे। एक घड़ेमें पारद आदि पदार्थ रखकर अग्नि द्वारा गरम करते थे, दूसरेमें जल भरा होनेके कारण उसमें शोधित खनिज पदार्थ जम जाते थे।

इसी सरल तिर्य्यक्पातन यन्त्रके रूपान्तरसे बहुतसे और और यन्त्र यथा उर्ध्वपातन अधःपातन आदि बनाये गये। परंतु इनका उल्लेख प्राचीन अयुर्वेदीय ग्रन्थोंमें नहीं मिलता है इससे यह प्रमाणित होता है, कि यद्यपि नागार्जुनने रसायनी विद्याकी उत्पत्तिमें सहायता की और सम्भवतः धातु मारण विधिकी एक प्रक्रिया भी आविष्कारकी जिसको अयस्कृत कहते हैं तथापि इनके अनन्तर बहुतसे और और आविष्कारोंका गौरव इन्हींपर आरोप किया गया है। नागार्जुनके अनन्तर रस शास्त्र थोड़ा थोड़ा करके चिकित्सा शास्त्रमें सम्मिलित होता रहा यहांतक कि दशवीं शताब्दीके क़रीब हमें एक ग्रन्थ सिद्ध योग नामका मिलता है जिसके रचियता वृन्द हैं। वृन्दका काल इस तरह निर्धारित किया जाता है, कि इन्होंने माधव निदानके अनुसार अपने चिकित्सा ग्रन्थको लिखा था। और यह ग्रन्थ अष्टम शताब्दीमें बग़दादके ख़लीफ़ाओंकी आज्ञासे भाषान्तरित हुआ था इसलिए वृन्दका समय लगभग दशम शताब्दी माना जाता है।

वृन्दके सिद्धयोगमें हम कई प्रकारके धात्वादिके नवीन यौगिकोंका आविष्कार देखते हैं। इस ग्रन्थके रसायनाधिकारमें एक योग पर्पटीताम्रके नामसे मिलता है जो ताम्र और गन्धकका यौगिक है। रस पर्पटीका व्यवहार भी इस ग्रन्थमें पाया जाता है। वृन्दमें एक प्रक्रिया लोह मारणकी भी दी गई है। इस ग्रन्थमें एक अञ्जनका भी वर्णन है जिसके चौदह उपादानोंमेंसे एक मारित ताम्र भी है।

वृन्दके अनन्तर ग्यारहवीं शताब्दीमें चक्रपाणिदत्त प्रादुर्भूत हुए। इन्होंने वृन्दके तथा अन्य प्राचीन संहिताओंसे कई संकलित ग्रन्थोंको बनाया जिनमेंसे एक आजकलका प्रधान चिकित्सा ग्रन्थ है। इनके पिता नारायण गौड़के राजा न्यायपालके यहां पाकशालाके अध्यक्ष थे। चक्रदत्तके समयमें भी धात्वादिका भैषज्य रूपसे सेवन प्रचलित नहीं था। इसी कारणसे इन्होंने वृन्दके आविष्कृत रस पर्पटीके व्यवहारका गौरव अपनेलिए प्रतिपादन किया। चक्रपाणिके ग्रन्थमें भी एक ताम्रयोग पाया जाता है जो कि ताम्र और गन्धकका यौगिक है। लोह मारणकी भी एक विधि चक्रपाणि ने दी है। लोह मल वा मण्डुरका सेवन भी चक्रपाणिने बताया है। इसी प्रकार कई और रासायनिक प्रयोग हम चक्रपाणिमें पाते हैं। अतएव भारतमें रसापनी विद्याके ज्ञानका युरोपसे बहुत पहिले विकाश हुआ।

भारतीय रसायनकी उत्पत्तिमें हमने केवल तीन धुरन्धर मनीषियोंके नाम यहां लिखे हैं परन्तु भारतमें ऐसे ऐसे और कितने ही रासायनिकोंका आविर्भाव हुआ होगा, कौन कह सकता है? हमारे यहांके किसी एक पिछले रसग्रन्थमें २७ ऐसे रससिद्धोंके नाम लिखे हैं जो कि सिद्ध नागार्जुनके सम कक्ष बताये गये हैं। इससे प्रतीत होता है कि इस देशमें रसायन विद्या अमरत्व लाभादि काल्पनिक विषयोंके अन्वेषणसे निकलकर यथार्थ विद्याकी श्रेणीमें पहुंची थी।

अङ्कगणितकी शिक्षा

[ले०—सतोशचन्द्रघोषाल, बी. एस-सी., एल-एल. बी.]

(गताङ्कसे आगे)

युक्तिपूर्ण संक्षिप्त क्रियाएं.

भिन्नके प्रश्न कराते समय शिक्षकको चाहिये कि विद्यार्थियोंको संक्षिप्त क्रियाएं ढूंढ़ निकालनेकी उत्तेजना दे। दिये हुए प्रश्नको युक्तिद्वारा सरल करलेनेसे बुद्धिका विशेष विकाश होगा और इस तरह अन्वेषण करनेकी आदत व्यवहारमें भी बहुत उपयोगी होगी। कई साधारण युक्तियां जो प्रायः व्यवहारमें आती हैं हम नीचे लिखते हैं—

मानकी अपेक्षा जब हम भिन्नोंकी तुलना करते हैं तो बहुधा हम उनके रूपांतर करके हर बना लेते हैं। परंतु कभी कभी अंशोंको तुल्य करलेनेसे ही हमारा अभिप्राय सिद्ध हो जाता है यथाः—

५/९३, ६/९७, ४/८३ इन भिन्नोंको मानके अनुसार लिखो। यहां हम यदि रूपांतर करें तो हरोंकी अपेक्षा अंशोंको बहुत आसानीसे तुल्य बना सकते हैं; जैसे—

Pedagogics शिक्षण कला]

$$\frac{५}{९३}=\frac{५\times१२}{९३\times१२};\ \frac{६}{९७}=\frac{६\times१०}{९७\times१०};\ \frac{४}{८३}=\frac{४\times१५}{८३\times१५}$$

अथवा क्रमशः $\frac{६०}{१११६},\ \frac{६०}{९७०},\ \frac{६०}{१२४५}$

इसलिए मानकी अपेक्षा $\frac{६}{९७},\ \frac{५}{९३},\ \frac{४}{८३}$

यदि हमने रूपांतरमें हरोंको तुल्य बनाया होता तो बहुत गुणा करना पड़ता और अधिक त्रास होता। इस प्रश्नको दूसरी सरल रीतिसे इस प्रकार भी कर सकते हैं—

$$\frac{५}{९३}=\frac{१}{१८\frac{३}{५}};\ \frac{६}{९७}=\frac{१}{१६\frac{१}{६}},\ \frac{४}{८३}=\frac{१}{२०\frac{३}{४}}$$

इस प्रकार भी मानका अनुमान सरलतासे हो सकता है इस रीतिमें हमने अंशोंको भागद्वारा रूपांतर करके तुल्य किया है।

भिन्नोंके जोड़ वसूल तथा साधारण (सरल) करनेमें भी विद्यार्थियोंको बताया जाय कि दिये हुए भिन्नको भली भांति देखकर उसे दुबारा लिखनेमें भी बहुत सरलता होती है यथा,

$$५\frac{१}{९}-\frac{१०}{७}+३\frac{३}{४}+\frac{५}{६}-३\frac{१}{९}-२\frac{३}{७}-३\frac{१}{६}$$

को सरल करना है। इस प्रश्नमें यदि हम एकदम हरोंका समापवर्त्य निकालकर भिन्नोंको सरल करें तो बड़ी बड़ी संख्याएं आवेंगी तथा बड़ा श्रम और समय खर्च होगा, परन्तु यदि हम प्रश्नको देख भालकर समान समान भिन्नोंको पास लाकर उन्हें आपसमें सरल करें तो प्रश्न बहुत आसानीसे हल हो जायगा। यथा

$$\left(५\frac{१}{९}-३\frac{१}{९}\right)+\left(२\frac{३}{७}-\frac{१०}{७}\right)+\left(\frac{५}{६}-\frac{१}{६}\right)+\left(३\frac{३}{४}-३\right)$$

$$= २ + १ + २/३ + ३/४$$ इत्यादि.

यदि भिन्नके अंश और हरको हम एक ही संख्कासे गुणा करें तो भिन्नके मानमें कुछ भी अंतर नहीं होता, इस तत्वका उपयोग करनेसे भिन्नोंके सरल करनेमें कभी कभी बड़ी सरलता होती है। यथा

$$\frac{५/६\times२/३-३/४-१/९}{२/३\times१/२-१/४-७/९}$$ को सरल करो

इस प्रश्नमें यदि हम ऊपर और नीचेके भिन्नोंमेंसे प्रत्येकको ३६ से गुणा करें तो बड़ी सरलता होती है। दिया हुआ भिन्न

$$= \frac{३० + २४ - २७ - ४}{२४ + १८ - ६ - २८} = २३/५ = ४\frac{३}{५}$$

दशमलव

पठनक्रममें दशमलवका स्थान

पठनक्रमें दशमलवको कौनसा स्थान दिया जाना चाहिये इस विषयमें बड़ा मतभेद है। कई गणितज्ञोंकी रायमें दशमलव भिन्नसे पहिले पढ़ाया जाना चाहिये। जिस प्रकार संख्याओंकी लेख-प्रणालीमें दिये हुए अङ्कका मान दहिनी ओरके स्थानोंमें क्रमशः दश दश गुणा घटता जाता है उसी प्रकार इकाई स्थानसे दहिनी ओर भी वही क्रम जारी रखनेसे दशांश शतांश इत्यादि दशमलव स्थान प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार इन लोगोंका कहना है कि दशमलव कोई नवीन वस्तु नहीं सिर्फ़ संख्या स्थानोंका इकाई स्थानसे दहिनी ओर ले जाना ही है और इसीलिए भिन्नके समान कठिन विषयके पहले ही उसका पढ़ाया जाना योग्य है। दूसरे लोगोंका मत है कि जिस क्रमसे मनुष्य जाति आज पर्यंत सीखती आई उसको बदलनेकी कोई आवश्यका नहीं। यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो पहिला मत युक्तिसंगत मालूम होता है, परन्तु यह भी स्पष्ट है कि दशमलव भी एक प्रकारके भिन्न ही हैं और यथार्थमें वैसे सरल भिन्न भी नहीं जैसे कि १/२, १/४ इत्यादि भिन्न हैं। दूसरी बात यह है कि यदि विद्यार्थियोंको भिन्नका साधारण ज्ञान न हो तो दशमलवके गुणा और भागको समझनेमें भी अवश्य उन्हें अधिक कठिनाई होगी, इसलिए दोनों मतोंके बीचका मार्ग अवलम्बन करना ही श्रेष्ट प्रतीत होता है। वास्तवमें भिन्नका साधारण ज्ञान हो चुकनेपर दशमलवको शुरू कर देना ही लाभकारी है।

दशमलवका प्रारम्भ

दशमलवके प्रारम्भमें विद्यार्थियोंका ध्यान संख्या लिखनेकी प्रणालीकी ओर खींचा जाय तथा बतलाया जाय कि अङ्कोकी क़ीमत किस प्रकार उनके स्थानोंपर निर्भर है। १११ का दृष्टांत लेकर बताया जाय कि दहाई स्थानमें जो १ है उसकी क़ीमत इकाई स्थानीय १ से दशगुणी बड़ी है अर्थात् इकाई स्थानका १ दहाई स्थानके १ का दसवां भाग है। इसी प्रकार सैकड़ा स्थानीय १ का दहाई स्थानीय १ दसवां भाग है। इसके पश्चात कागज़की एक चौकोर पट्टी लेकर उसको दसके तुल्य मान उसके दस तुल्य खंड कारवाओ। पूछो कि जब पूरी पट्टी १० के तुल्य है तो प्रत्येक टुकड़ा कितनेके बराबर है ? उ०-१ इकाईके तुल्य। दो तीन और चार टुकड़े लेकर क्रमशः इसी प्रकारके प्रश्न पूछो, पश्चात इन छोटे टुकड़ोंमेंसे एक लेकर उसके भी दस तुल्य खंड कराओ। अब यह एक दशांश एक इकाई टुकड़ा और एक पूरी पट्टी लेकर विद्यार्थियोंसे निकलवाओ कि ये क्रमशः दशांश, इकाई और दशके तुल्य हैं इनको तख्तेपर इस भांति लिखो

द	इ	दशांश
१	१	१

इसी तरह इन तीन स्थानोंमें और और संख्याएं लिखकर विद्यार्थियोंसे पढ़वाओ। अब पूछा जाय कि यदि हम स्थानोंके नाम न लिखें तो पहिचान किस प्रकार हो सकती है। शिक्षक स्थानोंके नाम छुपाकर विद्यार्थियोंसे संख्याएं पढ़वावे। इस तरह संख्या पढ़नेमें विद्यार्थी प्रायः दशांशोंको इकाई समझेंगे। अब बताओ कि यदि हम ऊपर लिखी संख्याओंको चित्रकी भांति लिखें तो इकाई स्थान और दशांशोंकी पहिचान सरलतासे हो सकती है। पश्चात् बताओ कि लम्बी खड़ी लकीर खींचनेके बदले यदि हम इकाइयोंके बाद एक छोटासा विन्दु रख दिया करें तो भी दशांश इत्यादि स्थानोंको आसानीसे जान सकते हैं। इस तरह दशमलवकी लेखप्रणालीका ज्ञान हो जाने-

११	१
२२	२
४५	६
८७	६

के बाद उन्हें इसमें अभ्यास देनेकेलिए कई प्रश्न लिखनेको दो यथा—एक सौ तीन और पांच दशांश। इसी प्रकारके और भी प्रश्न दिये जायं। प्राइमरी स्कूलमें दशमलव पद्धतिपर बनी नाप तोलकी परिभाषाएं सिखानेकेलिए समय नहीं है। केवल दशमलवका ज्ञान ही भली भांति करा देना काफ़ी होगा।

जब विद्यार्थियोंको दशमलव पढ़ने तथा लिखनेमें अच्छा अभ्यास हो जाय तो दशमलवके जोड़ और बाक़ीके प्रश्न दिये जायं। इन प्रश्नोंके करनेमें कोई विशेष रीतिकी आवश्यकता नहीं और न इन्हें समझनेमें ही विशेष अड़चन है।

दशमलवका पूर्णांक द्वारा गुणा और भाग

दशमलवका गुणा और भाग सिखानेकेलिए आरम्भमें विद्यार्थियोंको ऐसे उदाहरण देने चाहियें जिनको वे प्रत्यक्ष काग़ज़की पट्टियां और उनके खंडोंद्वारा निकाल सकें, यथा ३˙४ को ४ से गुणा करो। विद्यार्थी ३ इकाई पट्टियां और ४ दशांश टुकड़े लेवें फिर इनको चारसे गुणा करनेकेलिए तीन तीन इकाई पट्टियां और चार चार दशांश चार बार लेकर जोड़े।

अब शिक्षक निम्नलिखित प्रश्न पूछें—

कुल इकाई पट्टियां कितनी हैं? उ०-१२

कुल दशांश टुकड़े कितने हैं? उ०-१६

अब समझावें कि १६ दशांशका अर्थ १ इकाई और ६ दशांश। विद्यार्थियोंसे कहे कि १ इकाईको १२ इकाइयोंमें जोड़ दो काले तख़्तेपर इस प्रकार लिखो;

३˙४ = ३ इकाई + ४ दशांश
४ ४
१३˙६ = १२ इकाई + १६ दशांश = १३३ + ६दशांश

इस प्रकार काले तख़्तेपर कई उदाहरण समझाये जानेपर विद्यार्थी दशमलव और पूर्णांकका गुणा आसानीसे करने लगेंगे। दशांशकी इकाई बनानेका अभ्यास धीरे धीरे मनमें ही करनेकी आदत डाली जाय। इस प्रकार गुणाके प्रश्नोंमें अभ्यास हो चुकनेपर दशमलवका पूर्णांकद्वारा भाग सिखाया जाय। आरंभमें इस प्रकारका उदाहरण दिया जाय, ५ दहाई पट्टियां और ६ इकाई टुकड़े ५ विद्यार्थियोंमें बराबर बराबर बांटना है। पांचों विद्यार्थियोंको एक एक दहाई पट्टी बांट दो। ६ इकाई टुकड़ोंमेंसे प्रत्येक विद्यार्थीको १ एक दिये जानेपर १ इकाई टुकड़ा बचा। अब इसका क्या करना चाहिये? इसके दश तुल्य खंड करो प्रत्येक खंड कितना है? उ०, एक दशांश। इन दश दशांशोंको प्रत्येक लड़केको कै कै बांटना चाहिये? उ० दो दो। काले तख़्तेपर इस भांति लिखो।

५ | ५६ = ५ | ५ दहाई + ५ इकाई + १० दशांश
१ दहाई + १ इकाइ + २ दश
= ५ | ५६ | १० + १ + २
५०
६
५
१०
१०
×

दो दशमलवोंका गुणन

दशमलवका दशमलवसे गुणा सिखानेकेलिए ऐसे सवालोंसे आरम्भ करना चाहिये—

(१) २६ को ˙५ से गुणा करो।

रीति—˙५ माने ५ दशांश।

इसलिए

२६ × ˙५ = २६ × ५/१० = (२६ × ५) ÷ १० = १३० ÷ १० = १३

(२) २२ को ˙४ से गुणा करो

˙४ माने ४ दशांश

रीति—

२२ × ˙४ = २२ × ४/१० = (२२ × ४) ÷ १० = ८८ ÷ १० = ८˙८

इन उदाहरणोंमें हमने क्या किया? पहिले २६ को ५ से तथा २२ को ४ से गुणा करके गुणनफलोंमें क्रमशः १० का भाग दिया है, परन्तु इस प्रकार-

का गुणा और भाग दोनों ही एक पंक्तिमें किये जा सकते हैं। दशसे भाग देनेका मतलब क्या है? गुणनफलके प्रत्येक अंकको एक स्थान दहिनी ओर हटा देना है।

देखो २२ × ·४ = ८·८

२ इकाई × ४ = ८ इकाई

परन्तु दससे भाग देनेका मतलब यह है कि ८ को इकाई स्थानके बदले दशांश स्थानमें रक्खो।

इसी प्रकार २ दहाई × ४ = ८ दहाई

परंतु यदि हम ८ दहाईको इकाई स्थानमें रख दें तो १० से भाग देनेका अभिप्राय सिद्ध हो जाता है।

उदाहरण २—२२·४ को ३·४ से गुणा करो

काले तख्तेपर इस भांति समझाओ २२·४

चार दशांश × ३ = १२ दशांश ३·४

= १ इकाई + २ दश ६७·२

२ को दशांश स्थानमें रक्खो ८·९६

हाथ लगी १ इकाई ७६·१६

२ इकाई × ३ = ६ इकाई

६ इ. + १ इ. हाथकी = ७ इकाई,

२ दहाई × ३ = ६ दहाई,

अब ·४ से गुणा करना है,

२२·४ × ·४ = (२२·४ × ४) ÷ १०

अर्थात् जो गुणनफल हो उसके प्रत्येक अंकको एक एक स्थान दाहिनी ओर रक्खो—

= ८ · ९६

इस प्रकार कई उदाहरण समझाये जानेपर विद्यार्थियोंको ज्ञात होगा कि जब किसी दशमलवको इकाई स्थानसे गुणा करते हैं तो फलका प्रत्येक अङ्क गुण्य अङ्कके ही स्थानमें रक्खा जाता है जैसा कि ऊपरके उदाहरणमें ४ को ३ से गुणा करनेपर दशांश स्थानमें रक्खा गया है। उन्हें यह बात भी मालूम हो जायगी कि जैसे दहाई और सैकड़ोंसे गुणा करनेपर फलके प्रत्येक अंक क्रमशः एक तथा दो स्थान बाईं तरफ़ हटाकर रक्खे जाते हैं उसी प्रकार दशांश और शतांशसे गुणा करनेपर फलके प्रत्येक अंक क्रमशः एक तथा दो स्थान दहिनी ओर हटाकर रक्खे जाते हैं। इस प्रकारका ज्ञान उस शुष्क क्रियासे बहुत ही अच्छा है जिसमें कि विद्यार्थी गुण्य और गुणकके दशमलव स्थानके दहिनी तरफ़से उतने ही अङ्क गिनकर गुणन-फलमें दशमलव विन्दु रख देते हैं। विद्यार्थियोंको ऐसा करनेमें अपनी बुद्धिसे बिलकुल काम नहीं लेना पड़ता। यथार्थमें दशमलवका गुणा हमेशा उसी रीतिसे करना चाहिये जैसा हम ऊपर बता आये हैं। नियमका उपयोग तो सिर्फ़ उत्तरकी सत्यता जांचनेकेलिए करना चाहिये। स्थानोंको गिनकर दशमलव विन्दु रखनेकी भद्दी आदत नहीं पड़ने देना चाहिये। संख्या स्थानोंकी पारस्परिक मुख्यताका ज्ञान करा देना उन्हें आगे बहुत काम आवेगी।

दशमलवमें दशमलवका भाग

एक दशमलवमें दूसरेका भाग देनेकी विधि सिखानेकेलिए आरम्भमें ऐसे प्रश्न दो, यथा ·७५ में ·५ का भाग दो। समझाओ कि इसका मतलब यही है कि ७५ शतांश में ५ दशांशका भाग दो। विद्यार्थियोंको बताओ कि पूर्णांकोंके भागमें हम भाजक और भाज्यको इकाइयां समझकर भाग देते हैं, यथा ५१२ ÷ ३२, इस प्रश्नका मतलब हम यह भी ले सकते हैं कि पांच सौ बारह इकाइयोंमें ३२ इकाइयोंका भाग दो तथा भिन्न भागका भी उल्लेख करके समझाओ कि वहां भी हम दोनों भिन्नोंके हरोंको समान रूपमें बदलकर ही भाग देते हैं। इसलिए दशमलव भागमें भी हमें भाजक और भाज्य दोनोंको समान जातीय बना लेना चाहिये। इस प्रश्नमें ७५ शतांशमें ५ दशांशका भाग देना है इसलिए या तो हमें चाहिये कि ५ दशांशोंके शतांश बनालें अथवा ७५ शतांशोंके दशांश बना लें। यथार्थमें शतांशोंके दशांश बना लेना ही योग्य है (पाठक जान लेंगे इस प्रकार क्रिया करनेसे नियम

निकल आवेगा)। अब ७५ शतांश = (७५ ÷ १०) दशांश = ७·५ दशांश। तब ७·५ दशांश ÷ ५ दशांश = ७·५ इकाई ÷ ५ इकाई इत्यादि

उदाहरण —२·३१२ में ·१५ का भाग दो। समझाओ कि प्रश्नका मतलब यही है कि २३१२ सहस्रांशमें १५ शतांशका भाग दो। अब २३१२ सहस्रांशको शतांश बना लो

२३१२ सहस्रांश = (२३१२ ÷ १०) शतांश
= २३१·२ शतांश

इसलिए २·३१२ ÷ ·१५
= २३१·२ शतांश ÷ १५ शतांश
= २३१·२ इकाई ÷ १५ इकाई
= इत्यादि

विद्यार्थियोंको कई उदाहरण देकर समझाओ कि भिन्न भागमें यथार्थमें हम क्या करते हैं—भाजकको पूर्णांक बनाते हैं और इसीलिए भाज्य और भाजक दोनोंको किसी योग्य संख्यासे गुणा करते हैं

यथा ·७५ ÷ ·५ = ·७५ × १० ÷ ·५ × १०
= ७·५ ÷ ५
२·३१२ ÷ ·१५ = (२·३१२ × १००) ÷ (·१५ × १००)
= २३१·२ ÷ १५

भाजक और भाज्य दोनोंको एक ही संख्यासे गुणा करनेसे भजनफलमें फ़रक़ नहीं पड़ता। इस नियमकी पुनरावृत्ति यदि आवश्यक हो तो कर ली जाय।

स्वास्थ्य और सामर्थ्य

[ले० गिरिराज बहादुर]

स्वास्थ्य एक ऐसा शब्द है जो सर्वदा हमारी जिह्वापर रहता है परन्तु जब हम उसकी परिभाषा करनेकेलिए तत्पर होते हैं तब यह अत्यन्त कठिन कार्य्य जान पड़ता है।

यह साधारण बात है कि जिस मनुष्यमें विचार शक्ति नहीं होती वह स्वस्थ नहीं होता। एक मनुष्य जिसमें विचार शक्ति तो है पर बल नहीं है वह भी स्वस्थ नहीं है। इन उदाहरणोंसे हमें ज्ञात होता है कि यह दोनों पुरुष ही स्वस्थ नहीं हैं।

स्वास्थ्य हृदय और शरीरकी वह दशा है जिससे मनुष्य अपने सब कार्य्योंको सिद्ध कर सकता है। परन्तु जब हम इस प्रकार कहेंगे तब हमको यह भी बतलाना पड़ेगा कि हमारा कार्य्यों-के सिद्ध करनेसे क्या मतलब है, और मनुष्यके कार्य्य कौन कौन हैं। सब मनुष्योंके कुछ कर्म्म तो एकसे ही हैं जैसे सब मनुष्योंके हृदय अवश्य ही काम करते हैं और रक्तको शरीरके सब भागोंमें पहुंचाते हैं। सब मनुष्योंका श्वास लेने-का यंत्र अवश्य ही काम करता है। सब मनुष्यों-की नसें रक्तको ले जाती हैं और ले आती हैं। परन्तु इन सब कर्म्मोंका विचार करते हुए भी हमको स्वास्थ्यकी परिभाषा बनाना कठिन कार्य्य ज्ञात होता है। मनुष्योंका शरीर एक राज-सभाके समान है और मनुष्यके शरीरके भाग उस सभाके कार्य्य करनेवालोंके समान हैं। जब यह भाग एक साथ ही अच्छी तरहसे कार्य्य करते हैं तबतक तो मनुष्य आरोग्य रहेगा परन्तु जब एक भाग बराबर कार्य्य न करेगा तब वही मनुष्य रोगी हो जावेगा। स्वास्थ्यकी परिभाषा करेंगे तो इन सब कार्य्योंका उसमें अवश्य ही वर्णन करेंगे। हम कह सकते हैं कि सामर्थ्यके शब्दोंमें स्वास्थ्य कार्य्य करनेकी शक्ति है और मनुष्य अत्युत्तम स्वास्थ्यवाला तभी समझा जा सकता है जब कि उसके शरीर और कार्य्यों-की वह दशा हो जिससे कि वह और उसके साथी प्रसन्न रहें। यही एक ऐसी परिभाषा है जो ऊपर लिखे हुए सब कार्य्योंको अपनेमें सम्मि-लित रखती है।

एक शक्तिहीन मनुष्य किसी दशामें चाहे बड़ा भारी कार्य्य क्यों न कर डाले परन्तु क्या उस

Hygiene स्वास्थ्य रक्षा]

कार्य्यके करनेसे वह स्वास्थ्यवाला कहा जा सकता है या क्या वह स्वास्थ्यवाला हो गया ? कदापि नहीं । क्या उसने अपने साथियों और अपने आपको प्रसन्न कर लिया ? कदापि नहीं । ऐसे बड़े कार्य्यके उस दशामें करनेसे उसकी शक्ति घट गई परन्तु बढ़ी नहीं । इसलिए यह मनुष्य क्या स्वास्थ्यवाला कहा जा सकता है ? नहीं । वह हमारी परिभाषासे स्वास्थ्यवाला नहीं हुआ और उसने उस स्वास्थ्यसे प्रसन्नता भी नहीं उठाई ।

एक मनुष्यकी भुजाओंमें शक्ति है और उसने अपने साथियों और अपने आपकेलिए बड़ी प्रसन्नताके कार्य्य किये, पर उसमें मानसिक शक्ति न हो या उस कार्य्यके करनेसे ही कम हो गई हो तो वह भी हमारी परिभाषासे स्वास्थ्यवाला नहीं कहा जा सकता है । स्वास्थ्यवाला मनुष्य वही होगा जिसमें शारीरिक और मानसिक दोनों ही शक्ति व्यापक हों ।

एक मनुष्यकी भुजाओंमें भी शक्ति है और मानसिक शक्ति भी है वह अपनी मानसिक शक्तिको अधिक काममें लाता है, पर कार्य्य आनेपर उसने अपने भुजदण्डोंकी शक्ति सब ही उस कार्य्यमें लगादी-अर्थात् जितनी कि वो लगा सकता था-जिससे उसने अपने आपको और अपने साथियोंको प्रसन्न कर लिया तब उस मनुष्यको अवश्य ही स्वास्थ्यवाला मनुष्य कहना चाहिये । हम मनुष्यके स्वास्थ्यको उसके सामर्थ्यद्वारा जान सकते हैं और मनुष्यका मानसिक सामर्थ्य शारीरिक सामर्थ्यसे अधिक कर्म्म कर सकता है । आपको मालुम है कि जब (James Watt) जेम्स वाटने अपने मानसिक सामर्थ्यके द्वारा रेलका एन्जिन निकाला था तो उसने कुछ वर्षोंके अन्तरमें इतनी बड़ी शक्ति प्रकट कर ली जितनी बड़ी शक्तिको एक सेना एक शताब्दीमें भी प्रकट न कर सकती थी ।

लाभदायक सामर्थ्यका प्रकट होना स्वास्थ्यका एक चिह्न है और सब लाभदायक सामर्थ्यकी गणनामें मानसिक सामर्थ्य अधिक उत्तम समझा जाना चाहिये । सबसे उत्तम स्वास्थ्यवाला मनुष्य वही है जिसके शरीरके सब भाग एक साथ ही सबसे उत्तम शारीरिक और मानसिक कर्म्म करनेकेलिए कार्य्य कर रहे हों ।

यह कहना कि स्वास्थ्य एक ऐसी वस्तु जो कि अवश्य ही मनुष्यके पास होनी चाहिये, विज्ञान और शास्त्रोंके विरुद्ध होगा । हम सब पवित्र और स्वास्थ्यवाले हैं । वह मनुष्य जो स्वास्थ्यवाला नहीं है वही ऐसा मनुष्य है जिसके पास कर्म्म करनेका सामर्थ्य कम है और बिना स्वास्थ्यवाला जीवन वही जीवन है जो मनुष्यमें कार्य्य करनेकी सामर्थ्यको कम कर देवे । यहांपर भी हमें बीमारी और स्वास्थ्यमें एक विशेषता ज्ञात होती है । एक मनुष्यके दाढ़में या अंगूठेमें पीड़ा क्यों न हो परन्तु तब भी वह स्वास्थ्यवाला मनुष्य कहा जा सकता है । बीमारी केवल सामर्थ्यको कुछ कम कर देती है परन्तु उस मनुष्यमें अब उतना ही सामर्थ्य प्रकट कर रहा है जितना वह प्रकट कर सकता है ।

हम लोगोंके कानोंमें नित्य यही ध्वनि आती है कि अमुक आदमीको न्यूमोनिया हो गया इत्यादि परन्तु वह अच्छा हो जायगा क्योंकि वह उत्तम स्वास्थ्यवाला मनुष्य है । बीमारी कभी कभी सामर्थ्यको कम कर देती है परन्तु तब भी एक बीमार मनुष्यमें एक चंगे मनुष्यकी अपेक्षा अधिक सामर्थ्य हो सकता है । परन्तु ऐसा कभी कभी देखनेमें आता है, नित्य ही नहीं । अब हम, सब लाभदायक कार्य करनेके सामर्थ्यके योगको स्वास्थ्य कह सकते हैं । और अस्वस्थ दशा और कार्य्य वह दशा, और कार्य्य हैं जोकि सामर्थ्यको कम कर देते हैं ।

जब हम समयका विचार करते हैं तब एक और प्रश्न हमारे सन्मुख आ खड़ा होता है । एक मनुष्य एक घण्टेमें छः मील चलता है और दूसरा तीन मील चलता है तो बतलाइये कि कौन

सा अधिक स्वास्थ्यवाला है। हमारी जिह्वापर चट यही उत्तर आता है कि छः मील चलनेवाला। परन्तु नहीं, दोनों ही स्वास्थ्यवाले कहे जा सकते हैं यदि वे छः और तीन मील बिना किसी पीड़ाके चलते हों परन्तु जो कार्य्य जल्दी करता है वही अधिक सामर्थ्यवाला, कहा जा सकता है।

हम मनुष्यके सामर्थ्यको नाप सकते हैं। वह इस प्रकार है कि एक मनुष्यने कुछ समयमें कितना काम किया और कितनी कार्बन गैस निकाली। मनुष्यके शरीरसे जितने कार्य्य किये जाते हैं—प्रान्तोंका चलना, हृदयका सिकुड़ना और फैलना–यह सब सामर्थ्यकी बदौलत हैं और तापके शब्दोंमें सरलतासे इसकी गणना की जा सकती है। हमें यह मालुम है कि मनुष्योंमेंसे स्त्रियोंकी अपेक्षा कार्बन गैस अधिक निकलती है।

कुछ मनुष्य स्वास्थ्य और प्रसन्नताको एक ही कहेंगे। जितना ही स्वास्थ्यवाला मनुष्य होगा उतना ही वह प्रसन्न रहेगा। जिस प्रकार बीमारी दुःख और पीड़ा देती है उसी प्रकार स्वास्थ्य प्रसन्नता और सुगमता देता है परन्तु स्वास्थ्य और बीमारी एक ही बात नहीं हैं। इस विचारमें कि स्वास्थ्य और प्रसन्नता एक ही बात है कुछ सत्यता अवश्य है। वह सामर्थ्य जो कि हमारे पैरोंको शक्तिसे भरे हुए और बलवान बनाता है, वह सामर्थ्य जो कि हमारी सांसको उत्तम बनाता है और वह सामर्थ्य जो कि हमारे श्रवणों और चक्षुओंको जीवन देता है वह सामर्थ्य जो कि हमारी मानसिक शक्तिको बलवान बनाता है वही सामर्थ्य चंगे रहनेका साधन है।

एक मनुष्य चाहे मदिरा पीकर अपने सामर्थ्यको क्यों न बढ़ा ले और वह उस समयमें जबतक कि उसका नशा रहे चाहे अति प्रसन्न क्यों न रहे पर क्या यह स्वास्थ्यसे दी हुई प्रसन्नता है? जीवन तो एक प्रकारकी भट्टी है जिसकी धूम्र निकलनेकी जगह राखसे भर गई है और जिसमें लकड़ियां कम होती जाती हैं। और जब ओषजनका मिलना कम हो जाता है तब सामर्थ्य भी कम हो जाता है। यह सामर्थ्यके कम होनेकी विधि जल्दी जल्दी या धीरे धीरे चलती रहती है परन्तु जितना ही स्वास्थ्यवाला मनुष्य होगा उतनी ही धीरे धीरे उसका सामर्थ्य कम होगा और मानसिक सामर्थ्य जो कि शारीरिकसामर्थ्यसे अधिक प्रबल कार्य्य करनेवाला है शारीरिक सामर्थ्यसे कम घटता है इसीलिए बड़े बड़े मनुष्यों जैसे केलविन, डारबिन, रसेल, वैलैस (Kelvin, Darwins, Russel, Wallace) अपनी बूढ़ी अवस्थामें भी बड़ेबड़े कार्य्य किये गये हैं। सब मनुष्य कुछ न कुछ सामर्थ्यसे अपने जीवन आरम्भ करते हैं पर किसीमें तो कम सामर्थ्य और किसीमें अधिक सामर्थ्य होती है। हमको संसारके देखनेसे ज्ञात होता कि कुछ आदमी तो बयालिस वर्षकी अवस्थामें बूढ़े हो जाते हैं और कई पैंसठ वर्षकी अवस्थातक युवककी तरह समर्थ रहते हैं। हमको यह भी मालूम है कि कुछ मनुष्य तो पचास वर्षकी अवस्थामें बूढ़े होकर मरते हैं और कोई सौ वर्षकी अवस्थामें बलवान रहते हैं। हमें यह भी मालुम होता है कि कोई आदमी बीमारीसे मरते हैं और कुछ सामर्थ्यके व्यय हो जानेसे मरते हैं। आस्ट्रेलियावाले बयालिस वर्षकी अवस्थामें इतने बढ़े हो जाते हैं जितने कि युरोपियन ६५ वर्षकी आयुमें होते हैं।

एक मनुष्य अपने जीवन भर तम्बाकू बेचता रहा है वह चाहे सौ वर्षतक जीवित रहे और एक मनुष्य अपने जीवनमें एक बहुत ही उत्तम सामर्थ्यका कार्य्य करे और चालीस वर्षतक जीवित रहे क्योंकि १०० वर्ष जीवित रहनेवालेने अपनी सामर्थ्यको व्यय नहीं किया पर चालीस वर्षतक जीवित रहनेवालेने ४० वर्षमें व्यय कर दिया। जो मनुष्य अपने मानसिक सामर्थ्यको काममें नहीं लाता उसके गाल चाहे कितने ही लाल हों और उसकी भुजाओंमें चाहे कितना ही बल हो उसका जीवन बहुत ही बुरा है।

शारीरिक और मानसिक सामर्थ्यके चिह्न पृथक् पृथक् होते हैं और उनको जाननेकेलिए बड़े ही विद्वान मनुष्यकी आवश्यकता है। जो मनुष्य कि जन्मसे मृत्युतक अच्छे अच्छे शारीरिक सामर्थ्यके कर्म्म कर सकता है वह मध्यम ऊंचाई-का होता है उसके चमकते हुए चक्षु होते हैं और साफ़ बदन होता है और भुजाएं अतिबलवान होती हैं। वह मनुष्य जो कि जन्मसे मृत्युतक मानसिक सामर्थ्यसे बड़े बड़े काम कर सकते हैं वे मध्यम ऊंचाईके होते हैं और चक्षु चमकते हुए होते हैं और पुट्ठे (muscles) छोटे होते हैं और आंखकी भौंहें बड़ी बड़ी होती हैं और बहुतों-की आंखें भीतर घुसी हुई होती हैं परन्तु मानसिक सामर्थ्यका सबसे उत्तम चिह्न बड़ी बड़ी भौंहें हैं। अब हमें केवल यह विचार करना रह गया कि यह सामर्थ्य हमारे शरीरमें कहांसे आता है। एक ढेले शक्करमें और एक आलूमें सामर्थ्य नहीं होता पर जब वे ओष-जनसे मिल जाते हैं तो बड़ी भारी मात्रा सामर्थ्य-की तापकी सूरतमें पैदा करते हैं। इन वस्तुओंको खाते हैं तो इनसे हमारे शरीरमें सामर्थ्य आता है। मनुष्य अपने खानेको खाता है। इसका बतलाना कि यह सामर्थ्य आलूमें या शक्करमें कहां से आता हैं यहांपर कठिन है पर हम इसको सूक्ष्म तौरसे यहां बतलाए देते हैं।

हमको मालुम है कि यह सब वस्तुएं खेतमें उगती हैं और खेतमें सूर्य्यकी गरमी होती है। तो यह शक्ति या तो सूर्य्यसे या पानीसे या मिट्टीसे आई होगी पर यह मालुम हो गया है कि यह सामर्थ्य सूर्य्यसे आता है। सूर्य्यकी पीली नारंजी और लाल किरणें जब हरे पत्ते के ऊपर लगती हैं तो एक ऐसी रासायनिक प्रक्रिया हो जाती है जो कि ओषजन और कार्बन को पृथक् पृथक कर देती है, ओषजन निकल भागता है और कार्बन पानीके साथ मिलकर खाना बनाता है जिससे वृक्ष हरा रहता है। इसमें भी सामर्थ्य होता है।

यह रासायनिक शक्ति खेतमेंसे नत्रजन ले लेती है और पेड़का खाना बनाती है जिसमें कि सामर्थ्य होता है। इससे हमें ज्ञात होता है कि इस वृक्षमें सामर्थ्य सूर्य्यसे आता है और उसे हम खाते हैं जिससे कि हमारे शरीरमें सामर्थ्य आता है और ये वस्तुएं सूर्य्यसे ली हुई तापको दे देती हैं।

इससे यह अच्छी तरह ज्ञात हो गया कि हमारे शरीरमें सूर्य्यसे शक्ति आती है

यह विचार करना कि सूर्य्यमें सामर्थ्य कहांसे आता है अति कठिन हो गया है पर इसकी गणना कर ली गई है कि जिस दिन सूर्य्य आठ घण्टे आकाशमें रहता है उस दिन एक वर्ग गज़पर एक घोड़ेके बराबर शक्ति आती है। स्वास्थ्य और सामर्थ्यकेलिए हमें सूर्य्यकी शक्तिको खानेकी शकलमें पेटमें ले जाना चाहिए और खानेमें से सामर्थ्यके निकालनेकेलिए हमें काफ़ी ओषजन श्वास द्वारा पेटमें ले जाना चाहिये।

न्यायदर्शन

[ले० कन्नोमल, एम. ए.]

अपवर्ग अर्थात् मोक्ष साधनके निम्न-लिखित १६ पदार्थ हैं।

१-प्रमाण, २-प्रमेय, ३-संशय, ४-प्रयोजन, ५-दृष्टान्त ६-सिद्धान्त, ७-अवयव, ८-तर्क, ९-निर्णय, १०-वाद, ११-जल्प, १२-वितंडा, १३-हेत्वा-भास, १४-कलह (छल), १५-जाति, १६-निग्रह-स्थान।

प्रमाण

प्रमाण चार हैं अर्थात्, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और शब्द (विश्वास योग्य पुरुषका बचन अथवा वेद प्रमाण)

प्रमेय

प्रमेय १४ हैं अर्थात् १-आत्मा, २-शरीर,

Philosophy दर्शन]

३-इन्द्रियां , ४-इन्द्रियार्थ ५-बुद्धि , ६-मनः , ७-प्रवृत्ति, ८-दोष , ६-प्रेत्य भाव १०-फल , ११-दुःख , १२-अपवर्ग ।

आत्मा

आत्मा के ये लक्षण हैंः—इच्छाद्वेषप्रयत्न सुखदुःखज्ञानानि आत्मनो लिंगम् इति-इच्छा करना, द्वेष करना, यत्न करना सुख दुःख और ज्ञान ।

शरीर

चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्-चेष्टा और इन्द्रियार्थोंके क्षेत्रकानाम शरीर है ।

इन्द्रियां

नाक, कान, जिह्वा, चक्षु और त्वक् । ये इन्द्रियां पृथ्वी जल, तेज, वायु और आकाश, इन पांच भूतोंसे उत्पन्न होती हैं ।

इन्द्रियार्थ

गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, ये पांचों इन्द्रियोंके अर्थ अर्थात् विषय हैं ।

बुद्धि

बुद्धिः उपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम्—ज्ञान उपलब्धि बुद्धिका लक्षण है । इन्द्रियोंके विषयसे भिन्न है । अनुभव और स्मृति इसके दो रूप हैं । अनुभव दो प्रकारके हैं—यथार्थ और अयथार्थ । यथार्थ अनुभव प्रमाणसे सिद्ध है और अयथार्थ अनुभव सत्यसे रहित होता है और प्रमाणसे सिद्ध नहीं है ।

स्मृति भी यथार्थ और अयथार्थ है । जागृत अवस्था यथार्थ स्मृतिका लक्षण है और स्वप्न अयथार्थका ।

मनः

युगपज् ज्ञानानुत्पत्तिः मनसोलिङ्गम्—मनमें एक समयमें एकसे अधिक ज्ञान नहीं होता है बुद्धिमें हो सकता है । इसलिए बुद्धि मनसे भिन्न है । प्रवृत्तिः वाग्बुद्धि शरीरारम्भ इति-वाणी, बुद्धि और शरीरकी चेष्टारम्भका नाम प्रवृत्ति है । अर्थात् इनके काम करनेका नाम है ।

दोष

प्रवर्त्तनालक्षणदोषाः-प्रवृति कराना काम दोषोंका है ।

प्रेत्यभाव

पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः—फिर जन्म लेना प्रेत्यभाव है । पुनर्जन्म जब ही हो सकता है जब आत्मा नित्य मान ली जाये ।

फल

प्रवृत्तिदोषजनितोऽर्थः फलम्-प्रवृत्तिके दोष उत्पन्न होते हैं उनका नाम फल है ।

दुःख

बाधा होनेका नाम दुःख है । दुःखके अभावका नाम सुख है ।

अपवर्ग (मोक्ष)

दुःख जन्मप्रवृत्ति दोष मिथ्याज्ञानानामुत्तरोतरापायेतदान्तरापायादपवर्गः-दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञान इनका एक दूसरेके पीछे नाश होनेपर फिर उनका अनन्तर नाश होना अपवर्ग है । जैसे सुषुप्ति अवस्थावालेको कोई दुःखका अनुभव नहीं होता है वैसे ही अपवर्ग प्राप्त करनेवालेको कोई दुःख नहीं रहता है ।

संशय

समानानेक धर्मोपपत्तो विप्रतिपते रूपलब्ध्यनुपलब्धि व्यवस्था तश्च विशेषापेक्षो विमर्शो संशयः—बहुत चीज़ोंमें सामान धर्म होनेसे, किसी चीज़में समान धर्म नहीं होनेसे उपलब्ध अनुपलब्धिसे अथवा विशेषापेक्षसे, संशय, उत्पन्न होता है ।

प्रयोजन

किसी काम करनेका जो अभिप्राय है वही उसका प्रयोजन है । जैसे कोई आदमी रोटी करनेकेलिए लकड़ियां एकट्ठी करता है तो लकड़ियोंके एकट्ठी करनेका प्रयोजन रोटी करना है ।

दृष्टान्त

लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्य

स दृष्टान्त-जिस बातको सामान्य आदमी और परीक्षा करनेवाले आदमी एकसी समझते हों वह दृष्टान्त है।

सिद्धान्त

तंत्राधिकरणाभ्युपगम संस्थितिः सिद्धान्तः- प्रमाणों द्वारा सिद्ध किये हुए विचारका नाम सिद्धान्त है।

अवयव

प्रतिज्ञा हेतूदाहरणोपनय निगमानिअवयवा :- जिसमें ये पांचों अवयव हों वह पंच अवयवका वाक्य कहलाता है। पांच अवयव ये हैं:—

प्रतिज्ञा—पर्वतमें अग्नि लग रही है।

हेतु—क्योंकि उसमेंसे धुआं निकल रहा है।

उदाहरण—जहां जहां धुआं हो वहां वहां अग्नि होती है जैसे पाकस्थानमें।

उपनय—इस पर्वतमें भी धुआं है।

निगम—इसलिए इस पर्वतमें अग्नि लग रही है।

तर्क

किसी बिना जानी वस्तुका सत्य रूप जाननेकेलिए जो बहसकी जाय वह तर्क है। जैसे यह जानना है कि आत्मा नित्य है या अनित्य। तर्क यह हो सकता है। यदि आत्मा अनित्य है तो कर्म्मोंका फल, आवागमन और मोक्ष कैसे हो सकते हैं। यह सिद्धान्त असत्य है क्योंकि ये सब आत्माको होते हैं इसलिए आत्मा नित्य है।

निर्णय

दोनों पक्षोंको सुनकर संशय हटाना और ठीक अर्थ निश्चय करना निर्णय है।

वाद

विपक्षीके तर्कको खण्डन करते हुए सत्यपक्षको प्रमाणद्वारा सिद्ध करना वाद है।

जल्प

अपनी जीतकेलिए ही छलादिद्वारा तर्क करना जल्प है।

वितण्डा

वितण्डा करनेवाला किसी चीज़को सिद्ध नहीं करता है। केवल दूसरेका पक्ष ही काटनेकी चेष्टा करता है।

हेत्वाभास

झूठा हेतु बताना हेत्वाभास है। यह पांच तरहका होता है। १-सव्यभिचार जो अनेक बातोंको सिद्ध करे, २-विरुद्ध जो सिद्धान्तके विरोधी बातको सिद्ध करें, ३-प्रकरणसम, जो दोनों पक्षोंको सिद्ध करे, ४-साध्यसम जिसमें सिद्ध करनेकेलिए अधिक प्रमाण देनेकी आवश्यकता है। ५-कालातीत, जो समय चले जानेपर किया जाय।

छल (कलह)

वचन विघातोऽर्थ विकल्पोपपत्या छलम्- एक शब्दके दो अर्थ हों उनमेंसे दूसरे अर्थको लेकर किसी वाक्यको काटा जाय अर्थात् उसपर विघात किया जाये तो छल है। यह तीन प्रकारका होता है। १-वाक्छल ,२-सामान्यछल ३-उपचार छल।

वाक्छल-यह बालक नव कम्बला है अर्थात् नया कम्बल रखता है। छलसे यह कहना कि यह बालक ९ कम्बल रखता है। यहां नव शब्दके दो अर्थ हैं नया और ९।

सामान्यछल-यह ब्राह्मण बड़ा विद्वान् और सदाचारी है। छलसे यह कहना कि यह ब्राह्मण विद्वान् और सदाचारी हो ही नहीं सकता क्योंकि कितने ही छोटे ब्राह्मणोंके लड़के हैं जो विद्वान् और सदाचारी नहीं हैं।

उपचारछल-फांसी चिल्ला रही है। छलसे यह कहना कि जड़ फांसीका स्थान चिल्ला रहा है न कि वह मनुष्य जो फांसीपर लटकाया गया है।

जाति

सा धर्म्य वै धर्माभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः— वस्तुओंके एक सा होनेपर अथवा भिन्न होनेपर ही तर्क करना। जाति २४ प्रकार की हैं।

निग्रहस्थान

जब कोई किसी तर्कके समझनेमें असमर्थ हो अथवा जानकर मिथ्या समझता हो तो निग्रहस्थान होता है। ऐसा मनुष्य जो समझ ही नहीं सकता है अथवा विरुद्ध समझ जाता है उसके साथ वाद करना ही वृथा है। इसके २२ भेद हैं।

न्यायशास्त्रके कर्ता गौतम ऋषि हैं।

गुरुत्वाकर्षण शक्ति

[ले० प्रेमवल्लभ जोषी. बी. एस-सी. एल. टी]

मोहन, गोपाल और गुरूजी

मोहन—आज सबेरे मैं और गोपाल गेंद खेल रहे थे। जब गोपालने ज़ोरसे गेंद ऊपरको फेंका और देखा कि गेंद कुछ दूर आसमानमें जाकर फिर एक दमसे नीचे उतर आयी है तो वह गेंद खेलना छोड़कर एकाएक कुछ सोचने विचारने लगा। उसकी ऐसी स्थिति देखकर मैंने पूछा, 'भाई क्या सोचते हो, खेलते क्यों नहीं।' गोपालने जवाब दिया, 'बड़े आश्चर्य्यकी बात है कि यद्यपि मैंने बड़े ज़ोरसे गेंद ऊपरको फेंकी थी लेकिन् वह फिर नीचे उतर आयी है, जो कुछ गति उसको दी गई थी तदनुसार उसे सीधे ऊपरको जाना चाहिये'। यह सुन मैंने कहा 'यह तो रोज़ तुम देखते हो, चीज़ोंका स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि कितनी ही ज़ोरसे वे ऊपरको फेंकी जायं वे फिर नीचेकी ही ओर गिरती हैं'। लेकिन जब गोपाल मेरे उत्तरसे सन्तुष्ट न हुआ और मुझे भी कुछ सन्देह हो आया तो मैंने उससे कहा 'चलो भाई, गुरूजीके पास चलकर ही यह सवाल अच्छी तरह हल होगा। इसलिए हम आपके पास आये हैं।

गुरूजी—यह सवाल पहले भी बहुत आदमियोंको उपस्थित हुआ होगा और आजकल भी बहुतोंके दिलमें उठता होगा, लेकिन् इसको मामूली बात समझकर लोग इसपर विशेष ध्यान नहीं देते और कारणको खोज निकालनेकी फ़िक्र नहीं करते। मुझे यह देखके सन्तोष होता है कि तुमने इसको मामूली बात समझके इसका पीछा छोड़ नहीं दिया। सुनो वैज्ञानिकोंमें श्रेष्ठ महात्मा न्यूटन एक रोज़ अपने बागमें बैठे हुए थे और फलते फूलते पेड़ोंकी बहार ले रहे थे। इतनेमें उन्होंने देखा कि एक पका हुआ सेब डालसे छूटके ज़मीनमें गिर गया। वे सोचने लगे कि ऐसा क्यों हुआ। यह सेब डालसे क्योंकर नीचे गिरा। कौन सी अदृश्य शक्तिने इसको नीचेको फेंका। तब उनको सभी तरहकी आसमानसे गिरती हुई चीज़ोंका ख़्याल हुआ। उनकी उच्च कल्पनाने यह स्थिर किया कि हो न हो पके हुए सेबको ज़मीनने ही अपनी ओर खींचा है और ज़मीन ही सभी ऊपर स्थित वस्तुओंको अपनी ओर खींचती है। चूंकि पेड़की डाली और सेबके बीचमें सम्बध रखनेवाले रेशे ढीले पड़ गये थे इस कारण पृथ्वीकी आकर्षण शक्तिने डालसे सेब छीन लिया।

गोपाल—मगर यह बात मेरे समझमें अब भी नहीं आयी है कि क्योंकर ज़ोरसे फेंकी हुई गेंद नीचेको आती है। गेंदको जो गति मैंने दी थी उसका क्या हुआ?

गुरूजी—तुमने स्कूलमें रस्सा खेंच देखी होगी और उसमें कभी ख़ुद भी शामिल हुए होगे। दोनों दल रस्सेको अपनी तरफ़ खींचते हैं लेकिन जिस दलको ताक़त ज़ोर पकड़ती है वह रस्सेको थोड़ा थोड़ा बादको एक दमसे अपनी ओर खींच लेता है और जय प्राप्त करता है। ऐसी ही कुछ रस्सा खेंच ज़ोरसे फेंके हुए पत्थर या गेंद और पृथिवीमें भी होती है। पहिले तो ज़ोरसे फेंकी हुई गेंद थोड़ी दूरतक ऊपर जाती है और जब पृथिवी उसकी ताक़तका अन्दाज़ा कर चुकती है और धीरे धीरे पत्थरको अपने शासनमें ले आती है तो गेंद एकाएक ज़मीनमें गिरती है।

मोहन—लेकिन् गुरूजी अगर हम यह मान

Physics भौतिक शास्त्र]

लें कि चीज़ोंका नीचेकी ओर गिरना स्वाभाविक है, वे अपने भारीपनके कारण स्वभावसे ही अधर-में खड़े होनेके विरुद्ध नीचेकी ओर गिरती हैं तो पूर्वोक्त सभी बातोंका समाधान हो ही सकता है, कोई आपत्ति देखनेमें नहीं आती है। फिर पृथ्वी-में आकर्षण शक्ति क्यों मानी जाय।

गुरूजी—ठीक इसी तरहका समाधान पूर्व कालमें कुछ बौद्धोंने भी इस प्रश्नपर किया था। बौद्धोंका विचार था कि सभी चीज़ें स्वभावतः नीचेको जाती हैं। पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, तारा-मण्डल इत्यादि सभी अनन्त आकाशमें नीचेकी ओर जा रहे हैं और जाते रहेंगे। इस सिद्धान्तका खण्डन ज्योतिषाचार्य्य भास्करने इस प्रकार किया था।

(१) मान लिया कि चीज़ें नीचेकी ओर गिरती हैं लेकिन पहिले यह निश्चय कर लेना चाहिये कि नीचे किधरको हुआ और ऊपर किधरको। अगर यह कहो कि जब हम खड़े होते हैं हमारे शिरकी तरफ़ लम्बका ऊपरी भाग ऊपर और पैरोंकी तरफ़ नीचे है तो चीज़ें हमारी दृष्टिसे नीचेको गिरती हैं, मगर पाताल निवासी जिनके पैर अर्थात् जिनका नीचे हमारा ऊपरी भाग है क्या समझेंगे। उनकी दृष्टिसे पृथ्वी हमारे शिरकी ओर ऊपरको गिरती है और हमारी दृष्टिसे हमारे पैरोंकी तरफ़।

(२) अगर पृथ्वी नीचेकी ओर जाती है तो पत्थर जो कि ऊपरको फेंका गया है नीचेकी ओर देरमें आवेगा जबतक कि उसमें दिया हुआ बल ख़तम न हो जाय और चूंकि पृथ्वी नीचेकी ओर बड़े वेगसे जा रही है उसकी और पत्थरकी कभी भेंट हो ही नहीं सकती।

मोहन—अगर हम यह स्थिर कर दें कि फ़लानी ओर (हमारे पैरोंके ओर ही) सभी चीज़ें गिरती हैं और पत्थर बड़े हलके होनेसे एक दम नीचेको चले आते हैं तो क्या भास्करकी दोनों युक्तियोंका खण्डन नहीं हो सकता है।

गुरूजी—तुम्हारी तर्क अनुभव और प्रयोग विरुद्ध है। तुमको क्या यह मालूम नहीं है (१) किसी स्थानसे भी अगर गेंद ऊपरको फेंकी जाय वह नीचेकी ही ओर गिरती है, चाहे हम हिन्दु-स्थानके या युरोपके या अफ्रीकाके किसी हिस्सेसे या पाताल अमेरिकासे गेंद ऊपरको फेंकें वह नीचेको ही गिरती है। (२) चाहे चीज़ हलके वजनकी हो या भारी वजनकी अगर दो ऐसी वस्तुएं एक ही कालमें या एक ही ऊंचेस्थानसे नीचेकी ओर फेंकी जाती हैं तो वे एक ही कालमें ज़मीनमें गिरेंगी यह प्रयोग हरएक आदमी कर सकता है।

प्राकृतिक यंत्रालयकी सैर

[ले०—शालग्राम वर्म्मा]

इस भौतिक संसारमें जितने पदार्थ हमें दृष्टिगोचर होते हैं वे सभी रहस्यपूर्ण और अपूर्व कौशलयुक्त हैं। बड़ेसे बड़ा और छोटेसे छोटा इस सारे विश्वमें कोई भी ऐसा जीव नहीं है जिस-का शारीरिक संगठन, रहन सहन, भोजन पहरावा इत्यादि बातोंको जानकर आश्चर्य्यान्वित न होना पड़े। इसीलिए प्रायः सभी समझदार मनुष्योंका कथन है कि विधाताकी सृष्टिमें कोई भी चीज़ साधारण और कौतूहल विहीन नहीं हैं।

यह बात प्रायः हर मनुष्यकी सामर्थ्यके बाहर मालूम पड़ती है कि वह अपने आसपासकी वस्तुओं और अपने साथ रहनेवाले जीवोंका ज्ञान पूर्णतया प्राप्त कर सके, पर इनसे साधारण जान-कारी रखना हर मनुष्यका मुख्य कर्त्तव्य मालूम पड़ता है और यह सहज भी ज्ञात होता है। छोटी छोटी कहानियोंद्वारा बालकोंको बहुतसी साधा-रण बातोंका ज्ञान करा देना हर माता पिताका कर्त्तव्य है, पर अपने इस कर्त्तव्यको पूरा करनेके-

Zoology जीवन विद्या]

लिए इन लोगोंको भी तो यह ज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक है। अतः हम देखते हैं कि वैज्ञानिक रीतिपर कोई ध्यान न रखते हुए भी हर मनुष्य इस विश्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्व्वश्रेष्ठ विद्यासे लाभ उठा सकता है। मनुष्य-कृत कौतूहलोत्पादक यन्त्रों और आविष्कारोंका ज्ञान प्राप्त करना उतना ही परमावश्यक है जितना कि इन प्राकृतिक पदार्थोंका; और इसीलिए प्रत्येक मनुष्यको अपनी ज्ञान और कर्मेन्द्रियोंका भरसक उपयोग करना चाहिये।

प्रकृति देवीके उद्यान रूप रंगमहलमें आज बड़ी चहलपहल मची हुई है, जिस ओर देखिये उसी तरफ़ इन्द्रधनुषके रंगोंसे सुसज्जित और तारागण तथा चन्द्रमाकी भांति प्रभापूर्ण रत्नादिकसे विभूषित अनेक जीव इस राज राजेश्वरीके दरबारमें मौजूद हैं। सभी अपटुडेट जेंटिलमैन बने हुए हैं। सूट, हैट और बूटसे लेकर कंघा, शीशा और ब्रुश आदिक सभी शृंगारोपयोगी सामग्री इनके पास मौजूद ही नहीं है वरन् यह उसका उपयोग भी करते हैं। इस उद्यानमें हर प्रकारके यंत्र भी मौजूद हैं। घड़ी, चाकू, कैंची, बंदूक, आरी, कुल्हाड़ी, सुई पम्प और मोटरसे लेकर रेलगाड़ी, जलयान और वायुयान तककी यहां कमी नहीं है। यदि मनुष्य अपनी बुद्धिमत्तासे धूप और पानीसे बचनेकेलिए छाता बना लेता है तो उसकी इस आयोजनके पूर्व ही इस राज्यमें छातोंका प्रयोग जारी था। इस राज्यमें इतनी अगणित सैना मौजूद है कि यदि प्रत्येक मनुष्य इनमेंसे प्रति हज़ारका सामना करनेका साहस करे तो सारे संसारके मनुष्य केवल इसी काममें खप जावेंगे और फिर भी असंख्य बैरी मुक़ाबलेकेलिए बाक़ी रह जावेंगे। यदि फ़ौज लूटमार करने लग जावे तो एक ही रजमेंट दुनियाभरकी सारी हरियाली हड़प्प कर जावे। ड्रेगन फ़्लाई इत्यादिक तीव्रगामी एंजिन मौजूद हैं जो इतने सूक्ष्म होनेपर भी प्रति घंटा २० या २५ मील उड़ जाते हैं।

अच्छा! आज हम अपने पाठकोंको इस संसारके एक बहुत छोटे जीवकी जीवनी सुनाना चाहते हैं। इसका नाम तितली है। यह नीले पीले रंगका बेल बूटेदार बड़ा सुन्दर कोट पहनती है और फूलोंसे शहद चूसकर अपना पेट भरती है। इसकी जीभ बड़ी आश्चर्य्यजनक होती है और इसीकी बनावट तितलीको रस चूसनेमें सहायता देती है। यह जीभ नलीके सदृश गोल और छिद्रदार होती है। जिस प्रकार नलीको बीचमेंसे काट देनेपर दो अर्धगोलाकार नलियां बन जाती हैं उसी तरह यह जीभ भी बीचसे चिरी होती है और प्रत्येक भागके दोनों तरफ़ सहस्रों दांत बने होते हैं। जीभ बंद करनेपर यह दांत तालेके आंकड़ेकी भांति काम देते हैं और यह जीभ घड़ीकी छोटी कमानीकी भांति तितलीके मुंहमें तह की हुई रक्खी रहती है। जिस समय इसकी इच्छा शहद पीनेकी हुई रस भरी थैलियोंतक पहुंच जाती है और नलीके छिद्रद्वारा यह रस तितलीके पेटमें पहुंच जाता है। पर स्मरण रहे कि रस इस नलीमें स्वयम् ही ऊपर नहीं चढ़ सकता है इसलिए रस चूसनेके पहिले तितली अपनी सांस बाहर निकाल देती है और फिर दम भरती है। ऐसा करनेसे सांस खींचते समय हवाके साथ रस भी खिंचा हुआ चला जाता है और तितलीके पेटमें जा पहुंचता है। अतः यह जीभ पानीके पम्पकी भांति रस पम्प करनेमें काम आती है। अन्य कीटोंको भी इस प्रकारकी जीभ इसीलिए दी गई है कि वे फूलपर बिना बैठे ही हवामें उड़ते ही उड़ते रस पी सकें। तितलीकी जीभ घड़ीकी बालकमानीकी सदृश होती है।

क्या इस विचित्र यंत्रकी अपूर्व बनावट और इसका आश्चर्य्यपूर्ण कौशल देखकर उस जगन्नियन्ताकी अनुपम कारीगरीकी प्रशंसा किये बिना मौन रहा जा सकता है, तथा इस प्रकृति भंडारके अनेकानेक आभापूर्ण रत्नोंको बिना खोज निकाले हमारी ज्ञान पिपासा तृप्त हो सकती है? इस प्रश्नका उत्तर हम विज्ञ पाठकोंके विचारकेलिए छोड़ते हैं।

हमारी ज्ञानेन्द्रियां

[ले० शारदा प्रसाद, एम. ए.]

ईश्वरकी सृष्टिके प्रायः दो भाग किये जाते हैं। एक तो चर अथवा जङ्गम सृष्टिके नामसे इसलिए कही जाती है कि इसमें सब चलनेवाले और प्राणवाले होते हैं। सृष्टिके इस भागमें जो अनेक प्रकारके प्राणवाले होते हैं, उनको प्राणी भी कहते हैं, जैसे मनुष्य पशु पक्षी इत्यादि। दूसरे भागको अचर अथवा स्थावर सृष्टि इसलिए कहते हैं कि उसमें न चलनेवाले होते हैं। इनमें प्राण नहीं होता परन्तु चेतन शक्ति मानी जाती है इसलिए कि यह सब आपसे घटते बढ़ते रहते हैं, और ऐसा देख गया है कि उनको गर्मी सर्दीका अनुभव होता है। इस अचर सृष्टिमें वृक्ष, पौधे और अनेक बनस्पति हैं।

ईश्वरकी चर सृष्टिमें जितने प्राणी हैं, उनमें यह विशेषता देखी जाती है कि उनके शरीरमें बहुत सी ऐसी शक्तियां हैं जिनकेद्वारा उन्हें अपने शरीरके बाहर जगतके पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त होता है। इन शक्तियोंकी क्रमशः वृद्धि होती है और उनकेद्वारा जो अनुभव होता है वह भी उसीके साथ साथ अधिक स्पष्ट रीतिसे प्रगट होता जाता है। इन अनेक शक्तियोंके आधार कुछ स्नायु समूह होते हैं। ये सब थक्तियां प्रायः सब प्राणियोंमें, जीवोंमें और जन्तुओंमें पाई जाती हैं। परन्तु मनुष्यमें अधिक प्रौढ़ और तीव्र होती हैं इस कारण कि मनुष्यकी मानसिक शक्ति बहुत अधिक होती है।

इन शक्तियोंके आधार जो स्नायु-समूह हैं वही सब प्राणियोंके शरीरकी अनेक इन्द्रियां हैं। यह सब इन्द्रियां पतले पतले सूत्रके समान स्नायु-द्वारा मानसिक शक्तिके आधारसे मिली हुई हैं। यदि शरीरका वह भाग जो मानसिक शक्तिका आधार है, इन सब शक्तियोंके आधार इन्द्रियोंसे इस प्रकार स्नायुद्वारा न मिला हो तो इन्द्रियां अपना काम ही नहीं कर सकती हैं। स्पर्श, दृष्टि, श्रवण शक्ति, घ्राण शक्ति, और स्वाद शक्ति इन सबके आधार शरीरके पृथक पृथक भाग हैं जो छूने, देखने, सूघंने, सुनने, और स्वाद लेनेकी इन्द्रियाँ कहलाती हैं। परन्तु ये सब अपना कुछ भी काम नहीं कर सकती हैं यदि पतली पतली नसों द्वारा मानसिक शक्तिके आधार इन्द्रियसे न मिली हों। देखनेको शक्तिका मुख्य आधार जो स्नायु है और जो मानसिक शक्तिकी इन्द्रियसे मिला होता है, यदि किसी प्रकार नष्ट हो जाय, तो ऐसी आँखको कुछ भी न दिखलाई पड़ेगा। आँखके बाहरका आकार चाहे कितना ही सुडौल हो, उसमें प्रगट रूपसे कोई बिकार न मालूम होता हो और उसपर प्रकाश भी भली भाँति पड़ता हो परन्तु दृष्टिके स्नायुके नष्ट हो जानेसे अथवा बिगड़ जानेसे जब मानसिक शक्तिसे सम्बन्ध टूट जाता है, तो फिर ऊपरी तौरसे सब ठीक रहते हुए भी कुछ भी नहीं दिखालाई देता। इसी प्रकार सुननेकी शक्तिको भी समझना चाहिये। जिस कानमें सुननेकी स्नायु जो श्रवणेन्द्रियको मानसिक शक्तिकी इन्द्रियसे मिलाता है नष्ट हो जाता है वह कुछ भी न सुनेगा। इसी प्रकार और इन्द्रियोंके सम्बन्धमें समझना चाहिये। इससे यह विदित है कि ये अनेक इन्द्रियां मानसिक शक्तिकी सहायक हैं, इनकी सहायतासे शरीरके बाहर जगतके पदार्थोंके विषयमें उसको सब ज्ञान होता है। शरीरके बाहर जगतमें भी इसी प्रकार कुछ शक्तियां हैं जिनको ज्योति, उष्णता, शब्द, चलनेकी शक्ति और रासायनिक शक्ति कहते है। ये सब बाहरकी शक्तियां इन्द्रियोंपर प्रभाव डालकर उनको चलायमान कर देती हैं और तब यह प्रभाव विशेष स्नायुद्वारा मानसिक शक्तिकी इन्द्रियतक जाता है,

Psychology मनोविज्ञान]

जिससे वह बाहरकी शक्तिका अनुभव करती है। प्रत्येक शारीरिक इन्द्रियमें किसी प्रकारका प्रभाव डालनेकेलिए उसीके अनुकूल बाहरकी विशेष शक्ति होनी चाहिये जैसे दृष्टिकी इन्द्रियपर जो वाह्य शक्ति प्रभाव डाल सकती है वह ज्योति है, और सुननेकी इन्द्रियपर प्रभाव डालनेवाली शब्द क्ति है।

अब यह देखना चाहिये कि बाहरके पदार्थोंको हम किस प्रकारसे जानते हैं। ज्योति दृष्टिकी इन्द्रिय आँखपर पड़ती है परन्तु ज्योतिका ज्ञान हमको आँखपर पड़नेसे ही नहीं हो जाता। तो ज्ञान कैसे होता है? इसका क्रम यों है। यह ज्योति जब आँखपर पड़ी और दृष्टिकी इन्द्रियपर इसने प्रभाव डाला तो वह चलायमान हो गई। अब यह इन्द्रिय वास्तवमें मानसिक शक्तिके आधार इन्द्रियसे दृष्टिके स्नायुद्वारा मिली है इसलिए यह स्नायु दृष्टिकी इन्द्रियके साथ ही चलायमान होकर उस प्रभावको मानसिक इन्द्रियतक पहुँचाती हैं। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि इस बाहरकी शक्तिका प्रभाव वास्तवमें मानसिक इन्द्रियपर ही पड़ता है।

ऐसा विदित होता है और यों कहना चाहिये कि आंख बाहरकी ज्योतिके पड़नेकेलिए एक परदा है जहाँपर ज्यों ही यह बाहरकी ज्योति पड़ी त्यों ही दृष्टिके स्नायुको इसने अपने प्रभावसे हिला दिया और उसी दम मानसिक शक्तिको ज्योतिका ज्ञान हो गया। रूपका ज्ञान न तो आंखको होता है और न दृष्टिके स्यायुको। जाननेवाली केवल मानसिक शक्ति ही है, जो मस्तिष्कमें है। इसलिए इस मानसिक शक्तिका आधार मस्तिष्क कहना चाहिये। अब हम इसको मस्तिष्कके ही नामसे पुकारेगें। हमारा यह कहना इस प्रकारसे प्रमाणित होता है कि जब कभी आंखमें नश्तर लगाया जाता है और यदि कहीं दृष्टिकी स्नायु झटकेसे छू गई और हिल गई तो मस्तिष्केमें एक दमसे बड़ा उजियाला सा मालूम होता है चाहे बाहर कोई तीव्र प्रकाश हो वा न हो। इसी प्रकार कानमें सुननेकी स्नायुको जो इस इन्द्रियको मस्तिष्कसे मिलाती है किसी तौरसे हिला दें और उसपर प्रभाव डालें तो मस्तिष्कमें बड़े तेज़ शब्दका ज्ञान होता है। इसी प्रकार यदि स्पर्शके स्नायुको हम किसी प्रकार हिला दें तो हाथ कोई वस्तु छूए या न छूए लेकिन मस्तिष्कमें स्पर्शका ज्ञान पैदा हो जाता है। प्रायः ऐसा करते हैं कि विद्युत् शक्ति वा बिजलीद्वारा इन स्नायुको हिला देते हैं और सुनने देखने और छूने इत्यादिका ज्ञान मस्तिष्कमें हो जाता है। एक बात और देखी जाती है कि यदि यह स्नायु हिला दिया जाय और कोई पदार्थ ज्योति शब्द या स्पर्श करनेवाला न भी हो तो भी यह सब स्नायु हिल जाते हैं। ऐसा विदित होता है कि केवल ज्योति इत्यादिके कारण यह स्नायु चलायमान नहीं होते। इसके अतिरिक्त यह भी विदित होता है कि एक ही क्रमसे और एक ही प्रकारसे यह सब स्नायु चलायमान होते हैं। यह नहीं होता है कि ज्योतिके प्रभावसे दृष्टिकी स्नायु किसी और प्रकारसे चलायमान हो और शब्दके प्रभावसे सुननेकी स्नायु किसी भिन्न प्रकारसे। भिन्न भिन्न इन्द्रियोंमें जब ही स्नायु हिल जाते हैं तब ही मस्तिष्कमें एक विशेष ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। तो अब यह निश्चय हुआ कि ये सब स्नायु एक ही प्रकारसे चलायमान होते हैं और इनको चलायमान करनेके हेतु बाहरकी ज्योति इत्यादिका प्रभाव हो अथवा किसी अन्य प्रकारसे ये चलायमान हो जायं।

यदि कोई स्नायु दो भागोंमें टूट जाय तो जो भाग कि मस्तिष्कसे पृथक हो गया है, उसपर बाहरका प्रभाव भी पड़े और वह चलायमान भी हो तो भी मस्तिष्कमें कुछ ज्ञान नहीं उत्पन्न होता। वास्तवमें ज्योति इत्यादिका ज्ञान मस्तिष्कमें ही है। स्नायु या इन्द्रियमें नहीं है। मस्तिष्कके भागोंमें

जब किसी प्रकार चाल पैदा हो जाती है और वे हिल जाते हैं तो ऐसा देखा गया है कि देखने और सुनने इत्यादिका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। जैसे स्वप्नकी अवस्थामें जान पड़ता है कि प्रकाश दिखलाई पड़ता है कोई तीव्र शब्द सुनाई पड़ता है परन्तु बाहर कोई ज्योति वा शब्दका कारण नहीं है। इसी प्रकार जब मस्तिष्कपर रुधिर अधिक हो जाता है अथवा उन्माद वा पागलपन हो जाता है तो बिना कोई पदार्थ बाहर हुए भी विविध प्रकारके रूप इत्यादि बाहर दिखलाई देते हैं और शब्द सुनाइ देते हैं, जिससे यह मालूम होता है कि मस्तिष्कमें ज्योति इत्यादिके जाननेके जो भाग थे, वहांके स्नायुपर किसी प्रकारका प्रभाव पड़ गया है और वे हिल गये हैं, चाहे यह प्रभाव स्वप्नावस्थामें पड़ा हो या रुधिरके चालसे हिल गये हों।

कभी कभी ऐसा भी देखा गया है कि जब ज्वरका वेग होता है और उसकी गर्मीसे हमारे मस्तिष्ककी सब नसें हिल जाती है तो आंखोंके सामने भयानक रूप दिखलाई देते हैं जिनको देखकर मनुष्य डर जाता है और चिल्ला उठता है। बाहर न तो कोई रूप होता है और न कोई भयानक वस्तु होती है केवल होता यह है कि मस्तिष्कमें देखनेकी शक्तिके जो स्नायु हैं उनमें ज्वरकी गर्म्मीके कारण चाल पैदा हो जाती है और एक साथ ही आँखमें रूप दिखलाई पड़ता है। अब यह और भी स्पष्ट रूपसे विदित होता है कि मनुष्यके शरीरके बाहर जो पदार्थ हैं, उनमें कुछ भी ऐसा नहीं है कि जिसके प्रभावसे मनुष्यको उनका ज्ञान होता है, और न जब मनुष्यको उनका ज्ञान होता है तब उन बाहरके पदार्थोंमें किसी प्रकारका कुछ अन्तर पड़ता है, न वे कुछ बदल जाते हैं। जब किसी प्रकारसे कोई ज्ञान मनुष्यको होता है और वह किसी वस्तुके विषयमें कुछ जानता है, अर्थात् देखने सुनने, छूने, सूंघने या स्वाद लेनेसे तो इस बाहरकी वस्तुमें कुछ परिवर्त्तन नहीं होता, जो कुछ होता है यह है कि मस्तिष्कके विविध स्नायुमें परिवर्त्तन हो जाता है और जब जब मनुष्य किसी प्रकारसे कुछ जानता है तो उसीके साथ ही उसके मस्तिष्कपर कुछ प्रभाव पड़ता है, वहाँ कुछ परिर्त्तन हो जाता है। अब यह देखना चाहिये कि बाहरके किसी पदार्थका ज्ञान मनुष्यको होता ही क्यों है? क्योंकि जो कुछ प्रभाव पड़ता है वह तो उसके मस्तिष्कके अन्दर पड़ता है बाहरी वस्तुमें न तो कुछ परिवर्त्तन ही होता है और न कुछ उसपर प्रभाव ही पड़ता है। यह ज्ञान जो मनुष्यको बाहरी पदार्थोंके विषयमें होता है वह किस प्रकारसे मस्तिष्कके अन्दरके ज्ञानसे मिला हुआ है? यह अनुभवद्वारा विदित हुआ है। इसको भली भाँति समझनेकेलिए एक उदाहरण लेना चाहिये। छोटे बच्चेकी आँखपर जब बाहरसे ज्योति पड़ती है तो उसीके साथ उसके मस्तिष्कमें ज्योतिका ज्ञान होता है बाहरके किसी पदार्थको वह पहले नहीं जानता और न उसको देख सकता है। जैसे यदि उसके सामने कोई कुर्सी रक्खी हो अथवा वृक्ष हो तो ज्योतिकेप्रभावसे वह कुर्सी वा वृक्ष उस बच्चेको देखना चाहिये परन्तु ऐसा देखा गया है कि ज्योति पड़नेपर भी बच्चा उस पदार्थकी ओर नहीं देखता। यह बात कि ज्योति पड़ती है कि नहीं और उसका प्रभाव दृष्टिशक्तिके स्नायुद्वारा मस्तिष्कमें पहुंचता है वा नहीं ऐसे जान सकते हैं कि बच्चेकी आँखकी पुतलियों और आखोंके ऊपरके अन्य स्नायुमें ज्योति पड़नेके कारण घटना बढ़ना स्पष्ट रीतिसे पाया जाता है। यह देखा जाता है कि जैसे देखनेकेलिए आँखकी पुतली फैल जाती है और सिकुड़ जाती है वैसे ही बच्चेकी आंखमें भी होता है। इससे यह अनुमान करना अनुचित नहीं है कि बाहरी ज्योतिका प्रभाव दृष्टिके स्नायुद्वारा बच्चेके मस्तिष्कमें पहुँच जाता है और ज्योतिका उसको ज्ञान हो जाता है। परन्तु

बच्चा पदार्थको देखनेको चेष्टा नहीं करता। यदि उसका सिर हिल भी जाता है या उधर फिर भी जाता है तो यह केवल बिना किसी चेष्टाके होता है, इस कारणसे नहीं होता कि उसको वह बाहरका पदार्थ दिखलाई देता है। ऐसा देखा गया है कि बच्चा प्रायः उधर देखता ही नहीं। इससे यह सिद्धान्त निश्चय किया गया है कि बच्चेको बाहरके पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता। यह बात अनुभवसे जानी गई है कि बच्चेको बाहरी वस्तुओंके जाननेकी शक्ति और उसीके साथ ही साथ बाहरी वस्तुओंका ज्ञान, ये दोनों एक ही प्रकारसे बढ़ते हैं। यह ऐसे होता है कि जब बच्चेकी आँखपर ज्योति पड़ी और उसके साथ ही साथ किसी चमकीली वस्तुका रूप पड़ा, तो पहले तो बच्चा केवल ज्योति जानके रह जायगा, उस चमकदार अथवा रङ्गवाली वस्तुके विषयमें कुछ न जानेगा। परन्तु ज्यों ज्यों बच्चा बड़ा होगा बाहरके रूपोंको देखा करेगा। कुछ दिनोंके बाद जब ज्योतिके साथ किसी रूपका भी आकार उसके आँखपर पड़ेगा तो उस पदार्थकी ओर वह जानकर अपनी दृष्टि ले जायगा और उसको देखने लगेगा। इससे यह सिद्धान्त निश्चय हुआ कि ज्यों ज्यों बच्चा बढ़ता जाता है उसका अनुभव भी बढ़ता जाता है और वह बाहरके पदार्थोंको देखकर जान लेता है। देखकर बाहरी पदार्थोंको जाननेके साथ ही साथ हम यह देखते हैं कि उसके छूनेकेलिए भी मनुष्य चेष्टा करता है। यों कहना चाहिये कि जब मनुष्य किसी पदार्थको छूता है तो छूनेकी शक्ति द्वारा मस्तिष्कमें छूनेका ज्ञान पैदा हो जाता है और जो पदार्थ छुआ जाता है, वह भी जान लिया जाता है। परन्तु हाथसे छूनेके साथ ही हम यह देखते हैं कि प्रायः आंख भी उधर घूम जाती है और आँख छूनेवाले हाथ और छुई गई वस्तु दोनोंको देखती है। तो इस प्रकार निश्चय हुआ कि दृष्टिकी शक्ति और छूनेकी शक्तिमें किसी प्रकारका सम्बन्ध है। परन्तु जैसा हमने ऊपर बतलाया है, छूने और देखनेकी स्नायुमें कोई भिन्नता नहीं है। उनपर एक ही भाँति बाहरके पदार्थोंका प्रभाव पड़ता है और एक ही प्रकार दोनों चलायमान होकर मस्तिष्कमें प्रभावको पहुँचाते हैं। यह विदित होता है कि देखने और छूनेकी शक्तियाँ मस्तिष्कमें परस्पर मिली हुई हैं और इसके सम्बन्धमें मस्तिष्कमें जो ज्ञान उत्पन्न होते हैं वे भी परस्पर मिले हुए हैं। यों कहना और यों समझना चाहिये कि बाहरी पदार्थके छूने और देखनेका ज्ञान मस्तिष्कमें एक ही कारणसे होता है।

मस्तिष्कमें जिस प्रकार बाहरके पदार्थोंका ज्ञान होता है उसी प्रकार आपसे आप स्वयं ही ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। जैसे मनुष्यको बाहरी वस्तुके ज्ञान रंग, रूप, और आकार होता है, वैसे ही शरीरके अन्तर्गत जो परिवर्त्तन हो जाता है या जो दशा उत्पन्न होती है उसका ज्ञान मस्तिष्कको होता है। पीड़ाका ज्ञान बतलाता है कि शरीरके अन्तर्गत क्या परिवर्त्तन हुआ है और क्या दशा उत्पन्न हो गई है। उदाहरणतः देखिये—जब हम अपने हाथकी उंगलीसे छुरीको छूते हैं तो मस्तिष्कमें छुरीका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और हम छुरीको जान लेते हैं। इसके उपरान्त छुरीसे यदि हमारी उंगली कट जाय तो जो पीड़ा उत्पन्न होती है वह शरीरकी अन्तर्गत दशाको बतलाती है। परन्तु छुरीके ज्ञानसे यह भिन्न है। इस प्रकार यह विदित होता है कि हमारे मस्तिष्कमें दो प्रकारका ज्ञान होता है एक तो जब बाहरके पदार्थ इन्द्रियद्वारा मस्तिष्कपर अपना प्रभाव डालते हैं, तब उत्पन्न होता है, और दूसरा ज्ञान स्वयं मनुष्यके शरीरके ही अंदर उत्पन्न होता है और शरीरकी अन्तर्गत दशाको बतलाता है। ऐसा विदित होता है कि मनुष्यका शरीर ऐसा बना हुआ है कि उसके मस्तिष्कमें एक

साथ ही सामान्य प्रभाव और कारणसे भी ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि इन दोनों ज्ञानोंमें बड़ी भिन्नता है। बाहरके पदार्थका ज्ञान वास्तवमें अधिक उत्तम ज्ञान है और जैसा हमने ऊपर कहा है पतली नसोंद्वारा प्रत्येक इन्द्रियके मस्तिष्कमें साथ मिले होनेसे यह मस्तिष्कमें उत्पन्न होता है।

——

बिच्छूका गृहस्थाश्रम

[ले० निहालकरण सेठी, एम. एस-सी.]

बिच्छू बहुधा गर्म देशोंमें ही होते हैं, किन्तु युरोपके दक्षिणी भागोंमें भी उनकी कुछ जातियां पाई जाती हैं। वे अपना समस्त कार्य रात्रिको ही करते हैं। दिनमें तो वे पत्थरों इत्यादि-के नीचे छुपकर बैठे या सोते रहते हैं। इनकी इस निशाचरी प्रवृत्तिके कारण, एवं डर और घृणा-के कारण अभी कुछ वर्षों पहिलेतक इनके जीवन-के विषयमें बहुत ही कम बातें ज्ञात थीं। थोड़ा समय हुआ कि प्रसिद्ध फ्रांसीसी जीव-विज्ञान-वेत्ता फ़ेबर ने (Faber) युरोपके दो साधारण जातिके बिच्छुओंकी रीतिरिवाजोंका अध्ययन किया है। नीचे लिखी हुई बातें भी उन्हींके लिखे हुए मनोरंजक वृत्तान्तसे ली गई हैं।

ये बिच्छू साढ़े तीन इंचतक लम्बे होते हैं और इनका रंग प्रायः हलका बादामी होता है। वे उन पहाड़ी देशोंमें रहते हैं जहां अधिक कड़ी धूपके कारण प्रायः कुछ पेड़ पौधे न उगते हों। ऐसे स्थानोंमें वे इधर उधर बिखरे हुए पत्थरोंके नीचे पाये जाते हैं। यदि किसी पत्थरको उलट दिया जाय तो उसके नीचे कई इंच गहरा एक गोल छिद्र मिलेगा जिसके द्वारपर बहुधा बिच्छू महा-शय पंजे फैलाये हुए और डंकमयी पूंछको पीठके ऊपरकी ओर मरोड़े हुए आगन्तुकोंका स्वागत करनेको बैठे होंगे। गर्मियोंमें इसी प्रकार पत्थर-

zoology जीवविज्ञान]

के नीचे बैठकर धूपसे तपे हुए पत्थरसे अपने शरीरको सेंकना बिच्छूको बहुत अच्छा मालूम होता है; किन्तु थोड़ी भी ठंड पड़ी या पानी बरसा कि आप अपने बिलमें घुस जाते हैं।

बिच्छू अपने चिमटीके सदृष बड़े बड़े पंजोंसे शिकारपर आक्रमण करता है और उन्हींसे पकड़-कर उसे अपने मुंहमें रखता है। इन पंजोंकी स्पर्श ज्ञान शक्ति बहुत तीव्र होती है और जब यह जन्तु चलता है इन्हें आगेकी ओर फैलाकर धीरे धीरे ऊपर नीचे हिलाता हुआ चलता है; क्योंकि यद्यपि इसके नेत्र आठ होते हैं किन्तु वे ऐसे स्थानपर स्थित होते हैं कि बिच्छू-को सामनेकी तरफ कुछ नहीं दिखलाई देता। इसी कारण उसे अपने इन स्पर्शकुशल पंजोंके भरोसे रहना पड़ता है। इन्हींके द्वारा उसे यह ज्ञात होता है कि वह किधर जा रहा है। उसकी दुम जिसके सिरेपर विषैला डंक लगा रहता है चलते समय पीठके ऊपरकी ओर मुड़ी रहती है किन्तु आराम करते समय वह शरीरके एक तरफ़ मुड़ जाती है।

शिकारपर आक्रमण करते समय बिच्छू चुपचाप निकट जाकर अपने पंजोंकी चिमटियोंसे उसे पकड़ लेता है। यदि मक्खी चुप रही तब तो लाकर उसे मुंहसे पकड़ लेता है और फ़ुरसतसे खाता रहता है। ऐसी दशामें डंक मारनेकी आव-श्यकता नहीं होती। किन्तु यदि मक्खी छटपटाई और दंगा करने लगी तो बिच्छू महाशय अपनी दुमको आगेकी ओर झुकाते हैं और पल भर निशा-ना बांधकर एक दो बार डंक मार उसे चुप कर देते हैं, क्योंकि उन्हें इस प्रकारके दंगा फ़सादसे सख्त नफ़रत है। इतना सोच विचारकर काम करनेपर भी बिच्छू इस बातकी पर्वाह नहीं करना कि शिकार मुंहमें कैसे पकड़ा गया या डंक उसके शरीरके किस स्थानपर लगो।

उसके विषका असर भिन्न भिन्न जन्तुओंपर भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। इस बातकी परीक्षा

अनेक जन्तुओंको डंक लगवाकर की गई है। मकड़ियां तुरन्त ही सिकुड़कर मर गईं। प्रायः सब ही प्रकारके कीड़े सुन्न हो गये और थोड़ी बहुत देरमें मृत्युको भी प्राप्त हो गये। किन्तु एक बड़ा सा शतपद कई दिनतक जीता रहा। यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि यद्यपि कीड़े डंक लगनेके थोड़ी ही देरके बाद मर जाते हैं किन्तु उनके बच्चों-(grubs) पर इस विषका कुछ भी असर नहीं होता। उनके नरम शरीरमें कितनी ही बार डंकद्वारा छिद्र हो जानेपर भी उनसे यथा समय ऐसे कीड़े बन जाते हैं मानो कभी कुछ हुआ ही नहीं। इस प्रकारके एक कीड़ेको फिर डंक लगवाया गया किन्तु वह झट मर गया। (समझा गया था कि प्लेग आदिका एक बार टीक लग जानेसे जैसे फिर उस बीमारीका डर नहीं रहता वैसे ही शायद बिच्छूका विष भी न चढ़े किन्तु आशा विफल हुई।) खेदकी बात है कि ये प्रयोग मनुष्योंपर नहीं किये गये किन्तु दूसरी रिपोर्टोंसे ज्ञात हुआ है कि यद्यपि कभी कभी बिच्छूके डंकसे मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है किन्तु यह प्रायः तभी होता है जब उस मनुष्यका रक्त बहुत ही विकृत अवस्थामें हो।

बिच्छू महाशयकी प्रेम कथा बहुत ही मनोरंजक है। नर बिच्छू अप्रेल या मई मासमें जब संध्याके समय टहलने निकलता है तब बहुधा अपनेसे बड़ी एक श्रीमतीजीसे भेंट हो जाती है। दोनों एक दूसरेके सम्मुख पंजे फैला कर खड़े हो जाते हैं। तब शरीरका आगेका भाग पृथ्वीपर दृढ़तासे स्थिर कर दोनों अपनी पूछें और पिछला भाग ऊपर उठाते हैं मानों सिरके बल खड़े होनेका प्रयत्न कर रहे हों। ऐसा करते करते दोनोंकी पूंछे मिल जाती हैं। तब वे बड़े प्रेमसे पूंछें रगड़ते हैं और डंकोंको एक दूसरेसे हुककी (hook) तरह मिला लेते हैं। ऐसा व्यवहार शायद सभ्य बिच्छू समाजमें साधारण प्रणाम या हाथ मिलाना समझा जाता है। किन्तु जो तरुण जोड़ी विवाह करना चाहती है उनमें यह सब बहुत ही तकल्लुफ़के साथ होता है। यदि श्रीमतीजी उपयुक्त समझी गईं और उन्होंने अनुमति दी तो बिच्छू महाशय उनके दोनों हाथ पकड़ लेते हैं और उन्हें अपनी ओर खींचते हुए पीछेकी ओर चलना प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार वे कई घंटोंतक टहलते रहते हैं अंतमें किसी पत्थरके नीचेकी दरारको उपयुक्त समझकर बिच्छू महाशय अपनी टांगोंसे खोद खोद कर और पूंछसे मिट्टी हटा हटा कर उसे बढ़ा लेते हैं। किन्तु यह कार्य करते समय भी वे श्रीमतीजीके हाथ नहीं छोड़ते। जब घर ठीक बन जाता है तब वे धीरे धीरे उसमें पिछले पांवों प्रवेश करते हैं। यदि श्रीमतीजीको यह घर पसंद आया तो ठीक ही है अन्यथा वहांसे निकलकर दूसरे स्थानकी खोज की जाती है।

कभी कभी इस प्रकारके परिभ्रमणमें इन बिच्छूरामसे बड़ा कोई दूसरा बिच्छू श्रीमतीजीके-लिए अपनेको अधिक योग्य पात्र समझकर इन्हें ललकार देता है। तब दोनोंमें युद्ध हो जाता है किन्तु अन्य जन्तुओंकी भांति ऐसा नहीं कि जिसमें किसीको गहरी चोट लगे या मृत्यु हो जाय। केवल एक दूसरेके पंजे पकड़ कर बलसे खींचते हैं, जो खींच ले जाता है उसकी विजय होती है और पराजित बिच्छू किसी दूसरे स्थानपर अपने भाग्यकी परीक्षा करने चला जाता है। किन्तु जब इस प्रकारके विघ्न उपस्थित नहीं होते और प्रेमके पथमें कुछ बाधाएं नहीं पड़तीं तब कोई गृह पसंद आ जानेपर वे उसमें रात भर विश्राम करते हैं। दूसरे दिन यदि वह पत्थर उलट दिया जाय तो उस गृहपर श्रीमतीजीका ही पूर्ण अधिकार पाया जाता है क्योंकि या तो बिच्छू महाशयका कुछ पता नहीं चलता या उनके शरीरके कुछ टुकड़े इधर उधर बिखरे हुए मिलते हैं। इस दुःखान्त घटनाका सविस्तर वृत्तान्त तो ज्ञात नहीं है किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि अबतक जो श्रीमतीजी अपने पतिकी आज्ञानुसार सब काम करती थीं वे ही अब सहसा स्वतंत्र होकर गृहका अधिकार अपने हाथमें ले लेती हैं और अपने पतिको ही काट पीटकर भोजनके-

लिए परोस लेती हैं। यह ठीक ठीक नहीं मालूम कि यद्यपि बिच्छू इनके दोनों हाथ पकड़े होता है तौ भी ये उसको कैसे दबा लेती हैं। किंतु होता सदा यही है।

इस घटनाके कारण श्रीमतीजीके पत्नी धर्म पालनके विषयमें चाहे कुछ समझा जाय किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनका मातृधर्म पालन अनुकरणीय है। उपरोक्त घटनाके १४ महीनोंके पश्चात् वे अंडे देती हैं। पहिले ऐसा समझा जाता था कि बिच्छूके बच्चे सर्वांगपरिपूर्ण पैदा होते हैं। किन्तु फेबर महाशयकी खोजसे सिद्ध हो गया है कि बच्चे अंडोंसे ही पैदा होते हैं। यह सच है कि अंडोंपरकी झिल्ली इतनी नरम और कमज़ोर होती है कि बिना माताकी सहायताके भी बच्चे उनसे बाहिर निकल आते हैं। अंडोंके दे चुकते ही माता अपने पंजोंसे बड़ी चतुराईके साथ झिल्ली तोड़ती है और उससे बच्चोंको पृथक कर देती है। जब सब बच्चे पृथक हो जाते हैं तब वह उन झिल्लीके टुकड़ोंको खा जाती है।

यह सफ़ेद बच्चे अब प्रायः एक तिहाई इंच लम्बे होते हैं और बड़ी कठिनाईसे बेचारे अपनी मा की पीठपर चढ़ पाते हैं। यहां ये कोई एक सप्ताहतक इकट्ठे होकर बैठे रहते हैं। इस बीचमें वे कुछ खाते पीते भी नहीं। इसके बाद उनका चमड़ा फट फट कर उतर जाता है और माताकी पीठपर कम्बलकी भांति ढका हुआ मालूम होता है। ऐसा इसी बार होता है। फिर जब कभी चमड़ा उतरता है तब वह फटता नहीं, ज्योंका त्यों रहता है। अब बच्चे अंडोंसे निकलते ही जितने बड़े थे उससे डेढ गुने हो चुकते हैं और अब उनमें चंचलता भी बहुत कुछ आ जाती है। वे अपनी माताकी पीठपर चढ़ते हैं और कभी कभी इधर उधर सैर करनेका भी इरादा करते हैं किन्तु माता झटसे पकड़कर अपने पास लौटा लाती है। इसके एक सप्ताह बाद वे अपने आप शिकार करके भोजन प्राप्त कर सकते हैं। तब माता भी उनकेलिए चिन्ता करना और कष्ट उठाना छोड़ देती है अब यह कुटुम्ब बिखर जाता है। प्रत्येक बालक अब अपनी इच्छानुसार जीवन संग्राम करनेको चल देता है।

मोतीज्वर

(enteric or typhoid fever)

[अनु० नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा सेंट जान्स कालेज]

मोतीज्वरको भी एक बलवान तथा भयानक रोग समझना चाहिये। इसकी प्रबलताके द्योतक केवल मृत्यु संख्या और बीमारीकी अधिकता ही नहीं हैं परन्तु वे ख़र्चीले उपाय भी हैं जो कि इसके रोकनेकेलिए आवश्यक हैं।

इसका मुख्य लक्षण तीन सप्ताहतकका अटूट ज्वर और मटरके रसके सदृश दस्तोंका बराबर आना है। हमारी सरकारके सैनिक विभागने जो महत्व इसपर दिया है उसका ज्ञान प्राप्त करनेकेलिए उन प्रयत्नोंकी ओर दृष्टि डालना चाहिये जो सेनाके स्वाथ्याकेलिए किये गये हैं।

डाक्टर वुड हचन्सन अपनी "निवारणीय रोग" नामक प्रशंसीनीय पुस्तकमें लिखते हैं कि मोतीज्वरका एक साधारण कारण दूसरेके शरीरसे निकले हुए पदार्थोंका अपने शरीरमें प्रवेश होना है। धूल फांकना यह वाक्य यद्यपि साधारण है परंतु घोर परिणामवाला और बुरी तरहसे सबकेलिए लागू है।

पहिले यह समझा जाता था कि यह रोग युरोप निवासियोंपर ही प्रभाव जमाता है परन्तु मेजर. राजर्सके (Major Rogers I. M. S.) प्रयोगों द्वारा हमें मालूम हुआ है कि पूर्वीय बंगाल और आसाम्के प्रदेशोंको जहां कि अधिक वर्षा होती है छोड़कर बाक़ी सब भारतवर्षमें फैला हुआ है।

ट्रांसवाल मेडिकल (Transwal Medical) नामक समाचारपत्रके एक लेखकका विश्वास है

Medicine अयुर्वेद]

कि यह रोग केवल भारतवासियोंमें ही नहीं परंतु गरम देशोंके सब निवासियोंमें बहुत फैला हुआ है। उसका कथन है कि उक्त रोग काफ़िरोंमें भी हमारे अनुमानसे कहीं अधिक फैला हुआ है। मेजर ल्योनार्ड रोजर्स (Major Leonard Rogers) बतलाते हैं कि यद्यपि मोतीज्वरका कलकत्ता निवासी भारतीय बच्चोंमें और उन दीन युरोप निवासियोंमें जो कि साधारण बंगालियोंकी तरह पाले जाते हैं अभाव नहीं है तथापि भारतीय सेना तथा जेलोंमें यह रोग बहुत कम पाया जाता है।

पर इसको इस प्रकार समझाते हैं कि यह रोग इस देशमें ५ वर्षकी अवस्थासे पूर्व होता है। हमारी सम्मतिमें यह रोग हिन्दुस्तानी सिपाहियों और सवारोंमें हलका होता है और इसलिए प्रायः लोगोंको मालूमतक नहीं होता।

मोतीज्वर भारतवासियोंका एक बड़ा शत्रु है। यह रोग एक बहुत छोटे कीटाणुसे उत्पन्न होता है जो कि उन कीटाणुओंसे बहुत कुछ मिलता है जोकि मनुष्यों और जानवरोंकी अँतड़ियोंमें (intestines) बहुत संख्यामें पाये जाते हैं।

रौबर्ट साहिब अपनी भारतीय मोतीज्वरपर लिखी हुई पुस्तकमें इस विचारको स्वीकार करते हैं कि यह निर्दोष कीटाण ही मोतीज्वरके कीटाणुमें बदल जाता है और केल्डवैल (Caldlwall) साहिब भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक सैनिक स्वास्थ्यमें इस बातको पूर्णतया पुष्ट करते हैं।

इस कीटाणुको फैलानेवाले पदार्थ

(१) जल या और खाद्य वस्तुएं मुख्य कर दूध जो कि मोतीज्वरके रोगीके मल, मूत्र अथवा थूकसे दूषित हो गया हो। (२) धूल (३) कीटाणुओं द्वारा अशुद्ध कपड़े। (४) मोतीज्वरके रोगी जो कि ऊपरसे स्वस्थ जंचते हैं।

खाद्य वस्तुएं—इस रोगके कीटाणु खाद्य वस्तु अथवा दूधमें मक्खियोंकेद्वारा पहुंच जाते हैं। स्पेन और अमरीकाकी लड़ाइयोंमें ऐसा देखा जा चुका है कि मक्खियाँ पाख़ानेसे सीधी खाद्य पदार्थोंपर झुक पड़ती हैं।

धूल—दूषित सीले हुए मैले कपड़े और खुले हुए मलसे वायु दूषित हो जाती है।

कीटाणुओंसे परिपूरित कपड़ोंसे जो हानियां हो सकती हैं उनका वर्णन फिर कभी दिया जायगा।

मोतीज्वरको फैलानेवाले पदार्थ अबसे कुछ ही पहिले इस कारण अज्ञात थे कि मोतीज्वर और दस्त इत्यादिक सैनिकोंको रण क्षेत्रमें अपना ग्रास बनाए और अगणित मनुष्योंपर अपना अधिकार जमाए रहते हैं। मुख्य कर ऐसे स्थानोंपर जहां कि पानीका प्रबन्ध अच्छा हो और खानेकी शुद्धताईमें किसी प्रकारका संदेह न हो। सन १८६२ में यह ज्ञात हुआ है कि एक खाना बनानेवाली स्त्रीने जोकि देखनेमें स्वस्थ मालूम होती थी अपने रसोई घरके और नौकरोंमें यह रोग फैला दिया और एक दूध बेचनेवाली स्त्री मोतीज्वरके एक दूसरी जगह फैलनेका कारण हुई। इनके पश्चात् शीघ्र ही ऐसी घटनाएँ हुईं जिनसे यह मालूम हुआ कि मोतीज्वर, दस्त और हैज़ाके रोगियोंके पित्ताशय-(gall bladder) में अच्छे हो जानेके पश्चात् कई वर्षतक इन रोगोंके कीटाणु देखे गए। ऐसे ही मनुष्य रोग फैलाते हैं। ये बैक्टीरिया (कीटाणु) उनके पित्ताशयसे अँतडियोंमें करोड़ोंकी संख्यामें थोड़ी थोड़ी देर बाद जाते रहते हैं इसलिए एक चतुर जीवाणु शास्त्रज्ञकेलिए (bacteriologilst) भी उनका पता लगाना कठिन होता है। ऐसे स्थानोंमें जहाँपर कि मल मूत्र इत्यादि जलद्वारा बहा दिया जाता है ये मनुष्य हानिकारक नहीं होते लेकिन शर्त यह है कि इनका संबंध भोजनके पदार्थोंसे न हो।

हमारे देशमें ऐसे मनुष्य सदा हानि पहुँचाते रहते हैं क्योंकि उनका मल अधिकतर खुली जगहमें पड़ा रहता है जिससे कि धूप और

मक्खियों द्वारा हवामें फैल जाता है। मक्खियोंकी टाँगों द्वारा अथवा धूलके साथ इन कीटाणुओंका जल और भोज्य पदार्थोंमें प्रवेश हो जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि यह बीमारी एक दम फूट निकलती है और इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं मालूम होता। यह बात प्रत्येक भारतवासीको ध्यानमें रख लेनी चाहिए कि ऐसे ही मनुष्योंका मल जो यद्यपि स्वस्थ मालूम होते हैं इस रोगका मुख्य कारण है। और इसलिए आदमी और पशुके मलकी सफ़ाई उत्तम और उचित रीतिसे होना भारतीय स्वास्थरक्षाकेलिए आवश्यक है। मोतीज्वरके मामलेमें यह बात ध्यान देने योग्य है कि केवल मल ही नहीं इस रोगको फैलाता परंतु मूत्र और थूँक इत्यादिक भी समान हानिकारक हैं। यह रोग कई उपायोंसे बचाया जा सकता है लेकिन एक उपाय सबसे अधिक ध्यान देने योग्य है। यह उपाय मोतीज्वरका टीका लगाना है। इस उपायके लाभ एक छोटीसी पुस्तकमें दिये गये हैं जोकि मेजर ब्लेकहामने लिखी है और पेशावरके पहले लेफ़टनेन्ट जेनरलने प्रकाशित की है।

इस रोगके रोकनेका सबसे उत्तम उपाय टीका लगवाना है। नीचे लिखी हुई सं० १८६१ से १८६४ तककी सूची (अँग्रेज़ी सेनाओंकी) टीका लगवानेके परिणामको प्रकट करती है।

संख्या	टीका लगवाया	टीका न लगवाया
रोगी हुए	५४७३	६५१०
मरे	२१	१८७
प्रतिसहस्र	८	२६
मरे रोगी	३·२	२८·३

ऊपर लिखे हुए अंकोंसे प्रकट होता है कि मोतीज्वरसे बच जानेका उन मनुष्योंको जिनके टीका लग चुका है टीका न लगनेवाले मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक अवसर है और यदि ऐसे मनुष्य बीमार भी हो जायँ तो उनके बचनेकी अधिक सम्भावना है। मेरठ की १७ वीं लैंसर्सका हाल अत्यन्त आश्चर्य्यजनक है। इस सेनाको भारतमें आनेके थोड़े ही दिनों बाद मोतीज्वरका सामना करना पड़ा। उसमें ६० मनुष्योंको यह रोग हो गया इनमेंसे ५८ को टीका नहीं लगाया गया था और शेषको पूरे तौरसे टीका नहीं उभरा था। वह मनुष्य जिनके टीका लग गया था रोगसे बिलकुल बच गए। अब यहीं की बात लीजिये बहुतसी घटनाएँ जो इसी कमिशनरीमें कुछ मास व्यतीत हुए हुई थीं केवल उन्हीं मनुष्योंमें थीं जिनके टीका नहीं लगा था। उस कर्मचारीपर जो अपनी सामर्थ्यानुसार हर प्रकारसे मनुष्योंको इस उपायसे लाभ उठानेमें उद्यत नहीं करता बड़ा भारी उत्तरदायित्व है। उपर्युक्त यंत्र मोतीज्वरके विरुद्ध कमसे कम दो वर्षतक असर रख सकता है परन्तु उसके रुधिरकी रोग रोकनेकी शक्ति छः वर्षतक साधारणसे ४ गुनी रहती है। इसका यह आशय नहींहै कि यह उपाय मोतीज्वरको चेचकके टीकेकी भाँति बिलकुल नहीं होने देता क्योंकि चेचक और मोतीज्वर भिन्न भिन्न रोग हैं। चेचक एक बार होकर दुबारा बहुत कम होती है परन्तु मोतीज्वरका पहिला आक्रमण यद्यपि दूसरेको बहुत हलका कर देता है परन्तु उसको बिलकुल रोक नहीं सकता।

मोतीज्वरके टीकेकी औषधिकी तुलना हम कुनैनके साथ कर सकते हैं। ज्वरसे पीड़ित नगरनिवासियोंको कुनैन न देना क्या किसी मनुष्यकेलिए उचित कहा जा सकता है? इसी प्रकार जो मनुष्य इस उपायके प्रचारसे जिसे सारा सभ्य संसार परम उत्तम मानता है सर्वसाधारणको वंचित रखता है वह स्वयं ही अपने किसी मित्र वा सम्बन्धीके रोग ग्रसित हो जानेपर दुःख भोगता है। जिस रसका इस टीकेमें प्रयोग किया जाता है वह एक गर्मीसे मरे हुए मोतीज्वरके कीटाणु और एक कीटाणु विनाशक औषधिका

मिश्रण है। यह मिश्रण उबली हुई वनस्पतिके समान बिलकुल हानिकारक नहीं होता उबलनेके कारण इसमें उत्पादक शक्ति नहीं रहती और चूंकि यह बहुत होशियारीसे शरीरमें प्रवेश किया जाता है इसलिए यह साधारण टीकेसे भी कम कष्टदायक होता है।

उपसंहारमें यह कह देना आवश्यक है कि यदि कोई नवयुवक पूर्व उपायोंकी बराबर अपेक्षा करता रहे तो इन कीटाणुओंसे सुरक्षित होनेमें कोई उपचार फलीभूत नहीं हो सकता। यदि किसी मनुष्यकी प्रकृति इस रोगके अनुकूल हो और उसके शरीरमें इस रोगके कीटाणुओंका प्रवेश हो जाए तो वह किसी प्रकार भी नहीं बच सकता। ऐसे मनुष्यका बचना तो और भी अधिक दुःसाध्य है यदि उसे किसी गर्म देशमें घोर परिश्रम करना पड़े। हम अपने पाठकोंके हृदयोंपर अच्छी तरहसे इस टीके महत्वको अंकित करना चाहते हैं क्योंकि रोगको रोक देना उसके अच्छा करनेसे कहीं उत्तम है और विशेषकर जब कि यह बात हमपर अच्छी तरह विदित हो गई है कि इस रोगके उपचारमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है।

तरुजीवन

पत्र

[ले० पं० गङ्गाशङ्कर पचौली]

चाहे जिस पौदे वा वृक्षको देखो पेड़ी भूमिसे ऊपरको निकली हुई दीखती है और पेड़ीके सिरेसे शाखा प्रशाखा चारों ओर फैली रहती हैं। इन प्रशाखाओंपर छोटे छोटे हरे पत्ते लगे रहते हैं जो चलती वायुके कारण हिलते रहते हैं। इन पत्तोंके समूहको पत्रावली कहते हैं। पत्र शब्दसे पौदोंपर लगे हरे पत्तोंको ही नहीं समझना चाहिए वरन् प्याज़के छिलके, बहुतसे कन्दोंकी धरतीके भीतरकी पेड़ीपरके पतले भूसीसे छिलके, फूलोंकी पखड़ी आदि भी इस पत्र शब्दके लक्षणमें आ जाती हैं। इसी प्रकार बीज-दल भी पत्र कहे जा सकते हैं। बीज-दलके मुख्य काम तीन हैं। प्रथम वे अंकुर वा प्ररोहके भोजनके भंडार हैं। दूसरे उस भोजनको गलाकर प्ररोहके सब अंगोंको पहुचाते हैं। तीसरे बीजके भीतर सूक्ष्ममूल और प्ररोहाङ्कुरकी रक्षा करते हैं। कंदोपरके पतले छिलके केवल रक्षाके काममें आते हैं और पुष्पोंकी पंखड़ियां केवल फल तथा बीज उत्पन्न करनेमें सहायक होती हैं, पर इन तीनों प्रकारके पत्रोंमें हरा रंग नहीं होता। पौदों वा वृक्षोंकी हरी पत्रावलीमें वह काम होता रहता है जो मनुष्यके शरीरमें जठराग्नि करती है। जो भोजन मनुष्य खाता है वह जठराग्निमें पचकर और रस बनकर शरीरके सब अंगोंका पोषण करता है। ठीक इसी प्रकार मूलद्वारा पत्तेतक पहुँचा रस और पत्रोंद्वारा खींचे हुए वायुमेंके पदार्थ पत्रोंके भीतर पचते हैं और वहींसे पौदोंके बढ़नेवाले अंगोंतक पहुंचते हैं। पत्तोंकी इन पाचन और श्वास क्रियाओंका निरीक्षण आगे किया जायगा। इस स्थानपर पत्रावलीके अंग प्रत्यंगके भेद विभाग और आकार आदिपर विचार किया जायगा।

पत्रोंके भाग

किसी पौदेके पत्रको लेकर देखो। बर्गदके पत्रमें दो भाग दिखलाई देंगे। एक भाग डंडीका है और दूसरा हरा चौड़ा भाग पत्रदलका है। डंडीवाले भागको वृन्त (petiole) कहते हैं। और हरे चौड़े भागको पत्रदल (lamima)।

चित्र १
बड़–उपमंडलाकृति

वृन्त

पत्रका वह भाग है जो

पत्रदलको प्रशाखासे जोड़े रहता है। वृंतकी आकृति कई प्रकारकी होती है। बर्गद्के पत्रमें वृंत शुद्ध और खुला होता है। परन्तु जब वृंत–भागपर वा वृंत पादपर पत्राकृति सी कुछ वस्तु लगी रहती है तब वह वृंतानुबन्ध (stipule) कहा जा सकता है। वृंतानुबन्ध कई प्रकारके होते हैं। गुलाबके वृत्तकी पत्र-डंडी अर्थात् वृंतको देखनेसे प्रकट होता है कि वृंतके नीचेके भागमें उसके दोनों ओर पत्राकृति सा कुछ लगा हुआ है। जबतक पत्र कली रूपमें रहता है तबतक वह अनुबन्धसे ढका रहता है परन्तु पत्रके बढ़ जानेपर अनुबंधभी बढ़कर वृंतके नीचेके भागमें लग जाता है। चित्र नं० २ में गुलाबके वृंतको देखो इस प्रकारका वृंतानुबंध पत्ताकृति (adnate) कहा जाता है।

चित्र २—गुलाब

मटरके पौदेके वृंतके पादपर दो पत्र जुड़े हुए से दीखते हैं। ये वृंतानुबन्ध हैं। आदिमें ये खड़े होते हैं और पत्रकली तथा छोटे छोटे पत्रोंको ढके रहते हैं। बढ़नेपर ये वृंतानुबंध फैल जाते हैं जिससे इनका सब तल सूर्यके प्रकाशके सामने हो जाता है। प्रकाशके कारण इन वृंतानुबन्धोंमें पत्रदलकी सी क्रिया होने लगती है। पत्राकार होने तथा वृंतपाद और कांड वा प्रशाखाको चारों ओर घेरे रहनेके कारण यह अनुबंध वृंतपादका परिवृंतानुबंध हो जाता है। गोमाके पौदेमें यह वृंतानुबंध पेड़ी वा शाखाके चारों ओर एक प्यालेकी सूरतमें दीखता है। ऐसा अनुबंध पत्राकृति (foliaceous) कहलाता है।

जो वृतांनुबन्ध आकारमें प्रतान सा पतला होकर सूत सा निकला रहता है जैसा चोबचीनीके पौदेमें होता है वह प्रतानानुरूप (tendrillar) कहलाता है। घास वर्गके पौदोंमें पत्रके नीचेका भाग पौदेको पेड़ीसे गिलाफकी नाईं लिपटा रहता है। पत्र जिस स्थानसे पेड़ीको छोड़ बाहर निकलता है उस स्थानपर एक छोटी झिल्ली जीभकी आकृतिकी होती है। यह असलमें पेड़ीका अनुबंध है जो पत्रके बग़लमें होता है। इसका नाम पट्टाकृति पत्रानुबंध (ligule) हो सकता है क्योंकि यह पत्र और परालकांडके बीच नसमेंका काम करता है। धानके पौदेमें पत्रके नीचेका भाग परालकांडके चारों ओर लिपटा रहनेसे और पत्रमें वृंत अर्थात् डंडीके न होनेसे पत्र ही परिवृत्तानुबंध वा कांडत्राण हो जाता।

अवृंतपत्र (sessile)

वे पत्र हैं जो पौदे वा वृत्तकी प्रशाखाओं टहनियोंसे चिपटे रहते हैं। इसका उदाहरण सप्तपर्ण (छतिवन) नामका वृक्ष है जिसके पत्र घूर्णाकृति (whorle) अर्थात् मडलके आकारमें पेड़ीसे लगे रहते हैं (चित्र नं० ३)। बनगोभीके आदि कालमें पेड़ी इतनी छोटा होती है कि सब पत्र एक ही स्थानसे निकले मालूम देते हैं और इन पत्तोंका मंडल सा बन जाता है। पत्रोंमें वृंतभाग नहीं होता इसलिए ये पत्र भी अवृंत कहे जाते हैं। इसी प्रकार प्याज़, लहसन, गोभी, मूली, आदिके पत्र भी वृंत रहित ही हैं। यदि इनमें वृन्त हैं भी तो इतने छोटे कि नहींके समान इसलिए पत्रके वृंतरहित कहना ही ठीक है।
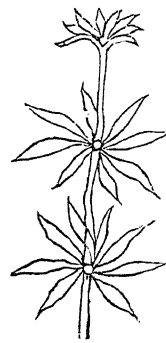
घूर्णक्रम

चित्र ३—सप्तपर्ण

करिहारी नामकी बूटीके पत्र भी कांडसे लगे हुए होते हैं क्योंकि पत्रमें वृंतभाग नहीं होता
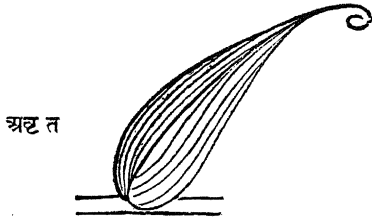
चित्र ४—करिहारी

इस कारण इसके पत्र भी अवृंत लक्षणवाले होते हैं। राई और पोस्तके पत्र भी अधो भागसे पौदेकी पेड़ी वा कांडसे जुड़े होते हैं।

पत्रदल

यदि पत्तोंके आकारका ज्ञान हो तो वृक्षोंके पहिचाननेमें बड़ी सुविधा होती है। प्रत्येक जातिके वृक्षके पत्तोंकी बनावट जुदा होती है, इसलिए एक जातिके वृक्षोंके पत्तोंके लक्षण दूसरी जातिके वृक्षोंके पत्तोंसे नहीं मिलते। वनस्पतियोंकी जाति पहचाननेकेलिए निम्नलिखित लक्षणों पर ध्यान दिया जाता है।

(१) पत्रोंका शिरा संगठन (venation)
(२) पत्रोंका आकार (form)
(३) पत्रोंके बाह्यप्रांत वा किनारे (margin)
(४) पत्र विभाग (division)
(५) संसृष्ट पत्र (compounded)
(६) पत्रदल–तल (surface)

शिरासंगठन

घास वर्गके पौदेके पत्रको लेकर देखनेसे जाननेमें आता है कि पत्रदलके नीचेसे लेकर पत्रकी नोकतक सब शिराएं समानान्तर (parallel) चली गई हैं पर पत्रकी नोकपर मिल जाती हैं इसलिए सन्निपाती (convergent) भी हैं। बांस, धान, घास आदिके पत्र बहुशिरासन्निपाती (convergent multicostate) शिराक्रम (venation) कहलाते हैं।

ताड़के पत्रमें शिराएं आधारसे निकलकर पत्रके फैले हुए किनारोंकी ओर जाती हैं। शिरा जालका नीम बहुशिरा केन्द्रापसरण क्रम (divergent multicostate venation) होता है।

जालक्रम (reticulate venation) - इस शिराक्रममें एक मुख्य और बड़ी शिरा होती है जिसमेंसे छोटी छोटी शिराएं शाखाकी नाईं दोनों ओर निकल किनारेतक जाती हैं। इन शाखा शिराओंसे सूक्ष्म शिराएं निकलकर फैल जाती हैं और जाल सा बना लेती हैं जिससे सब पत्रदल शिराजाल हो जाता है। वर्गद सागवान पीपल आदिके पत्र उदाहरण हैं। यह जाल पिच्छाकृति pinnate कहलाता है।

खीरा, पान, एरंड, कमल आदिके पत्रदलोंमें वृंतके मस्तकसे तीन, चार, पांच मुख्य शिराएं प्रारम्भ होकर पत्रदलके किनारेतक जाती हैं। प्रत्येक मुख्य शिरासे छोटी शिराएं भी निकलती हैं जो बीचके भागको भर देती हैं। यह शिराजाल करतलाकृति (palmate veined) कहलाता है। यह आकृति प्रायः उन पत्तोंमें होती है जो चौड़े विशेष होते हैं और जिनकी डंडीके पासका भाग गोल होता है।

पान

हृदयाकृति

चित्र ५—पान

पत्रका आकार

घास वर्गके पौदोंके पत्र और ईसबगोलके पत्र लम्बे पर अग्रभागपर नोकवाले होते हैं जिनको सूच्याकृति (acicular) कहते हैं।

जब पत्रदलकी आकृति मुर्गीके अंडेके आकारकी होती है अर्थात् आधार भागपर लम्बी होती है पर अग्रभागपर नोकदार होती जाती है जैसा कि काली मिरिचके पत्रमें देखा जाता है तो ऐसे पत्रकी आकृति अंडाकृति (ovate) कहलाती है।

पानके पत्रका आकार हृदयका सा होता है।

इसलिए यह हृदयाकृति (cordate) वाला कहलाता है। [चित्र ५]

मांडुकी और कुमुदिनीके पत्रोंके आकार गुर्देकी तरह होते हैं। इनको वृक्काकृति वाला (reniform) पत्र कहते हैं।

वृक्काकृति

चित्र ६—मांडुकी

वर्गदके पत्र उपमंडलाकृति (elliptical) होते हैं। (चित्र १) आम तिल, और नारङ्गीके पत्तोंके आकार एकसे दिखाई पड़ते हैं और वे आयताकार (oblong) होते हैं।
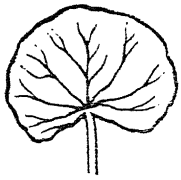
सीताफल देवदार तथा गोमाके पत्र लंबे पतले और अनीदार होनेसे वे शल्याकृति (lanceolate) आकारके होते हैं।

जब पत्रके पादपर दो भाग इधर उधर आगेको कानकी वूट की तरह निकले होते हैं और वे भोथरे होते हैं उस समय उनका नाम कार्णिक (auriculate) होता है। जब यह वूटका सा भाग अणीवाला होकर नीचेको निकल तीरके फलके रूपका हो जाता है जैसा कि अरुईके पत्रमें होता है तो ऐसे पत्रका नाम बाणाकार (sajitate) है। जब नोक नीचेको निकल दायें बायें चढ़ जाती है उस समय उसको फलाकृति (hactate) कहते हैं।

पत्रके वाह्य प्रांत

साधारणतः पत्तोंके किनारे सादे अर्थात् दांते रहित होते हैं ऐसे पत्र अखंडप्रान्त (entire) कहलाते हैं। कई प्रकारके वृक्षोंके पत्तोंके किनारे खंडित होते हैं जो चार प्रकारसे खंडित समझे जाते हैं। प्रथम वे पत्ते हैं जिनके अग्र गोल अखंड नहीं होते। दूसरे पत्तोंकी किनारे दनदानेदार होते हैं। तीसरे पत्तोंके किनारोंपर जहाँ तहाँसे गहरी फांक पड़ जानेसे पत्रमें कई भाग हो जाते हैं। चौथे पत्रोंके पादपर बूंटसी निकल आती है।

पत्तोंके अग्रभागको देखो नोक दार अग्रभागवाले पत्तोंमें पीपलके पत्तेकी नोक क्रमसे पतली होती हुई लम्बी होती है और नोक पतली होती है। ऐसी नोक शुंडाकृति (acuminate) कही जाती है। सेमर, कपास, नारङ्गीके पत्तेकी नोक बहुत लम्बी नहीं होती इस हेतु वह शितार्ग (acute) गिनी जाती है। सेमके पत्रमें नोक थोड़ी आगेको निकली होती है और कठोर भी होती है इसलिए वह कशेरुकाग्र (mucronate) कही जाती है। जब पत्राग्र भोथरी नोकका होता है तब वह तिलमटरके पत्तोंकी नोक सा होता है और अतीवाग्र (obtuse) होता है। पत्राग्रके आड़ा वा चपटा होनेसे वह लूनाग्र (truncate) कहा जाता है। वेरका पत्ता इसका उदाहरण है। कचनारके पत्रमें शिरोभागके मध्यमें नोक नहीं होती बरन गोलाई होती है और बीचमें गड्ढा होता है इस

चित्र ७—कपास
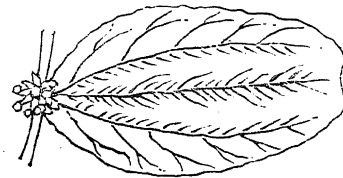
मंडलाकार

चित्र ८—वेर

हेतु वह मध्य निम्न (emarginate) अग्र है। चांगेरी वनस्पतिके पत्रकी सूरत व्यस्तहृदय (obcordate) जैसी होती है। करिहारीके पत्रकी नोक शुडाकार होनेपर भी उसमेंसे प्रतान निकली होती है और इसी कारण उसको प्रतानाकार (tendrillar) कहते है।

बहुतसे पत्तोंके किनारे दनदानेदार होते हैं। ये दंदाने अर्थात् दंत कई प्रकारके होते हैं। कुछके दन्त पैने सीधे खड़े होते हैं जो भांट नामके पोदेके पत्रमें पाये जाते हैं। कुछके दन्त आरीकी सी धार-

के पत्रकी नोककी दिशामें निकले हुए होते हैं जिन को अनुक्रकच (serrate) दन्त कहते हैं और ये गुलाब वृक्षके पत्रोंमें पाये जाते हैं। तीसरे प्रकार-के दांते वे होते हैं जो नोकदार होनेके स्थान कुंठित व गोलाई लिये होते हैं जैसा कि मांडुकी लताके पत्रमें देखा जाता है जिसके किनारे कुंठित-दंतके (crenate) कहे जाते हैं। जब पत्रप्रान्त दन्तवाली तो होती नहीं पर किनारेपर जहां तहां चौडे और कम गहरे गड़हे होते हैं. जिससे किनार भंग हो जाती है। ऐसी किनारी तुन पपइया सरसों आदिके पत्रोमें पाई जाती है और उसको कुंठिल (sinuate) कहते हैं। पत्रकी किनारी कटी होती है और फाड़ गहरी तंग और नुकीली होती है तो वह पिच्छाकार (pinnatified) होती है जैसा कि पोस्त जातिके कौर्न पापी (corn poppy) नामके पौदेमें होते हैं। किनारी पिच्छाकार होनेपर जब वे पिच्छें भी फिर विभाजित हो जाते हैं जैसा कि धनियेके पौदेके पूरे बढ़ जानेपर पत्र पतले शाखा प्रशाखा रूपमें देखे जाते हैं तो वे द्विरावृत्त पिच्छाकार (bipinnatified) हो जाते हैं जैसे धनियामें होता है।
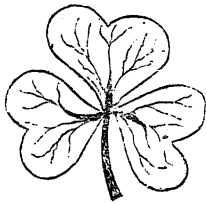
व्यस्त हृदय
चित्र ६—चांगेरी

किनारपरकी फाड़ गहरी उतरकर मुख्य पत्रशिराके पासतक पहुंचकर पत्रको जुदे जुदे भागमें बांट देती है और उन प्रत्येक भागमें शिराजाल जुदा ही वन जाता है पर सब भागों-की शिरा या तो वृंतशिरसे निकलती है वा मध्य-की मुख्य शिरासे निकलती है तो एसी स्थितिमें पत्र कई कार्णिक तथा पालि वा बूंटमें विभक्त हो जाता है जैसा कि ऐरंड पत्रमें देखा जाता है। इन पत्र विभागोंके कारण पत्रप्रान्त हस्तांगुल्याकार (digitately lobed) विभाजित गिना जाता है।

राखस पत्ता तथा घी कुआर की जातिके और पौदोंके पत्रोंकी किनारपर दोनोंके स्थान कांटे होते हैं जिस कारण वे किनार सकंटक (spinous) कही जाती हैं।

चुम्बकत्व

[ले० शालग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

(गताङ्कसे आगे)

पृथ्वीका चुम्बकत्व

पहले पहल १६वीं शताब्दीमें डाकृर गिलवर्टने (Gilbert) चुम्बकके झुकावको देखकर यह कहा कि पृथ्वी स्वयं ही चुम्बक है। उन्होंने एकगोलेको इस प्रकार चुम्वक बनाया कि व्यासका एक सिरा उत्तरी सिरा था और दूसरा सिरा दक्षिणी। दिक्सूचकका सा छोटा चुम्बक इसके भिन्न भिन्न भागपर लानेसे उसी प्रकार झुकता था जिस प्रकार झुकाव-सूचकका चुम्बक पृथ्वीके भिन्न भिन्न भागपर झुकता है। सिरोंपर बिलकुल सीधा खड़ा हो जाता था। लोगोंका मत था कि दिक्सूचकका चुम्वक उत्तर दक्षिण दिशामें इसलिए रहता है कि ध्रुव तारा उसको खैंचता है। डाकृर गिलबर्टके इस प्रयोगसे यह मत बदल गया और पृथ्वीके चुम्बकत्वकी खोज अधिक होने लगी। सं० १८५७ में हेलीने (Halley) पहले पहल सम हटाव-वाली रेखाएं नक़शेपर खेंचीं, इनकी शकल देखकर हैंस्टीनने (Hansteen) यह फल निकाला कि पृथ्वीके चार ध्रुव हैं, दो उत्तरी और दो दक्षिणी इनमेंसे दो प्रवल और दो दुर्बल हैं उनके स्थान हैंस्टीनके निकाले हुए नीचे दिये जाते हैं।

	शर	देशान्तर
प्रबल उत्तरी ध्रुव	७०°५' उ	६६° ७५' पू
दुर्बल "	८५°२१' उ	११८°३६' पू
प्रबल दक्षिणी ध्रुव	६६°२६' द	१३८ ३५' प
दुर्बल "	७७°१७' द	१२°५७' प

Physics भौतिकशास्त्र]

समकोणवाली रेखाएँ जहाज़के चलानेवालोंको लाभदायक हैं किन्तु पृथ्वीके चुम्बकत्वका हाल इनसे ठीक ठीक नहीं मालूम हो सकता है इसलिए ड्युपरेने (Duperry) चुम्बकीय याम-योत्तर खेंचे। जिन स्थानोंपर सब याम्योत्तर मिलते हैं वही ध्रुव होते हैं। परन्तु सब यामयोत्तर एक स्थानपर उत्तरमें और दक्षिणमें न मिलकर दो दो यामयोत्तर एक एक स्थानपर उत्तर—(दक्षिण) में मिले। इनके मिलनेके स्थानोंको मिलाती हुई जो रेखा खेंची गयी उसने एक बंद वक्र बनाया जिसका केन्द्र ध्रुव माना जा सकता था।

गौसने (Gauss) इसके बाद यह साबित किया कि पृथ्वीके दो उत्तरी और दो दक्षिणी ध्रुव तो नहीं हो सकते। यदि एकसे अधिक हों तो भी तीन होने चाहिएँ और यह तीसरा ध्रुव उन दो के बीचमें होना चाहिए और एक ध्रुवका स्थान भी रोसके पहुंचनेसे पहले अपने सिद्धांतसे निकाला। उनके निकाले हुए शर और देशान्तर नीचे दिये जाते हैं।

	शर	देशान्तर
उत्तरी ध्रुव	७३°३५' उ	९५°३९' पू
दक्षिणी ”	७२°३५' द	१५२°३०' प

यह ध्रुवोंके असली स्थानोंसे कितने मिलते जुलते हैं।

उनका सिद्धान्त तो बहुत कठिन है और पाठकोंके सामने किसी और समय रखा जावेगा परन्तु उसके तत्त्वोंको जानना आवश्यक है क्योंकि उनसे बहुत काम पड़ता रहता है। उसके तत्व थे शक्ति और अवस्था (potential) रेखाएँ।

किसी स्थानपर रखे हुए चुम्बकका असर जितनी हदतक और चुम्बकोंपर पड़े उस हदके अन्दरकी जगहको चुम्बककी चुम्बकीय शक्तिका क्षेत्र कहते हैं। इस क्षेत्रके अन्दर जो रेखाएँ इस प्रकार खेंची जावें उनको शक्तिकी रेखाएँ कहते हैं। चुम्बकको एक बड़े कागज़के टुकड़ेपर चुम्बकीय उत्तर दक्षिण दिशामें रक्खो। या तो तागेसे लटका हुआ एक छोटासा चुम्बक या एक छोटा दिक्सूचक चुम्बकके उत्तरी सिरेके पास एक स्थानपर रक्खो। छोटे चुम्बकके सिरोंके पास एक बारीक पेंसलकी नोकसे दो बिन्दु बना लो जैसा चित्रमें
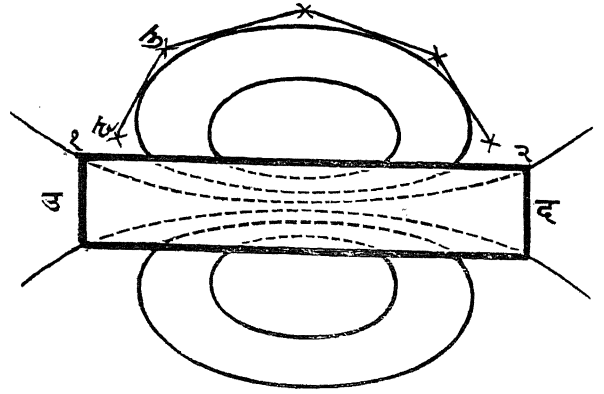
चित्र १

दिखलाया गया है। छोटे चुम्बकको इस स्थानसे हटाओ और दूसरे स्थानपर इस तरह रक्खो कि उत्तरी सिरेके सामनेवाला चिन्ह दक्षिणी सिरेके सामने हो जावे। इस स्थानपर चुम्बकको रखकर उत्तरी सिरेके सामने एक चिन्ह बना लो। चुम्बक-को दक्षिणी सिरेकी ओर हटाते चलो और इस तरह रखते चलो कि उत्तरी सिरेके सामनेवाला चिन्ह दक्षिणी सिरेके सामने आता जावे। जब रक्खे हुए चुम्बकके दक्षिणी सिरेके निकट पहुंच जाओ छोटे चुम्बकको उठा लो और चिन्होंको जोड़ती हुई रेखाएँ खेंचो। इसके बाद इन छोटी छोटी रेखाओंके बीचके बिन्दुपर स्पर्श करती हुई एक रेखा खेंचो यह शक्तिकी रेखा हुई। अब इसकी परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है।

शक्तिकी रेखा ऐसी रेखा है जिसके प्रत्येक विन्दुपर स्पर्श-रेखा शक्तिकी दिशा बतलावे।

शक्तिकी बहुत सी रेखाएँ क्षेत्रमें खींची जा सकती हैं जो चित्रमें दिखलायी गयी हैं। उत्तरी सिरा दक्षिणकी ओर और दक्षिणी सिरा उत्तरकी ओर बदलनेसे इनका आकार बदल जावेगा।

वास्तवमें इन रेखाओंका आकार ज़रासे परिवर्तन-से बदल जाता है। एक लोहेका टुकड़ा पास लानेसे कुछ और हो हो जावेगा।

चित्रमें छोटी छोटी रेखाएँ शक्तिकी रेखाकी स्पर्श रेखाएं हैं और जिस विन्दुपर खेंची गयो हैं उसपर शक्तिकी दिशाएं हैं।

इन रेखाओंसे समकोण बनाती हुई जो रेखाएं खेंची जावें उनको अवस्था रेखाएं (potential lines) कहते हैं। छोटे छोटे दिक्सूचकोंमें जो इन रेखाओंके खेंचनेके काममें आते हैं बहुधा एक छोटासा सूचक चुम्बकसे समकोण बनाता हुआ लगा देते हैं। जैसे चुम्बकसे शक्तिकी रेखा खेंचते हैं उसी प्रकार सूचकसे अवस्था रेखाएं खेंचते हैं।

इन रेखाओंका पूरा पूरा महत्व तो विना डाइ-नमो और मोटरोंकी बनावटका हाल जाने नहीं मालूम होगा। यहां इनके महत्वके संबंधमें इतना ही कहना काफ़ी है कि इनकी सहायतासे गौस पृथ्वीके ध्रुवोंका स्थान पहलेसे बता सके। ऐसा माना जाता है कि यह शक्तिकी रेखाएं उत्तरी सिरेसे हवामें निकलती हैं और दक्षिणी सिरेसे चुम्बकके अन्दर जाती हैं। यह कभी टूटती नहीं यह बंद और बे सिरोंवाली मानी जाती हैं। जैसे चित्रमें १से लेकर २ तक हिस्सा बाहर और २से लेकर १ तक हिस्सा लोहेके अन्दर है। बीचके थोड़ेसे हिस्सेपर रेखाएं हैं ही नहीं। यह हिस्सा चुम्बकत्व रहित मालूम पड़ता है। जैसा पहले देख चुके हैं इस हिस्सेमें लोहेके छोटे छोटे टुकड़े नहीं चिपटते हैं। जब यह रेखाएं बाहर निक-लती हैं तब चुम्बकत्व जान पड़ता है। रेखाओंके निकलनेको उनका विकीरण कहते हैं। बीचके हिस्सेमें विकीरण नहीं होता है।

उत्तरी या दक्षिणी सिरेके पास लोहेका टुकडा रखनेसे जो रेखाएं बहुत फैली हुई होती हैं इकट्ठी हो जाती हैं और यह टुकड़ा चुम्बकके जितना निकट होता है उतनी ही अधिक रेखाएं इकट्ठी अर्थात् घनी होती हैं। जो चार चुम्बकोंका एक चौखटा उनके विषमजातीय सिरे मिलाकर बनाया था और यह बतलाया था कि ऐसे चौखटेमें चुम्बकत्वका पता नहीं चलेगा, इसका कारण यह है कि ऐसे चौखटेमें बहुत कम शक्तिकी रेखाएं बाहर निकलेंगी। वह एकसे दूसरे दूसरेसे तीसरे तीसरेसे चौथेमें और चौथेसे पहलेमें चली जावेंगी और जिस चूड़ीमें रेखाएं अक्षके समानान्तर हों उसमें तो चुम्बकत्वका पता चलना बिना काटे बिलकुल ही असम्भव है।

लोहेके टुकड़ेको चुम्बकके स्पर्शसे चुम्बक बनाते समय उस टुकड़ेके बेतरतीब अणु चुम्ब-कोंको चुम्बककी शक्तिकी रेखाओंसे उनकी दिशामें फेर देते हैं और जितनी रेखाएं घनी होती हैं उतना ही चुम्बक प्रबल और जलदी बनता है। पृथ्वीसे चुम्बक बनानेकेलिए लोहेके टुकड़ेको झुकावसूचककी दिशामें रखकर हथोड़ेसे ठोकना चाहिए क्योंकि झुकावसूचक शक्तिकी रेखाकी दिशामें होता है और इस दिशामें छड़ रखकर ठोकनेसे अणु चुम्बक बहुत जल्दी शक्तिकी दिशामें आ जावेंगे।

ऊपरी दी हुई रीतिसे एक एक रेखा खेंचनी पड़ती है और जब क्षेत्रमें बहुतसी रेखाएं खिच जाती हैं तब उनका हाल मालूम होता है परन्तु एक शीशेके बड़े टुकडेपर चुम्बक रखकर और लोहेके छोटे छोटे टुकड़ोंको उसपर बुरककर एक ही दममें सबका अनुमान हो सकता है। यह छोटे छोटे टुकड़े शक्तिकी रेखाएं बनाकर चुम्बकके चारों ओर जम जाते हैं यदि शीशेको गरमकर कर ज़रा मोम उसपर फैला लें तो ठंडे होनेके बाद यह टुकड़े शक्तिकी रेखाओंके स्थानोंमें जम जावेंगे और सदैवकेलिए रेखाएं बन जावेंगी।

जो स्थान उत्तरी सिरेके निकट हवामें होते हैं वह उच्चअवस्थाके (at higher potential) माने जाते हैं और जितने उससे दूर होते जाते हैं उतनी ही उनकी अवस्था (potential) गिरती जाती है, यहां तक कि जो स्थान अनन्ततापर (infinity)

होता है उसकी अवस्था ० मानी जाती है। जितना काम एक इकाई प्रबलतावाले सिरेको अनन्ततासे एक स्थानपर निराकरणके मुक़ाबिलेमें लानेमें करना पड़ता है वही उस स्थानकी अवस्थाका माप होता है। हमको बहुधा दो स्थानोंकी अवस्था भेदसे काम पड़ता है। किसी स्थानकी अवस्था जानना बहुत आवश्यक नहीं। दो स्थानोंकी अवस्था भेद उस कामके बराबर है जो एक इकाई प्रबलतावाले उत्तरी सिरेको एक स्थानसे दूसरे स्थानतक निराकरणके मुक़ाबिले करना पड़ता है।

मदन-दहन

[ले० गोपालनारायण सेन सिंह, बी, ए.]

कॉलेज बन्द होनेपर गरमीकी छुट्टीमें हम दोनों भाई घर आये। रेलमें सो न सके थे, इसलिए नहा धोकर भोजनके उपरान्त घरके भीतर ही दो चार मित्रोंसे मिल मिलाकर सो गये। जब जगे, शाम हो गई थी। बैठकेसे बाग़में आये। पास ही मेंहदीकी टट्टियोंके बीच चबूतरेपर आराम कुरसियां बिछी थीं। एकपर लेट गया। छोटा भाई भूषण भी कहींसे घूमता फिरता आ पहुंचा। उसके चेहरेपर उदासी देखकर मैंने पूछा "बात क्या है?" बहुत दुखित हो कहने लगा "आप सुबहसे आये हुए हैं कुछ देखा भी है बाग़की क्या दुर्दशा है? हम लोग क्रिसमसकी छुट्टियोंमें आये थे तो इसीमें कितने तरहके फ़र्न, क्रिसेन्थमम, क्रोटन, गेंदे, गुलदाउदी, गुलाब, जटामासी चारो ओर लहलहा रहे थे। आज उनमें एक नहीं है। जिधर जाता हूं सूखी पत्तियां खड़ खड़ाती मिलती हैं। उनके जिलानेमें मैंने अपनी आधी छुट्टी गवाँ दी थी। जानता तो कभी उतना परिश्रम न करता। दादा, क्या यह उजड़ा हुआ बाग आपको डरावना नहीं मालूम होता।"

यों ही भूषण बड़बड़ा रहा था। इधर चांदनी छिटक आई थी, सिंचे बागकी क्यारियोंसे हवामें नमी फैल रही थी, उसीके साथ, मेंहदीके फूलोंसे भीनी भीनी धीमी मँहक दौड़ने लगी। मैंने कहा "भई भूषण, तुम क्या चाहते हो, तुम्हारे कहनेसे क्या ऋतु भी न बदले? अब गेंदे गुलदाऊदीका समय गया, मेंहदीके दिन आये।"

भूषणने कहा वाह, "मेंहदी भी कोई फूलमें फूल है!"

मैंने कहा "इसे जाने दो, वह देखो, क्यारियोंमें रजनीगंधाका हलका सौरभ उठ रहा है, बेला मोगरा शोर कर रहे हैं, झाड़ियोंके पार बिचारा परदेसी गुलचीन अपनी मिठास छोड़ रहा है।" भूषणने कहा "आप ग्रीष्मकालके फूल तो बहुतसे गिना गये पर उनमें किसीमें रूप रंग भी है।" मैं कुछ सोचने लगा। भूषणने कड़ककर कहा "कहिये हार मानते हैं।" मैंने कहा "कैसे?" भूषण बोला "जब अपनी बारी आती है तो ऐसे ही देरसे समझते हैं। गरमीके फूलोंमें आप कोई शोभा और सुन्दरता पाते हैं?" मैंने कहा "इसकी ज़रूरत ही क्या है। इन दिनों जितने फूल होते हैं उनके क़लम लगाये जाते हैं। बीजसे नहीं उगाये जाते। फिर सुन्दरता और शोभासे क्या काम?" भूषणने कहा "आप कह क्या गये? फूलोंमें रंग और सुन्दरता न होने और पौधोंके क़लम लगानेसे क्या सरोकार? क्या वही मसल है कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा।" मैंने कहा "बात सीधी है। प्रकृतिमें कोई चीज़ बेकार नहीं होती। जाड़ेके फूलोंमें रंग मतलबसे होते हैं, जब वह मतलब पूरा हो जाता है रंग भी उड़ जाते हैं। गरमीके दिनोंमें फूल और सबज़ीके बढ़ने और फैलनेमें वह मतलब नहीं होता, इसीलिए फूलोंपर रंग नहीं दिखाई पड़ता, फूल बहुधा सादे होते हैं।" भूषण ने कहा "बतलाइये फूलोंपर रंगके होनेसे क्या मतलब है।" मैंने कहा "फूलोंमें कुछ नर होते हैं और कुछ मादा, जैसे फूल हुए वैसीही उसमें गर्भ

केसर होती है। जबतक तरह तरहके फूलोंकी केसर और शहदका मेल नहीं होता फल नहीं लगता और बीज भी नहीं पैदा हो सकता। कभी तो दोनों मेलके फूल एक दूसरेके निकट ही होते हैं और कभी दूर दूर। उनको एक करनेकेलिए चीटियों, मक्खियों और तितलियोंकी ज़रूरत होती है। पर यदि फूलोंपर रंग न हो तो ये तितलियां या मधुमक्खियां उनपर बैठें नहीं। रंगकी शोख़ी और भड़कसे ही वे उनकी ओर खिंचती हैं और तब भिन्न भिन्न फूलोंके पराग और मधु एक होते हैं और इस प्रकार प्रकृतिका काम चलता है।" भूषण ने कहा "प्रकृति बड़े धोखेसे काम लेती है। दिनमें बिचारी मधुमक्खियां हज़ारों लाखों फूलोंके पराग ढो ढोकर यहांसे वहां किया करती हैं। कभी कभी कांटोंमें भिद जाती हैं, चिड़ियोंका शिकार हो जाती हैं, और नहीं तो इसमें अपनी छोटी सी जिन्दगी ही व्यतीत कर बैठती हैं। इधर प्रकृतिका मुफ़्तमें काम बनता है। फूलोंका रंग क्या है एक बड़ी माया है, इन क्षुद्र प्राणियोंकेलिए एक भ्रमजाल है।"

मैंने कहा "केवल इन्हीं प्राणियोंकी बात नहीं, संसारके जितने जीव हैं सबसे प्रकृति इसी तरह अपना काम साधती है। सीधे सीधे कोई किसीका काम नहीं करता। आवश्यक कार्य, धर्म वा कर्तव्य समझकर भी लोग उनका सम्पादन न करते और विशेषकर एक ऐसा काम जिसपर संसारका चलना निर्भर है मनमौजी आदमियोंकी इच्छापर नहीं छोड़ा जा सकता, इसीलिए प्रकृति पहले जीवोंको रंग, रूप, गन्ध वा मधुर शब्दसे लुभा लेती है फिर उनसे काम बनाती है। यदि ऐसा न हो तो अंडज, स्वेदज वा पिण्डज किसीकी सन्तति चले ही नहीं।"

भूषणने कहा "मधुमक्खियों और तितलियोंको लुभाकर उनसे काम लेनेकी बाततो समझमें आई। किस आकर्षणद्वारा प्रकृति दूसरे प्राणियोंका संयोग कराती है इसका भी कुछ हाल मालूम है?"

मैंने कहा "यह कोई गूढ़ बात नहीं है, इसी साल तुमने कौलेजके मैदानमें सेंमरका (शाल्मली) वृक्ष देखा होगा। पत्ती उसमें एक न थी पर जड़से सिरेतक वह सिन्दुरिये फूलोंसे लदा था। उसपर झुण्डकी झुण्ड बुलबुलें बैठा करती थीं। ध्यानसे देखते तो जान पड़ता कि उनमें नरके चोटी होती है, पूंछके नीचे लाल लाल बूंदें होती हैं, फुदकता भी वह बहुत है, और मादा बिलकुल सादे परकी होती है उसमें कोई विशेषता नहीं रहती। वही हाल नीलकंठ, पपीहा और मयूरका है। मयूरीके तुमने पूछ कभी न देखी होगी, वह छोटी और सुस्त भी होती है, पर मयूरका पुच्छल और उसमें रंग विरंगी हज़ारों आंखवाला पंख, दो दो हाथ लम्बा होता है, उसके सिरका मुकुट भी बहुत सुहावना होता है। बात यह है कि पशु पक्षियोंमें प्रायः मादासे नर अधिक सुन्दर होता है, इसीसे नर मादाको रिझाता है। परन्तु इसकेलिए और भी सामान है; जैसे चिड़ियोंका चहकना और गाना, मृगके नाभीकी कस्तूरी और उसकी कोसोंतक जानेवाली सुगंध, हिरनके सींघ सांड़ वा शेरका पुश्ता (manes) ये सब मादाको लुभानेकेलिए हैं। चिड़ियोंमें जिस नरके पंख अधिक चटकीले होते हैं वह घने पत्तियोंके बीच किसी डालपर भी छिपा हो तो मादा ढूंढ उसके पास जा बैठेगी। जिस बारह सींघेके सबसे अधिक छड़दार सींघ हैं उसके पीछे मृगियां आपही हो लेंगी। मछलीयोंमें जिस नरके अधिक चमकदार (fins) पक्ष होंगे, उसे मादा मछलीयां घेरा करेंगीं। जिस सांडके पुट्ठे भरे होंगे उसीसे गायें प्रसन्न रहेंगी। बहुत करके पशु पक्षियोंमें नरका सुख मादाके रिझानेके कला कौशलपर निर्भर है। इस कलामें जितना ही निपुण जो जीव होता है उतने ही उसके संगी साथी होते हैं, दाना पानीमें सुभीता होता है, लड़ाई भिड़ाई कम करनी पड़ती है। यह निपुणता पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती ही जाती है, अर्थात् जिस सुन्दर नरने अपनी सुन्दरताके कारण सहजमें

ही मादा ढूंढ़ ली है उसका बच्चा भी सुन्दर होगा बच्चा अपने जीवन कालमें उसी तरह मादा ढूंढ़नेका यत्न करता है और अपनेको खूब सँवारता है, इस कोशिश से उसकी सुन्दता और बढ़ जाती है और जब उसका किसी मादासे मेल होता है तो उससे भी अधिक सुन्दर बच्चा पैदा होता है। परम्परासे इसी प्रकार उस जानवरके बच्चे जन्मसे ही चतुर और दर्शनीय होते जाते हैं। कुछ वैज्ञानिकोंका कहना है कि चुन चुनकर योग्य नरके योग्य मादासे जोड़ खानेके कारण ही उनकी नस्ल अच्छी होती है वह वृद्धि और विकासको प्राप्त होते हैं। यह भी कहा जाता है कि चूंकि नरमादेके परस्पर आकर्षण, तथा एक दूसरे-का मन मोहनेके निमित्त सजधज और प्रेम व्यवहार उनके संगमके कारण है इसलिए यही विकासके प्रधान कारण हैं तथा इस विषयमें हुशियारी जीवनमें सफलता प्राप्त करनेका मुख्य मार्ग है।"

भूषणने कहा "इससे तो सिद्ध है कि प्रेमपाश फैलानेमें जो सबसे आगे हैं तथा अपने लिए वहू ढूंढने और उसे राज़ी करनेमें जो सबसे तेज़ हैं वही सबसे अधिक बुद्धिमान और भाग्यशाली हैं। और जो इस काममें ढीले हैं वह निरे मूर्ख और अभागे हैं। संसारमें उनकी कोई गिनती ही नहीं।"

मैंने कहा "जल्दी क्यों करते हो। मैंने अभी एक पक्षकी बात कही है, ज़रा और सुनो"। भूषण चुप हो गया। मैं कहने लगा "जीव विज्ञानके आदि आचार्य डारविनने (Darwin) कामिक विचय (sexual selection) नामक अपने सिद्धान्तमें इसी मतकी पुष्टि की है पर दूसरे विद्वानोंने जिसके मुखिया वैलेस (Wallace) थे इसका बड़े ज़ोरसे खण्डन किया है। वह कहते हैं, कामिक विचय, प्राकृतिक विचयकी एक शाखा है। इसका अर्थ यह हुआ कि संसारमें मनुष्य सुन्दर स्वस्थ और चतुर स्त्रीका पाणिग्रहण करनेमें सफल होनेके ही कारण अपने गुणोंकी वृद्धि नहीं करता वरन् साधारण रूपसे अपने और गुणोंमें उन्नति करनेके कारण ऐसी कन्या-वरणमें सफल होता है। इसी बात-को दूसरी तरहसे समझ सकते हो। तुम जानते हो कि जीव अपनी परिस्थितिपर विजय प्राप्त करके विकासको प्राप्त होता है अर्थात् जिस स्थान-पर उसका जन्म होता है और जैसे देश काल और समाजमें उसका जीवन व्यतीत होता है उसका स्वभाव वैसा ही रंग पकड़ता है। अब यह समझ लो कि मनुष्यके ऊपर उसके इर्द गिर्द-के जल-वायु, अन्न, और संगितका इसलिए प्रभाव पड़ता है कि वह उनसे पलता है। ठीक इसी तरह वह उन स्त्रियोंके वशीभूत होकर उन्नति करता है जो उसके आसपास होती हैं और जिनको अपने वशमें करनेके-लिए वह जीजानसे प्रयत्न करता है। पुराने वैज्ञानिकोंका मत है कि पुरुष स्त्रियोंसे अधिक तगड़ा, खूबसूरत और जोशीला होता है क्योंकि परिणयमें सफलताके कारण उसके पुरखों-के शरीरमें यह गुण आ गये थे। वर्तमान समयके वैज्ञानिकों का कथन है कि पुरुषोंके रूप और रसिकता उनके पुरुषत्वके कारण देखनेमें आते हैं अर्थात् उनके अधिक उत्साही और उद्योगी होनेके कारण दिखाई पड़ते हैं। नतीजा यह निकला कि प्रेम व्यवहार और प्रियरञ्जनमें कुशलता मनुष्यके विकास और उन्नतिके प्रधान कारण नहीं हैं, वे गौण हैं, उसमें प्रधान कारण उनका पुरुषार्थ और उद्योग है जिससे क्रमशः वे थोड़ा सम्पन्न होते हुए संपूर्णता प्राप्त करते हैं।"

भूषणने रोककर पूछा 'गौण कारणका क्या तात्पर्य है, मनुष्यके विकासके गौण कारण तो अगणित हैं। जैसे और कारण हैं वैसेही क्या यह काम चेष्टा भी है?" मैंने कहा "नहीं, संसारमें जो कुछ भी हो रहा है उसके दो ही आधार हैं, कामिनी और कञ्चन, इन दोनोंमें बड़ी ज़बरदस्त शक्ति है, इन्हींके प्रतापसे जगत बसा हुआ है

जिस दिन इनमें गड़बड़ी अधिक हो जायगी प्रलय उपस्थित हो जायगा। बस दुनिया दुनियदारी-तक है। जीवनमें जो कुछ खींचतान देखते हो चाहे पेटकेलिए या औरतकेलिए है। जब यह बात है तो तुम समझ सकते हो कि पुरुषोंका स्त्रियोंकेलिए और स्त्रियोंका पुरुषकेलिए कितना प्रबल आकर्षण होगा। तुमको स्मरण होगा अभी मैंने मधुमक्खियोंकेलिए फूलोंके रंग और गन्धके आकर्षणकी चर्चा की है। यदि वह आकर्षण न हो तो भूलेसे भी कोई मधुमक्खी वा चींटी फूलोंपर न जाय। यही बात स्त्री पुरुषकी है। रूप लावण्य, कोमल व्यवहार और कमनीयताके कारण ही दोनों प्राणियोंका समागम होता है तथा मनुष्य योनिकी परम्परा चलती है। मधुमक्खियों और पुरुषोंमें भेद इतना है कि मधुमक्खियोंको यह नहीं जान पड़ता कि वह क्या कर रही हैं। वह आप ही आप फूलोंकी ओर खिंच जाती हैं तथा फूलोंके गर्भाधान का (fertilization)काम करने लगती है। इधर मनुष्य चाहे रूप गुणसे कितना ही बशीभूत हो जाय पर उसे इतनी सुध बुध रहती है कि हमें क्या करना चाहिये, हम क्या कर रहे हैं। छोटे जीवोंमें भीतरसे एक अन्ध आवेग आता है जिसको उन्हें मानना ही पड़ता है। मनुष्य तर्क और बुद्धिसे काम लेता है और वह नियत और अनियत कर्मका ध्यान रखता है। मधुमक्खीकेलिए एक खिले हुए गुलाबपर न बैठना और उसके पाससे उड़ते हुए निकल जाना असंभव है। उसपर बिना चूक प्रकृतिका जादू चल जाता है पर सोच और विचारसे काम लेने वाले मनुष्यकेलिए रूप यौवनकी भ्रांतिसे बच जाना असंभव नहीं है। उसको खूब मालूम रहता है कि इससे बेगार करानेकेलिए प्राकृतिने राहमें कहां कहां जाल और फन्दा बिछाया है। इसीलिए वह मोहमें नहीं पड़ते। ठांव कुठांवका विचार त्यागकर वह एकाएक विवाह बन्धनमें नहीं पड़ सकते। इसका भार वह अपने ऊपर तभी लेते हैं जब वह दिलमें ठान लेते हैं कि सन्तानोत्पत्ति करके पितृऋणसे मुक्त होनेका समय आ गया और हम इस कामकेलिए पूर्णरूप समर्थ हो गये। विख्यात दार्शनिक शोपेनहोरने इसी सूत्रपर विवाहके सिद्धांन्तकी बड़ी गम्भीर और ललित व्यवस्था की है जो पढ़ने योग्य है।

भूषण—"छोटे जीवों और मनुष्योंमें कोई और अंतर भी है?

मैं—" हाँ, छोटे जीवोंका व्यवहार स्वाभाविक होता है। प्रकृतिको उनसे जितना काम लेना है उतना ही वह कलियोंमें मनहारी रंग और गंध दे देती है, इसलिए मर्यादाके भीतर ही वे जीव काम करते हैं। उसमें लिप्त होकर वह अपनेको सहसा नष्ट नहीं कर बैठते। इसके प्रतिकूल मनुष्ययोनिमें स्त्री पुरुषकी परस्पर सहज और ईश्वर प्रदत्तअनुरक्ति सीमाके भीतर ही नहीं रहती, उसमें दोनों ही व्यक्ति हाव भाव, शृंगार और बाहरी बनावटके द्वारा आहुति डालकर बड़ा उपद्रव मचाते हैं। मनुष्य समाजके भ्रष्ट होने और उसका दिन दिन नीचे ही गिरनेका यह बहुत बड़ा कारण है कि स्त्री पुरुषमें उनकी अपनी उद्दीप्तकी हुई अतिशय कामासक्ति (abnormal sex tendency) काम कर रही है। एक तो करेला दूसरे नीम चढ़ा—मनुष्यके शरीरमें साधारण रीतिसे कामाग्नि कम नहीं है वे एक दूसरेको देखते ही लुभा जाते हैं उसपर वस्त्र आभूषण, इत्र फुलेल, चटक मटकके मारे बुरी दशा रहती है।

"पुरुष जब जीविकाकी चिन्ता किया करते हैं स्त्रियोंको अपने वेश भूषाका ही ध्यान रहता है। खैर,इससे स्त्रियोंका तो काम बन जाता है क्यों कि मजाल क्या कि पुरुष उनसे उदासीन रह जायं। स्त्रियोंकेभड़कीले शृंगारके कारणपुरुष इतने कामांध और व्यसनीहो जाते हैं कि जो ३५सालमें मरनेवाले थे वे गरीब २५ ही सालमें अपनी जीवन-लीला समाप्तकर डालते है। पण्डित, पाधे और सुधारक बहुतचिल्लाते हैं, कोई कहता है आजन्म ब्रह्मचारी

रहना चाहिये, कोई कहता है बालविवाह रोकना चाहिये, कुछ ऐसे भी हैं जो बालविवाहकी प्रशंसा करते हैं तथा बाल विवाह करनेकी बुद्धिमानी अलापते हैं। असल बुराईको कोई नहीं देखता। स्त्री पुरुषमें स्वाभाविक सौन्दर्य जितना है वही बहुत है, उसपर सभ्यता और रसिकताके नाम रंग चढ़ानेकी ज़रूरत नहीं। शरीरकी बनावट और उसकी आवश्यकतानुसार जितनी भूख लगती है मनुष्य उतना ही आहार करके पुष्टि और स्वास्थ्य लाभ करता है पर नमक सुलेमानीको दिन रात सेवन करके यदि वह अपनी क्षुधा पहलेसे पचगुनी बढ़ा भी ले तो क्या वह उसकेलिए कल्याणकर होगी ?"

भूषणने कहा "भाई साहब, यह सब तो हुआ, पर आपने भांग तो नहीं खाई है। आपने आज विवाह संस्कारादि सबका खंडन कर डाला। भौंरे, तितलियों और मक्खियोंके दृष्टान्त लेकर प्रेम, रसिकता, भावुकता सबको निरे धोखेकी टट्टी बतला गये। यदि आपका कहना सच है तो मनुष्य अपनी इच्छाके विरुद्ध ही स्त्रीका पाणिग्रहण करता है, प्रकृतिके छलमें आकर गृहस्थीमें प्रवेश करता है, हम सब लोगोंने दैव संयोगसे जन्मधारण किया है। विवाह करना अनिवार्य नहीं है। मनुष्य प्रकृतिके प्रपंचका पता पाकर उससे अपना पीछा छुड़ा सकता है। कहिये मैं आपका आशय ठीक ठीक समझ रहा हूं कि नहीं।"

मैंने कहा "सुनो, तुम बिलकुल लड़के हो इसीलिए ऐसी बातें करते हो। तुम्हारी एक बातका जवाब देता हूं बस तुम्हारे सब सन्देह दूर हो जायंगे। मनुष्यकेलिए विवाह करना अनिवार्य है और नहीं भी है। मनुष्यके शरीरमें दो क्रियायें होती रहती हैं, एक वृद्धिकी (anabolic) दूसरी क्षयकी (katobalic) ; जबतक मनुष्यके देहकी पुष्टि होती जाती है तब तक इन दोनों क्रियाओंका योगफल, वृद्धिकी (anabolism) ओर झुकता रहता है, इसके विपरीत जब शरीर छीजने लगता है तो उसमें इन दोनों क्रियाओंका योगफल क्षयकी ओर (katabolism) झुकता रहता है। मनुष्यके जीवनमें एक ऐसा समय आता है जब शरीरका पोषण हो चुकता है और उसकी वृद्धि बिलकुल शिथिल हो जाती है बस वही समय है जब संतानोत्पत्तिकी ओर अग्रसर होना चाहिये है। प्रकृतिके हर एक विभागमें यही सामञ्जस्य देखनेमें आता है। वृक्ष वनस्पति पहले खूब फैलते और हरे भरे होते हैं फिर ज्योंही उनका बढ़ना बन्द हुआ कि उनमें फूल आने लगते हैं और भविष्यतमें उनका अस्तित्व बनाये रखनेका प्रबन्ध शुरू हो जाता है। इसमें दो बातें आती हैं। पहले अस्तित्व और व्यक्तिगत वृद्धि, फिर जब जीवनकी अवधि पूरी होनेको हुई तो आगे अपनी जातिका नाम निशान कायम रखनेका सामान। यह दोनों काम एक साथ नहीं होते। सिलसिलेसे एकके बाद दूसरा, देखनेमें आता है। यह भी निर्विवाद है कि अपनी वृद्धि और (nutritive and vegtative function) उन्नति तथा संतानकी (multiplying reproductive function) उत्पत्ति और प्रजाकी वृद्धिका कार्य एक दूसरेके बिलकुल प्रतिकूल हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि इन दोनों कामोंमें बैर (antithesis) है। वृक्षोंमें फूल आनेका एक समय होता और पत्तियोंके फैलनेका दूसरा। जब फूल आने लगते हैं पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं। बारहमासी वृक्षोंमें भी उनकेलिए अलग अलग समय होता है। बाग़के जो वृक्ष केवल हरियालीकेलिए लगाये जाते हैं उनमें अच्छी खादके साथ साथ पूरी सिंचाई होती रहती है और यदि फूल दिखलाइ देने लगते हैं तो उन्हें बीन बीन कर माली झट तोड़ डालता है। इसके उलटा फूलवाले वृक्षोंमें ऐसी खाद छोड़ते ही नहीं कि उनमें पत्तियां फैलें, जो पत्तियां आप ही आप उगती हैं उन्हे भी माली तराश डालता है। अभिप्राय यह है कि जो रस व्यर्थ डाल और

पत्तियोंमें सूखता उससे भी फलही की फ़सल बढ़ती है। ठीक इसी तरह संतानोत्पत्तिका मार्ग रोक देनेसे जीवका सारा अंग पुष्ट होने लगता है। पर कबतक जबतक जीवके शरीरका विकास उसकी जातिके शरीरके विकासकी चरम सीमा-तक नहीं पहुंच जाता। बस इसी हदतक हम कह सकते हैं कि विवाह और गर्भादानकी क्रिया अनि-वार्य नहीं है, अर्थात् इससे मुख मोड़कर भी मनुष्य स्वस्थ, प्रसन्न और क्रियावान हो सकता है, उतना ही नहीं जितना वह विवाह और गृहस्थीमें पड़नेपर हो सकता था बलकि उससे भी बढ़कर, यदि ऐसा न होता ता संयम करनेका कोई महात्म ही नहीं था। पर जब किसी व्यक्तिने औसत रूपसे अपने-लिए बल बुद्धि और विद्या उपार्जन कर ली है तब उसके पश्चात संयम करनेमें लाभके स्थानमें हानि ही देखनेमें आवेगी और वह सब प्रकारके भय और उदासीनतासे घिरा रहेगा। मैं तुम्हे एक कविकी उक्तिमें एक गूढ़ वैज्ञानिक सिद्धान्तका परिचय कराता हूं। किसी ने कहा है-फला फुला सो झड़ा बुताना। संसारमें स्थावर, जङ्गम जितने भी जीव देखते हो उन सबकी एक दिन मृत्यु निश्चय है। गोएटे (Goette) महाशय तो कहते हैं कि जिस दिनसे वृत्त बनस्पतिमें फूल और बीज आने लगते हैं और दूसरे जीव बच्चे पैदा करने लगते हैं उसी दिनसे उनकी मृत्यु आरम्भ हो जाती है। कीड़े, पतंगे, तितलियां, टिड्डियां और दूसरे त्तणभंगुर जीव तो अंडे देनेके बाद ही मर जाते हैं। इस कामसे उनमें इतनी हरारत आती है कि न केवल मादा बलकि नर भी मर मिटता है। नरमें त्तयकी प्रवृत्ति (kotabolic tendency) पहलेसे ही रहती है, जोड़ खानेके बाद उसका दम निकल जाता है। बाज़ केकड़े और मकड़ोंका यही हाल होता है। तुमने पुराने घरोंमें प्रायः जालेके ऊपर मरे मकड़ोंको टँगा हुआ देखा होगा। मेरे विचारमें तो बड़े बड़े दीवानखाने और बैठकोंमें भी एक दो ऐसे मकड़े हों तो वे हज़ारों रुपयेके तैल—चित्रोंसे (oil paintings) बढ़कर ज्ञान और शिक्षा दें और इस बातको सदाकेलिए हमारे चित्तपर अंकित करदें कि संतानोत्पत्ति कोई खिलवाड़ नहीं है—उसमें अपने प्राणतक निछावर करने पड़ते हैं, स्वार्थ-त्यागकी वह पराकाष्ठा है। यह जान बूझकर हम लोगोंको इस काममें हाथ लगाना चाहिये। पर सोचनेकी बात है कि जब अपनी मृत्यु निश्चय है तो इससे भविष्यतकी सन्तति क्यों न तैयार की जाय, और इस प्रकारसे अपना जीवन अमर कर दिया जाय—जातस्यहि ध्रुवं न्म ध्रुवोजन्म मृतस्य च। इसीलिए बुद्धिमानी इसीमें है कि एक नियत समयके बाद विद्या सौजन्यता और शारीरिक संगठनके उपरान्त मनुष्य गार्हस्थ जीवनमें प्रवेश करे। पश्चिमी देशोंमें जहां पुनर्जन्म वा आत्मा-की अमरता इत्यादिपर लोगोंका विश्वास कम है लोग अपनी संतानके द्वारा ही भविष्यतमें अपना अस्तित्व बनाये रखनेपर संतोष करते हैं। स्वाधीन विचारवाले (freethinkers) इसी आधारपर संसारमें काम करने और अपने जीवन से इतिहासमें परिवर्तन डालनेका विश्वास रखते हैं।"

भूषणने कहा "यह ठीक है, पर मैं एक और बात सोच रहा हूं, और वह यह कि यदि हमें विवाह और संतानोत्पत्ति इसलिए करनी चाहिये कि एक अवस्थाके बाद चाहे हम विवाह करें या न करें शरीरसे शक्ति निकलही जाती है और यदि इस शक्तिका सदुपयोग गृहस्थीमें हो सकता है तो कमसे कम जबतक वह अवस्था नहीं आती तबतक तो अपनी शक्ति सामर्थ्यसे दूसरे काम निकाल लें और फिर जब निरुपाय हो जांय तो अधेड़ उमरमें विवाह कर लें। आप क्या कहते हैं?"

मैं—"हां, यह भी सही है। इसमें एक और बात है। मैंने ऊपर बतलाया है कि मनुष्यके शरीरमें त्तयका ज्वार (tide) आया करता है और

यदि युवकोंकी उचित शिक्षा और दीक्षा हो तो उस ज्वारसे ३०, ३२ वर्षतक छुटकारा मिल सकता है। इतने दिनोंतक वे निष्कण्टक रहकर व्यक्तिगत कार्य कर सकते हैं। इसके बाद भी ज्वार नियत समयपर ही आया करता है। अर्थात २४ घंटेमें रातके समय और महीनेमें चतुर्दशी वा पूर्णिमाके दिन क्षयका ज़ोर रहता है। तब देखना है कि जहां तक हो क्षय कम हो और हो भी तो ऐसे मार्गसे कि अपने मन आचरणपर कोई बुरा प्रभाव न पड़े और समाजमें अपनी स्थिति ख़राब न हो। क्षयकेऐसे मार्गसबको मालूम है। पहला कठोर व्यायाम वा देश-भ्रमण, दूसरा सत्संग, तीसरा किसी महान उद्देश्यमें जी तोड़ परिश्रम चौथा संगीत सेवा, पांचवा ईश्वर भजन। पर यह स्मरण रहे कि इन साधनोंद्वारा क्षयका रोकना भी साधारण आदमीका काम नहीं है। बड़े उच्च कोटिका मन और हृदय जब होता है तभी यह निभता है। अन्यथा जीवनमें गड़बड़ी आनेका भय रहता है।

यदि निष्कपट रूपसे संसारहीकी दृष्टिमें नहीं, बलकि अपनी दृष्टिमें भी मनुष्य अनिन्दित जीवन व्यतीत कर सकता हो तभी इस रास्तेमें आना चाहिये। यह सब झगड़े सहन करनेकेलिए उसी समय तैयार होना चाहिए जब दृढ़ विश्वास हो कि हमारेलिए स्वतंत्र और एकान्त जीवन आवश्यक है। अविवाहित रहकर हम संसारमें ज्यादे काम कर सकेंगे, अपने देश और जातिका अधिक उपकार कर सकेंगे, यदि ऐसा नहीं है तो व्यक्तिगत जीवनसे कोई लाभ नहीं है। हम लोग सभी समाजके अनन्त लहरमें एक बुलबुला मात्र हैं, कुछ दिनोंके बाद इसीमें लीन हो जाना है। यदि इस अगाध मानवसागरके कर्कश गर्जनमें हमारे क्षुद्र जीवन स्वरसे कुछ मंजुलता आ सकती है, यदि उसके खारेपनमें मधुरता आसकती है, उसकी क्षुब्धता और कल्लोलमें शान्ति आ सकती है तो क्यों न हम उसमें उस सरित शायी-विष्णु भगवानके नाम कूद पड़ें और मोक्ष लाभ करें! किसी प्रकार चाहे अपने मनसे या इसके विरुद्ध उसी सागरमें हमे शरण लेनी है। यदि यह हम लोगोंके विचारके अनुकूल न हो तो अलग ही हम अपने छोटेसे जीवनको श्रेष्ठता और विभव दें, मनुष्यकी संख्या न बढ़ाकर उसके भाव और गुणमें योग दें, अपनी जातिके विस्तार और लम्बाई चौड़ाईकी परवाह न कर उसकी गहराई और तत्वकी ओर ध्यान दें, स्पष्ट तो यह है कि बाल बच्चोंकी गणना न बढ़ाकर हम अपने और अपने देशके बच्चोंकी शिक्षा और सम्हाल का ही भार ले लें, उनके बड़े होनेपर उनके विचार और आदर्शको मोड़नेका बीड़ा उठा लें। पर व्यस्त होकर काम करना चाहिये, चाहे इस छोर वा उस छोर। काम भोगमें लिप्त होकर नहीं, चैतन्य होकर जीवन यात्रा करना बुद्धिमानी है,

---

बीजज्यामिति

[ले० ब्रजराज बी., एस-सी., एल-एल., बी.]

गरमीके दिन हैं, कमरेके बाहर निकला नहीं जाता। कड़ी धूप, गरम हवाके झोंके अरबके रेगिस्तानोंका ध्यान दिलाते हैं। कमरेके भीतर ही पड़े रहें; फिर भी चैन कहां? उमस ऐसी है कि खाया पिया पसीना होकर बहा जा रहा है। भला ऐसी ऋतुमें कोई काम कैसे कर सकता है। तिसपर लेख लिखना—बस, परमात्मा ही बचावें। हमारी शक्तिके तो बाहर है। पर क्या ऐसे जान छूटेगी? करनेका काम किये ही पूरा होता है। दिन यों ही बीते जाते हैं, जो काम अपनेसे बन जाय वही ठीक। गरमीसे हो डरकर ढीले पड़ गये तो आगे क्या आशा की जाय। देशके प्रेमी नेता गण तो स्वाराज्यकेलिए प्रयत्न

Mathematics गणित विद्या]

कर रहे हैं। हमारे जैसे आलसी दो चार और मिल जायं तो बस। भारतवासी जो आलसी बने रहे तो भला स्वराज्य तो दूर रहा खाना भी मिलना कठिन है। ख़ैर! लिखना है तो लिख ही डालो।

मोगरे और बेलेके फूल तो सूंघनेको सामने धरे हैं फिर भी मस्तिष्क उत्तेजित न हो तो क्या आशा है? देखो, फ़र्शपर यह मोगरेका फूल पड़ा है। दो चार साल बाद जो आजके दिनकी याद करोगे तो इस कमरेका ध्यान भी आवेगा। पर इस बेचारे फूलका भी ध्यान आवेगा, इसमें तो हमें कुछ सन्देह है। यह फूल तो क्या इस असार संसारमें न जानें कितने ऋषि मुनि, साधू सन्त, पुरुष और स्त्री पैदा हुए और मर गये, कोई उनको याद करता है? हम भी कुछ दिन जियेंगे और फिर मर जायँगे; कौन हमारा ध्यान करेगा, कौन हमे याद करेगा? विकराल काल हमें अपने चक्रमें ले जायगा, सब हमें भूल जायँगे। तो हम क्यों इस फूलको याद रखनेका प्रयत्न करें? भूलो! भूलो! बस यही मोहन मंत्र है।

हमसे कुछ परोपकार हो गया, हमसे कुछ देश सेवा बन पड़ी तो अवश्य कुछ लोग कुछ दिनतक हमें याद रक्खेंगे। आइये कुछ लिख डालें। क्या लिखें! लिखनेकी इच्छा तो है पर योग्यता तो एक क्षणमें आ नहीं सकती।

इस फूलने हमें सवेरेसे ही सुगन्धि देकर आनन्दित किया है। इसने हमपर उपकार किया है, इसे हम अवश्य याद रक्खेंगे। इसके उपकारको हम न भुलावेंगे। जिस स्थानपर यह फूल पड़ा है उस स्थानको हम हृदयमें चित्रित किये लेते हैं। पर स्मृति सदा ऐसी ही प्रबल थोड़े ही बनी रहेगी संसारके जंजालमें फंसकर दिन दिन नये दृश्य आँखोंके सामने आवेंगे। यह फूल बेचारा कबतक हमारे हृदयमें स्थान किये रहेगा। हम अपने प्यारे मित्रोंसे बिछुड़ते कितने उदास हुए थे, उनतकको तो हम भूल चले।

हृदय पटलपर अङ्कित चित्र तो धीरे धीरे मिट जाता है। इससे अधिक स्थायी क़ाग़ज़का लिखा है। आप कहेंगे क़ाग़ज़ फट जायगा, मसी धुल जायगी। तो भी हमारे हृदयका क्या ठिकाना, हम तो इस फूलके स्थानको लिख लेंगे। कैसे लिखेंगे? देखते जाइये। यह चित्र देखिये। (चित्र १)
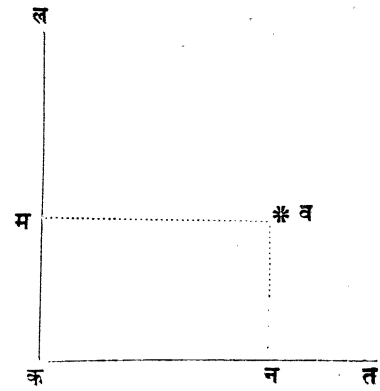
चित्र १

क कमरेका कोना है, कत और कल इस कोनेपर मिलनेवाली कमरेकी दीवालें हैं; व फूल है। यदि कत और कल से व की दूरी मालूम हो तो व का स्थान निश्चित हो गया। एक कोनेपर मिलनेवाली दो दीवालोंसे पुष्पकी दूरी मालूम होनेपर फूलका स्थान कमरेमें निश्चित हो जाता है। कत और कल के समानान्तर रेखाएं व से खींचो। यह वम और वन के बराबर होंगी। वम और वन की लम्बाई मालूम होनेसे व विन्दुका स्थान निश्चित होता है। मान लो वम = ६, वन = ३, तो संक्षेपमें व विन्दुको ६,३ कहेंगे और (६,३) लिखेंगे।

फ्रांस देशके सुविख्यात दार्शनिक और गणितज्ञ दे कार्त्तें (Des Cartes) इस विधिका आविष्कार किया था। इस अत्यन्त साधारण और सरल विधिने आधुनिक गणितमें बड़ा भारी परिवर्तन कर दिया है। उच्च गणितका (Higher Mathematics) आविष्कार और उसकी आश्च-

यंजनक उन्नतिका कारण इसी विधिको समझें तो अत्युक्ति न होगी। देकार्तके (Descartes) पहले रेखा-गणित और बीजगणित गणित-विद्याकी दो प्रधान शाखाएं थीं; इन दोनोंमें किसी प्रकारकी सहकारिता न थी, परन्तु देकार्तकी इस अद्भुत सूझने एक अजब सहकारिता इन दोनों शाखाओंमें उत्पन्न कर दी है। बीजगणित और रेखा-गणितके मेलसे या यों कहिये कि इन दोनोंके सिद्धान्तोंके एक साथ प्रयोगसे गणितशास्त्रकी एक नयी शाखा बन गयी है जिसे बीज-ज्यामितिके ((Coordinate geometry or Analytical geometry) नाम से पुकारते हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि इस महत्वपूर्ण शास्त्रके मूल तत्वोंका संक्षिप्त वर्णन करेंगे तो अरुचिकर न होगा।

ज़रा इस चित्रकी ओर ध्यान कीजिये क त और क ल समकोणपर मिलनेवाली दो रेखाएं हैं। इनको कार्तीय भुजयुग्म कहते हैं। प से क त और क ल के समानान्तर जो रेखाएं खींची जाती है उनको प की भुज abcissa और कोटि

चित्र २
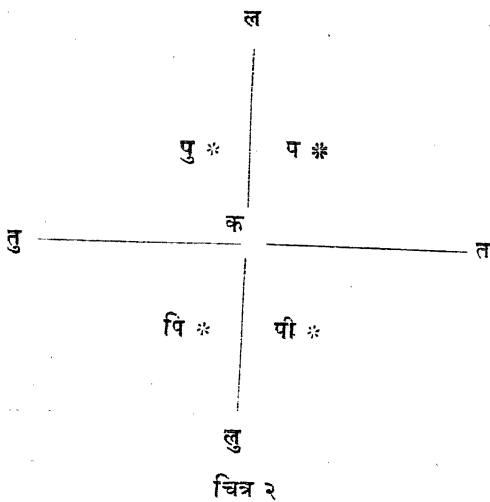
ordinate कहते हैं। क त के समानान्तर रेखाको भुज और क ल के समानान्तर रेखाको कोटि कहते हैं। यदि भुजकी (abcissa) लम्बाई ३ और कोटिकी (ordinate) लम्बाई २ हो तो प को (३, २) कहेंगे। यदि कोई विन्दु पु के स्थानपर हो तो भी उसका स्थान निश्चित किया जा सकता है, केवल ध्यान यह रखना चाहिये कि यदि क से त की ओरकी लम्बाईको + मानें तो क से तु की ओरकी लम्बाईको – (ऋण) मानना चाहिए। इसी प्रकार क से ल की ओरकी लम्बाईको यदि + मानें तो क से लु की ओरकी लम्बाईको – (ऋण) मानना चाहिए। अब पु, पि और पी विन्दुओंके स्थान निर्णयकी अत्यन्त सरल विधि हमको मिल गई।

प का	भुज	+	और	कोटि	+	होगा
पु	,,	–	,,	,,	+	,,
पि	,,	–	,,	,,	–	,,
पी	,,	+	,,	,,	–	,,

चित्रमें देखनेसे यह विदित होगा कि त क तु और ल क लु दो सरल-रेखाएं एक दूसरेके साथ समकोण बनाती हैं। चार समकोण बनते हैं। यह स्थान चार भागोंमें विभक्त होता है। प्रत्येक भागका नाम पाद है। त क ल प्रथम पाद, ल क तु द्वितीय पाद, तु क लु तृतीय पाद और लु क तु चतुर्थ पादके नामसे पुकारे जाते हैं। प प्रथम पादमें, पु द्वितीय पादमें, पि तृतीय पादमें और पी चतुर्थ पादमें विन्दु हैं। ऊपर जिस प्रकार हमने इन विन्दुओंका स्थान निर्णय किया है वैसे ही भिन्न भिन्न पादोंमें स्थित अनेकानेक विन्दुओंका स्थान निर्णय किया जाता है। अब समझमें आ जायगा कि (५, –३) से क्या मतलब है। यह चतुर्थ पादमें स्थित एक विन्दु है जिसका भुज लम्बाई की ५ इकाइयोंके बराबर क त की ओर है और जिसकी कोटि लम्बाईकी ३ इकाइयोंके बराबर क लु की ओर है। इसी प्रकार संसारके प्रत्येक विन्दुका स्थान हम मनोनीत भुजयुग्मोंके सहारे निश्चय कर सकते हैं।

अभीतक हमने भुजयुग्मोंके बीचके कोण- को एक समकोणके बराबर माना है परन्तु यह आवश्यक नहीं है। कत और कल के बीचमें समकोणको छोड़कर हम कोई भी कोण मान सकते हैं और बाक़ी सब कारखाई जैसी ऊपर कही गई है वैसी ही होगी, केवल भेद इतना ही है कि समकोणवाली भुजयुग्ममें भुज और कोटि कल और कत पर लम्ब हो जाते हैं परन्तु इस अवस्थामें ऐसा नहीं होता।

बीजज्यामितिका महत्व तब समझमें आवेगा जब यह मालूम हो जायगा कि विन्दु ही नहीं वरन् सरल-रेखाओं, वृत्तों तथा अन्य वक्रों- का स्थान निर्णय हो सकता है। पर इस लेखमें हम विन्दुओंको छोड़ आगे न बढ़ेंगे, क्योंकि विन्दुओंके पश्चात् ही सरल-रेखाओंपर जाना चाहिये।

पाठकोंके विनोदार्थ एक दो विचित्र बातें यहांपर हम लिखेंगे जिनसे यह विषय अच्छी तरह चित्तमें बैठ जायगा। यदि दो निश्चित विन्दु दिये हुए हों तो उनके बीचकी दूरी नापनेके- लिए गज़, फुट, मीटर इत्यादिसे हम साधारणतः काम ले सकते हैं परन्तु यदि इन दोनों विन्दुओं- का स्थान हमको बीज-ज्यामितिके शब्दोंमें बतला दिया जावे तो बिना नापे तोले ही काग़ज़ पेन्सिलको सहायतासे इन बिन्दुओंके बीचकी
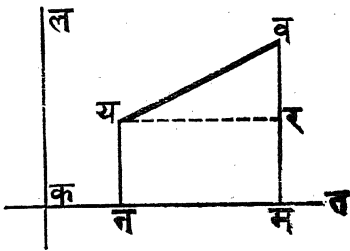
चित्र ३

दूरीको रेखागणित तथा बीजगणितके सिद्धान्तोंकी सहायतासे हम बतला देंगे। यह विधि, संभव है, टेढ़ी प्रतीत हो, पर हम जैसे काहिलोंको यही पसंद है। चित्र ३ में देखिये य और व दो विन्दु हैं। य है (क, ग), व है (च, ज)। चित्रमें कन=क लम्बाईकी इकाइयां, यन=ग लम्बाईकी इकाइयां, कम=च लम्बाईकी इकाइयां, वम=ज लम्बाईकी इकाइयां। य से वम के ऊपर लम्ब यर डालिए। पिथागोरसके (Pythagoras) विख्यात सिद्धान्तद्वारा (युक्लिड अध्याय १ साध्य ४७) अब हमें काम लेना चाहिए। कोण यरव समकोण है, इसलिए

$$यर^2 + वर^2 = यव^2 ।\ यर = नम = कम - कन = च - क ।$$
$$वर = वम - रम = ज - ग ।$$

इसलिए य और व के बीचकी दूरी

$$य\,व = \sqrt{(च - क)^2 + (ज - ग)^2}$$

बाक़ी काम साधारण गणितका रह गया।

यहां पर य और व दोनों विन्दु प्रथम पाद- में लिये गये हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं। यह विन्दु किसी भी पादमें लिये जा सकते हैं और उपरोक्त सिद्धान्तद्वारा इन विन्दुओंके बीचकी दूरी जानी जा सकती है। इतना ही ध्यान रखना आवश्यक है कि भिन्न पादोंमें स्थित होनेके कारण विन्दुओंके भुज और कोटि + या − हो जायंगे और गणना करते समय चित्र बना लेना चाहिए।

दो विन्दु व और प दिये हुए हैं। व है (क,ग), प है (च ज)। एक अन्य विन्दु र सरल रेखा वप को त : द के अनुपातमें विभक्त करता है, र का स्थान निश्चय करना है। देखनेमें यह समस्या टेढ़ी प्रतीत होती है पर है यह बहुत सरल। चित्र ४ में र कोई विन्दु मान लीजिए जो वप को त : द के अनुपातमें विभक्त करता हो। कत के ऊपर वम, रस, पन लम्ब खीच लीजिए। र से होती हुई कत के समानान्तर एक सरलरेखा जरट खीच

लीजिए। र को मान लीजिए (च, त्र) छ और त्र अभी अज्ञात हैं।

चित्र ४

अब—कम = क; कस = छ; कन = च;
वम = ग; रस = त्र; पन = ज;

यहां वरज और परट समान त्रिभुज हैं, क्योंकि ज और ट पर समकोण हैं और र परके कोण बराबर हैं।

इसलिए ज्यामितिकी समान त्रिभुजोंवाले सुविख्यात साध्यद्वारा (यूक्लिड अध्याय ६ साध्य ४)

वर: रप: : जर: रट

वा त: द: : जर: रट

क्योंकि पहले माना है कि र विन्दु वप को त : द के अनुपातमें विभक्त करता है।

पर जर = कस − कम = छ − क

रट = कन − कस = च − छ

∴ त : द :: (छ − क) : (च − छ)

वा त (च − छ) = द (छ − क)

वा त (च − छ) − द (छ − क) = ०

वा त.च + द.क = त.छ + द.छ

वा $छ = \frac{त.च + द.क}{त + द}$

इसी प्रकार ज्तामितिके उपरोक्त साध्यानुसार

वज : पट : : वर : रप

वा वज : पट : : त : द

अब वज = रस − वम = त्र − ग; पट = पन − रस = ज − ज

∴ (त्र − ग) : (ज − त्र) : : त : द

वा त (ज − त्र) = द. (त्र − ग)

∴ $त्र = \frac{त.ज + द.ग}{त + द}$

र का भुज छ और कोटि त्र ज्ञात हो जानेसे र विन्दुका, जो व प को त: द के अनुपातमें विभक्त करता है, स्थान निश्चित हो गया।

यहां हमने सरलतासे सिद्धान्त प्रदर्शित करनेकेलिए दोनों विन्दु प्रथम पादमें ही लिये हैं पर यह आवश्यक नहीं। भिन्न भिन्न पादोंमें विन्दु होनेपर भी ऊपर दी हुई विधिसे काम लेना चाहिये केवल चिन्होंका ध्यान और उनका चित्रद्वारा समाधान आवश्यक होता है। लेखके बढ़ जानेके भयसे यहांपर सविस्तार वर्णन नहीं दिया जाता पर विज्ञ पाठक इसको स्वयं समझ लेंगे।

यदि ३ विन्दु दिये हुए हों तो उनको एक दूसरेके साथ जोड़नेसे तीन सरल-रेखाएं बनेंगी और यह तीन सरल-रेखाएं एक त्रिभुज

चित्र ५

बनायेंगी। य, र, व विन्दु बीज-ज्यामितिके शब्दोंमें यदि हमको बतला दिये जायं या यों कहिए कि यदि य, र, व के भुज और कोटि ज्ञात हों तो य र, र व और व य, सरल रेखाओंकी लम्बाई निकाली जा सकती है। [देखिये चित्र ५]

अब हम य र व त्रिभुजके क्षेत्रफलको निकालनेकी विधि लिखते हैं।

य है (क, ग), र है (च, ज), व है (ट, ड)।

त्रिभुज य र व का क्षेत्रफल = क्षेत्रफल विषम चतुर्भुज वमसर − क्षेत्रफल विषम चतुर्भुज वमनय − क्षेत्रफल विषम चतुर्भुज य न स र

$= \frac{1}{2}$(वम + रस) सम $- \frac{1}{2}$(वम + यन)मन

$- \frac{1}{2}$ (यन + सर) नस ।

यहांपर हमने बिषम चतुर्भुजके क्षेत्रफल निकालनेका सूत्र (formula) मानकर यह समीकरण लिखा है ।

अब वम, रस, मस, इत्यादि इस समीकरणकी सब लम्बाइयां मालूम हैं इसलिए गणना करनेसे त्रिभुजका क्षेत्रफल मालूम हो गया । त्रिभुजके क्षेत्रफलका सरल सूत्र भी बनाया जाता है जिसे याद रखनेसे झट ही दिये हुए तीन विन्दुओंद्वारा बने त्रिभुजका क्षेत्रफल लिखा जा सकता है ।

बस ! अधिक अजीर्ण हो जायगा । फूलका स्थान निर्णय करने बैठे थे, कहां पहुंच गये ! हैं भी ताे गरमीके दिन ! यही एक विधि स्थान निर्णयकी नहीं है । कार्तीय भुजयुग्मोंको छोड़कर अक्षीय भुजयुग्मोंसे (polar coordinates) भी काम निकल सकता है । रहने दीजिये, फिर कभी देखा जायगा । भुजयुग्मोंने दोनों भुजाओंसे सर इस ज़ोरसे दबाया कि सरमें ज़ोरका दर्द हो गया ।

गरम देशोंके योग्य वस्त्र

[ले० नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा सेंट जान्स कालेज]

हमारा सुख, हमारा स्वास्थ्य, यहां तक कि हमारा जीवन भी बहुधा हमारे वस्त्रोंपर निर्भर है । वस्त्रोंका मुख्य काम मनुष्यके शरीरकी उष्णताको स्थिर रखनेमें सहायता देना है और यह काम ऋतुओंके विकार और कठोरतासे मनुष्यकी रक्षा करने और बहुधा शरीरको आराम पहुंचानेसे सिद्ध होता है । शरीरकी गर्मी भोजनसे उत्पन्न होती है और वस्त्र उस गर्मीको लोप होनेसे रोकते हैं, इसीलिए ठंडे देशोंमें मनुष्य जितने गर्म कपड़े पहनेंगे उतना ही वह कम भोजन करेंगे । कई पदार्थ ऐसे हैं जो गर्मी को शीघ्र ही खींच लेते हैं और उसे धीरे धीरे छोड़ते हैं । साथ ही साथ ऐसे भी वस्त्र हैं जो गर्मीको खींचनेके स्थान उसको कम कर देते हैं या यों कहिये कि उनमें गर्मी ठहरती ही नहीं । इससे साफ़ मालूम होता है कि कपड़े दो प्रकारके होते हैं, वे जिनमें गर्मी ठहरती है और वे जिनमेंसे गर्मी शीघ्र निकल जाती है । पहिले कहे हुए वस्त्र शरदऋतुके हैं और पीछे कहे हुए ग्रीष्म ऋतुके । हर एक मनुष्यका कर्तव्य है कि वह ऋतुको देखकर वस्त्र पसंद करे । इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि वस्त्रोंका सम्बंध केवल उष्णतासे ही है और कपड़ोंको ख़रीदते समय सिर्फ़ गर्मीका ही ध्यान रखना चाहिये ।

निम्नलिखित विषयोंका भी वस्त्रोंसे घनिष्ट सम्बंध है और वस्त्रोंको ग्रहण करते समय इनका पूरा पूरा ध्यान रखना अत्यावश्यक है ।

(१) जल खींचनेकी शक्ति

(२) किसी भी प्रकारकी शरीरमें अड़चन न हो ।

हम अपने सब वस्त्र कुछ पशुओं और पक्षियोंसे, एक पतंगेसे, दो एक पौदोंसे अनेक प्रकारकी घाससे प्राप्त करते हैं ।

पशुओंसे ऊन, पोस्तीन और चमड़ा । रेशमका कीड़ा रेशम उत्पन्न करता है । पक्षियोंसे पर मिलते हैं और रुई और अलसीके पौदों और भांति भांति की घाससे हम वस्त्रोंका शेष भाग प्राप्त करते हैं ।

अब हम अपने शेष वर्णनको निम्नलिखित भागोंमें बाटेंगे, जिससे कि पाठकोंको समझनेमें अधिक सुभीता होगा और सारा वृत्तान्त समझमें आ जायगा :—

वस्त्र कितने प्रकारके होते हैं उनके गुण और उनका वर्णन ।

पहिननेके कपड़ोंके गुण और दोष ।

बच्चोंके वस्त्र और उनको कैसे पहनाना चाहिये।

वस्त्रोंके गुण दोष

वस्त्र कितने प्रकारके होते हैं—उनके गुण व दोषोंका पृथक् पृथक् वर्णन दिया जाता है।

१ ऊनी २ रेशमी ३ सूती ४ मख़मल ५ बरसाती, मोमजामा व रबरका — यह पांच प्रकारके कपड़े होते हैं।

ऊनी—ठण्डे देशोंमें सब जंतुओंका स्वाभाविक पहराव ऊनका होता है। ऊनमें एक क़िस्मका तेल और चर्बी होती है जिनपर उनका सारा गुण निर्भर है। जब ऊनसे कपड़ा बुनते हैं तो इस वस्त्रमें कई छोटे छोटे घर बन जाते हैं जिनमें हवा बन्द हो जाती है और हवाके बन्द हो जानेसे गर्मी बाहर नहीं जाने पाती, इसलिए ऊनका कपड़ा केवल शरद् ऋतुमें गर्म है और गर्मीमें ठण्डे कपड़ेका काम देता है। ऊनके वस्त्र भारतवर्षके शीतकालमें और पहाड़ोंपर सर्वदा पहनना चाहिये।

अभीतक यह निश्चय नहीं हुआ है कि ग्रीष्म ऋतुमें भी इन वस्त्रोंको पहनना चाहिये कि नहीं। ऊनका तेल जो कि "लेनो लीन" के नामसे प्रसिद्ध है इसका अति आवश्यक भाग है और जैसा कि ऊपर कह आये हैं ऊनका स्वभाव भी इसीपर निर्भर है।

यह पदार्थ कपड़ेको अधिक धोनेसे व हानिकारक धोनेके पदार्थोंको बर्तनेसे प्रायः निकल जाता है और कपड़ा नष्ट हो जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि ऊनके वस्त्र केवल उष्ण जल और बढ़िया साबुनसे धोये जायं। यदि तनिक सा मिट्टीका तेल मिला दिया जाय तो बहुत मैल निकल जाता है।

यह आवश्यक नहीं है कि अन्दरके वस्त्र ऊनके ही हों। उष्ण देशोंमें प्रयोग करनेकेलिए पतला और मुलायम कपड़ा मिलना अति कठिन है परन्तु ऊनमें सूत मिले हुए कपड़े व हलके ऊनके कपड़े बाज़ारमें अनेक प्रकारके प्राप्त हो सकते हैं।

ऊनके कपड़ोंको पसंद करते समय बहुत सी बातोंका ध्यान रखना चाहिए। छूने और तीव्र दृष्टिसे देखनेसे कपड़ेकी बहुत कुछ परख हो जाती है। ऊनका कपड़ा चिकना और मुलायम होना चाहिये, उनपर बाल गसे हों, बहुत लंबे और बिखरे हुए न हों। कपड़ा जितना भारी होगा उतना ही अच्छा होगा। कम्बलकी परीक्षा भारी और हलकेपनसे बहुत ठीक होती है। कम्बल जितना हलका होगा उतना ही वह निकृष्ट होगा। कम्बलकी पहिचानमें यह ध्यान रखना चाहिये कि वह घना बुना हुआ हो, ऊनके कपड़ेको खींच खांचकर देख लेनेसे पुरानी ऊनके जान लेनेकेलिए यह ठीक युक्ति है कि प्रकाशमें देखनेसे ऊनका कपड़ा बराबर बुना हुआ होना चाहिये, और किसी प्रकारके छिद्र भी नहीं होने चाहियें।

रेशमी—ऊनको छोड़कर रेशम ही अन्दर पहिरनेकेलिए सबसे उत्तम वस्त्र है, परन्तु अधिक मूल्यवान होनेसे सब लोग इसे नहीं प्राप्त कर सकते। रेशमका धागा (तार बहुत नर्म और चिकना होता है, यही कारण है कि रेशम इतना कोमल और चिकना है। ऊनका सूत एक प्रकारका बाल है जो खुरदरा होता है।

सूती—रुईके सूत सस्ते और चलनेमें अच्छे होते हैं। ऊनके साथ सूतको मिलानेसे ऊनका सिकुड़ना कम हो जाता है और वह कपड़ा बहुत दिन चलता है। रुईका कपड़ा गर्मीकेलिए सब वस्त्रोंमें उत्तम है और शीतकालमें इसको पहिननेकी अनुमति बहुतसे नामी डाक्टर देते हैं।

मख़मल—मख़मलके वस्त्र रुईके वस्त्रोंसे किसी भी प्रकार बढ़कर नहीं हैं। कपड़ा इससे बहुत बढ़िया और उत्तम बनता है यह केवल सौन्दर्यकेलिए ही है। स्वास्थ्यको कोई लाभ इससे नहीं है।

बरसाती-मोमजामा (वाटरप्रूफ़) व रबरके वस्त्र—यह कपड़े केवल वर्षाऋतुके ही उपयोगकेलिए हैं। साधारण वस्त्रोंको बरसाती बनानेकेलिए निम्नलिखित युक्ति अति उत्तम है।

पांच औंस लेनोलीन या ऊनकी चर्बी (Panoline or woofat) एक गेलन पैट्रौल तेलमें घोल लो। वस्त्रको फिर इसमें डुबोकर अच्छी तरहसे मलो। वस्त्रको निचोड़कर हवामें शीघ्र सुखा लो।

ऊपर कहे अनुसार जो वस्त्र बरसाती बनाया गया है उसे पहिननेसे किसी प्रकारकी हानि नहीं होती है। वह वर्षा या धूपमें दोनों समय धारण किया जा सकता है।

ऐसे कपड़ोंसे पसीना शीघ्र सूख जाता है। और वर्षामें भी यह बरसाती मोल लाए हुए बरसातीसे जो कि फिटकिरी इत्यादि अन्य रसायनिक द्रव्योंसे बनाये जाते हैं अधिक रक्षा करता है। हवाका प्रवेश भी ऐसे वस्त्रमें अधिक होता है और यह जलको भी जो कि वायुरूपमें हवामें है कम खींचता है। साधारणतः धुलाईसे इसपर कुछ असर नहीं होता, इसलिए इस कपड़ेका असर ठीक समयतक रहता है। मूल्य भी बहुत कम लगता है, जो कि दो रुपयेसे कम है।

पहिननेकी अन्य वस्तुएं

भली भांति ध्यान रहे कि जूते ढीले न हों। उन्हें हमेशा मोज़ोंके ऊपर पहिनना चाहिये। वे अधिक तंग न हों कि अंगूठा या उंगलियां दबती रहें। मोल लेते समय उनको मोटे मोज़ोंपर पहिनकर देख लेना चाहिये और वे ज़रा बड़े ही हों तो अच्छा है, क्योंकि ग्रीष्मऋतुमें पांव बढ़ जाते हैं या व्यायामसे फैल जाते हैं। जूतेका तला नर्म होना चाहिये। सख़्त तलेके जूतेको पहनकर बहुत दूर जानेसे बहुत थकावट हो जाती है। नये जूते पहिले पहिल थोड़ी देरकेलिए पहिनने चाहिएं। (केस्टर आइल) एरंडीका तेल तलेको नर्म करनेकेलिए उत्तम पदार्थ है। युरोपमें यह तेल इस कार्यमें नहीं लाया जाता क्योंकि यह वहां बहुत महंगा है परन्तु भारतवर्षमें यह तेल बहुत सस्ता, जेल इत्यादि स्थानोंसे, मिल सकता है। इस देशमें छोटे बूटोंकी (शूज़) अपेक्षा लम्बे बूट (फुलबूट) अधिकतर पहिनना चाहिये। इनसे मच्छरोंका बचाव होता है।

अनुभवसे विदित होता है कि (legging) लेगिंग भली भांति पहिरे जायं तो सवारीमें अति उपयोगी होते हैं और पैदल चलनेकेलिए पट्टियां (pattis) भी पैरोंकेलिए बहुत उपयोगी हैं; परन्तु यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिये कि पट्टियां कभी कसकर न बांधी जायँ। (चमड़ेकी पांवकी पट्टीको लेगिंग कहते हैं।)

उष्णदेशोंमें हरएक मनुष्यको जांघिया पहिनना चाहिये। इसके पहिननेसे शरीरकी रक्षा व स्वच्छता रहती है।

स्वास्थ्यको बनाए रखनेकेलिए कालराबेल्ट जिसे हैज़ेकी पेटी कहते हैं विशेष आराम नहीं देती। उसको अपने स्थानपर स्थित रखनेमें अति कठिनता होती है, या तो वह ऊपरको सरक जाती है या नीचेको। यदि ऐसा न हुआ तो इन कमरबन्दोंसे तनिक भी लाभ न होगा। अक्सर, यह व्यायामके समय गीला भी हो जाता है, इसलिए उचित है कि कमरबन्द रातको ही प्रयोगमें लाया जावे। हम इसके पूर्ण समर्थक हैं। यदि इसको रात्रिमें प्रयोग न किया जाय और केवल कम्बल इत्यादिपर ही भरोसा किया जाय तो कभी कभी ऐसा होता है कि स्वप्नावस्थामें कम्बल सरक जाता है और पैरको पंखेकी हवा लगनेसे व साधारणतः हवा लगनेसे ठंड लग जाती है। इस देशमें यह एक और भयकी जड़ है, इसलिए उन विदेशियोंको जो कि यहांपर नये आए हुए हैं साफ़ साफ़ समझा देना चाहिये कि उष्ण देशोंमें ज़रा सी ठंड लग जानेसे अजीर्ण इत्यादि व्याधियां शीघ्र हो जाती हैं जो कि ठंडे देशोंमें नहीं होतीं।

कपड़ोंके रंग नाना प्रकारके होते हैं और

रंगको पसंद करते समय उसकी उपयुक्तता-का (general suitabiliy) ध्यान रखना चाहिये। यह साधारण बात है कि भिन्न भिन्न रंगोंमें उष्णताको रोकनेकी शक्ति अलग अलग है। काला रंग सबसे अधिक व सफ़ेद रंग सबसे कम-गर्मी रोकता है। निम्नलिखित क्रमानुसार रंगोंकी शक्ति है:—काला, गहरा नीला, हलका नीला, गहरा हरा, गहरा लाल, हलका हरा, गहरा पीला, हलका पीला, स्वेत।

बच्चोंके वस्त्र

यह एक गूढ़ विषय है। इसपर हर एक मनुष्यको पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। हम सबको उचित है कि उन विषयोंको जो बालकोंके पोषणके लिए आवश्यक हैं किसी प्रकार जान लें, केवल जानही न लें परन्तु उन नियमोंका पालन भी करें।

हर एक माता पिता और उन पुरुषोंका जिनके अधिकारमें बच्चोंका पालन पोषण है कर्तव्य है कि वे इन नियमोंको भली भांति ध्यान देकर पढ़ें और उनके अनुसार चलें।

बच्चोंके वस्त्रोंपर पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये और बच्चोंकी उत्तम तथा उचित कपड़ोंसे रक्षा करनी चाहिये क्योंकि उष्णता बच्चोंमें अधिक कालतक नहीं ठहरती। छोटे बच्चोंको ऊनके कपड़े सब ऋतुओंमें नीचे पहिनाना चाहिये। हां ऋतुके अनुसार भारी या हलका वस्त्र पहिनाया जाय। बहुधा यह देखा गया है कि छोटे बच्चोंके सिर और टागें खुली रहती हैं और माता पिता यह समझे रहते हैं कि इससे बच्चोंको सुख मिलता है। यह उनकी बड़ी भूल है और इससे केवल लोगोंके दरिद्रताका ही परिचय मिलता है। आराम व आज़ादी बच्चोंको कपड़ोंके रहते भी दी जा सकती है। उन बच्चोंको जिनके बढ़नेमें उष्णताकी अधिक आवश्यकता है उचित वस्त्रोंके न पहिनानेसे बहुत ही हानि पहुंचती है जिसका परिणाम भयानक है और पीछे विदित होता है। अस्तु बच्चोंको खुले पैरोंसे फिरने देना, उनकी आस्तीनें चढ़ा देना अतीव हानिकारक है, क्योंकि बच्चेके शरीरके बहुतसे भागोंको ठंड लग जानेकी संभावना रहती है। ऐसी जितनी कुरीतियां हैं उनके विरुद्ध जितना कहा जाय उतना कम है। अस्तु इस बातको भली भांति समझ लेना चाहिये और सदा स्मरण रखना चाहिये कि बच्चोंके इन भागोंके खुले रह जानेसे ठण्ड लग जानेका भय है—उसका फल अनेक प्रकारकी व्याधियां व रोग हैं।

नगरके कूड़ा करकटसे ईंधन

[ले० महावीरप्रसाद बी. एस-सी., एल. टी.]

अमेरिकाके एक नगरमें बध किये गये पशुओं तथा अन्य प्रकारके कूड़ाकरकटसे (gabarge) फैलनेवाली गंदगीको दूर करनेकी ऐसी रीति निकाली हैं जो स्वास्थ्यकर ही नहीं वरन अर्थ-करी भी है। इस कूड़ाकरकटसे एक ऐसी वस्तु बनायी जाती है जो उच्च प्रकारके ईंधनका काम देती है। इस नगरके ४० प्रमुख नागरिकोंने एक कम्पनी स्थापित की है जिसने नगरका सारा कूड़ा उठानेका ठीका लिया है। यह सब एक कार्यालयमें पहुंचाया जाता है जहां बोतल, लोहा, टीनके बतरन जैसी अदाह्य वस्तुएं छांट ली जाती हैं और जो कुछ बच रहता है वह पीसा जाता है। फिर जलाये हुए पत्थरके कोयलेके कुछ अंश, भाप, और क्रियोसोट मिलाये जाते हैं और सबकी लुगदी बनाई जाती है। इसी लुगदी-से एक एक सेरकी ईंटे बनाकर सुखाई जाती हैं। ऐसी एक हज़ार ईंटोंका दाम २७ शिलिंग अथवा २०) होता है। ओक लकड़ीसे अधिक इन इटोंसे ताप मिलता है। जितने ओकसे ८००० इकाइयोंका ताप मिलता है उतने ही भारकी इन इटोंसे १२००० इकाइयोंका अर्थात् ज्याढ़ा ताप मिलता है।

इन्दुमाधव मल्लिक

[ले० गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए.]

इकमिक कुकरके आविष्कारक श्रीयुक्त इन्दुमाधव मल्लिककी असमय मृत्युका शोक समाचार अभी पत्रोंमें निकला है। उनके अगाध पाण्डित्य और देश भक्तिका परिचय पाकर लोगोंको विह्वल होना पड़ा है। मल्लिकमहाशयने ५ भिन्न विषयोंमें एम.ए-की डिग्री लाभ की थी। वकालतकी परीक्षामें आप बी.एल. पास थे और डाक्टरीमें सबसे उच्च एम. डी. की उपाधि आपने ली थी। विशेषकर डाक्टरीके ही सम्बन्धमें आप विख्यात हुए। इसी विषयको आप अवैतनिक रूपसे "बङ्गाल जातीय माविद्यालयमें" पढ़ाते रहे और उसके मुख्य उत्साही सहायकोंमें भी गिने जाते थे। मल्लिक महाशयको विद्यार्थियोंके साथ बड़ी सहानुभूति रहती थी। वे उनके हितसाधनमें सदा तत्पर रहते थे। वर्षोंतक उन्होंने डाक्टरीका काम ऐसी जगह किया जहां सहस्रों विद्यार्थियोंका आना जाना होता था और जिनके साथ उनका नितका व्यवहार रहता था। इन्ही कारणोंसे उन्हे विद्यार्थियोंकी शारीरिक अवस्थाका अच्छा पता चल गया था और उनकी त्रुटियोंको भी वे खूब पहचानने लगे थे। इनके पास चिकित्साकेलिए जैसे जैसे रोगी विद्यार्थी आते थे उनका एक हिसाब रखते जाते थे। तबसे हो नवयुवकोंके स्वास्थ्यकी शोचनीय दशाकी ओर इनका ध्यान गया। इस सिलसिलेमें उन्होने बहुत कुछ छानबीन भी की और समय समयपर कितने ही दोषोंको दूर करनेके उपाय भी बताते रहे। इस सिलसिलेमें उन्होंने कई व्याख्यान कलकत्तेकी विद्यार्थी समितियोंमें दिये।

इसी तरह कई मुख्य पत्रोंमें इसकी चर्चा चलाते रहे। कुछ दिन हुए उन्ही व्याख्यानों और लेखोंका संकलन एक पुस्तमें किया गया। उसमें भारतवासियोंकी शारीरिक निर्बलता और ह्रासका मूल कारण उनके खाने पीनेकी बुरी परिपाटी और उसकी ओर उनकी असावधानी ठहराई गयी। मल्लिक महाशयका विश्वास है कि यदि कभी जातीय जीवनमें प्रौढ़ता आएगी तो मुख्यतः स्वास्थ्य सुधारोंके द्वारा। इसीलिए देशके एकमात्र भावी अवलम्ब नवयुवकोंके अंगगठन और उसके साधनपर जितना विचार किया जाय थोड़ा होगा।

डाक्टर मल्लिकके लेखोंके पढ़नेसे जान पड़ता है कि उन्होंने इस महान कार्यका संपादन योग्यतासे किया है। पुस्तकमें कहीं अनुमानसे काम नहीं लिया गया है। अंकोंद्वारा डाक्टर साहबने अपने मतकी पुष्टि की है। उदाहरणकेलिए आपने भारतवासियोंके रक्तकी क्षीणता वा पतलापनके विषयमें युरोपवासियोंके साथ तुलना करते हुए "रुधिर पृथक्करण" की (blood analysis) अच्छी तालिका दी है जो पहले पहल डाक्टर मैकेने (Dr. Macay) तैयार की थी। इसी तरह भारतवासियोंके श्रम-सहन शक्तिकी न्यूनता (Low Fatigue Point) तथा जीवनकी असारता और संसारसे उदासीनता इत्यादि दुराग्रहोंके दुष्प्रभाव बड़ी रोचकतासे वर्णन किये हैं। अंतमें पुस्तकका आशय यह है कि वर्तमान समयमें रोग निवारणके विषयमें चिकित्सासे परहेज़ श्रेय है यही सर्वोपरि है। जहांतक हो उचित संयमसे रोग पास आने न दे और यदि कभी रोगी हो भी जाय तो उन्हीं शारीरिक नियमोंके पालनसे आरोग्यता लाभ हो सकती है जिनके उल्लंघनसे उसे खो बैठे थे। काढ़ा, चूर्ण वा देशी और अंग्रेजी अर्कका सेवन करना मूर्खता है। यथा संभव, खाने पीने और मितव्यवहारसे स्वास्थ्य बनाये रहना चाहिये। यह बड़े खेदकी बात थी कि आजतक स्वास्थ्यपालनकी पुस्तकें प्रायः अंग्रेजी पुस्तकोंकी छाया होती थीं और उनसे हमारा विशेष उपकार नहीं होता था। मल्लिक महाशयकी पुस्तकसे एक भारी आवश्यकता दूर होगई है—सिर्फ़ थोड़ी सी कसर है, कोई हिन्दी प्रेमी इस अंग्रेज़ी पुस्तकका अनुवाद करकर डाले। पुस्तकका नाम "फुड एेन्ड कुकिंग" (Food and cooking) मूल्य १॥) ।

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषत्- प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाइ. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Reg NO. A 708

भाग ५ | कर्क, १९७४ । July, 1917. | संख्या ४

Vol. V. | No. 4

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय. प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] | [१ प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानके नियम

(१) यह पत्र प्रति संक्रान्तिको प्रकाशित होता है। पहुँचनेमें एक सप्ताहसे अधिक देर हो तो प्रकाशकको तुरन्त सूचना दें। अधिक देर होनेसे दूसरी बार विज्ञान न भेजा जायगा।

(२) वार्षिक मूल्य ३) अग्रिम लिया जायगा। ग्राहक होनेवालोंको पहले वा सातवें अंकसे ग्राहक होनेमें सुविधा होगी।

(३) लेख समस्त वैज्ञानिक विषयोंपर लिये जायँगे और योग्यता तथा स्थानानुसार प्रकाशित होंगे।

(४) लेख कागज़की एक ओर, कमसे कम चार अंगुल हाशिया छोड़कर, स्पष्ट अक्षरोंमें लिखे जायँ। भाषा सरल होनी चाहिए।

(५) लेख सचित्र हों तो यथा संभव चित्र भी साथ ही आने चाहिएं।

(६) लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्त्तनमें सामयिक पत्र और पुस्तकें, मूल्य, तथा सभी तरहके पत्र व्यवहारकेलिए पता—

सम्पादक 'विज्ञान' प्रयाग

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग–दूधकी शुद्धता, बनावट, और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति।). २-ईख और खांड-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति।-). ३–करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रह साधन रीति ॥). ४–संकरीकरण अर्थात् पैदोंमें मेल उत्पन्न कर वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५–सनातनधर्म रत्नत्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धी।). ६–कागज़ काम-रद्दीका उपयोग-)

इनके सिवाय केला, नारंगी सन्तरा, सुवर्णकारी, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे है। खेत (कृषिविद्या), कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगी सूत्र (ज्योतिष), रसरत्नागर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जारहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पता: - गंगाशंकर पचौली—भरतपुर

हमारे शरीरकी रचना

कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसे अपने घरका पूरा पूरा हाल न मालूम होगा। पर ऐसे कितने मनुष्य हैं कि जिन्हें अपने असली घर (शरीर) का पूरा ज्ञान है। शरीरकी रचनासे पूरे परिचित न होनेके कारण हम अपने नित्य जीवनमें बड़ी बड़ी भूलें करते हैं और अपने स्वास्थ्यको बिगाड़ डालते हैं। अतएव यह परमावश्यक है कि हम अपने शरीरकी रचना भली भांति जानें। इसका सहज उपाय डा० त्रिलोकीनाथ चरित "हमारे शरीरकी रचना" नामक पुस्तक पढ़ना है।

पुस्तक में २६८ पृष्ठ हैं और ५९ चित्र हैं। मूल्य केवल २।); विज्ञानके ग्राहकों और परिषद् सदस्योंको २) रुपयेमें दी जायगी।

मिलने का पता—

मंत्री—विज्ञानपरिषद्, प्रयाग।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग ५ { कर्क, संवत् १९७४। जुलाई, सन् १९१७। } संख्या ४

मंगलाचरण

[ले० श्रीधर पाठक,]

जय माया-मय महाकाव्य का प्रौढ़ महाकवि
जिसकी प्रतिभासे प्रतिभासित कोटि चन्द्र रवि
प्रकृति, विकृति, आलोक, भाव, रस, अलंकार हैं
सर्ग-स्थिति-लय रूप सर्ग विरचित अपार हैं
जो अपनी कृतिका आप ही अविरत अनुशीलन करै
इस कवि-समाजको आज वह अनुपम प्रतिभा-
से भरै।

लखनऊ ९-१२-१९१६

* यह छप्पय कविवर श्री श्रीधर पाठकजीने कवि, सम्मेलन, लखनऊमें पढ़ा था। आपकी पुस्तक 'मनो विनोद' में यह प्रकाशित हो चुका है।

अङ्कगणितकी शिक्षा।

[ले०-शतीशचन्द्र घोषाल, बी. एस-सी., एल-एल. बी.,]

११-अनुपात और समानुपात।

चलित रीतिके अनुसार यद्यपि अनुपात और समानुपातका विचार साथ साथ एक ही अध्यायमें किया जाता है, तो भी शिक्षकोंको मालूम होगा कि बालक अनुपातका उपयोग बहुत थोड़ी उमरसे हो करने लगते हैं।

ज्यों ही बालक कहने लगते हैं कि 'गोपाल रामलालसे दूना ऊंचा है', 'हमारा घर तुम्हारे घरसे दूना बड़ा है', 'यह नदी उस नालेसे दूनी चौड़ी है' तब यथार्थमें वे दो चीज़ोंकी तुलना करते हैं और यही अनुपातका मतलब है। समानुपातके विचारकेलिए बुद्धिकी प्रौढ़ताकी आवश्यकता है और इसीलिए उसका विचार बालक शीघ्र नहीं कर सकते।

Pedagogics शिक्षा]

अनुपातका अर्थ

अनुपातका साधारण ज्ञान होनेकेलिए इतना ही जानना काफ़ी है कि अमुक चीज़ अमुक चीज़में इतनी बार मौजूद है अथवा अमुक चीज़ दूसरी चीज़का अमुक हिस्सा है।

समझानेकी विधि।

विद्यार्थियोंको अनुपातका मतलब समझानेकेलिए शुरू शुरूमें काले तख़्तेपर अब और सड ऐसी दो खड़ी लकीरें खींचो कि सड, अब से चौगुनी हो। बालकोंसे इन लकीरोंकी तुलना करनेको कहो। पूछो कि सड अब से कै गुनी है? उन्हें बतलाओ कि इसी बातको हम इस प्रकार कहते हैं कि सड का अब से वही सम्बंध है जो ४ का १ से है और इस प्रकार लिखते हैं—$\frac{\text{सड}}{\text{अब}} = \frac{४}{१}$

इस प्रकारके कई उदाहरण लो। हर एक उदाहरणमें वर्ग काग़ज़ों, लकीरों, काग़ज़की पट्टियों, तोलनेके बांट इत्यादि पदार्थोंका उपयोग किया जाना चाहिये। हर एक उदाहरणमें समझाओ कि दो चीज़ोंका अनुपात निकालनेकेलिए हम पहिले मानमें दूसरे मानका भाग देते हैं। इस प्रकार उन्हें यह समझा दो कि दो चीज़ोंका अनुपात निकालनेकेलिए पहिलीमें दूसरीका भाग दिया जावे। यह भी समझाओ कि भिन्नका अर्थ अंश ÷ हर है। अतएव भिन्न भी एक प्रकारसे अनुपात ही है।

इस प्रकार साक्षात पदार्थोंका उपयोग करके कई उदाहरण समझाये जानेपर विद्यार्थियोंको ऐसे प्रश्न दोः—

(१) १०) रु० का १२) रु० से

(२) ४ पुस्तकोंका २ पुस्तकोंसे

(३) २ गज़का ३ गज़से

और (४) ४ फ़ुटका १० फ़ुटसे

क्या अनुपात है?

अनुपातकेलिए समान जातीय राशियोंकी आवश्यकता है

अब इस प्रकारके प्रश्न करो—

(१) १० कुत्तोंका २ गायोंसे क्या अनुपात है?

(२) ३ सेरका ६ इंचोंसे क्या अनुपात है?

बालकोंको ऐसे प्रश्न स्वतः भद्दे मालूम होंगे। यदि वे स्वतः न जान सकें तो पूछो कि २ गायें १० कुत्तोंमें कै बार समा सकती हैं? ६ इंचोंका ३ सेर कौनसा भाग है? इन सवालोंसे विद्यार्थियोंको मालूम हो जायगा कि अनुपात ढूंढनेकेलिए दो समान जातीय राशियोंकी आवश्यकता होती है। असमान पदार्थोंकी तुलना करना असम्भव है।

भिन्न भी एक प्रकारसे अनुपात ही है

जब विद्यार्थियोंको अनुपातका ज्ञान हो जाय तो पाठकको चाहिये कि उन्हें बताये कि भिन्न भी एक तरहसे अनुपात ही है। $\frac{३}{४}$ का क्या मतलब है? $\frac{३}{४}$ बताता है कि या तो १ के चार बराबर-हिस्से करके उनमेंसे तीन लिये गये हैं अथवा ३ के चार तुल्य खंड करके एक खंड लिया गया है। दूसरा मतलब यही है कि $\frac{३}{४} = ३ \div ४$। इस दूसरे मतलबको यदि हम अनुपातकी दृष्टिसे देखें तो मालूम होगा कि $\frac{३}{४}$ का यह भी मतलब है कि ३ का ४ से क्या अनुपात है? तीन चारका अवश्य $\frac{३}{४}$ वां भाग है। इस प्रकार समझाओ कि भिन्न एक प्रकारसे अनुपात ही हैं, एक भिन्नका भाग यदि हम दूसरेमें दें तो भी इन दोनोंका मतलब हम अनुपात ही समझ सकते हैं। जैसे $\frac{१}{२} \div \frac{१}{४}$ का मतलब यह है कि $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{२}$ में कै बार है। सारांश यह है कि अनुपातके विषयमें हमें भागका विचार करना ही पड़ता है। इसलिए जहां भागका विचार है वहांपर अनुपातका भी है।

समानुपात लिखनेकी दो रीतियां, विन्दु द्वारा और भिन्न द्वारा

समानुपात लिखनेकी पुरानी रीतिमें विन्दुओंका उपयोग किया जाता था, जैसे

अ : ब :: स : ड. इसी समानुपातको हम भिन्न द्वारा इस प्रकार लिख सकते हैं $\frac{अ}{ब}=\frac{स}{ड}$। समानुपात लिखनेकी इन दोनों रीतियोंमें उत्तम कौन-सी है यह बात ढूंढनेकेलिए हमें समानुपातका उपयोग और दोनों रीतियोंकी सरलता देखनी चाहिये। अङ्कगणितमें समानुपातका यही उपयोग है कि उसके द्वारा हम किसी अज्ञात वस्तुका मान निकाल लेते हैं। बिन्दुओंकेद्वारा समानुपात लिखनेकी रीति विद्यार्थियोंकी समझमें कठिनतासे आती है और इस प्रकार लिखनेमें समानुपातका नियम समझानेकेलिए नवीन नाम यथा 'मध्यवर्ती' और 'बाहिरी' बताने होंगे। इसके विपरीत यदि हम समानुपातको भिन्न-की रीतिसे लिखें तो यह सब कठिनाई दूर हो जाती है।

समानुपात समझाना

शुरू शुरूमें समानुपात समझानेकेलिए साक्षात् पदार्थोंका उपयोग किया जाना चाहिये। पाठक काले तख्तेपर ऐसी चार लकीरें खींचें कि यदि पहली दूसरीसे दुगनी हो तो तीसरी भी चौथीसे दुगनी हो। वर्ग तख्तेपर चार ऐसे वर्ग बनाओ कि जिनके क्षेत्रफल समानुपातीय हो। दो ऐसे समत्रिभुज बनाओ जिनके आधार एक दूसरेसे दुगने हों। इन दोनों त्रिभुजोंमें आधारके सामनेके कोणसे उनपर लम्ब खींचो। टेबलपर चार घन ऐसे रक्खो जिनकी ऊँचाइयां समानुपातीय हों।

अब विद्यार्थियोंसे कहो कि काले तख्तेपर खींची हुई चारों लकीरोंको ध्यानसे देखें। लकीरों-की लम्बाईको नपवाकर पूछो कि इनमें आपसमें कोई सम्बंध है या नहीं। तख्तेपर प्रत्येककी लम्बाईके लिखवानेसे विद्यार्थियोंको मालूम हो जायगा कि पहली दूसरीसे और तीसरी चौथी-से दुगनी लम्बी है। परन्तु, इन चारोंका आपसमें क्या सम्बंध है?

उ० —अब का सड से अनुपात = कख का गघ से अनुपात।

समानुपातका नियम

अब विद्यार्थियोंसे पूछो कि यदि अब, सड, कख, और गघ की लम्बाईयां समानुपातीय हों और यदि अब = ३ इंच, सड = ५ इंच और कख = ६ इंच तो गघ की लम्बाई क्या होगी? विद्यार्थियोंको स्मरण दिलाओ कि समानुपातमें दोनों भिन्न बराबर होते हैं तो।

पहिले भिन्नका अंश × दूसरेका हर = दूसरे भिन्न का अंश × पहिले का हर।

चूंकि $\frac{अब}{सड}$ और $\frac{कख}{गघ}$ ये दोनों भिन्न तुल्य हैं, इसलिए $\frac{३}{५}=\frac{६}{गघ}$

अथवा ३ गघ = ५ × ६

= ३०

∴ गघ = १० इंच

इसी भांति विद्यार्थियोंको समत्रिभुजोंके आधार तथा लम्ब नापनेको कहो। अब आधारों तथा लम्बोंके अनुपात बनवाकर बताओ कि दोनों अनुपात बराबर हैं। पूछो कि इससे क्या सिद्ध हुआ? बताओ कि समत्रिभुजोंमें आधार और लम्ब समानुपातीय होते हैं। अब प्रश्न करो कि यदि अब आधार = ४ इंच और सड = ८ इंच तथा अब परका लम्ब = ३·६ इंच हो तो दूसरा लम्ब कितना होगा?

इसी भांति चार घनोंको टेबलपर रख कर उनकी ऊँचाइयां नापनेको कहो। क्या ये ऊंचाइयां समानुपातीय हैं? उत्तर–हां। अब यदि पहिलेकी ऊंचाई ३ इंच, दूसरेकी ६ इंच और तीसरेकी ८ इंच हो तो चौथेकी ऊंचाइ कितनी होगी? विद्यार्थी स्वतः नापकर देखें और गणितद्वारा उत्तर निकालकर दोनोंका मिलान करें। इस प्रकार नाना प्रकारके उदाहरण देकर समानुपात-का आशय और नियम ख़ूब समझा दो।

समानुपातका उपयोग, त्रैराशिक

पाठकोंको मालूम होगा कि त्रैराशिकके प्रश्न

निकालनेमें समानुपातके तत्वको उपयोग करना पड़ता है। तीन दी हुई राशियोंकेद्वारा चौथी अदृष्ट राशिको निकालना यही त्रैराशिकका मतलब है। यथार्थमें ये चारों राशियां समानुपातीय होती हैं विद्यार्थियोंका किसी दिये हुए प्रश्नमें यही जानना मुख्य है कि कौन कौन राशियां हैं और वे किस प्रकार समानुपात द्वारा जुड़ी हैं। इस प्रकार राशियोंको ढूंढने और समानुपात बनानेमें विद्यार्थियोंको निस्संदेह बुद्धि लगानी पड़ेगी। यदि समानुपात योग्य रीतिसे नहीं बनाया गया तो उत्तर भी असंभव आवेगा।

उदाहरण

निम्नलिखित उदाहरणोंसे स्पष्ट मालूम हो जायगा कि मास्टरको त्रैराशिकके प्रश्नोंमें विद्यार्थियोंको किस भांति सहायता देनी चाहिये।

उदा० १ - यदि ४ गायोंको खिलानेमें ४५) रु० ख़र्च होते हैं तो १० गायोंका क्या ख़र्च होगा? विद्यार्थियोंको समझाओ कि यदि गायोंकी संख्या दुगनी हो जाय तो ख़र्चा भी दुगना होगा, यदि गायें तिगुनी हों तो ख़र्च भी तिगुना होगा। पूछो कि राशियां कै हैं?

उ०—४ गायें, ४५) रु० १० गायें और १० गायोंका ख़र्चा।

दो अनुपात बनाओ—उ० $\frac{४ \text{ गायें}}{१५ \text{ गायें}}$, $\frac{४५ \text{ रु}}{१५ \text{ गायोंका ख़र्चा}}$

समानुपात बनाओ— $\frac{४ \text{ गायें}}{१५ \text{ गायें}} = \frac{४५}{\text{क. रु.}}$

नियमानुसार $४ \text{क} = १५ \times ४५$

$\therefore \quad \text{क} = \frac{१५ \times ४५}{४} = \text{इत्यादि}$

उदा० २-यदि ३) रु० में २० सेर गैहूं आते हैं तो ५) रु० में कितने गैहूं आवेंगे?

विद्यार्थियोंसे पूछो कि ६) में कितने गैहूं आवेंगे? उ०-४० सेर। ६) में कितने? उ०-तिगुने अथवा ६० सेर। १॥) में कितने? उ०-आधे अथवा १० सेर।

अर्थात् रुपया और गैहूंका वज़न समानुपातीय हैं। इसलिए पहिले प्रश्नकी रीति द्वारा

$$\frac{\text{रु०३}}{\text{रु०५}} = \frac{२० \text{ सेर}}{\text{क सेर}}$$

$\therefore$ इत्यादि

दो छड़ियोंको धूपमें गाड़कर, उनकी छाया जो ज़मीनपर गिरती हो विद्यार्थियोंसे नपवाओ और उन्हींसे निकलवाओ कि छड़ियोंकी ऊंचाइयां और उनकी छायाएं समानुपातीय है। किसी झाड़की छायाको नपवाकर योग्य त्रैराशिक बनवाओ और उसकी ऊंचाई निकलवाओ।

नीचे लिखे उदाहरणोंमें यदि विद्यार्थी अपनी बुद्धिसे काम न लेकर समानुपात बनावेंगे तो उत्तर बड़े हास्यास्पद आएँगे।

१—यदि १ बीस सालका लड़का १ घन्टेमें ४ मील दौड़ता है तो ४०, ६०, और ८० सालके बुड्ढे क्रमशः १ घन्टेमें कितना चल सकेंगे?

२—यदि ६ महीनेका बालक ६ बार भोजन करता हो तो ६ सालके बालकको कै बार भोजन करना होगा?

आरटीज़ियन या तहतोड़कुएं

[ले०-मुख़्त्यारसिंह.]

तहतोड़ कुएं उस प्रकारके कुओंको कहते हैं, जिनका पानी स्वभावतः इतना ऊंचा हो कि वह पृथ्वीके धरातलपर स्वतः निकलकर बहने लगे। साधारण कुओंकी तरह इन तहतोड़ कुओंसे पानी निकालनेकेलिए यंत्रोंकी आवश्यकता नहीं होती। यदि पृथ्वीको खोदना आरंभ करें, तो कुछ दूर चलकर जल निकलने लगेगा। यह प्रश्न हो सकता है, कि यह जल कहाँसे आया? इस प्रश्नके उत्तरकेलिए हमें यह विचार करना योग्य है, कि वर्षा होनेपर पृथ्वीपर पड़ा हुआ जल ३ भागोंमें विभक्त हो जाता है। कुछ भाग

Physical geography भौतिक भूगोल]

पृथ्वीपरसे नदी, और नालों में, बहकर समुद्रमें चला जाता है। कुछ भाग पृथ्वी सोख लेती है, जिसका प्रमाण यह है, कि यदि वर्षाके उपरान्त पृथ्वीको खोदें तो बहुत नीचेतक पृथ्वी गीली मिलेगी। इन दोनों भागोंके अतिरिक्त वर्षाका कुछ भाग सूर्य्यकी किरणों द्वारा वाष्प बन कर वायु मंडलमें विचरने लगता है। प्रथम और तृतीय भागोंसे इस समय हमें कुछ प्रयोजन नहीं है। हम केवल दूसरे भागके विषयमें कुछ लिखना चाहते हैं।

प्रवेशनीय और अप्रवेशनीय मिट्टी

पृथ्वी क्या है? केवल अनेक प्रकारकी मिट्टियोंकी तहोंका संगठन मात्र है। इनमेंसे बहुतसी मिट्टियाँ ऐसी होती हैं, जिनमें पानी भली भांति पैठ जाता है, और बहुतसी ऐसी जिनमें पानी बिलकुल नहीं पैठता। उदाहरणकेलिए रेत लीजिये। इसमें पानी भली भांति बैठ जाता है, किन्तु चिकनी मिट्टीमें बहुत कम पैठता है, और चूने कंकर तथा स्लेटकी मिट्टीमें बिलकुल भी नहीं रमता। इस प्रकार सब मिट्टियोंको हम दो भागोंमें विभाजित कर सकते हैं। एक वे जिनमें पानी पैठ जाता है, और दूसरी वे जिनमें पानी नहीं पैठता। इनको हम प्रवेशनीय और अप्रवेशनीय मिट्टी कह सकते हैं।

चोएका पानी क्या होता है

जब वर्षाका पानी ऐसे स्थानपर पड़ता है कि जहांकी मिट्टी प्रवेशनीय हो, तो वह नीचे चला जाता है, पर यदि मिट्टी सख़्त होती है तो नीचे नहीं जाता। पृथ्वीको खोदते हुये हम ऐसे स्थलोंपर पहुँचते हैं, जहांकी मिट्टीमें पानी बिलकुल नहीं पैठ सकता, और प्रायः इन्हीं स्थलोंपर पहुंचकर वर्षाका पानी, जिसे चोएका पानी भी कहते हैं, एकत्रित हो जाता है अर्थात् चोएका पानी उस स्थलपर एकत्रित मिलता है जहांतक वह छन छनकर पहुँचा हो पर जहांसे नीचे और नहीं जासकता हो। इसी गुणके कारण प्रायःदेखा गया है कि कुओंका पानी साधारण वर्षाऋतुमें धरातलसे बहुत ऊंचा हो जाता है, और अनेक कुओंमें तो इतना ऊंचा चढ़ जाता है कि बिना किसी प्रयासके ही कुएंसे पानी निकाला जा सकता है। अब पाठकोंकी समझमें आ गया होगा कि चोएका पानी केवल पृथ्वीपर पड़े हुए पानीका रूपान्तर है।

अप्रवेशनीय मिट्टीके नीचेका पानी

यदि पृथ्वी को खोदते खोदते अप्रवेशनीय मिट्टीपर पहुँचकर भी खुदाई जारी रखें, तो एक दम इस मिट्टीके टूट जानेपर कभी कभी नीचेसे इस वेगसे पानी निकलता है कि खुदे हुये स्थानमें यह पानी बहुत ऊंचा चढ़ जाता है, और यदि इस पानीको बड़ी तेज़ीसे भी निकालें तो भी कम नहीं होता। इससे यह स्पष्ट है, कि यह पानी चोएका पानी नहीं है। यदि चोएका पानी होता तो यह अप्रवेशनीय मिट्टीके नीचे कैसे आ जाता? अब प्रश्न हो सकता है कि क्या हमारी पृथ्वीके नीचे ऐसी ही पानीकी धारायें बहती हैं जैसी कि पृथ्वीपरकी नदियाँ। यह नितान्त ठीक है किन्तु इससे भी संदेहकी निवृत्ति नहीं होती। यदि ऐसा ही होता तो यह तो संभव था कि अप्रवेशनीय मिट्टीके काट डालनेपर पानीकी नदी मिल जाती, पर पानी इतना ऊंचा किस प्रकार चढ़ सकता है? नदियोंका पानी स्वयम ऊंचा नहीं चढ़ता। उसको ऊंचा चढ़ानेकेलिए अनेक उपायोंका सहारा लेना पड़ता है। पानी किसी स्थानपर डाल देनेसे एक ही धरातलपर रहता है—यह अटल सिद्धान्त है। यदि पृथ्वीके नीचे कोई ऐसी शक्ति, जो इस जलको ऊंचा फेंक सके, उपस्थित न हो,तो पानी का ऊंचा चढ़ना असंभव है। वह शक्ति क्या है? यह हम नीचे दिये हुए उदाहरणसे स्पष्ट करेंगे।

पानी पृथ्वी तलतक कैसे पहुंचता है?

दो पात्र लेकर उनके नीचेके भागोंमें एक नल लगाइये जिससे एक पात्रमें पानी डालनेपर इस नल

द्वारा दूसरे पात्रमें जा सके। यदि इसमेंसे एक पात्र बहुत ऊंचेपर रक्खा जाय और दूसरा पात्र नीचेपर, और ऊंचेवाले पात्रको पानीसे भर दें तो नीचेके पात्रमें पानी आकर बहुत ऊंचा उठेगा। इसी सिद्धान्तपर अनेक फव्वारे बनाये जाते हैं। साधारण फव्वारोंमें एक ऊंचे स्थानसे पानी डाला जाता है, और फिर यह पानी किसी नीचे स्थानपर खोल दिया जाता है। पानी खुलनेके स्थान तथा ऊंचे पात्रके पानीके नलमें जितना अधिक अन्तर होता है फव्वारा उतना ही अधिक ऊंचा उठता है। फव्वारेमेंसे पानी उसकी टोंटी खोलनेपर ही निकलता है। सिद्धान्त यह निकला कि इन कुओंके पानीका सोता उच्च स्थानपर होनेसे यह संभव है कि पानी कुओंमें अप्रवेशनिय मिट्टीके काट डालनेपर ऊंचा चढ़ सके। इतना समझ लेनेपर हम पहिली बातकी ओर फिर दृष्टि डालना चाहते हैं। जिस प्रकार साधारण पृथ्वीपर वर्षा होती है उसी प्रकार बल्कि उससे कहीं अधिक पहाड़ोंपर होती है। पहाड़ोंकी वर्षाका जल बड़ी बड़ी झीलोंमें एकत्रित होता रहता है और कुछ भाग नदियों द्वारा तथा सूर्य्यकी रश्मियोंद्वारा पहाड़से निकल जाता है। जिस प्रकार मैदानोंमें केवल वर्षाका ही पानी पृथ्वीपर पड़ता है, पहाड़ोंमें बर्फके पिघलनेसे भी ग्रीषमऋतुमें पानी पड़ता रहता है। इन दोनों बातोंसे पाठक अनुमान कर सकते हैं, कि हमारे साधारण मैदानोंसे सहस्रों फुटकी ऊंचाईपर अनेक बड़ी बड़ी झीलें हैं, जिनमें असीम मात्रा पानीकी भरी पड़ी है, तथा अनेक स्थलोंपर जो हमसे सहस्रों फुट ऊंचे हैं पानीकी बर्फ़ पिघलने अथवा वर्षा होनेसे पृथ्वी पानी सोखती रहती है। अब यह संभव है कि ऐसे स्थानोंके नीचे बहुत दूरतक प्रवेशनीय मिट्टी उपस्थित हो। यदि ऐसा हो तो यह पानी धीरे धीरे नीचेकी ओर प्रवेश करने लगेगा और उस स्थानतक पहुँचेगा जहाँ अप्रवेशनीय मिट्टीकी तह होगी फिर इस अप्रवेशनीय मिट्टीके समानान्तर बहने लगेगा। यदि कुछ दूर चलकर फिर प्रवेशनीय मिट्टी मिलजायगी तो वहांसे फिर नीचे जाने लगेगा इसी प्रकार बहता बहता सहस्रों फुट नीचेतक बड़ी मोटी धारामें यह पानी पहुंचता है, और उपरोक्त नियमानुसार स्थान पानेपर इतना ऊंचा चढ़ जाता है जितने ऊंचे धरातलसे वह पहाड़ोंमेंसे उतरने लगा था। इस प्रकार यदि हम पृथ्वीको खोदते खोदते ऐसे स्थानोंपर पहुंचें जहां कि पानीका सोता बहुत ऊंचे स्थानसे आता हो तो पानी अप्रवेशनीय मिट्टीके काटते ही हमारे पृथ्वीके धरातलसे भी कहीं ऊंचा स्वयम् उठ जायगा और संभव है कि उसकी मात्रा इतनी अधिक हो कि वह सहस्रों बीघे धरतीकी सिंचाई कर सके।*

तहतोड़ या पातालतोड़ कुएं

इस प्रकार यह अटल सिद्धान्त इस बातका पता देता है, कि पहाड़ोंके समीपवर्त्ती स्थानोंमें पृथ्वीके खोदनेसे यह बहुत संभव है कि हम ऐसे स्थानपर पहुँचें, जहाँसे पानी इतना ऊंचा उठ सके, कि हमको सिंचाईकेलिए किसी यंत्रकी आवश्यकता न हो। साधारणतया यह आश्चर्यजनक और असंभव सो बात प्रतीत होती है किन्तु संसारके अनेक स्थलोंपर इस सिद्धान्तके अनुसार कार्य्य किया गया है और सफलता प्राप्त हुई है। अफ्रीका जैसे देशमें इस कार्य्यसे सफलता हो सकी है। सत्य है कि भारतवर्षमें अभीतक कोई ऐसा परीक्षण नहीं किया गया। किन्तु भारत सरकारका ध्यान अनेक वर्षोंसे इस ओर आकर्षित किया जा रहा है। कई वर्ष हुये कि आगरेकी म्युनिसिपैलिटीने ऐसा एक कुआ खोदनेका विचार प्रकट किया था और कार्य्य भी आरंभ हो गया था किन्तु कई सौ फुट नीचे ऐसी चट्टान मिली जिसका काटना बड़ा ही कठिन

*इसी सिद्धान्तसे साधारण झरनोंकी उत्पत्ति भी समझमें आ जायगी।

पाया गया। इस प्रकारकी चट्टानें संसारके और स्थलोंपर भी मिली हैं और उनके काटनेमें कठिनता हुई है, किन्तु आगरा म्यूनिसिपैलिटीके पास इतना पर्य्याप्त धन नहीं था कि वह ऐसे यन्त्रोंका प्रयोग कर सकती जिससे वह चट्टान कट सके। सरकारी कर्म्मचारियोंने पहिलेसे ही इस बातका निश्चय कर बता दिया था, कि इस प्रकारकी चट्टान निकलनेकी संभावना है। किन्तु उनका पूर्ण विश्वास था कि उस चट्टानसे आगे उपरोक्त प्रकारका सोता अवश्य मिलेगा। अब प्रत्येक वर्षके दुर्भिक्षने भारत सरकारका ध्यान इस ओर विशेष रूपसे आकर्षित किया है और हमें यह ज्ञात कर हर्ष होता है कि सरकारने इस परीक्षणको पूर्ण रीतिसे करनेकेलिये बीड़ा उठाया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि परमात्मा, सरकारके इस उद्योगको फलीभूत करेंगे। इस प्रकारके कुएं बनानेकेलिए प्रायः ४ ईंचीसे १० ईंचीतक व्यासके नल गला दिये जाते हैं, और इनको बहुत नीचे उतार दिया जाता है। यद्यपि साधारण मनुष्यकी सामर्थ्यसे यह कार्य्य बाहर है किन्तु बड़ी बड़ी रियासतें तथा सरकार विशेषकर ऐसे स्थानोंमें जो पहाड़के समीप हैं, परीक्षणकर स्वयम् लाभ उठा सकती हैं और भारतवर्षकी कृषिको उन्नतिकर सकती हैं।

मौलिकोंकी आत्मकथा

[ले० गोपालस्वरूप भार्गव, एम.एस-सी.]

(१)

मौलिक और यौगिक

संसारमें जितने पदार्थ पाये जाते हैं वे सब दो कोटियों—अर्थात् मौलिक और यौगिक—में रखे जा सकते हैं।

जिन पदार्थोंमेंसे न तो कोई अन्य पदार्थ निकाला जा सकता है, न जो दो या अधिक पदार्थोंके सर्वाङ्ग संयोगसे बनाये जा सकते हैं, मौलिक कहलाते हैं।

जो पदार्थ दो या अधिक पदार्थोंके संयोगसे बनते हैं, या जो दो या अधिक नए पदार्थोंमें विभक्त हो सकते हैं, यौगिक कहलाते हैं।

यौगिकोंके गुण उनके संगठनपर निर्भर होते हैं, और यदि हम किसी यौगिकका संगठन जानते हों, तो उसके विषयमें बिना विशेष परीक्षाएँ किए भी बहुत कुछ जान सकते हैं, यद्यपि यह स्मरण रहे कि परीक्षाओंद्वारा ही जो ज्ञान प्राप्त होता है वही विश्वसनीय और श्रेष्ठ है। इस कामकेलिए यह परमावश्यक है कि हम यौगिकोंके अङ्गीय मौलिकों या अवयवोंके गुणोंसे भली भांति परिचित हों। यहांपर हम इस विषयपर अधिक विचार न करेंगे, केवल उसका इतना ज़िक्र अपने प्रतिपादित विषयकी उपयोगिता मात्र दर्शानेके लिए किया था। हमारा प्रतिपादित विषय है 'मौलिकोंकी आत्मकथा'। इस लेखमालामें हम केवल उपयोगी मौलिकोंपर ही विचार करेंगे, जिससे यौगिकोंके अध्ययनमें हमें आगे चलकर सुविधा हो। यदि पाठक महाशय इस लेखमालाको ध्यानसे पढ़ते रहेंगे, तो सम्भव है कि इस सेवकका उद्देश्य—अर्थात् पाठकोंके सामने रसायनशास्त्रका सीधा सादा सरल (सम्भवतः रोचक) विवरण प्रस्तुत करना—यत्किञ्चित् सफल हो।

अभिद्रवजन

इतिहास

लगभग चार सौ वर्षके पहिले एक बालकने कुछ जस्तेके टुकड़े एक कांचके बर्तनमें रखकर, उसे पतले गंधकके तेज़ाबसे मुंहके कुछ नीचे तक भर दिया था। तेज़ाबमें धातु गलने लगी और कुछ हवाके बुलबुले जल्दी जल्दी निकलने लगे। कुछ दिन बाद उसने अपने एक ग्रंथमें इस प्रयोगके सम्बन्धमें लिखा कि एक

वायु पैदा होती है जो आंधीके समान वेगसे निकलती है। इस व्यक्तिका नाम था पेरेसेल्सस। यह वास्तविक रासायनिकोंमें था—अर्थात् यह उस सम्प्रदायका अनुयायी था, जिसका उद्देश्य 'नीच' धातुओंको सोनेमें परिणत करनेकी रीति ढूंढ निकालना था। इसने तत्कालीन रसायनशास्त्रका उद्देश्य केवल रसायन ढूंढना मात्र न समझा बल्कि उसने अपने सहयोगियों को यह सिखलाया कि रसायनशास्त्रका यह भी लक्ष्य है कि नई नई ओषधियोंकी खोज करके रोगियोंका कष्ट कम करे और इस थोड़ेसे जीवनमें मनुष्योंको कर्तव्य पालन और सुखभोग करनेमें समर्थ करे। पेरेसेल्ससने उपरोक्त प्रयोग पर अधिक ध्यान न दिया, पर लगभग १०० सालके उपरान्त (Von Helmont) वनहेलमंटने इस वायुके गुणोंकी कुछ जांच की। उसने अनुभव किया कि यदि निकलती हुई वायुके पास, कोई जलती हुई चीज़ ले आएँ तो वायु भी भकसे जल जायगी। (सं १६६५ विक्रमीके लगभग)

इस वायु या गैसकी पूरी परीक्षा करना केवेन्डिशके भाग्यमें लिखा था। वनहेलमन्ट इस वायु विशेषमें और अन्य ज्वलनार्ह गैसोंमें कुछ अंतर नहीं समझता था, पर केवेन्डिशने प्रयोगोंद्वारा दिखलाया कि यह एक निराली ही गैस है जो धातुओंको तेज़ाबोंमें गलानेसे पैदा होती है। लेवोयसियरने इस गैसका नाम हैड्रोजिन रखा। इसीका नाम अभिद्रवजन है।

प्रयोगशालामें अभिद्रवजन बनानेकी विधि

प्रत्येक पदार्थ सहस्रों रीतियोंसे बनाया जा सकता है, पर दो प्रकारकी रीतियां मुख्य मानी जाती हैं।

एक तो प्रयोगशालामें बनानेकी विधि अर्थात् प्रयोगशाला-विधि दूसरी कारखानोंमें बनानेकी विधि अर्थात् औद्योगिक-विधि। प्रयोगशाला-विधिमें केवल दो बातोंपर ध्यान रखा जाता है अर्थात् पदार्थके जल्दी और शुद्ध अवस्थामें तैय्यार होने पर। इस विधिमें खर्चका खयाल कम होता है—केवल शीघ्रता शुद्धता और सुविधाका ही विचार रहता है। प्रत्युत् औद्योगिक विधिमें केवल ख़र्चेका ख्याल रहता है। पदार्थ सस्ते तरीकेसे बने, चाहे जितनी देरमें बने। अतएव हम उपरोक्त दोनों तरीकोंसे अभिद्रवजन तैय्यार करनेकी तर्कीब बतलाएँगे।

एक वुल्फ-बोतल (वुल्फ द्वारा आविष्कृत बोतल) अर्थात् दो मुही बोतल लो। उसके एक मुंहमें, एक छेद वाली काग लगाकर एक कलिका नली (क) उसमें लगा दो। दूसरे मुंहमें एक निर्गम नलिका (न) जिसका आकार चित्र १ से ज्ञात होगा, लगाओ। बोतलमें (ब) पहिले कुछ दानेदार जस्तेके टुकड़े आहिस्तासे डाल दो और तदनन्तर कलिका नलीमेंसे इतना पानी छोड़ो कि सब जस्तेके टुकड़े और क का निचला सिरा ढक जायं। निर्गम-नलिका का छुटा हुआ सिरा एक तसलेमें पानी तलके नीचे, रखो। इस तसलेमें एक प्याली रखो, जिसमें दो छेद हों; एक पार्श्वमें, जिसमें होकर निर्गम नलिका प्रवेश करे और दूसरा पेंदेमें जिसपर वायुघट (व) औंधाकर रखे जा सकें। पहले वायुघट-

चित्र १
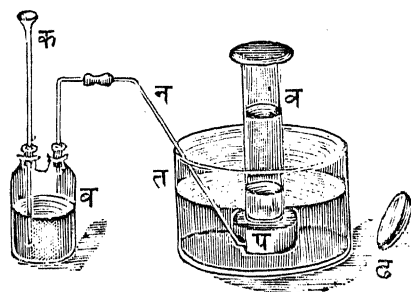
को पानीसे लबालब भरो, फिर कांचके ढकनसे (ढ) जिसपर चर्बी लगी हो, इस भांति बन्द करो कि पानीके ऊपर वायुके बुलबुले न रह जायं। अब

वायुघट औंधाकर तसलेमें—जिसमें औंधी हुई प्याली (संग्रह-प्याली bee hive shelf) के ऊपर तक पानी भरा हो--रख दो और ढक्कनको निकाल लो। अब क द्वारा गन्धकका तेज़ाब डालो, यहां तक कि वायु वेगसे निर्गमनली या निगालो द्वारा निकलने लगे।

अब एक परखनली पानीसे तसलेमें डुबोकर भर लो और संग्रह--प्यालीके छिद्रपर औंधा दो। [जबतक उसका मुंह पानी तलके नीचे ही रहेगा। नलीका पानी नहीं उतरेगा,] ज्यों ज्यों गैस नलीमें चढ़ती जायगी, पानी उतरता जायगा। जब नली बिलकुल भर जायगी, तब गैस इधर उधर निकल भागेगी। नलीका मुंह अंगूठेसे बन्द करके किसी लम्पके पास लाकर अंगूठा हटा लो। सम्भवतः हलका सा धड़ाका होगा और गैस जल जायगी। फिर नली-को उपर्युक्त रीतिसे भरकर परीक्षा करो, जब देखो कि गैस शान्तिसे जलती है, तो घटको आहिस्तेसे उठाकर संग्रह-प्यालीपर रख दो। जब घट भर जाय तो उसका मुंह ढक्कनसे बन्द करके घटको मेज़पर औंधा ही रख दो (औंधा क्यों ?)

इस भांति कई घट गैसके भर लो, फिर नीचे दी हुई परीक्षाएँ करो।

(१) एक सरकण्डेका टुकड़ा जलाओ और उसे एक घटमें घुसाओ। परीक्षा करनेके लिए घट-को बाएँ हाथमें इस प्रकार थामो कि उसका मुंह नीचेको रहे, फिर उसका ढकना हटा लो और जलता हुआ सरकंडा वायु-घटमें घुसाओ। देखोगे कि घटके मुखपर वायु जल रही है--और फ़लीता बुझ जाता है।

अतएव गैस ज्वलनार्ह है, पर उसमें कोई वस्तु नहीं जल सकती।

(२) एक अभिद्रवजनका औंधा हुआ घट बाएँ हाथमें लो, उसका ढकना दाएं हाथसे हटा कर, एक मामूली खाली (ख़ाली ?) घट दाएँ हाथमें औंधाकर थामो। अब इसके नीचे अभिद्रवजनका घट इस प्रकार लाओ जैसा चित्रमें दिखलाया है [चित्र २]। थोड़ी देर बाद दोनों घटोंको मेज़पर रखो या बारी बारीसे किसी जलती लम्पके पास लाओ। दाएं हाथके घटमें ज्वलनार्ह वायु पाई जायगी और बाएँमें साधारण हवा।

स्पष्ट है कि अभिद्रवजन ऊपर-के घटमें नीचेको ओरसे ऊपरकी तरफ़ उंडेल दी गई। अतएव अभि-द्रवजन वायुसे हलकी है, हलका पदार्थ ऊपरकी ओर चढ़ता ही है। वायु भारी है, ऊपरके घटमेंमेंसे उतरकर नीचेके घटमें आ गई।

चित्र २

(३) किसी घटको तीन चौथाईसे अधिक अभिद्रवजनसे भरकर, संग्रह-प्यालीपरसे उठा लो, ताकि पानी गिर जाय और कुछ हवा उसमें भर जाय। अब यदि इस घटवाली गैसको जलाओ तो धड़ाका होगा। अतएव यह गैस साधारण वायुसे मिलकर शान्तिसे नहीं जलती वरन् धड़ा-का करती है।

(४) रबरनली परसे निर्गम-नलीका निचला भाग निकाल लो और दूसरे भागकी शक़लकी दूसरी नली जोड़ दो, पर इसका मुंह ऊपरको कर दो। किसी सूखे घटको इस नलीपर औंधा दो, थोड़ी देरमें घटमें हलकी अभिद्रवजन एकत्रित हो जायगी और भारी हवा नीचे उतरकर निकल जायगी। अब घटमेंकी गैस जलाओ, देखोगे कि घटकी दीवालोंपर जलवाष्पकी बहुत हलकी तह जम गई है, जिससे घटका कांच थोड़ी देरकेलिए धुंधला हो जाता है।

प्रयोगकी व्याख्या

प्रायः सभी अम्लों वा तेज़ाबोंमें अभिद्रवजनका अंश रहता है। जब धातुओंको अम्लोंमें गलाते हैं तो अभिद्रवजनके परमाणु तो अम्लोंमेंसे निकल आते हैं और उनके स्थानपर धातुओंके परमाणु आदिष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार अभिद्रवजन और एक नया यौगिक—लवण—बन जाते हैं। अभिद्रवजन तो घटोंमें ऊपर दी हुई रीतिसे इकट्ठी कर सकते हैं, अन्यथा बोतलमेंसे निकल जायगी, अब देखना यह है कि और भी कोई पदार्थ बना या नहीं।

जो द्रव बोतलमें बचा है, उसे नितारकर, छान लो। तदनन्तर लोहेकी तिपाईपर तारकी *जाली रखकर, एक चीनीकी प्याली रखो और द्रव उसमें उंडेल दो। नीचे स्पिरिटलम्प रखकर गरम करो। शीशेकी कलमसे चलाते जाओ, जब देखो कि कलमको बाहर निकालने और फूंकसे ठंडा करनेपर उसपर कुछ जम जाता है, तो चिमटेसे प्याली उतारकर एक तरफ़ रख दो। दूसरे दिन बड़े बड़े रवे प्यालीमें मिलेंगे। दो एक रवे निकाल कर, जल्दीसे पानीसे धो डालो (यदि देरतक पानीमें रहेंगे तो पानीमें घुलकर बह जायंगे)। फिर सोख़्तेके टुकड़ेमें रखकर सुखा लो।

छाननेकी और गरम करनेकी विधि नीचे दिये हुए चित्रोंसे स्पष्ट हो जायगी। [देखो विज्ञान प्रवेशिका भाग २ पृष्ठ १८०] इस पदार्थको यशद गन्धेत कहते हैं।

चित्र ३

अब हम ऊपर दिये हुए प्रयोगकी प्रक्रियाको यों लिख सकते हैं:—

गन्धकाम्ल + जस्ता = यशदगन्धेत + अभिद्रवजन (१)
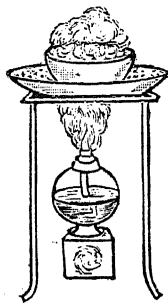
नोट—जब द्रव गाढ़ा हो जाय या उचटने लगे तो जल कुण्डी या रेतदार तवेपर गरम करो।

अणु और परमाणु

प्रत्येक पदार्थके छोटे छोटे टुकड़े अणु कहलाते हैं। यह इतने छोटे होते हैं कि इञ्चभर जगहमें पचास लाख सटाकर रखे जा सकते हैं। यौगिकों और मौलिकोंके अणु होते हैं। यौगिकोंके
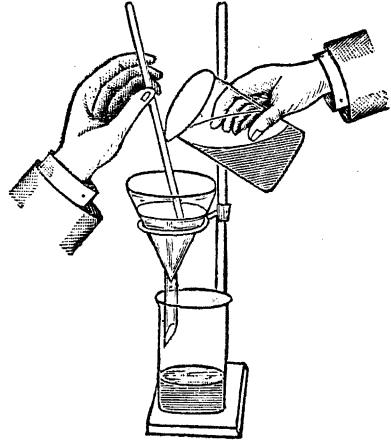
चित्र ४

अणुओंमें जो मौलिकोंके और भी छोटे छोटे कण पाये जाते हैं, वे परमाणु कहलाते हैं।

मौलिकोंके अणुओंमें एक ही प्रकारके (उस मौलिकके ही) परमाणु पाये जाते हैं, पर यौगिकोंमें उनके अङ्गी मौलिकोंके परमाणु पाये जाते हैं।

प्रयोगोंद्वारा अनुमान कर सकते हैं कि अमुक यौगिकके एक अणुमें किस किस मौलिकके कितने कितने परमाणु विद्यमान हैं। अतएव यदि प्रत्येक मौलिकके परमाणुका संकेत मान लें तो यौगिकोंके अणुओंका भी संकेत लिख सकते हैं। प्रयोगोंसे मालूम हुआ है कि गन्धकाम्लके एक अणुमें दो परमाणु अभिद्रवजनके, एक गन्धकका और चार ओषजनके होते हैं। इनके परमाणुओंके संकेत हैं अ, ग, और ओ। अतएव गन्धकाम्लका अणु-संकेत या सूत्र होगा अ₂ गओ₄ (H_2SO_4) यशदका अणु एक-परमाणविक है। अतएव उसका संकेत हुआ य। इसी भांति यशद गंधेत

और अभिद्रवजनके संकेत हुए य ग ओ$_4$ और अ$_2$।

अब रासायानिक प्रक्रियाको सूक्ष्म रीतिसे यों लिख सकते हैं:—

$$अ_2 (ग\ ओ_4) + य = य(ग\ ओ_4) + अ_2$$

समीकरण(१)से मिलाकर देखनेसे समी० (२) की सरलता स्पष्ट हो जायगी।

इन संकेतों या सूत्रोंसे एक और भी लाभ है। प्रत्येक परमाणुका आपेक्षिक भार निकाला जा सकता है। (सूक्ष्मातिसूक्ष्म होनेके कारण उन्हें तौलकर वास्तविक भार नहीं निकाल सकते)। अतएव अणुओंका भी आपेक्षिकभार निकाल सकते हैं। उपरोक्त उदाहरणमें आपेक्षिक परमाणु-भार इस भांति हैं।

अ = १, ग = ३२, ओ = १६, य = ६५; अतएव गन्धकाम्लका अणु-भार हुआ १ × २ + ३२ + १६ × ४ = ६८ और यशद गन्धेत और अभिद्रवजनके अणुभार हुए ६५ + ३२ + १६ × ४ = १६१ और १ × २ = २।

अतएव समीकरण (२)यह भी बतलाता है कि ६८ भाग गंधकाम्ल ६५ भाग यशदको गलाकर १६१ भाग यशद गंधेत और २ भाग अभिद्रवजन उत्पन्न कर सकते हैं।

अभिद्रवजनके बनानेकी अन्य रीतियां

(१) प्रायः कोई भी धातु किसी भी तेज़ाबमें गलाई जाय तो यह गैस पैदा होगी।

इस नियमके अपवाद अम्लोंमें शोरेका तेज़ाब और कुछ बहुत ही निर्बल अम्ल हैं, पर शोरेका तेज़ाब भी मग्निसियम धातुके साथ यही गेस पैदा करता है।

(२) कुछ धातु पानीके साथ मिल जाती हैं और उसमेंसे अभिद्रवजन निकाल देती हैं। जैसे सोडियम आदि, साधारण तापक्रमपर और मग्निसियम, लोह आदि उच्च तापक्रमपर।

$$२\ सो + २\ अ_2ओ = २\ सो\ अ\ ओ + ओ_2$$

बाएँको रखा हुआ अङ्क अणुओंकी संख्याका द्योतक है। ऊपर दिये हुए समीकरणका अर्थ हुआ दो अणु सोडियमके पानीके दो अणुओंके साथ मिलकर दो अणु दाहक सोडाके और एक अणु उज्जनका पैदा करते हैं।

अभिद्रवजनके बनानेकी औद्योगिक विधि

जब जल वाष्प उत्तप्त लोहेपर होकर निकलती है तो लोहा पानीमेंकी ओषजनके साथ मिलकर लोह-ओषित बनाता है और अभिद्रवजन कुछ अपरिवर्तित वाष्पके साथ मिली हुई इकट्ठी की जा सकती है। लोहेकी एक लम्बी नाल ली जाती है (जैसे बन्दूककी)। इसे भट्टीमें इस प्रकार रखते हैं कि दोनों छोर बाहर निकले रहें। एक सिरा किसी बर्तनसे कांच नली या रबर-नली द्वारा जोड़ दिया जाता है, जिससे बर्तनमें खौलते हुए पानीकी भाप गरम नालमें होकर जाय। दूसरा सिरा किसी वायु-संग्रह-यंत्रसे (gas-holder) जोड़ दिया जाता है।

अभिद्रवजनके चमत्कार

अभिद्रवजन एक बिना रंग, स्वाद या गन्धकी, संसारके सब पदार्थोंसे हलकी गैस है। पानीमें घुलती नहीं, प्राणोंकी रक्षा नहीं करती। आग दिखाने पर जल जाती है और यदि पहिले ही ओषजन या वायुसे मिला दी जाय तो बड़े ज़ोरका धड़ाका होता है।

एक बार एक लोहेके कारखानेमें पिघला हुआ लोहा भट्टियोंमेंसे उन नालियोंमें छोड़ा गया, जहाँपर वह बड़े बड़े शहतीरोंमें जम जाया करता था, पर अभाग्यवश उस दिन नालियोंमें कहींसे रिस कर पानी आ गया था। पिघला हुआ लोहा ज्योंहीं उस पानीके सम्पर्कमें आया कि अभिद्रवजन बनने लगी और नालियोंमें ज़ोर ज़ोरके धड़ाके होने लगे और कारखानेको क्षति पहुंची।

एक बार भारतवर्षके एक कालेजमें एक

अध्यापक अभिद्रवजनके कुछ प्रयोग दिखला रहे थे। गैस एक गैस-बैगमें भरी हुई थी और बेग अध्यापक महाशय ने बगलमें दबा रखा था जिससे दबाव डालकर गैस थोड़ी थोड़ी निकालते जायं। गैस शुद्ध न थी, उसमें वायु मिली हुई थी। बैगकी टोंटीके पास ज्योंही लौ दिखलाई गई कि अध्यापक महाशय गैस बैग समेत धड़ाकेके वेगसे दूर जाकर गिरे। इसी भांति एकबार एक गैस-भाण्डमें [gas-holder] धड़ाका हुआ और उसके लोहेके बाट छत्ततक उड़कर पहुंचे।

महाशयो यह तो हुईं क्षुद्र घटनाएं। अब ज़रा विचार कीजिये कि करोड़ों वर्ष पहिले, जब पृथ्वी मण्डल उत्तप्त वायव अवस्थामें था और उसमें लाखों मन अभिद्रवजन विद्यमान थी। ठंडे होनेपर जब अभिद्रवजन और ओषजनका संयोग होकर संसारके समुद्रोंका जल बना होगा तब कैसा भयानक शब्द और धड़ाका हुआ होगा। न मालूम उस भयङ्कर नादके कारण कितने भूमण्डलोंमें महाप्रलय हो गई होगी।

किसी पूर्व युगमें ज्वालामुखी पहाड़ोंमेंसे अभिद्रवजन बहुत परिमाणमें निकला करती थी और वायुमण्डलके ओषजनके साथ संयोग कर बराबर धड़ाके किया करती थी, उस समय घड़ी घड़ीपर धड़ाकोंका होना ऐसा मालूम होता होगा, जैसे कि ओषजन और अभिद्रवजनके विवाहमें शादियाने बज रहे हैं। अब भी गहरे समुद्रोंकी तलैटीमें ज्वालामुखी पहाड़ोंका सा रेता पाया जाता है, जिससे भी सिद्ध होता है कि सम्भवतः समुद्रोंका जल भी उसी अभिद्रवजनसे पैदा हुआ होगा जो किसी समयमें ज्वालामुखी पहाड़ोंमेंसे निकली होगी।

अब भी अभिद्रवजन पृथ्वीकी आन्तोंमें लोह-ओषितको लूटकर ओषजन छीन पानी बनाती रहती है और यही पानी गरम या उबलतो हुई दशा में कहीं कहीं पृथ्वीतल तक आ पहुंचता है। यह झरने (जीसर) गरम झरने कहलाते हैं। कहीं कहींपर वाष्प भी दिन रात निकलती रहती है।

अभिद्रवजन प्रश्वासमें, ज्वालामुखी या तेलके कुओंसे निकलने वाली गैसोंमें और वायुमण्डलमें, पाई जाती है। जो पृथ्वीसे गैसें निकलती हैं (प्राकृतिक गैसें natural gas) उनमें भी अभिद्रवजन मिलती है। चीजोंके सड़ने, या उनमें ख़मीर उठनेसे भी यह गैस थोड़ी मात्रामें पैदा होती है।

सूर्य तथा अन्य तारों नीहारिकाओं और ग्रहोंमें भी अभिद्रवजन विद्यमान है।

गृह शिल्पकी कठिनाईयां

[ले०-गोपालनारायणसेन सिंह, बी. ए.]

बँधी हुई और नियत आयसे मंहगीके दिनोंमें काम चलता न देखकर, जब हम घर घर दस्तकारी और कारीगरीका काम खोलना और उससे लाभ उठाना चाहते हैं तब सबसे बड़ी अड़चन यह पड़ती है कि माल बनायें तो सही, पर बेचें कहां और किसके हाथ। माना कि जैसे तैसे थोड़ीसी पूंजी जमा कर ली, दो चार सौ-की एक सस्ती मशीन या आला औज़ार खरीद लाये, रोज़के कामसे फ़ुरसत पाकर कुछ माल भी तैयार कर लिया—यह सब बड़े सुभीतेसे हो गया, क्योंकि लाभवश गांठका दाम लगा दिया। इसके उपरान्त घर अपना है जब ही निश्चिन्त बैठे काम बनाने लगे। घरमें कोई देखने भी नहीं आता कि हम क्या करते हैं। यदि धनका कष्ट है तो बिना अपनी प्रतिष्ठा गंवाये हम अपनी दशा सुधारनेका कुछ प्रयत्न स्त्री, बच्चे, बूढ़े सब मिलकर कर सकते हैं। पर भले आदमी कहलाते हुए हम सिरपर मालकी गठरी लादकर इस दूकानसे उस दूकानपर, दरवाज़े दरवाज़े, मारे मारे कैसे फिरें और इसपर भी क्या ठीक है कि माल

Industry उद्योग]

हमारा बिक ही जायगा और हम वृथा ही अपना स्वांग बनाकर घर न लौटेंगे। प्रायःविपत-की मारी विधवाएँ, बिगड़े रईस और "सफ़ेद पोश" आधे पेट खानेवाले दरिद्र दफ़्तरके बाबू, थोड़ी पूंजी लेकर ही संसारयात्रा करनेवाले साहसी युवा पुरुष जैसे ही लोग इस छोटी व्यव-सायकी धुनमें रहते हैं और उन्हें बहुधा बड़ा घाटा उठाना पड़ता है। इधर कितने ही मित्रोंके घर मैंने मोज़े बनिआइन और गुलूबन्द बुनने, बटन बनाने, और दवाइयोंकी टिकियां बनानेकी कलोंमें मकड़ियोंको जाला पूरते और ज़ंग लगते देखा है। मैंने उनसे पूछा भी है, क्यों भाई जब इसे चलाना ही नहीं था तो इसमें रुपया क्यों लगाया। उत्तर मिला—"बड़ा धोखा हुआ, कल बेचने-वाली कम्पनीने इश्तिहार दिया था कि हम तय्यार किया माल तुम्हारी तरफ़से बेच दिया करेंगे, पर यह एक चाल थी। जब हम कल मोल ले चुके और उससे माल बनाकर भेजा तो तरह तरहकी उसमें बुराईयां बताकर माल वापस करने लगे। दो चार बार देखा, हारकर माल ही बनाना छोड़ दिया, क्योंकि यहां कोई लेनेवाला नहीं, फिर किस भरोसे घरका आटा गीला करें।

यहां इसी संकट और निराशासे बचनेके कुछ उपाय बताये जाते हैं, कदाचित् हमारे व्यवहारी भाईयोंको उससे कोई सहारा मिले। पहली बात ध्यानमें रखने योग्य यह है कि जो माल हम तैयार करें, देशमें उसकी ख़ासी मांग वा चाह हो, क्योंकि जिस व्यवसायमें बाहरवाले दूरसे माल लाकर यहांपर नफ़ा उठा जाते हैं उसमें हमारा एक हिस्सा लेनेका यत्न सफल हो सकता है। ख़ैर जब यह देख लिया तो यह भी निश्चय कर लेना चाहिये कि हम बाज़ारकी दरसे कम किसी तरह अपना माल न बेचेंगे, नहीं तो इसमें बड़े बड़े झगड़े उपस्थित होते हैं। इस विषयमें यहांपर इतना ही कहा जा सकता है। अब माल बेचनेके कई ढंग हैं। उनमेंसे संक्षेपसे हम दोका नीचे उल्लेख करते हैं।

१-पहली विधि

माल तैयार करनेवाले सीधे उन आढ़तियोंके हाथ माल बेच डालें जो छोटे मोटे दुकानदारोंके साथ व्यवहार रखते आये हैं।

ऐसे आढ़तिये प्रायः हरएक किस्मके मालके लिए अलग अलग हुआ करते हैं। उसमें सबसे अधिक साख वाले आढ़तियेको अपने लिए ढूंढ़ना चाहिये। जब वह मिल गया और हमारे पास माल खरा और अच्छा है और वह उसे खरीदना स्वीकार करता है तो फिर मालके बिकनेमें कोई संदेह नहीं रहा। यदि वह मालका पूरा और चोखा दाम नहीं देता तो वह न सही कोई दूसरे आढ़तियेके हाथ बढ़ती दरपर माल बेचा जा सकता है। ऐसी अवस्थामें पहले यह सोच लेना चाहिये कि पुराने आढ़तियोंको एकाएक छोड़कर नये आढ़तियेके साथ व्यवहार करनेमें सब प्रकारसे लाभ है या नहीं। शायद नये आढ़तियोंकी साख अच्छी न हो, वे बराबर दो साल तक माल लेनेको राज़ी न हों, पर इन प्रश्नोंका यदि संतोषजनक उत्तर मिल जाय तो नए कारबारियोंसे व्यवहार करनेके पहले एक बार पुराने कारबारियोंसे पूछ लेना चाहिये कि साहब ऐसे ऐसी बात है, आप लोग क्या कहते हैं, हमारे मालके लिए यह निर्ख़ मिल रहा है, यदि आप दे सकें तो आपको छोड़-कर दूसरेके हाथ क्यों माल बेचें। बाज़ारका ऐसा ही रंग रहा जैसा कि हम बताते हैं तो वह भी खुशी खुशी इसे मान लेंगे और फिर हमारे उनके बीच सदाके लिए व्यवहार पक्का हो जायगा।

आढ़तियोंसे व्यवहार संबन्ध करना कुछ कठिन नहीं है। उनका पता शहरके किसी दुकान-दारसे मालूम हो सकता है और नहीं तो किसी डिरेक्टरीको (Directory)उठाकर देख लीजिये। उसमें सैकड़ों आढ़तियोंके पते छपे होते हैं। आढ़तियोंकी मार्फ़त माल बेचनेमें कई तरहसे

किफ़ायत रहती है। एक तो विज्ञापनके खर्चसे बच जाते हैं, दूसरे बिक्रीके लिए माल दिखलाने वा फेरी करनेवालेकी मज़दूरी भी नहीं देनी पड़ती।

आढ़तियोंसे लेन देन करनेमें ध्यान रखना चाहिये कि यद्यपि लोग व्यवहारमें कोई दूसरा विचार नहीं आने देते पर समझानेसे वे दिसावरी मालसे घरके बने मालको अधिक पसंद करेंगे। जहां तक हो अपनी ओरसे कोई उलाहनेका अवसर न दिया जाय तो अच्छा है। माल जहां तक हो सके बढ़िया हो। दाम भी जितने सस्ते हो सकते हों लिये जायं। शुरूमें कुछ घाटा उठाकर भी उनसे संबन्ध करनेमें लाभ रहता है। यह तो एक पुराना दस्तूर है, इससे पहले जो घाटा होता है वह कुछ दिनोंके व्यवहारमें दूसरी तरह निकल आता है। मान लीजिये किसी काममें आपने दो पैसे छोड़ दिये। जब आपका यह माल चल निकला तो दूसरे किस्मके मालमें आपने दाम कस कर लिये।

दूसरी बिधि

कभी कभी आढ़तियोंसे व्यवहार खोलनेमें अड़चनें पड़ती हैं क्योंकि आढ़तियोंका माल खुद ही बिसातियोंके हाथ देरसे निकलता है। देशी माल बिलायती मालसे अच्छा ही क्यों न हो, इसमें थोड़ा बहुत उनके हाथ किफायतसे बेचने या बाहरसे समाजका दबाव डालनेसे काम चल सकता है, पर व्यवहारमें इन तरकीबोंसे अधिक सफलता नहीं होती। इसीलिए यहांपर माल बेचनेकी एक विधिकी चर्चाकी जाती है और वह यह है कि एक ऐसी संस्था बनाई जावे जो गृहशिल्पको उन्नत करने और उसके मालके व्यापारको बढ़ानेमें सहायता दे। उसके प्रतिनिधियोंको घर घर माल बनानेवालोंसे परिचित होना चाहिये और इसकी ख़बर रखनी चाहिये कि किसके पास कौनसा माल तैयार होता है। ये प्रतिनिधि कच्चे मालके ख़रीदने य औज़ारों और कलोंके मोल ले देनेमें भी सहायता पहुंचावें। इकट्ठा बहुतसा माल लेकर यह छोटे कारीगरोंके हाथ बहुत थोड़े मुनाफ़ेपर खुदड़ा बेचें। इन सब कामोंकेलिए एक दफ़्तर और एक गोदामकी ज़रूरत होगी और वह ऐसी जगह-में होने चाहिएँ जहांसे कारीगर कच्चा माल आसानीसे खरीद ले जायं और तैयार माल भेज सकें। वहांसे एक या दो आदमी मालका नमूना लेकर देशमें घूमें और आढ़तियोंको दिखलाकर आर्डर लें। जब काम बढ़ जाय तो देशके भिन्न भिन्न भागोंमें उस गोदाम और दफ़्तरकी शाखाएं खोली जायं। दलालोंकी संख्या भी बढ़ा दी जाय। आरंभमें इसमें १०००), ५००) का खर्च निश्चय है-वह कहांसे आए ? मद्रासवालोंने कुछ सालसे औद्योगिक कामकेलिए जैसे "दीपावली धनसंग्रह" में सर्वसाधारणसे पैसा दो पैसा चंदा मांग कर काम शुरू किया है, उसी तरह गृहशिल्पके उन्नतिकेलिए देशभक्तोंसे भिक्षा लेनेमें संकोच नहीं करना चाहिए। इससे देश भरमें छोटी पूंजी-वाले कारबारियोंकी दशा सुधर जायगी और वे इस संस्थाके लाभको देखकर खुद भी इसकी सहायता करने लगेंगे। देश सेवाके बहाने आज शिक्षित लोग किस प्रकार अपना बल और उत्साह नष्ट करते हैं किसीसे छिपा नहीं है। यदि इस लेखकके प्रस्तावमें कोई सार है तो सुधारक वीर आज ज़रा इसे भी आज़माएँ।

होमियोपैथिक चिकित्सा।

२-पसली चलना।

[ले० अयोध्याप्रसाद भार्गव।]

यह बीमारी बच्चोंको एकबारगी सर्दी लग जाने, गीले पैर रहने, थोड़ी या कमज़ोर ग़िज़ा मिलने, दूध छोड़नेके वक्त ठीक ग़िज़ा न मिलने, अंधेरे नम या तर कमरेमें या ठंडकमें रहनेसे हो जाती है। सांस लेनेकी झिल्लीसे

लसदार पानी निकलने लगता है, जिससे नरख़रा, जो हवा निकलनेका रास्ता है, रुक जाता है। इसकी पहचान यह है कि बच्चेको बुख़ार आ जाय, जुकाम हो, जल्दी सांस ले, दस्त हों या कब्ज़ हो, चौंक पड़े, पसलीपर सांस लेनेमें गड्ढा पड़े, सांस लेनेमें आवाज़ मालूम हो और ऐंठन पैदा हो जाय, नाड़ी तेज़ चले, बदन गर्म और खुश्क हो। जो चिन्ह नीचे लिखे हैं उनको देखकर जो दवाएँ लिखी जाती हैं इस्तेमालकी जायं और बच्चेको सर्दीसे बचाया जाय। ऐसी कोई दवा न दी जाय जिस्से एक बारगी बलग़म सूख जाय। इस मर्ज़के इलाजमें शराब (स्पिरिट) की, कड़वे तेल और अफ़ीमकी, या कड़वे तेल और कपूर की, मालिश भी फ़ायदा करती है। सिंदूर और घीको मिलाकर पसलीपर मलनेसे भी फ़ायदा होता है। खानेकी दवा नीचे लिखी जाती हैं।

एकोनाइट (Aconite)—जब बुख़ार हो, बदन खुश्क और गर्म हो, बेचैनी हो, खांसी हो, और सांस लेनेमें कुछ आवाज़ सुनाई दे। किसी चीज़के निगलनेमें दर्द हो, जिसकी वजहसे बच्चा चीखे और हिचकी लेकर खांसे।

एनटिमनी टार्ट (Antimon-tart.)—जब नज़ले-की वजहसे पसली चले और कफ़ बोले, पर बाहर न निकल सके।

ज़ोरसे सीटीकी सी आवाज़ निकले और बच्चा बेचैन हो, जैसे दम घुटनेकी वजहसे होता है।

एमोनियम कारबोनिकम (Ammonium carb.)—जब बच्चा बोल न सके और बहुत धीमी आवाज़ हो; सांस लेनेमें तकलीफ़ और घरघराहट हो, ऐसी खांसी हो जिसमें दम घुटे और कफ़ ज़्यादा निकले।

बैलेडोना (Belladonna)—जब बच्चा घबराहटके साथ सांस ले और कराहे, सोनेमें चौंक पड़े, नींद न आवे, मुँह तमतमाया हुआ मालूम हो, आँखें लाल हों, हलक़ छूनेसे चीखे, हलक़में सुर्ख़ी और चमक और ऐसी खुश्क खांसी हो जिसकी वजहसे चौंक उठे।

ब्राइनिया (Bryonia)—खुश्क खांसी हो और ऐसा कफ़ गलेमें जम जाय जो ज़्यादा खांसनेपर निकले, प्यास ज़्यादा हो, और कब्ज़ रहे।

कार्बो वेजिटिबिलस (Carbo. veg.)—जब मुँह-का रंग नीला और खांसी कभी आवे और कभी रुक जाय, नब्ज़ बहुत धीमो पड़ जाय, पसली ज़ोरसे चलती हो, बच्चा इस क़दर बेचैन हो कि चिपट जाय और हवा करनेसे कुछ आराम मिले।

कैमोमिला (Chamomilla)—जब बच्चा अन्दरकी तरफ़ सांस धीरेसे ले और तेज़ीसे सांस निकाले, गलेमें खरखराहट हो और रातको ज़्यादा खाँसी रहे, गोदमें घुमानेसे चुप हो जाय, एक गालपर सुर्ख़ी और दूसरेपर पोला पन हो।

हैपर सल्फ (Hepar Sulph.)—दम घुटने-वाली खांसी हो, गलेमें कफ़ खरखराहटके साथ बोले जो सुबहके वक्त ज़्यादा तेज़ हो जाय, पसीना ज़्यादा निकले और ग़शी मालुम हो, आधी रातके पीछे ज़्यादा तकलीफ़ हो, तो समझ लेना चाहिये कि खुश्क ठंडी हवासे खांसी पैदा होकर पसली चलने लगी है और इस दवासे फ़ायदा होगा।

आयोडियम (Iodium)—खांसी खुश्क और दर्दके साथ हो, सांस लेनेमें सनसनकी आवाज़ निकले और मुश्किलसे सांस ले सके, और खांसते वक्त अपने गलेको पकड़ ले।

आईपीकैक (Ipecac)—जब बदन कड़ा पड़ जाय और हाथ पैर पटके, कै होती हो और गलेमें खरखराहट मालुम हो।

लेकीसिस (Lachesis)—जब फेफड़ेकी हालत ऐसी कमज़ोर हो जाय जिससे उसकी हरकत कम हो जाय और पसली तेजीसे चले, गले-में ज़्यादा तकलीफ़ हो, और छूनेसे दम घुटने-वाली खांसी उठे, सोतेसे जब जागे तो ज़्यादा तकलीफ़ हो, सोता हुआ कराहे और उछल उछल पड़े।

फासफोरस (Phosphorus)—गलेमें दर्द और खरखराहट हो, जिसकी वजहसे न बोल सके, सांस लेनेमें दर्द हो, बच्चा कमज़ोर हो ठंडे पसीने निकलते हों, कुछ खाना खानेसे कमी मालूम हो, सुबहके वक्त सांस लेनेमें ज्याद खरखराहट हो।

केलीफोस (Kali. phos.)—जब आवाज़ बन्द हो जाय और बदनका कोई हिस्सा ऐसा हो जाय जैसे लकुआ मार गया हो, चेहरा पीला या नीला हो गया हो, हाथ पैर ढीले और बेहोशीकी हालत हो जाय, उस वक्त ये दवा दी जाय।

स्पौन्जिया (Spongia)—दम घुटने वाली खांसीके दौरे हों, जिसमें जबतक बच्चा सिर नीचा न करले सांस न ले सके, सांस ज़ोरसे चले, बुखार कम हो, कफ़की खरखराहट पसली-में न मालम हो और सूखी खांसी आती हो।

अगर मर्ज़ बढ़ा न हो तो दवा हर २ रे या ४थे घंटेके बाद दी जाय नहीं तो १ घं० $\frac{१}{२}$ या $\frac{१}{४}$ घंटे-के बाद दवा देनी चाहिये और सर्दीकी हवासे बचाना चाहिये, लेकिन कमरेको बन्द करके, कोयले सुलगाकर बच्चेको न रखना चाहिये। बच्चे-के बदनको कपड़े पहिनाकर गर्म रक्खा जाय और सिवा दूध और पानीके या अरारोट वग़ैरा-के कोई चीज़ खानेको न दी जाय।

३—सूखेका रोग

यह बीमारी बच्चेकी सूरतको ऐसा बिगाड़ देती है कि देखनेवालोंको बच्चेसे घिन आने लगती है, इसका कारण पेटकी खराबी है। जब यह बीमारी होती है तो खाना अच्छी तरह नहीं हज़म होता, भूख ज़्यादा लगती है, पाचक यंत्र पूरा काम नहीं करता, पेट फूला हुआ दीखता है और दिनपर दिन बच्चेकी गर्दन पतली, बदन दुबला, चेहरा बड़ा और चिकना दिखाई देता है और रोज़ रोज़ घुलता जाता है। दूध डालना खाँसी और दस्तका आना भी शुरू हो जाता है और कमरसे नीचेका हिस्सा सूखकर लिज्झर हो जाता है। इस मर्ज़में बच्चा ज़िद्दी हो जाता है। जो दवायें नीचे लिखी जाती हैं इनको देनेसे फ़ायदा होगा। दिन-में और रातमें जब तक बच्चा न सोवे ३, ३ घंटे बाद या जैसी आवश्यकता हो दवा देनी चाहिये।

एब्रोटीनम—पेट फूला हुआ, पेटके छूनेसे पेटमें कड़े गोलेसे मालुम हों, कभी दस्त और कब्ज़ रहे बिना हज़म हुआ खाना पखानेमें निकले, बच्चा दुबला होता जाय और नीचेका धड़ ज़्यादा दुबला हो जाय, बुखार हमेशा बना रहे, हर वक्त चिड़चिड़ा रहे, मुंहपर झुर्रियां पड़ जायं।

एन्टिमोनियम-क्रूडम (Antimonium Crud.)—खाने या पीनेके बाद कै कर दे, ज़बानपर सफ़ेद रंग वा मैल जम जाय, दूध पीनेके बाद पतला दस्त हो, हर वक्त चिड़चिड़ा रहे, छूनेसे रोवे।

आरसेनिकम एल्ब (Arsenicum Alb.)—खाना हज़म न हो, हरवक्त प्यास रहे, जलन और बेचैनी रहे, पाखाना बदबूदार हो, खाने या पीनेके बाद कै हो जाय, सुस्त गाफ़िल पड़ा रहे, पेशाब कम हो, हाथ पैर ठंडे रहें, रातको पसीना ज़्यादा आवे, और बेचैनीकी वजहसे करवटें बदले।

आयोडियम (Iodium)—भूख ज़्यादा लगे, ज़्यादा खाये, ज़्यादा पानी पिए, मीठा पसंद करे, पेट फूला रहे, और अतरियोंपर सूजन आ जाय हर वक्त बुखार रहे, तमाम बदन मैला और खुश्क रहे।

कैलकेरिया कार्ब (Calcaria carb.)—खालमें झुर्रियां पड़ जायं, पेट फूला रहे, सिर और पैरमें चिपकता हुआ पसीना निकले, ज़्यादा भूख लगे, बदबूदार हरे रंगका पाखाना हो, दूध न हज़म हो, देरमें दांत निकलें।

चाइना (China)—पेट फूला हुआ और कड़ा रहे, हर वक्त पेट गुड़ गुड़ करता रहे, डकारें ज़्यादा आवें, ठंडा पानी ज़्यादा पिये, रातको खानेको ज़्यादा खाए, दस्त हों, रातको जागे और दिनको सोवे।

नाइट्रम म्यूरेटिकम (Natrum mur.)—भूख ज़्यादा लगे, कब्ज़ रहे, प्यास ज़्यादा लगे, पतले दस्त हों, गर्दन पतली पड़ जाय।

फासफोरस (Phosphorus)—मुंह पीला और तमाम बदन कमज़ोर हो जाय, आँखोंके नीचे नीले गड्ढे हो जायं, खाँसी सूखी रहे, पानीसा पतला पाखाना हो, और हर वक्त ठंडी चीज़ खानेको जी चाहे।

पलसेटिला (Pulsatilla)—रातको पतले दस्त आवें, गरमी ज़्यादा मालूम हो ठंडी हवामें सो जाय. रातको रङ्ग बिरङ्गके दस्त हों।

सारसेपेरिला (Sarsaparilla) - तमाम बदन सूख जाय और झुर्री पड़कर खाल लटक जाय, मुंह सुकड़ जाय, बदनपर दाने निकल आवें और मुंहमें छाले पड़ जायं।

शिलेशिया (Silicea)—सरमें पसीना ज़्यादा आवे, सर लपेट देनेसे आराम मिले, दूध पीनेके बाद कै हो जाय, बदन बहुत दुबला पड़ जाय, पर सिर बड़ा हो जाय।

सलफ़र (Sulphur)—बदन ख़ुश्क हो और उसमेंसे दुर्गंध निकलती हो, खुजलीकेसे दाने निकल आवें, पतले हरे दस्त हों, नहानेसे घबरावे, तमाम बदनपर झुर्री पड़ जायं।

४—मुंह और बदनमें ऐंठनका पैदा होना

यह दौरेकी बीमारी कहलाती है और अकसर दांत निकलनेके वक्त दिमाग या पेटकी ख़राबी, चोट लगने या गिरने, भय खा जाने, बाल या वृद्ध अवस्थाकी शादीसे पैदा होती है। इसमें पेटमें चुन्ने पड़ जाते हैं? तमाम बदन और मुंहमें ऐंठन होने लगती है, आंखोंकी पुतलियां ऊपर चढ़ जाती हैं या घूमने लगती हैं, दांत बैठ जाते हैं, मुंहसे फेन निकलने लगते हैं, हाथकी मुट्ठियां बंद हो जाती हैं, हाथ पैर अकड़ जाते हैं,मुंह लाल पड़ जाता है, होठ नीले पड़ जाते हैं, रोगी हाथ पैर और सिर पटकने लगता है और बेहोशी हो जाती है। यह सब बातें हर बच्चेमें नहीं होतीं, इस लिए जो जो चिन्ह नीचे लिखे अनुसार मिलें वैसी ही दवा देनी चाहिये।

नोट जब दौरा हो तो कपड़े ढीले कर दिये जायं, सरको ऊंचा करके मुंहपर ठंडा पानी छिड़का जाय और साफ़ हवामें रोगीको रखा जाय। अगर इससे फ़ायदा न हो तो गर्म पानी ९८° से १००° डिगरी फारनहैट तक एक बर्तनमें रखकर बच्चेको १० से १५ मिनटतक उसमें रखा जाय और फिर कम्बलमें लपेट दिया जाय। ऐसा करनेसे भी फ़ायदा होता है।

एकोनाइट (Aconite)—बदन गर्म रहे, हर वक्त बेचैनी और घबराहट रहे, बुख़ार आवे, हिचकी आएं, और दस्त हों, (अगर दांत निकलते हों तो) दांतको पीसता रहे।

आरसेनिक (Arsenic)—दौरा आने के पहले घबराहट, गर्मी और बेचैनी हो, प्यास ज़्यादा मालूम हो, सुस्त पड़ा रहे, तमाम बदनमें ऐंठन हो,मुंह कभी इधर और कभी उधर फिर जाय।

इगनेशिया (Ignatia)—बदनका कोई हिस्सा फड़कने और ऐंठने लगे, सोतेमें चौंक पड़े, कांपने लगे और चीख़ मार कर रोवे।

आईपीकैक (Ipecac)—पाखाना हरे रंगका हो, दौरा आनेसे पहिले जी मिचलाये और कै हो।

ओपियम (Opium)—दौरा आनेसे पहले या जब दौरा शुरु हो जाय तो चिल्ला कर रोवे और बेहोश हो जाय, सारा बदन कांपने लगे, सांस लेनेमें तकलीफ़ हो, दौरेके बाद गहरी नींद आ जाय, जब किसी चीज़से डर जाय तो फ़ौरन दौरा आ जाय।

बेलाडोना (Belladonna)—आखें सुर्ख़ हों पुतली फैली हुई हो, चेहरा लाल और गर्म रहे, आंख मुंह आप ही आप चलता रहे, मुंहमें फेन आ जायं, दाँत पीसता हो, दौरेके बाद सुस्त हो और सो जाय।

ज़िंकम (Zincum)—बच्चा चिड़चिड़ा हो जाय, गुस्सा ज़्यादा करे, सोते हुये डर जाय और चिल्ला उठे, बार बार पेशाब करे, सो कर उठे तो अपने सिरको इधर उधर घुमावे, दाहिने तरफ़के अंगको पटके, बदनमें ऐंठन हो।

सीकेल कार्व (Secale cor)—कोई हिस्सा बदनका ऐंठना शुरू हो, सिरको इधर उधर घुमावे, सांस लेनेमें तकलीफ़ हो, हाथ पैर ऐंठें, खालमें झुर्री पड़ जायं।

कौसटिकम—(Causticum)—ठँडे पानीसे भी दौरा हो जाता है, हाथ पैर ठंडे हो जाते हैं, बदन कड़ा और गर्म रहता है, बच्चा हाथ पैर चलाता है, कभी दांत पीसता है, कभी हँसता और कभी रोता है।

कैमोमिला (Chamomilla)—बच्चेका एक गाल लाल और दूसरा पीला पड़ जाय, हर वक्त रोवे पर यदि गोदमें लेकर घुमाया जाय तो चुप हो जाय, हाथ पैर जीभ और आंखमें ऐंठन हो और चिड़चिड़ा हो जाय।

सीकूटा (CiCuta)—बाज़ बच्चोंको दौरेकी बीमारी पेटमें कीड़ा पड़ जानेकी वजहसे हो जाती है। आँखें न फिरें, तमाम बदन एक बारगी कड़ा पड़ जाय, सिर आगे पीछेकी तरफ़ झुक जाय, दौरेके बाद बहुत कमज़ोरी हो जाय।

सिलीशिया (Silicea)—कब्ज़ रहे, पाखाना निकले और फिर अंदर चला जाय, सिरपर ज़्यादा पसीना निकले। [ये दवा ज़्यादातर ऐसे मरीज़को देते हैं जिसको दौरा टीका लगानेके बाद शुरू हो जाता है या जिसको दौरा चन्द्रमाके घटने या बढ़ने पर होता है।]

स्ट्रामोनियम (Stramonium)—अगर टीका लगानेके बाद आबला (दाना) न फूले और दब कर रह जाय और बच्चा इस बीमारीमें घिर जाय तो यह दवा देनी चाहिये। डरकी वजहसे भी यदि दौरा आ जाय या आपसे आप पाखाना पेशाब निकल जाय तो ये दवा फ़ायदा करेगी।

सलफ़र (Sulphur)—दौरा आनेके बाद पेशाब ज़्यादा हो, सुबहके वक्त पतला दस्त हो। टीकेके दाने न उभरनेकी वजहसे ऐसा हो जाता है।

सिना (Cina)—जब पेटमें कीड़े पड़ जायं और यह बीमारी हो तो देना चाहिये। छाती जकड़ गई हो, तमाम बदन अकड़ जाय, नाकको कुरेदे, सूखी खांसी रहे मुँह चलता रहे, पेशाब दूधकी रंगतका हो।

कूप्रम (Cuprum)—जी मिचलाये, १द करे जिसमें कफ़ निकले दौरा आनेके बीचमें और बादको चीखे और अकड़ जाय।

हयौसिमस (Hyoscyamus)—तमाम बदनमें एंठन हो, खाकर मुँह और आंखोंमें कपकपाहट, पैदा हो मुँहमें झाग आ जायं और दौरा देर तक रहे। ऐसा प्रायः एक बारगी डर जानेसे बच्चोंको हो जाता है।

नोट—ये सब दवाएँ अगर पानी या मांके दूधमें दी जायं तो बहुत अच्छा है, नहीं तो अगर चूरणया गोली हों तो एकसे दो गोली तक बच्चेकी जीभपर देनी चाहियें और ३x की ताक़दकी दवा लेना ज़्यादा अच्छा है। ५x और १२x भी दे सकते हैं लेकिन हमारी रायमें ३ वर्षतककी अवस्थामें ३x और ३ वर्षसे ज्यादा उम्र वालोंकेलिये ६या१२x देना चाहिये ६ महीने तककी उम्र वालोंकेलिए १ खुराकमें १ गोली, और २ साल तककी उम्र वाले बच्चोंको २ गोली और फिर ३ गोली देना उचित है। कमसे कम ३ खुराक और ज़्यादा जैसी आवश्यकता हो देनेसे फ़ायदा होगा।

बच्चोंके और साधारण रोगों-जैसे अफरन[1], पेचिश[2] अतरियोंमें[3] सूजन, हैज़ा[4] ज़ुकाम[5] और नाक बहना गलेमें[6] खुरखुराहट दमघुटना[7],डिप्थीरिया[8] (गलेकी

बीमारी), नज़ला[९] खांसी[१०] खसरा[११] चेचक[१२] बुख़ार[१३] कीड़ोंका पेटमें पड़ जाना[१४], बिछौनेमें पेशाब कर देना[१५], सिरकी बीमारियां[१६], नाकसे खून जाना[१७], फोड़े फुड़ियां[१८]-आदि-केलिए हम दवाएं आगे चलकर लिखेंगे।

सूर्यके तापका यान्त्रिक बल

[ले० महेशचरण सिंह, एम. एस-सी.]

सूर्यके तापके यान्त्रिक बलका हिसाब लगाया गया है। तापका यान्त्रिक सिद्धान्त समझनेके लिये आवश्यक है कि हम पहले भौतिक शक्तियोंके पारस्परिक योनि परिवर्तन अथवा चोला—बदलौवलका सिद्धान्त समझ लें। तापको यान्त्रिक शक्तिमें कैसे परिणत करते हैं—इसका सबसे सरल उदाहरण रेलका इंजिन है। उसके देखनेसे पता लगता है कि कोयला जलाकर उसका ताप पहले जलको कैसे गरम करता है, गरमी जलकी भाप कैसे बनाती है, भाप फिर किस तरह लोहेके बेलनको धक्का देती है और प्रत्येक धक्केसे गाड़ीका पहिया कैसे आगे बढ़ता है और रेल किस तरह कोसोंको दूरीपर लाखों मनका बोझ पहुंचा देती है। दूसरे शब्दोंमें बात यह हुई कि कोयलेकी गरमी भापकी गरमीमें परिणित हुई और भापने लोहेके बेलनको धक्का मारनेमें वही गरमी व्यय कर दी, जिसका सबूत यह है कि भाप बेलनमें धक्का मारते ही ठन्डी हो जाती है। इसी बातको हम यों कह सकते हैं कि कोयलेका ताप ही धक्का देनी वाला शक्तिमें परिणित हो गया, अथवा ताप बलका यान्त्रिक बलमें रूपान्तर हुआ। यह ऐसा ही रूपान्तर है जैसा कि पत्थर उठा कर मारनेमें होता है। पहले तो आपको पत्थर उठानेमें बल लगाना पड़ेगा, फिर उसे फेंकना पड़ेगा, इतनी क्रिया करनेसे आपने आपनी शक्ति पत्थरके अन्दर डाल दी और अब यह पत्थर आपकी शक्तिके अनुसार ही दूसरेको चोट देगा। आपने अपनी थोड़ी सी शक्ति पत्थरद्वारा दूसरेमें पहुंचाकर यान्त्रिक शक्तिमें परिणित की ठीक इसी प्रकार रेलके इंजिनमें कार्य होता है। वहां पत्थरके स्थानपर पानी, आपके स्थानपर कोयला और चोटके स्थानपर धक्का है। अब सवाल यह होगा कि आपमें पत्थर उठानेका बल कहांसे प्राप्त हुआ। इसका मोटा जवाब यह है कि आपने जो भोजन खाया है वही हजम होकर (जलकर) शरीरमें पत्थर उठानेकी यान्त्रिक शक्ति पैदा करता है, और उस भोजनमें जलनेकी शक्ति उसी प्रकार सूर्य भगवानने अपने तेज, ताप, और भण्डारसे प्रदानकी है जिस प्रकार उसने लाखों वर्ष पहले कोयलोंको जलनेकी शक्ति प्रदान की थी। इसीसे ज्ञान होता है कि सारे विश्व मन्डलकी यान्त्रिक शक्तिका वास्तविक कारण और भण्डार सूर्य ही है।

अच्छा तो जब यह सिद्ध हो चुका कि ताप तथा बल एक ही स्वरूपके प्रतिनिधि हैं तो हमें इन दोनोंका परिमाण भी किसी एक इकाईसे ज्ञात होना चाहिये। अथवा कोई ऐसा परिमाण होना चाहिये जिसके सुननेसे हमें पता लगे कि अमुक वस्तुमें कितना ताप वा कितना यान्त्रिक बल है। अतः विज्ञान वैत्ताओंने ऐसा ही एक परिमाण मान लिया है जिसको ताप इकाई वा, कलारी कहते हैं। कलारी उस ताप परिमाणको कहते हैं जो एक ग्राम जलको एक १° श तक गरम कर दे। इसी प्रकार उस बलको जो एक किलोग्राम जलको एक सेकंडमें एक मीटर ऊंचा उठाने में लगता है किलोग्राम-मीटर कहते हैं। अब यह देखना है कि सूर्यदेवताके तापमें कितनी कलारी या कितने किलोग्राम मीटर हैं। इसके पूर्व यह बताना आवश्यक है कि एक कलारीमें कितने किलोग्राम मीटर होते हैं। महाशय जूल,

Physics भौतिक शास्त्र]

हेल्म होज़, रेनोल, मेयर हिर्न इत्यादि, सब ने ही यह बताया है कि कलारीमें ४२५ किलो ग्राममीटर होते हैं, अथवा एक किलोग्राम जलको एक शतांश काष्ठा तक गरम करनेकेलिए जितनी तापकी आवश्यकता है, उतने तापसे जो यान्त्रिक बल प्राप्त होता है वह ४२५ किलोग्राम भार एक सेकंडमें एक मीटर ऊंचा उठा सकता है।

इस ज्ञानके होते हुये हम अनुमान लगा सकते हैं कि सूर्य तापका यान्त्रिक बल कितना है। एक वर्ग गज़ पृथ्वी तलपर एक सालमें २,३१८, १५७, कलारी सूर्यताप एकत्रित होता है जिसका अर्थ यह है कि एक हेकटेरमें २ ,०००,०००,०००, ००० कलारीका ताप प्राप्त होता है। यह वह बल है जो ४,१६३ घोड़ेकी शक्तिके इंजिनमें होता है। इसी प्रकार यदि हिसाब लगाया जावे तो पता लगता है कि हमारी पृथ्वीपर जितना सूर्यताप प्राप्त होता है उसी बलसे ४०० घोड़ेकी शक्तिके ५४३, ०००,०००,०००,०००, (चौवन पदम), ३० अरब एन्जन रात दिन कार्य कर सकते हैं। इतना यान्त्रिक बल तो केवल हमारे पृथ्वी गृहके हिस्सेके सूर्यतापमें है तो अनुमान करिये कि असंख्य तारागणोंमें जो नभमंडलमें दृष्टगोचर होती हैं उनमें तथा अन्य अदृष्टगोचर तारागणोंमें जो सूर्यताप प्राप्त होता है उसमें कितना यान्त्रिक बल है। हमारी पृथ्वीकी सारी यान्त्रिक शक्ति जो, लकड़ी, कोयला, आग, वायु, जल, थलमें मिलाकर है वह सब सूर्यके तापका २३०,००,०००वां भाग है।

एबिनोज़र हावर्ड

[ले० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी. ए.]

उद्यानपुरीके प्रवर्तक मिस्टर एबिनीज़र हावर्डका जन्म लन्दन नगरमें २९ जनवरी सन १८५० ई० को हुआ था। उनकी शिक्षा सैंडबरी, चेसनट और इप्सविच आदि छोटे छोटे स्कूलोंमें आरम्भ और समाप्त हुई। पहले पहल एक बड़े दुकानदारके दफ़्तरमें उन्होंने दलालीका काम उठाया। बादमें कुछ दिनों तक सिटी टिम्पल (City Temple) वाले डाक्टर पार्करके (Dr. Parker) प्राईवेट सेक्रेटरी भी रहे। जब उनकी २२ वर्षकी अवस्था हुई तो वे उत्तरी अमेरिकाके नेब्रास्का प्रदेशमें जा पहुंचे और वहांके किसानोंके साथ खेतका कठिनसे कठिन काम करते रहे। नेब्रास्कासे उन्होंने फिर शिकागो नगरकी राह ली जहां वे कचहरियोंमें रेखाक्षर-लेखनसे (Short hand) अपनी जीविका उपार्जन करने लगे। २६ वर्षकी उमरमें फिर वे लन्दननगरमें लौट आये और रेखाक्षर-प्रणालीके लेखकोंकी एक प्रसिद्ध मण्डलीमें सम्मिलित हो गये। उस मण्डलीकी ओरसे बहुत दिनोंतक वे पार्लियामेन्टके भाषण और औद्योगिक कमिशनोंकी कार्यवाहीकी रिपोर्ट लिखते रहे। अभीतक रेखाक्षर लेखन ही उनका व्यवसाय है और उनका निर्वाह बहुधा जिस वेगसे वे दूसरोंके विचारको लिपिवद्ध कर सकते हैं उसीपर निर्भर है, पर उनका नाम आज सारे सभ्य संसारमें प्रतिष्ठाके साथ लिया जाता है। मार्च १९१२ में जब उनके नगरनिवासियोंने उन्हें एक भोज दिया तो उस दिन दूर दूर देशोंसे उनके नाम बधाईके तार आये, जिसमें अभागे पोलेंण्ड-वासियोंने भी उस दिनको मुबारकबादियोंमें अपना स्वर मिलाया था।

इस साधारण रेखाक्षर लेखकने आजतक दूसरोंके मुखसे उच्चारित जितने व्याख्यान लेख-

Biography जीवनी]

वद्ध किये हैं उनसे कहीं बढ़कर संदेसा उसने संसारको सुनाया और उसका इतना बड़ा प्रभाव हुआ कि उसका प्रत्युत्तर लोक प्रसिद्ध लेचवर्थकी उद्यानपुरो, इङ्गलिस्तानके उपनगर और कई उद्यानग्रामके रूपमें जो अभी बननेवाले हैं देखनेमें आया है। यदि हम यह पूछें कि यह संदेसा किस प्रकार उनके मनमें आया तो यह भी उनके जीवनकी मुख्य मुख्य घटनाओंसे प्रकट हो जाता है कि उनके कामके प्रत्येक अंगकेलिए कुछ न कुछ उनमें योग्यता आ रही थी। पहले तो दफ्तर-में उन्हें व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त हुआ। फिर डाक्टर पार्कसकी संगतसे कुछ उत्तेजना मिली। उसके बाद नेब्रास्कामें मनुष्य जीवनकी प्राथमिक (Primitive) दशाका ज्ञान हुआ। वहींपर वहांके निवासियोंके सामाजिक जीवनके दुःख और कष्टसे जैसा कि वहांके सुधारकोंने उसका वर्णन किया था उन्हें परिचय मिला। इन सब अनुभवोंको एकत्रित करनेपर जब मिस्टर हावर्डने समाज शास्त्रके ग्रन्थोंका अवलोकन कर डाला आप ही आप उनके सन्मुख उद्यानपुरीकी व्यवस्थाका ध्यान आ गया। उनका कथन है कि उन्होंने पूर्वकालीन सभी सुधारकोंके विचारका एक एक अंश लिया है और उन्हें व्यवहारिकताके सूत्र-में बांध डाला है। उदाहरण स्वरूप उनके आगे बोर्नविली और पोर्ट सनलाइटका सराहनीय आदर्श पहलेसे ही वर्तमान था।

जिस पुस्तकमें मिस्टर हावर्डने नगरोंकी भयानक जन संकुलता और ग्रामोंके उजाड़नेका उपाय बतलाया है वह कदाचित् ऐतहासिक हो जायगी। उसका नाम उन्होंने "टुमैरो" वा "कलकी बात" रखा था जिसमें शान्तिपूर्वक सुधारोंका उन्होंने मार्ग प्रदर्शन किया था। यह १८६८ की बात थी। बादमें उसका नाम "गार्डन सिटीज़ औव टुमैरो" (भविष्यतकी उद्यानपुरी) में परिवर्तित कर दिया। लेचवर्थमें जो काम आरम्भ किया गया है वह उस जगत व्यापिनी संस्थाका श्रीगणेशमात्र है जिसके निर्माताके पास न धन है न प्रभुता और न प्रतिष्ठा। उस महत् कार्यका सम्बन्ध जब मिस्टर नोर्मन एन्जेलके शान्ति स्थापन आन्दोलनके साथ किया जाता है तो सुधारकोंके हृदयमें कुछ आशा दिखलाई पड़ती है। अन्य सुधारकोंमें और मिस्टर हावर्डमें यही भेद है कि यह महाशय केवल स्वप्न ही नहीं देखा करते वरन् उसके आधारपर अपनी कल्पनाका भवन खड़ा करनेकेलिए हाथमें कौड़ी लेकर मैदानमें उतर पड़ते हैं। और लोगोंने कोरे कागज़पर अपने आदर्शकी इमारत खड़ी की थी। इन्होंने अनुमान ४००० एकड़की धरातलपर उसे ठोस रूपमें, परिणत कर डाला है। दूसरे लोग अपनी मनोहर आकांक्षाओं तक ही रह गये इन्होंने विस्तृत सदन तैयार कर दिखलाये जिनमें मधुर बयार और घामका प्रवेश होता है, जिसमें हरियाले विटप और उद्यानके बीच गृहवासका सुख और आनन्द मिलता है। अकेले इन्होंने ही अपने विचारका अपने लेख और वक्तृताओंके द्वारा बड़ी कठिनताके साथ प्रसार किया। सच पूछिये तो उनकी पुस्तक ही उस विचारकी बीजस्वरूप थी जिसकी स्वीकृतिकेलिए बड़े परिश्रमसे इन्होंने समाजमें काम किया। सैकड़ों तो उन्होंने सभाएं कीं। बड़े बड़े शंकित लोगोंकी शंकायें उन्होंने अपने व्यवहारिक प्रस्तावसे दूर कर डालीं और जो इनके साथ पहलेसे ही सहानुभूति रखते थे उन्हें अपने उत्साहसे दृढ़ कर दिया।

पत्ती

[ले० पं. गङ्गाशंकर पचौली]

गताङ्कसे सम्मिलित

(४) पत्र विभाग

पत्र दो प्रकारके होते हैं। एक तो वे जिनमें केवल एक पत्ती या दल एक स्थानपर लगा रहता है, ऐसे पत्र केवल (simple) कहलाते हैं। दूसरे वे जिनमें एक ही वृन्त (stalk डंठल) पर कई पत्तियां दल या पत्रक होते हैं। जैसे नीम, इमली, बबूल, गुलाब, सेम आदिके पौदोंमें देखा जाता है। एक ही वृंतपर कई पत्रकोंके होनेसे वह संस्टष्ट (compound) पत्र कहलाते हैं। (चित्र १)
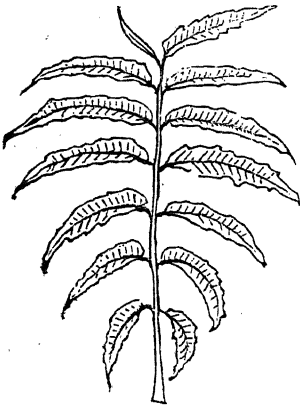
नीम का संसृष्ट पत्र चित्र १ — सेम का तिपतिया (trifoliate) चित्र २

संस्टष्ट पत्र—इस प्रकारके पत्रमें एक वृंतिकापर कई पत्रक होते हैं। इन सब पत्रकोंके समवायको पत्र कहते हैं। हरएक पत्रकको पत्र संज्ञा न देकर बहुतोंके समुदायको एक वृंतकपर होनेसे पत्र कहनेके कई कारण हैं।

१—पत्रोंकी बगलमें कली होती है वह वृंतिका-पर लगे पत्रकोंकी बगलमें नहीं होती पर संस्टष्ट पत्रकी बगलमें होती है। इस हेतु वृंतिकापरका प्रत्येक पत्रक पत्र नहीं है।

२—वृंत उपशाखा नहीं है क्योंकि शाखा, प्रशाखा तथा उपशाखाके सिरेपर कली होती है, पर संस्टष्ट पत्रके वृंतके सिरेपर कली नहीं होती इस हेतु संसृष्ट पत्र एक पत्र माना जाता है —प्रशाखा नहीं।

३—संसृष्ट पत्रके वृंतमूलपर वृंतानुबंध होता है, पर प्रत्येक पत्रककी वृंतमूलपर नहीं होता। यह भी यही सूचित करता है कि संसृष्ट पत्र डाली नहीं है, पत्र ही है।

४—कली, शाखा, प्रशाखा तथा उपशाखा प्रायः पत्रकी बगलसे उत्पन्न होती हैं और शाखा आदिकी बगलमेंसे नहीं होतीं। इसलिए सपत्रक उपशाखा माना हुआ संसृष्ट पत्र दूसरी शाखाको धारण करे तो वह वास्तवमें संसृष्ट पत्र ही है।

संस्टष्टपत्रमें जितने छोटे पत्रक होते हैं वे चाहे अवृंतक (sessile) हों या सवृंतक सबोंमें आकार, किनारा और शिराजाल उसी प्रकारके होते हैं, जैसा कि ऊपर पत्रोंके सम्बन्धमें देख आये हैं। संस्टष्ट पत्रोंमें पत्रकोंकी बनावट पिच्छाकार तथा हस्ततलाकार ही होती है। जब एक वृंतपर तीन या चार पत्रक होते हैं तो पत्रको तिपतिया (trifoliate) या चौपतिया (quadrifoliate) कहते हैं जैसे सेम, चना, चांगेरी आदि। (चित्र २)

पिच्छाकार संस्टष्ट पत्र कई प्रकारके होते हैं। एकमें वृंतके दोनों ओर छोटे छोटे पत्रक व पत्ती होती हैं पर सिरेपर नहीं होतीं। इस भांतिके इमली, गुलतुर्रा, अमलतासके पत्र होते हैं। किसी किसी पिच्छाकार संस्टष्टपत्रमें वृंतको नोंकके पास आमने सामने दो पत्र होनेकी जगह एक बगलपर एकही पत्र रहता है जैसा नीमके संसृष्ट पत्रमें होता है। (देखो चित्र १)

गुलाब, अपराजिताके संसृष्ट पत्रोंकी नोंकपर

एक पत्ती जुदी होती है [चित्र ३]। मटरकी बेलके संसृष्ट पत्रमें वृंतके सिरेपरके पत्र आकृति बदलकर
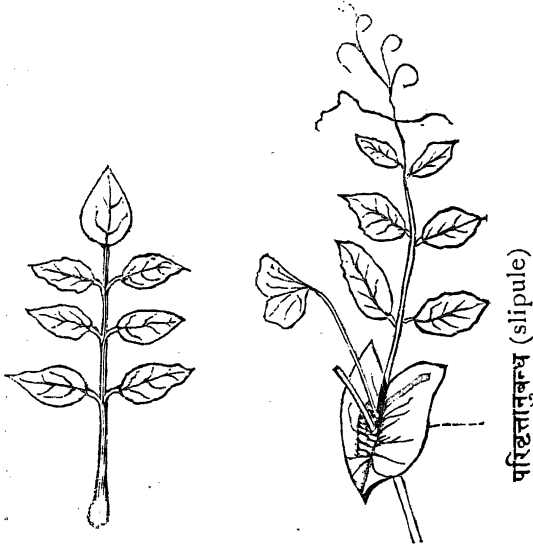
अपराजिता
पिच्छाकार संसृष्ट पत्र
(pinnated compound)
चित्र ३

मटर
पिच्छाकृति संसृष्ट पत्र
(pinnated compound)
चित्र ४

प्रतान रूप हो जाते हैं [चित्र ४]। द्विधापिच्छाकृति (bipinnate) वह पत्र हैं जिनमें पिच्छाकृति पत्रके पत्रक व पत्ती पिच्छाकृति होती हैं। बबूलके संसृष्ट पत्र इसके उदाहरण हैं सहजनेका पत्र त्रिधापिच्छाकृति पत्र का नमूना है। लजवंतीके पत्र प्रसरितहस्ततलाकृति (digitately pinnate) हैं क्योंकि एकही स्थानसे कई संसृष्टपत्र चारों ओर निकले हुए होते हैं। [देखो चित्र ५ और ६]

(५) पत्रदल तल—हरएक वृक्षके पत्र हरे होते हैं। आकार शिराजाल आदि तथा रंगके सिवाय पत्रोंके दलोंमें चिकनाहट तथा खुरदरापन आदि और कई बात ऐसी हैं जिनसे जुदे जुदे वृक्षोंके पत्र पहिचाने जा सकते हैं। किसी किसी वृक्षके पत्ते चिकने होते हैं जैसे आमके। कटहरके पत्ते खुरदरे होते हैं। बड़ और भांगके वृक्षके पत्ते रोएँदार व लोमयुत होते हैं। जब गोमा पान पीपल आदिके अलोम (glabrous) हैं। पोस्तके पत्तोंपर एक प्रकारकी हरित नीले वर्णकी आभा होती है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि मोमकी तह ऊपर फिरी हुई है। यही हालत कमल कुमोदिनीके पत्रोंकी भी है।
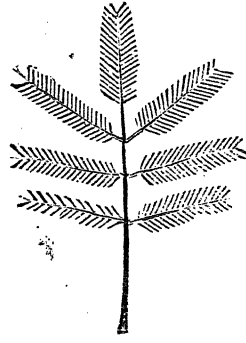
बबूल
द्विधापिच्छाकार संसृष्ट पत्र
(bipinnate compound)
चित्र ५
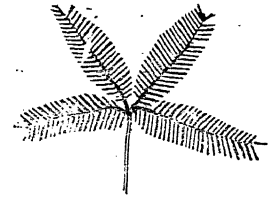
लजवन्ती
हस्ततल पिच्छाकृति संसृष्ट
(digitately pinnate compound)
चित्र ६

पत्तियोंका वृक्षोंपर फैलाव

वृक्षोंकी आवश्यकतानुसार प्रकृतिने भिन्न भिन्न वृक्षोंपर पत्रोंको भिन्न भिन्न क्रममें लगाया है। प्रकाश और वायु पौदेके जीवनमें मुख्य प्रभाव हैं। इनके उचित प्रमाणमें न मिलनेपर पौदे मर जाते है। किसी पौदेको प्रकाश और वायुकी अधिक आवश्यकता होती है, किसीको कम। किसी पौदेको अधिक प्रकाश चाहिये किसीको वायु, पर इतना अवश्य है कि बिना प्रकाश और वायुके वृक्षोंका जीवन निर्वाह नहीं हो सकता। यही कारण है कि जुदे जुदे पौदोंकी पेड़ीपर पत्रोंका फैलाव जुदी जुदी रीतिका है। पेड़ीकी गांठपर प्रायः पत्र लगते हैं। जब एक पत्र पेड़ीकी एक ओर एक ग्रंथीपर हो और दूसरा पत्र ऊपर वा नीचेकी ग्रंथीपर हो, पर यदि पहिला दाईं ओर हो तो दूसरा बाईं ओर, और इसी रीतिसे फिर तीसरी ग्रंथीपर तीसरा पत्र पहिले पत्रकी दिशामें और ठीक उसकी ही साधमें होवे तो ऐसे

पत्र संगठनको पर्य्यक्रम (alternate) कहते हैं जैसा (चित्र ७) में दिखाया है। उदाहरण सीताफल, नारंगी, कालीमिरिच, घासवर्ग हैं।

चित्र ७ corn poppy (कार्न पापी)
पिच्छाकार पत्र (pinnatified lobed)
चित्र ८

जब पेड़ीके ऊपर प्रत्येक गांठपर दो दो पत्र होते हैं और वे आमने सामने होते हैं और इसी क्रमसे पौदे भरमें पाये जाते हैं तो वह पत्र-संगठन-क्रम अभिमुख (Opposite) क्रम कहा जाता है जैसे कार्न पानी (चित्र ८), अपराजिता (चित्र ३), बबूल (चित्र ५), नीम (चित्र १), और मटर (चित्र ४)

जिन पौदोंमें यह अभिमुख संगठन क्रम इस प्रकारसे होता है कि एक गांठके आमने सामनेके पत्र पूर्व पश्चिम हों और उससे ऊपर व नीचेकी ग्रंथीपरके अभिमुखपत्र उत्तर दक्षिण हों और इनसे आगे ग्रंथीपर पत्रोंका संगठन प्रथम ग्रंथीके अनुसार पूर्व पश्चिम हो और इसी प्रकार क्रम पौदे भरमें हो तो ऐसा पत्रसंगठन व्यस्ताभिमुख (Decussate) क्रम अथवा (क्रूशक्रम) ? कहा जा सकता है—उदाहरण गोमा, तुलसी, सागवान हैं।

जब ऊपरके व्यस्ताभिमुख क्रममें एक एक पत्र अभिमुख होनेके स्थान कई पत्रोंका गुच्छा आमने सामने होता है तो ऐसे क्रमको व्यस्ताभिमुखघूर्ण (Whorl) क्रम कहते हैं। तुलसीवर्गके पौदे चमेली आदिमें यह संगठन क्रम देखनेमें आता है।

ऊपर लिखित प्रत्यक्ष क्रमके सिवाय डालीपर पत्रोंके संगठनके और भी क्रम देखनेमें आते हैं जिनके जांचनेकेलिए एक वृक्ष वा पौदेकी डालीको जिसपर पत्र हों लो और एक पतला तार लेकर डालीके नीचेके एक पत्रकी जड़में जमाओ। अब इस तारको डालीकी फलककी ओरको इस रीतिसे लपेटते जाओ कि तार ऊपरके हरएक पत्र-की जड़पर होकर अलवेटी खाता जाय, जैसा कि चित्र ६ में दिखाया गया है। तारको डाली-के चारों ओर लपेटनेमें जब ऐसे पत्रकी जड़तक पहुंचो जो पहिले पत्रके जिससे लपेटना प्रारम्भ किया था ठीक ऊपर एक सोधमें हो तो वहां तार-पर स्याही आदिसे निशान कर दो। तारके लपे-टनेमें जहां जहां पत्र मूल हो वहां वहां तारपर पत्रोंकी जगह सूचित होनेकेलिए स्याहीसे निशान कर लो। जब सब पत्रोंकी स्थिति सूचक निशान लग चुकें तो तारकी अलवेटनोंको डालीके सिरेकी ओरसे निकाल लो। पेंदेकी ओरसे फुलककी ओरको डालीमें ढाल होता है—इस हेतु तारकी अलवेटन बिना बिगड़े हुए निकल आवेगा। जब तार निकालो उस समय देखो कि पहिले आरम्भके पत्रसे लगा उसकी ठीक सीधके ऊपर वाले पत्र-तक तारको डारके कितने पूर्ण चक्कर करने पड़े हैं और उन चक्करोंमें कितने पत्र आये हुए हैं। इस रीतिसे जांच करनेसे जाना जाता है कि डाली-पर पत्रोंका संगठन किसी नियमसे अवश्य होता है। जहां अलवेटनके पूरे एक चक्रमें दो पत्र ठीक लैनमें ऊपर नीचे आ जाते हैं और दो पत्र बीचमें और आ जाते हैं वहां एक चक्करमें तीन पत्रका हिसाब होता है। इस हेतु इस प्रकारका पत्रोंका संगठन $\frac{1}{3}$ व्यावर्तक्रम ($\frac{1}{3}$ Spiral) कहाता है। इसी प्रकार जब तारकी एक लपेटनमें

चार पत्र आ जाते हैं तो वह $\frac{१}{४}$ व्यावर्तक्रम अर्थात् $\frac{३६०}{४}$ = ९९ अंशका होता है। (चित्र ९ और १०)
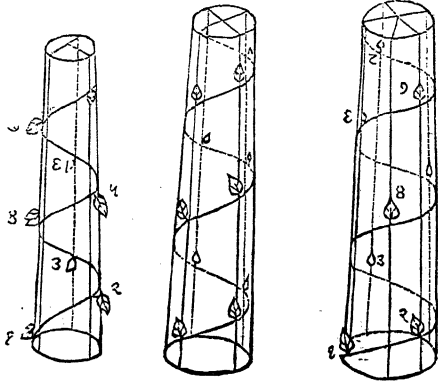
चित्र ९
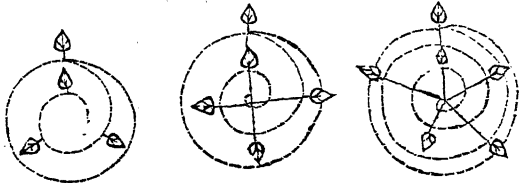
१/३   १/४ और   १/५ व्यावर्त क्रम

चित्र १०

तारके लपेटनेमें दो पूर्ण चक्कर होनेपर जब अंतिम पत्र पहिले पत्रके ठीक ऊपर होता है और उन दोनों पत्रोंके मध्यमें चार पत्र और जाते हैं तो दो पूरे चक्कर पांच भागोंमें बट जाते हैं। इस रीति दो पत्रोंके बीच $\frac{२\times३६०}{५}$ १४४ अंशका कोण बनता जाता है। जहां यह पत्र-संगठनक्रम भिन्नमें दिखाया जाता है जैसे $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{५}$, आदि वहां ऊपर-का अंक पूरे चक्कर बताता है और नीचेका अंक एक चक्करमें आनेवाली पत्र सख्या है। $\frac{१}{३}$ से यह जाना गया कि अलवेटनके एक चक्करमें तीन पत्र हैं। इसी प्रकार $\frac{१}{४}$ से एक चक्करमें ४ पत्र समझे जाते हैं। $\frac{२}{५}$ में दो पूरे चक्कर होने पर दो पत्र सूधी खड़ी लेनमें आते हैं और दो चक्करोंमें पांच पत्र होते हैं। बड़के वृक्षमें $\frac{२}{५}$ का क्रम बताते हैं और (चित्र ११) से स्पष्ट भी होता है। चित्र ७ में $\frac{१}{३}$ का क्रम है जो पर्यय कहाता है।
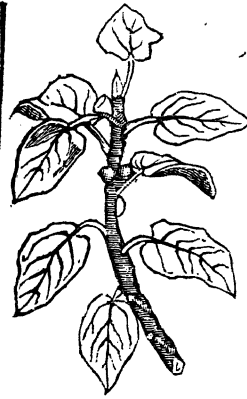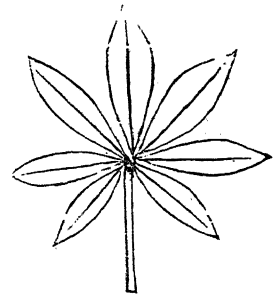
चित्र ११—बड़   चि १२—सेमर हस्तांगुल्याकृति

चित्र १३—एरण्ड
—digitately lobed हस्तांगुल्याकृति

वेदना-विजय

[ले० गोपालस्वरूप भार्गव, एम.एस-सी.]

संसारमें जिधर देखिये उधर ही दुःख संताप, परिताप प्राणियोंको घेरे हुए हैं। जिसे देखिये वही किसी न किसी मुसीबतमें गिरफ़तार और परेशान है। सौ पीछे नब्बे मनुष्य ऐसे मिलेंगे जिनको—मानसिक, दैहिक या आत्मिक एक न एक पीड़ा है। न जाने उस दयामय करुणासिंधु परमात्माने संसारको पैदा करती बार इतना दुःख क्यों फैलाया? क्या उस परम पिता-महको अपनी सन्तानको दुःख और दर्दमें घिरा हुआ देखकर दया न आती होगी? क्या रोगियोंका कराहना, अनाथोंका सिसकना, विधवाओंका आर्त नाद और पददलितोंका साद (दुःख) उस 'संतन दुःखहरन देव दीनन हितकारी' के हृदयमें हम लोगोंके प्रति हित-कामना प्रकट न करता होगा? क्यों नहीं, परमदयालु सर्वशक्तिमान ईश्वर ही दया न करै तो संसारका नाश एक क्षण मात्रमें हो जाय। संसारमें दुःख भी ईश्वरने किसी विशेष उद्देश्यसे ही रचा है। इसपर ही हम थोड़ासा विचार करना चाहते हैं।

वेदनासे लाभ

वेदना दो प्रकारकी मानी जा सकती है दैहिक और मानसिक। दोनों प्रकारकी वेदनाओंके दो कारण हो सकते हैं अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तरिक। किसी भी प्रकारकी वेदना क्यों न हो उससे लाभ अवश्य होता है।

(१) जब वेदना किन्हीं सिद्धांतोंके अनुशीलन करनेके कारण सहनी पड़ती है तो उसके प्रभावसे उन सिद्धान्तोंका अङ्कुर जनसाधारणके हृदय पटलपर दृढरूपसे अङ्कित हो जाता है और सिद्धन्तोंका आशातीत प्रचार होने लगता है। ऐसी वेदना परोपकारकेलिए देश सेवाके नाते, धर्मके प्रचारार्थ, विज्ञानकी उन्नतिके निमित्त या और किसी महान् उद्देश्यसे सहनी पड़ती है।

दधीचि ऋषिने देवताओंकी रक्षाकेलिए अपना मांस गऊओंको चटाकर अपना अस्थि पिंजर इन्द्रके हवाले किया, जिससे ही इन्द्र अमरावतीमें फिरसे निष्कंटक राज्य कर सका। संसारको निर्वाण पथ दिखलाने और मनुष्य जातिको धर्मकी लीकपर चलानेकेलिए ही महात्मा बुद्धदेवने राज्यपाट, स्त्री पुत्र, माता पिता, और ऐश्वर्य्यपर लात मारकर निर्जन बनकी राह ली। भूमण्डलपर यूरोपकी असभ्य जातियोंको परोप- कारका आदर्श दिखानेके लिये ही महात्मा ईसाने शूलीपर आरोहण किया। "स्वतंत्रता ही किसी जातिके जीवनकी 'सजीवन मूरि' है" यही दिखलानेके लिए महाराणा प्रतापने राज्य भोग छोड़ जङ्गल जङ्गल भटकना स्वीकार किया, पर परदेशी लुटेरोंके आगे मस्तक न झुकाया। इटलीकी स्वतंत्राकेलिए परोपकारी मेज़नी और रणधीर गेरीबालडीने क्या क्या यातनेएँ न सहीं। धर्मके पथसे विचलित न होनेकेलिए सिक्ख गुरुओंने दीवारोंमें जीते जी चिनाजाना पसन्द किया। विद्युत् शास्त्रकी उन्नतिके लिए फ्रैंकलिन सैदामिनीके दाममें फंसकर मरा। वायुयानोंके शोध करनेमें न जाने कितनी वीरात्माएँ ऊंचेसे परवतों, समुद्रों तथा जंगलोंमें गिर गिर कर मरे हैं। स्पष्ट है कि बिना यातनाएँ उठाए दुःख और वेदना सहे, संसारमें कोई प्रभावशाली काम नहीं हो सकता।

(२) दूसरा बड़ा भारी उपयोग वेदनाओंका यह है कि वे यह सूचना दिया करती हैं कि वर्तमान स्थितिमें परिवर्तन होना चाहिये। जब जब संसारमें राज विप्लव या अन्य महत्वके परिवर्त्तन हुए हैं, तब तब देखा गया है कि जन समुदायको बरसों पहलेसे निरन्तर कष्ट उठाना पड़ा है।

शरीरमें किसी रोगकी उत्पत्ति होते ही कठिन

वेदना होने लगती है और उसीसे हमें रोगका ज्ञान भी होता है। कदाचित् रोगोंके साथ वेदना न हुआ करती, तो रोगोंकी कदापि चिकित्सा भी न होती और न जाने कितनी उपकारी जानें व्यर्थ जातीं।

शरीरमें छोटीसी फांस लग जाने दीजिये, या ज़रा सी ख़राश आने दीजिये कि ज्ञान-नाड़ियां मस्तिष्कको फ़ौरन ही ख़बर कर देती हैं और मस्तिष्क क्रिया-नाड़ियोंको आज्ञा देकर उचित प्रबन्ध कर देता है। मस्तिष्कका और दोनों प्रकारकी नाड़ियोंका काम निरन्तर जारी रहता है। सोतेमें जब जब मक्खियां शरीरपर बैठती हैं हाथ उठता है और मक्खियोंको उड़ा देता है। यह परिज्ञान—शक्ति (Sensation) जीवोंमें भिन्न भिन्न परिमाणमें पाई जाती है। खनिजोंमें सबसे कम, बनस्पतियोंमें उससे अधिक, पशुओंमें विशेष अधिक और मनुष्योंमें सबसे अधिक पाई जाती है। मनुष्योंमें जिस जातिका या व्यक्तिका जितना अधिक विकास हुआ होता है उतनीही तीव्र और चैतन्य परिज्ञान-शक्ति होती है। इसी ज्ञानशक्ति द्वारा हमें सुख दुःखका बोध होता है। इसके ही एक रूप विशेषको वेदनानुभवशक्ति कह सकते हैं, अतएव वेदनानुभाव शक्ति भी मनुष्यके विकास-स्थितिपर ही निर्भर है।

"दूधका जला छाछ फूंक फूंक कर पिया करता है"—इस कहावतसे भली भाँति अनुभव और वेदनाके उपयोग स्पष्ट हैं। वेदना द्वाराही अनुभव हुआ, अनुभवसे ही भविष्यमें वेदनासे बचना सम्भव होता है। जिससे वेदना होती है, वह प्रायः हानिकारक होता है। अग्निके चमड़ेसे स्पर्श होते ही, वेदना होती है जो आपको सूचना देती है कि अग्नि शरीरके सम्पर्कमें हानिकारक है। चाकू शरीरपर चुभोइये, वेदना होगी, जो यह सूचना देती है कि यदि चाकू न हटाया जायगा तो खालकी सब तहें कटेंगी, स्नायु जाल, और पट्ठे कटेंगे, सम्भव है रुधिर प्रणालियोंके कटनेसे खून बहुत निकले और मृत्यु हो जाय, या घावमें छुरीके साथ अन्योन्य रोगाणु प्रवेश करके अनेक रोग पैदा कर दें।

कुछ काल व्यतीत हुआ, तब हठ योगियों और ईसाईमत अनुयायिओंका यह ख़्याल था कि वेदना स्वयं ही उपयोगी है, और सब प्रकारकी वेदनाएँ सहना ही प्रत्येक मनुष्यका परम कर्तव्य है। इसी कारण हठयोगी अपने शरीरोंको अनेक प्रकारकी वेदनाएँ दिया करते थे। लोहेकी कीलोंपर शयन करना, अग्निसे व्यर्थ तपना, छुरीसे शरीरकी बोटियां काट काटकर देवी या शङ्करकी प्रतिमाओंपर चढ़ाना इन लोगोंकेलिए साधारण बातें थीं। ईसाई लोगोंका भी मत था कि वेदनाएँ सहनेसे आत्मा शुद्ध होती है। इसी विचारसे आयुर्वेदादि शास्त्रोंका अनादर ईसाई लोग करते रहे। विज्ञानके अनुसार वेदनाओंसे आत्मा शुद्ध होनेका कोई प्रमाण हस्तगत नहीं हुआ है। वैज्ञानिकोंका कहना है कि वेदना स्वयं अच्छी या उपयोगी नहीं है. वेदना द्वारा जो हमको चेतावनी मिलती है वही वास्तवमें उपयोगी है।

जो वेदना आपको आगसे अपना शरीर बचाये रखनेका प्रबोध करती है वह उपयोगी है, पर जो वेदना शरीरपर अङ्गारे गिर जाने और तीव्र दाह हो जानेसे होती है, उसका कोई उपयोग नहीं है और उसे जहां तक बन पड़े शीघ्र ही मिटाना चाहिये।

प्रसव पीड़ाका महत्व

संसारमें केवल एक महा पवित्र परम पावन, पुण्यमयी पीड़ा है, जिसका मनुष्य जातिके उत्तमाङ्ग-महिला समुदाय-को संसारके उपकार और जातिकी उन्नति और वृद्धिकेलिए सहना सराहनीय है, और वह वेदना है प्रसव-पीड़ा। पर जहां तक हो सके उसको भी सह्य और सुगम करनेके उपाय निकालने चाहिएँ।

मनुष्य जातिका महान उद्देश्य

मनसा, वाचा, कर्मणा, किसी भी पवित्र, दयालु, उत्तम और श्रेष्ठ कामको करना और उसके लिए भरसक प्रयत्न करना मनुष्य जातिका महान उद्देश्य होना चाहिए और इस उद्देश्यकी सफलताके लिए कोई भी उपाय करना उचित समझना चाहिए। इसी महान उद्देश्यके अन्तरगत घोरवेदना के मिटाने वा कम करनेके उपाय ढूंढ़ निकालना भी आ जाता है।

प्रायः रोगोंमें चीर फाड़ करनेकी आवश्यकता होती है, पर चेतन, जागृत, मनुष्यपर शस्त्रोपचार करना कठिन होता है क्योंकि उससे दारुण वेदना सही नहीं जाती और वह स्थिर नहीं रह सकता, जिससे शस्त्रोप-चार कर्ता के हाथ बहक जाने और रोगीको हानि पहुंच जानेका भय रहता है। इन कारणोंसे यह आवश्यक है कि रोगीको शस्त्रोपचार करनेके पहले बेहोश कर दिया जाय।

प्रकृति क्या करती है

जब किसी मनुष्यको बहुत दुःख होता है या चोट लगती है तो वह स्वयम् ही बेहोश हो जाता है। प्रकृति इस प्रकार विपद-ग्रस्तको वेदना सहनेमें सहायता देती है, पर मनुष्य स्वयम् ही बेहोश कठिनाईसे होता है, इसीलिए अनादिकालसे ऐसे पदार्थोंकी खोज होती रही है जिनके सेवनसे मनुष्यकी वेदनानुभव शक्ति थोड़े समयकेलिए जाती रहै और वह कठिन वेदनाको आसानीसे सह सके।

सबसे पुरानी और मशहूर दवा

सम्भवतः सबसे पुरानी और मशहूर औषध पोस्तका रस 'अफीम' है। इसमें कई तीव्र अवयव हैं, जिनमेंसे कइयोंका तो प्रभाव एक दूसरेके विपरीत पड़ता है, पर परमोपयोगी अवयव 'मोर्फीन' या मोर्फिया है। यह एक प्रकारका विष है और इसके खानेसे मस्तिष्क (दिमाग) और वेदना अनुभव करनेवाली नाड़ियोंके छोरोंपर प्रभाव पड़ता है। इसी दुहरी क्रियाके कारण यह पदार्थ इतना उपयोगी है, पर इसमें एक त्रुटि भी है। इसकी 'प्रान्तीय' क्रियाएं तो कुछ हानि नहीं पहुंच सकती, पर इसके 'केन्द्रीय' (Central मस्तिष्क परका प्रभाव) क्रियासे कभी कभी बड़ा अनर्थ हो जाता है।

जितनी मात्रा अफीमकी किसी मनुष्यको पूर्णतया बेहोश करनेकेलिए खिलानी पड़ती है, वह (fatal dose) प्राणघातक मात्रासे कुछ ही कम होती है, अतएव रोगियोंको बेहोश करनेकेलिए केवल अफीमका ही प्रयोग कभी नहीं किया जाता। उन्नीसवीं शताब्दीके पहिले सिवाय इस भयानक द्रव्यके अन्य कोई औषधसे भिषग्वरकर परिचित ही न थे। इसलिए काम पड़नेपर इसका ही प्रयोग करना पड़ता था।

मदिराका प्रयोग

मदिरा भी एक आदर्श मादक है, पर इसका प्रयोग अन्य औषधोंके साथ ही किया जाता है। प्रायः शराबके नशेमें मनुष्य गिर पड़ते हैं, और अपने हाथ पैर तोड़ लेते हैं। ऐसी घटना होनेपर नशेकी हालतमें ही उनके हाथ पैर दुरुस्त कर दिये जाते हैं, जोड़ जहांके तहां बैठाल दिये जाते हैं और हड्डी, टूट गई हो तो, बांध दी जाती है। यदि चैतन्यावस्थामें ऐसी घटना हो जाती है तो यह सब उपाय करना बड़ा कठिन हो जाता है क्योंकि रोगी कठिन वेदना सह नहीं सकता और अङ्गोंको हिलाता रहता है।

तम्बाकू या तम्बाकूका अर्क (निकोटीन)

जब कभी कोई जोड़ उतर जाता था और उसके बैठानेमें आस पासके पट्ठे बड़ी बाधा डालते थे जैसे कि जांघकी हड्डीके उतरनेमें, और कोई भी भिषग्वर हाथोंसे या चरखियोसे भी, बिना क्षतिके बढ़ाये, ठीक जगहपर हड्डीको बिठा न सकते थे तो तम्बाकूका प्रयोग किया जाता था। तम्बाकू इतनी चबाई या पिलाई जाती थी कि रोगी बेहोश हो जाता था और उसके पट्ठोंके ढीले

पड़ जानेके कारण तनाव कम हो कर हड्डीको जगहपर बैठानेमें सुगमता होती थी।

अफीम, मदिरा, तम्बाकू

अफीमके देनेमें आदमीके मरनेमें थोड़ी ही कसर रहती थी, मदिरा भी बादमें बड़ा बुरा असर डालती थी और रोगीको सदा के लिए अपना चेरा बना लेती थी, तम्बाकूका प्रभाव बड़ी देरमें होता था। इस लिए किसी उपयुक्त नवीन औषध की खोज थी, जो डेवी के बदौलत हमें प्राप्त हुई।

हसाने वाली गैस अर्थात् नत्रजन एकौषित Nitrous Oxide

नत्रजन और ओषजनके पांच यौगिक बनते हैं, उनमेंसे ही एक हास्योत्पादक गैस भी है। इसके आविषकर्ता सर हम्फ्रे डेवी थे, जो कई बार प्रयोग करते हुए मृत्युके ग्रास बननेसे बाल बाल बचे पर जीतेजी यह बतला गये कि इस गैसके पान करनेसे थोड़ी ही देरमें मनुष्य अचेतन हो जाता है और उसकी वेदनानुभव शक्ति जाती रहती है, पर कई सैकंड़ोंके उपरान्त फिर होशमें आ जाता है।

गैस सूंघनेपर क्या होता है?

जब गैस वायुके साथ मिली हुई पान की जाती है तो प्रायः आल्हाद, चित्तोद्वेग और असंयम, क्रमशः उत्पन्न होते हैं। कभी कभी मति विभ्रम भी होता है। यह अचेतन या चेतना-शून्य होनेके पूर्वकी अवस्था है। सभी मादकोंके प्रयोग करनेपर, आत्म सयम और विवेकके शिथिलो-भवनके कारण ऐसो दशा हो जाती है,पर विशेष रीतिसे ओषधियोंका प्रयोग करनेसे यह आरम्भिक अवस्था क्षणमात्रकेलिए ही आने पाती है, यहां तक कि उसका पहचानना भी सम्भव नहीं होता। हास्योत्पादक गैस यदि इस भांति सुंघाई जाय कि रोगीको वायु बिलकुल न मिले, तो थोड़े ही सेकंड़ोंमें रोगी अचेतन हो जायगा। अचेतना अधिकांश ९० सेकण्ड या डेढ़ मिनटतक रहती है।

हास्योत्पादक गैस कैसे बेहोश करती है?

इस गैससे अन्य औषधोंकी अपेक्षा इतने अधिक काल तक रोगी अचेतन क्यों रहता है? इस प्रश्नका उत्तर अनुमानसे यह जान पड़ता है कि यह गैस रुधिरके रक्ताणुओंके रक्त रंगपर इस प्रकारका प्रभाव डालता है कि वे ओषजन फेफड़ोंसे शरीरके अङ्गोंतक नहीं पहुंचा सकते। गैसके पान कर चुकनेके उपरान्त जब तक कि रक्ताणु फिरसे ओषजन सब तन्तुओं तक नहीं पहुंचाते रोगी अचेतन ही बना रहता है।

यदि ओषजनका तन्तुओंतक पहुंचना असम्भव हो जाता है, तो फिर रोगी मर ही क्यों नहीं जाता? इसका कारण यह है कि ओषजनके केवल न पहुंचनेसे ही मृत्यु नहीं हो सकती, जब तक कि तन्तुओंके मलका बहिष्करण होता रहता है। यद्यपि हास्योत्पादक गैसके पान करते समय ओषजन तन्तुओंतक नहीं पहुंचने पाता, तदपि कर्बनद्विओषित उच्छ्वासमें बराबर निकलती रहती है। यह कर्बनद्विओषित तन्तुओंके मल और जीवाद्यममें सञ्चित ओषजनके संयोगसे बनकर निकलती है। यदि इसका निकलना बन्द हो जाय तो शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

जीवाद्यममें जो ओषजन सञ्चित रहती है, वह थोड़े ही समयतक काम दे सकती है, अतएव हास्योत्पादक गैस द्वारा किसी मनुष्यको एक या डेढ़ मिनटतक ही अचेतन रख सकते हैं। इतने ही समयमें भिषग्वरको अपना काम कर लेना चाहिये। पर यदि शस्त्रोपचरादि क्रियामें इससे अधिक समय लगे तो किसी अन्य औषधका प्रयोग करना चाहिये। यह औषध भी हाथ लग गई है, पर यह न सोचना चाहिये कि अब हास्योत्पादक गैसका कोई काम ही नहीं रहा।

हास्योत्पादक गैसका महत्व

इस गैसका महत्व इसीमें है कि इसके पान करनेसे मनुष्य चार या पांच सैकंडोंमें अचेतन

हो जाता है। तदुपरान्त इस अवस्थामें रखनेकेलिए (A. C. E.) ए.सी.ई. मिश्रण जो अलकोहल, क्लोरोफ़ार्म और ईथरका मिश्रण है—प्रयोग किया जा सकता है। आधुनिक वैज्ञानिकोंका अन्य कोई भी ऐसा पदार्थ ज्ञात नहीं जो हास्योत्पादक गैसकी नाईं क्षणमात्रमें ही मनुष्य की अचेतन्य कर दे।

ईथरका (Ether) प्रयोग

अब हम उपरोक्त महत्वपूर्ण आविषकारके चालीस वर्ष आगेका हाल लिखते हैं, जब कि ईथरका आविषकार हुआ। यह द्रव अपने ईथरीय (आकाशीय) गुणों–निर्मल श्वेत रंग, और चंचलता-के कारण ईथर कहा जाता है।

बहुत समयतक अचेतन रखनेमें ईथरका प्रयोग।

यह द्रव बड़ी शीघ्रता और सुगमतासे वाष्प बनकर उड़ जाता है। यह बहुत तरल, चंचल, श्वेत, द्रव है। इसके गुण अलकहलसे बहुत मिलते जुलते हैं और बहुधा शराबकी नाईं पिया जाता है। शराब और गंधकाम्लसे यह बनता है। इसका उबाल विन्दु ३३ श॰ के लगभग है। अतएव गरमियोंमें इसका रखना बड़ा कठिन है। यह जल्दीसे आग ले जाता है, इसीसे लड़ाइयोंमें, रणक्षेत्रमें इसका रखना, ले जाना या प्रयोग करना सब ही कठिन हैं। एक गज़की दूरीपर रखे हुए लम्पसे भी इसमें आग लगनेका भय रहता है।

प्रयोग—ईथरको एक बोतलमें रखकर उसमें दो कांचकी नली लगाओ, एक (अ) बोतलके पेंदेतक पहुंचती हो और दूसरी (क) उसके मुंहमें लगी हुई कागके ज़रा नीचेतक। (अ) में होकर हवा फूंको, यह द्रवमें होकर बुदबुदायगी और क में होकर निकलेगी। यदि यह हवा अब श्वास द्वारा किसीके शरीरमें पहुंचे, तो वह बेहोश हो जायगा। यह 'सार्वत्रिक अचेतना'—(सब अङ्गोंमें अचेतनता आ जाती है) बहुत देर तक रखी जा सकता है, केवल यह ध्यान रखना पड़ता है कि ईथरकी वाष्पकी मात्रा रोगीके रुधिरमें एक विशेष परिमाणसे अधिक न रहने पाय, नहीं तो फेंफड़े और दिलकी क्रिया बन्द हो जानेका भय रहता है।

(शेष फिर)

विकाशवाद

[ले॰ करमनारायण, एम. ए.]

भूमिका।

विकाशवाद क्या है ?

प्रत्येक समझदार मनुष्यके मनमें यह जाननेकी अभिलाषा होती है कि यह सृष्टि किस प्रकार उत्पन्न हुई और इसकी उत्पत्ति हुए कितना समय गुज़र गया है। जीव जंतु तथा वृक्ष इत्यादि जो पृथ्वीपर विद्यमान हैं यह आदिमें क्योंकर उत्पन्न हुए? क्या विधाताने सृष्टिकी उत्पत्तिके साथ जीवोंकी इतनी ही जातियां उत्पन्न कर दी थीं जितनी अब हम देखते हैं, अथवा इनकी संख्यामें पीछे किसी प्रकारकी न्यूनता वा अधिकता हुई है? क्या इस संसारके जीवोंका स्वरूप और उनकी बनावट सदासे ऐसी ही रही है जैसी कि वर्त्तमान कालके जीवोंकी है अथवा अब जीव आगेकी अपेक्षा भिन्न हैं? जीवोंकी सृष्टिमें मनुष्यका क्या स्थान है? क्या मनुष्य भी सृष्टिके आदिमें ही उत्पन्न हुआ अथवा उसकी उत्पत्ति कभी पीछे आकर हुई? क्या (निर्जीव) पदार्थिक तथा जीवित (सजीव) सृष्टिकी अवस्था सदा यही रही है जैसी अब है अथवा बदलती रही है! इन सब प्रश्नोंके उत्तर जाननेकी अभिलाषा मनुष्यको सदासे रही है। धार्मिक तथा तार्किक वादाविवादमें इन विषयोंपर विचार होता रहा है और आजकल भी होता रहता है। भिन्न भिन्न लोग भिन्न भिन्न प्रकारसे इनका उत्तर देते हैं और उन उत्तरोंके अनुसार संसारमें अनेक मतमतान्तर प्रचलित हो गए हैं।

Evolution विकाशवाद]

ईसाई व यहूदी लोगोंका मन्तव्य सृष्टि तथा जीवोंकी उत्पत्तिके विषयमें बहुत सीधा सादा है। वे एक सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान ईश्वरको मानते हैं और सारी सृष्टिको उसकी रचना कहते हैं। अञ्जीलके अनुसार पहले दो दिनोंमें ईश्वरने पृथ्वी, आकाश और ज्योतिको बनाया, तीसरे दिन पृथ्वीने घास पात बीजदायक बनस्पतियां तथा फलदार वृक्ष ईश्वरकी आज्ञानुसार उत्पन्न किये। चौथे दिन सूर्य्य और चंद्र बनाए गए, पांचवें दिन जलमें रहने वाले जंतु तथा वायुमण्डलमें उड़ने वाले पक्षी उत्पन्न किये गए। छटे दिन स्थलजीवोंको पृथ्वीने उत्पन्न किया और उसी दिन ईश्वरने एक पुरुष (हज़रत आदमको) अपने रूपानुसार उत्पन्न किया। आदमकी पसलीसे स्त्री (हव्वा) उत्पन्न हुई। इसलिए ईसाई मन्तव्यके अनुसार पहले पहल एक पुरुष और एक स्त्रीको ईश्वरने उत्पन्न किया और उनके अनन्तर सारा मानुषी जगत आदम और हव्वाकी सन्तान है। यदि केवल जीवोंकी सृष्टिको ही लिया जाए तो उनकी उत्पत्तिका क्रम यह निकलता है:-(१) वनस्पति (२) जलचर तथा पक्षी (३) स्थलचर और (४) मनुष्य। परन्तु हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि सारा जगत छः दिनोंमें ही बना हुआ माना जाता है क्योंकि सातवें दिन परमेश्वरने विश्राम किया था।

आर्य्यसमाजी लोग भी सर्वशक्तिमान परमात्माको मानते हैं और कहते हैं कि जिस प्रकार कुम्हार मिट्टीको लेकर दण्ड चक्र इत्यादि द्वारा घड़ा बना लेता है उसी प्रकार परमात्माने प्रकृति और जीवको लेकर यह जगत (जीवित तथा निर्जीव) उत्पन्न किया है। ईश्वरको जगतका निमित्त कारण, प्रकृतिको उपादान कारण और जीवको सामान्य कारण बतलाते हैं। ईश्वर, जीव तथा प्रकृति तीनोंको अनादि मानते हैं और कहते हैं कि जिस प्रकार दिनके पीछे रात और रातके पीछे दिन फिर आ जाता है उसी प्रकार सृष्टिके पीछे प्रलय और फिर सृष्टि यह क्रम अनादि कालसे चला आता है। मनुष्यकी उत्पत्तिके विषयमें यह माना जाता है कि सृष्टिके आदिमें अनेक पुरुष और स्त्रियोंके जोड़े उत्पन्न किये गए जिसको ईश्वरीय सृष्टि कहते हैं। इन जोड़ोंके मेलसे मनुष्योंकी संख्यामें वृद्धि हुई और अब तक हो रही है—यह मैथुनी सृष्टि कहलाती है। मनुष्यके सिवाय अन्य जीवोंकी उत्पत्ति उनके पूर्व जन्मके कर्म्मोंके अनुसार मानी जाती है, और इसीलिए कर्म्म भी अनादि ही बतलाए जाते हैं। जीवोंकी विचित्रता तथा उनमें जातियोंकी बाहुल्यताका विचार बहुत कम मिलता है, और न इनकी पुस्तकोंमें जीवजन्तुओंकी वर्त्तमान तथा भूत अवस्थामें भेदका कोई वर्णन मिलता है। ईसाइयों और आर्य्यसमाजी लोगोंके मन्तव्योंको नमूनेके तौरपर हमने वर्णन किया है। अन्य मत भी सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णन ईसाई अथवा आर्य्यसमाजियोंकी तरह ही करते हैं और इसलिए उनका सारा वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं। दो बड़े बड़े सिद्धान्त हैं जिनमें सबके सब मतोंके विश्वास आ जाते हैं। पहला सिद्धान्त ईसाइयों जैसा है कि पदार्थोंकी वर्त्तमान अवस्था अनादि कालसे नहीं है परन्तु इस अवस्थाको हुए हुए परिमित समय हुआ है। यह समय बहुत अधिक नहीं है। सारा जगत शून्यतासे झटपट उत्पन्न हुआ था या सृष्टिके सारे पदार्थ क्रमसे छः दिनोंमें उत्पन्न हुए थे। सारा उत्पत्तिका कार्य्य ईश्वरीय है। दूसरा सिद्धान्त जिसमें आर्य्य समाजियोंका विश्वास शामिल है यह है कि संसारकी अवस्था और कुदरतके आलोक सदासे ऐसे ही चले आए हैं जैसे अब हैं। भूत कालमें भी जीवजन्तु ऐसे ही थे जैसे अब हैं। पौदे भी सदा ऐसे ही रहे हैं। लाखों वर्ष पहले भी पहाड़ों और समुद्रोंकी अवस्था यही थी अर्थात् सृष्टिकी अनादि कालसे ही वर्त्तमान कालकीसी अवस्था रही है। तीसरा सिद्धान्त जिसका विस्तीर्ण वर्णन हम इस पुस्तकमें करना

चाहते हैं विकाशसिद्धान्त कहलाता है। इस सिद्धान्तका विचार पहले पहल प्राचीन यूनानियों-के तर्कमें मिलता है।

ऐम्पिडोक्लीज़ (Empedocles) और उसके कई साथियोंके लेखोंमें इसका टूटा फूटा विचार मिलता है। अरस्तु के (Aristotle) लेखोंमें तो हमें विकाशसिद्धान्तकी काफ़ी उन्नतिका पता मिलता है। इसके पीछे ईसाईमतके प्रचारके कारण विकाशसिद्धान्तपर विचार किया जाना बिलकुल बन्द हो गया। कई शताब्दियोंके पीछे सत्रहवीं सदीके अन्तमें फिर विकाशसिद्धान्तका विचार आरम्भ हुआ। इरैस्मस डार्विन (Eerasmus Darwin) गूटा (Goeth) और ट्रैविरेनस(Treviranus)ने इस विचारपर लेख प्रकाशित किये। लैमार्क (Lamark) पहला पुरुष हुआ जिसने विकाशसिद्धान्तका मण्डन करते हुए विकाशविधिके प्रमाण तथा कारणोंपर सविस्तार विचार किया। उन्नीसवीं सदीके मध्यमें डारविन (Darwin) और वालेस (Wallace) ने वैज्ञानिक संसारमें इसी सिद्धान्तका प्रचार करके एक हलचल मचा दी। डारविनने "जातियोंकी उत्पत्ति" नामक एक ग्रंथ सं० १९१५ वि० में प्रकाशित किया। इससे विकाशसिद्धान्तपर बहुत वादाविवाद हुआ और कई वर्षतक होता रहा। ईसाईमतके अनुयायियों तथा पादरी लोगोंने इस सिद्धान्तका बहुत विरोध किया परन्तु थोड़े ही समयमें इसने अपना सिक्का जमा लिया, यहां तक कि आजकल सब वैज्ञानिक इसे, मानते हैं और साधारण पढ़े लिखे लोग भी इसीमें विश्वास रखते हैं।

यह नवीन सिद्धान्त मानता है कि पदार्थोंकी वर्त्तमान अवस्था परिमिति कालसे है और यह अवस्था प्राकृतिक नियमों (कुदरती तरीकों) द्वारा पिछली अवस्थाओंसे विकसित हुई है। यह सिद्धान्त सृष्टिकी उत्पत्ति, जीवोंकी विचित्रता, जातियोंकी बाहुल्यता, जगतकी वर्त्तमान तथा भूत अवस्थामें भेद, जन्तुओंमें मनुष्यका स्थान तथा अन्य कई प्रकारके प्रश्नोंपर विचार करता है और रोशनी डालता है।

सामान्य मनुष्यको विकाशका विचार समझानेकेलिए हम एक सीधासा उदाहरण देते हैं। आजकल सड़कोंपर तथा बाज़ारोंमें छोटे बड़े बाईसिकल पर (Bicycle) चढ़े दिखाई देते हैं। सब लोग अपने अनुभव (तजरुबे)से जानते हैं कि मशीन कितनी लाभदायक है परन्तु इस मशीनकी, जो हमें सीधी सादी प्रतीत होती है, बनावटकी कहानी लम्बी है। यह मशीन झट पट इसी रूपमें नहीं बन गई थी परन्तु धीरे धीरे कई परिवर्त्तनोंके पीछे इसका वर्त्तमान रूप व आकार बना है।

एक प्रकारकी बाईसिकल १८७५ वि० के लगभग विलायतके लोग काममें लाते थे। चढ़ने-वाला इसको अपने पांवसे ढकेलता था और थोड़ी देरतक चढ़ लेता था और फिर ढकेलता था। चलानेकेलिए पैडल (pedal) तक इसमें नहीं होते थे अर्थात् मशीन क्या थी केवल एक बच्चोंका खिलौना सा था। यदि आजकल कोई इस प्रकारके हाबीहार्स पर (Hobbyhorse) चढ़े तो ज़रूर लोग उसपर हंसेगें और तालियां बजाएंगे। (चित्र १) कोई पचास वर्ष पीछे हाबी-

होबी हार्स (Hobby horse)
चित्र १
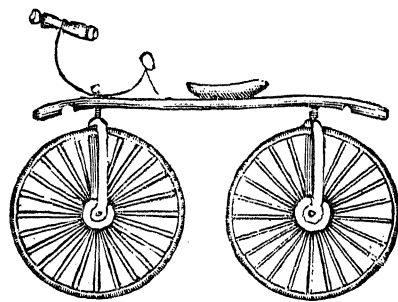
हार्ससे अच्छी मशीन निकली। इसको बोनशेकर

(bone-shaker) कहते थे। अधिकता इसमें यह थी कि चलानेकेलिए पैडल लगे हुए थे और काठीपर बैठकर लगातार चलाई जा सकती थी। आजकलकी बाईसिकलका सा सुख इसमें कहां था। इसको तो चलाना भी दुःख ही था। जैसा नामसे विदित है चलाते समय हड्डियोंके जोड़ोंको हिला डालती थी (चित्र २)। इसमें भी धीरे धीरे
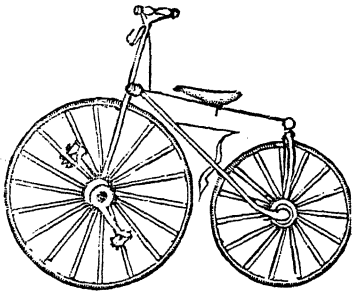
बोनशेकर (Bone shaker)

चित्र २

किसीने उन्नति की और "हम्बर स्पाई डर" नामी मशीन बनाई (चित्र ३)। इसमें अगला चक्र बहुत बड़ा है और पिछला छोटा है। इसलिए इसकी चाल तो तेज़ थी परन्तु इसपर चढ़ना कठिन होता था और चढ़कर चलाना भी साहसका काम
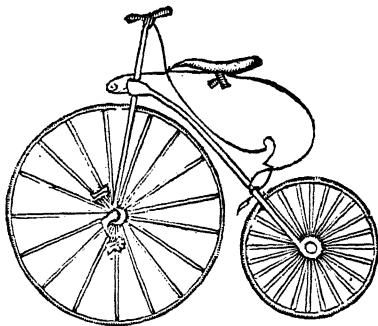
हम्बर स्पाईडर (Humber spider

चित्र ३

था। आजकल हम इसे ज़रूर भयदायक और दुःखदायक समझें परन्तु उस समयके लोग इसको ही चलाया करते थे और इससे काफ़ी आराम पाते थे। आजकलके फ्री ह्वीलके (FreeWheel) सुख और लाभ सबको भली प्रकार विदित हैं। क्या ही तेज़ीसे हम इसे चला सकते हैं। बाईसिकलका विकाश यहां ही समाप्त नहीं हो गया परन्तु इस फ्री ह्वीलमें भी उन्नति की गई। लोगोंको यह सूझी कि किसी तरह बहुत परिश्रमके बिना बाईसिकलकी सवारी की जाए और उन्होंने फ्री ह्वीलमें एक और मशीन लगाकर मोटर बाईसिकल (Motor bicycle) बना ली। इसमें टांगें मारनेकी भी आवश्यकता नहीं, एक प्रकारके तेलकी (पैट्रोल Petrol) शक्तिसे चलती है। इसी पैट्रोलकी शक्तिको गाड़ीमें लगाकर मनुष्यने मोटरकार (Motor car) बनाई, जो आजकल बगोलेकी तरह सड़कोंपर मिट्टी उड़ाती और तेज़ीसे चलती नज़र आती है।
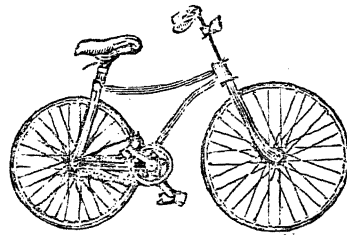
आधुनिक बाईसिकल

चित्र ४

पूर्वोक्त उदाहरणमें हमने बाईसिकलके विकाशकी कहानी कही है। इसमें हमें दो बातोंपर विशेष विचार करना है। प्रथम यह कि पहले पहल बाईसिकल बहुत ही सीधी सादी तौरपर बनी थी, न तो सुखदायक और न लाभदायक थी और इसलिए बहुत देरतक न रही। दूसरी बात यह कि ज्यों ज्यों अन्य अच्छी और सुख तथा लाभदायक मशीनें बनती गईं त्यों त्यों पुरानी दुःखदायक मशीनोंका लोप होता गया। आजकल कोई भी कारीगर बोनशेकर तथा हाबीहार्स नहीं

बनाता और न ही कोई इस तरहकी मशीनोंको मोल लेता है। इस संसारमें अच्छी वस्तुके कारण बुरीका लोप हो जाता है और यह एक प्रकारका योग्यतमअवशेष (Survival of the fittest) है। अब मानना पड़ता है कि बाइसिकलकी वर्त्तमान बनावट और आकारमें विकाश सिद्धान्तके नियमोंके अनुसार ही परिवर्तन हुआ है। परन्तु प्रश्न हो सकता है कि क्या जीवजन्तुओंके इतिहासमें कोई ऐसी विधि काम करती हुई दिखाई देती है?

संसारमें योग्य जीव ही रह सकते हैं। जो निर्बल या बीमार हों वह सर्वदा मर जाते हैं। यह नियम विकाशसिद्धान्तका एक स्तम्भ है और आगे चलकर इसका सविस्तार वर्णन करेंगे।

(शेष फिर)

नया दूरवीक्षण यंत्र

[ले० महावीर प्रसाद बी. एस-सी. एल-टी.]

ब्रिटिश कोलम्बियाकी राजधानी विक्टोरियाके (tittle saanich) 'लिटिल सानिक' पर्वतपर बहत्तर इंचका एक (reflecting telescope) परावर्तक दूरवीक्षण यन्त्र लगाया गया है। इसके बारेमें कहा जाता है कि अबतक जितने श्रेष्ठ दूरवीक्षण बने हैं उन्हींकी श्रेणीमें यह भी है। विक्टोरियाका जलवायु सब ऋतुओंमें प्रायः समान रहता है। इसी कारण कनाडाकी सरकारने निश्चित किया है कि यह यन्त्र यहीं लगाया जाय क्योंकि तापक्रमके घटने बढ़नेसे छोटे छोटे और बारीक पुर्ज़े बहुत जल्द बिगड़ जाते हैं। इसकी बनावटमें बहुतसी अपूर्व और चित्ताकर्षक बातें हैं। इसके सारे बारीक अंग तेलमें घूमते हैं और इस प्रकार बंद किये गये हैं कि धूल और गर्द कभी इनके पास नहीं पहुंच सकती। इस यन्त्रके घूमनेवाले भागोंकी तोल ४५ टन अथवा मोटे हिसाबसे १२६० मन है परन्तु रखा इस प्रकार गया है कि घुमानेकेलिए केवल ढाई सेरके भारके बलकी आवश्यकता पढ़ती है! इसको इच्छानुसार घुमाने फिरानेकेलिए सात विद्युत चालक (Motor) लगाये गये हैं जिनके द्वारा बड़ी सुगमतासे और बड़ी जल्दी अकाशकी ओर किसी दिशामें यह लगा दिया जा सकता है। जिस शीशेसे इसका दर्पण बनाया गया है उसका व्यास ७२$\frac{१}{२}$ इंच अथवा दो गज़से कुछ ऊपर और मोटाई १३$\frac{१}{२}$ इंच अथवा १ फ़ुटसे कुछ ऊपर है और कुल टुकड़ा तोलमें दो टन वा ५६ मनसे ऊपर था। यह वृहत शीशेका टुकड़ा बेल्जियममें ढाला गया था और सौभाग्यसे वर्त्तमान युद्ध छिड़नेके ५ दिन पहले ही एँटवर्पसे भेज दिया गया था। नलीके मध्य-छेदका व्यास ८ फ़ुट, लम्बाई छः फ़ुट और तोल १६० मनके लगभग है। इतना बड़ा भारी यन्त्र इतनी शुद्धता और समगतिके साथ Driving clock प्रेरक घड़ीके द्वारा घुमाया जा सकता है। नेत्र-तालका छोटा छिद्र किसी ताराके सन्मुख बड़ी सुगमतासे बहुत देरतक स्थिर रह सकता है। यह दूरवीक्षण जिस भवनमें रखा है उसका व्यास ६६ फ़ुट है और सब का सब स्पातका बना हुआ है जिसकी रक्षा जस्ता चढ़े हुए स्पातकी दोहरी दीवालें चारों ओर से घेरे हुए करती हैं। इन दोहरी दीवालोंके बीच हवा अच्छी तरह आती जाती है जिससे भवनके भीतरका तापक्रम वही बना रहता है जो बाहर छायामें रहता है।

गुरुदेवके साथ यात्रा।

[ले० महावीर प्रसाद, बी.एस-सी., एल. टी.]

यल सोसाइटी आव् मेडिसिनका पद उतना ही उच्च समझा जाता है जितना रायल सोसाइटी आव् लंडनका। सर फ्रैन्सिस चेम्पनीकी समझमें ओषधि विज्ञानको उन्नत कर देनेकेलिए गुरुजीका काम इतने महत्वका जान पड़ा कि रायल सोसाइटी आव् मेडिसिनकी ओरसे उसके मंत्रीने गुरुजीको नीचे लिखा हुआ निमंत्रणपत्र भेजा।

"इस सोसाइटीके सभापतिने मुझे आज्ञा दी है कि मैं आपको लिखूं और आशा करूं कि भारतवर्ष जानेके पहले आप इस सोसाइटीके संमुख पौदोंकी प्रतिक्रियाओंपर उपपादन सहित एक व्याख्यान अक्तूबर अथवा नवम्बरमें दे सकेंगे क्योंकि वर्त्तमान कार्यकालके (Session) अधिवेशन एक प्रकारसे सभी हो चुके हैं।

"इस विषयपर आपके जो व्याख्यान हुए उनसे चिकित्सकोंमें बड़ी उत्कंठा उत्पन्न हो गयी है। इस सोसाइटी और इसकी उस कार्यवाहीके द्वारा जिसमें आपका व्याख्यान छपेगा आप इस देशके मुख्य मुख्य चिकित्सकोंके पास वस्तुतः पहुंच जायंगे"

गुरुजीके बाहर रहनेकी अवधि बीत गयी थी परन्तु उपर्युक्त सोसाइटीने भारत सरकारको तार दिया कि पश्चिममें गुरुजीके ठहरनेकी अवधि बढ़ा दी जाय जिससे वह व्याख्यान दे सकें। इसकी स्वीकृत तुरन्त मिल गयी।

गुरुजीके सप्रयोग व्याख्यान सुननेकेलिए मुख्य मुख्य डाक्टर और शल्य चिकित्सक एकत्र हुए थे। गुरुजीने कहा कि ओषधियोंकी वैज्ञानिक जांच करनेका उद्देश्य यह होना चाहिए कि पौदोंके सरलसे सरल जीवाद्यम विभागपर ओषधियोंकी मुख्य क्रिया क्या होती है क्योंकि यह तो सभी मानेंगे कि वानस्पतिक अंगोंपर प्रतिस्पन्दनका (Irritability) सरल घटनाओंकी जांचसे ही पाशविक तन्तुओंकी पेंचदार जीव-विज्ञान-संबन्धी-क्रियाओंका पूरा ज्ञान होना सम्भव है। गुरुजीने कहा कि मैं प्रत्यक्ष दिखला दूंगा कि वानस्पतिक और पाशविक अंगोंके जीवविज्ञान सम्बन्धी लक्षणोंमें सादृश्य है।

इसके पश्चात् उन्होंने विद्युद्द्वारा, कई प्रकारके विषों तथा अन्य उत्तेजक और अवसादोत्पादक ओषधियोंकी उस क्रियाका वर्णन किया जो पौदेके आकुञ्चनशील, परिचालक और आनुप्रासिक तन्तुओंपर होती है। उन्होंने समझाया कि पादेपर किसी ओषधिका साधारण प्रभाव दो और बातोंपर बहुत कुछ निर्भर है, उनमेंसे एक तो मात्राका प्रभाव अथवा प्रयोगकी तीक्ष्णता है और दूसरा उत्तेजकके (cumulative) संचयात्मक प्रभाव द्वारा तन्तुओंका परिवर्त्तन है क्योंकि इनके कारण (organism) अंगीके प्रतिस्पन्दनमें पूर्ण चक्रीय परिवर्तन हो जाता है। इस आणविक चक्र (moleculor cycle) संबंधी अद्भुत आविष्कारने उस बड़े गूढ़ रहस्यका उद्घाटन किया है जिससे वैद्यक शास्त्रमें बहुत बड़ी अड़चन पड़ा करती थी। इससे सिद्ध हो गया कि एक प्राणीपर किसी पदार्थका जो प्रभाव पड़ता है दूसरे प्राणीपर बिलकुल भिन्न हो सकता है, अर्थात् जो एककेलिए अमृत है वही दूसरेकेलिए विष हो सकता है। गुरुजीने दिखला दिया कि इसका कारण तन्तुका चक्रीय आणविक परिवर्तन है जो उसके विगत इतिहाससे जाना जा सकता है। रोगोन्मुख प्रतिस्पन्दनकी घटनाको ही ले लीजिए, यह या तो श्रान्तिसे हो सकती है या उत्तेजनाके अभावसे। पहली दशामें उत्तेजकका प्रयोग मृत्युका कारण होगा और दूसरी दशामें बलको बढ़ाकर जीवनका संचार करेगा। डाक्टरोंके व्यवहारमें इन दोनों दशाओंके उदाहरण मिलेंगे। तब उनको प्रत्यक्ष

मालूम पड़ेगा कि यदि आणविक चक्रके सहज गुणोंका (charasteristic properties) ध्यान न रखनेसे विभेदक निदानमें तनिक भी चूक हुई तो एक रोगी जिस उत्तेजकसे पुनर्जीवन प्राप्त कर सकता है दूसरा उसीसे कालके गालमें जा सकता है। व्याख्यानको श्रोताओंने मुग्ध चित्त होकर सुना। अन्तमेंगुरुजी ने कहा—

"मैंने छोटेसे व्याख्यानमें अपने प्रयोगोंके उन परिणामोंका वर्णन किया जिनसे पौदोंका संबन्ध हमसे इतनी निकटका हो जाता है जितना कभी विचारमें भी नहीं हुआ था। हमको अनुभव होता है कि यह केवल घास पात ही नहीं हैं वरन् इनके एक एक तन्तुमें चेतनाशक्ति है। हम देखते हैं कि बाहरी उत्तेजकोंके प्रयोग करनेपर यह उत्तर देते हैं और जैसे जैसे धक्केका बल अधिक होता है तैसे तैसे प्रतिस्पन्दन करनेवाली एंठनें बढ़ती जाती हैं। हम इस योग्य हो गये हैं कि इसके जीवनकी फड़कनका उल्लेख कर लिख सकें और यह जान सकें कि पौदोंकी जीवन-दशाओंके अनुसार यह घटती बढ़ती है और जब (Organism) अंगीकी मृत्यु हो जाती है तब बिलकुल रुक जाती है। हमने देख लिया है कि पूरा पौदा जोड़ने वाले सूत्रोंके द्वारा एक है जिसके कारण यदि कम्पन विक्षोभ द्वारा एक स्थानमें पैदा हो तो वह सारे शरीरमें फैल जाता है और यह भी देख लिया है कि मनुष्योंकी नाईं पौदोंमें भी कई प्रकारको औषधियों और विषोंके प्रयोगसे स्नायविक धक्का बढ़ाया अथवा रोका जा सकता है। इन बातोंमें और अन्य अनेक रीतियोंमें मनुष्य और वनस्पतिकी जीवन-क्रियाएं एकसी हैं। इस प्रकार पौदोंके द्वारा जो कुछ अनुभव हो सकता है उससे मानव जातिके दुःख दूर करनेमें बड़ी सहायता मिल सकती है।"

इस संस्थाके सन्मुख व्याख्यान देनेकेलिए बुलाया जाना कितने गौरव और आदरकी बात समझी जाती है—यह इस बात से स्पष्ट होता है कि ऐसा गौरव अभीतक केवल एक और विदेशी विद्वान मेंचनीकाफको (Metchnikoff प्राप्त हुआ है। औषध-विद्या विशारदोंपर उपर्युक्त व्याख्यानका जो प्रभाव पड़ा उसका अनुमान नीचे लिखे पत्रसे किया जा सकता है, जिसे इस संस्थाने भारत सचिवके नाम भेजा था—

रायल सोसायटी आव मेडिसन
नवम्बर ३ री, १९१४.

राइट आनरेबल
मारकुइस आव क्रू, के. जी., की सेवामें।
माई लार्ड,

आपको सूचना देते हुए मुझे हर्ष होता है कि आपने अनुग्रहपूर्वक जो आज्ञा दी थी उसके अनुसार अध्यापक जे. सी. बोस, सी. एस. आई. सी. आई. ई.. एम. ए- डी.एस्-सी. ने यहां सभ्योंके सन्मुख सर हेनरी मारिसके सभापतित्वमें शुक्रवारको व्याख्यान दिया। श्रोताओंसे स्थान खचा खच भरा था जिनमें बड़े बड़े प्रसिद्ध चिकित्सक भी उपस्थित थे।

व्याख्यान बड़ा ही उत्तम हुआ। इसमें श्रोताओं और दर्शकोंका चित्त अच्छी तरह आकृष्ट रहा। सर लाडर ब्रन्टन बी.टी. और अन्यमहाशयोंने वाद विवादमें भाग लिया और डाक्टर बोस तथा सोसाइटीको उनके कामकी उपयोगिताकेलिए बधाई दी। इसके पश्चात् मुझे कई प्रशंसात्मक पत्र मिले जिनका सार यह है कि सोसाइटीने बड़ा ही अच्छा किया कि सदस्योंको एक ऐसे आकर्षक उपपादन-को देखनेका अवसर मिला जो जीव-विज्ञानमें नये ढंगका था।

आर्थर बालफ़ोर

आंगल देशमें हमारे ठहरनेकी अवधि निकट आ गयी थी क्योंकि गुरुजीके पास संयुक्तराज्य के प्रमुख विश्वविद्यालयों, न्यूयार्कके विज्ञान परिषद्

(Academy of science) तथा अमेरिकाकी विज्ञानोन्नति कारिणी संस्थाके सन्मुख व्याख्यान देनेके निमन्त्रण आ चुके थे । वहांसे प्रस्थान करनेसे पहले भूतपूर्व प्रधान मंत्री तथा वर्त्तमान अग्रगण्य समुद्रपति मि० बालफोर हमारे यहां आये । जितना आदर इस बड़े दार्शनिक- का सब पक्षके लोग करते हैं उतना और किसीका नहीं होता । स्वतन्त्र दलका 'पंच' परोपकारमें इनको 'प्रिन्स आर्थर' की पदवी दे चुका है, जो आर्थर सम्बन्धी कहानियोंका प्रिंस था । आंगल देशके बहुतसे प्रसिद्ध विज्ञान वेत्ताओंके साथ इनका सम्बन्ध है। परलोक गत लार्ड सैलिसबरीके यह भतीजे हैं जो केवल बड़े राजनीतिज्ञ ही न थे वरन् एक प्रसिद्ध रसायनवेत्ता भी थे। इनकी बहिन प्रसिद्ध रेलेकी धर्मपत्नी हैं और इनके भतीजे आनरेबुल मि० स्ट्रट है, जिनके विद्युत्-अणु तथा विद्युत्-विसर्जनीय (radio-active) संबंधी कामसे सब परिचित हैं। इनके परलोकगत छोटे भाई अध्यायक बालफोर अपने समयके बहुत बड़े गर्भ विज्ञान वेत्ताओंमेंसे (Embryologist) थे।

ऐसे उच्चकोटिके शिक्षित और बहुविद्याप्रेमीसे मिलनेका सौभाग्य बहुत कम प्राप्त होता है । गुरुजीको आज ऐसे विद्वानसे वार्तालाप करना पड़ा जिसके साथ उनको अपनी पूरी विद्वत्ता लगानी पड़ी । प्रत्येक प्रयोगके आरम्भमें इस दार्शनिकने जितने उत्कण्ठासूचक प्रश्न किये उनके उत्तर देनेमें चित्त उत्तेजित हो उठता था। प्रत्येक उपपादनके अन्तमें उनके मुखसे यही निकलता था "जब आपने इसे सिद्धकर दिया तब सम्भव है कि इसकी खोज और आगे की जाय और इससे भी उच्चकोटिका परिणाम निकले ।" किन्तु यह वही प्रयोग होता था जो अगले उपपादनकेलिए प्रस्तुत किया जाता था। इस प्रकार इस चकित दर्शकके सन्मुख थोड़ा थोड़ा करके एक बड़ा ढांचा तैयार किया गया जिसका आरम्भ सार्वभौमिक आणविक प्रतिक्रियासे जो कि सब धड़कनोंका मूल है होता था और जिसकी इति पूर्णअंगोंसे सम्पादित (Organised) ढांचोंके पेचदार आविर्भावमें होती थी। फिर उन गूढ़ नियमोंपर प्रश्न उठा जिनपर जीवन निर्भर है और जिनके रुक जानेपर इसका अन्त हो जाता है । सरल ढांचेमें अमरत्व (Potential immortality) कैसे सम्भाव्य है। उच्चश्रेणियोंमें जैसे जैसे उनकी परिस्थितिमें परिवर्तन होता है तैसे तैसे आणविक अस्थिरता अपने सहभावी सरल उलट फेरोंके साथ स्पष्ट होती जाती है। इसीकारण चेतनाशक्तिका विस्तार बढ़ जाता है-जिसका ही दण्ड मृत्यु रूपसे हमें प्राप्त होता है। पौदोंकी स्नायविक प्रतिक्रिया संबंधी उपपादनके पश्चात् पविज्ञान शक्तिपर (Sensation) भी प्रश्न उठा कि बहुत ही पेंचदार स्नायविक ढांचेके आणविक उथल पथल (Molecular disturbance) की तरंगमें परिज्ञान सम्बन्धी धक्का कैसे उत्पन्न होता है और वाह्य अथवा आन्तरिक उत्तेजकके उत्तरमें इस प्रधान आणविक उथल पथलकी प्रकृतिसे सुख दुःख अनुभव करने तथा परिज्ञानकी सूक्ष्मता अथवा गम्भीरताका निश्चय कैसे होता है। इसपर भी प्रश्न हुआ कि प्रत्येक धक्केसे ऐसी लहर कैसे उत्पन्न होती है जिसमें सुख, दुःख अनुभव करानेकी शक्ति विद्यमान् है और यह कैसे सम्भव है कि आणविक तरंगकी (Directive) गतिमें परिवर्त्तनकर देनेसे ऐसी भिन्नता उत्पन्न की जा सकती है कि एकका नाश हो जाय और दूसरा बढ़ जाय । अन्तमें यह भी बातचीत रही कि मनुष्य वाह्य परिस्थितिका दास नहीं है वरन् भीतर एक ऐसी शक्ति रखता है जिससे वह अपने उस आणविक स्वभावमें भी परिवर्तन करसकता है जो सारे परिज्ञानका (Sensation) कारण है ।

आयुर्वैदिक चुटकले

[ले० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.]

१. स्कूल जाने वाले विद्यार्थियोंके दांतोंकी कुदशा।

प्रत्येक हिन्दू बालकको सिखाया जाता था कि प्रातः शौचसे निवृत्त हो दांतून करे। पर आजकल जहां और संस्थाएँ बिगड़ी हैं, तहां नित्य नैमित्तक कर्ममें भी मनुष्यबड़ी असावधानी करते हैं। शहरोंमें विशेषतः हज़ारों बालक ऐसे हैं जो शायद ही छठे चौमासे दांतन करते हों, पर यहां फ़िकर किसे है। स्कूलों में पढ़ाई केवल सस्ते क्लर्क बनानेके उद्देश्यसे होती है; माता पिताओंको भी लड़कोंके आचार विचारका ख़्याल नहीं रहता। बालकोंके स्वास्थ्यकी परीक्षा कभी नहीं की जाती। संयुक्त राज्य, अमेरिकाके पब्लिक-हेल्थ सर्विसनामी महकमेने देहाती मदरसोंके लड़कोंकी परीक्षा की और दांतोंके विषयमें जो रिपोर्ट उन्होंने लिखी उसका सारांश पैसेफ़िक मेडिकल जरनल (Pacific Medical Journ.) से उद्धत किया जाता है:—

४६·३ प्रतिशत बच्चोंके दांत निकम्मे पाये गये,

२१·१% के दो एक दांत ग़ायब थे और केवल १६.६.% के दांतोंकी उचित रक्षाकी गई थी। १४% बालकोंने कभी ब्रुश (दांतन) छुआ भी न था, ५८·२% ने कभी कभी दांत साफ़ किये थे, केवल २५·४% नित्य प्रति दान्त साफ़ करते थे।

निकम्मे दांतोंसे शारीरिक उपयोगिता कम हो जाती है। बाय और दिलकी बीमारियोंका कारण विशेषतः गन्दा मुंह है। अपने दांतोंकी बुरी दशाकेलिए बच्चे उत्तरदायी नहीं हैं। मूर्ख और लापरवाह माता पिता ही इसके लिए दोषी हैं। यद्यपि स्कूलोंमें शारीरिक स्वच्छतापर उपदेश हुआ करते हैं, तदपि जब तक माता पिता इस कार्यमें पाठकोंके साथ सहकारिता न करेंगे, तब तक सुधार होना कठिन है।

२. पेरू बालसमका उपयोग घावोंमें

अमेरिकान मेडिसिन (American Medicine) में एक लेखकने लिखा है कि अरंडीके तेलमें दशमांश पेरूबालसम (Peru Balsam) मिलानेसे घावों और चिरे या कटे हुए अङ्गोंकेलिए बड़ी उपयोगी मर्हम तैयार हो जाती है। यह मर्हम विशेषतः उन घावोंकेलिए बड़ी उपयोगी है जिनमें दाना पड़ने लगा हो। इस मर्हमके प्रभावसे घावका नीचेसे अच्छा होना आरम्भ होता है

३. गरम पानीका खांसीमें उपयोग

मेडिकल फोर्टनाईटली (Medical fortnightly) में लिखा है कि कभी कभी अचानक खांसी उठ आती है और विशेषतःक्षयरोगियोंको (Cunsumptive) और पुराने मरीज़ोंको इससे बड़ी हानि पहुंचनेकी सम्भावना रहती है। पाठकोंका भी अनुभव होगा कि कभी कभी विशेषतः सोतेमें बड़े ज़ोरकी खांसी उठती है और दो एक घंटेमें शान्त हो जाती है, पर इतने कम समयमें ही रोगियोंको बेदम और अधमरा कर देती है। जब कभी ऐसी घटना हो तो बहुत गरम (लगभग उबलता हुआ) पानी थोड़ा थोड़ा करके चूसना चाहिये। यह पानी अन्य ओषधियोंसे—जिनसे पाचनशक्ति ख़राब हो जाती है और भूख मारी जाती है—कहीं अधिक उपयोगी है।

४—कर्बन चतुर्हरितका प्रयोग ज़ख़्मोंमें।

ताज़ा ज़ख़्मोंके आसपासकी खाल परसे चर्बी या चिकने पदार्थोंको हटानेके लिए अबतक ईथर, बेंज़ीन, क्लोरोफ़ार्म या अल्कोहलका प्रयोग किया जाता था, पर हालमें मेक—औलिफ़ने 'बुलेटिन डि ला एकेडेमी डी मेडीसन' के एक लेखमें दिखलाया है कि कर्बन चतुर्हरित भी उपरोक्त काममें प्रयुक्त हो सकता है। यह पदार्थ (कर्बन टेट्राक्लोरैड) पानीके साथ मिलता नहीं है, पर यदि इसके कई क़तरे (बून्द) घावके आसपास की खालपर रखे जायं और गरम पानी डालकर रगड़ दिया जाय तो सब स्निग्ध पदार्थ घुल जायंगे।

यह पदार्थ उपयोगी, सस्ता, और क्लोरोफ़ार्मकी अपेक्षा कम उड़ने वाला है। यह जल्दीसे आग नहीं लेता अर्थात् जल्दीसे नहीं जलता। यह पदार्थ तेज़ाबों या क्षारोंके समान हानिकारक भी नहीं है, यह जल्दी नहीं बिगड़ता है, बल्कि बहुत अच्छा पूतिनाशक भी है। पर इस पदार्थमें एक दोष है- वह यह कि बाज़े आदमियोंको इसकी गन्ध असह्य होती है। यदि ऐसा हो तो इसमें थोड़ासा मैंथोल हल करना चाहिये, जिसकी सुगंन्धि इसकी दुर्गन्धको दबो लेगी।

(American medicine से)

५—फोड़े और कर्बनकिल

प्रायः साधारण या मधुमेहके रोगियोंके फोड़ोंके निकलनेके पहले सुहावनी खुजली सो मालूम हुआ करती है। यदि फोड़ोंके होनेका कोई भी चिन्ह कहींपर देखनेमें आये तो उस स्थानपर ईथरमें १० से ५०% तक मैंथोल घोलकर ऊंटके बालोंके ब्रुश से जैसा साधारण बाज़ारोंमें मिला करता है, चुपड़ दो। ऐसा करनेसे फोड़ा वहींके वहीं बैठ जायगा। सूजनके पटकने और खुजलीके दफा करनेका भी यह सुगम और उपयोगी उपाय हैं।

(Southern Clinic से)

६—प्याज़के गुण व उपयोग।

हमारे बहुतसे हिन्दू भाई प्याज़को नहीं खाते और उसे निकृष्ट पदार्थ समझते हैं। दक्षिणमें और उत्तर हिमालयमें ब्राह्मण भी प्याज़ खाते हैं, पर मध्य प्रदेश आर्यावर्तमें बहुतसे द्विजातीय इस पदार्थको नहीं खाते। शास्त्रकारोंने (आयुर्वेद) इसकी प्रशंसा भी बहुत की है।

आजकल मित्रदल जो फ्रांसमें लड़ रहे हैं,उन्हें प्याज़ कच्ची ही खानेकेलिए बांटी जाती हैं। यह सुनकर इस पदार्थसे घृणा करनेवाले आश्चर्य करेंगे,पर यह आश्चर्य तभी तक रहेगा, जबतक वे इसके गुणोंसे अपरिचित हैं। इस नोटका लेखक भी प्याज़का खाना अपने धर्मके विरुद्ध समझता है, पर यथा तथ्य कहना परम धर्म्म है, अतएव इसके गुणोंका वर्णन आपके सन्मुख प्रस्तुत करता है।

१—इसमें पोषक पदार्थ बहुत परिमाणमें विद्यमान हैं। परमोपयोगी और बलवर्धक खनिज लवण भी इसमें पाये जाते हैं।

२—जिन लोगोंको रातको नींद नहीं आती, उन्हें यह कन्द विशेषतः लाभकारी होता है।

३—इसके खानेसे पेशाब अधिक उतरता है और ऐसी ठंडक होती है कि बायवालोंका दर्द कम हो जाता है।

३—यह बड़ी शीघ्रतासे हज़म हो जाती है, और क्षुधावर्धक और बलवर्धक है। इसमें गन्धक आदि कई पदार्थ हैं जो आमाशयकी क्रियाको उत्तेजित करते हैं और पाचन क्रियामें सहायता देते हैं। अतएव इसके खानेवालोंके पेटमें कीड़े (कृमि) नहीं होने पाते।

४—पकाकर खानेसे बच्चे भी इसे सुगमतासे हज़म कर लेते हैं। अन्य फलों और कन्दोंकी तरह अकेले प्याज़ खानेसे भी भूख नहीं मारी जाती।

अन्तमें यह कह देना भी उचित है कि सम्भवतः प्याज़ खानेके बाद जो बुरी दुर्गन्ध मुंहसे आने लगती है, उसीके कारण सभ्य समाजोंमें इसका प्रचार कम है। इस दुर्गन्धके मिटानेका भी उपाय बताना उचित है। इसके तीन उपाय हैं।

(१)—खानेके बाद कोफ़ीका (Coffee) एक आध दाना या (२) धनियां चबाना। (३) या खानेके पीछे ही गरम गरम दूध पीना।

मनुस्मृतिमें इस कन्दको गणना उन पदार्थोंमें की गई है जो मनुष्यकी आयु घटाते हैं, सम्भवतः यह कामोद्दीपक भी है, इसीलिए शायद शास्त्रकारोंने इसका निषेध किया है। दक्षिणी ब्राह्मणोंमें भी विधवाओंको प्याज़ नहीं खाने देते जिससे भी हमारे कथनका समर्थन होता है। इसके, अंतिम गुणोंकी परीक्षा होनी चाहिये।

औद्योगिक-फुटकर

[ले० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस. सी.]

(१) चीनमें पीतलके सिक्कोंका दुरुपयोग

पाठकोंने चीनके पीतलके सिक्के देखे होंगे। आकारमें वे भारतके डबल पैसोंसे कुछही छोटे होते हैं। पर उनके बीचमें एक चौखूंटा छेद होता है। इन सिक्कोंमें ८६ प्रतिशत ताम्बा और शेष जस्ता होता है। जब वर्तमान युद्धके कारण ताम्बे का भाव बढ़ गया, इस सिक्के में पीतलके दाम एक सिक्केसे अधिक हो गये। इसलिए, जैसा कि आठ नौ वर्ष पहिले भरतवर्षमें पुराने बुंदेलखण्डी या जयपुरी कच्चे पैसोंके साथ हुआ। लाखों मन सिक्के गला गलाकर बेचे जाने लगे। कुछ समयतक १६८००० मन सिक्के हर महीने केवल जापानको भेजे जाते थे। ताम्बेके भावके फिरसे कम हो जानेके कारण, अब केवल पहिलेसे आधी मात्रा ही जापानको प्रतिमास भेजी जाती है। पर तो भी चीनके कई नगरोंसे सिक्कोंका निर्यात (बाहर भेजा जाना) अभी जारी है, जिसके कारण चीनमें इतने कम सिक्के रह गए हैं कि दसकी जगह अब एक सेंटके पांच ही सिक्के मिलते हैं। जापानके समाचार पत्रोंसे ज्ञात हुआ है कि इन सिक्कोंमेंसे ताम्बा निकालकर अमेरिका भेजा जाता है। इन सिक्कोंके ख़रीदने और बेचनेमें इतना लाभ होता है कि हालमें ही जापानने चीनको कर्ज़ा देनेकी शर्तोंमें यह एक शर्त रखी थी कि उपरोक्त व्यापारका 'इजारा' जापानको दे दिया जाय। जापानकी एक कम्पनी ही ५६०००००० मनके लगभग चीनी पीतलके सिक्के बेचनेका प्रबन्ध कर रही है, इससे ही प्रकट होगा कि चीनमें सिक्के कितने होंगे, पर तो भी आजकल वहां बड़ी कठिनाई पड़ रही है। यदि किसी और देशके सिक्कोंका ऐसा दुरुपयोग किया जाता जैसा चीनके सिक्कोंका जापानने किया, तो उन देशोंमें अवश्य लड़ाई छिड़ जाती, पर संसारका नियम है कि निर्बलको सब हो दबानेकेलिए तैय्यार रहते हैं।

(२) काग़ज़से ट्वैन

बन्डल बांधनेका ट्वैन काग़ज़से बना या जा सकता है—यह बात 'फ़ोरेस्ट प्रोडक्ट लेबोरेटरी, मेडिसन' के कई प्रयोगोंसे सिद्ध हो चुका है। काग़ज़से ट्वैन बनाकर और उसीसे कई सौ पैकेट बांधकर संयुक्तराज्य, (अमेरिका) के विविध नगरोंकोडाकद्वारा भेजे गये। सब पैकट निर्दिष्ट स्थानोंपर ठीक अवस्थामें पहुंच गये। पैकटोंमें नए ट्वैनसे बांधनेके कारण (जैसे ट्वैनके खुल जाने कट जाने आदिसे) कोई क्षति नहीं हुई।

ट्वैन बनानेकेलिए काग़ज़की कम चौड़ी धज्जियां काटी और बटली जाती हैं। जैसे ट्वैन काग़ज़से बनाया जाता है वैसा ही मज़बूत होता है। काग़ज़ ट्वैनका पानीमें बड़ी जल्दी गल जाता है और इसी कारण जहां बडलोंके भीगनेका भय होता है, इसका प्रयोग नहीं किया जाता।

(३) काग़ज़ बनानेकी नई घास।

बर्माकी (Kaing) कैंग घाससे काग़ज़ बनानेका प्रयत्न कई वर्षसे हो रहा था। हाल में ही प्रयोगोंद्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि उक्त घाससे सरल और सस्ती रीतिसे काग़ज़ बनाया जा सकता है। इस घाससे लुगदी बनाकर भविष्यमें इंगलेण्डको भेजी जायगी। सूखी कैंग घाससे ३६ प्रतिशत लुगदी बनती है पर एस्पार्टो घाससे जो अबतक लुगदीके बनानेमें काम आती है, ४३ प्रतिशत बनती है। कैंग घास बर्मामें बहुतायतसे उगती है। इसका पौदा १० फुट ऊंचा होता है यह बहुत ही सस्ती बिकती है, पर इससे लुगदी इतनी अच्छी नहीं बनती जितनी कि एस्पार्टो से। एस्पार्टो घासकी खेती करनी पड़ती है, पर कैंग घास जंगलोंमें स्वयम् ही उगती है, यद्यपि कभी कभी बहुत मोटी और भद्दी पाई जाती है। यदि घास सुविधिसे काटी जाय और जहां यह घास उगती है उन जङ्गलोंकी विशेष रक्षाकी जाय

तो थोड़े ही समय में बहुत अच्छी और सुन्दर घास पैदा होने लगेगी।

(४) मोटरोंकेलिए नया ईंधन

अब तक मोटर कारोंमें गैसोलीन तेल काम आता है, पर वर्तमान युद्धके कारण जहां अन्य पदार्थ जर्मनीमें नहीं पहुंचने पाते तहां गैसोलीन भी नहीं पहुंचता। अतएव जर्मन सरकारने अपने यहांके औद्योगिक विभागको आज्ञा दी कि कोई ऐसा पदार्थ खोज कर निकाला जाय जो गैसोलीनकी जगह बारबरदारीकी मोटर कारोंमें काममें लाया जा सके। अमेरिकामें खबर पहुंची है, कि जर्मनीमें अलकोहल और बेंज़ोलके मिश्रणसे प्रयोग किये गये और उनसे मोटर कार चलाई गई। प्रयोगोंका फल नीचे दिया जाता है:—

मिश्रण							चाल एक प्रति घंटा मील	पैन्ट सेक मीलचली
बेंज़ोल	१	भाग	+	अलकोहल	१	भाग	४३	४.६६
"	१	"	÷	"	२	"	४१	४.४७
"	१	"	+	"	३	"	३९	४.३४
"	१	"	+	"	४	"	२८	४.१२
"	१	"	+	"	५	"	३६	३.६२
शुद्ध बेंज़ोल			+	"		"	४२	१.०९
गैसोलीन			+	"		"	४४	३.६

ऊपरकी सारणीसे स्पष्ट होगा कि गैसोलीनसे चाल तो अवश्य ४४ मील प्रति घंटेकी प्राप्त हो सकती है, पर एक पैन्ट तेलसे मोटर चलती केवल .६ मील हो है। बेंज़ोल और अलकोहलके बराबर भागोंके मिश्रणसे चाल ४२ मीलकी प्राप्त होती है और एक पैन्ट मिश्रणसे मोटर ४.६६ मील चलती है। अतएव २ मील प्रतिघंटा चाल कम होनेसे तेलकी खपत सवासे एक रह जाती है अर्थात् २० प्रतिशत कम हो जाती है।

जर्मनोनिवासी अलकोहल बीटको (चुकन्दर) तिर्यक्पातनसे बना लेते हैं। बेंज़ोल डामरसे बनती है, पर आजकल उससे पिकरिक एसिड, बारूदके लिए, बनाई जाती है। युद्धके समाप्त होनेपर, यह दोनों पदार्थ बहुत सस्ते हो जायंगे और सम्भवतः गैसोलीनकी जगह सदा काममें लाये जायंगे।

उपरोक्त मिश्रणमें केवल एक त्रुटि है अर्थात् इससे आरम्भमें मोटर चलाना कठिन है। इसके लिए यह उपाय कर सकते हैं कि आरम्भमें गैसोलीन या ईथरसे मोटर चला दी जाय और तदनन्तर उपरोक्त मिश्रण गैसोलीनकी जगह इंजनमें पहुंचाया जाय।

बौरोंका मेला

[ले०—गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.,]

"देखो देखो हरभजन! रामलाल इस गाड़ीमें हैं, यह गाड़ी तो आगे निकल गई, चलो आगे बढ़ें"—इतना कहते हुए हरभजन और कैलाशनाथ इंजनकी तरफ लपके और ट्रेनके ठहर जानेपर एक कमरेके पास जाकर खड़े हुए। गाड़ीके धौलपुर स्टेशनमें प्रवेश करते ही इसी कमरेकी खिड़कीके पास एक नवयुवक खड़ा हुआ प्लेटफार्मकी ओर गौरसे देख रहा था। इसकी आंखें अपने हमजोलियोंको प्लेटफार्मपरकी भीड़में तलाश कर रही थीं। हरभजन और कैलाशनाथपर नज़र पड़ते ही रामलाल रूमाल हिलाने लगे। ट्रेनके ठहरनेपर इन्होंने अपना टोप उतार मित्रोंको सलाम किया। टोपको अभिवादनकेलिए हिलानेसे ऐसा प्रतीत होता था कि वह अपने मित्रोंसे टोप-टोकरीमें प्रेम पुष्पोंकी भिक्षा मांग रहे हैं। मित्रोंकी सहायतासे असबाब नीचे उतार, आप भी स्वयं नीचे उतरे और मित्रोंसे बड़े तपाकसे हाथ मिलाया।

पाठको! इन महानुभावका आपसे परिचय करा देना ही उचित जान पड़ता है। आप कौमके कायस्थ हैं। आपके पिता धौलपुर राज्यके दीवानो

महकमेमें २५) प्रति मास वेतन पाते हैं। आपने पारसाल ही थर्ड डिवीज़नमें (इसका अर्थ हिन्दीमें न पूछिये !) मेट्रीक्यूलेशन एक्ज़ेमीनेशन पास किया था। अब आप आगरे कालेजमें फर्स्टइयरमें पढ़ते हैं। आपने भौतिक, रसायन और प्राणि शास्त्र ले रखे हैं। आपकी उम्र लगभग १८ सालके होगी। हम भी आपसे बहुत दिनोंसे परिचित हैं। आपका रंग गोरा, बदन इकहरा, शरीर छरेरा और फुरतीला है। आपका ललाट विस्तीर्ण और आखें विशाल हैं। चेहरेसे आप बड़े बुद्धिमान और विद्वान जान पड़ते हैं। आपको बाल सँवारने और कालर नैकटाई लगानेका बड़ा शौक है। आप घरपर भी पैरोंमें मोज़े, गलेमें कड़ा कालर (stiff) और गल-फन्द (necktie) चौबीसों घंटे पहने रहते हैं। कलकतिया शर्ट भी आपके जिस्मको रौनक़ बखशा करती है। प्रातःकाल उठते ही जूतोंपर रोग़न करना आपने परमावश्यक समझ रखा है और इससे ही आपको संध्या करनेको समय नहीं मिलता। आप बहुत तेज़ मिज़ाज हैं और समाज सुधारक होनेका दम भरते हैं।

स्टेशनके बाहर निकलते ही आपकी पितासे भेंट हुई। इनके पिता मुन्शी बनवारीलाल पुराने ढंगके बड़े धर्मात्मा पुरुष हैं। पुरानी देशी चालसे रहते हैं, सरपर पगड़ी और बदनमें आप अँगरखी पहने हुए थे। आपने बेटेको देखते ही पूछा 'रामलाल अच्छे तो हो !' मिस्टर रामलालको इस प्रश्नकी कुछ पर्वाह भी न थी। वह खाली हाथ उठाकर एक इक्केकी तरफ़ लपके। पिताने पुत्रका सामान इक्केमें रखाया और उनसे बैठनेकेलिए कहा। पुत्र बिना कुछ पूछे तांछे अपने मित्रों सहित इक्केमें बैठ हवा हुए। पिता भी टहलते टहलते घर पहुंच गए। पुत्रकेलिए आपने पहले ही दावत तैयार कर रखी थी, जाते ही खाना खिलाया और सो रहे।

रामलाल होलीकी छुट्टियोंमें घर आये थे। होलीके दिन ही प्रातः काल धौलपुरमें एक मेला हुआ करता है। इसे बौरोंका मेला कहते हैं। रामलाल जब सवेरे उठे तो उन्होंने अपने मित्रोंको घरपर ही पाया। इनके मित्र हरभजन और कैलाशनाथ इनके साथ महाराना हाई स्कूलकी पांचवीं कक्षामें पढ़ा करते थे। पांचवींसे ही इन दोनोंने पढ़ना छोड़ दिया था और राज्यमें नौकरी करली थी। ये दोनों मिस्टर रामलालको बड़ा विद्वान समझते और उनकी बातोंको पत्थरकी लकीर मानते थे। मिस्टर रामलालसे भेंट होते ही, इन्होंने उनसे मेले चलनेकेलिए कहा। यह बात सुनकर मिस्टर रामलाल कहने लगे कि गँवारोंके मेलेमें जाकर क्या करेंगे।

बौरोंके मेलेमें अन्य मेलोंकी तरह हलवाई, तमोली, खिलौनेवालोंकी दूकानें रहा करती हैं। केवल इस मेलेमें विशेषता यह है कि प्रत्येक मनुष्य "नव रसालके बौर" मोल लिया करता है। मेला धौलपुरकी उत्तर ओर राजधरजीके बाग़के पीछे आमोंके बग़ीचोंमें हुआ करता है। यहांके माली ही बौर बेचा करते हैं। बग़ीचोंके बीचमें एक देवीका मन्दिर भी है। होलिकाके दिन इस देवीकी पूजा भी हुआ करती है और प्रतिमापर प्रत्येक हिन्दू बौर चढाया करता है।

हमारे बाबू रामलाल भी पिताके आग्रह करनेपर मेला देखनेकेलिए अपने मित्रोंके सहित गये। पहिले तो इन्होंने बाज़ारकी सैर की, और वहां आबाल वृद्ध वनिताको गुलाल अबीर खरीदते देखा। इनमें और इनके मित्रोंमें जो बातें हुईं, वह हम पाठकोंके विनोदार्थ नीचे लिखते हैं:—

रामलाल—देखो इन गंवार लोगोंको, कितना धन व्यर्थ नष्ट करते हैं। जितने पैसेसे गुलाल अबीर लेकर यह अपने और अपने मित्रोंके मुंह बन्दर कैसे रंगते हैं अगर उतने पैसे यह अपने खानेमें खर्च करें तो कितना अच्छा हो।

हरभजन—आपने ठीक कहा। कल देखियेगा, इनके धूल-धूसरित शरीर और लाल, पीले, हरे

गुंह। प्रत्येक गलीमें नए नए स्वांग देखनेमें आयंगे।

कैलाशनाथ—अबकी बार मैं तो प्रतिज्ञा कर चुका हूं कि होली कदापि न खेलूंगा। यदि कोई गुलाल आकर लगाएगा भी तो मैं उसीकी रपट थानेमें कर दूंगा।

रामलाल—भला गुलाल लगाना भी 'गुड टेस्ट' है। आंखोंमें गुलाल या अबीर लग जाय, कड़का होने लगे। जब गुलाल उड़ता है तो न मालूम कितना दिमाग़में पहुंचता है। न जाने इन गंवारोंका दिमाग़ कैसे दुरुस्त रहता होगा।

हरभजन कल रातको जब हम घर पहुंचे तो गीत हो रहे थे, हमने जाते ही बन्द कर दिये, इन स्त्रियोंका अजब हाल है; जहां बहाना मिला गाना या रेंकना शुरू किया। दिमाग़ ख़ाली कर डालती हैं। दूसरे आसपासके घरोंकी स्त्रियां भी जमा हो जाती हैं, जिनके कारण घरमें आना जाना बन्द हो जाता है।

रामलाल—हमारी माताजीका भी आज कई घरोंकी स्त्रियोंको निमन्त्रण देनेका विचार था, पर मैंने रोक दिया। मुझे भं भं तो ज़रा भी अच्छी नहीं लगती।

इन्हीं लोगोंके पीछे एक वृद्ध वयस्क सन्यासी बाएँ हाथमें कमण्डल लटकाये और दाएँ हाथमें पुष्पों और आमके बौरोंकी डोनी लिए हुए चले आ रहे थे। वृद्ध सन्यासीका हृदय इन नवयुवकोंकी बातें सुनकर भर आया और वह मनमें कुछ सोचते हुए इन युवकोंके पीछे चले जा रहे थे।

टहलते टहलते यह मन्दिरपर पहुंचे। वहां बड़ी भीड़ थी। आबाल वृद्ध वनिता सभी मन्दिरमें जाकर देवीपर जल चढ़ाते, चन्दनादिसे पूजन करते और अन्तमें पुष्प और बौर अर्पण करते। पुजारी भी प्रत्येक पूजा करनेवालेको कुछ बौर उठाकर दे देता और पूजा करनेवाला बौरोंको हाथोंमें मलकर आंखोंपर लगाता था। थोड़ी देरतक हमारे युवक भी तमाशा देखते रहे। सन्यासी भी मन्दिरमें गया और पूजन करने लगा। रामलालने कहा "देखो यह सब गंवार व्यर्थ पुष्प और बौर खराब कर रहे हैं। यद्यपि शास्त्रोंमें होलिकोत्सवपर बौरोंका पूजन लिखा है, तदपि हमारे ख़यालमें यह सब व्यर्थ है।"

रामलाल इतना ही कहने पाये थे कि जिस चबूतरेके पास यह खड़े हुए थे, उसमेंसे एक बिच्छू निकला और उसने रामलालकी पिंडलीमें डंक मारा। डंक मारते ही रामलाल चिल्लाने लगे। सन्यासी भी यह घटना देख, कुछ बौर हाथोंमें ले मन्दिरके बाहर चले आये। उन्होंने जिस स्थानपर डंक मारा था, उसके ऊपर नीचे दो रूमाल कसकर बांध दिये और हरभजनसे कहा 'हरभजन! तुम बौरोंको हाथोंके बीच दबाकर रगड़ो और फिर हाथोंको अपनी आंखोंपर फेरो।'

हरभजनने सन्यासीका कहना मान लिया और उनके कथनानुसार आंखोंपर हाथ फेरे तब सन्यासीने कहा "हरभजन अब रामलालकी पिंडलीपर तुम ऊपरसे नीचेकी ओर कई बार हाथ फेरो और देखो क्या होता है"

थोड़ी देरमें रामलालका दर्द जाता रहा। तब तो रामलालको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने सन्यासीसे उसके अच्छे हो जानेका कारण पूछा।

सन्यासीने कहा "रामलाल! पूर्वजोंने होलीके दिन बौरोंसे देवोंकी पूजा करनेकी प्रथा इसीलिए चलाई थी। बौरोंमें यही तासीर है कि जो इनको एक बार हाथोंमें मल ले तो साल भर तक हरभजनकी नाईं वह भी बिच्छूका विष उतार सकेगा। जहां तक सम्भव हो आरम्भके ही बौर लेने चाहियें। होलीके लगभग ही बौर आते हैं, इसीलिए होलीके दिन यह पूजन रखा है। देखो! सुधार और परिवर्तन किसी जातिकेलिए परमावश्यक हैं, पर परिवर्तन

करना चाहिये बहुत सोच समझकर। विज्ञानमें आप परीक्षाएँ किया करें, उससे क्षति पहुचेगी तो प्रयोग कर्ताको, पर समाजमें प्रयोग सर्वथा अनुचित हैं। यहां तुम्हारा खेल होगा, पर हज़ारों की जान जायंगी। अतएव यदि किसी प्रचलित प्रथामें परिवर्तन करो तो पूर्ण निर्पेक्ष विचार के बाद। पुरानी जो प्रथाएँ चली आई हैं, उनपर मनन करना परमावश्यक है। तुम लोग यदि हमारे पास आया करो तो हम तुम्हें बड़ी उपयोगी बातें बताया करें। यहाँ हम केवल दो एक बातें आपको बतलाएँगे। इतना कह स्वामीजी ने एक सपहरेको बुलाया और उससे तमाशा दिखानेकेलिए कहा।

राईका उपयोग

जब संपेरा तमाशा दिखा रहा था, तब स्वामी जीने अपने थैलेमेंसे थोड़ीसी राई निकाली और संपेरेको देखकर बोले "क्यों जी हम यह राई तुम्हारी टोकरीमें डाल दें"। यह सुनते ही संपेरा चौकन्ना हो गया और हाथ जोड़कर बोला 'महाराज ऐसा अनर्थ न कीजियेगा'। मेरा सर्वनाश हो जायगा—

स्वामीजीने रामलालसे कहा संपेरेसे पूछो कि वह राईसे क्यों इतना डरता है। रामलालको पूछनेपर संपेरेने कुछ जवाब न दिया। तब स्वामीजी बोले :—

'रामलाल! जब इन संपेरोंको सांप पकड़ने होते हैं, तो राई पढ़कर सांपकी चारों ओर फेंकते हैं। सांप भी ठिठककर चुप बैठ जाता है। इसका कारण यह है कि सांपको राईसे बड़ी हानि पहुंचती है, यहांतक कि यदि राई के दाने सांपकी देहपर पड़ जायं तो उसका बदन गलने लगता है। यह बात सांपको स्वभावसे ही मालूम रहती है और वह सदा राईके दानोंसे बचता रहता है। तुम सायंस पढ़ते हो, इस बातकी परीक्षा करना।

रामलाल, हरभजन और कैलाशनाथको इन बातोंको सुनकर आश्चर्य हुआ और उन्होंने स्वामीके चरण छूकर नित्य संध्या समय उनके पास आनेकी प्रतिज्ञाकी और अपने घर लौट गये।

वैज्ञानिकीय

(१)

१—बिना पिसे गेहूंकी रोटी

[ले० गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए.]

युद्धके कारण पश्चिमी देशोंमें मज़दूरोंकी कमी होनेसे आहारकी सामग्री बहुत महँगी हो चली है। पर हालमें इटली देशवालोंने उस परिश्रममें जो अनाजको खलिहानसे लेकर रसोईके अन्दर रोटीके रूपमें परिणत करने तक आवश्यक होता था, कमी करनेका एक अच्छा ढङ्ग सोच निकाला है। सुननेमें आता है कि बरगेन नगरमें ऐसे गेहूंसे जो चक्कीमें डाला ही नहीं गया, पुष्टिकारक ही नहीं वरन बड़ी स्वादिष्ट रोटी तैयार कर ली जाती है। विधि यह है, पहले यह देख लेते हैं कि अनाज बढ़िया है और उसमें मिट्टी, कंकर वा रेत मिली नहीं हैं। फिर उसे अच्छी तरह पानीमें धोकर साफ़ कर लेते हैं और गरम पानीमें दो या ढाई दिनतक फूलनेकेलिए छोड़ देते हैं। इससे अनाज "जी" जाता है (Vitalised) अर्थात् उसमें अंकुर लग जाते हैं। वह खूब नरम और मुलायम हो जाता है और उसमें कितने ही प्रकारके रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं।

जब गेहूं इस प्रकार "जी" जाता है तो उसे गूंधनेवाली मशीनमें डाल देते हैं, जहां अच्छी तरह गूंधा जाकर लोई बनाने योग्य हो जाता है। कभी कभी उसे इसके अनन्तर ख़मीर उठनेकेलिए छोड़ देते हैं और अन्तमें इसे पकनेकेलिए तन्दूरमें डालते हैं। रोटीका रंग भूरा होता है पर चोकर समेत दानेकी रोटी होनेके कारण यह साधारण आटेसे बढ़कर बल और गुण रखती है। इस प्रकार इससे

Miscellanious फुटकर]

कूटने पीसने वा छाननेकी महनत बचती है, और अनाज भी नष्ट नहीं होने पाता। इसका फल यह होता है कि एक निश्चित तौलके अनाजसे बिना पीसे ही, पिसेहुएकी अपेक्षा अधिक फुलके तैयार होते हैं। दूसरा लाभ यह है कि इसमें मिलावट-का बहुत कम भय रहता है।

इटली देशके किसी किसी प्रान्तमें यह कहा गया है कि इस ढँगकी बनाई रोटियां देखनेमें मैली और खानेमें अप्रिय होती हैं, पर प्रायः इसमें अनाजकी निकृष्टता या पकानेकी असाव-धानीका दोष है।

* * * *

(२) केनडियम (Candium) एक नयी धातु

ग्लासगो नगरके अन्ड्रू गौर्डन एक नयी धातुके आविष्कारकी घोषणा करते हैं। यह "प्लैटिनम" वर्गकी धातु है। ब्रिटिश कोलम्बिया-में (British Columbia) नेल्सन नाम (Nelsen) स्थानसे उन्होंने इसके कई ग्राम पाये हैं। आशा की जाती है कि यह औद्योगिक प्रयोगोंमें आवेगी और विशेषकर जौहरियोंके काम की होगी।

(३) गौओं का गौत

शहर "न्यूकास्ल" के फ्रैन्क पी० वाकर पिछले तीन सालसे गौशालाओंकी गौओंकी गौत (खुराक) के विषयमें जांच कर रहे थे। विशेष-कर उनके प्रयोगोंका उद्देश्य यह स्थिर करना था।

(क) एक नियत समयका अंतर देकर दुहने-से या बिना नियम दुहनेसे दूधके गुण और तौलमें क्या भेद होता है?

(ख) गौओंको दो बार न दुह कर तीन बार दुहनेका क्या फल होता है?

(ग) सुपारीके (Palm Nut) छिलकेकी टिकिया और बम्बइया कपासके बीजकी टिकि-यामें दूध देनेवाली गौओंकेलिए कौन उत्तम गौत है?

अब वाकरकी खोजसे सिद्ध होता है कि (क) गौओंको बिना नियम दुहनेसे चाहे दूधकी तौलमें फर्क न पड़े पर मक्खनकी मात्रामें अवश्य फर्क देखनेमें आता है।

इसके अतिरिक्त यह भी देखा जाता है कि गौएँ दो बार दुही जायं या तीन बार मक्खन उतना ही उतरता है।

(ख) दिनमें दोकी जगह तीन बार दुहनेसे कुछ दूध अधिक नहीं निकलता। हां यह ज़रूर है कि बिना मामूल गौओंके साथ छेड़ छाड़ करनेसे उलटा फल होता है अर्थात् दूध कुछ सूख जाता है।

(ग) सुपारीके छिलकोंसे जानवर मीठे होते नहीं देखे गये पर और प्रकारसे उनकी दशा कुछ अच्छी रही। सुपारीके छिलके खानेवाली गौओं-के दूधमें मक्खन बढ़ गया।

(४) भारतकी जन संख्या

भारतीय-अर्थ विभागके कर्मचारी मि० पी० के० वाटलने भारतीय जनसंख्याके प्रश्न विषयक एक बड़ी रोचक किताब लिखी है, जिस-का निष्कर्ष यह है कि इस देशमें १०००मनुष्य पीछे ३८ शिशुओंकी जन्म-संख्या समाजकेलिए एक भयकी बात है। खैर इस समय मृत्यु-संख्या भी हमारे यहां बढ़ी चढ़ी है पर जिस समय वह और देशोंकी तरह कम हो जायगी तो बड़ी गड़-बड़ी मचैगी, क्योंकि उस समय जनताकी वृद्धि प्रतिवर्ष प्रति सहस्र २० मनुष्योंसे होने लगेगी और थोड़े ही दिनोंमें सबकेलिए देशमें बैठने भरकी जगह नहीं रह जायगी। इसका उपाय उन्होंने यही बतलाया है कि प्रथम तो विवाहमें विलम्ब करके संतानकी संख्या कम कर दी जाय और दूसरे विवाहके उपरान्त भी यथा संभव अपनी ओरसे संयम रखा जाय। इसीमें हमारा कल्याण है।

(५) दरिद्रता

मद्रासके लॉ कालिजके प्रिन्सिपल मि० डेवि-सनने अभी दरिद्रताके प्रश्नपर एक व्याख्यान

दिया है। उनका कथन है कि बिना समझे बूझे किसीकी सहायता करनेको खड़ा होना उसको और हानि पहुंचाना है। ऐसे मनुष्यको यह देख लेना चाहिये कि जिस पुरुषको हमसे सहायता मिलनी है क्या सचमुच ही उसको उसकी आवश्यकता है। यह काम एक दो आदमीके किये नहीं हो सकता, इसलिए समितियोंकेद्वारा इसे करना चाहिए। देखना यह है कि किसी मनुष्य की दरिद्रताका वास्तविक कारण क्या है। थोड़े समयकेलिये सहायता पहुंचाना कभी कभी बुरा होता है। ऐसा न करके दरिद्रताके मूल कारणका उपाय सोचना सर्वोत्तम है। हम लोगोंको इसका भी ध्यान होना चाहिये कि भिन्न भिन्न परिवार ही समाजके अवयव हैं और यदि हम देखते हैं कि कोई मनुष्य सचमुच ही दरिद्री है तो उसकी दरिद्रताका कारण ढूंढ कर उसके परिवारकी दरिद्रताका कारण ढूंढना चाहिये। बहुधा दरिद्रताके कारण पापवर्ग असंयम वा आलस्य देखनेमें आते हैं। अनेक स्थानपर दरिद्रताका कारण मनुष्यके वशके बाहर होता है। इन अवस्थाओंमें हमें दरिद्रताके कारणको दूर करना चाहिये। दूसरोंकी सहायता यह समझकर नहीं करनी चाहिये कि उनपर हमें दया और कृपा करनी चाहिये, वरन इस विचारसे कि उनकी सेवा करना उनके प्रति सामाजिक न्यायका एक अंग है। दरिद्रताका प्रश्न जर्मनीमें बड़े अच्छे प्रकारसे हल किया गया है। कामसे भागनेवाले निरुद्यमी पुरुष कारागारमें डाल दिये जाते हैं और उन्हें वहां काम करना सिखलाया जाता है। सरकार उनकेलिए काम ढूंढ देती है। अब हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि अच्छा तो यह होता कि मनुष्यके दरिद्री होनेपर उनकी सहायता करनेके बदले ऐसा यत्न किया जाता कि वे कभी दरिद्री होते ही नहीं। दरिद्रताके कारणोंकी खोज करनेसे पता चलता है कि अधिकतर शारीरिक हीनता या मानसिक दौर्बल्यसे ही मनुष्य दीन दरिद्र और पतित होते हैं। इसलिए सरकारको चाहिये कि ऐसे मनुष्योंको संतति उत्पन्न करनेसे रोके और अपाहिजोंकी संख्या न बढ़ने दे।

(२)

[ले० गोपालस्वरूप भार्गव]

(६) आन्तर-भौम घटनाओंका मछलियों और मनुष्यों-पर प्रभाव

३ री और १८ वीं अक्तूबर सं १९१६ को फ्लोरिडाकोस्टपर समुद्रमें पन्द्रह या बीस मीलतक मरी हुई मछलियोंकी कतारें दिखाई पड़ीं। इन्हीं दिनोंमें निकटवर्ती गांवोंमें रहनेवालोंकी नाककी झिल्लीमें किसी गैसके प्रभावसे सूजन पैदा हो गई। सम्भवतः यह गैस गंधक द्विओषित थी, जो उस समय समुद्रके पानीमेंसे निकल रही थी। इसका कारण यही बतलाया जाता है कि आन्तर भौम घटनाएँ हुई थीं, जिनसे ज़हरीली गैसें समुद्रके पेंदेसे निकलने लगीं। इन्हीं गैसोंके प्रभावसे मछलियां मरीं और तटस्थ नागरिकोंको पीड़ा हुई।

(७) ऊनमें बिजली।

ऊनके कपड़ेसे जब किसी पदार्थको रगड़ते हैं, तो ऊनी कपड़ा तथा उक्त पदार्थ दोनों विद्युन्मय हो जाते हैं। ऊनके कपड़े बनानेके कारखानोंमें भी, ऊनमें बिजली पैदा हो जाया करती है। पाठकगण लखनऊके काग़ज़के कारख़ानेमें जाकर देख सकते हैं कि काग़ज़के सूखते सूखते उसमें कितनी बिजली पैदा होती है और चिंगारियां कैसी लगातार चटाचट निकला करती हैं। इन कारख़ानोंमें बिजलीका पैदा होना संघर्षणके कारण समझा जाता था, पर लीड विश्वविद्यालयके अध्यापक शोर्टरने तंतुओंके विद्युत कारणके विषयमें गवेषणाएँ की हैं, जिनसे यह सिद्ध हुआ है कि तन्तुओंके सूखने और तदुपरान्त ठंडे होनेके कारण उनमें विद्युत पैदा हो जाती है। जब जब ऊन या काग़ज़के रेशे दबानेके बाद छोड़ दिये जाते हैं उनमें बिजली

पैदा हो जाती है। पैदा हुई बिजलीको हटानेकेलिए विसर्जक विन्दु (Discharging rod point) या परा-बैजनी (ultra violet) (उप-कासनी) प्रकाशका प्रयोग करना चाहिये।

भारतीय ज्योतिष परिषद्

[ले० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.]

उपरोक्त परिषद्की पत्रिकामें नक्षत्र मण्डलके निरीक्षकोंके उपयोगकी जो फुटकर बातें दे रखी हैं, वह यहां दी जाती हैं निम्नलिखित नोट्समें मद्रास टैम, जो डाकख़ानोंमें देखा जा सकता है, लिया गया है।

(१) नाक्षत्र समय रात्रिके ८ बजे

तारीख़		घण्टा	मिनट	सेकंड
अगस्त	१	१६	३८	३०
”	८	१७	६	६
”	१५	१७	३३	४१
”	२२	१८	१	१८
”	२९	१८	२८	५४

इस सारिणीकी सहायतासे उन तारा-समूहोंका (Constellations) पता-जो अगस्त मासमें संध्या समय भारत वर्षमें दिखाई दिया करेंगे-किसी तारोंके नकशेसे चल जायगा, क्योंकि इस सारिणीमें विषुवांशका समय दे रखा है।

(२) चन्द्रमाकी कला

दिन		समय		कला
अगस्त	३	१०-४०	प्रातःकाल	पूर्ण
”	१०	१-२६	रात्रि	अन्तिम चतुर्थांश
”	१७	११-५१	रात्रि	नया-चन्द्रमा
”	२६	१२-३८	मध्यान्ह	प्रथम चतुर्थांश
”	४	३-२४	प्रातः	भूमि नीच
”	१८	६-०	सायंकाल	भूम्युच्च

(३) चन्द्रमाकी युति, अर्थात्

किसी ग्रह या ताराके बहुत निकट दिखलाई देना।

दिन		समय	नक्षत्र	स्थान
अगस्त	४	७-५० प्रातः	यूरेनस	४° ३४' द०
”	११	५-६ सायं०	बृहस्पति	३° ४०' द०
”	१५	६-३० प्रातः	मङ्गल	०° ६२' उ०
”	१६	०-३३ ”	नेपच्यून	२° ७' उ०
”	”	१-४८ मध्यान्ह	शनि	२° ५५' उ०
अगस्त	२०	२-५१ उ०मध्या०	बुध	३° ३६' उ०
”	२१	१-२२ रात्रि	शुक्र	६° ३३' उ०
”	३१	५-१ उ०मध्या०	यूरेन०	४° ३०' द०

(४) गृह

बुध—अगस्त मासमें शामको दिखलाई दिया करेगा और १० तारीखसे लेकर सितम्बरकी ३ तारीखतक दिखलाई देगा। सिंह राशिमें होगा।

शुक्र—सायंकालको दिखलाई दिया करेगा। सूर्यास्तके डेढ़ या दो घण्टे पीछे अस्त होगा। सिंह राशिमें होगा।

मङ्गल—प्रात समय दिखलाई दिया करेगा, सूर्यके ढाई या तीन घण्टे पहले उदय हुआ करेगा। मिथुन राशिमें होगा।

बृहस्पति—अगस्त मासके अन्तमें अर्ध रात्रिके कुछ पहले उदय हुआ करेगा। वृष राशिमें होगा।

शनि—प्रात समय दिखाई देगा। पहली अगस्तको सूर्योदयके १५ मिनट पहले उदय होगा। मासके अन्तमें सूर्यसे २ घण्टे पहले उदय हुआ करेगा। कर्क राशिमें होगा।

यूरेनस— १५ तारीख सूर्यमें और इसमें षड्भान्तर होगा। अर्थात् सूर्यमें और इसमें १८०° का अन्तर होगा। बादमें शामको दिखलाई देने लगेगा। मकर राशिमें होगा।

नेपचून—आजकल प्रात समय दिखलाई देता है। कर्क राशिमें होगा।

(५) नभ मण्डलमें देखने योग्य चोज़ें

नीहारिकाएं

नाम	समय (विषुवांश)	क्रान्ति
एनुलर नीं०	५-१४ संध्या	—२८° २१'
"	५-२२ "	—२३° ३६'
ट्राइफिड "	५-५५	—२३° २'

नक्षत्र युग्म (Double)

नाम	समय (विषुवांश)	क्रान्ति	अन्तर
ज्येष्ठा (antares)	४-२२	—२६° १०'	३'५"

समालोचना

[ले०-गोपालनारायणसेनसिंह, बी. ए.]

शान्तिधर्म-ले० गुलाबराय,प्रकाशक कुमार देवेन्द्रप्रसाद, प्रेममन्दिर आरा।

कुछ दिन पहिले सत्य-विश्वासका होना ही बहुत था। पर अब इससे काम नहीं चलता। अपने विश्वासको युक्तियोंद्वारा प्रमाणित करना पड़ता है-उसे पक्के सिद्धान्तोंके आधारपर रखना पड़ता है। जो ऐसा नहीं करते, वे ज़रा तर्क-वितर्कसे संशयमें पड़ जाते हैं और अपने पक्षसे गिर जाते हैं।

कहनेकेलिए हिन्दूजाति शान्तिप्रिय है पर मैंने कितने ही नवयुवकोंको वादविवादमें शांतिके विरुद्ध अनाप-शनाप बकते सुना है। वे विचारे रस्किन (Ruskin) ऐसे मनस्वो और कोमल स्वभाव पुरुषको सब तरहके रक्तपात और युद्धके पक्षमें साक्षी देनेकेलिए घसीट लाते हैं। हालमें वे कहींसे एक नयी युक्ति उड़ा लाये हैं। "प्राणियोंके लिए युद्ध अनिवार्य है" (War is a biological necessity) ऐसी ही मनमानी बातें सुनकर यदि आप घबरा उठे हों तो श्रीगुलाबराय एम. ए. प्रणीत शांतिधर्मके कुछ पृष्ठ पढ़िये। गंभीर और सुबोध, गूढ़ पर मनोहर विचारोंकेद्वारा शांतिधर्मके तत्वकी व्याख्या पढ़कर आप गद्गद् हो उठेंगे। दो चार शब्दोंमें देखिये लेखक महाशय विवादियोंके पक्षका कैसा खण्डन करते हैं:—

"सभी जीवधारियोंको जीवनकी स्थितिकेलिए संघर्षण करना पड़ता है। विशेषकर वनस्पति और पशु-संसारमें संघर्षण ही द्वारा आत्मरक्षा होती है। मनुष्योंका जीवन भी लड़ाई भिड़ाईसे ख़ाली नहीं। बड़े बड़े पौधोंकी प्राण पुष्टिकेलिए छोटे छोटे पौधे उखाड़ डाले जाते हैं............दुर्बलका कोई ठिकाना नहीं। न दुर्बल पशु ही और न निर्बल जातियां ही बलवान जातियोंमेंसे मनुष्यके सामने ठहर सकती हैं" और लीजिय—"सभ्य जातियोंमेंसे मनुष्यके मांस खानेकी कुप्रथा जाती रही है, किन्तु पशुओंको आजकलकी सभ्यतासे कुछ लाभ नहीं हुआ। मनुष्य खाये नहीं जाते सही परन्तु वह कल और बारूदके सहारे युद्धोंमें आहुति तो बन ही जाते हैं... .." अब जवाब सुनिये—"क्या संघर्षण अनिवार्य है? नहीं, संघर्षण आत्मरक्षाके हेतु होता है। संघर्षण हमारा पुरुषार्थ नहीं है, एक साधनमात्र है। वह साधन जानवरोंकेलिए आवश्यक है क्योंकि वे विचारशून्य है.........संघर्षणके अतिरिक्त उन्नतिके और और साधन वर्तमान होते हुए हम यदि उनको काममें लावें तो हम अवश्यमेव दोषी ठहराये जायंगे............ यदि हम आत्मरक्षाके पक्षपाती हैं तो हमको ऐसा करना चाहिए कि और जीव भी इस नियमको सुखपूर्वक पालन कर सकें। यदि संघर्षणसे और जीवोंकी आत्मरक्षामें विरोध पड़ता है तो इसके अतिरिक्त और कौनसा उन्नतिका साधन है।"

"प्रेम और सहकारिता"—बस शेष पुस्तक इसीकी पुष्टिमें लिखी गई है और बड़ी खूबीसे लिखी गई है। हिन्दीमें आजतक ऐसे सुन्दर एन्टीक काग़ज़पर, इतनी बढ़िया छपाईकी—ऐसे महान अंतर्जातीय प्रश्नसे सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तक कम छपी हैं। केवल हिन्दी भाषाको नहीं वरन् सारी हिन्दू जातिको इसका गर्व होना चाहिये, क्योंकि इसमें संसार भरके लिए हमारा संदेशा है। इसलिए नहीं कि हम लड़ ही नहीं सकते, किन्तु इतिहास इसका प्रमाण रखता है कि बल रखते हुए भी हिन्दुओंके सैन्यदलने आजतक किसी अन्यजातिको छेड़ा नहीं, युद्धमें ध्वंस किया नहीं।

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य विज्ञान परिषत्-प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाइ. चिन्तामणि द्वारा छपा।

भाग ५ सिंह, १९७४ । August, 1917. संख्या ५
Vol. V. No. 5

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [१ प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानके नियम

(१) यह पत्र प्रति संक्रान्तिको प्रकाशित होता है। पहुँचनेमें एक सप्ताहसे अधिक देर हो तो प्रकाशकको तुरन्त सूचना दें। अधिक देर होनेसे दूसरी बार विज्ञान न भेजा जायगा।

(२) वार्षिक मूल्य ३) अग्रिम लिया जायगा। ग्राहक होनेवालोंको पहले वा सातवें अंकसे ग्राहक होनेमें सुविधा होगी।

(३) लेख समस्त वैज्ञानिक विषयोंपर लिये जायँगे और योग्यता तथा स्थानानुसार प्रकाशित होंगे।

(४) लेख काग़ज़की एक ओर, कमसे कम चार अंगुल हाशिया छोड़कर, स्पष्ट अक्षरोंमें लिखे जायँ। भाषा सरल होनी चाहिए।

(५) लेख सचित्र हों तो यथा संभव चित्र भी साथ ही आने चाहिएं।

(६) लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्त्तनमें सामयिक पत्र और पुस्तकें, मूल्य, तथा सभी तरहके पत्र व्यवहारकेलिए पता—

सम्पादक 'विज्ञान' प्रयाग

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग-दूधकी शुद्धता, बनावट, और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति।). २-ईख और खांड-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति।-). ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रह साधन रीति ॥।). ४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न कर वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५-सनातनधर्म रत्नत्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धी।). ६-काग़ज़ काम-रद्दीका उपयोग-)

इनके सिवाय केला, नारंगी सन्तरा, सुवर्णकारी, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे हैं। खेत (कृषिविद्या), कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगी सूत्र (ज्योतिष), रसरत्नागर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जारहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—गंगाशंकर पचौली—भरतपुर

हमारे शरीरकी रचना

कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसे अपने घरका पूरा पूरा हाल न मालूम होगा। पर ऐसे कितने मनुष्य हैं कि जिन्हें अपने असली घर (शरीर) का पूरा ज्ञान है। शरीरकी रचनासे पूरे परिचित न होनेके कारण हम अपने नित्य जीवनमें बड़ी बड़ी भूलें करते हैं और अपने स्वास्थ्यको बिगाड़ डालते हैं। अतएव यह परमावश्यक है कि हम अपने शरीरकी रचना भली भांति जानें। इसका सहज उपाय डा० त्रिलोकीनाथ चरित "हमारे शरीरकी रचना" नामक पुस्तक पढ़ना है।

पुस्तक में २६८ पृष्ठ हैं और ५६ चित्र हैं। मूल्य केवल २।) ; विज्ञानके ग्राहकों और परिषद् सदस्योंको २) रुपयेमें दी जायगी।

मिलने का पता—
मंत्री—विज्ञानपरिषद्, प्रयाग।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग ५ { सिंह, संवत् १९७४। अगस्त, सन् १९१७। { संख्या ५

मंगलाचरण

जय जय जगदाधार, जगत-कारन, जग-स्वामी
जग-सर्वस, सर्वेश, सर्व-जग-अन्तर-जामी
सर्वग, सर्व-शरण्य, सर्व-जग-धन्य-स्व-नामी
सर्वोद्भव-विश्राम, जयति सर्वैक-विरामी
जो काल-कर्म--गोगन-गिरा-ज्ञान-अगम, गुन-हीन है
स्व-स्थित, सत-चित - आनन्द - घन, निर्घृन, नित्य-नवीन है।

श्री पद्मकोट, } १७. ८. १७.

—श्रीधर पाठक

व्यवसाय और गृह-शिल्पके अवसर

[ले० अध्या० गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए.]

विद्वानोंका कथन है कि भारतीय इतिहासको देखनेसे १३—वीं शताब्दीके भारतीय ग्राम और ग्रामीणों, तथा उनकी वर्तमान कालकी दशामें कोई विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता। उनके रहन-सहन, सुख-सम्पत, आपद-विपदकी स्थिति पिछले ६०० वर्षोंसे ज्योंकी त्यों चली आ रही है।

यह बात उन अगणित राजा, रईस, कर्मचारी, पंडित, व्यापारी और समाज सुधारकोंकेलिए, जिन्होंने इतने दिनों इस देशको अपना कार्यक्षेत्र बनाया,भले ही प्रशंसाकी बात न हो, पर विचार-कर देखनेसे प्रतीत होता है कि ग्रामीणोंकी दशामें परिवर्तन न डालनेकेलिए जितने १९वीं २०वीं सदीके लोग निन्दाके पात्र हो सकते हैं उतने पहलेके लोग नहीं। और यह इसलिए कि प्राचीन कालमें मनुष्य बहुत ही छोटे समूहमें पाये जाते थे। उनकी

Economics अर्थ शास्त्र]

आवश्यकताओंकी पूर्तिकेलिए सहजमें पदार्थोंका संग्रह हो जाता था; दूरवर्ती जनसमूहोंमें, सड़क, पुल, रेल, तार न होनेके कारण परस्पर मिलने जुलनेका अवसर नहीं था। इस कारण उनमें सहकारिता संभव ही न थी।

उन दिनों अनावृष्टिके कठोर कालमें हिमालय प्रान्तके गिरिनितम्बोंपर गढ़वालियोंके परिश्रम द्वारा गली हुई बर्फ़के झरनोंसे जिलाई हुई शस्यमें बङ्गाल वा गुजरातके निवासियोंका हिस्सा लेना एक महा असंगत बात समझी जाती थी। पर आज समाचार पत्रोंके पढ़नेवालोंमें एक आठ वर्षका बच्चा भी जानता है कि भारतके किसी गांवमें यदि एक मुट्ठी भर भी अन्न पैदा होता है तो वह संपूर्ण देशमें दाने दाने बट जाता है। कहींपर जो सेरभर खांड तैयार होती है तो उसके कारण भारतकी सभी मंडियों और बाज़ारोंमें खांडकी दरमें भेद पड़ जाता है।

अब देखना यह है कि जब हमारे परस्पर व्यवहारकी घनिष्टता इस परिमाणसे बढ़ी है तो हम अवसर और उपकरणके अनुसार क्यों न ऐसी व्यवस्था करें कि देशके एक प्रान्तके उद्योग धन्धे वा कृषि वाणिज्यसे और और प्रान्तोंको भी सहारा हो, जिसमें अनुकूल समय आनेपर सम्हलकर वे फिर सारे देशका कल्याण कर सकें। उदाहरणके लिए पंजाब वा युक्तप्रांतके उन प्रदेशोंको छोड़कर जहां नदी वा नहर द्वारा कृषिकार्यकेलिए पर्याप्त जल मिल सकता है, कोई कारण नहीं है कि हम और भागोंमें कृषिको ही अपना मुख्य व्यवसाय बनायें वा केवल उसीके आश्रित हो बैठें।

उचित प्रयत्नके बाद जो कुछ उपज हो, उसके अलावा ऊंचे पहाड़ी देशोंमें चायकी खेती हो सकती है। जहाँ जीते पत्थर मिलते हों पत्थरकी पट्टियां रोड़े, चूना, सीमेन्ट तैयार किये जा सकते हैं। जहांपर आसपास जंगल हो, शहतीर, स्लीपर, गोंद, राजन, कोयला इत्यादि बनाये जा सकते हैं; घास वा लकड़ीसे कागज़, रस्सी इत्यादिका सामान इकट्ठा हो सकता है। जहांपर खनिज मिल सकते हों उनकी खुदाईका प्रबन्ध किया जा सकता है। समुद्रतीर और जलाशयोंके पास जहाज़ नाव और लवणकी तैयारी, मछलियोंका पकड़ना, जूटको धुलाई, कागज़की लुगदीका काम हो सकता है। शहरोंकेपास चमड़े, शीशे, ऊन, या सूतके, कारखाने खुल सकते हैं। फल फूल और तरकारीके बाग लग सकते हैं। फलोंको सिरके इत्यादिके साथ टीनमें दिसावर भेजनेका काम हो सकता है।

अभिप्राय यह है कि कृषिकार्यमें विघ्न पड़नेपर क्षणभरकेलिए भी भारतवासियोंके मनमें यह विचार नहीं आने देना चाहिये कि बस अब वे निराधार हो गये, उनके जीनेका दूसरा कोई उपाय ही नहीं रहा। स्मरण रहे कि भारतवासियोंका दैव और भाग्यमें विश्वास बहुत करके उनकेकृषिके अधीन होनेके ही कारण पाया जाता है। क्योंकि यह स्पष्ट है कि चाहे कितने ही परिश्रमसे हमारे किसान जोतें बोयें पर वे मनमानी फ़सिल नहीं काट सकते। फ़सिलके पकनेके समयतक न जाने कितनी विपद् उनकी आशाको निर्मूल करनेको आया करती है। बाढ़, अनावृष्टि, ओले, टिड्डीदल, लाही, कीड़े, तरह तरहके अदृष्ट विघ्न, "दैव" के स्वरूपमें उन्हें सताया करते हैं। सचमुच ही वे अपने पुरुषार्थसे अपनी दशा नहीं सुधार सकते और अन्तमें भग्न-हृदय और आलसी हो जाते हैं।

ऐसी कुदशामें कृषिके साथ साथ वा कृषिका काम ढीला पड़नेपर, कुछ ऐसा काम हमारे पास अवश्य होना चाहिये जिसमें बैठे हुए लोगोंको लगाकर हम दुर्भिक्षकी संभावनाको रोक सकें, तथा नये नये मार्गोंसे सम्पत्तिकी उत्पत्ति करा सकें। बहुत दिन नहीं हुए इसी देशमें कृषिकार्यसे छुट्टी पाकर घर बैठी हुई स्त्रियां, चरखेपर कपाससे सूत कातती थीं, महुएके बीज वा एरण्डके

बीजसे तेल उतारती थीं ; मर्द गांवमें जहाँ जाते थे, सन वा पटुएसे, घिरनीपर सुतली बांटते, चोप वा सवई घाससे रस्से तैयार करते थे। कहीं-पर शोरा तैयार होता, कहीं तेज़ाव उतारा जाता, कहीं रोली वा सिन्दूर बनता, कहीं चरबीसे मोम-बत्तियां ढाली जातीं थीं। इधर जबसे यह सब माल बहुत सस्ते दामपर विलायतसे आने लगे, लोगों-ने क्रमशः अपना पुराना व्यवसाय छोड़ दिया और गांवके भीतर वा शहरमें कृषि-कार्य वा कुली-प्रथा-के ऊपर संतोष कर बैठे। फल यह हुआ कि वे दिन दिन निर्धन और निरुद्यम होते गये, बहुतेरे जीविकाकी खोजमें इधर उधर भटकते हुए शहरोंमें आये और वहांके जल-वायुको दूषित कर उसे रोग--शोकका जमघट बना दिया।

आधुनिक समाजके दुखदारिद्रकी इस जटिल समस्याको हल करनेका केवल एक उपाय है कि भारतीय प्रजाके प्रत्येक व्यक्तिको जहांतक संभव हो घरपर वा उसके निकट नितके धंधेके अति-रिक्त उसकी सामर्थ भर ऊपरसे दो चार आने-की आमदनीका सूत्र लगा दिया जाय। दफ्तरी, लुहार, बढ़ईको आपने प्रायः देखा होगा कि यदि वे कहीं मज़दूरीपर काम करते हैं तो भी दोपहरके समय भोजन वा विश्रामकेलिए घर आकर कुछ न कुछ ठेकेका या निजका काम बनाने लगते हैं। दफ़्तरी बिसातियोंके पाससे कापियां लाकर जिल्द बांधने लगता है,बढ़ई चारपाईके पाये, लड़कोंके पढ़नेकी पट्टियां, खूटियां इत्यादि बनाकर अपने लड़कोंको फेरीकेलिए दे देता है; लुहार नालबन्दोंके लिए नाल और कील गढ़ता है, गज़, परी और चाकू बनाता है। आशय यह है कि सभी लोग मेहनत करके अपनी आमदनी बढ़ानेकेलिए, उत्सुक रहते हैं, पर इसका अवसर न मिलनेके कारण वे शिथिल हो जाते हैं और अन्तमें यह घाटा देशका घाटा ठहरता है।

वैसाख-जेठके महीनेमें, रबीकी फ़सिलके उपरान्त तथा अगहन पौषमें जहां ईखका काम नहीं होता या सिचाईका काम अधिक ज़ोरपर नहीं रहता, यदि कोई संस्था वा समिति, भिन्न भिन्न गावोंमें जाकर, उन वस्तुओंका नमूना दिखलाये जो अभी विलायतसे आती हैं पर यहां बिना अधिक कारीगरी ख़र्च किये ही प्रस्तुत हो सकती हैं तो देखिये कि यही अनाड़ी कृषक जो सालभरमें ४॥, गज़की दो धोतियों-केलिए तरसते हैं और जानवरोंकी तरह फ़सल-के अनुसार कभी केवल ज्वार, बाजरा, कभी अर-हर, मसूर और कभी केवल मक्केके दलिएपर गुज़र करते हैं, फिर किस सुख और चैनसे रहते हैं और इन्हींको रसिकता, भावुकता और स्वतं-त्रताकी कैसी कैसी बातें सूझने लगती हैं।

इस समय जो माल जापान, अमेरिका और इंगलैंडसे आ रहा है उसका विशेष भाग घरपर ही बन सकता है। उनके बनानेमें जो कुछ दक्षताकी ज़रूरत पड़ती है वह भी शीघ्र ही सीखी जा सकती है। दस बीस उस्ताद और मिस्त्री चारों ओर घूम घूम कर काम सिखलानेको भेजे जा सकते हैं। किसी जातीय-कोष (National fund) वा औद्योगिक विभागके सरकारी धनसे कच्चा माल, औज़ार इत्यादि ख़रीदकर कृषक-कारीगरों-के हाथ बाँटा जा सकता है, बाज़ारकी आवश्य-कतानुसार मालकी तैयारीका आडर देना और उनका फिर इकट्ठा करना, उनके लिए विज्ञापन देना और बेचना यह सब केवल थोड़ेसे प्रबन्धसे हो सकता है। जिस महान् उद्देश्यकी इससे पूर्ति होगी उसके अपेक्षाभावसे-बिना कोई अधिक क्लेश वा झंझट उठाये ही—यह सब सिद्ध हो सकता है।

अब ज़रा अनुमान कीजिये कि वे कौन काम हैं जो हमारे कृषक अपने घरपर बैठे, छुट्टियोंमें बना सकते हैं। निश्चय जानिये, कामकी कमी नहीं है। देखिये यह नीचेकी सूचीः–चीनी मिट्टी-के बर्तन, खिलौने, टाइप ढालनेका काम, छतरी बनानेका काम, साबुन, इतर तेल और दवायें,

सीप, सींघ और सूतके बटन, काठ और सींघ की कंघियां, सींघ वा हड्डीके बने कमीज़के बटन और लिंक, कलमके होल्डर; लकड़ी वा हाथीदांतकी शतरंज वा पचीसीकी गोटियां, लड़कोंकेलिए काठके खिलौने, काठके वर्णमालाके अक्षर, कपड़े और भूसेके मढ़े हुए कुत्ते, बिल्ली हाथी, ऊंट, चूहे, खरगोश और बन्दर, दूसरी दूसरी चिड़ियाएँ; तसवीरके चौखटे, किताब रखनेकी छोटी अलमारियां, इतरदान, कलमदान, शमादान, सुराहीदान, मुगदर, हलके डम्बबेल, ताड़, खजूरकी पंखियां, रौग़नकी हुई बांसकी चंगोरियां-फूल, फल वा तरकारी रखनेकी, मेज़ ढकनेके रुमाल, परदे, सादे वा मथुरिया छापके, रजाईके पल्ले मसहरी, रुमाल, मोज़ेकी खोल, टोपीके पल्ले, सादे और कामदार गोटे पट्ठे, सब तरहके ब्रुश,-दांतके, जूतेके, टोपीके, बालके, चिमनी और बोतलके, टीनके तराज़ू, टीप, पिचकारी, डिबिया, चमचे, मूसदानी, तश्तरियां, बांसकी छड़ियां-सीधी, टेढ़ीकी हुई हैाकीके कामकी, बांसकी संदूकची, टिफिन रखनेकी, या रद्दी कागज़की टोकड़ी। कपड़ेके रंगीन नकली फूल, हार, कागज़के गुलदस्ते, सुगन्धित धूपबत्तियां, फूलोंसे-जैसे कुसम, हारशृंगार आदि-तैयार किये रंग, रबरकी मुहर, पीतलके ताले, चपरास, जीभ-छिलनी, रोशनाई, राइटिंग केस, ब्लौटिंग पैड, बिस्तर बांधनेकी चमोटी, छुरा तेज़ करनेकी पट्टी, चमड़ेकी थैलियां वा सूटकेस, सब तरहके अचार, चटनी मुरब्बे, पापड़, सिरके, अमावट, बैर-चूर्ण, पाचककी गोलियां, शरबत, मंजन, इत्यादि इत्यादि।

आरम्भमें बिना प्राप्तिके ही गांववाले काम करना स्वीकार कर लेंगे, पर सीखने सिखलानेमें सामानके नष्ट होनेका अधिक भय रहेगा। इसमें बड़ी चतुरताके साथ, जो जिस कामके करनेके योग्य हो उसीको लगानेसे यह क्षति न होगी। लगातार मेले, प्रदर्शनियोंमें देसावरी मालकी बनावटपर ध्यान दिलाने और प्रतिवर्ष ख़ास ख़ास केन्द्रोंमें औद्योगिक-शिक्षा देने तथा प्रयोग करानेसे इस काममें बड़ी सुगमता आ जायगी।

भविष्यमें जन-साधारणकी शिक्षाकी नीति बदलकर, साहित्यिक शिक्षाके स्थानपर व्यवहारिक शिक्षा कर देनेसे नवयुवकोंकी इस ओर पहलेसे ही प्रवृत्ति होगी और उनमेंसे अच्छे अच्छे कला-प्रवीण निकलकर यहांके गृह-शिल्पको सुदृढ़ कर देंगे। देशानुरागके बलपर कुछ कालतक, चैतन्य भारतवासी, मोटे, कुढंगे और खोटे मालको ग्रहण करेंगे। परन्तु अधिकतर जिस बातके बहुत असहनीय होनेकी शंका है वह चीज़ोंकी निर्ख है। हम लोगोंकी लोलुपता और अदूरदर्शिताके कारण, देशी माल बहुत महंगे हों तो उनका बाज़ारमें टिकना कठिन हो जायगा। व्यवहारमें एक छोरसे दूसरे छोरतक देशभक्तिका सुर नहीं अलापा जा सकता। अन्य राज्योंने व्यापारका व्यवहार बढ़ानेकेलिए बहुत धन खर्चकर केवल लागतपर अनेक कालतक हमारे यहां माल बेचा है। उन्होंने तिजारतियोंकी, रेल, जहाज़ और चुंगीके महसूलमें किफायत करके रक्षा की है। सरकारी-कोषसे उधार देकर निश्चिंततासे मालके उलट-फेरकेलिए समय दिया है। यदि इस संस्थाको हम अपने देशमें स्थापित करना चाहते हैं तो इसी विधिका अनुकरण करना होगा—पर समय बहुत निकल गया, अब शीघ्रता करनी चाहिये।

अङ्कगणितकी शिक्षा

[ले० प्रो० शतीशचन्द्र घोषाल, बी. एस. सी., एल-एल. बी.]

१२—गणितकी प्रक्रियाओंका उपयोग।

म पहिले बता आये हैं कि जोड़, बाकी, गुणा, भाग, भिन्न, दशमलव और त्रैराशिक यही गणितकी मुख्य प्रक्रियाएं हैं। बाकी और सब विषय यथा, व्याज साधारण और मिश्र, नफा

Pedagogics शिक्षा]

और नुकसान, गति सम्बंधी प्रश्न तथा और सब प्रकारके सवाल, इन्हीं मूल प्रक्रियाओंके आधार-पर हैं। इन सबका अलग अलग उल्लेख न करके इस अंतिम अध्यायमें हम 'प्रश्नों' के विषयमें ही कुछ कहते हैं।

प्रश्नोंकी भाषा सरल और एकार्थी हो

किसी प्रश्नको देनेके पहिले मास्टरको चाहिये कि देख लें कि प्रश्नकी भाषा खूब सरल अर्थात् विद्यार्थियोंकी समझमें सरलतासे आने योग्य है। प्रायः देखा गया है कि चतुर विद्यार्थी भी सिर्फ़ सवालोंकी भाषा समझमें न आनेके कारण उन्हें नहीं कर सकते। यह बात स्मरण रखने योग्य है कि भाषा और गणित ये दो अलग अलग विषय हैं और दोनोंकी जांच अलग अलग होनी चाहिये। भाषा सम्बंधी कठिनाईके कारण यदि बालक सवाल न लगा सका तो दोष सवाल देनेवालेका ही है बालकोंका नहीं। दूसरी बात यह है कि सवालोंके दो अर्थ न निकाले जा सकते हों अर्थात् प्रश्नोंकी भाषा अत्यन्त सरल और सुगमतासे समझमें आने योग्य हो।

रीतिको पहिलेसे ही सोचना अच्छा है

प्रायः देखा जाता है कि दिये हुए प्रश्नका जिस तिस भांति उत्तर ले आना ही संतोषप्रद समझा जाता है। स्मरण रहे कि इस प्रकार उत्तर निकालना गणितकी इति श्री समझना अत्यन्त हानिकारक है। इस प्रकार गणित-शिक्षाके उद्देश्य-को ताक़में रखकर घिच पिच रीति द्वारा, अथवा पास बैठे हुए विद्यार्थीकी स्लेटसे चुराकर,लाये हुए उत्तरसे संतुष्ट हो जाना शिक्षाकी जड़में कुठार मारना है। इसलिए आवश्यक है कि मास्टर देख लें कि प्रश्न लिख लेनेके बाद दो चार मिनट विद्यार्थी रीतिके सोचनेमें खर्च करते हैं। यदि दो चार मिनट इस प्रकार खर्च किये जावें तो निस्संदेह बड़ा लाभ होगा। प्रायः देखा गया है कि सवाल लिख चुकनेपर विद्यार्थी एक दम सवाल लगानेको भिड़ पड़ा और ग़लत रीतिसे सवाल करता गया। फल यह हुआ कि पूरा सवाल कर चुकनेके बाद उसे फिर मिटाना पड़ा। कितना अच्छा होता यदि मास्टरने प्रत्येक विद्यर्थीसे कहा होता कि वे सवाल लगाना शुरू करने-के पहिले दो चार मिनट सोच लें कि सवाल किस रीतिसे करेंगे। शिक्षकको हर एक सवाल बोलनेके पश्चात् देखना चाहिये कि विद्यार्थी सवाल लगाना शुरू करनेके पेश्तर ही रीतिका विचार करें। इस प्रकार नित्य प्रति यही क्रम जारी रखनेसे थोड़े ही दिनोंमें विद्यार्थीको पेश्तरसे रीति सोचनेकी आदत पड़ जायगी।

सोची हुई रीति काममें अवश्य लाई जावे

खूब सोच विचारके पश्चात् जो रीति एक बार निश्चयकी गई हो उसीके अनुसार सवाल अखीर तक लगाया जाय। मास्टरको देखना चाहिये कि किसी एक रीतिसे लगाना शुरू करने-पर विद्यार्थी उसके द्वारा आधा सवाल लगाकर पोंछ न डालें। ऐसी आदत केवल सवालोंके लगानेमें ही हानिकारक नहीं बल्कि जीवन क्षेत्रमें भी निन्दनीय है। किसी एक कार्यको किसी खास रीतिसे शुरू करके उसे बीचमें छोड़कर दूसरी रीतिसे करने लगना, दूसरी रीतिको अधबीछमें छोड़ तीसरी रीतिसे करना—शक्तिका दुरुपयोग करना है। पहिलेसे ही खूब सोच लेना कि किस रीतिसे कार्य करना होगा अवश्य बुद्धि-मानी है।

रीतिके तर्कानुसार विभाग कर लिये जायं

यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि सवाल लगाते समय विद्यार्थी अपनी अपनी स्लेटों अथवा कापियोंपर प्रत्येक श्रेणीका मतलब समझावें। सिर्फ़ संख्याओंको जैसे तैसे लिखकर या काट कूटकर उत्तर ले आना संतोषप्रद नहीं है। विद्या-र्थियोंको और देखनेवालेको साफ़ तौरसे मालूम होना चाहिये कि स्लेटपर लिखी हुई अमुक श्रेणीका क्या अर्थ है और वह क्यों की गई है। यदि प्रत्येक सवालमें भिन्न भिन्न श्रेणियोंका

उद्देश्य साथ साथ लिखा जाय तो मालूम हो सकता है कि विद्यार्थियोंकी विचार शक्ति श्रृंखलावद्ध है या नहीं। देखनेवालोंको भी ऐसे सवालोंके देखनेमें किसी तरहकी अड़चन नहीं होती।

तर्क शक्तिको बढ़ाना

अनुभवसे देखा गया है कि तर्क शक्तिको बढ़ानेके लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी संख्याओंमें हस्ताक्षेप करनेके पहले प्रश्नकी कुल रीतिको खंडोंमें विभक्त करके लिख लें। इस प्रकार क्रिया करनेसे रीतिके खंडोंका परस्पर एक दूसरेसे संबंध मालूम हो जायगा और प्रश्नकी पूरी रीति युक्ति पूर्ण होनेके कारण तर्क शक्तिको बढ़ानेमें रेखा गणितके साध्योंके समान हो जायगी। दूसरा फ़ायदा यह होगा कि हरएक श्रेणीमें काट कूट करनेकी आवश्यकता न होगी। अंतिम श्रेणीमें ही सब काम एक दम हो जायगा और ग़लतियोंकी संभावना भी कम होगी।

उदाहरण

एक क़िलेमें इतना घी मौजूद है कि यदि प्रत्येक सिपाहीको प्रति मास ३ऽ≡ तीन सेर तीन छटांकके हिसाबसे दिया जाय तो ५५ आदमियोंको एक मासकेलिए पूरा होगा। यदि प्रत्येक मनुष्यको घी पहले की अपेक्षा $\frac{१}{१२}$ वां भाग दिया जाने लगे और किले में २२० सिपाही हो जायं तो कुल घी कितने दिन चलेगा?

रीति—

प्रत्येक मनुष्यका घीका मासिक खर्च

$$= ३ \text{ से०} - ३ \text{ छ०} = ३\frac{३}{१६} \text{ से०} = \frac{५१}{१६} \text{ से०}$$

$$\therefore \text{किलेमें कुल घीका परिमाण} = \frac{५१}{१६} \times ५५ = \frac{२८०५}{१६} \text{से०}$$

बादमें प्रत्येक मनुष्यका मासिक खर्च

$$= \frac{५१}{१६} \times \frac{१}{१२} \text{ सेर } = \frac{१७}{६४} \text{सेर}$$

$\therefore$ २२० मनुष्योंका मासिक खर्च

$$\frac{१७}{६४} \times २२० \text{ सेर } = \frac{१७ \times ५५}{१६} \text{सेर}$$

$$= \frac{९३५}{१६} \text{ से०}$$

$\therefore$ कुल घीके चुक जानेका समय

$$\left(= \frac{२८०५}{१६} \div \frac{९३५}{१६} \right) \text{ महीने}$$

$$= \frac{२८०५}{१६} \times \frac{१६}{९३५} = ३ \text{ मास}$$

यदि प्रत्येक श्रेणीमें संख्याएं सरल न की जायं तो इस प्रकार सरलता होगी।

प्रत्येक मनुष्यका मासिक खर्च (पहिले) $= \frac{५१}{१६}$ सेर

कुल घीका परिमाण $= \frac{५१}{१६} \times ५५$ सेर

प्रत्येक मनुष्यका मासिक खर्च (बाद में)

$$= \frac{५१}{१६} \times \frac{१}{१२} \text{से०}$$

$\therefore$ २२० आदमियोंका कुल मासिक खर्च

$$= \frac{५१}{१६} \times \frac{१}{१२} \times २२० \text{सेर}$$

$\therefore$ घीके चलनेका समय

$$= \left(\frac{५१ \times ५५}{१६} \div \frac{५१ \times २२०}{१६ \times १२} \right) \text{मास}$$

पाठक स्वयं देख लें कि दूसरी रीतिमें कितना श्रम बचता है और सरलता होती है।

रीति और उत्तर दोनोंमें कौन मुख्य है?

विद्यार्थियोंको यह बात भली भांति समझा दी जाय कि गणितके प्रश्न हल करनेमें उत्तर मुख्य नहीं है। यदि उत्तर सही है तो इसके मानी हमेशा यह नहीं कि विद्यार्थी चतुर है और यदि उत्तर गलत हो तो यह न समझना चाहिये कि विद्यार्थी मूर्ख है। यदि रीति सही है, श्रेणियां युक्तिपूर्ण और शृङ्खलाबद्ध और सवाल स्वच्छतासे किया गया है, परन्तु कहीं अचानक जोड़ बाकीमें गल्ती हो जानेके कारण उत्तर गलत आ गया है तो कुछ चिन्ता नहीं होनी चा-

हिए। परंतु इसके विपरीत यदि रीति गलत हो श्रेणियां अटकलसे रखी हों, काम घिचपिच हो और उत्तर सही हो तो भी विद्यार्थीपर कभी प्रसन्नता प्रकट न की जाय। इसीलिए गणितके शिक्षकको चाहिये कि हमेशा प्रश्नकी रीतिको देखे। विद्यार्थियोंको यह भी बतला दिया जाय कि प्रश्नको बहुत जल्द कर लेना भी हमेशा अच्छा नहीं। शीघ्रतासे सवाल लगानेवाले अक्सर अच्छी रीतिकी पर्वाह नहीं करते।

उत्तरको अंदाजसे देखना कि सही है या नहीं

इस बातकी कोई ज़रूरत नहीं कि विद्यार्थियों-के पास उत्तर जांचनेकेलिए उत्तर-मालाएं रहा करें। जहां तक हो सके वे अपने उत्तरोंको स्वतः अनुमानसे जांचें कि सही हैं या नहीं। इस रीति-का अवलम्बन करनेसे विद्यार्थियोंको बिलकुल असंभव उत्तरोंको स्वतः गलत समझ लेनेकी आदत पड़ जायगी। दूसरा लाभ यह होगा कि उनमें स्वावलम्बनका उत्तम गुण आपसे आप आने लगेगा। जीवनमें जहां न तो मास्टर हैं न उत्तर-मालाएं यह स्वतः अपने भरोसे रहनेकी आदत बड़ी लाभ कारी है।

सवालकी रीति सही है या नहीं इसके जाननेकी विधि

वे मनुष्य जो हमेशा कार्यक्षेत्रमें उपयोग किया करते हैं अवश्य किसी न किसी भांति जान लिया करते हैं कि उनका कार्य उपयुक्त है या नहीं। इसी भांति गणितके विषयमें भी समझना चाहिये। जो विद्यार्थी हमेशा सवाल लगाया करता है, जिसको गणितसे प्रेम है और उसकी क्रियाओंमें आनंद आता है, अवश्य किसी न किसी प्रकार जांच सकता है और जान लेता है कि उसकी रीति और उत्तर सही हैं या नहीं। अंदाज़न देख लेनेसे कि उत्तर सही है यह बात फ़ौरन मालूम हो जाती है कि सवालकी रीति ठीक है। प्रक्रियाओंके ठीक होने या न होनेकी जांच नीचे लिखी हुई रीतिसे की जा सकती है:—

जोड़—पहले ऊपरसे नीचेकी ओर जोड़ो, उत्तर आनेपर नीचेसे ऊपरकी ओर जोड़ कर देख लो पहला उत्तर ही आता है या नहीं।

बाकी—जो शेष बचे उसे ऊपर वाली संख्यामें-से घटाकर देख लो कि नीचे वाली संख्या आती है या नहीं। नीचे वाली संख्यामें शेष बची हुई संख्याको जोड़नेसे भी ऊपर वाली संख्या आनी चाहिये।

गुणा—'नव अङ्ककी' रीतिसे जांच कर सकते हैं।

भाग—भाजक और भजन फलका गुणा करके गुणन फलमें शेष जोड़ देनेसे भाज्य आ जाना चाहिये।

अनुभवसे इन प्रक्रियाओंके जांचनेकी अन्य रीतियां भी मालूम हो जाती हैं।

[समाप्त]

जीवनामृत अर्थात् वायु

[ले० डा० बी. के. मित्र, एल. एम. एस.]

वायु शरीरके लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह एक मिश्रित पदार्थ है जिसके १०० भागोंमें प्रायः २१ भाग ओषजन और ७६ भाग नत्रजन हैं। इसके अतिरिक्त अल्प परिमाणमें कार्बोनिक ऐसिड गैस (१००० में ४ भाग) और थोड़ासा जलीय वाष्प आदि भी हैं। परन्तु फुस्फुससे निकलनेके अनन्तर ओषजनका परिमाण घटकर प्रतिशत १६ और कार्बोनिक एसिड गैसकी मात्रा बढ़कर प्रति-शत ४ हो जाती है। इसके अतिरिक्त कितने ही प्रकारके दूषित जैव पदार्थ वायुमें मिश्रित हो जाते हैं, जो कि स्वास्थ्यकेलिए हानिकर हैं। अतएव ऐसा वायु पुनर्वार श्वास क्रियाकेलिए अनुपयोगी होता है। शरीरके अन्दर वायुकी ओषजन रक्तके लोहित कणोंके साथ मिलकर

Hygiene स्वास्थ्य रक्षा]

अन्य धातुओंमें पहुंचाई जाती है, और उनमेंसे कार्बोनिक ऐसिड गैस आदि मल फुस्फुसकी सहायतासे उच्छ्वास द्वारा निक्षिप्त होते रहते हैं। यदि श्वास क्रिया पांच मिनटके लिए भी बन्द हो जाय, तो साधारण मनुष्य मर जाता है। अतएव श्वास द्वारा दूषित वायुके निरन्तर सेवनसे, जैसे कि शीतकालमें गृहादिके सारे द्वार बन्द करने, वा साधारण अंगीठियोंमें अग्नि जला कर घरको उत्तप्त करने, अथवा लिहाफसे मुंह ढांक कर सोनेसे होता रहता है, स्वास्थ्यकी बड़ी हानि होती है। मनुष्येतर जीवजन्तु भी अपनी शारीरिक क्रियाओंके लिए ओषजन पान करते हैं, और कार्बोनिक ऐसिड गैस उत्पादन करते हैं। अग्निद्वारा भी बहुधा ओषजनका कुछ परिमाण अङ्गारके साथ युक्त होकर कार्बोनिक ऐसिड गैसमें परिणत हो जाता है। परन्तु कार्बोनिक ऐसिड गैस इतना विषाक्त नहीं है, जितना कि इसी प्रकारका एक और वायु होता है। इसका नाम कार्बन एकौषित है। यह अंगीठियोंमें कोयला सुलगानेपर बहुधा उत्पन्न होता है। इसीलिए सुलगती हुई अंगीठी घरमें कभी नहीं रखनी चाहिए। चिमनीके अन्दर अग्निका सुलगाना ही सर्वथा प्रशस्त है क्योंकि उससे न केवल विषाक्त वायु फैलने नहीं पाते प्रत्युत् हवा शुद्ध होती रहती है।

सब प्रकारके 'पचनशील' पदार्थोंके गलने सड़नेके कारण भी कर्बनद्विओषित तथा अन्य विषाक्त वायु उत्पन्न होते हैं। अतएव कर्बनद्विओषितके अतिरिक्त हवाके अन्दर जो जैव पदार्थ रहते हैं, जैसे जन्तुओंके श्वास तथा त्वचासे परित्यक्त वायु तथा अन्य पदार्थ, भिन्न प्रकारके जीवाणु, 'धूल' (जिसमें मिट्टी, कोयला, वस्त्रादिके कण, त्वचासे झड़े हुए कण, सूखा हुआ थूक तथा अन्य मलोंके कण सम्मिलित हैं)—वे सब स्वास्थ्यकेलिए अत्यन्त हानिकर हैं। इनका परिमाण निर्णय करना अत्यन्त कठिन है, परन्तु साधारण वायुकी विशुद्धता उसके अन्दर कर्बनद्विओषितकी मात्रासे निर्णय की जाती है। इसकी मात्रा साधारणतः १००० में ४ है, परन्तु १००० में ६ भाग तक इसकी सीमा रक्खी गई है, जो स्वास्थ्यकेलिए हानिकर नहीं है। इससे अधिक कर्बनद्विओषित होना स्वास्थ्यकेलिए हानिकारक है, परन्तु हमारे देशीय वास गृहोंमें विशेषतः उत्सवोंपर या मन्दिरोंकी आर्तीके समय कार्बोनिक ऐसिड गैसकी मात्रा १००० में १० वा ततोधिक हो जाती है, जो स्वास्थ्यकेलिए अत्यन्त हानिकारक है। अतएव इस कार्बोनिक ऐसिड गैसके नापनेका कोई सुगम उपाय ढूंढना चाहिए। इसके परिमाणके जांचनेका एक सुगम उपाय यह है, कि १० औन्सकी कांचकी कुप्पीमें विशुद्ध जल भर कर उस स्थानमें ले जायं जहांके वायुकी परीक्षा करनी है। कुप्पीको उलटनेसे उसके अन्दर उस स्थानका वायु भर जाता है। फिर उस कुप्पीमें आध औन्स स्वच्छ चूनेका पानी डाल कर हिलाइये; यदि वह दूधिया हो जाय, तो यह प्रमाणित होगा, कि कर्बनद्विओषितका परिमाण स्वास्थ्यकी निर्दिष्ट सीमासे अधिक है।

हवाका शोधन

हवाके शोधकनके दो बड़े बड़े साधन हैं। एक प्राकृतिक, दूसरा कृत्रिम।

१—प्राकृतिक साधन हवाके कई गुणोंपर निर्भर है।

(क) वायु कणोंकी चेष्टा—सब वायुओंमें यह एक धर्म है, कि उनके कण फैलनेकेलिए सदा प्रयत्न करते रहते हैं। दो भिन्न भिन्न भार विशिष्ट वायुओंको ऐसा रखनेपर भी, कि गुरुभार विशिष्ट वायु नीचे और लघु ऊपर हो, थोड़ी देरमें उनके कण मिश्रित हो जायंगे। तेल और जलकी तरह अलग अलग नहीं रहेंगे। वायु कणोंकी यह चेष्टा ऐसी प्रबल होती है, कि वह साधारण मिट्टीके पात्रकी भीतोंमें होकर भी अपना मार्ग कर लेते हैं।

(ख) तापसे वायुका विस्तार और हलकापन—सभी

पदार्थ उत्तापसे फैलकर बढ़ते हैं, परन्तु वायवीय पदार्थोंमें यह गुण अधिक प्रकट है। वायु उत्तप्त होकर स्फीत होनेके कारण हलका हो जाता है, और ऊपरको उठता है। उसके पूर्व स्थानमें दबाव कम होनेसे चारों ओरसे भारी वायु आकर अधिकार कर लेता है।

वायुके इन्हीं दो गुणोंपर अधिकतर प्रकृतिमें वायुका सञ्चालन होता है। आंधी, तूफान आदि भिन्न भिन्न प्रकारके वायुके प्रवाह उसके मूल धर्मों-पर निर्भर हैं। साधारणतः पृथ्वीके किसी स्थानमें वायुका ताप अन्य स्थानसे अधिक होनेके कारण वायु मण्डलमें प्रवाह उत्पन्न होता है, जिसको हम हवाका झोका या आंधी कहते हैं। ऐसी चलती हुई हवाके मध्यमें हमारे ग्रहोंके द्वार खुले रहनेके कारण उनमें हवा आती है, और प्राकृतिक रूपसे घरोंकी हवामें परिवर्त्तन होता जाता है। प्रकट है, कि इन उपायोंसे हवाका परिवर्तन उसकी गतिके वेग और द्वारोंके आकार-पर निर्भर है। परीक्षासे देखा गया है, कि यदि दर्वाजे आमने सामने हों, वा एक ही गृहमें कमसे कम दो हों तो उनके द्वारा वायु परिवर्त्तन सुगमतासे होता है, जैसा कि एक छोटी परीक्षासे दिखाया जा सकता है।

परीक्षा

किसी जल-पूरित थालीपर मोमकी वत्ती जलाकर उसपर कोई लम्बी चिमनी ढक दो। जब तक जल और चिमनीके बीचमें थोड़ासा भी छिद्र रहेगा, वायुका प्रवाह होनेके कारण वत्ती और भी सुगमतासे जलेगी, परन्तु चिमनी जलपर स्थापनकर देनेसे वत्ती थोड़ी देरमें बुझ जायगी। इसका कारण यह है ऊपरका मार्ग रहनेपर भी उससे गर्म वायु तो निकल जाता है, पर ठंडा वायु नहीं आता। अब यदि ऊपरके मार्गको किसी टीनके पत्र द्वारा दो भागोंमें विभक्त किया जाय, तो आने जानेके मार्ग भिन्न होनेके कारण वत्ती उसमें जलती रहेगी।

इन्हीं प्राकृतिक नियमोंसे हम घरके भिन्न भिन्न स्थानोंपर हवा आने जानेके छिद्र तथा चिमनी आदि स्थापन करते हैं। स्पष्ट है कि हवा आनेके छिद्र यदि नीचे हों, और निकलनेके छिद्र ऊपर तो घरोंकी दूषित उत्तप्त हवा ऊपरसे निकल जानेपर नीचेके छिद्रोंसे बाहरका विशुद्ध वायु खिंच आयगा। शीत प्रधान देशोंमें हवा आनेके छिद्र यथा सम्भव ६ फुट ऊंचाईपर रखने चाहिएँ। उनके मुख छतकी ओर खुले रहने चाहिएँ, कि जिसमें शरीरपर ठंडी हवाका झोंका न लगे। लेखकके मतमें चौखटके ऊपर गवाक्षके एक तखतेकी ओटसे हवा आनेके सुन्दर छिद्र बनाये जा सकते हैं। हमारे देशी घरोंमें बहुधा किवाड़, खिड़कियां मकानके एक ही तरफ़ होती हैं। यदि सहनके अतिरिक्त मकानके चारों ओर १ गज़ जगह छोड़ दी जाय और बाहरकी तरफ खिड़कियां खोल दी जायं तो सारे मकानोंमें सुगमतासे वायु संचालन हो सकता है।

२—कृत्रिम साधन—वायु सञ्चालन कृत्रिम रीति-से, पंखों द्वारा, चिमनियों द्वारा, अथवा धौकनियों द्वारा किया जाता है। ये उपाय वायुके पूर्वोक्त गुणोंपर निर्भर हैं। यह बहुधा बड़े बड़े मकानोंमें वा कारखानोंमें व्यवहार होते हैं। साधारण लोगोंके घरोंमें भी क्वचित् ये उपाय अवलम्बन किये जाते हैं। इन नियमोंमें एक बात सबके जानने योग्य यह है, कि किवाड़ बन्द करके केवल पंखेके द्वारा वायु सञ्चालन करनेसे वायु परिवर्त्तन नहीं होता।

घरके अन्दर एक तरफ़से विशुद्ध वायु बाहरसे आनेका और दूसरी तरफ़से दूषित वायु बाहर निकल जानेका प्रबन्ध होना चाहिये।

वायुका परिमाण और घरका आयतन

इस देशमें हम बहुधा खुले स्थानोंमें काम करते हैं, पर रात्रिको घरमें रहते हैं, जिनमें वायु दूषित हो जानेका बड़ा डर रहता है। स्त्रियोंके बहुधा घरमें बन्द रहनेके कारण उनको

श्वासके रोग जैसे यक्ष्मादि अधिक होते हैं। यह प्रत्येक मनुष्यको जानना चाहिये कि उसके रहनेके घरका आयतन कितना होना आवश्यक है। योरुपके पण्डितोंने एक व्यक्तिकेलिए (पुरुष, स्त्री वा बालक) एक हज़ार घन फुट स्थानका विधान किया है अर्थात् ऐसी एक कोठरीका जिसकी लम्बाई, चौड़ाई, और ऊंचाई लगभग १० फुटके हों, और साथ ही खिड़कियोंके विषयमें यह नियम रक्खा है कि वह इतनी बड़ी हों कि उनके द्वारा घरकी हवाका घंटेमें ३ बार परिवर्तन हो सके। परन्तु इङ्गलेण्डकी तरह धनाढ्य देशमें भी हम प्रत्येक मनुष्यको इतना स्थान नहीं दे सकते। भारतमें तो इसकी सम्भावना ही नहीं, परन्तु इस देशमें उतनी शीत न होनेके कारण हम बड़ी खिड़कियां रख सकते हैं जिनसे दिन रात हवाका गमनागमन होता रहे। अतएव किसी परिवारकेलिए जिसमें स्त्री पुरुषके अतिरिक्त एक दो छोटे बालक भी हों पूर्वोक्त स्थान पर्याप्त हो सकता है, यदि किवाड़ न बन्द किये जायं। जाड़ोंमें दरवाज़ेके सामने एक मोटा कपड़ा डाल देना चाहिये जिससे हवाका झोंका शरीरपर सीधा न लगे।

यह बात याद रखनी चाहिये कि ऐसी छोटी कोठरीमें यदि चिमनी न हो तो रात्रिको दीप जलाना वा आग बालना बिलकुल ही अनुचित है। साधारण दीपोंसे इतना वायु नष्ट होता है जितना मनुष्य करते हैं। गाय, भैंसें मनुष्यकी अपेक्षा १५।२० गुनी हवा ख़र्च करते हैं।

वेदना-विजय

परोपकारी नशेबाज़ोंकी गोष्ठीमें अनुपम भोज

[ले० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस. सी.]

ज्ञानकी पिछली संख्यामें पाठक वेदना-विजयपर एक लेख देख चुके हैं, पर सम्भवतः अभी उन्हें चेतनापहारी अथवा मादक पदार्थोंका महत्व भली भांति मालूम न हुआ होगा। यहांपर अन्य चेतनापहारी औषधोंका उल्लेख करनेके पहले हम उनका महत्व दिखलाना चाहते हैं।

पहले ही हम यह निर्णय कर चुके हैं कि जीवोंकी वेदना-अनुभवशक्ति परिज्ञानशक्तिका एक रूपान्तर है और जीवोंकी विकास-चक्रपरकी स्थितिके अनुसार न्यूनाधिक अथवा तीव्र या मन्द होती है। विकास-चक्रपर मनुष्यकी स्थिति सबसे ऊंची है और इसीलिए उसकी वेदना-अनुभव-शक्ति समस्त प्राणियोंमें सर्वोत्कृष्ट है। अब मान लीजिये कि किसी मनुष्यकी जांघकी हड्डी उतर गई। उसे ठीक जगहपर बैठानेका प्रयत्न कीजिये। जांघके पट्ठोंके तनाव या खिंचावके कारण हड्डीका बैठाना बड़ा दुष्कर है। अब यदि किसी मादक या चेतनापहारी पदार्थका प्रयोग किया जाय, तो मनुष्यके अचेतन होनेसे पट्ठे ढीले हो जायंगे और हड्डीके बैठानेमें कुछ कठिनाई न होगी। दूसरे मनुष्यके सचेत रहते हुए वह अङ्गोंको हिलाये चलाये बिना नहीं रह सकता। इससे भी शल्यचिकित्सकके कार्य्यमें बाधा और रोगीको हानि पहुंचनेकी बहुत सम्भावना रहती है। और उदाहरण लीजिये। किसी मनुष्यका पैर किसी भारी वस्तुसे कुचल गया। इसके काटनेकी आवश्यकता हुई। यदि न काटा जायगा, तो उसमें गलाव बैठ जायगा, जो स्वस्थ अङ्गोंमें भी पहुंचकर मनुष्यकी मृत्यु-

Medical वैद्यक]

का हेतु हो सकता है। यदि काटते हैं तो उसे बड़ा कष्ट होता है। यह अंग-विच्छेद (amputation) का कार्य भी रोगीको अचेतन करनेपर बड़ी सावधानी और शान्तिसे हो सकता है।

अब स्पष्ट हो गया होगा कि मादक या चेतनापहारी पदार्थोंके प्रयोगसे शस्त्रोपचारमें बड़ी सावधानी हो सकती है और रोगीको भी कष्ट कम पहुंचता है।

डाक्टर बोस और बड़का पेड़

गतवर्ष जब लार्ड चेल्म्सफर्ड विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बसुकी प्रयोगशालामें गये थे तो वि० बसुने एक बड़े बड़को एक स्थानसे उखाड़ कर दूसरे स्थानपर आरोपित किया। यह बात सभी जानते हैं कि छोटे छोटे पेड़ोंका सहजमें ही स्थान परिवर्तन कराया जा सकता है, पर बड़ोंका नहीं। इसका कारण यही है कि छोटे पेड़ोंको उखाड़ते समय उनकी बहुत कम जड़ें कटती हैं, पर बड़े पेड़की जड़ें बहुत कटती हैं। अतएव छोटे पेड़को कुछ हानि नहीं पहुंचती, पर बड़ा पेड़ सूख जाता है। यदि बड़े पेड़को किसी चेतनापहारी पदार्थका सेवन कराकर बेहोश कर दिया जाय और तब उखाड़कर अन्य स्थानपर लगाया जाय तो पेड़को कुछ हानि न पहुंचेगी और वह अन्य स्थानपर लग जायगा। मादक न देनेपर पेड़को कष्ट पहुंचता है, जिसके कारण उसके तन्तु बिगड़ जाते हैं और फिर वह लगनेके योग्य नहीं रहता। यदि उखाड़नेके पहले मादकका सेवन करा दिया जाय तो उखाड़नेमें तन्तुओंको हानि नहीं पहुंचती, अतएव वह फिर किसी स्थानपर लगाया जा सकता है। जब मादक देकर पेड़ोंकी भी पीड़ा इतनी कम की जा सकती है, तो मनुष्यका तो कहना ही क्या है।

सिम्पसन और एक रोगी

पाठक! गांवोंमें जाकर देखिये, मामूली चीर फाड़में कैसे दुःखमय दृश्य देखनेमें आते हैं। नश्तर लिये हुए जर्राह यमके किसी गणकी समान दिखाई देता है। बड़े बड़े शस्त्रोपचार ऐसी अवस्थामें करना तो नितान्त असम्भव है। डाक्टर सिम्पसनके पास किसी रोगी द्वारा लिखित एक पत्र था जिससे हमें भली भांति ज्ञात होता है कि उस समय रोगी शल्यचिकित्सकको किस दृष्टिसे देखा करते थे। उसका भावार्थ नीचे दिया जाता है:—

'चेतनापहारी पदार्थोंके आविष्कारके पहले, वह मनुष्य जिसपर शस्त्रोपचार होना होता था, इस भांति तैय्यार किया जाता था, मानों उसे फांसी होने वाली है। वह निश्चित दिनके पहले दिन गिना करता था और निश्चत दिन आनेपर घन्टे गिना करता था। ठीक समय होनेपर, शल्य चिकित्सककी गाड़ीकी खड़ खड़ कान लगाये सुना करता था। चिकित्सककी सीढ़ीपर चढ़नेकी और तदुपरान्त पासके कमरोंमेंकी चाप बड़े ध्यानसे सुना करता था। उसे सर्जनको नश्तर निकालते देखनेका और शस्त्रोपचार करनेके पहले उसके थोड़ेसे चुने चुने गम्भीर शब्दोंके सुन्नेका डर बना रहता था। सर्जनके आपहुंचनेपर वह दुःख या आवश्यकतासे विवश होकर, अपना आत्म समर्पण सर्जनके हाथोंमें कर देता था, और आवश्यकतानुसार जकड़ कर पकड़े जाने या बांधे जानेकेलिए भी उद्यत हो जाता था।'

चीर फाड़के समय जो दुःखमय हृदयद्रावक दृश्य देखनेमें आते थे, उनका अनुमान कर लेना ही अच्छा है। इसी क्लेशको मिटानेकेलिए सभ्यताके आरम्भसे ही चेतनापहारी पदार्थोंकी खोज होती रही है।

चेतनापहारी पदार्थोंका इतिहास

महाकवि होमरने (यूनानी तुलसिदास) अपने ग्रन्थोंमेंपेन्थी (Nepenthe) पौदेका ज़िक्र किया है। इस पौदेकी पत्तियोंमें एक प्यालीसी होती है, जिसमें स्वादिष्ट रस भरा रहता है। यह पौदा भी चेतनापहारी औषध बनानेमें काम आता

था। सीदियन लोग एक प्रकारके हेम्पके रस-का प्रयोग किया करते थे। प्लिनी और डारस्सोरैड (Dioscorides) ने मेन्ड्रागोरा (Mandragora) नामी पौदेका भी इसी सम्बन्धमें कथन किया है।

ऐतिहासिक समयमें तम्बाकू या मदिराका प्रयोग आरम्भ हुआ, जिसका वृत्तान्त पाठक पिछले लेखमें पढ़ चुके हैं। सर हम्फ्री डेवीने हास्योत्पादक गैसका और बिरमिंघाम निवासी पियरसनने ईथरका पहले पहल प्रयोग किया। अब हम अन्तमें एक नशे बाज़ोंकी गोष्ठीका हाल लिखेंगे।

नशेबाज़ोंकी महफ़िल

सर जेम्स यंग सिम्पसन ७ जून सं १८११ ई० के दिन पैदा हुए। इनके पिता बवर्ची थे, पर तदपि अपने पुत्रको उन्होंने अनेक दुःख उठाकर पढ़ाया और इस प्रकार सारे संसारको सदाकेलिए बाधित कर गये। सिम्पसन जब एडिन्बरा विश्वविद्यालयमें डाक्टरी पढ़ते थे, तब इन्हें एक शस्त्रोपचारमें सहायता देनी पड़ी। तभीसे इनका जी शल्यचिकित्सासे हट गया और इन्होंने प्रसूतिशास्त्रका अध्ययन आरम्भ कर दिया। यहां भी इन्हें प्रसव पीड़ाके कम करनेके उपाय ढूंढ निकालनेकी लालसा हुई। इसी समय उन्होंने सुना कि बोस्टनके शल्यचिकित्सक मोर्टनने ३० सितम्बर सं १८४६ ई० को ईथरसे बेहोश करके एक मनुष्यका दान्त निकाला। इन्होंने भी ईथरका प्रयोग प्रसव कालमें किया पर उससे सन्तुष्ट न हुए और किसी अधिक अच्छे चेतनापहारीकी खोजमें लग गये।

इन्होंने सब अत्तारोंको यह आज्ञा दी कि जो नई औषध बने या तैय्यारकी जाय उसकी एक शीशी इनके पास अवश्य भेज दी जाय। नित्य प्रति नई नई औषधियां आती थीं और सिम्पसन और उनके मित्र उनसे परीक्षाएं किया करते थे। सायंकालको सिम्पसनके डेरेपर इन नशे बाज़ोंका जमाव हुआ करता था। क्रमसे एक एक औषधकी वाष्प सूंघी जाती और उसके प्रभावकी परीक्षाकी जाती थी। यह और इनके मित्र कितने साहस और जोखिमके काम किया करते थे, यह साधारण आदमियोंको ज्ञात भी न होगा। तौ भी नीचे दी हुई घटनासे इसका अनुभव पाठकोंको हो जायगा।

लार्ड प्लेफैरकी प्रयोग शालामें डा० सिम्पसन एक दिन गये और उनसे पूछा कि कोई नई औषध तो नहीं तैय्यारकी गई थी। प्लेफैरने उन्हें बतलाया कि उनके सहायक गथरीने (Dr. Guthrie) इथाइलीन ब्रोमैड बनाया था। सिम्पसनने थोड़ा सा द्रव एक शीशीमें वहीं अपने ऊपर प्रयोग करनेकेलिए मांगा। प्लेफैरने इस बातकी आज्ञा न दी और दो खरहे मंगवाये। उनपर प्रयोग किया गया, वे बेहोश हो गये और कुछ काल पीछे होशमें आ गये। सिम्पसन बड़े प्रसन्न हुए और शीघ्र ही अपने और अपने सहायकके ऊपर प्रयोग करनेके लिए उद्यत हुए। उनके सहायकने उनसे एक दिन ठहरकर यह देखनेको कहा कि खरहोंकी क्या दशा होती है। दूसरे दिन खरगोश मरे पाये गये। इस भांति दो खरगोशोंकी हत्यासे संसारके बड़े उपकार कर्ताकी जान बची।

डा० सिम्पसन और क्लोरोफ़ार्म

कलोरोफ़ार्म जर्मन रासायनिक लीबिगने सं १८४७ में तय्यार किया था। अन्य औषधोंके साथ सिम्पसनने इसे भी मंगाया। इसे देखकर सिम्पसन और उनके मित्र नशे बाज़ोंने कहा कि यह तो बड़ा गाढ़ा द्रव है। यह ईथर जैसे चपल पदार्थकी अपेक्षा क्या अधिक उपयोगी होगा। क्लोरोफ़ार्मको यह सरटिफ़िकट देकर वे अन्य पदार्थोंकी वाष्प सूंघने लगे। जब परीक्षा करनेको कोई पदार्थ न बचा, तो इसकी परीक्षा करना निश्चय हुआ। जब तक सिम्पसनकी बारी आई, तब तक इनकी मित्र मंडली खुर्राटे लेने लगी। उसी समय इन्हें मालूम हुआ कि यह पदार्थ ईथरसे कहीं बढ़ चढ़ कर है। धन्य वाद इस नशेबाज़ों-

की गोष्ठीको जिसकी कृपासे यह परमोपयोगी मादक हस्तगत हुआ। यह घटना नवम्बर सं १८४७ में हुई, पर इससे पहले उसी वर्षके मार्च मासमें फ्लौरेन्सने पैरिसकी विज्ञान परिषद्में "क्लोरोफ़ार्म और उसका क्षुद्र पशुओंपर प्रभाव" इस विषयपर एक निबन्ध पढ़ा था।

१८७६ ई० तक इसी पदार्थका शस्त्रोपचारोंमें निरन्तर प्रयोग होता रहा, जब क्लोवरने अपना ईथर-पात्रका आविष्कार किया।

क्लोरो फ़ार्मका प्रचार और महारानी विकटोरिया

क्लोरो फ़ार्मका प्रचार करनेमें सिम्पसनका लकीरके फ़कीर पादरियोंने बड़ा प्रतिरोध किया। उनका कहना था कि ईश्वरकी इच्छा है कि प्रसव वेदना स्त्रियां सहें, अन्यथा वह स्वयम् इसके कम करने या मिटानेका उपाय करता। क्लोरोफ़ार्मके प्रयोगसे प्रसव-पीड़ा कम करना ईश्वरीय इच्छाके विरुद्ध काम करना और उसका महत्व और पवित्रता घटाना है।

इसी समय महारानी विक्टोरियाने स्वयम्, अपने किसी बच्चेकी उत्पत्तिके समय इस द्रवका प्रयोग किया और तबसे पादरियोंका विरोध कम होने लगा।

(शेष फिर)

ज़मीनकी पैदावारमें कमी।

(लेखक—पथिक)

मैं प्रायः किसानों और ज़मींदारोंसे मिला करता हूं। सब हमेशा यही शिकायत किया करते हैं कि पैदावार दिनपर दिन कम होती जाती है। मेरी समझमें इसकेलिए काश्तकार व ज़मींदार दोनों दोषी हैं क्योंकि सरकारी फार्मोंपर पैदावारमें कोई कमी नहीं होती यद्यपि वहांपर पांस भी बहुत कम दी जाती है। कानपुरके फ़ार्मपर कुछ खेत ऐसे हैं जिनमें ४० वर्षसे पासका नाम भी नहीं दिया गया है। केवल जुताईसे ही अच्छी पैदावार होती रही है।

ज़मींदार और किसान

ज़मींदार लोग बड़े लालची होते हैं। उनको इस बातकी कोई चिन्ता नहीं कि किसानके घर खानेको भी है या नहीं। यदि एक किसान १०) बीघापर खेत लेता है तो वह उसको जोतता और बोता है और फ़सल काट लेता है परन्तु पांसका नाम भी नहीं लेता। इसमें उस बेचारेका कोई कसूर नहीं है। कसूर ज़मींदारका है क्योंकि किसान बेचारेको आशा नहीं कि वह उस खेतका अगले साल जोता होगा या नहीं। युक्त प्रान्तके टैनेंसी (U. P. Tenancy Act) एक्टके अनुसार १२ साल लगातार जोतनेके बाद किसानको मारूसीका हक़ होता है, परन्तु ११ साल तक तो उसे यह आशा ही नहीं रहती कि अगले साल वह उस खेतका मालिक रहेगा या नहीं। यदि ११ सालतक ज़मीनके रहनेकी पक्की आशा किसानको हो जाय तो भी वह कुछ खाद डाले, मिहनतसे खेतको कमावे और उसकी उपजाऊ शक्तिको स्थिर रक्खे। खेत हर सालकी वेदख़लीसे दिन ब दिन कमज़ोर ही होते चले जाते हैं। इसलिए ज़मींदारको उचित है कि लम्बे पट्टेपर ज़मीनको उठावे और हर साल काश्तकार न बदले।

खेतकी जुताई

देशी हलसे जोतनेसे जुताईका काम ठीक ठीक नहीं होता। एक बारके जोतनेके बाद करीब आधी ज़मीन बिला जुती रह जाती है क्योंकि कि देशी हल ज़मीनको केवल खुरचता है। इसी कारण खेतको बार बार जोतना पड़ता है। इसलिए किसानोंको लोहेके हल जैसे मैस्टन प्लाऊ (Meston plough) या वाट्स प्लाऊ (Watts' plough) प्रयोगमें लाने चाहिएँ। बरसातमें तो इन हलोंके सिवाय देशीका नाम भी न लेना चाहिये।

इन हलोंकी जुताईका फ़ायदा केवल प्रयोगसे ही ज्ञात हो सकता है। इनसे निम्नलिखित लाभ होते हैं।

(१) खेतमें खर पतवार अधिक नहीं होते और जो होते हैं वह दबकर पांसका काम देते हैं।

(२) बरसातका पानी कुल धरती सोख लेती हैं।

(३) खेतकी उपजाऊ शक्ति बढ़ जाती है।

(४) खेतमें बिला जुती जमीन नहीं रहती।

बीजका पसन्द करना

यह तो एक ऐसी बात है, जिसका हमारे किसान विचार भी नहीं करते। बीज बोनेके पूर्व उसके जमनेकी ताक़तको देख लेना चाहिये। इसके जांचनेका ऊपाय निम्नलिखित हैः—

१०० बीज गिनकर दो स्याही सोखोंके बीच-में रख दो। फिर इनको भिगो दो। २, ३, दिन बाद बीज जमने लगेंगे। सवेरे हर रोज़ सोख़तेको भिगो देना चाहिये। यदि ८० फ़ी सदी बीज जम आवें तो बीज बोने योग्य है वरना नहीं।

नहरकी आबपाशी (सिंचाई)

इसके कारण किसान बड़े आलसी हो गये हैं। खेतमें किसी प्रकारका श्रम नहीं करते। फसल सालमें दो तीन बार कर लेते हैं। सिर्फ़ पानी देनेसे ही समझते हैं कि पैदावार हो जायगी। पांसका नाम नहीं लेते। खेतमें पानी काटकर सो जाते हैं। खेत लबालब भर जाता है और फ़सल ख़राब हो जाती है। पानी देनेकी भी हद्द होती है, उसको देखकर पानी देना चाहिये। अधिक देनेसे सिवाय हानिके और कोई लाभ नहीं है।

आशा है कि हमारे ज़मींदार और काश्तकार इन बातोंपर ध्यान देंगे और देशकी दरिद्रताके दूर करनेका प्रयत्न करेंगे।

———

होमियोपैथिक चिकित्सा

[ले०—पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव]

३ - स्त्रियोंके रोग

जब बालिकाएँ यौवन कालमें पदार्पण करती हैं, उनमें सहसा बड़ा परि-वर्तन हो जाता है। इस परिवर्तन कालमें उन्हें अनेक रोग हो जानेका भय भी रहता है। अतएव स्त्रियोंके कुछ रोगोंका यहांपर क्रमबद्ध वर्णन किया जाता है। प्रत्येक रोगके लक्षण देकर औषध भी लिखी जाती है, जिसमें रोगी स्वयम् भी अवसर पड़ने पर अपनी चिकित्सा आप कर लें।

प्रायः देखा जाता है कि भारतवासी स्त्रियां अपने रोगोंको लज्जाके कारण यहां तक छिपाती हैं कि उनके पतियोंको भी उनकी सच्ची दशाका ज्ञान नहीं होता। ऐसी ही लज्जालु स्त्रियोंके उपयोगके लिए यह लेख दिया जाता है। जो औषधें यहां लिखी जाती हैं, उनसे किसी प्रकारकी हानि कदापि न होगी। यदि दस पांच दिन औषधका सेवन करनेसे लाभ न हो तो किसी वैद्यसे ही परामर्श करना श्रेयस्कर है।

रजो दर्शन।

इस विषयपर एक लेख विज्ञान (भाग ३ सं० ५ पृष्ट २१५) में पहले प्रकाशित हो चुका है। अतएव यहांपर केवल तत्सम्बन्धी कुछ नियमोंका ही उल्लेख करेंगे। रजोदर्शन होनेपर गरम पानीसे स्नान करना, मसालों या बहुत अच्छे पदार्थोंका खाना, गरम कमरेमें या ऐसे कमरेमें सोना जहां हवा न आती हो, कहानियां पढ़ना, बहुत बैठे रहना, नाचना, रातको जागना इत्यादि बातोंसे बचना चाहिये, अन्यथा लड़कियोंको मासिकधर्म सम्बन्धी अनेक रोग-जैसे न्यूनता या अधिकताके साथ होना या बे वक्त होना—हो जाते हैं। शरीर और मनको शुद्ध रखना, ठंडे पानीसे नहाना और

Medical वैद्यक]

तदुपरांत बदन पोंछना, शुद्ध हवामें रहना, ठंडे हवादार कमरेमें रहना, साधारण सुपाच्य खाना खाना, गर्म चाय, काफ़ी या शराब न पीना यह बातें पुष्पवतीको करनी चाहियें।

कभी कभी मासिकधर्म पहली बार ज़ोरसे कूदने, दिमाग़पर ज़ोर पड़ने या ज़ोरसे गिर जानेकी वजहसे शुरू होकर कई दिन ज़्यादतीके साथ जारी रहता है। जब ऐसी घटना हो तो कारण मालूम करके ओषधिका सेवन नीचे लिखे लक्षणानुसार करना चाहिये।

एकोनाइट—(Aconite अगर दिमाग़ी सदमेकी वजहसे हो।

आरनिका—(Arnica) यदि चोट लगने वा शारीरिक परिश्रमके कारण हो। रोगीको स्वच्छ ठंडे और खुले हुए कमरेमें लिटाकर आराम करने दिया जाय, चादर हलकी उढ़ाई जाय और पानी ठंडा दिया जाय, तो भी रुधिरके बहनेमें कमी होगी। अगर इन उपायोंसे भी कमी न मालूम पड़े तो किसी डाक्टरको दिखलाना चाहिये।

कभी कभी मासिकधर्मके विलम्बसे आरम्भ होनेसे स्त्रियोंको डर चिड़चिड़ापन चित्तकी ग्लानि, सिर, रीढ़की हड्डी या गुदामें पीड़ा, भगपर भारीपन, गर्मी, ज्वर, ऐंठन नींदकीसी दशा, इत्यादि अनुभव होने लगते हैं।

शरीरकी कोमलता और बेपरवाहीके कारण उपरोक्त पीड़ाओंके अतिरिक्त नए नए रोग भी पैदा होने लगते हैं। इसलिए चाहिये कि पहली बार जब रजोदर्शन हो तो स्वास्थ्यरक्षाकी ओर विशेष ध्यान दिया जाय। क्योंकि उपयुक्त चिकित्सा न होने और अनियमिति रहन सहनसे सैकड़ों मौतें हो जाती हैं। घरकी बड़ी बूढ़ी औरतोंको चाहिये कि कमसे कम तीन महीनेतक देखकर रजोदर्शनका ठीक समय मालूम कर लें और प्रत्येक मासमें उस समय के ५, ७ दिन पहले अपथ्य न होने दें। रातको हवामें रहना, गीले या बारीक कपड़े पहिरना, पैर गीले रखना, नाचना, दावतोंमें शरीक होना इत्यादि बातोंसे बचावें। आरम्भमें कई महीने तक रजःस्राव ठीक समयपर होता रहनेपर भविष्यमें अधिक पथ्य और संयमकी चिन्ता न रहेगी।

रजःस्राव सम्बन्धी जितने रोग होते हैं, उनका हम यहांपर वर्णन करेंगे। उनके लक्षण, होनेके कारण, बचनेके उपाय और चिकित्सा भी देंगे, जिससे स्त्रियां पढ़कर अपना, अपने घरकी बहू बेटियोंका और दूसरी पड़ोसकी स्त्रियोंका हाल सुनकर और मालूम करके उनकी सहायता कर सकें, उनका दुःख मिटावें, और उनके जीवन और भावी सन्तानके नाशकरनेवाले रोगको जड़से मिटा सकें।

इस रोगके तीन रूप हैं। (१) रजः स्रावका देरसे होना (२) होकर रुक जाना अथवा (३) कम होना।

देरसे मासिकधर्मका होना—इस रोगके इलाजमें ऐसी दवायें या गर्म चीज़ें नहीं देनी चाहियें कि जिनकी वजहसे भीतरके अङ्गोंको हानि पहुंचे और बलात् मासिकधर्म जारी कराया जाय। पहले रोगका कारण जान लेना चाहिये। प्रायः यह रोग उन नाड़ियोंकी दुर्बलताके कारण होता है जिनका सम्बन्ध मूत्र-नड़ियोंसे है। वाह्य अङ्गोंके हृष्ट पुष्ट होते हुए भी, रजो निःसरण न हो, सिर भारी रहे, नाकसे खून बहे, दिल धड़के, थोड़ी मेहनतसे दम फूलने लगे, हाथ पैरमें थकावट मालूम हो, पीठमें और जँघामें दर्द हो तो समझ लेना चाहिये कि यह रोग है। खांसी, सांसका न समाना, गलेकी खुरखुराहट, और दर्द भी इसी रोगके लक्षण हैं। साइक्लमैन (Cyclamen) फैरम, (Ferrum) पलसैटिला (Pulsatilla) और सीपिया (Sepia) ओषधियोंमेंसे किसी एकका सेवन करना चाहिये।

यदि नीचे लिखे चिन्ह पाये जायं तो जो ओषधें लिखी जाती हैं, उनका सेवन करना चाहिये।

आरसेनिक (Arsenic)-मन्दाग्नि, चेहरा भरभराया हुआ, बेचैनी और जलन, मुंह, टखने और

पैरमें सूजन हो और भगसे सफ़ेद रंगका पानी निकले।

ब्राइनिया (Bryonia)—नाकसे खून निकले, थूकके साथ खून निकले, सख्त और सूखी खांसी हो, छातीमें और जोड़ोंमें दर्द हो, कब्ज़ रहे।

केलकेरिया कार्ब (Calcar-carb.)-मोटी औरतोंको जिनको कब्ज़ रहता हो, दूधके रंगका पानी निकले, सिर और सीनेमें सूजन हो, खांसी सुबहके वक्त ज़्यादा हो, पोरुए उंगलियोंके सर्द रहें, सिरमें पसीने ज़्यादा आवें।

सिमीसिफयूजा—(Cimicifuga)-पेडूके नीचेके हिस्सेमें कमज़ोरी हो, गश आता हो, सिरमें दर्द हो, बेचैनी, नींदका न आना, सन सनाहट, बांई तरफ़ छातीमें दर्द, और बाईका दर्द हो।

कोनियम मेक (Conium mac)—ऐसी औरतोंके लिए है जो छरेरे बदनकी हों, जल्दी जोशमें आ जाती हों, जिनके पेडूमें दर्द और सूजन हो, भगसे सफ़ेद पानी निकलता हो।

फ़ैरम (Ferrum)—कमज़ोरी, धड़कन, हाज़मेका खराब होना, बीमारोंकी सी सूरत, पर मुंह भरा हुआ हो।

नक्सवोमिका (Nux vomica)—सुबहके वक्त सिरमें दर्द रहे, कब्ज़ रहे, ऐंठन पैदा हो। ये दवा काले-रंगकी औरतोंको जिनका मिजाज़ चिड़चिड़ा, तेज़ और फुर्तीला है और जो कम काम काज करती हैं उनको लाभकारी होगी।

फासफोरस (Phosphorus)—नाजुक बदनवाली औरतोंको जिनको जल्द फेफड़ोंकी बीमारी हो जाती हो और जिनके रजो निःसरणकी जगह कभी थोड़ा खून थूकके ज़रियेसे निकलता हो। खांसी हो और सीनेमें दर्द रहता हो।

पलसैटिला (Pulsatilla)—पेट और पीठमें दर्द, हिस्टीरिया, (गश आना या उल्टी सीधी बातें करने लगना) कभी रोना कभी हँसना, जी मिचलाना और छातीकी धड़कन, बदहज़मी और भूकका न लगना, खूनकी कमी। ये दवा खासकर गोरे रंगकी औरतोंको जिनके बाल चमकदार और तबियत कमज़ोर हो, जल्द गुस्सा हो जाती हों फायदा करती है।

सीपिया (Sepia)—जब उम्र पाकर मासिकधर्ममें देर हुई हो और पेटमें दर्द व तनाव मालूम हो, चक्कर आते हों, सिरमें दर्द, मुंहपर भरभरापन और उन्मादकी सी दशा हो।

सलफर (Sulphur)—सिरमें दर्द, जो गुद्दीसे लेकर गर्दन तक रहे, चांदपर गर्मी, पीला और बीमार सा चेहरा, आखोंके चारों तरफ़ हल्का नीलापन। इन दवाओंके अलावा और भी दवायें हैं जो दी जा सकती हैं।

जो दवायें लिखी गई हैं उनकी साधारण मर्ज़में सुबह शाम और रातको एक एक खुराक देनी चाहिये और अगर मर्ज़ बढ़ गया हो तो २, ३, या ४ घंटे बाद दे सकते हैं।

परहेज़—पैर खुश्क और गर्म रखे जाँय, आराम किया जाय, तंग कपड़े न पहिरे जायं, सर्दीसे बचा जाय, गर्म कपड़े पहिरे जायं, पेटका हिस्सा गर्म कपड़ेसे ढका रहे ताकि सर्दी न लगे, ज़्यादा बैठने और पढ़नेकी आदत न डाली जाय, सुबह टहलनेकी कसरतकी जाय, अच्छी बातेंकी जायं। ताक़त देनेवाला खाना ठीक वक्तपर दिनमें ३ बार खाया जाय, ज्यादा पकी और मसालेदार चीजोंसे बचा जाय, चाय आदि न पी जाय, अगर मरीज़ कमजोर न हो तो ठंडे पानीसे नहाना और पेडूका धोना फायदे मंद होगा। स्नान सोते वक्त किया जाय तो अच्छा है।

(शेष फिर)

क्या वृक्षोंमें भी स्वेदन क्रिया होती है ?

[ले० पं० गङ्गाशङ्कर पचौली]

हम विज्ञानकी किसी पिछली संख्या-में "पौदोंमें जल कैसे पहुंचता है ?" इस प्रश्नपर विचार कर चुके* हैं। आज हम यह देखना चाहते हैं कि पौदोंमें जो जल पहुंचता है उसका होता क्या है। इसके लिए हम पहले कुछ परीक्षाएं देंगे।

एक नये प्ररोहके घमलेको मोमिया वा रबड़ चढ़े कपड़ेसे इस प्रकार मढ़ो कि सब घमला ढक जाय और घमलेकी मिट्टीपर होता हुआ कपड़ा प्ररोहके कांडके नीचेके भागसे जैसा चित्र १ में दिखाया है लिपट जाय। इस प्रकार ढकनेसे तात्पर्य इतना ही है कि घमलेकी तरीका कोई अंश भाप होकर न निकल जाय। जब घमला इस प्रकार बंध चुके तो घमलेको मेज़पर रखकर उसके ऊपर कांच-का 'बैलजार' ढक दो। कुछ घंटोंके पीछे मालूम होगा कि कांचके ढक्कन-की भीतरी दीवाल पर तरी जम गई है। यह तरी बढ़ते बढ़ते पानीकी बूंदोंमें बदल जाती है।

चित्र १

इसी प्रयोगकी एक दूसरी रीति भी यहां दी जाती है। ऊपरकी भांति घमलेको कपड़ेसे लपेट-कर प्ररोहके पास 'कोबाल्ट हरित' के (cobalt chloride) घोलमें डोब देकर सुखाया हुआ हुआ कागज़ लटकाकर ऊपरसे कांचका ढक्कन पूर्व रीतिसे ढक दो। एक दूसरे कांचके ढक्कनके भीतर किसी लकड़ीमें उपरोक्त घोलमें डोब खाया हुआ दूसरा 'फिल्टर' कागज़का टूक लगा-कर उस लकड़ीको खड़ा रख दो। घोलमें डोब खाये कागज़को खूब सुखानेकेलिए उसको अग्नि वा लम्पके समीप रखना चाहिये। ऊपरका घोल लाल रंगका होता है और जबतक वह डोब खाया हुआ कागज़ गीला रहता है तबतक वह भी लाल रहता है, परन्तु सूख जानेपर नीला हो जाता है। यह कागज़ पानीकी भाप बहुत जल्द शोषण कर लेता है, और वायुमें थोड़ीसी भी नमी होनेपर लाल हो जाता है। इसलिए मिश्रण-में डोब खाया कागज़ खूब सुखा लेना आव-श्यक है। अब दोनों ढक्कनोंके भीतर तरी न होनेसे वे कागज़ नीले रहते हैं। पर थोड़ी ही देरमें प्ररोह-पर लगे कागज़का रंग बदलकर लाल होने लगता है। इस-से यही स्पष्ट होता है कि उस कागज़को तरी पहुंची। दूसरे ढक्कनमें लगा हुआ कागज़ नीला ही बना रहता है जिससे यही जाना गया कि उसको तरी नहीं मिली। प्ररोहवाले ढक्कनमें तरी आई कहांसे ? । घमलेकी मिट्टीकी तरी तो भाप होकर आई नहीं क्योंकि घमला तो मोमिया कपड़े-

चित्र २
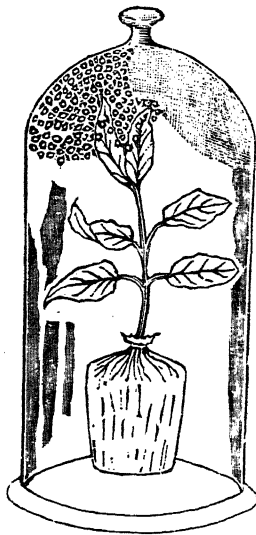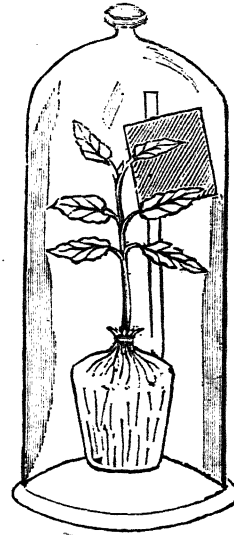
*विज्ञान भाग ३ संख्या ५, पृष्ठ २१६ (सिंह १९७३)

से लिपटा है, बाहरकी वायुकी तरी भी नहीं पहुंची। इससे यही सिद्ध हुआ कि कागजको लाल करनेकेलिए तरी प्ररोह वा पौदेमेंसे ही मिली। पौदेके कांड वा पत्रोंसे भाप निकलकर उस कागजसे छुइ जिससे वह लाल हो गया यही नतीजा निकल सकता है। (देखो चित्र २)

एक और रीतिसे परीक्षा करनेसे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि पानी पौदोंमेंसे ही निकलता है। एक धमलेमें लगे हुए सूरजमुखी वा और किसी प्ररोहको लेकर उसके पत्र सहित कांडके भागको एक काँचकी नलीमें रखिये और नलीके मुखको रुईसे बंद कर दीजिये जैसा चित्र ३ में दिखाया गया है। थोड़ी देरमें उस नलीमें पानी-

चित्र ३

की बूंदें जमती मालूम होंगी। एक दिनके पीछे नलीमें पानी इकट्ठा हुआ दिखाई पड़ने लगेगा।

ऊपरके तीनों निरीक्षणोंसे सिद्ध हुआ कि पौदोंमेंसे पानी निकला करता है। मूल द्वारा जो पानी आता है वह फिर निकलकर भापके रूपमें वायुमें मिल जाता है। मनुष्य जितना पानी पीता है उसका एक भाग स्वेद मूत्र मल द्वारा निकल जाता है। इसी रीति भूमिमेंसे चढ़ा हुआ पानी वायुमें निकल जाता है। इस प्रकार जलके निकलते रहनेका नाम स्वेदन क्रिया (transpiration) है।

स्वेदन क्रिया

यह तो जान लिया कि पौदोंमें भी स्वेदन क्रिया हुआ करती है। अब यह भी जाननेकी उत्कट इच्छा होगी कि यह क्रिया पौदोंमें किस रीति हुआ करती है। एक पत्रको लेकर सूक्ष्मदर्शक-यंत्रद्वारा उसे देखें तो पत्रके भीतर बहुत छोटे छोटे छिद्र दिखाई देंगे। ये छिद्र बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि जो उनको तीनसो गुना बड़ा दिखानेवाले सूक्ष्मदर्शकयंत्रद्वारा देखें तो वे चित्र ४ की आकृतिमें दिखाये हुए आकारके

चित्र ४

मालम पड़ते हैं। इन छिद्रोंसे जुड़ी हुई असंख्य वायुनलिका वा स्वांसनाड़ी हैं और ये सूक्ष्म-रंध्र उन नलिकाओंके मुख वा द्वार हैं। इसी कारण ये पत्रमुख वा पत्ररंध्र (stomata) कहाते हैं। मनुष्य शरीरके रोम-रंध्रकी नाईं ये पत्रोंके रंध्र हैं और वैसा ही कार्य भी करते हैं। पत्रके अधोभागमें रंध्र रहते हैं। कोई कोई पौदे जिनके पत्र पानीमें रहते हैं उनके पत्तोंके ऊपरी भागमें ये छिद्र होते हैं, जैसे कुमोदिनी कमल आदिमें।

दिवसके प्रकाशमें पत्रोंके पत्ररंध्र खुले रहते हैं जिसके कारण वायु पत्रके भीतर प्रवेश करता

है और पौदेके भीतरका बचा पानी भाप होकर निकल जाता है।

पत्रोंमें पानीके भापके रूपमें निकाल देनेकी ही शक्ति नहीं है वरन् पत्र पानीको भाप होकर उड़ जानेसे रोक भी सकते हैं। इस गुणकी परीक्षाकेलिए सेम या सूरज मुखीके कई पौदे लो। इन पौदोंके बराबर बराबर संख्यामें दो विभाग करो। पांच पांच पौदे दोनोंके एक स्थानपर गरम पानीमें कुछ देर रखो और पांच ही पांच और लेकर ठंडे पानीमें रखो। फिर दोनों भागोंको गीले ही मेज़ वा तख़्त या चौकी आदिपर फैलाकर सुखाओ। एक दिन बीतनेपर दोनों भागोंको देखनेसे ऐसा ज्ञात होगा कि जो पौदे गरम पानीमें पड़नेसे मर गये थे उनमेंसे पानीका विशेष भाग उड़ गया है, पर ठंडे जलमें रखे हुए हरे भरे पौदोंमेंसे पानी कम निकलने पाया है। इस निरीक्षणसे यह जाना जाता है कि सजीव पत्रोंमेंसे या तो पानी औरोंको अपेक्षा कम निकलता है या जीवित पत्रोंमें पानीको रोक रखनेकी भी शक्ति है।

पत्र जैसे जलके अपसारक हैं वैसेही वे आकर्षक भी हैं। इस स्थानपर यह दिखाना चाहते हैं कि जैसे मूल आहार घुले जलको पौदेमें ऊपरको फेंकती है वैसे ही पौदेके पत्र भी भूमिमेंसे जलको खींचते हैं। एक पौदेकी पत्रवाली डालीको लेकर ट्यूब या तिलक नलीमें रखो और उसके मुखपर रबड़की नली पहिराकर पौदेकी डाली और नलिकापर बांध दो, जिससे डाली नलिकामें खड़ी रहे। इस नलिकाके दूसरे सिरेसे पानी भर दो। ऐसा करनेसे डाली पानीसे छूए रहैगी और उसको ऊपर खेंचती रहेगी। ज्यों ज्यों पानी पत्रोंमेंसे स्वेद होकर हवामें उड़ता जायगा त्यों त्यों नलिकाके डालीवाले सिरेमें पानी चढ़ता जायगा और दूसरे सिरेमें गिरता जायगा। यह क्रिया तबतक जारी रहेगी जबतक नलिकाके दूसरे सिरेके पेंदेतक पानी न पहुंच जायगा। जिस समय पानी डालीतक पहुंचना बंद हो जाय तो उस समय उस नलिकामें यदि पारा भर दिया जाता है तो उसके दबावसे पानी डालीवाले सिरेपर चढ़ने लगता है। पारा पानीसे भारी है इसलिए पानीको ढकेलकर डालींतक पहुंचा देता है। इस परीक्षासे जाना जाता है कि पौदोंके पत्र भी पानीका भूमिमेंसे आकर्षण करते हैं। (चित्र ५) में इस आकर्षण क्रियाके जांचनेकी विधि दिखाई गई है।

चित्र ५

पौदोंमें स्वेदन क्रिया कि जिससे पौदेका पानी वायुमें मिलता रहता है पौदेके जीवनकेलिए बड़े महत्वकी है। मूल जिस आहार मिश्रत जलको पत्तोंतक फेंकती है उसीको पत्र अपनी ओर आकर्षण भी करते हैं। यह जल पौदेकी पेंडी, शाखा आदिके भीतर घूमता हुआ पत्रतक पहुंचता है और, जैसा हम आगे पाचन शक्तिपर विचारके समय देखेंगे, पत्रोंमें पहुंचकर वह आहारको ऐसे रूपमें बना देता है कि उसीसे पौदेके सब अंगोंका पोषण और वृद्धि होती रहती है। जितना जल पत्रतक पहुंचता है वह सब आहार बनाने और रस उत्पन्न करनेमें खर्च नहीं हो जाता। वरन् पोषक द्रव्य बन जानेपर जो निकम्मा भाग बच रहता है वह पत्रोंके रंध्र द्वारा स्वेदरूप होकर निकल जाता है। जो यह क्रिया जलके ऊपर चढ़ने और पत्रोंद्वारा भापरूप होकर वायुमें मिलते रहनेकी न होवे तो पौदेकी वही स्थिति हो जावे जो मनुष्यका पसीना निकलना बिलकुल बंद हो जानेसे होती है।
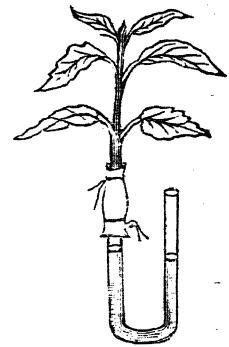
ऊपरकी रीतिसे देखी हुई स्वेदन क्रियासे कितना जल वायुमें फेंका जाता है यह जाननेकेलिए इस रीति से परीक्षा हो सकती है। अभी हम तिलक नली द्वारा देख चुके हैं कि नलिकाका पानी

डालीद्वारा वायुमें भाप होकर मिलता रहता है। यदि हम यह जान लें कि नलिकामें किसी समय कितना जल भरा जाता है और वह कितने समयमें स्वेद होकर पत्रोंद्वारा निकल जाता है तो हम सुगमतासे जान सकते हैं कि एक दिनमें कितना पानी अमुक पौदा निकाल सकता है। विद्वानोंने अनुभवसे जाना है कि एक एकड़ भूमिमें शलजम बोनेसे अनुमान २७००० मन जल भूमिमेंसे निकल जाता है।

पानीके भाप होकर निकल जानेके कई कारण सहायक और अवरोधक होते हैं। प्रथम जितनी वायुमें गर्मी विशेष होगी और जितने पौदेके पत्र अधिक गरम होंगे उतना ही पानी शीघ्र और अधिक निकलता रहेगा। दूसरे सूखी और गरम हवाके चलनेसे भापयुक्त पौदेके पासकी वायु दूर चली जाती है और सूखी गरम हवा पास आ जाने और पत्रोंमें गरमी बढ़नेसे अधिक पानी भाप होकर निकल जाता है। परन्तु जब हवामें तरी और ठंडक होती है उस समय विशेष पानी वायुमें नहीं मिलता। चैामासेके दिनोंमें स्वेदन क्रिया हलकी रहती है। कारण वायुमें नमी और शीतलता रहती है। इस स्वेदन क्रियामें देश-भेदसे भी तारतम्य होता है और पौदोंके रूप, रङ्ग, गुण तथा क्रियामें भी अन्तर पड़ जाता है। मक्का, गेहूं, अरवी, बांस आदिके पत्रोंमेंका जल अपने ही दबावके कारण पत्रोंकी किनार और पानीके सूक्ष्म रंध्रों द्वारा निकला करता है। जो पौदे छाया वा तरीकी जगहमें बढ़ते हैं उनके पत्र बड़े और पतले हो जाते हैं और साथ ही साथ नाजुक भी हो जाते हैं। ऐसे पत्रोंकी ऊपरके भागकी बाह्यत्वचा बहुत झीनी होती है और इस कारण जल पत्रके तलेके सूक्ष्म रंध्रोंद्वारा ही नहीं निकलता वरन् ऊपरकी त्वचाके कोषों द्वारा भी निकलता रहता है। यह बात भी सिद्ध है कि काले रङ्गमें गरमीके ग्रहण करनेकी विशेष शक्ति होती है। बहुतसे पौदोंके जैसे अरवी हलदी आदिके पत्रोंमें काले धब्बे होते हैं जिनके कारण वे गरमीको अधिक खेंचते हैं जो पौदोंमेंके जलको शीघ्रतासे बाहर फेंक देती है।

जैसा कि पौदेकी स्वेदन क्रियासे लाभ है वैसा ही उस क्रियाके अधिक ज़ोरसे होनेसे पौदा रोगी समझा जाता है और कमज़ोर हो जाता है। सूखी भूमिपर होने, सूर्यके तेज तापमें रहने लूओंको सहने वा वर्षाकी खेंच हो जाने पौदोंमेंसे जल शीघ्रता और अधिकतासे भाप होकर वायुमें मिलता है जिससे वे, आयसे व्यय अधिक होनेके कारण, शिथिल और बलहीन हो जाते हैं। इस अधिक जलके निकलनेके कई स्वाभाविक रोक भी हैं। प्रथम ऐसी स्थितिमें होनेवाले पौदोंके पत्रदल बहुत लम्बे चैाड़े नहीं होते और कईके तो केवल पतली झिल्ली या हड्डी-सी होती हैं जिनमें रंध्र वा मुख अधिक नहीं होते। अतएव उनमेंसे विशेष पानी नहीं निकल सकता। बहुतसे वृक्षोंमें सूखी ऋतुमें पतझड़ हो जाती है। इस हेतु अधिक भाप बननेके दिनोंमें पत्र ही नहीं रहते। घीकुवारकी जातिके पौदोंके पत्रमें यह गुण है कि वे उस जलको जो भूमि वा वर्षासे मिलता है गूदेदार पत्रों वा पेडीमें इकट्ठा कर लेते हैं। यह इकट्ठा किया जल सूखी ऋतुमें भी पौदोंसे बाहर नहीं जाता और उनको हरा भरा रखता है और बाहरी त्वचाका मोटी चमचोड़ होनेके कारण अधिक जल बाहर नहीं निकल सकता।

एक और कारण स्वेदन क्रियाके अधिक न होने देनेका पत्तोंपर रोमका होना है, क्योंकि रोमावलीमें सूखी और गरम वायुको पत्रमें घुसनेका पूरा अवसर नहीं मिलता और भीतरके जलकी अधिक भाप नहीं बनती।

जिन पौदोंके पत्र चिकने चमकदार होते हैं, उनपर प्रकाशकी किरणें परावर्तित हो जाती हैं, जिससे पत्रोंमें अधिक गर्मी इकट्ठी नहीं होने पाती और स्वेदन क्रिया भी वेगसे नहीं होती।

———

मौलिकोंकी आत्मकथा

लोभी क्षारोत्पादक धातोंका वर्णन

[ले० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.]

इन धातुओंके विषयमें कुछ लिखनेके पहले हम क्षार शब्दकी व्याख्या करना चाहते हैं।

रसायन शास्त्रमें क्षार वे पदार्थ कहलाते हैं, जो छूनेमें साबुनकी भांति चिकने हों, लाल लिटमसको नीला करदें और अम्लोंके साथ मिलनेपर उनके गुणोंका नाशकरें और उनके साथ लवण या यौगिक बनावें। क्षारोत्पादक धातुएँ वे हैं जिनके ओषित, अर्थात् उन धातुओं और ओषजनके यौगिक, पानीके साथ रासायनिक संयोग करके क्षार बनाते हैं। उदाहरण लीजिये। खटिकका (केलसियम) ओषित, चूना, पानीमें 'बुझकर' बुझा हुआ चूना बना लेता है, जो एक क्षार है।

क्षारोत्पादक धातुओंके नाम यह हैं—ग्राव (लीदियम), सोडियम, पोटासियम, रूपद (रुबीडियम), श्याम (सीज़ियम,) केलसियम, भारियम और स्ट्रौंशियम।

यह धातु क्यों कहलाते हैं ?

ये मौलिक धातु इसलिए कहलाते हैं कि इनकी द्युति, कान्ति, ताप-तथा विद्युत्-परिचालन शक्ति, रासायनिक तथा भौतिक गुण धातुओंसे मिलते हैं। इनके लवणोंका विश्लेषण जब विद्युद्धारासे किया जाता है, तो यह धातुएं विद्युत्-विश्लेषण-घटके ऋण-पटपर आविर्भूत होते हैं। यही अन्य धातुओंके विषयमें भी सत्य है। अन्य धातुओंकी भांति इनका स्वच्छ बाह्यतल चमकीला होता है। यह देखनेकेलिए धातुके टुकड़ेको चाकूसे उसी समय काटना चाहिये, अन्यथा थोड़ी ही देरमें ओषितके बन जानेसे चमक जाती रहती है। धातुओंकी नाईं यह मौलिक भी लवण बनाते हैं।

Chemistry रसायन शास्त्र]

गुण और उपयोग

हैं तो कहनेको ये धातु, पर अन्य धातुओंकी तरह काममें नहीं लाई जा सकतीं। यह इतनी मुलायम होती हैं कि चाकूसे काटी जा सकती हैं और मोमकी तरह उंगलियोंके बीच आप इन्हें मोड़तड़ोड़कर गोलियां बना सकते हैं। पर कृपाकर आप ऐसा करनेका साहस न कीजियेगा। यह पक्की शाही मिज़ाजकी हैं, आपने गुस्ताख़ीसे दस्तदराज़ी की नहीं कि यह आग बगूला हो गईं। आपके हाथोंको घायल,लोहू लुहान कर देंगी और स्वयम् अपनी पाकदामनी साबित कर दिखानेके बहाने जलकर भस्म हो जायँगी।*

यह इतनी हयादार होती हैं कि बोतलोंमें मट्टीके तेल या नेफथाका बुर्का डाले मुंह छिपाये रहती हैं। जो इनकी पर्दादरी करे और इनके अङ्गको स्पर्श करे उसकी खैर नहीं।

इन धातुओंके बरतन, चाकू, प्याले, थाली गिलास कटोरे नहीं बनाये जा सकते। अतएव नित्य व्यवहारके उपयोगकी यह धातुएँ नहीं हैं।

इन धातोंको ओषजनसे बड़ी (रासायनिक) प्रीति है। इन्हें जहां ओषजन या उसके समान गुण वाली अधातुओंमेंसे किसीसे मिलनेका अवसर प्राप्त हुआ कि असीम विह्वलताने इन्हें आघेरा। पानी परसोडियमका एक छोटासा टुकड़ा काटकर छोड़ दीजिये। फिर तमाशा देखिये। सोडियम पानीकी सतहपर लुढ़कता हुआ इधर उधर फिरैगा। वास्तवमें वह पानीके अणुओंको मारपीटकर उनकी सम्पत्ति छीन रहा है और सदाकेलिए उन्हें अपना दास बना रहा है। [पानी के अणुओंका विच्छेद करके सोडियमके अणु उनमेंकी आधी अभिद्र-

*हाथकी गर्मी इन धातोंके जलानेकेलिए काफी होती है। इन्हें कभी हाथसे न छूना चाहिये। यह सदैव बोतलोंमें मट्टीके तेल, नेफथा, या अन्य किसी द्रवमें जिसका अवयव ओषजन हो, डुबो कर रखी जाती हैं, जिसमें ओषजनके सम्पर्कमें न आवें और आग न ले जायं।

वजन तो निकाल देते हैं और शेष अभिद्रवजन और ओषजनके साथ एक यौगिक, दाहक सोडा (कास्टिक सोडा), बनाते हैं:—

२ सो + २ ओ = २ सो अ ओ + ओ$_{२}$] । पर सोडियम है बड़ा राज-नीतिज्ञ । राजा जब किसी जातिपर अपना अधिकार जमाते हैं, तो उस जाति-की सारी सम्पदाका अपहरण नहीं करते । यदि ऐसा करें तो अधीन जाति जीवित ही न रहे और फिर वे राज्य किसपर करें । सोडियम भी पानीकी सारी सम्पदा नहीं छीनता । केवल आधी सम्पत्ति (अभिद्रवजन) छीनकर ही संतोष करता है । पर आप जानते ही हैं प्रकृति माताको कोई दम्भपाखण्ड-से वशमें नहीं कर सकता । प्रकृतिके नियम अटल और अटूट हैं । ' चाहकन्दारा चाह दर पेश ' जो दूसरोंकेलिए कुआं खोदता है, उसके सामने कुआं पहले ही आ प्रस्तुत होता है । दूसरे तो पीछे गिरेंगे वह स्वयम् तो पहले गिर ले । कुआँ खोदनेमें जो समय, शक्ति, धन इत्यादिका व्यय होता है, वह कुएमें गिरनेसे कुछ ही कम है । यह प्रकृति-का अटूट नियम है । भारतमें स्त्रियोंकी स्वतंत्रता पुरुषोंने छीन ली, स्त्रियां भी गलेकी हार (चक्की-का पाट बन) गईं । पुरुषोंकी स्वतंत्रता प्रकृतिने स्वयम् छीन ली । किसी गृहस्थीसे कह तो दीजिये कि घर छोड़कर कहीं चला जाय । देखिये पैरमें बेड़ी पड़ी हैं बेचारा कैसे सरके ।

यही दशा जातियोंकी भी होती है । वर्तमान यूरोपियन युद्धमें भारतवासी कैसे काम आते; यदि इन्हें पुरुषोंकेसे अधिकार और शिक्षा मिली होती । भारत सर्कार भी परेशान है । यहां इन अल्हड़ हिन्दुस्तानियोंको आपसके वैमनस्यसे बचाये या जर्मनोंसे लड़े । पर इसमें दोष किसका ?

सोडियम महाशय भी पानीको निजाधीन तो कर लेते हैं, पर स्वयम् भी उसके हो रहते हैं । [[illegible]र बन जाता है, जो घुल जाता है । पोटासि-यम इनसे भी तेज़ तर्रार हैं । उन्हें पानीकी ओष-जन और अभिद्रवजनसे मिलनेका इतना जोष होता है कि जो अभिद्रवजन निकलती है वह फिरसे वायुकी ओषजनके साथ मिलकर पानी बना डालती है । ठीक है अधिक जोशसे बना बनाया काम भी बिगड़ जाता है ।

२ पो + २ अ$_{२}$ ओ = २ पो अ ओ + अ$_{२}$ ।

अ$_{२}$ + ओ = अ$_{२}$ आ

व्याप्ति

पोटासियम् और सोडियम् दोनों पानीसे हलके हैं, और अधातुओंके साथ बड़े वेगसे यौगिक बना डालते हैं । सृष्टिके आदिमें इसी वेग-के कारण इनकी स्वतंत्रता गिने चुने दिन तक रही होगी, अर्थात् पृथ्वीमण्डलपर यह स्वतंत्र दशामें, बिना किसी यौगिक बनाये, तभीतक रहे होंगे, जबतक पृथ्वी उत्तप्त दशामें इतने ऊँचे तापक्रम-पर होगी कि यह यौगिक न बना सकते होंगे । वर्तमान कालमें इनका स्वतंत्र दशामें पाया जाना असम्भव है ।

सोडियमके कुछ यौगिकोंका वर्णन

प्रकृतिमें सोडियमके केवल यौगिक ही पाये जाते हैं । इसका सबसे सरल और साधारण यौगिक नमक है, जिसका पूरा वृत्तान्त पाठक अप्रेलके विज्ञानमें पढ़ चुके हैं । अतएव यहांपर उसका सविस्तार वर्णन नहीं किया जायगा ।

लवण जल, थल, और नभमें व्याप्त है । सर, सरिता, सागर, वापी, कूप, तड़ाग जहां देखिये लवण विद्यमान है । यदि हम इसे भूमण्डलमें सर्वव्यापी कहें तो अत्योक्ति न होगी । रश्मिचित्र-द्वारा रासायनिक विश्लेषणमें यह पदार्थ बड़ी बाधा डालता है । समुद्रके जलमें लाखों क्या करोड़ों मन नमक घुला हुआ है । प्रतिवर्ष, नदियों द्वारा पृथ्वी तलपरका बिथरा हुआ नमक घुलकर समुद्रमें पहुंच जाता है ।

अद्भुत समुद्र जिसमें आप बिना प्रयास ही तैर सकते हैं

मनुष्यका शरीर पानीसे थोड़ा ही भारी है,

यदि मनुष्य सांस साध ले तो कभी न डूबे। समुद्र-का जल, नमकका घोल होनेके कारण शुद्ध पानी-से ज़्यादा भारी है। मृत समुद्र का (Dead Sea) तो पानी इतना भारी है कि मनुष्य उसमें डूब नहीं सकता। यदि कोई मनुष्य जाकर उसके पानीमें लेटा रहे तो तैरता हुआ ही इधर उधर फिरता रहैगा। इसका कारण यह है कि यह चारों ओरसे पृथ्वीसे घिरा हुआ है और कहींसे भी इसका सम्बन्ध महासागरसे नहीं है। प्रतिवर्ष इसमेंसे पानी वाष्प बन बन कर उड़ता जाता है, पर नदियोंद्वारा पानी आता बहुत कम है। अतएव नमककी मात्रा पानीमें बढ़ती जाती है और उसका गुरुत्व भी बढ़ता जाता है। अब उसका गुरुत्व मनुष्य शरीरके गुरुत्वसे अधिक हो गया है। अतएव मनुष्य उसमें नहीं डूब सकता।

संसारमें नमककी मात्रा

समुद्रमें घुला हुआ नमक यदि सब तलैटीमें बैठ जाय तो १७५ फुट मोटी तह बनजायगी। वही नमक, पृथ्वीपर फैला दें तो ४५० फुट मोटी तह बनैगी। इसके अतिरिक्त संसारकी खानोंमें न जाने कितना नमक बन्द हुआ पड़ा है।

नमक क्या है ?

नमक सोडियम और एक अन्य गैस हरिनका यौगिक है। हरिन एक धानी रंगकी गैस है, जिसमें बड़ी दुर्गन्ध आती है और सूंघनेसे सिरमें पीड़ा पैदा कर देती है और फेफड़ोंको नुकसान पहुंचाती है। सृष्टिके आदिमें ब्रह्माकी यह चतुराई थी कि इस गैसके साथ मिलकर यौगिक बनानेको सोडियमकी रचना की, नहीं तो आज भूमण्डल सफेद चादर ओढ़े महाप्रलयकी नींदमें सोता हुआ होता।

सोडा

सोडा भी सोडियम, और कर्बनिकाम्लका यौगिक है। यह संसारको अनेक झीलोंमें घुला हुआ पाया जाता है, पर इतनी मात्रामें नहीं कि बेचनेके लिए निकाला जा सके। नेवेडा और केलिफोरनियाकी झीलोंमें यही दशा है, पर क्वीन्स-लेकमें सोडा निकाला जाता है, जैसे भारतमें साम्भरमेंसे नमक निकालते हैं।

प्राकृतिक सोड़ाको ट्रोना या ऊराओ कहते हैं। क्वीन्सलेकके ट्रोनाके रासायनिक संगठनका द्योतक सूत्र यह है।

$$सो_{२}\ क\ ओ_{३},\ सो\ अ\ क\ ओ_{३},\ २\ अ_{२}\ ओ,$$

अर्थात् वह कर्बनित और अम्लकर्बनितका मिश्रित लवण है।

ग्राव, सोडियम, पोटासियम, रूपद, श्याम

यह पाचों धातु प्रकृति और स्वभावमें मिलती जुलती हैं, पर तो भी गुणोंमें कुछ भेद है जैसाकि नीचेकी सारिणीसे स्पष्ट होगा।

धातु	ग्राव	सोडियम	पोटासियम	रूपद	श्याम
परमाणुभार	७	२३	३६	८५'४५	१३२'८
आपेक्षिक घनत्व	'५	'६७	'८६	१'५	१'८७
द्रवण विन्दु (श°)	१८६	६७	२'५	३८'५	२६'७
उबाल विन्दु(श°) अर्थात् क्वथनांक	१४००	८७७	७००	६६६	६७०

रासायनिक क्रिया-शक्ति अथवा तीव्रता पर-माणु भारानुसार न्यूनाधिक है-ग्राव सबसे मन्द और श्याम सबसे तीव्र है। ग्राव गरम पानीको फाड़ता या विच्छेद करता है, सोडियम ठण्डे पानीको ही फाड़ देता है और अभिद्रवजन पैदा होती है। पोटासियम इतने वेगसे पानीका विच्छेद करता है कि जो अभिद्रवजन पैदा होती है, सो आग ले जाती है। रूपद और श्याम इससे भी अधिक वेगसे पानी फाड़ते हैं।

अन्य क्षारोत्पादक मौलिकोंके विषयमें अगली संख्यामें लिखा जायगा।

विकाशवाद ।

(गताङ्कसे सम्मिलित)

[ले० प्रोफ़ेसर करमनारायण, एम.ए.]

हम देख चुके हैं कि हौबीहार्स जैसी निकम्मी मशीनसे मनुष्यने परिवर्तन करते करते आधुनिक मोटर साइकिल निकाल ली। इसी प्रकार अपनी चाहके अनुसार इसने जीव जन्तुओंके आकारमें बहुत परिवर्तन कर डाला है। कुत्तोंके आकार और स्वभावमें जो परिवर्तन मनुष्यने किये हैं और कर रहा है उनसे पाठकगण कदाचित् अभिज्ञ होंगे। भूरे रंगका साधारण कुत्ता जिसे हम गली कूचोंमें फिरता हुआ देखते हैं आजकल पसन्द नहीं किया जाता और इसकी जगह कई प्रकारके कुत्ते उत्पन्न किये गये हैं, जिन्हें अङ्गरेज़ीमें स्पैनियल (Spaniel), बुलडाग (Bull-dog) ब्लडहौंड (Blood-hound स्काई-टैरियर (Skye-terrier) इत्यादि) नामोंसे पुकारते हैं। चित्र १, २, ३, ४, में, इस प्रकारके कुछ कुत्ते दिखाये गये हैं।
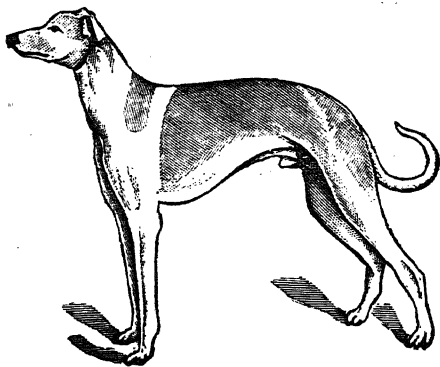
चित्र १

शिमले जैसे बड़े नगरमें सांझके समय भ्रमणके लिए निकलिये तो अंग्रेज़ोंके पीछे पीछे जिन्हें कुत्ते रखनेकी बड़ी रुचि होती है भांति भांतिके कुत्ते जाते हुए दीख पड़ते हैं। किसीकी टांगें और पूंछ बहुत छोटी और आंखें बालोंसे ढपी हुई होती हैं।
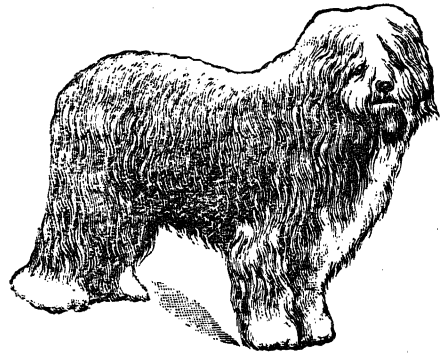
चित्र २
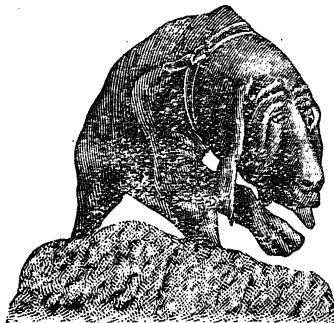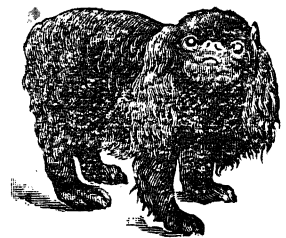
चित्र ३ चित्र ४

किसीकी टांगें और पूंछ बहुत लम्बी और मुंह भी लम्बोतरा होता है। कइयोंके कान बहुत ही बड़े होते हैं जिनको देखकर मनमें विचार होता है कि कभी हाथीके कानोंका मुकाबला न करने लगें। कइयोंका मुंह बहुत बड़ा और भयानक प्रतीत होता है। निदान मनुष्यने कुत्तेकी साधारण जातिसे अनेक प्रकारके कुत्ते उत्पन्न कर लिए हैं। क्योंकि यह कुत्ते अधिक सुन्दर और भले लगते हैं और लोग इन्हींको पसन्द करते हैं। कदाचित् यह समय दूर नहीं जब भूरे रंगका साधारण कुत्ता जिसको आजकल बहुत थोड़े लोग पसन्द करते हैं बिलकुल नष्ट हो जाय और इसके स्थानमें अन्य नए

Evolution विकाशवाद]

नए प्रकारके कुत्ते पैदा हो जायं। तब कहा जायगा कि इन अन्योन्य जातिके कुत्तोंका भूरे रङ्गके लुप्त कुत्तोंसे विकास हुआ है।

विकाशवादी यह मानते हैं कि जिस प्रकार मनुष्यने साधारण कुत्तोंसे बीसियों जातिके कुत्ते उत्पन्न कर लिए हैं उसी प्रकार जगतमें प्राकृतिक कारणोंसे नई जातियां उत्पन्न होती रहती हैं और इस प्रकार जीवोंमें विचित्रता और विभिन्नता होती जाती है। कई जातियां प्राकृतिक कारणोंसे नष्ट भी हो जाती हैं। विकाशवादी इस मन्तव्यको कि विधाताने जगतके आरम्भमें ही सब प्रकारके जीवजन्तु जो आजकल विद्यमान हैं उत्पन्न किये बिलकुल मिथ्या कहते हैं। इसके विपरीत उनकी यह सम्मति है कि आजकलके जन्तु और पौदे जगतके आरम्भमें बिलकुल विद्यमान न थे परन्तु बहुत दिन पीछे उत्पन्न हुए और उत्पत्तिके समय इनका आकार या रंग ऐसा न था जैसा अब है। आजकलके बड़े बड़े जन्तुओंके पूर्वज सैकड़ों वर्ष पहले नष्ट हो चुके हैं। विकास सिद्धान्तके अनुसार पक्षी छिपकलियों जैसे रेंगनेवाले जन्तुओंकी संतान हैं! यद्यपि इस प्रकारके रेंगनेवाले जन्तु नष्ट हो चुके हैं और आजकल विद्यमान नहीं हैं तथापि किसी-समयमें वह पृथ्वीपर बाहुल्यतासे थे। ऐसे जन्तु भी जगतमें हो चुके हैं जो आधे छिपकलियों जैसे और आधे पक्षियों जैसे थे। इसी प्रकार दूध पिलाने वाले जन्तु भी नष्ट (लुप्त) रेंगनेवाले जन्तुओंकी संतान हैं और मेंढकादि मछलियोंकी संतान हैं।

विकाशवाद इस बातको बिलकुल नहीं मानता कि सारे जीवजन्तु एक ही समयमें और इकट्ठे उत्पन्न किये गए परन्तु इस बातको सिद्ध करता है कि मछलियां मेंडकोंसे पहले उत्पन्न हुईं; और उरग (रेंगनेवाले जन्तु) मेंडकादि जन्तुओंसे पीछे विकसित हुए। दूध पिलानेवाले जन्तु और पक्षी उरगोंसे विकसित होकर जन्तुओंमें सबसे नई सृष्टि हैं। सृष्टिमें मनुष्यका क्या स्थान है इस विषयपर भी विकाशवादी अन्य मतवालोंसे भेद रखते हैं। वह मनुष्यकी उत्पत्ति सृष्टिके आदिसे नहीं मानते परन्तु यह कहते हैं कि मनुष्य अपनी जैसी किसी और जातिके परिवर्तनसे बना है। मनुष्यको किसी विशेष प्रकारसे उत्पन्न नहीं किया गया। यह बन्दरों जैसे पूर्वजोंकी सन्तान हैं। कई कारणोंसे इसने मनमें, वाणीमें तथा और अन्य गुणोंमें बहुत वृद्धि कर ली है और अब सब जीवधारियोंमें इसका प्रधान स्थान है, परन्तु शरीरकी बनावटके अनुसार यदि बन्दरोंका भाई नहीं तो चचेरा होनेमें तो कोई शक ही नहीं। बाकी यह बात रही कि पृथ्वीको बने हुए कितना समय हुआ है? भूस्तरशास्त्र तथा भौतिकशास्त्रके वेत्ताओंने यह अनुमान किया है कि पृथ्वीको बने हुए कमसे कम १० करोड़ वर्ष हुए हैं और मनुष्यको उत्पन्न हुए १० लाख वर्षसे अधिक समय नहीं हुआ। याद रखना चाहिए कि पृथ्वीकी आयुमें सैकड़ों और हज़ारों वर्षके इधर उधर हो जानेकी कोई बात ही नहीं और न यह निश्चित है कि १० करोड़ और १० लाखका अनुमान ही बिलकुल ठीक है।

१—विकाशवादके प्रमाण।

भूमिकामें हमने तीन बड़े बड़े सिद्धान्तोंका वर्णन किया है और विशेष करके विकाशसिद्धान्तकी व्याख्या की है। अब हमको यह मालूम करना है कि इन तीनोंमेंसे किसकेलिए यथायोग्य प्रमाण हैं और हमारे पास जो साक्षी विद्यमान है वह किस सिद्धान्तको सच्चा बतलाती है।

(२) भूस्तर शास्त्रकी (Geology) साक्षी

पृथ्वीपर भिन्न भिन्न प्रकारकी चट्टानें विद्यमान हैं जो कोयला, खड़िया, रेतपत्थर, ग्रैनाईट इत्यादिकी बनी हुई हैं। इनमेंसे कई, जैसे कोयला खड़िया रेतीले पत्थरकी चट्टानें क्रम बद्ध (Regular) स्तरोंमें पाई जाती हैं और इसलिए इनको तहदार चट्टानें कहते हैं। यह तहदार चट्टानें पानीके नीचे बनती हैं और इसलिए इनको जलजात या आम्भस चटानें भी कहते हैं।

यदि हम एक शीशेके गिलासमें पानी लेकर कुछ ग्रैनाईट पत्थरकी बुकनी, रेत और चिकनी मिट्टी मिला दें और गिलासको थोड़ी देर रखकर उसके तलकी परीक्षा करें तो हम देखेंगे कि ग्रैनाईट-पत्थरकी बुकनी सबसे भारी होनेके कारण झट नीचे बैठ जाती है और एक तह बना लेती है। ग्रैनाईटकी तहपर रेत बैठना आरम्भ करती है और एक और तह बन जाती है। चिकनी मिट्टी-के कण बहुत सूक्ष्म होते हैं इसलिए वे बहुत देर पानीमें तैरते रहते हैं और सबसे पीछे बैठने लगते हैं और एक नई तह बना लेते हैं। इस प्रकार गिलासमें तीन स्तर बन जाते हैं। सबसे नीचे ग्रैनाईट पत्थरका, उससे ऊपर रेतका और सबसे ऊपर चिकनी मिट्टीका। इसी प्रकार यदि किसी झीलके तलको प्रवाह या बाढ़ (Flood)के पीछे देखें तो पानीके गिलासकी तरह यहां भी तीन स्तर ही पाए जावेंगे। (१) सबसे नीचे पत्थरके टुकड़े (२) उससे ऊपर रेत और (३) फिर मिट्टी।

इसी प्रकार नदियां भी पहाड़ोंसे रेत, मिट्टी तथा पत्थरके टुकड़े बहाकर मैदानोंमें लाती हैं और वहां इनकी तहें बन जाती हैं। मैदानोंमेंसे भी नदियां ऐसे ही पदार्थ समुद्रमें बहाकर ले जाती हैं और वहां भी रेत मिट्टी और पत्थरकी तहें बनती रहती हैं।

पानी अपने मार्गको प्रायः बदलता रहता है। जो जमीन आज नदीका तल होती है वह कुछ समयके पीछे नदीके मार्ग बदलनेसे पानीके बाहर निकल आती है। कहा जाता है कि रावी किसी समयमें लाहौरके दुर्गके पास बहाकरती थी परन्तु अब वहांसे कोई एक मीलकी दूरीपर चली गई है। इसी तरह अटक नदीने भी हालमें ही अपना मार्ग बदलना आरम्भ किया है। डेरा ग़ाज़ीखानका नगर तो नष्ट हो गया है और अब सुना जाता है कि डेराइस्माईलखांकी ओर नदीका ज़ोर है। समुद्रके तलके कई भाग भूकम्पों द्वारा ऊंचे हो जाते हैं और द्वीप बन जाते हैं। यह द्वीपों तथा नदियोंके छोड़े हुए स्थल तहदार चट्टानोंके बने हुए होते हैं, जो नदी अथवा समुद्रकी तलैटीमें होनेके समय पत्थर, रेत और मिट्टीके बैठनेसे बनी थीं।

कभी कभी इन तहदार चट्टानोंके बीचमें जन्तु-ओंके अस्थि पिञ्जर या पौदे दबे हुए पाये जाते हैं। बहुधा यह पत्थर-रूप हो हुए पाये जाते हैं और फ़ौसिल (Fossil) कहलाते हैं। इन फ़ौसिलोंकी उत्पत्ति हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि कई वृक्ष तथा जन्तु प्रवाहोंमें बहकर झीलों अथवा नदियोंकी तलैटीमें रेत,पत्थर वा मिट्टीकी तहोंमें दब जाते हैं और पत्थर हो जाते हैं। समुद्रकी थाहमें भी कई समुद्री जीव मरकर दब जाते हैं और पत्थर होकर फ़ौसिल बनते हैं। जबसे नदी, झीलें वा समुद्र विद्यमान हैं और जबसे पृथ्वीपर जीवजन्तु विद्यमान हैं, जो बहकर पानीकी थाहमें दब सकते हैं तबसे यह फ़ौसिल बनते रहे हैं और आजकल भी बन रहे हैं। तहदार चट्टानोंकी आयुके संबंधमें यह मालूम करना कि कौनसी तह पुरानी है और कौनसी नई सुगम है। स्पष्ट है कि जो चट्टानें नीचे होती है वह पहले बनी हैं और जो ऊपर हैं वह पीछे। इसीलिए जो फ़ौसिल निचली तहोंमें पाये जाते हैं वह ऊपर-की तहोंके फौसिलोंसे पुराने हैं। तहदार चट्टानों तथा उनके फौसलोंकी बहुत परीक्षा की गई है और यह पाया गया है कि सबसे नीचेको चट्टानों-से लेकर सबसे ऊंची चट्टानोंतक जो जीव पत्थर हुए हुए (फौसल) मिलते हैं वह एक विशेष क्रमसे विद्यमान हैं। सबसे छोटे व सादे जीव निचली तहोंमें मिलते हैं और ज्यों ज्यों हम ऊपर वाली तहोंके फ़ौसिलोंकी परीक्षा करते हैं त्यों त्यों हमें अधिक संकीर्ण जीव मिलते हैं।

तहदार चट्टानों और उनमें दबे हुए फ़ौसिलों-का वर्णन करनेसे पहले हम यह बता देना ज़रुरी समझते हैं कि फ़ौसिलोंके विषयमें हमारा ज्ञान बहुत अपूर्ण है और सदा ऐसा ही रहेगा। कारण

यह है कि प्रायः उन जन्तुओंके ही फ़ौसिल बन सकते हैं जिनके शरीरमें पिंजर अथवा और कड़े अवयव हों। जिन जन्तुओंके शरीर मृदु हों और उनमें कोई कड़े अङ्ग न हों तो उनका चट्टानोंमें चिन्ह भी मिलना बहुत कठिन है। पिंजरेवाले सब जन्तुओंके फ़ौसिल बननेकी भी संभावना बहुत कम होती है क्योंकि यह जन्तु जब मरते हैं तो गीध, गीदड़, इत्यादि मांसभक्षी इनको खा जाते हैं और हड्डियोंको भी चबा जाते हैं। यदि इन मरे हुए जन्तुओंको कोई अन्य जन्तु न भी खाए तो भी सड़कर चूरा हो जाते हैं। इसलिए स्थलचरोंके फ़ौसिलोंके बननेके अवसर बहुत कम होते हैं। इनके फ़ौसिल तब ही बन सकते हैं जब यह अचानक मरें, जैसे कोई स्थलचर किसी दलदल में फंसकर वहां ही दब जाए या हिम में (बरफ़) दब कर मर जाए और दबा हुआ पाया जाए या किसी जल प्रवाहमें बहकर किसी नदी वा झीलकी तलैटीमें रेत वा मिट्टीकी तहमें दब जाए।

[असमाप्त]

विद्युत् बलकी नाप

[ले०—प्रोफ़ेसर सालिगग्राम भार्गव, एम-एस-सी०]

आजकल बिजलीसे लम्पें और पंखे चलते हैं। कलकत्ता बम्बई और दिल्लीमें आटा पीसनेकी चक्कियां तथा अन्यकलें बिजलीसे चलाई जाती हैं। यूरप और एमेरीका जैसे देशोंमें पानी गरम करती हुई, चाय पकाती हुई चौकसी करती हुई, जाड़ोंमें मकानोंको गरम रखती हुई यह बिजली मिलेगी। जिस प्रकार हमको पंखा खेंचनेवालेको मज़दूरी देनी पड़ती है, लम्पोंकेलिए तेल खर्च करना पड़ता है, उसी प्रकार इस काम करनेवाली बिजलीकी भी क़ीमत देनी पड़ती है। यह कीमत किस हिसाबसे लगायी जाती है यह बहुत कम आदिमियोंको मालूम होगा।

मन और सेर मामूली चीज़ोंके तोलनेकी इकाइयां हैं। गज़ कपड़े और और चीज़ोंकी लम्बाई नापनेकी इकाई है। इसी प्रकार विद्युत-बल नापनेकी इकाई वाट है। जहां बल अधिक ख़र्च होता है वहां इस इकाईको हज़ार गुणी बड़ी इकाई मानी जाती है और सहस्र वाट या किलोवाट कहलाती है। किलो ऐसा उपसर्ग है जो किसी चीज़की हज़ार गुणी बड़ी चीज़को सूचित करनेकेलिए लगाया जाता है। किलोग्रामसे १००० ग्रामका मतलब है, और किलोमीटर १००० मीटरकेलिए इस्तेमाल किया जाता है।

यह वाट अश्व बलका $\frac{१}{७४६}$ वां हिस्सा है अर्थात् १ वाट = $\frac{१}{७४६}$ अश्व बल और किलोवाट (१००० वाट) = $\frac{१०००}{७४६}$ अश्व बल = १·३४ अश्व बल

अश्वबल किसे कहते हैं

अश्वबल प्रत्येक इंजिन डाइनमो और मोटरके सम्बन्धमें सुननेमें आया होगा। इसकी परिभाषा यहां दी जाती है। मान लो किसी इंजनका पहिया बड़े ज़ोरसे घूम रहा है। यदि इस पहिये में ५५० पौंड का (७ मनके लगभग) बोझ बांध दिया जावे और यह ५५० पौंडका बोझ प्रति सेकंड १ फ़ुट उठता चले तो इस इंजनका बल एक अश्व बलके बराबर माना जाता है। जिस समय यह बल नापनेकी इकाई चुनी गई उस समय ऐसा समझा जाता था कि एक मोटा ताज़ा घोड़ा इतना ही काम कर सकता है अर्थात् वह ५५० पौंडको प्रति सेकंड १ फ़ुट उठा सकता है। यदि इंजनका पहिया इतने वेगसे घूमें कि यह बोझ १० फ़ुट प्रति सेकंड उठे या १० गुणा बोझ प्रति सेकंड १ फ़ुट उठे तो इस इंजनका बल १० अश्व बलके बराबर होगा। समयको सेकंडोंमें

न नापकर यदि मिनटोंमें नापें तो एक अश्वबल-वाले इंजनको ६० गुणा बोझ अर्थात् ६०×५५० = ३३,००० पौंडको एक मिनटमें १ फुट या ५५० पौंडको एक मिनटमें ६० फुट उठाना चाहिये। इसी तरह यदि समय घंटोंमें नापा जावे तो इस इंजनको ३३,००० पौंड एक घंटेमें ६० फुट या ६० ×३३,००० पौंड एक घंटेमें एक फुट उठाना चाहिए। यदि कोई इंजन ६०×३३,००० पौंड अर्थात् ८८४ टन का बोझ एक घंटेमें १०० फुट उठावे तो उसका अश्व बल १०० अश्वबलके बराबर होगा। इस बलकी इकाईमें तीन चीजें शामिल हैं— बोझ, दूरी और समय। इसीलिए उस पद्धितमें जिसमें मात्रा नापनेकी इकाई पौंड, दूरी नापनेकी इकाई फुट, और समय नापनेकी इकाई सेकंड है और जो संक्षेपमें फ- प- स-पद्धति कहलाती है बल नापनेकी इकाई फुट-पौंड-सेकंडोंमें लिखी जाती है और तीनोंके गुणन फलसे सूचितकी जाती है।

वाट और अश्वबल।

वाट दूसरी पद्धतिकी बलकी इकाई है जिसमें दूरी नापनेकी इकाई शतांश मीटर मात्रा नापनेकी इकाई ग्राम और समय नापनेकी इकाई सेकंड है। जब कोई इंजन एक किलोग्राम बोझको प्रतिसेकंड १० शतांशमीटर उठाता है तो उसका बल एक वाटके बराबर माना जाता है। एक किलोवाटवाला इंजन १००० किलोग्रामके बोझको प्रति सेकंड १० शतांशमीटर उठावेगा। इन दोनों पद्धतियोंके बलकी इकाईयोंमें जो सम्बन्ध है वह ऊपर दिया जाचुका है।

विद्युत् बलकी नापजोख।

जब यह कहा जाता है कि बिजली ।=) यूनिटके (इकाइ) हिसाबसे बिकती है तो उससे अभिप्राय यह है कि जब एक किलोवाट घंटे भर तक बराबर ख़र्च होता रहे तो ।=) देने पड़ेंगे। या दूसरी तरह यों कहिए कि जब हमारी बिजलीसे चलने वाली मोटरका पहिया १००० किलोग्रामके बोझको प्रति सेकंड १० शतांश मीटर उठाता हुआ घंटे भर तक चलता रहे अर्थात् १००० किलोग्रामके बोझको घंटे भरमें १०×६० शतांश मीटर या ६ मीटर उठावे तो हमारी मोटरके चलानेमें बिजलीने १ यूनिट या किलोवाट घंटेके बराबर काम कर लिया और हमको ।=) देने पड़ेंगे।

बिजलीके पंखे और मोटरोंके सम्बन्धमें यह बात समझमें आजाना आसान है। मोटरका पहिया चलता रहता है और पंखेके पर भी घूमते रहते हैं। पर यह कैसे मालूम होता है किसी बिजलीके लम्पमें कितना बल खर्च होता है। इसके बारेमें लोगोंके दिलमें कुछ शंका रहेगी। इसके लिए हम यह कह सकते हैं कि आजकल जो टंगस्टन धातुके तार वाले बिजलीके लम्प मिलते हैं उनमें प्रति बत्ती एक वाट ख़र्च होता है अर्थात् यदि २५ बत्तीका लम्प हो तो २५ वाट खर्च होंगे। ऐसे २५ बत्ती वाले ४० लम्प एक यूनिटमें एक घंटे तक जलाये जा सकते हैं। यह केवल साधारण हिसाब है किन्तु पक्का वैज्ञानिक हिसाब आगे बतलाया गया है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब बिजली चाए और पानी गरम करती है और कमरोंको गरम रखती है उस समय हिसाब किस प्रकार लगाया जाता है। इसका उत्तर यही है कि ताप और काममें सम्बन्ध है। तापसे काम लिया जा सकता है और काम करके गरमी उत्पन्नकी जा सकती है। और रोशनीको तो गरमीका ही एक रूप समझना चाहिए। जब कोई चीज बहुत गरम हो जाती है तो प्रकाश निकलने लगता है। तो क्या गरमी और काममें कोई सम्बन्ध ऐसा है कि जिस यह मालूम किया जासके कि इतने कामसे इतनी गरमी पैदा होगी? बिना इस सम्बन्धके तो हिसाब लगाना असम्भव ही है। इस सम्बन्धके बतलानेके पहले हम इकाइयोंका नाम बतला देना आवश्यक समझते हैं, जिससे आगे चलकर कोई

कठिनाई न पड़े। श-ग-स पद्धितमें शक्तिकी इकाई डाइन है। इसी पद्धितिमें कामकी इकाई अर्ग है। एक डाइनकी शक्तिको एक शतांश मीटर हटानेमें एक अर्गके बराबर काम करना पड़ता है। चूंकि डाइन बहुत छोटी इकाई है इसलिए अर्ग भी छोटी ही इकाई हुई। जिस दुनियामें इतने बड़े बड़े काम जैसे सेकेड़ों मन पानी नदीसे उठाकर टंकीतक पहुंचाना होते हैं वहां इतनी छोटी इकाई से काम नहीं चल सकता है। इसलिए व्यवहारिक इकाई $१०^७$ (अर्थात् १ किरोड) अर्गके बराबर मानी जाती है और इसका नाम जूल है। एक जूलके बराबर काम जब होता है कि जब एक किलो ग्रामका बोझ १० शतांश मीटर उठाया जावे। जितना काम प्रति सेकंड कोई यंत्र करता है वह उस यंत्रका बल कहलाता है। जब कोई यंत्र १ जूलके बराबर काम प्रति सेकंड करता है तो उसका बल एक वाटके बराबर माना जाता है। गरमी और कामका सम्बन्ध निकालने का प्रयोग पहले पहल जूलने किया था और वह प्रयोग आज तक उन्हींके नामसे विख्यात है। श. ग. स-पद्धतिमें कामकी इकाई उन्हींके नामसे जानी जाती है। इस कारण उनका नाम संसारमें अमर हो गया है। उहोंने यह साबित किया कि एक कलारी गरमी उत्पन्न करनेकेलिए ४·२ जूलकी आवश्यकता होती है। इस संख्याकी सहायतासे गरमीको काममें और कामको गरमीमें बदल लेना आसान है। जिस लम्पमें विद्युत बलका खर्च निकालना हो उसको पानीमें रखकर जितनी गरमी प्रति सेकंड बिजलीकी धाराके बहनेसे उत्पन्न होती है मालूम कर ली जाती है। इन कलारियोंको ४·२ से गुणा करकर जितने जूल प्रति सेकंड अर्थात् जितने वाट खर्च होते हैं मालूम कर लिये जा सकते हैं। बहुतसे पाठकोंके चित्तमें ऐसा प्रश्न उठेगा कि यह तो हमने यदि एक असम्भव बात न बतलाई तो कमसे कम आधुनिक फेशनके विरुद्ध बतलायी। लम्पको पानीमें रखकर कहीं बिजलीका खर्च निकाला जाता है। देखनेमें तो ऐसा आया है कि बिजली घरके स्विच बोर्ड पर (Switch board) दो घडियां लगी होती हैं जिनके देखनेसे तुरन्त जितनी बिजली खर्च होती है बतला दी जाती है। घरोंमें भी घड़ियां लगी होती हैं जो वाट-मापक कहलाती हैं जिनसे जितने वाट किसी मास या सप्ताहमें खर्च होते हैं तुरन्त मालूम हो जाते हैं। इन घडियोंकी बनावटका तो हाल किसी दूसरे लेख या परिषद् द्वारा प्रकाशित ग्रंथमें मिलेगा परन्तु इन घडियोंसे वाटोंका खर्च किस प्रकार मालूम होता है इस प्रश्नका उत्तर इस लेखमें दे देते हैं।

(धारा-मापक)

इन घडियोंमेंसे एक एम्प-मापक कहलाती है क्योंकि धारानापनेकी इकाई एम्प या एम्पियर है, और दूसरीको वोल्टमापक कहते हैं। यदि एक चीनी या शीशेके बर्तनमें तूतियेका घोल लेकर दो तांबेके पत्तर रखें और दोनोंको बाटरीकेदोनों सिरोंसे जोड़नेपर धाराके प्रवाहसे हम देखेंगे कि जो पत्र बाटरीके धनात्मक सिरेसे जुड़ाहुआ है हलका होता जाता है और दूसरा जो ऋणात्मक सिरेसे जुड़ा हुआ है भारी होता जाता है अर्थात् धनात्मक पत्तरसे (बाटरीके धनात्मक सिरे हुए जुड़े हुए पत्तर) तांबा निकलकर दूसरे पत्तरपर चढ़ता है यही मुलम्मा करनेकी रीति है।

यदि ऋणात्मक पत्तर किसी दूसरे धातुका लिया जावे तो तांबा उसपर चढ़ जायगा। इस यंत्रको तांबेका वाल्ट-मापक कहते हैं। यदि तांबेके लवणके घोलके बदले चांदी और सोनेके किसी लवणका घोल लेकर उसमें धनात्मक पत्तर चांदी या सोनेका रखें और दूसरा उस चीज़का जिसपर चांदी या सोना चढ़ाना हो तो इस यंत्रको चांदी या सोनेका वाल्ट-मापक कहेंगे। यदि चांदीका वाल्ट-मापक लें (चांदीके वाल्ट मापकमें रजत नत्रित का Silver nitrate घोल होता है) और ऋणात्मक पत्तरपर प्रति सेकंड ·०१११८ ग्राम

चांदी चढ़े ते। उस वाल्टमापकमें बहने वाली धारा एक एम्पियरकी धारा मानी जाती है। धारा नापनेकी इकाई एम्पियर है। इसीलिए जो घड़ियां धारा नापती हैं वह एम्पियर या केवल एम्पमापक कहलाती हैं। यह तो एक घड़ीका हाल हुआ अब दूसरी घड़ीका हाल सुनिए। डाइनमो (या बाट्री) के दोनों सिरोंसे एक लम्बा तार जोड़कर और उसको पानी अथवा कलारी मापकमें रखकर जितनी गरमी उस तारमें प्रति एम्पियरकी धाराके बहनेसे उत्पन्न होती है मालूम करली जाती है। इस गरमीसे जितना काम डाइनमोको उस तारमें प्रति एम्पियरकी धारा बहानेकेलिए करना पड़ता है मालूम कर लिया जाता है। जितना काम किसी डाइनमो (या बाट्री) को एक एम्पियरकी धारा किसी चक्करमें बहानेके लिए करना पड़ता है वह उसके सिरोंका अवस्था भेद कहलाता है और इसके नापनेकी इकाईका नाम वोल्ट है। जो यंत्र इस अवस्था भेदको नापता है वोल्टमापक कहलाता है। वह अवस्था भेद(अर्थात एक एम्पियरकी धारा बहानेमें जितना काम करना पड़ता है) अथवा वोल्टोंकी संख्या प्रत्येक यंत्रकेलिए एक होती है इसीलिए बिजली-घरमें वोल्टमापककी सुई हटती हुई बहुत कम मिलेगी और एम्पमापककी सुई हर एक लम्प और पंखेके घटने बढ़नेसे आगे पीछे अवश्य हुआ करती है। अब दोनों घड़ियोंका प्रयोग मालूम हो गया।

वोल्टमापकसे प्रति एम्पियरकी धाराके बहानेमें जितना काम करना पड़ता है मालूम हो जाता है और एम्प मापकसे जितनी धारा जाती है मालूम हो जाती है। इसलिए दोनों संख्याओं को गुणा करनेसे जितने वाट खर्च होते हैं तुरन्त मालूम हो जाते हैं। जो यंत्र घरोंमें लगे रहते हैं वह एक दम वाट बतला देते हैं। जैसे पानी वाले मीटरोंसे जितना पानी खर्च होता है मालूम हो जाता है उसी प्रकार जितने वाट खर्च होते हैं इन वाट मापकोंसे मालूम हो जाते हैं। बिजली बेचनेवाले इनको हर महीने आकर देख लेते हैं और दाम वसूल कर ले जाते हैं।

समालोचना

(१)

[ले० प्रोफेसर ताराचन्द, एम-ए.]
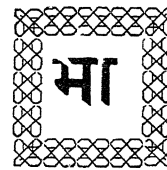
भारतीय शासनपद्धति ' २ भाग ' पण्डित अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी कृत।

राजनीति रत्नमालाके यह दो पहिले रत्न हैं। इनमें भारतवर्षकी शासन पद्धतिका विस्तार पूर्वक वर्णन है। पहिले भाग-में भारतवर्षमें ब्रिटिश साम्राज्यकी स्थापनाका इतिहास है। भारतीय शासनकी सर्वोच्च अधिकारी संस्था अर्थात् भारत-सचिव तथा उनकी कौन्सिलका इतिहास तथा वर्तमान स्थितिका वृतांत है। और भारत सचिवके अधीन भारतवर्ष-के शासनके विविध अंगों अर्थात् भारतीय सरकार तथा प्रादेशिक एवं जिलेकी सरकारोंका वर्णन है। इस भागमें न्याय तथा पुलिस विभागों-का भी हाल लिखा गया है। दूसरे भागमें सेना-विभाग, नागरिक सभाओं (म्यूनिसिपैल्टियों) भारतीय तथा प्रांतिक व्यवस्थापक सभाओं और सम्राटकी निज मण्डलीपर (प्रिवी कौन्सिल) विचार किया गया है। पुस्तक बड़ी खोजसे लिखी गई है और इसके प्रत्येक पन्नेसे लेखकके परिश्रमका पता लगता है। बाजपेयीजीने हिन्दी भाषा भाषियोंका इस पुस्तक द्वारा बड़ा उपकार किया है और इन्होंने हिन्दी भाषाके कलेवरको एक महत्वशाली विषयपर सुयोग्य पुस्तक लिख-कर बढ़ाया है। इसकेलिए वह धन्यवादके अधिकारी हैं।

पुस्तकका विषय जैसा कि ऊपरकी सूची पढ़ने-से ज्ञात हो गया होगा वर्तमान भारतकी अवस्था

समझनेकेलिए बड़ा आवश्यक है। इसकी व्याख्या-में लेखकने राजनीति शास्त्रके अन्तर्गत राज्यसंगठन अंगकी, भारतीयशासन पद्धितिके वर्णनसे, पूर्तिकी है। व्याख्या एक प्रकारसे वैज्ञानिक रूपसे की गई है अर्थात् इसमें राजकीय घटनाओं (political facts) का वर्णन है किन्तु उनपर व्यवहारिक रीतिसे समालोचना नहीं की गई है।

किसी देशके राज्य संगठनको (constitution) जाननेकेलिए इस बातकी आवश्यकता होती है कि राज के (state) समस्त अंगों तथा साधनोंपर (functions) दृष्टि डाली जाय। राज्यके अंगोंमें सबसे उत्तम स्थान स्वामीका (sovereign) है। भारतवर्षका स्वाम्य (sovereignty) ब्रिटिश सरकारके (government of Briton) हाथोंमें है। स्वामीकी आज्ञाओंका प्रकाशन ब्रिटिश पार्लीयामेंटद्वारा होता है। इस कारण पार्लीयामेंट ही अंतमें भारतीय व्यवस्थापनकी (legislation) अधिकारी है। स्वामीकी आज्ञाओंपर कार्य करनेकेलिए और भारतीयशासन चलानेकेलिए भारतसचिवकी (Secretary of state for India) नियुक्ति हुई है। भारत वर्षका सर्वोच्च शासनाधिकारी (executive) भारतसचिव ही है जो इंगलैंडमें ही रहता है। वह ही राज्यकी नीतियोंको (policies) स्थिर करता है, उसके ही द्वारा भारतवर्ष संसारके अन्य राष्ट्रोंसे संधि विग्रहके सम्बन्ध करता है, वही अपनी कौन्सिलकी सहायतासे भारतीय राजस्वका प्रबन्ध करता है, उसकी सलाहसे भारतका गवर्नर जनरल, भारतका सेनापति (commander-in-chief) – हाईकोर्टों के जज, कार्यकारिणी समितियों (executive councils) के सदस्य तथा अन्य अफ़सर नियुक्त किए जाते हैं। भारत सचिव "भारतके सर्व प्रधान शासक और वस्तुतः भाग्य विधाता हैं।"

भारतसचिवके अधीन भारतवर्षमें भारत सरकारका संगठन है। इस सरकारके सबसे महत्वपूर्ण अंग भारतवर्षके बड़े लाट हैं। वह अपनी कौन्सिल समेत समस्त भारतके शासनके अधिष्ठाता हैं, और अपने कार्योंकेलिए केवल भारतसचिवको उत्तरदाता हैं। वह भारतशासनसे सम्बन्ध रखनेवाले मुल्की और जंगी मामलों तथा भारतीय राजस्वका निरीक्षण, नियंत्रण और निर्देश अपनी इच्छानुसार करते हैं और समस्त शासनकी भलाई बुराईकी नेकनामी बदनामी उन्हींके माथे है। किन्तु वास्तवमें बड़े लाट भारत सचिवके प्रतिनिधिके समान हैं। वह भारत सचिवको भारतकी आर्थिक, राजनैतिक मानसिक इत्यादि अवस्थाओंपर सूचना देते रहते हैं और इन अवस्थाओंके अनुसार नीति स्थित करनेको राय देते हैं। बिना भारत सचिवकी आज्ञाके वह किसी महत्त्वके कार्यको सम्पादित नहीं कर सकते। उनको केवल यह अधिकार है कि यदि कोई ऐसी बात हो कि जिसमें विलम्ब होनेसे बड़ी हानिका भय हो तो वह अपने उत्तरदायित्वपर (responsibility) उसके सम्बन्धमें कार्यवाही करें। भारतका साधारण शासन वह अपनी रायसे करते हैं किन्तु वह अपनी ओरसे बिना भारत सचिवकी मर्ज़ीके किसी नवीन रीतिका प्रयोग नहीं कर सकते। टैक्स लगानेके लिए, किसी बड़े व्ययके लिए, राज्य संगठनमें तब्दीलियां करनेकेलिए, अन्य राष्ट्रोंसे सम्बन्ध रखनेकेलिए अर्थात् अन्य महत्वशाली कार्योंकेलिए वह भारतसचिवकी राय लेनेपर बाध्य हैं।

बड़े लाट अपनी कौन्सिल समेत न केवल शासनके अधिकारी हैं वरन् वह व्यवस्थापनका भी कार्य करते हैं। इसकेलिये उनकी कार्यकारिणी समिति अन्य सदस्योंके सम्मेलनद्वारा भारतीय व्यवस्थापक सभा (Imperial legislative council) बन जाती है। इस सभामें भारतवासियोंके प्रतिनिधि भी उपस्थित होते हैं। इनका निर्वाचन प्रांतिक व्यवस्थापक सभाओंद्वारा होता है। इनकी संख्या सभामें इतनी

क्रम है कि वह सरकारी सदस्योंको किसी मामलेपर हरा नहीं सकते, न सरकारको किसी व्यवस्थापर वाध्य कर सकते हैं। वास्तवमें व्यवस्थापक सभाएं केवल सलाह लेनेकेलिए हैं क्योंकि व्यवस्था पन (legislation) भारतसचिव तथा पार्लियामेंटके हाथमें है, और जब तक ऐसा है तब तक सरकार इस बातपर मजबूर है कि भारतवासियोंके निर्वाचित प्रतिनिधियोंको हराती रहे। भारतीय प्रतिनिधि यदि कौन्सिलमें मताधिक्य (majority) रखें और उनके मतानुसार व्यवस्थापन होनेपर सरकार बाध्य हो तो भारतीयशासन भारतसचिवके ज़िम्मे न रहकर भारत वासियोंके अधीन हो जाए। भारतीय व्यवस्थापक सभाके सदस्य शासन कर्त्ताओंसे शासनके सम्बन्धमें कुछ विषयोंको छोड़कर प्रायः सबपर प्रश्न कर सकते हैं। किन्तु जैसा संसारके और सभ्य देशोंमें है कि शासक (executive) व्यवस्थापक सभाके (legislature) अधीन होते हैं वैसा भारतवर्षमें नहीं है। व्यवस्थापक सभा शासन कर्मचारियोंको अपने स्थानसे हटा नहीं सकती और न ही उनके विरुद्ध अविश्वासका मत (vote of censure) उपस्थित कर सकती है। भारतीय व्यवस्थापक सभाका भारतीय राजस्वपर (finance) भी कुछ अधिकार नहीं है। वार्षिक बजटपर भारतीय सदस्य समालोचना कर सकते हैं किन्तु वह सरकारको किसी विशेष नीतिपर वाध्य नहीं कर सकते। सेना विभागपर राष्ट्र तथा देशी रियासत संम्बधी प्रश्न नहीं पूछे जा सकते। अन्य विषयोंपर भी किसी प्रश्न अथवा प्रस्तावके उपस्थित करनेके लिए पहिले सरकारकी अनुमति प्राप्त करनी आवश्यक है। व्यवस्थापक सभामें जो व्यवस्था स्वीकृत हो जाती है वह तबतक देशमें प्रयोगमें नहीं आ सकती जब तक कि उसके लिये भारतसचिवकी (जो सम्राटकी ओरसे भारतीयशासनका अधिकारी है) स्वीकृति न मिल जाए। भारतीय और प्रादेशिक व्यवस्थापक सभाओंमें जो कानूनके मसौदे उपस्थित किये जाते हैं उनकी प्रतियां पहिले भारतसचिवको भेज दी जाती हैं और यदि वह आपत्ति नहीं करते तो कौंसिलमें स्थित किये जाते हैं।

इन बातोंसे यह स्पष्ट है कि भारतवर्षकी व्यवस्थापक सभाएं जो एक प्रकार बड़ी सारगर्भित संस्थाएं हैं इस समय नितांत निर्बल हैं। उनको कोई वास्तविक राजकीय शक्ति प्राप्त नहीं है और उनके प्रवर्त्तनका केवल मात्र उद्देश्य यह है कि भारतवासी यह न समझें कि शासन कार्यमें उन्हें अपना मत प्रकाश करनेका अवसर नहीं दिया जाता। साथ ही सरकारको इनसे एक बहुमूल्य लाभ यह है कि उसे देशके नेताओंकी आकांक्षाओंका ज्ञान होता रहता है और उनको एक प्रकारके निःकुंश राजनैतिक आन्दोलनमें व्यस्त रखनेका अवसर मिलता है। सच तो यह है कि व्यवस्थापक सभाएं वास्तवमें अधिकार रहित खिलौने हैं जिनके साथ खेलकर भारतीय राजनैतिक शिशु अपना समय व्यतीत करते हैं।

भारतीय शासनपद्धितिकी एक विचित्रता तो व्यवस्थापक सभाएं हैं जो केवल मंत्रणके (advice) वास्ते स्थापित की गई हैं। दूसरी विचित्रता विभागोंद्वारा भारतशासन कार्यका सम्पादन होना है। संसारमें आजकल राजका काम इतना बढ़ गया है कि बिना विभागोंके वह पूरा नहीं हो सकता किन्तु अन्य देशोंमें विभागोंके अधिष्ठाता स्थायी कर्मचारियोंमें से (permanent services) नियत नहीं किए जाते हैं। इङ्गलैंडका उदाहरण लीजिए तो ज्ञात होगा कि वहांका मंत्रि-मंडल (ministerial body) पूर्ण रूपसे निर्वाचित होता है और उसमें केवल पक्षोंके अगुआ (party leaders) ही रहते हैं। इङ्गलैंडके कर्मचारीगणमेंसे एक भी मंत्री नहीं चुना जाता। इससे बढ़कर यह कि वहां कर्मचारियोंको राजनैतिक आन्दोलनोंमें भाग लेना भी कानूनसे मना है। इस कारण यद्यपि इङ्गलैंडका शासन मंत्रियों द्वारा होता है जिनके

अधीन अलग अलग विभाग हैं किन्तु उसमें विभाग-के स्थायी कर्मचारियोंका हाथ न होनेके कारण विभागतंत्रताका (bureaucracy) दोष उत्पन्न नहीं होता, अर्थात् इङ्गलैंडकी शासन पद्धति इस प्रकारकी है कि प्रथम तो विभागोंके कर्मचारियोंका उसमें अधिकार नहीं है और दूसरे विभागोंके अधिष्ठाता इङ्गलैंडकी व्यवस्थापक सभाके (Parliament) अधीन हैं। परिणाम यह है कि जनपदपर शासक मंडली (executive body) किसी प्रकारका अत्याचार नहीं कर सकती है। भारतवर्षकी शासन पद्धिति इसके विरुद्ध है। यहांपर सर्वोच्च शासन अधिकारी अर्थात् भारतसचिव राज्यकी समस्त शक्तियोंका केन्द्र है और अपनी आज्ञाओं द्वारा सब कुछ करनेको समर्थ है। इस विचारसे भारतीयशासन पद्धितिको एकाधिपत्य (autocracy) कहा जा सकता है। किन्तु भारतीय सरकार विविध विभागोंमें विभाजित है। भारतीय कार्यकारिणी सभा (executive council) के सदस्य पृथक् पृथक् विभागोंके मालिक हैं और उनकी आज्ञा अपने अपने विभागमें प्रायः आन्तमिक है। समस्त शासन इस प्रकारके ८ विभागोंमें बटा हुआ है। बड़े लाट स्वयं परराष्ट्र (foreign) तथा राजनैतिक (political) विभागोंका काम करते हैं, सेनापति सेना विभागके अनन्य उत्तरदाता हैं, एक सदस्य राजस्वका प्रबंध करते हैं, एक शिक्षाका और इसी प्रकार शेष सदस्य अन्य राजकार्योंका सम्पादन करते हैं। विभागोंके अधिष्ठाता कौन्सिलके सदस्य बहुधा स्थायी सिविल सर्विससे नियुक्त किए जाते हैं। इस विभाग तांत्रिक पद्धिति द्वारा स्थायी सिविल सर्विस ही एक प्रकार देशकी स्वामी हो जाती है। प्रायः समस्त शासनशक्ति स्थायी कर्मचारियोंके अधीन हो जाती है और इसका परिणाम यह होता है कि शासन पद्धितिमें वह तब्दीलियां जिनके सिविल सर्विस विरुद्ध हो नहीं होने पातीं। विभागतंत्र स्वभावतः अपना अधिकार जमाय रखना चाहता है और अन्य किसीको इस अधिकारमें भागलेनेकेलिए प्रयत्न करता देख उद्विग्न होता है। विभाग तंत्रकी एक विशेषता यह भी देखी गई है कि यद्यपि वह शासनकार्य सम्पादनमें योग्यता दिखाता है किन्तु उसका दृढ़ विश्वास यह होता है कि उसके सिवा कोई और इस कामको भली भांति नहीं कर सकता। दूसरे यह कि उसमें सहानुभूति लेषमात्र नहीं रहती और वह दूसरोंको स्वत्व देनेमें बहुधा बाधाएं डाला करता है। भारतवर्षकी शासनपद्धिति भी आजकल इसी प्रकारके रोगोंसे ग्रस्त है।

पण्डित अम्बिकाप्रसाद बाजपेयीकी पुस्तकके पढ़नेसे भारतकी शासन पद्धितिका पूर्ण वर्णन मिल सकता है और विचारवान पुरुष स्वयं इससे भारतवर्षकी राजनैतिक अवस्थाका ज्ञान लाभ कर सकता है। पुस्तक वर्त्तमान कालकेलिए बड़ी लाभदायक है और इसकी उपकारिता और भी अधिक हो जाती यदि इसमेंसे दो एक प्रकारकी त्रुटिएं दूर हो जातीं। एक तो यह कि पुस्तकमेंसे जितनी व्यर्थकी भर्त्ती है, जिसमें किसीको रुचि नहीं हो सकती, निकाल देनी चाहिए। उदाहरणकेलिए भारतसचिवके विकासकी कहानी है। दूसरे पुस्तकमें जो अंगरेज़ीके शब्दोंकी भर मार है वह कम होनी चाहिए। जहां तक हो सके हिन्दीके शब्द प्रयोग करने चाहिएं और यदि यह असम्भव हो तो हिन्दीमें अंगरेज़ी शब्दोंके अर्थ समझा देने चाहिएं। हमने छापेकी भी बहुतसी त्रुटियां पुस्तकमें पाई हैं वह दूर होनी चाहिएं, शीर्षकोंका (marginal reading) ठीक ठीक प्रयोग होना चाहिए और पुस्तकका क्रम कुछ और अच्छे ढंगपर रखना चाहिए। पुस्तकमें ऐतिहासिक टिप्पणियां अच्छी हैं और व्यवस्थापक सभाओंपर सविस्तार लिखा है किन्तु भारतीय शासन पद्धितिपर आनुषंगिक (comparative) विचारकी कमी है। हमारी सम्मतिमें पुस्तक न

केवल हिन्दी पढ़े हुए पुरुषोंके लाभकेलिए पर्याप्त है वरन् अंगरेज़ी कालिजोंमें पढ़ने वाले एफ़-ए., बी-ए. के छात्र भी इसके अध्ययनसे लाभ उठा सकते हैं।

* * * *

(२)

बच्चा

अनुवादक प्रोफेसर करमनारायण, एम. ए. म्योर कालेज, प्रयाग। उन्हींसे प्राप्य। पृष्ठ संख्या १८०, मूल्य १)।

कप्तान एम. ए. कुरैशीके लिखे हुए अंग्रेज़ी ग्रन्थ (Child) का यह हिन्दी अनुवाद है। विज्ञान परिषद्, लाहौरने इसको प्रकाशित किया है। उक्त सभा अधिकांश अपना कार्य्य उर्दूमें ही करती है। उसका मुखपत्र 'रौशनी' भी उर्दूमें ही निकलता है। अतएव हिन्दीमें किसी पुस्तकका उक्त सभा द्वारा प्रकाशित किया जाना हर्षका विषय है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि पुस्तक घरमोपयोगी है और प्रत्येक गृहस्थको अपनी सन्तानके कल्याणकेलिए इसका पठन ही नहीं, अध्ययन करना चाहिये। हिंदी भाषामें इस विषयपर बहुत कम पुस्तकें हैं। हमें जहां तक ज्ञात है, केवल एक पुस्तक इस विषयपर देवसमाज लाहौरने 'स्त्री-बंधु' के नामसे प्रकाशित की थी।

पुस्तकके छपने में कुछ अशुद्धियां रह गई हैं, पर इनसे किसी प्रकार पढ़नेमें असुविधा नहीं होती। इस पुस्तकमें विषयानुक्रमणिकाका अभाव है, यद्यपि अकारादि अनुक्रमणिका दी हुई है। भाषा साधारण पर सरल और सुबोध है। हम आशा करते हैं कि हिंदी संसार इस पुस्तकका समुचित आदर करेगा और प्रोफ़ेसर साहबका उत्साह बढ़ावेगा।

* * * *

(३)

हिन्दी समाचार

साप्ताहिक समाचार पत्र। वार्षिक मूल्य ४)। प्रति मंगलवारको दिल्लीसे प्रकाशित होता है।

दो माससे इस पत्रकी अधिकाधिक उन्नति हो रही है। इसमें बड़े उत्तम और उपयोगी लेख रहा करते हैं। देशकी मनोरञ्जक तथा अन्य जातीय खबरें भी बड़ी योग्यतासे संग्रह करके दी जाती हैं। यह देखकर हमें बड़ा हर्ष है कि जो सहयोगी मृत प्राय हो चुका था वही अब इतनी उन्नति कर रहा है। पत्रके संचालक और संपादक जितना कर सकते थे उन्होंने वह कर दिखाया और पत्रको इतनी अच्छी अवस्थामें पहुंचाया। अब भारतीय जनताका साधारणतया और दिल्ली निवासियोंका विशेषतः यह कर्तव्य है कि इसकी ग्राहक संख्या बढ़ाकर इस पत्रको चिरस्थायी करें। हिन्दी समाचारके विशेषांककी हमने समालोचना नहीं की थी, इसकेलिए हम सम्पादक जीसे क्षमा प्रार्थी हैं कि उनकी आज्ञाका पालन नहीं किया। कारण केवल यही था कि हम देखना चाहते थे कि विशेषांककेसे और भी अंक निकलेंगे या नहीं। हम सहर्ष यह कह सकते हैं कि उसके बाद जितने अंक निकले हैं, सभी बहुत अच्छे हैं। उदाहरणके लिए हम प्र० भा० ५ के अंककी विषय सूची यहां देते हैं:---

१-शासन सुधार २ विविध समाचार ३ भारतीयोंकी कान्फ्रेंस इत्यादि ४ सम्मेलनकी तैय्यारी (गल्प) ५. युद्धके तार ६. बम्बई व्यवस्थापक सभा ७ भारतीय गौकान्फ्रेंस इत्यादि।

इसमें स्वास्थ्यरक्षा तथा अन्य वैज्ञानिक विषयोंपर भी लेख रहा करते हैं।

[आगे २३६ पृष्ठपर देखिये]

अधिक भोजन करनेके दोष

[ले० अध्यापक महावीरप्रसाद, बी. एस सी, एल-टी.]

यह स्वतःसिद्ध है कि जगतके सारे जीवधारी चाहे वे पिंडज हों अथवा अंडज, स्वेदज हों वा उद्भिज, अपने शरीरकी रक्षा तथा उसके पालन पोषणकेलिए किसी न किसी प्रकारका भोजन करते हैं। भोजनके द्वारा ही वे जन्मते, बढ़ते तथा मरनेपर सन्तान छोड़ जाते हैं। 'अन्नाद्भवन्ति भूतानि'। इसलिए भोजनके सम्बन्धमें पूरी जानकारी कर लेना प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्धका कर्तव्य है। विज्ञानके पिछले कई अंकोंमें श्रीयुत् डाक्टर एस. पी. रायकी लेखनीसे "भोजन विचार" शीर्षक एक लेख-माला निकली थी, जिसमें उन्होंने बड़ी योग्यतापूर्वक भोजनके विषयमें विवेचना की थी। इस छोटेसे लेखमें केवल यह दिखलाया जायगा कि अधिक भोजन करनेसे आर्थिक, शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक हानियां कैसे हो जाती हैं।

आर्थिक हानियां—जितने भोजनसे मन तथा शरीर स्वस्थ रहकर जीवनयात्रामें सहायता पहुंचा सकते हैं, उससे अधिक भोजन करनेसे सबसे बड़ी हानि यह होती है कि बिचारे दीन दुखियों और बालकोंके भोजनमें कमी पड़ जाती है, क्योंकि अर्थशास्त्रके एक प्रधान सिद्धान्तके अनुसार अधिक भोजन करनेवालोंके द्वारा जितने भोज्य पदार्थोंकी अनावश्यक खपत होती है वे उन लोगोंको जिन्हें वे परमावश्यक है नहीं मिलते अथवा महंगे मिलते हैं। इसके अतिरिक्त अमिताहारी शीघ्र ही रोगी बनकर प्रत्यक्ष तो दवा दारू तथा डाक्टरके शुल्कके रूपमें रुपये खर्च करके हानि उठाते हैं परन्तु परोक्षमें वे उस प्राप्तिसे भी वंचित रहते हैं जिसे वे स्वस्थ रहकर कर सकते थे।

Hygeine स्वास्थ्य रक्षा]

शारीरिक मानसिक तथा आत्मिक हानियां—यह सिद्धान्त सबको समझ रखना चाहिए कि जैसे वाह्य जगतमें मात्रा तथा शक्तिका योग सदैव एकसा रहता है (Conservation of matter and energy) वैसेही शरीरके भीतर भी। जितना अनावश्यक भोजन शरीरके भीतर जाता है वह यातो शरीरके भीतर ही रहकर अनिष्ट करता है या शरीरके बाहर विशेष क्रिया द्वारा निकाला जाता है। यदि शरीरके भीतर रहा तो अनावश्यक चर्बीमें बदलकर त्वचाके नीचे अथवा हृत्पिण्डके चारों ओर मांस-सूत्रोंके (muscular fibres) बीचमें अड़कर उनके काममें बाधा पहुंचाता है। यदि ऐसा न हुआ तो किसी न किसी तरह बाहर निकलता है जिसमें यकृत (liver), वृक्क (kidneys) तथा अन्य रासायनिक संहार कर्त्ताओंका ही काम विशेष रीतिसे नहीं बढ़ जाता वरन् (katabolism) के कारण जो विषैले पदार्थ (toxic) उत्पन्न हो जाते हैं उनके शरीरमें निरन्तर रहनेसे रक्तमें मंदविष संचार करने लग जाते हैं। इन विषोंके निरन्तर उपस्थित रहनेसे पहली बात यह होती है कि (arteries) धमनियोंमें तना रहनेका स्वभाव पड़ जाता है। क्योंकि इन विषोंको वृक्कके द्वारा शरीरसे बाहर निकालनेकेलिए धमनियोंको अस्वाभाविक रीतिसे सिकुड़कर काम करना पड़ता है जिसके कारण इनमें रक्तका दबाव बहुत बढ़ जाता है। इस बढ़े हुए दबावका सामना करके सारे शरीरमें रक्त पहुंचानेके काममें हृत्पिंडको बहुत बल लगाना पड़ता है। दबावसे धमनीकी दीवारें भी मोटी पड़ जाती हैं क्योंकि बिना मोटी हुए ये अस्वाभाविक तनावको सह नहीं सकतीं। मोटी होनेके कारण यह दीवालें पहलेसे अधिक रक्त अपने ही पालन पोषणकेलिए ले लेती हैं जैसाकि बिगड़े हुए हृत्पिंडकी (hypertrophied heart) दीवालें करती हैं। यदि हृत्पिंडकी पेशी तथा धमनीकी दीवालको भोजन पहुंचानेवाले छोटे छोटे आशय (vessels) भी

आवश्यकतानुसार उसी अनुपातसे न बढ़ें जैसा होना बहुत सम्भव है तो अस्वाभाविक रीतिसे बढ़े हुए अंग बहुत जल्द बिगड़ जाते हैं। इनके बिगड़नेका बुरा प्रभाव वृक्की रक्तनालियोंपर पड़ता है जिनसे (function of excretion) शरीरके शुद्ध करनेवाले कामोंमें गड़बड़ी पड़ जाती है। इस प्रकार एक ऐसा घेरा बन जाता है जिसको तोड़नेकेलिए मस्तिष्ककी किसी बिगड़ी हुई धमनीको फटना पड़ता है और किसी ऐसे स्नायविक तन्तुका नाश हो जाता है जिसपर अंगप्रत्यङ्गकी ही चाल नहीं वरन् हृत्पिंड और श्वास लेनेके अंगोंकी (respiratory organs) चाल भी निर्भर है। संक्षेपमें, अधिक भोजनके कारण अमिताहारी बली होनेके बदले दिन दिन क्षीण होता जाता है और समयके पहले ही बूढ़ा होकर अपने दांतोंसे ही भोजन पीसपीसकर ऐसी अग्नि उत्पन्न कर देता है जो उसके शरीरको बहुत जल्द भस्म कर डालती है।

उचित भोजनका परिमाण—अब प्रश्न यह होता है कि कैसे जाना जाय कि भोजनकी अमुक मात्रा उचित है। इसके उत्तरमें चरक संहितासे नीचेका अंश उद्धृत कर देना बस होगा—

मात्राशी स्यात्। आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी। यावद्ध्यस्याशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं यथाकालं जरां गच्छति तावदस्य मात्राप्रमाणं वेदितव्यम् भवति।...... सैषा भवत्यग्निबलापेक्षिणी मात्र न च नापेक्षते द्रव्यम्। द्रव्यापेक्षया च त्रिभाग सौहित्यमर्धसौहित्यं वा गुरूणामुपदिश्यते लघूनामपि च नाति सौहित्यमग्नेर्युक्त्यर्थम्। (चरक संहिता, सूत्रस्थान अध्याय ५।)

अर्थ—उचित मात्रामें भोजन करो। भोजनकी मात्रा मनुष्यकी पाचनशक्तिपर निर्भर है अर्थात् जिस मनुष्यकी पाचनशक्ति अच्छी है उसके भोजनकी मात्रा उस मनुष्यके भोजनकी मात्रासे अधिक होगी जिसकी पाचनशक्ति निर्बल है। जितना भोजन बिना किसी क्लेशके यथा समयमें पच जाय वही भोजनकी उचित मात्रा है। पाचन शक्तिके सिवा भोजनकी मात्रा भोज्यपदार्थकी गुरुता लघुता अथवा भारीपन और हलकेपनपर भी निर्भर है। गरिष्ट द्रव्यका खाना उस समय बंद कर दो जब भोजन करते करते तीन-चौथाई तृप्ति हो जाय और अत्यन्त गरिष्ट द्रव्यका खाना आधी तृप्ति होते ही रोक देना चाहिए। लघु (हलका) भोजन उस समयतक खाता जाय जब तक पूरी तृप्ति न हो जाय। परन्तु तृप्ति हो जानेपर भी लघु भोजनका खाते ही जाना दुखदायी होता है।

उचित मात्रामें भोजन करनेका फल—जो जो दुःखद परिणाम अधिक भोजन करनेसे भोगने पड़ते हैं उनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। चरकके अनुसार उचित मात्रामें भोजन करनेका फल यह है—

मात्रावद्ध्यशनम शितमनुपहत्य प्रकृतिं बल वर्ण सुखायुषा योजयत्युपयोक्तारमवश्य मिति।

अर्थ—मात्रायुक्त भोजन प्रकृतिके कामोंमें कोई वाधा नहीं पहुंचाता इसलिए इससे बल, वर्ण, सुख और आयुकी वृद्धि होती है।

मेच्नीकाफ़

(ले० अध्यापक विश्वेश्वरप्रसाद, बी. ए.)

अमर होनेकी इच्छा बड़ी प्रबल है। संसारमें अब तक असंख्य विद्वानोंने इसकेलिए सिर मारा है। विज्ञानकी सहायतासे वही काम अब बहुत कुछ ठिकानेसे होने लगा है। अन्तर इतना है कि अमर होनेकी इच्छाकी अपेक्षा बुढ़ापेको शीघ्र न आने देनेकी इच्छा अधिक युक्तियुक्त समझी जाती है।

इसी सम्बन्धमें प्रसिद्ध रूसी कृमिविज्ञानवेत्ता मेच्नीकाफ़ने बड़े परिश्रमके अनन्तर खट्टे दूधका

प्रयोग सफल माना है। गतवर्ष जुलाईमें इनकी मृत्यु पैरिसमें हुई, जहां वे पास्टर इन्स्यूटके उपनिरीक्षक थे।

रुधिरमें दो प्रकारके कण या रक्ताणु होते हैं। एक लाल दूसरे सफ़ेद। लाल अधिक होते हैं, सफेद उनसे थोड़े। मेच्नीकाफ़ महाशयने सोच निकाला है कि सफेद रक्ताणुओंका क्या काम है।

पाठक महाशयोंको कदाचित् यह तो मालूम ही होगा कि सबसे छोटे जीवको एमीबा कहते हैं। एमीबा को देखनेसे उसके पैर, उसका मुंह, उसके कान इत्यादि कुछ नहीं मालूम होते। जिस प्रकार एक पारेके अंशको काग़ज़पर रखकर काग़ज़के हिलानेसे, आप इधर उधर लुढ़कता देखते हैं उसी प्रकार अमीवा भी चलता दिखाई देता है। जहां कहीं इसके खानेके योग्य कोई पदार्थ मिल जाता है तुरन्त इस काग़ज़पर पारेके टुकड़ेके सदृश शरीरमेंसे एक कोनेकी ओरसे उसीका अंश आगे बढ़कर पदार्थको अपने भीतर खींच ले जाता है।

बहुत कुछ ऐसी ही गति सफेद रक्ताणुओंकी भी होती है। वे बड़े खाऊ होते हैं और प्रत्येक प्रकारके ठोस पदार्थको खा जाते हैं। मेच्नीकाफ़ महाशयने यह देखा है कि कुछ श्वेतरक्ताणु तो छोटे होते हैं जो अधिकांश कुछ न कुछ कार्य किया ही करते हैं और कुछ उनसे बड़े होते हैं जो स्थूल कायोंकी तरह कम काम करते हैं और अधिकांश चुपचाप रहते हैं। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि छोटे रक्ताणु तो हमारे शरीरमें बाहरसे आए हुए हानिकारक कीड़ोंसे लड़ते हैं और उनका नाश करते हैं। और बड़े कीड़े चोट, सड़ना, गलना इत्यादि विकारोंको अच्छा करते हैं। इन दोनों प्रकारके कीड़ोंमें कुछ ऐसी शक्ति है जिससे वे, मालूम नहीं, सूंघके या स्वाद लेके, यह जान जाते हैं कि उनके इधर उधर क्या है। इसका परिणाम यह होता है कि शरीरमें बाहरसे हानिकारक कीड़ोंके पहुंचतेही इनकी उनकी लड़ाई आरम्भ हो जाती है। यदि हमारे मित्र जीत गए तो केवल रण भूमिमें कुछ सूजन हो आती है। परन्तु यदि बाहरी कीड़े जीत गये तो कोई न कोई रोग अवश्य ही उत्पन्न हो जाता है। यह काम तो छोटे रक्ताणुओंका होता है। इनके बड़े साथी क्या करते हैं सो सुनिए। कभी कभी लड़ाईमें हाथ पैर भी टूट जाते हैं और अधिक हानि नहीं होती। बड़े रक्ताणु ऐसी हड्डी या मासके टुकड़ोंको हटानेमें काम आते हैं जो मृतप्राय हो जाते हैं। इस कार्यको मुर्दोंका फेंकना कहा है। इस प्रकार छोटे और बड़े श्वेत रक्ताणु मिलकर हमारे शरीरकी शत्रु कीड़ोंसे रक्षा किया करते हैं।

ये सफ़ेद रक्ताणु हैं तो मित्र और कार्य भी देखनेमें मित्रोंका सा ही करते हैं, परन्तु ठीक वैसे ही जैसे सिपाहियोंको लड़ते लड़ते यही आदत हो जाती है कि वे कदापि चुपचाप नहीं बैठ सकते—फिर चाहे आवश्यकता हो अथवा न हो लड़नेकी इच्छाके कारण उनकी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हो जाती है कि यदि कोई शत्रु उनको लड़नेकेलिए न मिले तो मित्रोंमेंसे ही शत्रु बनाकर या मित्रोंको ही शत्रु समझकर बस उनसे ही लड़ने लगते हैं—इसी प्रकार इन सफ़ेद कीड़ोंमें उनके गुणोंके साथ साथ यह दोष भी है कि जब उनको बाहरवाले शत्रु कीड़े लड़नेके लिए नहीं मिलते तो वे हमारे शरीरके जीवित अंगोंको ही खाना आरम्भ कर देते हैं।

युवावस्थामें तो ये अंग प्रबल रहते हैं और अपनी रक्षा कर सकते हैं। परन्तु जैसे जैसे आयु बढ़ती है वैसे वैसे इनमें निर्बलता आती जाती है। इसी समय इन सफ़ेद कीड़ोंकी बन आती है और ये सब, खूब आनन्दसे, झुण्डके झुण्ड, हमारे शरीरके भीतरी आवश्यक अंगोंको घेर कर खाना आरम्भ कर देते हैं। परिणाम यह होता है कि हमारी वृद्धि-शक्ति कम होने लगती है, पाचन शक्तिमें विकार उत्पन्न हो जाता है और रुधिरमें आक्सिजनकी कमी होने लगती है।

मेच्नीकाफ़ महाशयने अब यह सोचा कि हमारे शरीरके आवश्यक अंगोंमें आयुके बढ़नेके साथ साथ निर्बलता क्यों आती है जिसके कारण हम अपनी रक्षा इन सफ़ेद कीड़ोंसे नहीं कर सकते तो मालूम हुआ कि हमारे शरीरके भीतर जो वस्तु बड़ी आंतके नामसे प्रसिद्ध है उसमें इतने अधिक कीड़े अनपच भोजनके पदार्थपर एकत्र रहते हैं कि वहांकी सड़नके कारण एक प्रकारका विष उत्पन्न हो जाता है। यही विष हमारे शरीरके भीतरी आवश्यक अंगोंको शनैः शनैः आयु के बढ़नेके साथ साथ निर्बल करता जाता है।

निरन्तर विचारके उपरान्त मेच्नीकाफ़ महाशयने यह निश्चय किया कि यदि बड़ी अंतड़ीमें किसी प्रकार क्षीराम्ल (lactic acid) पहुंच जावे तो वह विष जो हमारे बुढ़ापेका कारण है न उत्पन्न हो। आपकी सम्मतिमें क्षीराम्ल खट्टे दूधमें होता है। केवल इतना ही नहीं खट्टे दूधमें वे कीड़े भी होते हैं जो शकरसे खटाई निकालते हैं।

पाठक महाशय अब यह विचारें कि मठेका प्रयोग कहां तक युक्तियुक्त है। इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हिन्दू वैद्यक शास्त्रमें मठेको कितना उच्च स्थान दिया गया है और कितनी इसकी प्रशंसा है। ज्ञात होता है कि मेच्नीकाफ़ महाशयने फिरसे इस विज्ञान-प्रधान वीसवीं शताब्दीमें हमारे वैद्यक शास्त्रके एक पुराने सिद्धान्तकी पुष्टि की है।

जर्मनीके प्रसिद्ध हफ़लैण्ड महाशयके कथनको भी कि हम लोगोंको अधिक तर्कारी खाना चाहिए, मांस नहीं, मेच्नीकाफ़ ठीक समझते थे। इसके भी कारण वे ही हैं जो खट्टे दूधके।

वैज्ञानिकीय

(१) मेडिकल स्कूलमें भाषाद्वारा अध्यापन

कुछ समय हुआ जब आगरा मेडिकल स्कूलमें शिक्षाका माध्यम हिन्दी भाषा थी, परन्तु न जाने किस अभिप्रायसे शिक्षा अंग्रेज़ी द्वारा दी जाने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि उक्त शिक्षणसे जनसमुदायको जो लाभ पहुंच सकता था, न पहुंच सका। पहले वहांसे उर्दूमें एक रिसाला भी निकला करता था, वह भी बन्द कर दिया गया। अब हर्षका समाचार सुननेमें आया है कि भारत सरकार फिरसे मेडिकल स्कूलसमें भाषाओं द्वारा शिक्षण करानेके प्रश्नपर विचार कर रही है। इसी अभिप्रायसे बम्मांमें एक स्कूल खोलनेकी लिखा पढ़ी हो रही है। जो कमेटी इस प्रश्नपर विचार कर रही है, उसकी रिपोर्टकी उत्कट प्रतीक्षा है।

* * * *

(२) भारतीय शिल्प कमीशन

सुना जाता है कि भारतीय औद्योगिक कमीशन नवम्बरमें फिरसे बैठक शुरु करेगा। आशा थी कि इस कमीशनकी जांचका परिणाम-रूप कुछ नए शिल्पोंका स्थापन यूरोपीय संग्रामके समाप्त होनेके पहले ही देखनेमें आयगा, पर इस ढील ढालसे कुछ होता नहीं दीखता। भारतका अभाग्य है कि यहां कमीशनोंकी जांच परताल ही नहीं समाप्त होती, और जापान जैसे छोटे मोटे देश सैकड़ों नए शिल्पोंको उन्नत दशामें गत तीन वर्षोंमें पहुंचा चुके हैं।

* * * *

(३) भारतीय विज्ञान सम्मेलन

उक्त सम्मेलनकी पांचवीं बैठक ६-१२ जनवरी सं १९१८ को लाहौरमें होगी। पंजाबके छोटे लाट अधिवेशनके संरक्षक और वाकर इसके सभापति होंगे। विविध वर्गोंके सभापति नीचे लिखे अनुसार होंगेः—

कृषि विभाग

डा० कोलमेन बङ्गलोर

भौतिक शास्त्र और गणित

विज्ञानाचार्य वली मुहम्मद, अलीगढ़

रसायन वर्ग

विज्ञा० जी. जे. फौलर बङ्गलोर

प्राणी शास्त्र तथा चिकित्सा शास्त्र

श्रीमान् चौधरी, कलकत्ता

वनस्पति विभाग

आर-एस- होल, देहरादून

भूगर्भ विभाग

ई. एस-पिन फोल्ड, रंगून

प्रधान मंत्री

डा० सिम्पसन, प्रेसीडेन्सी कालेज मद्रास।

स्थानीय मंत्री

मिस्टर एस-हेमी, तथा राय साहिब रुचिराम साहनी गवर्मैंट कालेज लाहौर।

*　　*　　*　　*

(४) ग्रामोफ़ोनमें नया आविष्कार

अभी तक ग्रामोफ़ोन बाजा एक ऐसी सुईके सहारे चलता था जिसे बार बार बदलना पड़ता था और यदि वह इधरकी उधर हो जाती थी तो उसे फिरसे ठीक करना पड़ता था। अब एक अमरीकनने एक ऐसी सुई लगाई है जो स्वयम् ही काम किया करेगी। बाजेको बजानेवालों और सुननेवालोंको सुई सम्बन्धी कुछ भी कष्ट न करना पड़ेगा।

*　　*　　*　　*

(५) सनका (जूट) स्थानापन्न

रूसमें एक ऐसा वृक्ष पाया गया है जिसकी छालको बोरा, रस्सी इत्यादि बनानेमें उसी प्रकार काममें ला सकते हैं जैसे सनको। किसी प्रकारकी भी न्यूनता उसमें नहीं मालूम होती।

*　　*　　*　　*

(६) हवाई जहाज़ और बङ्गाल

बङ्गालमें बारह हवाई जहाज़ ख़रीदनेकेलिए करीब दो लाख रुपयेके इकट्ठे हो चुके हैं। इन जहाज़ोंमें बङ्गाली हो उड़ाके नियुक्त किये जाने और उनको उचित शिक्षा दिये जानेकेलिए सरकारसे प्रार्थना की गई है।

*　　*　　*　　*

(७) हविष्कपुरमें खुदाई

काश्मीर प्रदेशान्तर हविष्कपुर नगरमें खुदाई की गई है। वहां पृथ्वीमेंसे बहुतसी वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। इनसे कश्मीरके प्राचीन ग्रन्थोंमें उल्लिखित अनेक बातोंका समर्थन होता है। उनसे यह भी प्रकट होता है कि वहांके प्राचीन कला-कौशलमें यवनानी प्रभावका आधिक्य था।

*　　*　　*　　*

(८) दफ़ती

स्वदेशी शिल्प समिति बम्बई (Indigenous Industries Committee Bombay) काग़ज़की दफ़ती बनानेलिए चार लाखकी पूंजीसे एक कारखाना खोलना चाहती है। यह कार्य्य बड़ा सराहनीय है। इसके हिस्से लेनेका प्रयत्न प्रत्येक देश प्रेमीको करना चाहिये।

*　　*　　*　　*

(९) पानीके हानिकारक जीवोंको खटिकहरितद्वारा मारना

आर्किपियान्टज़ ने (c h. D. Archipiantz) "रौस्की व्रच" नामी पत्रमें जल शुद्ध करनेके उपायोंपर विचार किया है। इसमें खटिक-हरितकी टिकियाओंका जिनमें कमसे कम १ मिलिग्राम हरित हो प्रयोग किया है। उक्त महाशयको यह भी मालूम हुआ है कि इन टिकियाओंकी सफलता केवल जीवोंकी जातिपर ही नहीं किन्तु दवाईओंकी प्रकृति और उनकी तीव्रता पर भी निर्भर है। इस औषधके प्रयोगसे विसूचिका (हैजे) के चक्राकार जीव तो शीघ्र ही नाश हो जाते हैं किन्तु कुछ बहुत ही छोटे जीवोंके मरनेमें अधिक समय लगता है। समयके अतिरिक्त हरितकी मात्रा और जीवोंकी प्रमुखताका भी टिकियाओंकी सफलतापर प्रभाव पड़ता है। जलमें सजीव पदार्थ बहुत होनेपर भी अधिक हरितकी आवश्य-

कता पड़ेगी। जलकी प्रतिक्रियाके कारण भी हरित-में कमी वेशी करनी पड़ेगी। पीरक्षणोंसे उक्त महाशयको यह भी मालूम हुआ है कि २ मि० ग्राम हरितसे हैज़ेके चक्राकार जीव १० मिनटमें, मोती-ज्वरके जीव ४५ मिनटमें, संग्रहणीके २ घंटेमें और वृहदंत्रके जीव २ घंटे ४५ मिनटमें मरे। इस प्रकार हरितसे जल शुद्ध करनेके पश्चात् हरितका क्या प्रभाव होता है यह ज्ञात नहीं है, इसलिए लेखककी यह अनुमति है कि इस उपायको केवल तबही काममें लाना चाहिये जब और कुछ न बन पड़े। New york medical Journal से

* * *

(१०) तेज़ बुखारमें ठंडक देना

कोई डाक्टर एक गोदीके बालकको देखनेके-लिये बुलाया गया। शरीरका तापक्रम तो १०७$\frac{१}{२}$ फ. अवश्य था किन्तु डाक्टर साहबको और कोई रोगके चिह्न नहीं दीखे। उन्होंने यह समझकर कि या तो मस्तिष्कमें या वात संस्थानमें कुछ गड़बड़ है रीढ़को ठंडक पहुंचाई और उसपर बर्फ रखकर पट्टी बांध दी। घंटे भरके बाद ज्वर १००° तक उतर गया और फिर नहीं बढ़ा। जहां कहीं तेज़ बुखारमें इन डाक्टर साहिबने रीढ़को ठंडक पहुंचाई वहीं तापक्रम शीघ्र और अच्छी प्रकार घट गया। Elingwood's therapeutist से

* * *

(११) तापमापक लगानेमें होशियारी किया करिये

मारटो साई-पिसकली साहिब (l. Martocci Piscully) 'New York medical journal' नामी पत्रमें ध्यान देने योग्य बात लिखते हैं। बहुतसे डाक्टर तापमापकको पानीमें धोकर–रोगियोंके लगाते चले जाते हैं। यह जांच करनेको कि इस रीतिसे रोगके जीवाणु फैलते हैं या नहीं और उन्हें उनके भोज्य पदार्थोंमें रख उनकी वृद्धि कर सकते हैं या नहीं कई डाक्टरोंके तापमापक लिये गये। इन तापमापकोंकी न्यू यार्क नगरके स्वास्थ्य विभागकी अन्वेषणशालामें निपुण वैज्ञानिकों द्वारा जांच कराई गई। पानीमें धोनेसे या सूखा ही पोंछनेसे रोगके जीवाणु कुछ भी नष्ट नहीं होते और न रोग फैलनेका भय ही कम होता है। रोगीके लगानेसे पहिले तापमापकको शुद्ध करना बिलकुल आवश्यक है। डाक्टरोंको इसका कोई उपाय निकालना चाहिये। चाहे वे यन्त्रके रखनेके खानेमें ही जीवोंको मार दिया करें अथवा उसही क्रियाकेलिए रोगीके यन्त्र लगानेके पहले दस बारह मिनट ठहरा करें।

चुम्बक

[ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम-एस. सी.]

चुम्बकत्वपर जितने लेख अभीतक विज्ञानमें निकले हैं, उनमें केवल कुछ प्रयोग देकर यह बतला दिया गया है कि उनके द्वारा जांची हुई बातोंसे चुम्बकीय नाप तौल कैसे की जाती है, पर यह नहीं बतलाया गया है कि किसी प्रयोग-से कोई विशेष परिणाम क्यों और किन सिद्धान्तों-के अनुसार निकाला जाता है। यहांपर इन मौलिक सिद्धान्तोंका उल्लेख ही उद्दिष्ट है जिनको समझकर प्रयोगोंके सब अनुष्ठान समझमें आ जायंगे।

स्वतंत्र लटके हुए चुम्बकपर क्या प्रभाव पड़ता है ?

जब किसी चुम्बकको किसी अक्षपर आरूढ़ कर देते हैं और उसके निकटसे अन्य चुम्बक या लोहेके टुकड़े हटा लेते हैं, उसपर केवल पृथ्वी-की चुम्बकीय शक्ति ही प्रभाव डालती है। इस शक्तिका पूर्ण रूपसे प्रभाव चुम्बकपर तभी पड़ सकता है जब चुम्बककी चुम्बकीय अक्ष झुकाव-सूचकके समानान्तर हो। यदि अक्ष समानान्तर न होगी तो पूर्ण रूपसे प्रभाव नहीं पड़ेगा, जैसे

Magnetism चुम्बकत्व]

यदि अक्ष समतल या ऊर्ध्व हो तो पृथ्वीकी शक्तिके केवल समतल या ऊर्ध्व अवयवका ही प्रभाव पड़ेगा।

पृथ्वीके चुम्बकत्वके समतल अवयवका महत्व

प्रायः चुम्बकको इस प्रकार रखना या लटकाना सुगम है कि उसकी चुम्बकीय अक्ष समतल रहे। अतएव पृथ्वीकी चुम्बकीय शक्तिके समतल अवयवसे ही काम पड़ता रहता है और इसीका मालूम करना भी हमारे लिए आवश्यक है।

समतल अवयवसे पृथ्वीकी पूर्ण चुम्बकीय शक्ति निकालनेकी विधि

दूसरे त्रिकोणमितिके नियमोंकी सहायतासे इस समतल अवयवके मालूम होनेसे ऊर्ध्व अवयव और पूर्ण शक्ति भी मालूम हो सकती हैं। मान लो पूर्ण शक्ति श है और ज इसका क्षितिज और व ऊर्ध्व अवयव है। श और ज के बीचका कोण झ झुकावका कोण हुआ। यह झुकाव सूचकसे मालूम किया जा सकता है। [देखो चित्र १]

चित्र १

$$\frac{ज}{श} = \text{कोज्या } झ$$

$$\therefore श = \frac{ज}{\text{कोज्या } झ}$$

$$= ज \times \text{छेदनरेखा } झ$$
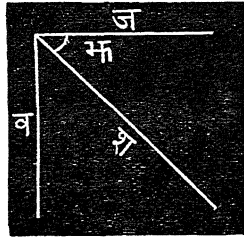
इस समीकरणसे पूर्ण शक्ति निकाली जासकती है। ऊर्ध्व अवयव निकालनेके लिए—

$$\frac{व}{ज} = \text{स्पर्शरेखा } झ$$

$$\therefore व = ज \times \text{स्पर्शरेखा } झ$$

(१) चुम्बकीय प्रभावके समतल अवयवके नापनेकी रीति—
मान लो कि चुम्बकत्वमापकका चुम्बक $उ_१$ $द_१$ है। यदि इसके केन्द्रकी प्रबलता $प_१$ मान लें और पृथ्वीकी चुम्बकत्वके प्रभावका समतल अवयव प्र की बराबर हो तो चुम्बकके प्रत्येक सिरेपर $प_१$ प्र शक्ति काम करेगी। इनमेंसे एककी दिशा उत्तर और दूसरेकी दक्षिण है, अतएव यह बराबरकी दो शक्तियां विपरीत समानान्तर दिशाओंमें काम करती हुई युगल बनाती हैं।

इसका प्रायोगिक प्रमाण यह हो सकता है कि एक पीतलके बड़े प्यालेमें पानी भरकर उसमें एक काग छोड़ दो, काग पानीमें तैरता रहेगा। इस कागपर एक हलका चुम्बक रखो जिससे काग चुम्बक सहित तैरता रहे। यदि चुम्बककी दिशा उत्तर दक्षिण न होगी तो काग घूमकर केवल उत्तर दक्षिण दिशामें आ ठहरेगा परन्तु अपनी जगहसे तनिक भी न हटेगा। दूसरे चुम्बक बनानेके पश्चात् लोहेके छड़के बोझमें कोई भेद नहीं पड़ता इसलिए जितना एक सिरा खिंचता है उतना ही दूसरा हटता है। यदि एक छोरपर दूसरेकी अपेक्षा अधिक शक्ति काम करती तो चुम्बकका बोझ बढ़ जाना चाहिये था।

यदि इस चुम्बकके दोनों केन्द्रोंके अन्तरको $द_२$ मान लें और चुम्बकको घुमाकर इस प्रकार रख दें कि इसकी अक्ष शक्तिकी दिशाके साथ समकोण बनावे तो उस युगलका घूर्ण जो इसको शक्तिकी दिशामें घुमाकर लानेका यत्न करेगा $द_२$ प्र $प_१$ के बराबर होगा। पर $द_२$ $प_१$ चुम्बकका चुम्बकीय घूर्ण है इसलिए

इस युगलका घूर्ण = प्र × चुम्बकीय घूर्ण
= प्रभावका समतल अवयव × चुम्बकीय घूर्ण

यदि प्रभावका समतल अवयव इकाईकी बराबर हो तो युगलका घूर्ण चुम्बकीय घूर्णके बराबर होगा। इसलिए चुम्बकीय घूर्णकी परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है।

चुम्बकका चुम्बकीय घूर्ण उस युगलके घूर्णके बराबर है जो इकाई प्रभावके क्षेत्रमें स्वतंत्रतापूर्वक घूमनेवाले चुम्बकको क्षेत्रकी दिशासे समकोण बनाता हुआ ठहरा सकता है।

यह परिभाषा पहले दी हुई परिभाषासे बहुत ही उत्तम है, क्योंकि इस युगलके घूर्णका नापना, केन्द्रोंके पता चलाने और उनकी बीचकी दूरी नापनेसे बहुत सुगम है। चुम्बकत्वमापकके गज़पर उसके दिक्सूचकके पूर्व अथवा पश्चिममें उद एक चुम्बक जिसके केन्द्रोंकी प्रबलता प प की बराबर और उनके बीचकी दूरी २ ल के बराबर हो इस प्रकार रखो कि उसकी अक्ष पूर्व पश्चिम हो।

मान लो कि दोनों चुम्बकोंके मध्य विन्दुओंकी दूरी द के बराबर है। इस चुम्बकके रखनेसे दिक्सूचकका चुम्बक थोड़ासा हट जायगा। (चुम्बक इतनी दूरीपर रखना चाहिए कि यह हटाव ५° या ७° से अधिक न हो।) मान लो कि दिक्सूचक $उ_३ द_३$ स्थानमें ठहरा है और हटावका कोण क° के बराबर है। इस हटी हुई जगहमें दिक्सूचकपर दो युगल लगे हुए हैं। इनमें से एक पृथ्वीके चुम्बकत्वके कारण पैदा हुआ है और दि०सू०को पहले स्थानपर लाना चाहता है। दूसरा इस चुम्बकके रखनेसे उत्पन्न हुआ है और दि०सू० को उसकी जगहसे हटाता है। दि०सू०के ठहरनेपर इन दोनोंके घूर्ण बराबर होने चाहिएँ। पृथ्वीवाले युगलका घूर्ण बराबर है।

$= प_१ \times प्र \times उ_३ म$

$= प_१ \times प्र \times द_२ \times ज्या क$; [क्योंकि $उ_३ म = द_२ \times ज्या क$]

$= प्र \times च_१ \times ज्या क$; जहां $च_१$ चुम्बकीय घूर्णकेलिए लिखा गया है, जो $प_१$ और $द_२$ २ के गुणन फलकी बराबर है। [देखिये चित्र २] ......(१)

चुम्बकवाले युगलका घूर्ण निकालनेके लिए हमें स्मरण रखना चाहिये कि इसके और दिक्सूचकके उत्तरी सिरोंमें निराकरणकी शक्ति $= \frac{प प_१}{(द-ल)^२}$

और चुम्बकके दक्षिणी सिरे और दिक्सूचकके उत्तरी सिरेमें आकर्षणकी शक्ति $= \frac{प प_१}{(द+ल)^२}$

इसलिए दिकसूचकके उत्तरी सिरेको हटानेवाली

$$शक्ति = \frac{प प_१}{(द-ल)^२} - \frac{प प_१}{(द+ल)^२}$$
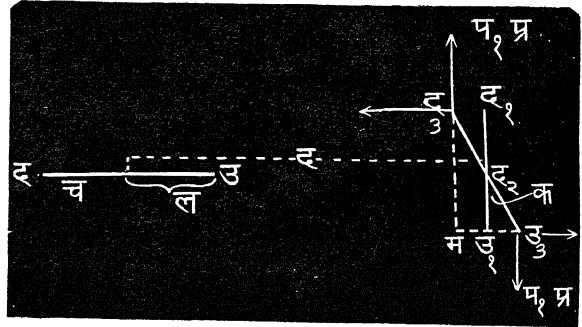
चित्र २

$$= प प_१ \left\{ \frac{१}{(द-ल)^२} - \frac{१}{(द+ल)^२} \right\}$$

$$= प प_१ \left\{ \frac{(द+ल)^२ - (द-ल)^२}{(द^२ - ल^२)^२} \right\}$$

$$= \frac{प प_१ \times ४ द ल}{(द^२ - ल^२)^२}$$

$$= \frac{प \times २ ल \times प_१ \times २ द}{(द^२ - ल^२)^२}$$

$$= \frac{च \times प_१ \times द \times २}{(द^२ - ल^२)^२}$$ जहां च चुम्बकीय घूर्ण है

इस दिक्सूचकके दक्षिणी सिरेको खेंचनेवाली शक्ति भी इतनी ही होनी चाहिए। यह दोनों मिलकर युगल बनाती हैं और इस हटी हुई जगहमें इस युगलका घूर्ण

$$= \frac{२ च \times प_१ \times द}{(द^२ - ल^२)^२} \times द_२ \times कोज्या क$$

$$= \frac{२ च \times प_१ \times द \times द_२}{(द^२ - ल^२)^२} \times कोज्या\ क$$

$$= \frac{२ च \times च_१ \times द}{(द^२ - ल^२)^२} \times कोज्या\ क$$

और यदि द के मुकाबिले ल छोटा हो तो

$$= \frac{२ च\ च_१ \times द}{द^४} - कोज्या\ क$$

$$= \frac{२ च\ च_१}{द^३} कोज्या\ क \quad ......(२)$$

जैसा कि ऊपर कह आये हैं दोनों युगलोंके घूर्ण बराबर हैं इसलिए $च_१$ प्र ज्या $क = २ \frac{च\ च_१}{द^३}$ कोज्या क समीकरण (१) और (२) से

$च_१$ दोनों तरफ होनेसे कट जाता है इसलिए

$$\frac{१}{२} प्र \frac{ज्या\ क}{कोज्या\ क} द^३ = च$$

$$अथवा\ \frac{१}{२} द^३\ स्पर्श\ क = \frac{च}{प्र} \quad ......(३)$$

इस समीकरणके बांई तरफ वाली सब राशियां मालूम हैं इसलिए दांई तरफवाली दो राशियोंमेंसे एक मालूम होनेसे दूसरी मालूम हो सकती है।

यदि चुम्बकीय घूर्ण मालूम न हो तो एक दूसरा समीकरण इस प्रकार निकाला जाता है। कम्पन बकसके अन्दर झूलते हुए चुम्बकके झोटेका समय इस समीकरणसे निकलता है।

$$स\ (समय) = २π \sqrt{\frac{मात्रा\ घूर्ण}{चप्र}}$$

च और प्र चुम्बकीय घूर्ण और क्षेत्रके प्रभावके लिए लिखे गये हैं और मात्राका घूर्ण चुम्बकके आकार और झूलनेकी अक्षपर निर्भर है। यदि चुम्बकका आकार चौकोर दंडका सा हो और मोटाईके समानान्तर अक्षपर झूलता हो तो उसके मात्राका घूर्ण =

$$चुम्बककी\ मात्रा \times \frac{(लम्बाई)^२ + (चौड़ाई)^२}{१२}$$

और यदि चुम्बकका आकार गोल दंडका सा हो तो =

$$चुम्बककी\ मात्रा \times \left(\frac{(लम्बाई)^२}{१२} + \frac{(व्यास)^२}{१६} \right)$$

म से मात्राके घूर्णको सूचित कर के इस समीकरणको इस प्रकार लिख सकते हैं।

$$स = २π \sqrt{\frac{म}{चप्र}}$$

$$अथवा\ स^२ = ४π^२ \times \frac{म}{चप्र}$$

$$अथवा\ चप्र = \frac{४π^२ म}{स^२} \quad ......(४)$$

इस समीकरणको तीसरे समीकरणसे भाग देनेसे "$प्र^२$" निकल आता है।

$$चप्र / \frac{च}{प्र} = \frac{४π^२ म}{स^२} \Big/ \frac{१}{२} द^३\ स्पर्श\ क$$

च तो कट जायगा और

$$प्र^२ = \frac{८π^२ म}{स^२ द^३} स्पर्श\ क$$

इन दोनों समीकरणोंको गुणा करनेसे प्र कट जायगा और $च^२$ निकल आवेगा। इस प्रकार चुम्बकीय घूर्ण और शक्तिका प्रभाव निकल आते हैं।

———

२–वायुतत्त्व ।

[ले० अ० प्रेमवल्लभ जोषी, बी. एस-सी, एल. टी.]

र दूसरे दिन मुकुन्द, शास्त्रीजी और विज्ञानाचार्य्य प्रयोगशालामें एकत्रित हुए और वार्तालाप आरम्भ हुई।

मुकुन्द—शास्त्रीजी आपने पहिले कहा था कि वायु भी पञ्चतत्त्वोंमेंसे एक है। कृपा करके नैय्यायिकोंका वायु विषयक मत और इसके विशेष गुण हमें समझाइये।

विज्ञानाचार्य्य—मुकुन्दका प्रश्न बहुत उचित है। आप जैसे सज्जन पंडितोंकी संगतिसे पूर्वीय दर्शनकारोंकी सम्मतियां वा सिद्धान्त हम लोगोंको सहजमें ज्ञात हो जायंगे और तब हम पूर्वीय वा पाश्चात्य विद्याओंकी मूल पद्धतियोंको समझकर अच्छी पुस्तकें प्रकाशित कर सकते हैं और अपने जातिके नवयुवकोंको ऐसा सदुपदेश दे सकते हैं कि वे विद्याके सन्मार्गमें भूल न करें। आजकल विज्ञान (Science) एक विदेशीय विद्या समझी जाती है, क्योंकि आजकल लड़कोंको विज्ञानकी शिक्षा यूरोपीय इतिहास और ग्रंथोंके आधारपर देनी पड़ती है। इसके विरुद्ध यदि आप और हम मिलकर विरोधभाव छोड़कर, सत्यताके आदर्शको सामने रख पूर्वीय दर्शनकारोंके आधारपर पाश्चात्य विज्ञानके प्रयोगोंकी सहायतासे एक नूतन विज्ञानकी सृष्टि करें तो हमारे देशके नवयुवकोंकी बहुतसी आपत्तियां सहजमें ही हल हो जायंगी। इस विषयमें विज्ञानाचार्य्य प्रफुल्लचन्द रायका हिन्दू रसायनशास्त्रका इतिहास और विज्ञानाचार्य्य व्रजेन्द्रनाथसीलका हिन्दुओंका पदार्थ विज्ञान, जैसी पुस्तकें सराहनीय हैं। आशा है कि आप इस विषयमें हमसे सहमत हैं। अच्छा, वायुका विषय आरम्भ कीजिये।

शास्त्रीजी—आपका विचार बहुत ही प्रशंसनीय है। अब पण्डितोंके अपनी खिचड़ी अलग पकानेके दिन नहीं रहे। हमको तो पक्षपात छोड़कर सत्य ग्रहण करना है। उपनिषद् पुकार करके कहते हैं " सत्येदेवोभव "। वायु भी अपने यहां तत्व माना गया है। नैय्यायिक वायुकी परिभाषा यों करते हैं "रूपरहितस्पर्शवान् वायुः" वायु रूपरहित है लेकिन त्वचाको स्पर्शसे उसका ज्ञान हो सकता है। घास तृण इत्यादिकोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानको वायु ले जाता है। पेड़ोंकी शाखाओंके पत्तोंके हिलनेसे वायु बहती है यह अनुमान होता है। वायुके गुणोंका इस प्रकार वर्णन किया गया है:—

कारिकावली–"स्पर्शादयोऽष्टौ वेगाख्यः संस्कारो मरुतो गुणाः। अपाकजोऽनुष्णाशीतः स्पर्शस्तु पवने मतः। तिर्य्यग्गमनवानेष ज्ञेयः स्पर्शादिलिङ्गकः। पूर्ववन्नित्यतायुक्तं देहव्यापि त्वगिन्द्रियम्।" अर्थात् वायुमें स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्त्व और अपरत्त्व ये आठ गुण विद्यमान हैं। संस्कार देनेसे वायुमें वेगत्त्व (बहना) गुण भी आ जाता है। वायुमें अविकार्य अनुष्णाशीतगुण भी है, न यह ठण्ड है न गरम। इसकी गति भी तिरछी सतहमें होती है (Horizontal plane)। फिर वायु नित्य परमाणु रूपसे और अनित्य साधारण रूपसे कहा जाता है। फिर वायु तीन प्रकारका है (१) शरीर—पिशाचादिकोंका वायवीय शरीर है (२) इन्द्रिय—हमारे शरीरमें जिस त्वगिन्द्रियसे स्पर्शका बोध होता है वह भी वायवीय है। (३) विषय, कार्य, स्थान, कालानुसार, प्राण वायुके कई भेद हैं, जैसे हृत्क्रियाको चलाने वाला प्राण–गुदा द्वारसे बाहर जाने वाला अपान इत्यादि। महावायु जो कि संसारमें विद्यमान है। वायु ही हमारे जीवनका सार है जब प्राण और अपानकी गति ठीक नहीं रहती है तो जीवन क्रियाका चलना कठिन हो जाता है। किसीके मतानुसार वायुमें स्थितिस्थापक गुण (elasticity) भी है और वे यह भी कहते हैं कि यही गुण स्पन्दन (Vibration) का कारण भी है। यथा

"स्थितिस्थापकसंस्कारः क्षितौ केचिच्चतुर्ष्वपि।
अतीन्द्रियोऽसौ विज्ञेयः क्वचित्स्पन्देऽपि कारणम्।"

विज्ञाना०-आपके वर्णनसे जो कुछ वायु विषयक नैय्यायिकोंका मत था सो ज्ञात हुआ। यद्यपि यह मत आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके अनुसार सर्वथा माननीय तो नहीं है परन्तु बहुत कुछ युक्ति संगत है।

मुकुन्द०-शास्त्रीजी! क्या गुरुत्व गुण हवामें नहीं है आपने इस विषयमें कुछ नहीं कहा।

शास्त्रीजी०-नैय्यायिकोंके मतानुसार गुरुत्व गुण सिर्फ पार्थिव पदार्थों और जलमें ही है, अन्यत्र नहीं। हमारे ख्यालमें भी यही आता है कि हवाका भार ही क्या होगा।

विज्ञाना०-नहीं शास्त्रीजी हवा चाहे हलकी हो परन्तु इसमें गुरुत्व या भार अवश्य है। यह बात हम प्रयोगसे सिद्ध कर सकते हैं। देखिये यह एक काचका (flask) वर्त्तन है, इसके भीतर सिवाय हवाके कुछ नहीं है। क फ्लास्क है घ उसमें एक टैप है (stop-cock) है जिसके घुमानेसे भीतरकी हवाका बाहरकी हवासे सम्बन्ध किया जा सकता है, और बन्द करनेसे बाहरकी हवा भीतर नहीं जा सकती। देखिये मैं इस कुप्पीको इस बढ़िया तराजूमें जिसमें ग्रामका एक लाखवां हिस्सा भी तोला जा सकता है, तोलता हूं। तोलनेके बाद अब इस (airpump) वायु निस्सारक यन्त्रसे इसकी हवा निकाल डालता हूं और घ टैप बन्दकरके कुप्पी फिर तराजूपर रखता हूं। अब आप बतलाइये आप क्या देखते हैं। (शेष फिर)

वामन अर्थात् बौने

[ले० गोपालस्वरूप भार्गव]

वामन या बौने शब्दका अर्थ किसी जातिके साधारण व्यक्तियोंकी अपेक्षाबहुत छोटे आकारका व्यक्ति है। अनादि कालसे मनुष्योंको बौने अर्थात् वामनोंको देखनेसे आनन्द आता रहा है। रास्ता चलते चलते भी मनुष्य किसी वामनको देख कर ठहर जाते हैं और उसे निरखने लगते हैं। नवीनता, अनूठापन, दया आदिके अनेक भाव दर्शकोंके हृदयोंमें वामनोंको देखकर किलोलें मारने लगते हैं और उन्हें ठहर कर थोड़े बहुत काल तक देखनेकेलिए मजबूर करते हैं।

General साधारण]

भगवान विष्णुने स्वयम् बलिको छलनेकेलिए और उसका हृदय द्रावित करनेकेलिए वामनका ही रूप रखा था। इतिहासमें अथवा संसारके पुरातन ग्रन्थोंमें वामन शब्दका प्रयोग सबसे पहले श्री वामनजीकी कथामें ही पाया जाता है।

हम लोग भी बालक पनमें श्री वामन भगवानकी कथा सुनकर ही इस शब्दसे परिचित हुआ करते हैं। कभी कभी माताएँ बालकोंके विनोदकेलिए दन्त कथाएँ सुनाते हुए यह भी कहा करती हैं कि कभी कभी कुआ खोदते समय एक बित्ता ऊंचा मनुष्य और उससे भी छोटी गाय पायी जाती हैं। उनके कथनानुसार यह सूक्ष्म जीव पातालके श्री वामन भगवानके लोकके रहने वाले हैं और रास्ता भूल कर यहां आ निकलते हैं, पर हवा लगते ही मर जाते हैं। संसारकी अन्य जातियोंमें भी ऐसी ही दन्त कथाएँ प्रचलित हैं। स्केनडीनेवियामें यह शब्द उन बनदेव और देवियों या भूत प्रेतोंकेलिये प्रयुक्त होता है, जो उनके विश्वासानुसार पर्वतोंपर निवास करते हैं और कदमें बहुत नाटे और बुरी डरावनी सूरतके होते हैं।

इतिहासमें बहुतसे बौनोंका उल्लेख है, जो कुरूप न थे वरन् उसके विपरीत सुडौल और कोमल शरीरवाले थे। हां प्रायः बौनोंके अङ्ग कोई बहुत छोटे कोई बहुत बड़े पाये जाते हैं।

बहुत शताब्दियों पहले भी बौने वर्तमान समयकी भांति दर्शनीय समझे जाते थे और प्रायः राजा तथा अन्य धनी मानी पुरुष बौनोंको नौकर

रख लिया करते थे। मिश्र देशके फेरोआ राजाओं-के दर्बारमें भी अक्का जातिके बौने रहा करते थे। काव्य महार्णव और व्याकरण वाचस्पति फिलेटस, जो विक्रमसे २७४ वर्ष पहले कोस नगरमें रहते थे, इतने ठिंगने थे कि हवामें उड़ जानेके भयसे सदा सीसेके जूते पहने रहा करते थे।

रोमके अगस्तस केसरकी भतीजी जूलियाके पास एक दास केनोपस और दासी एण्ड्रोमिडा थे जो २ फुट ४ इंच ऊंचे थे।

कृत्रिम बौने

रूमी लोगोंमें बौने बनानेकी कला भी प्रचलित थी। बनावटी बौनोंको वे नेनुस अथवा पूमिलो कहा करते थे। उनके ग्रन्थोंमें बौने बनानेके बहुत-से उपाय भी दे रखे हैं। इसकी सर्वोत्तम विधि यह बतलाई जाती है कि बच्चोंकी रीढ़की हड्डी-पर चिमगादड़, या छछूंदरोंका तेल मला जाय।

अब हम यहां कुछ बौनोंका संक्षिप्त जीवन चरित देंगे जो पाठकोंको रोचक होगा।

जेफरी हड सन् (१६७६—१७३६ वि०)

जेफ़री हडसन् १६७६ वि० में पैदा हुआ था। यह एक कसाईका लड़का था और ज्योर्ज विलि-यर्स, ड्यूक औव् बकिंघामके सांड चराया करता था। यद्यपि इसके माता पिता बौने न थे तदपि नौ वर्सकी उम्रमें यह केवल १८ इंच ऊँचा था। चार्ल्स प्रथमने एक बार भोज दिया, जिसमें यह निमंत्रित होकर आया। वहीं इसका परिचय महा-राज्ञी हेनरीटा मेरिआसे हुआ, जिन्होंने उसे अपने पास रख लिया। सिविलवारमें यह भी चार्लसकी ओरसे लड़ा। फौजवालोंने इसका नाम 'फुर्तीला जेफरी' रखा था। यह दो बार कैद हुआ। एक बार फ्रांससे लौटते हुए, जहां यह महाराज्ञीके कामसे गया था। दूसरी बार तुर्की लुटेरोंके हाथ पड़ गया। वहां इसे बड़ा कष्ट उठाना पड़ा।

क्या बौने बढ़ भी जाते हैं?

इस कैदमें इसका कद जो तीस वर्षकी उम्रमें भी १८ इंच ही बना हुआ था—बढ़कर ३ फुट ९ इंच अर्थात् दुगनेसे भी अधिक हो गया। यह ६३ वर्षकी उम्रमें मरा।

क्या बौनोंकी सन्तान भी बौनी होती है?

हडसनके ही समकालीन रिचार्ड गिबसन और उसकी पत्नी एन (Anne) थे। यह भी महा-राज्ञी हेनरीटा मेरियाके पास रहते थे। उनमेंसे प्रत्येककी ऊंचाई २ फुट ७ इञ्च थी, उनका विवाह महाराज्ञी मेरियाने ही किया था। विवाह एडमण्ड वालरने कराया और लेलो (Lely) ने इस अनुपम दम्पतिका चित्र बनाया। एविल्यनने उपहाससे इनका नाम 'मनुष्यके सारांश' (Compendium of a man) रख छोड़ा था।

इस दम्पतिके नौ बच्चे हुए जिनमेंसे पांच जीते रहे और साधारण ऊंचाईके थे। यह ७५ वर्ष-की आयु पाकर मरा।

फ्रांसीसी विप्लवमें एक बौनेका कौतूहलोत्पादक उपयोग

रिचिवर्ग केवल २३ इं. लाम्बा था। वह सं १८५८ में ९० वर्षकी आयु पाकर मरा। फ्रांसीसी राजविप्लवमें इसके कपड़ोंमें राज-कीय पत्र छिपा दिया करते थे और इसे किसी आयाकी गोदमें इधर उधर भेज दिया करते थे। पहरेवाले बच्चा समझकर निकल जाने देते थे और इस प्रकार वह पत्र जिन्हें लेजानेका साहस किसी वीर सिपाहीको भी नहीं होता था, इस बौनेकी सहायतासे ठिकाने पहुंच जाते थे।

एक बौनेके कारण एक चित्रकारकी मृत्यु

चार्लसस्ट्रेटन सं० १८९४ वि०में पैदा हुआ था। जब वह ७ वर्षका था, तब लन्दनमें आया और उसे इजिपशियन हालमें प्रदर्शित किया गया। उसी दिन चित्रकार हेडनने अपना विख्यात चित्र 'एरिसटाईडूसका देश निकाला,' प्रदर्शित किया। जन समुदाय इस चित्रको न देखकर बौनेके ओर झुकी, जिसका परिणाम यह हुआ कि हेडनको एक सप्ताहमें केवल ७ पौण्ड १३ शिलिङ्ग मिले

और स्ट्रैटनको ६०० पौण्ड। हताश होकर चित्रकारने आत्मघात कर लिया।

दुलहिनके वस्त्र ३०००० तीस हज़ारकी लागतके

सं० १६१० वि० में लन्दनमें दो वामन और वामनी लाये गये। इन्हींका विवाह सं० १६२४ वि० में बड़ी धूम धामसे हुआ और बौनी बधूके लिए ३०००० रु० की लागतके वस्त्र तैय्यार किये गये।

जिन्हें बौनोंका अधिक हाल जानना हो वह वुड रचित Giant and Dwarf नामी पुस्तक पढ़े

सारांश

बौने लम्बाईको छोड़ अन्य सब प्रकारसे साधारण मनुष्यों जैसे होते हैं। उनकी सन्तान सदैव बौनी नहीं होती।

(२२६ पृष्ठ के आगे)

(४) प्रसूतिशास्त्र (प्रथम भाग)

लेखक और प्रकाशक डाक्टर प्रसादीलाल झा, एल. एम. एस. कानपुर। पृष्ठ १४८ चित्र ५८, सजिल्द मूल्य २॥)

पुस्तकका विषय उसके नामसे ही ज्ञात होता है। हिन्दी जगत्में यह अपने ढंगकी एक अनोखी पुस्तक है। इस पुस्तकमें डाक्टर साहब ने जगह जगह चरक, सुश्रुत, वागभट इत्यादि प्राचीन ग्रंथोंके प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि प्राचीन भारतवासी न केवल प्रसूतिशास्त्रसे अभिज्ञ ही थे प्रत्युत उनको इस विषयमें बहुत अच्छा ज्ञान भी था। इस बातसे हम सभोंकी श्रद्धा आयुर्वेदपर बढ़नी चाहिये।

पुस्तकके आठ प्रकरण हैं। पहले प्रकरणमें स्त्री की बाह्य जननेन्द्रियोंका विस्तारपूर्वक वर्णन है। दूसरे प्रकरणमें गर्भाशय इत्यादि आभ्यंतरिक जननेन्द्रियोंका हाल लिखा गया है; स्त्रीकी डिम्ब-ग्रन्थि और डिम्बकी सूक्ष्म रचना चित्रोंकी सहायतासे अच्छी तरह समझाई गई है। तीसरे प्रकरणमें श्रोणि(वस्तिगह्वर) का वर्णन है; श्रोणि-के माप लेनेकी विधि लिखी गई है। चौथे प्रकरणमें यह समझाया गया है कि प्रसूति शास्त्रके अभ्यास करनेवालोंको किस प्रकार अपने हाथों, औज़ारों, बरतनों और स्त्रीके अंगोंकी सफ़ाई करनी चाहिये। पांचवें प्रकरणमें मासिकधर्म, गर्भाधान, शुक्र इत्यादिका वर्णन है। मासिकधर्मके दिनोंमें और उनके पश्चात् स्त्रीको कैसे रहना चाहिये और क्या करना चाहिये ये सब बातें यहां लिखी गई हैं। आगे चलकर यह समझाया गया है कि भ्रूण और उसको ढांकनेवाली झिल्लियां और नाल कैसे बनते हैं। छठे प्रकरणका विषय गर्भका वृद्धि-क्रम है, किस महीनेमें कौन अंग बनते हैं यह सब लिखा गया है, आगे चलकर गर्भके सिर और खोपड़ीका वर्णन है, बच्चेकी गर्भावस्थामें स्थिति क्या होती है और वह कैसे बाहर निकलता है यह भी लिखा गया है। सातवें प्रकरणमें गर्भवतीके अंगोंकी दशा और आठवेंमें उसके गर्भाशयकी वृद्धिका वर्णन है।

पुस्तककी भाषा सरल और सबकी समझमें आनेवाली है। पारिभाषिक शब्द हिन्दी और संस्कृतके हैं, इन शब्दोंके साथ साथ उनके अंगरेज़ी तुल्यार्थ दिये गये हैं। शायद यह ज़्यादा अच्छा होता है कि अंगरेज़ी शब्द पृष्ठकी तलीमें या अनुक्रमणिकाके रूपमें पुस्तकके अन्तमें दिये जाते। जहां तक हो सका है पुराने ग्रन्थोंमें पाए जाने वाले शब्दोंका प्रयोग किया गया है। कुछ पारिभाषिक शब्द संदिग्ध मालूम होते हैं, इनको बतलाना हम अपना कर्तव्य समझते हैं:—

१. पृष्ठ १० पर Peritoneum को जलोत्पादक कला या जल पैदा करनेवाली झिल्ली कहा गया है। वास्तवमें इस झिल्लीका काम जल पैदा करने-का नहीं है इसलिये इसको 'जलोत्पादक' कहना अशुद्ध है। यदि अंग्रेज़ी शब्दका अनुवाद किया जावे तो "परिविस्तृत कला" बुरो न होगा क्योंकि यह झिल्ली उदरके भीतर सब जगह बिछी रहती है।

२. अण्डाधार, अण्डाशय । अण्ड शब्दका प्रयोग पुरुषके फ़ोते या (Testicle) के लिये किया जाता है। इस अंगके सिवाय और किसी अंगके-लिये इसका प्रयोग न होना चाहिये। प्रस्तुत पुस्तकमें अंडाशय और अंडाधार स्त्रीके Ovary नामक अंग-केलिये लिखे गये हैं। ऐसा करनेसे एक ही शब्द-का प्रयोग दो चीज़ोंकेलिये हो जाता है अर्थात् पुरुषके Testicle और स्त्रीके Ovum में कोई भेद नहीं रहता। दूसरी बात यह है कि Ovary न किसी प्रकारका आशय है और न किसी चीज़का आधार; वह तो एक प्रकारकी ग्रन्थि है जिसमें "डिम्ब" या Ovum बनते हैं; इस ग्रन्थिमें एक विशेष प्रकारका रस भी बनता है। हमारी समझमें Ovary के लिये 'डिम्ब ग्रन्थि' रखना अनुचित न होगा; डिम्बाशय कहना भी ठीक नहीं क्योंकि इस नामसे विदित होता है कि वह आमाशय, शुक्राशय, गर्भाशय, मूत्राशय जैसा खोखला अंग होगा जैसा कि वह वास्तवमें नहीं है। Fallopian Tube के लिये "अंडवाही नाली" की जगह डिम्बवाही नाली, Graffian fallicle के लिये "अंडोत्पादक कोष" की जगह "डिम्बकोष" रखना अच्छा है। Ovum को केवल 'डिम्ब' कहना चाहिये।

३. पृष्ठ ७२ पर Pancreas को Abdominal Salivary gland या उदरकोष्ठमें लार या थूककी गिलटी कहना ठीक नहीं। इस गिलटीमें थूक नहीं बनता। हमारी रायमें प्राचीन ग्रन्थोंका "क्लोम" शब्द शायद इसी ग्रन्थिकेलिये है।

४. शोणितः—पृष्ठ १५ पर शोणितको Internal Secreton of the Ovary बतलाया गया है; पृष्ठ ७३ पंक्ति ५में कोषीय जल और शोणित एक ही चीज़ माने गये हैं; पृष्ठ ७८ पर शोणित और रज दोनों शब्द अंगरेज़ीके Ovum (डिम्ब) के लिये लिखे गये हैं। वास्तवमें Internal Secretion of the ovary, कोषीय जल और डिम्ब तीनों अलग अलग चीज़ें हैं। इसलिये तीनोंकेलिये एक ही शब्द का प्रयोग ठीक नहीं। हमारी रायमें शोणित और आर्तव-ये दोनों शब्द Menstrual discharge के तुल्यार्थ समझने चाहियें। इनमेंसे कोई भी Ovum के लिये न लिखना चाहिये।

५. नाड़ी—पृष्ठ ६ पर नाड़ी अंगरेज़ीके Nerve का तुल्यार्थ माना गया है। हम इससे सहमत हैं। पृष्ठ ११२ और १२५ पर Umbilical cord के लिये "नाभि नाड़ी" की जगह "नाभि रज्जु" या केवल नाल ही लिखना चाहिये था क्योंकि 'नाभि नाड़ी कोई Nerve नहीं है।

६. ग्रन्थिः—पुस्तकमें कई जगह ग्रन्थि शब्द अस्थियोंके उभारोंकेलिए लाया गया है। 'ग्रन्थि' Gland का तुल्यार्थ है; इसलिये यह अच्छा होता यदि यह शब्द किसी और चीज़के लिये न लाया जाता।

७. पृष्ठ १२७ पर Pulmonary Vein को कफ वहा शिरा, Pulmonary Artery को प्राण वहा धमनी और Hepatic Veins को पित्त वहा शिरा कहा गया है। सत्य तो यह है कि न Pulmonary Vein में कफ रहता है और न Pulmonary Artery में प्राण; Hepatic Veins का भी पित्त से कोई सम्बन्ध नहीं। हमारी राय में फुप्फुसगा या फुप्फुसीय शिरा, फुप्फुसीय धमनी बहुत अच्छे शब्द हैं। Hepatic Veins को यकृतकी शिरा कहना काफ़ी है।

पृष्ठ ६० पंक्ति १५ और १८ में $1\frac{1}{2}$ सेरकी जगह १० छटांक छपना चाहिये था।

पुस्तकको आद्योपान्त पढ़नेके पश्चात् हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि इस पुस्तककी आजकल बड़ी आवश्यकता थी; यह पुस्तक लिखकर डाक्टर साहबने हिन्दी भाषाकी बड़ी भारी सेवा की है। सर्वसाधारणकेलिये विशेष-कर जवान पुरुषों वा स्त्रियोंके लिये पुस्तक बड़े कामकी है। २० वीं शताब्दीके किसी वैद्यको पुस्तकको बिना पढ़े न रहना चाहिये। यह पुस्तक वैद्यक पढ़ने वाले विद्यार्थियोंकेलिये पाठ्य ग्रन्थ बनाने योग्य है।

—त्रिलोकीनाथवर्मा

प्राप्ति-स्वीकार

फरवरी १९१७

१. मिस्टर, एस. आर. डेनियल्स् आई. सी, एस. (१९१५-१६) १२)
२. श्रीयुत सय्यद हैदर मेहदी, बी. ए, एल, एल बी. (१९१६-१७) १)
३. श्रीयुत बसन्तलाल गुप्त लखनऊ (१९१५-१६) १५॥)
४. श्रीयुत डी. एन्. पाल, एम, ए, प्रयाग (१९१४-१५) ४)
५. मिस्टर. सी. नोर्डलिंगर, कलकत्ता (१९१५-१६) १२)
६. श्रीयुत महदी हुसैन नासरी (१९१६-१७) ३)
७. " हैदर महदी (१९१६-१७) १)
८. " जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव १०)
९. मिस्टर, एस्.आर. डेनियल्स्, आइ. सी. एस. (१९१६-१७) १२)
१०. श्रीयुत एस. सी. देव, १०)
११. श्रीयुत श्रीकृष्ण जोशी, (१९१६-१७) १२)

मार्च १९१७

१२. मिरजा हबीब हुसैन. शाहजहांपुर (१९१६-१७) १२)
१३. राजा सय्यद अलम जाफर साहब पीरपुर (१९१६-१७) १२)
१४. श्रीयुत जे. पी. वैजल मेरठ, (१९१५-१६) १२)
१५. " डी. एन्. पाल. ४)
१६. " राय जी. एन्. चक्रवर्ती बहादुर बनारस (१९१६-१७) १२)
१७. " करमनारायण प्रयाग. (१९१६-१७) १२)
१८. " एस् सी. देव. २)
१९. " कमलाकर दुबे (१९१६-१७) १२)
२०. " विश्वम्भरप्रसाद ५)
२१. " लालजी श्रीवास्तव ५-)
२२. " हीरालाल खन्ना (१९१६-१७) १२)
२३. " चन्दीप्रसाद (१९१६-१७) १२)
२४. " मोहम्मद रजा (१९१६-१७) १२)
२५. " सी, सी. देसाई (१९१६-१७) १२)
२६. " बालादत्त शर्म्मा धामपुर, (१९१६-१७) १२)
२७. " महाराजा छत्रपूर (१९१६-१७) १२)
२८. " सी नोर्डलिंगर (१९१६-१७) १२)
२९. " राजा सर रामपालसिंह कुर्री " सुदौली रायबरेली (१९१६-१७) १२)
३०. " जगदीश सहाय माथुर भरतपुर (१९१६-१७) १२)

अप्रैल १९१७

३१. श्रीयुत हरदयालसिंह (१९१६-१७) १२)
३२. " पो. एल्. गर्ग. (१९१५-१६) १२)
३३. " पी. डी. टंडन. (१९१५-१६) ६)
३४. " एस सी देव ५)
३५. " श्यामसुन्दरदास (१९१६-१७) १२)
३६. " कृपाशंकर प्रतापगढ़ (१९१५-१६) १२)
३७. " रामदास गौड़ २-)
३८. " निहालकरन सेठ १२)
३९. रायबहादुर पं० गोपीनाथ एम. ए. १२)
४०. श्रीयुत बेणीमाधव (१९१६-१७) १२)

मई १९१७

४१. श्रीयुत कृपाशंकर वर्म्मा (१९१५-१६) ६)
४२. " ए. जा. सिरफ, आई. सी. एस. (१९१६-१७) १२)
४३. " लाला सीताराम बी.ए. (१९१६-१७) १२)
४४. " हरीकृष्ण पंतअलमोड़ा (१९१६-१७) १२)
४५. " श्रीनाथ मिश्र (१९१६-१७) १२)
४६. " यज्ञेश्वर जोषी (१९१६-१७) १२)
४७. " चिरंजीलाल शर्म्मा (१९१६-१७) ३)
४८. " एस्. पी. टंडन (१९१६-१७) ६)
४९. " श्रीकृष्णचन्द्र ४॥)
५०. " अहमदहुसैन (१९१६-१७) ७)
५१. " राधामोहनगोकुलजी (१९१६-१७) १५=)

जौलाई १९१७

५२. श्रीयुत मोहम्मद अली नामी. १२)
५३. " ब्रजनन्दन सहाय. बी. एस. सी. १२)
५४. " महदी हुसैन नासरी ६)
५५. " बी. डी. मालवीय १७=)

विज्ञान-परिषद्-द्वारा प्रकाशित हिन्दीमें अपने ढंगकी अनूठी पुस्तकें

विज्ञान प्रवेशिका (दूसरा भाग)

प्रकाशित हो गयी।

श्रीयुत महावीरप्रसाद, बी. एस-सी, एल. टी., द्वारा रचित

इसमें २५५ के लगभग पृष्ठ और ६० से अधिक चित्र हैं। प्रारम्भिक विज्ञानकी अद्वितीय पुस्तक है। मैट्रिक्युलेशन तथा स्कूल लीविङ्गके विद्यार्थियोंकेलिए बहुत उपयोगी है। मूल्य १) रुपया

१—विज्ञान-प्रवेशिका (प्रथम भाग) ... ... ।)

२—ताप ... ... ।)

३—विज्ञान प्रवेशिका (द्वितीय भाग) छप गयी है १)

४—मिफ़ताहउल-फुनून (विज्ञान-प्रवेशिका प्रथम भागका उर्दू अनुवाद) ।)

५—हरारत-तापका उर्दू अनुवाद ... ... ।)

६—पशु-पक्षियोंका शृङ्गार रहस्य ... ―)

७—ज़ीनत वहश व तैर (उपरोक्तका उर्दू अनुवाद) ... ―)

८—केला ... ... ―)

९—**स्वर्णकारी**-सुनारोंके बड़े कामकी है। इसमें इस कलाका विस्तृत वैज्ञानिक वर्णन सुन्दर सरल भाषामें दिया है। सर्वसाधारण इससे सुनारोंके रहस्योंको भली भांति जान सकते हैं। ।)

१०—**गुरुदेवके साथ यात्रा**-जगद् विख्यात विज्ञानाचार्य्य जगदीश चन्द्र वसुके भूमण्डल भ्रमण और संसारके विश्वविद्यालयोंमें व्याख्यानोंका वर्णन है। भाषा अत्यन्त सरल है। ।=)

विज्ञान—सरल सुबोध सचित्र वैज्ञानिकमासिकपत्र जो प्रति सङ्क्रान्तिको प्रकाशित होता है। वार्षिक मूल्य ३); प्रति अंक ।); नमूनेका अंक ≶)॥ और वी० पी०से ।-)

पता—मंत्री, विज्ञान-परिषत्,

इस पत्र सम्बन्धी रुपया, चिट्ठी, लेख, सब कुछ इस पतेसे भेजिए—

पता—मंत्री

विज्ञान—परिषत् प्रयाग।

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषत्- प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाइ. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Reg No. A 708

भाग ५ Vol. V. कन्या १९७४ September 1917. संख्या ६ No. 6

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [१ प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानके नियम

(१) यह पत्र प्रति संक्रान्तिको प्रकाशित होता है। पहुँचनेमें एक सप्ताहसे अधिक देर हो तो प्रकाशकको तुरन्त सूचना दें। अधिक देर होनेसे दूसरी बार विज्ञान न भेजा जायगा।

(२) वार्षिक मूल्य ३) अग्रिम लिया जायगा। ग्राहक होनेवालोंको पहले वा सातवें अंकसे ग्राहक होनेमें सुविधा होगी।

(३) लेख समस्त वैज्ञानिक विषयोंपर लिये जायँगे और योग्यता तथा स्थानानुसार प्रकाशित होंगे।

(४) लेख कागज़की एक ओर, कमसे कम चार अंगुल हाशिया छोड़कर, स्पष्ट अक्षरोंमें लिखे जायँ। भाषा सरल होनी चाहिए।

(५) लेख सचित्र हों तो यथा संभव चित्र भी साथ ही आने चाहिएं।

(६) लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्त्तनमें सामयिक पत्र और पुस्तकें, मूल्य, तथा सभी तरहके पत्र व्यवहारकेलिए पता—

सम्पादक 'विज्ञान' प्रयाग

शिवालकीय
2. Mastodon (स्तन दन्त) longi-rost-ris (लम्ब चंचु)
3. Elephas primi-gerious.
4. Palæotherium आदिपशु
5. Ptero-dactylus पक्षान्गुलिका
6. Ammon. अम्मोन शृङ्गीय
7. Plesio-saurus सराट्-बन्धु
8. Ichthyo-saurus मत्स्य सराट्
9. कर्बनाय
10. Lepi do-dend-r n.
11. Calamites.
12. Labyrinthodon
13. Acan-thodus (thorn).
14. Dipfa-canthus.
15. Lepidosteus (Lepidos seal).
16. Climatius.
17. Zosterites.
18. Ammonites.
19. Goniatites.
20, Strophomena.
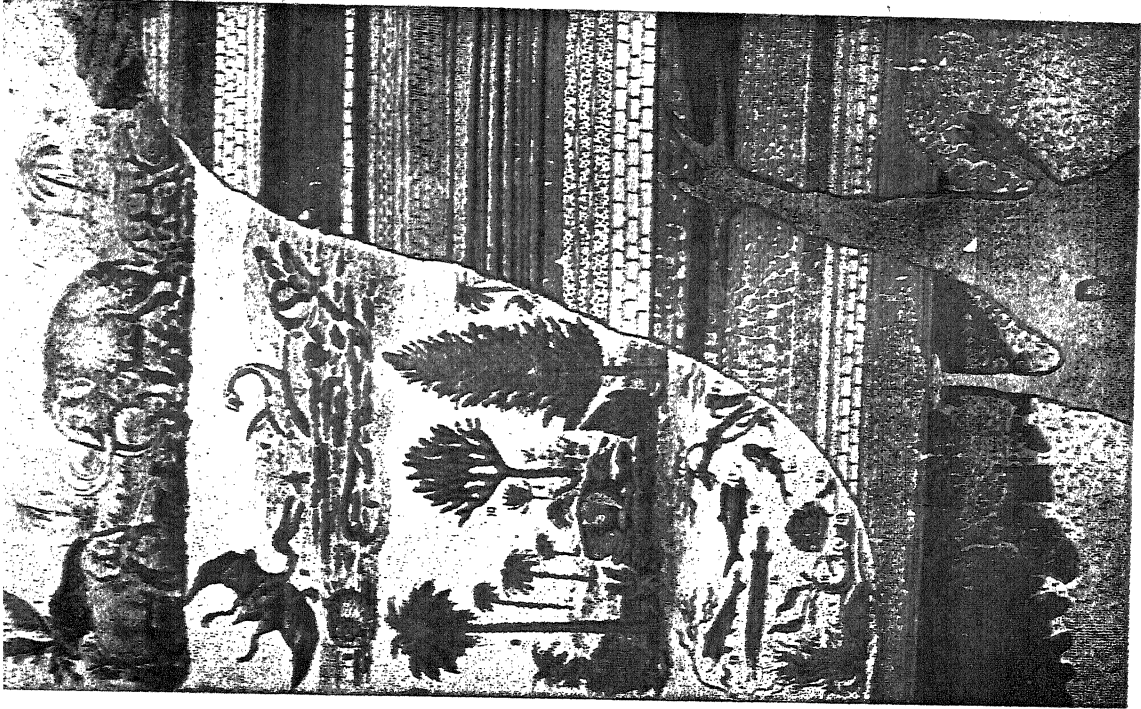
आधुनिक हिमकाल (Glacial drifts) निकटतम (Pliocene) निकटतर (Miocene) आदिम (Eocene)	तृतीय युगीय तथा आधुनिक (Caino Zoic or Tertiary and pliestocene)	
खड़िका कालीन (Cretaceous) जुगज या जुरापवर्तीय (Jurassic मध्यारम्भ (Triassic)	मध्य युगीय (Mesozoic or Secondary)	
परमियाज (Permian) कर्बनीय कोयला (Carboniferous coal) कर्बनीय चूना (Carboniferous lime stone) डेवोनदेशीय या डेवोनीय (Devonian) सिलूर देशीय या सिलूरीय (Silurian) कैम्ब्रय देशीय या केम्ब्रीय (Cambrian)	आरम्भ युगीय (Palæozoic or Primary)	
तापज चट्टान (Plutonic rocks) आग्नेय चट्टान (Igneous rocks)	प्राचीन (Eozoic or Archæan)	

THE LEADER PRESS, ALLAHABAD

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग ५ | कन्या संवत् १९७४। सितंबर, सन् १९१७। | संख्या ६

मंगलाचरण

जितना लघु परमाणु, द्रव्यके कणका कण है
जितना अ-कट, अ-टूक, कालका टुकड़ा क्षण है
जितना लघु कीटाणु-जन्तुका तन और मन है
क्षणिक जीवियोंका जीवन और जनन मरन है
बस उतना ही यह विश्व सब उसका अणु-तम अंश है
जो अमित अमेय अनादि प्रभु मेरा मानस-हंस है।

श्रीपद्मकोट,
२५-८-१७.

--श्रीधर पाठक।

बजट

राजधनका शासन वा निरोध

[ले० अध्यापक गोपाल नारायण सेन सिंह, बी०ए०]

वर्तमान युगकी नवीनताको देखिये कि एक हिन्दूकेलिए, अवसर-कुअवसर, शौच और नित्यकर्म-का पालन न करना क्षम्य हो सकता है, मुसलमानोंको रोज़ा नमाज़से निजात मिल सकती है, पर शिक्षित चैतन्य नवयुवक मण्डलीमें रहकर यदि कोई समाचारपत्र नहीं देखते तो उनके लिए कोई प्रायश्चित ही नहीं। कितने भद्र पुरुष तो ऐसे हैं जो अंगरेज़ी दैनिक बिना देखे घरसे बाहर नहीं निकलते। कहते हैं कोई कुछ पूछ बैठा तो क्या उत्तर देंगे। कोई सामयिक चर्चा आ पड़ी तो कैसे निबाहेंगे। ऐसे लोगोंकेलिए समाचारपत्र ही श्रुति स्मृति और इतिहास सब कुछ हैं। वे जो कहें, पर ऐसे साधारण लोगोंकी जानकारी कोई जानकारी नहीं है।

Economics अर्थ शास्त्र]

बात तो यह है कि जितने विषय समाचार पत्रोंमें आते हैं उनपर जबतक कमसे कम एक एक पुस्तक नहीं पढ़ी जाती तब तक उनका समझमें आना कठिन है।

मार्च और अप्रेलके दो महीनोंमें देखिये 'बजट'-की ही कैसी धूम रहती है। पत्रोंका चतुर्थांश तो अवश्य उससे भरा रहता है। व्याख्यानपर व्याख्यान, और लेख, टिप्पणियां, इस सम्बन्धमें निकला करती हैं, पर जैसा चाहिये उनका महत्व हमारे समझमें नहीं आता। मामूली पत्रोंमें "हत्या काण्ड" और "अग्नि काण्ड" की ख़बर पढ़नेवालोंकी बात कौन कहे, अच्छे पढ़े लिखे लोगोंमें भी इतना धैर्य नहीं है कि वे अंततक बजट-विवादका अनुसरण करें तथा उसपर कुछ विचार करें। इसी लिए यहांपर बजटके मुख्य सिद्धान्तोंका उल्लेख किया जाता है।

गत ३०० वर्षमें सभी स्वतंत्र देशोंके अन्तर्गत यदि प्रतिनिधि-सत्ता-राज्यकी वृद्धि देखी जाय तो पता लगेगा कि इस प्रणालीकी उत्पत्ति सब जगह केवल राष्ट्रकी आय और उसके व्ययका निरोध करनेकेलिए ही हुई है। इस प्रकार राजस्वके (Public finance) इस अंगका अध्ययन मानो राजनीतिका प्रथम सोपान हो गया है। पूर्वकालमें राजाओंकेलिए अपनी प्रजासे जब-तब शुल्क लेना और उसे अपनी इच्छानुसार खर्च करना एक मामूली बात थी। इसके उपरान्त राजभूमि वा राजसम्पत्तिसे जो आय होती थी, कुछ दिनों तक वही राज-धन समझा जाता था। इधर जब प्रत्यक्ष करोंकी परिपाटी चली तभीसे उसकी देख-रेख और हिसाबका क्रम भी निकाला गया। जिन लोगोंसे राजाको पाना था उन्हें कोषाध्यक्षको हिसाब बताना पड़ता था और जिन्हें उनसे लेना होता था वे कोषाध्यक्षसे अपना हिसाब मांगते थे। राजतन्त्र-शासनकालमें अर्थ-सचिव शासनके एक विभागका मालिक होता था। उस समय अपव्यय और अन्यायका बड़ा डर रहता था, क्योंकि जब तक व्यवस्थात्मक-राज्यका उदय नहीं हुआ था, तबतक आय और व्यय दोनों ही गुप्त रखे जाते थे। ख़ैर, अनेक प्रकारके क्लेश और हानि उठानेके बाद बहुत दिनोंके पश्चात् लोगोंको इस बातका ज्ञान हुआ कि राजधनकी उचित व्यवस्थाके हित पदाधिकारियोंमें उत्तरदायित्व होना और उनका प्रजाके समक्ष अपनी कार्यवाही सर्वथा प्रकट करना बहुत आवश्यक है।

इतिहाससे पता लगता है कि राजधनका नियम-बद्ध प्रबन्ध इंगलैंडमें ही आरम्भ हुआ, पर उसपर पार्लियामेन्टका अधिकार १६८८ ई० तक केवल नाम मात्र रहा। उसी साल एक क़ानून पास हुआ जिसका नाम था "एप्रोप्रिएशन ऐक्ट" (Appropriation Act); खर्चके ऊपर बंधेज रखना ही उसका मूल उद्देश्य था। शासनकेलिए जब धनकी आवश्यकता होती थी तो प्रजावर्ग या उनके वे प्रतिनिधि जो "हाउस ऑव कौमन्समें" (House of Commons) थे उसकी सूचना मन्त्री-दल वा केबीनट (Cabinet) तक पहुंचाते थे। वहांसे जब उसकी मंज़ूरी होती थी तब शासकोंको यथेष्ट धन मिलता था। यह कड़ाई ठीक थी। क्योंकि क्या गृहस्थीमें और क्या कारबारमें, जब तक पूरा पूरा हिसाब-किताब नहीं रखा जाता और इसका नियम नहीं होता कि कितना द्रव्य किसके हाथसे खर्च होगा और उसके समझने बूझनेका भार किसपर होगा, तबतक कार्य चलता नहीं। वैसेही राष्ट्रकेलिए भी राज-धन सम्बन्धी कानूनका निर्माण, हिसाबकी जांचका प्रबन्ध तथा प्रस्तुत नियमोंका पालन बहुत महत्व रखता है।

इस प्रकार राजधनके निरोधमें अन्य दूसरे युरोपियन देशोंका इंगलैंड अगुआ हुआ। राज-कोषके प्रबन्धमें सभीने उसका अनुकरण

किया। पर इस सम्बन्धमें कोई ऐसा कठोर नियम जिसका शीघ्र परिवर्तन न हो सके इंगलैण्डमें नहीं, वरन् उसके बाहर और और देशोंमें देखनेमें आता है। यह इंगलैण्डकी प्रणालीकी खूबी थी। साधारणतः वहां बजटकी संस्थाका परिचालन लोक-मतपर निर्भर है। उधर लिपिबद्ध व्यवस्थाकी चाल अमेरिकाके उपनिवेशोंके स्थापित होनेके बादसे चली है। यह भी देखनेमें आता है कि इंगलैंडमें राज-व्ययके निरीक्षणके बहुत पूर्व सेही राजकरोंके इकट्ठा करनेकी विधिका निरीक्षण होता था। इसका कारण प्रत्यक्ष है। लोगोंको क्या मालूम कि शासकगण सरकारी धनका उचित वा अनुचित व्यय करते हैं, पर करोंका आवश्यक वा अनावश्यक होना तुरंत ही उनकी समझमें आ जाता है। इसीलिए अनुचित व्ययकी अपेक्षा अनावश्यक करोंका देना लोगोंको अधिक खटकता है। पर समय पाकर हिसाब जांचनेकी कला (Audit and Account) का फ्रांसमें आविष्कार हुआ और यह गड़बड़ी भी दूर हुई।

अब बजट शब्दकी परिभाषाकी ओर ध्यान देनेपर जान पड़ेगा कि वार्षिक सरकारी आय-व्ययके प्रस्तावको अर्थसचिव "बौजेट" नामी एक छोटेसे बटुएमें अपने साथ रखते थे, इसीलिए वह बजटके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार बजटमें दो बातें आती हैं। प्रथम उसमें यह अनुमान किया जाता है कि यदि शासनके कार्यमें कोई हेर फेर न हुआ तो अन्दाज़न सरकारी आय-व्यय क्या होगा, दूसरे यह निश्चय किया जाता है कि उस साल ख़र्चकेलिए कितना धन चाहिये, किस किस मदमें खर्च करना चाहिये, तथा उस वर्ष कितनी मालगुज़ारी और किन किन मदोंसे आनी चाहिये। अर्थ-सचिवको यह देखना होता है कि उपरोक्त विषयोंके सम्बन्धमें वर्तमान सरकारी नीतिमें कहां तक परिवर्तन करना उचित है। अभिप्राय यह है कि बजटका तैयार होना क्या है मानो सरकारी जमा-खर्चका चिट्ठा बनाना और सरकारी कानून द्वारा नियत करोंके वसूल करने और उसे क्रमानुसार खर्च करनेके अधिकारकी प्राप्ति करनी है।

व्यवस्थापक सभाके सन्मुख बजटके आनेके पूर्व भिन्न भिन्न शासन विभागके कर्मचारीगण अगले सालमें अपना आय-व्यय आंकते हैं। उसीके आधारपर अर्थ-सचिव एक पूरा बजट तैयार करता है। अर्थ-सचिवको आय-व्यय रोकनेका बहुत अवसर मिलता है क्योंकि उसे सर्व प्रकारके खर्चकेलिए सबब दिखलाना होता है। यदि किसी साल होनेवाली आमदनीसे खर्च बढ़ गया तो अर्थ-सचिवको नये टिकस लगाने या ऋण लेनेका प्रस्ताव करना पड़ता है। साधारणतः बजट एक ही सालकेलिए प्रस्तुत किया जाता है, भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न तिथिसे सालका आरम्भ होता है।

काजल

[ले० श्रीयुत मुख्त्यारसिंह जी]

भारतवर्षमें वाणिज्यकी ऐसी दुर्दशा है कि साधारण वस्तुएँ भी अन्य देशोंसे ही आकर बिकती हैं। इस महान युद्धमें भी जब कि अन्य देशोंसे पदार्थोंके आनेमें अनेक कठिनाईयां हो रही हैं हमारे देशवासियोंके आचार व्यवहारमें कोई अन्तर नहीं हुआ और हम जैसे पहिले थे वैसे ही आज दिन भी दीख पड़ते हैं। जापानने इस युद्धसे लाभ उठाकर भारतके बज़ारोंको अपने पदार्थोंसे पाट दिया है, परंतु हमारे दुकानदारोंको जैसे पहिले विलायती वस्तुओंके बेचनेमें आनन्द आता था वैसा ही आनन्द जापानकी वस्तुएं बेचनेमें आता है। देखें हमारी यह अवनत दशा कबतक ऐसी ही बनी रहती है।

[Industry उद्योग]

जिस पदार्थका आज हम ज़िक्र करना चाहते हैं वह एक साधारण पदार्थ है, परन्तु यदि हम उसकी खपतकी ओर ध्यान करें तो ज्ञात होगा कि उसकी कितनी खपत हमारे देशमें तथा अन्य देशोंमें पाई जाती है। काजल काली स्याही बनानेमें काम आता है। छापेकी स्याही, काले वार्निश इत्यादि पदार्थ इससे बनाए जाते हैं। बहुत कम काली वस्तुएं ऐसी होंगी जिनमें यह काममें न लाया जाता हो। प्रत्येक नगरमें इसका खासा खर्च पाया जाता है। इतनी खपत होते हुए भी भारतवासियोंको इसके बनानेका कभी ख्याल तक नहीं आता। प्रायः साराका सारा काजल अन्य देशोंसे आकर हमारे देशमें बेचा जाता है। प्रत्येक वर्ष लाखों रुपये हम काजल खरीदनेकेलिए अन्य देशोंकी भेंट करते हैं। आइये आज हम इसके बनानेकी विधिपर विचार करें और यदि संभव हो तो भारतमें ही काजल बनाने तथा बेचनेका भी प्रबन्ध करें।

काजल क्या पदार्थ है? यदि दीपक जलाया जाय तो उसकी लौसे धुआं निकलता है। दीपकके ऊपरका स्थान इसी कारण काला हो जाता है। प्रायः हमारे घरोंमें जब आंजनेकेलिए काजलकी आवश्यकता होती है तब दीपकके ज़रा ऊपर एक मट्टीकी पाली टांग दी जाती है, जिसपर यह धुआं एकत्रित होता रहता है और काजल बन जाता है। विलायती स्याहीका प्रचार होने तथा कागजपर लिखनेकी प्रथा बढ़ जानेके कारण काजल बनानेका प्रचार नित्यप्रति कम होता जा रहा है। यदि एक मट्टीके तेलकी डिबियाको देखें तो उसमेंसे धुआं और भी अधिक निकलता है। यदि इसपर एक ऐसी ही पाली मट्टीकी लटका देवें तो उसपर काजल बहुत शीघ्र मोटी तहमें जम जाता है। यही कारण है कि जब मट्टीका तेल खुली डिबियाओंमें जलाते हैं चाहे वे डिबिया मट्टीकी हों या शीशेकी या टीनकी उनमें बड़ा धुआं निकलता है। यदि इसी मट्टीके तेलको लम्पमें जलाया जावे और बत्ती फूलमें लगाकर चिमनी ऊपर लगा दी जावे तो धुआंकी मात्रा बहुत ही न्यून हो जाती है। इसका क्या कारण है कि वही तेल जब साधारण डिबियामें जलाते हैं तो अधिक धुआं देता है और जब उसी तेलको लैम्पमें जलाते हैं तो धुआं कम हो जाता है? इसी बातके समझनेपर काजलका उत्पन्न करना निर्भर है। देखो जिस लैम्पमें धुआं बिलकुल नहीं दीख पड़ता उसके फूल या मुहरेके छिद्रोंको कागज़ या किसी और पदार्थसे बन्द कीजिये और देखिये लैम्पमेंसे धुआं निकलना आरंभ होगा और यदि यह कागज़ देरतक रखोगे तो लैम्प बुझ जायगा। अब हमने देखा कि लैम्पका धुआं देना या न देना इन छिद्रोंके बन्द या खुले होनेपर निर्भर है। यह ही कारण है कि फूलके बिगड़नेपर लैम्पमें धुआंकी मात्रा अधिक हो जाती है।

अब यह विचार करना चाहिये कि लैम्पके फूलमें छिद्र क्या काम करते हैं? जिस प्रकार भट्टियोंमें लोहेकी सलाखें अग्नि जलानेकेलिए हवा पहुंचानेका कार्य्य करती हैं, उसी प्रकार यह फूलके छिद्र भी वायुको बत्तीतक पहुंचानेका कार्य्य करते हैं। जब यह छिद्र बन्द हो जाते हैं तो वायुका संचार कम हो जाता है और लैम्प धुआं देने लगता है। अब हमारी समझमें आ गया कि धुआंकी मात्राका न्यूनाधिक होना वायुके पहुंचनेपर निर्भर है। यदि तेलको बिलकुल बन्द कर के डिबियामें जलाया जायगा तो धुआं अधिक प्राप्त होगा। यदि फूलके द्वारा वायु पहुंचेगा तो धुआं कम निकलेगा।

उपरोक्त कथनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि काजलकी अधिकताकेलिए वायुका संचार कम होना उपयोगी है। जब हमने लैम्पके फूलको बन्द कर दिया था तो देखा था कि वायुके न पहुंचनेसे पहिले धुआँकी अधिकता आरम्भ हुई

और फिर वायुके न मिलनेसे लैम्प बुझ गया, अर्थात् वायुके मिलनेसे धुआं कम होता है परंतु वायुके अत्यन्ताभावसे दीपक बिलकुल बुझ जाता है। अतः हम इस परिणामपर पहुंचते हैं कि काजल बनानेकेलिए वायु कम होना चाहिये परंतु वह इतना कम न हो कि दीपक जलना ही असंभव हो जाय और वायुके न मिलनेपर बुझ जाय। इसलिए काजल बनानेकेलिए इस नियमको भली भांति जान लेना आवश्यक है।

यदि पाठकवृन्द उपरोक्त नियमको भली भांति समझ लेंगे तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि उनको अवश्य सफलता होगी। काजल बनानेकेलिए इसी कारण ऐसे स्थानपर दीपक जलाया जाता है जहां वायुका संचार बहुत ही न्यून हो। धुआँको इकट्ठा करने और जमानेकेलिए कमरोंमें कम्बल लटका दिये जाते हैं। जब कम्बलोंपर काजलकी काफी मात्रा जमा हो जाता है तो उसको निकालकर पैकटोंमें बन्द कर बेच डालते हैं।

अलसीके तेलका काजल

इसी सम्बन्धमें यह भी विचार करनेकी बात है कि अधिकसे अधिक काजल और उत्तम कोटिका कैसे पैदा किया जा सकता है। मट्टीका तेल यद्यपि सस्ता है और काजल भी अधिक देता है परंतु इसका काजल भूसले रंगका होता है। उत्तम कोटिका काजल इसका नहीं बन सकता। उत्तम काजल अलसीके तेलको जलाकर उपरोक्त रीतिसे बनाया जाता है। भारतवर्षमें बहुत दिनोंसे अलसीके तेलका काजल उपाड़कर काममें लानेकी प्रथा थी, परंतु सस्ते काजलके आ जानेसे वह प्रथा अब धीरे धीरे जाती रही। उत्तम कोटिकी स्याहियां बनानेमें केवल यही काजल उपयोगी हो सकता है।

धमालों या चिमनियोंका काजल

साधारण प्रकारका काजल कारखानोंकी चिमनियोंसे प्राप्त किया जाता है। जिन कार्य्यालयोंमें कोयला अथवा मट्टीका तेल जलाया जाता है उनके धुआंको चिमनियोंसे लेकर एक स्थानपर इकट्ठा कर लेते हैं और फिर इस प्रकार इकट्ठे हुए काजलको काममें लाते हैं। यह काजल बड़ा सस्ता पड़ता है और कार्य्यालयवाले मुफ्तमें कुछ प्राप्त कर लेते हैं। इस चिमनीके धुआंको नलों द्वारा जमा किया जाता है और अन्तका काजल उत्तम कोटिका तथा चिमनीके पास वाला काजल निकृष्ट कोटिका समझा जाता है।

चीड़ जैसी तेलिया लकड़ियोंसे काजल

बहुतसे स्थानोंमें चीड़ इत्यादि तेलदार लकड़ियोंको जलाते हैं और जलाते समय जो धुआं निकलता है उसको उपरोक्त रीतिसे इकट्ठा कर लेते हैं। यह काजल बड़ा सस्ता पड़ता है और उन कार्यालयोंमें, जहां इस प्रकारकी लकड़ियोंकी छिपटियां, बुरादा आदि पदार्थ बहुत सस्ते मिलते हैं, काजल बनानेका कार्य बड़ी सुगमतासे हो सकता है और उसपर लागत भी कम आती है।

वानस्पतिक काजल

एक और प्रकारका काजल जिसको वानस्पतिक काजल कहते हैं अनेक प्रकारके वानस्पतिक पदार्थोंको जलानेसे प्राप्त होता है। जापान तथा चीनमें जो स्याहियां बनाई जाती हैं वे प्रायः इसी काजलकी बनती हैं। इस कार्यकेलिए प्रायः चावल तथा अंगूरकी लकड़ियां, खांड़ आदि पदार्थोंको एक पात्रमें बंद करके भट्टियोंमें फूंक देते हैं। जब यह लकड़ियां अथवा और पदार्थ भली भांति फुक जाते हैं तो ठंडा होनेपर काजल निकालकर बारीक पीस लेते हैं और काममें ले आते हैं। इन पदार्थोंको फूंकने तथा पीसनेकेलिए विशेष दक्षताकी आवश्यकता है। भारतवर्षमें बादामके छिलकोंको फूंककर इस प्रकार अनेक वर्षोंसे बरते जानेका रिवाज था।

पाशविक काजल

पाशविक काजल Bone black भी इसी प्रकार हड्डियोंको आगमें बंद बरतनमें फूंक देनेसे प्राप्त

होता है। यह पदार्थ सबसे सस्ती जातिका काजल है। पाशविक काजलमें जो स्याही होती है वह भारी होनेसे स्याही आदिके काममें बहुत कम आती है। प्रायः इसे वारनिश आदिमें ही बरतते हैं।

अच्छे बुरे काजलमें अन्तर और उनका उपयोग

काजल जितना बारीक और हलका होगा उतना ही वह अधिक मूल्यवान समझा जायगा। जितना कार्य उत्तम होगा उतना ही महंगा काजल उसमें बरतना होगा। स्याहियां बनानेके लिए अलसीके तेलका काजल सबसे उत्तम माना गया है। भारत मसि Indian ink बनानेमें केवल यही काजल बरता जा सकता है। अन्य मोटे और भारी काजल काम नहीं दे सकते, यद्यपि चीन और जापानमें वानस्पतिक काजलका भी इस कार्यमें प्रयोग करते हैं।

होमियोपैथिक चिकित्सा

३—स्त्रियोंके रोग (गताङ्कसे सम्मिलित)

[ले० पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव]

२—रज अदर्शन (Amenorrhœa) अर्थात् मासिक धर्म्म होकर रुक जाना

एक या अधिक बार होकररुक जानेके कारण गर्भधारण करना, निर्बलता, अकेला बैठना, शुद्ध वायुका न मिलना, आराम कम मिलना, ज़्यादा खूनका निकल जाना, पुरानी बीमारियोंका होना, चोटका लगना, एक बारगी सर्द हवाका लगना, नमी, गीले पैर रखना, ज़मीनपर बैठना, ज़्यादा बर्फ खाना, घुमरी लेना, गुस्सा, डर, या सहसा मनको कष्ट होना, इत्यादि हैं।

कमर और सिरका दर्द, मुंहका बुरा स्वाद, भूखकी कमी, जिह्वाका मैलापन और अजीर्ण इत्यादि इस रोगके चिन्ह हैं।

Medicine वैद्यक]

कुछ दवाएँ नीचे दी जाती हैं:—

(१) अगर एक बारगी मासिकधर्म होकर रुक जाय तो एकोनाइट, बैलाडोना, डलकेमरा, Dulcamara जलसिमियम (Gelsemium), या पलसैटिला, देनेसे फ़ायदा होगा।

(२) अगर डरकी वजहसे रुक जाय तो एकोनाइट, ओपियम, या विरेट्रम एल्ब (Veratrum Alb.) देनेसे फ़ायदा होगा।

(३) यदि मस्तिष्कको धक्का पहुंचनेसे रुक जाय तो कैमौमिला, कौफिया क्रूडा (Coffea Cruda), कोलौसिन्थिस (Colocynthis), हयोस्योमस (Hyoscyamus) या इगनेशिया (Ignatia) देनेसे फ़ायदा होगा।

(४) पुराने मर्ज़ोंमें केलकेरिया (Calcar.carb.) फैरम (Ferrum), कोनियममैक (Conium mac), फासफोरस (Phosphorus), सिनीसियो-औरम (Senecio Aurum), और सीपिया (Sepia) देनेसे फायदा होगा।

दिनमें ३ बार दवा देनी चाहिये और जब कुछ फायदा मालूम हो तो २ बार। किसी दवाको दस या पंद्रह दिन देनेसे फायदा न हो तो दूसरी दवा देनी चाहिये।

रजःस्रावका कमीके साथ होना

यदि ऐसा बदनमें खून कम होनेके कारण हुआ हो तो आरजेन्टम नैट्रिकम (Argentum Nit.) हैलीबोरस (Helleborus Nig.) फैरम (Ferrum) या नैट्रम (Natrum) देना चाहिये।

यदि यह रोग अजीर्ण और शरीरके स्वच्छ और शुद्ध न रहनेसे हुआ हो तो कौलिनसोनिया (Collinsonia) ग्रेफाइटीज (Graphites), और नक्सवोमिका (Nux vomica) देना चाहिये; परन्तु यदि किसी अन्य शारीरिक क्लेशके कारण हुआ हो तो कैलकेरिया फोस, (Calcar. phos.), सिमिक (Cimic) या एक्टिया (Actea), सैक्लेमेन (Cyclamen), कोनि-

यममैक (Conium mac), आयोडियम (Iodium), मरक्यूरियस (Mercurius), नैट्रम (Natrum), फासफोरस (Phosphorus) पलसैटिला (Pulsatilla) सिनिसियोओरम (Senecio-Aurum) देनेसे फ़ायदा होगा।

रजः स्रावका ठीक समयपर न होना।

एक दो या तीन बार ठीक वक्तपर रजः स्राव हो कर बादमें एक या अधिक महीनोंतक बिलकुल बंद रहता है। कभी बहुत जल्दी और कभी देरमें होता है। इस मर्ज़में भी आरसेनिक, ब्राइनिया, कैलकेरियाकार्ब, सिमिक (Cimic), कोनियम, नक्स वोमिका, फ़ासफ़ोरस पलसेटिला, सिनिसियो ओरम, सीपिया, सलफ़र और (Veratrum Alb.) विरेट्रमएल्ब देनेसे फ़ायदा होता है।

इस रोगमें स्वास्थ्य ठीक रखनेके साधारण उपायोंका अनुष्ठान करना चाहिये। शारीरिक और मांसिक परिश्रम कम किया जाय और शरीरके कोमल अंगोंको गर्मी और सर्दीसे बचाया जाय। रजअदर्शन की (एमेनोरिया) चिकित्सामें जो पथ्य बतलाया गया है, उसका सेवन करें।

रजोबाहुल्य (Menorrhagia) में रजःस्राव अधिकतासे होता है, या बहुत दिनोंतक जारी रहता है या जल्द जल्द कई बार होता है। किसी किसी रोगीको यह तीनों बातें हो जाती हैं। यह रोग प्रायः उस समय होता है जब मासिकधर्म के बिलकुल बंद हो जानेका समय करीब आ जाता है, या उन औरतोंको हो जाता है जिनके कई बच्चे हो चुके हैं या कई कच्चे जा चुके हैं। यह बतला देना तो बड़ा कठिन है कि तन्दुरुस्तीकी हालतमें रजःस्राव द्वारा कितना खून निकलना चाहिये, क्योंकि शारीरिक बल, स्वभाव और ऋतुओंका प्रभाव सबपर एकसा नहीं होता। यदि रजःस्राव हो चुकनेपर दुर्बलता या अन्य किसी प्रकारकी पीड़ा बदनमें न मालूम हो तो कह सकते हैं कि ठीक मिक़दारमें खून निकला है। मासिकधर्म ठीक वक्तपर भी क्यों न हो, पर दुर्बलता मालूम होती हो तो भी यह रोगका चिन्ह है। (Dysmenorrhœa) रजकृच्छ्र और रजोबाहुल्यमें यह फ़र्क है कि रजकृच्छ्रमें कुछ तकलीफ़ होती है और रुकावटके साथ ज्यादा ख़ून आता है और रजोबाहुल्यमें तकलीफ़ और रुकावट नहीं होती। इसलिये इलाज करते वक्त इस बातपर ध्यान दिया जाय। चन्द खास दवाइयाँ जो रजोबाहुल्यमें फ़ायदा करती हैं नीचे लिखी जाती हैं।

आरनिका—यह दवा उस वक्त देनी चाहिये, जब कि खूनकी ज़्यादती चोट या गिरनेकी वजहसे हो।

आरसेनिकम—मासिकधर्मके समयके उपरान्त जब पतला खून रतूबत मिला हुआ निकले और जिसकी वजहसे बच्चेदानीपर सूजन आ गई हो।

कैलकेरिया कार्ब (Calcar-carb.)–मासिकधर्म जल्द और ज्यादतीके साथ बहुत दिनतक जारी रहे, बच्चेको दूध पिलानेके ज़मानेमें मासिकधर्मका ज़्यादा खून आना, छातियोंमें सूजन, सरमें दर्द, कपकपी, पेट और दांतमें दर्द, चढ़नेमें चक्कर आना।

चाइना–खूनका जमा हुआ और काले रंगका होना, कभी कम और कभी ज्यादा निकलना, ज्यादा दिनतक जारी रहना, खोपड़ीमें जलन, कानमें गूंजकी आवाज, कमजोरी व गशी।

क्रोकस (Crocus)–काले रंगका फुटकीदार खून, बार बार और ज्यादा आवे, मासिक धर्मका तकलीफके साथ होना, चेहरेका पीला हो जाना, आंखोंके सामने चक्करसे दीखना। इस दवा को खासकर उन दिनोंमें देना चाहिये जब कि मासिकधर्म जारी हो।

फ़ैरम (Ferrum)–मासिकधर्मका जल्द जल्द और ज्यादतीके साथ होना और ज्यादा दिन तक

रहना, भरभराया हुआ चेहरा, खून पतला और पीलापन लिये हुये या गाढ़ा और कालापन लिये हुये निकले। यह रोग प्रायः कमज़ोर औरतोंको होता है। उनको मासिक धर्मके दिनोंमें इस दवा (ओषधि) का सेवन कराना चाहिये।

हैमेमिलिस (Hamamelis)–काले रंगका ज्यादा खून निकलता हो, इस दवाको मासिकधर्मके शुरू होनेपर और उसके बाद भी दे सकते हैं।

ऐपीकौक (Ipecac.)–जब कि खून लाल चमकदार हो और मरीज़को सांस लेनेमें तकलीफ़ हो, दम घुटता मालूम हो और बच्चादानीके क़रीब दर्द मालूम हो।

प्लाटीना (Platina)–जब कि खून काला जमा हुआ निकले और कमरसे लेकर जंघा तक दर्द हो।

पलसैटिला (Pulsatilla)–जब खून जमा हुआ काले रंगका या पीला पानीकी रंगतका निकले, सिरमें दर्द, उदासी, झक, पीठ और पेड़ूमें चमक हो। इस दवाको मासिकधर्म शुरू होनेसे अख़ीर तक बराबर देना चाहिये।

सैबीना (Sabina)—रजःस्राव अधिक हो, जिससे दुर्बलता बढ़े, खून कुछ गाढ़ा और कुछ पतला निकले, कमरसे पेड़ूतक दर्द रहे।

सलफ़र (Sulphur)—बहुत दिनोंतक, अधिक रजःस्राव होता रहे, बंद हो जानेके बाद फिर जारी हो जाय, खुजली पैदा करनेवाला पानी निकले, और यह पानी जहां लग जाय वहां दाने हो जायं।

इन दवाइयोंके सिवाय एमोनियम-कार्ब (Ammonium Carb.), इगनेशिया (Ignatia) आयोडियम (Iodium), बैलेडोना, सिकेल, (Secale) और नक्सवोमिका और क्रिज़ोट (Kreosotus) वगैरा भी देनेसे फ़ायदा होता है।

ठंडे पानीसे बैठकर नहाना और पेड़ू मलना फ़ायदा करता है। मरीज़को घरके ज़िक्र और ख्यालसे बचना चाहिये, क्योंकि इसका असर दवाके फ़ायदेको न होने देगा, बीमारीकी हालतमें खानेका परहेज़ रक्खा जाय और घरका काम काज बहुत कम किया जाय।

३—रजकृच्छ्र

यह वह बीमारी है जिसमें रजःस्राव ज्यादा और दर्दके साथ होता है। कमरके नीचेके हिस्से और पेड़ूमें दर्द मालूम होता है, ख़ून कभी कभी कमभी निकलता है। इसकी चार किस्में होती हैं, लेकिन हर एकमें रहमकी ख़राबी, जलन पैदा करनेवाला दर्द, जैसाकि बच्चा पैदा होते वक्त होता है, मड़ोडका होना, कमर, पीठ, और सिरमें दर्द, गालोंपर रंगत, धड़कन, जल्द सांस आना, पेड़ूमें कटन और दर्द इत्यादि बातें होती हैं। जैसे जैसे मासिकधर्मका वक्त करीब आता है यह दर्द बढ़ता जाता है और बैठना मुशकिल हो जाता है। कभी कभी तो रोगी दर्दकी वजहसे लोटने लगता है। इस रोगमें कई दिनतक या घंटों तक तकलीफ़के साथ रजःस्राव होता रहता है।

नीचे लिखी हुई दवाइयां उपयोगी हैंः—

एकोनाइट—(Aconite) जबकि मूत्रेन्द्रियकी सूजनकी वजहसे बीमारी हुई हो।

आरनिका(Arnica)—अगर बीमारी बवजह गिरने व चोटके हुई हो।

आरसेनिक(Arsenic)—अगर दर्द, बेचैनी, खिचन, बच्चेदानीपर सूजन, भगसे पानीका निकलना वगैरा बातें पाई जायं।

बोरेक्स(Borax)—जबकि बहुत जल्द मासिकधर्म शुरू होजाय और कभी कम कभी ज्यादा और कभी बहुत ज़्यादा हो।

ब्राइनिया(Bryonia)—जबकि बाईका दर्द हो, हिलने जुलनेसे बढ़ जाय और सेकने या गर्म चीज़से आराम मिले।

कलकेरिया-कार्ब (Calcaria Carb.)—जब कि मरीज़ कमज़ोर हो और दर्द जलन पैदा करता हुआ हो और पीठमें और पाख़ानेके मुक़ामपर

ऐंठनका दर्द हो और जल्द जल्द मासिकधर्म होता हो।

कौलोफ़िलम—(Caulophyllam) ऐसी सूरतमें जबकि ख़ून बहुत कम जाता हो।

कैमोमिला—(Chamomilla) ऐसा दर्द हो जैसा बच्चा पैदा होनेके वक्त होता है, पीठसे नीचे और दाहिने बायें दर्द और मरोड़ जिसके छूनेसे दर्दहो और ख़ून कालेरंगका जमा हुआ निकले।

कौक्यूलस(Cocculus)—जबकि ऐंठनके साथ दर्द हो,पेटमें ऐंठन और मड़ोड़,अफरापन हो, मितली आवे चक्कर और गशी आवें।

कौलिनसोनिया(Collinsonia)—कब्ज, बवासीर और पेशाबके मुक़ामके अन्दर तनाव या खिंचाव हो।

हैमेमिलिस(Hamamelis)– कमरमें दर्द, भगसे पानीका जाना,बे वक्त मासिकधर्मका होना, पेशाब होनेमें जलन और बराबर पेशाबकी हाजत होना।

नक्सवोमिका (Nux vomica) मड़ोड़ने और करोदनेवाला दर्द, जिसके बाद ख़ूनके धब्बे आजायं और छिछड़ा सा निकले, मासिकधर्म जल्द और कम मिक़दारमें हो, पेशाबके मुकामके अन्दर जलन, कब्ज़, मसानेमें जलन।

पलसैटिला (Pulsatilla)—मासिकधर्ममें खूनका बहुत कम आना, मासिकधर्म होनेसे पहिले बच्चेदानीमें दर्द, पेट पीठ और कमरमें दर्द, भूखका न लगना, फुरेरी आना, दर्दका कभी एक जगह और कभी दूसरी जगह होना।

सेवीना (Sabina)—पीठसे दर्द शुरू हो और पेडू और पेशाबकी जगह तक पहुंच जाय।

सिकेल (Secale)—ऐसा दर्द जिसमें मालूम हो कि कुछ निकला पड़ता है और बादको काले रंगका ख़ून या छोटे छोटे छिछड़े निकलें, मसाने और अंतरियोंमें कटनका दर्द, पीला चेहरा, ठंडा पसीना आवे या ऐसी सूरतमें जबकि सिर्फ़ दर्द हो और ख़ून वगैरा न निकले।

खुराक एक घंटे, दो घंटे या तीन घंटेके बाद जैसे जैसे फ़ायदा हो यहांतक कि ८ और १२ घंटेके बाद देना चाहिये।

परहेज़—गरिष्ट भोजन, अधिक परिश्रम, तंग कपड़ा, पेटका खुला रखना, और चाय आदि पीना मना है। अच्छा जल्द हज़म होनेवाला खाना, साफ़ खुली हवामें टहलना, सुबह ठंडे पानीसे नहाना और नीचेके हिस्से पीठ और पेटको २, ३ घंटेतक धोना चाहिये। अगर ठंडे पानीसे फुरेरी आये तो गुनगुना पानी लेना चाहिये। काम कम करना चाहिये और आराम अधिक। पूर्ण ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिये।

मौलिकोंकी कथा

'कहां क्षुद्र जन्तु कहां ताजमहल'

[ले० गोपालस्वरूप भार्गव]

'कहां राजा भोज कहां कांगला तैली'—यह कहावत हमारे यहां प्राचीन कालसे चली आई है, पर वास्तवमें इसका असली आशय आजकल ही समझा गया है। यदि कांगला तैली और उस जैसे लाखों महनती उद्यम करके रुपया न पैदा करें और राजाको कर न देवें तो राजा कोरे टेसू राजा ही बने रह जायं।

प्रकृति माताने जितने जीव जन्तु पैदा किये हैं वह सब किसी विशेष उद्देश्यसे किये हैं। माताको अपने पुत्रोंपर बराबर स्नेह होता है। उसकी निगाहमें सब छोटे बड़े बराबर हैं। यदि मानी मनुष्य अपनेको बड़ा मान, अभिमानसे सिर उठाता है, तो प्रकृति भी क्षणमात्रमें उसे अपनी सच्ची स्थितिका संशय रहित ज्ञान करा देती है।

मनुष्य बड़े बड़े जहाज़ बनाकर समुद्रकी छातीपर यात्रा करता है, पर हवाके थपेड़े बच्चों-

की फिरकीकी नाईं उसको फिरा डालते हैं और डुबो देते हैं। कभी बहता हुआ कोई बर्फका पहाड़ आकर टकराता है और उसे रसातलको पहुंचा देता है।

मनुष्य ३०० वर्षके निरन्तर परिश्रमके उपरान्त ४० इंच लम्बी बिजलीकी चिंगारी पैदा कर सका है, पर प्रकृति सैकड़ों मील लम्बी चिंगारियां पैदा करती हुई नित्य क्रीड़ा किया करती है।

इस भांति कहां तक गिनाया जाय, मनुष्यकी शक्ति प्रकृतिकी शक्तियोंके सामने नहींके बराबर है, पर तो भी मनुष्यके अभिमानका ठिकाना नहीं। यदि विचार किया जाय तो मनुष्य छोटी छोटी बातोंके लिए भी बड़े क्षुद्र जन्तुओंकी उपेक्षा रखता है और उनकी सहायताके विना उसका क्षणभर भी जीना असम्भव है।

नत्री-कर्ता—जीवाणुओंका मनुष्यपर उपकार

सोडियम समस्त समुद्रीय या जलीय पौदोंमें पाया जाता है। यदि ऐसे किसी पौदेको सूखी धरतीपर लगा दें तो उसमेंका सोडियम निकल जाता है और उसके स्थानपर पोटासियम आ जाता है। इस घटनासे ही यह स्पष्ट हो जायगा कि धरतीकी उत्पादक शक्तिके लिए, उसमें पोटासियमका होना कितना परमावश्यक है। दूसरा पदार्थ जो पोटासियमसे भी कहीं अधिक आवश्यक है नत्रजन है। यह धरतीमें ऐसे रूपमें प्रस्तुत होना चाहिये कि पौदे इसे सुगमतासे ग्रहण कर सकें। प्रायः इसका अमोनिया या नत्रेतोंके रूपमें होना ही श्रेयस्कर है।

पृथ्वीमेंसे इन नत्रजनीय पदार्थोंको पौदे ग्रहण करके ही वृद्धि पाते हैं। फलने फूलनेपर यदि पौदोंको और उनके फलफूलोंको किसीने न खाया तो वे गल सड़कर पृथ्वीमें ही लय हो जाते हैं। परन्तु यदि किसी मनुष्य या पशुने उन्हें खालिया तो नत्रजनीय पदार्थ शीघ्र ही पहलेकी नाईं पृथ्वीमें नहीं पहुंच पाते। इस प्रकार प्रतिवर्ष खेतोंमेंकी नत्रजन मनुष्यों या पशुओं द्वारा निकाल ली जाती है और उसकी उपजाऊ शक्ति बनाये रखनेकेलिए खेतोंमें खात देना पड़ता है। [खात केवल नत्रजनीय पदार्थ या फोस्फोरसके यौगिक होते हैं।]

अब प्रश्न यह उठता है कि जो नत्रजन मनुष्य या पशु खा जाते हैं उसका क्या होता है?

उसका कुछ अंश तो मूत्र और पुरीषमें होकर निकल जाता है और कुछ शरीर ग्रहण कर लेता है। प्रायः मूत्र पुरीष खाद बनानेके काम आते हैं। [देखिये विज्ञान भाग ४ संख्या ३ पृष्ठ १२४ 'अमोनिया']

मनुष्य या पशुओंके मरनेपर भी शरीरके अवयव मट्टीमें मिल जाते हैं। इस प्रकार थोड़े बहुत दिनों बाद नत्रजनीय पदार्थ पृथ्वीके पृथ्वीमें ही पहुंचे रहते हैं।

पृथ्वीमें नत्रजन कहांसे आई?

(१) जब जब बिजली चमकती है, थोड़ी ओषजन नत्रजनके साथ मिलकर नत्रजन ओषित बना लेती है। वर्षा होनेपर यह ओषित पानीमें घुलकर नत्रिकाम्ल [शोरेका तेज़ाब] बनाते हैं और पृथ्वीपर आ गिरते हैं, जहां अम्ल और क्षारोंके संयोगसे नत्रेत (nitrates) बन जाते हैं।

(२) मिट्टीको आप निरी निर्जीव मिट्टी न समझिये। इसके प्रत्येक अंशको आप ईश्वरकी रासायनिक प्रयोगशाला जानिये। इन प्रयोग शालाओंमें इगलैंगड और अमेरिकासे लाकर मिस्टर फोक्स द्वारा प्रयोग नहीं कराये जाते। यहां तो उसी भूमिके सपूत दिन रात काम करते रहते हैं। मट्टीके छोटेसे ढेलेमें भी लाखों कीटाणु वायुसे थोड़ी थोड़ी नत्रजन लेकर नत्रिकाम्लमें परिणत करते रहते हैं।

इन्हीं क्षुद्र जीवाणुओंकी बदौलत हमारे खेत हरे भरे दीखते हैं।

(३) मृत शरीर या शवोंमें भी करोड़ों कीटाणु आ मौजूद होते हैं। उनके द्वारा शवोंकी कुछ

नत्रजन तो वायुमें मिल जाती है और कुछ अमोनियामें परिणत हो जाती है। अन्य प्रकारके कीटाणु अमोनियासे नत्रसाम्ल और तदन्तर नत्रसाम्लसे नत्रिकाम्ल बनाते हैं।

नत्रजनके आवागमनका चक्र

यह नीचे दिये हुए चित्रसे स्पष्ट हो जायगा।
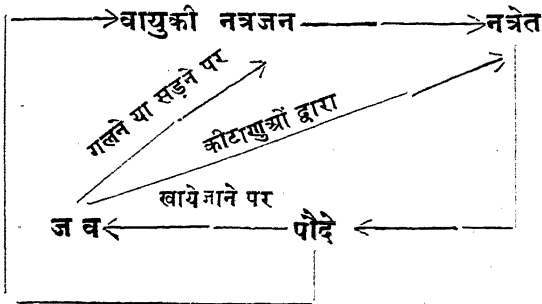
चिली देशका शोरा

संसारके सभी सभ्यदेशोंकी आबादी बढ़ रही है। वहां आबादी बढ़नेसे देशहितैषियोंको यहांवालोंकी नाईं दुःख नहीं होता। वे आबादी घटानेकी तदबीर न करके, पृथ्वीकी उपजाऊ शक्ति बढ़ानेका प्रयत्न करते हैं। इसी उद्देश्यसे वहां भांति भांतिके खाद या उपज-वर्द्धक खेतोंमें डाले जाते हैं।

इन खातोंमें सबसे प्रमुख चिली देशका शोरा है। यह सोडियम नत्रेत असंख्य जीवाणुओंके निरन्तर परिश्रमसे सैकड़ों वर्षोंमें बन पाया है। यह वहांकी भूमिमें विद्यमान है और उसी भांति निकाला जाता है जैसे भारतमें साम्भरमें नमक निकाला जाता है। प्रतिवर्ष सात किरोड़ मन चिली-शोरा चिलीसे देशान्तरको भेजा जाता है।

चिली शोरा कब तक काम देगा

पन्द्रह बीस वर्ष हुए जब सर विलियम क्रुक्सने पहले पहल यह बात सुझाई कि चिली-शोरा तीस सालके भीतर ही समाप्त हो चुकेगा। तदन्तर भूमिकी उपजाऊ शक्तिके बढ़ानेका कोई उपाय न रह जायगा और मनुष्य जातिको घोर अकालका सामना करना पड़ेगा। पर

अब चिन्ता न करनी चाहिये

क्योंकि कृत्रिम नत्रेत बनानेके बहुतसे उपाय निकाल लिये गये हैं, जिनका फिर कभी उल्लेख किया जायगा।

पोटासियमकी महिमा

पोटासियमके साधारण गुण पिछले अङ्कमें दिये जा चुके हैं। यह उन मौलिकोंमेंसे है, जिनके बिना पशु, पक्षी, मनुष्य या घास पातका जीवित रहना सम्भव नहीं है। अतएव इसे जीवन-मूल कहें तो भी अत्योक्ति न होगी।

पोटासियम यमका अस्त्र भी है

पर इसका एक यौगिक यमका अस्त्र भी है। यह है शोरा अर्थात् पोटासियम नत्रेत। इसीसे बारूद बनती है, जो वर्तमान युद्धमें लाखोंका नाश कर रही है।

पोटासियम कर्बनेत (Carbonate of Potassium) साबुन और कांचके बनानेके काम आता है। यह राखमें पाया जाता है और पौदोंकी बीमारियोंकी एक औषध भी है।

पोटासियम ब्रमिद और आयोदिद भी आयुर्वेदमें प्रयुक्त होते हैं।

खटिक या केलसियम

सर हम्फ्रीडेवीने इसको पहिली बार तैयार किया था। हालमें इसके बनानेके और कई उपायोंका भी आविष्कार हुआ है, जिससे इसका मूल्य ३३००) फी सेर से ॥।) फी सेर हो गया है।

इसमें अन्य धातुओंकी सी न चमक है न दमक। यह भी मुलायम होता है। इसके यौगिकोंका बड़ा महत्व है, यद्यपि स्वयम् यह एक तुच्छ पदार्थ है।

उच्च कोटिके जीवन की नींव!

पाठको जरा विचारिये कि यदि मनुष्यों और पशुओंके शरीरमें अस्थि पिंजर न होता, तो इनकी आकृति कैसी होती और तब संसार में

कैसा दृश्य देखनेमें आता। सम्भवतः मांसके लोथड़े गेंदोंकी तरह इधर उधर लुढ़कते फिरते और सभ्यताका कभी उदय भी न होता। इन अस्थि पिंजरोंकेलिए आप केलसियम या खटिकके चिरबाधित हैं। यह फोसफोरस और ओषजनको पकड़कर (अर्थात् उनके साथ यौगिक बनाकर) उनसे काम लेता है और अस्थि निर्माण करता है। इस प्रकार उच्चकोटिके जीवोंका होना विना केलसियमकी सहायताके असम्भव था।

इतना ही नहीं केलसियमने एक और प्रकारसे जीवोंके साथ उपकार किया है। यह बात इससे स्पष्ट हो जायगी कि खड़िया या बेफुके चूनेको सिरकेसे छू दीजिये और देखिये कि सनसनाती हुई क्या चीज उसमें से निकल पड़ती है। यह हमारी पूर्व परिचित गैस कर्बनिकाम्ल गैस या कर्बनद्विओषित है। सृष्टिके आदिमें केलसियम यदि कर्बनद्विओषितको कैद न कर रखता तो ज़रा विचारिये कि आज वायुमण्डलमें यह गैस किस महत्परिमाणमें होती? फिर क्या आप आग जला सकते, क्या आप स्वांस ले सकते। क्या पृथ्वीका तापक्रम उतना ही होता जितना अब है?

पाठकवृन्द! कर्बनद्विओषितकी चादर जो पृथ्वीको ढके होती, वह पृथ्वीको ठंडा न होने देती और सम्भवतः ऐसी उत्तप्त दशामें रखती कि पानीकी जगह शायद सीसे और टीनकी वर्षा हुआ करती। यदि पृथ्वी ठंडी भी हो जाती तो केवल खड़ियाकाल (Carbonaceous Period) के भूधराकार उरग (Reptiles) ही पृथ्वीतलपर जीवित रहते। मनुष्य तथा अन्य उच्चकोटिके दूध पिलानेवाले जानवरोंका पैदा होना सर्वथा असम्भव था।

यह सच है कि बहुत कुछ कर्बनद्विओषित तो समुद्रमें ही घुल जाता पर तौ भी इतना अवश्य बच रहता कि उपरोक्त घटनाएं होतीं। केलसियम किसी न किसी रूपमें सभी पौदों, पशुओं और पक्षियोंमें पाया जाता है। उच्चकोटिके जीवोंकी हड्डियां और निम्न कोटिके जीवोंके ऊपरके खोल भी केलसियमके यौगिकोंके हो बने हुए हैं। जीव जन्तुओंके खोल बननेमें कितना केलसियम खपता है, इसका अनुमान लगाना सहज नहीं है। समुद्रमें रहनेवाली खोल-मछली (shell-fish) और फोरेमिनिफरा जातिके जीवोंके खोल इसी पदार्थके बने हुए हैं। ऐसे ऐसे छोटे जीव गहरे समुद्रमें असंख्य परिमाणमें घूमते फिरते हैं। इनके मृत शरीरोंकी वर्षा समुद्र तलपर दिन रात हुआ करती है। समुद्रकी तलैटीमें इनकी कितनी गहरी तह जमती है यह हमें मालूम नहीं, पर धरतीपर हम देख सकते हैं कि पुरातन कालमें कितनी विस्तृत और कितनी गहरी तह जमी थी, क्योंकि आज कलकी सूखी धरतीका बहुत कुछ अंश समुद्रकी तलैटीमें रह चुका है।

इन क्षुद्र जन्तुओंके शव समुद्रकी तलैटीमें जमा होकर खड़ियाकी तहें बनाते रहते हैं और जब कभी इन तहोंपर अधिक तापक्रम और दबावका प्रभाव पड़ता है, तभी यह संगमर्मरमें परिणत हो जाती हैं।

जो ताजमहल आज संसारमें विख्यात है वह इस प्रकार वास्तवमें अगणित क्षुद्र जन्तुओंके शवोंका संग्रह मात्र है।

केलसियम, भारियम, स्ट्रोंशियम

यह तीनों धातु एक ही जाति और टोली की हैं (family and group)। इनके गुण एक दूसरेसे बहुत मिलते जुलते हैं। यदि गुणोंमें कुछ अन्तर भी है तो वह परमाणु भारानुसार घटता बढ़ता है। जैसा आगेकी सारिणीसे स्पष्ट होगा।

इनके यौगिकोंके गुणोंमें भी यही नियमित परिवर्तन पाया जाता है।

जब इन धातुओंके यौगिक जलाये जाते हैं तो कई रङ्ग पैदा होते हैं। केलसियमके जलनेसे

	केलसि-यम	भारि-यम	स्त्रंतम
१. परमाणुभार	४०	८७·६	१३७·३७
२. गुरुत्व	१·५	२·५	३·७
३. अणुविक आयतन	२६·४	३८·७	३६·६
४. द्रवण विन्दु	७८०°श	८००°श	८५०°श

हलका लाल, स्त्रंतम और भरियमके जलनेसे गहरा लाल और हरा रंग पैदा होता है। अतएव इनके यौगिकोंका प्रयोग अतिश्बाज़ीमें होता है।

मणि

कहते हैं कि मणि रात्रिमें प्रकाश देती है। बहुतसे ऐसे पदार्थ हैं जो रात्रिको मन्द मन्द प्रकाश पैदा किया करते हैं। उनमेंही इन धातुओंके गन्धिद् शामिल हैं। इनके गन्धिदोंको यदि दिन भर धूपमें रखें, तो रात्रिको उनमेंसे प्रकाश निकलता रहेगा। सम्भव है इन्हीं पदार्थोंको मणि भी कहते हों।

नवीन रसायनविद्याका इतिहास।

[ले० डा० वी० के० मित्र, एल० एम० एस०]

जूनकी संख्यामें हम पाठकोंको प्राचीन रसायनी विद्याके इतिहासमेंसे नागार्जुन, वृन्द, चक्रपाणि आदि भारतीय रससिद्धोंका क्रियाकलाप कुछ दिखा चुके हैं। इस लेखमें हम नवीन रसायनी विद्या अर्थात् आधुनिक कैमिस्ट्री-के जन्मके विषयमें कुछ ऐतिहासिक कथाओंका वर्णन करेंगे।

मध्यकालमें जब भारतीय शास्त्रोंपर अविद्याकी मोटी चादर छा गई, उसी समय एक और पूर्वीय जातिमें विद्याका अरुणोदय होने लगा। इसने भारतके विविध विद्या रूपी अमूल्य वृक्षोंको यहांसे उठाकर योरुपकी भूमिमें लगाना आरम्भ किया, जहां वे फल फूलकर ऐसे सम्वर्धित हुये कि आज केवल योरुप खण्ड बल्कि सारा सभ्य संसार अपने जीवनकेलिए उनपर निर्भर है।

Chemistry रसायन शास्त्र]

विद्यादेवीके ये नवीन सेवक कौन थे, कब इनका प्रादुर्भाव हुआ, क्योंकर इन्होंने अपनी अज्ञान अवस्थामेंसे निकलकर सारे सभ्य संसार [पूर्व तथा पश्चिममें] विद्याका प्रकाश फैलाया। यह सब ऐतिहासिक रहस्य हैं। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यह अमर कीर्ति अरब जातिकी है। परन्तु नियन्त्रित राजशासनके प्रभावसे यही अति बर्बर जाति एक समय उन्नतिकी चर्म सीमापर पहुंचकर आधुनिक जगतकेलिए सभ्यताके हर एक विभाग में अनमोल सम्पत्ति छोड़ गई। क्या हम इससे उऋण हो सकेंगे?

भारतीय रससिद्धों तथा अरबीय कीमियागरों-के सिद्धान्तोंमें एक बड़ा सादृश्य पाया जाता है। इन दोनों सम्प्रदायोंने तांबा, सीसा आदि हीन धातुओंको स्वर्ण, रौप्य आदि उत्तम धातुओंमें परिणत करनेके प्रयत्नमें कितने ही वैज्ञानिक तत्वोंका आविष्कार किया। दोनों सम्प्रदाय धातुओंके साधारण गुणोंको यथा उनका गुरुत्व, कान्ति, झङ्कार शब्द, तार तथा पत्र बननेकी शक्ति आदिको जानते हुये इनको यौगिक समझते थे। भारतवासियोंका तो ऐसा समझनेका कारण उनका प्राचीन पञ्चभूत वाद था। उसके अनुसार प्रत्येक साधारण भौतिक पदार्थ "क्षित्यपतेज मरुतव्योम" पञ्चभूतोंसे बने हुये हैं। परन्तु सम्भवतः अरबोंने भी तान्त्रिकोंकी देखा देखी धातुओंको यौगिक माना। दोनों सम्प्रदाय यह मानते थे कि यदि धातु किसी प्रयोगसे उपर्युक्त गुणोंको छोड़ दे तो वह फिर "भस्म" हो जाता है और यदि ऐसे भस्मोंमेंसे फिर उसको धातु-रूपमें परिणतकर सकें तो उसका पुनर्जीवन होता है। उन्होंने अनेक धातुओंका भस्म तैयार किया। बहुधा धातु भस्मोंको अपेक्षतया लघुपाकर लघुत्वको ही भस्मका प्रधान धर्म्म मान

लिया । अरबीय रससिद्धोंने भी धातुभस्म के विषयमें एक इसी प्रकारका मत निश्चित किया। वह कहते थे कि धातुओंके अन्दर एक दाह्य पदार्थ है जिसका गन्धक स्वरूप है। उन्हींमें एक और सूक्ष्म प्राणवत पदार्थ है जिसका स्वरूप पारद है और इसीके निकल जानेसे धातुका भस्म बन जाता है जोकि लवण है।

अरबीय रससिद्धोंकी यही शिक्षा स्टहाल आदि मध्ययुगके योरूपीय रासायनिकोंकी फ्लोजिस्टनवादकी भित्ति बनी। संक्षेपसे फ्लोजिस्टन-वादियोंका मत यह है कि जितने भी दाह्य पदार्थ हैं यथा लकड़ी, गन्धक, तेल और धातुओंमें रांगा सीसा आदि, जो उत्तप्त करनेसे सुगमतासे जलकर "भस्म" में परिणत हो जाते हैं, इन सबमें एक सामान्य दहन शील पदार्थ फ्लोजिस्टन नामका है। जिस पदार्थमें जितना अधिक यह दहन शील पदार्थ (फ्लोजिस्टन) होगा वह उतना ही अधिक दाह्य होगा। इसीलिए कोई पदार्थ कम और कोई अधिक दाह्य है। इस काल्पनिक फ्लोजिस्टन पदार्थके भौतिक अस्तित्वको मानकर उन्होंने यह भी समझा दिया कि काष्ठादि पदार्थोंके जलनेसे उनकी भस्मका भार कम हो जाता है क्योंकि फ्लोजिस्टन निकल जानेसे उनकी भस्म हलकी हो जाती है।

आप एक तार मेगनीसियम धातुका लीजिये और उसका एक प्रान्त तेज आंचमें पकड़िये। वह अति तीव्र प्रकाशसे जलकर "भस्म" हो जायगा, जो अपेक्षतया धातुसे बहुत हलकी होती है। परन्तु प्रश्न यह है कि साधारण लकड़ीकी भस्मकी तरह यह वास्तवमें मूल धातुसे हलकी है या नहीं। परीक्षासे देखा गया है कि धातु भस्म अपनी पूर्वावस्थासे भारी होती है। लकड़ीकी भस्मके हलका होनेका कारण यह नहीं कि उसमें-से फ्लोजिस्टन निकल जाता है वलिक कर्बन और अभिद्रवजन जो उनमें सम्मिलित रहते हैं वह हवाके ओषजनके साथ मिलकर कर्बनद्विओषित तथा जलरूपमें निकल जानेके कारण लकड़ीका भस्म लघु होता है। यह छोटीसी बात यद्यपि आज हमारे स्कूलोंमें रसशास्त्रकी प्रथम कक्षामें बताई जाती है तथापि १८वीं शताब्दीके धुरन्धर जर्मन रासायनिक स्टहालकी समझमें नहीं आई। स्टहालसे पूर्व दो और रासायनिकोंने यद्यपि इस बातको प्रमाणित कर दिया था कि रांगा तथा सुर्मा भस्म होनेके अनन्तर पूर्वावस्थासे भारी हो जाते हैं तथापि स्टहालने इस बातपर ध्यान नहीं दिया। स्टहालकी शिक्षानुसार बाकी योरुपके सब रासायनिकोंने भी इसी भ्रान्तमतको भेड़चालसे मान लिया—परन्तु जब उनकी दृष्टि धातु भस्मकी ओर आकर्षित हुई तब इन्होंने कह दिया कि फ्लोजिस्टन ऐसा सूक्ष्म पदार्थ है कि उसमें भार तो होता ही नहीं बल्कि उसके निकल जानेसे पदार्थोंमें भार बढ़ जाता है। क्या शान्ति प्रद समाधान हुआ!

जब कोई भ्रान्तमत बद्धमूल हो जाता है तो उसके विरुद्ध प्रत्यक्ष प्रमाण मिलनेपर भी हम अपने सिद्धान्तोंके पक्षपाती ही बने रहते हैं। यही साधारण मनुष्यकी प्रकृति है। परन्तु विज्ञानका मार्ग इससे उलटा है। आप देखते हैं कि किसी भ्रान्तमतके संशोधनमें कितना वाद विवाद और खंडन मंडन हुआ करता है। जो बात आज भारतमें हो रही है वही योरुपमें हो चुकी है। परन्तु योरुपवाले अपने किसी सिद्धान्तको ईश्वरीय समझकर उसको अमोघ नहीं समझते। हम बहुधा भौतिक विषयोंमें श्रुति—प्रमाणकी लकीर पीटे जा रहे हैं।

भौतिक क्या हमारी सारी विद्याएँ प्राकृतिक घटनाओंपर विद्वानोंके विचारोंका फल हैं। हम एक ही प्रकारकी दस बीस घटनाएँ देखते हैं जैसा कि दहनशील पदार्थोंका जलना और उनके विषयमें स्टहालकी तरह कोई मत निर्धारित कर लेते हैं। हम दिन रात चांद, सूरज और तारोंको अनन्त आकाशमें प्रतिदिन उदय और अस्त

होते हुये देखते हैं और सहजमें ही यह निश्चित कर लेते हैं कि यह अनगिनत ज्योतिष्क हमारी धरतीके चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं। इसी तरह हम शरीरकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंको कई काल्पनिक दोष अर्थात् वायु, पित्त, कफके आधीन समझते हुये चले आ रहे हैं। यद्यपि आधुनिक शरीर-विज्ञान शास्त्रसे इनके इस प्रकारके गुण सिद्ध नहीं होते। इसी प्रकार औषधियोंके प्रभावके सम्बन्धमें प्राचीनोंने जो कुछ कृत्रिम उपाय अवलम्बन किया है यथा उनके रस वीर्य-विपाक वह भी आधुनिक औषधि विज्ञानकी कसौटीपर सम्पूर्ण सत्य प्रमाणित नहीं होते। अतएव नवीन रसायन विद्याके इतिहाससे हम देखेंगे कि योरूपमें जिन पृथाओंपर प्राचीन विद्याओंका पुनरुद्धार हुआ है उसी रीतिसे भारतके भी शास्त्रोंका संशोधन हो सकता है और वह पृथा क्या है? प्राकृतिक घटनाओंका बारम्बार पर्य्यवेक्षण, उनपर भिन्न भिन्न प्रयोग करना और इन प्रयोगोंके साक्षात फलोंपर अपने मतको स्थापन करना।

पशु-प्रजनन

अर्थात्

पशुओंकी नस्ल पैदा करनेके नियम

[लेखक—ऐल० एजी०]

हमारे देशमें पशुओंकी अच्छी नस्ल पैदा करनेकी ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है, जिसके कारण इस देशमें पशुओंकी अच्छी अच्छी जातियां लुप्त होती जाती हैं। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि गांवोंमें जो सांड़ किसीके नामपर छोड़े हुये होते हैं उन्हींके द्वारा यह कार्य प्रति पादन किया जाता है। सब लोग भली भांति जानते हैं कि यदि मा बाप अच्छी नस्लके, बलिष्ठ और निरोग होंगे तो सन्तान भी अच्छी होगी। यह बात पशुओंके लिये भी लागू है। ग्रामीण सांड़ जिनकी कि नस्लका कोई पता नहीं और जो केवल पुण्यके विचारसे ही छोड़े जाते हैं इस कार्यको ठीक ठीक नहीं कर सकते, क्योंकि वे इस अभिप्रायसे छोड़े ही नहीं जाते। इनकी सन्तान भी उत्तम नहीं होती, क्योंकि इनमें वे गुण ही नहीं पाये जाते जो कि इस कार्यके उपयुक्त सांडमें होने आवश्यक हैं।

Animal breeding पशु-प्रजनन]

भारतीय किसान नस्ल पैदा करनेकी विद्यासे अनभिज्ञ हैं। ग्वाले भी इसके बारेमें अधिक ज्ञान नहीं रखते। यदि नियमानुसार कार्य किया जाय तो इच्छित नमूनेकी नस्ल पैदा करनेसे पूर्व हमको उस नमूनेके गुणोंको ध्यानमें रख लेना चाहिये। फिर जिन नर और मादोंमें वे गुण पाये जायं उन्हें नस्ल पैदा करनेके लिये छांट लेना चाहिये। इसके पश्चात् धैर्य और सावधानीके साथ तब तक तत्पर रहना चाहिये जब तक कि सन्तानमें इच्छित गुण स्थायी न हो जायं। इस कार्यके पूरा होनेमें कई वर्ष लगते हैं और ३, या ४ पीढ़ीके पश्चात् कुछ कुछ चिन्ह स्थिर होते हैं।

नस्ल पैदा करनेका काम दो प्राकृतिक नियमोंपर अवलम्बित है। एक नियमसे माता पिताके गुण सन्तानमें पाये जाते हैं और दूसरेसे उन गुणोंमें कुछ कमी या बेशी हो जाती है। पहिलेको बीज परम्पराका या सञ्चारका नियम [Law of Heredity] और दूसरेको परिवर्तनका नियम [Law of variation] कहते हैं। इन्हीं दो नियमोंपर नस्ल पैदा करनेका कार्य निर्भर है।

जातियोंके प्रधान गुण बच्चोंमें पहिले नियमके अनुसार आजाते हैं। यह बच्चेके उस सूक्ष्म शरीरमें ही मौजूद होते हैं जो कि माता पिताके रज और वीर्यसे मिलकर बनता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उस सूक्ष्म शरीरका सम्बन्ध जिसका कि बच्चा बनता है उस सूक्ष्म शरीरसे होता है जिससे कि माता पिता बने थे।

इसी कारणसे माता पिताके गुण बच्चोंमें रहे आते हैं और बच्चेकी शक्ल मातासे मिलती जुलती रहती है। इसी भांति किसी जातिके गुण उसकी हर एक पीढ़ीमें पाये जाते हैं।

बीज परम्परा अर्थात संस्कारका नियम

माता पिताके प्रधान गुणोंके सन्तानमें आ जानेको बीज परम्परा या संस्कारका नियम Law of Heredity कहते हैं। इस नियमके अनुसार साधारण शारीरिक गुण और बुद्धि बच्चेमें आ जाती हैं। असाधारण गुण और शिक्षा द्वारा प्राप्त गुण बच्चेमें आ भी सकते हैं और नहीं भी आते। रुधिर और मज्जातन्तु सम्बन्धी रोग भी सन्तानमें चले आते हैं।

परिवर्तनका नियम

पहिले नियमके अनुसार माता पिताके गुण सन्तानमें आजाते हैं परन्तु कोई गुण तो अधिक पाया जाता है और कोई न्यून। यह विभिन्नता इसी नियमपर निर्भर है। हम देख सकते हैं कि एक गायके बच्चे, साधारण गुणोंमें तो एक दूसरे से मिलते जुलते हैं पर उनमें सब गुण यकसां नहीं पाये जाते। किसीमें कम और किसीमें अधिक होंगे।

परिवर्तनके नियमके ही कारण हम किसी समय भी अच्छी नस्ल पैदा करनेके लिये अच्छे नर और मादा छांट सकते हैं और बीज परम्पराके अनुसार आशा कर सकते हैं कि उनके गुण उनकी सन्तानमें पाये जायंगे। इस प्रकार इन दो नियमोंके अनुसार कार्य करनेसे इच्छित नमूनेकी नस्ल पैदाकर सकते हैं।

प्राबल्य या (Prepotency)

प्रायः माता पिताके साधारण और विशेष गुण सन्तानमें आ जाते हैं। जिस सन्तानमें यह गुण प्रबलतासे पायेजाते हैं उसे प्रबल (Prepotent) कहते हैं।

वंशावली (Pedigree)

किसी पशुके वंशके इतिहासको उसकी वंशावली कहते हैं। इसमें उसके माता पिताका भी विवरणमय गुणोंके सम्मलित होता है।

परावर्तन या (Atavism)

यदि सन्तानमें दादे परदादेके गुण प्रगट हो जायं तो इसे परावर्तन या (Atavism) कहते हैं।

प्रति सम्बन्ध (Co. relation)

इससे शारीरिक और मानसिक गुणोंमें अधिक परिवर्तन हो जाता है। इसका प्रभाव यहां तक होता है कि एक अंग किसी दूसरे अंगसे बलिष्ट होजाता है।

विलास (Sport)

अर्थात् शारीरिक और मानसिक गुणोंमें प्रकृतिके प्रतिकूल परिवर्तन होना जैसे छः उंगलियोंका होना।

गर्भ स्थापित करनेकी शक्ति (Fecundity)

यदि पशुके रहन सहनमें किसी प्रकारका परिवर्तन होजाता है या वह अधिक मोटा हो जाता है या अधिक मीठा भोजन करता है तो यहशक्ति कम हो जाती है। यदि कोई रोग हो जाता है तो भी यह शक्ति कम हो जाती है। ज्यों ज्यों पशुकी अवस्था बढ़ती जाती है त्यों त्यों यह शक्ति घटती चली जाती है। बचपनसे यौवन कालतक यह शक्ति प्रबल होती जाती है। एक ही घरानेकी सन्तानोंके संयोगसे पैदा होनेवाली सन्तानोंकी भी यह शक्ति घट जाती है।

नस्ल पैदा करनेकी विधि

(१) एक कुलकेही नर-मादाके द्वारा नस्ल पैदा करना (In and in breeding or High breeding)-इसके अनुसार भाई और बहिनके मेलसे या बाप बेटीके मेलसे नस्ल पैदा की जाती है। इस विधिके अवलम्बन करनेसे जातिमें विशेष गुण और प्राबल्य (Prepotency) बढ़ाई जा सकती है। गुण अंकित करनेकी शक्ति नरमें अधिक होती है, इसलिए नर बड़े घरानेका होना चाहिये। इस विधिसे सन्तान नाजुक और रोग ग्रसित हो जाती है। शारीरिक और मस्तिष्कके रोग बढ़

जाते हैं। गर्भ स्थापित करनेको शक्तिका ह्रास होता जाता है। इसलिये इस विधिका उपयोग केवल विद्वान और तजुर्बेकारोंको ही करना चाहिये, क्योंकि इसमें हानि उठानेकी अधिक सम्भावना है।

(२) (Cross breeding) अर्थात् दो भिन्न भिन्न घरानों या जातियोंके पशुओंके संयोगसे नस्ल पैदा करनाः—

यह प्रणाली पशु-कुलकी उन्नति करनेके उपयोगमें लाई जाती है। पहिले मेलसे जो सन्तान होती है उसमें गुण अधिक प्रगट होते हैं। जैसेः—

'क' एक 'अ' घरानेकी गाय है और 'च' एक 'व' घरानेका बैल है। इनके संयोगसे 'ट' बच्चा पैदा हुआ इस 'ट' बच्चेमें आधे गुण मा के हैं और आधे बापके। इस 'ट' से जो सन्तान होगी उसमें 'क' और 'च' के गुण घट जायेंगे।

दर्जा (Grade or Gradation)

नीच जातिकी मादा जब कि ऊंच जातिके नरसे मिलाई जाती है तो बच्चेमें उन्नति धीरे धीरे होती है। यदि इसी नियमको पालन करते चले जायं तो उन्नति बराबर होती चली जायगी। इस प्रणालीमें नर हमेशा ऊंचे घरानेका होता है और मादा नीचे घरानेकी।

नस्ल पैदा करनेकेलिए पशुओंका छांटना

नरका छांटना सबसे ज़रूरी है। नरमें वह सब गुण होने चाहियें जो कि हम बच्चेके अन्दर चाहते हैं। हर एक गुणकेलिए कुछ नम्बर मुक़र्रर कर देने चाहियें। दोषोंके नम्बर काट करके हरएक पशुको नम्बर देने चाहियें। जिसके नम्बर सबसे अधिक हों उसीको नस्ल पैदा करनेकेलिए चुनना चाहिये।

"बया"

[ले० श्रीयुत श्रीहरि-वैजनाथ-जगदीश]

संस्कृतमें एक साधारण पर बहुत उपयोगी कहावत है—"अति-सर्वत्र वर्जयेत।" इसका अनुसरण प्रकृति भी करती है क्योंकि जब ग्रीष्मऋतुके तापकी मात्रा इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वह असह्य हो उठती है तो इन्द्र महाराज ऊपरसे झट वर्षाकी धार छोड़ने लगते हैं।

यह जुलाईका महीना है पर आज भी गरमीके मारे दम फूलता है। सड़क, मैदानमें धूल ही धूल है। कहीं आने जाने लायक़ नहीं। इधर हवा ज़रा भी नहीं चलती। कामके नामसे माथा ठिनकता है। प्यास ऐसी लगी है कि किसी चीजसे बुझती ही नहीं। बात तो यह है कि इस समय तबीयतमें जो हैरानी है वह शायद कभी न भूले। ख़ैर ऐसी बुरी दशा केवल हम ही लोगोंकी नहीं है। प्रकृतिमें सारे जीव ऐसेही व्याकुल हो रहे हैं। यहांतक कि कौओंने भी छेड़ छाड़ करना बन्द कर दिया है। कुछ हिलता डोलता नहीं दिखाई देता। इतनी भी हवा नहीं कि वृक्षके पत्ते भी डोलें।

इस सन्नाटेके उपरान्त, धीरे धीरे ठंडी हवा चलने लगती है और देखते ही देखते हवाके झोंके आने लगते हैं। दूरपर पहले कुछ शब्द सुनाई पड़ता है और फिर वह गर्दगुबारका एक बादल लिए हुए निकट आ जाता है। इस गर्दसे मकानोंमें अंधेरासा छा जाता है। बस अब आंधी आना ही चाहती है जिसके भयसे पेड़ कांपने लगे। बादलोंकी गरज जो दूरसे केवल घरघरातीसी सुनाई देती थी अब तोपोंकी तरह तड़कने लगी। बिजली अन्धेरेमें इधर उधर कौंदने लगी। बंदूककी गोलियोंकी तरह पानीकी बड़ी बड़ी बूंदें धूलके ढेरको विदीर्ण करने लगीं और इसके साथ ही

साथ हवा, पानीकी घनघोर घटायें लाकर बरसाने लगी।

हम लोग अपने दरवाज़े, मौनसूनके सुहावने शब्दोंकी स्वागतकेलिए खोल रखते हैं। यह मौनसून ठंडा तो नहीं होता पर हवाकी गरमीके एकाएक शान्त हो जानेसे कुछ ठंडक लाता है। यह स्पष्ट है कि ग्रीष्मऋतुका अभी अन्त नहीं हुआ। यह ऊमस अभी बढ़ती जायगी। कई दिन सूर्यके बराबर उदय होनेसे जूनसे भी अधिक गरमी पड़ने लगेगी। फुन्सियां पैदा होंगी और लाखों पतंग और अगणित अन्य दुखदाई कीड़े मकोड़े बढ़ेंगे। परन्तु ऋतुका इतना परिवर्तन भी सुख कर होता है। अब हम अपने दरवाज़े खोलकर ठंडी सांस भर सकते हैं। लीजिये मौन्सूनका आगमन हुआ और बया अपने घोंसले बनाने लगी।

बया एक मामूली, छोटी, भूरे रंगकी चिड़िया होती है जो गौरैयासे बहुत मिलती जुलती है। ग्रीष्मऋतुमें जब बया पालनेका समय निकट आता है तो उन्हींके सुनहरे रंगके बच्चे घोंसलेसे निकल पड़ते हैं। ये देखनेमें ऐसे सुहावने प्रतीत होते हैं मानो किसी घनी झाड़ीमें पीले फूल लगे हैं। उस समय ये बहुत सहजमें पहिचाननेमें आते हैं। हम उन्हें उनके अनूठे, और विचित्र सुराहीकी तरह लटकते हुए घोंसलोंसे जान सकते हैं, जो बहुधा बे-बसे या उजड़े पेड़ोंसे झूलते रहते हैं।

बया अपने मकान बनानेमें बड़ी प्रवीण होती हैं। उनका काम देखने योग्य होता है। यदि इसकी परीक्षा करना चाहें तो यही समय है। इनके घोंसले बड़े सुन्दर होते हैं, क्योंकि पक्षियोंमें कठिनाईसे मकान बनानेवाली शायदही कोई और ऐसी चतुर मिलेगी। वे लम्बी गरदनवाले घोंसले जो कोमल टहनियोंमें अंजीरकी भांति लगे रहते हैं प्रायः घासफूसके बने होते हैं और उनका भीतरका हिस्सा मिट्टीसे लिपा रहता है। घोंसलेके नीचेवाले सिरेमें एक छोटासा रास्ता होता है, जिसमें बन्दर, गिलहरी और दूसरी शिकारी चिड़ियाएँ भीतर रहने वालोंको दुःख न दे सकें।

यह चिड़िया बड़ी बुद्धिमानीसे अपने छोटे घरोंके भीतरी-भागको रमणीक और बाहरी भागको सुरक्षित बनाती है। यह अपनी सहज-बुद्धिसे काम तो लेती ही है परन्तु कुछ अंश उसमें बुद्धि और अनुभवका भी होता है। बस्तीके उन प्रान्तोंमें जहांपर बया बच्चे सेया करते हैं, बहुतसे अधूरे घोंसले दिखाई पड़ेंगे। वहांके निवासी यह कहा करते हैं कि इन घोंसलोंपर गरमीके महीनेमें नर बैठकर अपनी मादाको गीत सुनाया करते हैं जिससे उनको अंडा सेनेमें बहुत कष्ट न मालूम हो। यह तो कहनेकी बात है किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि यह घोंसले बच्चोंने सीखनेकेलिए बनाये हैं। बहुतसे घोंसलोंमें गीली मिट्टी लिपटी रहती है जिसके विषयमें किम्बदन्ती है कि उसमें बया अंधेरी रातमें उजियाला करनेकेलिये जुगनू लगाती हैं। खैर जो कुछ हो, हमारा तो अनुमान यह है कि यह मिट्टी इसलिए लगाई गई है कि घोंसले भारी हो जायं और तेज़ हवामें न उड़ सकें। हमारे कहनेका तात्पर्य्य यह है कि मिट्टी लपेटनेका कुछ उद्देश अवश्य है और इससे यह बात प्रमाणित होती है कि चिड़ियाओंमें बुद्धि होती है।

बयाको कोई मनुष्य बुद्धिकी तीक्ष्णता और प्रसन्नतायुक्त उत्साह बिना काममें जुटे नहीं देखेगा। आप उसे मेहके बाद धूपमें चैतन्यचित्त और उमंगमें गाते और हंसते हुए पायंगे। एमरसन कहता है "मैं उस मनुष्यको प्रसन्नचित्त समझता हूं जो सफलताका प्रश्न आनेपर उत्तरकेलिये अपने कामकी तरफ दृष्टि डालता है, न कि बाज़ारकी ओर या अन्य पुरुषोंके विचार या मतकी ओर। जंगली बया ऐसी ही होती हैं और जब वे अपनी रायको पक्की मान लेती हैं तब उनको किसी बातकी ज़रूरत

नहीं रहती। अपनी प्रशंसा करानेकी बान उनमें तब हो पड़ जाती जब वे आदमियोंसे मिल जुल जाती हैं।

बया पेड़पर लटकते हुए झूले बनानेके अतिरिक्त अन्य काम करनेमें भी बुद्धि दिखलाती है, इसीलिये मदारी लोग और और तमाशा करनेवाली चिड़ियाओंके साथ इन्हें भी रखते हैं। हममेंसे बहुतेरोंने उनको तमाशेमें छोटे छोटे कुओंसे छोटी छोटी डोलचियोंमें पानी निकालते, सुई और तागेसे गुरियां पिरोते हुए और हवासे छोटी छोटी फेंकी हुई चीजें लौटा लाते हुए देखा होगा। हिंदुस्तानी शिक्षक इतने निपुण नहीं होते नहीं तो बया इससे भी बढ़कर कर्तब दिखलावे। इसमें तमाशा करनेवाली चिड़ियाओंके सब ही गुण होते हैं। यह बहुत जल्द काम सीख जाती है, बहुत जल्द अनुरक्त भी हो जाती है, बड़ी बुद्धिमान होती है और शिक्षाकी अभिलाषा रखती है।

पक्षी अपने स्वाभाविक दशामें देखनेसे इतने भले मालूम होते हैं कि मुझे एक पालतू बया रखनेकी बिलकुल इच्छा न थी परन्तु एक दिन एक बड़े शहरके बाज़ारमें मैंने एक बया और कई गोल सिर वाले हरे तोते और लाल बिकाउ देखे। बयाको मैं मकान लाया। मैं उसे स्वतंत्र कर देता परन्तु तब सितम्बरका महीना था और उसके पंख ठीक तरहपर नहीं उगे थे। बादको छोड़ देनेपर भी उसका जी भागनेको न चाहता था। जब मैं उसे पिंजड़ेमें बंद करता था तो केवल उसकी रक्षाके लिये अन्यथा वह हमेशा छुटी रहती और मैदानमें बिना भागनेकी इच्छाके मेरे पीछे पीछे चलती।

इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि बया बहुत चालाक होती है। बयाका बच्चा ठीक लड़केके समान होता है। वह घोखने वाले लड़केकी तरह परीक्षाके लिये तैय्यार होना चाहता है केवल इसलिए नहीं कि वह चालाक होता है क्योंकि कौआ बड़ा चालाक होता है पर वह परीक्षामें पास न होगा। जब वह परीक्षा देगा पड़ोसियोंको सतावेगा, स्याही गिरावेगा और रद्दी प्रश्नों और शिक्षककी अयोग्यतापर अनापशनाप लिखेगा। बया जन्मसे ही लाग-डाट वाला होता है। वह हमेशा इम्तहानमें नम्बरोंका प्यासा रहता है और जो कुछ उनसे प्राप्त होता है उनके लिये भी लोलुप रहता है। बया इन योग्यताओंके अलावा साथी होनेके योग्य एक दूसरा और बहुत अच्छा गुण रखता है। कनिंघम अपने उत्तम ग्रन्थमें लिखता है "कि बया चिड़ियाखानेमें रखने योग्य नहीं है क्योंकि वह बहुत छेड़ छाड़ करती है और उसमें पड़ोसियोंके सिरोंमें मारनेकी बड़ी बुरी लत होती है।" चाहे यह उसके चिड़ियाखानेमें रखनेका बाधक हो लेकिन इसी छेड़छाड़के सबबसे घरमें पालने योग्य होता है। हम लोगोंके घरोंमें जो गौरैया ऊधम मचाती हैं वह हम सब जानते हैं। गौरैया बड़ी कष्टदायक समझी जाती है परन्तु यह इससे भी बदतर है। यह बड़ी बुरी बला होती है। जब एक बार घरमें घुस जाती है तो बिना निकाले नहीं जाती; परन्तु इसका निकालना भी बड़ा कठिन हो जाता है। यह काम बांस, कोड़ों य टेनिस बालोंसे लिया जाता है। कमरेमें मैलापन फैल जाता है, चित्तमें क्रोध आ जाता है और अन्त में मनुष्य बहुत लज्जित हो जाते हैं।

पालतू बयामें यह सब बातें नहीं होतीं। आप आरामसे एक कुरसीपर बैठे रहिये, बया बाकी काम करेगी। गौरैया ऊंची खिड़कीकी राह चेंचें करती चिढ़ाती कमरेमें ज्योंही घुसेगी त्योंही बया जो सदा चौकस रहती है सर उठाकर मानों पूछती है "कौन जाता है।" उत्तर मिलता है "मैं गौरैया हूं"। इस पर नम्रताके साथ उससे नहीं कहा जाता कि बहिन गौरैया चली जा बल्कि बड़ी डाटके साथ कहती है "गौरैया, अभी निकल जा नहीं तेरा सर तोड़ डालूंगी?"

शब्द व उसके गुण धर्म

[ले० प्रो० वी. एस-तम्मा, एम. एस-सी.]

शब्द यह संज्ञा भाषामें दो भिन्न भिन्न अर्थोंमें उपयोगमें लाई जाती है। शब्दके कानोंपर पड़नेसे जो अनुभव हमारे कानोंको होता है उसे हम शब्द इस नामसे पुकारते हैं। यहां शब्द यह संज्ञा हमारे कानोंसे सम्बन्ध रखती है। दूसरे जब हम कहते हैं कि आवाजका वेग वायुके वेगसे अधिक है तब उस चीज़को आवाज कहते हैं जिसका हमारे कानोंसे कोई सम्बन्ध नहीं अथवा जो हमारे कानोंके बाहर है। परन्तु इस दुहरे अर्थमें आवाज शब्दके प्रयुक्त होने से कोई विशेष कठिनाई नहीं मालूम पड़ती।

शब्दके विशिष्ट गुण धर्मोंमें पहिला यह है कि आवाजको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुंचनेके लिये कालकी आवश्यकता होती है। इसके कई उदाहरण हमें सदा दिखाई देते हैं। यदि दो एक फर्लांग दूरीपर किसी मैदानमें कोई गिट्टी फोडनेवाला बैठा गिट्टी फोडता हो तो हम इस बातका स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं कि उसके हाथकी गति हमें पहिले दिखाई देती है और उसकी आवाज़ सुनाई बादमें देती है। वैसे ही यदि संध्या समय किसी मैदानमें तोप छूटती हो तो बारूदके जलनेका प्रकाश दिखनेके बहुत पीछे तोपकी आवाज़ सुनाई देती है, या जब बिजली चमकती है तब चमकके कितनी ही देर बाद बादलकी गड़गड़ाहट सुनाई देती है। इन सब उदाहरणोंसे यह सिद्ध है कि आवाज नियमित वेगसे ही एक स्थानसे दूसरे स्थानको जा सकती है। प्राचीन और अर्वाचीन कालमें कई परीक्षाओंके द्वारा आवाजका वेगमान निश्चित किया गया है और यह पाया गया है यदि पवन न चलती हो तो आवाज प्रति सेकंड लगभग ११०० फुटके प्रयाण करती है।

दूसरी विशेषता यह है कि किसी विशिष्ट स्थानपर आवाज पैदा की जानेपर वह उन्हीं स्थानोंमें सुनाई देती है जो कि उसकी उत्पत्तिके स्थानसे प्रकृति द्वारा बद्ध हों। इसका तात्पर्य यह है कि आवाज पैदा करनेवाली वस्तु व आवाज जहां सुनी जाती है इन दोनों स्थानोंके बीचकी जगह यदि प्रकृति रहित कर दी जावे तो पहिले स्थानसे दूसरे स्थानतक आवाज नहीं पहुंच सकती। अथवा आवाज़की गतिके लिए किसी प्राकृतिक यानकी और उसके लगातार (Continuous) होनेके भी आवश्यकता है। यदि कोई वस्तु हमसे इतनी दूर रखी हो जहां हमारा हाथ नहीं पहुंच सकता तो हम उस वस्तुको लम्बी लकड़ीके सहारे प्राप्त कर सकते हैं परंतु वस्तु प्राप्त करनेके लिए पहिले तो उतनी बड़ी लकड़ीकी आवश्यकता है, दूसरे लकड़ीके एक ही होनेकी आवश्यकता है। यदि उतनी लम्बी लकड़ी एक ही न हो तो कई छोटी छोटी लकड़ियोंको मिलाकर बंधी हुई एक लकड़ीसे भी वस्तु प्राप्त कर सकते हैं। भिन्न भिन्न लकडियोंसे यदि वे बंधी न हों तो हमें दूर स्थित वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती। उसी प्रकार आवाजको एक स्थानसे दूसरे स्थानतक पहुंचानेमें पहिले स्थानसे दूसरे स्थानतक लगातार प्रकृतिके अस्तित्वकी आवश्यकता है व उस प्रकृतिके परमाणुओंमें विशिष्ट प्रकारकी बद्धताकी भी आवश्यकता है।

प्राकृतिक यानके न होनेसे देशमें आवाज चल नहीं सकती। यह नीचे लिखी हुई परीक्षासे सिद्ध होता है। यदि कोई विद्युत्घण्टी वायु शोषक यंत्रकी पट्टीपर रक्खी जावे और उसके पात्रमेंसे वायु निकाल ली जावे तो घण्टीके बजनेपर भी आवाज नहीं सुनाई देती। परंतु पात्रमें वायु प्रविष्ट होने देनेपर फिर आवाज सुनाई देती है। वायु निकालनेपर घण्टी और पात्रके बीचकी जगहमें प्रकृतिका अभाव होनेसे आवाज सुनाई नहीं देती। इस प्रयोगके चित्र तथा सविस्तार वर्णनकेलिए देखिये विज्ञान भाग ५ संख्या २ पृष्ठ ७०।

आवाजको एक स्थानसे दूसरे स्थानतक

Sound शब्द शास्त्र]

पहुंचानेके लिए किसी विशिष्ट प्रकृतिकी आवश्यकता नहीं है परंतु भिन्न भिन्न प्रकृतियोंमें आवाज भिन्न भिन्न वेगसे चलती है। साधारणतः आवाजका वेग भिन्न भिन्न वायुओंमें सबसे कम है। द्रव पदार्थोंमें आवाजका वेग इससे अधिक होता है। उदाहरणार्थ वायुमें आवाजका वेग ११०० फुट प्रति सेकंड है परंतु पानीमें प्रायः १००० फुटके है। जड़ पदार्थोंमें आवाजका वेग अधिक होता है। साधारणतः जड़ पदार्थोंमें आवाज़का वेग वायुमेंके वेगसे अठगुना या दस गुना होता है।

शब्द दो प्रकारके होते हैं। एक मृदु जिनका उपयोग सांगीतमें किया जाता है व दूसरे कर्कश जिन्हें हम निरा शोर कहते हैं। इन दो प्रकारकी आवाजोंमें जो भेद है वह यह है कि गायनमें उपयुक्त होनेवाली आवाज़में सिर्फ शुद्ध स्वर होते हैं। कुछ भिन्न भिन्न स्वर जिनकी ऊंचाई व निचाईमें कोई विशिष्ट सम्बन्ध हो तो उनके साथ साथ या एकके पश्चात् एकके गानेसे हमारी कर्णेंद्रियोंको आनन्द होता है और इन्हीं विशिष्ट सम्बन्ध होनेवाले भिन्न भिन्न ऊंचाईवाले स्वरोंका उपयोग गायनमें किया जाता है। परंतु यदि किसी सम्बन्धका लक्ष न रखते हुए भिन्न भिन्न स्वर साथ ही साथ गाये जावें तो शोरसा होने लगता है। इसका अनुभव बहुत ही सुगमतासे हो सकता है। यदि १० व ११ गायक किसी कमरेमें बैठकर ताल व सुरका लक्ष रख कोई विशिष्ट गायन करते हों तो हमारे कानोंको गायन सुनकर बहुत ही आनन्द होता है। परंतु यदि सबके सब भिन्न भिन्न गाने एक दूसरेका ख्याल न करते हुए गाने लगें तो आवाज कानोंको मधुर न मालूम होते हुवे कटु मालूम होने लगती है। उस समय शोर सा मालूम होने लगता है। इन दो प्रकारकी आवाजोंमें भेद बहुत ही सूक्ष्म है। पहिले उच्चारित स्वरोंमें विशिष्ट सम्बन्ध होता है व शोरमें उच्चारित स्वर असम्बद्ध होते हैं।

अब तक यह बतलाया गया है कि आवाज़का वेग परिमित है। उसे एक स्थानसे दूसरे स्थान तक पहुंचनेमें प्राकृतिक यानकी आवश्यकता है और साथ ही इस प्रकृतिके परमाणुओंके कुछ विशिष्ट सम्बन्धकी आवश्यकता होती है। अब इसका विचार करना चाहिये कि आवाज जिसके विषयमें हमें इतनी बातोंका ज्ञान हुआ है क्या है? उसका निज स्वभाव क्या है? वह कैसे पैदा होती है? इसका उत्तर बहुत कठिन नहीं है। यह सर्व साधारणको विदित है कि जब जब और जहां जहां आवाज पैदा होती तो जरूर किसी न किसी पदार्थमें आन्दोलन या हलचल होती है। किसी प्राकृतिक पदार्थमें आन्दोलन हुए बिना आवाज नहीं पैदा होती। यह नहीं कहा जा सकता कि जहां जहां आन्दोलन होता है वहां आवाज अवश्य ही पैदा होती है परंतु यह सिद्धान्त (Universal) सर्वथैव सत्य है कि जहां जहां आवाज़ होती है वहां किसी न किसी वस्तुमें आन्दोलन पाया जाता है।

आवाज प्राकृतिक वस्तुओंमें आन्दोलनसे पैदा होती है इसके कई उदाहरण हमेशा दिखाई देते हैं। जैसे जब कहीं घण्टा बजाया जाता है तो उसमें उत्पन्न हुए आन्दोलन हमें स्पष्ट दिखाई देते हैं। सितार बजते समय उसके तार अस्पष्ट दीख पड़ते हैं, क्योंकि तारमें भी आन्दोलन होते हैं। घरमें बर्तनोंकी आपसमें रगड वा टक्कर होनेसे आवाज होती है व उसे रोकनेके लिये आवाज देने वाले बर्तनको छू देना काफ़ी होता है, क्योंकि छूनेसे उसमेंके आन्दोलन तथा आवाज बन्द हो जाती है। शब्द करते हुए बर्तनको स्पर्श करनेसे स्पष्टतया ज्ञात होजाता है कि वह थर्रा रहा है।

चाहे पदार्थ दृढ़ द्रव या वायु रूपी हो उसके परमाणुओंमें परस्पर सम्बन्ध होता है, जिससे यदि किसी विशिष्ट परमाणुमें कोई गति उत्पन्न की जावे तो आसपासके परमाणुओंमें भी वैसी ही गति उत्पन्न होती है। परंतु साथ ही साथ यह भी पाया जाता है कि जिस शक्तिके द्वारा यह गति उत्पन्न होकर परमाणु अपने स्थानसे च्युत होते हैं

वे इसी आपसके सम्बन्धके द्वारा शक्तिके हटा देने-पर अपने स्थानपर आनेका प्रयत्न करते हैं व स्थान भ्रष्टता अधिक हो तो भी अपने स्थानपर आ जाते हैं। इसी गुणके कारण यदि किसी वस्तुमें आन्दोलन उत्पन्न कर आवाज पैदा की जावे तो उस वस्तुके आन्दोलनसे आसपासकी वायुमें भी आन्दोलन पैदा होते हैं और वायुके एक भागसे दूसरे भागमें होते हुए जब यह वायुके आन्दोलन हमारे कानोंके परदोंपर पड़ते हैं तब हमें आवाज सुनाई देती है।

गायनमें जिन आवाजों व स्वरोंका उपयोग किया जाता है उनमें आपसमें तीन बातोंके कारण एक दूसरेसे भिन्नता पायी जाती है। पहिले आवाजका हलकापन या जोर, दूसरे उसकीऊंचाई या निचाई और तीसरे आवाजका जातीय गुण।

यदि कोई घण्टा धीरे बजाया जावे तो हलकी आवाज पैदा होती है व साथ ही साथ यह देखा जाता है कि उसके परमाणु थोड़ी दूरीमें आन्दोलित होते हैं। वैसे ही जब सितारका तार थोड़ी ही दूरीमें आन्दोलित होता है तो हलकी आवाज पैदा होती है परंतु यदि उसके आन्दोलनका क्षेत्र बढ़ाया जावे तो जोरकी आवाज पैदा होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि आवाजका जोर या हलकापन आन्दोलनकी सीमाके बड़े व छोटे होनपर निर्भर है। किसी भी वाद्यसे हलकी व जोरकी आवाज सिर्फ इस सीमाके बढ़ानेसे उत्पन्न की जा सकती है। उदाहरणार्थ किसी बांसुरीके मुंहपर धीरेसे फूंकनेसे हलकी आवाज पैदा होती है, परन्तु यदि जोरसे फूंक मारी जावे तो आवाज जोरकी निकलती है, क्योंकि जोरसे फूंक मारनेसे हवामें ज़ोरके अथवा बड़ी सीमावाले आन्दोलन पैदा होते हैं व धीरेसे फूंक मारने से छोटी सीमाके आन्दोलन पैदा होते हैं।

आवाजकी ऊंचाई या निचाई आन्दोलनसीमापर निर्भर नहीं होती परन्तु प्रति सेकंडमें होनेवाली आन्दोलन संख्यापर निर्भर होती है। आन्दोलन सीमा चाहे कुछ भी हो, जैसे जैसे आन्दोलनसंख्या बढ़ती है वैसे वैसे आवाज अधिक ऊंची होती जाती है। आन्दोलन संख्या जैसे जैसे कम होती है वैसे वैसे आवाजकी ऊंचाई भी कम होती जाती है। आन्दोलन संख्या आन्दोलित होनेवाली वस्तुके स्थितिपर व उस शक्तिपर जिससे केवल आन्दोलन पैदा किये जाते हैं निर्भर होती है। योग्य साधन यदि उपस्थित हो तो यह सुगमतासे सिद्ध किया जा सकता है कि आवाजकी ऊंचाई उसकी आन्दोलन संख्यापर ही केवल निर्भर है।

चाहे दो भिन्न भिन्न वाद्योंमें पैदा होनेवाले स्वरोंकी आन्दोलन संख्या एक ही क्यों न हो तब भी हमें उनकी आवाजकी भिन्नताका ज्ञान स्पष्ट रीतिसे मालूम होता है। यदि समान ऊंचाईके स्वर हार्मोनियम व तबलेपर बजाये जावें तो कौनसी आवाज किस वाद्यकी है यह जानना कुछ भी कठिन नहीं मालूम पड़ता। इसका कारण यह है कि समान ऊंचाईके जो स्वर दो भिन्न भिन्न वाद्योंपर बजाये जाते हैं उनसे पैदा हुये आन्दोलन ही भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं। इन आन्दोलनोंमें जोभिन्नता होती उसका वर्णन आगे दिया जायेगा।

चश्मा या एनक

[ले० श्रीयुत भवानीशंकर याज्ञिक]

इस देशमें चश्मेका इतना प्रचार हो गया है कि बालकसे लेकर वृद्ध तक, प्रत्येक स्त्री पुरुष, इसको एक साधारण सी वस्तु समझते हैं। धनी सेठ साहूकारोंसे लेकर गांवके बासी जिनको धुंधला दिखाई देता है इसका प्रयोग करते हैं। ऐसे कामकी वस्तुका ज्ञान होना परमावश्यक है। किस प्रकार चश्मे हमारी दृष्टिको सहायता देते हैं? किस प्रकार हम दोषयुक्त चक्षुओंसे चश्मोंकी सहायतासे प्रकृतिकी अद्भुत छटाको देख सकते हैं? इन सब कौतूहल जनक प्रश्नोंका उत्तर

हमको जानना चाहिये। इसके पूर्व कि हम चश्मों के विषयमें कुछ जानें यह उत्तम होगा कि हम "हमारी आंखोंकी बनावट कैसी है ?" और "उनसे हम किस प्रकार देखते हैं" इन दो बातोंका कुछ ज्ञान प्राप्त करलें।

आंखकी बनावट फ़ोटो खींचनेके केमरेकी सदृश होती है। केमरेमें एक खोखला बक्स होता है जिसके एक ओर अपारदर्शी (opaque) काच और दूसरी ओर एक उन्नतोदर ताल या लेन्स (convex lens) होता है। जब कोई पदार्थ तालके सन्मुख लाया जाता है तो उसका, प्रकाशकी किरणों के वक्रीभवनके नियमानुसार, काचपर उलटा प्रतिबिम्ब पड़ता है।
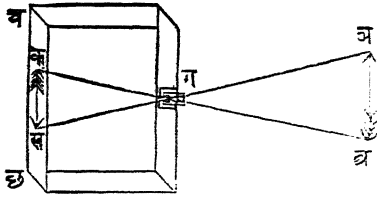
चित्र १

चित्र नंबर १ में च छ एक खोखले बकसका काच है, ग उन्नतोदर ताल है, अ ब एक वस्तु है, जिसका प्रतिबिम्ब क ख, च छ पर पड़ता है।

ठीक ऐसाही हमारी आंखोंमें भी होता है। काचके स्थानमें हमारी आंखमें एक परदा होता है जिसको रेटीना(Retina)कहते हैं। प्रकाशकी किरणें आंखके उन्नतोदर भागसे वक्र होती हैं और वस्तु का प्रतिबिम्ब रेटीनीपर पड़ता है। जब आंख रोगरहित और आरोग्य होती है तो वस्तु का प्रतिबिम्ब साफ और सुप्रकाशित होता है। परन्तु जिन चक्षुओंमें विकार होता है उनमें वस्तुका प्रतिबिम्ब धुंधला दिखाई पड़ता है। किसी वस्तुको स्पष्टतया देखनेकेलिए निम्नलिखित गुण होने चाहियें:—

१—वह पूर्णतया निर्मल होनी चाहिये।

२—वह काफ़ी बड़ी हो।

३—वह अच्छी तरहसे प्रकाशित होनी चाहिये।

४—उसका प्रतिबिम्ब नियमित समय तक रेटीनापर पड़ना चाहिये।

इनमेंसे यदि एक बातकी भी त्रुटि होगी तो वस्तु स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होगी।

अब हमको वह जानना रहा कि (१) आंखमें ऐसे कौनसे विकार हो जाते हैं जिसके कारण हमको धुंधला दिखाई पड़ता है और चश्मे लगानेकी आवश्यकता पड़ती है, (२) चश्मे किस प्रकार इन विकारोंको दूर करते हैं और (३) हम यह कैसे जानें कि आंखमें कौन सा विकार है।

आंख मनुष्यकी इन्द्रियोंमें सबसे कोमल समझी जाती है और ईश्वरने भी उसकी रक्षाके लिये उचित स्थान तथा पलक दिये हैं। इसमें कई विकार हो जाते हैं और साधारणतया यह सब बुढ़ापेमें होते हैं। मुख्यतः दो विकार हो हैं जिनको (१) दूरदृष्टि (Long Sight) और (२) अल्प दृष्टि (Short Sight) कहते हैं।

जब ऐसा होता है कि वस्तुका प्रतिबिम्ब रेटीनापर न पड़े परन्तु पीछे पड़े तब उस आंखको जो रोग होता है उसे दूर दृष्टि कहते हैं।

चित्र नम्बर २ में कख वस्तुका प्रतिबिम्ब त तालसे र रेटीनापर नहीं पड़ता किन्तु उसके पीछे गघ पर पड़ता है। जब ऐसा घटित होता है तो क ख पदार्थ धुंधला दिखाई देता है। दूर दृष्टिमें ऐसा ही विकार होता है।
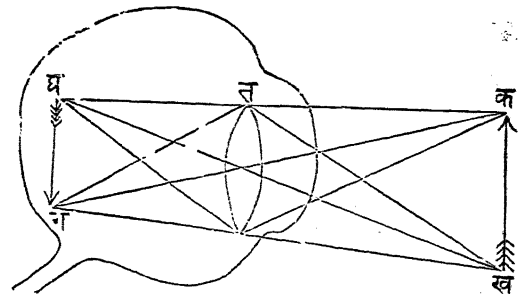
चित्र २

जब पदार्थका प्रतिबिम्ब रेटीनापर न पड़कर उसके आगे पड़े तो अल्पदृष्टि रोग होता है, जैसा चित्र नम्बर ३ में दिखाया गया है।
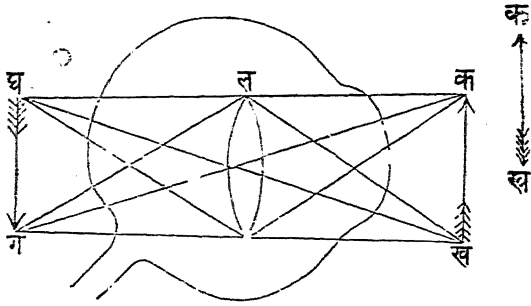
चित्र ३

इन विकारोंसे छुटकारा पानेकेलिये ही हम चश्मोंका प्रयोग करते हैं। ऐसा करनेसे सफलता भी हुई है। दूरदृष्टिकेलिए हम उन्नतोदरतालको काममें लाते हैं, क्योंकि इसमें यह गुण है कि वह प्रतिबिम्बको आगे बढ़ाता है। परन्तु अल्प दृष्टिके लिए हम नतोदर (concave) ताल काममें लाते हैं जिसका गुण प्रतिबिम्बको पीछे हटाना है, इन तालोंसे प्रतिबिम्ब ठीक रेटीनापर हटकर आ जाता है और तब स्पष्ट दीखपड़ता है।

उन्नतोदर (convex) ताल किस प्रकार प्रतिबिम्बको आगे हटा देता है और नतोदर (concave) ताल किस प्रकार पीछे हटाता है। इसके जाननेकेलिए एक साधारण सा प्रयोग और कीजिये। एक बत्ती, एक कागज़का टुकड़ा और दो उन्नतोदर और नतोदर ताल लीजिये। बत्तीको जलाइये और उसके पास एक उन्नतोदर ताल रखिये,। तालके पीछे कागज़के टुकड़ेको रखिये और उसे आगे या पीछे हटाइये, जब तक कि बत्तीका स्पष्ट प्रतिबिम्ब कागजपर न पड़े। यदि अब आप दूसरा उन्नतोदर ताल बत्तीके और पहिले तालकी बीचमें रखदें तो आप देखेंगे कि प्रतिबिम्ब पहिली जगहसे हटकर तालके समीप आ जायगा और जो यदि आप दूसरी बार नतोदर ताल लगावेंगे तो वह तालसे दूर हट जायगा जैसा कि चित्र नम्बर ४, ५ और ६ में दिखाया गया है।

चित्र ४
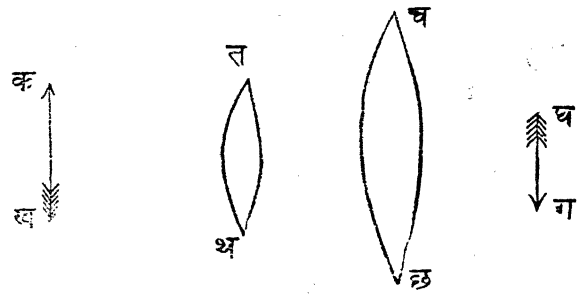
कख वस्तु है–च छ उन्नतोदर ताल है–ग घ प्रतिबिम्बि है त थ दूसरा उन्नतोदर ताल है और प फ नतोदर ताल है।

चित्र ५

जिस प्रकार उन्नतोदर ताल या नतोदर ताल लगानेसे प्रतिबिम्ब आगे या पीछे हटता है उसी प्रकार चश्मे लगाने से होता है, कारण कि चश्मोंमें जो काच होता है वह ताल ही होता है। यदि दूर दृष्टि होती है तो नतोदर ताल लगाया जाता है। तालकी गोलाई प्रतिबिम्बकी रेटीना से दूरीपर ही निर्भर है, दोनों नेत्रोंमें विकार न्यूनाधिक होता है, इसलिए चश्मोंके दोनों तालोंकी गोलाईमें बहुधा अंतर होता है।

अब एक बात और रही वह यह कि हम यह कैसे जानें कि आंखमें कौनसा विकार है। दूर दृष्टि है या अल्पदृष्टि। इसका ज्ञान अवश्य होना चाहिये, कारण कि बिना इसके हम चश्मोंका

प्रयोग नहीं कर सकते । इसकेलिए भी एक प्रयोग कीजिये । ताल द्वारा एक बत्तीका प्रतिबिम्ब कागज़पर डालिये इसके पश्चात् आप उसको आगे या पीछे हटाइये । आप देखेंगे कि बत्ती तालसे दूर होने पर प्रतिविम्ब पास आता है और पदार्थ पास होनेसे प्रतिबिम्ब दूर हो जाता है । इसका चित्र भी नीचे दिया जाता है जिससे यह बात सरलतासे समझमें आ जायगी । (चित्र ७)

क प च

ख छ
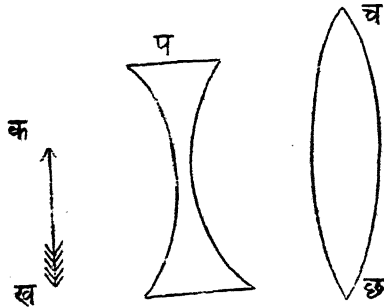
चित्र ६

इस बातको ध्यानमें रखनेसे यह बात विदित हो जायगी कि यदि प्रतिविम्ब रेटीनाके पीछे पड़ता हो तो वस्तुको दूर ले जानेसे प्रतिबिम्ब आगे बढ़ेगा-यहां तक कि कुछ दूरीपर उसका प्रति बिम्ब ठीक रेटीनापर पड़ेगा, तब वह वस्तु स्पष्ट दिखाई देने लगेगी-इससे यह विदित हुआ कि दूर दृष्टिवालेको दूरकी वस्तु स्पष्ट दिखाई पड़ती है । इसी प्रकार आपको जान पड़ेगा कि अल्प दृष्टि वालेको निकटवर्ती पदार्थ ठीक ठीक दिखाई देगा । इससे यदि किसी को दूरकी वस्तु साफ दिखाई देती हो पर पासकी नहीं तो उसकी दूर दृष्टि है और जो पासकी चीज़ साफ दिखाई देती और दूर की नहीं तो उसको अल्प दृष्टिका विकार है । दूरदृष्टिवालेको सैर करते समय, थियेटर देखते समय चश्मा नहीं लगाना पड़ता । परन्तु पुस्तक पढ़ते समय चश्मा लगानेकी आवश्यकता होती है । ठीक इसके विपरीत अल्प दृष्टिवालेको पुस्तक पढ़ते समय चश्मेकी कोई आवश्यकता नहीं होतो किन्तु दूरकी चीज़ोंको देखनेकेलिए चश्मेको जरूरत पड़ती है ।

जिस प्रकार आंख खो देनेसे मनुष्यको दुख उठाना पड़ता है उसी प्रकार बुरा चश्मा लगानेसे भी दुख उठाना पड़ता है । बार बार अणुवीक्षण यंत्रमें देखनेसे विद्यार्थियोंका सिरदर्द करने लगता है और चक्षुओंमें भी विकार हो जाता है । उनको
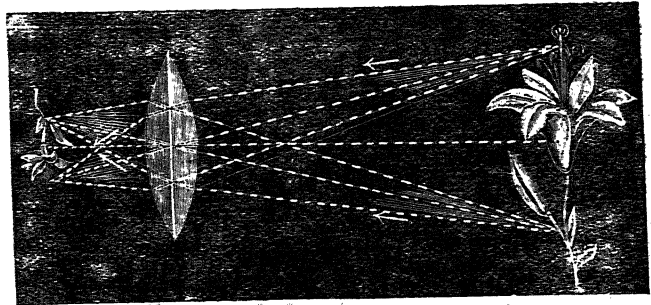
चित्र ७

चाहिये कि वह दोनों नेत्रोंको खुला रक्खें । पहिले तो इस प्रकार देखनेसे बड़ी कठिनता जान पड़ेगी परन्तु अन्तमें उनको अभ्यास होनेपर लाभ होगा । इससे उनको आंख जैसे अमोल रत्न खो-देनेसे हानि नहीं उठानी पड़ैगी और चश्मोंके लिए व्यर्थ रुपया नहीं व्यय करना पड़ैगा ।

———

अस्थायी तारे *

इनकी विशेषताएं और इनके सम्बन्धकी कल्पनाएं

लातिनी पदार्थ-विज्ञानी प्लिनीने लिखा है कि विक्रमके ७३ वर्ष पहले हिपार्कस नामक ज्योतिर्विद्को जिसका प्रधान कार्य-स्थल रोड्ज़में (Rhodes) था एकाएक ऐसा तारा दिखाई पड़ा जिसको किसीने पहले नहीं देखा था और जिसकी चमक भी अपूर्व थी। इसी अद्भुत घटनाके पश्चात् वह उस समयतकके जाने हुए तारोंकी सूची तैयार करनेमें लग गया, जिससे जब कभी ऐसी घटना उपस्थित हो तब तुरन्त मालूम हो जाय कि तारा सचमुच नया प्रकट हुआ है अथवा कोई पुराना है। प्लिनीके इस लेखको दिलाम्बर (De lamber) निरी गप समझता था, परन्तु जान पड़ता है कि यह मत बहुत सोच बिचार कर नहीं निश्चित किया गया था क्योंकि मा-टुआन्-लिन्के (Ma Tuan Lin) चीनी विश्वकोषमें भी, जिसका बाइगाट ने (Bigot) अनुवाद किया है और जो विक्रमके ५५६ वर्ष पहले तकके ज्ञानका भांडार है, यह चर्चा आयी है कि ७७ वर्ष विक्रमके पहले वृश्चिक राशि में बीटा (फ) और पाई नक्षत्रोंके मध्य एक नया तारा एकाएक प्रकट हुआ था। टालेमी (Ptolemy) भी लिखता है कि हिपार्कसकी सूची ७१ वर्ष विक्रमके पहले पूरी हो गयी थी, इस लिए यह अच्छी तरह सिद्ध होता है कि प्लिनीकी कहानी निरी गप नहीं है वरन् यथार्थमें सच है।

यह नया तारा कमसे कम पहले श्रेणीका (first magnitude) था। यह नहीं पता चलता कि यह कब तक दिखाई पड़ता रहा। ऐसे अद्भुत तारोंका पूरा ब्यौरा तो थोड़े दिनोंसे मालूम होने लगा है। अब तक ऐसे २६ तारे दिखाई पड़े हैं, जिनमें से १७ पहली श्रेणीके अथवा इससे भी बढ़े हुये थे। हिपार्कसवाले तारेके पश्चात् उन पुराने तारोंका विवरण (Flammarion's Annual) फ्लेमेरियनके अनुअलके अनुसार नीचे दिया जाता है जो अद्भुत और चित्ताकर्षक है—

१८० विक्रमीमें प्रथम श्रेणीका एक नव-तारा अल्फ़ा हर क्यूलिज़ और अल्फ़ा ओफीयूची (Ophiuchi) के मध्य दिखाई पड़ा। इसके विषयमें अधिक नहीं मालूम।

२३० विक्रमीके १७ दिसम्बरको पहली श्रेणीका नव-तारा अल्फ़ा और बीटा सेंटारीके मध्य दिखाई पड़ा। चीनी विश्वकोषके अनुसार १८ मासके पश्चात् अदृश्य हो गया और एकएक करके क्रमसे पांचों प्रधान रंग इसने दिखलाये।

४२६ वि० के मार्च और अप्रैलमें एक नवतारा दीख पड़ा। श्रेणी और स्थितिका पता नहीं।

४४३ वि० की ५ वीं अप्रैलको (गामा और फाई सैगीटेरी) उत्तराषाढ़ और पूर्वाषाढ़ नक्षत्रोंके बीच एक नव-तारा प्रकट हुआ जो अप्रैलसे जुलाई तक दीखता रहा।

४४६ वि० में श्रवण नक्षत्रके पास शुक्रके समान प्रकाशमान एक नवतारा प्रकट हुआ। तीन सप्ताहमें दृष्टिसे बाहर हो गया।

१०६८ वि० में मेश राशिमें एक अत्यन्त प्रकाशमान नव-तारा दीख पड़ा। यह तीन मास तक दिखता रहा। उसमें बहुतसे स्पष्ट परिवर्तन भी होतेरहे। कभी कभी तो दृष्टिसे बिलकुल बाहर हो जाता था।

इसके पश्चात् टैको ब्राही [Tycho Brahe] वाला तारा आता है जो १६२६ वि० की ११ नवम्बरको कैसिओपीमें [Cassiopia] दिखाई पड़ा था। यह तारा सचमुच एक असुर था क्यों-

* यह व्याख्यान la Société Astronomique de France के सन्मुख इसके मन्त्री Maurice Fouchè ने दिया था, जिसका संक्षेप विवरण अंग्रेज़ी में अनुवादित होकर Scientific American supplement में छपा है। इसीका हिन्दी मर्म्मानुवाद विज्ञानके पाठकोंके मनोविनोदार्थ यहां दिया जाता है।

A *str*onomy ज्योतिष]

कि इसके सामने लुब्धक [Sirius] अभिजित [Vega] और बृहस्पति भी पीले पड़ गये थे और यह दिनके प्रकाशमें भी दिखाई पड़ता था। इसके कारण जो आश्चर्य और भय लोगोंमें उत्पन्न हो गये थे उनकी कल्पना करना सहज है। लोगोंको विश्वास हो गया था कि यह दैवी आग है क्योंकि इसीके साथ साथ सारा युरोप धार्मिक और राजनीतिक झगड़ोंकी आगमें भस्म हो रहा था, जिसका आरम्भ उसीके पहिले अगस्तसे सेंट बारथालेम्यू [St. Bartholemew] के संहारसे हुआ था। यह नव-तारा भी १४ मास तक रह कर अदृश्य हो गया।

३० वर्ष पीछे १६६१ के १० वें अक्टूबर को सर्प नक्षत्रमें एक नव-तारा प्रकट हुआ। इसकी जांच पड़ताल केपलरने बिना किसी यन्त्रके सहारेके की थी। उस समयतक दूरवीक्षणोंका ज्ञान किसीको नहीं था। सबसे प्रथम दूरवीक्षण तो गैलीलिओने १६६६ में बनाया था। यह तारा प्रथम श्रेणीसे भी आगे बढ़ गया और बृहस्पति भी अधिक प्रकाशमान् हो गया। परन्तु यह उतना प्रकाशमान् नहीं था जितना शुक्र है अथवा जितना १६२९ वि० वाला तारा था क्योंकि दिनके प्रकाशमें यह नहीं दिखाई पड़ता था। उसी वर्षकी फरवरीमें यह दूसरी श्रेणीका हो गया और १६६२ की जनवरीमें बिलकुल गायब हो गया। इस प्रकार इसका जीवन १५ मासका था। १६६६ वि० में जो नव-तारा निकला था उनका उल्लेख चीनवालोंने किया है। यह दक्षिण पश्चिमके कोनेमें दिखाई पड़ा था और यही उच्च श्रेणीके तारोंमें अन्तिम तारा था।

विक्रम की बीसवीं शताब्दीके आरम्भसे इस विषयपर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। दूरके दृश्योंको स्पष्टताके साथ देखनेके यन्त्रोंकी उन्नति होनेसे आठ और नव-ताराओं का ठीक पता लगना सम्भव हो गया है। इनमें पहलीसे पांचवी श्रेणीतकके नव-तारे आ गये हैं। पहले पहल १९२३ वि० में ऐसे तारेकी जांच रश्मि चित्र दर्शक यन्त्र [Spectroscope] द्वारा की गयी थी। इसी वर्ष की १२ वों मईको दूसरी श्रेणी का एक नव-तारा उत्तरी मुकुट(Northern crown)नामके नक्षत्रमें देखा गया था। दो दिनमें यह तीसरी श्रेणीका हो गया और मासके अन्त तक इतना मन्द पड़ गया कि बिना किसी यन्त्रकी सहायताके खाली आंखोंसे नहीं दीख पड़ता था। कई बार घटने बढ़नेके पश्चात् यह ९.५ श्रेणीका हो गया और इसी श्रेणीमें बहुत दिनतक बना रहा। पीछेसे जब सूचीकी जांच हुई तो जान पड़ा कि यह सदासे इसी स्थितिमें इसी मात्राकी चमकका रहा आया है। इसका रश्मिचित्र (Spectrum) उज्जनके रश्मिचित्रसे मिलता जुलता था, परन्तु काली लकीरें कुछ अधिक थीं, जो सूर्य्योन्नत् ज्वाला (Solar protuberances)*के रश्मिचित्रसे मिलती थीं, जैसा कि पूर्ण सूर्यग्रहणके समय दिखाई पड़ता था। इस कालतक रश्मि-चित्रदर्शक यंत्रमें इतनी उन्नति नहीं हुई थी कि उससे रश्मिवर्णके उन परिवर्तनोंका पता लगाया जा सके जो क्षीण होनेके समय होते हैं।

राजहंस (*Cygnus*) नामक नक्षत्रमें एक नव-तारा १९३३ वि०के मार्च की १४ वीं तारीखको देखा गया। इसकी जांच पहलेसे अधिक अच्छी तरह की जासकी। पहले तो यह तीसरी श्रेणीका था परन्तु दिसम्बरतक सातवीं श्रेणीका हो गया। थोड़े दिनोंमें यह इतना मंद पड़ गया कि १२ वीं श्रेणीमें रखा गया। अब यह नीहारिकाकी नाईं जान पड़ता था। इस नव-तारेके परिवर्तनोंपर विचार करके यह सिद्धान्त ठहराया गया कि ऐसे अद्भुत तारे विकास करते करते नीहारिकामें बदल जाते हैं। यह सिद्धान्त पिछले नव-ताराओंके स्वभावसे पूरा पूरा मेल खाता

* पूर्ण सूर्य ग्रहणके समय जब सूर्य मण्डल छायामें आ जाता है, तब उसमें बड़ी बड़ी आग की लपटें (शोले) निकलती हुई दीखती हैं, इन्हें हीं सूर्योन्नत ज्वाला कहते हैं।

है। यह बात खाली आखोंकी जांचसे नहीं मेल खाती वरन् रश्मिचित्रके द्वारा जो परिवर्तन देखे गये हैं उनसे भी, क्योंकि यन्त्रोंकी बनावटमें उन्नति होनेसे रश्मिचित्रकी जांच पहलेसे अधिक देरतक करना सुगम हो गया है।

इसी प्रकारकी ग्रह-नीहारिकाएँ (planetary nebulæ] चमकीली लकीरोंका Bright lines स्पष्ट रश्मिचित्र उत्पन्न करती हैं, जिनमें कुछ लकीरें उज्जन और हीलियमकी हैं और कुछ ऐसे मौलिकोंकी हैं जिनका पता अभीतक नहीं लगाया जासका है। इसलिए इन सब मौलिकोंका काल्पनिक नाम नबुलम Nebulum रखा गया है। १९३३से अबतक जितने नवतारे देखे गये हैं सबके रश्मि-चित्रमें क्रमानुसार उसी प्रकारके परिवर्तन पाये जाते हैं। आरम्भमें वही चमकीली लकीरें दीख पड़ती हैं जो उज्जन हीलियम और कैल्सियमकी हैं और जो बहुधा मंद चमकदार परदेपर पड़ी हुई मालूम होती हैं। यह रश्मिचित्र वैसा ही होता है जैसा सूर्य्योन्नत ज्वाला Solar protuberance का। समयपाकर थोड़ा थोड़ा करके चमकीली लकीरें कम होती जाती हैं और चमकदार परदा बिल्कुल नष्ट हो जाता है। अंतमें थोड़ीसी लकीरें रह जाती हैं जो ग्रह-नीहारिकाओंकी चमकीला लकीरोंकी भांति दिखाई पड़ती हैं। ऐसे निरूपण विशेषतः दो नव-ताराओंके साथ किये गये हैं जो ४.५ श्रेणीके थे और जिनमेंसे एक १९४९ वि०में प्रजापति नक्षत्रमें Auriga और दूसरा १९५५ वि०में धन राशिमें देखा गया था।

Novae Persei नामक नव-तारा पहले पहल १९५८ वि०के फरवरीमासमें देखा गया था। यह पहली श्रेणीका हो गया था। इसके सम्बन्धमें जो जानकारी हुई वह बहुत ही अद्भुत और चित्ताकर्षक थी। इसका जीवन बहुत थोड़े दिनोंका था। प्रकट होनेके एक ही मासके भीतर यह इतना मंद पड़ गया कि आंखोंसे बिलकुल नहीं दीखता था। जुविसी वेधालय Juvisy observatory में इसके जो चित्र उतारे गये थे उनसे पता चलता है कि यह नीहारिका-कोहरे Nebulous haze से घिरा हुआ है। पीछेसे पता चला कि कि यह सत्य नहीं है। वस्तु-ताल Objective जो साधारण प्रकाशकेलिए Achromatic रंग-मुक्त था, इस नव-ताराके अत्यन्त वर्तनीय प्रकाश Refractive light केलिए अयोग्य ठहरा; परन्तु तो भी इसपर ध्यान गया कि यह अपूर्वता क्यों है। इस भ्रांति जनक नीहारिका Illusory nebulosity की जांच पड़तालमें एक सच्ची नीहारिकाका पता मिला। इसका आकार स्थूलतः एक अंगूठीके सदृश था। यह तारेको चारों ओर से घेरे हुए थी और जिसका विस्तार बड़े वेगसे बढ़ रहा था। इस तारेका लम्बन Parallax बड़े प्रयत्न और परिश्रम करनेपर भी नहीं निकल सका जिससे मालूम होता है कि यह बहुत दूर है और इसका लम्बन इतना छोटा है कि नापा नहीं जा सका है।

(शेष फिर)

वायुतत्त्व।

[गताङ्कसे सम्मिलित]

[ले० अ० प्रेमबल्लभ जोषी, बी. एस-सी, एल. टी.]

शास्त्रीजी—इस वक्त कुप्पीका वज़न पहिलेसे अवश्य कम है। क्या आपका यह मतलब है कि हवाके निकलनेसे वज़नमें कमी पड़ गयी, इसलिए अवश्य हवामें बोझ है। लेकिन आचार्य्य-जी यह तो मामूली बात है कि हवामें पानीकी भाप, पार्थिव रज (धूल) और छोटे मोटे कीड़े बराबर रहते हैं, सो इन्हीं चीज़ोंकी वजहसे हवा-में हो न हो वज़न मालूम पड़ता है। फिर नैय्यायिकोंका मत ठीक है।

मुकुन्द—तर्क तो शास्त्रीजी ठीक कर रहे हैं। Chemistry रसायन शास्त्र]

विज्ञाना०—हम हवाको पानीकी भाप और पार्थिव कणोंसे बिलकुल शुद्ध कर सकते हैं। अगर हवाको नलियोंकेद्वारा ऐसे ऐसे पात्रोंमें होकर निकाला जाय जिनमें गन्धकका तेज़ाव, कास्टिकका घोल इत्यादि भरे हों तो पूर्वोक्त चीज़ें अलग की जा सकती हैं। इस प्रकार शुद्ध को हुई हवासे फिर पूर्वोक्त प्रयोग किया जाय तो वही नतीजा निकलता है। इससे सिद्ध है कि हवामें गुरुत्व है। वायुके विषयमें आगे जो हम प्रयोग करेंगे उनसे भी निश्चय हो जायगा कि वायुमें गुरुत्व है।

वायु सर्वथा रूप रहित भी नहीं है। वायु घी, पानी, तैल आदि वस्तुओंकी नाईं दृढ़, द्रव और वाष्प तीनों अवस्थाओंमें रह सकता है। आजकल इतनी ठण्ड पैदा भी की जा सकती है कि उससे वायु द्रव या दृढ़ अवस्थामें परिणत कर लिया जा सकता है।

यहांपर मुकुन्द और विज्ञानाचार्य्यने एक यन्त्र द्वारा वायुको दबावसे घनीभूत किया और ठण्डकसे हवाका तापक्रम कम करके उसे द्रव रूप बनाकर दिखा दिया। जब इस द्रव वायुपर पारेका बर्तन रक्खा गया तो पारा शीघ्र ही ठण्डा होकर जम गया। (alcohol) शराब जिसका दृढ़ रूप होना ज़रा मुश्किल होता है वह भो दृढ़ रूपमें लाई गई तो शास्त्रीजी वाह वाह करने लगे।

शास्त्रीजी-यह सब दृश्य तो मुझे जादूकेसे मालूम पड़ रहे हैं। अच्छा यह तो कहिये कि क्या वायुके तत्त्व होनेमें भी कोई सन्देह है।

विज्ञानाचार्य-आधुनिक गवेषणाओंसे पता चला है कि वायु निम्नलिखित पदार्थोंका मिश्रण है, यह तत्त्व कदापि नहीं हो सकता।

१०० हिस्सा वायुमें मिश्रित पदार्थोंका परिमाण।

ओषजन··········· ······२०·६५ घन से. मी.
नाइट्रोजन··· ··· ··· ···७७·११ ” ”
अर्गन नीऊन, क्रिप्टन और जीनन ··· ०·४ घन सें० मी०
ओज़ोन······अल्पतर
पानीकी भाप··············१·४ ” ”

अमोनिया, नाइट्रिक ऐसिड, कार्बोनिक ऐसिड भी थोड़े बहुत पाये जाते हैं।

शास्त्रीजी-आचार्य्यजी पहिले आप उन प्रयोगोंको कीजिये जिनसे यह सिद्ध हुआ कि वायु पूर्वोक्त पदार्थोंका मिश्रण है और इन पदार्थोंके स्वाभाविक गुणोंका भी वर्णन कीजिये।

विज्ञा०—बहुत अच्छा! मुख्यतः वायुमें सिर्फ दो ही गैस हैं एक तो ओषजन और दूसरी नत्रजन। यह सिद्ध करनेकेलिए व एक कांचका फ़ानूस है। इसके घनफलको नापकर इसपर एक चिह्नित काग़ज़ चिपका दिया है जिससे उसके आयतन के पांच बराबर के विभाग हो गये हैं।

इस बर्त्तनको एक द्रोणी द में रख दीजिये, जिसमें इतना पानी भरा हुआ है कि फानूसके भीतर और बाहर पहले चिह्नतक पहुंचता है। एक छोटीसी प्याली में (capsule) हम गन्धक गरम करते हैं। देखिये यह अब जलने लगा। अब द्रोणीमें हम चीनीमिट्टीकी तिपाई रखकर उसपर इस प्यालीको रखे देते हैं और उसपर फानूस ढके देते हैं। अब फ़ानूसके ऊपरके मुंहमें जल्दीसे काग लगाकर देखें क्या होता है।

शास्त्रीजी—गन्धकका धुआं बोतलमें व्याप्त हो गया। देखिये पानी अब ऊपरको चढ़ रहा है। दस पन्द्रह मिनटमें शास्त्रीजीने देखा कि पानी ठीक दूसरे निशानतक आगया था और धुआं भी बैठ गया था। गन्धकका जलना बन्द हो गया।

विज्ञाना०—देखिये मैं एक जलती हुई सलाईको डाट खोलकर इस वर्त्तनके भीतर डालता हूं। अब आप क्या देखते हैं?

शास्त्रीजी—सलाई तो बुझ गई।

शास्त्रीजीने प्रतीतिकेलिए फिर पूर्वोक्त प्रयोग किया और एक खूब जलती हुई छीपटीको

उस फानूसमें डाला, मगर वह बुझ गई। यह देख शास्त्रीजीको आश्चर्य्य हुआ।

शास्त्रीजी—हवाको तो अपने यहां अग्निका मित्र कहा गया है, फिर क्या बात है कि जलती हुई लकड़ी एक दमसे बुझ जाती है। हो न हो इसका कारण गंधकका धुआं है।

मुकुन्द—शास्त्रीजी आपके मतसे तो फिर भी हवा वहां रही ही। आपने धुएंको बैठते हुए भी देख ही लिया था फिर यह क्यों।

विज्ञानाचार्य्य—यह बात नहीं है। देखो अब मैं फोस्फोरस (Phosphorus) उसी प्रकार जलाता हूं। देखिये फिर भी वही बात देखनेमें आती है।

तदनन्तर विज्ञानाचार्य्यने मेग्नीसियम सिलीनियम इत्यादि वस्तुओंको भी जला करके वही प्रयोग किया। प्रत्येक बार एक हिस्सा पानी ऊपर चढ़ गया और बाकी चार हिस्से हवाने जलती हुई लकड़ीको बुझा दिया।

शास्त्रीजी—तो भला फिर आप इन बातोंसे क्या नतीजा निकालते हैं?

विज्ञाना०—पूर्वोक्त प्रयोगोंसे आप देख सकते हैं कि हवा हो न हो प्रधानतः दो गैसोंके मिश्रणसे बनी है जिनका अनुपात १:४ का है। एक हिस्सा तो चीज़ोंके जलनेमें मदद देता है और दूसरा हिस्सा उनको बुझानेकी कोशिश करता है।

शास्त्रीजी—क्या हम इन दोनों हवाओंको अलग अलग भी तैयार कर सकते हैं और उनकी परीक्षा कर सकते हैं।

विज्ञानाचार्य्य—क्यों नहीं? पहले पहल यह प्रयोग फ्रांसीसी वैज्ञानिक लैवोयसियरने किया था। इसका सविस्तार वर्णन विज्ञान भाग ४ संख्या १ पृष्ठ १७ पर दिया गया है। देखिये विज्ञानकी उक्त संख्यामें जितने प्रयोग दे रखे हैं, मैं वह सब आपको करके दिखला देता हूं।

इतना कह विज्ञाना० ने कई प्रयोग करके शास्त्रीजीको दिखलाये और कहने लगे—

शास्त्रीजी अब तो आपको निश्चय हो गया होगा कि वायु प्रधानतः दो गैसोंके मिश्रणसे बनी हुई है। (१) ओषजन, जोकि अग्निकी सहायता करती है और जीवन शक्तिको भी बढ़ाती है, (२) नत्रजन, जो आगको बुझाती है और जीवनदीपको बुझानेमें सहायक होती है। फिर ईश्वरकी रचनाकी निपुणता तो देखिये कि उसने ओषजन और नत्रजनको मिलाकर वायु पैदा कर सब जीवोंकी रक्षा की, क्योंकि अगर वह ओषजन ही ओषजन संसारमें पैदा करता तो सब चीज़ें जल भुन कर खाक हो जातीं। इसके विरुद्ध अगर नत्रजन ही होती तो जगतमें जीवन असम्भव होता।

शास्त्रीजी—अच्छा! आपने कहा था कि हवामें हीलियम, आर्गन प्रभृति गैसें भी हैं, सो कैसे मालूम हुआ?

विज्ञानाचार्य्य—जी हां, पहले जो मैंने आपको हवाके द्रवीभूत करनेका प्रयोग दिखलाया था, तदनुसार दबावको ज्यादा बढ़ाकर और ठंडक पहुंचाकर हवाको द्रवरूपमें परिणत कर लेते हैं। अगर इस द्रवीभूत हवाका तापक्रम धीरे धीरे बढ़ाया जाय तो जितनी गैसें उसमें मौजूद हैं, विशेष क्रमसे फिरसे भाप बनकर उड़ेंगी। इस प्रकार हम प्रत्येक वायु या गैसको अलग अलग बर्तनोंमें इकट्ठा कर सकते हैं।

मुकुन्द—आचार्य्यजी आपने यह सब तो बतलाया पर कार्बोनिक ऐसिड गैस, एमोनियां, नाइट्रिक ऐसिड जोकि आपने कहा था हवामें विद्यमान हैं उनका वर्णन करना आप कैसे भूल गये।

शास्त्रीजी—यही मैं भी सोच रहा था।

विज्ञाना०—हवामें कार्बोनिक ऐसिड गैस करीब १०० हिस्सों में ·०५ के है। यह दूषित गैस कोयलेके जलने या कोयलेके यौगिक पदार्थोंके जलानेसे पैदा होती है और पानीमें घुलकर कुछ कुछ अम्लोंकासा व्यवहार करने लगती है। इसीसे यह कर्बनिकाम्ल गैस (कार्बोनिक एसिड गैस) या कर्बद्विओषित कहलाती है।

शास्त्रीजी—इस गैसके गुणोंकी परीक्षा करके बतलाइये।

विज्ञाना०—देखिये यह कांचके बर्त्तनके भीतर मोमबत्ती रखकर जलाता हूं और ऊपरसे बन्द कर देता हूं। भला आप क्या देखते हैं।

शास्त्रीजी—मोमबत्ती थोड़ी देरतक जलकर बुझ गई, जैसा कि गन्धक या फोस्फोरस जलानेमें हुआ था।

विज्ञाना०—इसमें मैं पानी डालता हूं। फिर यह नीला लिटमस पेपर भी इसमें फेंकता हूं। अच्छा आप क्या देखते हैं।

शास्त्रीजी—नीला कागज़ कुछ कुछ लाल होगया। इससे मालूम पड़ता है कि यह हलका तेज़ाब है, क्योंकि तेज़ाब ही नीले लिटमस कागज़को लाल कर देते हैं।

विज्ञाना०—आपने खूब समझा। इसलिए अब इस गैसका नाम कर्बनिकाम्ल सार्थक हुआ। फिर एक प्रयोग आपको और दिखलाता हू। मुकुन्द देखो फिर दूसरे कांचके वर्त्तनमें इसी-तरह कर्बनिकाम्ल गैस या कर्बनद्विओषित बनाओ।

मुकुन्दने वैसाही किया। विज्ञानाचार्यने स्वच्छ चूनेके पानीको उस बरतनमें डाला तो वह दूधिया हो गया।

विज्ञाना०—देखो यही इस गैसकी पहिचान है। फिर देखिये आज हम उथले कांचके वर्त्तनमें चूनेके पानीको रख जाते हैं और कल आकर देखेंगे।

शास्त्रीजी—हां ठीक है अगर हवामें कर्बनिकाम्ल गैस होगी तो इस पानीको सफेद कर डालेगी।

दूसरे दिन जब देखा तो चूनेके पानीपर सफेद पपड़ी जमी पाई। इससे शास्त्रीजीको निश्चय हो-गया कि हवामें जरूर कर्बनद्विओषित है।

शास्त्रीजी०—नित्यप्रति कोयला, लकड़ी आदि पदार्थोंके जलनेसे जो कर्बनद्विओषित बनता रहता है उसका परिमाण कुछ कालमें इतना अधिक हो जायगा कि संसारमें आग जलाना, खाना पकाना, तम्बाकू पीना, दीपक बालना मुश्किल हो जायगा और अन्तमें जीनेके भी लाले पड़ जायंगे।

मुकुन्द—शास्त्रीजी आपने बड़े मार्के की बात कही है।

विज्ञाना०—श्री विश्वम्भर भगवानने इसकेलिए भी यथोचित् उपाय पहलेसे ही कर रक्खा है। यह वायु न सिर्फ़ पूर्वोक्त प्रकारसे पैदा होती है बल्कि प्रत्येक पशु वा मनुष्यके श्वासोच्छवास क्रियामें भी पैदा होती है। जो हवा हम सांस लेकर फेफड़ोंमें पहुंचाते हैं उसकी ओषजन दूषित रक्तको शुद्ध कर देती है और स्वयम् मलका अपहरणकर कर्बनद्विओषितमें परिणत हो जाती है। इस प्रकार पशु, पक्षी, मनुष्यादि शुद्ध हवाको गन्दा करते रहते हैं।जो कर्बन द्विओषित इस प्रकार पैदा होता है,वह पेड़ों और वनस्पतियोंका भोजन है। पेड़ोंके पत्ते इस वायुका, सूर्य्यके प्रकाश रहने-पर, आहार करते हैं और इससे अपने लिये उपयुक्त रस बनाकर ओषजनको बाहर निकालते हैं। यह क्रिया हम आपको दिखा सकते हैं। मुकुन्दसे विज्ञानाचार्य्यने प्रयोग करनेको कहा।
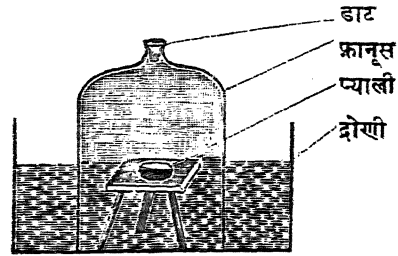
चित्र १

मुकुन्द—शास्त्रीजी देखिये द एक कांचकी द्रोणी पानीसे भर दी गई है, इसमें एक कांचकी कीप रक्खी है और उसके ऊपर पानीसे भरी हुई कांचकी नली उलट दी गई है। देखिये इसके भीतर मैं यह एक जल पौदा(aquatic plant)रखता हूं और इसको तेज़ धूपमें रख देता हूं। फिर देखिये इस द्रोणीके पानीमें होकर कुछ कार्बोनिक

ऐसिड गैस बहाता हूं। आप जानते ही हैं कि कार्बोनिकऐसिड गैस पानीमें क्यों डाल रहा हूं।

शास्त्रीजी—कार्बोनिकऐसिड गैस पानमें घुल जाती है और पैदेको आहार पहुंचाती है।

फिर दो तीन घंटे बाद देखा गया तो कांचकी नलीका पानी नीचे उतर आया। इससे ज्ञात हुआ कि कोई गैस नलीमें जमा हो रही है।

विज्ञाना०—देखिये शास्त्रीजी अब हम इस नलीमें एक सिलुगती हुई छीपटी डालते हैं।
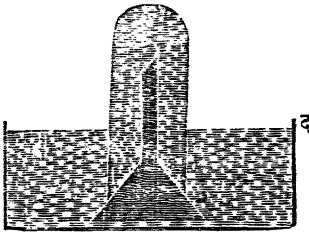
चित्र २

शास्त्रीजी—वाह यह तो भभक उठी इससे मालूम पड़ा कि हो न हो इसके भीतर ओषजन है। निश्चय ही यह ओषजन उस पौदेसे आई।

विज्ञाना०—आप वैज्ञानिक सिद्धान्तोंको सीखकर अच्छी युक्ति कर रहे हैं। इसी तरहसे आप अल्प कालमें ही सब वैज्ञानिक विषयोंका बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। इस प्रयोगमें एक बात और है। बिना रोशनीके पौदा ओषजनको बाहर नहीं निकालता।

शास्त्रीजी—इससे मुझको एक शास्त्रकी बात याद आयी। स्मृतिमें कहा है कि 'रातको पेड़के नीचे नहीं रहना चाहिये' श्लोक-"रात्रौ च वृक्ष-मूलानि दूरतः परि वर्ज्जयेत्" मनुसंहिता। क्योंकि रातको केवल कार्बोनिक ऐसिडगैस पेड़ोंमेंसे निकलती है, इसलिए वहांपर रहना अच्छा नहीं।

मुकुन्द - यह सब बातें तो हुईं मगर यह तो बतलाइये कि नत्रजनके हवामें होनेसे कुछ विशेष लाभ भी है।

विज्ञाना०- नत्रजनके मिलकर बने हुए बहुतसे यौगिक पदार्थ जैसे शोरेका तेजाब, शोरा, ऐमोनिआ प्रभृति वस्तुएं हमारे लिये और पौदोंकेलिये बहुत ही उपयोगी हैं।

शास्त्रीजी—भला पूर्वोक्त पदार्थ नत्रजनसे कैसे बनते हैं।

विज्ञाना०—जब कभी वायुमें बिजली गिरती है या चमकती है तो वह नत्रजन और ओषजन दोनों पदार्थोंका संयोग करके नत्रजन ओषित नामक एक नूतन पदार्थकी सृष्टि करती है। जब यह नत्रजन ओषित पानीमें घुलाया जाता है तो शोरेका तेज़ाब बनता है।

नत्रजन + ओषजन + पानी = शोरेका तेज़ाब।

बारिशके पानीसे यही तेज़ाब खेतोंमें जाकर शोरा प्रभृति 'लवणोंको' पैदा करता है, जो कि खेतकेलिये बहुत उपयोगी हैं।

मुकुन्द—आचार्य्यजी। क्या हम इस शोरे बनानेकी नैसर्गिक क्रियाको काममें लाकर या उसका अनुकरणकर तेजाब व लवण पैदा नहीं कर सकते हैं?

विज्ञाना०—क्यों नहीं-

शास्त्रीजी—क्या कोई और तरहसे भी नत्रजन प्रकृतिमें काममें लाया जाता है।

विज्ञाना०—जी हां-मटर दाल प्रभृति बहुतसे पौदोंके जड़ोंमें बहुधा ऐसे सूक्ष्म जन्तु गांठोंकी तरह अपना घर बनाते हैं और मज़ेसे नत्रजनका आहारकर अपने आप भी पुष्ट होते और पौदेकेलिये उपयोगी लवण तय्यारकर उसका भी पोषण करते हैं। आज कल युरोपीय वैज्ञानिक खेतिहरोंने इन सूक्ष्म जन्तुओंकी मददसे चौगुनी पचगुनी फसल एक ही खेतसे पैदा कर ली है।

शास्त्रीजी—ठीक है अपने देशमें भी मटर प्रभृति दालोंको खेतमें पूरी फसल बोये जानेके पहिले बोकर, जब पौदे बड़े हो जाते हैं, उनको हलसे जोतकर खेतमें पाट देते हैं, जिससे खेतीको लाभ पहुंचता है।

विज्ञाना०- इसी तरह अगर हम अपने सभी कार्य्य वैज्ञानिक नियमों या प्राकृतिक नियमोंके अनुसार करें तो हमको प्रकृति माता आशीर्वाद देकर हमारे सुख सम्पत्तिकी वृद्धि करेगी।

शास्त्रीजी—वाह वाह धन्य है विज्ञानको और आपको जो कि विज्ञानको पढ़ पढ़ाकर देशोपकारके करनेमें सन्नद्ध हो रहे हैं। आशा है कि आप ऐसी ही बातें छेड़कर हमपर अनुग्रह करते रहेंगे।

विज्ञाना०—यह तो मैं पहिले आपसे निवेदन कर चुका हूं कि आप और हम मिलकर पूर्वीय और पाश्चात्य विज्ञानका आनुषंगिक अध्ययनकर बड़ा लाभ उठा सकते हैं।

शास्त्रीजी—आपका विचार सत्य हो।

विकाशवाद

[ले० प्रोफ़ेसर करमनारायण, एम. ए.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

इस अङ्कके आरम्भमें पृथिवीकी तहदार चट्टानोंका पूरा नकशा दिया गया है। इसमें कई तहें दिखलाई गई हैं, जो प्रायः पाँच कक्षाओंमें विभाजित की जाती हैं। इनके नाम नीचेसे लेकर ऊपर तक क्रमशः यह हैं :—प्राचीन (Eozoic or Archæan), आरम्भ युगीय [Palæozoic or Primary] मध्य युगीय [Mesozoic or Secondary], तृतीय युगीय [Cainozoic or Tertiary], आधुनिक (Pleistocene)। यह नाम चित्रमें भी दिखलाये गये हैं। प्रत्येक कक्षामें कई तह हैं, जैसा कि नीचे दी हुई सारणी तथा उपरोक्त चित्रसे प्रकट होगा :—

कक्षा	तहें
१. प्राचीन युगीय	१. तापज (Plutonic rock)
	२. आग्नेय (Igneous rock)
२. आरम्भ युगीय	१. केम्ब्रीय (Cambrian)
	२. सिलूरीय (Silurian) इसके ही अन्तरगत ऑरडोवीसियन (ordovician) भी है।
	३. डेवोनीय (Devonian)
	४. कार्बनीयः—चूनेकी या कोयलेकी। (Carboniferous)
	५. परमीयाज (Permian)
३—मध्य युगीय (Mesozoic or secondary)	१. मध्यारम्भ (Triassic)
	२. जुरापर्वतीय (Jurassic)
	३. खड़िका (Cretaceous)
४—तृतीय युगीय (Caino zoic or Tertiary)	१. आदिम (Eocene)
	२. निकटतर (MioCene)
	३. निकटतम (Pliocene
५—आधुनिक ...	... (Pleistocene)

इनमें से प्रत्येक तहमें विशेष प्रकारके पौदों या जन्तुओंके फौसिल मिलते हैं। इन फौसिलोंको देखकर वैज्ञानिकोंने उन पौदों और जन्तुओंकी असली आकृति और आकार स्वभावादिका अनुमान लगा कर चित्र बनाये हैं। वही चित्र प्रत्येक तहके सामने दिखलाये गये हैं।

यहांपर यह बतला देना उचित जान पड़ता है कि यह सबकी सब चट्टानें जो चित्रमें दिखलाई गई हैं एक ही स्थानपर नहीं पाई गई थीं, न यह सम्भव जान पड़ता है कि भविष्यमें यह किसी स्थानपर पाई जा सकें, क्योंकि अनुमान लगाया गया है कि मध्य युगीय और आरम्भ युगीय चट्टानें कमसे कम १२ मील नीचे पाई जायंगी। प्राचीन युगीय चट्टानें इससे भी नीचे होंगी। अभी तक इतना गहरा खोदना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है। अतएव हमें यह भली भांति समझ लेना चाहिये कि यह चट्टानें जगह जगहपर पाई गई हैं और उनकी आयुका अनुमान लगाकर

Evolution विकाशवाद]

उन्हें एक सम्बद्ध श्रेणीमें तले ऊपर लगा दिया गया है।

प्राचीन युग

प्राचीन स्तरोंमें फौसिल नहीं पाये जाते। अतएव हमें मानना पड़ता है कि जिस कालमें यह स्तर बने थे, उस कालमें पृथ्वीपर जीव जन्तु न रहते थे। यदि कोई रहते भी होंगे तो वे बड़े कोमल शरीर वाले होंगे, जिनका फौसिल बनना, अस्थि पिंजरके अभावके कारण, असम्भव था।

प्राचीन स्तरोंमें केवल आग्नेय चट्टानें (Igneous rocks) पाई जाती हैं। चित्रमें एक लाल मेख़सी दिखलाई गयी है, जो बहुतसी तहोंको बेधती हुई ऊपरतक चली गई है। इससे आन्तर भौम प्रज्वलित ज्वालाका अनुमान कर सकते हैं।

आरम्भ युग

आरम्भ युगकी चट्टानोंमें फौसिल अवश्य पाये जाते हैं। केम्ब्रीय (Cambrian) तहमें घोंघा मूंगा, झींगा आदि जातिके जन्तु पाये जाते हैं। चित्रमें चार जन्तु (१७,१८,१६,२०) इस तहके सामने दिखलाये गये हैं, १७ वां जन्तु एक प्रकारका मूंगा (Coral) है और (Zostorites) ज़ोस्टौरैट कहलाता है । शेष जन्तु घोंघे जातिके समुद्रमें पैदा होनेवाले हैं। इसीसे यह माना जाता है कि यह स्तर समुद्रकी तलैटीमें बना होगा । सिलूरीय स्तरमें तारा मछली (Star-fish) घोंघे, मूंगे, झींगे वा अन्य कई प्रकारकी प्राचीन मछलियां पाई जाती हैं। यह मछलियां चित्रमें १३, १४,१५,१६, संख्याकी हैं। इनमेंसे कुछ तो अब भी पाई जाती हैं, पर कुछ लुप्त हो चुकी हैं। डेवोनीयकालमें मछलियां बहुत थीं, और यही उस समय उच्चतम कोटिके जीव थे । इसीसे इस कालको मत्स्यकाल कहते हैं। इसके बाद कर्बनीय काल आया, जिसमें पृथ्वी तल बड़े ऊंचे ऊंचे वृक्षोंसे आच्छादित था। इसी कालमें यह दरख़्त दब गये और संसारकी कोयलेकी खानें बनीं। चित्रमें देखनेसे विदित होगा कि इस कालके वृक्ष कैसे होते थे। १० और ११ फ़र्न जातिके पौदे हैं, जो उस समयमें बड़े बड़े पेड़ोंके बराबर होते थे। इस कालमें मेंडकोंकेसे स्थल-जल-चर और छिपकलियां भी हुआ करती थीं। परमीयाज स्तरोंके विषय कोई विशेष बात लिखने योग्य नहीं है। यही स्तर आरम्भ युगीय स्तरोंमें अन्तिम है। इस युगमें हमने कई प्रकारके जीव जन्तु देखे हैं। सरलतम जीवोंसे शुरू हो कर छिपकलियोंतक विकाश हुआ है। अभी तक पक्षियों और दूध पिलानेवाले जानवरोंकी उत्पत्ति नहीं हुई है।

मध्ययुग अर्थात् उरग-युग

इस युगको उरगयुग या रेंगनेवाले जानवरोंका युग कहते हैं क्योंकि इस युगमें जो रेंगनेवाले जन्तुओंकी उन्नति हुई वह किसी और प्रकारके जीवोंकी नहीं हुई। अनुमान किया जाता है कि इस युगमें इतने वृहदाकर रेंगनेवाले जन्तु थे कि उनकी लम्बाई ६० फ़ुट (४० हा) तक और बोझ सैकड़ों मन तक था। इन रेंगलेवाले जन्तुओंका राज्य, थल, जल, वायु तीनोंमें था। चित्रमें ८ वें स्थानपर एक तैरता हुआ रेंगने वाला जन्तु अर्थात् उरग दिखलाया गया है।

उसीके पास ७ वीं आकृति एक जलीय छिपकलीकी है। ५ वीं आकृति इसी भांति एक वायुमण्डलमें उड़नेवाले उरगकी है। अतएव स्पष्ट है कि इस उरग-कालमें उरगोंने पानी हवा और पृथ्वी, तीनोंपर अपना अधिकार जमा रक्खा था।

तृतीय युग

इस युगके स्तरोंमें दूध पिलानेवाले अर्थात् स्तन-पाय्रोंके फौसिल पाये जाते हैं। ये पशु ऐसे ही थे जैसे आजकल पाये जाते हैं। १ ली आकृति एक हिरनकी है, जो शिवालकीय (Sive therium) कहलाता है, क्योंकि इसका पिंजर भारतमें शिवालक पर्वतपर पाया गया था। ऐसेही कई और जानवर पाये गये हैं जिनके नाम ब्रह्मा थेरियम

और विष्णु थोरियम ब्रह्मा और विष्णुके नाम पर रक्खे गये हैं।

पौदोंकी वाह्य अंग रचनापर विचार

[ले० श्रीयुत राधानाथ टण्डन, बी० एस-सी०]

एककोषका पौदा

बहुत नीचे श्रेणीके पौदे अणुवीक्षणीय होते हैं और उनकी रचना भी बहुत सरल होती है। छोटेसे छोटे पौदेकी सूरत एक गोल छोटी थैलीकीसी होती है, जिसमें दानेदार शहदकी तरह गाढ़ा रस भरा होता है। इस रसको जीवाद्यम (protoplasm) कहते हैं। इसके बीचों बीच धंसा हुआ एक बिन्दुसा होता है, जिसे केन्द्र (Nucleus) कहते हैं। इसके चारों ओर फैले हुए हरित दाने भी कभी कभी दृष्टिगोचर होते हैं, जिनके होनेसे ही यह गोल थैली हरे रङ्गकी दीखपड़ती है, ऐसी रचनाको कोश(cell) कहते हैं। हरित दानेवाले कोषका उदाहरण एक अणुवीक्षणीय पौदा होता है, जिसको बहुविन्दु (प्लिउरोकाकस Pleurococcus) कहते हैं। ऊंचे श्रेणीके पौदे इसी तरहके बहुत कोषोंके मेलसे बने होते हैं।

धागेदार पौधे (Thallophytic plants)

यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि एक कोषका पौदा गोल ही सूरतका हो। लम्बे, चौड़े और लहराते सूरतके सेवई ऐसे भी होते हैं। प्लुकाकस-से (Pleurococcus) ऊपर की श्रेणीपर पौदे धागेकी सूरतके होते हैं, जिनमें एक सिरेसे दूसरे सिरेतक एकसी सूरत होती है, अर्थात् उनमें जड़, तना, पत्ती आदिका लेशमात्र भी भेद नहीं होता। यह धागेदार पौदे या तो बहुतसे कोष मिले हुए होते हैं (बहुकोषीय) या एक ही कोषके (एककोषीय) होते हैं। धागेदार पौदे हमको प्रतिदिन दृष्टिगोचर होते हैं, पर हम लोग उनके जाननेका यत्न नहीं करते। हमारे यहां हिन्दुओंमें तीर्थयात्रा करनेवाले और बड़ी बड़ी नदियोंमें नहानेवाले बहुत मिलेंगे, पर इने-गिनेही जमना गंगा आदि नदियों के स्नान करनेवालोंने देखा होगा कि बहुधा किनारोंपर जहां जल बन्धा या प्रवाह बहुत धीमा रहता है हरे हरे अगणित धागे लहराते हुए दीख पड़ते हैं। यह धागे नीचे श्रेणीके पौदे हैं जिनमें जड़, तना आदिका भेद नहीं होता। इनको सूक्ष्मदर्शकद्वारा देखनेसे ज्ञात होगा कि इनमें छोटे छोटे कोष एकके बाद एक लगे हुए दीख पड़ते हैं।

स्पाइरोगारा (Spyrogaar)

इनमें लहरदार मोतियोंकी लड़ीसी क्या दीख पड़ती है ? यह हरित राग के (Chlorophyl) छोटे छोटे थैलोंकी कड़ी हैं, जिससे इस धागेका रङ्ग हरा दीख पड़ता है। इसके द्वारा कोषोंका भोजन बनता है, अतः इसका होना कोषोंमें अति आवश्यक है।

बहुधा बहुकोषीय धागे झिल्लीकी तरह फैले हुए और चपटे होते हैं और बहुधा शाखादार भी होते हैं, जैसा कि नीचे के चित्रमें दिखाया है। पर इनमेंतना, पत्ती, जड़का लेश मात्र भेद नहीं होता।
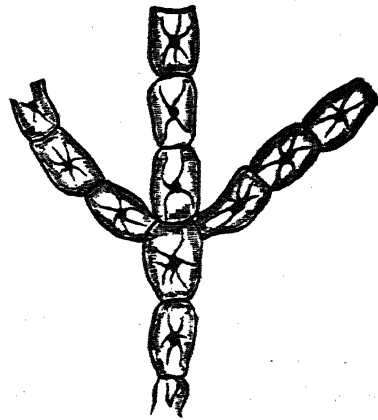
चित्र १—शाखादार 'थलस' (बहुकोषीय)

यह धागेदार बनावट जिसको अंगरेज़ीमें थैलस (Thallus) कहते हैं। प्रायः घुओं (Fungi) और अलगाओंमें (Algae) पाई जाती है।

बेफूल पौदोंमें तना पत्ती और जड़का भेद।

अलगाओं (Algae) के ठीक ऊपर उन पौदोंकी जाति है, जिनमें 'तना' और 'पत्ती' का भेद हो गया है और जिनको काई (Moss) कहते हैं। इनमें ही एक से अंगकी जगह 'तना' और पत्ती दो अंग पैदा हो गये हैं। यह भेद अलगाओंके अन्तिम पौदोंमें ही आरम्भ हो गया है। अलगा जातिके पौदोंको पूरी तरह से अध्ययन करनेसे ज्ञात होगा कि 'अलगाके' अन्तिम पौदेमें जिसको 'कारा' (chara) कहते हैं पत्ती और तनेका भेद अवश्य पाया जाता है।

पाठकोंको यहां यह सूचित करदेना आवश्यक समझते हैं 'कि कारा' और इसके ऊपरकी कोटिके पौदोंकी पत्ती और तने हमारे फूलदार पौदोंकी पत्ती और तनेसे विशेष अन्तर रखते हैं। इनके और फूलदार पौदोंकी पत्ती और तनोंकी बनावटमें बड़ा ही अन्तर होता है। 'अलगाके' ऊपरकी जातिके पौदोंमें बहुधा नीचेका अंश पतला होता हुआ मट्टीमें घुसा रहता है। यह अंश जड़का काम करता है और पौदोंके लिये पृथ्वीसे भोजन खींचता है। ज्ञात हो कि यह जड़ फूलदार पौदोंकी जड़के सदृश नहीं। अतः इसको सच्ची जड़ नहीं कह सकते। इस जड़की उत्पत्ति; बनावट आदि फूलदार पौदोंकी जड़से विशेष भिन्नता रक्खती है, केवल दोनों का धर्म एक ही है।

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो ज्ञात होगाकि पौदोंमें जड़ और तनेके भेदका मुख्य कारण पौदोंका जलको छोड़ स्थलमें आबसना है। जलमें जड़की आवश्यकता नहीं होती। जड़की आवश्यकता स्थलपर ही होती है। इसलिए धर्मके अनुसार रचनामें भेद हो जाना भी आवश्यक है। पौदोंका जीवन आदिमें जलमें ही हुआ और जलसे ही वे धीरे धीरे स्थलपर आने लगे। जलके पौदोंकी बनावट प्रायः सरल हुआ करती है। इससे यदि हम यह कहें कि आदि समयके पौदे जलीय थे और सभी 'थैलस' बनावटके थे तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। एक महत्वकी बात इस सम्बन्धमें जाननेकी यह है कि जलके पौदोंकी उत्पत्ति दानोंसे Spores नहीं होती, जैसाकि स्थलीय पौदोंमें पाया जाता है। यहां जलीय पौदोंसे तात्पर्य उन फूलदार पौदोंका नहीं जो आधे जलमें डूबे हुए और आधे बाहर निकले हुए होते हैं। यहां तात्पर्य जलमग्न पौदोंसे ही है। जलमें दानोंसे उत्पत्ति न होनेका कारण यही प्रतीत होता है कि जलमें दाने पैदा होते ही बह जाएंगे, जिससे उनका पैदा होना निरर्थक प्रमाणित होगा। ऐसी अवस्थामें इनकी उत्पत्ति प्रायः खंडयुक्ति, स्त्रीपुंससमागम या अंकुर इत्यादि द्वारा हुआ करती है।

पाठको, स्त्रीपुंस समागमके शब्दपर आश्चर्य करनेकी बात नहीं। उत्पत्तिकी यह विधि छोटे बड़े सभी पौदोंमें किसी न किसी रूपमें पाई जाती है। नीचे श्रेणीके पौदोंमें जैसे अलगा (Algae), घुवे (Fungi) काई (moss) आदिमें स्त्रीपुरुष चिन्ह पैदा करनेकी शक्यता सदा विद्यमान रहती है और किसी न किसी रूपमें इनमें सम्भोग द्वारा उत्पत्ति भी होती है। ऐसे पौदोंको दम्पति पौदे (Gametophyte) कहते हैं। स्त्री अङ्ग और पु-मङ्गके समागमसे जो पौदा पैदा होता है उसमें फिर यह अङ्ग नहीं होते। उसमें उत्पत्ति दानों द्वारा (Spores) होती है। दानोंसे जो पौदा निकलता है उसमें फिर पहलेकी तरह स्त्री पुंस चिन्ह पैदा करनेकी शक्यता होजाती है। इस प्रकार एक जीवन चक्रमें दो तरहकी वृद्धि हुई। जैसी कि काई(Moss)और कुछ घुओंमें (Fungus) होती है। ज्यों ज्यों श्रेणीमें ऊपर चढ़ते जाएंगे त्यों त्यों पौदोंकी एक तरहकी वृद्धि घटती जायगी और दूसरी तरहकी बढ़ती। 'फरन' तक पहुंचते पहुंचते स्त्रीपुंस पौदा(Gametophyte) बहुत छोटा हो जाता है--इसकी सूरत आगेके चित्रसे ज्ञात होगी।

फूलदार पौदोंमें तो यह दम्पति पौदा अणुवीक्षणीय होता है और बड़े बड़े पौदे जो हम प्रति
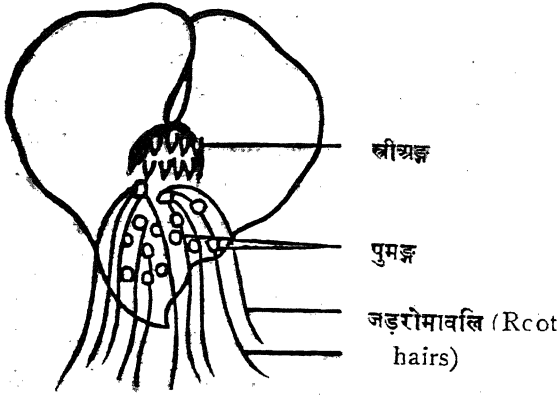
चित्र २—फर्न जातिका दम्पत्ति पौदा gametophyte

दिन देखते हैं दानेदार पौदे (Sporophyte) कहलाते हैं।

पौदोंकी भिन्न रचनाका क्रियासे सम्बन्ध

बहुतसे भोज-नलिकावाले बेफूल पौदोंमें (Cryptogams) जैसे 'फरन' एकही शाखामें पोषण और प्रत्युपत्ति दोनों तरहका कार्य होता है। पर किसी किसीमें दो तरहकी शाखाएं अपने अपने कार्यका परिचय देती हैं। एकसे तो निरा पोषणका काम होता है और दूसरीसे निरा उत्पत्तिका। फूलदार वृक्षोंमें तो यह अवस्था बहुत स्पष्ट है। उत्पत्ति और पोषणका कार्य विशेष दो भागोंमेंही होता है। फूल जिसकी बनावट पौदोंके नीचे भागोंकी बनावटसे विशेष और विलक्षण अन्तर रक्खती है, केवल उत्पत्तिका ही कार्य करता है। पोषणका कार्य फूलके नीचेके भागोंका है। पौदोंके भागोंकी बनावटकी भिन्नताका विशेष कारण उनकी क्रियाओं या धर्मोंकी विभिन्नता है। यही कारण है कि फूलदार पौदोंमें इतनी भिन्न भिन्न सूरतें देखनेमें आती हैं।

मांसाहारी पौदे

बहुतसे मांसाहारी पौदे ऐसे हैं जिनमें कीटोंके शिकार खेलनेके विलक्षण यन्त्र विद्यमान हैं। उनको भी ईश्वरकी अद्भुत महिमाने हथियार दे रक्खा है। ऐसे मांसाहारी पौदे जिनके चित्र आगे दिये हैं यहां कम देखनेमें आते हैं। एक तरह का सुराहीदार पौदा (Pitcher plant) होता है जिसमें ढक्कन रहता है। सुराहीकी गर्दनके नीचेके भागमें एक तरहका रस निकलता है, जब कीट उसकी सुगन्धसे भीतर घुसता है तो फटसे सुराहीका मुंह ढक्कनसे बन्द हो जाता है और कीट उसकी दीवारमें लगे हुए रसमें चिपटकर और धीरे धीरे सुराहीके नीचे भागके तरलमें डूबकर उसके भोजन पदार्थमें परिणित हो जाता है।

चित्र ३—चित्र सुराहीदार पौदा

इसी तरह एक मक्खी फसानेवाला पौदा होता है जिसको 'वीनसेज़ फ्लाई-ट्रैप' या मक्षिका-फंद (Venus's fly trap) कहते कहते हैं। इसमें पत्तीके बीच की रेखा (Midrib) द्वारसंधिका कार्य करती है। पत्तीके दोनों तरफके भागपर तीन तीन महीन बाल होते हैं जो सचेतन होते हैं। इनके छूतेही कीट फट पत्तीके दोनों भागोंसे बन्द हो जाता है और फिर पत्तीसे निकले हुए रसद्वारा मरकर भोजन बन जाता है। इसी तरह और भी पौदे हैं। तो अब मालूम होना चाहिए कि इन दो मांसाहारी पौदोंकी ऐसी विलक्षण बनावट उनको अपनी शरीर रक्षाके लिए ही प्रदान की गई है।
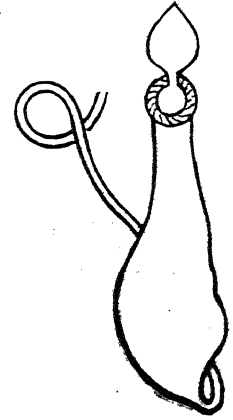
संसारका यह नियम है कि किसी भागका परिवर्तन उसके समीपवर्ती पदार्थोंपर ही निर्भर है और यह परिवर्तन उसके कार्यमें भिन्नता आ जानेसे हो जाता है। इस जीवन संग्राममें अपनी

जीवन रक्षाकेलिये ऐसे ऐसे कार्योंको ग्रहण करना पड़ता है जिसका होना एक जीवमें प्रकृत्या ही
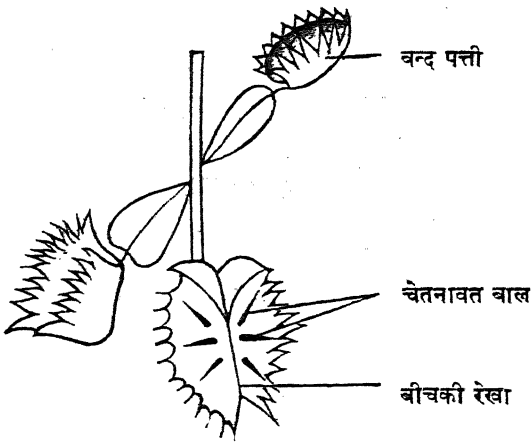
चित्र ४ 'वींनसेज फ्लाई ट्रेप'

विलक्षण प्रतीत होता है, कारण कि यह कार्य कभी उस श्रेणीके जीवमें नहीं पाया जाता। जब इस विलक्षण कार्यका अभ्यास होने लगता है तो भाग-के बनावटमें भी अवश्य परिवर्तन होता है। इन्हीं कारणोंसे जड़, तनों और पत्तियोंकी बनावटोंमें भी हम इतनी भिन्नता पाते हैं।

फूलदार पौदोंके तने जड़ और पत्ती

नीचे श्रेणीके पौदोंकी अपेक्षा हमारे फूलदार पौदोंकी जड़, तने और पत्ते तीनों सच्चे होते हैं और विशेष रूपमें पाए जाते हैं।

यह तीनों भाग एक दूसरेसे तो बनावटमें विशेष भिन्नता रखते हैं, पर हर एक भागके भिन्न भिन्न अंशोंमें एकसी हो बनावट होती है। हर एक पत्तीकी बनावट एक ही तरहकी होगी। तनेकी बनावट तने भरमें तने ऐसी होगी। इसी तरह जड़की बनावट इसके किसी भागमें एक ही सी होगी। इन भागोंमें कभी कभी उपस्थित भाग भी कई तरह के होते हैं जैसे कंटक, बाल इत्यादि।

शाखा (Branching)

पौधोंके तीनों भागोंके उपभाग भी हो सकते हैं जैसे जड़में छोटी छोटी जड़ शाखाएँ और फिर उनसे भी निकली हुई उप-शाखाएं जो रोमावली कहलाती हैं। इनकेद्वारा पृथ्वीसे जल और भोज्य पदार्थ पौदोंमें पहुंचते हैं। इसी तरह तनों और पत्तियोंमें भी शाखाएं और उपशाखाएं होती हैं। एकही तरहके भागसे शाखा निकलनेको शाखा विस्तार (Branching) कहते हैं। पौदोंमें दो तरहका विस्तार पाया जाता है। एक पार्श्विक जिसमें बढ़ते हुए तनों या जड़ोंके मस्तकोंके कुछ पीछेसे शाखाएँ पार्श्व भागसे फूट फूट कर निकलने लगती हैं; यह अव-स्था विशेषकर हमारे फूलदार पौदोंमें पाई जाती है। यह पार्श्विक विस्तार भी दो तरह का होता है। एक वह जिसमें उत्पादक भाग बढ़ता जाता है और बहुत सी शाखाएं निकलती जाती हैं और दूसरा वह जिसमें उत्पादक भागका बढ़ना दो तीन शाखाओंके निकलनेके बाद बन्द होकर, शाखाओं द्वारा पौदोंका विकाश होता है, और फिर पहलेकी तरह नियम दुहराया जाता है। इसी तरह शाखाओं, प्रशाखाओं द्वारा पौदोंका विकाश होता जाता है, जैसा आगे दिए हुए चित्र से ज्ञात होगा।
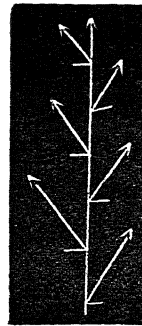
चित्र-५ तथा ६ पार्श्विक विस्तार

दूसरी तरहका विस्तार वह है जिसमें जड़ या तनेका बढ़ता हुआ सिरा दो भागमें विभाजित हो जाता है और हरएक ऐसा भाग बढ़कर शाखा रूप हो जाता है। यह नियम शाखाओं दर शाखाओं चला जाता है और इसी तरह पौधेका विकाश होता जाता है। ऐसे विस्तारमें द्विधा क्रिया

(bifurcation) का होना आवश्यक है। ऐसा विस्तार ऊंचे श्रेणीके पौदोंमें तो बिलकुल ही नहीं होता। पर विशेषकर घुवों (Fungus) और अलगा (Algae)आदिमें पाया जाता है।
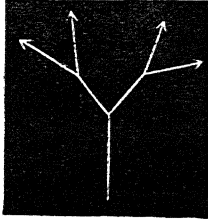
चित्र ७—द्विधा करण

वैज्ञानिकीय

(१) छाया चित्रणमें शकरका अद्भुत प्रयोग

जिन सज्जनोंको छाया चित्रणका शौक होगा, वह जानते होंगे कि नेगेटिवके सम्वर्धनमें बहुत ही थोड़ा समय लगा करता है। एक सज्जनने इस विषयपर एक लेख 'कोम्पडीज रेनडो' में लिखा है। उनका कथन है कि सम्वर्धक का समय इच्छानुसार शकरके प्रयोगसे बढ़ाया जा सकता है। उन्होंने मेटोल-हैड्रो-किनोन सम्वर्द्धक में ६० प्रतिशत शकर मिलाई, जिससे सम्वर्धनका समय ५ सेकंड से ५ मिनट हो गया। शकरके मिलानेसे न तो नेगेटिवके साफ हिस्से धुंधले हुए और न काले हिस्सोंमें किसी प्रकारका अन्तर पड़ा।

* * * *

(२) धुआं का पर्दा

(१) नित्यप्रति हम देखा करते हैं कि यदि लम्पके मुहरेके नीचेके छेद हाथसे बन्द कर दिये जायं तो लम्प धुआँ देने लगता है। इसका कारण यही है कि छिद्रोंद्वारा काफ़ी हवा बत्तीतक नहीं पहुंचने पाती। (२) किसी स्टोवमें तेल बहुतसा पम्प कर दीजिये, फिर देखिये कि स्टाव धुआं देने लगता है।

इन दो उदाहरणोंसे ज्ञात होगा कि जब कभी तेलकी मात्रा बहुत बढ़ जाती है या हवाकी मात्रा कम हो जाती है तो धुआं पैदा होने लगता है।

ठीक यही उपाय जंगी जहाज़ोंमें किया जाता है। जब कभी जहाज़को शत्रुके दलसे छिपाना होता है, तो फौरन किसी छोटी किश्ती या नाव-नाशक (destroyers) को जहाज़के चारों ओर घुमाते हैं, पर ऐसा करनेके पहिले उसके इंजन-में तेल अधिक पहुंचाकर या जाती हुई हवा कम करके बहुतसी धुआं पैदा करना आरम्भ कर देते हैं।

इस प्रकार जो धुआं पैदा होता है वह जहाज़-को धुआंकी चादरसे ढक लेता है, जिसकी ओट-में जहाज़को पीछे हटने, अपना स्थान बदलने आदि कार्योंकेलिए अवसर मिल जाता है।

* * * *

(३) साबुनके शोकीनोंको चेतावनी

अमेरिकन वैद्यक परिषदके मुखपत्रमें आंखों-को क्षारों द्वारा हानि पहुंचनेपर एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसका सारांश नीचे दिया जाता है:

"अभीतक गोल्फकी गेंदोंके फटने से और उनके भीतर भरे हुए क्षारोंके घोलसे जो हानि कई बार आखोंको पहुंच चुकी है, उसका हाल पहले कई बार प्रकाशित हो चुका है। यहांपर दो और क्षारोंके प्रभावके विषयमें लिखा जाता है।

एक लड़का अपने मकानपर सफेदी कर रहा था। इसी समय उसका एक मित्र उससे मिलने-के लिए आया। दोनों बालकोंमें बातें करते करते लड़ाई हो गई। पहले बालकने दूसरेके मुंहपर कूंची मारी, जिससे उसकी आंखमें सफेदी भर गई। इसका परिणाम यह हुआ कि इस लड़केकी आंख फूट गई।

इसी प्रकार एकबार एक लड़का अपने माता पिताके साथ एक दावतमें जानेवाला था। उसकी माताने उससे साबुनसे मुंह हाथ धोनेको कहा

लड़केने अपना चेहरा साफ करनेकेलिये बहुत सा साबुन रगड़कर सर, आंख और गरदनपर लगा लिया। कुछ साबुनके गाढ़े झाग आंखोंमें चले गये और इसका परिणाम यह हुआ कि आंखोंकी पुतलियां खराब हो गईं।

अतएव चेहरेपर साबुन लगाते हुए इस बात-का ख्याल रखना चाहिये।

* * * *

(४) पिचकनेवाली रक्षिणी-नौका

वर्तमान समयमें युरोपके आविष्कार कर्ताओं-का ध्यान जहां ऐसी ऐसी युक्तियोंके निकालनेमें लगा हुआ है जिनसे जान और माल दोनोंकी खैर नहीं वहां जीवकी रक्षा करनेकी युक्तियां भी निकाली जा रही हैं। इसी सम्बन्धमें वर्लिनके हरमायरने (Herr Mayer) एक पिचकजाने वाली रक्षिणी नौकाका निर्माण किया है। मोड़-लेनेपर यह नौका आसानीसे एक झोलेमें रख कर कंधेपर लटकायी जा सकती है। साथ ही साथ इसमें यह गुण भी है कि दो ही तीन मिनट आप इसे खोलकर हवा भर कर पानीमें डाल सकते हैं। इसके मुख्य अंग दो हैं—एक फूला हुआ रबड़का चोंगा और दूसरा लकड़ीका चबू-तरा जो चोंगेके बीचमें है। इसकी लम्बाई दो गज़ और चौड़ाई एक गज़ है। यह जिस समय मोड़कर बांध ली जाती है तोलमें केवल साढ़े सात सेर ठहरती है, परन्तु पानीमें ६६० पौंड अथवा सवा आठ मनका बोझा लाद सकती है। इसकी रबर-नलीमें हवाका दबाव वायुमण्डलके दबावका एक-तिहाई है, इसलिए छेद हो जानेपर इसमेंसे हवा इतने धीरे धीरे निकलती है कि छेदको बन्द करनेकेलिए काफी समय मिल जाता है। चाहें इस नावको डांड़से चलाइए चाहे हाथोंसे। बोझके अधिक बढ़ जानेपर इसके एक करवट हो जानेका डर नहीं रहता, क्योंकि बैठनेके तख्तेके नीचे वायु-शून्य होनेसे नौका पानीमें और गहरे चली जाती है और यथार्थ तलतक डूबी रहती है। इसके ऊपरी किनारेपर बहुतसे फंदे या छेद बने रहते हैं जिनको पकड़कर बहनेवाले (तैरनेवाले) भी अपनी जान बचा सकते हैं और नौका बोझल भी नहीं होने पाती। पानीमें नौका छोड़नेका काम सबसे सहज है। पानीमें फेंक दीजिए, बनावटमें समानता होनेसे चाहे कोई तल पानी-पर पड़े, नौका उचित अवस्थामें हो जायगी। आविष्कार कर्ता इससेभी बहुत बड़ी नावके तैयार करनेके प्रयत्नमें है, जिसकी जांच पड़ताल हो रही है और सफलताके लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं। यह तोलमें तो केवल २२० पौंड अथवा पौने तीन मन है परन्तु २२००० पौंड वा २७५ मनका बोझ लाद सकती है। यह २० फुट लम्बी और १० फुट चौड़ी है। इसके भीतर ५० मनुष्य सुखपूर्वक बैठ सकते हैं और रबड़की नलीपर १०० मनुष्य और भी।

* * * *

(५) काग़ज़ बनानेके रेशे

कपासके पौदोंके डंठल

यह बहुत दिनोंसे मालूम है कि कपासके डंठलसे ऐसे अच्छे रेशे निकलते हैं कि उनसे काग़ज़ बनानेकी बहुत अच्छी लुगदी तैयार की जा सकती है और यह काते भी जा सकते हैं। अबतक इसका ज्ञान प्रायोगिक अवस्थामें ही था। व्यापारकेलिए इसका उपयोग बहुत कम होता था। वर्तमान युद्धके कारण चारों ओरसे किफ़ा-यतकी पुकार हो रही है। इस कारण इस सम्बन्ध-में भी खोज की जा रही है कि कौनसी युक्ति की जाय जिससे कपासके डंठल जो अभीतक व्यर्थ नष्ट होते थे अथवा जला दिये जाते थे लाभ पहुं-चावें। अमेरिकाके केवल दक्षिणी राज्यमें प्रति-वर्ष ५ करोड़ टन अथवा एक अरब चालीस करोड़ मनके लगभग कपासके डंठल होते हैं। इतने डंठलसे यदि स्वच्छ रेशा तैयार किया जाय तो तोलमें इसका आधा ठहरे। काग़ज़ बनानेके-लिए इसकी लुगदी वैसा ही काम देगी जैसा लकड़ी

की लुगदी देती है। यदि इन रेशोंको कातनेके काममें लाना हो तो डंठलको धोकर साफ करनेके बाद लोहेके बेलनोंके नीचे दबाना चाहिये जिससे रेशे अलग हो जायं। इसको व्यापारके रूपमें लानेके लिए प्रयोग किये जा रहे हैं और लेखा लगाया जा रहा है। कपासके डंठलकी उपज भारतवर्षमें जितनी होती है उससे व्यापार अच्छी तरह चल सकता है, इसलिए कागज़ बनानेवाली कम्पनियोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये। यहां तो यह केवल फूंकतापके काममें साधारणतः आता है और राखसे खादका काम लिया जाता है। अब यह देखना है कि इनसे क्या काम लिया जाय कि माल बढ़िया तैयार हो और किफ़ायत भी हो।

दक्षिणी अफ्रीकाकी तम्बूकी घास और पेपिरस

तम्बूकी घास (Cymbopogon Nardus Var. Vallidus) ट्रान्सवालमें बहुत कम उपजती है और विशेष करके उत्तरी भागोंमें। इसकी ऊंचाई अधिकसे अधिक साढ़े पांच फुट तक नापी गई है और भूमिके पासका व्यास-$\frac{1}{2}$ इंचतक होता है। कास्टिक सोडासे लुगदी बनायी जाय तो ३७.१ प्रतिशत तैयार होती है जो सुगमता पूर्वक स्वच्छ की जा सकती है। इस लुगदीके रेशेकी औसत लम्बाई ०.०८१ इंच होती है और कागज़ बनानेकेलिए बहुत अच्छी तरह काममें लायी जा सकती है। अल्जीरियन इस्पार्टो नामी घाससे इसका मान अधिक समझा जाता है।

ज़ूलूलैंडके सेंट लूसिया बे डिस्ट्रिक्ट्समें पेपिरस (Papyrus) मिलता है जो पूर्वी अफ्रीका और रूदनवाले पेपिरस से समानता रखता है। कास्टिक सोडासे इसकी लुगदी भी तैयार की जा सकती है। इन दोनों घासोंके सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि यदि ये वहां से ऐसे ही काटकर और और देशोंमें कागज़ बनानेके लिए भेजी जायं तो किफ़ायत नहीं होगी और न लाभ ही होगा, क्योंकि ढोआई बहुत पड़ेगी परन्तु यदि वहीं कागज़ बनाया जाय अथवा आधा तैयार माल बाहर भेजा जाय तो विशेष लाभ होगा।

* * * *

(६) मालगाड़ीके रोकनेमें क्या ख़र्च पड़ता है

रेलगाड़ीपर यात्रा करनेवाले अच्छी तरह जानते हैं कि मालगाड़ी बहुत धीरे धीरे चलती है और कहीं पसींजर गाड़ी अथवा डाकगाड़ीसे भेंट हो जाती है तो मालगाड़ीको ही रुकना पड़ता है और जब राह खुल जाती है तभी इसको चलनेकी आज्ञा मिलती है। ऐसा भी होता है कि राहमें जहां कहीं किसी रेलवे कर्मचारीको आवश्यकता पड़ती है, मालगाड़ी रोक देनी पड़ती है। भारतवर्षमें ही नहीं अमेरिकामें भी यही प्रथा है। परन्तु खोजसे जाना गया है कि औसत बोझेकी मालगाड़ी यदि १५ मील प्रति घंटेके हिसाबसे चलती हो तो इसको रोककर फिर उसी प्रकार वेगवती बनानेमें चार मनसे लेकर ८ मनतक कोयला व्यर्थ नष्ट हो जाता है अर्थात् कई बार गाड़ीको रुकना पड़े तो लाभका एक अच्छा अंश हवामें उड़ जाय। इन सब बातोंपर विचार करके अमेरिकामें कुछ ऐसी युक्ति की जा रही है जिससे जहांतक सम्भव हो मालगाड़ी बहुत कम रोकी जायं। यदि इससे पसींजर गाड़ीके चलनेमें कुछ रुकावट हो तो कोई चिन्ताकी बात नहीं।

* * * *

(७) टिड्डी दलकी शत्रु

अलजीरियामें (अफ्रीका) एक प्रकारकी मक्खी पाई जाती है जो टिड्डियोंके अण्डोंको खा जाती है। टिड्डियोंके दलके साथ साथ यह भी यात्रा करती हैं; जहां वे अण्डे देती है तहां यह अण्डे देती हैं, जिनमें से बच्चे पैदा होकर अन्य टिड्डियोंके अण्डोंको खाना आरम्भ कर देते हैं।

* * * *

(८) क्या आरेसे लोहा भी काटा जा सकता है?

केस्सलके लोहे ढालने वालोंकी एक सभामें डस्सलडोर्फ़के एक इंजीनियरने ३ इंच मोटी लोहकी छड़ दिखाई, जिसके दो टुकड़े उन्होंने एक मामूली आरेसे किये थे। उनका कथन था कि उत्तप्त दशामें $१\frac{१}{२}$ मिनटमें यह छड़ काटी गई थी। एक और इञ्जीनियरने भी, जो सभामें उपस्थित थे इस कथनका समर्थन करते हुए कहा कि लोहेके छड़ोंको उत्तप्त दशामें साधारण आरोंसे काटनेकी विधि कुछ दिन पहले प्रचलित थी, पर आजकल काममें नहीं लाई जाती। (Electro technische Zietschraft से)

(९) क्यूबा द्वीपकी घास

इस द्वीपमें 'मलवा' नामकी एक घास जङ्गलोंमें पाई जाती है। इस घासकी उक्त द्वीपमें ग्यारह जातियां पाई जाती हैं। उनमेंसे 'मलवा ब्लेनका' की छालके रेशे उसी भांति निकाले जा सकते हैं, जैसे सनके। यह पौदा मामूली तौरपर आठ या दस फुट ऊंचा होता है, पर कभी कभी २०फुट तक भी बढ़ जाता है। इसकी डंठलका व्यास १/२ इंचसे लेकर $१\frac{१}{२}$ इंच तक होता है। नए पौदोंमें केवल छालकी एक तह ही रहती है, पर पुराने पौदोंमें आठ आठ तहें भी पाई जाती हैं। इसका रेशा सनका सा मज़बूत, पर उससे कहीं बारीक होता है। अतएव सम्भव है भविष्यमें यह रस्से और बोरे बनानेके काम आवे।

सनका प्रयोग संसार भरमें, रुई, शकर कौफी नाज, ऊन, इत्यादि चीज़ोंको भरनेके थैले या बोरे बनानेके काम आता है। भारतसे प्रतिवर्ष एक किरोड़ गज़ टाट और ४० लाख थैले विदेश को भेजे जाते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत सा सन भी जाता है। कहीं ऐसा न हो कि इसकी भी रफ़तनी बन्द हो जाय।

चुम्बक।

[ले० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

(गतांक से सम्मिलित)

(२) ऐंठनतुलासे चुम्बकोंकी प्रबलताओंकी तुलना करना

ऐंठन तुलासे चुम्बकोंकी प्रबलताओंकी तुलना करनेकेलिए एक चुम्बकको पहले रकाबमें रखकर तारका ऊपरका सिरा घुमाया जाता है जबतक कि चुम्बक थोड़ासा हट न जावे। मान लो चुम्बकको $क१^\circ$ अंश हटानेकेलिए ऊपरवाले सिरेको क अंश घुमाना पड़ा तो तारमें $क^\circ - क_१^\circ$ ऐंठन रही।

इस ऐंठनके युगलका घूर्ण =

$$(क^\circ - क_१^\circ) \times स \quad \ldots \quad (१)$$

और हटी हुई अवस्थामें पृथ्वीवाले युगलका घूर्ण = $च \; प्र \; ज्या \; क_१$ ... ... (२)

जहां चुम्बकीय घूर्ण च के बराबर और शक्तिका प्रभाव प्र के बराबर है।

इसी प्रकार यदि दूसरे चुम्बकको $क_१^\circ$ हटानेकेलिए तारके सिरेको $क^\circ_२$ घुमाना पड़े तो इसके सम्बन्धी युगलोंके घूर्ण = $(क_२^\circ - क_१^\circ) \times स$ और $च१ \; प्र \; ज्या \; क_१$ जहां इसका चुम्बकीय घूर्ण $च_१$ के बराबर है।

इनमेंका प्रत्येक चुम्बक अपने नये स्थानपर साम्यावस्थामें है इसलिये प्रत्येकपर लगेहुए दोनों युगलोंके घूर्ण बराबर होने चाहियें।

$$(क^\circ_२ - क^\circ_१) \times स = च_१ \; प्र \; ज्या \; क_१ \quad (३)$$

और

$$[क^\circ - क^\circ_१] \times स = च \; प्र \; ज्या \; क_१ \quad \ldots \quad (४)$$

(३) को (४)से भाग देने से

Magnetism चुम्बकत्व]

$$\frac{च_१}{च} = \frac{क°_२ - क°_१}{क° - क°_१}$$

चुम्बकीय घूर्णोंकी तुलना इस प्रकार हो सकती है। यदि दोनों चुम्बकोंके केन्द्रोंके बीचकी दूरी एक ही हो तो प्रबलताओंका भी यही सम्बन्ध होगा।

(३) चुम्बकत्वमापकसे प्रबलताओंकी तुलना करना।

किसी चुम्बकको चुम्बकत्व मापकपर रखनेसे यह समीकरण मिलता है, जैसा पिछले लेख में सिद्ध कर चुके हैं—

$$\frac{१}{२} द^३ स्पर्श क = \frac{च}{प्र}$$

और इसी प्रकार दूसरेको (यदि बराबर लम्बा चौड़ा हो) रखनेसे मिलता है।

$$\frac{१}{२} द^३ स्पर्श क_१ = \frac{च_१}{प्र} \quad (२)$$

(१) को (२) से भाग देनेसे चुम्बकीय घूर्णोंका सम्बन्ध मालूम हो जाता है।

$$\frac{स्पर्शक}{स्पर्शक_१} = \frac{च}{च१}$$

(४) चुम्बकोंकी प्रबलताओंका मुकाबिला झोटोंका समय निकाल कर करना।

एक चुम्बकके झोटेका समय

$$स = २ π \sqrt{\frac{म}{च प्र}} \quad (१)$$

यदि "म" इसके मात्राका घूर्ण और च चुम्बकीय घूर्ण हो तो। इसी प्रकार दूसरेके झोटेका समय

$$स_१ = २ π \sqrt{\frac{म_१}{च_१ प्र}}$$ यदि $म_१$ दूसरे चुम्बकके मात्राका घूर्ण और '$च_१$' इसका चुम्बकीयघूर्ण हो।

(१) को (२) से भाग देनेसे $\frac{स}{स_१} = \sqrt{\frac{म \; च१}{म_१ \; च}}$

यदि दोनों चुम्बकोंकी लम्बाई चौड़ाई और बोझ बराबर हों तो म और $म_१$ बराबर होकर कट जावेंगे और च और $च_१$ की तुलना हो जावेगी।

(५) दो सिरोंमें आकर्षण, अथवा निराकरणकी शक्ति दूरीके वर्गके साथ विपरीत संबंध रखती है।

चुम्बकत्वमापकसे इस नियमकी जांच करते समय चुम्बकको इस प्रकारसे रखा था कि उसका एक सिरा क्षितिज धरातलमें था और दूसरा दिक्सूचकके चुम्बकके बीचके ऊपर। जो युगल दिक्सूचकके चुम्बकको हटा देता है जिससे वह $उ_२ \; द_२$ स्थानमें जाकर ठहरता है उसकी
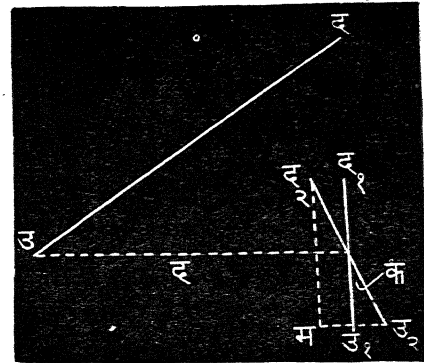
उ द चुम्बक है, $उ_१ \; द_१$ –दिक् सूचक है, द–दूरी है। $उ_२ \; द_२$ –दिक् सूचक की नई स्थिति।

चित्र १

शक्तियां $= \frac{पप_१}{द^२}$ और $-\frac{पप_१}{द^२}$ हैं जहां $प \; प_१$ चुम्बकोंके केन्द्रोंकी प्रबलताएँ हैं और चुम्बकका उत्तरी सिरा चुम्बकत्वमापकके केन्द्रसे द दूरीपर है। इस युगलका घूर्ण

$$= \frac{पप_१}{द^२} \times ल \times कोज्या \; क$$ जहां क विचलनका कोण है और ल दिक्सूचकके केन्द्रोंके बीचकी दूरी है। पृथ्वीवाले युगलका घूर्ण $= प_१ \times प्र \times ल$ ज्याक इन दोनों युगलोंकेघूर्ण बराबर हैं इसलिए

$$\frac{\text{पप}_1}{\text{द}^2} \times \text{ल} \times \text{कोज्या क} = \text{प}_1 \times \text{म} \times \text{ल ज्या क}$$

प_1 और ल कट जाते हैं। इसलिए

$$\frac{\text{प}}{\text{म}} = \text{द}^2 \times \text{स्पर्श क}$$

प और म तो दूरी बदलनेसे बदलते ही नहीं है इसलिए इस नियमकी सत्यताकेलिए यह आवश्यक है कि दूरीकेवर्ग और विचलनकेकोणके स्पर्शरेखाका गुण न फल एक ही रहै। यह उस प्रयोगमें साबित कर दिया गया था। जिस प्रकार नीचे रखे हुए सिरेसे क्षितिज धरातलमें युगल उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार ऊपर वाले सिरेकी उपस्थितिसे ऊर्ध्वतलमें युगल उत्पन्न होता है जिसका क्षितिज धरातलमें कोई असर नहीं होता है। यही इस रीतिका सबसे बड़ा उपयोग है।

वैज्ञानिक परिभाषा।

[ले०—प्रोफ़ेसर पीतमलाल गुप्त, एम. एस सी.]

कुछ लोग उच्चशिक्षाकेलिए हिन्दी माध्यमको उचित नहीं समझते हैं, क्योंकि उनके कथनानुसार वैज्ञानिक पारिभाषक शब्दों (technical terms) केलिए हिन्दीमें शब्द घड़ना दुष्कर ही नहीं वरन् असम्भव है। ऐसे महानुभावोंकेलिए हमारी प्रार्थना है कि वह नागरी प्रचारिणी सभा काशीके शुभकार्यपर दृष्टिपात करें। उक्त सभाने पारिभाषिक शब्दोंको कोषरूपमें छापकर हिन्दीमें विज्ञानकी पुस्तकें रचनेका कार्य सुगम बनानेकी चेष्टा की है। किन्तु जब कोई व्यक्ति पुस्तक लिखना प्रारम्भ करता है तो उसको अनुभव होता है कि हिन्दी वैज्ञानिक कोष, बहुत अपूर्ण है और उसमें जो परिभाषाएँ दी हैं, उनके कई आवश्यक अङ्ग छोड़ दिये गये हैं।

कुछ समय हुआ मैंने "सरल त्रिकोणमिति" [Miscellanious फुटकर] लिखनेका विचार किया। आरम्भ करनेपर मालूम हुआ कि यद्यपि उक्त कोषमें Sine, Cosine इत्यादिके लिए ज्या कोटिज्या आदि शब्द दिये हुए हैं, परन्तु उनके संक्षिप्तरूप बिलकुल नहीं दिये। संक्षिप्तरूपोंका देना उतना ही आवश्यक है, जितना परिभाषाओंका। आवश्यकतावश ज्या, कोटिज्या आदिकेलिए संक्षिप्तरूप तथा अन्य परिभाषाएँ बनानी पड़ीं। अब वह परिभाषाएँ नीचे दी जाती हैं। आशा है कि वैज्ञानिक विषयोंके लेखक इनपर विचार करेंगे और फिर उनको स्वीकार करेंगे अथवा अधिकतर शुद्ध परिभाषाएँ बतावेंगे जिनको मैं ग्रहण करूं और यह हिन्दी वैज्ञानिक संसारमें सदैव मानी जायं और प्रचलित की जायं।

संक्षिप्त रूप इस प्रकार हैं—

Term	Short-form	परिभाषा	संक्षिप्तरूप
१. Sine	Sin.	ज्या	ज्या
२. Co-sine	cos.	कोटि ज्या	कोज्या
३. tangent	tan.	स्पर्शरेखा	स्पर
४. Co-tangent	cot.	कोटि-स्पर्श-रेखा	कोस्पर
५. Secant	sec.	छेदन रेखा	छे०र०
६. Co-secant	cosec.	कोटि-छेदन रेखा	को०छेर

अब पाठकोंको ज्ञात होगा कि इन संक्षिप्त रूपोंके बनानेमें नियम अवश्य है। कोटिका केवल को, स्पर्शका स्प, रेखा का र, और छेदनका छे लिया गया है। इस नियमसे संक्षिप्त रूप ठीक बन जाते हैं।

इनके अतिरिक्त और भी परिभाषाएँ बनानी पड़ी हैं, वह इस प्रकार हैं—

Coterminal angles	सपरिमित कोण
sexagesimal system	षष्ठ यात्मक रीति
Centesimal-system	शतात्मक रीति
II (पाई)	प
Radius, r	त्रिज्या, त्र
Radian	त्रैज्यायिक
O (थीटा)	t

घीकी परीक्षा

[ले० महेश प्रसाद भार्गव, एम० एस-सी०]

समाचार पत्रोंमें शुद्ध घीकेलिए जो आन्दोलन हो रहा है, उसका वृत्तान्त पाठकोंने पढ़ा-ही होगा। वास्तवमें किसी हिन्दूको इससे अधिक और क्या आपत्ति हो सकती है कि उसके खाने पीनेकी चीज़ें भी शुद्ध न मिलें। हिन्दू सभ्यताका मूलमन्त्र ही शुद्धता है। जिन परिणामों और सिद्धान्तोंपर आधुनिक सभ्यता बड़ी कठनाइयोंसे लाखों प्रयोग करके पहुंची है, उन्हींपर हिन्दू जाति केवल शुद्धताके विचारोंसे ही पहुंच गई। जिन महान् नियमोंका पालन करना अन्य देशोंकी उच्चतम शिक्षित समाजने कलसे ही सीखा है, उन्हीं नियमोंका पालन प्रत्येक हिन्दू यथा शक्य अनादिकालसे करता रहा है। इसका कारण केवल शुद्धता और शौचके विचारोंका जन साधारणमें फैलना है, जिसके लिए हम वैष्णव सम्प्रदायके चिर्वाधित रहेंगे।

हमारा उद्देश इस समय इतना ही है, कि घी-की परीक्षा करनेकी विधि बतला दें।

घीमें चर्बीकी मिलावटकी जांच

यह हमें स्मरण रखना चाहिये कि घी भी वैज्ञानिक दृष्टिसे एक प्रकारकी चर्बी ही है, पर वह अन्य प्रकारकी चर्बियोंकी अपेक्षा सहजमें ही पचनेवाली शुद्ध और बलवर्द्धक है। दूसरे वह बिना जीवोंको विशेष कष्ट दिये प्राप्त हो सकती है। इन सब कारणोंसे संसारमें घी या मक्खनको श्रेष्ठ और पवित्र माना है। भौतिक रीतियोंसे घीमें मिलावटका पता चलाना बड़ा कठिन है, पर रासायनिक रीतियोंसे बहुत सुगम है। हमारे पाठकोंमेंसे कइयोंने इन रीतियोंके जाननेकी इच्छा प्रकट की है, इसीलिए हम उन रीतियोंका उल्लेख करेंगे।

Analysis पृथकरण]

घीमें प्रायः सर्प आदि जीव जन्तुओंकी चर्बी या गरी, महुआ आदिका तैल मिला दिया करते हैं। मिलावटकी जांच तीन रीतियोंसे हो सकती है। वे रीतियां क्रमसे नीचे दी जाती हैं। तदनन्तर इन रीतियोंमें जो सुभीतेकेलिए परिवर्तन किये गये हैं, वह भी दिये जायंगे।

घीमें चर्बीकी मिलावट जाननेकी रीकार्ट द्वारा आविष्कृत (Reichart's) रीति

इस रीतिसे परीक्षा करनेकेलिए निम्न-लिखित सामग्रीकी आवश्यकता है:—

(१) दाहक-सोड़ाकाघोल—५० ग्राम दाहक सोड़ा ५० घन सेंटीमीटर पानीमें घोल दीजिये। तदनन्तर घोलको किसी बन्द बर्तनमें अलग रख दीजिये। जब घोल साफ़ हो जाय, तो उसे निकाल कर बोतलमें भरकर रख लीजिये।

[दाहक सोडामें मामूली धोबीका सोडा मिला रहता है, पर दाहक सोडाके गाढ़े घोलमें (जिसमें ५० प्रति शत दाहक सोडा मौजूद हो) सोडा अनघुल है, इसीसे जब दाहक सोडा पानीमें घोला जायगा, सोडा तले जा बैठेगा।]

(२) पतला गन्धकाम्ल :—गन्धकाम्ल इतना पतला हो कि यदि उसकी ५ घन सेन्टी मीटर, उपरोक्त दाहक सोडाके घोलकी १·५ घ० से० में मिला दी जायं तो मिश्रणमें अम्लका आधिक्य पाया जाय। *

* क्षार, वे पदार्थ होते हैं जो 'लिटमसके घोल' को जो थोड़ासा बेंजनी मिले नीले रंगका होता है, नीला कर दें। 'अम्ल' वे पदार्थ होते हैं जो लिटमसके घोलको लाल कर दें। अथवा 'अम्ल' नीले लिटमस घोलको लाल और 'क्षार' लाल-लिटमस-घोलको नीला कर देते हैं।

अब मान लीजिये कि आपने किसी प्यालीमें कुछ दाहक सोडाका घोल लिया और उसमें लिटमसका घोल थोड़ा सा मिला दिया। कुल मिश्रणका रंग नीला हो जायगा। अब इस मिश्रणमें कोई अम्ल, जैसे गन्धकाम्ल धीरे धीरे मिलाते जाइये।

क्षार और अम्लके संयोगसे लवण बनता जायगा। कुछ समय बाद सब दाहक सोडा अम्लके साथ लवण बना चुकेगा। तदनन्तर जो अम्ल मिश्रणमें मिलाया जायगा वह

(३) बेरीटा (Baryta) का दशांश—प्रमाण घोल—(Decinormal solution)

इसके बनानेकेलिए शुद्ध बेरियम श्रोषितके ७७·१८५ ग्राम १००० घनसेंटीमीटरमें घोल लेने चाहिएँ। पहले इसे किसी साधारण कुप्पीमें घोल लें, फिर नपनी—कुप्पीमें भरकर घोल ठीक १००० घनसेन्टीमीटर करलें।

(४) घी, जिसकी परीक्षा करनी है।

थोड़ासा घी किसी कांचके गिलासमें लेकर जलकुंडीपर गरम करो *। जब बिलकुल पिघल जाय तो उसे, छन्ने कागज़को मोड़कर बनाई हुई एक सूचीपर उँडेल दो। [यह सूची ऐसी ही हो जैसी कीपमें लगानेकेलिए बनाते हैं, यहां सूचीसे ही काम ले लेते हैं, उसे कीपमें नहीं लगाते।] सूची एक दूसरे गिलासके ऊपर थामी जाती है, जो जलकुण्डीपर गरम हो रहा हो।

यहां यह ख्याल रखना चाहिये कि पहले गिलासमें पिघले हुए घीके नीचे जो पानी, मट्ठा आदि बैठ गया हो वह भी सूचीमें न आ गिरे।

जांचनेकी विधि—२.५ ग्रामके लगभग ऊपर दी हुई रीतिसे साफ़ किये हुए घीको एक ऐसी कुप्पीमें तोल लो, जिसका आयतन २०० घन सें० मी० हो। उसमें १० घन सें० मी० अल्कहल (मद्यसार) मिला दो और तब उसमें १.५ घन से० मी० उपरोक्त दाहक सोडाका घोल डाल दो। कुप्पीका मुंह एकदम कागसे बन्द कर दो और उसमेंके द्रवको धीरे धीरे तबतक हिलाते रहो जबतक कि वह बिलकुल साफ़ न हो जाय। तदनन्तर कुप्पीको जल-कुण्डीपर बहुत धीमी आंच दो,जिससे घीका 'साबुन करण' पूरा हो जाय। [सभी तरहकी चर्बियां जब दाहक सोडाके साथ गरम की जाती हैं तो साबुन बन जाता है। इसी क्रियाको साबुन करण या Sopanification कहते हैं।] अब कागको कुप्पीके मुंहमेंसे निकाल कर,एक और काग लगादो, जिसमें एक छेद हो, और छेदमें एक छोटी काच-नलिका लगी हुई हो। तब कुप्पीको जलकुण्डीपर गरम करो जिससे मद्यसार वाष्प बनकर निकल जाय। सकड़ी नली जो कागमें लगाई गई है, उससे दो लाभ हैं। एक तो यह कि मद्यसारकी वाष्प बाहर निकल जायगी, दूसरे बाहरसे कर्बन-द्वि-श्रोषित कुप्पीमें प्रवेश न कर सकेगी। उपरोक्त गैस यदि कुप्पीमें पहुंच जायगी तो अन्तमें परीक्षाका फल ठीक न आयगा।

एक गिलासमें ०० घन से० मी० टपकाया हुआ पानी २० मिनटतक उबालो जिससे उसमें-की घुली हुई कर्बन-द्वि-श्रोषित निकल जाय। जब कुप्पीमेंसे मद्यसार वाष्प होकर निकल चुके तो उसमें लगी हुई काच नली वाली काग निकाल लो। झटसे उसमें १०० घन से० मी० उबला हुआ तिर्यक्पातित जल छोड़ दो और पहली-वाली रबर-काग लगा दो।

अलकहलके उड़जानेके उपरान्त कुप्पीमें साबुन बच रहता है। यह गरम पानीमें घुल जायगा। जब साबुन घुल चुके तो गंधकाम्लके घोल (२) की ५ घन से. मी. उसमें मिला दो। कुप्पीके द्रव-को हिलाओ, कांच नलीके छोटे छोटे टुकड़े

ऊगल होगा और नीले लिटमसको फौरन लाल कर देगा। स्मरण रखना चाहिये कि अम्लकी बहुत ही थोड़ीसी मात्रा भी यदि अधिक होगी तो नीला रंग लालमें परिणत हो जायगा।

अम्लके और क्षारोंके इस प्रकार लवण बनानेको, अम्ल (या क्षार) का 'उदासीनी करण' कहते हैं। क्योंकि यदि अम्ल और क्षार उचित परिमाणमें होंगे तो लिटमसका घोल नीले-बेंजनी अर्थात् 'उदासीन' रंगका रहेगा, पर यदि क्षार या अम्लकी ज़रासी भी कमी बेशी है तो रंग नीला या लाल होगा।

लिटमस जैसे पदार्थ, जो अम्ल या क्षारकी न्यूनाधिकता बतलाएं सूचक (Indicator) कहलाते हैं। यहांपर यह तात्पर्य्य है कि ५ घन-सेंटीमीटर घोलमें इतना अम्ल हो कि दाहक सोडाके १·५ घनसेंमीटरके क्षारके उदासीनी करण(Neutralisation) करने पर भी बच रहे।

* जलकंडीकेलिए देखिये विज्ञान प्रवेशिका भाग २ पृष्ठ १७७

उसमें डाल दो और फिर उसे किसी भभके (Condenser) से लगा कर गरम करो। इतना धीरे धीरे गरम करना चाहिये कि तिर्यक्पातित जलकी ५० घन सें० मी० १५ मिनटमें जमा हो सकें।

गन्धकाम्लके डालनेसे साबुनका पृथक्करण होगा। उसमेंका क्षार (दाहक सोडा) तो सोडियम गन्धेत बना लेगा, और उसमेंका अम्ल, (जो वास्तवमें घीमेंसे पैदा हुआ था) कुप्पीकी तलीटीमें बैठ जायगा। तिर्यक् पातनमें यही अम्ल पानीके साथ वाष्प बनेगा जो भभकेमें द्रव बन कर किसी बर्तनमें इकट्ठा किया जा सकता है।

तिर्यक् पातित जलमें फीनोल-थेलीन मिला दीजिये। घोलका रंग सफ़ेद बना रहेगा। अब बेरीटाका घोल इसमें ब्यूरटद्वारा धीरे धीरे मिलाते जाइये और तिर्यक् पातित द्रवको हिलाते जाइये। जब उसका रंग लाल हो जाय, तो ब्यूरटपर पढ़ कर देख लीजिये कि कितना बेरीटाका घोल मिलाया गया है।

यदि घी शुद्ध है तो उससे उपलब्ध तिर्यक् पातित द्रवके उदासीनीकरणकेलिए बेरीटाके १३ घन सें. मी. घोलकी आवश्यकता होगी, कभी कभी सम्भव है कि केवल १२.५ घन सें. मी. की ही आवश्यकता हो।

वास्तवमें घीकी ही चर्बी उड़नशील अम्लोंकी इतनी मात्रा पैदा कर सकती है। अन्य प्रकारकी चर्बियां या तो उड़नशील अम्ल, इस प्रकार व्यवहार किये जानेपर देती ही नहीं और यदि देती भी हैं तो बहुत कम। अतएव जब कभी १२.५ घन से. मी. से कम बेरीटा-घोलकी आवश्यकता हो तो, समझ लेना चाहिये कि घीमें चर्बी मिली हुई है।

रीकार्टकी परिवर्तित रीति (Reichart's second modified process).

इस रीतिमें नीचे दी हुई चीज़ें चाहिये:—

१—दाहक सोडाका घोल—५० ग्राम दाहक सोडा पानीमें घोल दो और पानी मिलाकर घोलको १०० घन सें० मी० कर लो। तदन्तर उसे दृढ़-छन्ना कागजमें होकर छान डालो और छाननमें ५०० ग्राम शुद्ध गिलीसरीन मिलाकर बन्द बोतलमें रख लो।

२—गंधकाम्लका प्रमाण-घोल—इस घोलमें इतनी गन्धकाम्ल होनी चाहिये कि इसकी एक घनसेंटीमीटर बैरीटाके दशांश प्रमाण घोलके दस घनसेंटीमीटर घोलका उदासीनीकरण कर दें।

३—बेरीटाका दशांश-प्रमाण घोल—यह जैसे पहले बतला चुके हैं तैयार कर लिया जाय।

परीक्षाकी रीति—किसी चौड़े मुंहकी बोतलमें ५ ग्राम साफ़ किया हुआ घी तोल लो, उसमें १० घन से० मी० दाहक सोडाका घोल मिला दो और बहुत छोटी लौसे कुप्पीको गरम करो, जब तक कि झाग आना बन्द हो जाय और घोल साफ़ हो जाय। द्रवको थोड़ी देर ठंडा होने दो, फिर ९५ घन से० मी० पानी मिला दो। यह पानी तिर्यक् पातित होना चाहिये और काममें लानेके पहले उसे २० मिनटतक उबाल लेना चाहिये। पानी कुप्पीमें धीरे धीरे मिलाना और कुप्पीको हिलाते रहना चाहिये, जिससे झाग एक दम न पैदा हो जायं और पानी निकल न जाय।

अब ५० घन से० मी० गंधकाम्लका उपरोक्त कुप्पीमें डाल दो। उसमें १ ग्राम पिसा हुआ झावा पत्थर डाल दो, कुप्पीको भभकेसे लगा दो और ११० घन सें० मी० तिर्यक् पातित जल इकट्ठा कर लो। इसीमें उड़नशील अम्ल पहलेकी नाईं इकट्ठा हो जायगा। तिर्यक् पातित जलमेंसे १०० घन से० मी० छान लो और छाननका बेरीटा घोल डालकर पूर्ववत् उदासीनीकरण कर लो। जितना बेरीटा-घोल मिलाना पड़े, उसे लिख लो और उसका दशांश उसमें जोड़ दो। यही बेरीटाका ठीक प्रमाण है।

यहां पर यह बतलादेना आवश्यक है कि इन रीतियोंमेंसे किसीसे भी प्रयोग करती बार

एक और कुप्पो ले लेनी चाहिये, जिसमें घी न रखकर बाकी सब क्रिया वैसे ही की जाय जैसी घी वालीके साथ।

मान लो कि घीवाली कुप्पीसे प्राप्त हुए तिर्यक् पातित द्रवकेलिए श घन सेंटीमीटर बेरीटा-जलकी आवश्यकता हुई, पर खाली कुप्पी-से प्राप्त हुएके लिए केवल स घन सें. मी. का फी है। तो घीसे प्राप्त हुए अम्लकेलिए केवल श—स घनसेंटीमीटरकी ही वास्तवमें आवश्यकता हुई।

अब स्मरण रखना चाहिये कि ५ ग्राम शुद्ध घीकेलिए २६ घन सें. मी. की आवश्यकता होती है।

यदि हमारे प्रयोगमें भी २६ घ. से. मी. की आवश्यकता हुई तो तो घी शुद्ध है, पर यदि कमकी हुई तो घीमें मिलावटका परिमाण

$$= \frac{२६ — (श\text{-}स)}{२६} \times १००$$

प्रतिशत है।

इस प्रकार घीमें मिलावटकी जांच हो सकती है और उसकी मात्रा भी निकल सकती है।

अन्य रीतियां फिर कभी दी जायंगी।

समालोचना।

मनोविनोद

ले०—कविवर पं० श्रीधर पाठक। डबलक्रौन सोलह पेजी। पृष्ठ संख्या २३२। मूल्य १) श्रीपद्मकोट प्रयागसे प्रप्य।

हिन्दी लिखने पढ़ने वालोंमें इस पुस्तकके निर्माताका नाम सभी जानते हैं। उनका परिचय कराना, मानों सूर्यको दीपककी ज्योति द्वारा दिखाना है। अवसर प्राप्त करनेके पीछेसे आप श्रीपद्मकोट प्रबन्ध-माला नामसे एक पुस्तक-माला निकाल रहे हैं। यह पुस्तक उसी मालाका ११ वां अङ्क है और आपकी फुटकर कविता-ओंका बहुत ही अच्छा संग्रह है।

इस पुस्तकके सम्बन्धमें नीचे दी हुई बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं:—

(१) इस पुस्तका समर्पण भारतकी आशा-लताके सरसानेवाले नवयुवकोंको किया गया है। ऐसा करके पाठकजीने स्वदेश प्रेमियोंको देश-सुधारका बीज मंत्र बतला दिया है।

(२) इसमें संस्कृत, हिन्दी और इंग्रेज़ीके पद्य सम्मिलित हैं, जिनमें हर तरहके विचार-वालोंके पढ़नेके योग्य पद्य मिलेंगे। जिस समय, जो चाहे—चाहे वह बुड्ढा, बालक, या युवा हो—जिस रसका आनन्द चाहता है, इस पुस्तकके पद्योंको पढ़कर उठा सकता है। यदि आप देश-भक्त हैं तो आप 'नौमि भारतम्' 'भारत श्री' 'भारत प्रशंसा' 'हिन्दबन्दना' आदि पद्य पढ़िये। यदि आप प्रकृति प्रेमी हैं तो 'मेघागमन' 'हिमा-लय' आदि पद्य पढ़िये। यदि आप शृङ्गार रसके प्यासे हैं तो 'वर्षा वर्णन' 'अंगशोभा' आदि पद्य पढ़ सकते हैं। चरित्र सुधारकोंकेलिए 'को एसो विद्वान' 'को सांचौ श्रीमान्' आदि पद्य पड़े आनन्ददायक हैं।

पाठकजीने बच्चोंके मन बहलावकेलिए 'मोर', कोयल', तीतर,, 'कौओं', को खूब चह चहाया है। वृद्ध सज्जन पुस्तकमें दिये हुए स्तोत्रोंका पाठ कर सकते हैं।

हिन्दी भाषामें ऐसे अनुपम, सर्वाङ्ग सम्पन्न और सुन्दर काव्योंके संग्रह अप्राप्य हैं। यही आज दिन दिखलाई दे रहा। प्रत्येक हिन्दी प्रेमीको इसे अपने पास रखना चाहिये।

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

भाग—५

मेष—कन्या १९७३

April—September, 1917.

प्रकाशक

विज्ञान--परिषत् प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

(२) विवाह प्रबंध

लेखक—मुकन्दीलाल । गढ़वाली प्रेस देहरादूनसे प्राप्य । मूल्य ≋) ।

विवाह संस्थापर यह एक छोटासा अनुपम ग्रन्थ है । लेखकके विचारोंकी स्वतंत्रता प्रति पृष्ठसे स्पष्ट है । आरंभमें ऐतिहासिक तथा सामाजिकदृष्टिसे विवाह संस्थाकी आलोचना की गई है। तदनन्तर "समाज और विवाहादर्श" "बहुविवाह प्रथा,' आदि कई प्रश्नोंपर सारगर्भित विचार प्रकट किये गये हैं । अपनी जाति या गोत्रमें विवाह न करनेकी प्रथाका जो कारण पृष्ठ १४पर बतलाया गया है वह ठीक नहीं मालूम पड़ता । प्रायः देखा गया है कि संसारकी जातियों में इस नियमका पालन केवल रोगोंके संचार (पीढ़ी दर पीढ़ी फैलना) के कम करने या मिटानेके उद्देश्यसे किया गया है। पुस्तक रोचक है । समाज सुधारकोंको अवश्य पढ़नी चाहिये ।

* * * *

(३) पितृ-यज्ञकी संहति

ले०--भिवानी निवासी लाला हरद्वारीमल चोखानी न० ४०२ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता । मूल्य ।)। उन्हींसे प्राप्य ।

हरद्वारीमल चोखानीजी आर्य समाजके मेम्बर हैं। पक्षपातको छोड़ना आसान काम नहीं, पर तो भी चोखानीजीने श्राद्ध विषयपर पक्षपात रहित आलोचना की है। विचार स्वतंत्र हैं और शान्तिसे प्रकट किये गये हैं। वास्तवमें ऐसे विचार करनेवालोंकी ज़रूरत है जो श्रीमत्स्वामी दयानन्द जीके अवतरण इस पुस्तकमें दिये हैं उनसे स्वामीजी की सत्यप्रियता प्रतीत होती है। वास्तवमें जो दूसरा गुण श्राद्धका पृष्ठ ३ पर स्वामीजी द्वारा बतलाया गया है, वह श्राद्ध करनेकी पक्षमें अकाट्य युक्ति है ।

जो महाशय इस पुस्तकमें बतलाये हुए विचारोंका खण्डन शास्त्रके प्रमाणोंसे करेंगे, उन्हें लेखक १००) देंगे।

* * * *

(४)साहित्य संगीत निरूपण ।

रचयिता लाला कन्नोमल, एम. ए., धौलपुर । प्रकाशक—आत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचारक मण्डल, रोशन मोहल्ला आगरा । वहींसे प्राप्य । पृष्ठसंख्या १२६ । मूल्य ॥)

इसपुस्तकके चार खंड हैं । पहले खण्ड (प्रस्तावना)में लेखकने भारतीय सांगीतका कुछ वर्णन किया है । उसमें आरोपण, मूर्च्छना आदि शब्दोंकी व्याख्या करनेके बाद रागरागिनियोंके समय और ऋतुके अनुसार गाये जानेकी प्रथापर विचार किया है। मनुष्यके शरीर, मन और बुद्धि सभीपर ऋतु और कालका प्रभाव पड़ता है। अतएव प्रकृत्या उसके भावोंमें भी अन्तर होता रहता है, यद्यपि मनुष्यकी कृत्रिम और अस्वाभाविक विचार प्रणालीके कारण यह स्वाभाविक विचार दब सकते हैं। प्रत्येक भावको विशेष प्रकारकी ध्वनि द्वाराही प्रकट करना पड़ता है, अन्यथा उसका उचित प्रभाव नहीं पड़ता। किसी अच्छे व्याख्याताको देखिये किस भावको वह किस लहजेमें प्रकट करता है। बस यही हाल रागरागिनियोंका भी है ।

फिर लेखकने साहित्यपर भी विचार किया है और रस, भाव, नायक नायिका आदिका वर्णन किया है ।

दूसरे खण्डमें एक 'रागमाला' नामी संस्कृत ग्रन्थ, हिन्दी टीका समेत दिया है। यह ग्रन्थ लेखकके कथनानुसार पहली बार छपा है । प्रत्येक श्लोकमें किसी विशेष राग या रागनीका स्वरूप वर्णन किया है। साथ ही लेखकने टिप्पणियों द्वारा प्रत्येक रागरागनीके नायक, नायिका, बतलाये हैं और यह भी दिखलाया है कि उसमें किस रस और भावको प्रकट करना चाहिये ।

तीसरे खण्डमें मान चित्रमाला दी है। इसे पूर्वोक्त दो खंडोंका सारांश कह सकते है ।

चतुर्थ खण्डमें भारतवर्षकी संगीत विद्यापर विचार प्रकट किये गये हैं ।

प्रत्येक सांगीत तथा साहित्यके विद्यार्थीको यह पुस्तक पढ़, उनका वास्तविक और प्रगाढ़ सम्बन्ध जानना चाहिये ।

———

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषत्-प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा

पूर्ण संख्या ३१
भाग ६
Vol. V.

तुला, १९७४ October 1917.

Reg NO. A 708
संख्या १
No. 1

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक-गोपालस्वरूप भार्गव

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)]

[१ प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानके नियम

(१) यह पत्र प्रति संक्रान्तिको प्रकाशित होता है। पहुँचनेमें एक सप्ताहसे अधिक देर हो तो प्रकाशकको तुरन्त सूचना दें। अधिक देर होनेसे दूसरी बार विज्ञान न भेजा जायगा।

(२) वार्षिक मूल्य ३) अग्रिम लिया जायगा। ग्राहक होनेवालोंको पहले वा सातवें अंकसे ग्राहक होनेमें सुविधा होगी।

(३) लेख समस्त वैज्ञानिक विषयोंपर लिये जायँगे और योग्यता तथा स्थानानुसार प्रकाशित होंगे।

(४) लेख कागज़की एक ओर, कमसे कम चार अंगुल हाशिया छोड़कर, स्पष्ट अक्षरोंमें लिखे जायँ। भाषा सरल होनी चाहिए।

(५) लेख सचित्र हों तो यथा संभव चित्र भी साथ ही आने चाहिएं।

(६) लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्त्तनमें सामयिकपत्र और पुस्तकें, मूल्य, तथा सभी तरहके पत्र व्यवहारकेलिए पता—

सम्पादक 'विज्ञान' प्रयाग

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग–दूधकी शुद्धता, बनावट, और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति।). २-ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति।-). ३–करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति॥।). ४–संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५–सनातनधर्म रत्नत्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धी।). ६–कागज़ काम-रद्दीका उपयोग-)

इनके सिवाय केला, नारंगी सन्तरा, सुवर्णकारी, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे ह। खेत (कृषिविद्या), कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगी सूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जारहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—गंगाशंकर पचौली—भरतपुर

हमारे शरीरकी रचना

कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसे अपने घरका पूरा पूरा हाल न मालूम होगा। पर ऐसे कितने मनुष्य हैं कि जिन्हें अपने असली घर (शरीर) का पूरा ज्ञान है। शरीरकी रचनासे पूरे परिचित न होनेके कारण हम अपने नित्य जीवनमें बड़ी बड़ी भूलें करते हैं और अपने स्वास्थ्यको बिगाड़ डालते हैं। अतएव यह परमावश्यक है कि हम अपने शरीरकी रचना भली भांति जानें। इसका सहज उपाय डा० त्रिलोकीनाथ रचित "हमारे शरीरकी रचना" नामक पुस्तक पढ़ना है।

पुस्तकमें २६८ पृष्ठ हैं और ५६ चित्र हैं। मूल्य केवल २।) ; विज्ञानके ग्राहकों और परिषद्के सदस्योंको २) रुपयेमें दी जायगी।

मिलने का पता—

मंत्री—विज्ञानपरिषद्, प्रयाग

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग ६ } तुला, संवत् १९७४ । अक्तूबर, सन् १९१७ । { संख्या १

मंगलाचरण

उठता है एक प्रश्न जगतसे पहले क्या था
जबतक दृश्य-प्रपञ्च कहीं कुछ नहीं बना था
यह सु-दृश्य, आकाश-भूमि-मय था कि नहीं था
चारु चराचर सृष्टि-समुच्चय था कि नहीं था
यह कह सक्ता है कौन नर, किसको इतना ज्ञान है
पर वर्द्धमान विज्ञानसे संभव कुछ अनुमान है

श्रीपद्मकोट, २४-९-१७ — श्रीधरपाठक ।

गन्धक

[ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए.]

अत्यन्त साधारण वस्तुएं भी जिन्हें हम नित्य काममें लाते हैं, अक्सर देखा करते हैं, खोजसे ऐसे ऐसे रहस्योंका उद्घाटन करती हैं, वह वह भेद खोलती हैं, कि बुद्धि चकित हो जाती है । गंधक भी ऐसी ही वस्तुओं-में से है । पारेके साथ साथ गंधकका प्रयोग हमारे वैद्य लोग कमसे कम दो हज़ार वर्षसे करते आये हैं, और रासायनिक लोग, जो निरंतर पारसकी खोजमें रहा करते थे, न जाने कितने कालसे गंधकके साथ विविध पदार्थोंकी परीक्षा करते रहे हैं । गंधक जलाकर हवा साफ़ करनेकी रीति भी नयी नहीं है । हमारे देशके अनेक साधु सन्यासी गंधकके साथ अन्य धातुओंके और द्रव्योंके यौगिक बनाकर चमत्कारिक औषधियाँ बनाते हैं और बड़ी सावधानीसे अपने प्रयोगोंके रहस्यकी

Chemistry रसायन शास्त्र]

रक्षा करते हैं। पहले गंधक पन्सारियोंकी दूकानपर सभी जगह मिल जाया करता था, परन्तु जबसे विस्फोटकोंका आईन पास हो गया, लैसन्सदारोंके सिवाय और कोई बेचने नहीं पाता। गंधककी कथा पढ़नेवालेको उचित है कि गंधकके कुछ टुकड़े लेकर उनकी भली भांति परीक्षा करे और जहांतक हो सके गंधकके गुणोंका प्रत्यक्ष अध्ययन करके इस अत्यन्त साधारण वस्तुसे अच्छी तरह परिचित हो जाय।

गंधक कहांसे आता है

ज्वालामुखी पर्वतोंका और गंधकका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। जहां कहीं पृथ्वीके गर्भसे खनिज पदार्थोंके किसी प्रकार फूट निकलनेका अवसर होता है वहां गंधकका निकलना अनिवार्य्य है। परन्तु बहुतेरे ऐसे स्थानोंमें भी जहां जलके सोतोंसे गर्म या उबलता हुआ पानी निकलता है, गंधक भी जलमें घुला हुआ पृथ्वीके बाहर आ जाता है। पहाड़ी प्रदेशोंमें गंधकके सोते अक्सर देखे जाते हैं। नैनीतालमें तालके निकट और देहरादूनसे नौ दस मीलपर सहस्रधारामें गंधकके सोतोंसे जिन सैर करनेवालोंने पानी पिया होगा वह यह बात भली भांति जानते होंगे। परन्तु जलके द्वारा गंधककी मात्रा बहुत थोड़ी आती है। ज्वालामुखी पर्वत इतना गंधक एकबारगी उगल देते हैं, कि कहीं कहीं गंधकके पहाड़ बन गये हैं। जापानके निकट एक टापू है जिसका नाम "ईवोगसीमा" अर्थात् गंधकद्वीप है। जापानके इतिहासमें "कम्पफर" (Kampfer) लिखता है, कि "सौ बरससे कुछ कम ही हुए होंगे कि इस निर्जन स्थानको जापानियोंने भले प्रकार देखा भाला, क्योंकि इस टापूमें पृथ्वीसे इतना धुआं निकला करता था कि लोग जानेसे डरते थे और इसे पिशाचोंका स्थान समझते थे। पहले पहल एक साहसी वीर पचास बहादुर आदमियोंको संग लेकर इस भयानक टापूकी पूरी परीक्षाकेलिए तैयार हो गया। जब किनारेपर उतरा तो राक्षसों और पिशाचोंके बदले अगणित छिद्रोंसे अग्नि देवताको फुसकारते और धुआं निकालते हुए पाया।" वास्तवमें यह एक गंधकका पर्वत है जिसको खोदकर शुद्ध पीला गंधक निकालते हैं और सौ वर्षसे यह पहाड़ जापानकेलिए एक अच्छी आयका कारण है।

उत्तरीय प्रशान्त महासागरमें जापानके उत्तरी किनारे और कमचाटका प्रायद्वीपके बीचमें एक छोटासा टापू है, जिसका नाम "इजो फू" है। इसके ऊपरी भागमें इतना गंधक जमा है, कि कहते हैं कि संसारमें और किसी भागमें इतनी बड़ी मात्रामें गंधक नहीं पाया जाता। यहां तीन ज्वालामुखी पहाड़ हैं, जिनकी ऊँचाई अट्ठाईस सौ फुट है और यह सारे पहाड़ प्रायः शुद्ध गंधकके हैं। यह सच है, कि गंधककी खुदाई मुद्दतसे होती आती है, परन्तु इनके शिखरसे गन्धककी इतनी मात्रा बराबर निकला करती है, कि पहाड़में कमी नहीं होने पाती। साथही एक कठिनाई भी है। यह टापू साधारण मार्गोंसे अलग और दूर है—उत्तर दिशामें इतनी दूर है, कि अगहनसे लेकर जेठके महीनेतक बर्फ़से ढका रहता है।

संवत १९५५में अमेरिका और जापानके शिल्पियोंने इस टापूकी परीक्षा की। पता लगा कि समुद्रतटसे कोस ही भरपर गन्धककी अपरिमित मात्रा मिल सकती है। भूमिपर पड़े हुए और चट्टानकी नाईं जमे हुए गन्धककी ही मात्रा अटकलसे सवाचार करोड़ मनके लगभग थी। उस समयसे यहां बराबर गन्धककी खुदाई होती है, परन्तु सालमें पांच महीनेसे अधिक काम नहीं हो सकता, क्योंकि जाड़ोंमें इतना बर्फ़ जम जाता है, कि गन्धकका तल, सत्रह हाथ नीचे पड़ जाता है। जहां गन्धककी खुदाई होती है, वहांसे किनारेतक तार लगे हुए हैं जिनपर बिजलीकेद्वारा गन्धकसे भरे ठेले दौड़ते

हैं और ऊपर हा ऊपर मालको जहाज़तक पहुंचा देते हैं। यहां भी गन्धकका पहाड़ मधुमक्खीके छत्तेकी तरह छिद्रमय है। इन छेदोंसे बराबर घना धुआं निकला करता है जिससे सांस घुट जाती है, परन्तु इस धुएंसे गन्धककी मात्रा बराबर बढ़ती ही जाती है। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि जहां इस प्रकार गन्धकका धुआं निकलता होगा वनस्पतिका होना असम्भव है। जो कुछ वनस्पति है भी वह समुद्रके बिलकुल किनारे किनारे लगी हुई है।

और खनिजोंको खोदकर निकालनेमें उनकी मात्रा घटती ही जाती है, पर गन्धकका अजब हाल है। इधर गन्धक खर्च करते जाते हैं उधर उसकी आमद भी होती जाती है। इटलीमें नेपल्स नामक नगरके पास पम्फोलीके ज्वालामुखीसे 'ग्राव' खोदते हैं और आंच देकर उससे गन्धक निकाल लेते हैं। बचे हुए कंकड़ फिर उसी स्थान-पर फेंक आते हैं। तीस वर्ष बाद उन्हीं कंकड़ों-से फिर उतना ही गन्धक मिलता है।

दक्षिण-सिसलीमें गर्गवन्ती नामका एक कसबा है जिसमें अब केवल उन्तीस वा बीस हज़ार मनुष्योंकी आबादी है। दो हज़ार वर्ष पहले यह एक विशाल नगर था, जिसमें आठ लाख मनुष्य रहते थे। अब भी सिसली-द्वीप भरमें गन्धककी रफ़्तनी सबसे अधिक यहांकी ही है। परन्तु यहां शुद्ध गन्धक नहीं मिलता। यहांका गन्धक मिट्टीसे मिला हुआ है। इस मिट्टीको बड़े बड़े गोल भट्टोंमें जलाते हैं जिनकी ऊंचाई सात हाथ और व्यास बीस हाथके लगभग होता है। पहले पयाल बिछा देते हैं उसपर बीच बीचमें हवाकी जगह छोड़कर गन्धकी मिट्टीके बड़े बड़े ढोके रख देते हैं। इसके ऊपर छोटे छोटे पत्थर रखते हैं। सबसे ऊपरी भागको पहलेकी जली हुई मिट्टी-से ढक देते हैं। पयालमें आग लगा देनेसे नीचेका भाग जलने लगता है और ऊपरके भागसे गन्धक गल गल कर नीचे गिरता है। भट्टेके नीचे गन्धककेलिए एक जगह बनी होती है, वहीं
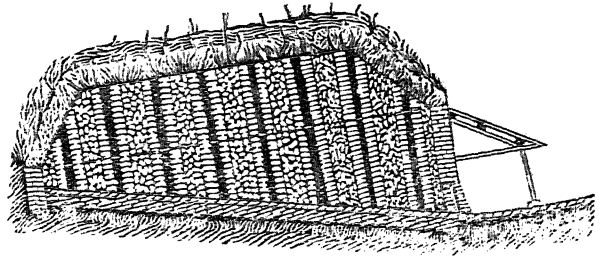
चित्र १—गंधककी भट्टी

बह कर गन्धक जम जाता है। यह गन्धक भी बहुत अशुद्ध होता है। इसे लोहेके बड़े बड़े देगों-में गर्म करते हैं और इसमेंसे निकलकर गन्धकका धुआं भभकोंके द्वारा ईंटोंकी बनी हुई कोठरीमें जाता है। वहां दीवारोंपर और भूमिमें पीले चूर्ण-के रूपमें जम जाता है। इसे गन्धक-चूर्ण कहते हैं। कुछ देरमें यह कोठरी इतनी गर्म हो जाती है, कि गन्धक द्रवके रूपमें इकट्ठा कर लिया जाता है और लकड़ीके शंकु वा बेलनके आकारके सांचोंमें ढाल लिया जाता है। इसे क़लमी गन्धक कहते हैं।

गन्धकी मिट्टीमें चौथाईसे लेकर तिहाई भाग तक गन्धक होता है और यह मिट्टी दस हाथसे लेकर साठ हाथ तककी मोटाईमें पायी जाती है। गन्धककी खानि पहले तो इतनी तंग होती है, कि एक आदमी कठिनाईसे जा सकता है, परन्तु कुछ दूर जानेपर चौड़ी और अत्यन्त ऊंची कन्द-राएँ देखनेमें आती हैं जिनके भीतर बड़ी गर्मी मालूम होती है। सभी भीतर जानेवाले मज़दूर नंगे बदन काम करते हैं। सिसलीसे प्रतिवर्ष सत्ताईस लाख मन गन्धक बाहर जाता है।

सिसलीके गन्धकके क्षेत्रके सम्बन्धमें एक बड़ी ही अद्भुत घटना सुननेमें आती है, जो संवत १८४३ विक्रमीमें वहांके "सबमटीनो" नामक

प्रसिद्ध स्थानमें हुई थी। सबमटीनोंकी खानमें मज़दूर लोग काम कर रहे थे। किसीकी असावधानीसे अचानक आग लग गयी। मनुष्य तो प्राण लेकर किसी तरह भागे परन्तु अग्निकी प्रचण्ड ज्वाला जो उठी तो दो वर्षतक लगातार भभकती रही। उससे इतनी घातक हवा निकली कि खानके निकट जाना असम्भव था। खानके मालिक अपनी सम्पत्तिसे हाथ धो बैठे और उनका कारोबार चौपट हो गया। परन्तु प्रकृतिकी विचित्र लीलासे एकाएक एक दिन पहाड़की छाती फट गयी और गिरते हुए चट्टानोंसे घनी वायु और धुआंकी धारा बड़े ज़ोरोंसे वहने लगी। इनके बीचों बीच गले हुए गन्धककी नदी निकल पड़ी जिसने बड़े वेगसे बहकर पासकी जलकी नदीमें प्राण दे दिये। यह एक अद्भुत घटना थी, जिसने दरिद्र खानि-स्वामियोंको फिर कुबेर बना दिया। जो काम गन्धकी मिट्टीको जलाकर शुद्ध गन्धक बनानेमें मनुष्य थोड़ी मात्रामें करता है वही बड़ी मात्रामें प्रकृतिने स्वयं कर दिया। दो बरसतक खानिमें गन्धकके जलनेसे पहाड़का ऊपरी गन्धक बराबर गलता जाता था और खोहोंमें बटुरता जाता था। दो वर्षमें इतना अधिक हो गया और गर्मी ऐसी बढ़ गयी कि पर्वत फट गया और डेढ़ लाख मनके लगभग गन्धक निकल आया।

अमेरिकाके संयुक्त राज्योंमें भी गन्धक है। अभी हालमें ही एक नयी रीतिसे गन्धक निकाला जाने लगा है, जिसमें बड़ी सफलता प्राप्त हुई है। अत्यधिक गर्म किये हुए जल-वाष्पके द्वारा खानके भीतर ही गन्धकको गला डालते हैं, और गले हुए गंधकको कुओंसे बाहर खींच लेते हैं।

ज्वालामुखी पर्वतके चारों ओरकी भूमि बहुधा गंधकद्वारा छलनी हो जाती है और मिट्टी ज्वालामुखीके समीप इतनी नर्म हो जाती है, कि उस परसे चलना बड़ी सावधानीका काम होता है। पद पदपर पैरके धस जानेका बड़ा डर रहता है, विशेषतः इसलिए कि नीचे उबलते हुए जलसे भी अधिक गर्मी होती है।

भारतवर्षके दक्षिण यव-द्वीपमें पटुकाके पास एक गोलाकार झील है जिसका घेरा एक मीलके लगभग होगा। इसके चारों ओर बहुत सुन्दर और घने फले फूले वृक्ष हैं और इस जलाशयमें निर्मल जल भरा हुआ है। परन्तु इसका रंग बहुत ही मनोहर चमकदार पीला है जो सूर्य्यकी किरणोंसे बड़ा ही सुन्दर सुनहरा लगता है। इस झीलके बीचोंबीच एक छोटासा टापू है, जो शुद्ध स्वच्छ गंधकका बना हुआ है। जलका रंग भी सचमुच पीला नहीं है। बल्कि झीलका पृथ्वीतल शुद्ध स्वच्छ गंधकका बना हुआ है। यही उसकी शोभाका कारण है।

संसारके विविध भागोंमें अद्भुत ज्वालामुखी कन्दराएँ भी देखी गयी हैं। सिसलीके इटना पहाड़में एक प्रसिद्ध खोह है जिसमें भीतर जानेपर थोड़ी थोड़ी दूरपर गहरे चट्टान मिलते हैं, जिनपर सीढ़ी लगाकर लोग उतर जाते हैं। यह कन्दरा जहां समाप्त होती है वहांसे साठ हाथ लम्बा एक बड़ा मार्ग चला गया है। इस मार्गके आगे भी एक लम्बी कन्दरा अवश्य है परंतु वहां तक कोई गया ही नहीं। अज़ोर द्वीपमालामें जो प्रसिद्ध कन्दरा है उसका मुंह बहुत तंग है, परंतु भीतर घुसते ही एक बड़ा लम्बा चौड़ा और अत्यन्त ऊंचा हाल मिलता है, जिसकी छत दूरीके कारण तेज़से भी तेज़ रोशनीसे दिखाई नहीं देती। इस विचित्र और भयानक मन्दिरमें एक जगह धरतीमें एक छेद है, जिससे मालूम होता है कि दर्शक जिस स्थानपर खड़ा है वह वास्तवमें नीचेकी विशाल कन्दराकी छत है, जिसमें जानेका साहस आजतक किसीको नहीं हुआ। परंतु पत्थर गिरानेसे जो शब्द होता है उससे अनुमान कर सकते हैं कि ऊपरवाली कन्दरासे कम बड़ी न होगी। इस कन्दराके अगल

बगल भी ऊंची ऊंची कन्दराएं हैं। इन कन्दराओं-की रचना, वेगसे निकलते हुए गधन्क-वाष्प और जल-वाष्पने की है। कन्दराओंके भीतर गन्धकके किवाड़, गन्धककी दीवार और छत मिलती हैं। इस तरहकी अनेक कन्दराओंमेंसे अब भी गन्धक-वायु निकला करती है और भीतर अत्यन्त गर्मी होती है—जिन दोनों कारणोंसे मनुष्यकेलिए यह दुर्गम है।

गन्धक बटोरनेकेलिए अबतक जो जो काम किये गये हैं उनमें सबसे भयानक और जोखिमका प्रयत्न एक बार मेक्सिकोमें हुआ था। यह उस समयकी बात है जब कि प्राचीन मान्टीभूमाके साम्राज्यको नष्ट करनेकेलिए कोर्टेज़ने धावा किया था। कोर्टेज़ अपनी सेना लेकर जिस पहाड़के निकट ठहरा था, दैवयोगसे वह पहाड़ ज्वालामुखी था। यह समुद्रतलसे अठारह हज़ार फुट ऊंचा होनेसे हिमसे निरन्तर ढका रहता था। कोर्टेज़की सेनामें बारूद घट गयी। उसकेलिए गन्धक मिलनेका सिवा इस ज्वालामुखीके और कोई उपाय न था। उसने मान्टेनो नामक एक सवारको कुछ सिपाहियोंके साथ इस पहाड़से गन्धक बटोरनेकेलिए भेजा। पहले तो उन्हें निचले भागोंके अत्यन्त गहन और दुर्गम बनमें-से घुसकर जबरदस्ती मार्ग बनाना पड़ा। परंतु ऊपर जाते जाते जंगल एक दम गायब हो गया और चिकना चमकीला बालू और लावाका पहाड़ मिला, जहां कहीं तो पैर फिसलनेका अत्यन्त भय था और कहीं कहीं पद पदपर ऊंचे नीचे, नुकीले, टेढ़े मेढ़े, दुर्गम चट्टान मिलने लगे। ज्यों त्यों इसे पार कर वह ऐसे स्थानमें पहुंच गये जहां बर्फ ही बर्फ था। यहां नये जोखिमका सामना करना पड़ा। कोई स्थान ऐसा न था जहाँसे पैर न फिसले। और पैर फिसलनेपर एक मीलसे भी नीचे गिरनेका डर था। इतने ऊंचे आकर अब सांस लेनेमें कठिनाई होने लगी। हवा अत्यन्त पतली थी। कदम कदमपर मनुष्य हांफने लगते थे, और सिरमें और बदनमें बड़ी तीव्र पीड़ा होने लगती थी। यह सब कष्ट भोगते अन्तको पर्वतके मुखपर पहुंच ही गये। इसका घेरा डेढ़ कोससे कुछ अधिक ही था। गहराईकी अटकल करना बहुत कठिन था, क्योंकि इस डेढ़ कोसके घेरेके पाताल कूपमें अनेक ज्वालामुखी आग उगल रहे थे और धुएं और भाफके बादल उठ रहे थे, परन्तु पर्वतकी ऊंचाईपर पहुंचते पहुंचते ठंडके मारे बाहर निकलनेकी नौबत नहीं आती थी। भीतर ही कूपकी दीवारोंपर जमकर एकत्र हो जाते थे। ऐसी दशामें बिना कुण्डके भीतर गये गन्धकका मिलना असम्भव था। परंतु इस कालकुण्डके भीतर उतरनेका दुःसाहस करे कौन? चिट्ठियां डाली गयीं। दैवयोगसे चिट्ठी मान्टेनोके ही नामकी निकली। एक टोकरीमें बैठाकर मान्टेनो कुण्डमें लटकाया गया। चार सौ फुट नीचे पहुंचनेपर उसे गन्धकके ढेरका ढेर मिल गया। उसने टोकरी भरी और ऊपर खींच लिया गया। परन्तु एक टोकरी गन्धकसे होता क्या है। मान्टेनोने इस जोखिमकी यात्रा कई बार की तब कहीं गंधक पूरा पड़ा।

यह देखकर कि ज्वालामुखी पहाड़ोंसे गन्धकका ऐसा अभिन्न सम्बन्ध है हम यह अनुमान कर सकते हैं, कि चन्द्रमामें जहां सैकड़ों मील लम्बे चौड़े मुखके ज्वालामुखी हैं गन्धककी मात्रा अपरिमेय होगी। दूरबीनसे देखनेसे पर्वत-शिखर कहीं तो काले और कहीं खूब सफ़ेद दिखाई पड़ते हैं। यह श्वेत भाग बहुत सम्भव है कि गन्धक ही हो। चन्द्रमा तो पृथ्वीका बड़ा निकट सम्बन्धी है—समुद्रका पुत्र ही ठहरा—यदि पृथ्वी मातासे उसे हिस्सेमें गन्धककी खान मिल गयी हो तो आश्चर्य ही क्या है। परन्तु सूर्य तथा उससे भी बड़े बड़े तारोंमें गन्धक पाया जाता है, जिससे स्पष्ट प्रगट होता है कि प्रकृति देवीने इस अमूल्य पदार्थको समस्त विश्वमें वितरित कर रक्खा है।

अमेरिकाके प्रसिद्ध साहित्यिक और हास्य-रसके आचार्य्य [Mark Twain] मार्कट्वेनने संवत १९२३में ज्वालामुखीके दर्शनका प्रत्यक्ष अनुभव यों लिखा है।

"हम लोग जब कुण्डके मुखपर पहुंच गये देखा कि कोई दो सौ फुट गहरा और चार पांच सौ फुट चौड़ा गोल गढ़ा है, जिसकी भीतरी दीवारका घेरा आधे मीलसे कम न होगा। इस चक्राकार रंगभूमिके मध्यमें एक सौ फुट ऊंचा उठा हुआ टूटा फूटा ऊबड़ खाबड़ चट्टान है, जिसपर रङ्ग बिरङ्गके चमकते हुए गन्धकके चिप्पड़ जमे हुए हैं। चारों ओर गढ़ा वैसा ही लगता था, जैसा किसी किलेके चारों ओर खन्दक या झीलके बीचोंबीच एक टापू। इस टापूके ऊपर गन्धककी तहें बड़ी अद्भुत रीतिसे जमी हुई थीं। इसपर रङ्ग बिरङ्गकी पिच्चीकारी या मीनाकारी थी। लाल, नीला, हरा, पीला, आसमानी, प्याजी, पिस्तई, बसन्ती, गन्धकी, काला, सफेद, कहांतक गिनावें, जितने रंग कल्पनामें आ सकते हैं, रङ्गोंकी जितनी योजना हो सकती है, किसीकी कमी न थी। और जब सूर्य्य देवताकी सुनहरी किरणें प्रातःकालके कुहरेको भेद कर इस अद्भुत रङ्गभूमिपर पड़ी तो इनकी शोभा और भी दोबाला हो गयी। अग्निदेवका यह जड़ाऊ मुकुट अनुपम तेज और सौन्दर्य्यसे चमकने लगा। चारों ओरका गढ़ा यद्यपि सौन्दर्य्यमें उस केन्द्रके टक्करका न था तो भी उस मुकुटकेलिए इसे एक अपने ही ढंगका किनारा टका हुआ कहना चाहिये। इस मनोहारिणी छविसे अठवारों बैठे आंखें सेका कीजिये मन कभी न ऊबेगा! ....गढ़ेकी दीवारोंमें भी अधिकांश पीली चमक थी। परन्तु लावा और झांवांके कारण बीच बीचमें और रङ्गोंका भी सम्मेलन था, जिससे उसकी शोभा और बढ़ी चढ़ी थी।"

पाठकगण! यह न समझ बैठें कि ज्वालामुखी वा भूगर्भके सिवाय गन्धक और कहींसे नहीं मिलता। जलमें और दलदलोंमें कहीं कहीं विचित्र वानस्पतिक बीजाणु असंख्य, करोरोंकी संख्यामें पाये जाते हैं। इनकी जीवनक्रिया गन्धकसे इतना घनिष्ट सम्बन्ध रखती है—यह इतना गन्धक पचा लेते हैं कि इनके शरीरका चौथाई भाग प्रायः गन्धक ही होता है। इन बीजाणुओंसे गन्धकके मैदानका मैदान बन गया है। सिसलीमें जिस गन्धकका चर्चा हम ऊपर कर आये हैं उसके मूल कारण यही जीवाणु समझे जाते हैं।

गन्धक हमारे शरीरमें भी है। बल्कि सभी प्राणियोंके शरीरमें है। सड़ते हुए अंडे अथवा सड़ती हुई लाशोंसे जो दुर्गन्ध निकला करती है सो इन्हीं गन्धक महोदयका प्रसाद है। बालमें ऊनमें और पित्तके अम्लोंमें विशेषतः गन्धक ज़्यादा होता है,तौभी ऐसा अनुमान होता है, कि पार्थिव प्राणियोंके शरीरमें गन्धकका सम्बन्ध अत्यन्त ढीला है और मात्रा अत्यन्त थोड़ी है। पर यह भी संभव है कि जब पृथ्वीका ऊपरी भाग अत्यन्त गर्म था, उसी परिस्थितिके अनुकूल शरीरकी रचना भी उस समय रही होगी। सम्भवतः प्राणियोंके शरीरमें गन्धक अधिक महत्वका पदार्थ और उसकी मात्रा आजकलकी मात्रासे कहीं अधिक रही होगी।

गन्धककी परीक्षा

देखनेमें गन्धक पीला पीला कड़ा ठोस है, जो हथौड़ीकी चोटसे चूर्ण हो जाता है। जलमें नहीं घुलता। परन्तु थोड़ीही आंचसे (११४°—११९° श) गलने लगता है, और जलानेसे नीले रंगकी लौसे जलता है, जिससे एक विषैली दमघोंटनेवाली हवा निकलती है, जो गन्धक द्विओषिद कहलाती है। यही हवा एक और हवाके साथ ज्वालामुखीसे निकला करती है। गन्धक द्विओषिद्में गन्धकके साथ ओषजनके परमाणु संयुक्त हैं और दूसरी हवामें जिसे गन्धक द्विउज्जिद कहते हैं, उज्जनके दो परमाणु मिले हुए होते हैं। यह दोनों वायु जब एकत्र होते हैं तुरंत मिलकर

जल और गन्धकमें परिवर्तित हो जाते हैं। यदि हम गन्धक उज्जन और ओषजनको क्रमशः ग, उ, और ओ से व्यक्त करें तो एक वायुको $\text{ग ओ}_{२}$ और दूसरीको $\text{ग उ}_{२}$ लिख सकते हैं। इन दोनोंके मिलनेसे गन्धक और जलका बनना इस समीकरणसे सूचित किया जा सकता है।

$$\text{ग ओ}_{२} + \text{२ ग उ}_{२} = \text{३ ग} + \text{२ उ}_{२}\text{ ओ}$$
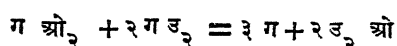
जलके प्रत्येक अणुमें उज्जनके दो परमाणु और ओषजनका एक होता है। इसीलिए जल $\text{उ}_{२}\text{ ओ}$ लिखा जाता है।

यही बात है कि ज्वालामुखीसे जो धुआँ निकलता है उसमें गंधक और जलकी भाप और गंधक द्विओषिद सभी कुछ मिला जुला रहता है।

कलमी गंधकका एक टुकड़ा मुट्ठीमें कसकर कानसे लगाइये। कुछ थोड़ा थोड़ा चटखनेका शब्द होता है। इसका कारण यह है कि गंधक तापका अच्छा परिचालक नहीं है। मुट्ठी की गर्मीसे उसका ऊपरीतल कुछ बढ़ता है और भीतरी ज्योंकात्यों बना रहता है। इस प्रसार और संकोच-वैषम्यसे—इस घट बढ़से—गंधकके-कणोंमें परस्पर रगड़ उत्पन्न होनेसे यह शब्द सुनाई पड़ता है।

एक कुल्हड़में एक छटांकके लगभग गंधक लेकर कोयलेकी आंचपर चढ़ा दीजिये। पहले गंधक धीरे धीरे गलता है। सारा गंधक गलकर साफ हलका पीला द्रव बन जाता है जो जलकी नाईं हिलता डोलता है। आंच लगने दीजिये। धीरे धीरे यह द्रव गाढ़ा होता जाता है और रंग गहरा, यहां तक कि १८०°श पर रंग प्रायः काला हो जाता है और द्रव शहदसे भी अधिक गाढ़ा हो जाता है कि बरतन उलटनेसे भी नहीं गिरता। इस विचित्र परिवर्तनका कारण वैज्ञानिकोंको अब तक मालूम नहीं है। इस पदार्थको और भी आंच दीजिये, ताव जितना ही बढ़ता जायगा द्रवका गाढ़ापन घटता जायगा। जब गिराने योग्य पतला हो जाय एक कटोराभर पानीमें इसे कुछ ऊंचेसे उंडेलिये और जैसे जलेबी पकानेकेलिए बरतनको घुमानेकी आवश्यकता होती है वैसे ही इसे भी घुमाते जाइये, तो जलके भीतर रबरकेसे गुणवाले पदार्थकी एक कुण्डली दिखाई पड़ेगी। इस कुण्डलीके तय्यार करनेमें सारा गन्धक खर्चमतकर दीजिये। गन्धकका अधिकांश जो कुल्हड़में रह गया है उसे ज़रा आंचपर इसलिए रखिये कि गला हुआ गन्धक समतल बैठ जाय। तबतक कटोरेमेंके गन्धककी परीक्षा कीजिये। यह रङ्गमें कुछ भूरा काला होता है। हाथमें चिपचिपा सा लगता है। इसका तार खींचनेसे रबर की नाईं बढ़ता है और छोड़ देनेसे घट जाता है। हाथमें लेकर आटेकी लोईसी इसे गोल बना सकते हैं। निदान जो रूप चाहिये दे दीजिये। क्योंकि यह गन्धक रवेदार नहीं है, लुगदीकी नाईं है। परन्तु रखे रखे दिन रातमें ही यह साधारण गन्धकका रूप धारण कर लेता है। इस अस्थायी रूपका नाम लचीला (Plastic) है। अब कुल्हड़को उतार कर नीचे ठण्डा होनेको रख दीजिये। जब ठण्डक पाकर ऊपरी तलपर एक चिप्पड़ जम जाय, कलम या चाकूसे दो छेद करके उनमेंके एक छेदसे नीचेका गला हुआ गन्धक जलमें गिरा दीजिये और एक मिनट ठहर कर चिप्पड़को हटा कर देखिये। इसमें गन्धकके रवे सुईकी तरह लम्बे लम्बे पड़ गये हैं। यह भी गन्धकका असाधारण और अस्थायी रूप है, क्योंकि धीरे धीरे यह सूच्याकार रवे भी गंधकके साधारण रवोंका रूप धारण कर लेते हैं। यह गन्धकके दो रूपान्तर हुए।
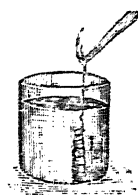
लचीला गंधक बनानेकी रीति
चित्र २

हमने ऊपर गन्धकके चूर्णकी भी चर्चा की है। इस चूर्णका कुछ अंश लेकर एक शीशीमें ज़रासे कर्बन द्विगन्धिद (carbon disulphide) के साथ

हिलाइये। कुछ अंश घुल जाता है और कुछ नहीं घुलता। करबन द्विगन्धिदकी कुछ बूंदें एक साफ़ चमचे या प्यालीमें टपकाइये और घोलकको उड़ जाने दीजिये। यह घोलक बड़ी जल्दी उड़ जाता है और घुलित गन्धकको छोड़ देता है। अब इन विसर्जित रवोंको ताल या साधारण अनुवीक्षणके सहारे देखिये। रवे बड़े सुन्दर सुन्दर अठपहल दिखाई पड़ेंगे। साधारण गन्धक के रवोंका यही रूप है। उस शीशीमें कुछ चूर्ण ऐसा भी है जो घुल नहीं सकता। यह एक तीसरा रूपान्तर है जिसके कण रूपविशेषसे रहित हैं।
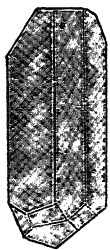
गन्धकका सूईके आकारका रवा

चित्र ३

इस प्रकार गन्धकके चार रूप हुए, जिनमेंसे साधारण अठपहल रवे और अघुलनशील गन्धक इस संसारकी साधारण परिस्थितिमें स्थायी हैं। जिस समय इस संसारका तापक्रम वर्तमान दशासे कोई १२०° श अथवा इससे अधिक ऊंचा रहा होगा, जब इस पृथ्वीपर आज कलकी अपेक्षा इतनी अधिक गर्मी थी, कि पानी खौलता रहता था, उस समय गन्धकका स्थायी रूप सूच्याकार अथवा लचीला (plastic) ही था। यह अठपहल रवे ही अस्थायी थे।
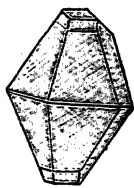
गंधकका अठ पहल रवा

चित्र ४

गन्धकके यौगिक

गन्धकके यौगिक अनेक हैं। इनमेंसे मुख्य मुख्यका ही परिचय पाठकोंसे कराना हमारा अभीष्ट है।

जब कभी हम गन्धक जलाते हैं, गन्धकके एक एक परमाणु ओषजनके दो दो परमाणुओंसे मिल कर एक विषैली वायु बनाते हैं, जिससे सांस लेनेवाले प्राणियोंका दम घुट जाता है और मर जाते हैं। गंधक जलाकर अक्सर लोग घरोंकी हवाको साफ किया करते हैं। यह वायु जलमें बड़े वेगसे घुल जाती है। इसका घोल एक हलका अम्ल होता है। इस अम्लसे साधारण वानस्पतिक रङ्ग कट जाते हैं। वायुका नाम गंधक द्विओषिद है और अम्लको गन्धित अम्ल कहते हैं। साधारण रंगे कपड़े इस अम्लमें धोनेसे उजले हो सकते हैं।

गन्धक द्विओषिद् बहुत भारी वायु है। पानीकी तरह नीचेकी ओर बहती है। जहां कहीं अधिकतासे निकलती है वहां बैठनेकी अपेक्षा खड़े रहना या दौड़कर भाग जाना श्रेयस्कर है। सम्वत १३५में जब इटलीका विश्वावसु (Vesuvius) नामक ज्वालामुखी पहाड़ एकाएकी आग उगलने लगा था और पम्पा और हरकुलीनम् नामक नगरोंको तहस नहस करने लगा था, रोमकके बेड़ेका प्रसिद्ध अमीराल प्लैनी (Pliny) बड़ी वीरतासे मनुष्योंकी रक्षा करनेके लिए चला। किनारेपर पहुंचते पहुंचते जहाज़ोंपर जलती हुई राख और पत्थरके टुकड़ोंकी वर्षा होने लगी। एकाएकी समुद्र छिछला मालूम होने लगा और किनारेपर गलित पदार्थोंके बह कर एकत्र हो जानेसे उतरना असम्भव हो गया। केवटने लौटनेकी राय दी। परन्तु वीर प्लैनीने कहा "कुछ परवाह नहीं और आगे चलो।" आगे बढ़नेपर भी दशा वैसी ही थी। परन्तु वह साथियों सहित उतर गया और एक घरमें ठहर गया। राख और पत्थरोंकी वर्षासे अन्धकार छाया हुआ था, परन्तु इन वीरोंने शान्त भावसे स्नान भोजन किया और थकान मिटानेको लेटे। राख और पत्थरोंकी ऐसी घनी वर्षा होती रही, कि डर था, कि यह घर इन्हीं पत्थरोंके भीतर ढक न जाय। साथियोंने प्लैनीको जगाया। अग्नि वर्षासे बचनेकेलिए सिरपर अपने अपने गद्दे बांधकर हाथोंमें बत्ती ले ले जहाज़की ओर भागे। संसारमें सर्वत्र दिन दहाड़ेका उजाला था, पर यहां राख और पत्थरकी वर्षा और धुएँके

बादलोंसे हाथको हाथ नहीं सूझता था। किनारे पहुंचे तो समुद्रकी दशा ऐसी भयानक थी, कि जहाजपर जाना असम्भव था। प्लैनी एक दरी बिछाकर लेट गया और ठण्डा जल मांगकर बार बार पीने लगा। साथी लोग खड़े थे। इतनेमें पहाड़से बहती हुई आग और गन्धक द्विओषिद-को धारा आगयी। सब भागे। प्लैनी भी उठा और दो सेवकोंके सहारे चलना चाहता था परन्तु फिर गिर गया और उस धारामें पड़कर उसका दम घुट गया। इस प्रकार पाश्चात्य देशका पहला संसारकी कथा कहनेवाला और प्राचीन रोमकका एक बड़ा वैज्ञानिक छाछठ वर्षकी अवस्थामें गन्धक द्विओषिदके भीतर लेटनेकी भूलसे इस संसारसे चल बसा।

इसी तरह संवत १८३९ में आइसलैण्डमें भी एकाएक विषैली वायुकी धाराएँ बह निकली थीं, जिनसे नौ हज़ारसे अधिक मनुष्य और ढाई लाखसे अधिक जानवर घुटकर मर गये।

इस वायुके बनानेकी और भी रीतियां हैं, जिनमेंसे प्रसिद्ध रीति तांबा और गन्धकाम्लको आंच देना है।

गन्धकोज्जिद या उज्जन गन्धिद

यह भी पहलेकी नाईं एक बेरङ्गकी विषैली वायु है। इससे बड़ी तीव्र दुर्गन्ध आती है। यह भी पानी में झट घुल जाती है, परन्तु जलानेसे हलके नीले लौसे जलती भी है। पाखानेमें, या नाबदानमें जहां पानी और मैला सड़ता है इसकी दुर्गन्ध भी आती है। इसका विष ऐसा तीव्र है, कि सूंघते ही बेहोशी आ जाती है और अधिक सूंघनेसे प्राणी पार्थिव वायुमण्डलको एक दम छोड़ देता है। इस शुद्ध वायुके मण्डलमें ज्योंहीं प्राणी घुसता है तुरन्त बेहोश होता है और धड़से गिर पड़ता है और गिरते ही प्राण पखेरू शरीरके पिंजरेसे प्रयाण कर जाता है। थोड़ासा सूंघनेमें भी यही दशा होती है। ५०० हिस्सा साधारण वायुमें एक हिस्सा भी इस वायुका हो तो एक या दो मिनटमें प्राणी मर जाता है और १४३ भाग साधारण वायुमें एक ही भाग इस वायुका हो तो घंटे दो घंटेमें प्राणीकी मृत्यु हो जायगी। मैलेके नलकी सफ़ाईके लिये जब बेलदार भीतर घुसते हैं अक्सर इसी वायुकी कृपासे स्वर्गलाभ करते हैं। एक बार ऐसा भी हुआ है, कि कई बेलदार काम करनेको तय्यार थे। पहला मेन-होलमें घुसा और बेपता हो गया। देर तक न लौटा तो दूसरा घुसा। उसकी भी यही दशा हुई। निदान जब छः सात गायब हो गये इसके भीतर घुसनेमें शेष बेलदारोंको डर मालूम हुआ। तनेमें मैनहोलसे इसी विषैली वायुका पता लगा जिसे सूंघते ही मनुष्यको चिल्लानेकी भी मुहलत नहीं मिलती थी और गिर-कर देहमुक्त हो जाता था।

नमककी खानियोंमें भी यह वायु निकलती है। इसी प्रकार बहुतोंके प्राण जाते हैं। इस वायु-को सूंघ लेनेपर कभी कभी प्राण बच भी गये हैं, तौभी बहुत काल तक प्राणी अन्धा बना रहा और गलेमें भयानक जलन होती रही। निद्राभङ्ग, कराहना, सिरका घूमता रहना, रोशनीसे आंखोंको पीड़ा होनी यह सारे कष्ट बचजानेवालेके लिए अनिवार्य्य हैं। तिसपर भी प्रयोगशालाओंमें निर्भीक शिक्षार्थी इस वायुका नित्य प्रयोग किया करते हैं। इसकी असह्य दुर्गन्ध उनकी रक्षाका कारण होती है, और इस वायुका उत्पादक यंत्र ऐसी हवादार जगहमें रखा जाता है, कि श्वास-वायुमें इसकी प्राणघातक मात्रा इकट्ठी नहीं होने पाती।

लौह गन्धिदपर नमक का या गन्धकका कुछ हलका तेज़ाब डालनेसे यह वायु निकलती है।

गन्धकाम्ल

इसका मशहूर नाम गन्धकका तेज़ाब है। इसके प्रत्येक अणुमें गन्धकका १, उज्जनके २ और ओषजनके ४ परमाणु संयुक्त रहते हैं। प्राचीन कालमें हीराकसीसको मिट्टीके देगभभकेमें ताव देकर कुछ जलमें उससे निकले हुए गन्धक

त्रिओषिदको घुला लेते थे। यही गन्धकका शुद्ध तेज़ाब था। आजकल दो रीतियां प्रचलित हैं। दोनोंमें भाप, ओषजन और गन्धक द्विओषिद तीनोंको संयुक्त कर देते हैं।

$$\text{उ}_{\text{२}}\text{ओ} + \text{गओ}_{\text{२}} + \text{ओ} =$$

$$\text{उ}_{\text{२}}\text{ओ} + \text{ग ओ}_{\text{३}} = \text{उ}_{\text{२}}\text{ग ओ}_{\text{४}} \text{ (गन्धकाम्ल)}$$

दोनों प्रक्रियाओंमें गन्धक द्विओषिदको त्रियोषिद बना देना ही अभीष्ट है। इसकेलिए एकमें नत्रिकोषिद और दूसरेमें प्लैटिनमसे वाहकका काम लेते हैं। अर्थात् यह वाहक हवासे ओषजनका एक परमाणु लेकर द्विओषिदमें जोड़ देता है। दोनों प्रक्रियाओंका सिद्धान्त इतना ही है, परन्तु वाहककी सहायता और रक्षाकेलिए बहुतसे ऐसे उपायोंकी आवश्यकता पड़ती है, कि बहुत सी प्रक्रियायें बढ़ जाती हैं—एवं क्लिष्ट हो जाती हैं, जिससे बहुत बड़ा कारखाना बनानेमें ही लाभ हो सकता है। इनका विस्तार बड़ी पुस्तकोंमें मिलता है। परन्तु कारबारियोंको पुस्तकोंपर ही निर्भर न रहना चाहिये। कलकत्ता आदि स्थानोंमें कारखानोंमें जाकर अध्ययन करना-ही अधिक लाभदायक है। आजकल गन्धकाम्लकी मात्रासे ही सभ्यताकी अटकल की जाती है। जो देश जितना ही अधिक गन्धकाम्ल बनाता है उतना ही अधिक सभ्य समझा जाता है। ऐसे महत्वके विषयपर एक स्वतंत्र लेख लिखे जानेकी आवश्यकता है। अतः गन्धककी कथाको हम यहां ही समाप्त करते हैं।

गोलोंका व्यय

[अनु० श्रीयुत पार्वती नन्दन]

स प्रकार यह बात कोई नहीं जानता था कि उभयपक्ष भिन्न भिन्न स्थानोंमें खाइयां बनाकर लड़ाई करेंगे, जैसा कि साधारणतः समस्त युद्ध क्षेत्रमें और विशेषतः डारडानेलीज़में हुआ है, उसी प्रकार किसीको भी यह आशा न थी कि गोलोंका उतना व्यय होगा जितना आजकल हो रहा है। युद्ध छिड़नेके पहले लड़नेवाले देशोंमें किसीके यह ध्यानमें भी नहीं आया था कि इस समरमें कारतूस इत्यादिको छोड़कर केवल गोलोंकी ही, जैसा कि गत वर्षके अनुभवसे सिद्ध हुआ है, करोड़ोंमें आवश्यकता होगी। इतने विस्फोटक गोलोंकी आवश्यकताका प्रधान कारण वर्तमान युद्ध प्रणालीका अनूठापन है। गत वर्ष अगस्तके पहले यह निश्चयरूपसे जान लिया गया था कि इस युद्धमें खाई–बन्दीकी लड़ाई रणस्थलके भिन्न भिन्न भागोंमें अवश्य होगी परन्तु यह आशा किसीको न थी कि इस नई प्रणालीका विस्तार सीमान्त देशमें कई सौ मीलों तक होगा और उसमें सेनायें बराबर बरसों लगी रहेंगी।

छोटे कारतूसादिके विषयमें संवाददाताका कहना है कि १८७०-१८७१ की बड़ी गहरी लड़ाईमें फ़ौजके तीसरे रिसालेका प्रत्येक सिपाही ३५ के लगभग कारतूस खर्च करता था। रूस जापानके युद्धमें रूसी पैदल सैनिकोंका औसत ख़र्च १७० था यद्यपि एक दिन मुकडेनके संग्राममें यह संख्या ९८० तक पहुंच गई थी। सं० १८७०-७१ वाले युद्धमें १६२ गोले प्रति तोपके हिसाबसे खर्च होते थे। मकडनके संग्राममें यह संख्या ५०४ तक पहुंची थी। वर्तमान युद्धमें जितने गोले खर्च होते हैं, उनकी संख्या इससे कहीं ज़्यादा है। इसका एक उदाहरण लीजिए। चार पांच सप्ताह बीते होंगे तब एक समाचार आया था कि कई तोपखानोंको इकट्ठा कर

General साधारण]

जर्मनोंने रूसी सेनाओंपर पूर्वमें एक स्थानमें बहुत ही थोड़े समयमें ७००००० गोले छोड़े थे। एक और रूसी सूचनासे पता चलता है कि यह समाचार पानेके पहले कि रूसी सेना अपना स्थान छोड़ रही है जर्मनोंने चार घंटेमें ७०००० गोले चलाये थे।

निस्सन्देह जो संख्याएं ऊपर दी गई हैं वे यदि बिलकुल ठीक नहीं तो थोड़ी बहुत अवश्य ही हैं। इस प्रकार अधिक गोला बारूद व्यय करनेपर भी जर्मनोंने गत नौ महीनेतक पश्चिमी युद्ध क्षेत्रमें कुछ विशेष लाभ नहीं उठाया है। उलटे मित्रोंकी युद्ध सामग्रीमें कुछ उन्नति होनेके कारण उन्हें कितने ही स्थान छोड़ भी देने पड़े हैं। एक इटैलियन समाचार-पत्रका सैनिक सम्वाददाता, जिसको फ्रांसमें पूछ ताछ करनेकी आज्ञा मिली है, इस विषयपर प्रकाश डालता है। उसका कहना है कि छः वर्ष हुए फ्रांसमें एक तोपकेलिए ७०० गोले और जर्मनीमें ३००० गोले तैयार रहते थे। युद्धके आरंभमें फ्रांसीसियोंका अनुमान था कि १३५०० गोले नित्य खर्च होंगे। वर्तमान वर्षके मई मासमें यह खर्च ८०००० प्रतिदिनतक पहुंच गया और जुलाईके आरम्भसे १००००० गोले खर्च होने लगे हैं, पर यह संख्या भी आजकल अपर्याप्त समझी जाती है। कई तोपखानोंसे एक ही स्थानपर गोले बारी करनेके फलका एक ज्वलन्त उदाहरण अरसकी लड़ाईमें मिला, जहां छः मीलके सीमान्तपर दो घंटेमें २०००० गोले चलाये गये और शत्रुकी समस्त खाइयां और तारबर्कीके सामान चौपट कर दिये गए। अतएव लगातार एकाग्र गोलाबारीके करनेमें अधिकता करने तथा भारी अंग्रेज़ी और फ्रांसीसी बन्दूकोंके प्रयोगसे ही मित्र सेनाओंके आदमियोंकी जानें बहुत अंशमें बचायी जा सकतीं हैं और शत्रु परास्त किया जा सकता है।

अब हमें इस बातपर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि युद्धकेलिए भविष्यमें तोपें तथा अन्य सामान निरन्तर पहुंचते रहें। जर्मनी और आस्ट्रिया हंगरीने पुराने गोलोंके अतिरिक्त नये गोलोंके बनानेमें उन्नतिकी पराकाष्ठा की है और उन्हीं गोलोंको ये देश वर्तमान समयमें व्यय करेंगे। इन दोनों देशोंकी संयुक्त फौलादकी उत्पत्ति १४०००००० टन प्रतिवर्ष है, यद्यपि इसमें-से बहुत कुछ विस्फोटक गोले बनानेके योग्य नहीं होता। गोलोंका अधिक संख्यामें बनना असम्भव हो रहा है और जिस अंशमें भविष्य-में फौलादके कारखानोंमेंसे आदमी हटते जायंगे उसी अंशमें गोले कम बन सकेंगे। परन्तु लोहे और फौलादके बनानेवालोंके मासिक हिसाबसे प्रकट होता है कि अभीतक जो आदमी उन कामोंपरसे हटे हैं उन्होंने अपने स्थानमें दूसरे आदमियोंको दे दिया है। यह हम कह चुके हैं कि गोलोंके बननेका काम पराकाष्ठातक पहुंच चुका है, और जब अधिक आदमी युद्धकेलिए चले जायंगे, जैसा कि आवश्यकता पड़नेपर अवश्य होगा, गोलोंके बननेका काम शिथिल पड़ जायगा, यद्यपि इस कमीकी पूर्ति करनेकेलिए स्त्रियां उस कामपर लगायी जायंगी। इसके साथ ही साथ विशेष प्रकारके कई लोहोंके न मिलनेसे बहुत कुछ हानि हो सकेगी। उधर ग्रेट ब्रिटिनको लोहे और फ़ौलाद मिल सकनेके अनेक सहारे हैं, इसके अतिरिक्त रूस और फ्रांसकी पूंजी तथा समुद्र पारके देशों और राज्योंसे इन वस्तुओंके मिल सकनेके सहारोंकी तो बात ही क्या कहनी? फ्रांसीसियोंने सेनाके हितार्थ औद्योगिक आन्दोलन गत अक्तूबरके अन्तसे आरम्भ किया है। पहले उन्होंने मोटरकारका सामान सञ्चित करनेका यत्न किया है और फिर गोले बनानेके कामोंमें हाथ लगाया है। [The Engineer से]

चावलकी रोटी

फ्रांसमें किये गये अनुभवके अनुसार यह

जाना गया है कि गेहूंके आटेमें $\frac{1}{4}$ भाग चावलका आटा मिलानेसे अच्छी रोटी बन सकती है और जैसा कि प्रोफ़ेसर मारेल कहते हैं वह और रोटियोंसे किसी बातमें कम नहीं होती। चूंकि फ्रांसमें गेहूं बाहरसे बहुत आता है, इस प्रकार किफ़ायत बड़ी अच्छी तरह हो सकेगी। उधर मिस्टर मेसरर नमूना तैयार करनेमें लगे हुये हैं और उन्होंने गेहूंके आटेमें चावलका आटा १२ प्रति सैकड़ाके हिसाबसे मिलाकर एक सार्वजनिक संस्थामें रोटियां तैयार की थीं। परीक्षा करनेपर वे स्वादिष्ट और साधारण गुणोंसे परिपूर्ण जान पड़ीं।

नर नारी वैशेष्य

[ले० अध्यापक विश्वेश्वरप्रसाद, बी० ए०]

संसारकी सब ही जातियोंमें स्त्री-सम्बन्धी समस्या बड़ी झगड़ेकी है। अपने देशमें तो समाजका संगठन इसीपर बहुत कुछ निर्भर है। स्त्री पुरुषका परस्पर संबंध उनके शारीरिक व मानसिक योग्यताके अनुसार ही निश्चय किया जा सकता है। यदि स्त्री जातिका इतिहास देखिये तो आजदिन जो स्त्रियोंकी अधःपतनकी दशा देखनेमें आती है वह प्राचीन समयमें कहीं भी नहीं दिखाई देती। इस लेखमें इसका विवाद करना मन्तव्य नहीं, परन्तु यह अवश्य देखना है कि वैज्ञानिक दृष्टिसे मनुष्य जातिके विकासमें स्त्रियोंका स्थान क्या है और विकास सिद्धान्तके अनुसार स्त्रियोंको हमें पुरुषोंसे नीचा मानना उचित है अथवा नहीं।

विकास सिद्धान्तको स्पष्ट रूपसे लिखनेकी कदाचित् आवश्यकता नहीं है। विज्ञानके पाठक इस वैज्ञानिक सिद्धान्तको अवश्य ही जानते होंगे। हां, इतना अवश्य स्मरण रहे कि विकास शनैः शनैः होता है। एक सीढ़ीको पार करनेपर दूसरीपर पैर रखते हैं।

Evolution विकाशवाद]

जिन वैज्ञानिकोंने स्त्री और पुरुषकी शारीरिक बनावटका चोटीसे लेकर नख तक, भली भांति विचारसे अध्ययन किया है उन सबने ही यही अपना एकमत निश्चय किया है कि स्त्रियोंका विकास शैशवावस्थासे बराबर विशेष रीतिसे होता है, अर्थात् स्त्रियोंके शरीरके भिन्न भिन्न अंगों और हड्डियोंकी वैसी ही दशा रहती है जैसी एक शिशुकी होती है। शिर बड़ा, हड्डियां पतली व कोमल। इन दो विशेष बातोंको छोड़कर और भी बहुतेरी बातें हैं जिनमें समानता पाई जाती है।

विज्ञानियोंके इस कहनेसे कि स्त्रियां विकासमें इसी सीढ़ीपर हैं जिसपर शिशु हैं अविज्ञानियोंने अपनी समझमें एक बहुत ही अच्छा अवसर पा लिया और कहने लगे "लीजिए साहब अब तो सायन्सवाले भी स्त्रियोंको बच्चोंके समान मानने लगे हैं। अब तो आपको हमारी बात मान लेनेमें कुछ देर न लगाना चाहिए।"

विज्ञानके पाठकोंको अपने मनमें यह बात स्पष्ट कर लेना चाहिए कि सचमुच विज्ञानियोंके इस मतका क्या तात्पर्य है। यही बात बहुत सूक्ष्म रीतिसे यहां लिखी जाती है।

जिस समय डार्विन व वालेस महाशयोंने पुराने वैज्ञानिक सिद्धान्तको और स्पष्ट करके अपना मत यह स्थापित किया कि मनुष्य जातिका विकास बन्दर जातिसे हुआ है, उसी समय यह भी कहा गया था—और जिन महाशयोंने इसकी खोज की थी उन्होंने अपनी आंखों देख लिया था और अब भी जो चाहें देख सकते हैं—कि मनुष्यके शरीरकी बनावट बन्दरके बच्चेके शरीरकी बनावटसे अधिक मिलती है और पूरी उमर पाये हुए बन्दरके शरीरकी बनावटसे कम। यह एक ऐसी बात है जिसे इस सम्बन्धमें कभी न भूलना चाहिए। इसका तात्पर्य यही है कि विकासमें मनुष्यका स्थान बन्दरोंसे

आगे है परन्तु बड़े बन्दरोंकी अपेक्षा बन्दरोंके बच्चोंका स्थान अधिक ऊंचा है अर्थात् अब जो नए बन्दर पैदा होते हैं वे मनुष्य दशाकी ओर अधिक झुके हुए हैं और जिनसे वे पैदा होते हैं वे उनकी अपेक्षा पीछे हैं।

अब पाठक महाशय इसको ध्यानसे देखें कि यही बात स्त्रियोंके विषयमें भी कही जा सकती है अथवा नहीं। जब कि हम सबको इस बातमें सन्देह नहीं रहा कि स्त्रियां शारीरिक बनावटमें शिशुसे अधिक मिलती जुलती हैं और पुरुष कम इसका भी यही तात्पर्य हुआ कि विकास की दौड़में स्त्रियां आगे हैं और पुरुष पीछे, क्योंकि यह तो स्पष्ट है कि जब एक जातिका विकास हो रहा है तो उस जातिके शिशुओंमें आगे आनेवाले परिवर्तन दिखाई देंगे और न कि उनमें जो उनसे पहले जन्मे हैं।

इसी बातको एक दूसरा प्रमाण सिद्ध कर देता है। वह प्रमाण भी शारीरिक बनावटसे ही सम्बन्ध रखता है। यदि आप अच्छी तरह विचार-से देखें तो मालूम होगा जैसा कि बड़े बड़े विज्ञा-नियोंने अपने अनुभवसे लिखा है कि स्त्रियों-की अपेक्षा पुरुषोंमें अभी तक वे चिन्ह अधिक पाए जाते हैं जिनसे उनका विकास बन्दर जाति-से सिद्ध होता है। इसके दृष्टान्त कुछ लीजिए—प्रायः तो नहीं परन्तु कभी कभी एकाध पुरुष ऐसा दिखाई देता है जिसके ७ के स्थान पर ८ पसलियां होती हैं। साधारणतया ६ अंगुलो-वाली स्त्रियां देखनेमें नहीं आतीं, परन्तु पुरुष बहुतेरे मिलते हैं। ऐसे ही और भी कई दृष्टान्त मिले हैं। इसका तात्पर्य यही है कि स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंमें अभी तक पशुओंके शारीरिक चिन्ह बाकी हैं जो स्त्रियोंमें नहीं मिलते अर्थात् स्त्रियां विकासकी दौड़में पुरुषोंसे आगे हैं।

होमियोपैथिक चिकित्सा

स्त्रियोंके रोग

[गताङ्कसे सम्मिलित]

[ले०-पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव]

४—रजो निवृत्ति (Menopanse.)

हमारे देशमें जब स्त्रियोंकी उम्र ४० सालसे अधिक होती है तब रजः-स्रावके रुक जानेका समय होता है। यदि किसी रोगके कारण रजः-स्राव इस समयसे पहले बन्द नहीं हो गया है, तो स्वास्थ्यको कोई हानि नही पहुंचती। तब यह समझना चाहिए कि अब गर्भधारण करनेकी शक्ति नहीं रही, परन्तु यदि रजःस्राव किसी रोग या बच्चोंके पैदा होनेमें ज़्यादा थकावट, बच्चों-के पालनेमें ज़्यादा फ़िक्र, गर्भाशयके किसी रोग, ऋतुकालमें समुद्रका स्नान, अशुद्ध वायुमें रहना, सड़ा बुसा खाना खाना इत्यादि कारणोंसे समय-से पहले बन्द हो गया हो, तो नीचे दी हुई औषधें देनी चाहिएँ।

ब्राइनिया (Bryonia)--फेफड़े और छातीमें दर्द हो, ऐसा मालूम हो कि पेटमें पत्थर रक्खा है, मासिकधर्मके बन्द होनेकी वजहसे नकसीर फूटे, जोड़ोंमें और पीठमें दर्द हो।

चाइना (China)–जब कि ज़्यादा खून निकल जानेकी वजहसे कमज़ोरी बहुत हो, और सिरमें ऐसा दर्द हो कि खुलता और बन्द होता मालूम हो।

सिमीसिफ़्यूजा (Cimicifuga)--यह एक ख़ास दवा है जो इस मर्ज़में देते हैं जब कि बाईं छातीके नीचे और दूसरे बायें तरफ़के हिस्सोंमें दर्द हो, पेटमें ऐसा मालूम हो कि बैठा जाता है, सिरमें दर्द, आंखोंकी पुतलीमें दर्द, तबियत गिरी हुई, बावलापन, जोड़ोंमें दर्द, बेचैनी और चिड़चिड़ा-पन हो गया हो।

Medicine वैद्यक]

कौक्यूलस (Cocculus)—पेटमें मड़ोड़ और ऐंठन हो, जी मिचलाता हो और कै आती हो, सिरमें चक्कर आवें, तकलीफ़के साथ रजःस्रावका हो और उसमें जमा हुआ खून निकले।

ग्लोनोइनम (Glonoinum)--ख़ूनका सिरकी तरफ़ चलना, धमका मालूम होना, सिर और कानमें आवाज़ोंका मालूम होना और चक्करका आना।

लैचीसिस (Lachesis)--आंखके आगे चकाचौंध मालूम होना, सरके तलुएपर जलनके साथ दर्द, नींदका न आना, कमरमें दर्द, बावलापन, या और ऐसी अलामात खासकर सोनेके बाद मालूम हों।

पलसेटिला (Pulsatilla)—कब्ज़ रहता हो, जी मिचलाता हो, क़ै होती हो, खानेके बाद उबकाई आवें, बदनके बाएँ हिस्सेमें दर्द हो।

सलफ़र (Sulphur)—बदहज़मी, बवासीर, पसीनेका ज़्यादा आना, बदनपर रूखा और खारीपनका होना, पेशावके साथ सफ़ेदी जाना, भगपर जलन और खुजलीका होना।

टैबेकम (Tabaccum)–पेटमें ऐसा मालूम हो कि बैठा जाता है, अपनी हालतका कम और खराब मालूम होना, जी मिचलाना, बुरे ख़याल रहना, धड़कन, सर्दी मालूम होना और तमाम बदनके हिस्सोंमें कमज़ोरी मालूम होना।

मरीज़ोंको चाहिए कि हलका, ताकत देनेवाला खाना खायें, गर्मी करनेवाली चीज़ोंका सेवन न करें, ताज़ा दूध और मठा पियें, भूकसे कम खायं, गुदगुदे बिछौनेपर न सोवें, (तख़्तपर सोवें तो ज्यादा अच्छा है) ठंडे हवादार और खुले कमरेमें रहें और तंग कपड़ा न पहिरें।

कदाचित् ऊपर दिये हुए लक्षण न मिलें और औषधके देनेमें निश्चय न कर सकें तो किसी वैद्यसे परामर्श करें।

६—श्वेत प्रदर (Leucorrhœa)

जैसे कि प्रमेहका रोग पुरुषोंको हो जाता है, उसी भांति यह रोग स्त्रियोंको होता है। इसमें कभी सफ़ेद कभी पीला या हरापन लिये हुए कभी दूधिया रंगका पतला या गाढ़ा पानी औरतोंकी भगसे निकलता है। इसमें कभी कभी रादकी सी दुर्गन्ध और कभी छिछड़े निकलते हैं, पर कभी कभी बिलकुल गन्ध नहीं होती। इसकी बहुतसी किस्में हैं। यह बच्चोंको भी हो जाता है, किन्तु प्रायः यौवनकाल आरम्भ होने के बाद और उस समय जब कि मासिकधर्म बन्द होनेका समय करीब आता है तब होता है। इस बीमारीके शुरू होनेके कारण यह हैं:-- अधिक संभोग; मूत्रेन्द्रियके भीतर छोटी मवाददार फुड़ियोंका होना, मैलापन या मूत्रेन्द्रियमें गोश्तका बढ़ जाना, गुदामें कीड़ोंका पैदा होना (ख़ासकर बच्चोंमें), बवासीर, पथरी, पेटमें मवाद पड़ जाना या मूत्रेन्द्रियमें किसी ऐसी चीज़का चला जाना जो खुजली पैदा करे।

इस बीमारीकी बाज़ी ऐसी भी सूरते हैं जिनमें औरतमें बच्चा पैदा करनेकी ताक़त नहीं रह जाती। इस रोगकी खराबीके चिह्न मुंहका पीला या काला हो जाना, भूकका न लगना, खाना न हज़म होना, कमर और पेटमें मन्द मन्द दर्द रहना, पेड़ओंका ठंडा रहना, छातीका धड़कना, कमजोरी, ताक़तका न रहना, मासिक धर्मका कमीके साथ होना या बिलकुल बन्द हो जाना या रजके साथ असली खूनका न आना। अगर ऊपर लिखी बातें मरीज़में नहीं हैं तो यह बीमारी ज़्यादा नुक़सान नहीं करती। लेकिन इसमें कमज़ोरी होती है, इसलिए इलाज ज़रूर करना चाहिए। न इलाज करनेसे तपेदिक और फेफड़ोंकी दूसरी बीमारी हो सकती हैं और तन्दुरुस्ती तो बिलकुल बिगड़ जाती है। ज़्यादातर अमीरोंमें या सुस्त, बेकार शौक़ीन औरतोंमें या उनमें जो बहुत गुंजान शहरोंमें रहती हैं और जिनको हवा और धूप अच्छी तरह नहीं मिलती यह बीमारी होती है।

इस बीमारीके दूर करनेकेलिये नीचे लिखी बातोंपर अलावा इलाजके ज़रूर ध्यान देना चाहिए, (१) चित्त लेटना (२) कम काम करना—यानी आराम ज़्यादा करना चाहिए, क्योंकि यह मर्ज़ चलने फिरनेसे बढ़ता है और बच्चेदानीपर सूजन आ जानेका डर रहता है (३) खुली हवामें टहलना या कसरत करना जिसमें थकावट न आवे (४) जल्द हज़म होनेवाला खाना स्वादके माफ़िक खाना (५) भीड़ भाड़में न बैठना भोगसे बचना, रोज़ ठंडे पानीसे पानीमें बैठकर पेडूको मलना और मूत्रेन्द्रियको साफ़ रखना (६) अगर डाक्टर सलाह दे तो पिचकारी या डूश लेना (Douche)। डूशका पानी ठंडा होनेसे कुछ हर्ज़ नहीं है लेकिन अगर पेटमें बच्चा हो तो ठंडा पानी न लेकर गुन गुना पानी लेना चाहिए।

नीचे लिखी हुई औषधोंका निदानके अनुसार प्रयोग करना चाहिए।

(१) सफ़ेद या पीले रंगका पानी जब निकलता हो तो कैलकेरिया-कार्ब, चाइना, कोपेविया (Copavia) आयोडियम, मरक्यूरियस (Mercurius) नैट्रम-म्यूरेट्रिकम (Natrum-murs) पलसैटिला और सीपिया।

(२) बिलकुल पतला पानीसा द्रव निकले तो एलम (Alum), आरसेनिक, फेरम, ग्रेफाईटीज़, आयोडियम, सेबीना।

(३) गाढ़ा मवादसा निकले तो मैज़ीरियम (Mezereum), सीपिया, ज़िङ्कम।

(४) कड़ुआ माददा निकले तो एकोनाइटम-नैपेलिस, आरसेनिक, हिलोनिस (Helonias) क्रियोज़ोट, (Kreosotum) लायकोपस (Lycopus) पलसैटिला, सीपिया (Sepia)।

(५) अगर दूधकी शक्ककासा द्रव निकले तो कैलकेरिया-कार्ब, फैरम, लायकोपस (Lycopus) पलसैटिला, सिलोसिया।

(६) अगर बदबूदार द्रव निकले तो कार्बोवेजीटेबिलस, कौसटिकम (Causticum) आयोडियम, क्रियाजोट, सीपिया (Sepia)।

(७) अगर हरे रंगका द्रव निकले तो कार्बोवेजीटेबिलस, क्रियेज़ोट (Kreosotum), मरक्यूरियस (Mercurius), सेबीना (Sabina), सलफर (Sulphur)।

(८) खूनका सा द्रव निकले तो कैलकेरिया-कार्ब, चाइना, क्रियेज़ोट और लायकोपस (Lycopus)।

(१) हेमेमिलिस (२) हिलोनियस (Helonias) और (३) हाइड्रोस्टिस (Hydrostis) भी इस मर्ज़में उपयोगी हैं।

नं० १–जब कि ज़्यादा खून जारी हो और कमरके पास बहुत दर्द हो। नं० २–जब कि बच्चेदानी टल गई हो और कमज़ोरी ज़्यादा हो। नं० ३–जब कि दाने या खुजली पेशावकी जगहकी खालपर पड़ गई हों और बदहज़मी रहती हो। यह दवा खिलाई भी जाय और १ छटांक पानीमें १२ बूंद डालकर ऊपरसे भी लगाई जाय।

७—बच्चोंका श्वेत प्रदर

यह खासकर ऐसे बच्चोंको होता है जिनको कुछ असर कंठमालाकी बीमारीका रहता है। इसमें पेशावकी जगह खुजली, कभी कभी पेशाब करनेमें तकलीफ़ और पतला बेरङ्ग या गाढ़ा सफेद रङ्गका पानी निकलता है। जो बच्चे बीमार और मैले रहते हैं उनमें यह मर्ज़ जल्दी बढ़ जाता है। अगर इस द्रवमें हाथ लग जाय और वही हाथ आंख, नाक या किसी दूसरी जगह लगे तो दाने हो जाते हैं और एकका रोग दूसरेको भी हो जाता है। इसलिये ऐसे बच्चों के साथ दूसरे बच्चोंका सुलाना या एक दूसरेके कपड़े पहिराना ठीक नहीं है। यह रोग सर्दी लगने, या इकबारगी पसीना रुक जाने, बदनके साफ न रखने, केंचुआ वगैरा होने या खुजलानेसे हो जाता है। जिन बच्चोंको उस किस्म-

का यह रोग होता है जो दूसरेपर भी असर कर जाय, उनमें दो बातें ज़रूर पाई जायंगी :—

पहली पेशाबकी जगह सूजन होती है जो भीतरतक पहुंच जाती है। दूसरे पेशाब करनेमें तकलीफ़ होती है। अब हम कुछ दवायें लिखते हैं जो खिलानी चाहियें।

केलकेरिया-कार्ब—कंठमालावाले माद्देसे पीड़ित बच्चेको जबकि दूधकी तरह माद्दा निकलता हो और अर्सा हो गया हो।

केनाबिस-सटायवा (Cannabis Sat.)—जब कि पीले रङ्गका पानी निकलता हो और सूजन, सुर्खी जलन और गर्मी पेशाबकी जगह पर हो और पेशाब तकलीफ़से होता हो।

आयोडियम—कंठमालावाले बच्चोंको जबकि माद्दा पतला और बूदार निकलता हो और बहुत ही दुबला हो गया हो।

मरक्यूरियस-कोर (Merc-cor.)—अगर पीलापन लिये हुए तलछी या खट्टापन माद्देमें मौजूद हो।

पलसटिला—गोरे रङ्गके बच्चोंको जिनके दूधके रङ्गका पानी निकलता हो और बदहज़मी और खांसी रहती हो।

टीयूक्रियम (Teucrium)—ऐसे बच्चोंको जिनको यह मर्ज केंचुए पड़ जानेकी वजहसे हो गया हो।

इन दवाओंके अलावा वह सब दवायें भी जिनको हम औरतोंकी इस बीमारीके बयानमें लिख चुके हैं दी जा सकती हैं।

मरीज बच्चेके माता पिताको चाहिए कि साफ़ ठंडे या गुनगुने पानीसे दोनों वक्त धोयें, खूब पोछें, और वायोलेट-पाऊडर (Violet-powder) ऊपरसे लगादें। दिनमें तीन बार अच्छा जल्द हज़म होनेवाला नई नई तरहका खाना दें। साफ़ हवामें टहलायें मछलीका तेल पिलायें, पानीमें नमक डालकर न्हिलायें, क्योंकि इन सब बातोंके करनेसे जो बिगड़ी हुई तन्दुरुस्ती है वह भी ठीक हो जायगी और दवाइयोंका असर जल्द होने लगेगा।

बिना काग़ज़की पुस्तकें

[ले० अ० चिरंजीलाल, माथुर, बी. ए., एल. टी.]

बहुत प्राचीन समयमें जब काग़ज़ बनानेकी विधि नहीं मालूम हुई थी वृक्षोंकी छाल (भोजपत्र) पर पुस्तकें और अन्यलेख लिखे जाते थे। वह प्रथा तो काग़ज़के बननेसे बन्द हो गई। कोई प्राचीन पुस्तक या मंत्र चाहे भोजपत्रपर मिल जाय परन्तु भोजपत्रका प्रयोग अब नाम मात्रको भी नहीं होता।

जो महाशय छपाईका काम करते हैं या पुस्तक पत्र इत्यादिसे सम्बन्ध रखते हैं, उनको तो इस बातके मालूम करनेकी बड़ी उतावली होगी कि बिना काग़ज़के पुस्तकें कैसे बन सकती हैं, विशेषतः आजकल जबकि काग़ज़की कमीके कारण बड़ी कठिनाई हो रही है—यह समाचार बड़ी खुशीसे सुना जावेगा।

काग़ज़की आवश्यकता दूर करनेवाली वस्तु तैय्यार होकर अभी प्रचलित तो नहीं हुई है किंतु सम्भावना इस बात की है कि वह बन सके—इस बातकी भविष्यद्वाणी महाशय टी. ए. एडीसन (T. A. Edison)ने की है जो ग्रामाफोनके आविष्कर्ता भी हैं। एडीसन महाशयका कथन है 'मैं बिजली वा रासायनिक क्रियासे फौलाद, तांबा या निकिलकी बहुत पतली चादरें ऐसी बना सकता हूं जो छापेकी स्याहीको सोख सकेंगी। इन तीनों धातुओंमेंसे निकिलकी (nickel) चद्दर काग़ज़की जगह काम आ सकती है। इसकी $\frac{१}{१०००}$ इंच मोटाईकी चद्दरें बन सकती हैं और मुलायम व पायदार होकर साधारण काग़ज़से सस्ती ठहरेंगी।'

निकिलकी चद्दर काग़ज़के स्थानपर काममें आने और उससे भी अधिक उपयोगी होनेकेलिए निम्नलिखित बातोंका निश्चय करना आवश्यक है—चद्दरकी पुस्तक (१) काग़ज़की पुस्तकसे भारी होगी या हलकी। (२) काग़ज़से सस्ती होगी

In dustry उद्योग]

या महंगी (३) अधिक संख्यामें बन सकेगी या नहीं (४) स्याही ठीक ठीक लेगी या नहीं।

एडीसनने स्वयम् इन प्रश्नोंका उत्तर दिया है। २ इंच मोटी कागज़की पुस्तकमें अधिकसे अधिक ३००० पृष्ठ छप सकते हैं, परन्तु निकिलकी इतनी मोटी पुस्तकमें ४०,००० छपेंगे और लगभग आधसेर बोझ होगा। साधारण कागज़की पुस्तक ३५० पृष्ठ प्रति इञ्चसे अधिककी नहीं हो सकती—इससे अंदाजा लगा सकते हैं कि निकलकी पुस्तकें कितनी कम जगह रोकेंगी।

निकिलकी एक पौंड (लगभग आधासेर) चद्दर बनानेमें ३) लगेंगे और कागज़में कुछ आने ही लगते हैं परन्तु जब यह अंदाज़ा लगाया जाता है कि एक पौंड निकिलमें कितने पृष्ठ छप जाते हैं और कागज़में कितने तो निकिल ही सस्ता पड़ेगा। एडीसनने स्वयम् अपनी प्रयोगशालामें जब यह निकिलकी चद्दर बनाई तो १½ मिनट में ५ वर्ग फुट बनी, परन्तु जब व्यापारिक पैमानेपर बनावेंगे तो थानके थान इसके बनेंगे। इसकेलिए यंत्र अवश्य बनाने पड़ेंगे-परन्तु आवश्यकतानुसार बन जानेमें कोई बाधा न होगी। जो स्याही आजकल छापेके काममें आती है उसको भी निकिलकी चद्दर सोख लेगी, परन्तु स्याहीके कुछ अवयव बदलनेसे ऐसी स्याही बनजावेगी कि जो भली भांति सोखी जा सकेगी।

कागज़के मुकाबलेमें निकिल और कई प्रकारसे अच्छा रहेगा। कागज़ १०० वर्षमें गलकर बिखर जाता है और आग लगने पर तो वर्षोंकी मेहनत और लाखोंकी लागत छिनभरमें स्वाहा हो जाती है। निकिलपर सीलका (moisture) असर बिलकुल नहीं होता और न वह जल ही सकता, यद्यपि अधिक तापसे पिघल ज़रूर जाता है। इन पुस्तकोंकेलिए जिल्द भी धातुका बन सकती है, ऊपरका पट्ठा इत्यादि सब धातुका ही होता है। पुस्तकोंके रखनेकेलिए कम जगहकी ज़रूरत होगी क्योंकि जितना कागज़पर लिखा हुआ कई फुट घेरता है वह कई इंच ही घेरेगा। बड़े बड़े पुस्तकालय छोटे छोटे मकानोंमें रखे जा सकेंगे। एडीसनकी यह गवेषणा बहुत ही उपयोगी होगी। संसारमें साहित्य बढ़ता जाता है। पुस्तकोंकी संख्या इतनी बढ़ती जाती है कि रखनेको स्थान बहुत चाहिए। यदि निकिलका कागज़ चल गया तो किफ़ायत होगी। आशा है कि इसकी आज़मायश भली भांति होकर कागज़की जगह निकिलकी चद्दरोंका प्रचार शीघ्र ही हो जावेगा।

युद्धके समय फ्रान्सकी खेती

[ले० पं० गिरजादत्त शुक्ल]

और सब उद्योग-धन्धोंकी भांति फ्रांसमें खेतीपर युद्धका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है, परंतु यह सभी जानते हैं कि कृषिकार्य वहां किसी भांति भी ढीला नहीं है। कृषिकारोंने देशकेलिए बिना कुछ आगा पीछा किये उदारताके साथ सर्वस्व अर्पित कर दिया है और पिछड़नेवाले यदि हैं भी तो बहुत थोड़े। अपनी अवस्थासे लाचार वृद्धपुरुषों स्त्रियों तथा लड़कोंने उत्साहमें सिपाहियोंकी बराबरी करनेकी चाहसे अपने आपको यह एक क्षण भी नहीं भूलने दिया है कि कृषिका मुख्य कर्त्तव्य जातिका पालन करना और उपजाऊ भूमिको ऊजड़ हो जानेसे बचाना है। जो कुछ किया गया है, और जो कुछ भविष्यमें किये जानेकी आशा है, उसपर विचार करना अनुचित न होगा।

युद्ध सन् १९१४,के अगस्त मासमें छिड़ा। उस समय दक्षिणी फ्रांसमें फ़स्ल काटी जा चुकी थी, परंतु देशके अन्य भागोंमें तैयार नहीं हुई थी। युद्धमें न सम्मिलित होनेवाले लोग अपने अनवरत परिश्रम और अपूर्व उत्साहकेलिए जो उन्होंने

फ़स्लकी कटाईमें दिखलाए अनेकानेक धन्यवादके पात्र हैं। फ्रांसके उत्तरी और उत्तरपूर्वी भागोंमें शत्रुका आक्रमण होनेसे एक स्थानमें जहां फ़स्लें बहुत अच्छी हुई थीं, बड़ी हानि हुई, पर तौभी कृषि-मन्त्रीके हिसाबके अनुसार देशके पास २८७००००० बुशल अनाज था। अतएव जनता-को बहुत थोड़ी वस्तुएँ बाहरसे मंगानेकी आवश्यकता हुई, परन्तु खरीफ़ फ़स्लके आरम्भसे कठिनाइयां बढ़ने लगीं। आवश्यकता होनेके कारण बहुतसे घोड़े लड़ाईमें भेज दिये गये। इससे खेतीके काममें बहुत कुछ क्षति हुई और २० लाख एकड़ भूमि बेजोती पड़ी रह गई। जर्मनों द्वारा अधिकृत भूमिमें भी ५ लाख एकड़ वैसी ही रह गई। इस हानिका अनुभव १९१४ के बीतते बीतते हुआ। ज्यों ज्यों एक फ़स्लके बाद दूसरी फ़स्ल आती गई त्यों त्यों अधिक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। फौजमें अधिक भरती होनेके कारण खेतीपर काम करने-वाले मज़दूरोंकी संख्या दिन दिन कम होती गई। जो कुछ बचेखुचे मिल गये उनके अपार परिश्रमसे ग्रीष्मऋतु तक बहुत हर्ज हुए बिना ही कठिनाइयोंका सामना हो सका।

इसमें सन्देह नहीं कि इन बातोंका पूर्ण प्रभाव भूमिकी उपजपर पड़े बिना नहीं रह सकता। कृषिमंत्रीकी रिपोर्टोंसे पता चलता है कि शत्रुद्वारा अधिकृत खेतोंको मिलाकर क़रीब ५० लाख एकड़ ज़मीन बेजोती रह गई है। बीस लाख एकड़ ज़मीन अनाजकी, २३ लाख से ऊपर सूखी घासकी, ५७०००० एकड़ आलूकी ८६०००० एकड़ और खेतियोंकी जिसमें ४७०००० एकड़ चुक़न्दर और शराब बनानेकी सामग्रीके उपजानेकी भूमि शामिल है, वैसीही पड़ी रह गई है।

उपजमें न्यूनता होनेके मुख्य कारणके साथ साथ कितने ही और कारण हैं जो बिना विशेष ध्यान दिये जान नहीं पड़ते। भूमिको अच्छी तरहसे तैयार करनेकी अयोग्यता, उसको उपजाऊ बनानेवाली आवश्यक वस्तुओंका न मिल सकना, काम करनेवालोंका काफ़ी संख्यामें न पाया जाना—इन सब कारणोंके संयोगसे पैदावार औसतसे घट गई है। अनाज ५० लाख टनसे अधिक नहीं पैदा हुआ है। अन्नकी उपजमें युद्धके पहलेकी अपेक्षा छठा भाग कम हो गया है और सूखी घासकी खेतीकी पैदावार-में गत पन्द्रह वर्षों तक इतनी कमी कभी नहीं हुई थी जितनी अब है। सूखी घासमें शायद औसत आवश्यकताके $\frac{1}{5}$ भागकी कमी होगी, परन्तु यह और देशोंमें उचित दामपर मिल सकती है। अतः यह सम्भव नहीं है कि फ्रांसमें खाद्य वस्तुओंका मूल्य बढ़ जाय।

इस कारण सरकार उन नियमोंको तोड़ भी सकती है जिनका व्यवहार शायद साल भरसे महंगी रोकनेकेलिए होता रहा है और जो कई प्रकारसे अनुचित भी हैं। अन्नके बाद मुख्य खाद्य वस्तुओंमें आलू है। इस वर्ष आलू बोईजानेवाली भूमिमें ५ लाख ७० हज़ार एकड़ भूमि छोड़ दी गई है। खेतीकी पैदावार कई ढंगकी हुई है, कुछ जगहोंमें साधारण, परन्तु बहुतोंमें अत्यन्त कम, जिसके कारण कुछ अंशमें पौधोंके स्वाभाविक शत्रु हो सकते हैं। ऐसे स्थान जहांपर पिछली बात हुई है, विस्तृत हैं। तौभी महंगीके विषयमें अभीसे कुछ कहना उचित न होगा, क्योंकि सम्भव है कि मालके बाहर न जानेसे, जैसा युद्धके आरंभसे हो रहा है, कमी पूरी हो जाय।

यह कथा कुछ कुछ दूसरा ही रंग पकड़ती है जब चुक़न्दर तथा और पौदों की-विशेष करके उनकी जो दक्षिण फ्रांसमें पैदा होते हैं—बात आती है। युद्धके कारण सन् १९१४ ई० में चीनी-की पैदावार केवल ३३०००० टन हुई है और इस साल और भी कम होगी। चुकन्दरकी पैदावारमें बहुत कमी हुई है और अनेक कारणोंसे इसकी उपज औसतकी आधीतक पहुंच गयी है।

कुछ स्थानोंके अतिरिक्त साधारण तौरसे चारेकी खेती अच्छी है और कहीं कहीं तो बहुत अच्छी है और यह आवश्यक भी है क्योंकि जिन पशुओंसे हम इतना काम लेते हैं और जिनपर हम इतने अवलम्बित रहते हैं उनका पेट पालना हमारे लिए नितान्त अनिवार्य है। यद्यपि सेना सम्बन्धी पशुओंकेलिए चारे इत्यादिकी मांग अधिक रही है, पर वह इस वर्ष सर्वथा पूर्ण की गई है, और आशा है भविष्यमें भी ऐसे ही होती रहेगी।

इस बातको प्रत्येक मनुष्य जानता है कि फ्रांसमें कृषि-सम्बन्धी उपजोंमें अंगूरका स्थान प्रधान ही नहीं किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसे पैदा करनेकेलिए इसकी उन्नतिमें बाधा डालनेवाले रोगों और इसके प्रबल शत्रु कीड़ोंसे इसे बचानेको पूरा ध्यान और अच्छी सावधानता रखनी चाहिये। अतएव सैन्य तैयार करनेके लिए, अंगूरके खेतोंसे मज़दूरोंको हटानेको विवश होना उस खेतीकेलिए बहुत हानिकर हुआ। इस कठिनाईके साथही साथ बसन्तऋतुमें फुफुन्दीकी बीमारीका भीषण आक्रमण हुआ। खेतीकी उपजमें बहुत कमी हो गई, परन्तु तौभी आशा है कि अंगूरकी शराब बहुत ही ऊंची श्रेणीकी होगी।

उधर ब्रिटेनी और नारमैण्डीमें सेबकी खेती बहुत ही अच्छी हुई है। परन्तु उसकी अधिकतासे कुछ अधिक लाभ नहीं हुआ है, क्योंकि जर्मनीमें ही बची खुची संख्या जाया करती थी पर अब वहां इसका जाना बन्द हो गया है। इस फलका उचित प्रयोग अब युद्धमें करनेका विचार किया जा रहा है, किन्तु यह बड़े कुतूहलकी बात है कि ऐसे समयमें जब फलोंको कुछ समय तक बचा रखनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है, वे प्रायः खेतोंमें ही सड़ जाया करते हैं।

बाटिकाओंके छोटे छोटे पौदोंका विस्तारसे वर्णन कर सकना कई कारणोंसे सहज नहीं है। यह सच है कि उनकी बड़ी मांग है और यह मांग बनी भी रहेगी, क्योंकि सैनिकोंको मांस हो खानेकेलिए मिलता है और अब अपनी रसदको ठीक रखनेकेलिए वे शाकपातका अधिक प्रयोग करेंगे।

अन्तमें यह जान पड़ेगा कि फ्रांसकी खेतीको युद्धसे बड़ी क्षति पहुंची है। किसानोंकी प्रतिष्ठाकी सूचक यह बात कही जा सकती है कि उन्होंने बड़ी शक्तिके साथ इस हानिको रोकनेकेलिए प्रयत्न किया है। सरकार उन्हें सहायता देनेकेलिए आगे बढ़ी और उनके परिश्रमी साथी फ्रांकोइस बरथाल्टकी देख रेखमें जिन उपायोंका अवलम्बन किया गया वे सफल भी हुए। जिन प्रान्तोंमें आक्रमण हुआ था उनके गावोंमें पहले भूमिकरमें रियायत की गई और सेना तैयार करनेमें मिलकर काम किया गया। फिर बीये और खेतोंको उपजाऊ बनानेवाली वस्तुएँ बांटी गईं। जर्मन तोपोंके फ़ैर होते हुए भी खेतोंकी जुताई होती रही है, इसके लिए मार्नम्यूस और मर्थेटमाज़ेलेके प्रान्त धन्यवादके अधिकारी हैं। इसके अतिरिक्त खेतियोंका चन्दरोज़ा विभाग और जुताईके कामोंमें सहायक हुआ है। परंतु इनका फल विघ्न बाधाओंके कारण बहुत अच्छा नहीं हुआ है। यह बहुत आवश्यक है कि भूमिकी जुताई बिना किसी रुकावटके होती रहे। वर्त्तमान कालकेलिए तो यह आवश्यक है ही, परन्तु भविष्यकेलिए भी वैसा ही है वर्त्तमान निराशाओंके विरुद्ध कार्य कर्त्ताओंकी विरोधशक्ति निर्बल पड़ जायगी। इस समय जो बहुत लाभकारी उपाय जान पड़ता है वह यह है कि सैनिक ढंगपर काम करनेवाले आदमी एकत्र किए जायं और देशके भिन्न भिन्न भागोंमें वे आवश्यकतानुसार भेजे जायं। ऐसी संस्थाओंकेलिए मनुष्य काफ़ी संख्यामें मिल सकते हैं। अब आवश्यकता इसी बातकी है कि बिना विलम्ब गंभीरतासे काम किया जाय।

———

कुछ इधरसे कुछ उधरसे

(१)

जिन देशोंमें भूचाल आता है वहांके निवासियोंका जीवन बहुत विपद्ग्रस्त होता है। वे बिचारे स्थायी तथा पक्के घर नहीं बना सकते। जापानमें टट्टोंके समान काठकी चौखटमें कपड़े मढ़ी दीवालें भिन्न भिन्न नापकी मिला करती हैं और लोग अपनी इच्छाके अनुसार लम्बाई तथा ऊंचाईकी दीवालें खरीदकर आध घंटेमें घर बना लेते हैं अर्थात् उन्हें आवश्यकता ऐसे घरोंके बनानेकी पड़ी जिनके गिरनेसे वे दबकर न मरें, अतः उन लोगों ने यथेष्ट घर खोज निकाले। खेतोंमें किसान फसलकी रक्षाकेलिए और बंगालमें नदियोंकी बाढ़से जब सैकड़ों कोस भूमि जलमय दीखती है तब, मचान बांधके ऊंचे घरोंसे रखवाली और निर्वाह करते हैं। चीनके पूर्वी किनारोंपर धीवर लोग रात दिन नावोंपर रहते हैं। उनके बाल बच्चोंका जन्म भी नावोंपर ही होता है और वे भूमि न देख पाते न उसका ज्ञान रखते हैं। यों बहुतसे उदाहरण दिये जा सकते हैं कि जिसे आवश्यकता पड़ती है वह उपाय ढूंढ़ निकालता है। लकड़ीके शरीरवाले बनस्पति पत्थर फोड़कर अपना भोजन खींचते हैं और टेढ़े मेढ़े होकर पत्थरके नीचेसे प्रकाशकेलिए सिर निकालते हैं।

(२)

इतिहास इस बातका साक्षी है कि सिकन्दर नील नदसे होता हुआ मिश्र देशकी ओर गया था। उसे समुद्र तटपर एक ऐसा भूभाग मिला जिसके पीछे एक झील थी और संमुख हो एक द्वीप था। यह स्थान उसे ऐसा रुचा कि उसने अपने मनमें संकल्प किया कि यह स्थान उसकी राजधानी हो। आज्ञाका विलम्ब था। उसने डिनोक्रेटीस नामक शिल्पीको भेज नगर बसानेका प्रबन्ध कराया। ऊंची ऊंची अट्टालिकाएँ तथा भव्य प्रसाद और विस्तीर्ण सड़कोंसे नया शहर सुशोभित किया गया। सहस्रों दासों तथा प्रभूत धन सामग्रीकी सहायतासे लम्बी नहरें रोजगारियोंके लाभके लिए बनाई गईं और नगरकी उन्नतिके लिये यथेष्ट उद्योग किया गया। फलतः इस्कन्दरिया शहर उस स्थानपर प्रादुर्भूत हुआ। द्वीप तक एक मार्ग पाटा गया जिससे आवागमनमें सुभीता हुआ। वहां १२५ गज़ ऊंचा एक पथप्रदर्शक दीपगृह निर्माण किया गया।

General साधारण]

पचास वर्षमें इस्कन्दरिया वाणिज्यका एक केन्द्र हो गया। यहांपर मिश्रके किसी राजाधिराजने एक इतना भारी पुस्तकालय स्थापित किया कि वह स्थान न केवल वाणिज्य वरन् ६०० वर्ष लों विद्याका केन्द्र भी रहा। बहुतसे लेखकोंके ग्रन्थ इस पुस्तकालयमें रखे रहनेसे लोप होनेसे बचे। जो परदेसी इस नगरसे होकर जाता था उसे अपनी पुस्तककी एक प्रतिलिपि, यदि नई हो तो, देनी पड़ती थी। यहां एक विचित्र संग्रहालय स्थापित किया गया था जो आधुनिक विश्वविद्यालयोंसे तुलना पा सकता है। इसमें अध्यापकोंकेलिये वासगृह और व्याख्यान भवन बने थे। भूमध्य सागरके निकटवर्ती देशोंसे विद्वान् लोग यहां अध्ययनकेलिए आते थे। इन लोगोंमें से एक उकलैदस (या यूकलिड) नामका ग्रीसदेशवासी था, जिसने क्षेत्रमिति अथवा रेखागणित शास्त्रको क्रमबद्ध किया।

(३)

मिश्र देशमें पर्याप्त वर्षा न होनेसे वहांके निवासी अपनी खेतीकेलिए नील नदकी बाढ़के आश्रित रहते हैं। नदीका पानी दोनों ओर बढ़कर दूरतक भूमि जलसे आप्लावित कर देता है। उसकी पुरानी सीमाके चिन्ह सब नष्ट हो जाते हैं। नई मट्टीसे भूमिकी उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है, पर लोगोंको अपनी अपनी भूमिका पता लगाना

असम्भव हो जाता था। अतः लोगोंको अपनी पुरानी तिकोनी, चौकोनी आदि भूमिके परिवर्तनमें नई गोल अथवा षट कोण भूमि जैसी ऊंचे नीचे स्थानपर मिले लेनी पड़ती थी, पर वे इस बातका उद्योग करते थे कि आकार चाहे जैसा हो भूमि उतनी ही मिले जितनी पहिले उनके पास थी। यही आवश्यकता रेखागणित शास्त्रकी मूल थी। इसी भूमि बंटवारेमें गुत्थमगुत्था होते देख यूकलिड ने अपनी क्षेत्रमितिको क्रमबद्ध किया। सच है आवश्यकता ही खोजोंकी जड़ है।

(४)

इसी इस्कन्दरियाके एक ज्योतिषीने पृथ्वीसे चन्द्र और सूर्यका अपेक्षाकृत अन्तर निकालनेकी चेष्टा की थी। उसका नाम आरिष्टार्कस था। उसका काल सन ईसवीसे पौने तीन सौ वर्ष पूर्व माना जाता है। वह चन्द्रमाको गेंद सा गोल और सूर्यके आलोकसे प्रकाशित समझता था। सूर्यके प्रकाशका भिन्न भिन्न स्थितियोंमें चन्द्रपर पड़ना ही उसकी कलाओंका कारण उसने निर्धारित किया। वह चन्द्रमाकी बढ़ती कटारीको प्रति रात्रि तब तक ताकता रहता था जब तक अर्धचन्द्र देख न पडता था। अर्धचन्द्रके दिन यदि एक रेखा पृथ्वीके केन्द्रसे चन्द्रके केन्द्रतक खींची हुई कल्पित की जाय, तो वह सूर्य-चन्द्रके केन्द्रोंको मिलानेवाली रेखाके समकोण होगी। एक बार सूर्यास्तके थोड़े पहले जब सूर्यका प्रकाश चन्द्रपर ऐसी स्थितिमें पड़ रहा था, उस समय अरिष्टार्कसने परकारके समान जुड़ी दो भुजाओंके एक यंत्रको लेकर एक भुजा चन्द्रकी ओर तथा दूसरी सूर्यकी ओर करके उस कोणको नापके ८७° अंशका प्रमाणित किया। यों उसे पृथ्वी चन्द्र तथा सूर्यके केन्द्रोंको जोड़नेवाले त्रिभुजके दो कोण ९०° और ८७° अंश विदित हो गये। तब उसने चन्द्रमाकी दूरी न जानते हुए भी यह निश्चित किया कि सूर्यको चन्द्रसे मिलानेवाली भुजा पृथ्वीको चन्द्रसे मिलानेवाली रेखासे अठारह गुनी बड़ी है। आधुनिक गणितसे यह अन्तर ४०० गुणा सिद्ध होता है पर उस समयमें इतना ही खोजना कैसा काम था? उसने यह भी गणित और अवलोकन द्वारा सिद्ध किया था कि सूर्यके बराबर बराबर ७२० गोले पास पास रक्खे जावें तो वे दृष्ट आकाश मंडलको घेर लेंगे। यह बहुत कुछ ठीक है। यद्यपि उसकी परीक्षाएं पूरी ठीक नहीं हैं तो भी वह सहायता रहित, बुद्धिमत्ता युक्त विचारशैलीके कारण आधुनिक वैज्ञानिकोंका आदर पात्र है।

(५)

इस्कन्दरियाके पुस्तकालयके इरेटस्थानीस नामक अध्यक्ष ज्योतिषीने पृथ्वीके परिमाणको नापा था। वह नौकामें बैठ नील नदमें उद्गम स्थानकी ओर जाता था और देखता था कि वह जितना ही अधिक दक्षिणकी ओर जाता है उतने ही नये तारे दृष्टिगोचर होते हैं और उत्तरीय तारे लुप्त होते जाते हैं। इसपरसे उसने यह परिणाम निकाला कि पृथ्वी चन्द्रमाकी समान गोल है और उसने कल्पना की कि यदि वह बहुत दूर दक्षिणकी ओर जावे तो अन्तमें वह पृथ्वीकी परिक्रमा करेगा। पृथ्वीका परिमाण नापनेकेलिए उसे पूरी परिक्रमा करनेकी आवश्यकता न पड़ी। वह इस्कन्दरियासे अस्वानके प्रपाततक नावपर बैठकर गया और नापकर देखा कि वह स्थान इस्कन्दरियासे २६० कोस दूर था।

वहां पर उसने दोपहरके समय नापकर निकाला कि सूर्यकी उँचाई इसकन्दरियाकी अपेक्षा ७° अधिक है। यह कोण पृथ्वीके पूरे वृतके ४ समकोणों का (९० × ४) लगभग पचासवां भाग था। अतः उसने २६० को ५० से गुणा करके पृथ्वीकी परिधि १३००० कोसको निश्चित की, जो पृथ्वीकी आधुनिक निर्धारित ११८५० कोसकी परिधिसे थोड़ी ही अधिक है। नील नदका सीधी दिशामें न बहना उसके २६० कोसके अन्तर नापनेमें अशुद्धिका कारण था।

इसके अन्तकी कथा बहुत ही करुणोत्पादक है। कहते हैं कि आकाश देखते देखते उसकी दृष्टि जाती रही और उसे अपने अवलोकनों और गवेषणाओंसे वञ्चित होना पड़ा। निरुपाय ऐसे जीवनसे उद्विग्न हो अन्न जल परित्यागकर वह पञ्चत्वको प्राप्त हुआ।

(६)

इस्कन्दरिया निवासी हेरोन एक और प्राचीन विद्वान् हो गया है। वह स्थानीय संग्रहालयमें अध्यापक था। जल घड़ीको पुराने लोग निकाल चुके थे। हेरोनने उसमें उन्नति दिखाई। उसके यंत्रमें पानी एक छोटे पर कठिन धातुमें किये छिद्र-से नीचे एक बर्तनमें गिरता था। उस पात्रमें एक नाव तैरती रहती थी। उस नावके पासका एक डण्डा पानीके साथ नावके उठनेपर उठता न था। उसी डंडेके विभाग करके उसने चिह्न बना रखे थे। इन चिह्नोंसे उसे घंटोंका ज्ञान होता था। उसने एक और प्रबन्ध किया था। नाव जलपर उठती बेला एक पहियेको घुमाती थी। उस पहियेके घूमनेसे घंटे घंटेपर एक गेंद नीचेके कटोरेमें गिर पड़ती थी। इन गिरी हुई गेंदोंके गिननेसे घंटोंकी संख्या विदित हो जाती थी।
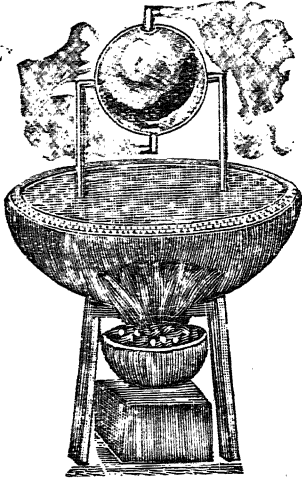
चित्र ५

(७)

उसने भापकी शक्तिके उपयोगका एक यंत्र भी बनाया था। उसने एक तिपाईपर जिसके बीचमें एक गोल छेद था एक तसलेमें पानी भर-के नीचे आँच रख दी, आँचसे खौलते हुए जलकी भाप दो नलोंसे होकर बीचकी ओर मुड़के ऊन-पर ठहरे हुए एक खोखले गोलेमें अगल बगलसे घुसी। इस खोखले गोलेमें एक सीधमें ऊपर नीचे दो टोंटी लगे छेद थे। भाप गोलेमें प्रवेश पाकर उसे घुमाने लगती थी। [देखो चित्र ५] एक दूसरे प्रकारके बर्तनमें एक छिद्रसे निकलती हुई भापसे एक हल्की गेंद उतरती चढ़ती रहती थी। [देखो चित्र ६]
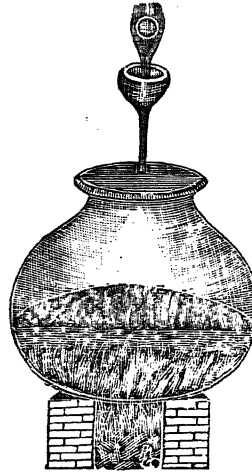
चित्र ६

(८)

हेरोनने देखा कि किसी पतली नलीको पानीमें डुबोकर उस-के ऊपरी सिरेको उंगलीसेबन्दकरऊपर उठा लिया जावे तो पानी नलीसे नीचे तबतक नहीं गिरता जबतक उँगली हटाई न जावे। इस सिद्धा-न्तके आधारपर एक बर्तन बनाया गया जिसके नीचे कई छोटे छोटे छिद्र थे और ऊपर लम्बे गलेका मुख था। उसे जल या गुलाब जलमें डुबोकर उँगलीसे ऊपरका मुंह बन्द करनेसे पानी भर जाता था। जब किसी व्यक्तिके सिरपर ले जाकर उँगली हटाली जाती थी, तो उसके ऊपर वर्षा होती थी।

(९)

दियामें जलते समय तेल चुक जानेपर बत्ती भी जल जाती है पर हेरोनने बत्तीका जलना

बचानेका एक उपाय निकाला। वह यह था। तेलके बर्तनपर एक पटरा उतराता रहता था। वह जैसे जैसे तेल जलकर घटता जाता था वैसे नीचे उतरता जाता था और उतरते समय एक दांतवाले पहियाको घुमाता था। इस पहियेके सहारेसे खसकते डण्डेसे जली हुई बत्ती धीरे धीरे खसकती आती थी और बत्ती ठीक तेलके धरातलपर समान प्रकाशसे एकही भागमें जलती रहती थी, सब नहीं जल जाती थी। [देखो चित्र ७]
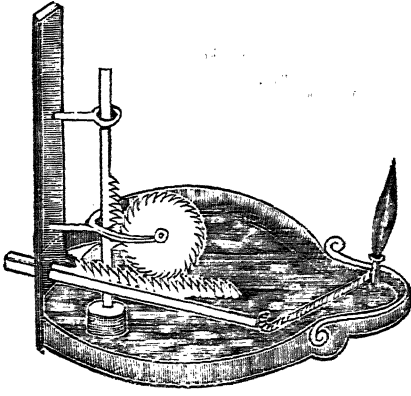
चित्र ७

—मधुमङ्गल मिश्र।

तुतलाना और उसका कारण

तोतला आदमी अपनी घड़ीकी ओर देखता है और कहता है 'दस-बजे'। आप उसका आशय नहीं समझते और इसकी ओर उस ढंगसे देखते हैं मानों आप उससे कोई उत्तर चाहते हैं और इसका विचार होते ही वह किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाता है। शायद उसकी कठिनाई 'विचार' है। 'विचार' और 'कठिनाई' दोनों समान शीघ्रतासे आ उपस्थित होते हैं। मान लीजिए कि 'विचार' के कारण वह बोलनेमें असमर्थ हुआ।

तोतलेके विकृत होते हुए अवयवोंको ध्यानसे देखिए। वह अपने होठोंको दबाता है, मुंहको मरोड़ता है तथा और भी कितने ही कष्ट सूचक इशारे करता है, जिनसे उसके सुननेवालेको उसके क्लेश और नैराश्यका पता लग जाता है।

उन विकृतियोंमें सबसे अधिक प्रकट क्या है? 'प्रयत्न'—वह बोलनेकेलिए बहुत प्रयत्न सा करता जान पड़ता है। उसके पश्चात् बहुत प्रकट विकृति कौन है? "प्रयत्नका उपयुक्त रीतिसे न किया जाना"। जब उसे अपना मुंह खुला रखना चाहिए वह उसको बन्द रखता है, और जब बन्द रखना चाहिए वह खुला रखता है।

यहां तक हमें दो बातें ज्ञात हुई हैं। प्रथम तो 'विचार' और दूसरा 'प्रयत्नका उपयुक्त रीतिसे न किया जाना'। क्या इन दोनोंमें अटूट सम्बन्ध है? आइये, हम पहले विचार करें। जब आपने चाहा था कि तोतला स्वकथित बातको फिर कहे, तो उसके चित्तमें प्रथम कौन विचार उठा था? इसका उत्तर एक दूसरे प्रश्नकी सहायतासे दीजिये। बोलनेके उचित समयपर तोतलेके चित्तमें कौन विचार सबसे पहले उठता है? "मैं क्यों नहीं बोल सकता?"—यही विचार उसे रहता है। जब किसी मनुष्यको स्वयं वह काम करना पड़ता है जिसे कर सकनेमें उसे सन्देह रहता है, तो वह क्या करता है? वह उसे करनेकेलिए प्रयत्न करता है, परन्तु उसमें सफल होनेकी आशा उसे नहीं रहती। हम देखते हैं कि तोतला स्पष्ट बोलनेके लिए इसी भांति प्रयत्न करता है। हम उसके प्रयत्नको देखते हैं और यह भी देखते हैं कि वह ठीक ढंगसे नहीं किया जा रहा है। हम यह जानते हैं कि 'असमर्थताके विचार' और 'प्रयत्न'—में न्याय-सम्बन्धी लगाव है और हमें यह भी ज्ञात है कि वे प्रयत्न जो भय भीत दशामें किए जाते हैं—उपयुक्त रीतिसे नहीं किये जाते।

कल्पना कीजिए कि तोतलापन असमर्थताके भावसे संचालित और अनुपयुक्त रीतिसे किया

हुआ प्रयत्न है। शीघ्रताके ध्यानसे ही 'विचार'का तत्व माना गया था, परन्तु उपयुक्त रीतिसे न किया हुआ प्रयत्न प्रकट था। वह प्रयत्न अधिक विश्वसनीय है परन्तु उसकी विश्वसनीयता कम विश्वसनीय 'विचार' के संयोगसे घट जाती है। फलतः वह संयोग एक अप्रमाणित कल्पना मात्र है।

जब कोई कुञ्जी तालेमें लगती है तब हम समझते हैं कि हमारी कुञ्जी ठीक है। जब कोई कल्पना हमारी आवश्यकताओंको पूर्ण करती है तो हम कहते हैं कि हमारी कल्पना ठीक है। एक तालेमें कई कुंजियां लग सकती हैं, परन्तु एक कल्पनाको इतनी आवश्यकताएं पूरी करनी पड़ती हैं कि दोहरी कल्पनाका होना ही सम्भव नहीं। विज्ञानका यह अटूट नियम है कि जो कल्पना समस्त आवश्यकताओंको पूरी करती है वह स्वीकृतकी जाय और यदि उससे अच्छी कोई दूसरी न पाई जाय अथवा दूसरीके पाई जानेकी आवश्यकता न प्रतीत हो तो वही सिद्धान्त रूपमें स्वीकृत होती है।

अब हमें जांचना है कि "तोतलापन असमर्थताके भावसे अनुपयुक्त रीतिसे किया हुआ प्रयत्न है"-इस कल्पनासे हमारी आवश्यकताएं कहां तक पूरी होती हैं।

लड़कपनमें बोलनेकी शक्ति हुए बिना तुतलानेका आरम्भ नहीं होता। उस समय इसकी मात्रा अधिक होती है और ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है वह घटती जाती है। कल्पनाके अनुसार बोलनेकी शक्ति हुए बिना तोतलापन हो नहीं सकता, क्योंकि असमर्थताके विचारोदयके पहले समर्थताका भाव होना आवश्यक है। बोलनेका आरम्भ हो जानेपर, यदि उपयुक्त रीतिका अवलम्बन न किया गया तो, शक्ति पहलेसे ही अदृढ़ रहनेके कारण, पराजित हो जायगी। परन्तु अवस्था बढ़ जानेपर बोलनेकी शक्ति दृढ़ हो जायगी और फिर वैसा न हो सकेगा।

प्रायः तुतलाना आक्षेप (बायंटे या ऐंठनके) बाद आरम्भ होता है। कल्पना के अनुसार आक्षेप जनित शारीरिक निर्बलताके कारण बच्चोंकी बातोंमें रुकावट होती है और उसके मनमें असमर्थताके भावका उदय होता है और तब वह अनुपयुक्त रीति करने लगता है। यह बात कमज़ोरीकी सभी अवस्थाओंके लिए सत्य होगी। इसी प्रकार तुतलाने और बारबार दोहरानेकी आदतसे उसके मनमें यह विचार उत्पन्न होता है कि मेरे बोलनेमें कोई ऐब है। और तब वह अनुपयुक्त रीतिसे प्रयत्न करने लगता है। संक्षेपमें, तुतलानेके समस्त कारणोंकी जांच करनेसे कल्पना ठीक जान पड़ती है, और ऐसी कोई कल्पना नहीं है जिसके विषयमें यही बात कही जा सकती हो।

यदि तुतलानेवाला एकान्तमें हो तो उसके तुतलानेका सर्वथा अभाव तक हो सकता है। इस कल्पनाके अनुसार वैसी अवस्थामें असमर्थताके भावका उदय उसके हृदयमें नहीं होगा, क्योंकि तब तो उसे विश्वास रहेगा कि चाहे मैं बोलूं चाहे न बोलूं कोई हर्ज नहीं है। इसी प्रकार तोतली लड़की भी अपनी गुड़ियासे अच्छी तरह बोलती है। तोतला उस बातको जिसे वह जानता है कि आप समझते हैं भले प्रकार कह सकता है।

तुतलानेमें जितनी विशेष बातें हो सकती हैं उन सबकेलिए यह कल्पना ठीक उतरेगी। फलतः यह कल्पना कि "तुतलानेका कारण असमर्थताके भावसे उत्तेजित, अनुपयुक्त रीतिपर अवलम्बित प्रयत्न है"-अब तक जितनी कल्पनाएं की गई हैं उन सबमें अत्यन्त विश्वसनीय है और सभी भ्रमोंको दूर करनेमें सबसे अधिक सहायक है।

कल्पनाका प्रयोग करनेसे जान पड़ता है कि तुतलाना केवल एक आदत है और यदि इसे छुड़ानेका प्रयत्न किया जाय तो यह भी और आदतोंकी तरह छूट सकती है। यह छूतकी बीमारियोंकी तरह देखा देखी फलती है। यदि तुतलानेवालेको स्वतंत्रतासे बोलनेका अधिक अवसर

दिया जाय तो भी यह यह आदत छूट सकती है, परन्तु इसमें चातुर्य्यकी आवश्यकता है। *

—भवानी प्रसाद, बी. ए.

जीवन संग्राम

[ले० श्रीयुत प्रोफ़ेसर लज्जाशंकर झा]

आजकल यूरोप महाद्वीपकी शक्तियोंको आपसमें लड़ते देख विचारवान पुरुषोंके मनमें अनेक प्रश्न उठते हैं, जिनमेंसे एक यह भी है कि क्या मनुष्यके ही भाग्यमें एक दूसरेको दबाना और नाश करना बदा है? यदि प्रकृतिका बारीकीसे अवलोकन किया जावे, तो मालूम होगा कि इस पृथ्वीपर रात दिन प्रत्येक जीवको जीवन-संग्राम करना पड़ता है और यहां अपना निर्वाह वही कर सकता है जो इस संग्राममें जय पाता है। मनुष्य, प्राणियों तथा वनस्पतियोंको अपने पेट भरने, और अपनी रक्षा करनेकेलिए अन्य जीवों तथा प्राकृतिक शक्तियोंका सामना करना पड़ता है। कोई अपनी बुद्धिके सहारे, कोई शारीरिक बलकी सहायतासे और कोई प्रकृतिके अनुसार अपना रहन सहन बदलकर अथवा अन्य किसी प्रकारसे युद्धमें समर्थ होता है।

इस पृथ्वीकी रचनामें कुछ ऐसी व्यवस्था ज्ञात होती है, कि प्रत्येक जीव अथवा वनस्पतिकी घातमें कोई न कोई जीव अथवा वनस्पति बैठा ही रहता है। ढोर वनस्पतियोंको खाकर जीते हैं, मांसाहारी प्राणी ढोरोंको खा जाते हैं, चिड़ियाएं कीड़े मकोड़ोंकी ताकमें रहती हैं। इस प्रकार एक वर्गके प्राणी दूसरे वर्गवालोंके शत्रु हो रहे हैं। जिसमें आत्मरक्षाका बल नहीं है, उसका नाश होता है और जो बली है वह अपनी सत्ता जमा लेता है। जिस प्रकार राजा लोग साम, दाम, दंड भेद आदि उपायोंसे अपने राज्यकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार जीवधारी भी अनेक उपायोंसे अपनी रक्षा करते हैं।

सिंह, व्याघ्र, चीते आदि हिंसक प्राणियोंका बल अधिक होता है और उनके पास दांत नख रूपी तीक्ष्ण हथियार हैं। बिल्लीके पास यह हथियार तो हैं, परन्तु बल कम है। भाग्यवश उसमें पेड़, दीवाल आदिपर चढ़नेकी योग्यता है। इसलिये वह ऐसे प्राणियोंको पकड़कर खा सकती है, जो सिंह, व्याघ्र आदिसे आसानीसे बच जाते हैं। कुत्तेके दांत और नख कम पैने होते हैं, पर उसमें सूंघनेकी शक्ति अधिक होनेके कारण वह अपनी शिकारका पीछा बहुत दूर तक कर सकता है। सिंह, व्याघ्र आदिकी घ्राणेन्द्रिय क्षीण होती है, और शिकारके ओटमें होते ही वे बेकाम हो जाते हैं। परन्तु कुत्ता कोसों तक पीछा करता जा सकता है।

इस सृष्टिकी व्यवस्था इस प्रकारकी है कि बलवान जीवोंमें कुछ न कुछ न्यूनता अवश्य ही रहती है, जिसके कारण कम बलवान जीवोंको बच कर भागनेका सुभीता हो जाता है। इसके सिवाय बलहीनोंमें कुछ न कुछ गुण ऐसे रहते हैं कि जिनकी सहायतासे वे अपनी रक्षा कर लेते है। लंगूर और बन्दर एक पेड़से दूसरेपर कूद कर दुश्मनसे पीछा छुड़ाते हैं, हिरन तेज़ीसे भाग और उछल कूदकर बच जाते हैं, भैंसोंमें, आपत्ति आनेपर चक्रव्यूह रचकर एक दूसरे की सहायतासे शत्रुका सामना करनेकी शक्ति है। बकरी गाय ऊंट आदिसे कुछ नहीं बन सकता, तो वे मनुष्यके सहयोगी हो उसकी रक्षाके पात्र बन जाते हैं। चिऊंटियों, बरैय्यों और मधुमक्षिकाओंके पास मुख वा डंक रूपी तलवारें अवश्य हैं, पर अधिक कामकी नहीं। यदि वे अपना जीवन सुख पूर्वक व्यतीत कर लेते हैं तो उसका कारण यही है कि उनकी बुद्धि शरीरके प्रमाणसे बहुत ही प्रबल है। वे अग्रसोची होती हैं और परस्पर सहायता

[* अर्नेस्ट टोम्पकिन्स के एक लेखका अनुवाद]

Zoology प्राणि शास्त्र]

निष्कपट मनसे देती हैं। मनुष्यकी देह किसीको हानि पहुँचाने अथवा अपनी रक्षा करनेके लिये प्रायः अक्षम है। यदि एक काला चींटा भी बिगड़ कर काटने दौड़े तो उसे पीछे हटना पडता है। परन्तु उसमें बुद्धिका ज़ोर इतना ज़्यादा है, कि वह सिंह हाथी सरीखे सक्षम प्राणियोंको वशमें कर लेता है।

वनस्पतियोंमें भी जीवन-संग्रामकी होड़ा होड़ जारी है। उनमें बहुत कम ऐसी हैं, जो दूसरे जीवोंकी घातमें रहती हैं। हाँ, दो चार प्रकारकी वनस्पतियाँ ऐसी होती हैं, जो कीड़ों मकोड़ोंको पत्तोंमें कैद कर हज़म कर जाती हैं। परन्तु उनका सारा प्रयत्न पशु पक्षियों, कीड़ों मकोड़ों-आदिसे बचनेका होता है। इतना ही नहीं वरन् उन्हें आपसमें भी युद्ध करना होता है। ज़बरदस्त पेड़ जैसे पीपल बड़ आदि, धरतीके भीतर गहरी जड़ें ले जाकर खाद्य और पानी चूस लेते हैं, जिस कारण आस पासके निर्बल पौदे भूखे प्यासे मर जाते हैं। यही कारण है कि उनके पास घास पात तक नहीं टिकने पाती। बगीचोंमें जो पेड़ लगाये जाते हैं, वे बहुधा कोमल प्रकृतिके होते हैं, माली कृत्रिम सहायता देकर और खुरपी फ़ावड़े की सहायतासे बलवान वनस्पतियोंको निकाल बाहिर कर और उनकी शत्रुओंसे रक्षा कर उन्हें पनपाता है। परंतु इस सहायताका दुष्परिणाम यह होता है, कि वे जीवन-युद्धमें टिकने योग्य और भी कम हो जाते हैं। जब तक मालीरामकी सहायता मिली कारखाना ठीक चलता रहा, पर ज्योंही उसकी मदद बन्द हुई सूक्ष्म वनस्पतियोंने निर्बल पौदोंको मार मिटानेका प्रबल उद्योग शुरू किया। घासके बीचमें यदि अन्य किसी वनस्पतिका बीज पड़ जावे तो आत्मरक्षाकेलिए वह भरपूर उस बीजके नाश करनेकी कोशिश करेगी, क्योंकि वह जानती है कि यदि उसका पेड़ बढ़ गया तो अपनी छाया डालकर धूप रोक लेगा और गहरी जड़ें डाल आसपासका पानी खींच लेगा। यही कारण है कि जिस जगह घास पात अधिक होती हैं, वहां अन्य वनस्पति पनपने नहीं पाती।

यह तो घास और अन्य वनस्पतियोंका झगड़ा हुआ। अब यह देखना चाहिये कि उनका आपसमें व्यवहार कैसा होता है। वहां भी वही कुटिल नीति देखनेमें आती है, 'मरेंगे मारेंगे, अपने जीते जी दूसरेका पाया न जमने देंगे'। जब युरोपनिवासी अमेरिका गये तो वे लोग एक एक करके कोई सवासौ प्रकारकी घासोंको युरोपसे ले गये और उन्होंने वहां कृत्रिम सहायता देकर उन्हें लगा दिया। उस देशकी प्राचीन घासोंको मुश्किल पड़ गई और उन्हें बरसों युद्ध करना पड़ा। जिस तरह युरोपसे गये हुए मनुष्योंने वहांके आदिम निवासियोंको मार ढकेल कर प्रायः नष्ट कर दिया है, उसी प्रकार युरोपसे लाई हुई घासोंने भी वनस्पतिसंसारमें जय पाकर वहांकी असली घासोंको जड़मूलसे निकाल दिया है और सारे अमेरिकामें अब केवल युरोपीय घास ही मिलती हैं। इसी तरह कोई ढाई सौ प्रकारकी घासें युरोपसे लेजा कर न्यूज़ीलेण्ड द्वीपमें लगाई गईं। नतीजा यह हुआ कि उस द्वीपकी आदिम घासोंका अब नाम-निशानतक नहीं रहा। असली घासोंमें सक्षमता कम थी, सो अपने घरमें भी पड़े रहनेको जगह न मिली! जीवन-संग्राममें अक्षय प्राणियों तथा वनस्पतियोंका गुज़ारा नहीं। उन्हें संसारभरमें रहनेको ठौर नहीं। सार यही है कि यदि इस पृथ्वीपर कोई रहना चाहता है तो वह सक्षम बने, नहीं तो उसकी ख़ैरियत नहीं।

इसी सबबसे स्थानिक पौदे परदेशी पौदोंको ईर्षासे देखते हैं। वे जानते हैं कि यदि परदेशियोंका पाँव जम गया तो न जाने आगे क्या उपद्रव खड़े हो जायँगे। आलूका पौदा कुछ सुकुमार नहीं है। उसके एकही फलमें अनेक अंकुरोंके द्वारा संतति बढ़ानेका प्रयत्न किया जाता है। परन्तु यह परदेशी पौदा है। उसका बीज अमेरिकासे हिन्दुस्तानमें लाया गया था। यहाँ की वनस्पतियों-

की उसके ऊपर कुदृष्टि रहती है। इस कारण उनके उद्योगसे अभी तक उसका पैर जमने नहीं पाया। वह बिना कृत्रिम सहायताके अभीतक ज़ोर नहीं पकड़ पाता। उसका फल हर फसलके बाद छोटा छोटा होता जाता है और बड़े आलू उत्पन्न करनेकेलिए दूरदेशोंसे नया बीज मँगाना पढ़ता है। परन्तु जो बीज अन्य देशोंमें आध सेर तीन पावका एक आलू उत्पन्न कर सकता है, वही इस देशमें छटाँक भरका भी आलू उत्पन्न कर दे तो गनीमत है। जीवन-संग्राममें अभी आलू-को पूर्णरूपसे जय नहीं मिली। परन्तु अमेरिका-से लाया हुआ एक दूसरा पौदा है, जिसने पूर्ण रूपसे जय पा ली है। अमरूदका पेड़ इस देशमें अमेरिकासे लाया गया था। परन्तु वह ग़ज़बका पेड़ है। उसे गर्मी, सर्दी, सूखा, गीला सब वर्दाश्त हैं, जहां उसे उचित धरती मिली कि उसने अपना पैर जमाया और अन्य वनस्पतियोंसे जय प्राप्त की। इसी कारण थोड़े ही दिनोंमें वह सारे हिन्दु-स्थानमें फैल गया है और भविष्यमें और भी शीघ्रतासे फैलेगा।

उपरोक्त उदाहरणोंसे यह ज्ञात होता है कि वनस्पतियोंमें परस्पर किस प्रकारका संग्राम चल रहा है। अब ज़रा यह देखना चाहिये कि वे पशु-पक्षियों तथा कीड़ोंसे अपनी रक्षा किस प्रकार करनेका प्रयत्न करते हैं। किसी किसीके पास काँटे-रूपी तलवारें रहती हैं—नागफणी, बबूल आदिकी तलवारें तीक्ष्ण होनेके कारण ढोर उन्हें छेड़ते नहीं। किसी किसीकी तलवारें कम पैनी परन्तु फिर भी उपयोगी रहती हैं जैसे कि बेर, निम्बू, गुलाब, भटे आदिमें और ये भी काँटोंकी सहायतासे ढोरोंको छड़काये रहते हैं। अन्य कई पौदोंमें या तो विकारी दूध रहता है (जैसे अकौवेमें), अथवा उनके पत्ते ऐसे कड़वे होते हैं कि जिन्हें एकबार चखकर ढोर फिर दूरसे ही प्रणाम करते हैं। घासमें इस प्रकार बचनेका कोई उपाय नहीं,इसलिये ढोर उसे आनन्दसे खाकर अपने पेट भरते हैं। यदि सजीवतारूपी उसमें भारी गुण न होता तो वह न जाने कबकी नष्ट हो गई होती। उसके नाम मात्रको पानी चाहिये और फिर उसे सिर उठाते देर नहीं। उसकी जड़ें ऐसी बलवान होती हैं कि खाने काटनेके दो चार दिन पीछे वह फिर उग आती है।

फिर भी यह कहना पड़ता है कि जीवन-संग्राममें वनस्पतियोंको किसी न किसी प्राणीका भक्ष्य बनना पड़ता ही है। यदि पशुओंसे बचाव हो भी जावे, तो कीड़े पतंगोंसे कोई चारा ही नहीं। वे काँटोंके बीचमें घुसकर पत्तोंके खानेमें समर्थ हैं। फिर मनुष्यके हृदयमें यदि दयाका सागर उमड़ आवे और वह मांस भक्षण छोड़ दे, तो भी वनस्पतियोंपर उसका दाँत लगा ही रहेगा। वह अपनी बुद्धिके कारण नागफणीके काँटोंको निकालकर, नीमके कड़वे पत्तोंका उपयोग ढूंढ़कर अथवा अकौवेके विकारी दूधके लाभ जानकर उनको हानि पहुँचानेका प्रयत्न किया करता है। वह अन्न और फल खाकर पौदोंके बीज नष्ट करता है, भाजी तरकारी खाकर उनकी जान लेता और बीज खराब करता है। चिड़िया उनकी कलियां खराब करती हैं; छोटे छोटे कीड़े पत्तोंको खाकर उनमें छेद करते हैं और उनकी जड़ें और बीजोंको भी कुतर डालते हैं। पशु आकर पत्ते चर जाते हैं चूहे आकर बीज जड़ आदि कुतर खाते हैं। कहावत है कि, बकरेकी मा कब तक दुआ माँ-गेगी, किसी न किसी दिन उसको हलाल होना पड़ेगा। यही हाल वनस्पतियोंका भी होता है। परन्तु इनमें सजीवता अधिक है, इसी कारण उन-पर रातदिन भयंकर नादिरशाही होनेपर भी वे बची रहती हैं। फिर प्राणियोंके परस्पर संग्रामके कारण भी वनस्पतियोंको सहायता मिल जाती है। जहां उनको खानेके लिये कीड़े मकोड़े बढ़े, कि चिड़ियों का आना शुरू हुआ और एक एक चिड़िया प्रति दिन दो सौ तीन सौ कीड़े खाहा कर जाती है।

प्रकृतिकी यही महिमा है कि उसने प्रत्येक

वस्तु तोल तोल कर परस्परावलम्बनके साथ रक्खी है, और ऐसा प्रबन्ध भी कर दिया है कि जो हानि करने आता है, वह अपने भक्ष्यकी पुनरुत्पत्तिमें सहायता भी दे जाता है। ढोर यदि चरने आवेगा तो गोबर या लीद करके वनस्पतियोंको उत्तम खाद दे जावेगा। कीड़े मकोड़े आदि यदि पौधोंको हानि पहुँचाते हैं, तो उनका बीज एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाकर पुनरुत्पत्तिमें सहायता देते हैं। चिड़ियाएँ फलोंको खाकर नष्ट करती हैं, तो अनेक कीड़ोंको खाकर पेड़की रक्षा भी करती हैं। फिर जो प्राणी हिंसक है उनकी सन्तति कम होती है। जो कम बलवान हैं उनकी संतति कुछ अधिक और जो निपट निस्सहाय हैं उनकी संतति ढेर होती है। सिंहनीके बहुत समयमें और एकबार एकही बच्चा होता है। बिल्ली, कुतियाके कम समयमें कई बच्चे हो जाते हैं; बकरा बिचारा हलाल होनेको ही पैदा होता है, इसलिए उसकी संतति भी खूब बढ़ती है। यदि उससे भी कम सबल प्राणियोंको देखें तो और भी अधिक बढ़ती देखते हैं। चूहों, पक्षियोंकी बढ़तीमें कोई रुकावट न पड़े, तो उनकी संख्या बढ़ते क्या देर लगती है? फिर मच्छड़, मक्खी, कीड़ों आदि बलहीन प्राणियोंकी ओर देखिये। एक समयमें उनकी मादा तीन सौसे पाँच सौ तक अंडे रखती है! क्योंकि पैदा होनेके उपरान्त उनका नाश भी बहुत होता है।

इस प्रकार इस पृथ्वीपर जीवन-संग्राम चल रहा है, यूरोपके महासंग्रामकी अपेक्षा यह कम भीषण नहीं है। इसके अवलोकन करते रहनेसे मनुष्यको अनेक गूढ़ शिक्षाएँ मिलती हैं। यह सत्य है कि ईश्वरने सब कुछ परस्परावलम्बनके साथ बनाया है, और बलहीन प्राणियों तथा वनस्पतियोंको अधिक सजीवता देकर बचानेका भी प्रयत्न किया है। परन्तु फिर भी इस संग्रामको अवलोकन करनेसे यही उपदेश मिलता है, कि इस दुनियांमें अक्षम प्राणीका गुज़ारा नहीं है। कभी न कभी उसका या उसके वंशजोंका नाश होगा ही। ऐसा होता आया है, । अनेक प्राणियों तथा वस्पतियोंकी जाति ही नष्ट हो चुकी है और भविष्यमें होगी। मनुष्य सबसे ऊंचे दर्जेका प्राणी है, उसमें सजीवता नीच प्राणियोंके समान नहीं हो सकती। इसलिये उसे सक्षम होना चाहिये-बुद्धिसे, शरीरसे और सामाजिक व्यवस्थासे। मनुष्यकी जो जाति इस प्रकार अपनेको सक्षम न बनावेगी वह भी किसी न किसी दिन मर मिटेगी इसमें सन्देह नहीं। मनुष्य योनिकी अक्षम जातियां भूतकालमें नाशको प्राप्त हुई हैं, इस समय प्राप्त हो रही हैं और भविष्यमें प्राप्त होंगी। यदि अपने वंशजोंको इस पृथ्वीपर ठौर दिलाना चाहो तो उन्हें और अपनी जातिको सक्षम बनानेका प्रयत्न करो।

[शेष फिर]

मट्टीका तेल

(ले० "विद्यार्थी")

मट्टीका तेल अधिकांश रशिया और अमेरिकामें पाया जाता है। थोड़े परिमाणमें यह बर्म्मा, फारस इत्यादि देशोंमें भी मिल जाता है। इस तेलका जमाव अधिकतर वालुकामयी भूमिपर ही मिलता है। जिस प्रकार ज़मीन खोदते खोदते जलाशय, कुएं इत्यादि निकल आते हैं उसी प्रकार जहांपर इस तेलका जमाव रहता है वहां खोदनेसे यह भी निकल आता है। मट्टीका तेल रशिया और अमेरिकामें ही बहुत करके पाया जाता है।

अमेरिकाका तेल

पहले पहल सं १६१६ वि० में अमेरिकाके पेन्सिलवेनिया नगरमें कर्नल ड्रेकको केरोसीन तेलकी खान मिली थी। तदनन्तर ओहियो, कैलीफर्निया, कोलोरेडो, केनेडा इत्यादि स्थानोंमें भी केरोसीन तेलका जमाव पाया गया। तेलके

[Industry उद्योग]

तलके ऊपर बहुतसी जलनेवाली गैस रहती हैं। नलद्वारा भिन्न भिन्न स्थानोंपर ले जाकर अमेरिकावासी इनका रोशनीके लिए व्यवहार करते हैं। सड़ककी लालटेनोंमें भी कई नगरोंमें यही प्राकृतिक गैस जलाई जाती हैं।

असंस्कृत अर्थात् खानसे निकले हुए तेलकी सफ़ाई तेलके कुओंके पास ही नहीं होती, कारण वहां सफाईका कारखाना होनेसे तेलको देशान्तर भेजनेकेलिए समुद्र तटपर उसे ले जाना होगा और इस कार्यमें रेल इत्यादिका प्रवन्ध करना होगा। अतएव तेलके जमावके स्थानसे बड़े बड़े नल लगा दिये जाते हैं। इनका व्यास दोसे तीनफुट तक होता है। वे रेलकी लैनके समान बड़ी बड़ी दूर तक लगा दिये जाते हैं। कहीं कहीं तो तीन तीन सौ मील लम्बे नल लगाने पड़ते हैं। पम्प द्वारा तेल इन नलोंमें पहुंचाया जाता है और उनमें होकर समुद्रतटतक पहुंचता है। इस असंस्कृत तेलमें मैलके सिवा अनेक उपयोगी वस्तुएँ भी रहती हैं। अतएव उनका निकाल लेना अत्यन्त आवश्यक और लाभदायक है। खानसे निकाला हुआ तेल बड़े बड़े लोहेकी देगोंमें रखा जाता है और राशिनिष्कर्षण* की क्रिया आरम्भ की जाती है।

* राशिनिष्कर्षण (Fractional distillation) दो मिले हुए तरल पदार्थ, जिनका रासायनिक संयोग न हुआ हो, इसी क्रियासे अलग किये जा सकते हैं। इस क्रिया द्वारा तरल पदार्थोंके पृथक् होनेका कारण यह है कि भिन्न भिन्न तरल पदार्थ भिन्न भिन्न तापक्रमों (Temperature)पर उबल कर वाष्प हो जाते हैं। जैसे मान लीजिए कि हमें मदिरा और जलके मिश्रण से मदिरा और जलको पृथक् पृथक् करना है। इस कार्य्यकेलिए मिश्रणको देगमें रखकर गरम करना चाहिये। जब प्रायः ७८° डिगरी (Centigrade) का तापक्रम होगा तो मदिराकी वाष्प बनने लगेगी जो भभकेमें ठंडी होकर द्रवरूपमें परिणित हो जायगी।

इस प्रकार भभकेसे अधिकांश मदिरा कुछ पानीसे मिली हुई निकलेगी। तिर्यक् पातित मदिराका फिरसे कई बार तिर्यक् पातन करनेसे शुद्ध मदिरा प्राप्त कर सकते हैं।

रशियाका तेल

रशियामें कैसपियन सी तटस्थ अपसेरन नामक प्रायद्वीपके बाकू नामक नगरमें तथा उसके निकटस्थ स्थानोंमें केरोसीन तेलकी खान हैं। यहांका तेल अमेरिकाके तेलसे भिन्न है। यहां तेल बड़े दबावके नीचे रहता है। अतएव खोदते खोदते कभी कभी तेल फौहारेके रूपमें बहुत ऊंचा उठ जाता है। एक दफेकी बात है कि द्रुजबा केरोसीन कूपसे तेल चार महीनेतक दो तीन सौ फुटकी उँचाईतक उठकर चारों ओर गिरता रहा। इससे प्रायः २,५०,०००० अढ़ाई करोड़ कन्टर* तेलकी हानि हुई। यहांके असंस्कृत तेलमेंसे ३० फी सदी केरोसीन तेल निकलता है। असंस्कृत तेल उसी प्रकार साफ किया जाता है, जैसे कि अमेरिकामें। यहां वर्ष भरमें ५६,२५,००००० कन्टर तेल निकलता है।

केरोसीन तेल कर्बन तथा उज्जनके यौगिकोंका (Compounds) मिश्रण है। इनको मोम (Paraffins पैराफिंस) कहते हैं। इनकी एक अलग श्रेणी है। इस श्रेणीके यौगिकोंके अणुओंमें जितने कर्बनके परमाणु रहते हैं उनके द्विगुनसे दो अधिक परमाणु उज्जनके रहते हैं। जैसे किसी पेराफीन श्रेणीके यौगिकमें यदि ४ कर्बनके परमाणु हैं तो उसमें २×४+२ अर्थात् १० उज्जनके परमाणु होंगे और उनका सूत्र $क_४ उ_{१०}$ ($C_4 H_{10}$) होगा। इस श्रेणीके जिन सम्मेलनों में ४ या ४ से अधिक कर्बन परमाणु होते हैं वे साधारण तापमें वाष्परूप होते हैं। केरोसीन तेलमें १० कर्बन-परमाणु वाले यौगिकों से १६ कर्बन परमाणु वाले यौगिक तक पाये जाते हैं। यदि जलका गुरुत्व १ माना जाय तो केरोसीन तेलका गुरुत्व लगभग ·८ के होगा। रशियाके तेलका गुरुत्व ·८२ होता है, कारण उसमें दूसरी श्रेणीके

* एक कन्टरमें चार गैलन तेल रहता है।

यौगिक भी रहते हैं। केरोसीन तेल लगभग २००°–२५०°श पर उबलता है।

वैज्ञानिकोंका मत है कि केरोसीन तेलकी उत्पत्ति भूगर्भस्थित लोह कर्बिद Iron Carbide पर जलवाष्पकी रासायनिक क्रिया द्वारा होती है। प्रमाण स्वरूप उनका कहना है कि यदि हम स्फट कर्बिद Carbide पर जल छोड़ें तो पेराफीन श्रेणीके यौगिकोंकी उत्पत्ति होगी। किसी किसीका मत है कि जल जन्तुओंके देहावशेषका भूगर्भकी उष्णता और दबावके कारण विच्छेद decomposition हो जाता है और उनसे पेराफीन श्रेणीके यौगिकोंकी उत्पत्ति होती है जिनसे केरोसीन तेल बनता है। अतएव परीक्षाके लिए एन्जलर Engler ने मछलीको चर्बीको दबावमें रखकर गरम किया और पेराफीन श्रेणीके यौगिक बनाये।

विकाशवाद

२. व्यवच्छेद विद्याकी साक्षी

[ले० प्रो० करमनारायण, एम. एस-सी.]

प्राणिशास्त्रमें जन्तुओंका श्रेणीकरण (जमाइतबन्दी–Classification) उनकेपरस्पर संबन्धके अनुसार किया जाता है। जिन जन्तुओंका संबन्ध बहुत निकट होता है उनको एक श्रेणीमें रखा जाता है और इस प्रकार संबन्धोंके अनुसार जन्तुओंकी कई श्रेणियां बनाई जाती हैं। यह संबन्ध सदा जन्तुओंके देहकी बनावटसे जांचे जाते हैं, अङ्गोंकी वृत्तिसे नहीं। जैसे चमगादड़के यद्यपि पंख भी होते हैं और उनके द्वारा वायुमण्डलमें पक्षियोंकी नाईं उड़ता भी है तो भी इसको हम पक्षियोंमें नहीं गिनते परन्तु दूध पिलानेवाले जन्तुओंमें शामिल करते हैं। कारण यह है कि जब इसके शरीरको चीर कर इसके पिंजर पेट, दिल, नाड़ियों तथा अन्य अवयवोंकी परीक्षा करते हैं तो देखते हैं कि शरीरकी अन्दरूनी बनावट पक्षियोंसे बिलकुल नहीं मिलती पर दूधपिलानेवाले जन्तुओंके सर्वथा सदृश होती है। देहकी बनावटमें सदृशता होनेका अर्थ यह है कि चमगादड़का संबन्ध दूध पिलानेवाले जन्तुओंके साथ है और इसीलिए उनकी श्रेणीमें शामिल किया जाता है। इसी प्रकार व्हेल (whale) यद्यपि वाह्य स्वरूपमें और रहने सहनेको रीतिमें मछलियोंसे मिलती जुलती है पर-

Evolution विकाशवाद]

चित्र ८–कंगारू (Kangaroo)

न्तु देहकी असली बनावटके अनुसार दूध पिलानेवाला जन्तु है। अतएव उन्हींमें गिना जाता है। चमगादड़ और व्हेल दोनोंके स्तन होते हैं और दोनों ही अपने बच्चोंको दूध पिला कर पालते हैं।

व्हेल और चमगादड़ जैसे उदाहरण छोड़कर भी यदि हम बाकी सब दूध पिलानेवाले जन्तुओंकी ओर दृष्टि डालें तो विदित होगा कि इनके वाह्य स्वरूप और स्वभावमें बहुत भेद है। यथा कंगारू का (Kangaroo) रूप जैसे चित्र ८ दिखलाया हुआ है कुत्ते, बिल्ली या घोड़के रूपसे सर्वथा भिन्न है। सिर इसका बहुत छोटा है। पूंछ बहुत लम्बी और मोटी है और पिछली टांगेंभी बहुत बड़ी और बलवान हैं। जब कंगारू बैठता हैजैसे चित्रमें दिखाया गया है तो देहका सारा बोझ दो टांगों और पूंछकी तिपाईपर (Tripod) पड़ता है। टांगोंकी अपेक्षा भुजाएं बहुत छोटी और निर्बल हैं और इसलिए यह जन्तु और दूध पिलानेवाले जन्तुओंकी नाईं चारों पैरोंपर नहीं चल सकता, परन्तु पिछली दो टांगोंसे ही छलांगें लगाकर चलता है और भुजाएं केवल वस्तुओंको पकड़नेमें ही काम आती हैं। यह बच्चोंको थैलीमें रखता है। थैलीके अन्दर स्तन लगे हुए होते हैं और वहां ही बच्चा पलता रहता है। कंगारू आस्ट्रेलियामें (Australia) पाया जाता है।

कंगारू जैसे स्थलचरको छोड़कर चित्र ९ में एक जलमें रहनेवाला स्तनपायी (Mammal) दिखलाया गया है जिसको उरका (Orca) कहते हैं। पाठकगण इसे देखकर कदाचित् हैरान होंगे कि यह किस प्रकारका दूध पिलानेवाला जन्तु है जो वाह्य स्वरूपमें बिलकुल मछली सा प्रतीत होता है। भुजा मछलीके परोंके सदृश हैं और पूंछ भी बिलकुल मछलीकी सी है। पीठपर भी मछलियोंकासा पर विद्यमान है। परन्तु व्यवच्छेदविद्याके वेत्ताओंने वाह्य स्वरूपपर न जाकर इसे चीर फाड़कर देखा और मालूम किया कि मछलीके भेस (वेष) में इस जन्तुकी असली बनावट दूध पिलानेवाले जन्तुओंकी सी है। पिंजरमें खोपड़ी और अन्य हड्डियों और उदरमें दिल,पेट इत्यादि सब स्तनपायिओं जैसे हैं। इसके स्तन भी होते हैं और बच्चोंको दूध पिलाता है, इस लिए वह खरा खासा दूधपिलानेवाला जन्तु है। चित्र नम्बर १० में वृक्षोंपर रहने वाला गेलियोपिथिकस (Galeopithecus) दिखाया गया है। वृक्षोंकी शाखाओंको पकड़नेकेलिए इसके पंजोंपर बड़े बड़े नख होते हैं। शरीरके दोनों ओर दाएं और बाएं चमड़ेके पंख लगे होते हैं और इनके द्वारा एक शाखासे दूसरी शाखापर या एक वृक्ष-

चित्र ९—उरका (Orca)
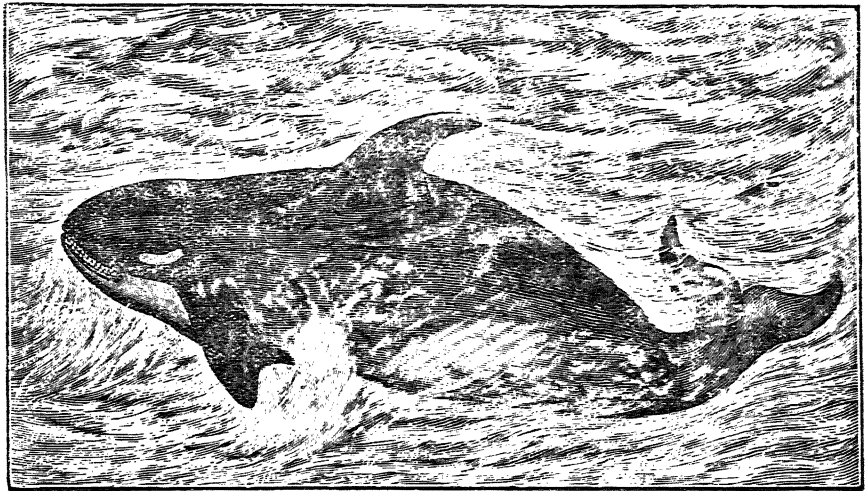
से दूसरे वृक्षपर उड़कर जा सकता है। पूंछकी दोनों ओर भी पंख विद्यमान हैं। यह भी एक दूध पिलानेवाला जन्तु है और वृक्षोंपर रहकर कीड़े मकोड़ोंपर निर्वाह करता है।

चमगादड़, व्हेल, कंगारू, उरका और गेलियोपिथिकस पांच दूधपिलानेवाले जन्तुओंका हमने ऊपर वर्णन किया है और बतलाया है कि इनके वाह्य स्वरूपमें बहुत भेद होते हुए भी इनकी असली बनावटका नमूना एकही है और बनावटमें सदृशता होनेके कारण ही यह सब संबन्धी हैं। संबन्धका अर्थ साफ़ तौरपर यह है कि यह भिन्न भिन्न प्रकारके दूधपिलानेवाले जन्तु एकही पूर्वजोंकी संतान हैं और यही विकाशवादका प्रधान मन्तव्य है। इन सबके वाह्य स्वरूपमें भेद होनेका कारण यह है कि इनके बाप दादा स्थलपर रहनेवाले जन्तु थे परन्तु उनकी संतानमेंसे कई पानीमें रहने लग गए और इसलिए उनको अपने शरीरको जलजीवनके अनुकूल बनाना पड़ा और मछलियोंकासा रूप धारण कर लिया। कई वायुमण्डलमें उड़ने लगे और उनके पक्षियोंकेसे पंख बन गए। अर्थात् भिन्न भिन्न प्रतिवेश (Surroundings) के होनेके कारण भिन्न भिन्न स्वभाव बना लिये और भिन्न भिन्न स्वभावोंके कारण भिन्न भिन्न रूप विकसित हो गए। परन्तु बाप दादाकी यादगार अर्थात् बनावटका नमूना अबतक भी सबमें एकही है और वह बड़े ज़ोरसे इस बातकी साक्षी देता है कि यह सब जन्तु संबन्धी हैं और एकही पूर्वजोंकी संतान हैं।

हम वर्णन कर चुके हैं कि पक्षी रींगनेवाले जन्तुओंकी संतान हैं। भूस्तरशास्त्रकी साक्षीको छोड़कर व्यवच्छेद विद्याके पास भी बहुत प्रमाण हैं। रींगनेवाले जन्तुओंकी खालपर वैसेही छिलके* (Scales) होते हैं जैसे पक्षियोंकी टांगों और पांवोंपर होते हैं। साधारण कुक्कटकी टांगों और पांवोंपर लाल लाल छिलके होते हैं। खोपड़ीमें कई हड्डियोंकी बनावट दोनों श्रेणियोंके जन्तुओंमें एक जैसी है। पक्षियों और उरगों दोनोंके निचले जबड़ोंमें छः हड्डियां होती हैं परन्तु किसी अन्य जन्तुके निचले जबड़ेमें इस प्रकार छः हड्डियां नहीं होतीं। दोनों श्रेणियोंके जन्तुओंमें पावोंकी हड्डियोंकी संख्या एकही है। पक्षियोंके दिलमें घड़ियाल या मगरके दिलकी नाई चार ख़ाने होते हैं और इसी प्रकार पक्षियों और उरगोंके अन्य अवयवोंमें भी सदृशता है, जिससे विदित होता है कि पक्षी रींगनेवाले जन्तुओंके निकट संबन्धी हैं।

समभूलकता (Homology)—प्राणिशास्त्रमें रीढ़वाले सब जन्तुओंको एक विभाग गिना जाता है और यह भी माना जाता है कि यह सब एकही पूर्वजोंकी सन्तान हैं। इन रीढ़वाले जन्तुओंके अवयव यद्यपि वाह्य स्वरूपमें सदृश नहीं होते परन्तु बनावट और परिवृद्धिमें सर्वथा सदृश हैं। मनुष्य तथा कुत्तेकी भुजा चमगादड़ तथा पक्षियोंके पङ्ख, व्हेलकी क्षेपणियां तथा घोड़ेकी टांग, यह सबके सब अंग स्वरूपमें भिन्न हैं परन्तु सममूलक (Homologous organs) हैं। इन सबमें एकही प्रकारकी हड्डियां हैं और एकही ढंगसे जड़ी हुई हैं। सबमें पट्ठे, ज्ञानतंतु (Nerves) तथा नाड़ियें एकही प्रकारकी हैं। पाठकगण पूछेंगे कि इस सादृश्यका क्या अर्थ है। सादृश्यका कारण केवल संबन्ध अर्थात् प्रत्यासन्नता है और इन जन्तुओंमें सम्बन्ध यही है कि यह एकही पूर्वजोंकी संतान हैं। आरम्भमें इन अंगोंमें कोई भेद नहीं था परन्तु पीछे इनकी वृत्तियों तथा स्वभावके बदलनेसे इनमें विकार हो गये हैं। बनावटका असली नमूना (Essential type) सबमें अब तक भी एकही है यद्यपि उसपर भिन्न भिन्न प्रकारके रङ्ग चढ़ गए हैं।

अवशिष्ट अवयव (Vestigial structures)—वनस्प-

*सांपकी खलड़ी (कूंज) केवल छिलकोंकी ही बनी हुई होती है। समय समय पर पुराने छिलकों की खलड़ी उतर जाने पर और नयी उत्पन्न हो जाती है।

तियों तथा जन्तुओंके शरीरोंमें हमें कई अवयव ऐसे मिलते हैं जो केवल चिन्हमात्र और निरर्थक हैं, परन्तु यही अवयव उनके सम्बन्धी वनस्पतियों और जन्तुओंमें बहुत बढ़े हुए और लाभदायक होते हैं। हमारा अपना शरीर इस प्रकारके अवशिष्ट अवयवोंका सचमुच एक अजायबघर है। इन अवयवोंमेंसे कई तो केवल गर्भमें ही पाए जाते हैं और पीछे लुप्त हो जाते हैं, क्योंकि यह बहुत पुराने पूर्वजोंके विरसे हैं परन्तु यहां हम उन अवयवोंका वर्णन करेंगे जो अभी नए ही हैं और जिनके अवशिष्टांश गर्भमें ही नहीं परन्तु युवक मनुष्यमें भी पाये जाते हैं: –

(१) मछलियोंसे लेकर दूध पिलानेवाले जन्तुओंतक सब प्राणियोंकी आंखोंमें ऊपर और नीचेके पलकोंके अतिरिक्त एक तीसरा पलक होता है जो पक्षियोंमें तथा मेंडकादि जन्तुओंमें आंखके कौर्नियाके (Cornea) ऊपर आ जा सकता है और इस तरह आंखको बाहरसे साफ़ रखता है। उल्लू जैसे पक्षीमें यह पलक बहुत बढ़ा हुआ है और कौर्नियाको बिलकुल ढांप लेता है, परन्तु बन्दर तथा मनुष्यमें यह तीसरा पलक सर्वथा छोटा होता है और इसीलिए व्यर्थ होता है। उसका घटते घटते केवल चिन्हमात्र रह गया है।

(२) हम देखते हैं कि घोड़ा, हाथी तथा अन्य जन्तु कुछ पट्ठोंके द्वारा अपने बाह्य कानोंको हिलाडुला सकते हैं और आगे पीछे भी मोड़ सकते हैं। इन जन्तुओंमें कानोंके यह पट्ठे बहुत बलवान होते हैं और उनका परिमाण भी बड़ा होता है। मनुष्य तथा मनुष्यरूपी बन्दरोंमें यही पट्ठे बहुत घट गए हैं और निर्बल भी हो गए हैं, क्योंकि मनुष्य अपने कानोंको मोड़ने अथवा हिलानेमें इन्हें कभी काममें नहीं लाता। इसलिए हमारे कानोंके पट्ठे भी अवशिष्ट अवयवोंमेंसे हैं।

बहुतसे चौपाये यथा गाय, भैंस, घोड़ा इत्यादि कुछ पट्ठोंके द्वारा जो उनके चमड़ेके नीचे होते हैं मक्खियोंको उड़ानेकेलिए अपनी खालको हिला सकते हैं। मनुष्यकी खालके नीचे भी ऐसे पट्ठोंके निशान बाकी हैं, परन्तु यह पट्ठे बहुत छोटे और निकम्मे हो गए हैं क्योंकि मनुष्य खालको नहीं हिलाता। केवल माथेके पट्ठे ही बढ़े हुए

चित्र १०—गैलियो पिथिकस (Galeopithecus)

हैं और काम करते हैं और इन्हींके द्वारा मनुष्य माथेपर त्यौरी चढ़ा लेता है।

(३) मनुष्यकी आंतोंमेंसे एक छोटीसी उपाहित आंत (accessory intestine) निकली हुई होती है जिसे प्राणिशास्त्रमें वर्मीफ़ार्म अपैण्डिक्स (vermiform appendix) कहते हैं। यह घास खानेवाले जन्तुओंमें बहुत बड़ी और लम्बी होती है और उपयोगी भी होती है। मनुष्यमें यह विद्यमान तो है परन्तु बहुत छोटी और घटी हुई है और सर्वथा व्यर्थ है। यदि किसी परिवारमें एक आलसी और निकम्मा मनुष्य हो तो वह बहुधा सारे परिवारको दुःख देता है। उसी तरह यह व्यर्थ अवयव (उपाहित आंत) एक भयानक रोगको पैदा करती है जिसे अपैण्डिसाईटिस (appendicitis) कहते हैं। मनुष्यको छोड़कर अन्य जन्तुओंमें भी अवशिष्ट अवयवोंके उदाहरण बहुत हैं। व्हेल मछली (whale)की पिछली टांगें नहीं होतीं परंतु कईयोंमें टांगोंकी हड्डियों और पट्ठोंके निशान मिलते हैं। सांपोंके हाथ पांव नहीं होते परंतु बोआसांप (Boa constrictor) में पिछली टांगें होती हैं यद्यपि बहुत छोटी और घटी हुई होती हैं और ध्यानसे देखनेसे ही दिखाई देती हैं।

अब हमको यह देखना है कि इन सब अवशिष्ट अवयवोंका क्या अर्थ है। शरीरमें सब अवयव किसी न किसी प्रयोजनसे होते हैं, परंतु इन व्यर्थ अवयवोंका कोई प्रयोजन नहीं तो इनके अस्तित्वका क्या कारण है?। इस प्रश्नका उत्तर केवल यही हो सकता है कि मनुष्य उन जन्तुओं-की संतान हैं जिनमें तीसरा पलक उपयोगी था और इसीलिए बहुत बढ़ा हुआ था और अब काममें न लाए जानेके कारण बहुत घट गया है और व्यर्थ हो गया है। मनुष्यके पूर्वज अपने कानोंके पट्ठों द्वारा हिला डुला सकते थे परंतु ज्यों ज्यों हिलाने की आवश्यकता न रही यह पट्ठे घटते गए और अब सर्वथा व्यर्थ हो गए हैं। इसी प्रकार उपाहित आंत यद्यपि व्यर्थ है तौभी पूर्वजोंकी एक याद-गार है।

व्हेल मछलीको थलचर चौपायोंका संतान माना जाता है। पानीमें रहनेके कारण इसकी चार टांगोंकी आवश्यकता नहीं रही केवल अगली दो टांगें ही काममें आती हैं, इसलिए तैरनेके लिए अगली दो टांगें बहुत बढ़ गई हैं और चपटी हो गई हैं और क्षेपणियों (Flippers) का काम देती हैं। परंतु पिछली टांगे बहुत घट गई हैं और लुप्त हो रही हैं क्योंकि वह काममें नहीं आतीं और उनकी आवश्यकता नहीं है। सांप भी चार टांगों-वाली छिपकलियोंकी संतान हैं। ज्यों ज्यों छिपक-लियोंने छोटे छोटे छिद्रोंमें घुसना आरम्भ किया त्यों त्यों टांगोंकी आवश्यकता घटती गई और वह लुप्त होती गईं। बोआ सांपमें पिछली टांगोंका होना यह बतलाता है कि सांपोंके पूर्वजोंकी टांगें होती थीं। विकाशवाद यही कहता है कि सांप और छिपकलियोंको विधाताने अलग अलग उत्पन्न नहीं किया, परन्तु सांप छिपकलियों जैसे पूर्वजोंकी संतान हैं और मनुष्य भी उन पूर्वजों की संतान हैं जिनमें कानोंको हिलाने डुलानेकी शक्ति थी, आखोंमें तीसरा पलक विद्यमान था और घास खानेवाले जंतुओंकी नाईं उनमें उपाहित आंत भी विद्यमान थी।

खाद और खाद डालना

[लेखक-पथिक]

द—जो चीज़ें खेतकी पैदावारको क़ायम रखने या बढ़ानेके वास्ते खेतमें डाली जाती हैं खाद कहलाती हैं।

खाद ज़मीनमें नीचे लिखी बातोंके लिए डाला जाता है—

(१) पौदोंकी खुराक (plant food) की कमीको पूरा करनेके लिये।

Agri culture कृषि]

(२) पौदोंकी खुराकको बढ़ानेके लिये।

(३) ज़मीनकी दशा (physical condition of the soil) सुधारनेके लिये।

खाद खेतमें नत्रजन (Nitrogen), फोस्फोरिकाम्ल (phosphoric acid) और पोटाश (Potash) की कमीको पूरा करनेकेलिये डाला जाता है। यह तीन चीज़ें पौदेकी बढ़वारीकेलिए बहुत ज़रूरी हैं। खादकी उपयोगिता इन्हींकी अधिकतापर निर्भर है। इनको ऐसी दशामें होना चाहिये कि पौदोंकी खुराकके काममें शीघ्र आ जावें। पौदा अपनी खुराक, द्रव दशामें ग्रहण करता है इस लिये इन चीज़ोंको ऐसी दशामें होना चाहिये कि वे पानीमें घुल सकें।

खाद दो भांतिके होते हैं:—

(१) ऐन्द्रिक

(२) अनैन्द्रिक (Inorganic)

ऐन्द्रिक (organic) खाद वनस्पति और पशुओंके अंशसे बने होते हैं। गोबरकी खाद, भेड़ बकरियोंकी लेंड़ी, मैला, सड़ी हुई पत्ती, हरी खाद और खली, इस किस्मके खादके उदाहरण हैं।

अनैन्द्रिक (Inorganic) खाद खनिज पदार्थोंसे बने हुये होते हैं। शोरा, चिली साल्टपीटर (Chile Saltpetre) पोटासियम गन्धेत (potassium sulphate) ऐमोनियम गन्धेत (Ammonium sulphate), जिप्सम (Gpysum) नाइट्रोलियम (Nitroleum) इस किस्मके खाद हैं।

ऐन्द्रिक खाद

गोबरका खाद:-

यह खाद मवेशियोंके गोबर और पेशाबसे तैयार किया जाता है, इसमें गोशालाका कूड़ा कर्कट भी शामिल होता है।

रखनेके तरीके—(१) ढेर बनाकर रखना (heap system)

(२) मिट्टी डाल करके गोशालामें खादका ज़मा करना (box system)

(३) गढ़ेमें जमा करना (pit system)

गांवोंमें अक्सर लोग खादका ढेर लगा कर रखते हैं। इसका अधिक वर्णन करना आवश्यक नहीं। इस तरीकेसे खाद रखनेमें निम्नलिखित बुराइयां हैं।

(१) बरसातमें पानी गिरनेसे घुल जानेवाले पदार्थ खादमेंसे घुलकर निकल जाते हैं।

(२) गर्मीमें ताप-क्रम बढ़ जानेसे उड़नशील पदार्थ जैसे अमोनिया (Ammonia) उड़ जाते हैं।

(३)खाद अच्छी तरह सड़ती नहीं, जिससे कि खेतोंमें डालनेपर दीमक लग जानेका डर रहता है

(४) आस पासकी वायु बिगड़ जाती है।

दूसरे तरीकेके अनुसार खाद रख छोड़नेमें खादका कोई अंश व्यर्थ नष्ट नहीं होता। ऐसा करनेकेलिये गोशालाके फ़र्शपर मिट्टीकी तह डालते हैं जिसमें कि पेशाब वग़ैरह सोखता रहता है। जब फ़र्श काफ़ी ऊँचा हो जाता है तब मिट्टीको खोद कर खेतमें डाल देते हैं और फिर वैसाही करते हैं। इस तरीकेसे गोशालाकी वायु बिगड़ जानेका डर रहता है और खादको पूरी तौरसे सड़नेका मौक़ा भी नहीं मिलता।

तीसरा तरीक़ा सबसे अच्छा है। इसका वर्णन हम विस्तारपूर्वक करेंगे। आशा है कि पाठक इसकी ओर अधिक ध्यान देंगे।

(१) गोशाला से ५० या ६० फुट की दूरीपर गढ़े खुदवाने चाहियें। उनकी दीवालें और फ़र्श ठोंक ठोंक कर खूब दृढ़ कर देने चाहियें। यदि हो सके तो गढ़े पक्के करा दिये जायं।

(२) इन गढ़ोंके किनारे पृथ्वीकी सतहसे १ फुट ऊँचे होने चाहियें जिससे कि इधर उधरसे बरसातका पानी बहकर अन्दर न जा सके।

(३) गढ़ेके ऊपर छाया करनी चाहिये। यदि छप्पर डलवा दिया जाय तो और भी अच्छा हो। इससे बरसातका पानी गढ़ेमें न पड़ेगा और गर्मीका प्रभाव भी न पड़ेगा।

(४) गोशाला यदि पक्की हो पेशाबकी नाली गढ़े तक पक्की बनवा देनी चाहिये। गढ़े दूर हों तो गोशालाके पास एक हौज़ बना देना चाहिये जिसमें कि पेशाब जमा रहे और बादको घड़ोंके ज़रियेसे गढ़ोंमें डाल दिया जाय।

(५) पेशाब बहुत लाभकारी वस्तु है। इसे खोना न चाहिये। यदि फ़र्श पक्का हो तो मवेशियों-के नीचे पत्तियों या किसी दूसरी चीज़को बिछा देना चाहिये,जिसमें पेशाब सोखता रहे। पश्चात् इस बिछालीको खादके गढ़ेमें डाल देना चाहिये और नई बिछाली बिछा देनी चाहिये। यदि फ़र्श कच्चा है तो मिट्टीकी ऊपर तह बदलते रहना चाहिये।

(६) गर्मीके दिनोंमें गढ़ेके ऊपर पानी भी छिड़कते रहना चाहिये जिससे तापक्रम न बढ़े और अमोनिया न निकल जाने पावे।

(७) जब एक गढ़ा भर जाय तो उसे मिट्टी डलवाकर बंद कर देना चाहिये। फिर गोबर वग़ैरह दूसरे गढ़ेमें डालनी चाहिये।

आठ या नौ महीनेमें एक गढ़ेकी खाद बिलकुल सड़कर खेतमें डालने योग्य हो जायगी। पचास जानवरोंके लिए चार गढ़ोंकी आवश्य-कता होगी। हर एक गढ़ा २४×१८×६ घन फुटका होना चाहिये। यदि एक जानवर १६ सेर गोबर करे तो एक दिनमें ५० जानवर $\frac{१६\times५०}{४०}$ या २० मन गोबर एक दिनमें करेंगे और वर्ष भरमें लगभग ७३०० मन गोबर होगा। एक घन फुट-में प्रायः २४ सेर गोबर आता है तो एक गढ़ेमें $\frac{१८\times२४\times६\times२४}{४०}$ या १५५५ मन गोबर समावेगा।

इतना गोबर $\frac{१५५५}{२०}$ या ७८ दिनमें होगा। गोबर-के साथ और भी दूसरे पदार्थ होंगे। इसलिये एक गढ़ा २ मासमें भर जावेगा। इस प्रकारसे चारों गढ़े ८ मासमें भर जावेंगे। तबतक पहिले गढ़ेकी पांस खेतमें डालने योग्य हो जायगी। इस गढ़ेको खाली करके फिर हम इसमें गोबर डालना आरम्भ कर देंगे। इस प्रकार हरएक गढ़ा आठवें महीनेमें खाली होता रहेगा और किसी प्रकारकी गड़बड़ न होगी।

[शेष फिर]

३–भुनगा पुराण

[लेखक-प्रो० रामदास गौड़, एम० ए०]

कपाल खण्ड

इतनी कथा सुनाय श्रीभुनगेशजी बोले। हे मुनियो! हमने तुमको कपाल-खण्डकी परम पुनीत कथा सुनायी। इस पवित्र कथामें मूक जातियोंके महा तपस्वी श्री जुंगजी महाराजकी अद्भुत जीवनी सुनायी,जिससे तुमको भली भांति विदित हो गया होगा कि मूक देशमें इस मानवाचल महापर्व्वतको ग्रह मानते हैं। इतना ही नहीं वरन् उन्होंने अद्भुत यन्त्रोंका आविष्कार करके और गणितकी सहायतासे इस ग्रहकी गति और वेग, इसके जन्म और विकासके काल आदिका पता लगा लिया है। जुंग लोग वस्तुतः तपोधन हैं और उनके शील और सद्व्यवहारसे भुनगा-जगत्में ऐसा कोई नहीं जो सहज ही उनका अनुगामी न हो जाय।

हे भुनगानन्दनो, उस दिन श्री जुंगेशजीके पद पङ्कजको विनयपूर्वक चतुरङ्ग प्रणाम करके मैं विदा हुआ और कपालखण्डको छोड़कर उस पर्वत-शिखरके अधोभागमें जाना चाहता था। दैवयोगसे चिकुरवनको पार करते ही मैं एक ऐसे चट्टानपर पहुंचा जहांसे एक बड़ा गहरा खड्ड दिखाई पड़ता था। चट्टानसे खड्ड सीधा सपाट नीचे था। भूमि तनिक भी ढलवां न थी। चट्टानसे नीचे पैर फिसले तो लगभग तीन सौ फुटके नीचे एक नुकीले शिखरपर ही ठहरना सम्भव है। मैंने ऐसी दशामें अपने दोनों पैरोंको इसलिये फैला दिया, कि गिरनेपर चोट न लगे

Zoology प्राणि शास्त्र]

और धमसे कूद ही तो पड़ा। संयोगसे मेरे पांव उसी नुकीले शिखरपर जाकर टिक गये। मैंने ज़रा आगे चलकर झांका तो उस शिखरके नीचे यमलोककी नाईं मुंह बाये दो लम्बी चौड़ी कन्दरायें दिखाई दीं, जिनके बीचमें कोई दस गज़ चौड़ी पत्थरकी भीत भीतरतक चली गयी थी। इनमेंसे एक कन्दरामेंसे आंधीका झोका बड़े वेगसे एक बार बाहर आता था और दूसरी बार भीतर चला जाता था। इस आंधीमें अनेक प्रकारकी वस्तुएँ और जीव झोकेके वेगसे कन्दरामें कभी भीतर चले जाते थे और कभी बाहर चले आते थे। दूसरी कन्दरा शान्त थी। कुतूहल वश विशेष हाल जाननेके लिये इसी कन्दरामें मैं धीरे धीरे उतरा और कुछ भीतर जाकर चारों ओर देखने लगा। कन्दरा बाहरसे तो बहुत लम्बी चौड़ी थी परन्तु भीतरकी ओर क्रमशः छोटी होती गयी। इसकी चारों ओरकी भीत बड़े कोमल पदार्थकी बनी हुई थी और सदैव आर्द्र बनी रहती थी। इसमें बहुत नन्हे नन्हे छिद्र थे जिनमें से एक प्रकारका जल निकला करता था। इस तमाशेको देखता मैं बहुत दूर आगे बढ़ गया और ऐसे स्थानपर पहुंच गया जहां उस कन्दराका अन्त बड़े विकराल और विकट विवरमें होता था, जिसकी गहराई अनन्त थी। इस कन्दरा और उस विवरके बीचमें, जहां द्वार था वहीं, घासवाली दूसरी कन्दराका भी अन्त था। दोनोंका अन्त एक ही द्वारसे उसी विवरमें होता था। मैं इस द्वारके निकट इसी डरसे नहीं गया, कि उधरसे आंधीके झोकेमें पड़कर न जाने कहां उड़ जाऊंगा। दूरसे ही निश्चिन्त हो यह तमाशा देख रहा था, कि एका एकी मेरे दुर्भाग्यसे उस आंधीका मार्ग बदल गया और एक झोका ऐसे ज़ोरका मेरी कन्दरासे आया, कि मैं उस विवरके द्वारपर बड़े वेगसे जाकर गिरा और अचेत हो गया।

इतनी कथा सुनाय श्री भुनगेशजी बोले, हे भुनगानन्दनो मैं नहीं जानता, कि मेरे शरीरकी क्या दशा हुई। अचेत दशामें मैं कबतक और कहां था। उस प्यारे भुनगा शरीरमें मैंने कई युग बिताये थे और सहस्रों वर्ष घोर तपस्या की थी। उसी तप और योगका प्रभाव है, कि मुझे अपने पूर्वजन्मोंकी सब बातें याद हैं, और यही बात है, कि जो ज्ञान और अनुभव मैंने पूर्वजन्मोंमें प्राप्त किया था उनके उपार्जनमें अन्य प्राणियोंकी नाईं मुझे व्यर्थ समय नहीं लगाना पड़ा।

जब मैं फिर होशमें आया मैंने अपनेको एक अद्भुत शरीरमें पाया। मेरा सर बड़ा था और शरीरमें एक लम्बी पूंछके सिवा कुछ न था। मैंने देखा, कि मैं जिस जातिमें उत्पन्न हुआ हूं उस जातिके असंख्य प्राणी मेरे साथ हैं और सबके सब अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित घोर युद्ध कर रहे हैं। हमारे शत्रु भी करोड़ोंकी संख्यामें हैं जो सबके सब गौराङ्ग वा वर्ण हीन हैं और अपनी रक्षाके लिए सब तरहसे तय्यार हैं। हम लोग सबके सब काले काले काली ही वर्दी पहने हुए लड़ रहे थे। यह एक बड़ा प्रसिद्ध देवासुर संग्राम इस मानव ब्रह्मांडमें हो गया। परंतु इस प्रकारके संग्राम युग युगान्तरमें इतने बार होते हैं कि विश्वके इतिहासमें इनकी कथाका विस्तार निरर्थक जान पड़ता है। प्राणीकी शिक्षा और लाभके लिए थोड़े ही काल का इतिहास लाभकारी होता है। कारण यह है कि घटनाएँ बार बार वैसी ही होती हैं और इतिहास अपनेको दोहराया करता है। अतः पुनरुक्तिसे लाभ ही क्या? साथही साथ यह भी सच है, कि भुनगा-संसारमें ऐसे प्राचीन कालका विस्तृत इतिहास होना असम्भव है, परंतु भुनगा-वेदोंमें इसकी चर्चा कई बार आयी है और तुम लोगोंने अपने गुरुकुलमें इतिहास ग्रंथोंमें इसकी कथा पढ़ी ही होगी।

इतना सुन भुनगादि ऋषि विनीतभावसे पर जोड़ शीश नवाय बोले, हे भगवन् हम लोगोंने विद्यालयोंमें जो कुछ इतिहास पढ़ा वह अत्यन्त थोड़ा है। उससे प्राचीन कालकी वास्तविक

घटनाओंका कुछ पता नहीं लगता। हे प्रभो! जब आप स्वयं उस देशमें विद्यमान थे, जब आपने उस देशकी सभ्यताका, उस देशकी राज्य-प्रणालीका उस देशके निवासियोंका सबका भली भांति अध्ययन किया है तो आप अवश्य ही उस देशकी रहन सहन, रीति रसम, राज्य, रक्षा आदि सभी बातोंका विस्तार पूर्व्वक वर्णन कर सकेंगे। हे भगवन् आपके मुखारविन्दसे इन मनोहारिणी कथाओंको सुनकर हमारी रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है और कथामृत पान करनेको हमारा मन अधिकाधिक लालायित होता जाता है।

भुनगादि ऋषियोंकी यह विनीत प्रार्थना सुन भुनगेश्वरजी महाराज सिर ऊंचा कर हर्षसे पंख फुलाकर बोले। हे भुनगा-कुल-भूषणो! तुममें वास्तविक श्रद्धा है और कहा भी है, कि 'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्' श्रद्धावान ही ज्ञान लाभ करता है और ऋषियो तुम सुपात्र हो और विद्या सुपात्रको ही देनेसे फलवती होती है। मैं अवश्य तुमको वह कथा सुनाऊंगा।

इत्यार्षे श्री भुनगा महापुराणे कपाल-खण्डे नासा कन्द्रा वर्णनो नाम तृतीयोऽध्यायः।

नवीन रसायनी विद्याका इतिहास।

[ले० डा. बी. के. मित्र, एल. एम. एस.]

गताङ्कमें हम नवीन रसायनीविद्याकी उत्पत्तिके विषयमें स्टाल (Stahl) आदि रसायनिकोंका मत बता चुके हैं। उस समयतक युरोपकी रसायनी विद्यापर भारतीय तथा अरबीय रससिद्धोंका प्रभाव बड़ा प्रबल था। सभीने पञ्चभूतात्मक सिद्धान्तको किसी न किसी रूपमें स्वीकार किया था, पाश्चात्य वैज्ञानिक चारही महाभूत मानते थे। धातुओंको वे यौगिक समझते थे और उनकी भस्मोंको फ्लोजिस्टन (Phlogiston) रहित पदार्थ मानते थे।

Chemistry रसायन]

सन् १७३३ खृष्टाब्दमें इंगलैण्डमें लीड्स शहरके समीप किसी ग्रामके एक सामान्य परिवारमें जोज़फ प्रीसली (Joseph Priestly) नामक एक प्रतिभाशाली बालकका जन्म हुआ। बचपनमें इनकी शिक्षा हमारे स्कूल वा कालेजोंके सदृश रसशालामें नहीं हुई थी। इनको तत्कालीन धर्म-याजकों (पादरी) के उपयोगी साहित्य, व्याकरण आदिकी शिक्षा मिली थी, परंतु एक हकलानेका दोष रहनेके कारण उस कार्यमें भी इनको बहुत सफलता नहीं हुई। अतएव इनको व्याकरण आदि साहित्यिक विषयोंका आश्रय लेना पड़ा। इसीलिये इनको जीविकाकेलिए विज्ञानका एकाग्रचित्त होकर अध्ययन करनेका अवसर नहीं मिला, तथापि इनकी प्रतिभा छिपी नहीं रही।

सौभाग्यसे उस गिर्जेके पास जिसके यह पादरी थे सुरा चुआनेका कारखाना था। उसमेंसे सदाही एक वायु निकलनेके कारण प्रीस्ली साहबकी इच्छा उसके तत्वनिर्णय करनेकी ओर आकर्षित हुई। वायुओंके विषयमें इसी अनुसंधानके पीछे प्रीस्ली साहब ऐसे दत्तचित्त हुए कि उन्होंने एक एक करके कितने ही वायवीय पदार्थोंका आविष्कार करडाला। इसी लिए उनको वायवीय रसायनी विद्याका जन्मदाता कहते हैं।

यद्यपि प्रीस्ली साहबके पास आजकलकी रसशालाओंके सदृश सूक्ष्म वा जटिल यंत्र न थे,
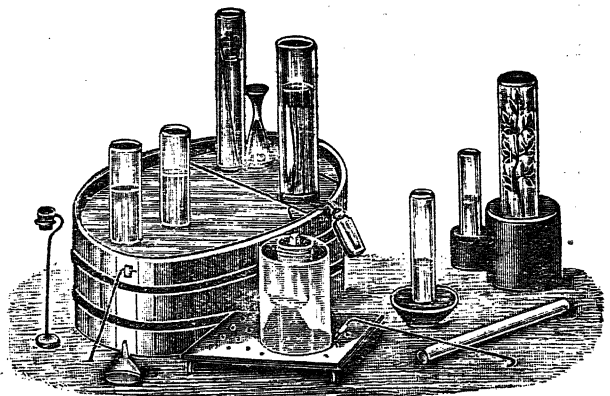
चित्र ११

तथापि "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" के अनुसार साधारण यंत्रों (यथा एक जलका पीपा, दो चार लम्बे लम्बे कांचके घट व शीशियां बोतल आदि पात्र और एक बड़ा आतशी सामान्य शीशा) के द्वारा जोकि उनके पास थे, उन्होंने वह चमत्कार कर दिखाया कि यदि उनको आधुनिक रसायनी विद्याका जन्मदाता न कहा जाय तो उत्तरसाधक तो अवश्य ही कहेंगे।

इस समय केवल उनके आविष्कृत द्रव्योंमें से एक औक्सिजन (Oxygen) वा अम्लजनका वर्णन करेंगे। उन्होंने एक प्रकारके लोहित पारद भस्म Red oxide of mercury को उत्तप्त करते समय उसमेंसे एक नवीन प्रकारका वायु निकलते देखा। अनेक परीक्षाओंके द्वारा उन्होंने उसके निम्न-लिखित गुण निश्चित किये,—(क) उसमें साधारण दाह्य पदार्थ अधिक वेगसे जलते हैं। (ख) इसमें मूषिक आदि क्षुद्रजीव साधारण वायुकी अपेक्षा अधिक कालतक जीवित रहते हैं। (ग) स्वयं उस वायुको सूंघकर उन्होंने अपने वक्षस्थलमें एक प्रकारका आनन्द अनुभव किया [घ] अन्य भस्मोंमें से यथा नागरस [मटिया-सिंदूर red lead] में से भी यह नवीन वायु निकाला जा सकता है, इत्यादि।

तत्कालीन फ्लोजिस्टन वादके अनुसार प्रीसलीने अनुमान किया कि धातुओंकी भस्म निकलनेके कारण यह फ्लोजिस्टन विहीन वायु है। दाह्य पदार्थ जैसे-मोमबत्ती, जो इस गैसमें तीव्रतासे जलते हैं उसका कारण यही है कि उसमें साधरण वायुकी अपेक्षा फ्लोजिस्टन कम है। क्या सुन्दर मीमांसा हुई !

उन्हीं दिनोंमें, बल्कि इससे कुछ पहिले युरोपके एक दूसरे देश स्वीडनमें शील (Sheele) नामके एक प्रतिभाशाली दरिद्र युवकने किसी और विधिसे अर्थात् शोरेको तपाकर इसी वायुका आविष्कार कर लिया था, परन्तु यह भी इस वायुके यथार्थ मर्मको नहीं समझ सका। इस वायुके यथार्थ मर्मको यद्यपि सम्पूर्णतासे नहीं तथापि वैज्ञानिक पद्धतिसे समझनेवाला एक और ही मनस्वी था जिसका नाम लेवोसियर Lavosier था।

सन् १७४३ खृष्टाब्दमें फ्रांस देशकी राजधानी पेरिस नगरके एक धनाढ्य कुलमें लेवोसियरका जन्म हुआ। इनके पिताने इनको उच्च शिक्षा दिलाई। वह यह चाहते थे कि उनका पुत्र वकालत करे, परंतु वकालतका पास करनेके अनन्तर प्रबल भावनाने इनको वैज्ञानिक विषयोंके अध्ययनके लिए बाध्य किया। २२ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने किसी भौतिक गवेषणाके कारण फ्रांसीसी वैज्ञानिक परिषद्की ओरसे एक स्वर्ण पदक प्राप्त किया। उस सभाकी कार्यावलीके प्रकाशनका भार इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभाके कारण इन्हींको अर्पित किया गया। फ्रांसके राष्ट्र विप्लवके समय इन्होंने अपने खर्चसे इस परिषद्को चलाया, परन्तु अधिकारियोंने उसको बन्द करा दिया। इनके पिताकी मृत्युके अनन्तर यह एक बड़ी ज़मींदारीके अधिकारी हुए। यह तन मन धनसे विज्ञान और देशकी सेवा करना चाहते थे, परन्तु सन् १७९४ में राष्ट्रविप्लवकी कठोर नियतिने इनके नश्वरदेहको घातकके हाथ समर्पण करके सारे युरोपखण्डको क्षुब्ध और लज्जित किया, तथापि इनकी अमर कीर्ति आज विद्वज्जगतमें आधुनिक रसायनी विद्याके जन्मदाता स्वरूपसे पूजित हो रही है।

जिस समय प्रीस्लीने इंगलैण्डमें लोहित पारद भस्म तपाकर इस नवीन वायुका आविष्कार किया था जिसको वह फ्लोजिस्टन विहीन वायु कहता था, उन्हीं दिनोंमें फ्रांसमें लेवोसियर वङ्ग भस्म और जस्तेके कुश्तेपर परीक्षा कर रहा था। उन्होंने देखा कि जस्ते वा कलई आदिको भस्म करनेमें उनका भार वास्तवमें घटता नहीं बल्कि बढ़ जाता है।

परीक्षाः—उन्होंने एक बड़े बकयन्त्र में retort

निर्दिष्ट परिमाण रांग लेकर उसको बालुका-यंत्रपर तपाया और जब रांग पिघल गया तथा बहुतसा वायु भी निकल गया तब यन्त्रके गलेको पिघला कर बन्द कर दिया। फिर निकले हुए वायु-का भार तथा सारे यंत्रका भार निर्णय किया। इसके पश्चात् जब मुंहबन्द यंत्रको उत्तप्त किया, तब थोड़ा सा रांगका भस्म बन गया। यंत्रको ठण्डा करनेके अनन्तर जब उन्होंने पुनर्वार तोला तो देखा कि रांग भस्म बननेपर भी न तो बोझ घटा है न बढ़ा है। इसके पश्चात् उन्होंने यन्त्र-के बन्द मुँहको जब खोला, तो देखा कि बाहरसे वायु शब्द करता हुआ यन्त्रके अन्दर घुस रहा है। इसके अनन्तर जब यन्त्रको पुनर्वार तोला तो देखा, कि वायुके प्रवेश करनेसे उसका भार कुछ बढ़ गया है। फिर यन्त्रके अन्दरका बाकी रांग और उसके भस्मको मिलाकर तोला तो देखा, कि उसका भार भी पूर्वापेक्षा अधिक निकला। अतएव इससे यह प्रमाणित होता है, कि रांगसे भस्म बनानेमें बकयन्त्रमेंसे कुछ वायुका भार रांगमें चला गया, जिससे उसका भार बढ़ गया और यन्त्रको खोलनेपर उसी स्थानमें वायु प्रवेश करनेसे यन्त्रका भार बढ़ गया। अतएव यह परिमाणात्मक परीक्षा प्राचीन फ्लोजिस्टन वादके विरुद्ध हुई इससे यह भी प्रमाणित हुआ, कि पदार्थ अविनश्वर है।

जब लेवोसियरको प्रीस्लीके आविष्कृत "फ्लाजिस्टन हीन वायुका" पता लगा, तो उन्होंने उन परीक्षाओंपर बारम्बार विचार करके देखा, कि प्रीस्लीका फ्लोजिस्टन वाद मूलक मत भ्रान्त है। उन्होंने यह अनुमान किया, कि इसी नवीन वायुसे युक्त होकर धातु भस्ममें परिणत हो जाता है। इसको सिद्ध करनेकेलिए उन्होंने निम्नलिखित ऐतिहासिक परीक्षा की।

परीक्षा—एक बकयन्त्रमें थोड़ासा पारद लेकर उस यन्त्रकी गर्दनको एक और पारद भरे हुए पात्रमें डुबो दिया और उसके मुखको एक घण्टाकार हवा भरे हुए कांचके पात्रसे ढांक दिया और बकयन्त्रको प्रायः १२ दिनतक मृदु उत्ताप दिया तो देखा, कि ज्यों ज्यों बकयन्त्रके अन्दर लोहित पारद मल जमता गया त्यों त्यों घंटाकार पात्रमें नीचेका पारद चढ़ता गया। इसका कारण यह है, कि पारद भस्म बननेमें यन्त्रस्थ वायुका एक भाग उसमें समागया जिस-से अन्दरका दवाब कम होनेसे उसमें पारद चढ़ आया। फिर जब उस घण्टाकार पात्रके वायुको परीक्षा द्वारा देखा गया। उसमें बत्ती नहीं जल सकती थी। अतएव वह साधारण वायु (हवा) से भिन्न धर्म रखता था। इस परीक्षासे निम्नलिखित बातें सिद्ध हुईं:—

(क) पारद भस्म पारद और एक अन्य वायु-का यौगिक है, जो हवामें मौजूद है।

(ख) इसी पारद भस्मको अधिक उत्तप्त कर-नेसे वह वायु (प्रीस्लीका फ्लोजिस्टन विहीन वायु) निकल जाता है, जिसमें साधारण दाह्य पदार्थ अधिक तीव्रतासे जलते हैं।

[ग] धातु भस्म देखनेमें हलकी होनेपर भी वास्तवमें मूल धातुसे भारी होता है।

[घ] प्राचीनोंका मरुत् [हवा] भी कोई मौलिक पदार्थ नहीं, बल्कि यह नवीन वायु उसका एक उपादान है। लेवोसियरने इस नवीन आवि-ष्कृत वायुपर परीक्षाओंके द्वारा देखा, कि बहुधा पदार्थ यथा गंधक फास्फौरस आदि, इसमें जल-नेके अनन्तर किसी न किसी प्रकारका 'अम्ल' उत्पन्न करते हैं, इसीलिए उन्होंने इसका नाम औक्सीजन् [अम्लजन] रक्खा। परन्तु आज-स्कूलके छात्रोंको भी मालूम है, कि सोडियम आदि कितने ही धातु औक्सिजन्से युक्त होकर अम्ल नहीं बल्कि क्षार उत्पादन करते हैं, तथापि विद्व-ज्जगतने उसी परिभाषा [औक्सीजन्] को स्वीकार किया है।

अम्लजनके इतिहाससे पाठकोंको ज्ञात होगा, कि एक एक वैज्ञानिक तथ्यके आविषकार

होनेमें कितने कितने वाद विवाद होते हैं और क्योंकर क्रमसे हम एक मतसे दूसरेपर पहुंचते हैं। मनुष्यकी प्रकृति यही है, कि वह जो जो घटनाएँ देखता है, उनके विषयमें कोई न कोई 'कल्पना' वा 'अनुमान' (hypothe sis) स्थिर कर लेता है, परन्तु यदि अन्य घटनायें वा प्रयोग उन अनुमानोंको पुष्ट करें तो हम उनको 'मत' कहते हैं और यदि और और विद्यायें भी उन मतोंकी परिपोषकता करें तो हम उनको वैज्ञानिक तथ्य कहते हैं।

हमारे देशमें भी विद्याओंकी उन्नति इसी रीतिसे हुई थी। भौतिक विषयोंमें भी ऋषियोंके बहुत मतान्तर रहते थे—'नासौमुनिर्यस्यमतं न भिन्नम्'। परन्तु आज इस देशमें जहां विज्ञानकी उत्पत्ति हुई थी, उन्हीं ऋषियोंके वंशधर, इस भ्रांत धारणाकेलिए पड़े हैं, कि सत्य विद्याएँ ब्रह्माण्डकी सृष्टिके साथ ऋषियोंको किसी ईश्वरीय उपायसे प्राप्त हुईं और वह आप्तवचन अखण्डनीय है।

जीवाणु और रोग

[ले० मुकटनारायन दर, बी. एस-सी.]

बहुत नियम पूर्वक रहनेपर भी सब लोग कभी न कभी किसी न किसी विषम रोगके कीटाणुओंका (germs) शिकार अवश्य बन जाते हैं। यहां तक देखा गया है कि प्रायः लोगोंकी खाल और गलेमें रोग पैदा करनेवाले कीटाणु हर दम पाये जाते हैं। इन कीटाणुओंमें और शरीरमें बराबर लड़ाई रहती है। कीटाणु तो शरीरपर धावा मारते हैं और उसमें घुसकर उसे खा डालनेका यत्न किया करते हैं और शरीर अपने बचावकेलिए उनके मारनेकी कोशिश किया करता है। प्रति दिवस यह लड़ाई होती रहती है। इस लेखमें यही बतानेका यत्न किया जायगा कि शरीर अपने छोटे छोटे शत्रुओंसे किस प्रकार लड़ता है।

जब रोगके जीवाणु शरीरमें घुस जाते हैं तो वे एक प्रकारका विषैला रस पैदा करते हैं जिसको टाक्सिन (Toxin) कहते हैं। यह टाक्सिन (Toxin) शरीरभरमें रक्तके द्वारा फैल जाता है और शरीरके कोषों (Cell) को विषाक्त बनाकर रोगका कारण होता है। एक छोटेसे घावमें थोड़ेसे धनुर्वात (Tetanus) के कीटाणु इतना टाक्सिन (Toxin) पैदा कर सकते हैं कि मनुष्य मर जाय।

चित्र १२—धनुर्वातके जीवाणु

यहां यह बात अच्छी तरह जान लेनी चाहिये कि रोग कीटाणुओंसे नहीं होता बल्कि इनके टाक्सिन विषसे जो इनसे निकलता है।
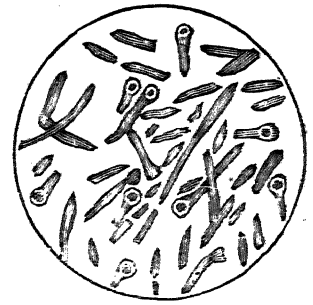
एक रीति, जिससे शरीर अपनी रक्षा करता है, यह है कि जब कीटाणु अपने विषसे शरीरका नाश करने लगते हैं तो शरीरमें एक विशेष प्रकारका रस उत्पन्न होने लगता है जिसको (Anti-toxin) प्रतिविष कहते हैं, जो कीटाणुओंको तो नहीं मारता लेकिन उनके विष (Toxin) को अवश्य नाश करता है। इस तरह शरीरके कोष, जब तक कि कीटाणु और किसी प्रकारसे मरते हैं, नाश होनेसे बच जाते हैं। भिन्न भिन्न रोगोंके भिन्न भिन्न टाक्सिन और एन्टी टाक्सिन होते हैं। अगर लोहूकी एक बूंद किसी अणुवीक्षण यंत्र (microscope) द्वारा देखी जाय तो उसमें बहुतसे कोष एक द्रव पदार्थमें बहते हुए मालूम पड़ेंगे। यह कोष दो प्रकारके हैं। उनमें बहुतसे तो देखनेमें लाल मालूम होते हैं जिनको लाल 'रक्ताणु' (Cor-

Bacteriology कीटाणुशास्त्र]

puscles) कहते हैं, इनका काम शरीरमें ओषजन पहुंचानेका है। दूसरे प्रकारके कोष (cells) श्वेत 'रक्ताणु' (Corpuscles) कहलाते हैं। यही शरीरके योद्धा हैं और इनका काम रोग-कीटाणुओंको मारना है। जब एक श्वेत 'रक्ताणु' (Corpuscle)
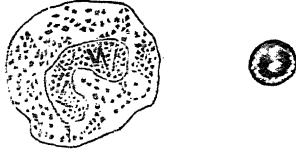
चित्र १३—श्वेत और लाल रक्ताणु

किसी कीटाणुके पास पहुंचकर उसको निगल जाता है तो इधर तो 'रक्ताणु' (Corpuscle) उसको मार कर हज़म करना चाहते हैं और उधर कीटाणु उसके अन्दर बढ़ना तथा उसे खाना चाहता है। अगर इस लड़ाईमें 'रक्त कणों' (Corpuscles) ने जय पाई तो कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और रोग बढ़ने नहीं पाता, परन्तु अगर कीटाणु अधिक तथा विशेष बलवान हुए तो 'रक्ताणु' (Corpuscles) नाश हो जाते हैं, रोग बढ़ता ही जाता है और मृत्यु हो जाती है।

इन रक्ताणुओं (Corpuscles) को छोड़ कर एक और भी शत्रुनाशक पदार्थ शरीरमें है जो कि लोहूका कीटाणु-नाशक भाग है। हर एक आरोग्य मनुष्यमें यह थोड़ा बहुत अवश्य पाया जाता है और जब कीटाणु शरीरमें घुस जाते हैं तो इसकी राशि बढ़ जाती है और कीटाणुके मारनेमें सहायक होती है।

जैसे नाना प्रकारके टाक्सिन और एन्टीटाक्सिन होते हैं उसी प्रकार शरीरमें भिन्न भिन्न रोगोंके लिए भिन्न भिन्न कीटाणु-नाशक पदार्थ पैदा होते हैं। इसीलिए यह संभव है कि एक आदमी एक प्रकारके रोग [जैसे शीतला] के कीटाणुओंको तो अच्छी तरह नाश कर दे परन्तु दूसरेका (जैसे तपेदिक) का सहजहीमें शिकार बन जाय।

कुछ रोग एक ही बार होते हैं, कारण यह है कि जब जब कीटाणु हमको सताते हैं तो शरीरमें जीवाणु-नाशक पदार्थ अधिक बनता है। इस प्रकार इसकी मात्रा बढ़ती ही जाती है और इसी
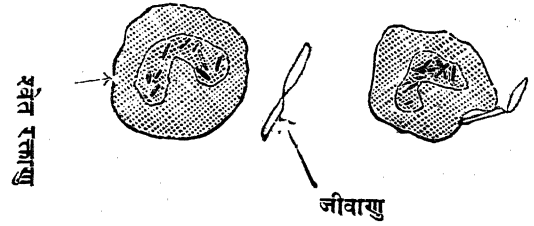
चित्र १४—रक्ताणु जीवाणुको पास आनेपर, निगलकी चेष्टा कर रहा है।

कारण खूनमें इन कीटाणुओंके नाश करनेकी शक्ति भी बढ़ जाती है। अगर शरीर इस संग्राममें विजयी होता है तो जीवाणु विष-नाशक पदार्थ और श्वेत 'रक्ताणु' (Corpuscle) कीटाणुओंको दबा लेते हैं और मनुष्य आरोग्य होने लगता है।

कुछ रोग ऐसे हैं—जैसे शीतला, खसरा, ताऊन, टाइफ़ायड (Typhoid) आदि-जिनसे कि अच्छे होने पर बहुत दिनोंतक और कभी कभी
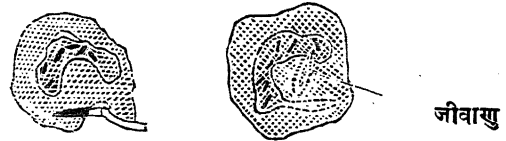
चित्र १५—रक्ताणु जीवाणुको निगल गया

उम्र भरकेलिए भी बहुतसा जीवाणु विष नाशक पदार्थ रक्तमें रहता है। इसलिए बीमारियोंके नये कीटाणु रक्तमें घुसते ही तुरन्त नष्ट हो जाते हैं और इसी कारण ऐसी बीमारियोंसे मनुष्य एक बारसे ज़्यादा बहुत कम पीड़ित होता है। परन्तु और रोगोंके बाद-जैसे, नज़ला खांसी, ज़ुकाम, निमोनिया इत्यादि—शरीरकी कीटाणु मारनेकी शक्ति जल्दी चली जाती है और इसीलिए हम लोग ऐसे रोगोंसे बार बार पीड़ित होते हैं।

इससे एक बात स्पष्ट है कि अगर हम निरोग रहना चाहते हैं तो शरीरकी कीटाणु नाश करनेकी शक्तिको बनाये रखना हमारा मुख्यकर्त्तव्य होना चाहिये।

हमलोग बिना जाने हुए न मालूम कितने रोगोंके कीटाणु अपने शरीरमें लिए फिरते हैं। और जिस प्रकार पृथ्वीपर पड़ा हुआ एक बीज पानी पड़नेपर जम उठता है उसी प्रकार यह कीटाणु भी बहुधा शरीरमें रह कर बढ़नेका अवसर ढूंढ़ा करते हैं।

इसलिए शरीर निरोग रखनेका सबसे उत्तम उपाय यही है कि शरीर सर्वदा स्वस्थ रखा जाय जिससे कीटाणु उसमें जाते ही तुरन्त नष्ट हो जायं। शक्तिके बाहर काम करना, ठंढका लगना, भीगे पांव, भूख, थकान, चिन्ता, स्वच्छ हवाकी कमी, अधूरी नींद और शराब—यह सब शरीरको निर्बल करती हैं और कीटाणु नाश करनेकी शक्तिको कम करती हैं।

जानवरोंकी परीक्षाओंसे यह मालूम हुआ है कि शराबसे कीटाणु रोकनेकी शक्ति घट जाती है। हमारे देशमें तो इसका इतना प्रचार नहीं है जितना कि पाश्चत्य देशोंमें परन्तु यहां भी फ़ैशनेबिल सोसाइटीमें इसका आदर बढ़ता हुआ मालूम होता है। इसलिए यह अच्छा है कि लोग अभीसे सावधान हो कर अपने भले बुरेको विचारें और इस ओर ध्यान दें।

यह देखा गया है कि अगर ख़रगोशोंको शराब पिला दी जाय तो फिर उनको पागल कुत्तेके काटेसे अच्छा करना असम्भव हो जाता है। और अनुभवोंसे यह भी विदित होता है कि नासूर और फोड़ेके कीटाणु उन ख़रगोशोंपर जल्दी असर रकते हैं जिनको कि शराब पिलाई गई हो, और यह भी मालूम हुआ है कि ऐसे जानवर हैज़ा आदिके कीटाणुओंको उतनी अच्छी तरह नहीं रोक सकते जितना कि बिना शराब पिये हुए जानवर।

इन परीक्षाओंसे यह स्पष्ट है कि शराब ख़ूनको कीटाणु नाश करनेकी शक्तिको कम कर देती है।

बहुतसे डाक्टर इस बातको बहुत दिनोंसे सच मानते हैं, क्योंकि शराब पीनेवाले रोगियोंकी संख्या शराब न पीने वाले रोगियोंकी संख्यासे अधिक होती है और उनमें मृत्यु संख्या भी अधिक होता है। शराब पीनेवालोंको क्षयरोग अधिक होता है और न शराब पीने वालों की अपेक्षा उनके घाव भी देरमें भरते हैं। इसी तरह हैज़े और टाइफ़ायड (Typhoid) से शराबी अधिक पीड़ित होते हैं और इसमें कोई शक नहीं कि यही बात और भी कीटाणु जात रोगोंके लिए भी ठीक है। इसलिए अगर कोई मनुष्य शरीरकी काटाणु नाश करनेकी शक्ति बनाये रखना चाहता हो तो उसे शराब बिलकुल छोड़ देनी चाहिये।

अस्थायी तारे

(गताङ्कसे सम्मिलित)

इन कल्पनाओंसे यह परिणाम निकलता है कि इस छल्लेने फैलते फैलते यद्यपि प्रकाशका वेग सचमुच नहीं प्राप्त किया तथापि इसका परिमाण उसके लगभग पहुंच रहा था। कई ज्योतिर्विदोंने तो इसे सम्भव माननेमें भी सन्देह प्रकट किया है और मुझे विश्वास है कि आज, भौतिक विज्ञानके ऐसे नूतन सिद्धान्तोंके सन्मुख जिनसे सिद्ध होता है कि किसी पंचभौतिक वस्तुकी गति प्रकाशकी गतिका सामना नहीं कर सकती यह शंका और भी पुष्ट हो जायगी। विल्सन और कैपटीन ने (Kapteyn) उस समय इस घटनाको इस कल्पनाद्वारा समझानेका प्रयत्न किया था कि नीहारिकाका आकार (Nebular structure) उस तारेके आसपास बहुत दूरतक सदैवसे उपस्थित था, परन्तु दिखाई

उस समय पड़ा जब केन्द्रीय वस्तुके भड़क उठनेपर असाधारण प्रकाशके विकिरणसे वह भाग चमक उठा। यदि यह चमक स्थिर रहती तो पहले हम नीहारिकाके उस अंशको देख सकते जो केन्द्रके बहुत पास है फिर जैसे जैसे प्रकाश आगे बढ़ता दूर दूरके भाग भी दिखाई पड़ते और अन्तमें सारा भाग दीखने लगता। परन्तु मध्यवर्ती तारेकी असीम दीप्ति कुछ ही दिनोंतक रही थी, इस कारण जो मंडल (region) पहले प्रकाशमान हो उठा था वह प्रकाशके आगे बढ़ जानेपर तुरंत आंखसे ओझल हो गया। जिस भागपर किसी क्षण अधिकसे अधिक प्रकाश विकिरण पहुंचता था वही उस क्षण दीख पड़ता था इसी कारण इसका रूप एक पतले कटिबन्ध (Zone) की तरह जान पड़ता था। जैसे जैसे समयके साथ प्रकाश आगे बढ़ता गया यह पतला कटिबंध भी चौड़ाईमें निरन्तर एकसा रहते हुए केन्द्रसे दूर होता गया। इस प्रकाशमय कटिबन्धने जितनी दूरी तै की उसका परिमाण जान लेना सुगम है क्योंकि यह तो मालूम ही है कि प्रकाशकी गति क्या है। स्फुट फैलाव (apparent expansion) से इस दूरीकी तुलना करनेपर पृथ्वीसे उस तारेकी दूरी भी जानली गयी। यह दूरी इतनी है कि यदि प्रकाश प्रति सेकंड १८६००० मीलकी चालसे ३०० वर्षतक चले तब कहीं तै हो*। इस दूरीके मतानुसार तारेका लम्बन ०·०१ विकला ठहरता है जो सचमुच इतना कम है कि नापे जानेकी सीमासे बहुत नीचे है। यहां यह बतला देना आवश्यक है कि इस व्याख्यामें अनेक बड़ी बड़ी आपत्तियां की गयी हैं और यह सर्वमान्य भी नहीं हो पायी है। परन्तु इसमें वास्तविक रोचकता तथा लालित्य इतना है कि इसका दुहराया जाना उचित जान पड़ता है चाहे यह असत्य ही क्यों न सिद्ध हो।

सबसे आधुनिक दो नवतारे मिथुन राशिमें दिखाई पड़े हैं, एक पांचवीं श्रेणीका १९६० वि० के १६ मार्चको (१९०३ ई०), और दूसरा चौथी श्रेणीका १९६९ वि० के १३ मार्चको (१९१२ ई०)। विशेषतः दूसरा बहुत दूर दूर तक देखा गया था। इसका लम्बन ०·०११ विकलाका ठहरा था जिससे इसकी दूरी २९६ प्रकाश-वर्षकी आंकी गयी थी। १९७० वि० के अक्तूबरकी १७ वीं तारीख तक यह ९·५ श्रेणीका हो गया। उस समय इसका स्फुट व्यास (apparent diameter) २ कलाका था जिससे पता चलता है कि उपर्युक्त दूरीपर उसका अर्द्धव्यास पृथ्वीसे सूर्यकी दूरीके सौ गुनेसे भी अधिक है अथवा यों कहिए कि सूर्यसे नेप्‌चून-पथ तककी जो दूरी है उसके तीन गुनेसे अधिक यह अर्द्धव्यास है। कई दर्शकोंको यह विश्वास हो गया था कि उनको इसके रश्मि-चित्रमें रेडियम तथा रेडियमसे उत्पन्न पदार्थों (emanation) की विशेष रेखाएं दिखाई पड़ी थीं परन्तु यह निश्चय नहीं है।

इन सबसे यह पता लगता है कि सभी अस्थायी तारोंमें कुछ सामान्य गुण होते हैं। यह तो हम मान नहीं सकते कि चमकता हुआ तारा ऐसे स्थानमें एक बारगी प्रगट हो गया जहां पहले कुछ था ही नहीं। यह सच है कि(Nove persei) (नोवा परसी) के आस पासके स्थानका छाया चित्र बड़े परिश्रम और प्रयत्नसे उतारनेपर भी यह पता नहीं चला कि वहां पहले कोई वस्तु थी। परन्तु इससे तो यही सिद्ध होता है कि यह नवतारा यकायक चमक उठनेके पहले इतना मंद था कि इसका चित्र ही नहीं उतरा। प्रत्येक दशामें यही युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि पहले पहल यह तारे बहुत मंद होते हैं फिर यकायक आस-

* गणना करनेसे पता चलता है कि एक वर्षमें प्रकाश ५८६५६६६×१०^{६} (६, १० की पावर है) मील अथवा ५८६५६९६०००००० मील जाता है। इसलिए ३०० वर्षमें १७५९७०८८×१०^{८} मील (८ पावर है) जायगा जो उपर्युक्त तारे की दूरी हुई। इसी दूरीका मान संक्षेपमें ३०० प्रकाश-वर्ष समान भी कहा जाता है।

धारण चमक प्राप्त करके शीघ्रतासे मंद पड़ने लगते हैं और जिन द्रव्योंके यह बने होते हैं वे थोड़े ही समयमें उस नीहारिकासे व्याप्त अनन्त देश (space) में विलीन हो जाते हैं जहां यह जाते हुए देख पड़ते हैं। कुछ महीनोंमें ही यह सब हो जाता है जो तारा-विकास (stellar evolution) के पञ्चाङ्गमें एक क्षणके समान है। यहां हमें वे सब विशेषताएं दिखाई पड़ती हैं जो किसी विस्फोटनके समय होती हैं, परन्तु ऐसे बृहत् परिमाणमें विस्फोटन होनेका क्या कारण हो सकता है ?

इसका मुझे ज्ञान है कि मैं इस समय एक भयानक स्थानकी ओर चला जा रहा हूं। भौतिक विज्ञानका जो ज्ञान हम लोगोंको है वही आकाशीय गोलोंके सम्बन्धमें भी बिना किसी हिचकके लागू समझ लेना विरले ही उचित होता है, क्योंकि भौतिक विज्ञानवेत्ता जिन जिन अवस्थाओंमें अपनी प्रयोगशालामें काम करता है वे आकाशीय गोलोंकेलिए बिलकुल भिन्न हैं। किसी समय तो नीहारिकाओं और धूमकेतुओंकी पूछोंमें जो द्रव्य है वह पतलेपनकी अन्तिम श्रेणीमें पाया जाता है और किसी समय सूर्य तथा ताराओंके गर्भमें इतना भीषण दबाव (गाढ़ापन) पाया जाता है कि उसके सम्बन्धमें हमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता। हां केवल इतना समझ पड़ता है कि हमारी कल्पना शक्तिमें जितने दबावका अनुमान हो सकता है उससे वह कहीं अधिक है।

ऐसी दशामें भौतिक विज्ञानके ज्ञात नियमोंके साथ क्या व्यवहार करना चाहिए। क्या हम मान लें कि ऐसे अनुमानोंसे [hypothesis] जहां तक हो सके दूर रहना चाहिए और ऐसे प्रश्नोंको उस समयके लिए छोड़ देना चाहिये जब तक प्राकृतिक विज्ञान अत्यन्त उन्नत दशाको न प्राप्त हो जाय ? मैं ज़ोर देकर कहता हूं कि ऐसा नहीं करना चाहिए। वर्तमान तथा भविष्यमें भी सत्यका ज्ञान प्राप्त करनेकेलिए हमें उसी कष्टप्रद मार्गको ग्रहण करना चाहिये जिसमें भूलें करने और बार बार जांच करनेसे ही नयी बातें सीखी जाती हैं जैसा कि अब तक हुआ है। इस प्रणालीके प्रत्येक पदमें कुछ न कुछ वैज्ञानिक उन्नति होती ही है।

इसलिए यह उचित है कि जैसे ही भौतिक विज्ञानमें कोई गवेषणा हो उसका उपयोग ज्योतिष शास्त्रके तत्वज्ञ तुरन्त करें। सच्ची बात तो यह है कि प्रत्येक महान् आविष्कारसे नये नये महत्व पूर्ण प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं; यही नहीं ऐसे आविष्कारोंसे उन सिद्धान्तोंपर भी प्रश्न होने लगते हैं जो एक बार पूर्ण समझे जा चुके हैं और जिनपर वादविवाद बंद समझा जाता है। रेडियमके आविष्कारसे भौतिक-रसायन शास्त्र (Physical chemistry) के सिद्धन्तोंमें जो हेर फिर हो गया वह इसीका उदाहरण है। पाठकोंको इस अद्भुत पदार्थके गुणोंसे कुछ परिचय प्राप्त कर लेना बड़ा आवश्यक है। अंधेरेमें भी यह प्रकाशमान रहता है और अपने आस पासके पदार्थ surrounding medium के तापक्रमसे तीन अंश ऊंचे ताप क्रमपर सदैव रहता है। अत्यन्त मन्द गतिसे इसका रूपान्तर उस श्रेणीके पदार्थोंमें होता है जो अन्तमें सबके सब हीलियम नामक पदार्थमें परिणत हो जाते हैं। बस विकासकी गति इतनी मन्द है कि इसकी चाल बढ़ाने अथवा घटानेके जितने प्रयत्न किये गये सब निष्फल हुए।

इस अद्भुत व्यवहारसे पहले तो यह शंका उत्पन्न हुई कि कहीं "शक्तिका अविनाशत्व" (Conservation of energy) नामक सर्वमान्य सिद्धान्त ही न उखड़ जाय। यह कठिनाई तो इस समझसे दूर हुई कि रेडियममें शक्तिका बृहत् भाण्डार है जिसमेंसे बहुत थोड़ी थोड़ी शक्ति अलग होती जा रही है। परन्तु ज्योंही रेडियम पूर्ण रूपसे बदल कर हीलियम हो गया त्योंही वह पुराना मत कि परमाणु अविभाज्य होते हैं निश्चित रुपसे छोड़ देना पड़ा। आधुनिक दृष्टिसे तो परमाणु सौर

जगत्का एक छोटा प्रति रूप ही समझा जाता है जिसमें सहस्रों ऋणात्मक विद्युद्वाहक (ions) एक धनात्मक विद्युत् कण (electron) के चारों ओर आकर्षित होते रहते हैं। इसलिए इसमें तो इतनी शक्ति होगी जितनी साधारण रासायनिक क्रियाओंसे कभी उत्पन्न ही नहीं हो सकती। इस सम्भाव्यता (possibility) से यह अनुमान होता है कि ऐसी विशेषता रेडियममें ही नहीं है वरन् सारे परमाणुओंमें ऐसा ही मंद मंद रूपान्तर थोड़ा थोड़ा होता है और जब शक्ति अलग हो जाती है वही परमाणु हल्के परमाणुओंमें बदल जाते हैं। यह अनुगम (generalisation) सरल है क्योंकि केवल इतना मान लेना बस है कि साधारण पदार्थोंका विकास रेडियमके विकाससे अत्यन्त मन्द है। अनुमानको एक पद और आगे बढ़ा दिया जाय तो हमारी कल्पनामें उन विस्फोटनोंका भी चित्र खिंच सकता है जो उस समय उत्पन्न हो सकते हैं जबकि यह परमाणविक रूपान्तर किसी कारणवश यकायक हो जाय और एक सेकंडसे भी कम समयमें परमाणुकी वह शक्ति निकलकर अलग हो जाय जो साधारणतः सैकड़ों तथा सहस्रों वर्षमें धीरे धीरे निकलती। शक्तिके ऐसे विस्तारके सामने उग्रसे उग्र रासायनिक विस्फोटन भी उस विस्फोटनके सदृश समझ पड़ेंगे जो एक दियासलाईके रगड़नेसे उत्पन्न होता है।

अब ज़रा उन अस्थायी तारोंकी ओर ध्यानसे चलिये। इनके सम्बन्धमें जो व्याख्याएँकी गयी हैं वे दो श्रेणियोंमें विभक्तकी जा सकती हैं क्योंकि व्याख्याएं तो इस मतको मानकर की गयी हैं कि नवतारे टकरानेसे बनते हैं और कुछ यह समझकर कि इनकी उत्पत्तिका कारण विस्फोटन है। पहलेके लिए यह प्रमाण दिया जाता है कि जब दो तारे एक दूसरेके पथपर आकर टकरायंगे तो उनके वेग अधिकांशमें यकायक रुक जायंगे और रुके हुए वेगकी शक्ति तापमें ही बदल सकेगी, जिससे टकरानेवाले तारोंके तापक्रम बहुत बढ़ जायंगे। इस प्रकार जब कोई तारा नीहारिकामें बड़ी तीव्रताके साथ घुसता है तब टक्करसे नवतारा बन जाता है। यह तो एक प्रकारकी व्याख्या हुई। इसमें यह तर्क तो किया ही जा सकता है कि बिना शुद्ध शुद्ध संख्यात्मक सामग्रीके (Numerical data) ऐसा मान लेना उचित नहीं है, परन्तु एक बात और भी सन्देहजनक है और वह यह है कि क्या किसी तारेके उग्रसे उग्र टक्करसे भी इतनी शक्ति उत्पन्न हो जायगी जो नवतारेमें इतनी तीव्र चमक उत्पन्न कर दे। रश्मि चित्र विश्लेषणसे भी इस आघात सम्बन्धी मतके मान लेनेमें आपत्तियां होती हैं। परन्तु तौ भी इस सिद्धान्तके समर्थक बहुतसे हैं।

जो लोग यह मानते हैं कि नवतारेकी उत्पत्ति विस्फोटनसे होती है वे यह कहते हैं कि तारेका ऊपरी आवरण ठंडा और ठोस है और जब यह किसी कारण फटता है तब अत्यन्त गरम भीतरी अंश बाहर निकल पड़ता है। जिन कारणोंसे यह फटना सम्भव समझा जाता है उनमें एक यह है कि दो तारे निकट आ जाते हैं। इस स्थानपर आघात सम्बन्धी मतका स्मरण हो जाता है, परन्तु उसमें और इसमें बहुत अंतर है क्योंकि इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि जब दो तारे पास आ जायं तो आपसमें सचमुच टकरायं। एक तारेका दूसरेके इतना ही पास आना बस है कि दूसरेके गर्भस्थित तरल पदार्थमें प्रवाह उत्पन्न हो जाय फिर तो यह बाहरी कठोर परन्तु दुर्बल आवरणको तोड़ फोड़कर बाहर निकल ही आवेगा और इसी क्रियाको विस्फोटन कहते भी हैं। परन्तु यहां भी हम यह जाननेमें असमर्थ हैं कि जो शक्ति इतने वृहत् परिमाणमें एक अस्थायी तारेसे निकलकर अनन्त देशमें विलीन हो जाती है वह कहां से और कैसे आती है।

बात असलमें यह है कि जितनी व्याख्याएं साधारण यंत्रविज्ञान (Mechanics) तथा

तापगति विज्ञानके (thermodynamics) भरोसे की जायंगी सभी स्वभावतः अपर्याप्त होंगी। ऐसा मालूम होता है कि इसका कारण कुछ और भी है। उत्तमाशा अन्तरीपकी बेधशालाके ज्योतिषी इनेसने (Innes) एक नया ही अनुमान उपस्थित करनेका साहस किया है, जिसकी प्रधान प्रधान बातें मैं बतलाये देता हूं। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता क्योंकि वर्तमान परिस्थितिमें सुयोग्य विज्ञानवेत्ताओंसे वैसा अन्त-र्जातीय वाद विवाद करके किसी अनुमान् को निश्चित करना कठिन हो गया है, जैसा कि साधारण अवस्थामें ऐसे अनुमानोंके साथ किया जाता है।

इनेसने परमाणविक विकासवादको माना है जिससे परिचय करानेके लिए मुझे अपने विषयसे कुछ दूर जाना पड़ा था। इसी नीवपर वे अपना अनुमान स्थिर करते हैं और यहीं तारा संबंधी विकासकेलिए साधारणतः लागू समझ पड़ता है। इनका मत है कि रेडियमकी नाईं सभी भारी और पेचदार परमाणु धीरे धीरे टूट कर हलके परमाणुओंमें बदल रहे हैं, परन्तु इस अत्यन्त मंद विकासके साथ साथ कभी कभी उचित परिस्थतिके हो जानेपर विस्फोटन होना अथवा परमाणयिक रचनाका यकायक बदल जाना बहुत सम्भव है। उनका यह भी कहना है कि यह परिस्थिति दबावहीके कारण आती है, भारी परमाणु एक परिमित सीमातक दबाव सह सकते हैं यदि दबाव उस सीमाको लांघ गया तो विस्फोटन हो जाता है और परमाणुका रूप बिलकुल बदल जाता है।

यह तो सिद्धान्त ठहरा अब इसे अस्थायी तारोंका कारण जाननेकेलिए लगाइये। जैसे जैसे तारा ठंडा पड़ता जाता है तैसे तैसे सिकुड़ता भी जाता है। सिकुड़नेके साथ साथ भीतरका दबाव भी बढ़ता जाता है जो तारेके कुल परिमाण-के अनुसार उसी अनुपातसे होता है। ऐसा होते होते वह समय आ जाता है, जब दबाव सीमाको भी लांघ जाता है। बस तभी परमाणुविक विस्फो-टन हो जाता है। एक ही बिन्दुपर विस्फोटनका आरम्भ होना पर्याप्त है, क्योंकि फिर तो इससे दबाव इतना बढ़ और फैल जाता है कि उसका कल्पना करना कठिन है। यही कारण नव-तारेकी उत्पत्तिका है।

इनेसके मतानुसार सभी वृहताकार तारे जल्दी अथवा देरमें फूटेंगे। इनके अनुमानकी सत्यताके पक्ष तथा विपक्षमें मैं कुछ नहीं कहना चाहता और न मुझे उन परिणामोंपर ही कुछ कहना है जो इस अनुमानको सत्य मानकर नि-काले गये हैं। मुझे तो आपका ध्यान इस कल्पना-की ओर आकृष्ट करनेसे ही सन्तोष है क्योंकि यह कल्पना निस्सन्देह नवीन और मौलिक है। इस-पर शंकाएं और आपत्तियां की जा सकती हैं और इस कल्पनाका अन्त क्या होगा यह तो भविष्यके गर्भमें है परन्तु इससे कमसे कम यह लाभ होगा कि तारोंके आदि सृष्टि (Genesis) तथा अन्त परिणाम (ultimate destiny) सम्बन्धी प्रश्नोंपर वादविवाद होनेसे नये विचार उत्पन्न होंगे और गम्भीरता जांच तथा पूर्ण और सन्तोषप्रद व्याख्या करनेकेलिए क्षेत्र तैयार हो जायगा।

—महावीरप्रसाद।

वैज्ञानिकीय

(१) पेड़पर मछली

सुन्दर वन जोकि बंगालकी खाड़ीके ऊपर १५० मील तक विस्तृत एक विचित्र ही स्थान है। जंगल और नदियोंके अतिरिक्त वहां कुछ नहीं है। नदियोंमें एक प्रकारकी भूरी मछलियां होती हैं जो धूप खानेकेलिए किनारेपर आकर पड़ी रहती हैं, अथवा सुन्दरी नामक पेड़ोंपर लटकी रहती हैं। यदि कोई मनुष्य आगया और उनको मालूम हो गया तो सबकी सब इकट्ठी

पानीमें कूद पड़ती हैं। पाठक यदि इसका दृश्य अपनी आंखोंके सामने खींचें तो इस आश्चर्यजनक बातका आनन्द आ सकता है। यह हम लोगोंकेलिए आश्चर्यजनक है परन्तु वहां वालोंके लिए नहीं। यहां हमने ऐसी मछलियां नहीं देखीं जो फलोंके समान पेड़पर लटकी रहें।

इसी सुन्दर बनमें एक प्रकारके गोलेका शब्द सुनाई देता है। यह शब्द क्या है! क्यों होता है, कहां होता है, इत्यादि कुछ नहीं मालूम। बहुत कुछ परिश्रम किया गया, परन्तु इसके अतिरिक्त, कि दक्षिणसे शब्द उठता है और कुछ नहीं मालूम।

—विश्वेश्वरनाथ

* * * *

(२) तौलके भोजन

जबसे महा-युद्ध आरम्भ हुआ है प्रत्येक प्रकारसे खर्च कम करनेके उपाय सोचे जा रहे हैं। अमेरिकाके एक वैज्ञानिकने भिन्न भिन्न श्रेणीके काम करने वालोंकेलिए भोजनका परिमाण निश्चय किया है। यह तो पहलेसे ही ज्ञात था कि भोजनकी आवश्यकता शरीरके नष्ट हुए अंशोंकी पूर्तिकेलिए और शरीरमें पर्याप्त गर्मी पहुंचानेकेलिए ही होती है। उक्त महाशयने इसी सिद्धान्तसे काम लिया है, और इस हिसाबसे कि कौनसी वस्तु कितनी गर्मी शरीरमें पहुंचावेगी और प्रतिदिन किस प्रकारके काम करनेवालेको कितनी गर्मीकी आवश्यकता पड़ती है एक ब्यौरा बना डाला है। अमेरिकाके कुछ होटलोंने प्रत्येक भोज्य पदार्थके सामने एक टिकटपर यह लिख रक्खा है कि वह कितनी गर्मी शरीरमें पहुंचावेगा। साथही साथ एक सूची टांग दी है कि किस प्रकारके काम करने वालोंको कितनी तौल भोज्य-पदार्थकी आवश्यकता है।

—विश्वेश्वरनाथ

* * * *

(३) अमरीकामें एक दूध देनेवाली गाय।

अमेरीकामें एक गाय है जो एक वर्षमें १७५०१.६ पौंड दूध देती है। एक पौंड लगभग आधसेरका होता है। इस हिसाबसे दूधकी कुल कीमत १७५०२ आने अर्थात् ११०६।=) हुई।

अब यदि ४०६।=) गायके चारा आदिमें व्यय हुआ तो ७००) एक वर्षमें नफा हुआ। भारतवर्षमें एक ग्रेजुएट ६०) मासिक वेतन पाता है। वर्षभरमें वह ७२०) पावेगा। इन दोनों संख्याओंको देखनेसे जान पड़ता है कि गऊ कामधेनु हैं।

हमारे यहांके नवयुवक दासत्व श्रृङ्खलामें आबद्ध होकर दूसरेकी चरन-सेवा न कर यदि गोमाताके पोषण-पालनमें अपना समय लगावें तो अपनी उन्नतिके साथ साथ देशकी भी उन्नति करें।

—कुलदीपसहाय।

NOTICE.

The fourth anniversary of the Vernacular Scientifi Society will be celebrated inthe Senate Hall, Allahabad, on Saturdy, the 10th November, 1917, after convocation at ab ut 5 P. M. The Hon'ble Dr. S r Sunderlal, KT., LL. D., C. I. E., will preside All Fellows and Associates of the Society are cordially invited to attend.

The following is the programme of the meeting :—

1. Secretary's Report.
2. Lecture on "Ancient and Modern Chemi try", by Prof. N. C. Nag, M. A., of the Benares Hindu University.
3. Resolutions on the Secretary's Report.
4. Election of Office-bearers and Councillors.
5. Passing of the Budget or thef next year.

THE SECRETARY.

परिषद्का चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन

सूचना

विज्ञान परिषद्का चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन, प्रयागके सेनेट हाल (Senate Hall) में १० नवम्बर १९१७ को ५ बजे कनवोकेशनके उपरान्त होगा। माननीय डाक्टर सर सुन्दरलाल, के. टी. बी. ए., एल-एल-डी. सी. आई. ई. सभापतिका आसन ग्रहण करेंगे। परिषद्के सभ्यों, परिसभ्यों तथा प्रेमियोंसे कृपया उक्त अवसरपर पधारनेको प्रार्थना है।

अधिवेशनका कार्यक्रम निम्नलिखित है:—

१—मंत्रीकी रिपोर्ट

२—"प्राचीन और आधुनिक रसायन" पर श्रीयुत नगेन्द्रचन्द्र नाग, एम-ए., एफ. आई. सी., का व्याख्यान।

३—मंत्रीकी रिपोर्टपर कुछ प्रस्ताव

४—कार्य कर्ताओंका चुनाव

५—आगामी वर्षकेलिए बजटको मंजूरी

—मंत्री

विज्ञान परिषद, प्रयाग।

विज्ञान भाग १ व २

जिन सज्जनोंके पास विज्ञान भाग १ व २ हों और जो उन्हें बेचना चाहते हों, वे कृपया नीचे दिये हुए पतेसे लिखा पढ़ी करें। हमें ५ सेटकी ज़रूरत है।

विज्ञानके पुराने अङ्क

विज्ञानके ३,४,५, भाग थोड़ेसे बचे हैं, शीघ्र मंगाइये।

प्रति भाग मूल्य १।)

पता—

मंत्री विज्ञान परिषद्।

बचा

[लि० कप्तान कुरैशी, अनु० प्रोफ़ेसर करमनारायण, एम. ए.]

देश भक्तो! आपको मालूम है कि सं० १९११ में ९१ लाख बच्चे पैदा हुए और उनमेंसे १८$\frac{3}{4}$ लाख अर्थात् पांचवां भाग एक वर्षके होनेके पहले मर गये। इस कुदशाका सुधार यदि करना है तो गृहदेवियोंको बालरक्षाके नियम सिखलाइये।

बच्चोंके सम्बन्धमें जितनी बातोंका जानना आवश्यक है, वह सब बातें इस पुस्तकके पढ़नेसे ज्ञात होंगी। अतएव इस पुस्तकका पढ़ना प्रत्येक गृहस्थके लिए आवश्यक है।

पुस्तकका मूल्य १) विज्ञानके ग्राहकोंको केवल ॥।=) में मिलेगी।

मंगानेका पता:—

मंत्री, विज्ञान परिषद्

प्रयाग।

आर्य मित्रका ऋष्यङ्क

'आर्यमित्र' का सचित्र ऋष्यङ्क आगामी दिवालीके ३ दिवस पूर्व प्रकाशित होगा। इसमें आर्यविद्वानोंके बड़े महत्वपूर्ण लेख तथा सुकवियोंकी कविताएं छपेंगी। समाजों तथा सामाजिक पुरुषोंको चाहिए कि इसकी १००-१००, २००-२०० प्रति मंगाकर अपने इष्ट मित्रोंको वितरण करें। प्रति कापीका मूल्य =)॥ है। पांच कापीसे कमके खरीदारको टिकट भेजने चाहिएं।

मिलनेका पता:—

मैनेजर

'आर्यमित्र'

आगरा।

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषत्- प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ३२ | Reg. No. A-708.

भाग ६ | वृश्चिक, १९७४. NOVEMBER, 1917. | संख्या २

Vol. VI. | No. 2.

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक–गोपालस्वरूप भार्गव

विषय–सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [१ प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानके नियम

(१) यह पत्र प्रति संक्रान्तिको प्रकाशित होता है। पहुँचनेमें एक सप्ताहसे अधिक देर हो तो प्रकाशकको तुरन्त सूचना दें। अधिक देर होनेसे दूसरी बार विज्ञान न भेजा जायगा।

(२) वार्षिक मूल्य ३) अग्रिम लिया जायगा। ग्राहक होनेवालोंको पहले वा सातवें अंकसे ग्राहक होनेमें सुविधा होगी।

(३) लेख समस्त वैज्ञानिक विषयोंपर लिये जायँगे और योग्यता तथा स्थानानुसार प्रकाशित होंगे।

(४) लेख कागज़की एक ओर, कमसे कम चार अंगुल हाशिया छोड़कर, स्पष्ट अक्षरोंमें लिखे जायँ। भाषा सरल होनी चाहिए।

(५) लेख सचित्र हों तो यथा संभव चित्र भी साथ ही आने चाहिएं।

(६) लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्त्तनमें सामयिकपत्र और पुस्तकें, मूल्य, तथा सभी तरहके पत्र व्यवहारकेलिए पता—

सम्पादक 'विज्ञान' प्रयाग

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग—दूधकी शुद्धता, बनावट, और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति।). २-ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति।-). ३—करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति॥).४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५—सनातनधर्म रत्नत्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धी।). ६—कागज़ काम-रद्दीका उपयोग-)

इनके सिवाय केला, नारंगी सन्तरा, सुवर्णकारी, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छुप-रहे हैं। खेत (कृषिविद्या), कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगी सूत्र (ज्योतिष), रसरत्नागर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जारहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—गंगाशंकर पचौली—भरतपुर

हमारे शरीरकी रचना

कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसे अपने घरका पूरा पूरा हाल न मालूम होगा। पर ऐसे कितने मनुष्य हैं कि जिन्हें अपने असली घर (शरीर) का पूरा ज्ञान है। शरीरकी रचनासे पूरे परिचित न होनेके कारण हम अपने नित्य जीवनमें बड़ी बड़ी भूलें करते हैं और अपने स्वास्थ्यको बिगाड़ डालते हैं। अतएव यह परमावश्यक है कि हम अपने शरीरकी रचना भली भांति जानें। इसका सहज उपाय डा० त्रिलोकीनाथ रचित "हमारे शरीरकी रचना" नामक पुस्तक पढ़ना है।

पुस्तकमें २६८ पृष्ठ हैं और ५६ चित्र हैं। मूल्य केवल २।) ; विज्ञानके ग्राहकों और परिषद्के सदस्योंको २) रुपयेमें दी जायगी।

मिलने का पता—

मंत्री—विज्ञानपरिषद्, प्रयाग।

जगद्विख्यात गणिताचार्य डा० गणेशप्रसाद, एम-ए., डी.एस-सी.,
MEMBER OF THE LONDON MATHEMATICAL SOCIETY, OF THE DEUTSCHE MATHEMATIKER-VEREINIGUNG, OF THE CIRCOLO MATEMATICO DI PALERMO, ETC. FELLOW OF THE UNIVERSITY OF ALLAHABAD AND UNIVERSITY PROFESSOR. CALCUTTA

जगद्विख्यात विज्ञानाचार्य्य सर जगदीशचन्द्र वसु, के.टी., डी.एस-सी., सी.आई.ई., सी.-एस.आई., विज्ञान परिषद्के मान्य सभ्य, और प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्ताके एमेरिटस प्रोफ़ेसर

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै॰ उ॰। ३। ५।

भाग ६ } वृश्चिक, संवत् १९७४। नवम्बर, सन् १९१७। { संख्या २

मंगलाचरण

भी जग होगा स्वर्ग समान!

र्वभूत किस दिन हो जावेंगे एकातमवान?
दर उदार सदा श्रम करके ज्यों पाले तन प्रान,
यों ही धनी कभी तो होंगे धनहीनोंके त्रान!
न[१] कन करते रक्षा तनकी ज्यों दे देकर जान,
योंही जगहित सभी करेंगे न्योछावर कब प्रान?
गों इन्द्रियां अपने अपने ही कर्त्तव्य महान,
हकारिता सहित, तज ईर्षा आलस मत्सर मान,
योंही सब नर भी बरतेंगे हित अनहित पहचान,
लमें दया, प्रेम आंखोंमें, मन सच्चा, मतिज्ञान।
रधन देख न लालच होगा परको अपना मान,
र दुखसे हिय पीड़ा होगी बिंध करुनाके बान।
र्धन नहीं जलेगा लख निजबन्धु अधिक धनवान,
हीं निरादर कोई करेगा दीन किसीको जान।
ग दुखी, दुर्बलता दुर्बल, मृत्यु तजेगी प्रान,
रा थकी मांदी क्या पहुँचेगी शरीरतक आन!
क्रोध मोहकी जड़ काटेगा सत्य तत्वका ज्ञान,
देश कालका अन्त करेंगे बिजली और विमान।
टंट घंटका अन्त, दम्भका भी होगा अवसान,
करतव-पालन[२] अर्चासे ही रीझेंगे भगवान।
रोगभार धरती माताका उतरेगा किस आन?
बहुतहुए दिन! अब तो द्रविये, हे विभु! हे विज्ञान!

काशी
मौनी ३०। ७४ } —रामदास गौड़

[१] रक्त कण अपने प्राण दे देकर शरीर की रक्षा करते हैं। ले॰
[२] स्वकर्म्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दन्ति मानवाः (गीता)

गणित विषयक खोजोंकी साम्प्रतिक अवस्था

[ले॰ डाक्टर गणेशप्रसाद, एम॰ ए॰, डी॰ एस-सी, युनिवर्सिटी प्रोफ़ेसर, कलकत्ता]

[गतवर्ष नवम्बर (१९१६) में विज्ञान परिषत्के वार्षिकोत्सवके अवसरपर श्रीमान् माननीय लाट सर जेम्स मेस्टनके सभापतित्वमें उपर्य्युक्त विषयपर डाक्टर गणेशप्रसादजीने व्याख्यान दिया था। उसका सारांश उनके लेक्चर-नोट्ससे लेकर नीचे प्रकाशित किया जाता है।

सम्प्रति भारतके गणितशास्त्रके आचार्य्योंमें डाकृर महोदय अप्रतिम समझे जाते हैं। आपका जन्म बलियामें १५ नवम्बर सन् १८७६ ई०को हुआ था। आपके पूज्यपाद पिता स्व०श्रीयुत बाबूराम-गोपाल सिंहजी थे। आप एक पुराने प्रतिष्ठित कायस्थ कुलके भूषण हैं। १८९१ ई०में बलियासे प्रथम श्रेणीमें एन्ट्रेन्स पास हुए। १८९५ ई० में म्योर कालिजसे बी० ए० में सायंस लेकर सारे विश्वविद्यालयमें प्रथम हुए। आपकी प्रतिभासे इसी कालसे विद्वान लोग मुग्ध थे। १८९८ ई० में आप प्रयागके पहले डी० एस्-सो होकर १८९९ ई० में सरकारो छात्र वृत्तिके अधिकारी हुए और विलायत गये। केम्ब्रिजमें पुनः Advanced Student श्रेणीमें १९०१ ई० में बी० ए० हुए। १९०२ से ४ तक छात्रवृत्तिकी वृद्धि और विशेष अधिकारसे केम्ब्रिज और गैटिंगेन (जर्म्मनी) में आपने विशेष अध्ययन किया। लौटनेपर १९०४ में उसी म्योर कालिजमें गणितके विशेष प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। १९०५में काशीके क्वींस कालिजके गणिताचार्य्य हुए। सन् १९१६से आप कलकत्ता विश्वविद्यालयके कालिज आफ़ सायंसमें (विज्ञान विद्यालयमें) सर रासबिहारी घोष द्वारा नियुक्त व्यवहारगणितके आचार्य्य हैं। आपको किसी श्रेणीको पढ़ानेका काम नहीं दिया गया है। आपके सिवा आपकी देखरेखमें सम्प्रति दस विद्वान गणितके आविष्कारमें लगे हुए हैं। इनमेंसे छः सर्वोच्च कक्षाओंको पढ़ाते भी हैं। प्रयाग विश्वविद्यालयके आप १९०८ से फ़ेलो हैं। लंडन, पलरमो, कलकत्ता, जर्म्मनी आदिके गणित परिषदोंके आप मेम्बर हैं। हिन्दू विश्वविद्यालयके भी आप सदस्य हैं। विज्ञान परिषत्को भी आपके सभ्य होनेका गौरव है। सन् १९०० में आपने एक मौलिक खोज (*Messenger of Mathematics*) नामक पत्रमें प्रकाशित किया था। Dr. Routh राउथ जैसे विद्वानने स्थितिविद्यापर एक स्वरचित प्रसिद्ध ग्रन्थमें आपके उस लेखका आदरपूर्वक प्रमाण दिया है। १९०३में एक खोज विषयक बृहत् लेख *Prof. Klein* प्रो० क्लैनने आपका ही लिखा हुआ गैटिंगेन (जर्म्मनी) के *Society of Sciences* के मुखपत्र *Abhandlungen*में छपवाया जो कई ग्रंथोंमें प्रमाण माना गया है। १९०४ में एक लेख गैटिंगेनके *Nachrichten* में छपा। कई खोजके लेख *Mathematische Annalen, Bulletin of the Calcutta Mathematical Society, Philosophical Magazine, Proceedings of the Palermo Mathematical Society* आदि गणितके सामयिक पत्रोंमें छपे हैं। आपने चलनकलन और चलराशिकलनपर दो पुस्तकें भी लिखी हैं जो विलायतमें छपी हैं, जिनकी विस्तृत एवं प्रशंसात्मक समालोचना प्रो० विल्सनने अमेरिकन गणित परिषतके मुखपत्रमें प्रकाशित की है। —विज्ञान-सम्पादक]

व्याख्यानका सारांश

गणितविद्याकी गवेषणा एक अत्यन्त कठिन विषय है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। ऐसे विषयपर सुबोध व्याख्यान देना आसान काम नहीं है। तो भी इस विषयपर मातृभाषामें व्याख्यान देनेका साहस मैंने इसलिये किया है कि हमारे देशके सैकड़ों होनहार युवकोंके सामने यह सिद्ध हो जाय कि गणितकेसे कठिनसे कठिन विषयपर भी मातृभाषामें व्याख्यान भली भांति दिये जा सकते हैं।

मैं अपने वक्तव्यको दो भागोंमें विभक्त करता हूँ। पहले भागमें कुछ उदाहरणोंसे यह दरसाऊंगा कि गणित विषयक खोज किसे कहते हैं, और दूसरे भागमें यह दिखाना है कि खोजके काममें किन सामग्रियोंकी आवश्यकता होती है और भारतवर्ष तथा संसारके अन्य सभ्य देशोंमें खोज किस रीतिसे की जाती है।

इस सम्बन्धमें यह भी निवेदन कर देना आ-

वश्यक है कि अभी विश्वविद्यालयसे शिक्षा पाये हुए युवकोंमें संस्कृत गणितके "समीकरण" वा तात्कालिक गति" आदि परिभाषाओंकी अपेक्षा अंग्रेजीके equation, differentiation प्रभृति परिभाषाओंसे अधिक परिचय है, इसीलिए इस कथनमें मैं प्रायः विदेशी परिभाषाओंसे ही काम लूंगा, जैसा कि रूस और जापानके विश्वविद्यालयोंमें भी किया जाता है।

गवेषणा वा खोज

(१) *Curve of quickest descent*, (शीघ्रतम अवतरण-वक्र)।

पहले उदाहरणकेलिए जून १६९६ ई० के *Acta Eruditorum* नामक पत्रकी ओर आप लोगोंका ध्यान आकृष्ट करता हूं। उस पत्रमें नीचे लिखे अभिप्रायका एक विज्ञापन छपा था–

"जान बरनूली (John Bernoulli) नामक Groningen ग्रैनिंगेन विश्वविद्यालयका गणिताचार्य्य संसारके समस्त गणिताचार्य्योंको प्रणाम करके आशा करता है कि इस प्रश्नको उपस्थित करके उनके धन्यवादका भागी होगा। प्रश्न यह है कि क और ख दो विन्दु हैं। क विन्दुसे ख विन्दुतक जितने भिन्न भिन्न मार्ग हो सकते हैं उनमेंसे एक ऐसा मार्ग खोज निकालिए कि कोई टुकड़ा पृथ्वीके आकर्षणसे गिरकर उस मार्गसे ख तक सबसे कम कालमें पहुँच जाय। इस प्रश्नका उत्तर यदि छः मासके पहले मेरे पास न पहुँचा तो मैं स्वयं इसका उत्तर *Acta Eruditorum* में प्रकाशित कर दूंगा। जो सज्जन निश्चित कालके भीतर उत्तर भेजेंगे उन्हें चांदी-सोनेका पुरस्कार न दूंगा क्योंकि ऐसा पुरस्कार केवल ओछी प्रकृतिके लोगोंको आकर्षित करता है। जो भास्करकी नाईं भासमान आचार्य्य उत्तर भेजेगा उसकी प्रशंसा और उसका यश मैं सारे संसारमें प्रकाशित करूंगा और उसका नाम केवल इस युगके लिए नहीं वरन् युग युगान्तरोंकेलिए विख्यात कर दूंगा।"

छः महीनेके भीतर गणितके तीन बड़े आचार्य्योंने अर्थात् Huyghens हैगिन्स Leibnitz लैबनिच तथा बरनूलीजीके भाई जेकब बरनूलीने जान बरनूलीको लिखा कि प्रश्नका उत्तर निकल आया है, परन्तु लैबनिचने प्रार्थना की कि छः महीनेका समय और दिया जाय कि सारे युरोपमें प्रश्न प्रख्यात हो जाय। जान बरनूलीने स्वीकार किया। फल यह हुआ कि जब यह प्रश्न इंग्लिस्तानमें प्रकाशित हुआ, तब बरनूलीके पास इंग्लिस्तानसे एक गुमनाम चिट्ठी मिली जिसमें इस प्रश्नका उत्तर दिया हुआ था। पत्रको देखते ही बरनूली कह उठा कि इस उत्तरमें सिंहके पंजोंके लक्षण दीखते हैं, अर्थात् यह उत्तर ब्रिटेनके सुप्रसिद्ध गणिताचार्य्य सर आइज़क न्यूटनके सिवा और किसीका नहीं हो सकता। यह वक्र Cycloid चक्राभास है। और उसका अनुमान वस्तुतः ठीक ही था।

(२) *Insolubility of an equation of the fifth or higher degree by radicals alone.*

दूसरे उदाहरणकेलिए मैंने नारवेके Abel आबेल नामके प्रसिद्ध गणितज्ञकी गवेषणाको चुना है जिसे उसने केवल २२ बरसकी अवस्थामें पूर्ण किया था। उसने १८२४ ई०में यह प्रमाणित किया कि पांचवीं और उससे भी ऊंची श्रेणीके सब समीकरण केवल roots मूलोंकेद्वारा साधे नहीं जा सकते।

आप लोग जानते हैं कि हज़ारों बरस हुए भारत और यूनानके अनेक गणितके आचार्य जानते थे कि (quadratic equation) वर्ग समीकरण ऐसे भी हैं जिनको केवल पूर्णांकों (whole numbers) और (fractional numbers) भिन्नांकोंकेद्वारा साध नहीं सकते। जैसे, $x^2-2=0$ को साधनेकेलिए ऐसी संख्याका प्रयोग आवश्यक है जो न तो पूर्णाङ्क है और न किसी पूर्णाङ्कको अन्य

पूर्णाङ्क से भाग देनेसे मिल सकती है। इसके साधनमें एक और तरहकी संख्या, यथा $\sqrt{2}$ की आवश्यकता है।

आवेलने यह सिद्ध किया कि यद्यपि दूसरी तीसरी और चौथी श्रेणीके कोई समीकरण नहीं जिनको मूलोंके प्रयोगसे साध न सकें तथापि पांचवीं श्रेणीके ऐसे समीकरण हैं जिन्हें केवल मूलोंके द्वारा साध नहीं सकते। ऐसे समीकरणका एक साधारण उदाहरण $x^5 - 4x - 2 = 0$ है इसके तीन वास्तविक (real) और दो (imaginary) काल्पनिक मान (solutions) हैं उन्हें किसी अंशतक मूलोंके (roots) द्वारा व्यक्त कर सकते हैं परन्तु बिलकुल ठीक ठीक मान मूलोंके द्वारा व्यक्त नहीं हो सकते।

(३) *Curve without a tangent at any point*—तीसरे उदाहरणकेलिए आप लोगोंका ध्यान एक ऐसे प्रश्नपर दिलाया चाहता हूं जिसके उचित उत्तरकी खोजमें समस्त यूरोपके प्रसिद्ध गणितशास्त्री साठ बरसतक व्यस्त रहे। क्या ऐसा कोई (*Curve*) वक्र हो सकता है जिसके किसी विन्दुपर (tangent) स्पर्शरेखा न हो? फ्रांसके प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता और गणितज्ञ Ampere आम्पेरेने १८०६ ई० में यह सिद्ध करना चाहा कि ऐसे वक्रका अस्तित्व असम्भव. कल्पना है। परन्तु उसका प्रयत्न निष्फल हुआ। Dirichlet डिरिकले और Riemann रीमानके विचारमें ऐसा वक्र असंभव ठहरा परन्तु कोई प्रमाण न मिला। पहले पहल इस प्रश्नका समुचित उत्तर अपने व्याख्यानमें १८६१ ई० में (Weierstrass) वैयर्स्ट्रासने दिया और एक साधारण उदाहरणसे यह दिखला दिया कि ऐसा वक्र सम्भव है। वह उदाहरण यह है—

$$y = \sum_{1}^{\infty} \frac{Cos\,(13^n x)}{2^n}$$

(४) *Can the modern Theory of Functions throw any light on the constitution of matter?*

अब मैं चौथा उदाहरण आप लोगोंके सम्मुख उपस्थित करूंगा जो यद्यपि बहुत कठिन विषय है तथापि उसकी चर्चा सर्वथा अरोचक न होगी। (Weierstrass) वैयर्स्ट्रास और उसके समकालीन गणित विशारदोंकी खोजोंसे ख्रीष्टीय उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें (*Theory of Functions*) फल-मीमांसा ऐसी ऊंची श्रेणीको पहुंच गयी थी कि वह फल (functions) और (curves) वक्र मामूली गणित शास्त्रीके सामने साधारण और सरल हो गये जिनके ध्यानमात्रसे सौ बरस पहले गणितज्ञोंका सिर घूमने लगता था। यही बात थी कि १६ बरस हुए यूरोपके प्रसिद्ध गणिताचार्य्योंकी उत्कट इच्छा हुई कि कोई विद्वान इस बातको निश्चयपूर्वक निर्धारित कर दे कि आधुनिक फल-मीमांसाकेद्वारा पदार्थमात्रकी (constitution of matter) बनावटके विषयमें क्या क्या ज्ञान हो सकता है। यह विषय एक पुस्तकमें * पूर्णतया निर्धारित हो गया, जो १९०३ ई० में छपी थी। पहली बात इस पुस्तकमें यह दरसायी गयी कि फल मीमांसामें इतनी संभावना है कि पदार्थमात्रकी बनावटपर भिन्न भिन्न मीमांसाओंको लेकर (physics) भौतिक विद्याकी शाखाओंको गणितकी रीतिसे पूर्णतया जांच सकते हैं। दूसरे यह सिद्ध हुआ है कि एक (theory) मीमांसाकेद्वारा जो परिणाम निकलते हैं दूसरी मीमांसाओंके फलोंसे भेद रखते हैं, परन्तु इस भेदका विवेचन आजकलकी प्रचलित परीक्षाओंसे संभव नहीं है।

(५) *Fermat's Great Theorem.*

मैंने पांचवें और अन्तिम उदाहरणकेलिए

* इस महत्वपूर्ण आविष्कारके कर्त्ता और इस पुस्तकके रचयिता व्याख्याता महोदय (डा० गणेशप्रसादजी) स्वयं हैं। (विज्ञान-सम्पादक)

फ्रांसके बैरिस्टर और गणितके प्रसिद्ध आचार्य्य (Fermat) फरमाके (१६०१-१६६५) theorem प्रमेयोपपाद्य सिद्धान्तको चुना है जिसके अनुसार यदि n दोसे बड़ा हो तो

$$x^n + y^n = z^n$$

यह समीकरण [*whole numbers*] पूर्णांकोंसे साधा नहीं जा सकता। अर्थात् इस समीकरणमें x, y, z, के मान पूर्णांक नहीं हो सकते। यह theorem फर्माके मरनेके बाद एक पुस्तकके हाशियेपर लिखा हुआ पाया गया। परन्तु इसका प्रमाण फर्माका दिया हुआ अभीतक नहीं मिला है।

यद्यपि फर्माके मरे ढाई सौ बरस बीत गये, तथापि, गणितके विद्वानोंके सतत प्रयत्नपर भी आजतक यह theorem पूर्णतया प्रमाणित नहीं हो सका। n को ३ या ४ मानकर (Euler) आयलरने इसे सिद्ध किया। (Dirichlet) डिरिकलेने nको ५ मानकर सिद्ध किया और (Kummer) कुमरने कुछ विशेष मानोंको छोड़कर और सब मानोंको मानकर सिद्ध किया। प्रश्न ऐसा कठिन है कि यूरोपकी एक जगत्प्रसिद्ध विद्वत्संस्थाने १६०८ ई० में यह विज्ञापन दिया कि सौ बरसके भीतर जो मनुष्य इसे पूर्णतया सिद्ध कर देगा उसे पचहत्तर सहस्र मुद्राका पुरस्कार मिलेगा। आप लोगोंको सुनकर अवश्य आश्चर्य होगा कि आठ वर्षके भीतरही पांच सौ मनुष्योंके लगभग इस पुरस्कारके अधिकारी उठ खड़े हुए हैं और उनमेंसे प्रत्येकने प्रगट किया है कि उसको इस ७५०००) के लेनेमें कुछ भी संकोच नहीं है। इस प्रसंगमें यह भी कह देना उचित जान पड़ता है कि इन ५०० दावीदारोंमें ज़्यादातर ऐसे हैं जो थोड़ासा हिसाब पढ़कर डाक्टरी या वारिस्टरी या पुरोहिती करते हैं। वहुत कम ऐसे हैं जो गणितके आचार्य्य हैं।

खोजकी सामग्री

मेरे वक्तव्यका दूसरा भाग पहलेकी अपेक्षा संक्षिप्त ही होगा। गणितकी खोजकी उन्नतिकी दृष्टिसे संसारके सभी देशोंके चार विभाग मान सकते हैं। पहले विभागमें वह देश हैं जिनमें गणितकी खोजकी पूरी उन्नति हुई है। यह देश ब्रिटेन (विशेषतः इंगलिस्तान), फ्रांस, इटली, जर्मनी, और आस्ट्रोहंगरी हैं। दूसरे विभागमें अमेरिकाके संयुक्तराज्य, स्वीडन और हालैंडको रखता हूं। तीसरे विभागमें रूस जापान, भारतवर्ष अयलैंड और डेनमार्कको रखता हूं। चौथे विभागमें वह देश हैं जिनमें खोजका प्रायः अभाव है, वह हैं स्पेन, पुर्त्तगल, बालकन राज्यावली, नारवे आदि।

इस प्रसंगमें प्रत्येक देशकी खोजका वर्णन करना न तो आवश्यक है, और न रोचक ही होगा। इसीलिए मेरी समझमें भारतवर्ष तथा पहले विभागके कुछ देशोंकी खोजोंका वर्णन करना ही पर्याप्त होगा।

यूरोपमें तीन वड़े विश्वविद्यालय हैं जहां गणितकी खोज पूर्णरीत्या होती है। इनके स्थान केम्ब्रिज (इंग०), पैरिस (फ्रांस), और गैटिंगेन (जर्मनी) हैं। मुझको स्वयं इन तीनों विश्वविद्यालयोंका अनुभव है। मैं कह सकता हूं कि खोजकी सारी सामग्री जैसी इन विश्वविद्यालयोंमें सुलभ है संसारमें और कहीं नहीं। यह सामग्री विशेषतः चार प्रकारकी है। एक तो (१) खोजका पथप्रदर्शक गणित पारंगत आचार्य्य (२) दूसरे होनहार प्रतिभासम्पन्न विद्यार्थी (३) तीसरे सुसम्पन्न पुस्तकालय और (४) चौथे खोजके तुरन्त प्रकाशित करनेका उत्तमोत्तम प्रवन्ध। इन तीनों स्थानोंमें प्रत्येकमें कमसे कम चार (University Professor) गणिताचार्य हैं और उनके साथ लगभग १२ अध्यापक और १२ सुयोग्य विद्यार्थी हैं। इन तीनों स्थानोंमें प्रत्येकमें एक वड़ा पुस्तकालय है, और एक गणित-परिषत् है, जिसका कर्त्तव्य गवेषणाओंको शीघ्र प्रकाशित करना है। यथा, पैरिसकी अकेडमी (Academy)

तथा गैटिंगेनका (Gesellschaft) [गिज़ेलशाफ़्ट] । परिषदोंके सिवा खोजोंके सामयिक पत्र भी हैं। जैसे केम्ब्रिजका (*Messenger of Mathematics*) तथा (*Quarterly Journal of Mathematics*) और पैरिसका (*Journal de Mathematique*)

भारतवर्षके सम्बन्धमें कहते हुए यह खेद होता है कि जो देश किसी समय गणितके आविष्कारोंका एक मौलिक क्षेत्र था और प्रधान स्रोत था, इधर संसारमें बहुत पिछड़ी हुई दशाको पहुंच गया। सन् १८८६ ई० में भारतवर्षके एक सुयोग्य पुत्र श्रीमान् सर आशुतोष मुखोपाध्यायने एक नया आविष्कार प्रकाशित करके भारतको पुनः उसी दशामें लानेके प्रयत्नका सूत्रपात किया। इसके पीछे सन् १९१३ तक और दो आविष्कार प्रकाशित हुए थे, जो श्रीयुत डाक्टर श्यामादास मुकर्जी Ph. D.के थे, जो सम्प्रति शुद्ध गणितके युनिवर्सिटी लेक्चरर् हैं। सन् १९१४से कलकत्ता विश्वविद्यालयमें गणितके आविष्कार सर रासबिहारी घोष प्रोफेसरकी नियुक्तिके साथ ही साथ विधिपूर्वक आरंभ हुए। तबसे अबतक बहुतसे मौलिक आविष्कार प्रकाशित हुए हैं जिनका आदर भारतके सिवा संसारके सभी प्रतिष्ठित विद्वत्परिषदोंने किया है। इस विभागके अधीन चुने हुए गणित शास्त्रके पांच विशेषज्ञ विद्वान नवयुवक भी आविष्कारोंमें लगे हुए हैं। इनमें सभी प्रथमा श्रेणीके एम्. ए. वा एम्. एस्-सी हैं, और इनमेंसे चार तो एम्. एस-सी श्रेणियोंको नित्य पढ़ाते भी हैं। इनमेंसे प्रत्येक विद्वान उक्त प्रोफ़ेसरसे अपनी खोजोंके विषयमें सप्ताहमें तीन वार शिक्षा ग्रहण करता है। खोजका विषय संसारमें प्रचलित रीत्यनुसार संपूर्ण हो जानेके पहले गुप्त रक्खा जाता है। इसके सिवा कलकत्तेमें १९०९ से एक गणित-परिषत् (Mathematical Society) भी स्थापित है जिसकी ओरसे एक पत्र (*Bulletin of the Calcutta Mathematical Society*) भी प्रकाशित होता है। मौलिक आविष्कारोंका प्रकाशित करना ही इसका कर्त्तव्य है। इस पत्र और परिषत्का गणितके संसारमें उतना ही आदर है जितना इंगलैंड जर्मनी और फ्रांस आदि देशोंके पत्रों और परिषदोंका। यह कहना बाहुल्यमात्र होगा कि गणितविषयक साम्प्रतिक खोज जो भारतमें हो रही है उसका श्रेय अभी एक मात्र कलकत्तेको ही प्राप्त है।

सर आशुतोषके अधिकारकालमें अन्य उन्नतियोंके सिवा कलकत्ता विश्वविद्यालयमें एक बड़े महत्वका परिवर्द्धन हुआ है। यह गणितकेलिए सर्वाङ्गपूर्ण पुस्तकालय है। यह सभी समझ सकते हैं कि खोज करनेवालेको अद्यपर्य्यन्त पता रहना चाहिए कि संसारमें किनकिन बातोंकी खोज हो चुकी है और किन किन की होनी है। सारांश यह है कि उसे अपने विषयमें अद्यपर्य्यन्त और सर्वाङ्ग पूर्ण अभिज्ञता होनी चाहिए। ऐसी विद्वत्ता प्राप्त करनेकेलिए ऐसे पुस्तकालयकी आवश्यकता है जिसमें आजतकके संसारभरके सभी प्रामाण्य ग्रंथ और पत्र संगृहीत हों, इतनाही नहीं वरन यह संग्रह बराबर अहर्निश जारी रहना चाहिए। कलकत्ता विश्वविद्यालयमें सर आशुतोषकी बदौलत ऐसा विशद और बृहत् संग्रह हालमें ही हो गया है और यह संग्रह बराबर जारी है, जिससे गणितके विद्वानोंको पूर्ण और अद्यपर्य्यन्त अभिज्ञता प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई नहीं है। यह भी भारतकेलिए एक गौरवकी बात है कि एशिया महाद्वीपमें शायद जापानमें ही ऐसा संग्रह हो तो हो। अन्य किसी देशमें तो निश्चयपूर्वक नहीं है। इस संग्रहमें कई लाख रुपयोंका सद्व्यय हुआ है और इस शुभ कार्य्यमें अब भी किसी प्रकारकी कमी नहीं की जा रही है।

४–भुनगा पुराण ।

[गताङ्कसे सम्मिलित]

(लेखक–प्रोफ़ेसर रामदास गौड़, एम० ए०)

कपाल खण्ड ।

श्री भुनगेशजी बोले, हे भुनगानन्दनो ! जिस दृष्टिसे मैं मानवग्रहको इस भुनगा शरीरसे देखता हूं, अथवा जिस दृष्टिसे यूकाचार्य्य जुंगऋषिजी महाराज इसका वर्णन कर गये वह और ही बात है । हम लोग विशालकाय हैं । एकतो शरीरके अनुमानसे हम लोगोंकी दृष्टि उतनी सूक्ष्म नहीं, दूसरे हमारे यन्त्र भी इतने समर्थ नहीं, कि इस जगतके पूरे दृश्यको दिखानेमें सक्षम हों । इन्हीं कारणोंसे हम लोगोंको मानवग्रहका वास्तविक पता नहीं चल सकता । वह मेरा दुर्भाग्य नहीं सौभाग्य था, कि मुझे ऐसा सूक्ष्म शरीर धारण करना पड़ा, कि मैं उस ग्रहके बल्कि ब्रह्मांडके परिभ्रम देशमें रहनेके योग्य हो गया । देखनेमें इस ब्रह्मांडकी लम्बाई चौड़ाईकी अपेक्षा ढाई तिगुनीके लगभग होती है । परन्तु भीतरके रहनेवालोंको इसका पता नहीं लग सकता । भीतर इतने लम्बे लम्बे देश हैं और चौड़ाई इतनी कम है, कि लम्बाई और चौड़ाईमें कोई निष्पत्ति ही नहीं हो सकती । जिस प्रकार हम तरल वायुमण्डलमें सांस लेते और जीते हैं, उसी प्रकार वहांके निवासी भी एक तरहके द्रव-मंडलमें रहते सहते और जीवन विताते हैं । यह द्रव-मंडल नमकीन जलका है जो बड़ी तीव्र धारासे समस्त रक्तखण्डमें वहा करता है । रक्त खण्डके रहनेवाले देवयोनिके प्राणी हैं जिनका विचार शुद्ध और परिपक्व, जिनका आचार पवित्र और निर्मल है । ये देवगण बड़े कर्तव्यनिष्ठ और धर्मपरायण हैं । लोक संग्रहकी ओर इनका ध्यान निरन्तर बना रहता है, जनताकेलिये स्वार्थत्याग करना इनका स्वभाव है । अपने देशकेलिये प्राण दे देना इनकी साधारण चाल है । मेरी इनकी बड़ी घोर शत्रुता थी, परन्तु कहा है, कि 'शत्रोरपि गुणा वाच्या, दोषावाच्या गुरोरपि ।' वह मेरे शत्रु अवश्य थे परन्तु ऐसे शत्रु थे जो सहज ही अपने बैरियोंके भी आदरके पात्र हो सकते हैं । इनका साधारण जीवन भी परमार्थ और स्वार्थत्यागके जीवनका नमूना है । समस्त रक्तखण्डकी रक्षा और उसका संचालन करना इन्हींके हाथोंमें है और इसी कार्यमें वह अपना सारा जीवन लगा देते हैं । इनका रूप और इनकी जातियां अलग अलग हैं । यों तो समस्त मानव ब्रह्मांडमें बहुतसी जातियों और बहुतसे रूपके देवगण निवास करते हैं, परन्तु रक्त-खण्डके निवासियोंको हम तीन जातियोंमें विभक्त कर सकते हैं । क्षत्रिय जो श्वेत-वर्णके होते हैं, और वैश्य जो पीत *वर्णके होते हैं और शूद्र जो लाल तो होते हैं परन्तु वैश्योंसे आकारमें छोटे होते हैं । भुनगा शरीरमें होतेहुए और जुंगादि ऋषियोंके रूप और आकारादिपर विचार करते हुए यह कहना पड़ता है, कि यह देवता लोग जुंगों और भुनगोंसे इतने छोटे होते हैं, कि उस दिन जुंग महर्षिने इन्हेंही श्वेत और लाल मछलियां बतलाया था । पर जब मैं अपने उस शरीरके परिमाणसे विचार करता हूं जिस शरीरसे मैं इन देवताओंसे युद्ध करने गया था, तो मुझे जान पड़ता है, कि भुनगा और यूकके शरीर पर्वताकार दैत्योंके शरीर होंगे, क्योंकि भुनगोंके एक घन गज़के भीतर पचास लाख वैश्यदेवता आठ हजार क्षत्रिय और पांच लाख शूद्र अर्थात् पचपन लाख आठ हजारकी आबादी है । † इन

Zoology प्राणि शास्त्र]

* रक्तमें साधारणतः रक्ताणु और श्वेताणु दो प्रकारके रक्त कण समझे जाते हैं । जिन्हें हम श्वेत कहते हैं वह वस्तुतः रंग हीन हैं और रक्तकण वस्तुत: अलग अलग पीले हैं, एकत्र लाल दीखते हैं । तीसरी जातिके रक्तकणके विषयमें अभी बहुत थोड़ा मालूम हुआ है । ले०

†हम पहले कह आये हैं कि जुओंका एक गज एक मिली-मीटरके बराबर है । अतः उनका एक घन गज एक घन मिली मीटरके बराबर होगा ।

जातियोंमें परस्परकी छोटाई बड़ाई भी थोड़ी नहीं है। क्षत्रिय वैश्यकी अपेक्षा कुछ बड़ा तो होता है, परन्तु शूद्र वैश्यका आधा ही होता है। क्षत्रियोंमें भी चार जातियाँ होती हैं, गुरुलिम्फाणु, लघुलिम्फाणु; बहुरूपी और अम्लरागेच्छु। आबादीमें सैकड़ा पीछे गुरुलिम्फाणु चार और लघुलिम्फाणु तेईस बहुरूपी उनहत्तर और अम्लरागेच्छु चार होते हैं। क्षत्रियोंमें दो एक और उपजातियां हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। क्षत्रियोंके दिव्य शरीरमें कोई रङ्ग नहीं होता। यह उच्च प्रकारके देवता हैं इसीलिए इनकी छाया नहीं पड़ती। भुनगानन्दनो, तुमको याद होगा, कि वैश्म्पायनजीने कहा था, कि दमयन्तीके स्वयम्वरमें नलके साथ साथ उन्हींका रूप धारण करके देवता लोग भी पधारे थे, उन अनेक नलोंमें असली नलका पता लगाना कठिन था। परन्तु दमयन्तीने जयमाला असली नलकोही पहनायी, क्योंकि जितने नकली नल थे किसीके शरीरकी छाया नहीं पड़ती थी, और दमयन्तीको देवताओंके दिव्य शरीरका हाल मालूम था। मुझे इस कथाकी सत्यतामें जो कुछ सन्देह होता था, वह सन्देह रक्त-खण्डमें जाकर मिट गया। सचमुच कुछ देवताओंके शरीर पारदर्शी होते हैं। इतना ही नहीं और भी एक बड़ी विचित्र बात देखनेमें आयी। यह कामरूप स्वेच्छाचारी देवता निरन्तर अपने शरीरका आकार अपनी इच्छानुसार बदलते रहते हैं। अभी सूर्य्यकी नाईं गोल हैं, क्षणभर पीछे गोलसे त्रिकोण हो गये, पलक भांजतेमें उनके शरीरसे हाथ पैर निकलने लगे और देखते ही देखते वह भी गुप्त हो गये। कभी कभी एक देवता अपने शरीरको लम्बा करने लगता है। लम्बा करते करते बीचसे दोभाग हो जाते हैं जो दोनोंके दोनों अलग अलग व्यक्ति रूपमें रहने लगते हैं। इसी प्रकार इन दो व्यक्तियोंमें भी यही सामर्थ्य है, कि दोके चार हो जायं, और चारके आठ इत्यादि। इस प्रकार यह देवगण ब्रह्माकी नाईं अयोनिज सृष्टि करनेमें सदैव समर्थ हैं। सच तो यह है, कि सारे देवलोकमें बल्कि सारे रक्त-खण्डमें सृष्टि अयोनिज ही होती है। बहुरूपी क्षत्रिय अपने शरीरके भीतरी आकारको भी निरन्तर बदला करते हैं।

वैश्योंकी आबादी बहुत बड़ी है। यह गोल तो अवश्य होते हैं, परन्तु साधारण वैश्योंमें और इन देवताओंमें यह अन्तर है, कि उनकी तोंद जितनी बड़ी हो वह उतने ही रोबीले रईस समझे जाते हैं, परन्तु इन देवताओंकी तोंदके पिचके होनेकी ही तारीफ़ है। बिलकुल गेंदकी नाईं गोल होनेसे और दोनों ओर पिचके रहनेसे आकार कुछ कुछ चकरी जैसा हो जाता है। जिस मानवग्रहके रक्त-खण्डमें मेरा प्रवेश हुआ था उसमें केवल वैश्योंकी आबादी डेढ़ पद्मके लगभग थी। यद्यपि वैश्योंका शरीर पीले रंगका होता है तथापि बहुतसे वैश्योंका समूह दूरसे लाल लाल दिखाई देता है। शूद्र देवताओंका शरीर चक्राकार होता है और यह अपने सेवाधर्म्मके लिये देवलोकमें प्रसिद्ध हैं।

इन जातियोंका व्यापार अलग अलग है। वैश्यका धर्म अर्थोपार्जन है और उसके द्वारा संसारका पालन पोषण करना है। वैश्यजाति ब्रह्मलोकमें होते हुए विष्णुलोकमें जाती है और वहांसे विष्णु-*पदामृत लेकर सारे देवलोकमें वितरण करती है। क्षत्रिय जातिका कर्तव्य है, कि समस्त देवलोककी रक्षा करे, और पुलीसकी नाईं देखती रहे, कि कोई बाहरी प्राणी आकर इस मानव ब्रह्मांडपर अधिकार तो नहीं जमाता है। यदि बाहरी शत्रुओंकी सेना इस लोकमें आ गयी तो उससे युद्ध करना इन्हीं क्षत्रियोंका काम है। उस समय जीवन और मरणका प्रश्न हो जाता है। अधिकांश इन देवताओंको ही जयश्री प्राप्त

* विष्णुपदामृत आयुर्वेद ग्रन्थोंमें ओषजन वायव्यको कहते हैं। महामहोपाध्याय श्रीगणनाथसेनजीने 'प्रत्यक्षशारीरम्' की एक टिप्पणीमें ऐसीही व्याख्या की है। (खेद है वह ग्रन्थ लेखक के सामने सम्प्रति उपस्थित नहीं है)। ले०

होती है। जिस दिन इस देवासुर संग्राममें यह क्षत्रियजाति हार जाती है और पूर्ण पराजयसे नष्ट हो जाती है, उसी दिन मानवब्रह्मांडकेलिये महाप्रलय आ जाता है। परन्तु वाहरे क्षत्रियो! तुम्हारी विचित्र वीरता, असीम साहस, अतुल पराक्रम अकथनीय है। तुम प्राणपणसे लड़ते हो और अपने जीते जी शत्रुको अधिकार नहीं देते। यह सच है, कि तुम अपने शत्रु लुटेरोंकी नाई पराये देशपर अधिकार नहीं जमाना चाहते तौभी अपने अधिकारोंकी रक्षामें प्राण दे देते हो। सत्यप्रियता न्यायपरायणता इसेही कहते हैं। तुम्हारे रहते कौन कह सकता है, कि शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र दशरथ आदिकी कहानियां मन गढ़न्त हैं।

इत्यार्षे श्रीभुनगा महापुराणे कपालखण्डे देवजाति वर्णनो नाम चतुर्थोऽध्यायः।

जीवन संग्राम

पिछले लेखमें हम बतला चुके हैं कि इस पृथ्वीपर अपना जीवन व्यतीत करनेकेलिए प्राणियों तथा वनस्पतियोंको किसी न किसी प्रकारकी क्षमता अवश्य मिली है, जिसके कारण वे इस जीवन संग्राममें टिके हुए हैं। फर्क केवल इतना है कि किसीमें क्षमता अधिक और किसीमें कम है। जिनमें क्षमता कम है उनका जीवन सुखमय नहीं होता।

पिछले लेखमें यह बतलानेका अवकाश न मिला कि जीवनसंग्राम केवल आपसमें ही नहीं होता परन्तु प्रत्येक प्राणी तथा वनस्पतिको प्रकृतिका भी सामना करना पड़ता है। जो अपना शरीर प्रकृतिके अनुकूल कर सकता है वह सुखी रहता है और जो उसके विरुद्ध जाता है वह दुख पाता है। शीत देशोंमें सूर्यकी किरणोंमें बिलकुल तेज नहीं रहता, इस कारण वहाँके मनुष्योंके चमड़े सफेद होते हैं। पर जैसे जैसे अधिक उष्ण देशोंकी ओर जाते हैं, तैसे तैसे वहाँके निवासियोंके शरीरका रंग गहरा होता जाता है। सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंसे मनुष्य-शरीरकी रक्षा करनेके निमित्त प्रकृति धीरे धीरे रंग उत्पन्न करने लगती है। अंगरेज़ लोग जब ताज़े विलायतसे आते हैं तब उनका रंग बिलकुल सफेद रहता है, परन्तु कुछ वर्ष यहां रहनेके उपरान्त उनके चेहरे और हाथोंमें गेहुँआ रंग आजाता है। सूर्यसे उनकी रक्षा करनेकेलिए यह प्रकृतिका उपाय है। उनका शरीर इसलिए सफेद बना रहता है कि उसकी रक्षा पोशाक करती रहती है। यदि कोई श्वेत रंगका अभिमानी साबुन आदिका अधिक प्रयोग करके प्रकृतिकी चेष्टा निष्फल करदे, तो वह उसके प्रतिकूल जानेके कारण कई प्रकारके रोगोंसे क्लेश पावेगा। उदाहरणके लिए ऐसे लोगोंको लू बहुत जल्द लगती है, उन्हें मच्छड़ खटमल आदि उष्ण देशकी व्याधियां अधिक सताती हैं।

उत्तर हिंदुस्तानके निवासी बहुधा लम्बे होते और उनकी पिंडलियां क्षीण होती हैं, क्योंकि उनका देश एक सपाट मैदान है और वे लम्बी लम्बी डगें भर सकते हैं। चलनेमें उनको विशेष परिश्रम नहीं होता, इस कारण उनके पैर गँठीले नहीं होते। परन्तु नैपाल निवासी गुरखों, कांगड़ा-निवासी डोगरों और सहियाद्रि-निवासी मरहठोंकी छाती चौड़ी, पैर गठीले और कद छोटा होता है। वजह यह है कि पहाड़ी जमीनपर लम्बी डगें भरना असम्भव है; यह देख प्रकृतिने उनकी टाँगें छोटी रक्खी हैं, परन्तु वहांपर चलने फिरनेसे कलेजे, जाँघ तथा पिंडलियोंको बड़ी मिहनत करनी होती है। इस वास्ते उनकी छाती चौड़ी और पैर गठीले हो जाते हैं। जो जीवधारी जैसे देशमें पैदा होता है उसमें रहने योग्य बहुत कुछ उसे शरीर भी मिल जाता है और यदि कमी भी हुई तो प्रकृतिका सामना करते करते उसमें धीरे धीरे परिवर्तन हो वह योग्य भी हो जाता है।

यदि कोई खासा ऊंचा पूरा मनुष्य गंगा किनारेसे उठकर नैपालके पहाड़ोंमें जा बसे तो दो तीन पीढ़ीमें उसके वंशजोंके शरीर नैपालियों सरीखे छोटे और गठीले हो जावेंगे। उसके शरीर-में भी थोड़ा बहुत परिवर्तन अवश्य होगा, परन्तु बहुत धीरे धीरे।

लोगोंके अनुभवमें आता है कि एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें जानेसे उनकी तबीयत बिगड़ जाती है, वहाँका पानी माफिक नहीं आता। इसका मतलब यह है, कि उस प्रदेशकी आबहवासे जीवन-संग्राम करनेमें उनको जय नहीं मिली। कभी कभी लोग परदेश जाकर टिक तो जाते हैं परन्तु फिर भी थोड़े बहुत बलहीन हो जाते हैं और यदि वहां बस गये तो उनकी सन्तति और भी बलहीन हो जाती है। उनके बारेमें यह कह सकते हैं, कि जीवन-संग्राममें उन्हें जय तो मिली परन्तु पूर्ण रूपसे नहीं। पंजाब और संयुक्त-प्रान्तके सैनिक यदि बहुत दिनोंतक दक्षिण, बंगाल अथवा ब्रह्मा देशमें रह जावें तो उनका भी यही हाल होगा। अंगरेज़ लोग इस देशमें अधिक दिन रह जानेके उपरान्त इसी प्रकार क्षीण होने लगते हैं। कारण यही है कि वे लोग प्रकृतिके नियमोंके अनुकूल न चलकर उसके प्रतिकूल चलते हैं। उत्तर हिन्दुस्तानकी आब-हवा शुष्क है, वहाँ बाजरा, उड़द, गेंहूँ, सत्तू आदि वस्तुओंके खानेसे शरीरको बल मिलता, और लाभ होता है, परन्तु बंगाल सरीखे उष्ण-तर देशमें वे लोग अपने भोज्य पदार्थ वही रखते हैं। उपरोक्त भोजन वहाँकी प्रकृतिके अनुकूल नहीं होता, अजीर्ण आदि रोग उन्हें सताने लगते हैं और वे बलहीन हो जाते हैं।

प्रकृतिके नियमोंके अनुकूल न चलनेसे मनुष्य-को अपने देशमें ही अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं, परदेशकी बात दूसरी है। शरीरकी आवश्यकताओं-को यथोचित रीतिसे पूर्ण न करनेसे ऋतुके अनुसार खान पान रहन सहन न बदलनेसे तथा उचित व्यायाम अथवा शारीरिक परिश्रम न करने-से मनुष्य कहीं भी अनेक व्याधियोंसे क्लेशित हो अकाल मृत्युको प्राप्त होगा अर्थात जीवन-संग्राममें हार जावेगा।

अब जरा यह देखना चाहिये कि जीवन संग्राममें प्रकृति अन्य जीवधारियोंको किस प्र-कार सहायता देती है। वनस्पत्याहारियोंमें हाथी सबसे बली है परन्तु उसे जलसे अधिक प्रेम है, इस कारण वह केवल ऐसे देशोंमें पनपता है, जहाँ जलकी बहुतायत हो, जैसे आसाम, ब्रह्मा, बंगाल, स्याम लंका आदि देशोंमें। जहां पानी इफरातसे है, वहां वनस्पतियां भी खूब होती हैं और वहीं उस भीमकायके योग्य भोजन मिलेगा। उसका सिर बहुत भारी है, जिसका बोझ संभा-लनेके लिये मोटी तथा छोटी गर्दन रक्खी गई है। उसे ऊँचे पेड़ोंसे पत्ते तोड़कर खानेके लिये तथा मनमाना जल पीने तथा नहानेमें सहा-यता देनेके लिए लम्बी सूँड़ मिली है। जिन देशोंमें वह उत्पन्न होता है वहाँ रहनेके लिये उसका शरीर भी कैसा योग्य बना है?

ऊँटको मरुस्थलका हाथी कहें तो अनुचित न होगा, उसके शरीरकी रचना मरुभूमिके ही योग्य है, रेतमें पैर धँस न जावें, इसलिए उसके तलुवे चौड़े गद्दोदार बने हैं। मरुस्थलमें पानी सिर्फ़ गाहे बगाहे मिल सकता है, इस कारण उसमें ७, ८ दिनके लिये पानी पेटमें रख लेनेकी शक्ति दी गयी है। मरुदेशमें बबूलके सिवाय और क्या उत्पन्न हो सकता है? परन्तु जिसके काँटेके लग जानेसे मनुष्य महीनों खाटमें पड़ा रहता है, उसी बबूलको ऊँट खाकर अपना पेट भर सकता है। उसके थूकमें कांटोंको घोल कर नरम करनेकी शक्ति है! फिर तारीफ़ यह कि ऊपर, नीचे, दाहिने, बाँयें जहाँ कहीं खाने योग्य कोई वनस्पति हो वह अपनी लचीली लम्बी गर्दन घुमाकर खा सकेगा। रेगिस्तानमें रहनेवाले एक बड़े जीवकी यदि ऐसी गर्दन न

होती तो वह विचारा वहाँकी कठोर प्रकृतसे टक्कर कैसे खा सकता ? इसी ऊंटको जब तर देशोंमें ले जाते हैं, तब वहांकी कीचड़ आदिमें चलनेमें उसे अत्यन्त कष्ट होता है। रेतीले देशोंमें मच्छड़ पिस्सू डांस आदि कीड़े बहुत कम होते हैं, इसलिये गाय, भैंस, घोड़े आदि पशुओंके समान उनके हमले सहनेकी शक्ति ऊंटमें बहुत कम रहती है। गर्मतर देशमें तो मच्छड़, पिस्सू आदि जीवोंकी विलायत है। वहाँ आनेपर इनके कारण ऊंटको बड़ा कष्ट होता है, उसके घाव हो जाते हैं जो जल्दी सड़ने लगते हैं, और वह विचारा तड़प तड़प कर मर जाता है। वहांके जीवन युद्धमें बहुत कम ऊंट जय पा सकते हैं। उनमें उतनी क्षमता नहीं। परन्तु गाय बैल, घोड़ों, गधों और कुत्तोंमें अधिक क्षमता होनेके कारण वे गर्म, शीत, तर शुष्क सभी देशोंमें रह सकते हैं।

अन्य प्राणियोंकी शरीर रचना तथा उनका रहन सहन देखनेसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रकृतिने प्रत्येक प्राणीको किसी न किसी प्रकारकी क्षमता दी है और वे उसकी सहायतासे अपना जीवन व्यतीत कर लेते हैं। फ़रक केवल इतना ही है कि किसीको एक ही प्रकारकी आबहवाके लायक बनाया है और किसीके शरीरमें इतनी शक्ति है कि वह कई प्रकारकी आबहवामें टिक सकता है। सिवाय इसके प्रत्येक प्राणीका शरीर इस प्रकारका बना है कि जिस प्रकारका जीवन उसे व्यतीत करना है, उसकी कठिनाइयाँ झेलनेमें उसे सहायता मिले। तोतेको कड़ी चोंच देकर उसे बदाम सरीखे कड़े फल खाने योग्य बनाया है, गौरय्याकी नरम चोंच है। वह केवल अन्नके दाने और छोटे छोटे कीड़े मकोड़े खा सकती है। बतकको जुड़े नख देकर पानीमें तैरने योग्य बनाया है, इत्यादि।

अब यह देखना चाहिये कि वनस्पतियोंका क्या हाल है। उनके अवलोकन करनेसे भी यही ज्ञात होता है कि प्रकृतिने प्रत्येकको एक विशेष देश तथा जल वायुमें जीवन युद्ध कर सफलता प्राप्त करने योग्य बनाया है। उनको दूसरे प्रांतमें ले जानेसे उनकी तबीयत नासाज़ हो जाती है, उनमें कमज़ोरी बढ़ने लगती और कई मर भी जाती हैं। मनुष्योंके समान वनस्पतियोंमें भी कई पौदे लखनवी मिजाजके होते हैं अर्थात् गर्मी, सर्दी आदि ज़्यादा बरदाश्त नहीं कर सकते। उनको ज़रा तकलीफ़ हुई कि सूखने लगे। पपीतेका पेड़ बड़ी कोमल प्रकृतिका होता है, ज़रा पानी कम या अधिक नहीं सह सकता। उसके विपरीत अमरूद, सीताफल (शरीफा) पीपल आदि पेड़ ऐसे पक्के शरीरके होते हैं कि उनको सब जगह आनन्द है। जिस प्रकार काबुली अथवा पंजाबी लोग किसी भी देशमें जाकर औरोंकी अपेक्षा सुखी रहते हैं, उसी प्रकार ये पेड़ भी अनेक देशों तथा जल वायुमें अपना जीवन व्यतीत कर लेते हैं

फिर भी चाहे वह सक्षम हो अथवा अक्षम, प्रत्येक वनस्पति किसी विशेष प्रकारकी आबहवा और धरतीके ही अनुकूल बनी है और उसी जगह उसका पूर्ण रूपसे विकास हो सकता है।

चाँवलके लिये गर्मतर देश ऐसा सपाट चाहिये, जहां बन्धान बनाकर पानी रोका जा सके। चायके लिये भी पानी अधिक चाहिये, पर शर्त यह है कि वह बरसकर बह जावे। उसके ठहर जानेसे चायकी जड़ें जल्दी गल जाती हैं। इसी कारण चायकी खेती ऐसे पहाड़ोंकी ढालू ज़मीनमें होती है जहां अति वृष्टि होती हो। केला, नारियल,सुपारी, हल्दी आदिके पेड़ भी अति वृष्टि चाहते हैं, उनकी जड़ें बहुत कुछ पानी सह सकती हैं, परन्तु ये पेड़ लू लगनेसे बहुत कष्ट पाते हैं। नतीजा यह कि उत्तम देशोंमें ये कोकण, मलाबार, त्रावणकोर बंगाल आदि ऐसे देशोंमें पाये जाते हैं जहां जल बहुत ज़्यादा है और समुद्रतटके किनारे होने

से लू भी नहीं चलती। उत्तर हिंदुस्तानमें ये पेड़ लगानेसे एक तो होते ही नहीं और यदि मिहनत करनेसे लग भी गये तो अधमरे होते हैं और उनके फल भी अच्छे नहीं होते।

ज्वार, बाजरा और उड़दके लिये उष्ण वायु चाहिये, परन्तु जितना जल चाँवलको चाहिये उससे आधे तिहाईमें उनका काम चल जाता है। इस कारण दक्षिणकी उच्च समभूमिमें, जहाँ तीस चालीस इंचसे अधिक वर्षा नहीं होती, ज्वार अधिक होती है। बाजरेको और भी कम जल चाहिये, इस कारण राजपूतानेकी मरुभूमिके आसपासकी प्रायः रेतीली धरतीमें उत्पन्न होता है। गेहूंको अच्छी ख़ासी सर्दी और ओस चाहिये, थोड़ा पानी भी चाहिये। इसलिये वह उत्तर तथा मध्य हिंदुस्तानके मैदानोंमें, जहाँ ठंड अच्छी पड़ती और एक बार महावट भी हो जाती है, बहुतायतसे होता है। रूस, यूनैटेड स्टेट्स, रोमानियांमें जड़कालेमें वर्फ़ गिरती है, जो गेहूंको सहय नहीं है; परन्तु वहाँ की ग्रीष्मऋतु हिन्दुस्थानकी शिशिर और हेमन्तऋतुके समान हो जाती है। इस सबबसे उन देशोंकी गर्मीमें ही गेहूंकी फ़सल पैदा होती है। गेहूंकेलिए नदियोंके किनारेकी काली धरती उत्तम समझी जाती है। गोदावरी नदीके आसपासके कछारोंमें काली धरती बहुत है, परन्तु वहां अच्छी सर्दी नहीं पड़ती। इस कारण वहाँ बहुत कम गेहूं उत्पन्न होता है और यदि हुआ भी तो स्वाद रहित और निर्जीव। वहाँकी आबहवासे संग्राम करनेमें वह कमजोर हो जाता है। चनेको गेहूंकी अपेक्षा और भी कम पानी चाहिये, वह ऐसे देशोंमें भी सुखसे पैदा होता है जहाँ ओस पड़ती है पर महावट नहीं होती है।

आम एक सत्तम पेड़ है, वह कई प्रकारकी आबहवामें पनप सकता है। परन्तु गङ्गा यमुना आदि नदियोंके किनारेकी पीली कंकड़ रहित धरतीमें वह जैसे उत्तम फल दे सकता है वैसे अन्य स्थानोंमें नहीं। इसी कारण यह फल उत्तर हिन्दुस्थानकी मेवा हो रहा है। ख़रबूज़े, तरबूज, भटे, ककड़ी आदिको पानी बहुत चाहिये, पर उनकी जड़ोंमें यह शक्ति नहीं कि कड़ी मिट्टीमें घुसकर बढ़ें। इसलिये नदियोंके किनारेकी रेतीली धरतीमें ही उनका जीवन सुखमय और उनका विकास पूर्णरूपसे होता है। अन्य स्थानोंमें उनके बीज लगानेसे फल तो हो जाते हैं पर आकारमें छोटे तथा स्वादमें फीके हो जाते हैं।

इस लेखका सार यह है कि जो प्राणी और वनस्पति प्रकृतिके अनुकूल स्थानमें रहेंगे वे सुख पावेंगे और उसके प्रतिकूल स्थानमें यदि गये तो उन्हें कठिन जीवन-संग्राम करना पड़ेगा। उस युद्धमें यदि उनका नाश न हुआ तो वे बलहीन अवश्य हो जावेंगे।

केंचुएका महत्व

[लेखक—श्रीयुत कृष्णदेवप्रसाद गौड़]

संसारमें किसी वस्तुको तुच्छ न समझना चाहिये। संसारके सब प्राणी ईश्वरने बनाये हैं। हमको कोई अधिकार नहीं कि उनको किसी प्रकार कष्ट दें। इतना ही नहीं, न मालूम किसी छोटेसे जीवसे संसारमें क्या काम निकलता हो, या निकले। प्रकृतिकी अद्भुत लीलाका पारावार नहीं है। क्या पता था कि ज़रासी भापसे इतने बड़े इंजनकी उत्पत्ति होगी? कौन जानता था कि साधुओंके माला फेरकर घासपर रखदेनेसे और घासके खिंच आनेसे विद्युत्शास्त्रकी नींव पड़ेगी। इसी प्रकार केंचुए भी तुच्छ दृष्टिसे देखे जाते थे और उनकी कोई परवाह न करता था। जीव विज्ञानके न जाननेवाले अब भी इसके गुणोंको नहीं जानते।

पहले इस छोटेसे जानवरके बारेमें हम लोगोंको कुछ विशेष न मालूम था। सम्वत १८३४ वि०

Zoology प्राणि शास्त्र]

में ह्वाइट नामक एक प्रकृतिवेत्ताने एक मित्रको लिखा "छोटेसे छोटे कीड़े मकोड़े भी इतने कामके होते हैं और प्रकृतिके मितव्ययमें इतनी सहायता करते हैं कि मामूली लोग उसका अनुभव नहीं कर सकते। वह इतने छोटे होते हैं कि मनुष्यमात्रका ध्यान उनकी ओर नहीं जाता और इस कारण वे अपना काम बे रोक टोक बड़ी तेज़ीसे करते हैं। केंचुआ देखनेमें चाहे तुच्छ हो और प्रकृतिके ज़ंजीरका एक हीन ही कड़ा क्यों न हो, परन्तु यदि संसारसे निकाल दिया जाए तो अनर्थ ही हो जाय। इनसे वनस्पतियोंके उगनेमें बड़ी सहायता मिलती है। यह पृथ्वीको छेदकर मिट्टीको पोली बना देते हैं और इसीसे बरसातका पानी और पौदोंकी जड़ें आसानीसे पृथ्वीमें प्रवेश कर सकती हैं। उनके शरीरमेंसे सेवईकी तरह जो मिट्टी निकलती है वह बड़ी ही महीन होती है और खेती बारीमें वह पौदोंके उगने और उनके खानेमें बड़ी सहायता देती है।" यह ह्वाइटने लिखा तो अवश्य परन्तु केंचुएके विषयमें डारविनने सौ बरससे कुछ ज्यादा हुए भली प्रकार अपनी एक पुस्तकमें लिखा। बरसों उसने बड़ी छान बीन और परिश्रम किये और तब संसारको पता लगा कि जिस जन्तुको हम लोग बिलकुल बेकाम भद्दा और निकृष्ट समझ रहे थे वह वास्तवमें मनुष्य जातिका उपकारक और सहायक है।

जिस समय डारविन केंचुएके रहन सहन, और उसके जीवनरहस्यके पता लगानेमें कठिन परिश्रम कर रहा था, उसके एक मित्रने कहा कि ऐसी तुच्छ वस्तुपर इतना परिश्रम और समय लगाना बिलकुल भूल है। परन्तु डारविन अच्छी तरह समझता था कि उसका परिश्रम व्यर्थ न होगा।

केंचुएका रहन सहन

केंचुएका शरीर अच्छी तरह देखनेसे पता लगता है कि वह छोटे छोटे छल्लोंसे मिलकर बना हुआ है। भिन्न भिन्न जगहोंके केंचुओंमें छल्लोंकी भिन्न भिन्न संख्याएँ होती हैं। केंकुएके पेटकी ओर दो दो छोटे छोटे महीन कड़े बालके दो जोड़ होते हैं। यह बाल कुछ पीछेकी ओर झुके रहते हैं और इस कारण पीछेकी ओर केंचुआ नहीं हट सकता क्योंकि जब पीछे हटने लगता है तो यह बाल पृथ्वीमें धंस जाते हैं। सरकी ओरका भाग नोकीला होता है। मुंहके ऊपर कुछ चमड़ेका भाग साहब लोगोंकी टोपीकी तरह झुका रहता है। इसीकी सहायता से पत्तीके टुकड़े तथा भोज्य पदार्थ वह उठा सकता है। हाथीकी सूंड़की अंगुलीकी भांति इसमें भी बड़ी सचेतनता होती है। यह तो लोग जानते ही हैं कि इसके आंख नहीं होती लेकिन आगेका भाग प्रकाशसे संचेत्य होता है। उसको अंधेरे उजालेका पता लग जाता है, और इसी कारण दिनमें कम निकलता है। बरसातमें उसके बिलमें पानी चले जानेसे वह दिनमें निकल आता है, नहीं तो रातमें ही निकलकर चरता और हवा खाता है। इसके कान भी नहीं होते और न शब्द सुन सकता है परन्तु पृथ्वीके हिलावको तुरंत जान जाता है।

वह रहनेकेलिये बड़े लम्बे लम्बे बिल बनाता है। तीन या चार फुटतक इसके बिल गहरे होते हैं। मुलायम ज़मीन, जैसे जुते हुए खेतमें, वह केवल अपने मुंहको नीचे करके बरमाकी तरह छेदता हुआ चला जाता है। छेदते समय उसके शरीर लगनेके कारण बिलकी दीवार बिलकुल चिकनी हो जाती है और उसके शरीरके छेदों *मेंसे पसीनेकी भांति एक तरल पदार्थ निकलता है जिससे बिलके दीवारपर पलस्तर हो जाता है और दीवार एक दम गिर नहीं सकती। परन्तु जब कड़ी मिट्टीसे मुक़ाबला करना होता है, या किसी प्रकारसे मिट्टी ऐसी हो जाती है कि वह अपने शरीरसे छेद नहीं सकता तो वह मिट्टी खाने लगता है। जो मिट्टी वह खाता है वह मुहमेंसे गलेमें जाती है। गलेके बाद एक

* Dorsai pores

Sकी शकलकी नली होती है उसमें जाती है। इसके बाद एक मांसकी चक्की होती है जिसमें दो छोटे छोटे पत्थर भी होते हैं। इन्हीं पत्थरोंकी सहायतासे कड़ी मिट्टी अथवा पत्थरके कण या और छोटे छोटे कड़े पदार्थ पीसे जाते हैं। यहांसे पिसकर और बारीक होकर मिट्टी पेटमें जाती है। पेटके भीतर मिट्टीमें मिले हुए जो छोटे जानवर अथवा पत्तियां हों वह हज़म हो जातीं हैं। बाकी मिट्टी, पेटके अन्दरके भोजन पचानेवाले पदार्थोंसे (digestive juices) मिलकर पीछेके एक छेदसे सेवई के रूपमें बाहर निकल आती हैं। इसको जन्तु मल त्याग ['worms castings'] कहते हैं। दिन भर केंचुआ बिलके भीतर रहता है और रातको भी जब बाहर निकलता है अपनी दुम या पिछला भाग बिलके पास ही रखता है। इसलिए यदि कोई भय हो तो तुरन्त सारा शरीर बिलमें खींच ले। केंचुआ जो मिट्टी खाता है वही उसकी ख़ोराक नहीं होती। इसके अतिरिक्त सड़ी पत्तियां और घास पात भी खाता है। ऐसा करनेकेलिए वह अपनी दुमका थोड़ा भाग छोड़कर सब धड़ बिलके बाहर निकाल लेता है और यथाशक्ति अपने शरीरको लंबा करता है। इसके बाद एक गोलाकारमें जो कुछ पाता है झाड़ूकी तरह बिलके मुंहपर बटोर लेता है और तब बिलमें उतरकर थोड़ा थोड़ा खाता है। जो थोड़ीसी पत्तियां ऊपरसे अपने भीतरकी कोठरीमें ले जाता है उसे मुंहमेंसे एक प्रकारका लुआब निकालकर ढ़क देता है। यह भी एक प्रकारका पाच्य पदार्थ है। इससे पत्तियां नरम हो जाती हैं और केंचुआ अपने बेदाँत मगर मज़बूत मुंहसे कुतुर सकता है। दिनमें अपना बिल केंचुआ पत्तियोंसे ढांक देता है। एक तो इसलिए कि बिलका मुंह छिपा रहै, दूसरे यह कि गर्मी और धूपसे उसका बिल सूखने न लगे, क्योंकि केंचुआ नम बिलमें ही रह सकता है।
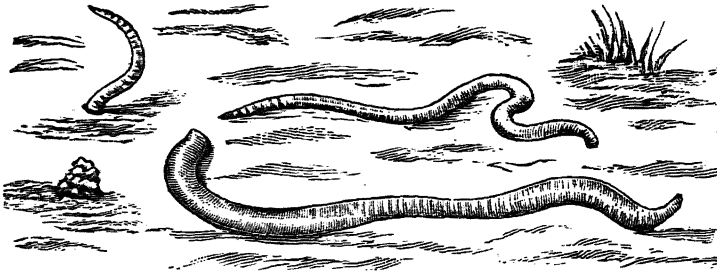
चित्र १

केंचुएसे खेती बारीमें क्या लाभ होता है, इसमें बहुत कुछ तो अभी मालूमही हो गया होगा। बिल जो कई इंच गहरे होते हैं इनसे पृथ्वीके भीतर हवा और पानीकी बून्दें सरलतासे प्रवेश करती हैं, और पेड़ोंकी बारीक जड़ें भी आसानीसे ज़मीनके भीतर जाती हैं। जिससे उन्हें खूब भोजन और तरावट मिलती है। जब केंचुए बिल छोड़ देते हैं तो वह कुछ समयमें गिरकर चूर चूर हो जाते हैं। और इस प्रकारसे धीरे धीरे परन्तु निरन्तर मिट्टी एक स्थानसे दूसरे स्थानको चला करती है। और नीचेको मिट्टी ऊपर आती है जिसपर हवा, पानीका ख़ूब असर होता है। ऊपरकी भी मिट्टी इसी प्रकार नीचे जाती है।

सड़ी हुई पत्तियां जो केंचुआ बिलके भीतर ले जाता है पौदोंके उगनेमें बड़ी सहायक होतीं हैं। और लुआब जिनसे कि पत्तियां ढ़की रहती हैं वह तो पौदोंकेलिए सोनेमें सुहागेका काम देता है। ऊपर जो 'सेवई' होती है वह क्या हैं? नीचेके तहकी उत्तम मिट्टी जिसे केंचुएने और भी बारीक पीस दी है ऊपर पृथ्वीकी सतहपर आ जाती है और इस प्रकार पृथ्वीके ऊपरकी सतह सुन्दर बारीक मिट्टीसे ढक जाती है।

डारविनने किस प्रकार अनुसन्धान किया उसका भी कुछ उल्लेख आवश्यक है। अपने कमरेके चारों तरफ़ उसने गमलोंमें केंचुए पाल रक्खे,

और बराबर उनको देखता रहा कि वे किस प्रकारका भोजन बहुत पसन्द करते हैं? किस प्रकारसे वे दो चार तरहके भोज्य पदार्थोंमेंसे अपने रुचिके भोजनको चुन लेते हैं? कैसे वह अन्य अन्य प्रकारकी पत्तियोंको खींचते हैं? एक दिनमें कितनी मिट्टी उनके पेटमेंसे निकलती है? लुआबका पत्तियोंपर क्या असर पड़ता है? किस समय वह बड़े फुरतीले होते हैं? इत्यादि। यह भी समझकर कि शायद गमलोंकी तग जगह अथवा घरमें रखनेमें उनके रहन सहनमें कुछ परिवर्तन हो जाय रातको लालटेन लेकर खेतोंमें जाकर भी वह देख भाल किया करता था।

इसके अतिरिक्त उसने और भी देख भाल शुरू की। पत्थरके ढोके देखे गये। यह पाया गया कि वह धीरे धीरे धंसते जाते हैं। फिर यह देखा गया कि वह किस हिसाबसे धंस रहे हैं। एक खेतमें कुछ हिस्सेपर खड़ियाके छोटे छोटे टुकड़े बिछा दिये गये। तीस वर्षतक ज्योंका त्यों वह खेत पड़ा रहा। इसके बाद पृथ्वीके सतहके सात इंच नीचे खड़ियाके ढोके बिछे हुए पाये गये। दूसरे खेतमें कड़े पत्थरके टुकड़े बिछा दिये गये। इसे भी तीस सालतक छोड़ दिया। तीस सालके बाद आसानीसे उसपर घोड़ा दौड़ाया जा सकता था और पत्थर ला पता थे।

एक और जांच की गयी। वह इससे भी ठीक थी। खेतमें एक गज़ लंबी और एक गज़ चौड़ी ज़मीन नाप ली गयी और सैकड़ों ऐसे टुकड़े नापकर निशान कर छोड़ दिये गये। एक सालतक बराबर हर टुकड़ेकी रोज़ जांच होती रही। सालभरमें एक एक वर्ग गज़की 'सेंवई' वाली मिट्टी तौली गयी और फ़ी वर्ग गज़ एक सेर ११ छटांक पायी गयी। इससे यह स्पष्ट हुआ कि ऐसी ही एक एकड़ ज़मीनपर सालभरमें लगभग १६२ मन मिट्टी नीचेसे ऊपर आती है।

इतिहासमें बहुत ही प्राचीन कालमें हलका वर्णन आता है। इस यंत्रकी ईजाद बहुतही प्राचीन कालमें हुई थी परन्तु उसके पहले भी खेत इस प्राकृतिक हलद्वारा जोता जाता था। अब भी यह प्राकृतिक हल मनुष्यके कामको आसान करता है तथा उसे सहायता देता है। संभव है कि ऐसे और जानवर हों जिनका पता अभी मनुष्यको नहीं मिला है और वह भी मानवजातिको सहायता देते हों।

परन्तु यह हमें न समझना चाहिये कि केंचुए जान बूझकर हम लोगोंको मदद दे रहे हैं अथवा वे इस बातकी चेष्टा करते हैं कि मनुष्यजातिको फ़ायदा पहुंचावें। इसके विपरीत गोभी तथा छोटे छोटे मुलायम पौदोंको कुतुरकर वे हम लोगोंको हानि भी पहुंचाते हैं। गाजर और अजवायन जब नयी नयी पत्तियां पृथ्वीके भीतरसे फेंकती हैं तब तो उनको बेतरह खाते हैं। तब भी उनकी जातिसे कोई विशेष हानि नहीं पहुंच सकती।

हम लोगोंके अतिरिक्त और जीव जन्तुओंको भी इनसे लाभ ही पहुंचता है। गोजर तो इनके बिलोंमें घुस जाता है और इनका खूब भोजन करता है। तीतर, श्यामा इत्यादि, ज्योंही इनका सर बिलके बाहर देखते हैं, तुरंत चोंचमें पकड़कर पेटमें पहुंचानेकी कोशिश करते हैं। केंचुए केवल अपना जीवन पूरा करते रहते हैं और अनजानमें उनसे लाभ भी पहुंच जाता है।

संसारके प्रत्येक हिस्से में १०,००० फुट ऊंची ज़मीनतकमें केंचुए पाये जाते हैं। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है उनके रहनेकेलिए कुछ नमीकी आवश्यकता है, इस कारण बहुत सूखे स्थानमें वे नहीं रह सकते। एक ही देशमें भिन्नभिन्न स्थानोंपरके केंचुओंकी बनावट भिन्न हो जाती है। उनका प्रयोजन, उनके शारीरिक धर्म, उनकी भीतरी बनावट इत्यादि भी विचित्र होती हैं।

पाश्चात्य शास्त्रीयविचार और गीता*

[ले० श्रीमान् लाला कन्नोमल, एम० ए०]

१—भौतिक-विज्ञान

इस शास्त्रमें पाश्चात्य विद्वानोंने बड़ी उन्नति की है। जहां तक इस शास्त्रका सम्बन्ध संसारोत्पत्ति विषयसे है, इन्होंने अनेक अभ्रान्त प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि संसारोत्पत्तिमें परिणामवाद ही मुख्य है। पहले यह माना जाता था कि संसार परमाणुओंसे बना है; परन्तु डार्विन हक्सले, स्पेन्सरादि विद्वानोंने अच्छी तरह साबित कर दिखाया कि परमाणुवाद माननेमें बड़े दोष आते हैं। गुणविकास वाद ही वैज्ञानिक शास्त्रकी चरम सीमा है। यह हमारे ही सांख्य दर्शनका मत है जिसे वेदान्तने भी माना है, और इसी मतके अनुसार गीतामें भी संसारोत्पत्ति कही गई है। कणादका परमाणुवाद नहीं माना है। इस मतसे यह तो सिद्ध हो जाता है कि सब सृष्टि अव्यक्त प्रकृति अथवा मायासे उत्पन्न हुई है, लेकिन यह समझमें नहीं आता कि जड़ प्रकृति स्वयंकर्त्री और स्वयंभुवी कैसे है। इसका समाधान सांख्य और आधुनिक भौतिक शास्त्रमें नहीं है, बल्कि गीतामें है, जो कहती है कि प्रकृति स्वयंकर्त्री नहीं है, बल्कि वह अखंड ब्रह्मके एक अंशके मेलसे अपनी रचना करती है। इसलिये गीतामें कहा है कि संसारोत्पत्ति ब्रह्मकी योगमायासे होती है जिसे प्रकृति कहते हैं, और इसके दो रूप-परा और अपरा हैं। परा, सब भूतोंकी योनि है जिसमें चैतन्य ब्रह्मका अंश जीवके रूपमें आता है, और अपरा, संसारके सब पदार्थोंको बुद्धिसे लगा पंचभूतोंतकको बनाती है। जिस तरह पाश्चात्य विकासवादी प्रकृतिको अन्तमें शक्ति ही मानते हैं, परमाणुओंका पुञ्ज नहीं, इसी तरह गीता भी इस प्रकृतिको शक्तिका हो रूप मानती है, परन्तु इतना विशेष कहती है कि यह शक्ति तीन रूपवाली है अर्थात् इसमें सत्व, रज, और तम, तीन गुण हैं। सत्वगुण, शक्ति, निवृति और शन्तिका द्योतक है। रजोगुण, प्रवृत्ति और काम उत्पादक है, और तमोगुण, मोह और अन्धकार बढ़ानेवाला है। इन्हीं तीन शक्तिगुणोंके मेलसे संसारके सब पदार्थ बने हैं। जिसमें सत्वगुण विशेष है और रज और तम कम वह श्रेष्ठ है। जिसमें रजोगुण प्रधान है, वह संसार प्रवर्त्तक है, और जिसमें तमोगुण प्रधान है, वह मलिन और निकृष्ट है। गीतामें पाश्चात्य भौतिकशास्त्रीयविकासवाद ही नहीं हैं, बल्कि जो त्रुटियां इस मतमें रह गई हैं उनका समाधान भो है। अर्थात् गीता, जड़ शक्तिको स्वयं सृष्टिकर्त्री नहीं मानती हुई, उसका आदि कारण ब्रह्म बाताती है और शक्तिको सत्व रज तम तीन गुणरूपवाली बताती है।

२-अध्यात्मशस्त्र METAPHYSICS.

इस विषयमें जो पाश्चात्य पंडितोंने सिद्ध किया है, वह गोताके सिद्धान्तोंसे कहीं पीछे है।

पहली बात यह है कि हम जितनी वस्तुएं संसारमें देखते हैं, वे सब परिवर्तनशील हैं। नित्य और निरन्तरस्थायी कोई नहीं हैं।

क्या कोई ऐसी वस्तु भी है जो नित्य अव्यय और निरन्तरस्थायी हो? पाश्चात्य पंडित कहते हैं कि प्रत्येक वस्तुका रूपान्तर होता रहता है, और सब परिवर्तनोंका मूलाधार प्राकृतिक शक्ति हो है। यदि कोई नित्य वस्तु है, तो यही शक्ति है जिनका मत यह है कि प्रकृतिके परे ईश्वर है। जो

* हिन्दीके सुयोग्य लेखक लाला कन्नोमल, एम. ए. से हमारे सभी पाठक भली भांति परिचित होंगे। पूर्वीय तथा पाश्चात्य दर्शनशास्त्रके आप धुरन्धर विद्वान हैं। वैशेषिक, वेदान्त, न्याय दर्शनोंपर आपके लेख विज्ञानमें निकल चुके हैं। प्रस्तुत लेख आपने वास्तवमें अपने अनुपम ग्रन्थ गीता दर्शन केलिए लिखा था। उक्त ग्रन्थ अब छप रहा है, उसके अन्तरगत यह भी छपैगा। ग्रन्थकी हस्तलिपि हमें भी दिखलानेकी आपने कृपा की थी। पुस्तक बहुत उपयोगी होगा। —वि. सं.

Philosophy दर्शन]

इस संसारको रचता और चलाता है, तो उसका खंडन वैज्ञानिक पंडित यह कहकर करते हैं कि इस युक्तिसे ईश्वर भी परिवर्तनशील सिद्ध होता है। वह नित्य नहीं हो सकता है। पाश्चात्य देशोंमें बहुधा सगुण ईश्वर ही माना जाता है। सगुण ईश्वरका खंडन इस तर्कसे हो जाता है। इसी कारण सांख्य दर्शनने सगुण ईश्वरकी असिद्धि मानी है। वेदान्त शास्त्रका मत है कि यह निरन्तर सत्य मूलतत्व सगुण ईश्वर नहीं, बल्कि निर्गुण अव्यक्त ब्रह्म है। वह विकार रहित है, परन्तु प्रकृतिमें जितने परिवर्तन होते हैं उसीके आधारपर होते हैं। यदि जल आधार न हो, तो नौका नहीं चल सकती है। खूंटी आधार न हो, तो कुम्भकारका चक्र नहीं चल सकता है। कपड़ा अथवा दीवार आधार न हों, तो मेजिक लेनटर्नके चित्र घूमते हुए नहीं दिखाई दे सकते हैं। ऐसेही यदि सत्य नित्य अखंड अव्यय ब्रह्म आधार न हो, तो माया अथवा प्रकृतिका चक्र भी नहीं घूम सकता। एक मनुष्यका कभी नट बन जाना, कभी राजा बन जाना, कभी स्त्रीका वेष धारण कर लेना, नामरूपभेद कारणसे ही होता है, न कि उस मनुष्यके स्वयं परिवर्तनसे। वह तो जैसाका तैसा ही रहता है। केवल नामरूप परिवर्तनसे ही वह तरह तरहका दिखाई देने लगता है। इसी तरह मायाका रूपजाल नित्य अव्यक्त ब्रह्मपर पड़ा है जिससे भिन्नता दिखाई देती है, वास्तवमें एकता ही है। पूर्वोक्त उदाहरणमें यदि मनुष्य आधार न हो, तो न तरह तरहके रूप ही दिखाई दें, और न उन रूपोंका परिवर्तन ही हो, क्योंकि इन परिवर्तनोंका कोई स्थायी केन्द्र नहीं है। इसी तरह संसारके सब परिवर्तनोंका स्थायी और अचल केन्द्र ब्रह्म ही है। प्रकृति अथवा शक्ति नहीं है; क्योंकि वह स्वयं परिवर्तनशील है। परिवर्तन दो प्रकारके हैं–एक बाह्य और दूसरे आन्तरिक। ऊपरके उदाहरणमें मनुष्यका तरह तरहके रूप बार बार पलटना, बाह्य परिवर्तन है, और उसी उदाहरणमें मनुष्यका स्वयं बाल, युवा, वृद्ध होना, आन्तरिक परिवर्तन हैं। जैसे बाह्य परिवर्तनका आधार मनुष्य है वैसेही मनुष्यके आन्तरिक परिवर्तनोंका आधार उसकी आत्मा है, जो अचल स्थिर और अटल है। इसी तरह संसारमें बाह्य परिवर्तनोंका आधार प्रकृति, माया अथवा शक्ति है, परन्तु इस आन्तरिक परिवर्तनशील वस्तुका आधार नित्य अव्यक्त अव्यय अखंड अचल ब्रह्म ही है; क्योंकि जबतक इस परिवर्तनशील और क्षर संसारका परिवर्तनरहित अक्षर तत्व नहीं होगा, तबतक इस शास्त्रका सिद्धान्त पूरा नहीं होगा, और न अध्यात्म गवेषणा ही अन्तिम कही जायगी। बहुतसे पाश्चात्य तत्ववेत्ता प्राकृतिक शक्तिपर ही ठहर गये हैं और उसीको अन्तिम आधार मान लिया है, परन्तु इनमेंसे कुछने आगे भी क़दम बढ़ाया है और प्रकृतिके परे भी कुछ आधार बताया है; जैसे स्पिनोज़ा (Spinoza), कान्ट (Kant), फिकटे (Fichte), हेगेल (Hegel), हेरेकटिलीज़ (Heractiles) आदिने बताया है। परन्तु इन्होंने जो अन्तिम आधार बताया है वह न तो ऐसा अचल अटल अखंड नित्य सत्य ही है जैसा गीताका अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म है, और न वह ऐसी स्पष्टतासे ही बताया गया है जैसा कि गीतामें।

पाश्चात्य अध्यात्मशास्त्रमें आत्माका निरूपण ऐसी गवेषणासे नहीं किया है जैसा कि भारतीय शास्त्रोंमें। इस विषयको अधिकतर मनोविज्ञान शास्त्रपर ही छोड़ दिया है। यह आत्मनिरूपण न्यायवैशेषिक शास्त्रोंके जीवतक अथवा साँख्य वेदान्तके सूक्ष्म शरीरतक ही पहुँचा है, आगे नहीं। ऐसे जीवको तो साँख्य, वेदान्त और गीता प्राकृतिक ही बताते हैं। जिसे आत्मा बताया है, वह इससे परे है, और इसी कारण प्राकृतिक लक्षणोंसे रहित है अर्थात् उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। जैसे सब संसारका अक्षर अविनाशी परिवर्तनरहित मूलतत्व ब्रह्म है वैसेही व्यक्तिके

शरीर और उसकी इन्द्रियोंका अचल अटल मूल-तत्व आत्मा है।

पाश्चात्य पंडितोंने ईश्वर और जीव अथवा ब्रह्म और आत्माका सम्बन्ध बतानेमें भी कुछ बहुत प्रयत्न नहीं किया है, और न वे द्वैत अद्वैत विशिष्टाद्वैतादिके झगड़ेमें हीं पड़े हैं। उन्होंने मनोविज्ञान-शास्त्रके अनुसार, इच्छा सुखदुःखादिविशिष्ट जीवको मानकर द्वैतवादसे ही सन्तोष कर लिया है। किसी किसीने आगे भी क़दम बढ़ाया है; परन्तु जैसी इस विषयकी भारतीय तत्ववेताओंने गवेषणा की है वैसी उन्होंने नहीं की है।

आत्मा और परमात्माके सम्बन्धमें गीताका वही मत है जो उपनिषदोंका है अर्थात् दोनोंकी एकता; क्योंकि गीता स्पष्ट कहती है कि समस्त संसारके जीव, ब्रह्मके अँश हैं; और जब ब्रह्म अखंड और विकार रहित है तो यह अँश उससे अलग नहीं हुआ—केवल व्यवहारिक दृष्टिसे ही पृथक् कहना पड़ता है; जैसे महदाकाश और घटाकाश पृथक् पृथक् नहीं, केवल व्यवहारिक दृष्टिसे पृथक् पृथक् दिखाई देते हैं। यह पृथक्ता उपाधियोंके कारण है, न कि वास्तविक तत्वमें है। गीता स्पष्ट कहती है कि जो मनुष्य भिन्न पदार्थोंमें अभिन्नताप्रधान तत्व देखता है वही ज्ञानी और पंडित है। यह गीताका बड़ा गौरवशाली सिद्धान्त है।

इसी शास्त्रसे सम्बन्ध रखनेवाला यह प्रश्न भी है कि संसार सत्य है या असत्य। दूसरे शब्दोंमें यह प्रश्न है कि हम संसारको जैसा देखते हैं वैसा ही है या वास्तवमें कुछ और है।

इस विषयमें पाश्चात्य पंडितोंने बड़ी गवेषणा की है, और उनके विचार बड़े सारगर्भित हैं; परन्तु इस विषयका निरूपण हमारे शास्त्रकारोंने भी कुछ कम नहीं किया है, बल्कि इस विषयमें भी गीताका मत उनके विचारोंसे बढ़ा हुआ है।

विज्ञानवाद, मायावाद, परिणामवाद, विवर्तवाद, सत्यसंसारवाद, क्षणिकवाद, संसारप्रवाहवाद, स्वप्नवाद, मिथ्यावाद आदि अनेक मत हैं। इन सब मतोंको मिलाके प्रधान दो मत होते हैं-विज्ञानवाद अथवा आधिवैज्ञानिकवाद और आधिभौतिकवाद।

आधिभौतिकवादियोंका कहना है कि संसार जैसा दिखाई देता है वैसा ही है अर्थात् वास्तवमें सत्य है और अपनी पृथक् स्थिति रखता है। उसका होना न होना मनकी कल्पनाओंपर निर्भर नहीं है। न्याय और वैशेषिक दर्शनोंका भी ऐसा ही मत है। ये, द्रव्य और गुणोंमें समवायसम्बन्ध मानते हैं अर्थात् वस्तुमें द्रव्य और गुणोंको संगठित मानते हैं, भिन्न भिन्न नहीं। आधिवैज्ञानिकवादियोंका कहना है कि जो कुछ हम देखते हैं वे सब हमारे मनोरचित दृश्य हैं।

उदाहरण—हमारे सामने एक वृक्ष है। उसके साथ हमारी ज्ञानेन्द्रियोंका सम्पर्क हुआ। ज्ञानेन्द्रियोंका अनुभव मनतक पहुंचा। मनने बुद्धिके मेलसे इन्द्रियोंके अनुभवके आधारपर वृक्षका रूप कल्पित कर लिया। इसलिये जो वृक्ष हमें दिखाई देता है वह हमारा मनकल्पित है, न कि वैसे रूपकी वाह्य संसारमें कोई स्वतंत्र वस्तु है। जो वाह्य संसारमें पदार्थोंको स्वतंत्र सत्तावाले बताते हैं उनसे विज्ञान वादियोंका प्रश्न है कि उन्हें यह ज्ञान कैसे हुआ। मन और बुद्धि तो ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा लायी हुई सामग्रीपर ही कल्पना कर सकती हैं, और यह सामग्री केवल इन्द्रियसम्बन्धी अनुभव ही है, औरकुछ नहीं। यदि मनके सिवा प्रकृतिकी स्थिति वाह्य संसारमें है तो हो, हम उसे मालूम नहीं कर सकते हैं। वह इन्द्रियज्ञानका विषय नहीं है। ऐसी गुप्त वस्तुका क्या करें जिसे न कोई जान सके और न कोई कभी काममें लासके। Berkeley बार्कले, Hume ह्यूमादि बहुत तत्ववेताओंका थोड़े थोड़े भेदसे यही कहना है। हर्बर्ट स्पेन्सर भी कहता है कि जो कुछ देखते हैं चीज़ोंके केवल बाहरी दृश्य हैं, उनके असली रूप नहीं। चीज़ें वास्तवमें क्या हैं, हम नहीं कह सकते।

Kant कान्टका कहना है कि सब वस्तुओंके दो रूप हैं—एक (Phenomena) बाहरी दृश्य और एक (Noumena) आन्तरिक तत्व जिसपर वह दृश्य दिखाई देता है। हमें केवल बाहरी दृश्योंका ज्ञान होता है। आन्तरिक तत्व, ज्ञानेन्द्रियोंसे परे है। बौद्ध विज्ञानवादी कहते हैं कि जो कुछ है वह ज्ञान है, बाहरी संसार नहीं है; संसार हमारे ज्ञानका ही रूप है।

शोपनहौर (Schopenhaur) ने सिद्ध किया है कि समस्त संसार तीन वस्तुओंसे बना है अर्थात् दिक्,काल,कारण। ये तीनों वस्तुएं हमारे मनकी उपाधियाँ हैं, न कि कोई स्वतंत्र सत्तावाली बाहरी संसारकी वस्तुएं। जब इन तीनोंका मनोमय होना सिद्ध हुआ, तो समस्त संसार भी मनोमय ही हुआ।

संसारके मनोमय होनेमें और बाहरी पदार्थोंको केवल दृश्यमात्र निश्चय करनेमें बड़े बड़े तत्ववेत्ता सहमत हैं। यूनान देशके पैथागोरस (Pythagorus) से प्लोटिनस (Plotinus) तक, सभी तत्ववेत्ताओंका यह मत है अर्थात् (Pythagorus) पैथागोरस, (Zenophon) ज़ेनोफेन, (Parmemides) पारमीनिडिज, Zeno (ज़िनो), Plato (प्लेटो) Platonus (प्लेटोनस), Kant (कान्ट), Fichte (फिक्टे), Hegel (हेगेल), Heraclites (हरेकलीटीज), Bruno (ब्रूनो), Spinoza (स्पिनोज़ा) आदि भी यही कहते हैं।

सांख्यमत, आधिभौतिक और आधिवैज्ञानिक मतोंके बीचमें है। वेदान्तमत, आधिवैज्ञानिक ढँगका है, बल्कि इसमें और भी कुछ विलक्षणता है।

जब निद्रामें स्वप्न दिखाई देता है, उस समय ज्ञानेन्द्रियोंका सम्बन्ध बाहरी संसारसे कुछ नहीं रहता है। इसलिये वे बाहरसे संसार रचनेकी कोई सामग्री नहीं लाती हैं। तथापि स्वप्नमें बाहरी संसारके सदृश दृश्य दिखाई देते हैं। जबतक स्वप्न अवस्था रहती है स्वप्नके सभी दृश्य अचूक सत्य मालूम होते हैं, परन्तु जागृतावस्था आनेपर वे सब मिथ्या हो जाते हैं। यदि संसार रचनाकेलिये किसी जड़ वस्तुका होना आवश्यक होता तो वे स्वप्नमें साँसारिक दृश्योंके समान सत्यदृश्य क्यों बन जाते। दिक्-काल-कारण आदि मनके विकार हैं, कोई मनके बाहर स्वयं सत्तावाली वस्तुएं नहीं हैं। वेदान्तियोंका कहना है कि जैसे जागृतावस्थाके होनेपर स्वप्नके दृश्य असत्य और मिथ्या मालूम होते हैं वैसे ही जागृतावस्थाके सांसारिक दृश्य, ज्ञानावस्था प्राप्त होनेपर मिथ्या हो जाते हैं, और तब पूर्णज्ञान हो जाता है कि संसार सर्वथा असत्य है। यह संसार हमारा मन कल्पित है, वास्तवमें कुछ नहीं है। यदि इस मतमें यह शंका उठाओ कि यद्यपि निद्रासमय ज्ञानेन्द्रियोंका सम्बन्ध बाहरकी वस्तुओंसे अलग हो जाता है और वे मन कल्पनाओंकेलिये बाहरसे सामग्री भी नहीं लाती हैं, तथापि जो सामग्री जागृतावस्थामें, वे पहले लाई थीं, अभी बाक़ी है, और उसीके आधार पर मनने स्वप्नके दृश्य बना लिये हैं। यदि यह सामग्री पहलेसे नहीं होती तो स्वप्नके दृश्योंका होना असम्भव था। माना कि यह बात हो, तब भी दो बातें सिद्ध हो गयीं—

१—ज्ञानेन्द्रियोंसे लाई हुई सामग्रीपर ही मन संसारके दृश्य की कल्पना करता है।

२—इस कल्पना करनेमें, बाहर जैसी वस्तुएँ हैं वैसोही मन कल्पना नहीं करता अर्थात् मन कल्पनासे बाहर वस्तुका जैसाका तैसा ही रूप नहीं रहता जैसा कि मनुष्य या किसी वस्तुका रूप दर्पणके प्रतिबिम्बमें होता है, बल्कि बाहरकी वस्तु और उसके आधारपर मन-कल्पित वस्तुमें बड़ा अन्तर होता है; क्योंकि मन उस चीज़के बनानेमें अपनी युक्तिका भी प्रयोग करता है। जो वस्तुएं स्वप्नमें दिखाई देती हैं, वे ज्योंकी त्यों ही नहीं होती। जिन्हें हम देख चुके हैं अर्थात् देखी हुई वस्तुओंकी सच्ची फोटो नहीं होती, बल्कि ऐसी चीजें होती हैं जिन्हें इन रूपोंमें कभी नहीं

देखा था, परन्तु जिस सामग्रीसे वे बनी हैं उसे अवश्य देखा था।

यदि स्वप्नके दृश्य बिलकुल उन दृश्योंकी फ़ोटो नहीं हैं जो हमारे देखे हुए हैं तो क्या विश्वास है कि जो दृश्य हम जगृतावस्थामें देखते हैं वे बाहिरी चीज़ोंकी सच्ची फोटो हों। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो संसार हम देखते हैं वह हमारा ही मनकल्पित है। यदि बाहरी संसार है तो दृश्यमान संसारकी फ़ोटो नहीं है। किसी वृक्षका प्रतिविम्ब दर्पणमें होना एक बात है, और रूप रस गंध आदि गुणोंको लक्षकर अपने ढंगपर एक नया वृक्ष बना लेना दूसरी बात है।

इन मतोंके अतिरिक्त एक तीसरा मत और है जो कहता है कि यह बात तो मानी कि संसारका ज्ञान मनकल्पित है, और वास्तवमें जो संसारिक पदार्थोंका रूप है वह हमें नहीं दिखाई देता, परन्तु क्या बाहरके सांसारिक पदार्थ और मनकल्पित पदार्थोंकी एक सी स्थिति है? क्या उन दोनोंकी सत्तामें कुछ अन्तर नहीं है?। यदि संसार मनकल्पित ही है तो जब मन चाहे तभी किसी वस्तुको उपस्थित कर भोग कर सकता है। क्या यह हो सकता है कि गुलाबका फूल होने बिनाही गुलाबकी सुगधि आने लगे? बिना लड्डू खाये ही मिष्टान्नका स्वाद आने लगे? बिना वर्षामें भीगे ही मनुष्य भीग जाये? माना गुलाबका वास्तविक रूप कुछ ही है, लड्डू अपने रूपमें कुछ ही है, लेकिन यह तो मानना अवश्य होगा कि ये चीज़ें बाहरी संसारमें ऐसे चिन्ह या संकेत हैं कि जिनके होनेपर ही मन उनकी कल्पना करता है।

यदि ये संकेत बाहर नहीं हों तो यह कल्पना होना असम्भव है। इस मतके लोग विज्ञानवादको सत्यसंसारवादसे मिलाते हैं। नतो यही कहते हैं कि संसार सर्वथा मनकल्पित है, उसकी बाहरी सत्ता नहीं; और न यही कहते हैं कि संसारके पदार्थ जैसे दिखाई देते हैं वास्तवमें वैसे ही हैं और मनकल्पना उनकी एक सच्ची फोटो है।

गीताने, सांख्य और वेदान्तकेमतोंको मिलाकर संसारोत्पत्ति मानी है, और पंचभूतोंके सूक्ष्मतत्व--तन्मात्राओंका—स्थान सूक्ष्म शरीरमें रक्खा है। इसलिए गीता, मनोमय संसारको मानती हुई, यह भी मानती है कि बाहरके संसारमें मानसिक दृश्य उत्पन्न करनेके संकेत हैं जो तन्मात्राओंसे निकले हैं।

संकेतवादियोंसे कुछ मेल रखती हुई गीता यह विशेष कहती है कि न तो बाहरका संसार ही वास्तवमें सत्य है और न मनकल्पित दृश्य ही सत्य हैं। इन दोनोंकी व्यवहारिक सत्यता है। वास्तविक सत्यता तो केवल आत्मामें ही है।

विज्ञानवादी मनकल्पनाओंको सत्य मानते हैं। आधिभौतिकवादी सांसारिक पदार्थोंको सत्य मानते हैं। संकेत वादी मनकल्पनाओंको अधिक सत्य और बाहरी पदार्थोंको संकेतमात्र सत्य मानते हैं।

गीता, मानसिक और सांसारिक दृश्योंको व्यवहारिक सत्यके न्यूनाधिक अंश मानकर, वास्तविक सत्यता आत्मामें ही मानती है। यही इस विषयमें इसका सिद्धांत है।

मोक्ष क्या है? इस विषयको पाश्चात्य विद्वानोंने धर्म पुस्तकोंपर ही छोड़ दिया है। अध्यात्मशास्त्रका विषय नहीं बनाया है। यदि कुछ विचार भी किया है तो वह अधूरा सा है। भारतीय-शास्त्रोंने इस विषयको अध्यात्मशास्त्रमें रखकर ख़ूब विचार किया है।

विवेकद्वारा प्रकृतिरचनाका पुरुषके सामनेसे हट जाना और पुरुषका अकेला रह जाना अर्थात् कैवल्य अवस्थामें होना, सांख्य मतानुसार मोक्ष है। इस मोक्षमें पुरुषका किसी दूसरे पुरुषसे मिल जाना अथवा पुर्षोत्तम-परमात्मामें-लय हो जाना नहीं माना है। न्याय और वैशेषिक दर्शनोंका मत है कि जीव संसारचक्रसे छूट अपनी स्वयंव्यक्ति रखता हुआ मोक्षमें ईश्वरका परमानन्द भोगता है। यही अपवर्ग है।

कर्म्मोंमें अब भी यही रीति बरती जाती है। परन्तु अरिष्टोफेनीज और प्लूटार्कके लेखोंसे यह पता चलता है, कि यवन (ग्रीक) लोग अपनी यज्ञाग्नि आतशी शीशा वा नतोदर दर्पणद्वारा सूर्य्यकी किरणोंको एकत्र करके प्रज्वलित करते थे। जिन लोगोंने हमारे परम मित्र श्री पंडित श्रीकृष्ण जोशीके भानुतापके द्वारा पूरियां पकते देखी होंगी, उनके लिये इसमें कोई भी अनोखापन नहीं हो सकता। संवत् १८८६ तक इङ्गलैंड तथा समस्त पाश्चात्य देशोंमें और प्राचीन कालसे तबतक भारतवर्षमें भी चकमाक पथरीपर लोहे-से चोट मारकर जलनेवाली रुईपर चिनगारियां झाड़ लेनेकी ही चाल थी। और समस्त सभ्य देशोंमें आग बनानेकी सहज और सर्वप्रिय रीति यही थी। नयी दियासलाई बननेके कुछ काल पहले पोटाश potash chlorate और शकर मिला कर उसपर तीव्र गंधकाम्ल टपकाकर भी आग जलाते थे।

अब पाठकगण सोचें, कि दियासलाईके युगमें और चकमाक पथरीके युगमें कितना अन्तर पड़ गया है। आपको सिगरेट पीना है, जेबसे दिया-सलाई निकाली और एक सेकण्डमें आपके मुंहसे धुएँके बादलके बादल निकलने लगे। पथरीवाले युगका मनुष्य अपनी जेबमें एक छोटीसी डिबि-याकी जगह काले लत्ते पथरी और लोहेकी एक मेख लेकर चलता और सिगरेट जलानेमें एकसौ बीस गुना अधिक समय लगाता। लखनऊ स्टेशनपर एक पैसेमें आजकल फर्शी चिलम तम्बाकू टिकिया दियासलाई सब कुछ मिल जाता है, परन्तु उस ज़मानेमें एक ही पैसेमें आग जलानेका सामान नहीं मिल सकता था। यदि आपके पास सामान न हुआ तो आपको अग्निकी भिक्षा मांगनी ही पड़ती है। आजकल दियासलाई सस्ती होनेसे उसके महत्वपर हम लोगोंका ध्यान बहुत कम जाता है।

दियासलाईका प्रचार हुए यद्यपि अभी पूरे पचहत्तर बरस भी नहीं हुए हैं, तथापि "दियास-लाई" शब्द बहुत पुराना है। पथरीके जमानेमें भी दियासलाई बिकती थी। सनईके छोटे छोटे टुकड़े काटकर उसका सिरा गले हुए गंधकमें डुबो देते थे, और एक पैसेमें ढेरके ढेर बेचते थे। चकमाकसे चिनगारियां झाड़कर रूई जलाई गई और उसमें यह दियासलाई लगायी और दिया जलाया। कई प्रान्तोंमें दियासलाई बेचनेका पेशा भंगी करते थे। इसीलिए पुराने लोग दियासलाई अस्पृश्य और अपवित्र समझा करते थे, और रसोई और पूजाके स्थानोंमें नहीं ले जाते थे। परन्तु ऐसा युगान्तर उपस्थित हो गया है कि अब अस्थिपुत्र फास्फोरसको शिरोधार्य किये हुए परम पुनीता दीपशलाका रसोईमें, देवमन्दिरोंमें और पूजाके स्थानोंमें गौरवका स्थान पाती है। इसी आधुनिक दिया-सलाई और उसके मुकुटमणि फासफोरसका वा स्फुरका-वर्णन आज हमारा अभीष्ट है।

हम्बर्ग नामका जर्मनीमें एक प्रसिद्ध सामुद्रिक नगर है। कोई ढाई सौ वर्ष हुए इस नगरमें ब्रंड Brand नामक एक रासायनिक रहता था। संवत् १७३० में ब्रंडके हाथों एक अद्भुत घटना हो गयी। चांदीसे सोना बनानेकेलिये ब्रंड एक अर्क तय्यार करना चाहता था। उसने एक बर्तनमें बहुतसा मूत्र लेकर इतना खौलाया, कि उसका सारा जल उड़ गया और तलछट सूखकर तलेटीमें जम गयी। इसे एक देगमें रखकर सफ़ेद बालूके साथ सूखे ही आंच देने लगा और देगके मुंहको बन्द करके उसमें भभका लगा दिया। बाहरी वायुके जानेकेलिये सिवाय भभकेके और कोई राह न थी। जब उसने आंच तेज़ की भभकेमेंसे सफ़ेद धुंआँ सा निकलने लगा और भभकेके ठण्डे भागमें मोमकी तरहका एक ठोस पदार्थ जम गया। इस ठोस पदार्थको ज्योंही ज़रासा बाहर निकाला, पिघलने लगा और तनिकमें ही आपसे आप जल उठा। जलनेसे

बचानेकेलिये उसने उसे जलमें रखा और उसकी अनेक परीक्षाएँ कीं। यही स्फुर वा फासफोरस था। यह रातमें बहुत हलको चांदनीकी तरह चमकता है और दीवारमें रगड़नेसे अपनी चमक दीवारको भी दे देता है। हाथकी गर्मी इसको जलाने और गलानेकेलिये काफी है। अजान आदमी उंगलियोंसे पकड़ ले तो यह जल जाता है और शरीरपर इसके गलित अंशके लग जानेसे अथवा इससे जल जानेसे घाव हो जाता है जिसके अच्छे होनेमें कई महीने लगते हैं।

उस समय फासफोरसका आविष्कार संसार-में हलचल डाल देनेवाली बात थी। आजकल जो दशा रेडियमकी है, वही उस समय फासफोरसकी थी। क्राफ्ट (Craft) नामक रासायनिकने सारे योरोपके देशोंमें यात्रा की और मेले तमाशोंमें, सभा समाजोंमें, राज दरबारोंमें इसका तमाशा दिखाया। इङ्गलैण्डका राजा द्वितीय चार्ल्स भी फासफ़ोरसके तमाशबीनोंमें था, और उसके दरबार और हरमकी देवियों ने बड़े आश्चर्य्यसे देखा। उस समय फासफ़ोरस सोनेकी तरह महंगा था, और अब एक अत्यन्त साधारण वस्तु है। तौभी अबतक उसकी शीतल ज्योति हमारे आनन्द और आश्चर्य्यका कारण होती है। बिना गर्मीके प्रकाशकी कल्पना साधारण नहीं है, सो क्या यह अद्भुत बात नहीं है, कि फासफ़ोरससे शीतल प्रकाश मिलता है?

वस्तुतः यह प्रकाश एक दम शीतल नहीं है। साधारण परिस्थितिकी अपेक्षा इसमें अनुभव-गम्य ताप अवश्य है, परन्तु यह ताप यंत्रोंसे ही मालूम हो सकता है। लोग चन्द्रमाकी किरणोंको-भी शीतल कहते हैं। परन्तु उसमें भी ताप है। यह बात वैज्ञानिकोंसे छिपी नहीं है। फ़ासफ़ोरस-में इस शीतल ज्योतिके निकलनेमें यद्यपि हमारी दृष्टिमें कोई विशेष उपद्रव नहीं है तथापि यदि हमारी दृष्टि अनुवीक्षण यन्त्रोंसे भी अधिक सूक्ष्म हो जाय और हम स्फुरके परमाणु खंडोंको चक्कर लगाते हुये देखने लगें तो हमारे अचम्भेकी सीमा न रह जायगी। हे भगवन्! क्या आश्चर्य्य जनक दृश्य है! प्रत्येकपरमाणु खंड एक सेकंडमें दस पद्म चक्कर लगा जाता है। इस तेज़ीको बिना दिव्य दृष्टिके देखना ही असम्भव है। परन्तु यह क्रिया एक दो सेकंड नहीं बल्कि महीनों और बरसों जब तक कि फासफोरस चमकता रहता है निरन्तर जारी रहती है। जहां हम अत्यन्त शान्त और स्थिर दशाकी कल्पना करते हैं, वहां रसायन विज्ञानकी दृष्टिसे ऐसी अद्भुत तीव्र और वेगवती घटनाएं दृष्टि गोचर होती हैं कि बुद्धि चकरा जाती है। रसायन शास्त्रने यह सिद्ध कर दिया है कि जहां कहीं ऐसी शीतल ज्योति होती है वहां बहुत धीरे धीरे रासायनिक संयोग भी होता रहता है। इस धीमे रासायनिक संयोगका भी वास्तविक चित्र देखिये। फासफ़ोरससे जो ज़रा ज़रासी भाफ निकल रही है वह कोई साधारण बात नहीं है। फासफ़ोरसके टुकड़ेसे करोड़ों परमाणु बड़े वेगसे वायुमें उड़ते आ रहे हैं, और ओषजनके अनेक करोड़ परमाणुओंसे बड़े वेगसे धक्का खा रहे हैं, मिल रहे हैं, चक्कर लगा रहे हैं और प्रत्येक दिशामें दौड़ रहे हैं और तितर बितर हो रहे हैं। यदि हम फासफ़ोरस या स्फुरको फ से व्यक्त करें और ओषजनको ओ से तो एक अणुकी क्रियाको समीकरणका यह रूप दे सकते हैं—

$$फ_4 + ३ ओ_2 = फ_4 ओ_6$$ स्फुर त्रिओषिद
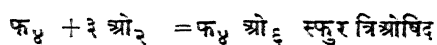
फासफोरसका प्रधान स्वभाव झटसे जल उठना है। यदि एक टुकड़ा स्फुर वायुमें छोड़ दिया जाय तो धीरे धीरे उसका तापक्रम बढ़ जाता है। यहां तक कि ४४·३° श० पर पिघल जाता है और ४५° श० पर पहुंचते पहुंचते आपसे आप जल उठता है। तापक्रमके बढ़ते जानेका कारण वही धीमी रासायनिक क्रिया है जो ओषजनके साथ मिलनेमें क्रमशः होती रहती है और जिसके कारण अंधेरेमें उसमें चमक पैदा होती है। इसके सिवाय ज़रासी

रगड़से या उंगलियोंसे छू जानेसे जिनमें स्वाभाविक ताप होता ही है, स्फुर जल उठता है। यही बात है, कि यह जोखिमकी चीज़ समझी जाती है और जलमें ही रखी जाती है। स्फुरका आविष्कार जिस दिन हुआ उसी दिन अग्नि जलानेकी एक नयी रीतिका सूत्रपात हुआ, परन्तु आविष्कारके समय स्फुर अत्यन्त मंहगा था, क्योंकि मूत्रमें स्फुरका अंश बहुत ज़्यादा नहीं होता। उस समय स्फुर २८) अट्ठाईस रुपयेसे लेकर पैंतालीस रुपये तोलेतक बिकता था। ऐसे बहुमूल्य पदार्थसे केवल आग जलानेका काम कौन लेता? सौ वर्षतक उसका भाव यही बना रहा। जब संवत १८२७ में शेले नामक रासायनिकने हड्डियोंसे स्फुर तैय्यार किया उसकी साधारण उपयोगितापर ध्यान दिया जाने लगा। इतनेपर भी पचास बरसतक स्फुरको बहुत ज़्यादा परिमाणमें निकालनेका प्रयत्न नहीं किया गया। संवत १८७८ में पैरिस नगरमें जलानेकेलिये फासफोरस अधिक मात्रामें तैय्यार होने लगा। परन्तु उस समयकी रीतिमें और आजकलकी रीतिमें कुछ अन्तर है।

हड्डियोंमें सबसे बड़ा अंश खटिक स्फुरेतका है। जिसमें खटिकके तीन स्फुरके दो और ओषजनके आठ परमाणु प्रत्येक अणुमें होते हैं। इसमेंसे स्फुरको एक दम अलगकर लेनेके लिए हड्डीके चूर्णको बालू और कोयलेके साथ मिलाकर बिजलीके भट्टे में प्रचण्ड तापसे उत्तप्त करते हैं। इस प्रक्रियामें करबन एकोषिद नामका वायु बनकर उड़ जाता है और खटिक शिलाकेत नामकी मिट्टी तलछटमें रह जाती है। शुद्ध स्फुर वायुके रूपमें भभकेकी नलीसे निकलकर जलमें गिरता है और इकट्ठा कर लिया जाता है। इस प्रक्रियाको नीचे लिखे समीकरणसे व्यक्त करते हैं।

$$\text{२ ख}_{३}(\text{फ ओ}_{४})_{२} + \text{६ शि ओ}_{२} + \text{१० क}$$

खटिक स्फुरेत (अस्थि चूर्ण) शिलाकण द्विओषिद (बालू) कर्बन (कोयला)

$$= \text{फ}_{४} + \text{१० कओ} + \text{६ ख शिओ}_{३}$$

स्फुर वायव्य मिट्टी
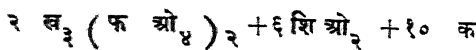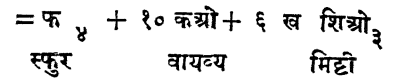
जब सस्ते स्फुरके मिलनेकी समस्या पूरी हो गयी दियासलाई बनानेमें उसका प्रयोग करना कोई बड़ी बात न थी। संवत् १८९० में पहले पहल स्फुरकी दियासलाई बनायी गयी। लकड़ीके पतले टुकड़े पहले गले हुए पाराफीन नामक पार्थिव मोममें डुबोये गये। उसके बाद एक दूसरे बरतनमें जलानेवाले मसालेमें उनका सिरा डुबोया गया। यह मसाला क्या था? सिन्दूर, पोटाश और गोंद और स्फुरका बारीक मिश्रण। सिन्दूरका जगह सीसनत्रेत भी डालते थे, और देखनेमें सुन्दर बनानेके लिये उसमें रङ्ग भी मिला दिया करते थे। यह मिश्रण पतली लेईको तरह होता था। इसके बाद दियासलाइयां सूखनेको रखदी जाती थीं। सूखनेपर इन्हें गिन गिनकर बक्सोंमें भर देते थे। यह सब काम थोड़ीसी दियासलाइयोंके लिये नहीं होता था। एक एक कारखानेमेंसे नित्य साठ लाखसे लेकर एक करोड़तक दियासलाइयां निकलती थीं।

नयी चीज़ देखकर मनुष्यका मन स्वभावसे ही आकर्षित हो जाता है और चीज काममें आने लगती है, परन्तु उसके वास्तविक दोष या गुण कुछ कालतक काम आये बिना नहीं जाने जा सकते। फासफोरसके विषयमें लोगोंकी जानकारी यथेष्ट न होते हुए भी बड़े वेगसे उसका प्रचार हो गया, परन्तु उसके अवगुण भी थोड़े ही दिनोंमें अत्यन्त भयंकर रूपमें प्रकट होने लगे। कारखानोंमें बहुत दिन तक स्फुरका प्रयोग न होने पाया था, कि एक अत्यन्त भयानक रोग प्रकट हो गया, जिसका चिकित्सा-शास्त्रको स्वप्नमें भी अनुमान न था। यह रोग काम करनेवालोंमें फैला। दांतोंकी पीड़ासे प्रारम्भ हुआ। दांत गलगलकर गिरने लगे। जबड़ा भी गलने लगा। इस रोगसे इतनी असह्य पीड़ा हुई कि या तो आरम्भमें शल्य चिकित्सासे कुछ आराम हुआ या मृत्युने ही रोगी-

को शान्त किया। प्रायः दांतोंको उखड़वा देनेपर भी कोई लाभ नहीं होता था। यातना अत्यन्त बढ़ जाती थी। रोगीको जान पड़ता था, कि मानो गाल और जबड़ेकी हड्डियोंको कोई खुरच रहा है।

रोगीके शरीरसे ऐसी बदबू निकलती थी कि कोई कमरेमें रह नहीं सकता था। कुछ दिनोंमें गाल और हड्डियां एक दम सड़ जाती थीं और हड्डियोंके टुकड़े गालमेंसे निकलकर गिर जाते थे। कभी कभी सारी मूर्धा और नाकके भीतरका भाग गल जाता था, ऊपरका जबड़ा नष्ट हो जाता था और आंखोंतक असर पहुंचते ही ज्योति मारी जाती थी। यकृत भी बढ़ जाता था और उसमें फोड़े हो जाते थे। इस भयंकर नारकी रोगने बड़े-से बड़े डाक्टरोंको चक्करमें डाल दिया। इस रोगका नाम उन्होंने निक्रोसिस Necrosis रखा। यह रोग स्फुरका धुआं सूंघनेसे हुआ करता था। सभी कारखानोंका जब यही दशा हुई तो सर्वसाधारणमें हलचल मच गयी। यद्यपि हवादार कमरोंसे और सफ़ाईसे कुछ कमी हुई तथापि सब उपायोंके होते हुए भी कभी न कभी यह रोग प्रकट ही हो जाता था।

दियासलाइयोंमें साधारण स्फुरके प्रयोगसे और भी हानियां होती थीं। अंधेरेमें चमकती थी, गर्म जगहमें भकसे जल उठती थी, हवासे नम हो जाती थी और रखे रखे निकम्मी हो जाती थी। अजान बच्चे लाललाल सिरेसे आकर्षित होकर, दियासलाइयोंको हाथमें लेकर चूसते थे।

[असमाप्त]

खाद और खाद डालना

गताङ्कसे सम्मिलित

[ले० पथिक]

(१)

गोबरके खादकी शक्ति

गोबरके खादकी शक्ति निम्नलिखित बातोंपर अवलम्बित है:—

(अ) खाद एकत्रित करनेकी विधिपर—यदि खाद गढ़ेमें पूर्वोक्त रीतिसे रखी गई है तो वह हमेशा शक्तिशाली रहेगी। यदि लापरवाहीसे ढेर लगा कर रखी गई है तो बहुतसी गुणकारी चीज़ें अधिक सड़नेसे, सूर्यके तापसे, वायुके प्रवेशसे और बरसातके पानीसे बहकर निकल जायंगी।

(ब) जानवरोंकी भोजन सामग्रीपर—जो जानवर उम्दा बलप्रद खाना पाते हैं उनके गोबरकी बनी हुई खाद अधिक गुणकारी होती है।

(स) जानवरोंकी आयुपर—जवान जानवरकी खाद कमज़ोर होती है, क्योंकि ख़ूराकका अधिक भाग शरीर रचनामें व्यय हो जाता है। बूढ़े जानवरकी खाद अधिक गुणकारी होती है और उसके पेशाबमें नाइट्रोजन भी अधिक होती है।

गोबरकी खादके गुण

(१) यह हर एक फ़स्लमें दी जा सकती है।

(२) पौदेकी ख़ूराकको बढ़ाती है।

(३) ज़मीनकी शारीरिक दशाको सुधारती है

(अ) रेतीली भूमिमें जल रोकनेकी शक्ति बढ़ जाती है।

(ब) मटियार भूमि आसानीसे जुतने योग्य हो जाती है।

(४) इसका प्रभाव ४ या ५ सालतक रहता है।

(५) सस्ती और हर जगह मिल सकती है।

गोबरकी खाद और पेशाबकी बनावट

वस्तु	जल	जीवांशभाग	खनिज पदार्थ
सूखागोबर	२०	५६	२१
पेशाब	९२	५	३

नत्रजन	पोटाश	फ़ौसफ़ोरिकअम्ल
·७२	१.१५	·०२
·९२–१.२	१.५	·०२

खादका खेतमें डालना

जब पांस ख़ूब सड़ जावे तब उसको खेतमें फैलाकर फ़ौरन जोत देना चाहिये। खादको फ़स्लके अनुसार डालना चाहिये।

(२)

भेड़ बकरीकी मेंगनीकी खाद

इस पांसके रखनेका कोई ख़ास नियम नहीं है। जसे गोवरकी पांस रखी जाती है वैसे ही इसे रखना चाहिये। पेशाबको बनानेकेलिए पत्तियोंकी बिछाली बिछानी चाहिये जो साप्ताहिक बदलनी चाहिये।

दूसरा सरल उपाय यह है कि रातको खेतके एक हिस्सेमें भेड़ोंको बिठाया जाय। सवेरे उतना ही हिस्सा जोत दिया जाय। जबतक पूरा खेत इस प्रकारसे समाप्त न हो जावे ऐसा ही किया जाय। इस तरीकेसे पांसका कोई भाग व्यर्थ नहीं जाता। २०० भेड़ें १० दिनमें एक एकड़ खेतको पूरा कर सकती हैं।

गुण

यह पांस गोवरकी खादसे अधिक गुणकारी होती है और शीघ्र पौदोंके उपयोगमें आ सकती है। और गुण गोवरकी खादके से ही होते हैं।

यह खाद भारतवर्षमें अधिकतासे नहीं मिल सकती इसलिये ख़ास ख़ास फ़स्लोंमें इसे देना चाहिये।

बनावट

वस्तु	जल	जीवांशभाग	खनिजपदार्थ	नत्रजन
मेंगनी	५७.७५	१५.८६	२६.३९	·८४
पेशाब	८६.५०	९.९	३.६	१.४

खेतमें गोवरकी खादकी तरह डालनी चाहिये।

(३)

मैलेकी खाद

रेतीली भूमिमें मैला ताज़ा ही डालना चाहिये। मटियार भूमिमें अधिक डालनेसे बुरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि उसमें यह शीघ्र नहीं सड़ता। मटियारके कण अति निकट होते हैं इसलिये वायुका प्रवेश कठिनतासे होता है।

कहीं कहीं खेतोंमें नाली या गढ़े बनाकर इसे दबाते हैं। इसके वास्ते १ फुट गहरी नाली खोदी जाती है। मैला भरनेके बाद मिट्टीसे दाब दिया जाता है। ऐसा करनेपर खेतमें उस साल काश्त नहीं की जाती, अगले साल इस योग्य हो जाता है। इसका गुण कई वर्ष तक रहता है।

जो मैलेकी खाद सड़कर तैयार होती है उसे पूडरेट (Poudrette) कहते हैं। इसके बनानेके दो तरीके हैं—

(१) उथले गढ़ोंकी रीति (shallow pit system)

(२) गहरे गढ़ोंकी रीति (deep pit system)

(१) उथले गढ़ोंकी रीति

एक फुट गहरे गढ़े खोदे जाते हैं। उनकी तहमें ३ इंच मोटी राख बिछा देते हैं। फिर ७-८ इंच मैला डालते हैं। फिर ऊपर राख डालकर मिट्टीसे गढ़ेको बंद कर देते हैं। एक महीने बाद उसको खूब मिलाते हैं। फिर गढ़ोंमेंसे निकालकर ढेर लगा देते हैं। इस ढेरको मिट्टीसे ढँक देते हैं। २ मासमें यह खाद खेतमें डालने योग्य हो जाती है।

नोट-(१) शहरकी झाड़न बुहारन भी तहमें राखकी जगह प्रयोगमें लाई जा सकती है।

(२) गढ़े शहरसे २ या ३ मील बाहिर होने चाहियें।

(२) गहरे गढ़ोंकी रीति

इसके लिये ५ या ६ फुट गहरे गढ़े खोदे जाते हैं। उनके पेंदेमें ६ या ७ इंच मोटी तह राखकी दी जाती है। फिर मैलेसे भरकर मिट्टीसे बंद कर देते हैं। ६ या ८ महीनेमें यह सड़कर खेतमें डालने योग्य पांस बन जाती है।

गुण

मैलेकी पांस गोवरकी पांसकी अपेक्षा शीघ्र गुण करती है और सड़ती भी जल्दी है।

नोट-यह पांस ऐसे खेतोंमें डालनी चाहिये जहां कि सिंचाईका प्रबन्ध हो। नहीं तो लाभकी अपेक्षा हानि होना सम्भव है। उसका गुण कई वर्षतक रहता है।

बनावट

वस्तु	जल	नाइट्रोजन	पोटाश	फ़ौसफ़ोरिकएसिड
ताज़ामैला	७५·२	१	·२५	१·०
पेशाब	९५·६	·८	·२	·१७

(४) सीवेज (Sewage)

यह वह द्रव खाद है जो कि पानी और बक्टीरिया (Bacteria) के प्रभावसे मैलेसे तैयार होती है।

जिन स्थानोंपर टट्टियां बहते हुये पानीसे साफ़ (Flushwater latrines) होती हैं वहांपर मैला एक हौजमें पहुंचाया जाता है। वहांसे फिर दूसरे हौज़में धीरे धीरे पहुंचाया जाता है। ऐसा होनेसे मैलेके ज़र्रे हौज़की तहमें लगे रह जाते हैं। यहांपर बैक्टीरिया (Bacteria) उनपर काम करते हैं और उन्हें घुलने योग्य बना देते हैं। यह सब पानी एक हौज़में जाता है जिसमें कि ईंटोंके टुकड़े भरे रहते हैं। इस हौज़में यह पानी जमा रहता है। वह धीरे धीरे रिस रिस कर निकला करता है। इस हौज़में भी मैलेके कणोंपर बैक्टीरिया अपना काम करते हैं। यह रिसा हुआ पानी खेतोंमें डालने योग्य होता है। इस हौज़मेंसे ईंटोंके टुकड़े हवा देनेकेलिये निकाल लिये जाते हैं क्योंकि कुछ सालोंके बाद छिद्र मैलेसे बंद हो जाते हैं। इसके लिये दोहरे हौज़ होते हैं। एक एक साल काम देते हैं और दूसरे दूसरी साल।

गुण

(१) यह खेतमें सिंचाईके समान दिया जाता है।

(२) लगातार इसीसे सिंचाई नहीं करनी चाहिये। इसकी हरएक सिंचाईके बाद पानीसे सिंचाई करनी चाहिये।

(३) खेत बोनेके बाद इससे सिंचाई नहीं करनी चाहिये।

(४) गन्नेको इससे विशेष लाभ होता है।

बनावट

जल	नाइट्रोजन	पोटाश	फ़ोसफ़ोरिकएसिड
९९·९	·००८	·००१	·००६

सर्वव्यापी ईथर और प्रकाश सिद्धान्त*

[ले० प्रोफ़ेसर निहालकरन सेठी, एम. एस-सी.]

आजकल वैज्ञानिकोंका मत है कि समस्त संसार एक सर्वव्यापी ईथरसे भरा है। यद्यपि इस ईथरको हम अपनी इंद्रियों द्वारा नहीं जान सकते तथापि इसमें संदेह नहीं कि प्रकाश और विद्युत् इसकी ही सहायतासे अपना कार्य करते हैं और सम्भवतः यही ईथर समस्त पुद्गल पदार्थोंके अस्तित्वका मूल कारण है, अथवा वे सब इसके ही रूपान्तर हैं। अतः यह आवश्यक है कि सर्वसाधारणको ज्ञात हो जाय कि ऐसा माननेके क्या क्या कारण हैं। इन कारणोंको पुष्ट करनेवाली क्या क्या घटनायें हैं, और उनके लिये कौन कौनसे प्रयोग किये गये हैं।

प्रायः २४० वर्ष पहिले सन १६७६ में हालैंड (Holland) के ज्योतिषी रोमर (Olaus Romer) ने पैरिसको विज्ञान-परिषद्में एक लेख पढ़ा था, जिसमें उन्होंने सबसे पहिले यह बतलाया कि प्रकाशको एक स्थानसे दूसरे स्थानतक जानेमें समय लगता है। इस बातका उन्होंने बृहस्पतिके उपग्रहोंसे पता लगाया था। बृहस्पति सूर्यके चारों ओर ११ वर्ष और ३१५ दिनमें एक बार घूम जाता है। उसके ८ चंद्रमा हैं जो बराबर उसके चारों ओर घूमते रहते हैं। जब वे बृहस्पतिके पीछेकी ओर उसकी छायामें चले जाते हैं तब दिखलाई नहीं देते। हमारे चंद्रमाकी भांति
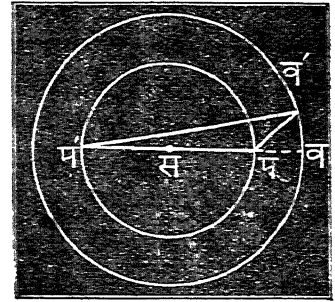
चित्र ३—व, व' बृहस्पतिकी और प, प' पृथ्वीकी दो स्थितियां हैं।

* फ्लेमिंग (Fleming) की "Wonders of Wireless Telegraphy" से।

Physics भौतिकशास्त्र]

उनका भी ग्रहण हो जाता है। यह सब एक मामूली अच्छी दूरबीनसे देखा जा सकता है। किसी एक उपग्रहको बृहस्पतिके चारों ओर जानेमें कितना समय लगता है यह ज्ञात रहनेपर पहिलेसे ही बतलाया जा सकता है कि वह अमुक अमुक समयपर अदृष्ट हो जायगा। रोमरने यह सब हिसाब लगाकर रख छोड़ा और दूरबीनमें देख देखकर वह इस हिसाबकी सत्यताकी परीक्षा करने लगा। तब ज्ञात हुआ कि ज्यों ज्यों पृथ्वी और बृहस्पतिमें दूरी बढ़ती जाती है, त्यों त्यों वह उपग्रह नियत समयसे कुछ पीछे अदृष्ट होता है, और जब दूरी घटने लगती है, तब वह नियत समयसे पहिले ही अदृष्ट हो जाता है। इसका कारण यही हो सकता है कि प्रकाशको उस अधिक दूरीको पार करनेमें अधिक समय लगजाता है। इससे ही ठीक ठीक समयका अन्तर देखकर और दूरीका अंदाज़ा करके उन्होंने परिणाम निकाला कि प्रकाश एक सेकंडमें प्रायः १८६,००० मील चलता है।

जिस समय यह बात प्रगट हुई लोग केवल हंसते थे जैसा कि साधारण नियम है। प्रत्येक नई बातमें विश्वास ज़रा कठिनतासे ही होता है। किन्तु लगभग ५० वर्ष पीछे इंगलिस्तानके डाक्टर ब्रेडलेने एक दूसरी रीतिसे यही परिणाम निकाला। इनकी रीति भी तारोंकी गतिपर निर्भर थी। किन्तु इन बातोंपर विश्वास कर लेना कोई सरल कार्य नहीं था। जब तक पृथ्वीपर ही यह बात प्रमाणित न हो जाय तबतक कैसे विश्वास हो? तारोंकी ठीक दूरी ज्ञात है कि नहीं कौन जाने?

ऐसी परीक्षाओंकी प्रायः १२५ वर्षतक कोई संभावना न दिखलाई पड़ी। तदुपरान्त फिज़ो (Fizeau) और फोको (Focault) ने सन् १८६२ ई० में दो युक्तियां निकालीं। इनसे बिना किसी संदेहके प्रकाशका वेग नाप लिया गया, और परिणाम निकला १,८६,३२३ मील प्रति सेकंड। ऐसी भिन्न रीतियोंसे एक ही परिणाम निकलना स्पष्ट प्रकट करता है कि इसमें ग़लतीकी संभावना नहीं।

यह वेग इतना है कि प्रकाशको सूर्यसे पृथ्वीतक आनेमें लगभग ८ मिनट लगते हैं। इससे ही अंदाज़ा किया जा सकता है कि एक वर्षमें प्रकाश कितनी दूर चल सकता है। इस बुद्धिको चकित कर देनेवाली दूरीको जो प्रायः ६ लाख करोड़ मील है एक प्रकाशवर्ष कहते हैं। ज्योतिषी लोग तारोंकी दूरी इन्हीं प्रकाशवर्षोंमें नापते हैं। एक प्रकाशवर्षकी दूरीको डाकगाड़ीमें बैठकर तय करनेमें रातदिन बिना कहीं ठहरे चलनेपर भी १ करोड़ १० लाख वर्ष लग जायंगे। जो तारा पृथ्वीके बहुत निकट है उसकी दूरी भी ४ प्रकाश-वर्ष है। ध्रुव तो ४४ प्रकाशवर्ष दूर है और सप्तर्षिके तारोंकी दूरी प्रायः १८० प्रकाश-वर्षसे कम नहीं है। सन १६०१ ई०में सहसा एक नया तारा दिखलाई पड़ा था, और वह बहुत जल्दी ही ग़ायब भी हो गया। बहुत प्रकारकी परीक्षाओंसे पता लगाया गया था कि वह प्रायः ३०० प्रकाश-वर्षकी दूरीपर था, अर्थात् वास्तवमें जिस समय उसमें वह ज्योति निकली थी उस समय यहां अकबर राज्य करता था। इतने वर्षतक उस भीषण अग्नि लीलाका समाचार आकाशमें यात्रा ही करता रहा।

जब हम इन आश्चर्यजनक दूरियोंपर और इस अत्यन्त द्रुतगामी दूतपर विचार करते हैं तब सहसा प्रश्न उठता है कि यह प्रकाश वास्तवमें क्या है? इसे चलनेमें समय क्यों लगता है और वह किस प्रकार एक स्थानसे दूसरे स्थानतक जाता है। सर आईज़ैक न्यूटन (Sir Isaac Newton) ने इन्हीं प्रश्नोंपर प्रायः २०० वर्ष पहले विचार किया था।

जब किसीको एक स्थानसे दूसरे स्थानतक जानेमें समय लगता है तब दो बातोंमेंसे एक हो सकती है। या तो वह कोई पुद्गल पदार्थ है जैसे बन्दूकमेंसे निकलनेवाली गोली और डाकमें चलने

वाली चिट्ठी, अथवा वह किसी प्रकारकी तरंग है जो पानी, हवा या अन्य किसी पदार्थमें चलती है। जो चिट्ठी हम अमेरिका भेजें वह प्रायः १॥ महीनेमें वहां पहुंचती है। परन्तु जब वहां पहुंचती है तबभी ठीक वही वस्तु होती है जो हमने डाकखानेमें छोड़ी थी। विपरीत इसके जो शब्द हम बोलते हैं वह सुननेवालेके पास ज्योंका त्यों नहीं पहुंचता। वह कोई पदार्थ नहीं है। केवल हम हवामें कुछ स्पन्दन पैदा कर देते हैं और यह स्पन्दन फैलते फैलते कानके निकट हवाके परमाणुओंको कम्पित कर देता है। यह एक तरंग हुई।

न्यूटनने समझाया था कि प्रकाशका कारण यह है कि बहुत छोटे छोटे कण अत्यंत वेगसे प्रकाशमान वस्तुसे निकलकर आंखपर टक्कर मारते हैं और बड़ी युक्तियों द्वारा उन्होंने अपने सिद्धान्तको पुष्ट भी किया, किन्तु अन्तमें ज्ञात हो गया कि इस सिद्धान्तसे काम नहीं चलता। न्यूटनके ही समकालीन हैगेन्स (Huyghens) और डाक्टर यंग (Dr. Young) ने यह प्रमाणित कर दिया कि प्रकाश कोई पदार्थ नहीं है। वह तरंग है, और तरंग किसी पदार्थमें ही हो सकती है। अतः उन्होंने निश्चय किया कि समस्त संसारमें एक सर्वव्यापी पदार्थ भी होना चाहिये जिसका नाम ईथर (æther) रखा गया।

जब इस प्रकारके दो विरोधी सिद्धान्त उपस्थि हो जाते हैं तब यह स्वाभाविक है कि किसी ऐसी घटनाकी खोज की जावे, जिससे निर्भ्रान्त सिद्ध हो जाय कि उनमेंसे अमुक ठीक है। ग्रिमाल्डी, यंग, फ्रेनेल और फोको आदिने ऐसे अनेक प्रयोग बतलाये जिनसे ऐसा प्रमाण मिल सकता था। उन प्रयोगोंकी व्याख्या तरंग सिद्धान्तसे हो सकती थी और उनसे कण सिद्धान्तकी असत्यता भी प्रगट हो जाती थी।

उनमेंसे केवल दो बातोंका उल्लेख यहां किया जायगा। ग्रिमाल्डी और डाक्टर यंगने कहा कि यदि प्रकाश तरंगरूप है तो जिस प्रकार पानीमें दो लहरोंके मिलनेसे कहीं अधिक आन्दोलन हो जाता है और कहीं पानी सर्वथा स्थिर रहता है, ठीक उसी प्रकार प्रकाशकी दो तरंगोंसे भी होना चाहिये। अर्थात् यदि दो किरणें किसी पर्देपर पड़ें तो कहीं अधिक प्रकाश और कहीं अंधकार हो जाना चाहिये। यह भी स्पष्ट है कि यदि प्रकाश कणोंसे बना है तो यह कभी संभव नहीं कि दो कण टकरा कर सर्वथा नष्ट हो जावें और दो किरणोंसे किसी भी स्थानपर अंधकार उत्पन्न हो सके। अतः ऐसे प्रयोगकी सफलतासे इन सिद्धान्तोंकी सत्यताका पता चल सकता है।

इस प्रयोगके कर डालनेमें अधिक समय न लगा, और अब तो ऐसी अनेक युक्तियां निकल गई हैं कि प्रकाश विज्ञानका प्रत्येक विद्यार्थी जब जी चाहे दो प्रकाशोंसे अंधकार उत्पन्न कर सकता है। इन सबका वर्णन करना यहां अभीष्ट नहीं है। पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि प्रकाश कोई वस्तु नहीं है वह अवश्य तरंगमय है।

दूसरी बात यह है कि कण सिद्धांतके माननेवालोंका मत था कि प्रकाशका वेग हवाकी अपेक्षा जलमें या कांचमें अधिक होता है। बिना ऐसा माने वे वर्त्तन (Refraction) की व्याख्या कर ही नहीं सकते थे। इसके बिना जलमें घुसनेपर प्रकाश जो मुड़ जाता है उसका कारण ही नहीं समझमें आ सकता था। विपरीति इसके तरंग सिद्धांतसे यह परिणाम निकलता है कि प्रकाशका वेग हवामें अधिक होता है। जल या कांचमें वह इतना तेज नहीं चल सकता। अतः स्पष्ट हो गया कि यदि जलमें और हवामें प्रकाशका वेग नाप लिया जाय तो तुरन्त ज्ञानहो सकता है कि कौन सिद्धांत सच है। फिजो और फोकोने यह वेग नाप डाला। पता लगा कि पानीमें प्रकाशका वेग प्रायः १,२८,४६५ मील फी सेकंड अर्थात् हवासे प्रायः तीन चौथाई है। इस परिणामसे साफ़ ज़ाहिर हो गया कि अब तरंग सिद्धांत-

की सत्यतामें सन्देह करना व्यर्थ है और यद्यपि कण-सिद्धांत न्यूटनके समान महापुरुषका सिद्धांत है तौभी उसे छोड़ देना ही उचित है।

किन्तु यह बात केवल इन्हीं दो प्रयोगोंपर निर्भर नहीं है। अन्य ऐसे हो प्रयोगोंकी संख्या अपरिमित है, उनके उल्लेखकी इस निबंधमें आवश्यकता नहीं।

अब प्रश्न यह हुआ कि प्रकाश तरंगमय तो है किन्तु वह पदार्थ कौनसा है जिसमें यह तरंगें उत्पन्न होती हैं! इस प्रश्नका उत्तर देनेसे पहिले तरंगोंके विषयमें कुछ आवश्यक बातोंको बतला देना ज़रूरी है।

पानीकी लहरोंको देखनेसे यह तो सबको ज्ञात होगा कि यद्यपि लहर चलती हुई दीख पड़ती है किन्तु पानी अपने स्थानसे नहीं हटता। एक लकड़ीका टुकड़ा तैरा देनेसे ज्ञात हो जायगा कि यद्यपि सहस्रों लहरें उसके नीचेसे निकल जाती हैं किंतु वह उनके साथ बह नहीं जाता। केवल ऊपर नीचे उठता रहता है। एक सेकंडमें जितनी बार वह उठता है वही उस तरंगकी आवृत्ति (Frequency) कहलाती है। तरंगोंमें एक उन्नत या नत भागसे दूसरे उन्नत या नत भाग तकका अन्तर बराबर होता है। इसे तरंगकी लम्बाई या तंरगान्तर (wave length) कहते हैं।

तरंगोंका एक नियम है कि आवृत्ति और तरंगान्तरको गुणा करनेसे तरंगोंका वेग मालूम हो जाता है। जैसे शब्द जो वायुमें एक प्रकारकी तरंग है--प्रायः ११०० फुट प्रति सेकंडके वेगसे चलता है। अब यदि शब्द सितारके उस तार-द्वारा उत्पन्न किया जाय जो प्रति सेकंड २७५ आन्दोलन करता है, अथवा जिसकी आवृत्ति २७५ फी सेकंड है, तो जो तरंगें उत्पन्न होती हैं उनकी लम्बाई ४ फुट होगी, क्योंकि ४ × २७५ = ११०० ।

प्रकाश तरंगोंकी लम्बाई नापनेके भी कई तरीक़े हैं, जिनके द्वारा नापकर पता लगाया गया है कि ये एक इंचके ३६,००० वें भागसे अधिक लम्बी नहीं होतीं। इतनी लम्बी भी केवल लाल रंगके प्रकाशकी तरंगें होतीं है। पीली तरंगोंकी लम्बाई एक इंचका ५०,००० वां भाग है और नीली तो प्रायः ८०,००० वें भागके ही बराबर होती हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि प्रकाशका वेग १८६००० मील या एक अरब फुट या १२ अरब इंच फी सेकंड है। अतः उपरोक्त नियमसे ज्ञात हुआ कि जिस आन्दोलनसे पीली तरंगें उत्पन्न होती हैं उसकी आवृत्ति १२ अरबको ५०,००० से गुणा करनेसे जो गुणनफल होगा उसके बराबर होगी, अर्थात् जिस पदार्थमेंसे प्रकाश चलता है उसके अणु एक सेकंडमें प्रायः ६० लाख करोड़ बार स्पन्दन करते हैं। और ये ही ६० लाख करोड़ तरंगें प्रति सेकंड हमारे नेत्रोंमें घुसकर जब ज्ञान तन्तुओंसे टकराती हैं तब हमें पीले प्रकाशका ज्ञान होता है। इस नियमसे परिणाम स्पष्ट है कि आवृत्ति जितनी ही कम होगी उतनी ही अधिक तरंगोंकी लम्बाई होगी। यदि आवृत्ति फी सेकंड एक ही होती, तरंगकी लम्बाई १८६,००० मील हो जायगी। यदि १००० भी हुईं तो भी तरंगान्तर १८६ मील होगा।

दूसरा नियम तरंगोंका यह है कि जिस पदार्थमें तरंग चलती है उसकी स्थितिस्थापकता (Elasticity) के वर्गमूलको यदि उसके घनत्वके वर्गमूलसे भाग देदें तो भागफल तरंग वेगके बराबर होगा।

स्थितिस्थापकता पदार्थोंका वह गुण है जिसके कारण उसके आकार या आयतनमें विकृति उत्पन्न करनेके लिए बलकी आवश्यकता होती है और ज्योंही बलको हटाया कि पदार्थ पुनः अपने पूर्व आकार या आयतनको प्राप्त कर लेता है। एक नियत विकृतिको उत्पन्न करनेके लिए जितने अधिक बलकी आवश्यकता होगी वह पदार्थ भी उतना ही अधिक स्थितिस्थापक समझा जायगा। अगणित प्रयोगोंसे सिद्ध हुआ है

कि जिस बलसे जितनी विकृति उत्पन्न हुई है उस बलमें उस विकृतिका भाग देनेपर सदा एक ही भागफल मिलता है। इस भागफलसे ही स्थिति स्थापकता नापी जाती है।

ठोस पदार्थोंके आकार और आयतन दोनोंमें विकार उत्पन्न करनेके लिए बलकी आवश्यकता होती है, किन्तु द्रवों और गैसोंका आकार विना बल लगाये ही बदल जाता है। आयतनबदलनेमें अवश्य बलकी आवश्यकता होती है। अतः द्रवों और गैसोंमें एक ही प्रकारकी स्थिति स्थापकता होती है। इसे दबावकी या आयतनकी स्थिति स्थापकता कहते हैं। ठोस पदार्थोंमें तीन प्रकारकी स्थिति स्थापकता होती है। (१) दबावकी या आयतनकी (२) ऐंठनकी और (३) लंबाईकी। पहिलीके कारण चारों ओर से दबा कर उसका आयतन बदलनेमें कठिनाई होती है, दूसरीके कारण आकार बदलनेमें बलकी आवश्यकता होती है और तीसरीके कारण तारको खींचकर बढ़ानेमें बल लगता है।

जानबीमा

जान बीमा क्या है? इससे क्या लाभ! क्यों लोग जानका बीमा कराते हैं? रुपया अन्य उपायोंसे भी एकत्र किया जा सकता है इत्यादि अनेक प्रश्न इस विषयके सम्बन्धमें उठते हैं। 'विज्ञान' के पाठकोंमेंसे अनेक ऐसे होंगे जिन्होंने बीमा कराया होगा। अनेक ऐसे भी होंगे जो अभी उक्त प्रश्नोंमें ही उलझे होंगे, और कुछ ऐसे होंगे जिन्होंने निश्चय कर लिया होगा कि बीमा कराना नितान्त व्यर्थ और हानिकारक है। अब यह देखना चाहिए कि वस्तुतः बात क्या है।

पहला प्रश्न यही होता है कि रुपया तो मरनेपर मिलेगा। इससे किसीको क्या लाभ? ऐसा प्रश्न करनेवाले यह नहीं जानते कि अब ऐसा भी हो सकता है कि यदि कोई रुपया अपने जीते जी लेना चाहे तो ले सकता है। बीमेकी कम्पनियोंने ऐसा प्रवन्ध किया है कि यदि कोई व्यक्ति कुछ वर्षतक रुपया दे, पर बादमें न दे तो जितना रुपया उसने दिया है, उतना ही रुपया उसे उस अवधिके पीछे मिल जायगा, जिसके लिए कि बीमा कराया गया है। इसकेलिए कम्पनियोंकी नियमावलियोंमें ब्योरा दिया रहता है कि अगर इतने रुपयेके जानबीमाकेलिए इतने वर्षतक इतना रुपया दीजिये तो वे आपको अमुक आयु प्राप्त होनेपर निश्चित रुपया दे देंगे। इससे यह लाभ होता है कि जो लोग ऐसा विचार करते हैं कि मरनेपर रुपया मिलनेसे कुछ लाभ नहीं तो उनके बुढ़ापेकेलिए रुपया जमा हो रहता है और उन्हें किसीके भरोसे नहीं रहना पड़ता।

यदि कोई यह कहे कि हम अपनी जानका बीमा न करावेंगे, रुपया बचानेसे ही तो तात्पर्य है, हम रुपया बचा लेंगे, तो उनसे कुछ कहना नहीं है। परन्तु यह अवश्य सोचना चाहिये कि कितने ऐसे आदमी हैं जो बिना किसी दबावके रुपया बचाकर जमा कर सकते हैं। जिसने अपने जानका बीमा करा लिया है उसे अवश्य ही रुपया बचाना पड़ता है। अगर ऐसा न करे तो उसने जो कुछ दिया है उसके नष्ट होनेका डर रहता है।

इससे यह न समझा जाय कि एक बार भी रुपया ठीक समयसे न पहुंचनेसे जितना रुपया दिया जा चुका है नष्ट हो जायगा। कम्पनीवालोंने प्रत्येक प्रकारका प्रवन्ध किया है। कहीं कहीं तो एक वर्षतक रुपया देनेपर भी यदि आगे रुपया न दिया जा सके तो रुपया लौटा दिया जाता है, और कुछ कम्पनियां तीन वर्ष रुपया पानेपर थोड़े दिनतक सूदपर अपनी ओरसे रुपया देती हैं। कुछ ऐसी भी कम्पनियां हैं जो तीन वर्ष रुपया पाकर क़िस्त चूक जानेपर फिर कुछ नहीं लेतीं परन्तु ऐसी दशामें उतना रुपया अन्तमें नहीं देतीं जितना पहले निश्चय होता है।

Economics अर्थ शास्त्र]

कुछ लोग कहते हैं कि अभी हम अधिक रुपयेके लिए बीमा नहीं करा सकते। अतएव जब हम इस योग्य होंगे कि कमसे कम १०,०००) का जान बीमा करा सकें तभी हम अपने जानका बीमा करावेंगे, अन्यथा नहीं। ऐसे महाशयोंको यह सोचना चाहिये कि हम उतने रुपयेकी हानि क्यों उठावें जितनेका लाभ हमको आज ही १०००) के जान बीमा करानेसे होगा। जैसे जैसे हमारी आय बढ़ती जावेगी वैसे वैसे हम और बीमे कराते जावेंगे। थोड़ासा ही विचार करनेसे इसमें बहुत लाभ दिखाई देगा।

साधारण प्रकारके जान बीमेके अतिरिक्त कम्पनियां ऐसा भी प्रबन्ध करती हैं कि आपके जानका बीमा भी हो और कम्पनीको जो लाभ हो उसमें भी आपको हिस्सा मिले। ऐसी दशामें आपको दोहरा लाभ होगा। हिसाब लगानेसे मालूम होता है कि इस प्रकारके जान बीमेमें जिसे सलाभ-जान बीमा कहते हैं उतनाही लाभ होता है जितना किसी व्यापारके करनेमें। जो लोग व्यापार करते हैं उन्हें मालूम है कि कितना समय लगाकर कितना परिश्रम व कितना कष्ट उठाना पड़ता है तब कहीं लाभकी आशा होती है। सलाभ-जान बीमामें व्यापारकासा परिश्रम नहीं, वैसा कष्ट नहीं, पर लाभ उतना ही है। व्यापारमें आपके रुपयेका कुछ भी निश्चय नहीं-नष्ट होगा कि लाभ होगा। सलाभ-जान बीमामें रुपयेका कुछ डर नहीं। लाभ भी अवश्य ही होगा।

जबसे सलाभ-जान बीमेकी प्रथा चली है तबसे एक और आशङ्का नष्ट हो गई है। उस आशङ्काके कारण बहुत लोग जान बीमा नहीं कराते थे। वह यह कि जितना रुपया कम्पनीसे मिलता था उससे अधिक कभी कभी दे देना पड़ता था। अब यह बात असम्भव है, यदि जान बीमा करानेवाला कुछ थोड़े विचारसे काम ले और ऐसे लोगोंकी अनुमतिसे काम करे जिन्हें इस विषयका कुछ भी अनुभव है।

अपने देशकी आर्थिक दशाको देखकर तो यहीं कहना पड़ता है कि जान बीमाकी प्रथा हमारे लिए अत्यन्त उपकारी है। प्रत्येक विचारशील पुरुष अपने पड़ोसमें ही प्रायः ऐसे दृष्टान्त पा सकता है कि जिनसे उसे जान बीमाकी उपकारिता सहजमें ही सिद्ध हो जावे। थोड़ी आयुमें विवाहका परिणाम यह होता है कि हम पूर्ण रूपसे गृहस्थीके भारको उठाने योग्य होने नहीं पाते कि लड़कों और लड़कियोंकी वृद्धि होने लगती है और अनेक वंश इसी उपद्रव में ग्रस्त होकर नष्ट हो जाते हैं। हमारी आय बहुधा थोड़ी ही होती है, मंहगीके कारण जितनी आय है उतनेमें ही काम चलना कठिन हो जाता है। बाल बच्चोंकेलिए कुछ बचा रखनेका सोच सर्वदा कष्ट देता रहता है। तब भी प्रायः निस्सहाय हो समस्त कुलको निस्सहाय छोड़ जाना पड़ता है। ऐसी दशामें विचारशील पुरुष जान बीमा ऐसे किसी उपायका सहारा लेना अत्यन्त ही उत्तम समझता है। परन्तु किसीके केवल पश्चात्ताप मात्र करनेसे किसीका वस्तुतः एक रत्तीभर भी लाभ नहीं हो सकता।

मैं ऐसे महाशयोंको जानता हूं जिनकी धर्म-पत्नियोंकी मूर्खताने उनको जान बीमा करानेसे रोक रखा था, और अन्तमें उन्हें लड़के बालोंको निस्सहाय ही छोड़ जाना पड़ा। स्त्रियां क्यों आपको जान बीमेसे रोकती हैं उसकी भी कथा सुन लीजिए। उनका कथन है कि कम्पनीवाले कोसते हैं कि जान बीमा करानेवाले शीघ्र ही मरें। बात वस्तुतः उलटी ही है। कम्पनीवाले तो चाहते हैं कि आप खूब जियें और शीघ्र न मरें। इसीमें उनका लाभ है। जितनी अधिक आपकी आयु होगी उतना ही अधिक वे आपसे रुपया ले सकेंगे।

जिस समय कोई जान बीमा कराता है तो उसके जीवनकी अवधि इस प्रकार समझते हैं कि यदि वह तीस वर्षका है तो उसमें पैंतीस वर्ष

और आयुमें जोड़कर मासिक व वार्षिक देनेका व्योरा तैय्यार करते हैं। ऐसे कुछ व्योरे नीचे दिये जाते हैं जिससे पाठकोंको यह निश्चय हो जावेगा कि उनको उतनेसे अधिक न देना पड़ेगा जितना इनके मरनेपर या मान लीजिए ५५ वर्षकी आयु प्राप्त होनेपर उन्हें कम्पनीसे मिलेगा।

सलाभ-आजीवन बीमा
१०००) मृत्युपर मिले

आगामि जन्म तिथि-पर आयु	वार्षिक देना
२० वर्ष	२१॥=)
२१	२२-)
२२	२२॥-)
२३	२३-)
२४	२३॥-)
२५	२४=)
२६	२४॥≡)
२७	२५।-)
२८	२५॥≡)
२९	२६॥-)
३०	२७।)
३१	२७॥≡)
३२	२८॥≡)
३३	२९।)
३४	३०।=)

निश्चित वर्षोंतक वार्षिकदान
सलाभ १०००) मृत्युपर

आगामि जिन्म तिथिपर आयुवर्ष	५ वर्षतक	१० वर्षतक	१५ वर्षतक	२० वर्षतक
२०	८५।=)	४८॥)	३६।=)	३०।≡)
२१	८६॥≡)	४९।)	३६॥।=)	३०॥।≡)
२२	८८)	५०)	३७।≡)	३१।≡)
२३	८९।=)	५०॥।)	३८)	३१॥।≡)
२४	९०॥।-)	५१॥)	३८॥=)	३२।≡)
२५	९२।)	५२।-)	३९।)	३३)
२६	९३॥।)	५३=)	३९॥।≡)	३३॥-)
२७	९५।-)	५४)	४०॥=)	३४=)

प्राचीन और आधुनिक रसायन *

[ले० प्रो०नगेन्द्रचन्द्र नाग, एम. ए., एफ. आई. सी.]
हिन्दू विश्वविद्यालय

आजकेलिए जो विषय मैंने चुना है रसायन शास्त्रकी प्राचीन तथा आधुनिक स्थिति है।

वह भी एक प्राचीन युग था, जब मनुष्यने आजकलका सा तड़क भड़क नहीं सीखा था, जब उसने अपनी स्वाभाविक और बनावटी आवश्यकताओंको पूरा करनेकेलिए तरह तरहकी हिकमतें नहीं निकाली थीं, उसी प्राचीन युगमें उस सभ्यताके आदि कालमें उसे केवल अपने सजातीय मनुष्य वैरियोंका ही सामना नहीं करना पड़ता था वरन् हिंस्र जंतुओंसे भी अपनी रक्षा करनी पड़ती थी। उस समय भी आजकलसे कम लड़ाइयां नहीं होती थीं और रोग भी आजकलकी अपेक्षा बहुत कम न थे। ऐसी दशामें मनुष्यका यह समझ लेना कि आरोग्य सबसे बड़े महत्त्वकी वस्तु है और रोग दूर करने और स्वास्थ्य रक्षाके उपाय सबसे पहले आवश्यक हैं, कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं। यही बात थी कि जिन दुःखोंसे वह सहजमें बच नहीं सकता था उनको दूर करनेकी औषधि ढूंढ़ने लगा।

जिन प्राचीन जातियोंके पास पुराना इतिहास है उन सबके प्राचीन समाजमें चिकित्सक वा वैद्य एक आवश्यक और अनिवार्य्य अंग था और

* परिषत्‌के चतुर्थ वार्षिक अधिवेशनमें माननीय सर सुन्दरलाल सी. आई. ई. के सभापतित्वमें सेनेट हालमें योग्य लेखकने १० नवम्बर १७ को पढ़ा था। सम्पादक।

पहले पहल जिन औषधियोंको मनुष्य काममें लाया, वह केवल जंगली जड़ी बूटियां थीं। अपने ही हिन्दू सभ्यताके इतिहासमें अथर्ववेदमें अनेक जड़ी बूटियोंके गुणोंका वर्णन पाया जाता है। अनेक कालतक बराबर जड़ी बूटियोंसे चिकित्सा होते होते, धीरे धीरे मनुष्यने खनिजों और रसोंका भी प्रयोग सीखा। खनिजों और रसोंके पूरा प्रचार होनेके बहुत पहले ही मनुष्यने नित्यके कामकी अनेक धातु और उनके मिश्रणसे अभिज्ञता प्राप्त की और सौन्दर्य्य और शृङ्गार रसकी वृद्धिसे अच्छी धातुओंके गहनेपाते भी बनने लगे। यह भी स्वाभाविक बात थी कि काष्ठ ओषधियां तथा रसादिकके निर्म्माणकी रीति गुप्त रखी जाय, और उनकी तय्यारीमें अलौकिक एवं धार्मिक बातोंका भी इस दृष्टिसे समावेश किया गया कि रोगीकी श्रद्धा बढ़े और विश्वास हो जाय कि ओषधियां विचित्र गुणोंसे भूषित हैं। सोना चांदी आदि बहुमूल्य धातुओंके प्रचारसे इस ओर धनलोलुप भी झुकने लगे। इस भांति मनुष्योंमें कुछ लोग धनके और कुछ आरोग्यके भक्त हो गये। धनलोलुप पारस पत्थरखोजने लगे कि लोहेसे सोनोंके ढेरके ढेर बनालें और जीवन-लोभी अमृत खोजने लगे कि एक ही मात्रामें जरा मरणसे मुक्त होकर संसारके स्वामी बने रहें। असंख्य प्रयत्न हुए, सैकड़ोंने इनके पीछे प्राण दिये, बहुतोंने धोखा खाया, अनेक कठिनाइयां झेलनी पड़ीं, परन्तु फलतः मनुष्यके ज्ञानमें वृद्धि होती ही गयी और पारस और अमृत न मिलनेपर भी विद्यारूपी अमृत और विज्ञानरूपी पारस एकत्र होता ही गया।

प्रयोगपर प्रयोग और परीक्षापर परीक्षा होती गयी; अनुभव होते होते मनुष्य कुछ साधारण सिद्धान्त समझने लगा, अनेक और असंख्य भेदोंके बीच एकता देवीके दर्शन होने लगे। ऐसे ही युगमें संभवतः हमारे यहांका पंच महाभूतका सिद्धान्त और पाश्चात्योंके चार तत्त्वोंका सिद्धान्त उत्पन्न हुआ। हिन्दुओंके पंच महाभूत या यवनोंके चारतत्त्वोंसे मतलब था पदार्थकी पांच या चार भिन्न भिन्न दशाएँ अथवा पदार्थके चार या पांच भिन्न गुण। इससे वस्तुकी भिन्नता अभिप्रेत न थी। यही बात थी कि प्राचीन विद्वान एक धातुसे दूसरीका बनना मानते थे और उसकी सत्यतामें विश्वास करते थे।

यह भी विचार उत्पन्न हुआ कि शरीर रोगोंका शिकार इसीलिए हुआ करता है कि जिन रसोंसे शरीर बना हुआ है उनकी मात्रामें कमीबेशी हो जाया करती है, अतः यह वैद्यका व्यापार हो गया कि इन रसोंकी शुद्धिकेलिए ठीक ठीक औषधोपचार करें। यह भी समझा जाने लगा कि शरीर अनेक धातुओं और रसोंका बना हुआ है, जिनके बाहरी रूप औषधोपयोगी पदार्थोंमें विद्यमान हैं। उनमें विशेष स्थान लवण गंधक और पारेको दिया गया। पारेका महत्त्व इतना बढ़ा कि उसे रसराज कहने लगे। शरीरके रसोंको शुद्ध रखनेकी क्रिया एवं इस रसराजके शोधनादि समस्त क्रियाओंका नाम इसीलिए "रसायन शास्त्र" पड़ा। इसी प्रकार अमृत और पारसकी खोज जो मिश्र आदि पाश्चात्य देशोंमें भी गुप्त रीतिपर की जाती थी अलकीमिया अर्थात रासायनिक कला तथा तामसिक कला कहलाने लगी।

पाश्चात्य देशोंमें भी अलकीमिया धीरे धीरे वैद्यकशास्त्रमें मिलकर एक हो गयी यहांतक कि आज भी केमिस्ट (chemist) शब्दका अर्थ अंग्रेज़ोंके कानूनमें पंसारी है जो ओषधियां बेचता हो। हमारे देशमें भी रसायनशास्त्र वैद्योंका आविष्कार है और आयुर्वेदका एक अंग है। श्रीमान् डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय विरचित हिन्दू रसायनका इतिहास पढ़नेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि रसायन शास्त्रने वैद्यकके साथ साथ कितनी और कैसी उन्नति की। इस प्रकार रसायनशास्त्र आयुर्वेदका सहायक मात्र था।

विक्रमकी अठारहवीं शताब्दीकी आदिमें ऐसी

ही दशा थी जब इङ्गलैंडके सर रावर्ट वोयलने पहले पहल मौलिक पदार्थका लक्षण निश्चित किया जो आजतक माना जाता है। उसके मतसे मौलिक पदार्थ उसे कहना चाहिए जो अवतक दो या अधिक भिन्न पदार्थोंका बना हुआ प्रमाणित न हुआ हो। इसमें सन्देह नहीं कि रेडियमको हम मौलिक कहते हैं तो भी जानते हैं कि रेडियम टूटता जा रहा है और उससे दो या अधिक मौलिक पदार्थ वनते जा रहे हैं। रेडियमके आविष्कारसे अब इस बातकी आवश्यकता है कि मौलिकके लक्षणको सुधार कर तर्कसंगत कर लिया जाय। जो हो, इसी विक्रमके अठारहवीं शताब्दीके आरंभमें रसायनशास्त्र एक स्वतंत्र विज्ञान हो गया, जिसका प्रधान कर्तव्य यह हुआ कि पदार्थों-की बनावट, योजना और गुणों धर्म्मोंपर विचार करे और उनकी साधारण एवं व्यापारी तय्यारी-का अनुसन्धान करे। शुद्ध रसायन विज्ञानीकेलिए प्रकृतिके रहस्योंका जानना ही मुख्य कर्त्तव्य समझा गया। रसायनके जिन प्रयोगोंसे जीवन-की रक्षा वा नाश हो सकती है वह शुद्ध विज्ञानी-के लिए गौण विषय हो गया। उसने इस विज्ञान-को शुद्ध ज्ञानोपार्जनकेलिए सीखना आरंभ किया। इसी विक्रमकी अट्ठारहवीं शताब्दीके आदिमें "दाह्य तत्व" (phlogiston) का सिद्धान्त भी एक महत्त्वकी वृद्धिका परिचायक हुआ। जितने दाह्य पदार्थ हैं सबमें एक दाह्य तत्व है, जिसके निकलनेसे ही अग्निका आविर्भाव होता है। बस, इसी धारणासे जलनेकी समस्त क्रियाओंकी व्याख्या की जाने लगी। यद्यपि इस सिद्धान्तकी अनेक त्रुटियां अन्तको इसीके खंडनका कारण हुईं, तथापि यह रसायनशास्त्रमें अनुगमकी ओर पहला बड़ा प्रयत्न था जो वस्तुतः सौ वरस पीछे लवोसियरके लिए मार्गदर्शक हुआ। लवो-सियरने यह सिद्ध किया कि जलना एक रासायनिक परिवर्तन है जिसमें ज्योति और ताप निकलता है। लवोसियरने ही यह भी सिद्ध किया कि वस्तु-का नाश नहीं होता, केवल परिवतन होता है। लवोसियरसे पहले सोनेकेलिए सूर्यका चिह्न चांदी केलिए चन्द्रमाका चिह्न इत्यादि विविध वस्तुओं-केलिए विविध जटिल चिह्नोंका प्रयोग होता था। उसने इनके बदले मौलिकोंके नामके आद्यक्षर रखकर आधुनिक चिह्नोंका निर्माण किया। उसी-के समयमें पदार्थोंका एक विशेष निष्पत्तिसे निश्चित मात्राओंमें मिलना प्रमाणित हुआ और अपवर्य अनुपातवाला नियम भी सिद्ध हो गया। इन्हीं नियमोंके सहारे डाल्टनका प्रसिद्ध परमाणु-वाद लवोसियरके पीछे ही प्रचलित हुआ। डा-ल्टनके इस जगन्मान्य परमाणुवादके प्रकाशित होनेके कुछ दिन पीछे अवोगड़ोका अणुवाद परमाणुवादका एक अंग बन गया। अवोगड़ोके पीछे डुलांग और पेटीने परमाणुओंको तापमात्रा का नियम निकाला। मिट्शरलिक्ने साथही समा-कृतिका नियम स्थिर किया। इन आविष्कारोंका फल यह हुआ कि रसायनशास्त्रमें परिमाण-सम्बन्धी विचार भी होने लगे और कहते भी हैं कि किसी विषयमें हमारा स्पष्ट ज्ञान होनेका प्रमाण यही है कि हम उस विषयको गणितके अंकोंमें व्यक्त कर सकें। इस समयके लगभग अनेक आविष्कार हुए जिनका पूरा अर्थ भली भांति उस समय समझमें नहीं आता था और सच पूछिये तो उनके आन्तरिक अभिप्रायको यथावत् समझनेमें आधी शताब्दीसे भी अधिक लग गये। डेवी और फ़रडेके वैद्युत् विश्लेषणके सीधे सादे आविष्कार, फ़रडेका गैसोंका द्रवी करण, ग्रेहमका नैर्यासिक घोल फ़रडेका बेंजीन बनाना, वरतोलेका वह नियम जिसमें आणविक समूहोंका प्रभाव रासायनिक क्रियापर पड़ता है वोलरका अजीविक युरिया बनाकर पदार्थसे जैविक रसायनकी कल्पनाका भ्रमोच्छेदन, इत्यादि इत्यादि सभी आधी शताब्दीके पीछे बड़े महत्वके आविष्कारोंके आनेकी अगवानी कर रहे थे।

राजनीतिक संसारमें इन आविष्कारोंके युग

ही दशा थी जब इङ्गलैंडके सर राबर्ट बोयलने पहले पहल मौलिक पदार्थका लक्षण निश्चित किया जो आजतक माना जाता है। उसके मतसे मौलिक पदार्थ उसे कहना चाहिए जो अबतक दो या अधिक भिन्न पदार्थोंका बना हुआ प्रमाणित न हुआ हो। इसमें सन्देह नहीं कि रेडियमको हम मौलिक कहते हैं तो भी जानते हैं कि रेडियम टूटता जा रहा है और उससे दो या अधिक मौलिक पदार्थ बनते जा रहे हैं। रेडियमके आविष्कारसे अब इस बातकी आवश्यकता है कि मौलिकके लक्षणको सुधार कर तर्कसंगत कर लिया जाय। जो हो, इसी विक्रमके अठारहवीं शताब्दीके आरंभमें रसायनशास्त्र एक स्वतंत्र विज्ञान हो गया, जिसका प्रधान कर्तव्य यह हुआ कि पदार्थों-की बनावट, योजना और गुणों धर्म्मोंपर विचार करे और उनकी साधारण एवं व्यापारी तथ्यारी-का अनुसन्धान करे। शुद्ध रसायन विज्ञानीकेलिए प्रकृतिके रहस्योंका जानना ही मुख्य कर्त्तव्य समझा गया। रसायनके जिन प्रयोगोंसे जीवन-की रक्षा वा नाश हो सकती है वह शुद्ध विज्ञानी-के लिए गौण विषय हो गया। उसने इस विज्ञान-को शुद्ध ज्ञानोपार्जनकेलिए सीखना आरंभ किया। इसी विक्रमकी अट्ठारहवीं शताब्दीके आदिमें "दाह्य तत्व" (phlogiston) का सिद्धान्त भी एक महत्त्वकी वृद्धिका परिचायक हुआ। जितने दाह्य पदार्थ हैं सबमें एक दाह्य तत्व है, जिसके निकलनेसे ही अग्निका आविर्भाव होता है। बस, इसी धारणासे जलनेकी समस्त क्रियाओंकी व्याख्या की जाने लगी। यद्यपि इस सिद्धान्तकी अनेक त्रुटियां अन्तको इसीके खंडनका कारण हुईं, तथापि यह रसायनशास्त्रमें अनुगमकी ओर पहला बड़ा प्रयत्न था जो वस्तुतः सौ बरस पीछे लवोसियरके लिए मार्गदर्शक हुआ। लवो-सियरने यह सिद्ध किया कि जलना एक रासायनिक परिवर्तन है जिसमें ज्योति और ताप निकलता है। लवोसियरने ही यह भी सिद्ध किया कि वस्तु-का नाश नहीं होता, केवल परिवतन होता है। लवोसियरसे पहले सोनेकेलिए सूर्यका चिह्न चांदी केलिए चन्द्रमाका चिह्न इत्यादि विविध वस्तुओं-केलिए विविध जटिल चिह्नोंका प्रयोग होता था। उसने इनके बदले मौलिकोंके नामके आद्यक्षर रखकर आधुनिक चिह्नोंका निर्माण किया। उसी-के समयमें पदार्थोंका एक विशेष निष्पत्तिसे निश्चित मात्राओंमें मिलना प्रमाणित हुआ और अपवर्त्य अनुपातवाला नियम भी सिद्ध हो गया। इन्हीं नियमोंके सहारे डाल्टनका प्रसिद्ध परमाणु-वाद लवोसियरके पीछे ही प्रचलित हुआ। डा-ल्टनके इस जगन्मान्य परमाणुवादके प्रकाशित होनेके कुछ दिन पीछे अवोगड्रोका अणुवाद परमाणुवादका एक अंग बन गया। अवोगड्रोके पीछे डुलांग और पेटीने परमाणुओंको तापमात्रा का नियम निकाला। मिट्शरलिक्ने साथही समा-कृतिका नियम स्थिर किया। इन आविष्कारोंका फल यह हुआ कि रसायनशास्त्रमें परिमाण-सम्बन्धी विचार भी होने लगे और कहते भी हैं कि किसी विषयमें हमारा स्पष्ट ज्ञान होनेका प्रमाण यही है कि हम उस विषयको गणितके अंकोंमें व्यक्त कर सकें। इस समयके लगभग अनेक आविष्कार हुए जिनका पूरा अर्थ भली भांति उस समय समझमें नहीं आता था और सच पूछिये तो उनके आन्तरिक अभिप्रायको यथावत् समझनेमें आधी शताब्दीसे भी अधिक लग गये। डेवी और फ़रडेके वैद्युत् विश्लेषणके सीधे सादे आविष्कार, फ़रडेका गैसोंका द्रवी करण, ग्रेहमका नैर्यासिक घोल फ़रडेका बेंजीन बनाना, बरतोलेका वह नियम जिसमें आणविक समूहोंका प्रभाव रासायनिक क्रियापर पड़ता है वोलरका अजीविक युरिया बनाकर पदार्थसे जैविक रसायनकी कल्पनाका भ्रमोच्छेदन, इत्यादि इत्यादि सभी आधी शताब्दीके पीछे बड़े महत्वके आविष्कारोंके आनेकी अगवानी कर रहे थे।

राजनीतिक संसारमें इन आविष्कारोंके युग

वस्तुतः बड़े भारी भारी युगान्तर उपस्थित करने वाले विप्लवोंका युग था जिसमें अनेक राज्य बन बिगड़ गये और समाजके रूपमें भी बड़े दूरगामी परिवर्त्तन हो गये। आधुनिक रसायन शास्त्रका जन्म ऐसे ही उपद्रवोंके युगमें हुआ था और ऐसे ही युगमें उसने अपनी बाल्यावस्था बितायी। मौलिकोंके लक्षण राजनैतिक विप्लवोंके साथही निश्चित हुए और सौ वर्ष पीछे लवोइसियरके समयमें जब फ्रांसमें महाविप्लव और युरोपव्यापी उपद्रवका सूत्रपात हुआ आजकलके सिद्धान्तोंका भी जन्म हुआ। लवोइसियरने इन्हीं उपद्रवोंमें अपना जीवन दे दिया। रसायन शास्त्रका फ्रांसके विप्लवसे, फरासीसियोंसे, और उस कालसे ऐसा सम्बन्ध था कि फ्रांसके एक विद्वान इतिहास लेखकने रसायन शास्त्रको फरासीसी शास्त्र बतलाया है। परन्तु सौ बरस पीछे फ्रांसके साथ साथ आज जो इंगलैंड और इटली अपना लोहू बहा रहे हैं, उस समय रसायन शास्त्रमें भी फ्रांसके सच्चे साथी थे। सच पूछिये तो डाल्टनके परमाणुवाद और अवोगड्रोके अणुवादपर ही रसायनशास्त्रकी अट्टालिकाकी नींव रक्खी गयी है।

परमाणु क्या है? रसायन शास्त्रीकी दृष्टिमें परमाणु उन पदार्थकणोंको कहते हैं जो रासायनिक रीतिसे अविभाज्य हैं और जो स्वतः रासायनिक क्रियामें सम्मिलित होते हैं। यह बात नहीं है कि परमाणुओंसे भी छोटे कणोंकी कल्पना नहीं हो सकती। विद्युत्कण जिन्हें हम कहते हैं, वह विद्युतके सूक्ष्म परमाणु हैं जो उद्जनके अत्यन्त छोटे परमाणुओंकी अपेक्षा एक हजार गुना छोटे हैं। संभव है कि यह कण केवल विद्युतकी पिंडहीन मात्राएँ हों और पदार्थकी मात्राका आविर्भाव केवल इनके वेगके कारण होता हो। यह बात अभी पूर्णतया निर्धारित नहीं हुई है। जो हो रासायनिक परमाणु इन्हीं विद्युत्कणोंके बने हुए हैं। इन्हीं एक प्रकारके विद्युत्कणसे भिन्न भिन्न मौलिक पदार्थ इसीलिए बने कि प्रत्येक मौलिकमें इन विद्युत्कणोंकी संख्या और योजनाक्रम भिन्न है। इसीलिए मौलिकोंकी योग-शक्ति भी भिन्न है। प्राचीन कालमें पदार्थ वा प्रकृति एकही मानी जाती था। आज भी हम अपनी खोजोंसे उन्हीं प्राचीन विचारोंकी ओर खिचे जा रहे हैं।

परन्तु यह अच्छी तरह याद रखना चाहिए कि इन विद्युत्कणोंमें रासायनिक संयोगके नियम नहीं लगते।

परमाणु और पारमाणविक भारकी कल्पनाका इतना विस्तार हुआ कि रूसी मंडलेफ़ ब्रिटिश क्रमब्रौन और निउलंड्स, जर्मन लोथरमेयर तथा अन्य अनेक रसायन और भौतिक विज्ञानियोंने समस्त ज्ञात और ज्ञातव्य मौलिकोंकी सूची एक विशेष क्रममें बनाकर उससे पुनरावर्तनके नियमका आविष्कार किया। मौलिकों और उनके यौगिकोंके गुण और धर्म पारमाणविक भारोंके पुनरावर्त्तन फल हैं। अर्थात् गुणों और धर्म्मोंमें उसी ढंगसे परिवर्त्तन होता चलता है जिस ढंगसे पारमाणविक भार घटते बढ़ते चलते हैं। यही पुनरावर्त्तनका नियम कहलाता है। मिट्शरलिकने समाकृतिक नियमकी खोज की और उसपर टटनने इतना विस्तार किया कि सामकृतिक रवोंकी अक्षीय लम्बाईके भेदसे अथवा द्वितल कोनोंके भेदसे विविध मौलिकोंके परमाणुओंके रूपपर भी विचार होना प्रारंभ हुआ। गन्धेत, सेलनेत तथा ग्राव, पोटाशियम, सोडियमके लवण इस बातके उदाहरण हैं। आकृतिविज्ञानका अनुशीलन इसी दृष्टिसे आजकल रैंटगन रश्मियोंके सहारे बापबेटे ब्रैग कर रहे हैं।

अवोगड्रोके आणविक सिद्धान्तको गतिसिद्धान्तसे बड़ी सहायता मिली है। गतिसिद्धान्तसे अनुगत आदर्श गैसोंके नियममें फनडरवालके समीकरणसे जो सुधार हुआ है उसके द्वारा हम एक हदतक प्रतिरूप अवस्थाओंमें

वस्तुओंके धर्म्मोंकी तुलना कर सकते हैं और इस रीतिसे अधिक व्यापक नियम निकाल सकते हैं। नैर्य्यासिक घोलोंके सम्बन्धमें सिगमंडी, सीडेंटाफ स्वेडवर्ग पेरिन आदिने परागुवीक्षण-यंत्रद्वारा जो माप किये हैं, उनसे गति-सिद्धान्तको अद्भुत सहायता मिलती है, जिससे बड़ी मात्राओं, नैर्य्यासिकों एवं नैर्य्यासिक घोलोंसे लेकर अणुओं और परमाणुओंतक अविच्छिन्न सम्बन्ध होता जाता है। ग्रेहमके नैर्य्यासिकोंसे लेकर ब्रौनीय गतियोंतक विस्तार करते करते विकीर्ण-मंडलका रसायन अलग ही तय्यार हो गया है जिसमें तलीयक्रिया, स्पर्शक्रिया आदिका अंश बड़े महत्वका है और इस स्थलपर ऐसे विस्तृत विषयकी चर्चामात्र की जा सकती है।

अवोगड्रोका अणुओं और अणुभारोंके विचारका प्रवेश राउल्टके नियमोंके द्वारा घोलोंमें भी हो गया। फांटहाफ़ने यह निश्चय किया कि द्रव घोलमें घुलितकी वही दशा है जो देशमें गैसके अणुओंकी है, परन्तु फंटहाफ़के निश्चित नियमसे कभी कभी वस्तुस्थितिमें कुछ अन्तर पड़ता था। इसका कारण आरहीनियसने स्पष्ट कर दिया और घोलके सम्बन्धमें वैद्युत पृथक्चार और गति साम्यका विचार भी उसी तरह सन्निविष्ट किया जिस प्रकार आणविक क्रियामें गैसीय पृथक्चार और गैसों और द्रवोंमें साम्य परस्पर क्रियाशील-वस्तु-मात्राओंपर और उनकी अवस्थापर निर्भर है। आस्टवल्ड और उसके शिष्योंने, जिनमें नर्न्स्ट मुख्य है, रसायनकी एक नयी शाखा ही निकाल दी है जिसे वैद्युत रसायन कहते हैं। यह शाखा अभी निरी युवावस्थामें है।

गैसके अणुओंसे आरंभ करके ऐसे ऐसे भौतिक दृश्यों और नियमोंसे—जैसे नैवेशिक osmotic दाब, घोलमें वाष्पीय दाबका घटना, हिमांकका घटना, द्रवोंका तलाकर्षण, लस, रश्मिशोषण, आणविक आयतन इत्यादि—सभी भौतिक धर्म्मोंके अनुशीलन से हम अणुओं आणविक मात्राओं तथा द्रव वा घोलकी अवस्थामें आणविक समूहोंकी परीक्षा करते रहे हैं। घनघोल, धातु मिश्रण और एकाकृतियोंका मिश्रण भी विचारणीय हैं। और हमें आशा है कि अणुओं, आणविक मात्राओं और समूहोंका विचार घनके सम्बन्धमें शीघ्र ही होगा।

वोलरने जबसे संश्लेषणसे युरिया बनाया तबसे कार्बनके यौगिक बनानेमें बड़ी उन्नति हुई और उनकी अवयव-रचनाके विषयमें सिद्धांत स्थिर किये जाने लगे। इस सम्बन्धमें यह बड़े महत्वकी घटना समझी जानी चाहिए जब फ्रंकलैंड और कूपरने परमाणुओंकी योगशक्तिकी कल्पनाकी अर्थात् यह कि प्रत्येक प्रकारके परमाणुमें दूसरे प्रकारके परमाणुके साथ एक निश्चित संख्यामें युक्त होनेका गुण है। इसीके बाद कर्बन परमाणुकी चतुर्योजकताकी कल्पना केकूलेने प्रकाशित की। परन्तु जब पस्ट्यूरने तिन्तिड़ीकाम्लोंके (Tartaric acids) विविध रूपान्तरोंकी परीक्षा की, जिनके आणविक भार और योजनामें एकता होते हुए भी भौतिक और रासायनिक गुणोंमें भेद पाया गया तो यह आवश्यक हुआ है कि इन विविध तिन्तिड़ीकाम्लोंमें, आवयविक अन्तर अर्थात् अणुमें परमाणुओंकी योगविधिमें अन्तर माना जाय। इस प्रकारके अनेक भौतिक एकरूपोंके अध्ययनसे यह आवश्यक जान पड़ा कि कर्बनके परमाणुको एक प्रकारका चतुस्तल माना जाय। चतुस्तलकी कल्पना फंटहाफ़ तथा लेवेलके मस्तिष्कसे निकली। इस नयी कल्पनाके कार्य्यक्षेत्रमें आते ही लोगोंने प्रत्येक भौतिक गुणका सम्बन्ध अवयव-रचनासे जोड़ना प्रारम्भ कर दिया। इस दिशामें ऐसे वेगसे विकास हुआ है कि अब हम प्रायः मन कहे रङ्गके यौगिक बना सकते हैं, प्रायः मनमाने गुणकी ओषधि बना सकते हैं। प्रायः जैसा चाहें वैसा कांच तैयार कर सकते हैं। निदान, प्रायः मनमाने गुण रखनेवाला कोई भी यौगिक बना सकते हैं—विशेष गुणका ईस्पात, विशेष रोगोंकी ओषधि, यथेष्ट रीतिके विस्फोटक,

इत्यादि । यदि इस प्रकारके कार्य्यकी पूरी क्षमता अभी नहीं आयी है तो भावीमें आनेकी दृढ़ आशा है। अवयवगठनके गुणोंसे सम्बन्ध रखनेवाले विचारमें बड़ी सफलता हुई है सही, परन्तु अभी इस दिशामें बहुत कुछ करना है।

रसायन-विज्ञानी पदार्थोंके धर्म्मोंके अनुशीलनमें या मनुष्यकेलिये उपयोगी यौगिकोंकी रचनामें थकनेवाला असामी नहीं है। वह अब ऐसा कुनैन तैयार कर रहा है जिसमें कड़वाहटका नामतक नहीं है। क्लोरोफ़ार्मका देना हृद्रोगियोंकेलिये बड़े जोखिमकी बात है। अब उसने स्टोवैन नामक एक पदार्थ बनाया है जिससे केवल हृदयके नीचेके अंगोंकी वेदना यथेष्ट समय केलिए स्तब्ध हो जाती है। रसायन-विज्ञानी इस कोशिशमें है कि जहां पैादेमें एक बाल लगती थी वहां दो लगें।

दूसरा बड़ा भारी आविष्कार जो लगभग बीस बरसोंके बीच हुआ है रेडियम आदि ज्योतिविकीरक पदार्थोंका है। जैसे रैंटगेनकी अदृश्य रश्मियोंकी खोज हुई उसी तरह अदृश्य रश्मि देनेवाले पदार्थ भी ढूंढ़ निकाले गये। इस कार्य्यका श्रेय एक देवीको है अर्थात् मेडेम कुरीको जो जन्मसे पोल जातीय थी और विवाहद्वारा फ्रांसीसी हो गयी। रश्मि विकीरक पिंडोंके आविष्कारके साथ साथ और उनके गुणोंके अनुशीलनसे हमको मैालिकोंके विषयमें अपने विचार बहुत कुछ सुधारने पड़े। इन पिंडोंसे शक्ति निकलती रहती है, किरणें वहिर्गत होती रहती हैं और कभी कभी कोई हलके परमाणु निकलते जाते हैं जिससे कई स्वतंत्र मैालिक बनते जाते हैं, और स्वयं वह पिंड इस प्रकार टूटकर अन्य मैालिकमें परिणत हो जाता है। इन नवजात मैालिकोंमें कुछ तो अत्यन्त अल्पजीवी होते हैं और कुछ स्थायी होते हैं। अब प्रश्न यह होता है कि इन्हें मैालिक कहते ही क्यों हैं! इसका कारण यह है कि रश्मिविश्लेषकमें इनकी वर्ण रेखाएँ हर एककी अलग अलग और स्वतंत्र हैं और जहां रासायनिक संयोग वियोग हम लोगोंके आयत्तमें है, वहां इन पिंडोंका टूटना और नये मैालिकोंका बनना हमारे आयत्तसे बाहर है। इन बातोंसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जब ऐसा एक-रश्मि-विकीरक मैालिक टूटकर कई नये मैालिकोंमें परिणत हो रहा है, तब ऐसा भी बहुत संभव है कि ऐसेही दो पिंड जिनके पारमाणविक भारोंमें अन्तर है, और एक स्थानीय भी नहीं हैं, टूटने और विकीरित होनेपर दो ऐसे एक स्थानीय मैालिकोंको उत्पन्न करें जिनके रासायनिक गुण एक ही हों, परन्तु उनके पारमाणविक भारमें कुछ थोड़ा अन्तर हो। इसका एक उदाहरण दो प्रकारका सीसा है, एक तो वह जो लंकाके थोरियानैटमें मिलता है और दूसरा वह जो युरेनैटके शुद्ध रूपसे मिलता है। इन विकीरित होने और टूटनेकी क्रियाओंपर यदि हमारा अधिकार हो जाय तो यह बहुत संभव है कि हम सोना भी बना सकें। इस टूटनेकी क्रियामें विद्युत्कण बड़े वेगसे छिटिकते रहते हैं और यद्यपि यह अभी हमारे अधिकारसे बाहर है तथापि कुछ लोगोंका अनुमान है जितने वोल्ट तड़ित इस समय हम काममें ला सकते हैं उससे कहीं अधिक मात्रामें जब हम काममें ला सकेंगे तो किसी दिन सोना भी बना सकेंगे। इस सोनेके रासायनिक गुण तो साधारण सोनेकेसे होंगे परन्तु संभव है कि उसका पारमाणविक भार कुछ भिन्न हो। कृत्रिम लाल और हीरा जो स्वाभाविक लाल और हीरासे कुछ भी भिन्न नहीं हैं, बन ही चुके हैं। रेडियममें कुछ ओषधिके गुण भी हैं, जिनकेलिए चिकित्सामें रेडियमका प्रयोग हो रहा है। थोरियमके टूटनेसे एक मैालिक मेसोथोरियम बनता है जो रेडियमका एकस्थानीय है और उसकी जगह काम आता है।

रसायन शास्त्रकी वर्त्तमान अवस्था यही है। हम लोग फिर भी पारस पत्थरकी कल्पनाकी ओर

झुके हुए हैं। साडी, रदरफ़र्ड, रामज़े, टामसन, काली, पेटरसनकी परीक्षाओंमें भी यही प्रवृत्ति झलकती है, परन्तु यह कल्पनाएँ परिवर्तनकी दशामें हैं।

यह बात विचारणीय है कि इन कल्पनाओंके उद्भव और विस्तारमें भारतवर्षने कितनी सहायता दी है! परन्तु हम निराश नहीं हैं। भारतवर्षमें भी वैज्ञानिक उन्नतिके स्पष्ट लक्षण दिखाई दे रहे हैं। श्रीमान डाकृर प्रफुल्लचन्द रायने शुद्ध रसायनके आविष्कारकोंका एक दल तैयार कर लिया है। उनका रासायनिक कारखाना Bengal Chemical and Pharmaceutical Works, Ltd. व्यवहारिक रसायनका एकमात्र उदाहरण है। मुझे यह दुःखके साथ कहना पड़ता है कि हमारे देशमें व्यवहारिक रसायनकी ओर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। शुद्ध विज्ञानका अनुशीलन शुद्ध ज्ञानकी वृद्धिकेलिए बड़ी अच्छी बात है, परन्तु कहावत है कि "भूखे भगति न होय गुपाला"। जब पेट भरा रहता है, तभी कामका बोझा भी सँभल सकता है। मानव समाजमें बिना शरीरका दिमाग कहीं हो सकता है? हमारे देशमें इस बातकी आवश्यकता है कि जिस पौधेमें अबतक एक बाल उगती थी, दो उगावें और राजा पृथुकी तरह गोमाता वसुन्धराको दुह कर उसके संचित रससे लाभ उठावें। युरोपीय महायुद्धने हमारी आंखें खोल दी हैं, कि यह महासमर वस्तुतः रासायनिक रासायनिकके बीच महायुद्ध है और जातीय दृष्टिसे आर्थिक समस्या ही हमारी अन्तिम परीक्षा है।

—— ——

क्षयरोग

[ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी, एम. बी. बी.एस]

यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, शोष इस रोगके दूसरे नाम हैं। यूनानी हकीम इसको तपेदिक़ और सिल कहते हैं। डाक्टरीमें इसके कंज़म्शन (Consumption), थाइसिस (Phthisis) और ट्यूबर्क्युलोसिस (Tuberculosis) कहते हैं।

यह कोई नया रोग नहीं है जैसा कि कुछ लोग कहा करते हैं। प्राचीन मिश्रवासियोंको यह रोग मालूम था। प्राचीन यूनानी हकीमोंने अपने ग्रन्थोंमें इसका वर्णन किया है। भारतवर्षके प्रसिद्ध चरक संहिता नामक ग्रन्थमें इस रोगका विस्तारपूर्वक वर्णन है। (देखो चरक, चिकित्सा-स्थान अ० ८)

क्षय रोग किसी विशेष देश या जातिमें ही नहीं पाया जाता। युरोप, अमेरिका, भारतवर्ष इत्यादि सभी देशोंमें यह होता है। यह रोग केवल मनुष्यको ही नहीं प्रत्युत गाय, बैल, बंदर पक्षी और मछलीको भी होता है। मनुष्य जातिमें यह रोग कितना पाया जाता है इसका अन्दाज़ा निम्नलिखित बातोंसे लगाया जा सकता है।

१. जांच पड़तालसे यह मालूम हुआ है कि जितनी मृत्यु संसारभरमें होती है उनके सातवें भागका कारण यही रोग होता है।

२. सभ्य संसारमें प्रति सेकन्ड कमसे कम एक मृत्यु क्षय रोगसे अवश्य होती है। या यह समझिये कि नित्य कोई ८६००० मनुष्य इस रोगसे मर जाते हैं।

३. उन्नीसवीं शताब्दीमें जितने युद्ध हुए उन सभोंमें कुल १४०००० मनुष्य मारे गये। हिसाब लगाया गया है कि इन्हीं देशोंमें उसी शताब्दीमें क्षय रोगके कारण ३००००० के लगभग मौतें हुईं।

Medicine वैद्यक]

४. लखनऊ जैसे बड़े बड़े और गुंजान बसे हुए शहरों में २०% मौतें इस रोगसे होती हैं।

क्षय रोगको हैजा, महामारी [प्लेग] इत्यादि भयानक रोगोंसे भी अधिक हानिकारक और भयानक समझना चाहिये। ये रोग सालभरमें दो चार महीने ही अपना काम करते हैं और अपनी भेंट लेकर चले जाते हैं, परन्तु क्षय रोग सालभर बराबर अपनी भेंट लिया करता है।

रोगका कारण

क्षय रोग उन रोगोंमेंसे है जो जीवाणुओं (Micro-organisms) से उत्पन्न होते हैं। हैज़ा, प्लेग, टायफौयड, फुफ्फुसप्रदाह, इसी प्रकारके रोग हैं। क्षयका कारण एक शलाकाकार कीटाणु (Bacillus) है। इसकी लम्बाई $\frac{१}{२४०००}$ इंचसे $\frac{१}{१००००}$ इंचतक और चौड़ाई अथवा मोटाई $\frac{१}{१०००००}$ इंच होती है। यद्यपि ये शलाकाएं नंगी आंखोंसे दिखाई नहीं देतीं तथापि इसमें संदेह नहीं कि वे अत्यंत परिश्रमी, पराक्रमी, भयानक और दृढ़ होती हैं। सील, अंधेरा मैल और धूल इन कीटाणुओंके लिये बहुत हितकारी हैं। वे बहुत नीचे दर्जेके शीतको सह सकते हैं परन्तु अधिक गर्मी और सूर्यका प्रकाश उनको बहुत हानि पहुंचाता है। सूर्यकी तेज रोशनीमें वे थोड़ी ही देरमें मर जाते हैं।

जब ये कीटाणु हमारे या अन्य प्राणियोंके शरीरमें किसी प्रकार घुस जाते हैं तो अवसर मिलनेपर वे अति शीघ्रतासे बढ़ते हैं और तंतुओंका नाश करते हैं। वे विष भी बनाते हैं जो रक्त और लसीका (Lymph) द्वारा संपूर्ण शरीरमें भ्रमण करते हैं और अंगोंको हानि पहुंचाते हैं।

ये कीटाणु शरीरके किसी भागपर आक्रमण कर सकते हैं जैसे अस्थि, संधियां, त्वचा, लसीका ग्रन्थियां,अंत्र, फुप्फुस। अधिकतर उनका आक्रमण फुप्फुसोंपर होता है। जो बातें इस लेखमें लिखी जायंगी उनको फुप्फुसके क्षय रोगके संबंधमें ही समझना चाहिये। फुप्फुसीय क्षय रोग न केवल उस विशेष व्यक्तिकेलिये ही अत्यंत विषम और भयानक है प्रत्युत उससे और लोगोंको जानें भी जोखोंमें रहती हैं। जब रोग पुराना हो जाता है तो क्षयीके बलग़म (कफ) में करोड़ों कीटाणु रहते हैं; यदि किसी विधिसे इस कफ़का कुछ भाग और मनुष्योंके शरीरमें पहुंच जावे तो वे वही रोग पैदा कर सकते हैं। अस्थि, ग्रन्थि इत्यादि अन्य अंगोंका क्षयरोग विशेष व्यक्तिके लिए तो संकट है परन्तु अन्य मनुष्यकेलिये फुप्फुसीय क्षय रोगके भांति हानिकारक नहीं।

क्षयके पूर्वके लक्षण

१. बार बार जुकाम (प्रतिष्याय) और खांसीका होना। खांसी कुछ दिनों पीछे ठहर जाती है और उसका ठसका बना रहता है। मामूली खांसीकी औषधियोंसे यह खांसी पूरे तौरसे अच्छी नहीं होती। कुछ समयके लिये (जब तक औषधिका प्रयोग किया जावे) जाती रहती है,फिर ज्योंकी त्यों हो जाती है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि शीत ऋतुमें जुकाम हुआ और धीरे धीरे बढ़ता गया और खांसी भी शुरू हुई। मामूली चिकित्सासे जुकाम अच्छा हो गया परन्तु खांसीका कुछ ठसका शीत ऋतुके अंततक बना रहा। रोगी और उसके माता पिताका ख़याल रहा कि ग्रीष्म ऋतु आते ही खांसी अपने आप जाती रहेगी। ग्रीष्म ऋतु आती है, खांसी घटनेकी जगह बढ़ती है। इतनेमें रोगके और लक्षण भी दिखाई देने लगते हैं और निदानमें अब अधिक संदेह नहीं रहता। (यह बात याद रखनी चाहिये कि क्षय रोग कभी कभी बिना खांसीके भी हो सकता है।

२. दुर्बलता, और शरीरका भार धीरे धीरे घटना। सामान्यतः २५-३० वर्षकी आयुतक स्वस्थ मनुष्यका भार धीरे धीरे बढ़ा करता है। इस

आयुके पश्चात् भार बहुत वर्षोंतक एक सा रहता है न बहुत घटता है और न बहुत बढ़ता। यदि जवान मनुष्यका भार उस समयमें जब कि उसको या तो बढ़ना चाहिये या स्थिर रहना चाहिये दिन प्रति दिन घटता जावे और दुर्बलता बढ़ती जावे तो उसका कारण जाननेकी बड़ी ज़रूरत है। क्षय इसका एक बड़ा और सामान्य कारण है; इसको कभी न भूलना चाहिये।

३. हर समय एक प्रकारकी थकान रहना—शारीरिक और मानसिक परिश्रम करनेकी अधिक इच्छा न होना, बदनका टूटना, तबियतका गिरा रहना, अरुचि।

४. मंद ज्वरका रहना—पहिले ज्वर कभी कभी आता है और बहुधा यह ख्याल किया जाता है कि मामूली मौसमी बुखार है। फिर ज्वर प्रति दिन आने लगता है। यह ज्वर बहुधा दो पहरके पीछे चढ़ा करता है-विशेषकर सायंकालको। जब रोग बढ़ जाता है तो ज्वर थोड़ा बहुत हर समय बना रहता है। मामूली औषधियोंसे यह ज्वर नहीं टूटता।

५. रात्रि के समय पसीना आना—इस पसीनेका शारीरिक परिश्रम और गर्मीसे कोई सम्बन्ध नहीं होता। जाड़ेके दिनोंमें जब स्वस्थ मनुष्योंको परिश्रम और व्यायाम करनेसे भी सहजमें पसीना नहीं आता तब भी क्षयीको रातमें पसीना आया करता है। तेज़ बुखारका होना भी इस पसीनेके लिये आवश्यक नहीं।

६. खांसते समय बलग़म या थूकमें रक्तका आना—रक्तकी चाहे लकीर ही दिखाई दे (चिह्न मात्र हो), चाहे उसका वमन (कय) हो।

जब किसी मनुष्यको जो पहिले स्वस्थ था धीरे धीरे ऊपर लिखे हुए लक्षण दिखाई दें तो उसको क्षणभर भी चुप चाप न बैठना चाहिये। उचित है कि वह तत्काल किसी योग्य डाक्टर या वैद्यसे अपने स्वास्थ्यकी परीक्षा करावे और जैसी वह सलाह दे वैसा काम करे। यह बात कभी न भूलनी चाहिये कि नवीन क्षय रोग बड़े बड़े साधनोंसे अच्छा हो सकता है, परन्तु जब रोग पुराना हो जाता है तब वह असाध्य हो जाता है। नवीन क्षय रोगमें अधिक बलग़म नहीं आता और बलग़ममें अधिकांश क्षयके कीटाणु भी नहीं पाये जाते। ज्वर भी हलका रहता है और मनुष्य अपना काम करता रहता है। फुफ्फुसोंकी परीक्षा करनेसे वे विशेष बातें जो ज़रा बढ़े हुए रोगमें पायी जाती हैं आसानीसे मालूम नहीं की जा सकतीं। जब बलग़ममें कीटाणु पाये जावें और फुफ्फुसोंकी परीक्षासे क्षयके विशेष चिह्न मिलें और मनुष्य शय्या पर लेट जावे और उसको तेज़ ज्वर रहे तब रोगको बहुत बढ़ा हुआ समझना चाहिये। ऐसी दशामें रोगके अच्छे होनेकी अधिक संभावना नहीं रहती।

रोग किस प्रकार फैलता है ?

क्षय रोग आतशक (उपदंश, फिरंगरोग) की भांति पुश्तैनी या पारंपरीण नहीं है। यदि क्षयीको संतानको क्षयरोग हो जावे तो उसका कारण यह नहीं है कि जन्मसे ही उसके शरीरमें रोगके कीटाणु थे। यदि क्षयीकी संतानका पालन पोषण भली प्रकार हो और वह क्षय ग्रस्त माता या पिताके पास न रखी जावे तो उसको क्षय रोग न होगा। क्षयी कमज़ोर होता है, इस कारण उसके बालक भी कमज़ोर होते हैं। क्षयके कीटाणु (और अन्य रोगोंके कीटाणु भी) कमज़ोर शरीरोंमें भले प्रकार बढ़ते हैं इस कारण ऐसे बालकोंको भी क्षय रोग होनेकी अधिक सम्भावना रहती है—विशेषकर ऐसी दशामें जब कि बेपरवाहीके कारण उनके माता या पिताके कीटाणुसे भरे हुए बलग़मके कण वायु या भोजन द्वारा हर रोज़ उनके शरीरोंमें पहुंचते रहें।

क्षयके कीटाणु हमारे शरीरमें क्षयरोगियोंसे ही आते हैं, चाहे ये रोगी मनुष्य हों चाहे

अन्य प्राणी। वैज्ञानिक इस विचारमें एकमत हैं कि जो कीटाणु मछलियों और पक्षियोंमें क्षय उत्पन्न करते हैं वे मनुष्यमें क्षय उत्पन्न नहीं कर सकते, परन्तु गाय, बैलमें क्षय उत्पन्न करनेवाले कीटाणु मनुष्यके शरीरमें पहुंचकर क्षय रोगका कारण हो सकते हैं। गाय, बैलके क्षय रोगके कीटाणु हमारे शरीरमें मांस या दुग्ध द्वारा पहुंचा करते हैं। क्षयके कीटाणु हमारे शरीरमें निम्नलिखित विधियोंसे पहुंच सकते हैं—

१. श्वास द्वारा—जब क्षय रोगी खांसता है तो उसके मुखसे बलग़मके नन्हे नन्हे ज़र्रे निकलकर वायुमें मिल जाते हैं। हर एक ज़र्रेमें करोड़ों कीटाणु रहते हैं। श्वासद्वारा ये कीटाणु भरे हुए ज़र्रे दूसरे मनुष्योंके फुफ्फुसोंमें पहुंच सकते हैं और रोग उत्पन्न कर सकते हैं।

क्षयी मकानके फर्श या दीवारोंपर थूकता है। बलग़म सूख जाता है और धूलमें मिल जाता है। धूलमें मिले हुए बलग़मके ज़र्रोंमें कीटाणु बहुत समय तक जीवित रहते हैं। मकानमें झाड़ू लगायी जाती है, जिससे कीटाणु भरी हुई धूल वायुमें मिल जाती है। श्वास द्वारा यह धूल हमारे फुफ्फुसोंमें पहुंच सकती है। धूल भोजन की वस्तुओंपर भी बैठ जाती है और इस प्रकार भोजन द्वारा कीटाणु हमारे शरीरमें पहुंच सकते हैं।

२. भोजन द्वारा (अ) बलग़मके ज़र्रे रोगीके मुखसे निकलकर आस पास रक्खे हुए भोजनपर बैठ जावें।

(आ) झाड़ूसे उड़ायी हुई धूल भोजनपर बैठ जावे।

(ई) क्षय रोगी स्वस्थ मनुष्योंके साथ एक ही बासनमें भोजन करे या स्वस्थ मनुष्य रोगीका जूठा भोजन खावे या जूठा जल पीवे।

(उ) रोगी अपने मैले हाथोंसे जिनमें बलग़मका कुछ अंश लगा हो दूसरोंका भोजन छूवे

(ऊ) मक्खियां बलग़मपर बैठकर फिर भोजनपर जा बैठें (मक्खियोंके विषयमें विज्ञानके पाठकोंका ध्यान हम एकबार पहिले भी आकर्षित कर चुके हैं-विज्ञान भा. ३ सं.५-पृष्ठ २०१)

३. ज़ख़्मों द्वारा। हमारे शरीरमें कोई ज़ख़्म हो या त्वचा कहींसे कट जावे और इन ज़ख़्मोंमें रोगीका बलग़म या क्षयज फोड़ेकी पीप लग जावे तब भी रोगके होनेका भय रहता है।

४. ऐसी गायका दूध पीना जिसे क्षयरोग विशेषकर स्तनोंका क्षय रोग है। यदि गाय या बैलके मांसमें क्षयके कीटाणु हैं और यह मांस बिना भले प्रकार पकाए खाया जावे तब भी क्षय रोगके होनेकी सम्भावना रहती है। बच्चोंमें क्षय रोगी (विशेषकर अंत्रका क्षय रोग) बहुधा क्षय रोगवाली गायोंका दूध पीनेसे होता है।

किन किन दशाओंमें क्षयके होनेकी अधिक संभावना रहती है?

यह आवश्यक नहीं है कि जब क्षय रोगोत्पादक कीटाणु किसी व्यक्तिके शरीरमें पहुंच जावें तो उसको क्षय रोग हो ही जावे। हममेंसे बहुत कम मनुष्य ऐसे होंगे जिनके शरीरमें कभी न कभी क्षयके कीटाणु न पहुंचे हों, फिर भी हम सभोंको यह रोग नहीं होता। इसका कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्यमें एक स्वाभाविक रोगनाशक शक्ति होती है [देखो विज्ञान भाग ४ सं० १ पृष्ठ २] जो किसी मनुष्यमें कम होती है किसीमें अधिक। जब यह शक्ति अधिक होती है तब मनुष्य स्वस्थ रहता है और रोग उसको बहुत कम सताते हैं। जब यह शक्ति कम होती है या किसी कारण एकदम कम हो जाती है (जैसे स्त्रियोंमें प्रसवके समय) तब रोग, विशेषकर क्षय ऐसे भयानक रोग, उसको तुरंत घेर लेते हैं। हमारे शरीर भूमिके समान हैं और रोगोत्पादक जंतु बीजके समान। बीज ऊसर भूमिमें नहीं जमता परन्तु उर्वरा भूमिमें शीघ्र ही जम जाता है। शरीर रोगोत्पादक जंतुओं-

के लिये ऊसर भूमिके समान है। स्वाभाविक रोगनाशक शक्तिके कारण ये जंतु पनपने ही नहीं पाते और तुरंत मृत्युको प्राप्त होते हैं। अन्यतः अस्वस्थ शरीर उर्वरा भूमिके समान है जिसमें जंतु बिना रोक टोकके बढ़ते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं। अब हम वह बातें बतलाते हैं जिनसे हमारे शरीर रोगोत्पादक जंतुओंके लिये विशेषकर क्षय के कीटाणुओंके लिये उर्वरा भूमि बन जाते हैं—

(१) गंदी और अशुद्ध वायु । शुद्ध वायु हमारे जीवनके लिये एक परमावश्यक चीज़ है। भोजन बिना मनुष्य तीन सप्ताह जीवित रह सकता है, जल बिना तीन दिन जीवित रह सकता है परन्तु वायु बिना तीन मिनट भी जीवित रहना कठिन है। जिन कारणोंसे वायु खराब हो जावे उन सबको स्वास्थ्यके लिये शत्रुके समान जानना चाहिये। शहरोंकी गलियों और कूचोंमें जहां ऊंचे ऊंचे मकान बहुत पास पास बने रहते हैं वायुका संचार भले प्रकार नहीं होता। एक कमरेमें बहुतसे मनुष्योंका रहना, सोनेके कमरेमें बहुतसा असबाब रखना, मकानमें खिड़कियों और दरवाज़ोंका कम होना; सोते समय सब खिड़कियों और दरवाज़ोंको बंद करके वायुका रास्ता बंदकर देना, मुंह ढांककर सोना जिससे मलिन पदार्थ जो एकबार श्वास द्वारा शरीरसे बाहर निकल चुके हैं फिर फुप्फुसोंमें घुस जावें, रहने सहनेके मकानमें डंगरोंको भी रखना, मकानके पास अस्तबल और कूड़ाखानेका होना— ये सब बातें वायुको गंदा और अशुद्ध करती हैं। आबादीके पास बड़ी बड़ी फ़ैक्टरियों; कारखानों और पुतलीघरोंका होना भी अच्छा नहीं; ऐसे स्थानोंके आसपासकी वायुमें धूल मिट्टी बहुत रहती है।

भारतवर्षमें स्त्रियोंमें जो परदेका रिवाज है वह उनके स्वास्थ्यके लिये अत्यंत हानिकारक है। परदेके कारण स्त्रियोंको घरोंमें भीतर ही अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है और बाहरकी खुली और पवित्र वायु बेचारियोंको कभी मिलती ही नहीं। यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि भारतवर्षमें उन जातियोंकी स्त्रियोंका स्वास्थ्य जिनमें परदेका रिवाज नहीं है परदा करनेवाली स्त्रियोंके स्वास्थ्यकी अपेक्षा बहुत अच्छा होता है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें क्षय रोगके अधिक पाये जानेका एक कारण परदेका रिवाज भी है। मुसलमान स्त्रियोंमें हिन्दू स्त्रियोंकी अपेक्षा क्षय अधिक पाया जाता है।

(२) दरिद्रता—भोजनका कम मिलना हमारा शरीर उस भोजनसे बनता है जो हम खाते हैं; रोगनाशक वस्तुएं भी इसी भोजनसे उत्पन्न होती हैं। जब पौष्टिक भोजन यथेष्ट परिमाणमें नहीं मिलता शरीर निर्बल हो जाता है, हमारी रोगनाशक शक्ति घट जाती है और अनेक प्रकारके रोग विशेषकर क्षयरोग जो सदा मुंह बाए अपने शिकारकी घात में बैठा रहता है धर दबाते हैं।

छोटे बालकोंके लिये दूध एक बड़ी आवश्यक चीज़ है। भारतवर्षमें अच्छे दूधका सस्ते मूल्यपर आसानीसे प्राप्त होना दिन प्रति दिन कठिन होना जाता है। लाखों बच्चे अच्छे दूध न मिलनेके कारण वे मौत मर जाते हैं। हरएक भारतहितैषीका यह बड़ा धर्म है कि वह ऐसी तदबीरें सोचे और काममें लावे जिससे अच्छा दूध इतना सस्ता मिले कि मामूली आमदनी वाले मनुष्य उसको मोल ले सकें।

गर्भवती स्त्रियोंको अच्छा पौष्टिक भोजन मिलना चाहिये जिससे वे बलिष्ठ संतान उत्पन्न करें और अपनी संतानको अपने स्तनोंसे दूध भी अच्छी तरह कमसे कम नौ महीनेतक पिला सकें। बच्चा जननेके पीछे भी उनको अच्छा सहजमें पचने वाला पौष्टिक भोजन यथेष्ट परिमाणमें मिलना चाहिये।

३. थकान—अपनी शक्तिसे बढ़कर कार्यमें प्रवृत्त होना। अधिक शारीरिक और मानसिक परिश्रम स्वास्थ्यको बिगाड़ कर हमारी स्वाभाविक रोगनाशक शक्तिको घटाता और हमारे शरीरको रोगोत्पादक कीटाणुओंकेलिये उर्वरा भूमि बनाता है। अपनी शक्तिसे बढ़कर युद्ध करना, पढ़ना, भार उठाना, मार्ग चलना, लंघन करना, नदीके वेगको बलपूर्वक रोकना, छलांग मारना; ईर्षा, भय, उत्कण्ठा, क्रोध, शोक, मैथुनादि सब क्षयके परोक्ष कारण हैं। [देखो चरक संहिता चिकित्सास्थान अ० ८ श्लोक १२ से १६ तक]

प्रसवके पश्चात् स्त्री निर्बल हो जाती है और उसकी रोगनाशक शक्ति कम हो जाती है। यदि इन दिनों उसको गंदे मकानमें जहां शुद्ध वायु और सूर्यके प्रकाशका प्रवेश न हो रखें, सहजमें पचनेवाला भोजन न दें; बदनकी सफाईके लिये मैला कुचैला कपड़ा दें तो उसको क्षयके हो जानेकी अधिक संभावना होती है।

जो स्त्रियां थोड़े थोड़े समयके पीछे बच्चे जनती हैं उनको भी इस रोगके होनेकी अधिक संभावना रहती है।

४. अस्वच्छता। शरीरको जलसे धोकर शुद्ध न करना जिससे त्वचाके छिद्र मैल या सूखे हुए पसीनेसे बंद हो जावें और पसीनेको भले प्रकार बाहर न निकलने दें, गहरा श्वास न लेना जिससे फुप्फुस भले प्रकार न फूलें और उनकी शिखर और किनारे वायुसे खूब न भरें और उनमें अच्छी तरह रक्तका संचार न हो; अशुद्ध वायुमें श्वास लेना जिससे रक्त भली प्रकार शुद्ध न हो और ओषजन जो सब कार्यों और क्रियाओंके लिये परमावश्यक है यथा परिमाण शरीरमें न पहुंचे। दांतों और मुंहका दातौन, मंजन, कुल्ली इत्यादिसे खूब न धोना जिससे भोजनके अंश मुंहमें सड़ें और उनके सड़ावसे उत्पन्न होनेवाली विषैली वस्तुएं शरीरमें पहुंचकर हानि पहुंचावें। कब्जका रहना जिससे मल अंतमें सड़े और विषैले पदार्थ रक्तमें पहुंच स्वास्थ्यका नाश करें। जब शौचकी इच्छा हो तब मलत्याग करने न जाना अथवा उसको थोड़ी बहुत देर तक रोके रखना। मूत्रको रोकना जिससे वे मलिन पदार्थ जो शरीरसे तुरंत ही बाहर निकलने चाहियें थे न निकलें और मूत्राशय और वृक्कोंको हानि पहुंचे। ये और ऐसी ऐसी और बातें शरीरको अस्वच्छ बनाती हैं और स्वास्थ्यको बिगाड़ती हैं।

५. भंग अफीम, तंबाकू, चरस, मद्य इत्यादि चीज़ोंका सेवन हमारे स्वास्थ्यपर ज़हरीला असर डालता है। हुक्का पीना दो प्रकार से हानि पहुंचाता है—

(१) तंबाकूका ज़हर हमारे शरीरमें पहुंचता है।

(२) एक मनुष्य दूसरेका थूक और बलग़म चाटता है। किसी दूसरे मनुष्यका थूक चाटना चाहे वह व्यक्ति कितना ही प्यारा और माननीय क्यों न हो स्वयं ही इतनी मलिन आदत है कि उसको त्यागनेमें ज़रा भी देर न करनी चाहिये। कौन जानता है कि जिस मनुष्यका जूठा हुक्का आप पी रहे हैं उसको क्षय रोग है या नहीं ? यदि है तो क्षयके कीटाणु आपके मुखमें आसानीसे आ सकते हैं। न भी हो तब भी दूसरेका थूक अपने मुखमें ले जानेकी कौन आवश्यकता है।

(६) बाल विवाह। यह कुरीति भारतवर्षकी बहुत सी आपत्तियोंका एक मूल कारण है; इससे न केवल दोनों व्यक्तियोंको प्रत्युत संपूर्ण जाति और देशको अत्यंत हानि पहुंचती है। छोटी आयुमें बच्चा जननेसे स्त्रीका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और क्षयके भयानक कीटाणु जो सदा निर्बल मनुष्योंकी घातमें रहा करते हैं उनके शरीरमें प्रवेश करते हैं और उनको अपना शिकार बनाते हैं। इस संयोगसे जो संतान उत्पन्न होती है वह निर्बल होती है और इस जीवनके घोरसंग्राम (जीवन प्रतिवादिता) struggle for existence के लिये सर्वथा अयोग्य होती है। ऐसी

निर्बल, अस्वस्था संतानसे गुलामीके सिवाय और किस चीज़की आशा की जा सकती है।

(७) अन्य रोगोंके कारण उत्पन्न हुई निर्बलता। उपदंश, फुफ्फुसप्रदाह, चेचक, खसरा जैसे रोगोंसे शरीर अत्यंत निर्बल हो जाता है। ऐसे रोगोंके पश्चात् बड़ी सावधानी से रहना चाहिये। उपदंश (आत्शक) रोगके विषयमें हम यह कहे विना नहीं रह सकते कि उसका एक बड़ा कारण वेश्यागमन है और वेश्यागमन तथा मद्यपानसे घना संबंध है। मद्यपान, वेश्यागमन, उपदंश (और सूज़ाक भी) यह तीनों चीज़ें देशके लिये अत्यंत हानिकारक हैं; यदि इनमेंसे एक भी चीज़ कम हो जावे तो शेष दोनों चीज़ें कम हुए बिना रह नहीं सकतीं और तीनों चीज़ोंके कम होनेसे क्षय जैसे रोग भी अवश्य कम होंगे।

चिकित्सा

पाठकोंको याद रखना चाहिये कि अभी तक किसी चिकित्सामें (वैद्यक, डाक्टरी, हिकमत इत्यादि) इस रोगकेलिये कोई अमोघ औषध * मालूम नहीं हुई। किसी वैद्य, डाक्टर या हकीम ने अभीतक यह दावा नहीं किया कि वह ऐसी औषध जानता है जो इस रोगको अवश्य अच्छा कर देगी। किसी औषधके संबंधमें यह भी नहीं कहा जा सकता कि वह रोग अच्छा न करे तो कमसे कम बढ़ने नहीं देगी।

१. सूर्यका प्रकाश
२. पवित्र वायुका सेवन
३. आराम ; रंज और फिकरसे छुट्टी
४. आसानीसे पचने वाला पौष्टिक भोजन
५. स्वच्छता

रोगीको ऐसे मकानमें रहना चाहिये जहां वायु अच्छी तरह आती जाती हो। ठंडी वायुके झोके और गर्म लू तो स्वस्थ मनुष्यको भी हानिकारक हैं, इसलिये इनसे रोगी सदा बचा रहे। जहां रोगी रहता है वहां सूर्यका प्रकाश अवश्य पहुंचे। सूर्यके प्रकाशमें कीटाणुनाशक शक्ति होती है और उससे हमारी रोगनाशक शक्ति भी बढ़ती है। गर्म स्थानसे एक दम ठंडे स्थानमें जाना या ठंडे स्थानसे एक दम गर्म स्थानमें जाना अच्छा नहीं। जब रोगीको ज्वर आता हो तब वह किसी प्रकारका शारीरिक परिश्रम न करे, चारपाईपर लेटा रहे। तजुर्बेसे यह बात मालूम की गयी है कि यदि रोगी कुछ दिनोंतक शय्यापर आरामसे लेटा रहे तो उसका ज्वर धीरे धीरे कम होने लगता है।

रोगीको चाहिये कि किसी योग्य चिकित्सकसे अपनी चिकित्सा करावे और जैसा वह बतलावे वैसा ही करे। चिकित्सक यथावश्यकता औषधियोंका भी प्रयोग करायेगा। क्षय रोगीकी चिकित्सा मामूली घरोंमें वैसी नहीं हो सकती जैसी कि होनी चाहिये। इस रोगमें रोगीका जितना उपचार हो उतना ही अच्छा है। यूरोप और अमरीकामें बहुतसे स्वास्थ्यभवन बनाये गये हैं, जहां क्षय रोगियोंका विशेष रीतिसे उपचार और चिकित्सा होती है। इन स्वास्थ्य भवनोंमें बहुत से रोगी अच्छे हो जाते हैं। उत्तर भारतमें दो स्वास्थ्यभवन हैं एक नैनीतालके पास भवालीमें दूसरा शिमलाके पास धर्मपुरमें। जहांतक हो सके रोगीका निदान निश्चित होते ही ऐसे स्वास्थ्य भवनमें रखना चाहिये। स्वास्थ्य भवनोंकी कमीके कारण अभीतक केवल अमीर लोग ही इनसे लाभ उठा सकते हैं।

---

* कुछ रोगोंकेलिए डाक्टरीमें अमोघौषध मालूम हैं जैसे:—

(१) मलेरिया ज्वरके लिए कुईनीन (Quinine)

(२) उपदंशकेलिए पारेके यौगिक और सालवर्सान (Mercury conpunds and Salvarsan)

(३) काला अज़ारके लिए ऐन्टीमनीटार्टेट (antimony tartarate)

(४) एक प्रकारकी पेचिशकेलिए इमेटीन (Emetine) तजुर्बेसे मालूम हुआ है कि ये चीजें रोगीकेलिए अत्यंत हितकारी हैं, मानो अमृत समान हैं:—

रोगसे बचनेके उपाय

वैसे तो हर एक रोगसे बचनेके उपाय जानने चाहियें परन्तु जिस रोगकी कोई औषध मालूम न हो उससे बचनेके उपाय जानना तो परमावश्यक है। जो बातें हम नीचे लिखते हैं उनके काममें लानेसे यूरोप अमेरिका देशोंमें यह रोग दिन प्रति दिन घटता हुआ दिखाई देता है—

१. पहिली बात जो याद रखनी चाहिये वह यह है कि यह रोग दुर्बल मनुष्योंको अधिक सताता है। हमको ऐसे काम करने चाहियें जिनसे हम हृष्ट पुष्ट बनें। भारत हितैषियोंका धर्म है कि वे दरिद्रताको दूर करें, बालविवाहकी कुरीतिको देशसे निकालें और शिक्षा प्रणालियोंको ऐसा बनावें जिससे विद्यार्थी स्वस्थ्यरक्षाके नियमोंका उल्लंघन न करें।

२. दूसरी बात यह है कि क्षय रोगीका बलग़म एक बहुत खतरनाक चीज़ है, क्योंकि उसमें करोड़ों जीवित कीटाणु रहते हैं जो दूसरे मनुष्योंके शरीरमें पहुंचकर रोग उत्पन्न कर सकते हैं। क्षयीको चाहिये कि वह कभी भी मकानके फ़र्श और दीवारोंपर न थूके, न वह इस प्रकार और ऐसी जगह थूके और खांसे कि जिससे और लोगोंके शरीर, कपड़े या भोजनपर बलग़मकी छींटें पड़ें। रोगीके पास एक पीकदान होना चाहिये और यह बलग़म समय समयपर आगमें जला देना चाहिये। जो लोग खर्चकर सकते हैं वह पीकदानमें कीटाणुनाशक औषध रख सकते हैं। रोगी काग़ज़के लिफाफों या थैलियोंमें भी थूक सकता है और यह थैलियां फिर जलाई जा सकती हैं। जब रोगी खांसे तो मुंहके सामने कपड़ा रक्खे, जिससे आस पास की वायु अधिक दूषित न होने पावे। जिस कमरेमें रोगी रहे वहां जल छिड़क कर झाड़ू लगायी जावे, जिससे धूल उड़कर वायुमें न मिले। रोगीके कपड़ोंको रोज़ कुछ समयकेलिये धूपमें रखना चाहिये जिससे कपड़ोंमें लगे हुए कीटाणु मर जावें। जिस रूमाल या तौलियासे रोगी मुंह पोछे उसको धोबीके यहां जानेसे पहिले उबलते हुए जलमें कुछ देर भिगोना चाहिये।

प्रत्येक मनुष्यको चाहे वह स्वस्थ हो या क्षयी यह याद रखना चाहिये कि हर एक स्थानमें थूकना अच्छा नहीं है। बहुत लोग विशेषकर वह जो तंबाकू चबाते हैं जहां जी चाहता है थूक देते हैं, चाहे वे सोनेके कमरेमें बैठे हों, चाहे पढ़नेके कमरेमें चाहे स्नान करनेके कमरेमें। बहुत दफ़े ऐसा होता है कि थूककी छींटें कपड़ों, किताबों और भोजनपर पड़ जाती हैं। छोटे बच्चोंकी आदत होती है कि वे फ़र्श पर पड़ी हुई चीज़ोंको उठाकर मुंहमें रख लेते हैं। यदि उनके माता पिता हर जगह थूक देते हैं तो इन नन्हे नन्हे बालकोंके मुंहमें यह थूक पहुंचता रहता है।

हमारा तो विचार है कि जिन घरोंमें मनुष्य बे सोचे समझे हर जगह थूक देते हों उन घरोंका भोजन समझदार मनुष्योंको कभी न खाना चाहिये। बड़े दफतरों और कहीं कहीं रेलकी गाड़ियोंमें इस प्रकारके नोटिस लगे रहते हैं, "थूकना सख्त मना है," "थूको मत इससे बीमारी फैलती है" इन नोटिसोंका मुख्य अभिप्राय यही है कि दीवारें फ़र्श और गद्दियां ख़राब न हों और थूक द्वारा रोग (विशेषकर क्षय रोग) न फैले। यह मतलब न समझना चाहिये कि थूक मुंहसे बाहर निकालना बुरा और उसको निगल जाना अच्छा है। थूकनेकी आवश्यकता हो तो अवश्य थूको परन्तु पीकदान, या नालीमें थूको या ऐसी जगह थूको जहां थूकनेसे और मनुष्योंको घृणा न आवे या उनको किसी प्रकार हानि पहुंचनेकी संभावना न हो।

क्षयीको चाहिये कि वह बलग़मको कभी भी न निगले क्योंकि इससे न केवल उसका रोग बढ़ेगा बल्कि अंत्रके क्षय रोग होनेका भी बहुत डर है।

३. क्षय रोगीके साथ और मनुष्योंको भोजन न करना चाहिये और न उसका जूठा

पानी पीना चाहिये। उससे बरतन अलग रखने चाहियें और भोजनके पश्चात् उबलते हुए जलसे धोने चाहियें। रोगीको चाहिये कि वह किसीको न चूमे।

४. निदान निश्चित होते ही (या क्षयका संदेह होते ही) रोगीका किसी योग्य चिकित्सकसे अपना इलाज कराना चाहिये, जिससे रोग बढ़ने न पावे। अच्छा हो जानेसे रोगके कीटाणु मर जाते हैं और रोगी और लोगोंकेलिए ख़तरनाक नहीं रहता। जिन लोगोंका इलाज नहीं होता उन लोगोंसे रोगके फैलनेका बड़ा डर रहता है।

जहांतक हो सके रोगीको पहाड़पर स्वाथ्य-भवनमें ले जाना चाहिये।

म्युनिसिपल्टियों को (Municipalities) चाहिये कि ऐसे रोगियोंके इलाजका प्रबन्ध करें जो दरिद्रताके कारण स्वयं इलाज नहीं करा सकते।

५. स्वास्थ्यरक्षाके नियमोंका पालन करना चाहिये। डाक्टरों तथा अध्यापकोंका यह कर्तव्य है कि स्वास्थ्यरक्षाके नियमोंका सर्वसाधारणमें प्रचार करें। बड़े बड़े शहरोंमें स्वास्थ्य संबंधी व्याख्यान समय समयपर होने चाहिएँ स्वास्थ्य समितियां और क्षय-रोग-निवारिणी समितियां बननी चाहिएँ। और इन समितियोंकी ओरसे प्रचारक ग्रामोंमें घूमकर स्वास्थ्य रक्षाके नियमोंका प्रचार करें।

निम्न लिखित चीज़ें रोगोंको दूर करनेवाली हैं। इस कारण हमको उनसे प्रेम रखना चाहियेः—

१. पवित्र वायु—वायु में धूल, मिट्टी, कूड़ा करकट धुआं, दुर्गंध न हों। सामान्यतः ग्रामोंकी वायु शहरकी वायुसे अधिक शुद्ध होती है। शहरोंमें जंगलोंकी वायु गुंजान मुहल्लों या कारखानों के पासकी वायुकी अपेक्षा अच्छी होती है। पहाड़ोंकी वायु बहुत पवित्र होती हैं।

२. पवित्र पीनेकी चीज़ें—मदिरा, भंग इत्यादिको अपवित्र समझना चाहिये। जो जल पिया जावे उसमें किसी प्रकारका रंग, गंध या अस्वच्छता न हो।

३. पवित्र भोजन—भोजनमें मैले कुचैले हाथ न लगे हों, न वह मैले कुचैले स्थानमें पकाया गया हो। पाकशालाके पास न तो पख़ाना और मूत्र-स्थान हों और न उसके पास कूड़ा करकट डाला जावे। विधिपूर्वक पकाया हुआ भोजन शुद्ध वासनोंमें परोसा जावे। भोजन करनेसे पहिले हमको अपना शरीर भी शुद्ध कर लेना चाहिये। जिस स्थानमें भोजन खाया जावे वह पवित्र हो और वहां किसी प्रकारकी दुर्गंध, कूड़ा करकट और मक्खियां न हों।

४. सूर्यका प्रकाश—जहांतक हो सके मकानकी खिड़कियों और दर्वाज़ोंको खोलकर सूर्यका प्रकाश भीतर आने दें। कपड़ोंको विशेषकर बिस्तरको रोज़ धूप देनी चाहिये। इस कहावतको याद रखना चाहिये—"जहां प्रकाश नहीं पहुंचता वहां डाक्टर अवश्य पहुंचता है"। म्युनिस्पल्टियों को (Municipalty) चाहिये कि शहरोंमें तंग गलियां न रहने दें; तंग गलियोंमें कई कई मंज़िल ऊंचे मकान बनानेकी आज्ञा भी न देनी चाहिये।

५. पूर्ण स्वच्छता।

निम्न लिखित पांच चीज़ोंसे सदा डरना चाहियेः—

१. धूल
२. मैल
३. सील
४. अन्धेरा
५. वायु संचारकी कमी

वैज्ञानिकीय

(१) प्रोटीनके उपयोगमें भूल

प्रोटीन प्राणिमात्रके शरीरके मांस आदि स्थूल तन्तुओं को (tissues) पुष्ट करता है। इस कारण धनाढ्य मनुष्य बहुधा ऐसी चीज़ोंको खाने लगे हैं, जिनमें प्रोटीन विशेष अंशमें वर्तमान रहता है, जैसे मुर्गीके बच्चे, मांस आदि। उनकी समझमें प्रोटीनके अधिक सेवनसे उनका शरीर सुगठित, बलिष्ठ और कान्तिपूर्ण हो जावेगा, पर यह उनकी भूल है।

अमरीकासे एक पत्रिका निकलती है उसका नाम है *The national food magazine*। उसमें लेखकने बतलाया है कि एक ही प्रकारका भोजन सब प्रकारके मनुष्योंको एक सा लाभ क्यों नहीं पहुंचाता। हमें शरीरके पोषणकेलिए पानी, क्षार, निमक और प्रोटीनकी विशेष आवश्यकता रहती है। अब कोई यह कहे कि नमक लाभदायक वस्तु है इसलिए प्रत्येक वस्तुमें निमक मिलाकर खावें जिससे हमारा शरीर बलवान हो उठे। यह मूर्खता है। यह बात प्रत्येक मनुष्य जानता है कि अधिक नमक लाभके बदले हानि पहुंचावेगा। यही बात प्रोटीनपर भी घटती है।

आजकल बहुतसे आदमी ऐसी चीज़ोंको बहुत खाते हैं जिनमें प्रोटीन बहुत रहता है और शेष सबको छोड़ देते हैं। शरीरको ५ फ़ी सदी प्रोटीनकी आवश्यकता है। इससे अधिककेलिए शरीरमें स्थान नहीं और यदि अधिक प्रोटीन खाया जावे तो वह चीनी और (starch) मांड-में परिवर्तित हो जाता है।

इस कारण अधिक प्रोटीन खानेकी आवश्य-कता नहीं है। सात्विक भोजन करना चाहिये। मांस खानेसे कुछ लाभ नहीं। प्रत्युत उससे स्मरण शक्तिका ह्रास होता है।

—कुलदीपसहाय

(२) पुरानी प्रथाका अनुचित परिवर्तन

हमारे यहां नियम है कि एक मनुष्य जिस लोटे या गिलासमें पानी पीता है दूसरा, बिना उसे मले, काममें कभी नहीं लाता, परन्तु इस नव-सभ्यताभिमानी युगमें इस नियमका प्रतिपालन किया जायगा इसमें हमें संदेह है। बाज़ारमें कांच-के गिलासमें सोडावाटर पीना अब एक मामूली बात है। यह एकताका चिन्ह है। जिसने इस कामके करनेमें आपत्ति दिखलायी उसे असभ्य-की पदवी मिलती है। बोर्डिङ्गहौसके लड़के एक दूसरेके जूठे बर्तनमें पानी पी लेते हैं। यह वर्तमान शिक्षाका फल है।

एक प्रवीण डाक्टरने एक बोर्डिङ्गहौसके गिलासकी परीक्षा की उसमें उसे २०,००० कोष-के (Cells) टुकड़े मिले। प्रत्येक कोषमें १५० से १० तक कीटाणु वर्तमान थे। उस गिलासमें पानी पीने वालेकी क्या दशा होगी? वह रोगी होनेसे कभी बच सकता है?

आजकल हमलोग एक नयी बात सीख रहे हैं। कोई मित्र या जानपहचानके आदमी जब मिलते हैं तब झट हाथ फैला देते हैं। इस हाथ मिलाने-की पद्धतिसे कभी कभी हमें घोर कष्ट उठाना पड़ता है। एक समय हमारे मित्र हाथ खुजलाते खुजलाते आये और हमसे हाथ मिलाया। दूसरे रोज़से हम भी उनके साथी बन गये।

इसी प्रकार सैकड़ों रोगी अपने मित्रोंको अपना सहयोगी बनाकर भारतकी पवित्र भूमिको रोगमय बनाते हैं। प्रत्येक मनुष्यका यह कर्तव्य है कि किसी प्रथाको अपनानेके पहले उसके गुण अवगुणपर विशेष रीतिसे दृष्टिपात करे अन्यथा उसे उसका परिणाम भोगना पड़ेगा।

—कुलदीपसहाय

भारी-भ्रम

भारीभ्रमके विषयमें यह भारीभ्रम फैला हुआ है कि इस पुस्तकमें युद्धका होना असंभव दिखाया गया है।

यह भी भारीभ्रम है।

भारीभ्रममें बड़ी योग्यतापूर्वक यह दरसाया गया है कि युद्ध होना असंभव नहीं है, संसारमें जबतक युद्धके वास्तविक परिणामके विषयमें भ्रम है तबतक युद्ध अनिवार्य्य है। यही बात वर्त्तमान महायुद्धसे प्रत्यक्ष है। भारीभ्रम को पढ़नेसे यह पता चल सकता है कि युद्ध किन कारणोंसे हुआ और जर्म्मनीने इस युद्धको छेड़कर कैसी भारी भूल की और उसे कितनी भारी हानि उठानी पड़ेगी।

भरीभ्रमका गद्य इतना उत्तम समझा जाता है कि नागरी-प्रचारिणीं सभा काशीने इसका नाम हिन्दू विश्वविद्यालयके बी० ए० में पढ़ानेके लिए उपयुक्त पुस्तकोंमें सम्मिलित किया है।

विशेष सुविधा

विज्ञानके ग्राहकोंको यह ग्रन्थ १) और १।) में मिलेगा। सर्वसाधारणसे कागज़के कवरका मूल्य १।) और बोर्ड कवरका १॥) है।

मैनेजर, "विज्ञान"

प्रयाग।

विज्ञान भाग १ व २

जिन सज्जनोंके पास विज्ञान भाग १ व २ हों और जो उन्हें बेचना चाहते हों, वे कृपया मंत्री विज्ञानपरिषत्‌से लिखा पढ़ी करें। हमें ५ सेटकी ज़रूरत है।

विज्ञानके पुराने अङ्क

विज्ञानके ३,४,५, भाग थोड़ेसे बचे हैं, शीघ्र मंगाइये।

प्रति भाग मूल्य १।)

पता—

मंत्री विज्ञान परिषद्।

बच्चा

[ले० कप्तान कुरैशी, अनु० प्रोफ़ेसर करमनारायण, एम. ए.]

देश भक्तो! आपको मालूम है कि सं० १६११ में ६१ लाख बच्चे पैदा हुए और उनमेंसे १८¾ लाख अर्थात् पांचवां भाग एक वर्षके होनेके पहले मर गये। इस कुदशाका सुधार यदि करना है तो गृहदेवियोंको बालरक्षाके नियम सिखलाइये।

बच्चोंके सम्बन्धमें जितनी बातोंका जानना आवश्यक है, वह सब बातें इस पुस्तकके पढ़नेसे ज्ञात होंगी। अतएव इस पुस्तकका पढ़ना प्रत्येक गृहस्थके लिए आवश्यक है।

पुस्तकका मूल्य १) विज्ञानके ग्राहकोंको केवल ॥।=) में मिलेगी।

मंगानेका पताः—

मंत्री, विज्ञान परिषद्

प्रयाग।

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषद्-प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ३३
भाग ६
Vol. VI.

धन, १९७४. December, 1917.

Reg. No. A- 708.
संख्या ३
No. 3.

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक-गोपालस्वरूप भार्गव

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)]

[१ प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग ६ } धन, संवत् १९७४ । दिसम्बर, सन् १९१७ । { संख्या ३

मंगलाचरण

ब्रह्म-लोक जिसको कहते हैं अहो कहां है ?
अमर-ओक किसको कहते हैं, कहो कहां है ?
सुखका क्या है रूप, सुखद संसर्ग कहां है ?
त्यों सुकृत्य-फल, आनन्दस्थल, स्वर्ग कहां है ?
क्या इन बातोंका ज्ञान भी मिलता है विज्ञान से ?
क्यों नहीं ? प्राप्य है क्या नहीं पूरन अनुसन्धानसे ?

श्रीपद्मकोट |
प्रयाग, २६-११-१७ |

—श्रीधर पाठक ।

भुनगा पुराण

[ले०—रामदास गौड़, एम. ए.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

इतनी कथा सुनाय श्री भुनगेश जो बोले, हे भुनगाभूषणो ! इन देवताओंमें शूद्रदेवोंकी देशभक्ति सबसे अधिक सराहनीय है, क्योंकि यह देवता अपने लोकको छोड़ दूसरे लोकमें कभी जाते ही नहीं । यदि जानेकेलिए लाचारी हुई तो इनका प्राणान्त ही नहीं हो जाता, प्रत्युत इनके अस्तित्वका निर्मूलन हो जाता है । यह भी पता नहीं लगता कि रक्त संसारमें शूद्र देवता भी कोई प्राणी थे । इन तीनों देव-जातियोंमें बल बुद्धि और पराक्रममें श्रेष्ठ होनेसे यद्यपि आबादीमें बहुत कम हैं, तथापि क्षत्रिय देवताओंको ही सबसे पूज्य और सबसे प्रतिष्ठित समझना चाहिए । इनमें एक अद्भुत शक्ति यह भी है कि यह रक्तलोकके आवरणोंको भेद करके अपने व्योम-मण्डलसे बाहर निकल अन्य लोकोंमें बड़ी

General साधारण]

ही सुगमतापूर्वक आ जा सकते हैं। इनकी अव्याहत गति है। इस प्रकार यह अन्य लोकोंके निवासियोंकी भी रक्षा और सहायता करते रहते हैं।

यह सभी देवता अमृतके पुत्र हैं अर्थात् यह सभी अमर हैं, परन्तु इनके शरीरोंका परिवर्तन निरन्तर होता रहता है। मैं पहले ही कह चुका हूं कि इनकी सृष्टि अयोनिज है। सो इनके जन्मकी नाईं इनका अवसान भी अद्भुत ही है। इनकी आबादी इन्हीं कारणोंसे पल पलमें घटती बढ़ती रहती है। इनके शरीरमें एक ही इन्द्रिय है, जिससे सारे कार्य्य होते हैं। इनका शरीर अत्यन्त कोमल होता है—भुनगों और जुओंकी अपेक्षा कहीं अधिक कोमल है। और इनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म चर्मकूपोंकी इतनी बहुतायत होती है कि द्रव तथा हविष्यान्न बड़ी सुगमतासे इनके शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं। निदान इन्हें चार प्रकारके भोज्य पदार्थोंको चबाने, चूसने, चाटने वा पीनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। पूजा करनेवाले भक्त लोग इस बातको भली भांति जानते हैं कि देवता लोग नैवेद्यके घ्राणसे ही तृप्त हो जाते हैं, इन देवताओंकी भी ऐसी ही कुछ दशा है। शरीरान्त होनेपर शरीरके परमाणु उनके द्रव-मण्डलमें ऐसी अज्ञात रीतिसे मिल जाते हैं कि जीवन और मरणमें शरीरके भाव और अत्यन्ताभावका ही अन्तर दिखाई पड़ता है। साधारण प्राणियोंमें और इनमें एक यह भी बड़ा भारी अन्तर है कि और समस्त प्राणियोंमें इन्द्रियके आधिक्यसे विषयोपभोगकी लालसा बड़ी प्रबल होती है परन्तु इन देवताओंमें वह इन्द्रियां ही नहीं हैं, इसीलिए विषयके पीछे मतवाले नहीं होते। साथ ही अयोनिज सृष्टि होनेसे यह स्पष्ट ही है कि देवताओंमें विवाह करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इनमें स्त्री और पुरुष जातिका अभाव है। इनके यहां यह प्रश्न कभी नहीं उठ सकता कि स्त्रियोंको पुरुषोंके बराबर अधिकार देना चाहिए या नहीं, उन्हें शिक्षा दिलानी चाहिए या नहीं;और न इनके किसी मनु ने "न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" कहकर उनकी स्वाधीनतामें बाधा डाली है। और न कन्याके विवाहमें बहुतसे धन व्यय करनेकी आवश्यकता होती है और न जन्म, विवाह, मरण आदि घटनाओंपर अपव्ययादि कुरीतियोंके विरुद्ध किसी मन्तव्यके निश्चय करनेकी आवश्यकता होती है। विष्णुपदामृत पानके अतिरिक्त और किसी मादक पदार्थका यह सेवन नहीं करते। इनके यहां सिगरेट पीनेके निषेधकेलिए किसी आईनकी आवश्यकता नहीं है। हिंसा सिवाय शत्रुओंकी हत्याके और किसी प्रकारकी नहीं होती। निदान इस मानव ब्रह्माण्डके देवसमाजमें किसी सुधारकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती और इनके आदर्श जीवनसे और और प्राणी अनेक प्रकारकी शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

इतनी कथा सुन भुनगादि ऋषि बोले, हे भुनगाकुल-दीपक तपोधन ऋषिराज! इन देवताओंकी कथा सुनकर मन तृप्त नहीं होता। इनका अनुकरणीय जीवन हम सबकेलिए उपदेश है। अब हे कृपानिधान! आप ब्रह्मलोक और विष्णुलोकका भी संक्षेपसे वर्णन करें,जहां यह देवता लोग द्रव-मण्डलके स्रोतके द्वारा बराबर जाते और विष्णुपदामृतसे छककर आते हैं। यह प्रश्न सुन भुनगेश्वरजी बोले, मुनियो! ब्रह्मलोक इस मानव-ब्रह्माण्डका एक बड़े महत्वका भाग है। इस लोकमें चार खण्ड हैं। दो दो खण्ड एक एक भागमें स्थित हैं। प्रत्येक भागका एक खण्ड ग्राहक और दूसरा क्षेपक कहलाता है।

एक स्रोत बड़े वेगसे शिरा-पथसे बहता हुआ दक्षिण-ग्राहक खण्डमें पहुंचता है। यहांके सारे भूभागको जब परिप्लुत कर लेता है तब उस खण्डके मांसावरणसे दबकर क्षेपक-खण्डमें पहुंचता है। इस खण्डमें पहुंचते ही ग्राहक और क्षेपक दोनोंके बीचका कपाट ऐसा बन्द हो जाता है कि स्रोतका क्षेपकसे फिर ग्राहकमें लौट जाना

असम्भव हो जाता है। अब क्षेपक-खण्डमेंसे भी मांसावरणके संकोचसे यह स्रोत ब्रह्मलोकसे ऊर्ध्वगति प्राप्त करके धमनी-मार्गसे विष्णुलोकको चढ़ जाता है। विष्णुलोकमें असंख्य अमृत-मन्दिर हैं जहां सदैव विष्णु-पदामृतका प्रवाह होता रहता है। यहां यह देवता परिक्रमा करते हुए अपने शरीरसे हलाहलको निकालते और विष्णु-पदामृत पान करते जाते हैं। विष्णुलोकमें परिभ्रमण करते करते बायीं दिशासे ब्रह्मलोकके वाम भागमें शिरापथसे उतरते हैं। ग्राहक-खण्डमेंसे पहलेकी नाईं क्षेपक-खण्डमें प्रवेश करते हैं और फिर वाम मार्गसे ही क्षेपक-खण्डसे बाहर निकलकर ब्रह्मलोक छोड़ धमनी-मार्गसे रक्त-खण्डमें प्रवेश करते हैं। यह क्रिया प्रतिक्षण होती रहती है और स्रोतकी परिक्रमा निरन्तर जारी रहती है। स्रोतकी गति जिस किसी पथसे ब्रह्मलोकके सम्मुख होती है उसे शिरापथ कहते हैं। और जब ब्रह्मलोकसे विमुख होती है तो धमनीमार्ग कहते हैं। विष्णुलोकको देववाणीमें फुफ्फुस और ब्रह्मलोकको हृदय भी कहते हैं। शिरापथ और धमनीमार्ग हैं तो अलग अलग परन्तु मर्त्यलोकमें यह मिल गये हैं। धमनीमार्गसे स्रोत फिर शिरामार्गमें जाता है और विविध लोकोंमें भ्रमण करता है। विष्णुपदामृत पान किए हुए देवताओंका वर्ण चटकीला लाल हो जाता है और हलाहलधारी देवताओंका वर्ण नीलिमायुक्त लाल होता है। इसीलिये विष्णुलोकको जाते हुए स्रोतका रंग श्याम होता है। लौटते हुए का चटकीला लाल हो जाता है। देवभाषामें विष्णु-पदामृतको ओषजन और हलाहलको करबन-द्विओषिद भी कहते हैं। विष्णुपदामृत समस्त देवताओंका पोषक अन्न है। और हलाहल वह पदार्थ है जो देवताओंके शरीरसे निकलता जाता है। इन वैश्योंका यह भी कर्त्तव्य है कि समस्त देवताओंके शरीरसे निकले हुए हलाहलको विष्णुलोकमें छोड़ आया करें। यह हलाहल सीधे ब्रह्माण्डके बाहर शिवलोकको चला जाता है और विष्णुपदामृत भी शिवलोकसे ही आकर विष्णुलोकमें फैल जाता है। इस प्रकार ब्रह्मलोकके द्वारा स्रोतका परिभ्रमण होता रहता है और विष्णुलोकके द्वारा अमृत और हलाहलका परिक्रमण हुआ करता है।

इत्यार्षे श्री भुनगामहापुराणे कपाल-खण्डे ब्रह्मलोक-विष्णुलोक-वर्णनोनाम पञ्चमोऽध्यायः।

सर्वव्यापी ईथर और प्रकाश सिद्धान्त

[गताङ्कसे सम्मिलित]

[ले० प्रो० निहालकरण सेठी, एम० एस-सी०]

यह पहले लिखा जा चुका है कि तरंगवेग स्थिति-स्थापकता और घनत्वकी निष्पत्तिके वर्गमूलके बराबर होता है। अतएव स्थिति-स्थापकताके तीन प्रकारके होनेसे तरंगें भी तीन प्रकारकी होती हैं, जिनका वेग भी भिन्न भिन्न होता है। मान लीजिए कि एक फ़ौलादका तार टेलीग्राफ़के तारके समान लटका दिया जाय, उसके एक सिरेपर घंटी बांध दी जाय और दूसरे सिरेको खींचा जाय। इस खिंचावका प्रभाव घंटीपर तुरंत ही नहीं पड़ेगा। यदि तार तीन मील लंबा है तो खींचनेके एक सेकंड बाद घंटी बजेगी। यदि तार पृथ्वीसे चन्द्रमा तक गया हो तो इस खिंचावके प्रभावको वहां तक पहुंचनेमें २२ घंटे लग जायंगे और यदि वह तार सूर्यतक पहुंचा हो तब तो प्रायः एक वर्षतक खिंचावकी तरंग रास्तेमें ही चलती रहेगी। यदि तार किसी ऐसी वस्तुका हो जिसकी स्थितिस्थापकता इससे अधिक है तो यह समय कम हो जायगा-अर्थात् तरंगोंका वेग बढ़ जायगा। तारका एक सिरा खींचनेके स्थानपर यदि इसमें कुछ ऐंठन दे दी जावे तब ऐंठनकी स्थिति-स्थापकता काम आवेगी और उस समय प्रभाव कुछ दूसरे ही वेगसे चलेगा।

Physics भौतिक शास्त्र]

जब भूकम्प होता है और पृथ्वीको धक्का लगता है तो इस धक्केका प्रभाव पृथ्वीमें प्रायः ६॥ मील प्रति सेकंड चलता है। इससे उपरोक्त नियमके अनुसार स्पष्ट हुआ कि पृथ्वीकी (मट्टी और पत्थरकी नहीं) स्थितिस्थापकता फ़ौलादसे बहुत अधिक होती है, किन्तु ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जिसमें तरंगें प्रकाश तरंगोंके बराबर वेगसे चलती हों। इससे परिणाम निकला कि जिस पदार्थमें प्रकाशकी तरंगें चलती हैं वह साधारण पुद्गल पदार्थोंसे सर्वथा भिन्न है। या तो उसकी स्थितिस्थापकता बहुत ही अधिक है या उसका घनत्व बहुत ही थोड़ा है, जिसके कारण उसमें तरंगोंका वेग इतना अधिक हो जाता है।

उपर्युक्त बातोंका विचार करनेसे पहिले एक और बात समझ लेना है। पानीकी लहरोंमें पानी ऊपर नीचे स्पन्दन करता है और लहर पानीकी सतहपर चलती है। जल कणोंकी गतिकी दिशा तरंगोंकी गतिकी दिशासे समकोण बनाती है। किन्तु वायुमें जो शब्दकी तरंगें उत्पन्न होती हैं उनमें यह बात नहीं है। उनमें दोनों दिशाएँ एक होती हैं। जिस दिशामें वायुके कण हटते बढ़ते हैं उसी दिशामें तरंग भी चलती है। प्रश्न यह है कि प्रकाश तरंगें शब्दकी तरंगोंके समान हैं या पानीकी तरंगोंके ?

इसका उत्तर ध्रुवीभवन (Polarisation) से स्पष्ट हो जाता है। टूरमलीन (Tourmaline) के एक टुकड़ेमेंसे जो किरण निकल जाती है उसमें कुछ विलक्षणता आ जाती है। वह टूरमलीनके दूसरे टुकड़ेमेंसे तभी निकल सकती है जबकि यह दूसरा टुकड़ा एक विशेष प्रकारसे रखा हो। यदि इसे किरणके अक्षपर ९०° घुमा दें तो प्रकाश उसमें होकर न निकल सकेगा। शब्दकी तरंगोंमें ऐसी घटना असम्भव है। अतः यह परिणाम असन्दिग्ध है कि यदि प्रकाश एक दिशामें चलता है तो जिस पदार्थमें प्रकाशतरंगें चलती हैं उसके कण उस दिशासे समकोण बनाती हुई दिशामें स्पन्दन करते हैं।

अब हम सब बातोंको एकत्रित करके इस प्रश्नपर विचार कर सकते हैं कि जिस पदार्थमें प्रकाश-तरंगें चलती हैं और जिसका नाम ईथर रखा गया है, उसमें स्थिति-स्थापकता किस प्रकारकी होनी चाहिए, जिससे तरंगोंका वेग १८६००० मील प्रति सेकंड हो और ईथरके कणोंका स्पन्दन तरंगकी गतिके लम्बरूप भी हो। पहिली बातसे तो हम यह परिणाम निकाल चुके हैं कि ईथरकी स्थिति-स्थापकता बहुत अधिक—अच्छेसे अच्छे फ़ौलादसे भी कई गुनी अधिक—होनी चाहिए, या उसका घनत्व हलकीसे हलकी गैससे भी कम होना चाहिए। दूसरी बातका परिणाम यह है कि ईथरकी स्थिति-स्थापकता गैसोंकी समान दबावकी—आयतनकी—स्थिति-स्थापकता नहीं हो सकती, क्योंकि वसी दशामें तरंग शब्दकी तरंगोंके समान ही होंगी। अतः वैज्ञानिक सोचने लगे कि ईथर अत्यधिक स्थिति-स्थापकतावाले ठोस पदार्थके समान है और १९वीं शताब्दीके मध्यमें प्रकाशकी सभी बातोंकी व्याख्या इसी सिद्धान्तके द्वारा करनेका प्रयत्न किया गया। किन्तु यह बहुत शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि अभी इस सिद्धान्तमें बहुत कसर है। पहले तो यही बात समझमें आनी मुश्किल है कि किसी ठोस पदार्थमें प्रकाशकी सी तरंगें तो चल सकें, पर शब्दकी सी तरंगें न चलें। इस बातका कोई प्रमाण न निकला कि ईथरमें ऐसी तरंगें भी चलती हैं। इस बातको तो बहुतोंने यह कहकर टाल दिया होगा कि अभी प्रमाण नहीं मिला तो क्या हुआ, किसी समय मिल जायगा।

परन्तु एक प्रश्न इससे भी जटिल है। यदि सारे संसारमें ऐसा फ़ौलादसे भी अधिक स्थिति-स्थापक ठोस पदार्थ भरा है, तो उसमें होकर पृथ्वी, ग्रह, उपग्रह आदि कैसे भ्रमण कर लेते हैं?

और यदि भ्रमण कर भी लेते हैं तो कुछ न कुछ रुकावट तो अवश्य होती होगी? पृथ्वी सूर्यके चारों ओर प्रायः २० मील फ़ी सेकंडके वेगसे अर्थात् ६० मीलके वेगवाली डाकगाड़ीसे १२०० गुना अधिक वेगसे चलती है। दिन रातमें हम लोग लगभग ७-८ लाख मील चल लेते हैं। आश्चर्य है कि तिसपर भी हमें थकावट नहीं होती! एक वर्षमें इसी प्रकार हम लोग ६० करोड़ मील चल लेते हैं। यदि पृथ्वीको चलनेमें कुछ भी रुकावट होती तो उसका वेग अवश्य घटता जाता और धीरे धीरे वह आकर्षणके वश सूर्यके अधिकाधिक निकट पहुँचती जाती और अब तक उसे सूर्यमें गिरे सहस्रों लाखों वर्ष हो चुकते। किन्तु वर्षके कालमें, पृथ्वीके इस भ्रमणके सामयिक समयमें, किसीको आजतक कोई अन्तर होता नहीं जान पड़ा है। इस कारण पृथ्वीकी गतिमें किसी प्रकारकी रुकावटकी सम्भावना नहीं होती। इन्हीं बातोंसे फ्रेनेल और यंगने निश्चय किया कि जिस प्रकार वायुको घने जंगलमें चलनेमें रुकावट नहीं होती, उसी प्रकार ईथरको पृथ्वीमेंसे इधरसे उधर निकल जानेमें भी रुकावट नहीं होती।

यहां एक और प्रश्न उपस्थित होता है। जब पृथ्वी या अन्य पुद्गल पदार्थ गमन करता है तब क्या उसके अन्दरका और उसके चारों ओरका ईथर भी उसके साथ गमन करता है या ईथर स्थिर रहता है? केवल पुद्गल परमाणु ही उसमें होकर गमन करते हैं और जिस प्रकार बालूमेंसे जल छनता है उसी प्रकार पुद्गल परमाणुओंमेंसे ईथर छनकर निकल जाता है? इस प्रश्नपर पिछले कुछ वर्षोंमें बड़े बड़े वैज्ञानिकोंने विचार किया है।

यह हम जानते हैं कि सब पदार्थोंमें ईथर भरा है। कांचको लीजिए। उसमें प्रकाशका जो वेग है वह कांचकी स्थिति-स्थापकता और उसके घनत्वका परिणाम नहीं हो सकता। अतः प्रकाश-तरंग कांचके परमाणुओंमें नहीं बनतीं। उसके लिए तो कांचके भीतरवाले ईथरकी ही आवश्यकता है। मान लो कि कांच हटाया जाता है तो प्रश्न होता है कि क्या इस हटानेमें भी वही ईथर कांचमें रहता है जो पहले था, या कांच इस सर्वथा स्थिर ईथर-समुद्रमें विना ईथर परमाणुओंमें गति उत्पन्न किये ही चलता है। जो वैज्ञानिक नहीं हैं उन्हें यह प्रश्न वैसा ही जान पड़ता है जैसा कि यह प्रश्न कि सुईकी नोकपर कितने देवता खड़े रह सकते हैं, किन्तु इन प्रश्नोंमें बड़ा अन्तर है। एक तो ईथरकी सभी बातोंको समझ लेनेका प्रयत्न जब तक न किया जायगा तब तक प्रकृतिके रहस्योंको जान लेना कठिन ही नहीं प्रायः असम्भव है। दूसरे यह सब बातें प्रयोगोंके द्वारा सिद्ध की जा सकती हैं, किन्तु देवतावाली बात सिद्ध नहीं की जा सकती।

यह सब कोई जानते हैं कि यदि हवा ज़ोरसे चल रही हो तो शब्द हवाके साथ साथ अपने वास्तविक वेगकी अपेक्षा अधिक वेगसे चलता है और हवाके विरुद्ध कम वेगसे। इसी प्रकार जब पृथ्वी ईथर-समुद्रमें भ्रमण करती है तब समझा जा सकता है कि पृथ्वी स्थिर है और ईथर ही हवाकी भांति चल रहा है। अतः यदि प्रकाश उस दिशामें चले जिसमें पृथ्वी चलती है तो उसका वेग कम हो जाना चाहिए और विपरीत दिशामें अधिक। इसकी जांच ऐरेगो (Arago) और मेक्सवैल (Maxwell) ने एक प्रकार और माइकेलसन (Michelson) और मोरले (Morley) ने दूसरे प्रकारसे बड़ी बारीकीके साथ की। किन्तु प्रकाशके वेगमें कोई अन्तर न पाया। और भी अनेक प्रयोगोंद्वारा ज्ञात होता है कि प्रकाश-सम्बन्धी सभी बातें इस प्रकार होती हैं मानो पृथ्वी अपने अंदर और आस पासके ईथरकी अपेक्षा स्थिर ही है, अर्थात् पृथ्वी अपने भ्रमणमें ईथरको साथ साथ लिये फिरती है।

परन्तु यदि ऐसा है तो (Aberra-

tion) विपर्य्यय या पृथ्वीके चलनेके कारण तारोंके स्थानमें जो परिवर्तन देख पड़ता है उसकी व्याख्या हो ही नहीं सकती। ऐसा विचार फ्रेनेल आदि बड़े बड़े वैज्ञानिकोंका था। अतः बड़ी कठिनाई उपस्थित हुई। एक ओर तो सूक्ष्म परीक्षाओंद्वारा ज्ञात होता है कि ईथर पृथ्वीकी अपेक्षा स्थिर है, और दूसरी ओर यह माननेकी आवश्यकता होती है कि ईथर पृथ्वीके साथ साथ नहीं चलता। इसके अतिरिक्त सर ओलिवर लाजने (Sir O. Lodge) अपनी परीक्षाओंद्वारा सिद्ध किया है कि किसी ठोस पदार्थको कितने ही वेगसे क्यों न चलाया जावे, किन्तु उसके आस पासके ईथरमें कोई गड़बड़ नहीं होती, अर्थात् हम कितनी ही कोशिश करें किन्तु ठोस वस्तुओंको चलाकर ईथरको नहीं चला सकते।

इन सब कठिनाइयोंके होनेपर भी अब प्रायः सभी वैज्ञानिकोंने मान लिया है कि ईथर पृथ्वीके साथ साथ नहीं घूमता और उपर्युक्त सब बातोंकी समुचित व्याख्या भी हो गयी है।

पाश्चात्य शास्त्रीय विचार और गीता

[ले॰ श्रीयुत लाला कन्नोमल, एम॰ ए॰]

[गताङ्कसे सम्मिलित]

३-मनोविज्ञान (Psychology)

इस विषयमें गीताका कथन है कि बुद्धिसे अहङ्कार उत्पन्न होता है; सात्विक अहङ्कारसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियां और मन बनते हैं, और तामसो अहङ्कारसे पाँच तनमात्राएं बनती हैं, जो रूप-रस-गन्ध-स्पर्श और शब्दके उत्पत्तिस्थान हैं, और जिनसे पञ्च महाभूत—आकाश, जल, वायु, अग्नि और पृथ्वी तत्त्व उत्पन्न हुए हैं। ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा वाह्य पदार्थोंमें रूप-रसादिका अनुभव होता है, परन्तु यह तभी होता है जब इनके साथ मन मिलता है। मन, इन्द्रियोंद्वारा लाये हुये अनुभवोंको बुद्धिके सामने रखता है। बुद्धि इनका निर्णय कर व्यवस्था देती है, जिसे मन, कर्मेन्द्रियोंद्वारा कार्य्यपरिणत करता है। तब सब इन्द्रियाँ अपने अपने काम करती हैं। इन सब अनुभवोंके मिलनेका स्थान आत्मा है, जो मन-बुद्धिसे परे है। यदि यह आधार नहीं हो, तो यह सब इन्द्रियां मिलकर भी एक काम नहीं कर सकती हैं। आत्मा अनादि अमर, अजर, नित्य और परिवर्तन-रहित है। इन्द्रियोंकी क्रियाओंके साथ अहङ्कार मिलनेसे ममत्व होता है, और इन सब क्रियाओंके स्मृतिपटलपर अङ्कित होनेसे, संस्कार बनते हैं। इन्हींसे कर्म, अकर्म, पाप, पुण्य आदिका चक्र चलने लगता है। इस चक्रके चलनेसे अहङ्कारलिप्त जीवको बार बार जन्म लेना पड़ता है। आत्मा जन्म नहीं लेती है। केवल अहँकार, बुद्धि, ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां तनमात्रएँ और मन—इनका पिण्ड जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं, जन्म लेता रहता है, और वही सुख दुःख जरा मृत्यु आदिका स्थान है। पाश्चात्य पण्डितोंने मनोविज्ञान-शास्त्रमें जो तत्व बताये हैं, वह सभी इसके भीतर आ जाते हैं। यह पण्डित आत्माके रूपतक नहीं पहुंचते हैं। केवल ईगो Ego का विवेचन करते हैं जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं। गीता, सूक्ष्म शरीर (Ego) को व्यावहारिक जीव कहकर, आत्माके ज्ञानपर पहुँच गयी है।

पाश्चात्य पण्डितोंका मनोविज्ञानशास्त्र अधूरा है; क्योंकि उन्होंने उसके संग उस शास्त्रकी योजना नहीं की है जिसके द्वारा स्मृतिगुप्त संस्कार व्यक्त हों, अथवा इन्द्रियां और मन वशीभूत हों, बुद्धिके सात्विक भाव प्रादुर्भाव हों एवं बुद्धि शुद्ध होनेपर आत्मा स्वरूपका अनुभव कर सके। पाश्चात्य विद्वानोंने अभी ऐसे गौरवशाली शास्त्रका आविष्कार नहीं किया है, परन्तु भारतवर्षमें यह शास्त्र सहस्रों वर्षोंसे प्रचलित है। इसक

Philosophy दर्शनशास्त्र]

नाम योगशास्त्र है। इसीके द्वारा मनोविज्ञानशास्त्रकी सत्यताकी जाँच हो सकती है। योगबलसे मनकी अनेक गुप्त शक्तियाँ जागृत हो सकती हैं। इस सम्बन्धमें इतनी बात याद रहे कि आत्माको छोड़ और सब इन्द्रियाँ सूक्ष्म प्रकृतिके अंशोंकी बनी हैं।

४-आचारशास्त्र [Ethics]

आचारशास्त्रका उद्देश पुण्य-पाप तथा अच्छे बुरे कर्मोंका विवेचन करना है। अच्छा कर्म क्यों करें? बुरा क्यों छोड़ें? इसका उत्तर तीन प्रकारसे दिया जाता है अर्थात् आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टियोंसे। इस कार्य्यके करनेसे लाभ होगा, सुख होगा, हमारा, हमारे कुटम्बियों, मित्रों एवं समस्त संसारके मनुष्योंका लाभ होगा, इस बुद्धिविचारसे कर्म करना आधिभौतिक दृष्टि है। इसमें केवल शुष्कबुद्धि विचार है जिससे भूल हो सकती है। यह काम हमारा अन्तःकरण ठीक समझता है, इसलिए इसे करना चाहिए यह आधिदैविक दृष्टि है। इसमें यह त्रुटि है कि सबका अन्तःकरण एकसा नहीं होता है। सभ्यता, विद्या, सत्संगादिका प्रभाव अन्तःकरणकी वृत्ति बननेमें बहुत कुछ पड़ता है, इसलिए अन्तः करण हमेशा सच्चा नेता नहीं है। यह कर्म करना हमारी आत्माके उपयुक्त है या नहीं, परमात्मा आत्माकी एकता बताता है या नहीं; समस्त संसारकी आत्माओंके साथ हमारा जो गाढ़ सम्बन्ध है उसके कारण जो हमें अप्रिय और बुरा है वह सभीको वैसा है या नहीं? इस विचारसे काम करना आध्यात्मिक दृष्टिके अनुसार है। गीता आचार-मार्गमें इस दृष्टिको प्रधान मानकर, निष्काम साम्यबुद्धिसंयुक्त कर्म करना कहती है। जो इस दृष्टिसे काम किया जाता है वह कदापि पापकर्म नहीं होता है। पाश्चात्य पण्डितोंमें आधिभौतिक और आधिदैविक दृष्टि माननेवाले बहुत हैं, आध्यात्मिक दृष्टि माननेवाले कम। तथापि ग्रीन, केन्ट आदि आध्यात्मिक दृष्टि माननेवाले हैं; परन्तु वह इसका विचार इतनी स्पष्टता और सरलतासे नहीं करते जैसा कि गीता करती है। गीता कर्मकी उत्पत्ति गुणोंसे मानती है। रजोगुणसे काम उत्पन्न होता है, कामसे क्रोध, क्रोधसे मोह, मोहसे बुद्धिभ्रम, और बुद्धिभ्रमसे सर्वनाश होता है। पापका यही कारण है।

आत्मा कर्म नहीं करती है, न उसका सुख दुःख भोगती है। इन सबका सम्बन्ध अहङ्कार प्रधान सूक्ष्मशारीरिक जीवसे ही है, और वही कर्मके चक्रमें पड़ता है। रजोगुण दबनेसे सत्वगुणका प्रादुर्भाव होता है, जिससे अच्छे कर्मोंमें प्रवृत्ति होती है। किये हुए कर्मोंका नाश नहीं होता है। वह सब संञ्चित होते जाते हैं। जीवको उनके फल भोगनेके लिए बार बार जन्म लेना पड़ता है। कर्म तीन प्रकारके हैं—सञ्चित, क्रियमाण और भावी।

जब सञ्चित कर्मोंका आरम्भ हो जाता है तो उनका नाम क्रियमाण कर्म होता है, और जिनका आरम्भ नहीं हो वे भावी कर्म कहलाते हैं। किसीने हत्या, चोरी और परस्त्रीहरण-तीन अपराध किये हैं। ये तीनों उसके सञ्चित कर्म होगये। पुलिसको इनमेंसे एक अपराध अर्थात् चोरीका पता लगा। उसने खोजकर अपराधीको पकड़ लिया। अब समझो कि चोरीके सञ्चित कर्मके फलका आरम्भ हो गया। इसलिए यह क्रियमाण कर्म हो गया। इस (चोरी) अपराधका निर्णय होनेपर इस मनुष्यको दण्ड मिला, जो उसे भोगना ही पड़ा; परन्तु अभी दो अपराधोंका फल और भोगना रह गया है। जिस अपराधका फल आरम्भ हो गया, उसे तो मनुष्य रोक ही नहीं सकता है, परन्तु जो आनेवाले कर्मफल हैं, अर्थात् हत्या और परस्त्रीहरण अपराधोंके फल, उनके रोकनेकी चेष्टा कर सकता है।

अच्छे कर्म करने और शुद्धवृत्ति रखनेसे मनुष्य आनेवाले फलभोगोंसे भी बच सकता है, अथवा उनके कषायको कम कर सकता है। आगे

अच्छे फल सञ्चित हों, ऐसा करना, आगामी सञ्चित कर्मफल-भोगोंको रोकना और आगेकेलिए अच्छे कर्म सञ्चित करना, मनुष्यकी स्वतन्त्र बुद्धि-पराकाष्ठाके भीतर है। मनुष्य केवल परतन्त्र ही नहीं है। गीताका यह कर्मविपाक अच्छे कर्म करने का उपयोगी है।

पाश्चात्य पण्डितोंके कर्मविपाक-विचार संकुचित हैं। यह आचारशास्त्रमें अच्छे बुरे कर्म करनेका निश्चय, आधिभौतिक और आधिदैविक दृष्टियों से करते हैं, और कर्मविपाक-विचारोंको अधूरा छोड़ देते हैं।

तीसरी बात, जो पाश्चात्य आचारशास्त्रमें नहीं है और जिसे गीता बताती है, यह है कि वे अच्छे कर्म कौन से हैं जिनसे जीव, कर्मविपाकके झगड़ेसे छूटकर.मोक्ष प्राप्त करता है। यह विषय पाश्चात्य पण्डितोंने धर्मशास्त्रोंपर ही छोड़ दिया है, और उनमें शास्त्रीय रीतिसे इस विषयपर विचार नहीं किया गया है।

गीता कहती है कि सब कर्म इच्छासे होते हैं। वासनाका शुद्ध होना आवश्यक है। इसीसे साम्य बुद्धि होती है। निष्काम कर्म करनेसे वासनाएं शुद्ध होती हैं। परन्तु यही फल ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग, ध्यानयोगसे भी हो सकता है। यदि और कोई भी उपाय हो जिससे यह फल हो सके,तो वह भी मोक्षका साधन है। एक ही उपाय नहीं है कि जिससे यह फल होता है। जैसी श्रद्धा होती है वैसा ही मनुष्य होता है।

जब वासना अच्छी हो जाती है, जब दूषित कर्म छूट जाते हैं और ब्रह्म-जीवकी ऐक्यता दीखने लगती है, तो मनुष्य इसी जन्ममें जीवन्-मुक्त हो जाता है, और मृत्युके पश्चात् उसका फिर जन्म नहीं होता है।

५-सामाजिक शास्त्र (Social Polity)

आचारधर्मसे ही सामाजिक स्थिति और सुधारका सम्बन्ध है। इस विषयमें पाश्चात्य पण्डित आधिभौतिक सिद्धान्त लगाते हैं; परन्तु गीता इनमें भी आध्यात्मिक दृष्टिका प्रयोग करती है। जिस समाजमें गीताके अनुसार आध्यात्मिक दृष्टिके सदाचारी मनुष्य हैं, वह समाज श्रेष्ठ है, और उसकी स्थिति अटल है। गीता कहती है कि समाजके सञ्चालनकेलिए अर्थात् लोकसंग्रहकेलिए जीवनमुक्त मनुष्योंको भी संसारमें ही रहना चाहिए। इसके उदाहरण राजा जनक, श्रीकृष्ण, श्रीरामचन्द्रादि हैं। गीता जातियोंके नियत धर्म बताती है; समाजमें शुद्धाचारी मनुष्य होनेको कहती है। प्रत्येकको अपना नियत-कर्म निष्काम होकर करनेका उपदेश देती है, और इस प्रकार सामाजिक वृद्धिकी अटल स्थिति करती है। पाश्चात्य सामाजिक स्थितिके ऐसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त नहीं हैं।

६-धर्मशास्त्र (Theology)

इस शास्त्रमें प्रायः ईश्वर-जीव-मोक्ष और मोक्षप्राप्तिके साधनोंका वर्णन होता है। ईश्वर विषयमें यह मत प्रचलित हैः—

निर्गुण ब्रह्म (Impersonal God. Spiriual Monism)

सगुण ब्रह्म (ईश्वर) (Personal God. Theism)

विश्वब्रह्मवाद (Pantheism)

अनेक ईश्वरवाद (Polytheism)

पाश्चात्य धर्ममें सगुण ब्रह्मका ही प्रतिपादन है। इस कारण इसके धार्मिक सिद्धान्त ज्ञानशास्त्रके तर्कसे कट जाते हैं। गीतामें सगुण और निर्गुण ब्रह्म, दोनोंका वर्णन है। वास्तवमें ब्रह्म निर्गुण ही है, परन्तु माया या प्रकृतिके रूप-नाम-जालके कारण सगुण हो जाता है। निर्गुणसे सगुण होनेकी क्रियामें ब्रह्ममें विकार नहीं होता है, अर्थात् सगुण ब्रह्म निर्गुण ब्रह्मका परिणीत नहीं है, जैसे कि दही दूधका है। ऐसा हो तो विकार अवश्य होगा। जैसे एक सूर्य निर्मल आकाशमें शुद्ध ज्योतिस्वरूप दिखाई देता है और बादलोंसे आच्छादित होकर मलिन दिखाई देता

है, परन्तु सूर्यमें कोई विकार नहीं होता है, वैसे ही ब्रह्म अपने स्वरूपमें निर्गुण है; माया-उपाधि-आवरणसे सगुण हो जाता है।

निर्मल प्रकाशवान् सूर्य सभीको उपयोगी नहीं है। धोबीको कपड़े सुखानेकेलिए निर्मल सूर्यकी आवश्यकता है। पथिकको जिसे अभी दूर जाना है तेज सूर्यकी आवश्यकता नहीं, बल्कि बादलोंसे आच्छादित मलिन सूर्य की—अन्धकारकी भी आवश्यकता नहीं—नहीं तो मार्ग दिखाई ही नहीं देगा। ऐसे ही निर्गुण और सगुण ब्रह्मकी अपनी अपनी आवश्यकतानुसार आवश्यकता है। गीता दोनों स्वरूपोंको मानती है। जब ईश्वर विषयमें वैज्ञानिक तर्क उपस्थित होता है तो निर्गुण ब्रह्मकी अटल भूमिपर गीता अपनी विजय पताका फहराती है, और जब संसारी मनुष्योंको मोक्षसाधनमार्ग बताना होता है, तब सगुण ब्रह्मका उपदेश करती है। इसके सिवा गीता यह भी कहती है कि ब्रह्म एक है और सबका आधार है, इस लिए जितने देवी देवता हैं,उन सबमें ब्रह्मका ही मूल तत्व है, और जो उनकी पूजा करते हैं वे ईश्वरको ही पूजते हैं। इस तरह अनेक-ईश्वरवाद (Polytheism) का भी समर्थन करती है। पाश्चात्य पण्डित, अनेक-ईश्वरवाद (Polytheism) का अर्थ पृथक् पृथक् बहुतसे ईश्वरोंकी पूजा करना कहते हैं। उनका यह अर्थ ठीक नहीं है। ऐसे अनेक-ईश्वर-वाद को गीता नहीं मानती है।

सब संसारमें जो कुछ है वह ईश्वर ही है। इस मतके माननेवाले यदि यह मानें कि ईंट, पत्थर वृक्षादि सभी ईश्वरके स्वरूप हैं, अथवा ईश्वरकी देहके बने हैं, जैसा दही दूधका बना है, और जितना संसार है उतना ही बड़ा ब्रह्म है, तो इससे गीता सहमत नहीं है। पाश्चात्य पण्डित विश्वब्रह्मवाद (Pantheism) का यही अर्थ मानते हैं। यदि इसका यह अर्थ किया जाय कि समस्त संसारके पदार्थ ईश्वरके आधारपर ही हैं, और जो श्रेष्ठ और उत्तम पदार्थ हैं, उनमें ईश्वरकी ही अधिक झलक है, और ब्रह्म इस समस्त संसारका व्यापक होनेपर भी उसके परे और अपरिमित है, तो गीता इस बातको मानती है, और उसके कई अध्यायोंमें इस मतका अच्छा वर्णन है। उसका विराट्रूप इसी मतका प्रमाण है। इसलिए गीता संसारकी सब धर्म-पुस्तकोंके मतोंको मानती है और किसीका खण्डन नहीं करती है। मोक्ष-साधन विषयमें पाश्चात्य धर्म पुस्तकोंमें लोकसेवा और भक्तिमत प्रधान है। गीता इन सबको मानती हुई अनेक मार्ग बताती है; जैसे ज्ञान-कर्म-ध्यान-संन्यास यांत्रमार्गादि। वह किसी मार्गकी निन्दा नहीं करती है। शुद्ध वासना सब साधनोंका तत्त्व है। गीताका उपदेश संकुचित नहीं है,बल्कि औदार्य पूर्ण है। कर्मकाण्डके विषयमें अन्य धर्मवालोंकी अनेक भिन्न भिन्न विधियां हैं। सब वैदिक और स्मार्तिक कर्म बताती हुई, गीता जाति-नियत धर्म करनेका उपदेश करती है; मनुष्योंको कर्मकाण्डके सभी साधन करनेकी स्वतन्त्रता देती है। वह न तो किसी पूजापाठ, नियम अथवा धार्मिक अनुष्ठानोंको करनेको कहती है, और न किसीकी निन्दा करती है।

दियासलाई और फासफोरस

(गताङ्कसे सम्मिलित)

[ले० प्रोफेसर रामदास गौड़, एम. ए.]

साधारण पीले स्फुरका प्रयोग अब बहुतसे देशोंमें वर्जित हो गया है, और आजकल जो दियासलाई रगड़से जलनेवाली बाज़ारमें बिकती है उसके सिरेपर पीले स्फुरके स्थानमें लाल स्फुरत्रिगन्धिद् काममें आता है। भारतवर्षमें भी आईनद्वारा पीले स्फुरकी दियासलाइयोंका बिकना बन्द है।

दियासलाईका कारखाना

दियासलाई अत्यन्त उपयोगी पदार्थ होनेपर भी ऐसी सस्ती चीज़ है कि एक डिबियाके मूल्य-पर विचार करके यह आश्चर्य्य होता है कि ऐसे परिश्रमसे बनी हुई चीज़ ऐसी सस्ती कैसे बिक सकती है। यह रहस्य दियासलाईके कारखानेका आदिसे अन्ततक दर्शन करनेसे खुल जाता है। भारतवर्षमें कई दियासलाईके कारखाने हैं। एक बार बरेलीका कारखाना देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बरेलीका कारखाना कोई बहुत बड़ा कारखाना नहीं है। तो भी वहां सारा काम मशीन-से ही लेते हैं। इस कारखानेको देखनेसे दिया-सलाईके कारखानेका साधारण ज्ञान हो सकता है।

संसारमें सभ्य कहलानेवाले सभी देशोंमें दिया-सलाईके कारखाने हैं। इङ्गलिस्तानमें (Bryant and May) ब्रैंट एण्ड मेका कारखाना प्रसिद्ध है, पर आजकल बाजारमें जापानी दियासलाइयोंकी ऐसी भरमार है कि नारवे स्वीडन आदि तटस्थ देशोंकी दियासलाइयां भी दिखाई नहीं पड़तीं। बरेलीवाली दियासलाई भी जब कहीं दिखाई नहीं पड़ती तो विदेशी दियासलाइयोंकी क्या कथा है?

दियासलाईके कारखानेमें प्रायः दो विभाग होते हैं। एकमें डिबिया बनती है और दूसरेमें सलाई। इन दोनों वस्तुओंके लिये चीड़की लकड़ी सबसे अच्छी समझी जाती है। इसके बाद सालका नम्बर आता है। अमेरिकाके कालीफोर-निया देशमें चीड़के बड़े विशाल जङ्गल हैं। इन जङ्गलोंसे हज़ारों बड़े बड़े पेड़ जिनपर कभी लकड़हारेका कुल्हाड़ा नहीं पड़ा है कट कट कर एक ओरसे कारखानोंमें दाखिल होते हैं और दूसरी ओरसे नौ दस करोड़ दियासलाइयोंके रूप-में बदलकर निकलते जाते हैं। एक ओर जङ्गलका अनुमान कीजिये और दूसरी ओर दियासलाइयोंके पहाड़का। एक दिनकी बनी हुई दियासलाइयोंको एक कतारमें बिछाया जाय तो सात हजार मीलके लगभग जगह लेंगी। ब्रैन्ट एण्ड मेके जङ्गलात कालीफोरनियामें पचहत्तर हजार एकड़से ज़्यादा हैं। यह केवल एक कम्पनीका हाल है। स्वीडन, जर्मनी, रूस, जापान, अमेरिका सभी जगह ऐसी बड़ी बड़ी कम्पनियां हैं। सोचनेकी बात है कि दियासलाइयोंकी बदौलत संसारमें कितने जङ्गल कटते जा रहे हैं। काग़ज़केलिये भी इसी प्रकार जङ्गलोंका सत्यानाश हो रहा है। सभ्य देशोंके सामने इस समय एक विकट समस्या उपस्थित है कि जङ्गलोंका जितना शीघ्र विनाश हो रहा है उतना शीघ्र उनका पुनरुज्जीवन नहीं हो सकता। ऐसी दशामें भविष्यमें काग़ज़ और दियासलाईकी क्या दशा होगी। एडिसन साहब निकिलका बारीक काग़ज़ तैयार कर रहे हैं, परन्तु दिया-सलाईकेलिए क्या होगा!

चीड़के बड़े बड़े कुन्दे एक विशेष नापमें काटकर तय्यार रखे जाते हैं। मनुष्यका काम इतना ही है कि एक एक कुन्दा मशीनमें लगाता जाय। एक बड़े लम्बे चौड़े कमरेमें सोलह मशी-नोंका अनुमान कीजिये जो बिजली या भाफ-के बलसे चल रही हैं। इनमेंसे पहलीने मनुष्यके हाथसे लकड़ीके कुन्देको पकड़ लिया, दो बेलनोंके बीचमें कुन्दा चला और बलपूर्वक तीक्ष्ण धारवाले छुरोंसे कटने लगा। यह छुरे इस तरहपर लगे हुए रहते हैं कि लकड़ीका कोई भाग व्यर्थ नहीं जाता। एक मशीनमें प्रायः अड़तालीस छुरे रहते हैं और प्रत्येक छुरा ठीक आकार और रूपका टुकड़ा काटता है। लकड़ीके टुकड़ेके कटते देर नहीं कि नीचेसे एक लोहेका थालसा उठता है जो इन टुकड़ोंको लोहेके एक बन्दके छोटे छोटे छेदोंमें डाल देता है। दूसरी ओर साहीके कांटोंकी तरह दिया-सलाईकी लकड़ियां निकल आती हैं। यह बन्द बराबर घूमता रहता है। इसका मार्ग सर्पाकार होता है और इसकी लम्बाई सात सौ फुटके लगभग होती है। इसके एक पूरे चक्करमें एक घंटेसे कम नहीं लगता। इसके वेगको ताव देकर घटाते बढ़ाते रहते हैं, जिसमें बकस-

तक पहुंचते पहुंचते दियासलाइयां अच्छी तरह सूख जायं। इसी बन्दके नीचे एक स्थानपर एक पात्र रखा रहता है, जिसमें मसालेकी पतली तह रहती है। बन्दमेंसे जो दियासलाइयोंका थोड़ा सा भाग नीचे निकला रहता है इस पात्र मेंके मसालेमें डूबता जाता है और उसमें मसाला लगता जाता है।

किसी किसी कारखानेमें मसाला लगानेके पहले पाराफीनमें डुबो लेते हैं। पुरानी चालकी गंधककी दियासलाइयोंमें, पहले गंधकमें डुबोते थे, तदनन्तर मसालेमें। जब बन्द अंतिम अवस्थाको पहुंचता है एक लोहेकी डांड़ दियासलाइयोंको काट देती है और वह उन बकसोंमें तुरन्त गिर जाती हैं जो पहलेसे रखे रहते हैं। बकसोंके रखनेमें भी एक विशेषता होती है। वह बराबर हिलते रहते हैं जिसमें सलाइयां ठस बैठ जायं। जब बकस भर जाते हैं एक लोहेका हाथ उनको डिबियोंके भीतर दबा देता है और दरजनोंकी संख्यामें वह चंगेरोंमें आगे बढ़ा दी जाती जहां हैं, वह झटपट कागज़में लपेटी जाती हैं और मशीनके ही द्वारा पैकट चिपका भी दिया जाता है। अब ऐसे ऐसे बारह पैकट लड़कियां इकट्ठा करके झटपट एक बड़ा पैकट बना लेती हैं जिन्हें हम अक्सर बड़ी दूकानोंपर देखते हैं। प्रत्येक चोटमें अड़तालीस छेद अड़तालीस दियासलाइयां काटते हैं और एक मिनटमें लगभग दो सौ चोट मारते हैं। इस हिसाबसे एक मिनटमें छानवे सौ दियासलाइयां या घंटे भरमें पांच लाख छिहत्तर हज़ार दियासलाइयां कटती हैं। दस घंटे रोज़ काम करते हुए इन सोलहों मशीनोंसे दिन भरमें नौ करोड़ बीसलाख सलाइयां तय्यार हुईं। प्रत्येक डिबियामें साठ सलाइयोंके हिसाबसे सवालाख डिबियोंसे ऊपर संख्या हुई। यह एक कमरेमें एक दिनका काम हुआ। बड़े कारखानोंमें ऐसे कई कमरे होते हैं।

दूसरे विभागमें जहां डिबिया तय्यार होती है, ऊपरका ढकना और भीतरका बकस अलग अलग मशीनोंसे निकलता है। विशेष आकारसे कटे हुए लकड़ीके कुन्दे मशीनमें थमा दिये जाते हैं। मशीनमें पैनी धारका सीधा छुरा लगा रहता है। खरादपर ज्यों ज्यों कुन्दा घूमता है यह छुरा एक बहुत पतला परन्तु लम्बा चौड़ा पत्तर काटता है। यह पत्तर मशीनमें ही कटता हुआ आगे बढ़ता जाता है। मशीनके दूसरे भागमें मोड़नेके चिह्न बन जाते हैं। यह भी आगे बढ़ा और मशीनद्वारा लपेट दिया गया। और आगे बढ़नेपर यह छोटे छोटे चंगेरोंमें उठता हुआ दूसरे भागमें पहुंचा जहां कागज़ लपेटा गया। इसके आगे उचित स्थानपर रगड़नेके लिये मसाला लगाया गया और सुखाया गया। भीतरवाला बकस भी इन्हीं रीतियोंसे तय्यार होता है। शेष वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

दियासलाईका मसाला

पोटास (अर्थात् पोटाश क्लोरेट)	तोलमें	५	भाग
पोटास डाइक्रोमेट	"	२	"
कांचकी बुकनी ...	"	३	"
गोंद या सरेश ...	"	२	"

डिबियापर लगानेका मसाला

अंजन ...	तोलमें	५	भाग
लाल फासफोरस	"	३	"
मंगनीज़ ...	"	१॥	"
सरेसकी लेई ...	"	४	"

शरीरमें फासफोरस

यद्यपि स्फुर ऐसा विषैला पदार्थ है कि उसकी तनिकसी मात्रासे अनेक यातनाएँ भोगकर मनुष्य प्राणी शरीर त्यागदेता है—पुरानी चालकी तीन दियासलाइयां मनुष्यको मारनेके लिये काफी हैं—तथापि उसके शरीरमें इतना फासफोरस होता है जितना कि आठलाख दियासलाइयोंमें होता है। इस हिसाबसे एक मनुष्यके शरीरसे निकला हुआ फासफोरस ढाई लाखसे अधिक मनुष्योंको मार सकता है। हड्डीमें इसका विशेष

अंश है। परन्तु नाड़ी-जालमें और मस्तिष्कमें भी फासफोरस अधिक रहता है। सच तो यह है कि प्राणीमात्रके सेलोंके बीचमें फासफोरस अवश्य ही रहता है। जीवनके आन्तरिक रहस्योंमें फासफोरसका एक बहुत बड़ा भाग है और नाड़ी यन्त्रोंके संचालनसे तथा उत्पादक सेलोंसे इसका बड़ा भारी सम्बन्ध है। वनस्पतियोंमें भी विशेषतः फलों और बीजोंमें स्फुर अवश्य रहता है। यह स्फुर पृथ्वीसे आता है। जिस भूभागमें स्फुर न हो उसमें वनस्पतिका होना असम्भव है। भूमिको उर्वरा बनानेमें स्फुर अत्यन्त आवश्यक है। पाठकोंने देखा होगा कि बड़ी बड़ी बैल-गाड़ियां हड्डियोंसे लदी चली जा रही हैं। यह हड्डियां विदेशको जाती हैं। बड़ी हड्डियोंके चाकूके बेंट आदि तरह तरहके पदार्थ बनते हैं। शेष पीसी जाती हैं और उनका चूर्ण खादके काम-में आता है। इस खादसे अन्न उत्पन्न होता है, जिससे मनुष्योंका पोषण होता है। इस प्रकार स्फुर प्राणीकी हड्डियोंसे धरतीमें, धरतीसे अन्नमें, और अन्नसे फिर शरीरमें प्रवेश करता है। धरती-

चित्र १—वृहद पशु

का स्फुर जलमें मिलकर समुद्रमें पहुंचता है और सामुद्रिक वनस्पतियोंद्वारा मछलियोंके पेट-में जाता है। मछलियोंमें भी फासफोरस बहुत होता है। अनेक प्राणियोंके मैलेमें स्फुर बहुत पाया जाता है। प्राचीन युगोंमें जब साधारण मनुष्योंकी सृष्टि नहीं हुई थी इस पृथ्वी-तलपर बड़े बड़े भीमकायप्राणी विचरते थे जो जल और थल दोनोंमें ही निवास करते थे, जिनके पद-चिह्न, जिनके शरीरके पिञ्जर अबतक भूगर्भसे निकलते हैं, आपसमें घोर युद्ध करके कट मर जाते थे। इन युद्ध-हत प्राणियोंकी संख्या असंख्य और अपरिमित थी। स्काटलैण्डसे लेकर जर्मनीतक पृथ्वीके भीतर इन प्राणियोंका एक विस्तीर्ण रणक्षेत्र या मरणक्षेत्र पाया गया है। यह उस समयकी बात है जब इङ्गलैण्ड और
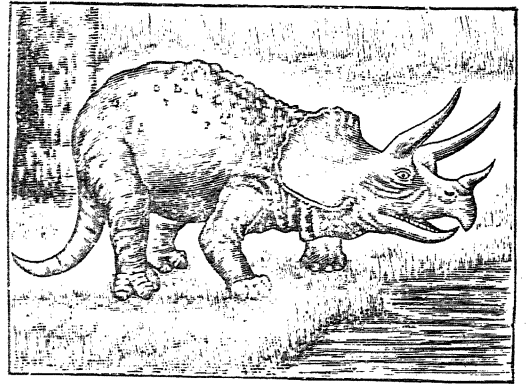
चित्र २—तिसिंगा

युरोप समुद्रकेद्वारा अलग नहीं किये गये थे। इस समय विलायतमें इन्हीं प्राणियोंके शरीरका स्फुर जो थोड़ा सा नहीं है, खोदकर निकाला जाता है, और खादके काममें आता है। पेरूमें समुद्र तटपर स्फुरमय मिट्टीका पहाड़ है जो किसी युगमें एक विशेष प्रकारकी चिड़ियोंके बैठते बैठते और मलत्याग करते करते तैयार हो गया था। इस पदार्थको गुआनो कहते हैं। यह भी खाद-के काममें आता है। हालमें अब यह पहाड़ खुद कर साफ़ हो गया है और स्फुरकेलिये और और भूखण्ड खोदे जा रहे हैं। इङ्गलिस्तानमें

अमेरिका वेस्टइन्डीज़के सोम्ब्रेरो (Sombraro) नामक टापूसे लाये हुए सोम्ब्रेराइटसे स्फुर निकाला जाता है। ऐपेटाइट नामक खनिजसे स्फुरके सिवाय पांच सात प्रतिशत फ्लोरीन भी निकलता है । इस्पातके कारखानोंसे जो मैल निकलता है उससे भी स्फुर निकाला जाता है। पूर्वकल्पोंकी मछलियों तथा राक्षसी निकाला जाता है। इसके घुलनशील लवण जल द्वारा या तो पृथ्वीमें समा जाते हैं या समुद्रकी यात्रा करते हैं। स्फुरके लवणोंका होना स्फुराम्लों-के अस्तित्वको सिद्ध करता है । स्फुरके कई अम्ल यौगिक हैं जो स्फुरसे ही बनाये जा सकते हैं। जब स्फुर हवामें वेगसे जलता है स्फुर पंचो-पिद नामकी एक श्वेत बुकनी बन जाती है। यह
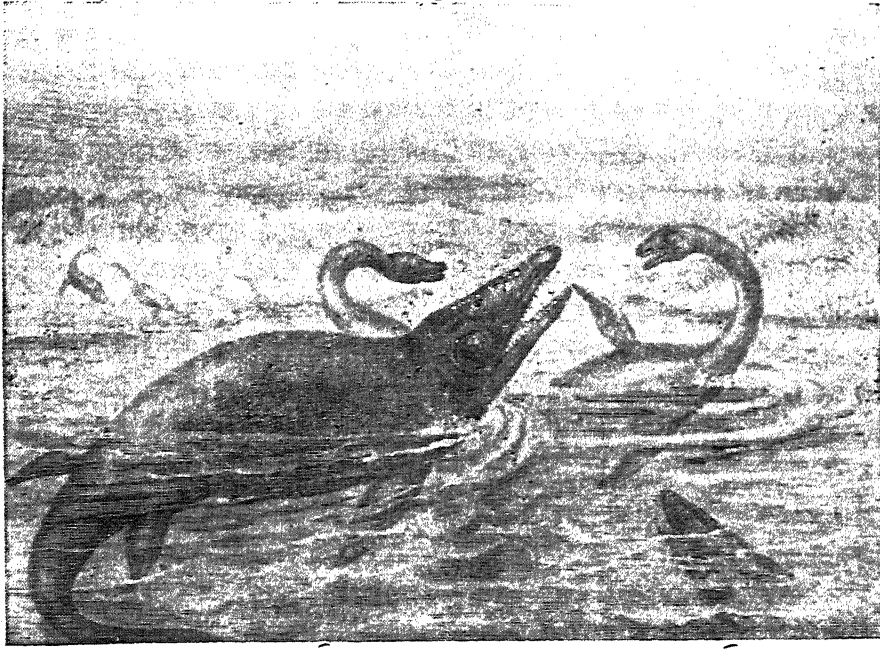
चित्र ३—सराट-बन्धु और मत्स्य-सराट (Plesio-saurus and Icthyo-saurus) । इन्हीं महाकाय 'मछ-लियों तथा राक्षसी जन्तुओंके मलत्यागसे जो स्फुर इकट्ठा मिलता है उसे प्रोप्लाटकहते हैं'

जन्तुओंके मलत्यागसे जो स्फुर इकट्ठा मिलता है उसे काप्रोलाइट कहते हैं । ज्वालामुखी पर्वतमें स्फुरके अंश वितरित हैं, परन्तु बहुत ज़्यादा नहीं । तो भी ज्वालामुखी पर्वतके चारों ओर सैकड़ों कोसतक उसके स्फुरसे ही धरती बड़ी उपजाऊ हो जाती है।

किसी भी रीतिपर स्फुर पाया जाय किन्तु शुद्ध मौलिक रूपमें स्फुरका पाया जाना असम्भव है। यह प्रायः अघुलनशील लवणोंके रूपमें ही अत्यन्त शीघ्रतासे वायुकी नमीको लेकर आर्द्र हो जाती है। यह एक अम्ल है। अधिक जलके संयोग-से इसके और भी रूपान्तर बनते हैं। इस सम्बन्धमें यहां विशेष विस्तार करना हमारा अभीष्ट नहीं है। अब हम नीचे डाक्टर मार्टिनद्वारा कल्पित स्फुरकी आत्मकथा देकर इस लेखको समाप्त करेंगे ।*

*गंधक और फासफोरस सम्बन्धी लेखोंमें अनेक रोचक और उपयोगी अंशोंके लिये लेखक मार्टिनके प्रसिद्ध ग्रंथका ऋणी है।

स्फुरकी आत्मकथा

मैं कहां जन्मा ? ओह ! यह कहना मेरी सामर्थ्यसे वाहर है। यहां से दूर अत्यन्तदूर इतनी दूरीपर जो मनुष्यकी कल्पनासे बाहर है, देशके अनन्त अपरिमित और कल्पनातीत गेहमें और कालके असीम अपरिमेय और अपरिछिन्न गर्भमें, जब इस पृथ्वीका जन्म नहीं हुआ था, प्रत्युत जब यह वैवस्वत सूर्य्य सुदूर भविष्यके गर्भमें और अन्धकारके ब्रह्माण्डमें सो रहा था, इतना ही नहीं वल्कि महान् विश्वके अनन्त सूर्यों-का समूह जिन्हें तुम नक्षत्र और तारे कहते हो अस्तित्वकी सोमामें नहीं आया था—निदान जब यह सभी तमोमयी मूलप्रकृतिके शीत श्वासोच्छ्वासके रूपमें अनेक नष्ट कल्पों और ब्रह्माण्डोंके शवके कृमिकी नाईं स्थित थे, उस अज्ञेय देशमें और उस अचिन्त्य कालमें मूलप्रकृतिके गर्भसे मेरा जन्म आकाशके उस विशाल और विस्तृत सागरमें हुआ जो समस्त देशमें ओतप्रोत भावसे व्याप रहा है।

'तदु सर्वस्यास्यान्तस्य तदु सर्वस्यास्य वाह्यतः'

कोई महान् परिवर्तन, प्रकृतिकी उदरदरीमें, हुआ। अपौरुषेय शक्तियोंके किसी महान् संचालनने जिसका अनुमान असम्भव और कल्पना अशक्य है, अपने अवाध बलसे मुझे उत्पन्न किया और अनन्त शून्यमें मैं अकेला निराधार रहा। आत्यन्तिक शीत और घने अन्धकारमें पड़ा दूरसे बड़े बड़े ब्रह्माण्डों और ब्रह्माण्डनायक सूर्य्योंकी अगणित और विस्तीर्ण अनल शिखाएं गंभीर अन्धकारको भेदती हुई मुझे दिखाई पड़ती थीं। नहीं जानता, कि शून्यदेशमें मैं कबतक था। कितने नील कितने पद्म वर्षतक रहा। तब एक बड़ी अद्भुत घटना हुई। ज्योतिर्मयी धारामें परमाणुओंका एक विशाल स्रोत बड़ी दूरसे आकर चारों ओर फैल गया। तब मैंने देखा कि एक ज्योतिर्मय वायव्य सागरका मैं अंश हूं जिसको मानवी भाषामें नीहारिका कहते हैं और जो अनन्त तमोमय देश-में संखों मीलतक फैला हुआ है। इस दशामें मैं कई युगोंतक था, और यह तमाशा देखता जाता था कि परमाणुपर परमाणु निरन्तर स्रोतमें बढ़ते हुए, अन्धकारमें ज्योति फैलाते जाते हैं और महती निराकार नीहारिका धीरे धीरे सिकुड़ती जाती है और आकार और रूप धारण कर रही है। अब ताप बड़े वेगसे बढ़ने लगा, गर्मी असह्य हो गयी। बिजली कौंधने लगी। हलचल मच गयी। परमाणु सट सटकर भिड़ने लगे, धक्के खाकर चक्कर खाने लगे और उड़ने लगे। एक एक पलमें, मैं एक एक अरब परमाणुओंपर प्रहार करने लगा और प्रत्येक धक्केपर मेरी गति अधिकाधिक वेगवती और भयङ्कर होती गयी। इस दशामें कई अरब वर्ष रहकर मैंने देखा कि मैं अत्यन्त उत्तप्त और जलते हुए वायव्य पदार्थका एक भाग हूं। वस्तुतः किसी गर्भस्थित सूर्य्यका एक अंश हूं। इस मौलिक अग्निशिखाके प्रचण्ड परिभ्रमण और घोरनादमें न जाने कितने युगोंतक पड़ा रहा। निदान दशों दिशामें अत्यन्त भयङ्कर गर्जना होने लगी तब पता चला कि कोई भयानक घटना होने वाली है। यह घटना क्या थी ? यह एक संसारकी उत्पत्तिकी गर्भवेदना थी—मेरे पहले संसारकी रचना, जिसका क्रमशः अग्नि वाष्पसे घनीभवन हो रहा था और जिसके उबलते हुए चट्टानोंके समुद्रोंसे कभी कभी बड़े धड़ाकेका शब्द हुआ करता था। मैं इस संसारमें कैसे प्रविष्ट हुआ, कैसे यह धीरे धीरे एक सुन्दर ग्रह बन गया जो असंख्य जीवित प्राणियोंसे भरा पूरा और बड़े बड़े नगरों और विचित्र सभ्यता व्यापार धन सम्पत्तिसे रंजा पुंजा था—इन बातोंका विस्तार करके मैं आपको थकाना नहीं चाहता। यह नवीन संसार कैसे बूढ़ा हो गया, किस प्रकार निर्जल-मरु भूमिमें परिणत हो गया और अनन्तकालतक अन्धकार और नीरवतामें चक्कर लगाते लगाते एकाएकी भकसे जल उठा और महाप्रलयके कारण जल बुदबुदकी नाईं फटकर मिट गया

और ज्योतिर्मय वायव्य पदार्थके रूपमें परिणत हो गया, यह भी बड़ी लम्बी कथा है। इस संसार-से इसी महाप्रलयमें मैं बड़े वेगसे फेंका गया और दूसरे संसारमें पहुंचा। यह भी कालान्तरमें नष्ट हो गया। इसी प्रकार एक संसारसे दूसरा दूसरेसे तीसरा अनेक ब्रह्मांडोंका अंश बनते हुए और अनेक देशमें चक्कर लगाते हुए मैं उस अग्नि बलाहकमें मिल गया जिसमेंसे यह तुम्हारा ब्रह्माण्ड सिकुड़ते सिकुड़ते और अनेक धक्के खाते खाते बन गया है। क्या तुम कल्पना कर सकते हो कि जब तुम्हारे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति नहीं हुई थी तभी मैं कितना बूढ़ा और पुराना था? ओफ़! यह तो कल्पनासे बाहर है। खैर, पुरानी बातोंको जाने दीजिये अब मैं हालकी ही बात कहता हूं जिसको एकाध अरब ही बरस गुजरे होंगे, जब मैं इस पृथ्वीके गर्भदेशमें गलित चट्टानका एक अंश था। यहां मैं कई युग रहा जिसमें धरतीका ऊपरी भाग आंधी पानीसे बदलता जाता था। एक महाद्वीपके बाद दूसरा नष्ट होता जाता था और समुद्रमें डूबता जाता था। हजारों बरसमें धीरे धीरे प्रबल शक्तियोंके द्वारा मैं ऊपरको ओर भेजा गया। यहांतक कि मैं एक बड़े शीतल चट्टानका अंश हो गया जिसने बड़े गौरवसे अपना सिर उठाया और एक विख्यात विशाल पर्वतका मौलिमुकुट बन गया था, वायु जिसको व्यजन कर रही थी और वर्षा जिसको पाद्य अर्घ्य दे रही थी। मुझे जरा जरा याद है कि पर्वत-शिखरके ऊपरसे मैं समुद्रकी ओर पड़ा देखा करता था जिसमें पर्व्वताकार जन्तु विहार करते तथा लड़ते भिड़ते और मरते थे। यह जन्तु भी बहुत काल पीछे इस संसारसे मर मिटे और उनका स्थान उनसे छोटे जल-जन्तुओंने लिया। बहुत काल पीछे एकाएकी जलकी धारासे मेरा पर्व्वत-शिखर धुलते धुलते धुल गया और उसके साथ मैं भी महासागरके शरीरमें प्रविष्ट हुआ और वहां भी जाकर एक नन्हे जल-वनस्पतिके शरीरमें समा गया। परन्तु एक विशाल चमकते हुए मत्स्य-राजने इस वनस्पतिको खा लिया। इस तरह मैं मछलीकी उदर-दरीमें पहुंच गया। इस मछलीको एक बड़े अजगरने निगल लिया। यह अजगर दैवयोगसे जलसे बाहर निकलकर एक दलदल-में पहुंचा और फंसकर मर गया। उसका विशाल शरीर सड़ गलकर तत्वोंमें मिल गया। मैं भी धुलकर धरतीमें पहुंचा जहां एक पौदेकी जड़से भेंट हुई। मैं उसमें समाकर उसका अंश हो गया। परन्तु एक जन्तुने इसे खा लिया। इसलिए उसके उदर मार्गसे शरीरमें पहुंचकर मैं उसकी हड्डियों-का एक अंश बन गया। लाखों बरसकी बात है कि एक दिन जब धूप तेज थी हम एक छोटी सी नदी पार कर रहे थे उसी समय हरे रङ्गका एक दैत्य जन्तुपर झपटा और उसे मारकर मुझे अपने शरीरमें मिला लिया। कुछ दिन पीछे उस-की भी ऐसी ही दशा हुई और उसका शरीर जङ्गल-के घास पातमें सड़ गल गया। एकाएकी एक दिन बाढ़ आ गयी और मुझे अपनी पीठपर चढ़ाकर समुद्रमें ले गयी। यहां समुद्रतलकी कीचड़में मिल कर मैं लाखों वर्ष रहा। मेरे ऊपर बालू और मिट्टीकी बड़ी भारी भारी तह जमती गयीं, जिनके असह्य भार से मैं धरतीमें बराबर गहरे धंसता गया। यहां तक, कि फिर एक बार भूगर्भके बड़वानलसे भेंट हुई। इस बड़वानलके विशाल गहरे भट्टोंमें कई लाख वर्ष मैं सिकता रहा और उधर मेरे मीलों ऊपर संसारमें अनेक परिवर्तन होते रहे, विकास और ह्रास होता रहा, पहाड़के पहाड़ बनते और बिगड़ते रहे, नये नये अद्भुत जन्तु हुए, बढ़े, संसारमें फैले फले फूले और फिर मरमिटे और लापता हो गये। एक दिनकी बात है कि एक बड़े ज्वालामुखीके गलेसे बड़ी गर्जना और घोर नादके साथ गलित ज्वाला-की धारा निकली जिसके साथ मैं भी निकल आया। अनेक कालमें इस ज्वालामुखीके चारों ओरकी भूमि बड़ी उर्वरा और धन धान्यसे परि-

पूर्ण हो गयी। उस समय मैं अनाजके एक दानेमें बैठ गया और एक मनुष्यने उसे खाया। इस बातको हजारों वर्ष बीत गये और उस मनुष्यको शायद तुम जङ्गली और भयानक समझोगे। तुम जो कुछ समझो परन्तु उसके ही शरीरसे निकलकर फिर मैं पृथ्वीमें पहुंचा और तबसे मैं निरन्तर अनेक जन्तुओंके शरीरोंमेंसे होकर बराबर घूमता रहा हूं। पक्षीके शरीरमें मैं हवामें उड़ चुका हूं, मछलीके शरीरमें मैं समुद्रमें तैर चुका हूं, और भयानक जन्तुओंके शरीरमें मैं धरतीपर विचर चुका हूं, और असंख्य पौधोंके शरीरमें प्रवेश कर चुका हूं। कहांतक कहूं मेरी पूरी कहानी सुनते सुनते थक जाओगे। कुछ बरस हुए एक दिन जब मैं घासमें था एक पशुने मुझे खा लिया और उसके पेटकी विचित्र रासायनिक प्रक्रियाओंसे मैं उसकी हड्डीमें पहुंच गया। निर्दय मनुष्योंने उसे मारकर मांस तो खा लिया और हड्डियोंको भट्टीमें जलाकर राखकर डाला जब इस राखका अर्क खींचा गया तब मैं उसमेंसे निकल आया और दियासलाईके कारखानेमें पहुंचाया गया। वहींसे दिया सलाईकी डिबियापर सवार होकर मैं तुम्हारे सामने इस समय मेजपर आसीन हूं। पर यह भूलकर भी न समझना कि इस मेजपर आकर मेरी यात्रा पूरी हो गयी। नहीं कदापि नहीं। मैं बदलता जाऊंगा, यात्रा करता जाऊंगा, चक्कर लगाता जाऊंगा, युगपर युग बीतते जायंगे ब्रह्माण्डपर ब्रह्माण्ड बनते और बिगड़ते जायंगे, परन्तु मेरी यात्रा जारी ही रहेगी। अनन्त कालसे परमाणु चक्रोंमें यह यात्रा हो रही है, और अनन्त कालतक होती रहेगी।

مثنوی مولوی معنوی

همچو سبزه بارها روئیده‌ایم * هفت صد هفتاد قالب دیده‌ایم
آزمودم مرگ من در زندگی ست * چون رهم زین زندگی پایندگی ست
از جمادی مُردم و نامی شدم * از نما مردم به حیوان برشدم
مردم از حیوانی و آدم شدم * پس چه ترسم کی ز مردن کم شدم
حملهٔ دیگر بمیرم از بشر * پس برآرم از ملایک بال و پر
بار دیگر از ملک قربان شوم * آنچه اندر وهم ناید آن شوم

دیگر

من آن وقت بودم که آدم نه بود * چو آدم عدم بود و حوّا نه بود
من آن وقت کردم خدارا سجود * که ذات و صفات خدا هم نه بود

विकाशवाद

(विज्ञान, भाग ६, अङ्क १, पृष्ठ ३० से आगे)

[ले० प्रोफ़ेसर कर्म्मनारायण, एम. एस-सी.]

४ गर्भशास्त्र (embryology) की साक्षी।

पिछले सौ सालमें इस विद्याने बहुत उन्नति की है और आजकल प्राणिशास्त्रका अध्ययन गर्भशास्त्रके अध्ययनके बिना सर्वथा असम्पूर्ण रहता है। गर्भशास्त्रने विकाशवादकेलिए बहुतसी साक्षी इकट्ठी कर ली है और कुछ मुख्य नियम स्थापित कर दिये हैं जो कि विकाशवादके समझनेके लिए बहुत आवश्यक हैं। सबको विदित है कि दूध पिलानेवाले जन्तुओंमें माताएँ अण्डे नहीं देती, वरन् छोटासा बच्चा जनती है, जिसकी बनावट और आकार माता पिताके सदृश होते हैं। परन्तु बाकी सब जन्तु, जैसे पक्षी, उरग, स्थल-जलचर, मछलियां, इत्यादि, बहुधा अण्डे देते हैं और इन अण्डोंमेंसे कुछ दिनोंके पीछे बच्चे निकलते हैं। पक्षियों और रेंगनेवाले जन्तुओंमें यह बच्चे

Evolution विकाशवाद]

मातापिताके समान होते हैं; परन्तु मेंडक जैसे जन्तुओंमें अण्डोंसे मेंडक नहीं निकलते, परन्तु मछलीकी तरहके छोटे जीव निकलते हैं जो कुछ समयमें मेंडक बन जाते हैं।

अतएव हम रीढ़वाले जन्तुओंको तीन कोटियोंमें विभक्त कर सकते हैं—(१) स्तनपायी-जो बच्चे देतेहैं और बच्चोंको दूध पिलाते हैं।

(२) पक्षी, उरग, मछली आदि—जो प्रायः अण्डे देते हैं, जिनमेंसे माता पिता जैसे बच्चे निकलते हैं।

(३) मेडकादि—जो अण्डे तो देते हैं, परन्तु अंडोंमेंसे मछली जैसे लारवा (larva) निकलते हैं।

मेड़की जब पानीमें अण्डे देने लगती है तो मेड़क इनपर वीर्य डालने लगता है। अण्डों और वीर्याणुओंके संयोग होने पर, अण्डे २, ४, ६ इत्यादि कोषोंमे विभक्त होने लगते हैं और इस भांति सैकड़ों सैल बन जाते हैं।

मेंडककी सारी जीवनकथा (life-history) नीचेके चित्रसे स्पष्ट हो जायगा।
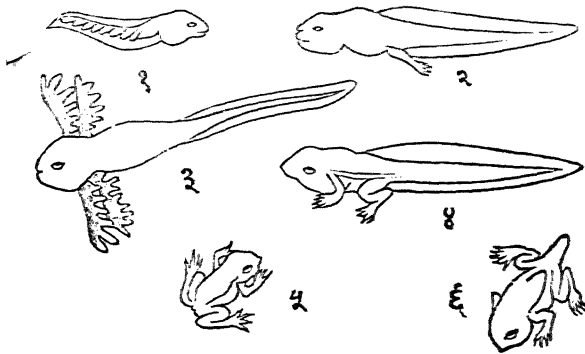
मेड़कका वृद्धि प्रदर्शक चित्र, ३ में गलफड़े बहुत बड़े हुए हैं।

चित्र ४

अण्डोंमेंसे पहले पहल पूंछवाले जीव निकलते हैं जो या तो पानीमें तैरते रहते हैं या और कहीं, जैसे पौदोंके साथ, चिमटे रहते हैं। न तो इनकी आंखें होती हैं और न मुंह बना हुआ होता है। गलफड़ों (gills) के दो जोड़े, जो पहलेसे ही विद्यमान होते हैं, अब बहुत बढ़ जाते हैं, और इन्हींके द्वारा यह श्वास लेते हैं। मुंह और आंखें भी जल्दी ही बन जाती हैं। गलफड़ोंका एक और जोड़ा उत्पन्न हो जाता है, परन्तु थोड़े समयमें तीनोंके तीनों जोड़े ही घटने लगते हैं और अंतमें बिलकुल लुप्त हो जाते हैं और इनके स्थानमें गलेके अन्दरके गलफड़े उत्पन्न हो जाते हैं जैसे साधारण मछलियोंमें पाये जाते हैं। परिमाणमें भी यह लारवा (tadpole larva) बढ़ जाते हैं और सर्वथा मछली केसे जन्तु हो जाते हैं। मेंडकका यह मत्स्यपद (fish-stage) थोड़े ही समयतक रहता है। दोनों बाहु और दोनों टांगें जल्दी ही निकल आती हैं। पूंछका घटते घटते लोप हो जाता है। गलफड़ोंके स्थानमें फेंफड़े (lungs) उत्पन्न हो जाते हैं और शिशु मेंडक सांस लेने और जलसे निकलकर स्थलपर भी चलने फिरने लग जाता है। मेंडककी इस जीवनकथामें विशेष बात यह है कि अण्डेसे लेकर मेंडक बनने तक बहुत सा समय ऐसा होता है जिसमें यह जीव सर्वथा मछली ही होते हैं। इस मत्स्यपदके अर्थपर बहुत ज़ोर दिया गया है और विकाशवादी कहते हैं कि इस पदका अर्थ यही है कि मेंडक मछलियों जैसे पूर्वजोंकी सन्तान है और अब भी प्रत्येक मेंडक अपने प्रचय individual development) में अपनी जातिकी वंशावलीको दुहराता है।

भूस्तरशास्त्रकी साक्षीका वर्णन करते हुए हम लिख आये हैं कि पक्षियोंके पूर्वज रेंगनेवाले जन्तु थे और आर्कैऔप्ट्रिक्स (Archæopteryx) जैसे फ़ौसिल हमारे इस कथनका मण्डन करते हैं। अब हम इस कथनके मण्डनमें गर्भशास्त्रकी साक्षी भी देते हैं। उरग (Reptiles) तथा पक्षी दोनों अण्डे देते हैं और इनके अण्डोंकी बनावटमें

बहुत समानता होती है। अण्डोंकी परिवृद्धि (development) भी दोनों समुदायोंमें सर्वथा एकसी होती है, यहां तक कि विद्यार्थियोंको गर्भशास्त्रमें केवल पक्षियोंके अण्डेकी परिवृद्धि ही पढ़ायी जाती है और कह दिया जाता है कि उरगों-के अण्डोंकी परिवृद्धि सर्वथा पक्षियोंके समान होती है और इसलिए उसके पृथक् वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु हम जानते हैं कि युवकावस्थामें पक्षियों और उरगोंमें बहुत भेद होता है। इसलिए हमें यह भी जानना चाहिए कि दो सर्वथा भिन्न प्रकारके जन्तुओं (उरगों और पक्षियों) की गर्भावस्था (परिवृद्धिकी पहली अवस्था) में समानता होनेका क्या कारण है। समानताका कारण हम इसी कल्पनापर बतला सकते हैं कि उरग तथा पक्षी एक ही पूर्वजोंकी सन्तान हैं और इनकी साझी वंशावलीके प्रमाण अबतक प्रत्येक उरग और पक्षीके परिवृद्धिपदों (developmental stages) में पाये जाते हैं।

कुछ जानवरोंके भ्रूण

चित्र ४—इनमें आंखसे बायीं तरफ हटकर गलफड़ छिद्रोंके चिन्ह हैं।

इसी प्रकार हर एक उरग (reptile) पक्षी और दूधपिलानेवाले जन्तुओंकी परिवृद्धिमें गल-फड़छिद्रों (gill-clefts) के निशान विद्यमान होते हैं जैसे निचले चित्रसे विदित है। यह गल-फड़छिद्र मछलियोंमें सारी आयुपर्य्यन्त रहते हैं और उनके शरीरके आवश्यक अवयव हैं। पाठक-गण जानते होंगे कि मछलियां पानी द्वारा श्वास लेती हैं और श्वासकेलिए पानी मुंहके रास्ते गलेमें जाता है और गलफड़ोंपरसे होता हुआ और उनको घुली हुई वायु देता हुआ गलफड़छिद्रों द्वारा बाहर निकल आता है। यह गलफड़छिद्र इसलिए मछलियों जैसे जलजन्तुओंमें बहुत लाभदायक होते हैं और इनके विशेष अवयवोंमेंसे हैं; परन्तु उच्च जन्तुओंके गर्भमें भी गल-फड़छिद्रोंका होना सर्वथा विधिविरुद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि उच्च-जन्तु कभी पानी द्वारा श्वास नहीं लेते और इस-लिए इनमें गलफड़छिद्रोंका होना सर्वथा निष्फल है। प्रश्न अब यह है कि यदि यह निष्फल और विधिविरुद्ध हैं तो इनके अस्तित्वका क्या कारण है और क्या अर्थ है? इनका अर्थ और कारण हम एक तरह ही समझ सकते हैं और वह यह है कि यह सारे उच्च-जन्तु यथा उरग, पक्षी और दूधपिलानेवाले जन्तु मछलियों जैसे

जन्तुओंकी सन्तान हैं और यह गलफड़छिद्र पुराने जलचर पूर्वजोंके (मछलियों) श्वासयन्त्रकी याद-गार हैं।

पाठकोंको यह बतलाना रुचिकर होगा कि मनुष्यके दो या तीन मासके बच्चेमें गलफड़-छिद्रोंके निशान पाये जाते हैं। [देखो चित्र ६] अन्य स्तनपायी जीवोंकी भांति मनुष्यमें भी यह छिद्र थोड़े दिनोंके बाद बन्द हो जाते हैं। आरम्भिक अवस्थामें गर्भमें इन अवयवोंका पाया जाना सिद्ध करता है कि मनुष्य जाति भी मछलियोंसे ही उत्पन्न हुई है। हिन्दू शास्त्रोंमें भी मत्स्य भगवानको पहला अवतार मानते हैं। उनके बाद ही मनुष्यकी उत्पत्ति होना माना जाता है।

५—जीवोंका भौगोलिक विभाग
(geographical distribution)

पृथ्वीपर जीवोंके निवास-स्थानके ज्ञानसे पता लगता है कि निकट सम्बन्धी जीव प्रायः निकट प्रान्तोंमें ही पाये जाते हैं और दूर दूर प्रान्तोंके जीव एक दूसरेसे भिन्न भिन्न होते हैं। यदि हम किसी समुद्र अथवा ऊंचे पहाड़ जैसी रोकके (barrier) पार जांय तो हम देखेंगे कि उस ओर नयी तरहकी वनस्पतियां और जन्तु मिलते हैं, अर्थात् रोकके दोनों ओरके जीवोंमें बहुत भेद होता है। उदाहरणके तौरपर हम आस्ट्रेलियाके (Australia) टापूके जन्तुओंका वर्णन करते हैं। किसी नकशेपर यदि दृष्टि डालें तो हम देखते हैं कि एशियाके (Asia) महाद्वीप और आस्ट्रेलियाके बीचमें एक महासागर है और यह महासागर जन्तुओंकेलिए बड़ी भारी रोक है। इसलिए जब हम एशिया और आस्ट्रेलियाके जन्तुओंकी तुलना करते हैं तो उन दोनोंमें बड़ा भारी भेद हमें विदित होता है। एशियाके महाद्वीपमें घोड़ा, गाय, हाथी, कुत्ता, बिल्ली, भेड़िया, शशक, छछूंदर, चमगादड़, बन्दर इत्यादि प्रायः सब प्रकारके दूधपिलानेवाले जन्तु पाये जाते हैं

चित्र ६—मनुष्यका भ्रूण। इसमें भी, जब यह छोटा होता है, गलफड़-छिद्रोंके चिन्ह पाये जाते हैं।

परन्तु आस्ट्रेलियामें एशियाके जन्तुओंमेंसे एक भी नहीं मिलता। यहांके दूधपिलानेवाले जन्तु बहुत थोड़े हैं और सर्वथा निराले हैं। वह थैलीदार जन्तु (marsupials) कहलाते हैं। इनमें (kangaroo), वौम्बैट (wombat) फलैञ्जर (phalanger) इत्यादि शामिल हैं। इन जन्तुओंकी विशेष बात यह है कि इनमें माता बहुत नन्हे नन्हे बच्चे देती है जिनके बहुतसे अवयव अभी अधूरे ही होते हैं। बच्चे उत्पन्न होते ही माता इनको एक थैलीमें डाल

लेती है। इस थैलीके भीतर ही स्तन होते हैं और बच्चा वहां ही दूध पीता रहता और रहता है।

दूधपिलानेवाले जन्तुओंके समुदायमें इन थैलीदार जन्तुओंका दरजा प्रायः सबसे नीचा है क्योंकि इनके पिञ्जर, मस्तिष्क (brain) तथा जननेन्द्रियकी बनावट अधम दरजेकी है। अब प्रश्न यह है कि क्या कारण है कि एशियाके बड़े बड़े दूधपिलानेवाले जन्तु आस्ट्रेलियामें नहीं मिलते और केवल अधम दरजेके थैलीदार जन्तु ही पाये जाते हैं, जिनका एशियामें नामोनिशान भी नहीं है? एशिया और आस्ट्रेलियाके दूधपिलानेवाले जन्तुओंमें बड़ा भेद है, परन्तु उसका कारण क्या है? विकाशवादी कहते हैं कि पृथ्वीकी आयुके तृतीय युगामें पहले आस्ट्रेलियाका टापू एशियाद्वीपके साथ ही मिला हुआ था और भूस्तर शास्त्रकी साक्षीके अनुसार उस समय पृथ्वीपर सबसे उच्च जन्तु थैलीदार जन्तु ही थे। बड़े बड़े चौपायोंकी उत्पत्ति तबतक हुई ही नहीं थी। तृतीय युगके आरम्भमें ही आस्ट्रेलियाका टापू एशियासे अलग हो गया और तबसे लेकर आज तक सर्वथा अलग है और बीचमें एक हज़ार फ़ैदमसे (एक फ़ैदम = ६ फुट) भी अधिक गहरा समुद्र एक बड़ी भारी रोक है जिसको चौपाये पार नहीं करसकते थे। अलग होते समय दोनों प्रदेशोंमें थैलीदार जन्तु बाहुल्यतासे विद्यमान थे। पीछे एशियामें उरगोंसे भिन्न भिन्न प्रकारके चौपायोंका विकाश होता गया। चूंकि एशियाका महाद्वीप बहुत बड़ा है, इसलिए जन्तुओंकी संख्या भी यहां बहुत अधिक थी। संख्याकी बहुतायतके कारण इन जन्तुओंमें जीवनसंग्राम बहुत तीव्र होता गया। ज्यों ज्यों थैलीदार जन्तुओंसे अधिक बलवान और अधिक चतुर जन्तु उत्पन्न होते गये, त्यों त्यों थैलीदार जन्तु बलमें तथा बुद्धिमें न्यून होनेके कारण नये चौपायोंका मुकाबला न कर सके और घटते गए। घटते घटते अब इस समय एशिया महाद्वीपसे सर्वथा लुप्त हो गये हैं।

प्रत्युत् आस्ट्रेलियाका टापू एशियाकी अपेक्षा बहुत छोटा है और इसलिए यहां जन्तुओंका संख्या भी थोड़ी ही होगी, और उच्च जन्तुओंके अभावके कारण थैलीदार जन्तुओंको अपने बचावके लिए कोई विशेष संग्राम न करना पड़ा होगा; दूसरे इस परिमित देशकी विशेष दशाओंके अनुसार इन्होंने भी विशेष उन्नति की है और इसलिए आज हमें कूदनेवाला कङ्गारू, बिल खोदनेवाला वौम्बैट, उड़नेवाला फलैञ्जर, कृमिभक्षी बैंडीकूट (Bandicoot), मांसाहारी डेज़ीयूरस (Dasyurus) तथा अन्य भांतिके जन्तु इस टापूमें मिलते हैं। आकार तथा स्वभावमें यह एक दूसरेसे उतने ही भिन्न हैं जितने भेड़, शशक गिलहरी और कुत्ते हैं; परन्तु सबकी बनावट थैलीदार जन्तुओंके विशेष नमूनेपर एकसी ही है और इसीलिए आकार और स्वभावमें इतना भेद होनेपर भी इन सबको थैलीदार जन्तुओंके समुदायमें ही शामिल किया जाता है।

इसी प्रकार अन्य रोकोंके दोनों ओरके जीवोंका हाल और स्थितिका कारण यही है कि निकटसम्बन्धी जातियां जिन देशोंमें अब रहती हैं वहां ही विकाश विधिसे उत्पन्न हुई हैं और रोकके दोनों ओरके जीवोंमें मेल जोल न होनेके कारण दो ओरके जीवोंमें बहुत भेद होता है। यदि हम विशेषोत्पत्तिके नियमोंको मानें, अर्थात् यह कहें कि हर एक जाति उसी स्थानमें ही उत्पन्न की गयी थी जो इसके लिए सबसे अधिक उपयोगी था, तो हमें कई सचाइयोंके विरुद्ध जाना पड़ता है।

लघुरिक्थ

[ले० प्रोफ़ेसर ब्रजराज, बी. एस-सी., एल-एल. बी.]

सुधाकर द्विवेदी अब हमारे बीचमें नहीं हैं, पर उनकी लिखी पुस्तकें विद्यमान हैं। हिन्दी प्रेमियोंके सामने सुधाकरके गुणगान करनेकी इतनी आवश्यकता नहीं, क्योंकि उन्होंने हिन्दी भाषाकी जो सेवाकी है उससे अनभिज्ञ बहुत कम व्यक्ति मिलेंगे। सुधाकरने सम्वत् १९४२ में चलन कलन Differential Calculus नामक एक सुन्दर सर्वाङ्ग पूर्ण पुस्तक लिखी थी। तबके लोग हिन्दीके प्रेमी नहीं थे और आजकल एक तो यह पुस्तक अलभ्य है दूसरे विज्ञान और गणितका प्रचार नहीं, इन कारणोंसे सुधाकरकी जो प्रशंसा होनी चाहिये थी कभी न हुई और हिन्दी-भाषा द्वारा विज्ञान और गणित शास्त्रका प्रचार भी न हुआ। सुधाकरने अपनी दूसरी पुस्तक चलराशिकलन सं० १९५१ में लिख डाली। न जाने किसीने इस पुस्तकसे कुछ लाभ उठाया अथवा यह भी अजायबघरके जन्तुओंकी तरह पुस्तकालयोंमें रक्खी रही और दो चार दस साल बाद दीमक महाशयके मस्तिष्कको पोढ़ा करनेके काम आयी। जो कुछ हो, अब गणितके आचार्य्योंको चाहिये कि सुधाकरकी इन पुस्तकोंको पढ़ें और इनका प्रचार करें।

चलनकलन नामक पुस्तकमें सुधाकरने तत्कालिकी सम्बन्ध differential co-efficient निकालनेकी अनेक विधियां देते हुए लघुरिक्थकी सहायतासे तत्कालिकीसम्बन्ध निकालनेका विधान किया है। जिस समय सुधाकरने यह पुस्तक लिखी बीजगणितकी कोई ऐसी पुस्तक विद्यमान न थी जिसमें लघुरिक्थका वर्णन हो, इसीलिए सुधाकरको लघुरिक्थकी परिभाषा देना भी आवश्यक हुआ। हमारे दुर्भाग्यसे अबतक (सं० १९७४) इस ओर कुछ भी उन्नति नहीं हुई है। सुधाकरने अपनी पुस्तककी आवश्यकतानुसार परिभाषा मात्र अपनी पुस्तकमें दी है इसलिए इस लेखमें लघुरिक्थके गुण दर्शावेंगे।

Mathematics गणित शास्त्र]

परिभाषा

अ, क और न तीन राशियां हैं जिनमें आपसमें ऐसा सम्बन्ध है कि $\text{अ}^{\text{क}} = \text{न}$, तो क को अ के आधारमें न का लघुरिक्थ कहते हैं और इस प्रकार लिखते हैं - $\text{क} = \text{ल}_{\text{अ}}\,\text{न}$। जहां कहीं आधार दिया हुआ न हो वहां समझना चाहिये कि आधार १० है। जैसे ल २ का अर्थ है $\text{ल}_{१०}\,२$। १० के आधारमें लघुरिक्थको साधारण लघुरिक्थ कहते हैं। यह भी कह सकते हैं कि यदि कोई राशिघात (number raised to a power) किसी दूसरी राशिके बराबर हो तो घातकी संख्या पहली राशिके आधारमें दूसरी राशिका लघुरिक्थ होती है।

उदाहरणः—

$$\because १०^{३} = १००० \qquad \therefore ३ = \text{ल}_{१०}\,१०००$$

$$\text{यदि} \quad \text{इ}^{\text{च}} = \text{म} \qquad \text{तो} \quad \text{च} = \text{ल}_{\text{इ}}\,\text{म}$$

$$\because ६^{३} = २१६ \qquad \therefore ३ = \text{ल}_{६}\,२१६$$

ध्यान रखना चाहिये कि $\because \text{अ}^{०} = १$ इसलिए $\text{ल}_{\text{अ}}\,१ = ०$। यहां अ कोई भी अव्यक्त राशि है इसलिए प्रत्येक आधारमें १ का लघुरिक्थ शून्य ही होता है।

नियम

अ, म और न तीन सम्भाव्य राशि मानकर बीजगणितमें प्रमाणित है कि—

$$१.\ \text{अ}^{\text{म}} \times \text{अ}^{\text{न}} = \text{अ}^{\text{म}+\text{न}}$$

$$२.\ \text{अ}^{\text{म}} \div \text{अ}^{\text{न}} = \text{अ}^{\text{म} \ \ \text{न}}$$

$$३.\ (\text{अ}^{\text{म}})^{\text{न}} = \text{अ}^{\text{मन}}$$

बीजगणितमें गुणा और भागके नियम इनपर ही अवलम्बित हैं। इनको घातोंके (indices)

नियम कहते हैं। इनपर ध्यान रखते हुए इनके ही समतुल्य लघुरिक्थ सम्बन्धी तीन नियम यहांपर प्रमाणित किये जायंगे।

१. $ल_{अ}(मन) = ल_{अ} म \times ल_{अ} न$। साधारण भाषामें यों कहना चाहिये कि किसी आधारमें राशियोंके गुणनफलका लघुरिक्थ उसी आधारमें उन राशियोंके लघुरिक्थोंके जोड़के बराबर होता है।

मान लो $च = ल_{अ} म$ इसलिए $अ^{च} = म$

$त्र = ल_{अ} न$ इसलिए $अ^{त्र} = न$

तो $म \times न = अ^{च} \times अ^{त्र} = अ^{च + त्र}$

$\therefore\ ल_{अ}(म \times न) = च + त्र$ [परिभाषानुसार]

$= ल_{अ} म + ल_{अ} न$

२. $ल_{अ}\left[\frac{म}{न}\right] = ल_{अ} म - ल_{अ} न$। साधारण भाषामें यों कहना चाहिए कि किसी आधारमें राशियोंके भजनफलका लघुरिक्थ उसी आधारमें उन राशियोंके लघुरिक्थोंके अन्तरके बराबर होता है।

मान लो $च = ल_{अ} म$ इसलिए $अ^{च} = म$

$त्र = ल_{अ} न$ इसलिए $अ^{त्र} = न$

तो $\frac{म}{न} = अ^{च} \div अ^{त्र} = अ^{च - त्र}$

$\therefore\ ल_{अ}\left(\frac{म}{न}\right) = च - त्र$

$= ल_{अ} म - ल_{अ} न$

३. $ल_{अ}(म^{न}) = न . ल_{अ} म$। साधारण भाषामें यों कहना चाहिये कि किसी आधारमें एक राशिघातका लघुरिक्थ उसी आधारमें उस राशिके लघुरिक्थ और घातकी संख्याके गुणनफलके बराबर होता है।

मान लो $च = ल_{अ} म$ इसलिए $अ^{च} = म$

तो $म^{न} = (अ^{च})^{न} = अ^{नच}$

$\therefore\ ल_{अ}\left[म^{न}\right] = नच$

$= न ल_{अ} म$

उदाहरण :—

१. सरल करो, $ल \frac{१६ \times ४\sqrt{२१६} \times \sqrt{१९२}}{३\sqrt{१६} \div ४९ \div ४\sqrt{३६}}$

$= ल\,(१६ \times ४\sqrt{२१६} \times \sqrt{१९२}) -$
$ल\,(३\sqrt{१६} \div ४९ \div ४\sqrt{३६})$

$= ल\,४^{२} + ल\,(२१६)^{\frac{१}{४}} + ल\,(१९२)^{\frac{१}{२}}$

$-[ल\,(१६)^{\frac{१}{३}} - ल\,४९ - ल\,(३६)^{\frac{१}{४}}]$

$= २\ ल\,२^{२} + \frac{१}{४} ल\,(३ \times २)^{३} + \frac{१}{२} ल\,(२^{६} \times ३)$

$- \frac{१}{३} ल\,२^{४} + ल\,७^{२} + \frac{१}{४} ल\,(३ \times २)^{२}$

$= ४ ल\,२ + \frac{३}{४} ल\,३ + \frac{३}{४} ल\,२ + \frac{६}{२} ल\,२ + \frac{१}{२} ल\,३$

$- \frac{४}{३} ल\,२ + २\,ल\,७ + \frac{२}{४} ल\,३ + \frac{२}{४} ल\,२$

$= ६\frac{११}{१२} ल\,२ + १\frac{३}{४} ल\,३ + २\,ल\,७$

२. सरल करो, $ल_{अ}\,(च\sqrt{प} \div ज\sqrt{न^{फ}})$

$= ल_{अ}[म^{प}]^{\frac{१}{च}} - ल_{अ}[न^{फ}]^{\frac{१}{ज}}$

$= \frac{प}{च} ल_{अ} म - \frac{फ}{ज} ल_{अ} न$

३. सरल करो, $ल_{इ} \frac{क^{प} \times ग^{फ}}{\sqrt[च]{क^{द} \div ग^{ध}}}$

$= ल_{इ} क^{प} + ल_{इ} ग^{फ} - ल_{इ}(क^{द} \div ग^{ध})^{\frac{१}{च}}$

$= प\,ल_{इ} क + फ\,ल_{इ} ग - \frac{१}{च}(ल_{इ} क^{द} - ल_{इ} ग^{ध})$

$= प\,ल_{इ} क + फ\,ल_{इ} ग - \frac{द}{च} ल_{इ} क + \frac{ध}{च} ल_{इ} ग$

$= \left(प - \frac{द}{च}\right) ल_{इ} क + \left(फ + \frac{ध}{च}\right) ल_{इ} ग$

आधार परिवर्तन

सिद्ध करना है कि:—$ल_{अ} म = ल_{इ} म \times ल_{अ} इ$

मान लो $ल_{अ} म = च$ तो $अ^{च} = म$

और $ल_{इ} म = त्र$ तो $इ^{त्र} = म$

$$\therefore \quad अ^{च} = इ^{त्र}$$

इसलिए $ल_{अ} (अ^{च}) = ल_{अ} (इ^{त्र})$

$$\therefore \quad च = त्र \, ल_{अ} इ$$

इसलिए $ल_{अ} म = ल_{इ} म \times ल_{अ} इ$

इस प्रक्रम (article) में प्रमाणित सिद्धान्तकी सहायतासे यदि अ आधारमें किसी राशिका लघुरिक्थ ज्ञात हो तो अन्य आधारमें उस राशिका लघुरिक्थ जाना जा सकता है।

इस लेखमें दिये हुए नियमोंकी सहायतासे लघुरिक्थ सम्बन्धी सब काम हो सकते हैं।

सर आइज़क न्यूटन

[ले० श्रीयुत लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव,]

लीलामयकी लीला अपरम्पार है। न जाने इस संसाररूपी लीला-भवनमें वह कितने लीलापूर्ण अभिनय नित्यप्रति किया करते हैं, कुछ ठिकाना नहीं। सच तो यह है कि इस नाट्यशालाके गुप्त रहस्योंका पता लगाना तो दूर, इसकी फ़र्श, छत और परदों इत्यादिकी बनावट-का भी भेद जानना मनुष्यके लिए सर्वथा असम्भव है। जिन कुशाग्रबुद्धि पण्डितोंके ध्यानको इस शालाने आकर्षित किया है, जिन्होंने इसकी जांच पड़ताल करनेका साहस किया है, अपने जीवन-का अमूल्य समय इसके गूढ़ रहस्योंके जाननेके प्रयत्नमें लगाया है, वे प्रातःस्मरणीय महानुभाव धन्य हैं। उनका नाम अन्तिम दिवसतक स्वर्णा-क्षरोंमें लिखा रहेगा। आज हम विज्ञानके पाठकों-को एक ऐसे ही पाश्चात्य विद्वानकी जीवन-कथा सुनाना चाहते हैं जिसने पाश्चात्य संसारमें सबसे पहले उपर्युक्त विषयका किञ्चिन्मात्र जाननेका सौभाग्य प्राप्त किया है। इन महानुभाव-का नाम सर आइज़क न्यूटन है। इनका जन्म सन् १६४२ ई० के दिसम्बर मासके पवित्र ख्रीष्टीय दिवसको ग्रन्थमसे छः मीलके अन्तरपर ऊल्सथराप नामक ग्राममें हुआ था। बाल्यावस्थामें यह बहुत ही दुर्बल और रोगी थे। परन्तु इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। कहते हैं कि कितने ही लोग इनके शरीर-के खण्ड खण्ड हो जानेके भयसे इनको गोद-में भी नहीं उठाते थे। इनकी दुर्बलता और शरीर-की बनावटके देखनेसे इनके जीवनकी आशा करना बहुत ही कठिन था। परन्तु भगवानकी महिमाके आगे मनुष्यकी आशा और निराशा क्या वस्तु है? इसी दुर्बल बालकने, जो केवल अस्थि और चर्मका एक छोटा सा पुतला जान पड़ता था, जिसके जीवनकी आशा कदापि नहीं की जा सकती थी, इस नश्वर जगतमें पचासी वर्षके विस्तीर्ण समयतक रहकर अपनी मानवलीला समाप्त की।

इनके पिताको ऐसे होनहार पुत्रका मुख देखनेका सौभाग्य प्राप्त न हुआ। सर आइज़कके जन्मसे कुछ सप्ताह पूर्व ही उनका परलोकवास हो गया। हा! पितृहीन पुत्रको संसारमें जो जो यातनाएं और कठिनाइयां भोगनी पड़ती हैं उनकी गणना कौन कर सकता है? इनका पितृधन बहुत थोड़ा था। ऊल्सथरापके छोटेसे खेतकी वार्षिक आय केवल तीस पौंड थी। इससे कुछ ही मीलके अन्तरपर एक दूसरा खेत था, जिसकी वार्षिक आय पचास पौंडके लगभग थी। दोनों स्थानोंकी आय मिलाकर पड़ता लगानेपर कोई १०० रुपया महीना होता है। इसीसे इनका और इनकी माताका गुज़ारा होता था। इनकी माताने भी तीन वर्षतक लालन पालन कर इन्हें इनकी

Biography जीवनी]

दादीकी गोदमें रख पासके गिरजेके पादरीसे अपना विवाह कर लिया। बारह वर्षकी अवस्था-तक अपने ग्रामके पासवाली पाठशालामें पढ़ते रहे। फिर ग्रन्थमकी पाठशालामें भरती हुए और एक रासायनिकके साथ रहने लगे। यहां इनका प्रेम एक छोटी सी बालिकासे हो गया। इनके जीवनके विस्तीर्ण समयमें यही एक प्रेम-सम्बन्धी नाटकका खेल हुआ है। इस अभिनयकी नायिका यही स्टोरे नामकी वालिका थी। इसकी अवस्था इनसे कुछ हो कम थी। धीरे धीरे इन दोनोंका प्रेम प्रगाढ़ हो गया, यहां तक कि इनके नेत्रोंमें संसारके एक अणुमात्रकी छाया पड़नेका भी स्थान शेष न रह गया। मेरी प्रेयसी-की गुड़ियोंकेलिए एक सुन्दर भवन होना चाहिए, कुर्सी और मेज़की आवश्यकता है, सुन्दर सुन्दर दिव्य कपड़े तथा अन्यान्य वस्त्राभूषणोंका होना भी ज़रूरी है, इत्यादि प्रबन्धोंमें ही इनका समय व्यतीत होने लगा। अपनी हृदयेश्वरीको किस प्रकार प्रसन्न रखें, बस इसी धुनमें दिनरात पड़े रहते। परन्तु इस प्रकारके प्रेममें धनकी बड़ी आवश्यकता होती है। धन आवे कहांसे, यह तो थे दरिद्र। निदान स्टोरेने इनकी निर्धनताके कारण दूसरे-से विवाह कर ही लिया और सर आइज़क-को जन्मभर अपनी मित्रताके सूत्रमें बंधे रहनेका वचन दे सन्तुष्ट कर दिया। धन्य हो माता लक्ष्मी! धन्य हो!! कैसा ही रूपशीलनिधान और गुणवान मनुष्य क्यों न हो; आपके विमुख रहनेसे वह सांसारिक सुख नहीं भोग सकता है। कहा जाता है कि स्टोरेकी इस निर्दयतापर भी अन्त-में उसके विपद्ग्रस्त होनेपर इन्होंने बड़ी सहा-यता की थी।

उपर्युक्त वर्णनसे आप यह न समझ लें कि सर आइज़कने अपना अमूल्य समय केवल गुड़ियोंके घर इत्यादिके ही बनानेमें व्यतीत कर दिया। इन कामोंकेलिए इन्हें हथौड़े और बसूले इत्यादि हथियार भी स्वयं ही बनाने पड़े थे। इन्हीं हथियारोंसे इन्होंने एक ऐसी गाड़ी तैयार की जिसे उसका आरोही स्वयं चला सकता था। अपने ढंगकी यह गाड़ी सबसे पहले तैयार हुई। इन्हीं दिनोंमें ग्रन्थम और गनखीके बीचकी सड़क-पर एक पवनचक्की भी बन रही थी। सर आइ-ज़क भी अपने घरकी छतपर बैठकर उसी प्रकार-की एक दूसरी पवनचक्कीका निर्माण कर रहे थे। इसमें विशेषता यह थी कि उक्त पवनचक्की तथा उस समयकी अन्यान्य पवनचक्कियोंका चलना तो वायु-की कृपापर निर्भर था, किन्तु सर आइज़ककी चक्की स्वतंत्र थी। उसे पवनकी दयालुता और निर्दयतासे कोई सम्बन्ध ही नहीं था। चाहे हवा चले चाहे न चले, उसकी चालमें कभी न्यूनता नहीं आती थी। बात यह थी कि सर आइज़कने किसी धातुका एक चूहा बना रखा था। जब वायुका वेग कम हो जाता तो उसी चूहेको चक्कीके भीतर एक पहियेपर लगा देते थे। चूहा पहियेको हिलाता था और उसके वेगसे ऊपरका परदा हिलता था; परदेके हिलनेसे वायु सञ्चालित होती थी और इससे चक्कीकी चाल सदा एक सी रहती थी।

सर आइज़कके हृदयमें नये नये आविष्कार-की इच्छा बढ़ती ही गयी। एक बार इन्होंने जलकी सहायतासे समय जाननेका उद्योग किया था। वह अपने गांवके ज़मीन्दारके घरसे एक सन्दूक मांग लाये और उसीकी जलघड़ी बनायी। पहले इस बकसके टूटे फूटे स्थानोंकी भली भांति मरम्मत की, इसके उपरान्त इसमें जल भरकर एक काठके टुकड़े द्वारा घड़ीकी दो सूइयां लटका दीं। यह टुकड़ा जलकी गति-विधिके अनुसार नीचे ऊपर हुआ करता था और इस प्रकार जलपर पड़ती हुई परछाईंको देखनेसे समयका ज्ञान हो जाता था। यद्यपि इस घड़ीद्वारा लोगोंको समयका ज्ञान हो जाता था, और वह इस नवीन आविष्कारपर बड़े चकित हो रहे थे, तथापि सर आइज़क इससे सन्तुष्ट न थे। कारण, काठके टुकड़ेके जिस छिद्रद्वारा जलकी गति-विधिका ज्ञान होता

था वह बहुधा भर जाया करता था, इसलिए समयका जानना असम्भव हो जाता था।

सर आइज़कका मस्तिष्क आकाश और नक्षत्रोंका भेद जाननेकी ओर अधिक आकृष्ट रहता था। वह सदा उनकी गति-विधिका निरीक्षण किया करते थे। सूर्य्यकी गतिमें किसी प्रकारका अन्तर न देख इन्होंने एक धूपघड़ी बनानेका विचार कर लिया और बिना किसीकी सहायताके इसे बना भी डाला। प्रतिदिन किसी निश्चित स्थानपर सूर्य्यकी किरणें ठीक पूर्ववत् ही पड़ते देख यह अनुमान कर लिया कि अमुक स्थानपर पड़नेपर बारह बजते हैं। इसी प्रकार अमुक स्थानपर पड़नेपर एक बजता है, इत्यादि। और इसी अनुमानपर एक धूपघड़ी बना ली। इस घड़ीके आविष्कारसे सर्वसाधारणमें इनकी और भी ख्याति हो गयी। इसका नाम लोगोंने आइज़ककी धूपघड़ी रखा और इसके द्वारा समयका ठीक ठीक ज्ञान लाभ कर सब बड़े आनन्दित होने लगे।

सर आइज़क इन सब बातोंमें तो बड़े प्रवीण थे, किन्तु पाठशालामें इनकी दशा बड़ी शोचनीय थी। पाठ्य पुस्तकोंका देखना भी इन्हें पसन्द न था। एक दिन इनके एक सहपाठीने, जिसका स्थान इनसे कुछ ऊंचा था, पाठ भली भांति याद न रहनेके कारण, इनके पेटमें एक लात मारी। सर आइज़कने उसी दिनसे बदला लेनेका दृढ़ निश्चय कर लिया और अन्तमें ले भी लिया। उन्होंने कठिन परिश्रमके फलसे अपनी कक्षाका सबसे ऊंचा स्थान प्राप्त कर लिया, किन्तु लातके बदलेमें लात इस बदलेको आजन्म न ले सके।

अभी सर आइज़कका उन्नतिपथ निर्विघ्न नहीं हुआ। उत्तरोत्तर इनकी विपत्तियां बढ़ती ही जाती थीं। इनके सौतेले बापकी मृत्यु हो गयी। माताको खेती बारीके कामोंमें सहायता करनेके लिए सर आइज़कको फिर वापस आना पड़ा। परन्तु खेती बारी और गाजर मूली बेचनेके काममें इनका मन तनिक भी न लगा।

बाज़ारके छक्के पंजे सिखानेकेलिए एक वृद्ध नौकर भी इनके साथ जाया करता था। इसी नौकरपर विक्रयका भार छोड़ आप वहांसे झट खसक देते थे और या तो कोई पुस्तक लेकर किसी झाड़ीकी आड़में छिप बैठते, या धीरे धीरे ग्रन्थमवाले उसी रसायनिक मित्रके घर पहुंच जाते थे। उनके पुराने राजा अलफ्रेडने तो विद्या-व्यसनमें किसानकी रोटी जला दी थी। सर आइज़कने यदि गाजर ही बेचनेसे जी चुराया तो क्या बड़ी बात थी?

सर आइज़क गांववालोंके बड़े प्रेमपात्र हो गये थे। खेलकूदमें तो इनका मन ही न लगता था, परन्तु ग्रामीण बालकोंकी सुन्दर सुन्दर गुड्डियां बनाना इन्हें बहुत भला मालूम होता था। इनकी बनायी हुई गुड्डियां बड़ी उड़ाकी और हलकी होती थीं। बात यह थी कि गुड्डियोंके आकार और बोझका ठीक हिसाब करके वह उनमें पंछल्ला बांधते थे। किस स्थानपर वह लगाना चाहिए, कितना लम्बा होना चाहिये, किस स्थानमें तागेका बांधना युक्तिसंगत होगा, इत्यादि बातोंका अत्यधिक ध्यान रखते थे। जिन दिनोंकी यह बात है उन दिनोंमें गैस लम्प और मोमबत्तियोंका जन्म भी नहीं हुआ था, बल्कि यह कहिये कि स्वप्नमें भी किसीने इनका दर्शन नहीं किया था। तेलके दीपकों और मशालोंसे ही सब काम लिया जाता था। सर आइज़कने कपड़ेकी बत्ती तथा मोमकी बत्तियोंको लालटेनोंमें लगाकर काम लेना प्रारम्भ किया। इतना ही नहीं, इसी प्रकारकी हल्की हल्की लालटेनोंको गुड्डियोंमें बांधकर आकाश-मण्डलमें उड़ाने लगे। ग्रामीण लोग अंधेरी रात्रिमें इन लालटेनोंको देखकर बड़े भयभीत हो जाते थे। उनका विचार था कि तारागण कोई ईश्वरीय आज्ञा लेकर हमें कुछ सूचित करने आ रहे हैं। लिङ्कनशायरके बेचारे देहाती बहुत दिनोंतक इन भ्रममूलक तारोंका असली भेद जान न सके।

सर आइज़ककी इस तीव्र बुद्धि और नये

नये आविष्कारोंका सर्वसाधारणपर बड़ा प्रभाव पड़ा! कितने ही लोगोंने गाजर मूलीके व्यवसाय-से छुड़ा इन्हें केम्ब्रिज भेजनेकी राय दी। यह हुआ भी। यह एक दरिद्र विद्यार्थीके रूपमें केम्ब्रिज पाठशालामें भरती हो गये। वहां इनकेलिए भोजन इत्यादिका भी प्रबन्ध हो गया और इनको कुछ छात्र-वृत्ति भी मिलने लगी। यहां इन्होंने गणित-विद्याका अध्ययन प्रारम्भ किया और थोड़े ही दिनोंमें वह इस विद्यामें निपुण हो गये।

सूर्यकी किरणें क्या चीज हैं? क्या इन्हींसे श्वेत-प्रकाशकी उत्पत्ति होती है? यदि इसीका नाम श्वेत-प्रकाश है, तो श्वेत-प्रकाश ही क्या चाज़ है? इसी प्रकारके कितने ही प्रश्न प्रतिक्षण इनके मनमें उठते और मिटते रहते थे। एक दिन इन्होंने यही प्रश्न अपने शिक्षकसे किया। परन्तु शिक्षक महाशयने कोई सन्तोषजनक उत्तर न दिया। एक दिन इसी प्रश्नके हल करनेकी इच्छासे वह एक तिपहल शीशेका टुकड़ा बाज़ारसे खरीद लाये। कमरेके दरवाज़ेकी झिलमिलीसे होकर आती हुई सूर्य्यकी किरणोंको उसी शीशेके टुकड़ेपर गिरने दिया। इस प्रकार शीशेकी दूसरी ओर इन किरणोंकी जो रोशनी छनकर आती थी, उसका प्रकाश कुछ धुंधला था। इस प्रयोगसे यह मालूम हो गया कि श्वेत-प्रकाश इन्द्रधनुषके प्रायः सभी रंग लाल, नारङ्गी, पीत, हरित इत्यादिके मिश्रण-से पैदा होता है। सूर्य्यकी किरणें आपसमें मिलकर श्वेत प्रकाश पैदा करती हैं। इन किरणोंमें छेदन शक्ति समान नहीं होती। इसीलिए जबतक झिल-मिलीके बाहर तथा उसमेंसे होकर सीधी कमरेमें पड़ती हैं तब तक इनका रङ्ग पूर्ववत् ही रहता है, परन्तु शीशेपर पड़नेपर उसके दूसरी ओर इनका रङ्ग बिलकुल बदल जाता है। इस तरह कई बार परीक्षा कर इन्होंने श्वेत प्रकाशकी असलियतका पता लगाया और यह भी साबित कर दिया कि इस तरकीबसे बने हुए दूरबीन सन्तोषजनक नहींहोते। सभ्य संसारमें सबसे पहले दूरबीनको सर आइज़कके ही हाथोंसे बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनका विश्वास शीशेपर न जमता था, इसीलिए अपनी दूरबीन चिकनी धातुकी बनायी थी।

सर आइज़क जब केम्ब्रिजकी पाठशालामें पढ़ते थे, तो चन्द्रमा, सूर्य्य और नक्षत्रोंको ठीक अ-पने अपने स्थानपर जमे हुए देख आश्चर्य्यसे चकित हो जाते थे। चन्द्रमा जो सर्वदा हमारे चारों ओर चक्कर लगाया करता है, पृथ्वीपर क्यों नहीं गिर पड़ता; किस बलपर सूर्य्य और तारागण आकाश-में टिके हुए हैं; इत्यादि प्रश्न इनके दिमाग़में चक्कर लगाया करते थे। जिन दिनोंकी यह बात है, उन दिनों भारतकीही तरह इङ्गलैंड भी प्लेगाक्रान्त हो रहा था। इसी कारण प्रायः सभी विद्यार्थी पाठशाला छोड़ भाग गये थे। आइज़क भी अपनी जन्मभूमि ऊल्सथरापमें पहुंच गये। एक दिन अपने बाग़में बैठे हुए थे, एक सेबका फल वृक्ष-से नीचे गिरा। इन्होंने उस फलको उठा लिया और उसके गिरनेका कारण सोचने लगे। सोचते सोचते यह मालूम हुआ कि पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य्य आदिमें एक प्रकारकी आकर्षण-शक्ति है और इसी शक्तिने इस फलको नीचे खींच लिया है। यदि वृक्ष करोड़ों मील ऊंचा होता सेब पृथ्वीपर न आता। जितना ही अधिक अन्तर होगा, आकर्षण-शक्ति भी उतनी ही कम होगी। परन्तु कितनी, यह जान न सके। यह बात कोई सात वर्षतक इनके मनमें खटकती रही। इसी बीचमें पिकार्ड नामक एक युवकने पृथ्वीकी लम्बाई चौड़ाई इत्यादिका ठीक ठीक पता लगा लिया। अब सर आइज़कका भी प्रश्न हल हो गया। सूर्य्य किस प्रकार अपनी आकर्षण-शक्तिसे पृथ्वीको एक नियमित रीतिसे घुमाता रहता है, तारे और सूर्य्य किस शक्तिद्वारा आकाशमण्डलमें टिके हुए हैं, इत्यादि विषयोंको इन्होंने भली भांति साबित कर दिया और इस विषयपर कितनी ही पुस्तकें लिख डालीं।

पुस्तकोंके छपानेके लिए धन तो इनके पास था ही नहीं, छपतीं तो कैसे छपतीं ? सर आइज़कके मनमें अब यह प्रश्न उठने लगा। परन्तु जिसकी सहायता परमात्मा करना चाहता है किसी न किसी प्रकार कर ही देता है। एडमंड हेले नामक एक सत्पुरुषने इनकी पुस्तकोंके छपानेका भार अपने ऊपर ले लिया। पुस्तकें छपने लगीं और संसार इस महापुरुषके विचारोंसे ज्ञान लाभ करने लगा।

जातिविभेदका झगड़ा आजका नहीं, बहुत पुराना है। भारतमें ही नहीं, संसारके भिन्न भिन्न देशों और आजकलकी सभ्यताकी चरम सीमाको प्राप्त हुए योरोप देशके अन्तर्गत भिन्न भिन्न राज्योंमें भी सनातनसे चला आता है, चलता है और चलेगा। सर आइज़कके समयमें भी यही झगड़ा उपस्थित हुआ था। उस समय इङ्गलैण्डकी गद्दीपर द्वितीय जेम्स विराजमान था। इसकी दृष्टि सदा प्रोटेस्टन्ट मतवालोंपर वक्र ही पड़ती थी। सर आइज़कको भी इस क्रूर राजाके क्रोधानलका सामना करना पड़ा था। परन्तु इससे इनका मन तनिक भी मलिन नहीं हुआ।

मेरी और विलियमके समयमें जब इङ्गलैण्ड और योरोप महाद्वीपके देशोंमें घोर युद्ध हो रहा था, इङ्गलैण्डकी आर्थिक दशा बड़ी शोचनीय हो गयी थी। कारण यह था कि टकसालके जितने उच्च कर्म्मचारी थे, सब बेईमान और सुस्त थे। सर आइज़क टकसालोंके सर्वाधिकारी बनाये गये। इन्होंने इस योग्यतासे प्रबन्ध किया कि कुछ ही समयमें टकसालोंकी आमदनी दूनी हो गयी। ब्रिस्टल, यार्क, एक्सिटर, नारविच और चेष्टरके टकसालोंकी आय तो और भी अधिक हो गयी। इनके कर्त्तव्य-पालनका अच्छा उदाहरण इसी स्थानसे मिलता है। जिन दिनों यह टकसालके प्रबन्धोंमें लगे थे, कितने ही लोग वैज्ञानिक कार्य्योंके करनेकी ओर इन्हें ध्यान दिलाते; परन्तु यह कर्त्तव्य परायणताके विरुद्ध समझते थे।

सर आइज़क कहा करते थे कि "मैं नहीं कह सकता, संसारकी दृष्टिमें मैं क्या हूं; परन्तु अपने विचारमें मैं एक अबोध बालककी नाईं एक विस्तृत समुद्रके किनारे घोंघों और कङ्कड़ोंको हाथमें लेकर खेलता हूं। मैं नहीं जानता कि ज्ञानका समुद्र कितना लम्बा चौड़ा है और किस स्थानमें है।" सन् १७२७ ई० के मार्च महीनेकी बीसवीं तारीखको इनका परलोकवास हुआ। सत्य है, कालने किसीको नहीं छोड़ा।

इंजीनियरीकी अद्भुत लीला

[ले० प्रोफ़ेसर तेजशंकर कोचक, बी० ए० एस्-सी०]

(२) जहाज़

इस अङ्कमें हम अपने प्यारे पाठकोंको यह दिखलायंगे कि मनुष्यने अपनी चतुरता तथा दिव्यशक्तिसे पानीपर चलनेकेलिए कैसे कैसे अपूर्व तथा अद्भुत सामानोंकी आयोजना कर ली है। आदिकालमें मनुष्य केवल तैरकर दरियाके पार जाया करते थे। योरोपीय विद्वानोंका कथन है कि सृष्टिके आदिमें मनुष्य आजकलकी भांति जहाज़, नाव तथा डोंगियां इत्यादि बनाना नहीं जानते थे। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि केवल तैरकर पार जानेमें अनेक विघ्न बाधाएं तथा कठिनाइयां हैं, उसमें डूब जानेका भय है और जल-जन्तुओंसे भयंकर हानि पहुंचनेकी सम्भावना है; इसके अतिरिक्त तैरकर न तो बहुत दूर जा सकते हैं और न भोजन छादन तथा अन्य प्रकारकी कोई सामग्री ले जा सकते हैं, तब मनुष्य-

चित्र ७—'आदि कालमें मनुष्य केवल तैरकर दरियाके पार जाया करते थे।'

ने तूंबी बांधकर सुगमतासे तैरनेकी विधि निकाली। वास्तवमें जलयान निर्माण करनेकी विचित्र कलाके सम्बन्धमें इस प्रारम्भिक युक्तिको मानवी मस्तिष्कका पहला आविष्कार कह सकते हैं।

इसके पश्चात् मनुष्यने लकड़ीके लट्ठोंपर चढ़कर पार उतरनेकी युक्ति निकाली, परन्तु इसमें भी कुछ अधिक दूर जानेमें सुगमता न मालूम दी। इससे भी मनुष्य न तो दूर जा सकते थे और न अधिक माल असबाब लादकर पार ले जा सकते थे, वरन् लट्ठोंके उलट जानेसे प्रायः डूब जाते थे। इसके पश्चात् उन्होंने बहुतसे लट्ठोंको एक दूसरेसे बांधकर और बेड़ा बनाकर पार जाना प्रारम्भ किया, पर इसमें भी कुछ अधिक सुगमता न हुई, तब मनुष्यने पेड़ोंके तनोंको काट कर और उन्हें खोखला करके छोटी छोटी डोंगियां बनाना प्रारम्भ किया। [देखो चित्र १,२,३,४]
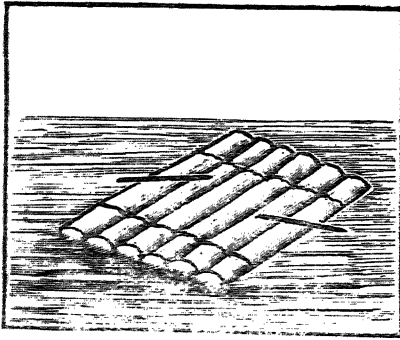
चित्र ८—'मनुष्यने लट्ठोंपर चढ़कर पार उतरनेकी युक्ति निकाली।'

चित्र ९—'इसके पश्चात् उन्होंने बहुतसे लट्ठोंको एक दूसरे से बांधकर बेड़ा बनाकर पार जाना प्रारम्भ किया।'

चित्र १०—'पेड़ोंके तनोंको काटकर और उन्हें खोखला करके छोटी छोटी डोंगियां बनाना प्रारम्भ किया।'

ऐसा करनेपर भी मनुष्यको यात्रामें यथेष्ट रूपसे आराम न मिल सका, तब उसने तख्तोंको जोड़ कर नौकाएँ बनाना प्रारम्भ किया। किन्तु इन नावोंमें बैठ कर बड़े बड़े गम्भीर सागरोंमें यात्रा करना अतीव दुस्साध्य था और इनमें न अधिक मनुष्य बैठ सकते और न यथेष्ट सामान रखा जा सकता था। इसलिए बड़े बड़े तख्तोंकी नौकाएँ बनाते बनाते अन्तमें उन्हें जहाज़के रूपमें परिवर्तित किया। इस समयतक मानवी सभ्यताका भली भांति विकास हो चुका था। मनुष्यकी सांसारिक तथा आन्तरिक शक्तियां प्रौढ़ और पुष्ट हो चुकी थीं, संसारके भिन्न प्रान्तोंमें परस्पर सम्बन्ध स्थापित होकर वाणिज्य तथा व्यापारकी नींव जम गयी थी; अतएव जहाज़ोंका प्रयोग अधिकतासे होने लगा। साथ ही साथ मानवी मस्तिष्क हमेशा उन रुकावटोंके
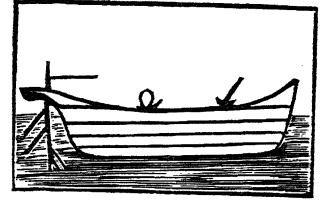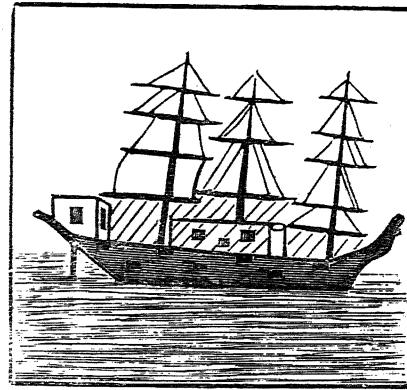
चित्र ११—'तब उसने तख्तोंको जोड़कर नौकाएं बनाना प्रारम्भ किया।'

चित्र १२—'नौकाएँ बनाते बनाते अन्तमें उन्हें जहाज़के रूपमें परिवर्तित किया।'

दूर करनेकी खोजमें रहा जो उसके मार्गमें जहाज़ोंकी अपूर्णताके कारण पड़ती थीं। दिन प्रति दिन जहाज़ोंमें उन्नति होती रही, यहां तक कि हम आज अपने सामने ऐसे विचित्र जहाज़ देखते हैं कि जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है। [देखो चित्र ७]

इस चित्रमें क स्थानपर जहाज़के ऊपर कुछ
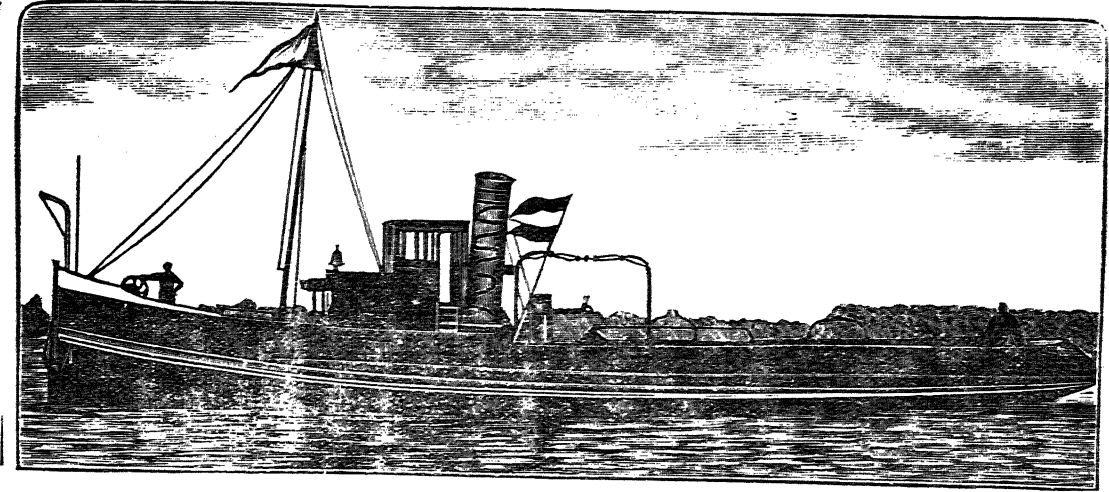
चित्र १३—'हम आज अपने सामने ऐसे विचित्र जहाज़ देखते हैं कि जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है।'

मनुष्य खड़े हैं। इन्हें देखकर आप अनुमान कर सकते हैं कि जहाज़की लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई कितनी है। यह जहाज़ क्या है, तैरता हुआ एक पूरा किला है। आजकलके जहाज़ ऐसे ही बनाये जाते हैं जैसे रामलीलाके अवसर पर रावण बनाया जाता है। लोहेका ठाठर पहले बनाते हैं और फिर उसके ऊपर लोहेकी चादर या लकड़ीके तख़ते जड़ते हैं, जैसे बांसके ठाठरपर काग़ज़ लपेटकर रावण बनाते हैं। जंगी जहाज़ोंपर, जो लड़ाईके लिए बनाये जाते हैं, प्रायः ६ इंच मोटी इस्पातकी चादर मढ़ दी जाती है। इन जहाज़ों और साधारण जहाज़ोंमें जो यात्रियोंको ले जाने और असबाब लादनेकेलिए होते हैं, वैसा ही अन्तर होता है जैसा कि माल और सवारी गाड़ीमें होता है। इसके अतिरिक्त जंगी जहाज़ कई प्रकारके होते हैं—जैसे तोपोंसे लड़नेवाले, माल मसाला और सिपाहियोंको ले जानेवाले, जासूसीका काम करनेवाले और जलके भीतर चलनेवाले (सबमेरीन अर्थात् पनडुब्बी) इत्यादि।

जहाज़ोंके बनानेमें जैसी उन्नति हुई है वैसी उनके चलानेके यन्त्रोंके आविष्कारमें हुई है। पहले मनुष्य अपने हाथ और पैरोंके सहारे जलमें तैरता था, फिर तूंबी तथा डांड़ बल्ली और बांसकी सहायता लेने लगा। इसके बाद उसने बादवानों तथा पालोंके द्वारा हवाकी सहायतासे नाव खेना सीखा। यह पाल कपड़े, टाट और मोमजामे आदिके बनाये जाते थे और अब भी बनाये जाते हैं। इसके पश्चात् लोगोंने पावदानोंसे नाव चलाना आरम्भ किया। आपने देखा होगा कि कलक्टरकी कचहरीमें जो पंखा झला जाता है, उसमें प्रायः बहुतसे तख्ते पहियेकी भांति लगे हुए होते हैं, जिनके घुमानेसे हवाके झोंके निकलते हैं। इसी तरहके पहिये नावकी दोनों ओर लगाकर आदमियोंके पैरोंसे चलवाये जाते थे जिनके घूमनेसे नाव आगे पीछे चलती थी। जब स्टीम

इंजिनका आविष्कार हुआ, तब स्टीम इंजिनकी सहायतासे यह पहिये चलाये जाने लगे। इस तरहका एक जहाज़ अब भी हुगली नदीपर हावड़ा और कलकत्ताके बीचमें चला करता है।

इस समय जहाज़ चलानेकी एक नई रीति निकली है। आपने प्रायः बिजलीके पंखे देखे होंगे। जब यह पंखे तीव्रतासे घूमते हैं, हवाकी धारा बड़े वेगसे निकलती है और जिस वेगसे यह धारा निकलती है उतना ही भारी धक्का पंखेमें पीछेको लगता है। मेज़पर रखकर चलनेवाला बिजलीका पंखा यदि आप हाथमें लेकर चलावें तो आप देखेंगे कि हाथमें कैसा झोका लगता है। हवा एक अजीब सूक्ष्म तथा हल्की वस्तु है। उसके बजाय पानी जैसे किसी स्थूल तथा तरल पदार्थमें रखकर यदि यह पंखा चलाया जावे तो कितना अधिक बलवान झोका यह पीछेको देगा। इसी पंखेकी भांति बड़े बड़े भारी पंखे जहाज़के पेंदेमें लगे रहते हैं जो यन्त्रोंके द्वारा चलाये जाते हैं और एक मिनिटमें हज़ारों चक्कर लगाते हैं। इनके घूमनेसे जहाज़ चलता है। अंग्रेज़ीमें इन पंखोंको (screw-prowpeller) कहते हैं। यह स्टीम इंजिनसे चलाये जाते हैं। परन्तु स्टीम-इंजिनके स्थानमें अब आइल-इंजिनका भी प्रयोग प्रारम्भ हो गया है। (चित्र नम्बर ८ देखिये) एक आइल इंजिनसे चलनेवाला जहाज़ है। पनडुब्बीके पंखे प्रायः विद्युत्शक्तिके द्वारा चलाये जाते हैं।

सं० १८९३ वि० में पहिली बार स्टीम-इंजिनके द्वारा एक जहाज़ने २००० मीलकी यात्रा की और १८९९ से ऐसे जहाज़ोंका बहुत प्रचार होने लगा। आजकल (Cunard) कूनार्ड कम्पनीके जहाज़ यात्रियोंकेलिए बहुत सुखद हैं और समस्त संसारमें प्रसिद्ध हो रहे हैं। आठवें नम्बरका चित्र कूनार्ड कम्पनीके एक जहाज़का है। यह ८८२ फुट लम्बा और ९१ फुट चौड़ा है और १२००००० मन वज़नी है। यह इक्कीस मील फ़ी घंटेके हिसाबसे चलता है। इसके बनवानेमें २१०००००० रुपया व्यय हुआ था।

चित्र १४—क्यूनार्ड कम्पनीका एक जहाज़

पाठकोंको अब हमें यह दिखलाना है कि जहाज़ किस सिद्धान्तपर बनाये जाते हैं। (देखिये चित्र नम्बर ९) च एक बर्तन है जिसमें पानी भरा है। इसमें व एक धातुका टुकड़ा पड़ा है। यह पानीमें डूबा हुआ है। क एक काठका टुकड़ा है जो पानीमें तैर रहा है। ट एक टीनकी डिबिया है जिसमें रंग भरकर आता है और बाज़ारोंमें बिकता है। यह एक तराज़ूके प पलड़ेसे तागेसे बँधा लटका है।

इस डिबियाको तराजूके दूसरे पलड़ेपर बांट रखकर तोल लीजिए। फिर जैसाकि चित्रमें दिखाया है इसको पानीमें डुबाकर तोलिए, अब देखिये यह डिबिया हलकी हो जायगी और जितना आपने पहले तोला था उतनी भारी न रहेगी। जो बांट पलड़ेमें रखे हैं उनको अभी मत उतारिए और डिबियाके भीतर पानी भरना प्रारम्भ कीजिए। आप देखेंगे कि जैसे ही कुल डिबिया पानीसे भर जायगी, फिर उसकी तौल पहिलेके बराबर हो जायगी। इससे आपको यह भली-भांति मालूम हो जायगा कि जब कभी कोई चीज़ पानीमें डाली जाती है तो वह हल्की हो जाती है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि पानीमें डालनेसे वह चीज़ कितनी हल्की हो जाती है; उसका बोझ कितना घट जाता है। इसका उत्तर यह है जितनी वह चीज़ पानीमें डूबती है और उसके डूबनेसे पानीका जितना आयतन अपने स्थानसे हट जाता है, उतने ही पानीके बोझके बराबर वस्तुके बोझमें कमी हो जाती है। एक लोहेका तसला लीजिए और लोहेके बांटोंसे उसको तोलिए, फिर बांटों और तसले दोनोंको अलग अलग पानीपर रखकर देखिए तो आपको तसला पानीपर तैरता हुआ मिलेगा और बांट डूब जायंगे। दोनों तोलमें एक ही हैं, पर तसला पानीके बहुत बड़े आयतनको हटाता है जिसका बोझ तसलेके बोझके बराबर है, इस कारण तसला डूबने नहीं पाता। इसी तसलेको
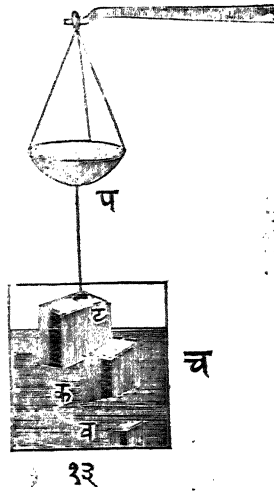
चित्र १५—च—बर्तन; ब—धातु का टुकड़ा; क—काठका टुकड़ा; ट—टीनकी डिबिया; प—पलड़ा।

ज़रा हाथसे तिरछा करके पानी अन्दर आने दीजिए अब आप देखेंगे कि तसला भी लोहेके बांटोंकी भांति डूब जायगा, क्योंकि इस दशामें जलका बहुत ही कम आयतन तसलेने हटाया है।

जहाज़ बनानेमें यही बात ध्यानमें रखी जाती है कि जहाज़का बोझ उस पानीके आयतनसे जो जहाज़ सरकावेगा, बहुत कम होना चाहिए। चित्र नम्बर १० देखिये। इसमें 'च' एक बर्तन है जिसमें पानी भरा है। 'ग' एक मिट्टीका रोग़नी घड़ा है, 'ई' इसके मुंहपर एक ईंट बंधी है और यह स्वयं उलटा पानीपर तैर रहा है। इसकी पेंदीमें एक छेद है जिसमें 'न' एक ट्यूब लगा हुआ है इस ट्यूबपर रबड़की एक नलकी बंधी रहती है। 'र' एक क्लिप (चुटकी) है जिससे इसका मुंह बन्द है। इस घड़ेको थोड़ी देर पानीपर तैरने दीजिए फिर क्लिपको दबाइए। देखिए घड़ेसे हवा निकलना आरम्भ होगी और घड़ा पानीमें बैठने लगेगा। आप घड़ेको पानीमें जितना नीचा ले जाना चाहते हैं ले जाइए और फिर क्लिप बंद
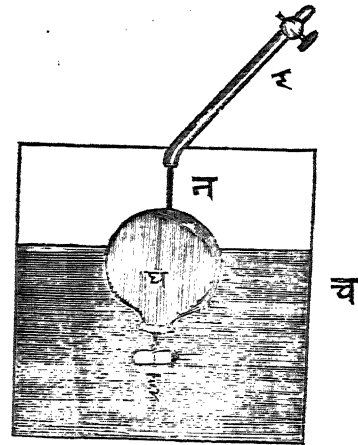
चित्र १६—च—बर्तन; ग—मिट्टीका रोगनी घड़ा; इ—ईंट न—ट्यूब; र—चुटकी।

कर दीजिए, घड़ा उतनी ही गहराईपर रुक जायगा और वहीं तैरता रहेगा। अब अगर आप चाहते हैं कि घड़ा ऊपरको उठ आए तो रबड़की नलिकामें मुंहसे हवा फूंक दीजिए। ज्यों ज्यों हवा घड़ेमें भरती जायगी त्यों त्यों घड़ा ऊंचा उठता आवेगा। सबमेरीन भी इसी प्रकार समुद्र में चलते हैं। जब उनको नीचे ले जाना होता है तो जहाज़की पेंदीमें छिद्रोंको खोलकर पानीको जहाज़के भीतर भर जाने देते हैं, और जब जहाज़को पानीके ऊपर लाना होता है तो इंजनोंसे जहाज़का पानी बाहर फेंक देते हैं और बक्सोंमें भरी हुई हवा खोल कर थोड़ी सी जहाज़में छोड़ देते हैं।

जहाज़ोंके बनानेमें बहुतसी तरकीबें और गणितके सिद्धान्त काममें लाये जाते हैं जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेसे यह लेख बहुत बढ़ जायगा और वह शायद रुचिकर भी न होगा। अतएव हम यहांपर संक्षेपसे कुछ हाल लिखते हैं।

जहाज़ बनानेसे पहले पूरे जहाज़ और उसके हरएक भागके अलग अलग तीन चित्र बनाये जाते हैं, जिनमेंसे एकमें सामनेका, दूसरेमें पार्श्विक और तीसरेमें आन्तरिक बनावट दिखाई जाती है। चित्रकारी और गणितकी सहायतासे जहाज़की लम्बाई चौड़ाई, उसका बल और उसके बनानेमें जितना समय और धन लगेगा, यह सब जान लेते हैं। जब सब बातें ठीक हो जाती हैं तो जिस तरहका जहाज़ बनाना होता है वैसा ही एक छोटा-सा नमूना बनाकर और पानीमें तैराकर उसको जांचते हैं। इसकी जांच करनेके लिए प्रायः ४०० फुट लम्बा, २८ फुट चौड़ा और १० फुट गहरा पक्का ताल बनाया जाता है। इस तालमें जहाज़के नमूनेको चलाकर नीचे लिखी बातें जांची जाती हैं।

(१) जहाज़का सामनेका भाग कैसा और किस रूपका होना चाहिए, क्योंकि यह अगर अधिक चौड़ा और बेढंगा हुआ तो पानीमें जहाज़के बेगसे चलनेसे हवा और पानीका थपेड़ा बड़े ज़ोरसे लगेगा जिससे जहाज़की चाल धीमी हो जायगी।

(२) जहाज़के कितने बेगसे चलनेपर हवाका कितना दबाव पड़ेगा, क्योंकि दबाव जितना अधिक होगा, उतना ही अधिक इंजिनोंको काम करना पड़ेगा और धन व्यर्थ जायगा।

(३) कितने बड़े स्क्रू-प्रापेलर लगाये जावें, पेंदेमें किस स्थान पर लगाये जायं और प्रति मिनिट उनके कितने चक्कर खानेपर किस बेगसे जहाज़ चल सकेगा।

(४) जहाज़के चलनेपर पानीकी रगड़से जहाज़की चालमें कितनी कमी होगी।

जहाज़ प्रायः समुद्रके किनारे बनाये जाते हैं। इनके बनानेमें बीसियों मनुष्यों और अनेक कलोंकी आवश्यकता होती है। इसलिए बहुत बड़ा लम्बा चौड़ा छप्पर छाते हैं, जिससे रातदिन बराबर काम होता रहे और शिल्पकार जाड़े बरसातकी पीड़ासे सुरक्षित रहें। जिस स्थानपर जहाज़ बनाये जाते हैं उसका सीमन्ट पक्का और फ़र्श लोहेका होता है। यह फ़र्श समुद्रकी ओर ढलवां होता है जिसपर बहुतसे लोहेके बेलन बिछा देते हैं। जब जहाज़ बनकर तैयार हो जाता है तो इन बेलनोंके द्वारा जहाज़को सरका कर धीरे धीरे समुद्रकी ओर ले जाते हैं। पर उस समय यह ध्यान रखना होता है कि समुद्रमें घुसते समय जहाज़ पानीमें सीधा जाय, किसी ओर झुके नहीं; यदि यह कहीं किसी ओर झुक गया तो तुरन्त ही पानीमें उलटकर डूब जाता है। ऐसे समय जहाज़को सीधा रखनेके-लिए हज़ारों मनकी लोहेकी ज़ंजीरें जहाज़को दोनों ओर बांधकर लटका देते हैं। जब जहाज़ समुद्रकी ओर खिसकता है तो यह पृथ्वीपर खिसकती चलती हैं। जिस दिन जहाज़ प्रथमवार समुद्रमें प्रवेश करता है, उस दिन लोग बहुत आ-

नन्द मनाते हैं। सारे नगर भरमें छुट्टी हो जाती है और समस्त नगर-निवासी तथा पदाधिकारी-वर्ग अपने यहांकी रीतिके अनुसार नाच गान द्वारा खूब रङ्ग रेलियां मचाते हैं।

जहाज़ बन जानेके उपरान्त जब समुद्रमें छोड़ा जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानों एक सतखंडा ऊँचा क़िला पानीपर तैरता है।

जैसे क़िले आदिमें विविध भांतिके कामोंके लिए यन्त्र और कलोंका प्रयोग होता है वैसे ही जहाज़ोंमें अनेक प्रकारकी कलें लगाई जाती हैं।

निम्नलिखित बातोंके लिए जहाज़में ख़ास मशीनें लगायी जाती हैं।

(१) जहाज़को दहिने बायें चलानेकेलिए पतवार घुमानेको एक इंजिन लगाया जाता है जिसकी तमाम मशीन एक अलग कमरेमें पतवारसे लगा दी जाती है।

(२) बाहरसे जहाज़में पानी लानेकेलिए मशीन लगायी जाती है जिससे जहाज़ धोनेके लिए तथा इंजिन और अन्य अन्य खण्डोंमें यात्रियोंके कामकेलिए नलोंकेद्वारा पानी भेजा जाता है।

(३) जहाज़के सब कमरोंकी वायु स्वच्छ और निर्मल रखनेकेलिए जगह जगहपर पंखे लगाये जाते हैं जिनके चलनेसे हवा बराबर आती जाती रहती है। इन पङ्खोंके चलानेकेलिए अलग मशीनें लगायी जाती हैं।

(४) आजकल पहलेकी भांति यात्रियोंके पीनेके लिए कई महीनोंका पानी एक दम इकट्ठा नहीं कर लेते, बल्कि समुद्रका पानी तिर्यक्पातनसे शुद्ध कर लेते हैं। इसके लिए एक अलहदा यंत्र-की आवश्यकता होती है।

(५) जहाज़ गर्म और सर्द दोनों ही देशोंमें जाते हैं। शीत-प्रधान देशोंमें पहुंचनेपर यात्रियों-को शीतसे बचानेके लिए अगींठीमें आग जलाकर कमरे गर्म नहीं किये जा सकते; क्योंकि एक तो जहाज़पर इतना ईंधन नहीं मिल सकता और दूसरे इससे जहाज़में आग लग जानेका डर रहता है; तीसरे धुंआ निकलनेके कारण वायु निर्मल तथा स्वच्छ नहीं रह सकती। इसलिए नलियोंकेद्वारा गर्म पानी पहुंचाकर सब कमरोंको गर्म रखते हैं। इसके लिए भी कलें जहाज़में लगायी जाती हैं।

(६) जहाज़पर माल असबाब उठानेके लिए कुली आदि काम नहीं कर सकते। इसलिए जहाज़-के प्रत्येक खंडपर बोझ उठानेवाली मशीनें लगायी जाती हैं जिन्हें क्रेन कहते हैं।

(७) आग बुझानेके लिए जगह जगह विशेष यन्त्र तथा इंजिन लगाये जाते हैं।

(८) बिजलीकी रोशनी करनेके लिए डाइनमो और बिजलीके लैम्प लगाये जाते हैं। इसके अति-रिक्त बिजलीके पंखे तथा टेलीफ़ून इत्यादि यथोचित स्थानोंपर लगाये जाते हैं। इन कलों तथा मशीनोंको छोड़कर जहाज़में कई एक और भी विशेष रूपसे वर्णनीय बातें होती हैं। जहाज़ोंमें मेज़, कुर्सी तथा अलमारियां, गद्दे और तकिये लगानेवाले तथा वार्निश और रंगसाज़ी करनेवाले अनेक कारीगर अपना काम करते हुए दिखाई देते हैं। यात्रियों-को अनेक प्रकारकी सुविधाओंके निमित्त जहाज़में मुख्य मुख्य कार्योंके लिये पृथक् पृथक् कमरे नियत किये जाते हैं। जैसे रसोईके लिए एक कमरा अलग होता है, जिसमें सैकड़ों आदमीके मही-नोंके खर्चके लिए डबल रोटी, बिस्कुट, मिठाई चटनी, आचार, मुरब्बा आदि विविध भांतिके भोज्य पदार्थ एकत्र रहते हैं। एक कमरा अस्पता-लके लिए पृथक् नियत किया जाता है, जिसमें एक डाक्टर अपने औज़ार तथा औषधियां लेकर रोगियोंकी देख भालके लिए रखा जाता है। इसी भांति भोजनालय, पुस्तकालय, शयन-गृह, व्यायामशाला, डाकख़ाना, हम्माम तथा धूम्रपान और छोटे छोटे बालकोंको खिलानेके लिए उपयुक्त सामग्रीसे संयुक्त अलग अलग कमरे होते हैं। तात्पर्य यह है कि मनुष्यको जिन जिन बातोंकी आवश्यकता होती है, वह सब

जहाज़ोंपर मिल सकती हैं, उन सबका प्रबन्ध जहाज़ोंपर होता है। जहाज़ोंके सम्बन्धमें एक और बात विशेष वर्णनीय है। जहाज़ बहुत भारी होनेके कारण तटस्थ उथले पानीमें नहीं आ सकते; इसलिए वे समुद्रतटसे दूर गहरेमें खड़े रहते हैं। यात्रियोंको जहाज़परसे उतारने और चढ़ाने, अर्थात् उनको भूमिसे जहाज़तक ले जाने और जहाज़से भूमितक लानेके लिए नावों और स्टीमरोंका प्रयोग होता है। रेलवे स्टेशनोंपर इक्के गाड़ी काम करते हैं; बन्दरगाहोंपर छोटी छोटी नाव और स्टीमर वही दृश्य दिखलाते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसी ही बहुतसी कता पड़ने पर उन्हें खोलकर नौका-स्वरुपमें ले आते हैं। दैवयोगसे अभाग्यवश यदि जहाज़ डूबने लगे तो कर्म्मचारीगण इन्हीं नौकाओंमें यात्रियोंको बैठाकर जहाज़से हटा देते हैं और अन्ततः स्वयम् भी उनपर चढ़कर जहाज़से उतर भागते हैं। चित्र नम्बर १७ से आपको इन नावोंकी आकृति प्रकृतिका पता लगेगा। देखिये 'न' इसमें एक लिपटी हुई नाव है। 'अ' जहाज़में बंधी हुई है और 'ब' किरमिचकी लपेटी जासकनेवाली नाव है, परन्तु इस समय खोलकर यात्रियोंके भागनेके लिये समुद्रमें डाल दी गयी हैं।

जब जहाज़ सज धजकर बिलकुल तैयार हो
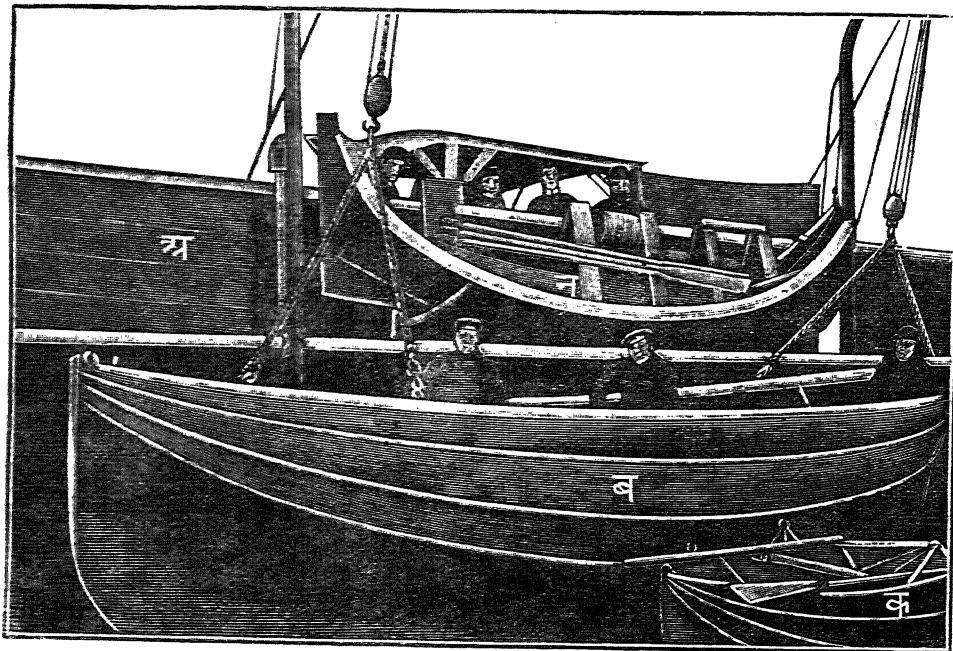
चित्र १७—'न–लिपटी हुई नाव ; अ–जहाज़में बंधी हुई नाव ; ब–किरमिचकी लपेटी हुई नाव जो समुद्रमें तरा दी गई है।'

नौकाएं सदा जहाज़के चारों ओर लटकी रहती हैं और जब कभी आवश्यकता होती है तो इन्हींको उतारकर काममें लाते हैं। बहुत सी ऐसी नावें जहाज़में होती हैं जो कपड़े रखनेके बैगकी भांति लपेट कर रख ली जाती है और आवश्य-

जाता है, तो उस जहाज़की कम्पनीके डाइरेक्टर, इञ्जीनियर और उनके मित्रगण उसको परीक्षार्थ किसी और समुद्रमें ले जाते हैं और कई दिन चलानेपर जब वह परीक्षामें ठीक उतरता है तो वह यथा-रीति काममें लाया जाता है। जैसे

हमारे देशों और नगरोंके नकशे होते हैं, उसी प्रकार जहाज़ चलाने-वालोंकी सुगमता और यात्रियोंकी प्राण-रक्षाके लिए समुद्रके अनेक भागोंके नकशे बनाये गये हैं, जिनसे अनेक आवश्यक विषयोंका ज्ञान होता है। उदाहरणार्थ चित्र नम्बर १८ लीजिए। इसके देखनेसे आप मालूम कर सकते हैं कि समुद्रके तटकी भूमि कैसी है, अर्थात् दलदली है, रेतीली है या पहाड़ी उसपर वृक्षादि हैं या नहीं। समुद्रमें जहां जहां सिगनल बने हुए हैं वह भी इसमें दिखाये गये हैं।

इसमें जो नम्बर पड़े हुए हैं वह उस स्थानपर पानीकी गहराई फैदमों (फैदम=६ फुट) में बतलाते हैं। समुद्रमें जहां जहां छोटे बड़े जहाज़ ठहर सकते हैं, वह स्थान इसमें दिखलाये गये हैं। समुद्रमें जो विविध दिशाओं-की ओर धाराएं चला करती हैं और जिस मार्गसे जहाज़ साधारणतया आते जाते रहते हैं, वह सब इसमें बने हैं।

एक समय था जबकि भारतवर्षमें भी उच्च कला कौशलका प्रचार था, सारे संसारमें उसकी धूम मची थी। उस समय जैसे जहाज़ हमारे देशमें बनते थे, वैसे संसारभरमें कहीं भी नहीं बनते थे। योरोपीय सम्राट जब कभी बड़ा भारी, विशाल और सुदृढ़ जहाज़ लेना चाहते थे तो वे यहांके पारसियोंसे बनवाकर ले जाते थे। मैसूर-नरेश हैदर अलीके आह्वाहनपर जब दिग्वि-जयी महावीर नेपोलियनने भारतकी ओर प्रस्थान करनेका विचार किया था, तब बम्बई प्रान्तके 'वादिया ऐन्ड सन्स,' हमारे देशनिवासी पारसी सौदागरोंको जहाज़का बेड़ा बनानेका ठेका दिया था। इस बातसे स्पष्ट है कि वह समय जबकि हम सामुद्रिक कलाकौशलमें अति निपुण थे, हमारे हस्त-लाघव तथा शिल्प-दाक्षिण्यकी जाज्वल्यमयी ज्योत्स्नासे संसारका कोना कोना चमत्कारमय बन रहा था, और हमारे प्रताप-मार्त्तण्डकी विस्फूर्त रश्मियोंसे समस्त विश्व जगमगा रहा था, बहुत दूर नहीं गया है।

सहृदय पाठकवृन्द! अपने पूर्व पुरुषोंके उस ज्वलन्त ऐतिहासिक गौरवकी तनिक अब अपनी
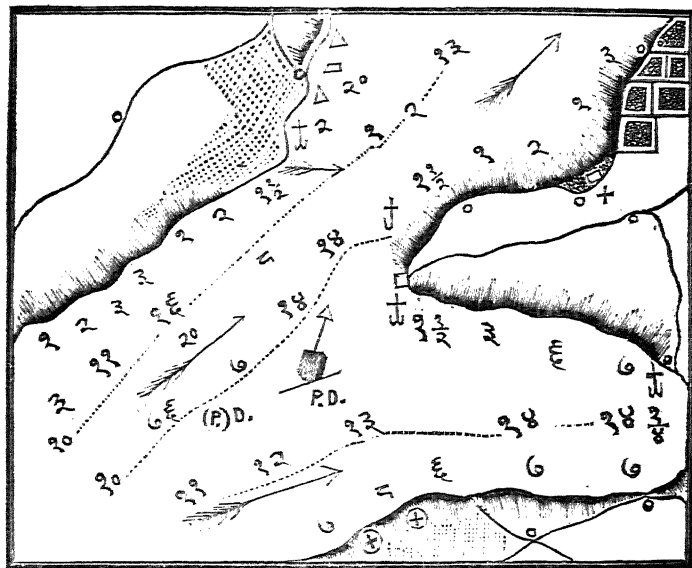
चित्र १८—समुद्रका नकशा

इस अधोगत दशासे तुलना कीजिए। जहाज़ोंका निर्माण करना तो एक ओर, साधारण सुडौल नौकाओंकी सृष्टि करना तक इस समय हमारी सामर्थ्यसे बाहर है।

———

मनोविज्ञान

[ले० अध्यापक विश्वेश्वरप्रसाद, बी० ए०]

(१) सरूप

"जो कुछ आप कहते हैं उसपर मैं ध्यान दे रहा हूं," "मैं जानना चाहता हूं कि यह ऐसा है अथवा नहीं," मुझे इस बातमें संदेह है," "मैं ऐसी आशा करता हूं," "मुझे डर है कि वह फेल हो गया है," "यह वही वस्तु है जिसे मैं चहता हूं", "मुझे याद है कि मैंने इसे पारसाल देखा था," "मेरी रुचि इसमें अधिक है," । "मैं धूलका एक बादल देखता हूं," "इसमें मुझे विश्वास है," "सचमुच यह बात ऐसी ही है"--इत्यादि वाक्योंके पढ़नेसे पाठकगणको यह प्रतीत हो जायगा कि इन भिन्न भिन्न वाक्योंके प्रयोगके समय किसी विषयके संबंधमें मैं ध्यान करता हूं, प्रश्न करता हूं, सन्देह करता हूं, आशा करता हूं, भय प्रकाश करता हूं, इच्छा करता हूं, स्मरण करता हूं, रुचि प्रगट करता हूं, दृष्टिद्वारा प्रत्यक्ष अनुभव करता हूं, विश्वास करता हूं अथवा ज्ञान प्राप्त करता हूं।

इन वाक्योंके दृष्टान्तसे तात्पर्य यह है कि मनो-विज्ञानके वास्तविक सरूपका ज्ञान हो जाय। ध्यान देनेसे यह सहजमें ही मालूम हो जायगा कि ऊपर लिखे वाक्योंमें दो बातें अन्तर्गत हैं। (१) हमारा कुछ करना (व्यापार) और (२) व्यापारका विषय अर्थात् वह वस्तु जिसके सम्बन्धमें मैं ध्यान इत्यादि कार्य करता हूं। ध्यानादि कार्य मेरे मन के हैं। इसी कारणसे वे मानसिक व्यापार कहे जाते हैं।

मैं जिस कोठरीमें बैठा हूं उसकी लम्बाई, चौड़ाईके सम्बन्धमें मुझे कुछ सन्देह हो रहा है, कि कोठरी चार हाथ लम्बी है कि साढ़े तीन हाथ ही, अथवा तीन हाथ चौड़ी है कि केवल ढ़ाई हाथ। अब पाठक ध्यान देकर विचार करें कि इस संदेहकी दशामें जो मेरी मानसिक दशा के, शारीरिकके नहीं, उक्त दो बातें--अर्थात् (१) मानसिक व्यापार और (२) व्यापारका विषय--अन्तर्गत हैं। यह तो स्पष्ट है कि मैं संदेह करता हूं और किसी वस्तुके सम्बन्धमें संदेह करता हूं। वह वस्तु कोठरीकी लम्बाई और चौड़ाई है। इसी प्रकार आरंभमें लिखे हुए वाक्योंमेंसे प्रत्येक वाक्यसे उसके संबंधका मानसिक व्यापार और उस मानसिक व्यापारका विषय सहज में ही स्पष्ट हो जाता है। अर्थात् मानसिक व्यापार और उसका विषय ये दो वस्तु भिन्न हैं। अब प्रश्न उठता है कि इन दो वस्तुओंमेंसे किसके अध्ययन सम्बन्धी शास्त्रको हम मनो-विज्ञान कहते हैं? क्या मनो-विज्ञान उस शास्त्रको कहते हैं जिसमें हम अपने मानसिक व्यापारोंके विषयोंका अध्ययन करते हैं अथवा उस शास्त्रको जिसके द्वारा हम अपने मानसिक व्यापारोंका ही अध्ययन करते हैं?

थोड़ासा विचार करनेसे यह शीघ्र ही ज्ञात होता है कि मनो-विज्ञान नामक शास्त्र उसे कहना चाहिए जिसके द्वारा हम अपने मानसिक व्यापारोंका विशेष ज्ञान प्राप्त करें, क्योंकि स्पष्ट है कि हमारे मानसिक व्यापारोंके विषय भिन्न हैं और उन भिन्न भिन्न वस्तुओंके विशेष ज्ञान प्राप्त करानेवाले शास्त्रोंके नाम भिन्न भिन्न हैं। उदाहरणके लिए मैं कहता हूं कि मेरी यह जानने-की इच्छा है कि पृथ्वी कैसे बनी। ऐसा कहनेसे एक तो मेरे इच्छा नामक मानसिक व्यापारका बोध हुआ, दूसरे इस व्यापारके विषयका बोध हुआ अर्थात् पृथ्वीका, जिसके बननेके विषयमें मेरी जाननेकी इच्छा हुई। तो यदि पृथ्वीकी बनावटके अध्ययनके शास्त्रका नाम मनो-विज्ञान रखा जाय तो नितान्त भूल है, क्योंकि उसका नाम तो भूगर्भविद्या है। अब बचा वह शास्त्र जिसके द्वारा हम मानसिक व्यापार (जिसका बोध उदा-

Philosophy दर्शनशास्त्र]

हरणमें 'इच्छा' शब्दसे होता है) का अध्ययन करते हैं। इसी शास्त्रका नाम मनो-विज्ञान है।

यदि मैं पूछूं कि क्या आपको इसका पूरा विश्वास है? आपने इसे क्यों किया? तो आपको उत्तर देते समय अपने मानसिक व्यापारके विषयकी अपेक्षा व्यापार विशेषपर अधिक ध्यान देना होगा। जिस समय आप इस अवस्थामें रहियेगा उस समय यह कहा जायगा कि आप मनोवैज्ञानिक अवस्थामें हैं।

यहां तक तो हमने "मनो-विज्ञान" शब्दके पहले आधे भागपर अर्थात् 'मन' पर अधिक ध्यान दिलाया। अब यह भी देखना आवश्यक है कि आधे भागका अर्थात् "विज्ञान" शब्दका इस सम्बन्धमें क्या तात्पर्य है।

ऊपर कहा गया है कि मनो-विज्ञान उस शास्त्रका नाम है जिसके द्वारा हम मानसिक व्यापार का अध्ययन करते हैं। इससे तात्पर्य प्रत्येक व्यक्तिके मानसिक व्यापारका और प्रत्येक व्यक्तिके भिन्न भिन्न मानसिक व्यापारका भी समझा जा सकता है। अर्थात् मनो-विज्ञान उस शास्त्रको कहते हैं जिसके द्वारा भिन्न भिन्न व्यक्तिगत मानसिक व्यापारोंका अध्ययन किया जाय।

इसमें एक कठिनाई है। वह यह कि ऐसे शास्त्रको वैज्ञानिक कहना वैज्ञानिक विचारके असंगत है। क्योंकि एक विशेष ज्ञान वैज्ञानिक तब तक नहीं कहा जायगा जब तक वह व्यक्तिगत है। जब हम व्यक्तिगत बातोंमेंसे ऐसी बातें निकाल लें जो प्रत्येक व्यक्तिके संबंधमें ठीक हों तब उस ज्ञानको विज्ञान अथवा वैज्ञानिक कह सकते हैं।

अब इस कसौटीपर मनो-विज्ञानकी ऊपर लिखी हुई परिभाषाको कसिए तो मालूम होगा कि वास्तविक मनो-विज्ञान और उस मनो-विज्ञानमें जिसके द्वारा हम व्यक्तिगत मानसिक व्यापारोंका अध्ययन करें—क्या भेद है।

उदाहरण लीजिए—आकाशकी ओर देखनेसे मुझे वर्षा होनेवाली है ऐसा बोध हुआ। मनोविज्ञानकी दृष्टिसे मुझे वर्षाकी अपेक्षा उस मानसिक व्यापारपर अधिक ध्यान देना है जिससे हमें एक होनेवाली बातका बोध होता है अथवा सूचना मिलती है। केवल इतना ही नहीं, वास्तविक मनोविज्ञानका विषय वह होगा जब हम इसके भी आगे बढ़ें और यह देखें कि वह कौनसा कारण है जिसके द्वारा हमें यह सूचना हुई। स्पष्ट है कि जब हमने पहले आकाश ऐसा देखा था तब पानी बरसा था। यही कारण हमारी सूचनाका मंत्र है। इस अनुभवसे हम यह अनुमान करते हैं कि जब पहले दो घटनाओंका किसी विशेष रूपमें हमको अनुभव होता है तो संभव है कि उन दो घटनाओंमेंसे एक घटनाके फिरसे होनेपर—संपूर्ण अथवा अंश रूपमें दूसरी घटनाका भी स्मरण हो जावे। पाठकगण ध्यानपूर्वक देखें कि यह अनुमान किसी केवल एक विशेष व्यक्तिकी मानसिक अवस्थाके संबंधमें सच नहीं है परन्तु प्रत्येक मानसिक व्यक्तिके संबंधमें सच्चा समझा जायगा। ऐसे अनुमानको वैज्ञानिक दृष्टिसे सर्वसामान्य अर्थात अनुगम कहते हैं। और ऐसे ही अनुमानका जब ज्ञान हो तो उसे विज्ञान कहते हैं।

इस प्रकार यह निश्चय हुआ कि मनो-विज्ञान नामक शास्त्र हमारे प्रतिदिनके मानसिक व्यापारोंके आधारपर मन को उन बातों द्वारा समझता है जो सब मनों के संबंधमें कही जायं और ठीक समझी जायं।

"वीर भोग्या वसुन्धरा"

प्रथित पुरातन नाम भूमिका वसुन्धरा है
क्योंकि विश्वभरका इसमें सर्वस्व भरा है
उसका परम पुनीत अंग प्रिय भरत देश है
जिसमें वसुधाके सर्वसका समावेश है
उस सर्वसके उपभोगके अधिकारी हैं हम सभी।
इस वसुन्धरा के वीर सुत बलधारी हैं हम सभी॥

श्रीप्रयाग
७-१०-१७

—श्रीधर पाठक।

दांतोंकी कथा

न्यू योर्ककी स्वास्थ्य रक्षिणी समितिने हालमें ही जांच की है, जिससे यह मालूम हुआ है कि स्कूलमें पढ़नेवाले लड़कोंमें ६० फ़ी सैकड़ाके दांत ख़राब होते हैं। यह बात बड़े महत्वकी हो जाती है जब हमको यह मालूम होता है कि ७५ प्रतिशत रोग मुंहमें उत्पन्न होते हैं और वहींसे सारे शरीरमें फैलते हैं। इसलिये मुहकी सफाईका तन्दुरुस्तीके ऊपर बहुत बड़ा असर पड़ता है और बीमारियोंको रोकनेके उपायोंमें सबसे पहिले इसीकी ओर ध्यान देना चाहिये।

एक पुरानी कहावत है "सफाई साधुता है" लेकिन बहुतसे मनुष्य भूल जाते हैं कि मुंह जो सबसे अधिक शुद्ध रहना चाहिये असावधानीके कारण सबसे अधिक अशुद्ध रहता है। अशुद्ध मुंहसे जो पदार्थ कफ़ वा छींक द्वारा निलकते हैं उनसे हवामें रोगाणु फैल जाते हैं। यह रोगाणु रेतके कणोंके सहारे इधर उधर फिरते हैं और इस तरहसे एकसे दूसरेके पास पहुंच जाते हैं। सौसे अधिक जातिके कीटाणु मुंहमें रहते हैं, जिनमेंसे तीसके लगभग रोग पैदा करनेवाले होते हैं। ऐसे मुंहमें जिसमें कि सड़े हुए दांत होते हैं सड़न पैदा करनेवाले पदार्थ होते हैं जिनका तन्दुरुस्तीपर बहुत बुरा असर पड़ता है, लेकिन स्वच्छ दांत और निरोग मुंहकी केवल बाहरसे ही न जांच कारनी चाहिये। हालकी ही एक जांचमें जोक्लीव लैण्ड (Cleveland) में की गई थी यह मालूम हुआ है कि स्कूलमें अच्छे दांतवाले लड़के दूषित दांतवाले लड़कोंसे अच्छे रहते हैं। सेनाओंमें नये आदमियोंके भरती करनेके समय अच्छे दांत होनेपर बहुत ज़ोर डाला जाता है, क्योंकि बुरी तरहसे चबाया हुआ और अच्छी तरहसे न पचा हुआ खाना जीवन-शक्तिको कम कर देता है और इसीसे बीमार होनेका बहुत अंदेशा रहता है। यह समझकर कि बच्चोंके दूधके दांत बहुत दिनोंतक नहीं रहते उनकी सफाईमें असावधानी नहीं करनी चाहिये। सफाई इसी लिये ज़रूरी नहीं है कि दांतोंको गलनेसे बचावे बल्कि इसलिये भी कि बालकोंको सदा दांत साफ़ रखनेकी आदत हो जाय। दूधके दांत बहुधा अपनी जगहसे हट जाते हैं, कभी कभी बहुत घिचपिचमें उगते हैं, और कभी कभी टूट जाते हैं। जैसे ही इन बातोंके लक्षण दिखाई पड़ें, वैसे ही किसी दन्त चिकित्सकसे परामार्श करना चाहिये। ऐसा करनेसे भविष्यमें पीड़ाकी सम्भावना कम हो जाती है। दन्त चिकित्सकसे सलाह लेना तबभी आवश्यक है जब बच्चेके स्थायी दांत दिखाई दें, जिससे उनके सड़ने और घिचपिच उगने का भय न रहे। अब यह देखना है कि दूषित दांतोंका कारण क्या है? मान लीजिये हम बगैर मुंह साफ़ किये सो जायं, तो कुछ न कुछ खाना ज़रूर दांतोंके ऊपर या उनके भीतर रह जायगा। रात्रिके समय छोटे छोटे कीटाणु जो मुंहमें सदा रहते हैं दांतमें लगे हुये जूठनको सड़ा देते हैं। जब हम लोग सुबह उठते हैं तब मुंहमें एक तरहका खट्टापन मालूम होता है जो यदि दूर न किया जाय तो

Hygiene स्वास्थ्यरक्षा]

कीटाणु दांतोंमें छोटे छोटे छिद्र बना लेते हैं। जब यह सड़न दांतोंके गूदे तक पहुंच जाती है, दांतमें कठिन वेदना होने लगती है। थोड़े दिनोंमें गूदा मर जाता है और रोग बढ़ता है यहां तक कि दांतोंकी जड़ोंतक पहुंच जाता है और वहां फोड़ा abcess पैदा कर देता है जो बड़ा दुःख देता है और कठिनाईसे अच्छा होता है। इन सब बातोंसे बच सकते हैं यदि पहलेसे जरा सावधानीसे रहें और स्वच्छताका ध्यान रखें। जब कभी दांतमें छोटा सा छेद दिखाई पड़े, दन्त-चिकित्सकको दिखाना चाहिये, वह छेदको भर देगा, नहीं तो छेद बढ़ता जावेगा और अन्तमें दांत उखड़वानेके सिवा कोई उपाय न रहेगा।

दांतोंका एक और भी वैरी है, जिसे टार्टार (tartar) कहते हैं और जो रालमेंसे दांतोंपर जमता रहता है। आरम्भमें इसे हटाना आसान होता है परन्तु थोड़े दिनों बाद पत्थरसे अधिक तह दांतपर जम जाती है। यदि यह तह भी न हटाई जाय तो मसूड़े सूज आते हैं; दांतों की जड़ें कमज़ोर हो जाती हैं और अन्तमें दांत गिर पड़ते हैं।

इन सब दुःखोंका कुछ इलाज भी है या नहीं? कहावत है कि रोगको होने न देना, उसको, होने पर, अच्छा करनेसे सराहनीय है। अतएव नीचे कुछ नियम दिये जाते हैं, जिनपर ध्यान रखने से मुंहके रोग न होंगेः—

१—प्रातः काल, भोजनके उपरान्त और सोनेके पहले दातौन करनी चाहिये।

२—जीभीसे जिव्हाको नित्य साफ़ किया करिये।

३—तिनके इत्यादिसे दांतोंको मत कुरेदिये। यदि दांतोंके बीचमें खाना भर जाय, तो रबड़ या रेशमके टुकड़ोंसे साफ़ कीजिये।

४—अंगूठे और मध्यमांसे मसूढ़ोंको मलिये।

५—कड़ी खानेकी चीज़ें खाईये और उन्हें खूब चबाइये।

६—दांतोंमें काले धब्बे न लगने पायें। इसकी चौकसी राखिये। ज्यों ही उनका संदेह हो झटपट दंत चिकित्सकको दिखलाइये इसकी राह मत देखिये कि बड़ा हो जाय तभी उसको दिखलावें

७—दांतोंको बुरी तरहसे काममें मत लाइये जैसे कड़ी सुपारियोंको तोड़ने या ऐसी चीज़ोंको काटनेमें जिनसे उन्हें हानि पहुंचै।

प्रकृतिने दांतोंको मरण पर्य्यन्त काम करनेके लिये बनाया है किन्तु आजकलकी सभ्यता ऐसा नहीं होने देती है क्योंकि इसमें मुलायम चीज़ोंको जल्दी खानेका रिवाज चल पड़ा है जिससे कि दांतोंको उतनी मेहनत नहीं पड़ती जितनी कि उन्हें पड़नी चाहिये और वह सफ़ाई जो कड़े खानेसे होती थी और जिसके लिये आदमीके दांत बनाये गये थे नहीं होने पाती। इसी वजहसे दांत गलने लग जाते हैं और गिर भी जाते हैं जिससे दन्त चिकित्सकसे परामर्श करनेकी आवश्यकता होती है। मुंह साफ़ करनेके लिये एक छोटा कड़ा ब्रश या ताज़ा और नर्म दातौन लेनी चाहिये। अगर दांतोंमें धब्बा पड़ गया हो तो थोड़ासासाबुन और पिसी हुई खरिया लगाइये। ब्रशसे मसूड़ों के नीचेसे दांतोंके छोरों तक बाहर और भीतर, दाएँ बाएँ सभी तरफसे साफ़ करना चाहिये। ऊपरके मसूड़ोंपर ऊपरसे नीचे कोओरऔर नीचेके मसूड़ोंपर नीचेसे ऊपर की ओर दांतन या ब्रश फेरना चाहिये। यह स्मरण रखना चाहिये कि जो दांतोंके भाग सुगमतासे साफ़ नहीं किये जा सकते हैं, उन्हींमें रोग आरम्भ होता है। इसी लिए बड़ी सावधानीसे सफ़ाई करनी चाहिये।

अब तक सर्व साधारणको शुद्धजल, चेचकका टीका, नालियों और गलियों की सफ़ाई, घरों की स्वच्छता, मक्खियोंसे बचना आदि बातों की शिक्षा दी जाया करतो थी, पर अब वह ज़माना आगया है कि मुंहकी सफ़ाईकी शिक्षा सभीको मिलनी चाहिये।

—अनु० 'दन्त' (Modern Review से)

भारत-गीत—१

जय जय प्यारा भारत देश
जय जय प्यारा जग से न्यारा
शोभित, सारा देश हमारा
जगत - मुकुट, जगदीश - दुलारा
जग - सौभाग्य, सुदेश
जय जय प्यारा भारत देश

*

प्यारा देश जय देशेश
अजय अशेष सदय विशेष
जहां न सम्भव अघ का लेश
सम्भव केवल पुण्य-प्रवेश
जय जय प्यारा भारत देश

*

स्वर्गिक शीश-फूल पृथिवीका
प्रेम-मूल, प्रिय लोक-त्रयी का
सुललित प्रकृति नटी का टीका
ज्यों निशि का राकेश
जय जय प्यारा भारत देश

*

जय जय शुभ्र हिमाचल - शृंगा
कल-रव-निरत कलोलिनि गंगा
भानु - प्रताप - चमत्कृत अंगा
तेज - पुञ्ज तप - वेश
जय जय प्यारा भारत देश

*

जगमें कोटि कोटि जुग जीवै
जीवन - सुलभ अमी - रस पीवै
सुखद वितान सुकृत का सीवै
रहै स्वतन्त्र हमेश
जय जय प्यारा भारत देश

श्रीपद्मकोट, प्रायग
२८. ११ १७.

—श्रीधर पाठक ।

स्वदेश-विज्ञान

जब तक तुम प्रत्येक व्यक्ति निज सत्त्व-तत्त्व नहिं जानोगे
त्यों नहिं अति पावन स्वदेश-रतिका महत्त्व पहँचानोगे
जबतक इस प्यारे स्वदेशको अपना निज नहिं मानोगे
त्यों अपना निज जान सतत शुश्रूषा-व्रत नहिं ठानोगे
प्रेम सहित प्रत्येक वस्तुको जबतक नहिं अपनाओगे
समता-युत सर्वत्र देशमें ममता-मति न जगाओगे
जबतक प्रिय स्वदेशको अपना इष्टदेव न जनाओगे
उसके धूलि-कणोंमें आत्माको समूल न मिलाओगे
पूत पवन, जल, भूमि, व्योमपर प्रेम-दृष्टि नहिं डालोगे
हो अनन्यमन प्रेम - प्रतिज्ञा - पालन - व्रत नहिं पालोगे
तन मन धन जन प्रान देश - जीवनके साथ न सानोगे
स्वोपयुक्त विज्ञान ज्ञानका सुखद वितान न तानोगे
तबतक क्योंकर देश तुम्हारा निज स्वदेश हो सक्ता है
स्वत्त्व उसीका रह सक्ता है रख उसको जो सक्ता है

श्रीपद्मकोट
प्रयाग, २६-११-१७

—श्रीधर पाठक ।

बोसगवेषणालय

१५ वृश्चिक ७४ (मार्गशीर्ष) ३० नवम्बर १६१७ का दिन भारतवर्षके ही नहीं, वरन् सारे संसारके वैज्ञानिक इतिहासमें अनन्तकालतक बड़े महत्वका दिन समझा जायगा। इसी दिन ५८ वर्ष हुए एक वैज्ञानिक महर्षिका बंगालकी पवित्रभूमिमें जन्म हुआ था और इसी दिन आज ५८ वर्ष बाद उसी वैज्ञानिक महर्षिने, जिसने जन्मसे अबतक अपना तन, मन, धन सरस्वती देवीकी सेवामें लगा रखा था अपने जीवन भरकी कमाई,अपना सर्वस्व, उसी आराध्या देवीको समर्पणकर भारत कीर्ति-रूप गवेषणालयका संस्थापन किया है इसका नाम बोस रिसर्च इंस्टिट्यूट वा बोस गवेषणालय है और कलकत्तेमें (६३) अपर सरक्युलर रोड-पर इसका भव्य भवन है।

जिन विज्ञानाचार्य डा० सर जगदीश चन्द्र वसुने सारे संसारको अपने आविष्कारोंके अद्वितीय और अनुपम प्रकाशसे चौंधिया दिया है, जिन्होंने सच्चा वैज्ञानिक दिग्विजय करके भारतका मुख उज्ज्वल किया है और वेदान्तके एकताके सिद्धान्तका प्रचार प्रायोगिक विज्ञानकी कसौटी-पर परखकर किया है उन्हीं महर्षिप्रवरने प्राकृतिक विज्ञानकी इस नयी और महत्वपूर्ण शाखाके निरन्तर अनुशीलनकेलिए इस अनुसन्धानशालाका निर्माण किया है।

३० वर्ष हुए विज्ञानाचार्य वसु इङ्गलैण्डसे लौटनेपर कलकत्तेके प्रेसीडेन्सी कालेजमें अध्यापक नियुक्त हुए थे। उस समय वहांकी प्रयोगशालामें साधारण परीक्षाओंकेलिए भी पर्याप्त यंत्र न थे। कुशल यंत्रकारोंका मिलना तो और भी कठिन बात थी। परन्तु वि० वसुके हृदयमें यह लौ लगी हुई थी कि जहां संसारके अन्य देश विज्ञानकी उन्नतिमें सहायक हो रहे हैं, वहां संसारकी सभ्यताकी जन्मभूमि और कलाकौशलका प्राचीन केन्द्र भारतवर्ष कहीं पीछे न रह जाय। उस समयकी दशाको दोष न देकर, उन्होंने विचार किया कि मैं उन्हीं महर्षियोंकी सन्तान हूं जो साधारण साधनोंसे बड़े बड़े महत्वके तथ्योंका पता पा लेते थे। अतः सामग्रीकी कमी मेरे मार्गमें बाधक न होनी चाहिए और यह बात मनमें ठान ली कि मैं भी भारतकी उज्ज्वल कीर्तिकी पताका फहरानेका शीघ्र ही प्रयत्न करूंगा। यह विचार नित्यप्रति दृढ़ होता गया। सामग्री प्रस्तुत करनेका भी प्रयत्न जारी रहा। अपने हाथोंसे और अपनी ही निर्मित युक्तियोंसे भांति भांतिके यंत्र तैयार करने लगे। सात वर्षमें प्रयोगशालाकी दशा इतनी सुधर गयी और काम भी उतना होने लगा जितना एक व्यक्तिके भक्तिभाव और निश्चित संकल्पसे हो सकता है। ईश्वरकी दयासे छः मासमें ही विद्युत्तरंगोंके सम्बन्धमें बहुतसे कठिन साध्योंको उन्होंने हल कर डाला, जिसकी केल्विन, रेले प्रभृति वैज्ञानिकोंने मुक्त कंठसे प्रशंसा की। विद्युत्तरंगोंपर ही अनुसन्धान करते करते यह अनुभव हुआ कि बेतारका ग्राहक भी काम करते करते थक जाता है और आराम करनेके बाद फिर पहलेकी नाईं काम देने लगता है। ऐसे ही अनेक अनुभवोंके बाद डा० वसुने लंडनकी जगत्प्रसिद्ध रायल सोसाइटीके सम्मुख इसी विषयकी खोजपर एक व्याख्यान भी दिया। जो शरीरविज्ञानवेत्ता इस व्याख्यानमें उपस्थित थे, उन्हें यह बात असह्य हो गई कि एक साधारण भौतिकशास्त्री शरीर शास्त्रमें बिना रोक टोक मनमाने अनुसन्धान करने लगे। अतः व्याख्यानके अन्तमें उन्होंने वसुको धृष्टतापूर्वक यह उपदेश देनेका दुःसाहस किया कि भविष्यमें वह अपने विषयके बाहर जानेका उद्योग न करें।

पाठकवृन्द! वैज्ञानिकोंमें भी जातिभेद है, जो हिन्दुओंकी वर्ण व्यवस्थासे कहीं ज्यादा कट्टर है। वि० वसुको तबसे २० बरसतक बराबर इस पक्षके वैज्ञानिकोंसे शास्त्रार्थ करते रहना पड़ा। अन्तको १६१४ में भारत सरकारकी ओरसे

वि० बसुकी दिग्विजयिनी यात्रा हुई। आपने समस्त संसारकी मुख्य मुख्य विज्ञान-परिषदोंमें और प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्याकेंद्रों तथा विश्वविद्यालयोंमें व्याख्यान दिये और प्रत्यक्ष प्रमाण देकर अपने सिद्धान्त सच्चे कर दिखाये, और भारतकी कीर्त्ति सारे संसारमें फैला कर फिर जन्म भूमिको लौट आये। शंकरने भारतके ही चारों ओर विजय किया था। जगदीशने जगतकी विजयश्री लेकर अपने शुभनामको सच्चा किया। वि० वसुको अपने जीवनभरके अनुभवसे यह स्पष्ट हो गया कि आविष्कर्ताओंको कैसी कैसी कठिनाईयोंका सामना करना पड़ता है। तभीसे उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि भावी आविष्कर्ताओंका पथ यथाशक्य सुगम करना चाहिए। इसी महा उद्देश्यकी पूर्तिके लिए सर जगदीशवसुने अपने जीवनभरकी पसीनेकी कमाई ५ लाखके लगभग सर्वस्व अर्पण कर बोस विद्यापीठ खोला है। इस विद्यापीठके खुलनेका उत्सव ३०नवम्बरको मनाया गया। इसमें बड़ी विशेषता यह थी कि प्रार्थनामात्र संस्कृतमें हुई परन्तु मंगलाचरण छोड़ शेष सब कार्य्यवाही बंगला भाषामें हुई। वि० वसुने जो वक्तृता दी उसके अन्तमें आपने यह प्रकाशित किया कि मैं इस विद्यापीठकी रचना करके पूर्णरूपेण भारतवर्षको समर्पण करता हूं। इस संस्थानसे ज्ञानकी उज्ज्वल ज्योति विस्तृत होकर समस्त विश्वके अज्ञान-तिमिरको हटाकर सत्यके पावन प्रकाशमें सभ्यताके सच्चे लक्ष्य और आत्माके अनुभव करानेमें सहायक होगी।

हमारी सर्वसाधारणसे प्रार्थना है कि इस अवसर पर १५ लाख रुपया इकट्ठा करके यह दिखला दें कि भारतवर्षमें अब भी पहलेकी नाईं वास्तविक ज्ञानका उतना ही आदर होता है, जितना जनक आदि पहले करते थे। गवर्नमेंटने भी पबलिककी उदारताके अनुकूल सहायता देनेकी प्रतिज्ञा की है।

भारत-गीत—७

जय भारत, जय जय भारत, जय
जय संसार - सुकृत - सेवन - रत,
जय जन-भार हरन-प्रेरित-मति,
परम उदार प्रेम-पूरित अति,
पर-हित-काज-त्यजित-स्वारथ, जय
जय भारत, जय जय भारत, जय

धीरज-धर, जय वीर-प्रवर, जय
कीरति-कल, जय नीति-नवल, जय
सुखद-उदय, जय सुहृद्-सदय, जय
अयि अतिशयित दयित सुहृदय, जय
जय भारत, जय जय भारत, जय

जग-भूषण, जय जित-दूषण, जय
मित-भाषण, जय शुचि-शासन, जय
सुकृत-भवन, जय प्रकृति-रमन, जय
सुछवि-फवन, जय सुरभि-पवन, जय
जय भारत, जय जय भारत, जय

ऋषि-मुनि-गन, जय कृषि-धन-जन, जय
सुमति-सदन, जय कुमति-कदन, जय
विशद-चरित, जय विभव-भरित, जय
सुख--सुखमा--चय महि- महिमा-मय
जय भारत, जय जय भारत, जय

श्रुति-पारग, जय सत-मारग, जय
जग-नागर, जय गुन-आगर, जय
आरति-हर, जय भारति-धर, जय
श्रीधर - प्रेम - पदारथ - वर, जय
जय भारत, जय जय भारत, जय

श्रीपद्मकोट,
१५, १२, १७

श्रीधर पाठक।

विज्ञानपरिषत्का चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन

कार्त्तिक कृष्णा एकादशी शनिवार (१९७४)
अर्थात् १० नवम्बर १९१७ को ५ बजे सायंकाल

प्रयाग विश्वविद्यालयके सेनेट हालमें परिषत्‌का चौथा वार्षिकोत्सव श्रीमान् माननीय सर सुन्दर-लाल, एल-एल. डी, सी. आइ. ई. (इत्यादि) के सभापतित्वमें मनाया गया। इस उत्सवमें परि-षत्‌के गण्यमान्य सभ्योंके तथा उपसभ्योंके अति-रिक्त कालिजोंके अध्यापक, विश्वविद्यालयके सदस्य, सरकारी उच्चपदाधिकारी प्रभृति अनेक सज्जन तथा विश्वविद्यालयके नये पुराने उपाधि-धारी उपस्थित थे। सभापतिकी आज्ञासे महा-मंत्री लाला सीताराम, बी. ए. ने निम्नलिखित वार्षिक रिपोर्ट पढ़ी।

"महानुभाव,

परिषत् आज चार वर्षसे कुछ अधिककी हुई। इतनी थोड़ी उम्रके विचारसे यह शिकायत करना उचित न होगा कि इसने अपने उद्देश्योंकी पूर्त्ति-में काफ़ी कोशिश नहीं की, या जिन अभावोंको दूर करनेकेलिए उसका जन्म हुआ उन्हें अबतक बिलकुल दूर न कर सकी। जो उद्देश्य उसने अपने सामने रक्खा है उसे पूरा करनेको बड़ी उम्र चाहिए। तब भी आज हम इतना ज़रूर कह सकते हैं कि इतनी छोटी उम्रमें भी अनेक कठि-नाइयोंका सामना करते हुए, अबतक बराबर वह अपना काम करती आयी है और रुकावटोंको दूर करके उसने यह दिखा दिया है कि अपनी मातृ-भाषामें वैज्ञानिक साहित्यकी कमी पूरी करना बहुतसे कारणोंसे कठिन तो है, पर असंभव नहीं है। इस कामका श्रेय उन्हीं अवैतनिक काम कर-नेवालोंको है जिन्होंने परिश्रम करनेमें ज़रा भी आगा पीछा न किया और मातृभाषाके शुद्ध अनु-राग और अविचल प्रेमके बलसे ही बराबर इस बड़े महत्वके कामको चलाते ही आये। इन काम करनेवालोंको सिवा लौकिक और पारलौकिक पुण्य और यशके हम और कोई भी बदला तन वा मन वा धनसे नहीं दे सकते। सर्वसाधारणसे भी हमको सहायता मिलती रही है और उस सहायताके लिए हम कृतज्ञ हैं, परन्तु हम फिर भी प्रार्थना करेंगे कि उसकी मात्रा बढ़ानेकी ज़रू-रत है। यह सर्वसाधारणका ही बल है जिससे हमारी स्थिति है, और हमको दृढ़ आशा है कि हमारा मातृभाषा-प्रेमियोंपर भरोसा करना निष्फल न होगा।

विज्ञान

विज्ञान नामक हिन्दीका वैज्ञानिक पत्र आज ३ बरससे निकल रहा है। अबतक इसमें कौन चौपेजीके १५०० पृष्ठके लगभग निकल चुके हैं, जिनमें विज्ञानके सभी विषयोंपर छोटे बड़े, सरल कठिन, सब तरहके लेख हैं। जब हम दूसरी भार-तीय भाषाओंकी ओर आंख उठाकर देखते हैं तो आज, इतने थोड़े दिनोंमें, राष्ट्र-भाषा हिन्दीका वैज्ञानिक साहित्यमें ऊंचा आसन दिखाई पड़ता है। भारतीय भाषाओंमें विज्ञान अपने ढंगका और अपने विषयका अकेला पत्र है और जितना वैज्ञा-निक साहित्य परिषत्‌ने प्रकाशित किया है उसे देखकर यह हम मुक्त-कंठसे कह सकते हैं कि इस कार्य्यमें हमें भविष्यमें बड़ी सफलता होगी और मातृभाषाकी सेवामें जो रुकावटें आज दिखाई पड़ती हैं जल्द ही दूर हो जायंगी। विज्ञानके विषयमें एक और गौरव परिषत्‌को प्राप्त है। वह यह है, कि विज्ञानके अधिकांश ग्राहक और पढ़नेवाले देहातके लोग हैं। इस प्रकार विज्ञान जनताकी शिक्षाका एक महत्वका यंत्र हो रहा है। विज्ञानके इस पहलूपर विचार करके प्रसन्न होते हुए यह कभी न भूलना चाहिए कि जहां साधा-रण लेखोंकेलिए मासिकपत्र अपने लेखकोंको पुरस्कार और सम्पादकोंको वेतन देते हैं, वहां हमारे वैज्ञानिक लेखकोंको और अवैतनिक सम्पा-दकको सेवाका यश और कोरे ज़बानी धन्यवादके सिवा और कुछ नहीं मिलता। काग़ज़ वग़ैरा सभी चीज़ें साथ ही साथ इतनी मंहगी हो गयी हैं कि अनेक पत्रोंका अन्त हो गया और प्रायः सबने अपने कलेवर बदल दिये, दाम बढ़ा दिये। परंतु परिषत्‌के सहायकों और काम करनेवालोंके

स्वार्थत्यागके बलपर हम विज्ञानको ज्योंका त्यों निकाल रहे हैं और चन्दा तीन ही रुपये है। इस वर्ष हमको यही कठिनाइयां देखकर परिषत्के साधारण कोषसे एक रकम अलग करनी पड़ी कि विज्ञानकी आर्थिक कमी पूरी की जाय।

पुस्तकें

विज्ञानमें छपे हुए महत्त्वपूर्ण लेखोंको पुस्तकाकार छपवानेका प्रबन्ध भी गत वर्ष किया गया। अबतक हमने गुरुदेवके साथ यात्रा, चुम्बक, स्वर्णकारी, केला, पशुपक्षियोंका शृंगार रहस्य यही पांच पुस्तकें इस रीतिपर छापी हैं। इनमें पहली तो (Modern Review)में छपी हुई विज्ञानाचार्य्य सर जगदीश वसुके वैज्ञानिक दिग्विजय सम्बन्धी लेख मालाका अनुवाद है जिसमें इस भारतीय विद्याके आविष्कारकके सम्बन्धमें अनेक जानने योग्य बातें तथा युरोप अमेरिकाके विद्यापीठोंके सम्बन्धकी मनोरंजक चर्चा है। यह पहला भाग है। दूसरे भागका भी काम आरंभ हो गया है। एक पुस्तक वसु महोदयके आविष्कारोंके संक्षिप्त वर्णनमें भी लिखी जा रही है। दिग्विजय सम्बन्धी पुस्तकका उर्दू अनुवाद भी हो रहा है। चुम्बक नामक ग्रंथका विषय नामसे ही व्यक्त है। तीसरी पुस्तक सोनेके वर्णन तथा सुनारोंके कामकी है। चौथीमें केलेके पेड़से हम क्या क्या काम ले सकते हैं यह बातें दिखायी गयी हैं। पांचवीं पुस्तकके नामसे ही विषय प्रकट है। इसका उर्दू अनुवाद जीनते वहश वो तयरके नामसे हमारे मित्र प्रो० नासिरीने किया है।

कई अनिवार्य्य कारणोंसे विज्ञान प्रवेशिकाके दूसरे भागके निकालनेमें देर हो गयी, परन्तु इस वर्ष उसे भी परिषत्ने प्रकाशित कर दिया। यह पुस्तक विज्ञानके सुपरिचित लेखक श्री बाबू महावीरप्रसाद जो विशारदने बड़े परिश्रमसे लिखी। स्कूलोंमें आठवें दरजेके समस्त सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक विज्ञानपर और मैट्रिक तथा स्कूललीविंग वालोंकेलिए भी अधिकांश विषयमें यह पुस्तक पर्य्याप्त होती है और कई बातोंमें इन्हीं कक्षाओंकी अन्य पुस्तकोंसे कहीं अच्छी और अधिक उपयोगी है। इसमें २१६ पृष्ठ हैं और ६२ चित्र हैं। मूल्य १) मात्र रक्खा गया है। हम अपनी पुस्तकोंके दाम इतना कम रखते हैं कि उनकी बिक्रीसे हमको केवल अपनी पूंजी वापिस मिलती है। अतः इन पुस्तकोंको अपनी आमदनीका वसीला हम नहीं समझ सकते।

अबतक हमने प्रारंभिक विज्ञानकी कुल चार पुस्तकें प्रकाशित की हैं जिनमेंसे दोके उर्दू संस्करण भी निकल चुके हैं भविष्यमें और भी विषयोंपर आरंभिक पुस्तकें निकालनेका संकल्प है जिसमें जनसाधारणकी सहायता अपेक्षित है।

उर्दूका मासिक पत्र

इस वर्ष भी हम उर्दूका पत्र न निकाल सके। यद्यपि स्थानीय नयी रोशनी नामक पत्रसे यह तय हो चुका था कि १५० ग्राहक मिल जानेपर पत्र निकलने लगेगा, परन्तु खेद है कि उर्दूके इतने ग्राहक भी हम इकट्ठा न कर सके। इस सम्बन्धमें हमारे मंत्रिमंडलमें प्रो० नासिरीके सिवा इस कार्य्यकेलिए कोई अधिक उपयुक्त नहीं है। हमें आशा है कि दोबारा कोशिश करनेमें उनकी मददसे हमें कामयाबी ज़रूर होगी और उर्दूमें भी इसी ढंगका पत्र निकलने लगेगा। यहां हमें खेदके साथ कहना पड़ता है कि उर्दूके साहित्यिक इस मामलेमें हमारी मदद करनेमें कोताही कर रहे हैं। उर्दू और हिन्दीका शरीर एक ही है, इंद्रियां एक ही हैं, पोशाकमें ही फ़रक़ है। उर्दूकी तरक्कीमें हिन्दीकी उन्नति है और हिन्दीकी उन्नतिमें उर्दूको भी फ़रोग़ है। हमारी समझमें नहीं आता कि उर्दूके बिहीख़्वाह इस कारे अहममें मदद देनेमें क्यों कोताही करते हैं। हमको प्रो० नासिरी जैसे काम करनेवाले चार पांच भी मिल जायं तो उर्दूका काम आसानीसे चल निकले।

परिषत्के अंग

इस वर्ष हमारे सभ्योंकी संख्यामें ५ जगह

खाली हुई हैं, जो बहुत जल्द पूरी हो जायंगी। परिसभ्योंकी संख्या बढ़ती हुई दिखाई नहीं देती। इसका कारण यही जान पड़ता है कि विज्ञानके ग्राहकोंको हमने वही सुभीते दे रक्खे हैं जो परिसभ्योंको प्राप्त थे। इस विषयमें नियमोंका संशोधन अंतरंग सभाके विचाराधीन हैं। परिषत्के साधारण अधिवेशन इस वर्ष ६ हुए और अंतरंग सभाके भी ६ ही हुए, जिनमें सभ्यों और परिसभ्योंकी उपस्थिति यथेष्ट थी। हमारे कोष-विभागकी रिपोर्ट जो कोषाध्यक्ष महोदयने दी है इसी विवरणके साथ सम्मिलित है। हमारी स्थायी सम्पत्ति अत्यन्त थोड़ी है क्योंकि हमारे स्थायी सभ्य भी थोड़े हैं। स्थायी सभ्योंकी संख्या बढ़नेसे ही हमारा स्थायी कोष बढ़ सकता है। इस बातपर हमारे साधारण सभ्योंको ध्यान देना चाहिए कि एक तो वह थोड़ी रकममें निवट जाते हैं दूसरे वह हमारी स्थायी सम्पित्तिको बढ़ाते हैं। हमें आशा है कि हमारी इस प्रार्थनापर हमारे सभ्यलोग अवश्य ध्यान देंगे।

सुबोध व्याख्यान

इस बार अनेक कारणोंसे व्याख्यानोंकी संख्या बहुत कम हो गयी। इस बार म्योर कालिजमें हिन्दीके कुल पांच व्याख्यान हुए जिनमें प्रयोग और चित्र दोनों दिखाये गये। उसकी तालिका यह है—

तिथि	विषय	व्याख्याता	स्थान
१६ जनवरी। १७	बीजपरम्परा	प्रो० कर्म्मनारायण M. Sc.	म्योर कालिज प्रयाग
२२ फ़रवरी। १०	यात्राके सुभीते	प्रो० शालग्राम भार्गव M. Sc.	गवर्नमेंट हाई स्कूल, प्रयाग
२४ फरवरी। १७	नमक और नमककीखानें	प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव M. Sc.	म्योर कालेज प्रयाग
२५ अगस्त। १७	बिजली की रोशनी	प्रो० देवेन्द्रनाथपाल M. A.	,,
२२ सितम्बर। १७	हरिण गैस	प्रो० सतीशचन्द्रदेव M. A.	,,
१३ अक्टूबर। १७	तैल और स्नेह	बा० धीरेन्द्रनाथ सिंह M. Sc.	,,

इन व्याख्यानोंकी सफलतामें प्रिंसिपल तथा म्योरकालिजके विज्ञानके प्रोफ़ेसरोंकी सहायताके लिए परिषत् कृतज्ञ है।

हमारी आवश्यकताएं

हमारी आवश्यकताएं नित्यप्रति कामके बढ़नेसे बढ़ती ही जाती हैं। वर्त्तमान युग उत्तरोत्तर वृद्धिका युग है। इसमें आज हम दूने हों तो कल चौगुने और परसों अठगुने होना ही पड़ता है, नहीं तो जीवन-संग्राममें हम पिछड़े विना नहीं रह सकते। हमारी आवश्यकताएं इसीलिए बढ़ती जाती हैं। विज्ञान इतना परिवर्द्धनशील है कि यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि कल संसार कितनी उन्नत अवस्थामें होगा। इसीलिए हमको जातीय दृष्टिसे बड़ी तय्यारीकी ज़रूरत है। पारसाल हम कह चुके हैं कि हमको अत्यन्त संकुचित दृष्टिसे भी कमसे कम ४००००) चाहिए। हमने लाहौरकी परिषत्की दशा दिखायी थी जिसने मातृभाषाकी थोड़ीसी ही सेवा की है, परन्तु उसके पास अपना घर अपनी सम्पत्ति है। सरकारी मदद भी है। कलकत्तेका Indian association for cultivation of science एक अच्छी हवेलीमें स्थित है जो उसकी सम्पत्ति है। उसके पास कई लाखकी प्रयोगशाला है, कई लाख बंकमें हैं और अनेक छात्रवृत्तियां भी देता है। इतनेपर भी मातृभाषाकी सेवा उसने कुछ भी नहीं की। हमारी परिषत्ने इन चार बरसोंमें मातृभाषाकी सेवा करके अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है, काम करके दिखला दिया है। क्या वह भी यह आशा नहीं कर सकती कि देश उसकी जड़ मज़बूत कर दे, उसकी आवश्यकताओंको पूरा करे?

हम विज्ञानकी प्रत्येक शाखाके लिए एक एक छोटी प्रयोगशाला जिसमें सर्वसाधारण प्रयोगोंसे लाभ उठा सकें, एक हाल, एक कारखाना, एक छापाखाना , और एक आफ़िस, इतने विभागके लिए एक अच्छा स्थान चाहते हैं, जिसकी तैयारीमें ही ४०,०००) से कम न लगेगा। १०,०००) सामग्री ५०००), छापाखाना ५०००), पुस्तकालय तथा ४००००) स्थायी कोषके लिए रखना बहुत नहीं है। इस प्रकार कमसे कम एक लाखकी सम्पत्ति बिना हमारा यह अत्यन्त उपयोगी काम चल नहीं सकता। इसके लिए हमको सबकी सहायता अपेक्षित है। हम जानते हैं कि देश इस समय युद्धके कारण खोखला हो रहा है। रुपया अन्य-कामोंमें भी लगाया जा चुका है। परन्तु हमारा कार्य्य विज्ञानका प्रचार है, रोटी और धन कमानेका अन्तिम साधन है, इसी विज्ञानके बलसे अन्य देशोंका सिर ऊंचा है। हम भी अपना सिर ऊंचा रखना चाहें तो उचित है कि विज्ञानके प्रचार और प्रयोगकेलिए आधे ही पेट खांय पर इस कार्य्यमें अवश्य सहायता दें।"

अध्यापक गोपालस्वरूप भार्गवके प्रस्ताव, अध्यापक रामदास गौड़के अनुमोदन तथा सभाकी सम्मतिसे यह वार्षिक विवरण स्वीकृत हुआ।

इसके पीछे सभापतिकी आज्ञासे हिंदू विश्वविद्यालयके अध्या० नगेन्द्रचन्द्र नाग M.A.F.I.C. ने अपना लिखित व्याख्यान पढ़ा। यह व्याख्यान "प्राचीन और आधुनिक रसायनके"शीर्षकके साथ विज्ञान के गत अंकमें पाठकगण पढ़ चुके हैं।

इस व्याख्यानके समाप्त होनेपर निम्न लिखित मन्तव्य काशीके श्रीमान् बाबू शिवप्रसाद जी गुप्तने उपस्थित किया।

दूसरा मन्तव्य-यह परिषद् निश्चय करती है कि अन्तरङ्ग सभाद्वारा निर्धारित कार्याधिकारियों और अन्तरंगियोंकी गत अक्टूबरकी सूचीके अनुसार जिसके अनुकूल परिषत्के अधिकांश सभ्योंकी सम्मति प्राप्त हुई है, कार्य्याधिकारी और अन्तरङ्गी नियुक्त किये जायँ। निम्नलिखित सूची पढ़ते हुए परिषत्की ओरसे प्रस्तावकर्ताने अत्यन्त खेद प्रकट किया कि परिषत् अपने नियमके अनुसार परिषत्के जन्मदाता सभापति माननीय सर सुन्दरलाल महोदयको तीन वर्षसे अधिक अपना सभापति नहीं रख सकती। ऐसे अवसरपर राजा सर रामपालसिंहजीका इस स्थानको स्वीकार कर लेना परिषत्केलिए सौभाग्यकी ही बात है। सूची इस प्रकार है।

सभापति—राजा सर रामपालसिंह जूदेव, कुर्री सुदौली राज।

उपसभापति—१-५ यथा पूर्व छठे नये उपसभापति राजा सैयद अबूजाफ़र साहब बहादुर, पीरपुर।

मंत्रि मण्डल—यथापूर्व

कोषाध्यक्ष—अ० देवेन्द्रनाथ पाल, एम्० ए०

स्थानीय अन्तरंगी—१-३ यथा पूर्व।

४-अध्या० व्रजराज, बी.एस-सी.,एल-एल बी.

स्थानीय अन्तरंगी—अध्या० महाबीर प्रसाद, रायबरेली, और बाबू शिवप्रसाद गुप्त, काशी। शेष यथापूर्व।

इस प्रस्तावका अनुमोदन श्रीयुत प्रो० गोपालस्वरूप भार्गवने किया और सर्व सम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

इसके अनन्तर अ० रामदास गौड़के प्रस्ताव, प्रो० सतीशचन्द्र देवके अनुमोदन तथा सभाकी सर्व सम्मतिसे (१) माननीय पं० गोकरणनाथ मिश्र, (२) पं० इकबालनारायणगुर्टू (३) श्री बाबू श्रीप्रकाशजी, (४) अ० जगतनारायणजी, (५) अ० चुन्नीलाल साहनी तथा अ० नगेन्द्रचन्द्र नाग परिषत्के सभ्य चुने गये।

कशीके प्रोफ़ेसर चन्दीप्रसाद एम० ए० ने परिषत्की ओरसे उसका निम्नलिखित बजट स्वीकृतिके लिए उपस्थित किया। आपने इसे पढ़ते हुए सभ्यों तथा परिषत्के हितैषियोंसे अपील की कि बजटमें व्यय अटकल ५००) आयकी

अपेक्षा अधिक है जो हितैषियोंकी उदारतासे ही पूरा होना संभव है। यदि इस उदारताकेलिए हितैषीवृन्द तय्यार हों तो बजट अवश्य स्वीकार करें। बा० जगन्नाथप्रसाद बी० ए० ने इसका अनुमोदन किया और सर्वसम्मतिसे स्वीकार हुआ।

बजट १९१७—१८

आय		व्यय	
२६२॥≡)।	गतवर्षकी बचत	४०)	रिपोर्टकी छपाई
७५०)	चन्दा	३०)	कलम कागज़ स्याही आदि
२००)	पुस्तकोंकी बिक्री	३००)	वेतनादि
१५)	सूद	७५)	डाकव्यय
१२२७॥≡)।	योग	३६०)	विज्ञानका चन्दा
५३७।)॥।	विशेष चन्दोंसे पूरा किया जायगा	६०)	पुस्तकें
		५०)	चित्रकाखंडों
१७६५)	समस्त आय।	२००)	विज्ञानकी सहायता
		६००)	पुस्तकोंकी छपाई
		५०)	विविध
		१७६५)	समस्त व्यय

इसके अनन्तर हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक प्रयाग के ला० सीताराम बी० ए०, एफ० ए० यू० ने निम्न लिखित मन्तव्य उपस्थित किया जिसका अनुमोदन उचित शब्दोंमें परिषत्‌के सभ्य तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रधान मंत्री बा० पुरुषोतम दास टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ने किया। यह मन्तव्य भी सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

पाँचवाँ मन्तव्य—यह परिषद् म्योर सेन्ट्रल कालिजके प्रिंसिपल तथा भौतिक और रसायन-शास्त्रके प्रोफ़ेसरोंको इसलिए हार्दिक धन्यवाद देती है कि उन्होंने स्थान और सामग्रीसे बराबर परिषत्‌के व्याख्यानोंकी सहायता की है और आशा है कि उनकी सहानुभूति और सहकारिता भविष्यमें भी इसी प्रकार हमको कृतज्ञ होनेका अवसर देगी।

निम्न लिखित छठा मन्तव्य अध्यापक रामदास गौड़ने उपस्थिति किया और प्रो० शलिग्राम भार्गवके अनुमोदन तथा सर्व सम्मतिसे स्वीकृत हुआ—

छठा मन्तव्य—यह परिषद् विज्ञानके वर्त्तमान सम्पादक तथा लेखकोंका उनके अवैतनिक परिश्रम तथा मातृभाषा सेवाके लिए, अवसर-लब्ध कोषाध्यक्ष प्रो० व्रजराजजीका उनकी सहानुभूति और सेवाके लिए, बा० महावीरप्रसादजी (रायबरेली) का विज्ञान-प्रवेशिका द्वितीय भाग लिखकर परिषत्‌को दानकर देनेके लिए तथा लेखा परीक्षक बा० प्यारेलाल केसरवानी तथा श्री पं० श्रीधर पाठक जीका अवैतनिक परीक्षाके लिए, हार्दिक धन्यवाद देती है और इन सज्जनोंसे भविष्यमें भी इसी प्रकार सहानुभूतिकी आशा रखती है।

मन्तव्योंके समाप्त हो जानेपर माननीय सभापति महोदयने उपसभापतियों, सभ्यों तथा उपस्थित सज्जनोंको और विशेषतः विश्वविद्यालयके पुराने तथा नये उपाधिधारियोंको सम्बोधन करके कहा

"विश्वविद्यालयके इस ऐतिहासिक मन्दिरमें आज उपाधिवितरणके बाद ही परिषत्‌का वार्षिक अधिवेशन होना बड़े महत्त्वकी बात है। आज आप लोगोंमेंसे अनेक नये स्नातकोंने विश्वविद्यालयसे एक एक कागज़का टुकड़ा पाया है, जिसपर कुछ शब्द अंकित हैं और हमारी परिषत् भी शब्द मात्रसे मातृभाषाके सेवियोंको आज धन्यवाद दे रही है। इन दोनोंमें बहुत अन्तर नहीं है क्योंकि दोनों घटनाओंका आपके जीवनसे बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज उपाधि देते हुए वैसचैंसलरने आपसे बारंबार मंत्रकी नाईं जो वाक्य कहे हैं, बड़े सारगर्भित हैं और परिषत्‌से उनका बड़ा भारी सम्बन्ध है। उन्होंने कहा कि आप जीवनभर अपनी

इस उपाधिसे प्राप्त योग्यताको स्थिर रक्खें एवं सदैव इसके उपयुक्त ही सदाचरण करें। अब विचारनेकी बात है कि उसके अनुकूल और उपयुक्त आचरण क्या हैं और उस योग्यताको स्थायी रखनेके क्या साधन हैं? आपलोगोंने पाश्चात्य विद्याओंमें भारी योग्यता सम्पादन की है। इस योग्यताको स्थायी रखनेका उपाय पश्चिमकी नकल करना अथवा पाश्चात्योंकीसी वेषभूषा बनाना नहीं है। इस योग्यताको चिरस्थायी करनेका एकमात्र उपाय यही है कि आप लोग पाश्चात्य विद्याओंको अपनी मातृभाषाकी पोशाक पहनावें, उन्हें स्वदेशी बनावें, उनका ऐसा रूपान्तर वरन् जन्मान्तर कर दें कि वह सारी विद्याएं स्वदेशी वा भारतीय हो जायं। आपका बड़ा भारी और आवश्यक कर्त्तव्य यही है कि अपनी मातृभाषामें इन विद्याओंको सुलभ और सुगम करके इनका प्रचार करें और अपने भाइयोंको भी इनसे लाभ पहुंचावें। परिषत्के स्थापनका और आजके अधिवेशनके इसी स्थानपर होनेका यही विशेष उद्देश्य है।

देखिये, हम सबोंको भगवानने ऐसे देशमें उत्पन्न किया जहांकी धरती धन-धान्यसे सम्पूर्ण है, जहांका जल वायु समस्त सम्पत्तियोंको उपजानेके लिए अत्यन्त अनुकूल है। अबतक हम प्रकृतिके भरोसे ही निश्चिन्त रहे। परन्तु जिन देशोंमें प्रकृति इतनी अनुकूल नहीं है, विज्ञानके बलसे उन्हीं सम्पत्तियोंको उपजाकर पाश्चात्योंने हमारे व्यापारको तहस नहस कर दिया। भारतवर्षके गरम जल वायुमें नीलकी खे ी बड़े जोरोंपर थी। इस खेतीमें भारतको करोड़ों रुपयेोंकी आमदनी होती थी। समझा जाता था कि भारतवर्षको छोड़ और कोई देश नीलका रोजगार नहीं कर सकता। यह हमारा ही इजारा था। सारे संसारको हमारे ही नीलसे रंग मिलता था। ठंडा देश नील उपजानेमें असमर्थ था। पर २५ बरसके लगभग होते हैं कि जर्म्मनी जैसे पालेके देशमें बिना खेती बारीके शुद्ध विज्ञानके बलसे प्रयोगशालामें नील बनायी जाने लगी और भारतवर्षका व्यापार चौपट हो गया। इसमें लाखों बन विगड़ गये। शकरके व्यापारकी भी यही दशा हो गयी। यदि हम विज्ञानके क्षेत्रमें पक्के पोढ़े होते, हम भी औरोंका व्यापार अपनी मुट्ठीमें कर लेते। विज्ञानके बलसे जिस प्रकार वैज्ञानिकने प्रकृतिपर विजय प्राप्त की है, प्रकृतिके सहारे ही जीनेवालोंपर भी उसके विजयका डंका बज गया। इसीलिए अब तक हम न संभले तो अब भी हमें सँभल जाना चाहिए। परिषत्ने अबतक जो कुछ किया है वह आपलोगोंके सामने इस बातका नमूना है कि दो चार इने गिने स्वार्थत्यागी काम करनेवाले कितना कर सकते हैं और यदि आप सरीखे विद्वान लोग सहकारिता करें तो कितनी जल्दी देशका उद्धार हो सकता है।"

भारत-गीत—८

भारत पै सैंयां मैं बलि बलि जाऊं
बलि बलि जाऊं, हियरा लगाऊं
हरवा बनाऊं, घरवा सजाऊं
मेरे जियरवाका, तनका, जिगरवाका,
मनका, मँदिरवाका, प्यारा बसैया
मैं बलि बलि जाऊं
भारत पै सैंयां मैं बलि बलि जाऊं

*

भोली भोली बतियां, साँवली सुरतिया
काली काली जुल्फ़ोंवाली मोहनी मुरतिया
मेरे नगरवाका, मेरे डगरवाका,
मेरे अँगनवाका, कारा कन्हैया
मैं बलि बलि जाऊं
भारत पै सैंयां मैं बलि बलि जाऊं

श्रीपद्म कोट
१५-१२-१७

—श्रीधर पाठक

विज्ञान परिषद्‌का चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन

[पृष्ठ १४४ से आगे]

सभापतिने विराट करतलध्वनिमें अपना आसन ग्रहण किया। तदनन्तर महामहोपाध्याय डा० श्री गङ्गानाथ झाने व्याख्याता महोदय तथा माननीय सभापतिजीको धन्यवाद देनेका प्रस्ताव उपस्थित किया, श्र० सतीशचन्द्रदेवने अनुमोदन तथा समस्त सभाने हर्षध्वनिसे इसका समर्थन किया। प्रस्तावकर्त्ताने कहा कि परिषत् का यह चौथा वर्ष है। "पंचवर्षाणि लालयेत्" के अनुसार अभी एक वर्ष और इसके लाड प्यार और दोषोंको क्षमा करनेका रह गया है। जब पांचवर्षके अनन्तर हम "दश वर्षाणि ताडयेत" की सीमामें परिषत्‌का "उपनयन" करेंगे हमारे ऊपर परिषत्‌का दायित्व अधिक बढ़ जायगा। साथ ही बड़े बच्चेके पालन और शिक्षाका भार भी आप लोगोंपर पूरा पूरा ही पड़ेगा और आप लोग उसके दोषोंपर उसका ताड़न भी करेंगे। ऐसी दशामें सबको-परिषत् तथा पबलिक दोनों-को इस बढ़े हुए दायित्वके लिए तय्यार हो जाना चाहिए।

सभापति महोदयने व्याख्याताको धन्यवाद देकर सभाका विसर्जन किया।

—मंत्री

समालोचना

१—**मगरा मेरवाड़ाका इतिहास**—लेखक और प्रकाशक पं० शिवप्रसाद त्रिपाठी, रजिष्ट्रार, कानूंगो, ब्यावर [राजपूताना]। आकार रायल अठपेजी, पृष्ठ संख्या १०४

इस पुस्तकका नाम उसके केवल एक अंशका द्योतक है, वास्तवमें मगरा-मेरवाड़ा सम्बन्धी सभी बातोंका इसमें थोड़ा बहुत उल्लेख है। वहांका इतिहास, भूगोल, निवासियोंको रस्म रिवाज और उनकी विविध जातियोंका वर्णन इसमें सम्मिलित हैं। यह सब बातें (anthropology) मनुष्य-विज्ञानके प्रेमियोंको बड़ी रोचक होंगी। ऐसी पुस्तकें यदि अन्य प्रान्तोंके बारेमें लिखी जायं तो बड़ा अच्छा हो। अंग्रेज़ीमें हिन्दुस्थानियोंकी बनाई हुई इस विषयकी पुस्तकें बहुत हैं परन्तु हिन्दीमें बहुत कम। इस अभावको दूर करनेकी सभी चेष्टाएँ सराहनीय हैं।

२—**धारराज्यका इतिहास**—रचयिता और प्रकाशक, पं० नन्दकिशोर द्विवेदी, हेडमास्टर, हिन्दी मिडिल स्कूल, धार। पृष्ठ संख्या १६१। मूल्य ॥≈)

प्रत्येक जाति और देशको अपना इतिहास जानना परमावश्यक है। जो लोग देशी रजवाड़ोंमें रहते हैं, उन्हें भारतवर्षके अतिरिक्त अपने राज्य-का भी इतिहास जानना चाहिये। जिन जिन वीरात्माओंको राज्य संस्थापन करनेका सौ-भाग्य प्राप्त हुआ था, उनके जीवनका प्रायः कोई न कोई मुख्य उद्देश था। वह उसी उद्देशकी पूर्तिके लिए और सिद्धान्तोंके अनुशीलनके लिए आजन्म प्रयत्न करते रहे। इसीसे प्रत्येक राज्यकी भिन्न भिन्न परम्परागत रीतियां tradition हैं।

अभीतक रजवाड़ोंमें उनके अनुसार काम होता है। इन परम्परागत रीतियों और नीतियों-को जाने बिना और उनके अनुसार काम किये बिना जीनेका लुत्फ नहीं; यही ऐसे इतिहास ग्रंथोंका उपयोग है।

समालोच्य पुस्तकके पढ़नेसे धार राज्यके इतिहासका स्पष्ट ज्ञान हो सकता है। पुस्तक बड़ी योग्यता और परिश्रमसे लिखी गई है। प्रत्येक पुस्तकालयको इस पुस्तककी एक प्रति रखनी चाहिये। हमें पूरी आशा है कि धार राज्यके स्कूलोंमें यह पुस्तक अवश्य पढ़ाई जायगी।

—विशनलाल

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग—दूधकी शुद्धता, बनावट, और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति।). २-ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति।-). ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति॥।). ४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५-सनातनधर्म रत्नत्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धी।). ६-कागज़ काम-रद्दीका उपयोग-) ७-केला—मूल्य -) ८-सुवर्णकारी—मूल्य।)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छपरहे हैं। खेत (कृषिविद्या), कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगी सूत्र (ज्योतिष), रसरत्नागर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जारहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—गंगाशंकर पचौली—भरतपुर

हमारे शरीरकी रचना

कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसे अपने घरका पूरा पूरा हाल न मालूम होगा। पर ऐसे कितने मनुष्य हैं कि जिन्हें अपने असली घर (शरीर) का पूरा ज्ञान है। शरीरकी रचनासे पूरे परिचित न होनेके कारण हम अपने नित्य जीवनमें बड़ी बड़ी भूलें करते हैं और अपने स्वास्थ्यको बिगाड़ डालते हैं। अतएव यह परमावश्यक है कि हम अपने शरीरकी रचना भली भांति जानें। इसका सहज उपाय डा० त्रिलोकीनाथ रचित "हमारे शरीरकी रचना" नामक पुस्तक पढ़ना है।

पुस्तकमें २६८ पृष्ठ हैं और ५९ चित्र हैं। मूल्य केवल २।); विज्ञानके ग्राहकों और परिषद्के सदस्योंको २) रुपयेमें दी जायगी।

मिलने का पता—मंत्री—विज्ञानपरिषद्, प्रयाग।

बच्चा

[लें० कप्तान कुरैशी, अनु० प्रोफ़ेसर करमनारायण, एम. ए.]

देश भक्तो! आपको मालूम है कि सं० १९११ में ९१ लाख बच्चे पैदा हुए और उनमेंसे १८$\frac{3}{4}$ लाख अर्थात् पांचवां भाग एक वर्षके होनेके पहले मर गये। इस कुदशाका सुधार यदि करना है तो गृहदेवियोंको बालरक्षाके नियम सिखलाइये।

बच्चोंके सम्बन्धमें जितनी बातोंका जानना आवश्यक है, वह सब बातें इस पुस्तकके पढ़नेसे ज्ञात होंगी। अतएव इस पुस्तकका पढ़ना प्रत्येक गृहस्थके लिए आवश्यक है।

पुस्तकका मूल्य १)

मंगानेका पताः—प्रोफेसर कर्मनारायण एम-एस-सी. ज्योर्ज टौन, प्रयाग।

यह दवा बालकोंको सबप्रकारके रोगोंसे बचाकर उनको मोटा ताज़ा बनाती है।
क़ीमत फ़ी शीशी ॥।)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा क़ीमत फ़ी शीशी।)

मंगानेका पता—
सुख-संचारक कंपनी मथुरा

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषत्- प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ३४ Reg. No. A-708.

भाग ६ मकर, १९७४. January, 1918. संख्या ४

Vol. VI. No. 4

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक–गोपालस्वरूप भार्गव

विषय–सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [१ प्रतिका मूल्य ।)

बच्चा

[ले० कप्तान कुरैशी, अनु० प्रोफ़ेसर करमनारायण, एम. ए.]

देश भक्तो ! आपको मालूम है कि सं० १९११ में ९४ लाख बच्चे पैदा हुए और उनमेंसे १८$\frac{३}{४}$ लाख अर्थात् पांचवां भाग एक वर्षके होनेके पहले मर गये। इस कुदशाका सुधार यदि करना है तो गृहदेवियोंको बालरक्षाके नियम सिखलाइये।

बच्चोंके सम्बन्धमें जितनी बातोंका जानना आवश्यक है, वह सब बातें इस पुस्तकके पढ़नेसे ज्ञात होंगी। अतएव इस पुस्तकका पढ़ना प्रत्येक गृहस्थके लिए आवश्यक है।

पुस्तकका मूल्य १) विज्ञानके ग्राहकोंको केवल ॥=) में मिलेगी।

मंगानेका पताः—

प्रोफेसर करम नारायण,

एम. एस-सी.,

ज्योर्ज टौन, प्रयाग।

विज्ञान परिषद्-प्रयाग द्वारा प्रकाशित अपने ढंगकी अनूठी पुस्तकेंः—

विज्ञान परिषद् ग्रंथ माला-महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए., डी. लिट् द्वारा सम्पादित।

१—**विज्ञान प्रवेशिका** भाग १—ले० रामदास गौड़, एम० ए० तथा सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. मूल्य ।)

२—**विज्ञान प्रवेशिका** भाग २—ले० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

३-**मिफताह-उल-फ़नून**-अनु० प्रोफ़ेसर सैय्यद मोहम्मदअली नामी, ... ।)

४—**ताप**-ले० प्रेमवल्लभ जोषी, बी. एस-सी. ।)

५—**हरारत** [तापका उर्दू अनुवाद]-अनुवादक प्रोफ़ेसर मेहदीहुसेन नासिरी, एम. ए. ।)

विज्ञान ग्रन्थ माला—प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. द्वारा सम्पादित

१—**पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य**-ले० सालिग्राम वर्मा, ... -)

२—**केला**-ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ... -)

३—**सुवर्णकारी**-ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

४—**चुम्बक**-ले० सालिग्राम भार्गव, ... एम. एस-सी., ... ।=)

५—**गुरुदेवके साथ यात्रा**-ले० वसीस्वर सेन, अनु० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी, विशारद ... ... ।=)

६—**क्षयरोग** ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी० एस-सी., एम. बी. बी. एस ... -)

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग ६ } मकर, संवत् १९७४ । जनवरी, सन् १९१८ । { संख्या ४

मंगलाचरण

सप्रेम खेलावति हमको माय[1] ।

दै दै नित्य नवीन खिलौने[2] राखति चित्त लुभाय
कबहूं छीनि रुलावति हमको परखति सील सुभाय
कबहूं रोवत देखि हमैं दै चुटकी देति हँसाय
हम गहि गरल अनल अहि खेलत सो राखत अरगाय*,
यह निरदयपन समुझि तासु हम रहे कठोर सुनाय
कबहुं खवाय भूलकी पुड़िया देति बिथा बिसराय
कबहुं सीख हित सुरत करावति हिय भीतरके घाय[3]
कबहुं[4] हमारे अगाह चिरावति पीर असह्य दिवाय
विकल होति दुख तें बालकके, काह करै असहाय
कर्म्मदेव[5] कविराज क्रूर कटु ओषधि दियो बताय
फल चाखत हम किये जो खोटे करम बचन मन काय
बसन[6] नवीन संवारत हम तन जीन मलीन विहाय,
निज सन्तति सिंगार निहारति वारति मन वच काय
हम अबोध सिसु कैसे समझें ममता नेह सुभाय!
जऊ[7] कपूत तऊ तेरोई राखु गोद निज लाय ॥

श्रीकाशी,
विजया १०, १९७४

—रामदास गौड़

१—माय = परमात्माकी प्रकृति । २—पुत्र, कलत्र, धन सम्पत्ति आदि सुखोंकी सामग्री । ३—घाय = घाव । ४—जौं सिसुतन व्रन होइ गुसाईं । मातु चिराव कठिनकी नाईं । (तुलसी) ॥ ५—अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म्म शुभाशुभम् । (मनु०) ॥ ६—वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानिगृह्णाति नरोऽपराणि तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही । (गीता) ॥ ७-कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति (देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्) ॥

*अरगाय = अलग करके

ताताका लोहेका कारखाना

[ले० अध्यापक दुर्गाप्रसाद, बी. ए.]

धातुओंमें सबसे अधिक खर्च लोहे-का ही है। लोहेके बिना क्या अमीर, क्या गरीब, क्या छोटा, क्या बड़ा किसीका भी काम नहीं चलता। लोहेसे अनेक प्रकारकी आवश्यक वस्तुएं बनाई जाती हैं। लड़ाईका सामान जिससे कितने मनुष्योंकी जान जाती है इसीसे बनाया जाता है और मनुष्यकी रक्षा भी इसीसे होती है। तलवार, बन्दूक, तोप, छुरी, कैंची, ताला, आरी, वर्मा, हथौड़ी, निहाई, कढ़ाई, कलछी, चिमटा, बड़े बड़े मकानों और पुलोंकेलिए बीम इत्यादि लोहेसे ही बनते हैं। यही लोहा श्रीयुत जे. एन. ताताके कारखानेमें बनता है और इसी कारखानेकी बदौलत अब भारतवासियों तथा कई अन्य देशोंको भारत-का बना लोहा मिलता है। इस कारखानेमें कई अन्य प्रकारके पदार्थ भी बन कर तैयार होते हैं, जिनमें लोहा, फौलाद, काला अलकतरा, अमोनि-यम गंधेत और गंधकाम्ल आदि प्रधान हैं। लोहे-का पत्थर गुरमासिनी नामक स्थानकी खानसे निकाला जाता है। इस पत्थरके साथ मिट्टी और बालू मिले होते हैं, जिनको बड़े परिश्रमसे अलग करना पड़ता है।

जे. एन. ताता ऐसी व्यक्तिकी आवश्यकता भारतवासियोंको अत्यन्त अधिक थी। इन्होंने अपने जन्मसे पारसियोंकी कीर्त्ति रूपी पताका भारतके व्यापार व्योममें फहरायी। मनुष्यके जीवनकेलिए जिन जिन वस्तुओंकी आवश्यकता है सभी इस पृथ्वीपर मौजूद हैं। पृथ्वीमें उत्पन्न करनेकी शक्ति है पर बिना बीज बोये अन्न नहीं देती। मि० ताता जानते थे कि कितनी ही खनिज वस्तुएं पृथ्वीमें पड़ी हैं पर इतना जाननेसे हो मिल नहीं जातीं। उसके लिए बड़े परिश्रमकी आवश्यकता होती है। लोहा कोयला मौजूद रहने पर बिना गलाये, ढलाये, पिटाये रेल तथा धरन तैयार नहीं हो सकतीं। इसमें सन्देह नहीं कि भारतकी भूमि उपजाऊ है। इसमें रत्नोंकी बड़ी बड़ी खानें हैं। भारतके जंगलोंमें कितनी ही मूल्य-वान खानें थीं पर ताताके उद्योगके पहले इनसे लाभ उठानेका प्रबन्ध न था। ताताके उद्योगसे प्रत्यक्ष है कि 'उद्योगिनं पुरुष सिंहमुपैति लक्ष्मीं' अर्थात् जो व्यक्ति जितना ही परिश्रमी होगा वह उतना ही अमीर हो जायगा, जो जाति जितनी ही अधिक परिश्रमी होती है उतनी ही धनवती होती है। अंगरेज, जापानी तथा अमेरिकन इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। भारतवर्षमें जितना अन्न उपजता है उतना और कहीं नहीं, तोभी जर्मनीका सामान्यसे सामान्य मनुष्य भारतवर्षके अच्छेसे अच्छे मनु-ष्योंकी अपेक्षा कहीं धनवान है। इसका कारण परिश्रम ही है। यदि कभी किसी प्रकार यह दुर्दशा दूर होगी तो परिश्रमसे ही। इसीलिए मि० ताताने अपना विशेष ध्यान उद्योग धन्धोंकी ओर दिया। भारतकी आर्थिक उन्नतिमें इन्होंने अकथ-नीय सहायता दी। आजकल जैसी जैसी मिलें ताता वंशके पास हैं वैसी और भारतीयके पास नहीं हैं। जिस कामको ताताने हाथमें उठाया उसको पारस कर दिखाया। इनका जन्म सन् १८३६ ईस्वीमें बरोदा राज्यके नवसारी नामक स्थानमें हुआ था। यह स्थान सूरतसे कुछ ही मील दूर है। जर्मनीमें सन् १६०४ की १६ वीं मईको इन्होंने इस असार संसारको छोड़ा परन्तु वह ऐसा नाम तथा यश छोड़ गये जिसके विका-शकी सुगन्ध कई युगोंतक फैलती रहेगी।

ताताका लोहेका कारखाना सकची नामक स्थानमें है। यह स्थान बिहार तथा उड़ीसा प्रान्त-के छोटा नागपुर विभागमें स्थित है। इसका जिला सिंहभूम है। यदि आप कलकत्तसे बम्बईकी ओर रवाना हों तो आपको पहला जंकसन खड़ग-पुर मिलेगा जहांसे गाड़ी जगन्नाथपुरीको जाती है। यदि आप और आगे बढ़ें तो दूसरा जंकशन

Industrial Chemistry औद्योगिक रसायन]

सिनीको मिलेगा। इस जंकशनसे दो स्टेशन पूर्व ही कालीमाटी स्टेशन मिलेगा। यह स्थान कलकत्तेसे १५५ मील पश्चिम है। सकचीके कारखाना देखनेवालोंको कालीमाटीसे लगभग तीन मीलके पैदल जाना पड़ता है। यदि सवारीसे जाना हुआ तो तांगा जो एक प्रकारका इक्का होता है एक रुपयेमें तीन मनुष्योंतक वहां ले जाता है। यदि अकेले जाना हुआ तब भी उतनी ही दक्षिणा देनी पड़ती है। अकेलेकेलिए सुभीता स्थानीय कम्पनीके मोटरसे जानेमें होता है। इस मोटरमें दो दर्जे हैं। पहले दर्जेकेलिए एक रुपया भाड़ा है और दूसरेकेलिए केवल आठ आने है।

इस कारखानेके निमित्त कम्पनीने २३½ वर्गमील जमीन ले रखी है जिसमें ५ वर्गमील दखली है और बाकी १८½ वर्गमील ठीका पर ली गयी है। यह स्थान आस पासके स्थानोंसे बहुत ऊंचा है और समतल भूमि न होनेके कारण बहुतसे छोटे छोटे नाले जहां देखिये वहीं निकल पड़े हैं। इससे लाभ यह है कि पानी कहीं इकट्ठा होने नहीं पाता जिससे हवा दूषित होकर रोग फैले। यह स्थान पहले जंगलोंसे परिपूर्ण था, परन्तु जंगलों तथा पहाड़ोंको क्रमशः काटकर नमूनेका नगर बनाया जा रहा है। बड़े बड़े कारखानोंकेलिए ऐसा ही स्थान अधिकतर उपयोगी होता है। शहर नये ढंगसे बसाया गया है और दो भागोंमें विभक्त है। कारखानेसे दक्खिनका भाग (Southern town) सदर्न टौन और उत्तर का भाग (Northern town) नदर्न टौन कहा जाता है। यहांवाले अशिक्षित भी इसी नामसे दोनों भागोंको जानते हैं। एन. टौनमें प्रायः विदेशी लोग यथा अमेरिकन अंगरेज इत्यादिका वासस्थान है और एस. टौनमें प्रायः भारतवासी तथा चीना लोग हैं। कम्पनीने अपने कर्म्मचारियोंकी भलाई तथा स्वास्थ्य रक्षाके विचारसे आजकलकी रीतिसे आरोग्य रक्षाका प्रबन्ध कर रखा है। उसने निकटवर्ती स्थानोंपर भी अधिकार कर रखा है जिससे हानि पहुंचानेवाले मनुष्योंको बसने न बसने देना कम्पनीके हाथमें रहे।

इस कम्पनीका नाम (Tata Iron and Steel Company) "ताता अयर्नएण्ड स्टील कम्पनी है"। इसकी रजिस्टरी सन् १९०७ ईस्वीमें हुई थी। उस समय बहुतसे (Engineers) यंत्र बनानेवाले लोग यहां पधारे थे और सबोंके विचारसे यही स्थान उपयुक्त समझा गया था और वास्तवमें वैसा ही प्रमाणित भी हुआ, क्योंकि इसके निकट ही कारखानेके आवश्यकीय पदार्थोंका ढेर है। दूसरी बात यह है कि इस्पातकाकारखाना ऐसेस्थान पर होना चाहिये जहांसे माल भेजनेमें सुभीता हो, तीसरी यह कि मजदूरोंका मिलना भी सहज है।

जिस वायुमें हम लोग रहते हैं उसमें प्रायः (Nitrogen) नत्रजन तथा (Oxygen) ओषजन अधिक परिमाणमें हैं और खनिज पदार्थोंमें भी ओषजनका अंश विशेष प्रकारसे रहता है। भट्टेके ईंधनके साथ ओषजन मिलनेसे रासायनिक क्रियाके कारण प्रचंड ताप पैदा होता है जिससे धातुका गलाना दूसरी धातुओंसे अलग करना वा साफ करना संभव है। पत्थर या कच्ची धातुसे लोहा निकालनेकेलिए प्रचण्ड आंच चाहिए। और जिन पदार्थोंमें (carbon) कर्बन अधिक हो जैसे कोयला, पत्थरका कोयला, कोक आदि, उनसे (Iron oxide) आयर्न औकसैड वा लौहओषिदके मिलनेसे बहुत ऊंचे दरजेकी आंचमें ओषजन लोहेसे अलग हो जाता है और कर्बनके साथ मिल जाता है। इसलिए पहले तो ऐसे पत्थर चाहिएं जिनमें लौह ओषिदकी बहुतायत हो जिनमेंसे लोहा निकाला जाय। दूसरे ऐसा ईंधन चाहिए जो ओषजनसे मिलकर तेज़ आंच दे सके। तीसरे (Silicon bricks) शिल-मिश्रितईंटें तथा (Magnesite bricks) मेग्नी सियम मिश्रित ईंटें चाहिएं कि तेज आंचमें गलकर सामग्रीसे मिल जुलकर काम न बिगाड़ें।

लोहिया पत्थरमें लौहओषिद्के साथ बालू, चूना और मिट्टी भी मिली रहती हैं। इन सबको गलाकर अलग करनेकेलिए (Fluxes) द्रावकोंकी आवश्यकता होती है जिनसे मिलकर यह मैल गल जाता है और अलग हो जाता है। लोहिया पत्थरमें बहुतसे पदार्थ मिले रहते हैं जो कान्ती लोहा अथवा इस्पात बनने पर भी उसमें रह जाते हैं परन्तु उनके परिमाणमें कमीवेशी हो जाती है।

अब आपको यह जानना चाहिये कि स्थानीय कम्पनी किस प्रकार और कहांसे इन पदार्थोंका संग्रह करती है।

लोहिया पत्थर बहुत अच्छे किसिमका जितना चाहिए उतना उड़ीसा विभागके मौरभंज राजमें मिला। इसीलिए कम्पनीने मौरभञ्जके राजसे इसकी खुदानको ठीकेपर ले लिया है।

ईंधनकेलिए पत्थरके कोयलेकी आवश्यकता हुई परन्तु कोयलेका भाव घटता बढ़ता देख कम्पनीने झरियामें २४ हज़ार एकड़ कोयलेकी खान लेली है। उसी ज़िलेमें कई खान कोयलेकी हैं जिनमेंसे मेलाटांड़, मलकेरा तथा छोटीडिहकी खुदान भी कम्पनीने लेली हैं।

चूनेका पत्थर द्रावक पदार्थ है। यह मध्य प्रदेशके कटनी नामक स्थानसे आता है।

डोलोमैट खनिजमें मेग्नीसियम और चूना रहनेके कारण फौलाद वा इस्पात बनानेमें इसकी बहुत आवश्यकता है। इसलिए गांगपुर राजके मानपोस स्थानसे डोलोमैट आता है।

मंङ्गनीज वा मांगल एक प्रकारकी धातु है। इसकी खान नागपुरके बालाघाट ज़िलेमें मिली है। इससे ईंट बनाकर (Open hearth steel furnace) इस्पातके खुले भट्टे में व्यवहार करनेका विचार है।

इन प्रयोजनीय वस्तुओंकी चिन्ता मि० ताता १८७५ ईस्वीसे कर रहे थे और सब सामान इकट्ठा होने पर वही हालत हुई कि "फूलत फलत भयऊ विधि बामा" अर्थात् समयसे पहले ही मि० ताताकी बिदाई इस संसारसे १९०४ ईस्वीमें हो गयी। परन्तु उनके सुयोग्य पुत्र सर दोराबजी ताता तथा सर रतन ताता और उनके बन्धुवान्धवोंने उस पुण्यात्माके आरंभ किये हुए कामको पूरा कर ही दिखाया।

अब मैं आपको कुछ कारखानेका परिचय देना चाहता हूं, जिसके लिये आप सब सज्जन कल्पना पथसे मेरे साथ चले आ रहे हैं

इस कारखानेके चारों तरफ पक्की दीवार बनी हुई है। इसकी ईंटें सब लोहेके मैल तथा चूनेसे बनाई गयी हैं। इनका रंग उजला है। इसमें प्रवेश करनेके लिये चारों दिशाओंमें फाटक बने हैं। प्रधान फाटक पश्चिम रुख है और कारख़ानेके अधिक लोग इसी रास्तेसे आते जाते हैं। फाटकपर टैम-कीपर बाबू लोग खड़े रहते हैं जो कुलियोंके टिकटोंकी जांच करते हैं। इस फाटकके उत्तर छोरपर (General office) बड़ा दफ़्तर है। यह दफ़्तर नाना प्रकारके काग़ज़ातके रखनेका स्थान है। इसके कई विभाग हैं यथा (Type Section, account section, construction department, rent section, establishment, Cashiers' office. Stores' account, freight, Cost, audit, mailing, purchasing sections, Sales account, Time office etc.) टैप, लेखा, निर्म्माण, किराया, खजाना, भंडार-लेखा, मजूरीखर्च आदिकी जांच, डाक रवानगी, खरीद, बिक्री लेखा, इत्यादि इत्यादि। इन विभागोंका कार्य्य नामोंसे जाना जाता है।

बरफ़ और सोडेका कारखाना यह स्थान बड़े दफतरसे दक्खिन है। यहांपर बर्फ, सोडा तथा लेमोनेड बनता है और कारख़ानेके लोगोंको प्रतिदिन दिया जाता है। नगरके दूकानदार यहांसे ही ले जाकर बाज़ारमें बेचते हैं।

ढलाईके कारखाने (foundries) दो हैं। पहला बड़े दफतरसे पूरब है और दूसरा सोडेके कारखानेसे पूरब है। यहां पहले देशी रेलोंके लिये

सलीपर बनते थे परन्तु आजकल उनकी मांग न होनेसे और और तरहकी चीज़ें ढाली जाती हैं। लोहेके सिवा पीतलकी ढलाई भी होती है। ढली हुई वस्तुएं प्रायः कारखानेके काममें ही आती हैं।

(Pattern stores तथा carpenter shop) नमूना घर और बढ़ईखाना ढलाईके कारखानेके मध्य उत्तर पूरब हैं। यहां सब कलपुर्जे तथा और यंत्रोंके नमूने काठके बने हुए रखे हैं। काठकी सभी चीजें बढ़ई खानेमें बनती हैं। बननेके बाद नमूने-घरमें रख दी जाती हैं। ढलनेके लिये नमूने ढलाईखानेमें जाते हैं और फिर यहीं रखवा दिये जाते हैं। जो यंत्र या पुर्जे पहले यहां नहीं ढाले जाते थे दूसरे देशोंमें ढलवानेको यही काठके नमूने भेजे जाते थे। पर आजकल सब चीजें यहां ही ढाल ली जाती हैं। लकड़ीकी चीजोंकी मरम्मत भी यहीं बढ़ई- खानेमें होती है।

यंत्रघर (machine shop)—यह स्थान ढलाईघरसे दक्खिन है। यहां हर प्रकारके कलपुर्जे, और यंत्रोंकी काटछांट तथा खराद होती है। इसमें नाना प्रकारके चक्रयंत्र, रन्दा चलानेका यंत्र, बरमा अर्थात् छेद करनेका यंत्र, सामान काटनेका यंत्र, पतलीधार तथा तेज करनेका यंत्र, खरादका यंत्र, खटका तथा नल इत्यादि सभी यंत्र और सामान सारे कारखानेकी रक्षा और मरम्मतके लिये बनते हैं। इसके एक हिस्सेमें (Electrical repair shop) बिजली-मरम्मतका कारखाना है, जहां विद्युत् सम्बन्धी सभी चीजोंकी मरम्मत होती है। इसके पच्छिम नया यंत्रघर बन रहा है। इससे और पच्छिम (Mill wright Shop) मिल-कारखाना है जहांसे कुली आवश्यकतानुसार कारखानेको बढ़ाने तथा मरम्मतके कामपर भेजे जाते हैं। इससे और पच्छिम हटकर (Beam Storage yard) अर्थात् लोहेकी बनी बीम या धरनोंके धरने उसारनेका मैदान है। मिल कारखानेसे उत्तर सोडाखार या सज्जीखारका कारखाना है जिससे पश्चिम लकड़ियोंके जमा रखनेका स्थान है। इससे बहुत पच्छिम तेलका गोदाम है। इसके सामने दक्खिन दो (Cold Saw Building) आरा-घर हैं, जहां लोहा अथवा इस्पात ठंडा होनेपर काटा जाता है। तेल घरसे पूरबवाला १५० अश्वबलका है। इससे ठीक दक्खिनवाला १०० सौ अश्वबलका है।

सामान घर वा भंडारा यंत्रघरसे उत्तर पूरब है। यहांपर कारखानेके व्यवहारकी हर तरहकी चीज़ें रहती हैं। तार, चमड़ा, जूता, सन, कपड़ा तथा पीतल इत्यादि भी यहां रहते हैं। यह सब चीज़ें कम्पनीके नोकरोंको भी उचित मूल्यपर दी जाती हैं। इसके दो मंजिलेपर (Electric Stores) अर्थात् विद्युत्के नये नये सामान रखे हैं।

लोहारखाना-यह स्थान भंडारसे पूरब है। यहां लोहेकी चीज़ोंकी मरम्मत होती है। इंजन यंत्र इत्यादि भी यहां ही मरम्मत किये जाते हैं।

रेलका इंजनघर (Locomotive Shed)—यह स्थान लोहारखानेसे सटा हुआ पूरबकी ओर है और यहांपर फालतू इंजन रहते हैं।

इंजनमें पानी लेनेका हौज़ (Locomotive tank)—यह स्थान इंजन घरसे कुछ दूर पूरब है। यहां चार पायोंपर एक बड़ा हौज रक्खा है, जहांसे इंजन पानी लेते हैं।

अब इस पंक्तिको छोड़ फिर पच्छिमाभिमुख हो यंत्रघरको लौट चलिये। भंडारसे ठीक दक्खिनमें एक मकान देखेंगे जिसमें बराबर चौकी पहरा रहता है। इसका दरवाजा पश्चिममुख है। यह Works Office अर्थात् कारखानेका दफतर है। यहांसे यंत्र तथा शिल्पविभागमें लोग भरती होते हैं और सब कामोंकी देखरेख भी यहींसे होती है। यहां कारखानेका जेनरल सुपरंटेंडेंट वा अध्यक्ष रहता है। पहले पहले मिस्टर टटविलर ही इसके निरीक्षक थे जो आजकल अपनी योग्यता तथा परिश्रमसे कारखानेके जेनरल मैनेजर हो गये हैं। इससे सटा हुआ पश्चिमकी ओर Electric Armature Shop बिजलीका कारखाना है। यहां विद्युतका सब काम होता है। मोटर

सैकिल इत्यादिकी मरम्मत भी होती है। उनकी ढलाईके अतिरिक्त सभी काम यहां होते हैं। इससे सटा हुआ पूरबकी ओर पानीके नलका कारखाना वा पैप लैन है, जहां बहुतसे नल पड़े नज़र आते हैं और सारे कारखाने तथा नगरके पानीका नल इससे सम्बद्ध है। इससे सटा हुआ पूरबकी ओर Brick Store ईंटोंका भंडार है जहां सिलिकन तथा मङ्गेनीज मिश्रित ईंटें रखी रहती हैं। यह विदेशसे आती हैं और बहुमूल्य होती हैं और बहुत सावधानीके साथ रखी जाती हैं। इनपर पानी पड़ा या सरदी ज्यादा लगी तो खराब हो जाती हैं। इनमें विशेषता यह है कि लोहेके भट्टेके प्रचंड तापमें भी नहीं पिघलतीं। ऐसी ईंटोंकी आवश्यकता हवाके भट्टे इस्पातके भट्टे तथा कोयले-के भट्टेमें होती है। यह पंक्ति यहां ही समाप्त हो जाती है। इससे अब पूरब तथा दक्खिनकी ओर बढ़ते चलिये और सीधे लगातार पूरबकी ओर चले चलिये।

इस कतारमें सबसे पूरब Dolomite Plant डोलोमैट कारखाना है यहां डोलोमैट पीसा जाता और इस्पातकी तय्यारीमें इसका व्यवहार होता है। इससे ठीक सटा हुआ उत्तर तरफ डोलोमैट-का भंडार है जिसको Stock yard स्टाकयार्ड कहते हैं। इससे पश्चिम Steel works इस्पातका कारखाना है।

[असमाप्त]

बड़ोंकी छोटी छोटी बातें

[ले० प्रोफ़ेसर रामदास गौड़, एम० ए०]

"ईश्वरने मनुष्यको अपने अनुरूप बनाया"
— बैबिल।

"मनुष्यने इसका अच्छा बदला लिया। उसने ईश्वर को अपने अनुरूप बना डाला" - वालटैर

"ओफ़ ओफ़! इस खुजलीने तो आफ़त ढा रखी है। जबसे मुझे इस छूतके रोगने घेरा चैन नहीं लेने देता!"

अपना गाल बड़े वेगसे खुजलाते हुए* श्रीमती मेदिनीदेवीने यही वाक्य अपने पोते चन्द्रदेव जीसे कहा। अपनी एक मासकी ड्यूटी पूरी करके ज़रा फुरसत पायी तो अपनी दादी मेदिनीजीको प्रणाम करने और उनके दर्शनोंके लिए चन्द्रदेव आये थे। शान्त और शीतल स्वभाव, संसारकी सर्दी गर्मी सहे हुए थे तोभी चन्द्रदेवजी आयुमें बहुत छोटे थे, अपनी दादीको बहुत मानते थे, उनकी प्रतिष्ठा इतनी करते थे कि सब काम छोड़ मासमें एक बार अवश्य इन वृद्धा देवीकी परिक्रमा और दर्शन करते थे। उनके दुःख दर्दमें शरीक होनेवाला इनसे अधिक संबन्धी कोई नातेदार भी न था। इस बार चन्द्रदेवजी आये तो मेदिनीमाताको बहुत कष्टमें पाया। उनके गालमें पहले एक प्रकारकी खुजली शुरू हुई जो धीरे धीरे बढ़ने लगी, यहां तक कि कभी कंठमें कभी बांहमें, कभी कमरमें, इसी प्रकार आधे शरीरपर खुजलीने अधिकार जमा लिया था। परन्तु अभी इसी बार चन्द्रदेवजीने मेदिनी-माताको इस प्रकार विकल पाया।

चन्द्र०--माता, यह रोग आपको कबसे है? मुझे तो बिलकुल पता नहीं।

---

*आंधी और तूफ़ानसे अभिप्राय है।
Astronomy ज्योतिष]

मेदि०—बेटा ! क्या कहूं, तीन दिन* हुए यह खुजली[1] हो गयी, सो घटनेके बदले धीरे धीरे फैलती ही जा रही है। कुछ पता नहीं लगता कि हमारे किन कर्म्मोंके दुर्विपाकसे तरह तरहके रोग आ घेरते हैं। तुमसे क्या कहूं, आज तो तुम्हारे देखते देखते खाजसे व्याकुल हो कर कह पड़ी। सोचती हूं कि बुढ़ापा रोगोंका घर है, रोग होंगे ही और सहना है ही, फिर कहना सुनना क्या लाभ पहुंचायेगा।

चन्द्र०—इसपर आपने कोई ओषधि नहीं लगायी ?

मेदि०—हां, लगायी तो कई ओषधियां और कई बार, परन्तु लाभ नहीं हुआ। जलसे तो अकसर धोया करती हूं, पर कभी कभी हिम और जलमिश्रित मरहम भी लगाया। खुजली कम हुई, पर जड़से न छूटी। ओषधि हटी और खुजली बढ़ी।

चन्द्र०—माता, ज़रा मैं अच्छी तरह देखूं तो सही !

इतना कह कर चन्द्रदेवने अपनी जेबसे एक छोटा सा अणुवीक्षण यंत्र निकाला। इस यंत्रमें काच खंडके द्वारा देखनेकी आवश्यकता न थी। ज़रा पाससे जो खुजलीकी ओर देखा तो अचम्भेसे बोल उठे—

"ओहो ! लाखों, करोड़ों जीवाणु ठटके ठट बांधकर रेंग रहे हैं। रेंगना इनका सर्वत्र जारी है। कहीं कहीं यह शरीरके मांसको खोदते और अनेक स्थानोंमें मांसकणोंको इधर उधर ढोते दिखाई पड़ते हैं। जान पड़ता है कि जब यह आपकी देहपर रेंगते हैं तभी आपको खुजली लगती है।"

मेदि०—(मुस्कराकर) तुम्हारा यंत्र बड़ा ही अच्छा है, बेटा। परन्तु तुमने यह कौनसी नयी बात बतायी। शरीरपर असंख्य प्रकारके असंख्य योनिके, असंख्य जीवाणु सदैव रेंगते रहते हैं। सच पूछो तो यह शरीर इन जीवोंसे भरा है। इनके रेंगनेसे खुजली हो तो मैं कहीं जीती रह सकती हूं ? नहीं, यह रेंगें भले ही, परन्तु यह उपद्रव करते हैं तब मुझे खुजली होती है। बेटा चन्द्रदेव, जैसे हमारा तुम्हारा संसार बड़ा विस्तृत है, इसमें हमसे तुमसे करोड़ों गुना बड़े जीव हैं उसी तरह इन जीवाणुओंका संसार हमारी तुम्हारी देह ही बहुत विस्तृत है, और संभव है कि इन जीवाणुओंसे भी छोटे जीव हों जो तुम्हारे अणुवीक्षण यंत्रसे भी नहीं दीख सकते।

चन्द्र०—हां, हां, माता, आपने बड़ी अच्छी बात कही, उस दिन चाचा भौमदेवने हमको एक अत्यन्त सूक्ष्म अणुवीक्षण यंत्र दिखाया जिसके सहारे मैंने उनके शरीरपरके जीवोंको देखा। इन जीवोंको उस यंत्रने पहाड़ सा बड़ा करके दिखाया। देखते, देखते, बड़ी अद्भुत बात देख पड़ी। वह यह थी कि इन जीवाणुओंके शरीरपर इनसे भी असंख्य गुणा छोटे जीवाणु रेंग रहे थे और इन जीवाणुओंको अपने परसत्वोपभोगी जीव-परमाणुओंका पता भी न था। आपका कहना ठीक ही है। इनके रेंगनेसे नहीं वरन उपद्रवोंसे ही आपको कष्ट होता है।

चन्द्रदेव यों कहते कहते फिर यंत्रसे ध्यानपूर्वक देखने लगे। "आहो इसमें तो ऐसे भी जीवाणु हैं जो परदार* हैं और जीवाणुओंकी अपेक्षा तेज़ चलते वा उड़ते हैं। बहुतेरे ऐसे भी हैं जो बीच बीचमें चमक † उठते हैं। जहां जहां आपको खुजलीकी शिकायत है वहीं प्रायः यह परदार और चमकीले जीवाणु हैं। मेरा अनुमान है कि यही परदार और चमकीले कीड़े उपद्रवी हैं और आपके शरीरपर विष उगलते हैं।"

देखते देखते चन्द्रदेव फिर बोल उठे "मातः, एक और जाति भी है जो लंबे अंडाकार‡ हैं, परन्तु यह कहीं कहीं हैं। यह भी शरीरके साधारण कीड़ोंसे भिन्न हैं।"

१—अर्थात् जगद्व्यापी युरोपीय युद्ध। * दिन = वर्ष

* विमान। † तोप आदि। ‡ जेपलिन।

चन्द्रदेव देखते देखते थक गये। यंत्रको उसके बकसमें डालकर जेबमें रख लिया।

चन्द्र०-मातः आपकी खुजलीमें तीन प्रकारके जीवाणु हैं जो आपको दुःख दे रहे हैं, सपक्ष, ज्योतिष्मान् तथा अंडाकार। इन्हींको मारनेसे आपके रोगका अन्त हो सकेगा। शेष कीड़े तो आपके जीवन संघाती और उपयोगी होंगे।

मेदिनी-यह तो ठीक कहते हो बेटा! परन्तु हम जब इन तीन प्रकारके कीड़ोंको मारनेका उपाय करते हैं तो अनेक असंख्य निर्दोष और निरपराध कीड़े भी समाप्त हो जाते हैं। देखो, स्नान करनेमें मैं जीवाणु-घाती[1] साबुन शरीरके अनेक स्थानोंमें लगाती हूं जिससे बुरे तो थोड़े पर भले कीड़े अधिक मर जाते हैं। कितना अन्याय है पर क्या करूं ब्रह्माजी ऐसे ही निर्दय उपाय बताया करते हैं। चाचा वैवस्वत सूर्य्यजी तो अपनी दयादृष्टिसे ही उन्हें समाप्त कर देते परन्तु सभी छिप कर बच जाते हैं।

अभी ज़रासी देर हुई मैंने एक व्रणको धोकर उसमें दवा भर दी है[2] तुम अटकल कर सकोगे कि कितने जीवाणुओंकी हत्या हुई होगी? असंख्य प्राणी इस तनिकसी घटनामें समाप्त हो गये होंगे। मेरे शरीरके रोमकूपोंमेंसे वायु[3] बाहर निकलती और भीतर जाती है। इस क्रियामें भी अनेक प्राणियोंकी हत्या होती ही है। कहां तक कहूं इन प्राणियोंकी रक्षा करना वा मार डालना सच पूछो तो सर्वथा मेरे अधिकारमें नहीं है। बेटा, बात तो यह है कि इस तरहके रोगको रामबाण औषधि ब्रह्माके पास भी नहीं है। जन्म, रोग, जरा मरण इससे किसीको छुट्टी नहीं है। मेरा भी बुढ़ापा आया रोग हुआ ही चाहे।

१-अंटिसेप्टिक साबुन जैसे कार्बोलिक साबुन, यहां प्लेग मलेरिया आदि फैलनेवाले रोगोंसे अभिप्राय है।

२-हालमें चीनमें बड़ी बाढ़ आई, २००० वर्गमील पानीमें डूब गया। लाखों प्राणी डूब मरे।

३-ज्वालामुखी पर्वतादि।

चन्द्रदेव—मातः आपकी दया और क्षमा ही आपके अनेक दुःखोंका कारण हैं। जब आप स्वयं कहती हैं कि इनकी रक्षा वा नाश कुछ भी आपके सर्वथा अधिकारमें नहीं है तो फिर उनके जीवनके लिए आपको क्यों चिन्ता है। आप अपनी रक्षाके लिए जो उपाय हो सकें कीजिए, औरोंकी रक्षाकी चिन्ता न कीजिए।

मेदि०—मेरे प्राणोंसे प्यारे! इस बातको फिर भी भूलते हो कि स्वयं तुम्हारी रक्षा सर्वथा तुम्हारे अधिकारमें नहीं है। क्या उनकी उपेक्षा करके भी अपनी रक्षा पूर्णतया कर सकते हो? अपने जन्म मरण आदिपर भी क्या तुम्हारा पूरा अधिकार है?

चन्द्र०—अधिकार तो नहीं है, परन्तु जहांतक हो सकता है. प्राणिमात्र अपनी रक्षाकी चेष्टा, करता है।

मेदि०—सच है, यह प्राणिमात्रका प्राकृतिक स्वभाव है, परन्तु विकासके मार्गपर अग्रसर प्राणी जो जगन्नियन्ताके उद्देश्यके अनुकूल चलनेकी चेष्टा करता है, उसके लिए क्या कर्त्तव्य और क्या करने योग्य नहीं है यह विकट प्रश्न है। इसका निबटारा कठिन है। जिसकी बुद्ध ठीक जांच कर सकती है, विकास-यात्रामें आगे बढ़ता है। जिसका बुद्धिने धोखा खाया, वह पिछड़ा। ह : तुम प्रकृतिके ही द्वारा संचालित अपनी बुद्धि न रखनेवाले उन क्षुद्र कीटाणुओंमें[1] नहीं हैं जिन्हें तुम अभी यंत्रके सहारे देख रहे थे। बुद्धि देकर जगन्नियन्ताने हमें तुम्हें बड़ा दायित्व दे रक्खा है। हम लोगोंको बहुत सोच विचारकर काम करना चाहिए।

चन्द्र०-मातः आपने बहुत ठीक उपदेश किया। सचमुच हम लोगोंको अपना अपना कर्त्तव्य खूब

१ मनुष्य। मनुष्य जिनकी दृष्टिमें कीटाणुओंके समान है, वह प्राणी मनुष्यके विषयमें कैसी धारण रखते होंगे, इस कल्पनासे स्पष्ट होगा।

सोच समझकर पालन करना चाहिए। परन्तु यह मेरी समझमें नहीं आता कि हम इस सृष्टि-का, वा जीवनका क्या उद्देश्य वा आदर्श समझें जिसे सामने रखकर तदनुसार आचरण करें ?

मेदि०—वत्स, परमात्माका उद्देश्य सृष्टि रचनामें क्या है यह न किसीकी समझमें आया है और न पूर्णतः आनेकी कोई आशा है। परन्तु बड़े लोगोंने सृष्टिकी उत्पत्ति और विकास और पुनः प्रलयको देखकर यह अनुमान किया है कि जगन्नियन्ताका इष्ट है कि प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक जीव सृष्टिके समस्त कर्मोंका अनुभव प्राप्त करें। देखो, किसी दिन हम सब उसी अत्यन्त शीतल प्रभामय क्षीर समुद्रके* गर्भमें थे। वहांसे ब्रह्मा† का आविर्भाव हुआ। ब्रह्माने वैवस्वत सूर्य्यकी सृष्टि की और सूर्य्यसे हम सबका परिवार बढ़ा। परन्तु यह एक ब्रह्मांडकी रचना हुई। इससे पहले अनेक ब्रह्मांडोंकी रचना हो चुकी थी, जो हमारे जन्मकालमें उन्नति और विकासमें बढ़ गये थे। देखते हो, उनका हम लोगोंके देखते ही देखते अन्त भी हो गया। कई ब्रह्मांड अभी हालमें ही उत्पन्न हुए और उनका बचपन ही है। अन्य शरीरोंमें हम लोगोंने और तरहके अनुभव प्राप्त किये हैं, अब यह अनुभव प्राप्त कर रहे हैं। इस शरीरके छूटनेपर और शरीरोंका अनुभव करना होगा। परन्तु यह नहीं जान पड़ा कि अन्त क्या होगा। संभवतः अगस्ति, अभिजित चित्रा,[१] आदि शरीर धारण करने पड़ेंगे। इन शरीरोंके पीछे इनसे कहीं बड़े बड़े शरीर हैं जो हमसे अत्यन्त दूर हैं, और दूरीके कारण विना यंत्रके सहारे दिखाई नहीं पड़ते। इनके संसारमें न जाने कैसी दशाएं होंगी और क्या आश्चर्य्य है कि यह भी हमारी तरह अन्य बड़े पिंडों और संसारोंकी सोचते हों। बात तो यह है कि सृष्टि अनादि अनन्त है, कितने ही गहरे जाइये थाह नहीं। ऐसी दशामें यही कहना पड़ता है कि उसका भेद उसके सिवा कोई नहीं जानता। हमारा काम उसकी अणिमा और महिमाके सामने सिर झुकाना ही है।

"तोहिं अनादि अनन्त विचारत
ध्यान अपार गगनको धारत,
* * *
पलपल अखिल चरित चिन्तनमें
मति उरझति भ्रमनाल

* क्षीर समुद्रसे तात्पर्य्य उस नीहारिकासे है जो आकाशमें छायापथके रूपमें उत्तर दक्षिण प्रसरित दिखाई पड़ती है। यह कल्पनातीत तापसे उत्तप्त है परन्तु यह ताप ग्रहादिकोंके लिए गरमी नहीं वरन् शक्ति पुंज है।

† Creative energy, वह बल जिससे कल्पनातीत अवस्थावाली प्रकृति अत्यन्त वेगके कारण पदार्थ की मात्राके रूपमें परिणत हो गयी।

१ यह उन तारोंके नाम हैं जो आकाश मंडलमें तेज़ चमकते हैं और हमारे सूर्य्य की अपेक्षा हज़ारों गुना बड़े हैं।

सिरका

[ले० श्रीयुत मुख़्यारसिंह वकील,]

भारतवर्ष ऐसा देश है जहां सैंकड़ों बहुमूल्य पदार्थ पाये जाते हैं परन्तु हमारी अनभिज्ञताके कारण उनका उपयोग नहीं किया जाता। आज हम अपने कृषकों तथा खंडसारियोंसे कुछ निवेदन करना चाहते हैं। यदि वे हमारे कथनपर ध्यान देंगे तो हमें पूर्ण विश्वास है कि उनको बड़ा लाभ होगा। सिरका बनानेका व्यवसाय न केवल कृषक ही कर सकते हैं प्रत्युत हमारे घरोंकी स्त्रियां थोड़ेसे ही परिश्रमसे बहुत कुछ कमा सकती हैं। अमीर घरोंकी स्त्रियां भी अनेक भोजनके पदार्थ उसके सहारे बना, न केवल भोजनको अधिक रुचिकर बना सकती हैं, प्रत्युत वार्षिक व्ययमें भी कुछ कमी कर सकती हैं। अन्य देशोंमें खांड़ बनानेके व्यवसायने कितनी उन्नति की है इसके लिये हमें अधिक लिखनेका आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ही लिखना

२ Industrial Chemistry औद्योगिक रसायन]

पर्याप्त है कि आये दिन लाखों रुपयेकी खांड़ विदेशसे बनकर हमारे देशमें आकर देशी खांड़से सस्ती बिक जाती है। हमारी खांडका व्यवसाय धीरे धीरे नष्ट हो रहा है और यदि यही दशा उपस्थित रही तो कुछ दिनोंमें और धंधोंकी समान इस व्यवसायकी भी इतिश्री होने वाली है। परमात्मा करे वह दिन हमको कदापि न देखना पड़े। विदेशके खांड बनानेवाले हमसे सस्ती खांड किस प्रकार बना सकते हैं? यह एक बड़ा जटिल प्रश्न है और इसकी पूरे तौर पर इस छोटेसे लेखमें मीमांसा करना कठिन है। हम केवल अनेक कारणोंमेंसे एक कारण यह बताना चाहते हैं कि उनका खांडसे निकाला हुआ शीरा हमारे शीरेसे कहीं अधिक दाम प्राप्त करता है। कारण यह है कि वहां सारा शीरा सिरका अथवा शराब बनानेके काममें लाया जाता है। यदि हमभी अपने शीरेसे यह काम लेने लगें तो देशको बहुत लाभ हो।

सिरका न केवल शीरेसे ही बनाया जा सकता है प्रत्युत प्रत्येक पदार्थ जिसमें नशास्ता अथवा चीनी उपस्थित हो सिरका बनानेके काममें लाया जा सकता है जैसे आलू, शकरकंदी, गन्नेका रस अनेक फल इत्यादि। हमारे देशमें यह सब पदार्थ बहुतायतसे पैदा होते हैं, परन्तु उनका प्रयोग नहीं किया जाता। गन्नेसे राव बनानेके दिनोंमें प्रायः दो चार दिन घटा हो आती है और वर्षा हो जानेसे गन्नेका पेरना बंद करना पड़ता है। ऐसे समयमें सैकड़ों मन गन्ना कोल्हुओंमें पड़ा सूखता रहता है। जो रस निकल आता है और जिसके पकानेके लिए पर्याप्त ईंधन नहीं मिलता वह रस कढ़ावमें ही ख़राब होता रहता है। यदि हमारे किसान सिरका बनाना जानते तो वह बड़ी सुगमतासे इन गन्नोंका रस निकाल सिरका बना बेच देते। आज कल भी थोड़ासा सिरका बनाया जाता है, परन्तु उसके बनानेका तरीक़ा बड़ा भद्दा होनेसे बाज़ारमें बेच उससे लाभ नहीं उठा सकते। यदि किसी ग्राममें दस घड़े सिरका बनाया जाता है तो उसमेंसे कमसे कम ४ घड़े अवश्य बिगड़ जाता है। जो सिरका बनता है उसका रंग कैसा भद्दा होता है उसमें कीड़े कितने होते हैं और उनसे कितनी घृणा पैदा होती है यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं। यदि ठीक रीतिसे सिरका बनाया जाय तो उसमें कीड़े नहीं पड़ेंगे और न उसके बिगड़नेकी कोई संभावना होगी। हम नीचे सिरका बनानेके थोड़ेसे नियम लिखते हैं और आशा करते हैं कि पाठकवृन्द उस तरकीबको आज़माकर लाभ उठावेंगे।

सिरका प्रत्येक मीठी वस्तुसे जिसमें १०० भाग पीछे ४ भाग चीनीके हों बनाया जा सकता है। जब मीठा बहुत ज्यादा होता है तब भी सिरका बनानेमें बाधा पड़ जाती है। अतः शीरेसे सिरका बनानेके लिए यह आवश्यक होगा कि उसमें आठ गुना पानी मिलाकर पतला कर लिया जावे और उसे मैल मट्टीसे भली भांति छानकर तथा पकाकर साफ़ कर लिया जाय। रससे सिरका बनानेमें पानी मिलानेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि उसमें वैसे ही मीठेकी मात्रा बहुत होती है। सिरका बनानेमें यदि रस काममें लाया जाय तो उसको भली भांति एक उफान दे देना चाहिये, जिसमें सब मैल इकट्ठा होकर ऊपर आ जाय। या उस रसको सिरका डालनेके लिये काममें लाया जाय जिसका मल उतारकर निखारी की जा चुकी हो। जिस रसमें पानीकी मात्रा अधिक होती है और ईख अधिक बढ़ जाता है या ईख गिर जाता है उसका गुड़ उत्तम कोटिका नहीं बनता बल्कि कभी कभी गुड़ बनना ही असंभव हो जाता है। ऐसे रससे राव भी नहीं बन सकती है। इसी कारण इस प्रकारके रसको यदि सिरकेके काममें लाया जाय तो बड़ा उत्तम और लाभदायक होगा। इस प्रकार जब रस अथवा शीरा साफ़ कर लिया जाय तो उसे एक चौड़े पात्रमें रक्खो और उसमें थोड़ासा गंधसा-

म्ल (sulphurous acid)* डाल दो। १ मन रस पीछे केवल आधी छटांक पर्याप्त होगा। नांद अथवा और चौड़ा पात्र इस काममें ला सकते हैं। अब इसमें या तो शराब बनानेका लाहन थोड़ी मात्रामें डाल दो या इसको वैसेही छोड़ दो। लाहन डालनेसे उमदा सिरका बनेगा। यदि वैसे ही छोड़ देंगे तो संभव है सिरका बिगड़ जाय। अब इसको दिनमें दो तीन बार हिला दिया करो। जिस स्थानमें यह रखा जावे वह स्थान नम न हो और न नमी वहां पहुंच सके। यदि सरदी अधिक हो अथवा घटा रहनेसे सूर्य्यकी किरणें अपनी गरमी न पहुंचा सकें तो इस स्थानपर भूसा अथवा खोई भरकर गरमी पहुचानी चाहिये। भूसा तथा खोईके किसी स्थानमें अधिक मात्रामें रखनेसे गरमी उत्पन्न हो जाती है और ऋतु अपना प्रभाव नहीं जमाने पाती। वायुका संचार भी इस कमरेमें ठीक होना उचित है। कुछ दिनोंमें ही इसमें उफान सा आने लगेगा और सड़न आरम्भ हो जायगी। इसको नित्य प्रति ध्यानसे देखते रहो। यदि गरमी ठीक रही तो थोड़े ही दिनोंमें यह परिवर्तन आरम्भ हो जायगा। ४ सप्ताहमें या ऋतुके अनुसार न्यूनाधिक समयमें यह जोश खूब बढ़कर शांत हो जायगा और फिर रसमें बुलबुले दिखाई न देंगे। जब बुलबुले बंद हो जांय तो इसमें उत्तम कोटिका सिरका १ मन पीछे ४ सेर डाल दो। यदि इतना सिरका न मिल सके तो थोड़ा सिरका लेकर पहिले उसमें थोड़ासा रस जिसमें जोश आ चुका हो मिलाओ और चार पांच दिनके पश्चात् इसको सब रसमें मिला दो। अब इस रस का सिरका बनना आरम्भ हो जायगा। एक मासके भीतर सिरका बन जायगा। जैसे उत्तम कोटिके सिरकेका जामन दिया जायगा उतना ही उत्तम सिरका बनेगा। यदि यह कार्य्य सावधानीसे किया जाय तो बिना कीड़े पड़े उत्तम सिरका प्राप्त हो सकेगा। इस सिरकेको छानकर बोतलोंमें भरकर बाज़ारमें बेच दो। अच्छा सिरका ।=) बोतल तक बिक जाता है। उपरोक्त रीतिसे कार्य्य करनेसे लगभग १॥) में एक मन सिरका प्राप्त होगा जो इस हिसाबसे -)॥ में ढाईसेर घरपर पड़ेगा और ।) बोतल बेचनेसे भी अठ गुना लाभ हो सकेगा। सिरका बनानेमें रसमें किस समय सिरका डाला जाय इत्यादि बातोंके जाननेकी भी तरकीबें हैं, जिनसे कार्य्यकर्त्ताको कभी हानि नहीं हो सकती। परन्तु साधारण लोगोंकी समझमें उनका आना कठिन है। अतः हमने उनका उल्लेख इस स्थानपर नहीं किया है। हां यदि पाठकोंमेंसे कोई महोदय इस कार्य्यको आरम्भ करेंगे और कार्य्यमें कोई कठिनाई अथवा आपत्ति आनेपर विज्ञान द्वारा पूछेंगे तो हम उसका उत्तर विज्ञानमें देनेकी प्रतिज्ञा करते हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि पाठक अवश्य इस सुगम तथा अल्प-धन-साध्य कार्य्यका परीक्षण कर लाभ उठावेंगे।

* गंधकका तेज़ाब और चीज़ है और गंधसाम्ल और पदार्थ है। गंधकका तेज़ाब काममें न लाना चाहिये। यह पदार्थ गंधककी धुआं (गंधकके हवामें जलनेसे जो पैदा होती है) पानीमें घोलनेसे बनता है।

२-विद्युत् और विद्युत्कण*

[ले० प्रोफ़ेसर निहालकरण सेठी, एम. एस-सी.]

यह बात मनुष्यको बहुत प्राचीन कालसे ज्ञात थी कि बहुतसे पदार्थोंको आपसमें घिसनेपर उनमें आकर्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है। उनकी इस दशाका नाम विद्युन्मय दशा रखा गया और जिसके कारण उनमें यह शक्ति पैदा हुई उसका नाम विद्युत् या बिजली हुआ।

(*फ्लेमिंग Fleming की Wonders of wireless Telegraphy से अनुवादित)

Electricity विद्युत् शास्त्र]

म्ल (sulphurous acid)* डाल दो। १ मन रस पीछे केवल आधी छटांक पर्याप्त होगा। नांद अथवा और चौड़ा पात्र इस काममें ला सकते हैं। अब इसमें या तो शराब बनानेका लाहन थोड़ी मात्रामें डाल दो या इसको वैसेही छोड़ दो। लाहन डालनेसे उमदा सिरका बनेगा। यदि वैसे ही छोड़ देंगे तो संभव है सिरका बिगड़ जाय। अब इसको दिनमें दो तीन बार हिला दिया करो। जिस स्थानमें यह रखा जावे वह स्थान नम न हो और न नमी वहां पहुंच सके। यदि सरदी अधिक हो अथवा घटा रहनेसे सूर्य्यकी किरणें अपनी गरमी न पहुंचा सकें तो इस स्थानपर भूसा अथवा खोई भरकर गरमी पहुचानी चाहिये। भूसा तथा खोईके किसी स्थानमें अधिक मात्रामें रखनेसे गरमी उत्पन्न हो जाती है और ऋतु अपना प्रभाव नहीं जमाने पाती। वायुका संचार भी इस कमरेमें ठीक होना उचित है। कुछ दिनोंमें ही इसमें उफान सा आने लगेगा और सड़न आरम्भ हो जायगी। इसको निल्य प्रति ध्यानसे देखते रहो। यदि गरमी ठीक रही तो थोड़े ही दिनोंमें यह परिवर्तन आरम्भ हो जायगा। ४ सप्ताहमें या ऋतुके अनुसार न्यूनाधिक समयमें यह जोश खूब बढ़कर शांत हो जायगा और फिर रसमें बुलबुले दिखाई न देंगे। जब बुलबुले बंद हो जांय तो इसमें उत्तम कोटिका सिरका १ मन पीछे ४ सेर डाल दो। यदि इतना सिरका न मिल सके तो थोड़ा सिरका लेकर पहिले उसमें थोड़ासा रस जिसमें जोश आचुका हो मिलाओ और चार पांच दिनके पश्चात् इसको सब रसमें मिला दो। अब इस रस का सिरका बनना आरम्भ हो जायगा। एक मासके भीतर सिरका बन जायगा। जैसे उत्तम कोटिके सिरकेका जामन दिया जायगा उतना ही उत्तम सिरका बनेगा। यदि यह कार्य्य सावधानीसे किया जाय तो बिना कीड़े पड़े उत्तम सिरका प्राप्त हो सकेगा। इस सिरकेको छानकर बोतलोंमें भरकर बाज़ारमें बेच दो। अच्छा सिरका ।=) बोतल तक बिक जाता है। उपरोक्त रीतिसे कार्य्य करनेसे लगभग १॥) में एक मन सिरका प्राप्त होगा जो इस हिसाबसे ~)॥ में ढाईसेर घरपर पड़ेगा और ।) बोतल बेचनेसे भी अठ गुना लाभ हो सकेगा। सिरका बनानेमें रसमें किस समय सिरका डाला जाय इत्यादि बातोंके जाननेकी भी तरकीबें हैं, जिनसे कार्य्यकर्त्ताको कमी हानि नहीं हो सकती। परन्तु साधारण लोगोंकी समझमें उनका आना कठिन है। अतः हमने उनका उल्लेख इस स्थानपर नहीं किया है। हां यदि पाठकोंमेंसे कोई महोदय इस कार्य्यको आरम्भ करेंगे और कार्य्यमें कोई कठिनाई अथवा आपत्ति आनेपर विज्ञान द्वारा पूछेंगे तो हम उसका उत्तर विज्ञानमें देनेकी प्रतिज्ञा करते हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि पाठक अवश्य इस सुगम तथा अल्प-धन-साध्य कार्य्यका परीक्षण कर लाभ उठावेंगे।

* गंधकका तेज़ाब और चीज़ है और गंधसाम्ल और पदार्थ है। गंधकका तेज़ाब काममें न लाना चाहिये। यह पदार्थ गंधककी धुआं (गंधकके हवामें जलनेसे जो पैदा होती है) पानीमें घोलनेसे बनता है।

२–विद्युत् और विद्युत्कण*

[ले० प्रोफ़ेसर निहालकरण सेठी, एम. एस-सी.]

यह बात मनुष्यको बहुत प्राचीन कालसे ज्ञात थी कि बहुतसे पदार्थोंको आपसमें घिसनेपर उनमें आकर्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है। उनकी इस दशाका नाम विद्युन्मय दशा रखा गया और जिसके कारण उनमें यह शक्ति पैदा हुई उसका नाम विद्युत् या बिजली हुआ।

(*फ्लेमिंग Fleming की Wonders of wireless Telegraphy से अनुवादित)

Electricity विद्युत् शास्त्र]

धीरे धीरे यह भी ज्ञात हो गया कि इस बिजलीमें केवल आकर्षण शक्ति ही नहीं है। उसमें निराकरण शक्ति (Repulsion) भी है। अर्थात् प्रत्येक विद्युन्मय वस्तु समीपवर्ती किसी दूसरी विद्युन्मय वस्तुपर अवश्य कुछ बल लगाती है जिसके कारण वह या तो पहलीके निकट खिंचती है या उससे दूर हटती है।

१६ वीं शताब्दीके अंतिम वर्षमें वोल्टा (Volta) ने एक अद्भुत आविष्कार किया। उन्होंने एक यंत्र ऐसा बनाया कि जिसके दोनों सिरोंसे लगे हुए दो तार विद्युन्मय थे। उनमें भी वही आकर्षण और निराकरणकी शक्ति वर्तमान थी। किन्तु एक विशेषता यह थी कि यदि दोनों तारोंको जोड़ दिया जाय तो तार गरम हो जाते थे; यदि उनके सिरोंको तेज़ाब मिले हुए पानीमें डुबोया जाता तो पानीका विश्लेषण होकर ओषजन और अभिद्रवजन पैदा हो जाती थीं। थोड़े ही समयके पश्चात् ज्ञात हो गया कि उस तारमें से बिजली चलती है। अब तक केवल स्थिर बिजलीका ही ज्ञान था, अब गतिमान विद्युत्का भी पता चला।

इससे बहुत पहिले ही चुम्बक और उसकी विलक्षणताओंका पता लग चुका था। किन्तु सन् १८२० से पहिले किसीको यह पता नहीं था कि चुम्बकका बिजलीसे भी कुछ सम्बंध है। इस वर्ष ओर्स्टेड ने (Oersted) सिद्ध किया कि जिस तारमें से बिजली प्रवाहित हो उसके चारों ओरके देशमें चुम्बकीय शक्ति विद्यमान होती है। वह चुम्बकीय बलक्षेत्र होता है। अर्थात् जिस प्रकार चुम्बकके समीपवर्ती स्थानमें अन्य चुम्बकोंपर बल लगता है उसी प्रकार इस तारके निकट भी चुम्बक लानेपर उसपर कुछ बल लगता है।

सन् १८३१ में फैरेडे (Faraday) ने बिजली और चुम्बकके इस सम्बंधको और भी घनिष्ट कर दिया। उन्होंने बतलाया कि तारके एक गोल घेरेके निकट चुम्बक सहसा लानेसे अथवा उसे वहांसे हटा लेनेसे भी उस तारमें बिजलीका प्रवाह होता है। अर्थात् चुम्बकके शीघ्रतासे चलाने मात्रसे भी निकटवर्ती वाहक पदार्थोंमें (Conductors) बिजलीका प्रवाह उत्पन्न हो सकता है।

अंतमें सन १८७६ में प्रोफेसर रोलैंड (Rowland) ने अपनी परीक्षाओंके द्वारा साबित कर दिया कि यदि कोई विद्युन्मय वस्तु शीघ्रताके साथ चलाई जावे तो वह भी चुम्बकीय बलक्षेत्र उत्पन्न कर देती है। इसका अर्थ यह हुआ कि विद्युत्प्रवाह-युक्त तार से जो बात पैदा होती है वही बात किसी वस्तुको विद्युन्मय बनाकर शीघ्रतासे चलानेपर भी हो जाती है।

उपरोक्त बातोंको संक्षेपसे हम यों लिख सकते हैं:—

१-विद्युन्मय वस्तुओंके वेगसे चलनेपर चुम्बकीय शक्ति प्रकट हो जाती है और २-चुम्बकके वेगसे चलनेपर बिजली उत्पन्न हो जाती है।

इन बातोंसे अब स्पष्ट हो जाता है कि बिजली चुम्बक, और गति इन तीनोंमें बहुत ही घनिष्ट संबंध है। किन्तु जिस समयसे इस संबंधका मनुष्यको कुछ भी ज्ञान होने लगा तबसे ही यह भी स्पष्ट होने लगा कि चुम्बक और बिजलीका प्रभाव दूर स्थित अन्य वस्तुओंपर बिना किसी मध्यस्थ पदार्थकी सहायताके हो जाना संभव नहीं है। यद्यपि हम वहां अपनी इंद्रियोंसे किसी पदार्थका अस्तित्व नहीं जान सकते तथापि यह हो नहीं सकता कि वहां केवल शून्य देश है क्योंकि उपरोक्त घटनाओंकी संतोषजनक व्याख्या बिना ऐसे मध्यस्थके माने हो ही नहीं सकती।

अब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि कहीं यह मध्यस्थ पदार्थ वही ईथर तो नहीं है जिसका होना प्रकाशकेलिये अत्यन्त आवश्यक है। फाराडे (Faraday) एम्पीयर (Ampere) इत्यादि वैज्ञानिकोंने इस बातपर बहुत विचार भी किया किन्तु जब तक मैक्सवैलने (Maxwell) फाराडेके आविष्कारोंपर विचार करना प्रारम्भ नहीं

किया तबतक कोई आशाजनक उत्तर न मिल सका। उन्होंने परिणाम निकाला कि बिजली या चुम्बकके प्रभावको भी एक स्थानसे दूसरे स्थान-तक पहुंचनेमें समय लगता है। और उन्हें जो जो बातें ज्ञात थीं उनसे यह भी परिणाम निकला कि इन प्रभावोंका वेग प्रकाशके वेगके बराबर होना चाहिये।

उदाहरणार्थ मान लीजिये कि एक तारमें बिजलीका प्रवाह हो रहा है। इसके कारण उस तारके चारों ओर चुम्बकीय बलक्षेत्र होगा। किसी चुम्बकको वहां दिशासूचककी भांति रखनेसे वह घूम जायगा। अब यदि बिजलीके प्रवाहकी दिशा सहसा बदल दी जावे तो अन्तिम परिणाम यह होगा कि प्रत्येक स्थानपर चुम्बकीय बलकी दिशा भी बदल जायगी और चुम्बक अब पहली ओर न घूमकर दूसरी तरफ घूमेगा। किन्तु यह बात सब जगह एक साथ ही नहीं हो जाती। सबसे पहिले तारसे निकट यह परिवर्तन होगा फिर कुछ दूर और तब और भी अधिक दूर। इस प्रकार एक निश्चित वेगसे यह परिवर्तन तार-से चारों ओर फैलेगा और तार से १८६००० मील-की दूरीपर यह परिवर्तन तारमें प्रवाह परिवर्तन-के एक सेकंड बाद पहुंचेगा।

प्रकाशके वेग और इस विद्युच्चुम्बकीय तरंग-के वेगकी यह समता आकस्मिक नहीं हो सकती। इससे इस बातका दृढ़ प्रमाण मिलता है कि प्रकाश जिस पदार्थमें चलता है, उसही पदार्थमें यह विद्युच्चुम्बकीय तरंगें भी चलती हैं। ईथर ही इन तरंगोंका भी माध्यम है।

इन विद्युच्चुम्बकीय तरंगोंके विषयमें अधिक अच्छी तरह जाननेकेलिए अब हम एक विशेष बातपर विचार करेंगे। मान लीजिये कि धातु-का एक गोला विद्युन्मय है। उसमें धनात्मक बिजली भरी है। उसके चारों ओर वैद्युद्बलक्षेत्र होगा और निकटवर्ती विद्युन्मय वस्तुपर ऐसा बल लगेगा मानो उसे कोई केन्द्रकी ओर खींच रहा है अथवा केन्द्रसे दूर हटानेका प्रयत्न कर रहा है। चित्रमें इस बलकी दिशाको केन्द्रीय रेखाओंके द्वारा सूचित कर सकते हैं। इन रेखा-ओंको बल-रेखाएँ (Lines of Force) कहते हैं। देखो चित्र १। ठीक इस ही प्रकार चुम्बककी भी बल रेखायें खींची जा सकती हैं।
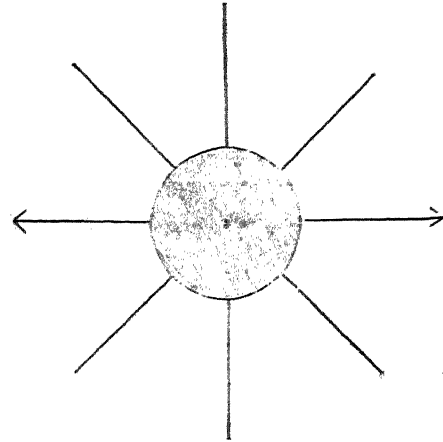
चित्र १

पहिले यही समझा जाता था कि यह रेखायें केवल बलकी दिशाको चित्रमें सूचित करनेकेलिए ही खींची जाती हैं। किन्तु अब ऐसी बहुतसी बातें ज्ञात हुई हैं जिनके कारण यह मानना पड़ता है कि इन रेखाओंका अस्तित्व वास्तविक है। वैज्ञानिकोंकी कल्पनाको छोड़ चारों ओरके ईथरमें यह रेखाएँ सशरीर विद्यमान हैं। इन रेखाओंकी दिशामें ईथरमें कुछ तनाव रहता है। अर्थात् इन रेखाओंका यह प्रयत्न रहता है कि जितनी भी छोटी हो सकें हो जावें। दो वस्तुओंके आकर्षण-का यही कारण है।

किन्तु इस तनावके अतिरिक्त एक और गुण इनमें होता है। जिस प्रकार पुद्गल पदार्थोंमें जड़त्व (Inertia) होता है, उसी प्रकार इन रेखाओंमें भी जड़त्व होता है। जैसे रेलगाड़ी, मोटरकार या अन्य भारी वस्तुमें गति उत्पन्न करनेमें बल

और समय लगता है और यदि वे चलती हों तो हम उन्हें एक दम ठहरा नहीं सकते, उसी प्रकार किसी तारमें बिजलीका प्रवाह एक दम उत्पन्न नहीं किया जा सकता और न पहलेसे होते हुए प्रवाहको एक दम रोका ही जा सकता है। ऊपर लिखा जा चुका है कि गतिमान विद्युन्मय वस्तु भी बिजलीके प्रवाहका एक रूप है। तब यह समझ लेना कुछ बहुत कठिन नहीं है कि सम्भवतः बिजलीके प्रवाहकी यह जड़ता उन बल रेखाओंकी जड़ताके ही कारण है जो विद्युन्मय वस्तुके साथ साथ चलती हैं।

किन्तु इन बल रेखाओंके जड़त्वका इसके अतिरिक्त और क्या अर्थ हो सकता है कि जिस ईथरमें यह रेखाएं बनी हैं उसमें ही जड़त्व है। प्रकाश विज्ञानसे यही परिणाम निकला था कि ईथरमें जड़त्व और स्थिति स्थापकत्व होने चाहियें और उपरोक्त विद्युच्चुम्कीय बल रेखाओंसे भी वही परिणाम निकला है।

हम ऊपर देख चुके हैं कि विद्युत्प्रवाहके कारण चुम्बकीय बल उत्पन्न हो जाता है। मान लीजिये कि एक लम्बा तार विद्युन्मय बना दिया गया है। उसके समीप प्रत्येक स्थानपर विद्युद्बल तारके लम्बरूप होगा। अतः ऐसा विचार कर सकते हैं कि उस तारसे बल रेखाएँ इस प्रकार जुड़ी हैं मानों एक लम्बे कीड़ेके शरीरपर बाल कांटोंकी भांति खड़े हैं।

अब यदि यह तार लम्बाईकी दिशामें बहुत वेगसे चलाया जावे, तो यह भी एक प्रकारका बिजलीका प्रवाह होगा और उस तारके चारों ओर भी चुम्बकीय बल क्षेत्र उत्पन्न हो जायगा। इस क्षेत्रकी रेखाएँ तारके चारों ओर वृत्ताकार होती हैं मानों तारने बहुतसे छोटे बड़े छल्ले पहन रखे हैं। अब ध्यानपूर्वक थोड़ा विचार करनेसे तीन बातें स्पष्ट हो जाती हैं। (१) विद्युद्बल तारपर लम्ब रूप तारकी मोटाईके केन्द्रसे बाहरकी ओर लग रहा है (२) उसही स्थानपर चुम्बकीय बल तार और विद्युद्बल दोनोंपर लम्ब रूप लग रहा है (३) और दोनों बल तारकी दिशामें चल रहे हैं।
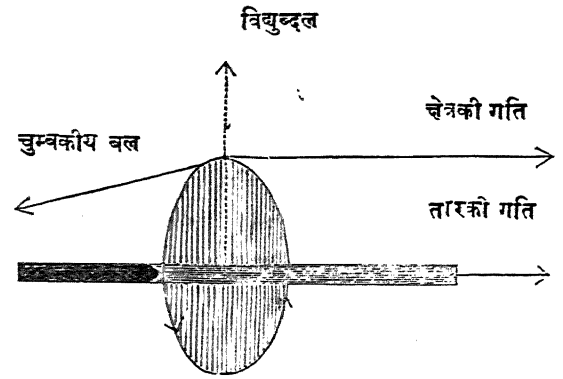
चित्र २

संक्षेपमें हम यों कह सकते हैं कि (१) जब बिजलीकी बल रेखाएँ अपनी लम्बाईके लम्ब की दिशामें चलती हैं तब चुम्बकीय बल रेखायें उत्पन्न होती हैं और (२) जब चुम्बकीय रेखायें इसही प्रकार चलती हैं तब बिजलीके बलकी रेखाएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

विद्युन्मय गोलेका पुनः विचार कीजिये। यदि वह वेगसे चले तो हमें समझना पड़ेगा कि उसके साथ ही साथ विद्युत् और चुम्बकीय रेखायें भी मकड़ीके जालेकी भांति आपसमें गुंथी हुई चलती हैं। अब प्रश्न होता है कि यदि गोला एकाएक रोक दिया जाय तो क्या होगा? यह समझनेमें कुछ कठिनाई नहीं है कि जड़त्वके कारण यह रेखायें थोड़ी देरतक चलती ही रहेंगी, जैसे चलती रेलके ठहर जानेपर भी यात्रियोंका शरीर चलता ही रहता है और उन्हें एक धक्कासा मालूम होता है। इन रेखाओंकी भी यही दशा होगी और इनमें चित्र ३ की भांति कुछ मोड़ पड़ जायगा।

यह भी स्पष्ट है कि इन रेखाओंमें यह मोड़ स्थायी नहीं हो सकता क्योंकि उनका स्थिति स्थापकत्व तुरन्त उन्हें सीधा करनेका प्रयत्न करेगा परिणाम यह होगा कि यह मोड़ आगे बढ़ने

लगेगा और मैक्सवैलके मतानुसार प्रकाशके वेग-से दौड़ेगा। इस रेखाके इस प्रकार चलनेपर चुम्बकीय रेखायें भी उत्पन्न होंगी और वे भी उस ही वेगसे चलेंगी।
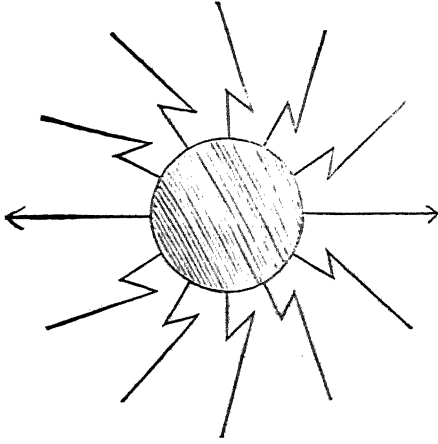
चित्र ३

यदि स्थिर विद्युन्मय गोलेमें एकाएक गति उत्पन्न की जावे तब भी यही बात होगी। यही क्यों यदि उसके वेगमें कुछ भी परिवर्त्तन होगा तब भी इस प्रकारके मोड़ उन रेखाओंमें बनेंगे और एक अरब फुट प्रति सैकंडके वेगसे दौड़ेंगे।

यदि वह गाला इधरसे उधर कूदता ही रहे अथवा कम्पन करे तब तो ऐसे बहुतसे मोड़ एक-के पीछे एक चलते हो रहेंगे। इसको ही विद्युत्त-रंग कहेंगे। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि जिस प्रकार अन्य तरंगें शक्तिको एक स्थानसे दूसरे स्थानतक ले जाती हैं, उस ही प्रकार बिजलीकी यह तरंगें भी विद्युन्मय गोलेसे निकालकर शक्ति-को चारों ओर फैलाती हैं।

विचार शक्तिने तो यह सब प्रपंच रच दिया। अब प्रश्न होता है कि क्या इन बातोंका कोई प्रमाण भी है? रंजन (Rontgen) की एक्सकिर-णें कैसे बनती हैं इस प्रश्नपर विचार करनेसे ऐसा प्रमाण मिल सकता है। इन किरणोंका संबंध उन आविष्कारोंसे है जो सर विलियम-क्रुक्स (Sir W. Crookes) ने अब से प्रायः ४०-४५ वर्ष पहिले करना प्रारम्भ किये थे।

साधारणतः हवामेंसे बिजलीका प्रवाह बहुत कठिनतासे होता है। किन्तु यदि किसी नलीमेंसे पम्प द्वारा हवा निकाल ली जावे तो बची हुई हवा विद्युत्प्रवाहका उतना प्रतिरोध नहीं करती। वह वाहक बन जाती है। इस नलीके दोनों सिरोंसे दो तार घुसाकर विद्युद्यंत्रसे जोड़नेपर प्रवाह होता है और समस्त नली एक प्रकारके प्रकाशसे भर जाती है। इसे शून्यनली (Vacuum Tube) कहते हैं।

यह शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि उस नलीमें ऋणध्रुव* (Cathode) से अगणित अतिसूक्ष्म कण निकलकर प्रायः २०००० मील प्रति सेकंडके वेगसे धनध्रुव (Anode) की ओर जाते हैं। इनके रास्तेमें धातुके पतले टुकड़े रखनेसे वे गरम हो-कर लाल हो जाते हैं। हीरा, लाल इत्यादि बहुतसे पदार्थ रखनेसे उनमेंसे एक प्रकारकी ज्योति निकलने लगती है। नलीके कांचसे भी हरी ज्योति निकलने लगती है। यहां तक कि तरकीबके साथ रखे हुए छोटे छोटे पहिये भी घूमने लगते हैं। यह कण भी विद्युन्मय होते हैं और ऋणात्मक बिजलीसे भरे होते हैं। नलीमें बिजलीका प्रवाह इन्हीं कणोंके द्वारा होता है। इनका नाम ऋण-ध्रुव-कण या विद्युत्कण रखा गया है।

सर जे० जे० टामसन (Sir J. J. Thomson) ने प्रायः बीस वर्ष पहिले कुछ परीक्षाएँ की थीं, जिनसे उन्होंने इन ऋण-ध्रुव-कणोंका आयतन, भार और उनमेंकी बिजलीकी मात्राको नाप लिया। उन्हें ज्ञात हुआ कि हाइड्रोजनके परमाणुका जितना आयतन है उससे एक लाखवां भाग इस

* नलीका जो तार विद्युद्यंत्रके उस सिरेसे जुड़ा होता है जहां ऋणात्मक बिजली होती है उसे ऋणध्रुव कहते हैं। दूसरे तारका नाम धन ध्रुव है।

कणका आयतन होता है! भारमें भी यह हाइड्रोजनके परमाणुके १७०० वें भागसे अधिक नहीं होता! किन्तु बिजली उसमें उतनी ही होती है जितनी हाईड्रोजनके परमाणुमें पाई जाती है।

यहां यह भी बतला देना अनुचित न होगा कि इससे कम बिजली कभी नहीं पाई जाती। और जहां कहीं बिजली पाई जाती है तो उसका परिमाण इस बिजलीका अपवर्त्त्य (Multiple) होता है। इस बातमें बिजली उन पदार्थोंके समान है जो गिनतीसे बिकते हैं। जैसे चुरट। आप एक चुरट खरीद सकते हैं, १०, १००, १००० भी खरीद सकते हैं किन्तु आधी या चौथाई चुरट कहीं नहीं खरीद सकते। अतः जितनी बिजली ऋणध्रुव कणमें होती है वह बिजली नापनेकी प्राकृतिक इकाई है। उसका नाम विद्युत्कण रखा गया है।

इतना ही नहीं टामसनने यह भी प्रमाणित कर दिया कि नलीमें चाहे कोई गैस भरी हो किन्तु उसमें जो ऋणध्रुवकण होते हैं उनका भार और उनकी बिजलीका परिमाण सदा वही निकलता है। इनमें कुछ अन्तर नहीं होता।

थोड़े ही दिन बाद यह भी ज्ञात हुआ कि बहुतसे पदार्थोंको गरम करनेसे, और बहुतसी धातुओंपर प्रकाश डालनेसे भी ऋणध्रुवकण निकलते हैं और उनका भार और उनकी बिजली भी उतने ही होते हैं।

यह सब बातें रंजन (Rontgen) को नहीं ज्ञात थीं। उन्हें केवल यही ज्ञात था कि शून्य नलीमें विद्युत्प्रवाह करनेसे ऋणध्रुवकण देखनेमें आते हैं। अपने प्रयोगोंसे उन्हें ज्ञात हुआ कि जहां ये कण नलीके कांचसे टकराते हैं उस स्थानसे कुछ विशेष प्रकारकी किरणें निकलती हैं। इन किरणोंसे आलोक चित्रणके कांच (photogrophic plate) पर वैसा ही असर होता है जैसा प्रकाश-किरणोंसे। किन्तु एक बात आश्चर्यकी यह है कि यह किरणें बहुतसे अपारदर्शक पदार्थोंसे भी नहीं रुकतीं। इन किरणोंकी सहायतासे हाथकी हड्डियोंका चित्र उतारा जा सकता है क्योंकि मांस और चमड़ीमेंसे तो यह किरणें निकल जाती हैं पर हड्डीमेंसे उतनी आसानीसे नहीं। इनका नाम उन्होंने एक्स-किरण (X-rays) रखा और तुरन्त ही डाक्टरोंने उनका उपयोग रोगीकी चिकित्सामें करना प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि उनकी सहायतासे हड्डीके टूटनेका ठीक स्थान, सिपाहीके शरीरमें गोलीका स्थान इत्यादि बहुत सुगमतासे मालूम हो सकते हैं।

टामसन द्वारा प्रमाणित ऊपर लिखी हुई बातोंके ज्ञात होनेपर इन किरणोंकी उत्पत्ति समझ लेना कुछ कठिन नहीं है। ऊपर दिखाया जा चुका है कि गतिमान् विद्युन्मय गोलेको रोकनेसे एक प्रकारकी तरंग पैदा होती है। और इन ऋणध्रुव कणोंका वेग प्रायः २०००० मील प्रति सेकंड होता है। अतः जब यह कांचसे टकरावेंगे तब तो अवश्य ही चारों ओरके ईथरमें तरंगें उत्पन्न होंगी। यदि कांचके स्थानपर किसी अधिक कठोर धातुसे टकरावें तब तो और भी अच्छा है। इन्हीं तरंगोंका नाम एक्सकिरण है।

प्रो० टामसनने यह भी प्रमाणित किया है कि जब विद्युन्मय गोला चलता है तो उसकी मात्रा (mass) भी बढ़ जाती है। वह अधिक भारी बोध होने लगता है। काफमैन (Kaufman) ने अपनी सूक्ष्मपरीक्षाओंके द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि ऋणध्रुवकणकी मात्रा (या उसका भार) उसके वेगपर अवलम्बित है। जो कण जितने अधिक वेगसे चलेगा उसकी मात्रा उतनी ही अधिक जान पड़ेगी। इससे स्पष्ट है कि इस कणके साथ कुछ ईथर भी अवश्य खिंच जाता होगा और इसी खिंचावके कारण उस कणका भार अधिक जान पड़ता होगा। जैसे यदि किसी तरल पदार्थमें कोई गोला चले तब उसके साथ ही तरल पदार्थ भी खिंचता है और इस कारण उस गोलेको चलानेमें अधिक बलकी आवश्यकता होती है और ऐसा बोध होने लगता है कि गोलेका भार बढ़ गया।

गोला जितना ही अधिक वेगसे चलेगा भार भी उतना ही अधिक मालूम होगा।

इतना ही नहीं सर जे०जे० टामसनने तो इसके भी बहुत अच्छे प्रमाण दिये हैं कि ऋणध्रुवकणका सारा ही भार, उसकी समस्त मात्रा, उसकी बिजलीके कारण है। इस कारण यह भी समझा जा सकता है कि उसमें बिजलीके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। अर्थात् ऋणध्रुवकण बिजलीका एक परमाणु मात्र है। उसको ही विद्युत्कण कह सकते हैं।

इस मतके अनुसार अब हम देखते हैं कि ऋणविद्युत् एक प्रकारका तरल पदार्थ है जो इन विद्युत्कणोंका बना है। इन विद्युत्कणोंमें पारस्परिक निराकरण है। अर्थात् एक कण दूसरेको अपने पास नहीं आने देता। और ये छोटे भी इतने हैं कि संसारमें अबतक जो वस्तु सबसे हलकी समझी जाती थी (हाईड्रोजनका परमाणु) उसके साथ इनकी तुलना ही नहीं हो सकती। ८०-६० फुट व्यासके गोलेके अथवा किसी बड़े मंदिरके शिखरके सामने एक छोटी पिनका माथा जितना छोटा जान पड़ता है उतना ही एक विद्युत्कण हाईड्रोजनके परमाणुके सामने छोटा है।

अबतक तो प्रयोगों और परीक्षाओंसे जानी हुई बातोंका उल्लेख किया गया। किन्तु मनुष्यको केवल घटनाओंके जान लेनेसे संतोष नहीं होता, वह उन घटनाओंका कारण जान लेनेका प्रयत्न करता है, और उसकी इच्छा होती है कि प्रकृति अपना कार्य किस प्रकार करती है यह जान ले। इसी लिए विद्युत्कणकी बनावटके विषयमें भी बड़े बड़े वैज्ञानिकोंने बहुत विचार किया है और लार्डकेल्विन (Kelvin) और लारमर (J.Larmor) ने इस विषयमें कुछ ऐसे सिद्धान्त स्थिर किये हैं कि जिनके द्वारा सभी घटनाओंकी समुचित व्याख्या हो जाती है।

उनके मतानुसार विद्युत्कण वास्तवमें ईथरके अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। जिस प्रकार जलमें भंवर एक विलक्षण और जलसे भिन्न वस्तु देख पड़ती है पर उसमें जलके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, उसी प्रकार विद्युत्कण भी ईथरके एक विकृत भागका नाम है। जब कभी ईथर समुद्रमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न होता है तब ही ऐसा विद्युत्कण भी पैदा हो जाता है। कोई मनुष्य अबतक ऐसा विकार उत्पन्न नहीं कर सका है और शायद कभी कर भी न सके। किन्तु इससे यह नहीं प्रमाणित हो सकता कि यह सिद्धान्त असत्य है।

धनात्मक विद्युत्के कणोंके विषयमें अभी इतना अधिक ज्ञात नहीं हुआ है। हां, यह अवश्य पता लग चुका है कि वे उपरोक्त विद्युत्कणोंसे बहुत बड़े होते हैं और प्रायः रासायनिक मौलिकोंके परमाणुओंके बराबर ही होते हैं। शून्य नलीमें वे चलते भी विद्युत्कणोंकी अपेक्षा बहुत धीरे धीरे हैं।

रेडियम और उसी प्रकारके अनेक पदार्थोंसे सदा तीन प्रकारका विकिरण (radiaton) होता है। इनका नाम एल्फा, बीटा और गामा रखा गया है। बीटा किरणें तो यही विद्युत्कण हैं। शून्य नलीकी भांति तीव्र वेगसे वे उसमेंसे निकलते हैं। एल्फा किरणें धनविद्युत्के परमाणु हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इन्हीं एल्फा परमाणुओंमें से जब विद्युत् निकल जाती है तब हीलियम (Helium) नामी मौलिक पदार्थ बनता है। गामा किरणोंमें कोई कण नहीं होते। वे एक्स किरणोंकी नाईं तरंग मात्र हैं।

अ० रदरफोर्ड(Rutherford) अ० साडी (Soddy)सर जे० जे० टामसन, श्रीमान् और श्रीमती क्यूरी (Curie) आदि अनेक विद्वानोंने सिद्ध कर दिया है कि रेडियम, थोरियम इत्यादि पदार्थोंके परमाणु सदा टूटते रहते हैं। उनके टूटनेके ही कारण उनमेंसे एल्फा और बीटा किरणें निकलती हैं और इनके निकल जानेपर जो कुछ बचता है वह रेडियम इत्यादिका पर-

माणु न होकर एक अन्य ही पदार्थका परमाणु होता है। जब रेडियमके परमाणुमेंसे एक एल्फा कण निकला तब एक पदार्थ बनता है, इसमेंसे फिर एक कणके निकल जानेपर कोई और ही पदार्थ बन जाता है। इसी प्रकार उत्तरोत्तर रेडियमसे साधारण सीसा (Lead) बन जाता है। और रेडियम स्वयं भी शायद पूरे नियमसे इसी भांति बना हुआ है। इन बातोंसे जान पड़ता है कि अब उन लोगोंकी आशायें कुछ सफल हुई हैं जो तांबे आदिसे सोना चांदी बनानेका प्रयत्न किया करते थे।

रेडियम विकिरणकी इन अद्भुत बातोंकी व्याख्या करनेके लिये यह समझना आवश्यक है कि प्रत्येक रासायनिक परमाणु का, (atom) यथा हाइड्रोजनके परमाणुका, संगठन बड़ा ही विलक्षण है। जिस प्रकार सौर जगत् (Solar system) में पृथ्वी, मंगल, शुक्र आदि ग्रह सूर्यके चारों ओर सदा सर्वदा चक्कर लगाते रहते हैं, उसी प्रकार जान पड़ता है कि परमाणुमें भी धनविद्युत्के कणकी परिक्रमा बहुतसे विद्युत्कण सततः किया करते हैं। परमाणु भी एक प्रकारका अत्यन्त सूक्ष्म सौर जगत् है।

रेडियम आदिके परमाणुमें ये विद्युत्कण इतने वेगसे चलते हैं कि बहुधा उनमेंसे एक विद्युत्कण अपना नियत मार्ग छोड़कर बाहिर निकल जाता है। बचे हुए कणोंको अब अपना मार्ग, अपना वेग इत्यादि सब कुछ परिवर्तन कर डालना पड़ता है। अब इस परमाणुका रेडियमके परमाणुसे कुछ सादृश्य नहीं रहता। यह एक दूसरे ही पदार्थका परमाणु बन जाता है। जब इसमेंसे एक और विद्युत्कण निकल जावेगा तब कोई दूसरा पदार्थ बन जायगा और इसी प्रकार धीरे धीरे अन्य पदार्थ बनते जावेंगे। अतः भिन्न भिन्न मौलिकोंमें अन्तर इतना ही है कि किसीके परमाणुमें १ विद्युत्कण है, किसीमें १० और किसीमें २५। इस सिद्धान्तके अनुसार इन कणोंकी संख्याके अतिरिक्त और कोई अंतर मौलिकोंमें नहीं है।

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि सम्भवतः विद्युत्कण ईथरका रूपान्तर मात्र है। यदि यह सत्य हो तो अब यह भी सिद्ध हो गया कि पुद्गल परमाणु भी ईथरके रूपान्तर हैं। संसारमें ईथर और शक्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जहां कहीं ईथर और शक्तिका मेल हुआ वहीं ईथरने कुछ विशेष आकार धारण किया और विद्युत्कण तथा पुद्गल परमाणु बने। पुद्गल यद्यपि हमें इतना वास्तविक जान पड़ता है किन्तु अब मानना पड़ता है कि वह केवल ईथर समुद्रमें भंवरके समान केवल शक्ति और ईथरके मिलनेका फल है। यह मत प्रायः ईश्वर और मायाके सिद्धान्तके तुल्य ही है।

पुद्गलका संगठन ऐसा मानलेनेपर यह समझ लेनेमें भी कुछ कठिनाई नहीं रह जाती कि पृथ्वी आदि बड़े बड़े ग्रह नक्षत्र ईथर-समुद्रमें बड़े वेगसे चलते हैं तिसपर भी उन्हें कुछ रुकावट नहीं होती क्योंकि वह तो ईथर ही हैं।

इन बातोंसे यह न समझ लेना चाहिये कि ऊपर जो मत लिखा गया है उसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार प्राकृतिक घटनाओंकी व्याख्या हो ही नहीं सकती। विज्ञानके अध्ययनमें यह स्पष्ट रूपसे जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि अमुक बात तो इंद्रिय द्वारा जानी हुई तथा प्रयोगों और परीक्षाओंद्वारा प्रमाणित की हुई है और अमुककी कल्पना प्राकृतिक रहस्योंके समझनेमें सहायता देनेको मन या मस्तिष्कने की है। केवल घटनाओंकी सूची बना लेनेसे वैज्ञनिकको संतोष नहीं हो सकता और न वह उन सब घटनाओंको याद ही रख सकता है। वस्तुतः जबतक सब घटनाओंमें परस्पर सम्बन्ध बतलानेवाला कोई सिद्धान्त न बनाया जाय तबतक विज्ञानका कुछ मूल्य ही नहीं। यह बहुत संभव है कि आज जो सिद्धान्त स्थिर किया गया है वह कल एक

नवीन घटनाके ज्ञात होनेपर असत्य सिद्ध हो जावे। और सदा ऐसा होता भी रहा है। किन्तु यह कदापि सम्भव नहीं कि अपनी इंद्रियोंसे जिन घटनाओंका हमने ज्ञान प्राप्त किया है वे कभी असत्य प्रमाणित हो सकें। वास्तवमें तो विज्ञानका आधार इन्हीं घटनाओंपर है किन्तु जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कल्पनाके विना भी उसका काम नहीं चल सकता।

६–भुनगा पुराण

[लेखक-प्रोफेसर रामदास गौड़, एम. ए.]

कपाल–खण्ड

इतनी कथा सुन भुनगादि ऋषि बड़े प्रसन्न हो बोले, हे महर्षे आपके श्रवणामृतकथाके पानसे तृप्ति नहीं होती। आपने इन दिव्य लोकोंका वर्णन करके संसारका बड़ा उपकार किया है। अब आप कृपाकर उस संग्रामका वर्णन कीजिये जो देवताओं और असुरोंमें हुआ और जिसमें आपने भी अपने बल और पराक्रमसे उन वीर क्षत्रियोंका सामना किया था। महाराज कृपा कर यह वर्णन कीजिये कि किस प्रकार सहस्र भुनगाओं और लक्ष जुंगोंसे भी अधिक बलवान मत्कुणोंके* समान गोल शरीरवाले और इन्द्रबधूटियोंके समान सुन्दर रक्त वर्णवाले योद्धाओंसे आपकी जातिके असुरोंसे परस्पर कैसे कैसे प्रहार हुए। और यह भी बतलाइये कि तमोमय सूर्य्योंकी नाईं गोल विशाल सिरवाले अतुल पराक्रम और बलशाली आप जैसे महावीर दैत्योंने उनके प्रहारके कैसे कैसे उत्तर दिये और युद्धका अन्तिम परिणाम क्या हुआ, सो भी कृपाकर बतलाइयेगा।

भुनगादि ऋषियोंके यह प्रश्न सुन महर्षि भुनगेश्वरजी ऋषियोंकी श्रद्धा और भक्तिकी भूरि भूरि प्रशंसा करके प्रसन्न मनसे बोले, हे भुनगा-कुल भूषणो, इस युद्धकी कथा अत्यन्त रोचक है, परन्तु विस्तार बहुत बड़ा है। पहले पहल इस कथाको एक पद्म श्लोकोंमें महर्षि परमाणु व्यासने रचना की थी जो शिवलोकमें देवताओंके पास चली गयी। उसका थोड़ा ही थोड़ा अंश अन्यान्य लोकोंमें रह गया है। उस थोड़े अंशका भी मैं तुमसे विस्तारपूर्वक वर्णन करूं तो इस कलियुगके अन्ततक समाप्त होना असम्भव है। इसलिए हे महर्षियो, इस कथाको अति संक्षेपसे मैं तुमसे कहूंगा।

मैं वर्णन कर चुका हूं, कि मूर्छा बीतनेपर मैंने अपनेको एक नये शरीरमें पाया। मैं जहां खड़ा था वहां मेरी ही जातिके तिहत्तर पद्म योद्धा अनेक व्यूह बनाये हुए बड़े उत्साहसे युद्धकेलिए सन्नद्ध थे। मसूड़ोंके बड़े लम्बे चौड़े मैदानमें हमारी सेनाके सामने ही देवोंकी सेना भी बड़ी युयुत्सासे एकत्र हो रही थी। इसमें आगे आगे दिव्य शरीरवाले कामरूप क्षत्रियोंका व्यूह था, फिर उसके पीछे वैश्य लोग भी विष्णुपदामृतसे परिप्लुत समर भूमिकेलिए सुसज्जित हो कर आये थे। शूद्रोंकी संख्या गणनातीत थी। सच पूछिये तो उनके मुकाबिले हमारे तिहत्तर पद्म सैनिकोंकी कुछ भी गिनती न थी। वहां लोग सब मिलाकर तीन सहस्र शंख थे। रसद भी उनके पास काफी थी। अपना देश और अपनी भूमि होनेसे उन्हें किसी तरहकी कमी नहीं थी। हां, यह बात अवश्य थी, कि क्षत्रियोंकी संख्या जो सेनामें अग्रगण्य थे एक करोड़से अधिक नहीं थी और हमारी तरफ़ प्रत्येक सैनिक क्षत्रिय और योद्धा था और हम लोग सबके सब रक्त बीज नामक प्रसिद्ध दैत्य जातिके थे। प्रत्येक क्षणमें एकसे दो हो जाना कोई बात ही न थी। यद्यपि हमारी ओर कमसरियटका उचित प्रबन्ध न था। तथापि हम लोग जिस देशमें पहुंचते थे उस

---

* मत्कुण = खटमल

General साधारण]

देशसे ही भोजनकी पर्याप्त सामग्री ले लेते थे। इसके अतिरिक्त जिस देशपर हम लोगोंने धावा किया था वह स्वयं धन धान्यसे भरा पूरा और सब तरहकी सम्पत्तिसे रंजा पुंजा था। थोड़ी ही थोड़ी दूरीपर अमृतके समान मधुर और शीतल जलके सोते वह रहे थे। यहांकी धरती बड़ी उर्वरा थी इसी लालचसे हम लोग उसपर आक्रमण करनेकेलिए तय्यार हो कर गये थे।

हमारी सेनाके जितने लोग वहां युद्धके लिए सन्नद्ध थे। सभी इस मैदानसे थोड़ी ही दूर पर उत्पन्न हुए थे। हमारे पूर्व पुरुष जिनकी हम सब सन्तान थे, वही इस महती सेनाके सामन्त थे। छोटी समितियोंकी भी उन्हींने रचना की थी। अकेले उन्हीं भीषण पितामहके पराक्रमसे हम सबोंकी उत्पत्ति और पालन पोषण हुआ था, पर ऐसा न कोई समझे कि हमारे भीषण पितामहने विवाह भी किया था। नहीं वह जन्मसे ही ब्रह्मचारी थे। उन्होंने अपने तपोवलसे इन असंख्य शरीरोंको अपने ही शरीरसे प्रकट कर दिया था। यद्यपि हम सब असुर थे तथापि हम सभी देवयोनिसे थे। इस बातका अमरकोष प्रमाण है। हम सब अपने पितामहकी आज्ञाका प्राणपणसे पालन करते थे, और उनकी आज्ञा थी कि केवल इस देश पर नहीं वरन् सारे मानवब्रह्मांड पर ही अधिकार जमाना हमारा अभीष्ट है। इसके लिए हम बलका प्रयोग करेंगे और या तो बलपूर्व्वक जीत ही लेंगे या इस नश्वर शरीरको पवित्र समर क्षेत्रमें त्याग ही देंगे।

'भीषणस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्।'

हे! महाभाग भुनगानन्दनो, जिस समय भीषण पितामह अपनी इस असंख्य संतानकी उत्पत्ति कर रहे थे, उसी समय एक दिन देवताओंका एक भेदिया पितामहजीके आनेकी टोह लेकर तुरन्त देव मण्डलीमें पहुंचा और वैरीके देशके भीतर आजाने और आक्रमण करनेकी तैय्यारीका समाचार सुनाया। फिर क्या कहना था। उधरके वीर योद्धा भी अपनी सेनाको एकत्र करके बड़ी शीघ्रतापूर्व्वक युद्धक्षेत्रके लिए तैय्यार होने लगे। इधर हम लोगोंकी संख्या बढ़ती जाती थी। उधर उन लोगोंकी सेना जुटती जाती थी। दोनों ओरकी तैय्यारियोंसे रणक्षेत्रमें बड़ा कोलाहल था, यद्यपि युद्धका शंखनाद अभी तक नहीं हुआ था। देखते ही देखते उधर शूरवीर देवताओंने बिना किसी रण-नियमको स्थिर किये युद्धकी घोषणा कर ही दी। इधर भी तरन्तु ही भीषण पितामहने अपने भीषण शंखको बजाया।

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानक गो मुखाः
सहसैवाभ्य हन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत्।

इत्यार्षे श्री भुनगा महापुराणे कपाल-खण्डे देवासुर महासमरवर्णनो नाम षष्ठोऽध्यायः।

होमियोपैथिक चिकित्सा

स्त्रियोंके रोग

[ले० पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव]

८—हरारोग (chlorosis)

[विज्ञान भाग ६ संख्या १ पृष्ठ १३ से सम्मिलित]

इस रोगमें औरतोंको १६ और २५ सालकी उम्रमें बदनकी कमज़ोरीकी वजहसे मुंह और बदनपर पीलापन या हरापन आ जाता है, खून कम हो जाता है और खूनके लाल कीड़े कम पड़ जाते हैं। इसको "हरा रोग" भी कहते हैं और इसमें पसीना आना, खूनका वहना, मंदाग्नि और सोंधी चीज़ें मट्टी, खरिया वग़ैरा खानेकी रुचि आदि बातें पाई जाती हैं। कब्ज़ रहने लगता है, मुहसे बास आने लगती है, पेटके अन्दर फोड़े हो जाते हैं, कै, और कभी खून भी गिरने लगता है, मुंह भरभराया रहता है, आंखोंके नीचे काले दाग हो जाते हैं, पलकें चिपक जाती हैं, टखने सूज जाते हैं, नाखूनोंमें सुर्खी नहीं दीखती, छातीमें धड़कन होने

Medicine वैद्यक]

लगती है, नब्ज धीमी चलती है, और बहुतसी खराबियां तमाम बदनमें हो जाती हैं जिनसे कमज़ोरी और खूनकी कमी होती जाती है।

एनीमियाकी बीमारीमें और क्लोरोसिसमें साधारणतः कुछ फ़र्क नहीं मालूम होता लेकिन यह दोनों बीमारियां अलग अलग हैं। क्लोरोसिस रज अदर्शन, श्वेत प्रदर या और किसी मासिक-धर्म सम्बन्धी रोगके कारण हो जाता है। इसके हो जानेपर कभी कभी (मासिकधर्म) रजः स्राव बन्द हो जाता है और ऐसा मालूम होता है कि गर्भाधान हो गया है, जिस कारणसे जल्द इलाज भी नहीं किया जाता। इसलिए चाहिये कि इस बीमारीमें किसी समझदार डक्टरसे सलाह लेकर इलाज शुरू किया जाय। ऐसी भी सूरतें हो जाती हैं जिनमें क्लोरोसिस, और क्षयरोग के मरीज़ एकसी सूरतके हो जाते हैं, यद्यपि बीमारियां बिलकुल भिन्न हैं। अगर मासिकधर्मकी खराबीकी वजहसे क्लोरोसिस हो गया है तो केलकेरिया कार्ब, केमोमिला, कौलोफ़िलम कोनियम, साईक्लेमेन, ग्रिफाईटीज, जैलसिमियम, हिलोनियस (Helonias) लैपटेन्डा (Leptandra) सिनीसिओ औरम, प्लंबम, (Plumbum) इगनेसिया फासफौरिकएसिड (Phosphoric Acid) और सीपियाके (Sepia) सेवनसे ज़रूर फ़ायदा होगा।

९—(Prolapsed uterus) रहमका टल जाना

अकसर जवान औरतोंमें और कभी कभी जवान लड़कियोंमें भी कूदने; दौड़ने, नांचने या मासिकधर्मके शुरु होनेसे पहले ज्यादा मेहनत या बहुत बोझ उठानेसे गर्भाशय असली जगहसे हट जाता है। अर्थात् नीचेको आ जाता है, ऊपरको हट जाता है या दाहिने, बाएं हो जाता है। कमरमें दर्द और तनाव होना, पेशाबकी जगह बोझ और सुर सुराहट मालूम होना, कमर और पेडूमें दर्द होना, कभी कभी ऐसा मालूम होना कि भगसे कोई चीज़ निकली पड़ती है, थकावट, जलन, खड़े होनेको जी न चाहना, पानीका निकलना, ज्यादा खूनका निकलना, बार बार पेशाब होना या पेशाबकी हाजत होना, चिड़चिड़ापन, बदहजमी, चित पड़े रहनेसे कुछ दुखमें कमी और उठने वा चलनेपर ज्यादती होना, इत्यादि बातें इस रोगके लक्षण हैं।

यह रोग कई बच्चे हो जानेपर भी औरतोंको हो जाता है, जिसकी असली वजह यह है कि बच्चा होनेके बाद गर्भाशय मामूलसे बड़ा रहता है और नीचे रोकनेकी ताकत कम हो जानेकी वजहसे जब झटकेसे उठने या चलनेसे उसपर जोर पड़ता है तो अपनी जगहसे टल जाता है। इसीलिए बच्चा होनेके बाद चित्त पड़े रहने को कहते हैं और उठनेको मना करते हैं। इसके अलावा चोट लगने, जोरसे कांखने, उलांघने, जोरसे देरतक खांसने, ज्यादा कै करने, बवासीर, कब्ज, पुरानी बदहज़मी, बहुत तंग कपड़ा पहिरने, दस्तावर चीजोंके खानेसे भी यह बीमारी हो जाती है। नीचे लिखी हुई दवायें देनेसे फ़ायदा होगा लेकिन मरीज़को चाहिये कि जब सोवे, तो कमरके नीचे तकिया लगा ले, चितसोवे, धीरे धीरे चले, ठँडे पानीसे नहावे, पानीके छपके ले, बोझ न उठावे, ज्यादा देरतक न बैठे, देरमें हज़म होनेवाली चीजें मांस वगैरह कभी भी न खाये। हरी तरकारी, फल, साग, भाजी अवश्य खाये। अगर इन सब बातोंका ध्यान रखकर दवाएँ खाई जायंगी तो ज़रूर फ़ायदा होगा।

आरनिका—अगर गिरने, चोट लगने, या ज़्यादा मेहनत करनेकी वजहसे रोग हुआ हैं।

बेलैडोना—अगर भारीपन हो और कोई चीज़ निकलती हुई मालूम पड़े, गर्मी मालूम होती हो, जलन और सुरसुराहट मालूम होती हो, और रजः स्राव अधिक होता हो।

लिलियम-टिग—जब नीचेकी तरफ़ बोझ और

सुरसुराहट हो चढ़ने या उलांघनेमें तकलीफ़ हो, बूंदार पीले रंगका पानी निकले।

नक्स वोमिका—धब्बे खूनके निकलें, बदहजमी रहे, अफरन मालूम हो, कब्ज रहे, काँखनेसे पाखाना आये, बवासीर हो, पीठ और पेडूमें दर्द रहे।

सीपिया—ज्यादा पानी निकले और मासिकधर्म जल्दी जल्दी या देरमें कमीके साथ हो, भूक न लगे, जी मिचलाये, कब्ज रहे, उदासी रहे, पेशाबकी हाजत रहे, जंघासोंमें दर्द हो, ऐसा मालूम हो कि कोई चीज़ निकली पड़ती है।

स्टैनम—दर्दके साथ सुरसुराहट हो जिससे यह मालूम हो कि मासिकधर्म होना चाहता है। ज्यादा खून जाय, सुस्ती बढ़े, कब्ज और कमजोरी रहे। स्टैनमके बदले सलफ़र भी दे सकते हैं।

१०–गर्भाशयकी सूजन (Swelling of the womb)

गर्भाशयकी सूजन, किसी भी जवान औरतको हो सकती है। इसके होनेसे अनेक व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं, जिनका सम्बन्ध सन्तानोत्पत्तिसे है। पेटमें बाईं तरफ नाफके नीचे गर्भाशय होता है। इसमें जब सूजन होती है तो दर्द, जलन, टपकन, कोंचन, भारीपन इत्यादि मालूम होते हैं और कब्ज बुखार, सिरका दर्द घबराहट और बेचैनी रहती है। नब्ज़ तेज़ चलती है, प्यास ज्यादा लगती है, जी मिचलाता है, कै हो जाती है, कभी कभी दस्त आ जाते हैं, जीभपर मैला पीलापन और रूखापन आजाता है। प्रायः बेचैनीकी वजहसे मरीज़ पैर सिकोड़ कर बैठना पसंद करता है। इस रोगके कारण ज्यादातर सर्दीका लगना, सर्दीमें उघाड़ा पड़ा रहना, तर घासपर या ज़मीनपर चलना, मासिकधर्मका रुक जाना, फोड़ोंका होना, वगैरा हैं।

किसी होशियार डाक्टरसे सच्चा हाल बयान करके इलाज कराना चाहिये और जबतक ऐसा डाक्टर न मिले नीचे लिखी दवायें देनी चाहियें और बिलकुल आराम करना चाहिये। खाना सादा खाया जाय, कोई गर्म चीज़ न खाई जाय और ज्यादा चलने फिरनेसे मरीज़को रोका जाय।

एकोनाइट—प्यास ज्यादा लगे, बुखार हो, पेटमें दर्द नब्जमें तेजी और बेचैनी हो।

एपिस—मुंह सूखा रहे; पर पानी पीनेको जी न चाहे, पेशाब कम हो, गर्भाशयमें जलन हो, गशी आवे, रोनेको जी चाहे और चीख़ मारे।

आरसेनिक—सर्दी मालूम हो, बुखार आ जाय, पसीना निकले, कमज़ोरी और बेचैनी रहे, जलन मालूम हो, पर आगके सेकनेसे आराम मिले।

बलेडोना—मुंह लाल और गर्म, सिरमें टपकेका दर्द, बुखार बहुत ज्यादा, थोड़ी आवाज़ या धमका भी न अच्छा लगे, सांस घुटे, और बदबू आये।

ब्रोसिमस—बुख़ार ज़ोरसे आ जाय, बेहोशी और गफ़लत रहे; पागलपनकी सी हालत हो गफ़लतमें बकने लगे और हाथ पैर पटके।

मरक्यूरियस कौर—दिमाग़ फटा जाय, सर्दी मालूम हो। पसीना निकले, कराहे, रहममें दर्द, जलन और टपका मालूम हो।

पलसैटिला—सिरमें दर्द हो, मुंहका स्वाद बिगड़ जाय, दस्त हों, रहम में दर्द।

रस टॉक्स—घबराहट हो जो सूरज डूबनेके बाद ज्यादा हो जाय, बुखार हो, जीभकी नोक लाल हो, जैसे जैसे रात बीते दर्द बढ़ता जाय और हाथ पैर पटके। यह दवा उस वक्त ज्यादा फायदा करती है जब कि बीमारी बच्चा होनेके बाद तुरन्त ही हुई हो।

११–गर्भाशयमें मसोरियोंका हो जाना (Polypus of the womb)

इस रोगमें बड़ी बेदना होती है। जो बीमारियां औरतोंको ३० वर्षकी उम्रके बाद होती हैं, उनमेंसे $\frac{1}{3}$ इस रोगकी वजहसे होती हैं। छोटे दानेसे लेकर बड़े नारियलतककी नापके और

वजनमें कई पौंड तकके पिण्ड पाये गये हैं। अब ख्याल करलो कि बदनके अन्दरके हिस्सेमें इनके होनेसे कितना कष्ट होता होगा। इसमें ईश्वरने इतना बचाव अवश्य रखा है कि इस पिण्डमें नासूर कभी नहीं पैदा होता। यह बीमारी क्यों हो जाती है यह बतलाना बहुत ही कठिन है, लेकिन कई डाक्टरोंका यह ख्याल है कि जब काफ़ी गिज़ा नहीं मिलती है, तब इस खराबी-की जड़ कायम हो जाती है और बाज़ बाज़का ख्याल है कि रहमकी खराबीकी वजहसे यह रोग हो जाता है। किसी किसीकी यह भी राय है कि तीस, पैंतीस सालकी उम्रमें एक खास तब्दीली होती है जिसकी वजहसे यह बीमारी हो जाती है। इस बीमारीमें सब बातें ऐसी ही पाई जाती हैं जो हम औरनोंकी और और बीमा-रियों में अबतक लिख आये हैं, लेकिन चूंकि यह बीमारी ज्यादातर अंदर ही अन्दर बढ़ती रहती है और कभी कभी इसमें राद भी पड़ जाती है और बहुतेरी सूरत ऐसी हैं कि जिसमें औज़ारोंकी जरूरत पड़ती है इसलिये चाहिये कि होशियार डाक्टरसे इलाज कराया जाय। ३ दवायें जिनका असर इस बीमारीमें अच्छा देखा गया है हम लिखे देते हैं लेकिन यह मर्ज़के शुरूमें दी जांयगी तो ज़रूर फ़ायदा होगा। (१) कैलकेरिया-कार्ब Calcar. Carb. (२) कौनवेलेरिया मैजैटिस (Convallaria Majates) (३) थ्यूजा (Thuya)

पशु-प्रजनन

[लेखक ऐल० ए जी०]

[विज्ञान भाग ५ अङ्क ६ पृष्ठ—१५५ से सम्मिलित]

प्रजनन सम्बन्धी कुछ मोटी मोटी बातें

(१) बेटेमें मांके और बेटीमें बापके अवगुण आ जाते हैं।

(२) दूरकी जातियोंके पशुओंका समागम नहीं कराना चाहिये। जैसे पंजाबके पशुओंसे हिमालयके पशुओंका।

(३) बच्चेका नर या मादा होना अधिकारमें नहीं है अर्थात् मन चाही सन्तान उत्पन्न नहीं की जा सकती।

(४) प्रजननकेलिए नरकी अवस्था पांच वर्ष-की उपयुक्त है और मादाकी तीन वर्षकी। ३ वर्ष-से लेकर १० वर्ष तककी अवस्था प्रजननके लिये श्रेष्ठ है। गर्भधारणका समय गायके लिए २८० दिन है और भैंसकेलिए ३२० दिन है। गाय २४ घंटे गर्म रहती है और भैंस १८ घंटे। गाय २१ दिन बाद और भैंस २४ दिन बाद गर्म हुआ करती है।

गर्म होनेके चिन्ह

मस्त हो जाना, शोर करना, उछलना, कूदना, योनिस्रावका होना, दूसरे पशुओंपर चढ़ना, इत्यादि मादाके गर्म होनेके चिन्ह हैं।

गर्भिणी होनेके चिन्ह

मादा गरीब और सुस्त हो जाती है, मासिक धर्म बन्द हो जाता है। दाहिनी बगल समया-नुसार बढ़ती जाती है। गर्भस्थ बच्चेकी हरकतें मादाके पानी पीते समय दिखाई दे सकती हैं। अधिक समय व्यतीत हो जानेपर बच्चा हाथसे टटोला जा सकता है। अन्तिम दिनोंमें मादाकी शारीरिक दशा अच्छी हो जाती है।

गर्भपात

उचित समयके पूर्व बच्चेके बाहिर निकल आनेको गर्भपात कहते हैं। ऐसा अति शारीरिक परिश्रम, भय, चोट, निकृष्ट भोजन, विष और रोगके कारण हो जाता है।

प्रसव के समय पशुकी अवस्था

प्रसव कालमें मादा बेचैन हो जाती है। बार बार बैठती और उठती है। बहुधा दुमको इधर उधर हिलाती है। थन (Udder) दूधसे फूल जाते हैं। दुग्ध शिरा (milk vein) स्पष्ट दिखलाई देती है। दुमकी जड़पर ज़रा सा गड्ढा हो जाता

Animal breeding पशु-प्रजनन]

है। मादा ठंडी और शांत जगह जानेकी इच्छा प्रकट करती है और वहांपर प्रसव करनेका प्रयत्न करती है। पहले पानीकी थैली निकलती है, फिर बच्चा निकलता है। जब प्रसव काल निकट आवे तब मादाको अकेला छोड़ देना उचित है परन्तु दूरसे निगाह रखनी आवश्यक है। यदि इस समय कुछ कठिनता प्रतीत हो तो किसी जानकार ग्वाले या पशुचिकित्सकको बुला लेना चाहिये।

प्रसवके पश्चात्

जब मादा जेर गिरा दे तब उसको फ़ौरन उठाकर ज़मीनमें गाड़ देना चाहिये। प्रसव स्थानको साफ़ कर देना चाहिये। मादाके पुट्ठोंको गर्म जलसे या पोटाशियम परमेंगनेट (Potassium Permanganate) के घोलसे धो देना चाहिये। मादाको गर्म, बलोत्पादक भोजन देना चाहिये। चोकर एक सेर, गुड़ पाव सेर, सोंठ एक छटांक, हल्दी एक छटांक, काली मिर्च एक छटांक और निमक एक छटांक तीन चार सेर पानीमें औटा कर देना लाभदायक होगा। बच्चेको ध्यानपूर्वक देखना चाहिये। यदि कोई चिपकनेवाली वस्तु आंख या कान या नाकमें लगी हो तो निकाल देनी चाहिये। यदि खुर लम्बे हों तो नीचेसे छील देने चाहिएं। मादाको बच्चा चाटने देना चाहिये। चाटनेसे चिपकनेवाला सब पदार्थ दूर हो जाता है और बच्चेको आराम मिलता है। बच्चेको खड़े होनेमें सहारा देना चाहिये और दूध पीनेकेलिए थन मुंहमें लेना सिखाना चाहिये। बच्चेको दिनमें ३, ४ बार चुखाना चाहिये। कोले (Colostrum) में बलवर्धक शक्ति होती है और बच्चेके पेटको साफ़ रखता है।

मादा और बच्चेको एक हवादार गर्म और साफ़ स्थानमें रखना उचित है। वर्षा और शीत कालमें उन्हें कुछ उढ़ा देना उचित है।

अच्छे सांड़के गुण तथा लक्षण

सांड़में वह सब गुण होने चाहिये जिन्हें कि हम अपने रेवड़में लाना चाहते हैं। वह बलवान और स्वस्थ होना चाहिये। उसमें कोई शारीरिक दूषण या रोग नहीं होना चाहिये। प्रजननके कामके सांड़का ऐतिहासिक वृत्तान्त ऊँचा होना चाहिये। उसकी वृद्धावस्था न हो। प्रजननकेलिए श्रेष्ठ अवस्था चार वर्षकी है। उसका रंग, सींग, गलेका भूलता हुआ मांस (Dewlap) कूबड़, कानोंकी स्थिति, सिरका उठान, ऊंचाई लपेट आदि उसकी जाति और कुटुम्बको स्पष्ट प्रकट करते हुये होने चाहियें। अगली पिछली टांगें भली भांति पूर्णताको पहुंची हुई होनी चाहियें। सांड़का शरीर गठीला और सुडौल होना चाहिये। पसलियां चौड़ी और स्पष्ट होनी चाहियें। सांड बहुत मोटा और सुस्त नहीं होना चाहिये। लिंगकोष (Sheath) पर थनोंका होना अधिक दूध देने वाले घरानेका चिन्ह है।

सांड़की रक्षा।

दुर्बल, छूत वाले रोगोंसे पीड़ित और अस्वस्थ गायोंपर उसे कभी न छोड़ना चाहिये। एक वर्षमें ५०-६० गायोंसे अधिकपर उसे छोड़ना उचित नहीं। उसको अधिक मीठा भोजन देना हानिकारक है। उसे सदा बंधा न रखना चाहिये। काफ़ी व्यायाम और बलोत्पादक भोजन कराना चाहिये।

दूध देने वाली गाय लेनी चाहिये

गाय अधिक दूध देने वाले घरानेकी होनी चाहिये। उसका ऐतिहासिक वृत्तान्त ऊँचा होना चाहिये। स्थानिक जल वायु और भोजनका उसपर अच्छा प्रभाव पड़ना चाहिये। वृद्धावस्था न होनी चाहिये। गायकी अवस्था तीनसे पांच वर्ष तककी होनी चाहिये। स्वभाव कोमल होना चाहिये। उसके घरानेके सब उपयुक्त चिन्ह उसमें उपस्थित होने चाहिएं। दूसरे ब्यांतकी गाय सदा ख़रीदनी चाहिये, जिससे कि यदि उसमें

कोई बुरी लत होगी तो प्रकट हो जायगी। गर्भिणी गायका ख़रीदना सदा हानि कारक है।

अधिक दूध देनेवाली गायके लक्षण

गायमें अपनी जातिके गुण स्पष्ट होने चाहियें। बाल नरम और चमकदार, खाल पतली और पीले रंगकी, गर्दन लम्बी और पतला, कान बड़े और उनके अन्दरका रंग पीलापन लिये हुये, आखें उभरी हुईं, माथा लम्बा और मुंह बडा, गलेकी झूल ख़ूब लटकी हुई, अगला धड़ पतला, पिछला धड़ चौडा और गहरा होना चाहिये। गात पुट्ठों-की ओर ज़रा ऊँची होनी चाहिये। दुम लम्बी, जड़पर मोटी और क्रमशः पतली होनी चाहिये जिसके अंतमें बालोंका बड़ा गुच्छा होना चाहिये। ऐन (udder) ख़ूब उन्नत और अधिक दूध एकत्रित करने योग्य होना चाहिये। ऐन (udder) यदि दूध काढ़नेपर बहुत सिकुड़ जाय तो समझना चाहिये कि अधिक दूध रख सकता है। थन साधारण लम्बाईके होने चाहियें और उनकी आकृति वर्गाकार होनी चाहिये। दूधकी धार मोटी होनी चाहिये और दूधका रंग पीलापन लिये हुये होना चाहिये। पनीला रंग मक्खनकी कमी प्रकट करता है। दुग्धशिरा उभरी हुई होनी चाहिये।

बछड़ोंकी रक्षा

बच्चोंको सर्दी गर्मीसे बचाना चाहिये। प्रथम दो मास उन्हें एक हवादार और साफ़ सुथरे स्थानमें रखना चाहिये। यदि ऐसा न किया जायगा तो जूँ इत्यादि पड़ जायंगी। शुरू शुरूमें २ सेर तक मांका दूध पिलाना चाहिये। दूसरे महीनेसे बच्चा हरी नर्म घास चरने लगता है, सो उसके सामने २, ३ बकट ऐसी घास डाल देनी चाहिये। इसकी मात्रा धीरे धीरे बढ़नी चाहिये और दूध घटाते जाना उचित है। अलसीका दलिया बिना मक्खनके दूधमें औटा कर देना अच्छा है। इससे बल बढ़ता है। ज्यों ज्यों बड़ा होता जाय चारा बढ़ाते जाना चाहिये। १ वर्षका हो जानेपर एक दो सेर सूखा और ४ से ८ सेर तक हरा चारा देना चाहिये। दूसरे वर्ष थोड़ी खली भी देनी चाहिये। बच्छेको दिन भर बंधा न रखना चाहिये। उसे खुला रखना चाहिये, जिससे कि वह खेल कूद सके।

खेतिहरोंकी खोज

[ले० पं० गङ्गाप्रसाद वाजपेयी, बी. एस-सी.]

यदि हम बम्बईसे किसी जहाज़पर सवार हों और लङ्काद्वीपसे सीधे दक्षिण-पूर्वकी ओर हिंद महासागरमें चल पड़ें तो हमें एक बहुत बड़ा द्वीप मिलेगा। इस टापूका नाम आस्ट्रेलिया है। आजकल इस टापूमें युरोपसे आये हुए गोरे लोग बसते हैं। यहांपर अब उन्हींका राज्य है। इस द्वीपमें सोनेकी खानें हैं, संसार भरमें सबसे उत्तम ऊन यहां पैदा होता है, सुन्दर घोड़े और अन्य पशु भी यहां पैदा किये जाते हैं।

आस्ट्रेलियामें समृद्धि होते हुए भी खेती-बारी बहुत कम होती है। कहीं कहींपर गेहूं और गन्नेके खेत दिखलाई तो अवश्य पड़ते हैं परंतु यह पौदे दूसरे देशसे लाये हुए हैं। आस्ट्रेलियाने संसारके अन्न भंडारमें एक पौदा भी नहीं दिया है?

फिर क्या जबतक जहाज़, तार और रेल नहीं बने थे, और युरोपीय गोरोंने आस्ट्रेलियामें पदार्पण नहीं किया था, तबतक आस्ट्रेलिया जन-शून्य था? नहीं, आज भी आस्ट्रेलियामें ढूंढनेपर कोई एक लाखके लगभग आदिम निवासी मिलते हैं। तो फिर एक ऐसे प्रदेशमें जिसके बहुत बड़े भागमें कभी वर्षा नहीं होती, जहां उपयोगी वृक्षोंके देखनेकी नौबत नहीं आती, जो ऊजड़ है, और जहां उपज नहीं होती वहां मनुष्य अपना जीवन-निर्वाह कैसे करता था?

जब आस्ट्रेलियाका पहले पहल पता लगा था तो ढंढ़नेपर भी खेतीका कोई पौदा नहीं मिला था। जौ और गेहूंके सुन्दर खेत वायुमें लहराते हुए वहां दिखाई नहीं पड़ते थे, न कहीं रसीले मधुर फलोंका नाम था। पालतू जानवर कभी देखनेको भी न मिलते थे।

बहुत खोज करनेपर पता लगा है कि आस्ट्रेलियाके आदिम मनुष्य मांसभक्षी थे, वे सब प्रकारका मांस खा जाते थे। आजकल, हमारे बहुतसे पाठकोंको मांस खाना अन्न खानेके समान ही सुलभ जान पड़ता है। पर इन आदिम निवासियोंको मांस खाना इतना सुलभ न था।

न तो उनके यहां कोई मछली-बाज़ार था और न मीट-मार्केट। अपने गुठियल अस्त्रोंसे बनजीवोंको मार कर ही वे अपना पेट भरते थे। बन जीव भी खेतमें उगे हुए गेहूंके बालियोंके समान सदा उनकी ताकमें खड़े तो रहते ही न थे कि अस्त्र उठाया और काटते चले गये। बेचारे दिन भरके थके मांदोंने कहीं एक आध जीव मार पाया तो मार लिया नहीं तो कभी कभी भूखे ही सो जाना पड़ता था। आजकल आखेट करना एक व्यसन है, पर शिकारियोंके पास कुछ न कुछ खानेको सदा ही बंधा रहता है। भूख और प्याससे व्याकुल होकर घंटोंकी दौड़ लगाकर किसी जीवकी आखेट कर लाना और उसपर अपना जीवन निर्वाह करना कितना कठिन काम है। इसका अनुमान करना आजकलके मनुष्योंके लिए सहल नहीं है।

जबतक घरमें पालतू जानवर न हों, या डहरोंमें अन्न न भरा हो तबतक कोरी शिकारके बलपर पेट पालनेका अर्थ आजकलका सभ्य मनुष्य नहीं समझ सकता। जिसे हम आजकल दुर्भिक्ष कहते हैं, आस्ट्रेलियाके आदिम निवासियोंको वह एक नित्यकी पुरानी बात जंचती होगी।

इस प्रकारका विकट जीवन व्यतीत करनेपर भी आस्ट्रेलिया निवासी गृहस्थ थे। इस कारण उन्हें अपनी औरतोंकेलिए कुछ घरेलू काम देना पड़ता था। उनकी औरतें उनके साथ शिकारको न जा सकती थीं, अतः आसपास हो कहीं जङ्गली झाड़ियोंमें कंद मूल फल ढूंढ़ा करती थीं। एक लम्बा डंडा लेकर आस्ट्रेलियानिवासी स्त्री भोजनकी खोजमें निकल पड़ती थी और उसीसे खोद खोद कर कुछ कंद मूल ले आती थी। जिस प्रकार आजकल कोरोंके फूलका उपयोग, दुर्भिक्षकालमें किया जाता है वैसे ही कुछ फूल और पत्तियोंका उपयोग भी आस्ट्रेलियानिवासी स्त्री किया करती थीं।

तो क्या आस्ट्रेलिया निवासियोंको कुछ भी ज्ञान न था? सहस्रों वर्षतक इस प्रकार पशुओंके समान जीवन व्यतीत करनेपर भी उन्हें कोई जानकारी न हुई? ऐसा होना प्रकृति रचनाके विपरीति है। मनुष्य चाहे जितने निम्न श्रेणीका हो उसे पशुओंकी अपेक्षा कुछ विशेष ज्ञान अवश्य होता है। जङ्गली जानवरोंके विषयमें आस्ट्रेलिया निवासियोंका क्या ज्ञान था, उससे हमें कुछ संबंध नहीं, पर इतना अवश्य मालूम है कि इनकी स्त्रियां यह भले प्रकार जानती थीं कि किस समय कौनसे कन्द मूल फल उत्पन्न होते हैं। आजकल अगहन आते ही जैसे हमें मालूम हो जाता है कि जङ्गलमें करौंदे लगे होंगे, पूस लगते ही झरबेरियोंका ध्यान आने लगता है, वैसे ही इन औरतोंको भी पता रहता था कि किस समयपर बनमें कौनसे खाद्य मिलेंगे।

पर पाठको, क्या आप बता सकते हैं कि जैसे हमें जेठ, असाढ़, अगहन और पूसका ज्ञान होता है वैसे ही इन आदिम निवासियोंको भी ऋतुका ज्ञान था? हम आजकल अनायास ही जान लेते हैं कि अब अमुक ऋतु, अमुक मास, अमुक पक्ष और अमुक तिथि है। हमारे पंडितजी संकल्प पढ़ते समय हमें यह सब बतला जाते हैं। जंत्री, पत्रे और कैलेंडर इन बातोंसे हमें सूचित किया करते हैं पर उन आदिम मनुष्योंको इसकी सूचना

कैसे मिलती थी ? इन दम्पतियोंकी आंखें ऋतु परिवर्तन विधायक सूर्य्य भगवानकी चक्र परिधिपर सदा लगी रहती थीं। कैलेंडर और जंत्रियोंने इस बातको हमसे छिपा रक्खा है कि ऋतुओंका परिवर्तन सूर्य्य और पृथ्वीके पारस्परिक स्थितिके परिवर्तनसे होता है। उन आस्ट्रेलियनोंको यह बातें चाहे विदित हों या न हों पर उनकी आंखें जंत्रियोंपर न अटक कर सदा सूर्य्यपर अटकती थीं। हम लोग कहते हैं कि आषाढ़ लगते आम खानेको मिलेगा परन्तु अस्ट्रेलियन कहते थे कि जब आकाशमें दोपहरको सूर्य्य इतना ऊंचा होगा तब अमुक कंद प्राप्त होगा, और जब सूर्य्य मध्यआकाशसे इतना नीचे उतर आवेगा तो अमुक पुष्प। यदि ज्येष्ठ और माघका वर्णन कोई इस प्रकार करने लगे तो वह आजकल कवि कहलायेगा पर बेचारे आस्ट्रेलिया निवासियोंको इस महत्पदसे क्यों वञ्चित रखा जाता है ?

इसके अतिरिक्त इन आदिम निवासियोंको एक बात और भी मालुम थी और वह यह कि यदि एक स्थानमें उगे हुए सब कंद एक बार खोद डाले जायं तो फिर वहां दूसरे वर्ष भी (वर्ष शब्दकेलिए पाठक क्षमा करेंगे) कंद न मिलेंगे। अतः जहां कहीं वे कंद या पुष्प पत्र लेने जाते वहां कुछ न कुछ वृक्ष अवश्य छोड़ देते थे।

अब यह विचार करना चाहिये कि जो दो पाठ इन लोगोंने पढ़े थे वह किसी महत्वके थे अथवा नहीं ? आजकल विज्ञानके कौतुकोंको देख कर हम लोग आश्चर्य्य मग्न हो जाते हैं। विज्ञानके इन विचित्र अनुसंधानोंके सामने सहस्रों वर्षोंमें प्राप्त किया हुआ इनका यह ज्ञान कितना महत्व रखता है ? हमें भय है आप इन दीन मलीन आस्ट्रेलिया निवासियोंपर फिर अत्याचार करने वाले हैं। एक बार आपने उसे कविकी श्रेणीसे उठाकर असभ्योंकी श्रेणीमें रख दिया, न जाने अबकी बार उसे कौन स्थान मिलेगा। अतः इस प्रश्नपर विचार करनेके पहले मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप निम्न लिखत प्रश्नोंपर विचार करलें। क्या बिना इस बातके जाने कि वृक्षोंके जीवनमें ऋतुओंके साथ परिवर्तन होता है आप खेती कर सकते हैं ? क्या बिना इस ज्ञानके कि जो कुछ उपज हो उसका समग्र स्वाहा करनेसे फिर आपको अन्नके दर्शन न होंगे आप खेती कर सकते हैं ? संक्षेपतः बिना इस बातके जाने कि किसी वृक्षको उगानेके लिए आपको उसका कंद, फल या बीज बचा रखना चाहिये और बिना इस बातके जाने कि अमुक ऋतुमें अमुक वृक्ष फलता है आप खेती कर सकते हैं ? आपके पूर्वजोंको भी, संसारकी प्रत्येक सभ्य जातिके पूर्वजोंको भी, किसी न किसी समय इन बातोंका ज्ञान प्राप्त करना पड़ा होगा। फिर बतलाइये बिना कृषि क्रियाके जाने पशुपालनमें उन्नति हो सकती है या नहीं ? जबतक कोठरियोंमें नाज न भरा होगा, जबतक बाड़ोंमें जानवर न बंधे होंगे तबतक बेचारे मनुष्यकी क्या दशा होगी ? क्या उसे जीवनका आनंद मिला होगा, क्या कठिन परिश्रमसे उसे छुट्टी मिली होगी, क्या उसके मरणोन्मुख मुखमें समयपर अन्नग्रास गया होगा ? धर्म्मभाव, प्रेमभाव, और भ्रातृभावका प्रचार कृषि क्रियाके प्रचारके साथ ही बढ़ा है। जिस मनुष्यने प्रथम बार हल चलाकर बीज वपन किया होगा उससे बढ़कर विज्ञानवेत्ता क्या कोई संसारमें हो सकता है ? संसारमें सभ्यताका सूत्रपात करनेवाले उस महापुरुषके समान संसारका दूसरा उपकारकर्ता होना असंभव है। फिर आश्चर्य्य क्या है कि अपना अभीष्ट पानेकेलिए राजा जनकने सोनेके हलसे पृथ्वी जोती। ईसाके दो हज़ार सात सौ वर्ष पहलेसे चीनमें यह प्रथा चली आती थी कि वहांका सम्राट वसंत ऋतुके आरंभमें "पवित्र-भूमि" को जोतता और चावल, गेहूं, मीठा आलू और दो प्रकारके बाजरे बोता !

आस्ट्रेलियन स्त्रीको गवर्नमेंटके बनवाये हुए

मकान, और दिए हुए वस्त्रोंमें छोड़कर हम अपने देश भारतवर्षमें लौट आते हैं। आसाममें ब्रह्मपुत्रके किनारे किनारे चलनेपर हमें आसामके कुछ आदिम निवासी मिलेंगे। इन लोगोंकी रहन सहन, रङ्ग ढङ्ग बड़े विचित्र हैं। इनमेंसे कुछ जातियां जङ्गलोंके कुछ टुकड़े काटकर या जलाकर साफ़ कर लेती हैं और उसीके किनारे लता वृक्षोंकी कुटी बना कर रहती हैं। इन जातियोंके मनुष्य तो आस्ट्रेलियनोंकी भांति शिकार खेलते हैं और उनकी स्त्रियां जङ्गली, कन्द, मूल, फल और फूल खोज लाती हैं। इसके अतिरिक्त यह लोग इन टुकड़ोंमें नाज भी छिटका देते हैं और उससे जो कुछ उपज होती है उसे काममें लाते हैं। जब उनके बनाये हुए टुकड़े बिलकुल ऊसर हो जाते हैं तो वह उस स्थानको छोड़ देते हैं और जङ्गलका दूसरा किनारा साफ़ करके वहां जा बसते हैं। इस प्रकारके खेतिहर मध्यप्रदेश, बङ्गाल और दक्षिण भारतमें भी पाये जाते हैं। इन खेतिहरोंके अतिरिक्त दूसरे प्रकारके और खेतिहर हैं जो दो एक सालतक एक स्थानमें खेती करते हैं फिर उसे छोड़ कर दूसरी जगह चले जाते हैं। इस प्रकारको जोत बङ्गालमें "जुम" दक्षिण भारतमें "कुमरी" बरमामें "टाङंग्या" और मध्य भारतमें "दहाया" कहलाती हैं। फ़िलीपाइन द्वीपके छोटे, काले, पहाड़ी मनुष्य भी इसी प्रकारका जीवन व्यतीत करते हैं।

आस्ट्रेलियनोंकी अपेक्षा इन लोगोंमें एक विशेषता यह है कि वह नाज भी बोते हैं, यद्यपि इनके नाज बोनेकी क्रिया भले ही बेढङ्गी और आदिम क्यों न हो। विद्वानोंका अनुमान है कि इस प्रकार घूम घूम कर खेती करनेवाले एक समय संसारमें बहुतायतसे पाये जाते थे

यदि हम इन पहाड़ी और जङ्गली फ़िलीपन्सके साथ कुछ दिन रहें तो हमें पता लगेगा कि यह बेचारे सदा भूखे ही रहते हैं। इनका दिन रात पेट भर भोजन ढूंढ़नेमें ही व्यतीत होता है। खेती करनेपर भी इनका पेट नहीं भरता इसलिए ऐसे मरभुक्कोंको छोड़कर हमें किसी और पुरानी और असभ्य कहलानेवाली जातिका पता लगाना चाहिये।

अच्छा, चलो एक बार फिर समुद्र यात्रा करें। अबकी बार भी बम्बईसे सवार होकर हिंद महासागरमें चलेंगे पर अब हमारा जहाज़ पश्चिम दक्षिणकी ओर चलेगा। इस ओर हमें एक बहुत बड़ा महाद्वीप मिलेगा। इस महाद्वीपका नाम ऐफ्रिका है। इस देशका नाम बड़ा भयङ्कर है और वास्तवमें यह देश है भी महा भयङ्कर। बहुत प्राचीन कालसे रूम और फारिसमें इस देशकी आश्चर्य्यजनक कथायें प्रसिद्ध हैं! आजकलकी खोजोंसे पता लगा है कि यह कथाएं बहुत अंशमें सत्य हैं। इस देशमें बड़े भयङ्कर और हिंस्र जंतु रहते हैं, इसमें बिकट जङ्गल हैं जिनमें अनेकों मनुष्यभक्षक वृक्ष हैं। यहांकी चिड़ियांतक विचित्र हैं। कहा जाता है कि यहांकी एक चिड़िया अपने पंजेमें हाथी दबाकर उड़ सकती है! इस भयङ्कर देशके कुछ भागोंमें अब हम निडर बिहार कर सकते हैं। युरोपके गोरोंने यहां भी अपना अड्डा जमाया है और यहांके तारकोलसे काले, राक्षसी स्वभाव-वाले मुचंड आदिम निवासियोंको खदेड़ भगाया है। ऐफ्रिकाके महा भयङ्कर स्थानोंमें ही अब आदिम निवासियोंका क्रीड़ा स्थल है।

मध्य एफ्रिकामें ठीक डमरू मध्यपर एक देश युगंडा है। यहांके निवासी, भेडकेसे बालवाले काले हबशी हैं। यह लोग फ़िलीपन्सकी तरह मर भुक्के और दुबले नहीं वरन मोटे ताज़े हैं। इन लोगोंके यहां पालतू कुत्ते, बकरे, भेड़, बैल और चिड़ियां देखनेको मिलती हैं। अतः घुमक्कड़ आस्ट्रेलियनोंकी अपेक्षा यह कहीं अच्छे हैं। इन्हें जङ्गली जानवर मारनेपर ही मांस नहीं मिलता, अपने बकरे भेड़ोंको काटकर यह मांस पा सकते हैं, चिड़ियां इन्हें अंडे देती हैं और अपनी झीलोंसे

यह मछलियां पकड़ लाते हैं। इसके अतिरिक्त इनके यहां अनेक प्रकारके कुकुरमुत्ते और धरतीके फूल उपजते हैं और अनेक प्रकारके फल, फूले और अनाजोंसे उनके भंडार भरे रहते हैं।

किन्तु इस देशके रहनेवाले जिन्हें बगंडा कहते हैं पशुपालनमें चतुर नहीं हैं, अतः उपरोक्त पदार्थ उनके नित्य भोजनकी सामग्रीमें नहीं बरते जा सकते। उन लोगोंके राजा ही इस प्रकारके राजसी भोगोंका प्रसाद पा सकते हैं। बगंडोंके नित्य भोजनका पदार्थ केला है। जैसे हम लोग बिना रोटीके नहीं रह सकते वैसे ही बगंडा बिना केलेके जी नहीं सकते।

एक मिशनरीका कथन है कि जब बगंडोंसे यह कहा गया कि इंग्लैंडमें केले नहीं पैदा होते तो उन लोगोंने उत्तर दिया "अच्छा! तो तुम हमारे केले लेने यहां आये हो"! यह लोग केलेके कच्चे या पक्के फलको खाते हैं, उसके पत्तेको थाली तथा ढकनोंके काममें लाते हैं, उसके डंठलोंकी खाद बनाते हैं और उसके कुंदका भीतरी भाग स्पंज और साबुनकी तरह बरतते हैं। न जाने, इस एक वृक्षसे वे कितना काम निकाल सकते हैं।

उन्हें यह केला कहांसे मिलता है? वे लोग बड़ी सावधानीसे केलेके तख्तेके तख्ते उगाते हैं। उनके देशमें केला कहांसे आया इस बातका ठीक पता नहीं लगता। एफ्रिकामें कुछ जङ्गली केले पाये जाते हैं, संभव है, किसी चतुर मनुष्यने पहले पहल उनकी काश्त की हो। जो हो बगंडा केलेकी खेती बड़ी कुशलतासे करते हैं। गरम और नर्म देशोंमें खेतोंमें झाड़ झङ्कड़ बहुत उग आती है। उगंडा भी एक ऐसा ही देश है अतः बगंडोंको निरानेकी आवश्यकता पड़ती है। यह लोग केलेके डंठलोंको केला-बाड़ोंमें जमीनपर बिछा देते हैं, इससे घास फूस भी कम उगता है और डंठलोंकी पांस भी बन जाती है। नई निकलती हुई कोंपलें जो आवश्यकतासे अधिक हों यदि काट डाली जायं तो केला खूब फलता है। केला केवल एक ही बार फलता है, पर फलनेके बाद उसके तनेसे जो शाखें निकलती हैं उनके बोनेपर फिर दूसरा वृक्ष तैयार हो जाता है, अतः एक बार केला बोनेपर केलेकी खेतीका सिलसिला बराबर चला जाता है। यह फल सब ऋतुओंमें और हर समय पाया जाता है, इस कारण बगंडा फिर दूसरी खेती क्यों करने लगे?

उनके बाग सदा फल दिया करते हैं और वह भी बहुतायतके साथ। फिर फल भी ऐसे हैं कि उनके खानेपर फिर किसी अनाज खानेकी ज़रूरत नहीं। अतः जब कभी बहुत दिनों बाद क..ी ऐसा कुसमय आ जाता है कि केलेके लिए यथेष्ट पानी न बरसे तो बेचारे बगंडोंको लङ्घनोंकी नौबत आ जाती है।

[शेष फिर]

मंगला चरण*

निज स्वदेश ही एक सर्व-पर ब्रह्म-लोक है
निज स्वदेश ही एक सर्व-वर अमर-ओक है
निज स्वदेश विज्ञान-ज्ञान-आनन्द-धाम है
निज स्वदेश ही भुवि-त्रिलोक-शोभा-भिराम है
सो निज स्वदेशका सर्व विधि प्रियवर आराधन करो
अविरत सेवा-सन्नद्ध हो सब विधि सुख साधन करो

रोगशय्या काल्विन
अस्पताल, प्रयाग
४-१-१९१८

—श्रीधर पाठक

*हमारे परम प्रिय मित्र पूज्यवर पं० श्रीधर पाठकने, काल्विन अस्पतालमें रोगशय्यापर पड़े हुए भी, विज्ञानके लिए मंगलाचरण भेजा। इस कृपा और कष्ट के लिए हम आपके कृतज्ञ हैं। हर्ष है कि अब आप अच्छे हैं और शीघ्र ही पद्मकोटको वापिस चले जायंगे। उपरोक्त कारण से ही मंगलाचरण देरसे प्राप्त हुआ, तथापि हम पाठकजीको धन्यवाद देते हुए मंगलाचरण यहांपर दिये देते हैं।

खाद और खाद डालना

[लेखक—पथिक]

[विज्ञान भाग ६ अङ्क २ पृष्ठ ७३ से सम्मिलित]

(४)

हरी खाद

जिस खेतमें हरी खाद देनेका विचार होता है उसमें कोई फ़स्ल उगाई जाती है और एक विशेष समयपर जोत दी जाती है। यह फ़स्ल जो कि जोत दी जाती है खेतमें ही सड़ती है और ज़मीनको ताक़तवर बना देती है। हरी पांस देनेके लिये निम्नलिखित गुणवाली फ़स्ल बोनी चाहियेः—

(१) शीघ्र और अधिक बढ़नेवाली।

(२) अधिक पत्तियोंवाली।

(३) कोमल तनेवाली।

(४) दाल जातीय (Leguminasea order) जिसकी कि जड़ोंपर छोटी छोटी गोल गोल घुंडियां (Nodules) होती हैं जो कि हवासे नत्रजन (Nitrogen) लेनेवाले (Bacteria) बैक्टीरिया के घर होते हैं। इनसे ज़मीनको बहुत कुछ नत्रजन मिल जाती है।

फ़स्लके बोनेका समय

वह फ़स्ल जिसमें कि पूर्वलिखित गुण हों, असली फ़स्लसे ४-५ महीने पहिले बोनी चाहिये। जैसे रबीकी फ़स्लको हरी पांस देना हो तो जून या जुलाईमें हरी पांसवाली फ़स्ल बो देनी चाहिये।

जोतनेका समय

जब हरी फ़स्ल खूब बढ़ जाय और फूल आनेका समय निकट हो तब फौरन जोत कर दबा देना चाहिये। ऐसा करनेसे डंठल सख़्त नहीं होने पाता और फ़स्ल जल्द सड़ जाती है। असली फ़स्लके बोनेसे ८,१० सप्ताह पूर्व फ़स्लको जोत कर दबा देना चाहिये। समयपर कार्य न करनेसे उचित फल प्राप्त नहीं होता।

गुण

(१) ज़मीनमें ऐन्द्रिक पदार्थका मात्रा बढ़ जाती है।

(२) ज़मीनमें नाइट्रोजन बढ़ जाती है।

(३) भूमि मुलायम और सहूलियतसे काम करने योग्य हो जाती है।

(४) खेतमें खर पतवार बहुत नहीं उगते।

(५) सनईमें ५३, नीलमें ७१, और कलथीमें ३६ फ़ी सदी नत्रजन होती है।

(५)

खलीकी खाद

खली दो प्रकारकी होती है।

(१) खानेके योग्य

(२) विषैली

खानेकी खली जो ख़राब हो गई हो और विषैली खली खेतोंमें पांसके रूपमें देनी उचित हैं। खलीकी खाद उन फ़स्लोंको देनी चाहिये जिन्हें कि खादकी अधिक आवश्यकता हो और जिनकी सिंचाईका पूरा प्रबन्ध हो। यह खेतोंमें बारीक चूरा करके डाली जाती है। खलीकी खाद प्रायः बोनेके समय या गोड़नेके समय दी जाती है। कुल खाद एक बार ही नहीं दे दी जाती वरन थोड़ी थोड़ी करके कई बार दी जाती है। जो फस्लें कि खेतमें बहुत दिनोंतक खड़ी रहती हैं उनमें यह खाद कई बार दी जाती है जैसे गन्नेमें। खलीकी खाद बहुत बलवती होती है, इसलिये इसका उपयोग बहुत होश्यारीसे करना चाहिये। यह खाद २०,२५ दिनमें पौदेके उपयोगके योग्य हो जाती है। सड़नेके समय इसमें गर्मी अधिक पैदा होती है। उस समय सिंचाई खूब होनी चाहिये नहीं तो फ़स्लके सूख जानेका डर रहता है। खली डालनेसे खेतमें ऐन्द्रिक पदार्थ बढ़ जाते हैं। पृथ्वीकी शारीरिक दशा भी सुधर जाती है। नीम और अंडीकी खलीसे दीमक अधिक नुक़सान नहीं करती। जिन फस्लोंमें

Agriculture कृषि शास्त्र]

नीमकी खली दी जाती है वह गहरे हरे रंगकी हो जाती हैं। अंडीकी खली १०-१६ मनतक डाली जाती है जिसकी कीमत १॥) से २॥) मनतक होती है। खलीमें तेलकी मात्रा जितनी कम होगी उतनी ही वह उपयोगी होगी। यदि तेल अधिक होगा तो ज़मीनको अधिक हानि पहुंचेगी। इसलिये इसका उपयोग करते समय तेलके दूर करनेका आवश्य विचार रखना चाहिये।

जीवन संग्राममें छोटे छोटे प्राणियोंके उद्योग

भेष बदलने तथा अभिनय करनेवाले कीड़े

[ले० प्रोफेसर लज्जाशङ्कर झा, बी० ए०]

जीवन-संग्रामकी दृष्टिसे छोटे छोटे कीड़े मकोड़ोंके जीवन और उनकी शरीर-रचना देखनेसे केवल आनन्द ही नहीं होता वरन ईश्वरकी अद्भुत लीला देखकर उसके प्रति असीम भक्ति और श्रद्धा पैदा होती है। पिछले लेखोंमें यह बतलानेका प्रयत्न किया गया था कि प्राणियोंकी शरीर-रचना उनके निर्दिष्ट जीवनके अनुकूल की गई है और जिसमें क्षमता कम है उस प्राणीका जीवन इस संसारमें सुखमय नहीं हो सकता। क्षमता कई प्रकारकी बतलाई गई थी अर्थात् मानसिक बल, शारीरिक बल, परस्पर सहायता देनेकी शक्ति, आबहवाका परिवर्तन सहनेकी शक्ति, आघात सहनेकी शक्ति, अर्थात् सजीवता और उपयोगिता।

तरह तरहके उद्योग

अब कीड़े मकोड़ोंके अवलोकन करनेसे मालूम होता है कि इनमें भोजन प्राप्त करने और आत्मरक्षा करनेके विचित्र ढंग हैं। खटमलका शरीर गोल और चपटा इसलिए होता है कि काम पड़नेपर निवाड़ और पाटियोंके बीचमें बिना कठिनाईके छिप सके। मनुष्य ज्योंही खाटपर लेटा कि यह अपने संकीर्ण कन्दरोंसे निकल उसका रक्त चूसने लगे, पर ज्योंही वह बैठकर उनकी खोज करने लगा कि वह अपने अपने स्थानोमें जा छिपे। चपटा शरीर होनेके कारण वह मनुष्यसे इस प्रकार छिप जाते हैं। उनके शरीरसे दुर्गन्धि निकलनेके कारण वह हिंसक प्राणियोंसे भी बच जाते हैं। संकीर्ण स्थानोंमें छिपनेवाले कीड़ोंके शरीर खटमलके समान चपटे रहते हैं। बीटिल वर्गकी दो,तीन उपजातियोंके कीड़ोंके शरीरसे ऐसा खराब तेल निकलता है कि उसके लग जानेसे फफोले पड़ जाते हैं। उनके तेलके भयसे उनको खानेकी इच्छा कोई भी हिंसक प्राणी नहीं करता। एक दूसरे वर्गका बीटिल होता है जो शत्रुके पास आते ही बंदूकसी छोड़ता है, जिसका धुंआ शत्रुकी आँखोंमें घुस उसे विकल और बेकाम कर देता है। इतनेमें वह बीटिल पलायमान हो जाता है। कोई कोई इल्लियां अपने ही विष्ठासे अपने शरीरको पोत शत्रुओंको भड़काती हैं। एक इल्लीके शरीरपर सेईके समान बाल होते हैं जिन्हें भयके समय खड़ा कर अपनी रक्षा करती है। उसके बाल ज़हरीले और खड़े होनेपर पैने होते हैं। चटकीले रंगवाले कीड़े बहुत दूरसे दिखाई देते हैं और बहुधा निस्सहाय होते हैं, इसलिए हिंसक प्राणी यदि उनपर आक्रमण करें तो उनकी रक्षाका कोई उपाय नहीं। परन्तु उनका रंग ही यह घोषणा देता है कि उनके शरीरमें कड़वापन, नीरसता आदि अवगुण भरे हुए हैं; चटकीले रंग देख कर हिंसक जीव समझ जाते हैं कि यह प्राणी हमारे खाने योग्य नहीं हैं। रंग बिरंगी तितलियां जो बगीचों, खेतों आदिमें परियोंके समान नाचती और हमें आनन्द देती हैं, इसी कारण दुष्ट जीवोंसे बची रहती हैं।

अनेक जीव किसी न किसी प्रकार हिंसक जीवोंसे अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हो जाते हैं,

पर इस लेखमें केवल उन कीड़ोंका वर्णन करने-का प्रयत्न किया जायगा, जो स्वांग रच कर अथवा अभिनय करके शत्रुओंकी आँखमें धूल झोकते और अपना काम चलाते हैं।

मक्कार कीड़े

अनेक पाठकोंके देखनेमें आया होगा कि कम्बल नामका कीड़ा, किसीका हाथ लगते ही, अपने शरीरकी गुड़मुड़ी कर गोलरूप बन जाता है। इसी प्रकार जिजाई नामक लाल कीड़ा, जो बरसातके आरम्भमें दिखाई देता है, भयका संकेत पाते ही गुड़मुड़ी हो निश्चल हो जाता है। इसका अभिप्राय क्या है? एक तो यह कि उस रूपमें शरीरके कोमल अंग नीचे होकर हानिसे बचते हैं और दूसरे यह कि उसे निश्चल देख शत्रु यह समझ कर कि वह मर गया है उसका पीछा छोड़ देता है। बीटिल वर्गका एक दालनुमा कीड़ा होता है। उसकी चालाकी भी तारीफ़ करनेके लायक है। जब वह किसी पत्ते अथवा डालपर बैठा हो उस समय यदि कोई उंगली भर उठा दे तो वह तुरन्तु सिकुड़ कर और दालका रूप धारण करके सफ़ाई-से नीचे गिर जाता है, मानो कोई दाना टपक पड़ा। धरतीपर गिरते ही वह घास पातका आश्रय ले इस धूर्ततासे छिप जाता है कि उसका पता लगाना प्रायः असम्भव होता है। यह तीनों प्रकारके कीड़े मक्कारी नहीं करते तो क्या करते हैं?

बहरुपिये कीड़े

ऋतुके अनुसार अपना रंग बदलकर घास तृण आदिमें छिप जानेवाले कीड़ोंको बहरुपिये कीड़े कह सकते हैं। गिरगिटमें यह शक्ति होती है कि जिस स्थानपर जा बैठता है उस स्थानके रंगकी झलक अपने शरीरमें ले आता है। इतने जल्दी अपने रंगमें परिवर्तन करनेकी शक्ति टिड्डेमें तो नहीं है परन्तु वह भी ऋतुके अनुसार भेष बदल लेना है। बरसातमें जब चारों ओर हरियाली रहती है तब उसका भी रंग हरा रहता है, कार्तिक मासमें पकी घास-को रंग वह लेने लगता है, और जब चैत वैसाखमें हरियाली तथा घास भी नहीं रहती तब बहरुपिया मटिया रंगका हो जाता है। इस प्रकार रंग बदलनेसे उसको यह फ़ायदा होता है कि वह अपनेको बिना प्रयास छिपा सकता है और अपनी जातिके शत्रुओंसे बच जाता है। उसके पँख भी इस प्रकारके बने रहते हैं, मानो दो हरे कोंपल डालसे हालमें ही निकले हों और अभी-तक कड़े होकर फैले न हों (चित्र नम्बर १ देखो।

चित्र ४--कोंपलनुमा टिड्डा

जब वह वर्षा ऋतुमें डालपर बैठा रहता है उस समय उसे पहिचान लेना काम रखता है। दूरसे देखनेमें धोका होता ही है।

अभिनय करनेवाले कीड़े

एक समय मुझे हरे रंगकी एक इल्ली निम्बू-के पेड़के एक पत्तेपर इस खूबीसे बैठी हुई नज़र आई कि एक गज़की दूरीसे ऐसा मालूम होता था कि एक छोटासा निम्बू डगालसे निकल पत्तेसे सटा हुआ है। मैं कई बार उस पेड़के पाससे निकला और प्रत्येक समय मुझे यही भ्रम हुआ। उस पेड़के पत्ते कोई प्राणी आकर खा

जाया करता था, इसलिए थोड़ी देरके पीछे उस पेड़की बारीकीसे तलाश की गई तो मालूम हुआ कि वह निब्बू नहीं बल्कि इल्ली है, जो इस प्रकार एक पत्तेपरसे दूसरेपर बैठ उन्हें डकार जाती है। जब उसे पकड़कर हटानेकी चेष्टा की
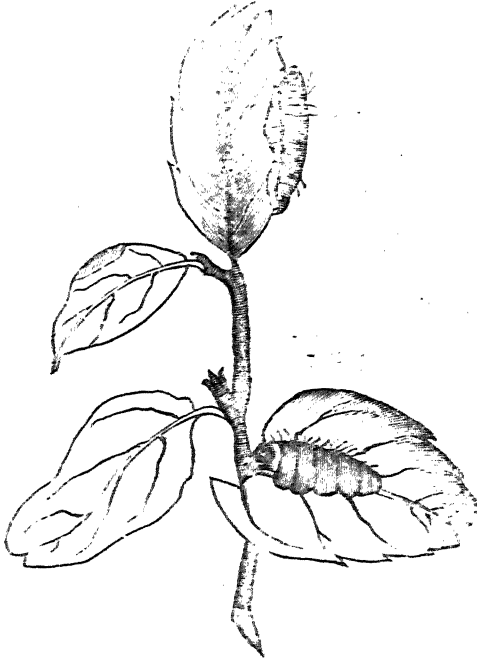
चित्र ५-निब्बू सरीखी इल्ली। ऊपरकी इल्ली पत्ता खा रही है।

गई तब वह पत्तेसे ऐसी चिपक गई माने वह उसीका भाग है। इल्लीको अभिनयमें इतना प्रवीण देख मुझे बहुत विस्मय हुआ, पर उसके साथ यह विचार भी आया कि यदि वह अभिनयमें इतनी कुशल न होती तो इतने दिनोंतक सब लोगोंकी आँखोंमें धूल झोककर अपना पेट क्योंकर भरती? विचार करनेपर ज्ञात हुआ कि वह नारंगीके पेड़पर बैठनेवाली तितली जातिकी एक इल्ली थी। निब्बू समान जातिका पेड़ है, इस सबबसे वहां वह पहुंच गई।

किसी दूसरे दिन मुझे इससे भी बढ़कर एक विस्मयजनक दृश्य देखनेको मिला। अमरूदके पेड़की एक डालमें क़लम की हुई और कुछ सूखी हुई एक टहनीसी मुझे दिखाई दी। उसे देख मेरे मनमें यह प्रश्न उठा कि वह टहनी क्यों सूख गई? इसका अनुसन्धान करनेके लिए ज्योंही मैंने उस टहनीको हिलाना चाहा कि वह पंख फैला फर्रसे उड़ गई! जबतक वह कीड़ा पेड़पर बैठा रहा मुझे यही प्रतीत होता रहा कि वह टहनी है, उसका रंग बिलकुल अमरूदकी डालीसे मेल खाता हुआ था और उसके बैठनेका ढंग भी ऐसा था कि वह सूखी कलम की गई कटी टहनीके डंठलके समान दीखती थी। वैसा प्राणी मुझे अभीतक फिर देखनेको नहीं मिला, इसलिये उसका ठीक चित्र देना कठिन है पर चित्र ३ और ४
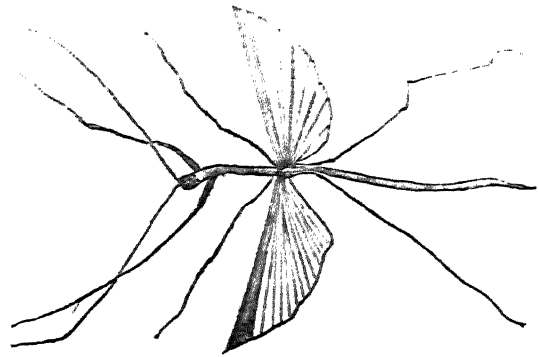
चित्र ६-टहनी नुमा कीड़ा उड़ता हुआ।
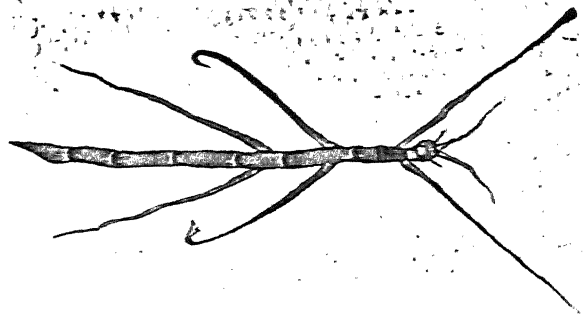
चित्र ७-टहनी नुमा कीड़ा।

से उसके रूपका बहुत कुछ ज्ञान हो जावेगा। धन्य है उनके रूप तथा अभिनयको जो देखनेवालोंको इतने भ्रममें डाल देते हैं !

रंग मिलानेवाले कीड़े

इसी प्रकार कई अक्षम प्राणियोंका रंग उनके भक्ष्यके रंगसे मिल जाता है और जब वह उसपर जा बैठते हैं तब सैामेंसे ६० मनुष्य उन्हें पहिचाननेमें असमर्थ होते हैं। कई तितलियां और पतंगे अदृश्य होनेमें बड़े निपुण हैं। एक तितलीकी कमर बालके समान पतली होती है और वह बहुधा कटीली झाड़ियोंपर बैठती है। फिर बैठती भी इस चतुराईसे कि धड़ डगालमें लय होकर पंख पत्तेनुमा हो जाते हैं। भूरे रंगके कई पतंगे पेड़ोंकी पींड़पर अथवा काठकी दरारों और उसके गड्ढोंमें निश्चल वैठ उनके रंगमें छिप जाते हैं। पेड़ोंकी खुरदरी धरतीपर मेग्नीफाइंग ग्लास (बृहत्दर्शकताल) लगानेसे कई घुन ऐसे मिलेंगे जो छालके रंगसे अपना रंग मिलाकर अदृश्यसे हो उसे खाते रहते हैं।

इसपनीतिमें एक गधेकी कहानी लिखी है। उसे कहीं व्याघ्रका चमड़ा मिल गया था और वह उसे ओढ़ बनके पशुओंको डराया करता था। इसी तरह कार्तिकमें एक प्रकारकी मक्खी आती है जिसका स्वरूप मधुमक्षिकासे इतना मिलता है कि कोई भी उसे पकड़ने वा छेड़नेका साहस नहीं करता। न उसमें डंक है, न ज़हर, परन्तु अपने आच्छादनकी सहायतासे वह हिंसक जीवोंको डराकर दूर रखती है। इस देशमें शिक्षित तथा अशिक्षित मनुष्योंका लक्ष्य ऐसे छोटे जीवोंपर नहीं जाता और इसलिये इस मक्खीको कोई विशेष नाम नहीं मिला। कपासके फूलोंपर काले रंगका एक बीटिल आया करता है जो देखनेसे व्याघ्र बीटिलके समान भयंकर और तेज तर्रार मालूम होता है, परन्तु यथार्थमें वह आत्मरक्षाके अयोग्य होता है, व्याघ्र बीटिलके समान शिकार करनेकी बात तो दूर रही। परन्तु उसको अपने रूपके कारण ही सुरक्षा मिल जाती है। मध्य-प्रदेशमें उसे तेलिन बीटिल कहते हैं परन्तु वह तेलिन कहाँ से हो गई सो समझमें नहीं आता। इसी प्रकार एक निस्सहाय मक्खी बर्रका रूप धारणकर अपनी आत्मरक्षा कर लेती है (चित्र नं० ८ और ९)।
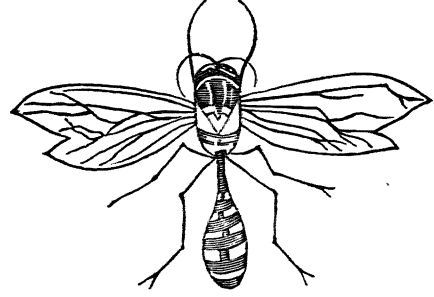
चित्र ८—बर्रय्या।
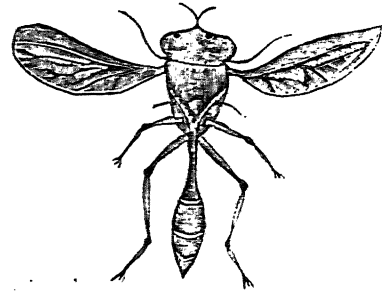
चित्र ९—बर्रय्यानुमा एक निस्सहाय मक्खी।

घासनुमा कीड़े

अफ्रिका महाद्वीपके घने जंगलोंमें जहाँ ९, १० फुट ऊंची घास उगती है एक घासनुमा कीड़ा मिलता है जिसका रूप बिलकुल घासके समान होता है। यदि वह किसी मनुष्यके हाथमें रख दिया जावे तो भी वह शायद ही पहिचान सके कि यह कोई प्राणी है। दूसरे कीड़ोंके समान उसके भी छः पाँव होते हैं, पर वे इतने छोटे और टेढ़े सीधे निकले रहते हैं कि देखनेवालेको यही अन्दाज़ होता है कि घासकी पींड़मेंसे छोटी छोटी शाखाएं निकली हैं। उसका सिर घासकी

गांठोंके समान छोटासा होता है जिसमेंसे पतले महीन पत्तोंके समान छोटी मूंछें निकली रहती हैं। हाथमें लेकर इस जीवको दबानेसे यह धूर्त पाँव हिला कर भी अपना परिचय नहीं देता। दिनके समय वह अपने पैरोंसे घासकी डंडीको दबाये हुए, शरीरको डंडीसे चिपकाये हुए निश्चल पड़ा रहता है। रात्रि होते ही घासका स्वांग छोड़ कर यह मक्कार अपने भोजनकी खोजमें निकलता है। जिस तरह मनुष्य पेड़की छायामें विश्राम कर उसीपर पत्थर चलाता है, उसी तरह यह नीच जीव भी आश्रयदाताके ऊपर ही पहले मुंह चलाता है तो इसमें विचित्रता ही क्या है? घास-नुमा कीड़ेका शरीर-रचनामें एक और विशेषता यह है कि जैसे जैसे ऋतुके अनुसार घासकी रंगत बदलती है वैसे ही वैसे यह हज़रत भी अपनी रंगत बदलते हैं।

पत्तेनुमा कीड़े

पत्तेनुमा कीड़े (चित्र नं० १० और ११) कुछ कम विस्मयजनक प्राणी नहीं हैं। इनका शरीर
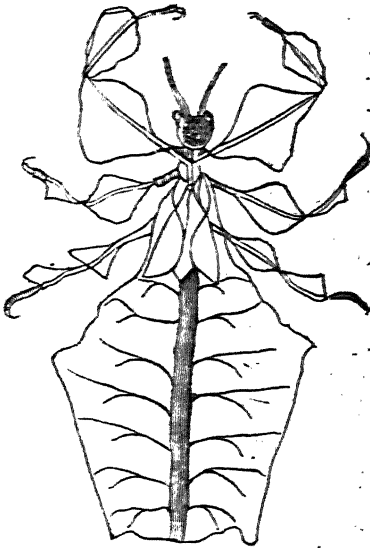
चित्र १०—पत्ते नुमा एक कीड़ा

चपटा और चौड़ा होता है और पत्तोंके समान नसें इसके ऊपरी पँखमें होती हैं। कीड़ों द्वारा खाये हुए पत्तोंके समान उनकी टाँगें होती हैं। यह कीड़े बहुरुपियापन करके पत्तोंकी क्या ही अच्छी नकल कर दिखाते हैं।
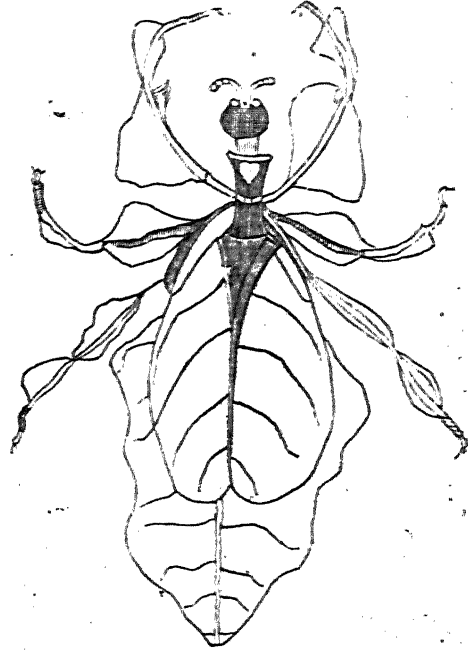
चित्र ११—पत्ते नुमा कीड़ा।

अभीतक जिन प्राणियोंका वर्णन किया है वे गरीब दुखिया हैं जिन्हें रात दिन अपने प्राणोंकी रक्षाकी चिंता रहती है; 'अजापुत्रं बलिम् दद्यात् दैवो दुर्बल घातकः' बलिदान देते समय बकरा ही चढ़ाया जाता है, सिंह नहीं: देवता भी दुर्बलके ही घातक होते हैं, उसीका बलिदान लेते हैं! जीवन-संग्रामका अवलोकन करनेसे यह बात अक्षरसः सत्य मिलती है। कमज़ोर और सीधे जीवोंकी इस दुनियामें खैरियत नहीं, उनकी माताएं कब-तक दुआ मांगेंगी। विचारोंका नाश करनेके लिये कोई न कोई तय्यार रहता ही है। विधाताने अनेक उपाय रच अक्षम जीवोंको बचनेका मार्ग

बतला दिया है, परन्तु फिर भी कभी न कभी ऐसा मौका आता है कि उनको अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ता है, अर्थात् सक्षम प्राणी उनका काम तमाम कर देते हैं।

आगे किसी लेखमें उन जीवोंका वर्णन किया जावेगा जो सचमुच धूर्त हैं और ढोंग मक्कारी, अथवा अभिनय करके दूसरे जीवोंका नाश करते हैं।

[असमाप्त]

क्या मकड़ी सर्प उठा सकती है ?

[ले० "वनमाली"]

प्राकृतिक विज्ञानकी एक अतीव मनोरञ्जक पुस्तक 'रेनी' की लिखी हुई है, जिसका नाम इन्सेक्ट आर्कीटेक्चर (कीड़ोंका गृह-निर्माण) है। कीड़े-मकोड़ोंके घरोंकी बनावट जितनी आश्चर्यजनक है, उनकी कारीगरी भी उतनी ही कौतूहलोत्पादक है। बहुत दिनोंसे जब मनुष्यने आरीके विषयमें सोचा भी न था, आरी-मक्खीने (Sawfly) इस औज़ारको बनाया, और वृक्षोंकी शाखाओंमें छेद करनेके लिए काममें लाई, जहां कि वह अपने अंडे सुरक्षित रख सके। बढई-मधु-मक्खी(Carpenter bee) उन्हीं औज़ारोंसे. जो उसे सर्वशक्तिमान परमेश्वरने दिये हैं, मोटे मोटे तख्तोंमें गोल छेद कर लेती है—जिनका व्यास उसकी मोटाईके बराबर होता है। इस प्रकार वह अपने रहनेकेलिए और अपनी सन्तानकी रक्षाके लिए सुन्दर घर बना लेती है। लोटन-खटमल (tumble bug) बिना किसी यंत्रके अपने भारसे कई गुनी अधिक मट्टी खोद डालता है। सेक्सटन गुबरीला (Saxton beetle) थोड़ी देरमें बड़े बड़े जन्तुओंकी लाश पृथ्वीमें गाड़ देता है। इन सब साहसके कामोंके करनेके लिए कुछ न कुछ ज्ञान इन प्राणियोंमें अवश्य होना चाहिये, जिसे हम इन प्राणियोंका यंत्र विद्याका ज्ञान कह सकते हैं।

जितनी कौतूहलोत्पादक बातें ऊपर दी गई हैं उनसे बढ़ चढ़ कर मकड़ीके चमत्कारिक काम हैं। इस छोटेसे कीड़ेमें पवनके विरुद्ध अपने जालेके तारोंको आगे बढ़ानेकी शक्ति है और अपने पतले पतले तारोंके द्वारा वह अपनेसे कई गुने अधिक भारकी चीज़ोंको उठा तथा लटका सकता है।

कुछ वर्ष हुए, किसी अंग्रेजी मासिक पत्रमें एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें यह लिखा था कि एक मकड़ीने अपने जालेमें एक चूहेको फंसाया। उसे ज़मीनसे ऊपर उठाया और आकाश और पृथ्वीके बीच बेबस लटका रह कर मरनेके लिए छोड़ दिया। नवयुवक वैज्ञानिक इस कथनपर खूब हँसे और लेखक महाशयकी खूब हँसी की। मैं यह नहीं कह सकता कि इस कथनमें कहां तक मिलावट है पर मालूम होता है कि यह अवश्य ही सत्य होगा।

इसी प्रकार मैंने एक लेख और पढ़ा था जिसमें लिखा था कि रियासत 'न्यूयार्क' के "हवन" ग्राममें एक मकड़ीने अपने जालेमें एक सर्प ? फंसाया और वास्तवमें सर्पके उद्योगोंके विपरीत—जो ज़िन्दा था—उसे पृथ्वीसे ऊपर उठाया।

अच्छा, अब यह विचारना है कि यह छोटा और बलहीन कीड़ा चूहे अथवा सर्पको बिना किसी यंत्रके अपने जालेमें फंसाने और ज़मीनसे ऊपर उठानेमें कैसे सफल हुआ ?

मकड़ीके पास एक बड़े कामका औज़ार है, जो कि इंजीनियरोंको हालमें ही मालूम हुआ है। यह एक बहुत मज़बूत लचीला तार है। वास्तवमें रेशमके कीड़ेके और मकड़ीके तारोंके सिवाय बहुत ही कम ऐसी चीज़ें हैं जो बहुत बोझ संभाल सकती हों। प्रयोगोंसे यह भी मालूम हुआ है कि इन तारोंकी ताकत उतने ही मोटे लोहेके तारसे कहीं अधिक है, पर स्मरण रहे कि जो

मकड़ीके तारमें लचीलापन न होता ते वह किसी कामका न होता। मकड़ी गिर्री या बड़े बड़े लकड़ीके टुकड़े ते काममें लाती ही नहीं, अतएव वह अपने तारोंको इच्छानुसार इधर उधर नहीं ले जा सकती। परन्तु लचीलेपनके कारण वह अपने तारको चाहे जिस ओर ले जा सकती है और इसी कारण चूहे अथवा सर्पसे भी अधिक भारका जानवर उसके द्वारा ऊपर उठ सकता है। इसे एक उदाहरण द्वारा पाठक भली भांत समझ जायंगे--

मान लीजिये कि एक बालक तीन सेर बोझ एक फुट ऊंचा उठा सकता है और एक मिनिटमें २० बार उठा तथा रख सकता है। अब उसे ३५० रबड़के तार दे, जो प्रत्येक ऐसे हों कि तीन सेर बोझ भली भांति १ फुट ऊंचा उठा सकें। अब इन तारोंके एक छोरको लकड़ीके एक तख्तेमें बांध दे, जिसपर कि एक पत्थर १०५० सेर अथवा एक टनका रक्खा है। अब यदि वह बालक प्रत्येक रबड़के तारोंको खींचे और हुकमें लटकाता जाय तो लगभग २० मिनिटमें वह पत्थर एक फुट ऊंचा उठा लेगा।

हमें इस प्रकार ज्ञात हुआ कि रबड़के प्रत्येक तारके लचीलेपनने पत्थरके भारको तीन तीन सेरके ३५० भागोंमें बांट दिया और प्रत्येक भागको बालकने तीन सेकंड्से भी कममें ऊपर उठाया। इस तरह बालकने पत्थरका इतना भारी बोझ कितनी सरलतासे उठा लिया।

मकड़ीके जालेका प्रत्येक तार भी रबड़के लचीले तारकी नाई काम करता है। मान लो चूहे वा सर्पका बोझ आधा औंस है और प्रत्येक तार $१\frac{१}{२}$ ग्रेन बोझ सम्हाल सकता है। मकड़ीको चूहेके उठानेके लिए ऐसे १५० तार लगाने पड़ेंगे और यदि चूहेके चारों पांव इन तारोंसे बंध गये तो वह विचारा बिलकुल ही बलहीन हो जायगा। अब धीरे धीरे प्रत्येक तारके खींचनेसे चूहा व सर्प, जितना चाहो, उतना ऊपर उठ सकता है और इस प्रकार जहां मकड़ीने जाल पूरा हो फांसा जा सकता है। अतएव उनसे जिन्होंने ऊपर कहे हुए लेखकी दिल्लगी उड़ाई थी, हमें यह कहना है, "आकाश और पृथ्वीपर बहुतेरी बातें ऐसी भी हैं जिन्हें दार्शनिकोंने अपने दर्शन शास्त्रमें कभी स्वप्नमें भी न देखा होगा।"

हमने अभी तक यह नहीं बताया कि मकड़ीने इस प्रकार चूहे वा सर्पको फांस तो लिया पर इससे उसका क्या प्रयोजन था? संभव है कि इससे चूहे वा सर्प डर जायं और भविष्यमें मकड़ियोंको न सतावें अथवा चूहा वा सर्प उसमें मर जायं और फिर मकड़ी उसपर आकर बैठे और उसे खा जाय

तर्क विवेक

वस्तु, संवाद, और विसंवाद

जो वस्तु जिस स्वरूपमें पाई जाती है जबतक वह किसी बाधाके न रहते उसी स्वरूसे वैसा ही कार्य देती जावे जैसा देनेका उसका स्वभाव है तबतक वह वस्तु वही वस्तु कही जाती है। यथा चांदी जिस स्वरूपमें पाई जाती है जबतक वह उसी स्वरूपसे वैसा ही कार्य देती जावे जैसा स्वभावसे चांदीको देना चाहिये तबतक वह चांदी चांदी ही कही जाती है। इसके विपरीत जो वस्तु जिस स्वरूपमें पाई जाती है यदि वह किसी बाधाके न रहते भी उसी स्वरूपसे वैसा कार्य न देवे जैसा कार्य उसको स्वभावसे देना चाहिये तो उस वस्तुको वह वस्तु नहीं कह सकते। यथा, शुक्ति (सीपी) पर भासमान (बोध होती) चांदी, जिस स्वरूपमें पाई जाती है, किसी बाधाके न रहते भी, वह उसी स्वरूपसे वैसा कार्य नहीं देती जैसा कार्य चांदीको स्वभावसे देना

Philosophy दर्शन]

चाहिये; इसलिये शुक्तिपर भासमान चांदीको चांदी नहीं कह सकते। जिसको जो कार्य स्वभावसे देना चाहिये किसी बाधाके न रहते नियमसे उसके उस कार्यके देनेको संवाद कहते हैं। यथा, चांदीको जो कार्य देना चाहिये किसी बाधाके न रहते नियमसे चांदीके उसी कार्यके देनेको संवाद कहते हैं। इसके विपरीत, जिसको जो कार्य देना चाहिये किसी बाधाके न रहते नियमसे उसके उस कार्यके न देनेको विसंवाद कहते हैं। यथा, शुक्तिपर भासमान चांदीको जो कार्य देना चाहिये किसी बाधाके न रहते नियमसे उसके उस कार्यके न देनेको विसंवाद कहते हैं।

निश्चय और भ्रम

ज्ञानके विषयात्मक[1] जिस वस्तुका संवाद पाया जाता है उसके उस विषयी[2] ज्ञानको निश्चय कहते हैं। और उसके विपरीत, ज्ञानके विषयात्मक जिस वस्तुका विसंवाद पाया जाता है उसके उस विषयी ज्ञानको भ्रम कहते हैं। यथा, ज्ञानके विषय चांदीका जो संवाद पाया जावे तो चांदीके विषयी उस ज्ञानको निश्चय कहेंगे, अन्यथा, जो विसंवाद पाया जावे, जैसा शुक्तिपर भासमान चांदीके स्थलमें होता है तो सीपीपर भासमान चांदीके विषयी ज्ञानको भ्रम कहेंगे।

अज्ञान और मोह

कभी कभी वस्तुएं ऐसी भी पाई जाती हैं जो बहुत अंशोंमें तो आपसमें समानता रखती हैं पर विशेषों (प्रकारों) के कारण उनमें भेद होता है। यहां तक कि जबतक उनके विशेष बुद्धिगोचर नहीं होते तबतक उनका निर्णय नहीं होता है कि वह क्या हैं। जैसे रज्जु (रस्सी) और सर्प यह दोनों लम्बाई आदि आकार अंशोंमें आपसमें अति समानता रखते हैं, परन्तु रज्जुत्व और सर्पत्व रूपी विशेषोंके कारण उनमें भेद है। सो जबतक उनके विशेष बुद्धिगोचर नहीं होते तबतक नहीं कहते बनता कि वह क्या हैं, अर्थात् रज्जु है अथवा सर्प है। जानना चाहिये कि जो उक्तविधिसे स्थलोंमें समानता ज्ञात होती हो पर विशेष बुद्धिगोचर न होते हों तो उन समान विषय वस्तुओंके उस ज्ञानको संशय कहते हैं। निश्चय रूपी ज्ञानको ज्ञान कहते हैं। और भ्रम तथा संशयरूपी ज्ञानको अज्ञान कहते हैं। और जिस वस्तुके विशेषका कभी अनुभव हुआ ही नहीं उस विशिष्ट वस्तुके न जाननेको भी अज्ञान (मोह) कहते हैं।

परीक्षा

संवाद और विसंवादके विषयमें विचार करके वस्तुके तत्व (अमिश्ररूप) के निरूपणको परीक्षा (जांच) कहते हैं। यद्यपि परीक्षाका फल जो अन्तमें निकलता है वही सिद्धान्त (निर्णीत अर्थ) माना जाता है, परन्तु परीक्षाके नियामक (नियमसे संवाद वा विसंवादकी प्राप्तिके हेतु) प्रमाणादिकी परीक्षा, फिर उसके भी नियामककी परीक्षा, यों परीक्षाओंकी परम्परा चलाई जावे तो कभी सम्भव नहीं है कि एक भी परीक्षाका फल अनवस्था (असूत्रपात=दांव न मिलना) दोषके कारण कुछ निर्णीत हो। इसलिये उत्तम पक्ष यही है कि पहले पहल जो वस्तु जिस स्वरूपमें पाई जावे उसको उसी स्वरूपमें सत्य मान लेवें। सहसा किसीको भी असत्य न कह बैठें। पश्चात् उसके संवाद और विसंवादके विषयमें विचार करके उसकी परीक्षा करें। यदि परीक्षासे संवाद सिद्ध हो तो, परीक्षासे भी उस सत्य वस्तुका सत्य ही स्वरूप सिद्ध हुआ मानें; परन्तु उसके विपरीत जो विसंवाद प्राप्त हो तो निस्संकोच कहेंगे कि पूर्वमें यह वस्तु भूलसे सत्य मान ली गई थी, यथार्थमें यह सत्य वस्तु नहीं निकली। तात्पर्य यह है कि पहलेसे किसी

१. जिसका ज्ञान होता है उसे विषय कहते हैं। जैसे घट ज्ञानमें घट विषय है।

२. विषयके ज्ञानको विषयी कहते हैं। जैसे घटज्ञान विषयी है।

ज्ञायमान वस्तुको झूठ मान बैठना, अथवा अन्तमें परीक्षासे सिद्ध सत्य वस्तुको भी झूट कहना ठीक नहीं है। क्योंकि परीक्षाके पूर्व जो ज्ञायमान सभी वस्तु झूठ ठहराली जावें तो पूर्वमें किसी सत्यके आश्रयके बिना परीक्षाकी प्रवृत्ति (आरम्भ) ही नहीं हो सकती है; यहांतक कि परीक्षा ही सिद्ध नहीं होगी फिर परीक्षाके विषय, वस्तुकी, सिद्धि तो दूर है। और परीक्षासे सिद्धको भी जब झूठ कहें तो सत्यके निर्णयका उपायान्तर नहीं है।

वितंडा और प्रमाण

किसीको भी मूलमें सत्य न मान कर जो वाद विवाद किया जाता है उसे वितंडा कहते हैं। वितंडा वादियोंकी बुद्धिके परिचयके लिये है। परीक्षासे सत्यके निर्णयके लिये वितण्डा नहीं है। परीक्षामें संवादके हेतुको प्रमाण कहते हैं। यथा, चांदीके संवादके हेतु नेत्र, त्वचा, शाण, और अग्नि इत्यादि हैं क्योंकि किसी बाधाके न रहते चांदीको जब देखेंगे, छुएंगे, शाणपर चढ़ावेंगे और अग्निमें गलावेंगे, तब उसको चांदी ही पाएंगे; परन्तु शुक्तिपर भासमान चांदीको पहले चांदी समझके नेत्र, त्वचा, शाण और अग्नि आदिसे जो जाचेंगे तो किसी बाधाके न रहते भी उसको चांदी न पायेंगे। इसलिये चांदीकी परीक्षामें नेत्र त्वचा, शाण और अग्नि आदि प्रमाण माने जाते हैं।

अनवस्थासे बचना

वस्तुओंकी परीक्षाओंके पूर्वमें, अनवस्था दोषसे बचनेके आशयसे, अवश्य ही हमको कोई ऐसा प्रमाण ढूंढ़ना चाहिये कि जिसकी प्रमाणताकी परीक्षाके लिये किसी दूसरे प्रमाणकी आवश्यकता न हो किन्तु वह आप प्रमाण रूप हो, क्योंकि यदि प्रमाण मात्रकी प्रमाणताकी परीक्षाके लिये किसी दूसरे प्रमाणकी आवश्यकता रहेगी तो अनवस्था दोषसे मूलमें कोई भी प्रमाण करके नहीं माना जा सकेगा।

हम स्वयं प्रमाण हैं

वस्तुओंकी परीक्षाके पूर्वमें टुक सोचनेसे चित्त स्वीकार कर लेगा कि बड़ा भारी प्रमाण हमारे लिये हम आप हैं। हमारी प्रमाणताकी परीक्षाके प्रकरणमें किसी दूसरे प्रमाणकी आवश्यकता हमको नहीं है, क्योंकि हमारे हम होनेमें संवादके हेतु हम ही हैं। हमारे हम होनेमें विसंवादके हेतु हम नहीं हैं। कारण, उन्मादादि दोषोंसे शून्यताके कालमें स्वभावसे हम वही कार्य करते हैं जो हमसे होते हैं। देखो, यदि हम अपने स्वविषयक ज्ञानको अज्ञान कहें तो उसको भ्रम अथवा संशय इन दोमेंसे कोई एक मान सकेंगे। स्वविषयक अखण्डानुभव होनेके कारण हम अपने विषयक अनुभवको मोहात्मक अज्ञानता नहीं कहेंगे। अच्छा, स्वविषयक अनुभवको जो हम भ्रमात्मक अज्ञान मानें तो भ्रम उसी विषयका होता है जिसको जाति आदिका पहले कहीं निश्चयात्मक ज्ञान हो लेता है। यथा, जो पहले कहीं चांदी देख रहता है, उसीको शुक्तिपर चांदी भ्रमसे भासमान हो सकती है। जब स्वविषयक अनुभवके विषय हमारी जाति आदिका अन्यत्र क्वचित् निश्चयात्मक ज्ञान हुआ ही नहीं तो स्वविषयक अनुभवको हम भ्रमात्मक कैसे मानें?

दूसरे पक्षमें, स्वविषयक अनुभवको जो हम संशयात्मक अज्ञान स्वीकार करें, तो संशयकी दशामें भी संशयके विषयोंकी समानताका निश्चय अवश्य रहता है। यहां तो जब हमारा किसी अंशमें निश्चयात्मक ज्ञान माना ही नहीं गया, तब उसके विषयमें संशय क्यों कर उदय हो सकता है। इससे यही ठीक है कि हम स्वविषयक अनुभवको निश्चयात्मक ज्ञान निश्चित करें। सारांश यह है कि संवाद और विसंवादके विषयमें विचार करके जो हम हमारी परीक्षा करने बैठें तो हम हमसे ही सिद्ध बने बनाये हैं। किसी दूसरे प्रमाणकी सामर्थ्य नहीं है जो हमें हम सिद्ध करें, अथवा हमें हम न सिद्ध होने दें; क्योंकि,

कोई भी प्रमाण क्यों न हो पहले हमारी ही सिद्धि-से वह आप सिद्ध होगा। अन्यथा, अनवस्था दोषसे वह आप ही तो सिद्ध न होगा, भला हमारा खंडन कैसे कर सकेगा; निदान निर्णय यह हुआ कि हम हमारे निश्चयात्मक ज्ञानके विषय हैं।

अब सोचना चाहिये कि ज्ञान क्रिया (अर्थात् जानना) सकर्मक है, और नियम है कि कर्त्ता कर्मसे भिन्न होता है, क्योंकि कर्त्ता, कर्मको सिद्ध करनेके लिये, क्रियाको करता है। यदि कर्त्ता आप ही कर्मके रूपमें पूर्वसे सिद्ध है तो क्रियाको किस लिये करेगा। क्रियाके अर्थात् किसी धन्धेके करने हारेको कर्त्ता कहते हैं। और कर्त्ता अपने धन्धेसे अपने प्रयोजनके प्रधान उप-योगी जिस साध्यको सिद्ध करता है उसे कर्म करते हैं। जैसे, घड़ा बनानेका कर्त्ता कुम्हार है, और घड़ा कर्म है। हम जिसमें विषय है ऐसी ज्ञान क्रियाके कर्त्ता जो हम हैं तो हम ही हम विष-यक ज्ञान क्रियाके कर्म नहीं हो सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि हम ही हम विषयक ज्ञानका विषय नहीं हो सकते हैं। अर्थात् हमही कर्त्ता हम ही कर्मको नहीं जान सकते। यह शंका सत्य है तथापि ज्ञानका स्वरूप क्या है? उसके विषयमें विचार करना उचित है। यदि आवरणभङ्ग अर्थात् आड़का मिटना ज्ञानका स्वरूप कहा जावे तो ज्ञानका स्वरूप अभावात्मक स्वीकार किया जा-वेगा, क्योंकि आड़ कोई वस्तु है, उसका मिटना अर्थात् नाश होना ज्ञान है, और नाश होना अभा-वात्मक पदार्थ है। यदि हमारा स्वविषयक ज्ञान भी अभावात्मक पदार्थ है तो हम ही हमारी आड़ तो हो नहीं सकते जिसके कारण हम हमको न जानें; अवश्य दूसरी कोई वस्तु हमारी आड़ होनी चाहिये। मान भी लिया जावे कि हमको जाननेमें हमारी आड़ कोई वस्तु है तो वह भावपदार्थ होगी। भाव पदार्थका नाश कभी हो नहीं सकता क्योंकि एक कभी शून्य नहीं हो सकता है। इस-का हेतु यह है कि भाव पदार्थ जब लों आप बना है तब तक उसीके अभावको छोड़के उससे भिन्न किसी दूसरेके अभावको उसका अभाव कह नहीं सकते हैं, और न वह आप अपना अभाव हो सकता है क्योंकि जब वह आप हटे (नाश पावे) तब उस-का अभाव आवे, और उसके अभावके हुये बिना वह आप हटने (नाश पाने) का भी नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि हमको हमारे जाननेमें जो कोई भावात्मक पदार्थ आड़ है तो उसका अभाव न हो सकनेके कारण हमको हमारा ज्ञान कभी नहीं होगा। हमको हमारे जाननेमें आड़, कोई मूर्त्त पदार्थ तो नहीं हो सकता है जिसके हटने रूपी गमन-क्रियासे आड़के मिटनेकी उपपत्ति हो सकती है क्योंकि जो कोई सूक्ष्म मूर्त्त पदार्थ आड़ होता तो किसी एक देशसे आड़ होता। सर्व देशसे आड़ होनेकी सामर्थ्य सूक्ष्म मूर्त्त पदार्थमें नहीं है। परन्तु हमको हमारे जाननेमें किसी देश विशेषसे आड़ हटती अनु-भूत नहीं होती है। और जो कोई स्थूल मूर्त्त पदार्थ आड़ होता तो दर्शन अथवा स्पर्शनसे प्रत्यक्ष अनुभूत होता। अतएव हमको हमारे जाननेमें किसी भावात्मक आड़का मिटना, ज्ञानका स्वरूप सिद्ध नहीं होता है। इससे सिद्ध हुआ कि हमारा स्वविषयक ज्ञान हमारे पक्षमें आवरणका भङ्ग नहीं है।

ज्ञान क्रियाकी सकर्मकताके अनुरोधसे जो हम अपनेको स्वविषयक ज्ञान क्रियाका कर्म मानें तो कर्त्ता और कर्मके विरोधसे हमसे हमारी ही ज्ञान क्रिया कदापि होनेकी नहीं है। क्योंकि कर्त्ता, पहिले अपने प्रयोजनका परिचिन्तन कर लेता है, तब किसी क्रियाके करनेमें प्रयत्न करता है। सो जब तक हम, हमको न जानें, तब तक हम आप अपनी ज्ञान क्रियासे साध्य प्रयोजनका परिचिन्तन कैसे कर सकते हैं? इसलिए ज्ञान क्रियाके साध-नमें हम प्रयत्न भी नहीं कर सकते हैं। वरन इस न्यायसे तो कभी किसी वस्तुका ज्ञान ही नहीं हो सकता है। यहां तक कि ज्ञानका भी ज्ञान अनहोना

हो जायगा। संसारमें ज्ञान क्रियाकी अन्यथानुपपत्तिसे (अर्थात् ज्ञानक्रियाके स्वरूपके निर्वाहकेलिए) जो वस्तु-स्वभावसे (अर्थात् प्रयोजनके परिचिन्तनके बिना ही) हम अपनी ज्ञानक्रियाका कर्त्ता अपनेको मानें तो पहिले कोई वस्तु सिद्ध हो ले तब उसके स्वभावकी चर्चा हो। निदान विवश हो कर हम हमको वस्तु स्वीकार करें जिससे हमारा ज्ञान हमको मानना पड़े। चलो मान भी लेवें कि हमको हमारा ज्ञान हमारे स्वभावसे होता है। तब भी बतलाना चाहिये कि हमारा स्वभाव हमारा स्वरूप ही है? अथवा हमसे भिन्न है? यदि हमारा स्वभाव हमसे भिन्न है तो हमको भी हमारे ज्ञानकेलिए परतन्त्र होना पड़ा। पहले प्रमाणोंसे हम सिद्ध हो लें तब हमारा स्वभाव सिद्ध हो। फिर उससे हमारा ज्ञान सिद्ध हो। तदनन्तर हमारे ज्ञानसे हम सिद्ध हों, फिर हमसे हमारे प्रमाण सिद्ध हों। इस न्यायमें चक्रक दोष (घूम फिर कर पुनः वहीं आना) है। क्योंकि हमारे सिद्ध हुये बिना हमारा स्वभाव भी सिद्ध नहीं हो सकता है। जो हमारा स्वभाव, हमारा स्वरूप ही स्वीकार किया जावे तो हमारे ज्ञानके हेतु हम आप ही सिद्ध हुए। परन्तु अब तक ज्ञानका स्वरूप निरूपित नहीं हो पाया। अपने स्वविषयक ज्ञानको जो हम अपनेसे भिन्न मानें तो परस्पर भिन्न पदार्थोंको सत्तामात्र सम्बन्धसे तो परस्परके संसर्ग (योग) का अवगाहन (धारण) नहीं हो सकता है क्योंकि जो सत्तामात्र सम्बन्धसे परस्परके संसर्गका अवगाहन माना जावे तो सबका सबसे संसर्ग हो जावे। अतएव सर्वत्र बड़ी गड़ बड़ पड़ जावे। यदि समवाय सम्बन्धसे संसर्ग माना जावे तो हमारे स्वभावसे हमारा स्वविषयक ज्ञान हमको होता है, यह बात जो पूर्वमें मान ली गई वह खंडित होती है, क्योंकि समवायसे हमारे स्वभावके समान हमारा स्वरूप नहीं माना जाता है। जो हमारा स्वरूप समवाय भी मान लिया जावे तो स्वभावका नामान्तर मात्र समवाय माना जायेगा। अर्थमें अन्तर न होगा। यदि पूर्व मतका त्याग करके, हमारे स्वभावसे हमारा स्वविषयक ज्ञान नहीं होता है किन्तु समवाय सम्बन्धसे होता है, यह मत स्वीकार किया जावे तो पूर्वोक्ति चक्रक् दोषसे फिर एक भी कोई सिद्ध न होने पावेगा। अतएव सबसे उत्तम यही है कि हमारे स्वरूप सम्बन्धसे हमारे ज्ञानका हमसे संसर्ग (सम्बन्ध) स्वीकार कर लिया जावे। प्रथक् स्वभाव अथवा समवायादि सम्बन्धकी चर्चा छोड़ दी जावे।

जो अपने आश्रयसे भिन्न वस्तु अपने आश्रयको छोड़के अन्यत्र कहीं भी नहीं पाई जावे उन दोनोंमें समवाय सम्बन्ध माना जाता है। यथा पटवस्तु (कपड़ा) अपने आश्रय तन्तुओं (सूत) को छोड़के तन्तुरूपी अपने आश्रयसे भिन्न अन्यत्र कहीं भी नहीं पाई जाती है, अतएव तन्तु और पटमें समवाय सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध नैयायिकोंके मतमें माना जाता है। संक्षेप यह है कि हमारे स्वविषयक ज्ञानको आड़का मिटना न कहना चाहिये, किन्तु उक्त ज्ञानको स्वज्ञानस्वरूप भावात्मक पदार्थ स्वीकार करके उसको हमारा स्वरूप ही स्वीकार कर लेना चाहिये। जो बातें ऊपर कही गईं हैं वे हमारी सिद्धिकेलिये प्रमाण रूप नहीं हैं क्योंकि मूलमें हमारे लिये हम आप ही प्रमाण हैं। ये बातें तो शङ्काओंके समाधानमें कही गई हैं। वास्तवमें यदि हम न होते तो शङ्का कौन किससे करता? शङ्काओंके समाधानसे लाभ यह हुआ कि हम स्वयं निश्चयात्मक ज्ञान स्वरूप सिद्ध हुए। अब इसके अनन्तर हमारी प्रमाणतासे संवाद और विसंवादके विषयमें विचार करके वस्तुओंकी परीक्षा करनी उचित है।*

[असमाप्त]

* श्रीमान् पं० सर्यूप्रसाद मिश्र सर्यूपारीण द्वारा रचित 'तर्क विवेक' नामक पुस्तकका एक अंश।

भारत-गीत —१३

है तेरा ऐसा हाल बात यह क्या रे
क्या तुझमें कुछ शक्ति नहीं है ?
क्या तुझमें कुछ युक्ति नहीं है ?
क्या तुझमें कुछ बुद्धि नहीं है ?
क्या तुझ में कुछ सिद्धि नहीं है ?
तिसपर भी तू है क्यों निषिद्ध हे प्यारे ?
है तेरा ऐसा हाल बात यह क्या रे ?

*

क्या तुझको कुछ मान नहीं है ?
क्या तुझको निज ज्ञान नहीं है?
क्या तुझमें विश्वास नहीं है ?
क्या तुझको कुछ आश नहीं है ?
तो फिर बैठा तू क्यों उदास, मन मारे ?
है तेरा ऐसा हाल बात यह क्या रे

श्रीपद्मकोट, प्रयाग
२२-१२-१७

—श्रीधर पाठक

वाणिज्य मार्ग

[ले० अध्या० गोपालनारायण सेन सिंह, बी० ए०]

भारत ऐसे विस्तृत देशमें भी सड़कें क्या कच्ची या पक्की बहुत ही थोड़ी हैं जिससे इस देशके भिन्न भिन्न प्रान्त और गांव-वाले, जहांके तहां पड़े रह जाते हैं। उनके बीच किसी प्रकारका व्यवहार वा समागम नहीं होता। वह सौ दो सौ की बस्तीको ही अपनी दुनियां मान कर उसके भीतर ५००० वर्षकी पुरानी चाल चला करते हैं। तबसे निरन्तर मनुष्य समाजने मिलजुल कर सुख, सामर्थ और ज्ञानकी प्राप्तिमें जो सुविधाएं उपार्जन की हैं उनसे वह अलग ही रहा चाहते हैं। चाहे इसके पीछे वह "तिमिराछन्न" अफ़रीका महाद्वीपके हबशी, ज़ूलू हौटेन-टौट इत्यादि संसारकी पिछड़ी और गिरी हुई जातियोंकी ही गिनतीमें क्यों न रखे जायं! इसकी परवाह नहीं !!

Economics अर्थ शास्त्र]

भारतके हितचिंतक होनेका दम भरने वालोंके श्रीमुखसे यह दलील सुननेमें आती है कि कृषि-प्रधान देशोंमें सड़कोंके होनेका प्रयोजन ही क्या है? पहले तो अधिकतासे नाज और सामान बोझ बांधकर सरपर ही एक जगहसे दूसरी जगह ढो लिये जाते हैं। दूसरे चार पांच महीने बरसातके दिनोंमें यहांपर काम भी मन्दा पड़ जाता है, घरके बाहर कहीं आने जाने वा कुछ ले आने वा ले जानेकी ज़रूरत ही नहीं होता, तीसरे जब फसिल काटने खलिहान लगाने और हाट बाज़ार तक शस्यको पहुँचानेके दिन आते हैं तो उस समयतक नदी, ताल और गड़हियां सूख जाती हैं, खेत और मैदानकी पगडंडियां, कीच-कर्दम और घास-फूससे साफ हो जाती हैं। फिर आदमी आंख मूंदकर एक गांवसे दूसरे गांवमें जा सकता है। सड़क पटवाने और उसे बराबर मरम्मतमें रखनेका व्यय और परिश्रम क्यों व्यर्थ किया जाय।

ऐसा कहनेवाले यह बिलकुल भूल जाते हैं कि किसी देशमें कृषिके अलावा कुछ और उद्योग धन्धे भी होते हैं और होने चाहियें तथा यह भी संभव है कि जो कृषिका बाधक नहीं है वह उद्योग धन्धेका बाधक हो सकता है। कृषिके वास्ते नहीं तो उद्योग धन्धे के लिये ही हमें कच्ची, पक्की सड़कोंकी जरूरत है।

भारतमें इस समय, थोड़ी पूंजीसे गृह-शिल्प वा दस्तकारीके रूपमें जो व्यवसाय होता है वह अधिकतर अभी शहरोंमें ही होता है। वहांपर माल बनानेवालोंके निकट ही उनके ख़रीदार भी होते हैं। यदि हम अब इस कामका गावोंमें प्रसार करना चाहते हैं तो हमें देशके सभी छोटे बड़े गांवों और कसबोंको एक दूसरेसे सड़कोंके द्वारा एक कर देना पड़ेगा। इतना ही नहीं कि

गावोंके इर्द गिर्द तीन चार कोसके भीतर कोई कच्ची वा पक्की सड़क जाती हो वरन् हमारा आदर्श यह होगा कि प्रायः कितनी ही बड़ी वस्तियां हों उनके बीचसे होकर सड़कें निकलें जिनपर बनजारे जगह जगह कच्चा माल लेकर बांटा करें और फिर कुछ दिनोंके बाद तैयार माल इकट्ठा कर लें। गांवके बाहर भी सड़क सीधी जाय, नाला, नहर वा खाई, नदीके कारण ऐसा न हो कि तीन चार कोसका चक्कर काटकर जाना पड़े। दिनभरका थका आदमी चाहे वह गाड़ी हांकता हो, वा सरपर बोझ लादे हो, जिस समय गांवसे कोस आध कोस निकट पहुंच जाता है और उसपर भी घूमकर उसे सड़क सड़क जानेके लिये तीन चार घंटेका लम्बा सफर करना पड़ता है तो उसका साहस छूट जाता है।

इस समय बैल भैंस वा बहंगीपर जो माल लादा जाता है उसमें बहुत समय नष्ट होता है। गाड़ीसे एक दिनकी राह पैदल, तीन दिनमें समाप्त होती है। जो बनजारे गांवके कारीगरोंके पाससे माल खरीदने चलेंगे, इस तरह देर से पहुंचेंगे। कारीगरोंके यहां माल बना बनाया पड़ा रहेगा। वह उन्हें बेचनेके लिए अलग उत्सुक रहेंगे। वह उनमें अपनी पूंजी अटकाकर तीन चार दिनसे अधिक काम भी नहीं कर सकते। बनजारे उन्हें बाज़ार ले जाकर झटपट बेच डालें तो हाथमें दाम आ जाय।

पर जब तक बहली वा घोड़ा गाड़ीपर दौड़ दौड़ कर मालको बाज़ारतक पहुंचानेका काम न किया जायगा यह संभव नहीं कि बाज़ारके चढ़ते उतरते भावसे पूरा पूरा लाभ उठाया जाय।

इसके लिये केवल पगडंडी नहीं, चौड़ी सड़क होनी चाहिये, पर यदि वह कच्ची हुई तो उसका होना न होना बराबर ही है क्योंकि उसमें ज़रासा पानी बरसनेपर बड़े बड़े गड्ढे बन जाते हैं और उसमें सूअर, भैंस इत्यादि जानवर लोट पोट कर नहाया करते हैं। यदि पानी कम हुआ तब भी सड़कोंके किनारे यहांसे वहांतक बबूलके कांटे कीचड़के साथ ऐसे सन जाते हैं और एक एक आदमीके पैरोंमें प्रायः दस दस सेर मिट्टीके लोये ऐसा चिपकते हैं कि छुड़ाये नहीं छूटते। एक तो लोयोंका बोझ दूसरे कांटोंका मीठे मीठे चुभना, खूब ही मज़ा देता है। इन कच्ची सड़कोंपर गाड़ियोंके अटक जाने और बोझ लेकर जानवरोंके बैठ जानेका तमाशा भी बहुतोंने देखा होगा!

कभी सड़कोंपर रेत छींट देनेसे, या अरहर, करवीके डंठल, पयाल वा घासकी पूली बिछा देनेसे मिट्टी नहीं धसती और उसपर गाड़ी का पहिया बड़ी आसानीसे लुढ़क जाता है किन्तु जो काम पक्की सड़कसे निकल सकता है वह कच्ची सड़कसे कहां निकल सकता है।

इधर पक्की सड़कोंकेलिए "डिस्ट्रिक्ट बोर्ड" के पास इतना अर्थ नहीं होता; जो हुआ भी वह और और कामोंमें जैसे स्कूल और अस्पतालके स्थापन और कुएं तालावकी सफ़ाईमें बट जाता है। उससे कुछ धन बचानेपर सड़कोंके खोलनेकेलिए सहायता मिली भी तो एक ही दो मरतबे रोड़ा पत्थर इत्यादि बिछानेमें सब साफ़ हो जाता है। फिर सड़ककी मरम्मतके वास्ते कुछ बच ही नहीं जाता।

(असमाप्त)

भारत गीत—१२

मैं तो भारत पै बलि बलि जाऊं
गुइयां "

भारत है मेरा प्रानोंका प्यारा
दिल का दुलारा जिवन-अधारा
उसपै तन मन को वारूं उसपै त्रिभुवन को हारूं
उसको पलकों पै धारूं उसको दिलपै बैठारूं

मैं तो भारत पै बलि बलि जाऊं
गुइयां ,,

भारत है मेरा कुंवर कन्हैया
बन बन में मेरी चराता है गैया
उस्को बन से बुलाऊं उस्को माखन खिलाऊं
उस्से बंसी बजवाऊं अपने अगना नचाऊं
मैं तो भारत पै बलि बलि जाऊं
गुइयां ,,

भारत है मेरा प्यारा ललनवा
करता कलोलें (मेरे) दिल के पलनवा
उस्को गोदिया उठाऊं उस्के कजरा लगाऊं
उस्को मल मल न्हिलाऊं उस्को अंचरा पिलाऊं
मैं तो भारत पै बलि बलि जाऊं
गुइयां ,,

भारत है मेरा दुनिया से न्यारा
मेरी बलन्दी मेरा सितारा
उस्पै दिठिया लगाऊं उस्से रौशन हो जाऊं
मैं तो उस्में समाऊं अपना आपा भुलाऊं
मैं तो भारत पै बलि बलि जाऊं
गुइयां ,,

श्री पद्मकोट, प्रयाग १६-१२-१७ —श्रीधर पाठक

चन्द्रमाका आदि और अवसान*

[अनु० श्रीयुत सत्य भक्त जी]

यदि पृथ्वीके पृष्ठ देशको खोदकर परीक्षा की जाय, तो मालूम होगा कि उसमें अनेक पर्त अथवा तहें हैं। जिस प्रकारकी मिट्टी ऊपर है, वैसी प्रायः नीचे नहीं मिलती। ऊपरके स्तरको खोद डालने पर, दूसरी प्रकारकी मिट्टीका स्तर मिलता है, और उसको खोदनेपर तीसरी प्रकारका। इन पर्तोंमेंसे कोई बालूका है, कोई पत्थरका, और कोई कोयलेका। यह पर्त समतल नहीं हैं। पृथ्वीके भीतर वाली गर्मीके कारण कहींपर स्थल ऊंचा होकर पहाड़ पहाड़ियां बन गये हैं और कहीं नीचा हो जानेके कारण घाटियां और समुद्र उत्पन्न हो गये हैं। पर जहांपर खोदा जायगा वहां कुछ न कुछ परतें अवश्य दृष्टिगोचर होंगी।

प्रायः यह चट्टानें पानीके प्रवाह द्वारा इधरसे उधर ले जायी गयी मट्टी आदिकी बनी पाई जाती हैं।* हिमालय पर्वतके स्तरोंमें भी ऐसे ऐसे जीवधारियोंके कङ्काल पाये जाते हैं, जो जलके अतिरिक्त कहीं और नहीं रह सकते। इससे सिद्ध होता है कि किसी कालमें हिमालय पर्वत पानीमें डूबा रहा होगा और उसके यह स्तर पानी द्वारा लाई हुई मिट्टीके जमनेसे बने होंगे। अवश्य ही उस समय हिमालयकी ऊंचाई इतनी अधिक न होगी। पीछेसे किसी प्राकृतिक घटनाके कारण इतना ऊंचा हो गया है।

पृथ्वीका यह स्तर-निर्म्माणका कार्य अभी समाप्त नहीं हो गया है। अब भी गङ्गा, नील, मिसिसिपी आदि बड़ी बड़ी नदियां वर्षाके समय बहुतसी बालू और मिट्टी बहा लेजा कर उसे अपने मुहानेपर जमा कर देती हैं। वर्षाका बढ़ा हुआ जल हटनेपर देखा जाता है कि वहांकी धरती पहलेकी अपेक्षा कुछ ऊंची हो गई है। दूसरी वर्षाके समय वह फिर कुछ अधिक ऊंची हो जाती है। और इसी प्रकार प्रति वर्ष पर्तपर पर्त जमते रहनेसे किसी समय एक विस्तृत देश उत्पन्न हो जाता है। पृथ्वीके इस स्तरनिर्माण और स्तरक्षयकी गति अत्यन्त मन्द है। हिसाब लगानेसे देखा गया है, कि जल, आंधी, ग्लेशियर, ज्वारभाटा आदि सम्पूर्ण क्षयकारी शक्तियों द्वारा अमेरिका देशकी एक फुट भूमिको काटनेके लिए छः सहस्र वर्षकी

* श्रीयुत शिशिर कुमारमित्रके लेख 'चन्द्रेर उत्पत्ति' से अनुवादित। (प्रवासीसे) Astronomy ज्योतिष]

[* तहोंका बनना और बहुतसे कारणोंसे भी सम्भव है। देखिये विज्ञान भाग २ संख्या ४ पृष्ठ १४५। वि० सं०

आवश्यकता होती है। पांच हजार फुट मोटे स्तरके इस प्रकार क्षय होनेमें तीन करोड़ वर्ष लगेंगे। अमेरिकाके एक एक पहाड़के स्तरकी मोटाई लगभग पांच सात मील है। यह मोटा स्तर कितनी बार बन बिगड़ कर तय्यार हुआ है, उसका पता लगा सकना असम्भव है। इसमें कितना समय लगा होगा इसका हिसाब गणितज्ञ करके देखें। यहां यह भी याद रखना आवश्यक है कि पांच मील मोटा एक ही स्तर नहीं है, वरन् इसमें एकके ऊपर एक सैंकड़ों पर्त हैं। ऊपरके हिसाबसे यदि देखा जाय तो तो इन सब स्तरोंके बननेका काल असंख्यों वर्ष निकलेगा। भूतत्ववेत्ता गण अबतक ऐसा ही मानते आते हैं। यदि कोई कहता, कि क्या एक एक स्तरके बननेमें तीस, तीस करोड़ वर्ष लगे हैं ? तो उत्तर मिलता, कि क्या पृथ्वी आजकी बनी है ? वह कितनी प्राचीन है यह सोचो। यह सब कार्य एक दिनमें नहीं होते हैं, इत्यादि। पर पदार्थ वेत्तागण इस बातको स्वीकार नहीं करते थे। उनका कहना था, कि 'पृथ्वी आजकी नहीं है, और स्तर निम्र्माणका कार्य एक दिनमें नहीं हो जाता, यह ठीक है। पर तोभी पृथ्वीकी आयुकी कोई सीमा तो होगी। वह कुछ अनन्त कालसे तो यहां थी ही नहीं। यद्यपि पृथ्वीकी आयुका ठीक ठीक पता नहीं लग सका है, तोभी विद्वान मनुष्योंके मतानुसार उसका एक अरब वर्षके भीतर ही होना सम्भव है। उसके पूर्व वह तरल अवस्थामें थी। भूतत्ववेत्ता जो एक स्तरकेलिए ही बीस तीस करोड़ वर्ष आवश्यक बतलाते हैं, वह निर्मूल है'।

पर भूतत्ववेत्ता भी इससे हार मान जानेवाले जीव नहीं हैं। वह कहते हैं, कि हमारी गणनामें भूल दिखाओ। पृथ्वी पर्तपर पर्त जमनेसे बनी है, यह बात प्रत्यक्ष है। और स्तर निम्र्माणका कार्य आजकल जिस गतिसे होता देखा जा रहा है, उसके हिसाबसे मोटे स्तरोंके बननेमें बीस तीस करोड़ वर्ष लगना आवश्यक है। हां, यदि कोई कहे कि पहाड़ोंके नीचेवाले स्तर जिस समय तय्यार हुये थे, उस समय स्तर निम्र्माणका कार्य खूब शीघ्रतासे होता था, तो बात दूसरी है। पर उस अवस्थामें यह आवश्यक होगा, कि कहनेवाले एक ऐसी प्राकृतिक शक्ति दिखलावें जिसकी सहायतासे मीलों मोटे स्तर शीघ्र ही तय्यार हो सकते हैं। जब तक ऐसी शक्ति नहीं दिखलाई जायगी तब तक स्तरोंके शीघ्र बननेकी बातपर विश्वास नहीं किया जा सकता। पदार्थ वेत्तागण बहुत परिश्रम करनेपर भी इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके हैं, और अपनी बातको भी छोड़ना नहीं चाहते। इस प्रकार पदार्थ वेत्ताओं और भूतत्ववेत्ताओंमें यह विवाद बहुत समयसे चला आता था। भूतत्ववेत्ता कहते थे, कि पृथ्वीके एक एक स्तरके बननेमें करोड़ों वर्ष लगे हैं और पदार्थ वेत्ता कहते थे, कि नहीं, पृथ्वीकी सम्पूर्ण आयु ही सौ करोड़ वर्षके भीतर है। सौभाग्यसे अब इन दोनों विरोधी दलोंमें मेल होनेका एक लक्षण दिखाई दिया है। उसका वर्णन करनेसे पूर्व सौर जगतके सम्बन्धमें कुछ बातें जानना भी आवश्यक है।

हमारे सौर जगतमें सात ग्रह सूर्य्यको केन्द्र बना कर उसके चारों ओर घूम रहे हैं। इस घूमनेका पथ अथवा भ-पथ स्थिर नहीं है। ग्रहगण परस्पर खेंचा तानी करके अपने निर्दिष्ट पथसे च्युत होते रहते हैं। इसलिए कितनी ही बार यह प्रश्न उठ चुका है, कि ग्रहोंका इस प्रकार अपने स्थानसे हटनेका परिमाण किस समय इतना अधिक हो जायगा, कि उसके फलसे दो ग्रह परस्परमें टकराकर नष्ट हो जायं। वास्तवमें यह प्रश्न अत्यन्त दुरूह है। कितने ही बड़े बड़े गणितशास्त्र विशारद इसमें परिश्रम करके हार मान गये, क्योंकि सात ग्रहोंकी खेंचातानीके फलसे कब कौन ग्रह कहां होगा, इसका निर्णय कर सकना अत्यंत कठिन है। पर अन्तमें मनुष्यकी बुद्धिने इस कठिन कार्यको भी पूरा करके छोड़ा। फ्रांसके

प्रसिद्ध विद्वान लैप्लासने अनेक गणनाओंके पश्चात् यह सिद्धान्त स्थिर किया कि निस्सन्देह ग्रह अपनी अपनी कक्षासे हटते रहते हैं, पर थोड़ी दूर जा कर पुनः वहीं लौट आते हैं। उनकी दशा कितने ही अंशोंमें घड़ीके लटकनको भांति समझी जा सकती है। यदि ग्रहोंकी स्थान-च्युति एकमुखी होती तो वास्तवमें भयका कारण था, पर कुछ समय पश्चात् उसकी दिशा पलट जाती है इससे टकरानेका भय करना अनावश्यक है।

लैप्लासके इस सिद्धांतको लोगोंने अकाट्य मानकर उसपर विश्वास किया। अनेक लोग कहने लगे कि सौर जगतके पिंडोंमें कभी टक्कर नहीं हो सकती। अधिकांश मनुष्य लैप्लासकी अद्भुत गणनापर बड़े चकित हुये। पर इस संसारमें छिद्रान्वेषियोंकी कमी नहीं है। लैप्लासके सिद्धांतका मूल आधार मध्याकर्षणका नियम था। यदि एक विशिष्ट गति रखनेवाली दो सम्पूर्ण कठिन (perfectly rigid) वस्तुएँ आकाशमें छोड़ दी जायं तो मध्याकर्षणके नियमसे एक वस्तु दूसरीके चारों ओर घूमने लगेगी, पर इसकेलिए दोनों वस्तुओंका सम्पूर्ण कठिन (perfectly rigid) होना आवश्यक बात है। लैप्लासने जो गणना की थी उसमें उसने सूर्य्य और अन्य सब ग्रहोंको सम्पूर्ण कठिन मानकर अपना सिद्धांत स्थिर किया था। अबतक किसीने लैप्लासकी गणनाके विरुद्ध मुंह खोलनेका साहस नहीं किया, पर अब उसके सिद्धान्तके सत्य असत्य होनेके सम्बन्धमें प्रश्न उठा है। क्या सचमुच जगतकी सब वस्तुएं कठिन हैं? लैप्लासका यह सिद्धांत एक अंशमें भी सत्य नहीं है। विज्ञानके अनुसार पत्थर, लोहा, स्टील और हीरा तक सम्पूर्ण कठिन नहीं माने जाते। तब पृथ्वीका तो कहना ही क्या है। इसके भीतरका भाग अधिकांश तरल रूपमें है। रहा सूर्य्य, वह तो कठिन होना दूर, तरल भी नहीं वरन वाष्परूप है। बृहस्पति और शनि अबतक तरल अवस्थामें हैं। इस प्रकार देखनेपर मालूम होता है, कि लैप्लासकी गणनाके मूलमें ही भूल है। जब उसका मूल ही असत्य है, तब आगेकी बातें किस प्रकार सत्य हो सकती हैं, अर्थात् ग्रह उपग्रह आदि जिस पथमें सूर्य्यके चारों ओर चक्कर लगाते हैं वह स्थिर नहीं है। वह उस पथसे सदा थोड़ा थोड़ा हटते रहते हैं और यह हटना द्विमुखी नहीं है। यदि द्विमुखी होता, तब तो कोई बात ही नहीं थी, कुछ सयम उपरांत वे पुनः अपने स्थानपर लौट आते। वास्तवमें यह हटना एकमुखी है, और इसका अन्तिम परिणाम क्या होगा यह कौन कह सकता है?

पिंडोंका स्थान च्युत होनेका प्रमाण हमारे चन्द्रमामें पाया गया है। चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओर घूमता रहता है, पर उसके घूमनेका समय क्रमशः बढ़ता जाता है। बढ़नेका परिमाण सौ वर्षमें लगभग छः सेकण्डके है। इस बातको सब कोई जानते हैं, कि ज्योतिषके हिसाबसे सूर्य्य अथवा चन्द्रग्रहणका समय जान लेना बिलकुल सीधी बात है। साधारण ज्योतिष जाननेवाला भी तीन चार सौ वर्ष पहले अथवा पीछेके ग्रहणका समय तुरन्त बता सकता है। प्रायः दो सहस्र वर्ष पहलेके एक ग्रहणका वर्णन एक प्राचीन पुस्तकमें पाया गया। ज्योतिषियोंने यह देखनेकेलिए कि गणना मिलती है या नहीं, उसका समय निकाला। गणना की गई पर बिलकुल ठीक न निकली। उसमें प्रायः दो घंटेका अन्तर पाया गया। गणनाके अनुसार जिस समय ग्रहण होना चाहिये था, वह उसके लगभग दो घंटे पूर्व हुआ था। अनेक प्रकारकी प्राकृतिक घटनाओंके कारण एक घंटा समय बढ़नेका हिसाब मिल गया। पर शेष एक घंटेके अन्तरका कोई कारण मालूम न हो सका। बहुत दिनतक परिश्रम करते रहनेपर भी ज्योतिषीगण इसका सन्तोषजनक उत्तर नहीं प्राप्त कर सके। अब दो विद्वानोंकी कृपासे इसका एक उत्तर पाया गया है। उनमेंसे एक विकाशवादके

आविष्कर्ता चार्ल्स डार्विनके सुयोग्य पुत्र जार्ज-डारबिन और दूसरे लार्ड कालविन नामक एक सज्जन हैं।

[असमाप्त]

भारत-गीत नं.-६

आजा मेरे प्यारे लाल

मेरे लाल		आरे लाल
एरे लाल		प्यारे लाल
मेरे नैन के तारे लाल
मेरे प्रान के प्यारे लाल
आजा मेरे प्यारे लाल

*

देखूं तेरा प्यारा मुखड़ा भूलूं जा का सारा दुखड़ा
पर्दा फटै दर्दका सुकड़ा पिरथी बनै सुर्गका टुकड़ा
भोली सूरत भोली चाल
आजा मेरे प्यारे लाल

*

आजा आजा		प्यारा राजा
घर है साजा		तेरे काजा
तेरा बाजा		जग में गाजा
तू सिरताजों		का सिरताजा
मेरे राजदुलारे लाल
आजा मेरे प्यारे लाल

*

तू ही मेरा सर्वस सारा तू ही मेरा प्रान अधारा
तू अँधियारे का उजयाला इज्जत हुर्मत का रखवाला
तू ही दौलत तू ही माल
आजा मेरे प्यारे लाल

*

तुझमें अपना प्रान रमाऊं तुझ में अपना ज्ञान जमाऊं
तुझको अपना इष्ट बनाऊं तनसे मनसे बलबल जाऊं
तू मेरा गोविन्द, गुपाल
आजा मेरे प्यारे लाल

श्रीपद्मकोट,
प्रयाग, १०-१२-१७		—श्रीधर पाठक

बैक्टीरिया (Bacteria)

[ले० पं० मुकुटविहारीलाल दर, बी० एस-सी.]

बैक्टीरिया (Bacteria) वनस्पति-वर्गके सबसे सूक्ष्म एक-कोष-वाले जीव हैं। एक बूंद पानीमें करोड़ों बैक्टीरिया अच्छी तरह तैर सकते तथा घूम फिर सकते हैं। यह इतने छोटे होते हैं कि यदि २५००० बैक्टीरिया पास पास रखे जायं तो केवल एक इंचकी पंक्ति होगी। अगर किसी ऐसे अनुवीक्षण यंत्रसे देखा जाय, जिससे एक मनुष्य राजपूतानेके आबू पर्वत (Mount Abu) अथवा छोटे नागपुरके पारस-नाथ पहाड़के बराबर दिखाई पड़े तो यह बैक्टी-रिया केवल एक मामूली बिन्दुके समान दिखाई पड़ते हैं। अति सूक्ष्म होनेके कारण यह ईंटके रंध्रोंमेंसे ऐसे आ जा सकते हैं, जैसे मकानके दरवाज़ेमेंसे मनुष्य। बैक्टीरिया अपने आप बीचमें टूट या कटकर "बढ़ते" हैं और कुछ तो १५ या २० ही मिनटमें इस तरह विभाजित होकर खूब बड़े हो जाते हैं। परन्तु यह भी एक वृक्षाणु (या जीवाणु) के लिये बहुत कम समय है। आ-सानीसे बैक्टीरिया घंटेमें एक बार विभाजित होते हैं। इस क्रमसे अगर देखा जाय तो एक जीवाणुसे दो दिनमें २८१, ४७४९७६७१०६५६ पैदा हो जायंगे और तीन दिनमें उसकी संतति लगभग १४८३५६ मन तोलमें बैठेगी।

जीवाणु तीन आकारके होते हैं, चक्राकार, गोलाकार तथा बांके। इनको क्रमसे कौकाइ (Cocci) बैसिलाइ (Bacilli) तथा स्पाइरिला

(Spirilli) कहते हैं। इनके आकारसे और उन रोगोंसे जो यह पैदा करते हैं कोई संबन्ध नहीं है। परन्तु इस रीतिसे नाना प्रकारके बैक्टीरिया पहिचाननेमें सुगमता होती है।*
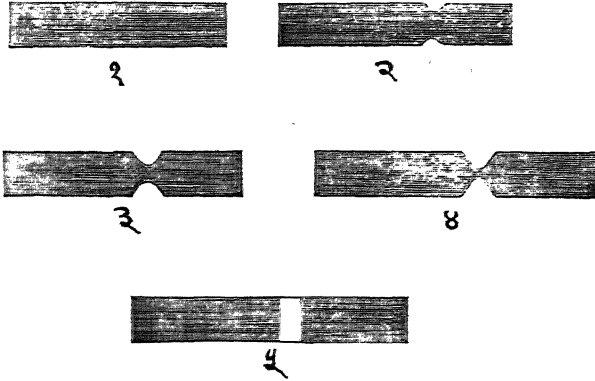
चित्र १२—एक जीवाणुसे बीचमें से कटकर दो हो जाते हैं।

बैक्टीरिया संसारमें कहां पाये जाते हैं

जैसाकि पहले लेखमें कहा जा चुका है यह हवाके झोकोंसे इधर उधर धूलके कणोंके साथ चिपटे हुए घूमते रहते हैं। वे प्रायः पृथ्वीके ऊपरी भागमें बहुतायतसे मिलते हैं परन्तु साधारण मट्टीमें ३ फ़ीटसे नीचे नहीं पाये जाते। यह नाले, तालाव, झील, चश्मे और कम गहरे कुओंमें कसरतसे होते हैं यहां तक कि यदि किसी साधारण कुएंका सेर सवा सेर पानी लेकर देखा जाय तो उसमें लगभग एक लाख बैक्टीरिया मिलेंगे। यह मनुष्य और पशुओंके आसपास बहुत होते हैं और त्वचा, नाक, मुंह, कंठ और अंतिड़ियोंमें अधिक मिलते हैं।

हानिकारक, निर्दोष और हितकारी बैक्टीरिया

कुछ बैक्टीरिया तो रोग पैदा करते हैं और कुछ थोड़ेसे मनुष्य मात्रके लिये हितकारी हैं। बहुतसे तो अपना क्षुद्र जीवन मट्टी, पानी, तथा हम लोगोंके शरीरोंमें रहकर व्यतीत करते हैं और यह न हानिकर होते हैं न हितकारी।

हितकारी बैक्टीरिया उदाहरणार्थ वह हैं जो मक्खन और दहीके बनानेमें उपयोगी होते हैं सड़ाने गलानेवाले बैक्टीरिया यद्यपि हम लोगोंका बहुतसा खाना ख़राब करते हैं परन्तु सब बातोंको ध्यानमें रख कर इनको हितकारी ही समझना चाहिये। यदि जितने दरख्त और जीव जो संसारमें रहते और मरते हैं हमारे आसपास उसी तरह पड़े रहें और यह सड़ानेवाले बैक्टीरिया न हों तो इस संसारकी क्या दशा हो! यदि आप उस समयकी घोर दुर्दशाका अनुमान करें तो आपको विदित होगा कि सड़ानेवाले बैक्टीरिया हम लोगोंके मित्र हैं शत्रु नहीं।

बैक्टीरियाके स्पोर्स (Spores)

जब संकट काल आता है तो कुछ बैक्टीरिया स्पोर्स (Spores) बनाते हैं। स्पोर जीवाणुओंके जीवन मूलके एक छोटे कठोर गोलाकार रूपमें एकत्र हो जानेको कहते हैं और यह एक छोटे बीजकी तरह जबतक कि भोजन, जलवाष्प और अन्य अनुकूल अवस्थामें प्रकट न हों विश्राम करता है और फिर अनुकुल अवस्थाओंके प्रकट होनेपर बड़ा होकर जीवाणु हो जाता है और अन्य जीवाणुओंकीतरह बढ़ता और पैदा होता है। इन स्पोर्सका नष्ट करना बड़ा कठिन है कुछ तो दस बरस सुखानेपर भी और घंटों उबालनेपर भी जीवित पाये गये हैं। सौभाग्यवश हम लोगोंको पीड़ित करनेवाले रोगोंमेंसे किसीके भी जीवाणु (germs) स्पोर्स (spores) नहीं पैदा करते और साधारण तापसे मर जाते हैं।
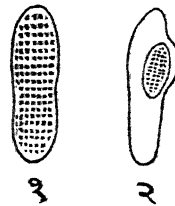
चित्र १३—स्पोर्स अर्थात् नाने।

———

*विज्ञान भाग ४, अङ्क ४, पृष्ठ १६६ देखिये।

विज्ञानके नियम

(१) यह पत्र प्रति संक्रान्तिको प्रकाशित होता है। पहुँचनेमें एक सप्ताहसे अधिक देर हो तो प्रकाशकको तुरन्त सूचना दें। अधिक देर होनेसे दूसरी बार विज्ञान न भेजा जायगा।

(२) वार्षिक मूल्य ३) अग्रिम लिया जायगा। ग्राहक होनेवालोंको पहले वा सातवें अंकसे ग्राहक होनेमें सुविधा होगी।

(३) लेख समस्त वैज्ञानिक विषयोंपर लिये जायँगे और योग्यता तथा स्थानानुसार प्रकाशित होंगे।

(४) लेख कागज़की एक ओर, कमसे कम चार अंगुल हाशिया छोड़कर, स्पष्ट अक्षरोंमें लिखे जायँ। भाषा सरल होनी चाहिए।

(५) लेख सचित्र हों तो यथा संभव चित्र भी साथ ही आने चाहिएं।

(६) लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्तनमें सामयिकपत्र और पुस्तकें, मूल्य, तथा सभी तरहके पत्र व्यवहारकेलिए पता—

सम्पादक 'विज्ञान' प्रयाग

विज्ञापन छपाईके नियम।

१—कवरपर प्रति पृष्ठ प्रति मास	...	...	१५)
प्रति पृष्ठ २ कालम	...	...	१०)
१ ,,	...	...	५)
आधा ,,	...	...	३)
आधे कालमसे कमका	...	...	२)

२—अस्वीकृत वज्ञापन लौटाया न जायगा। जो लोग लौटाना चाहें वह साथमें)॥ का टिकट भी भेज दें।

३—वज्ञापनकी छपाई सर्वथा पेशगी ली जायगी।

४—७) रुपयेसे कम दामका विज्ञापन छपानेवालेंको ।) प्रति कापी पत्रका मूल्य अधिक देना पड़ेगा।

५—वज्ञापन बँटाईकी दर क्रोड़पत्र देखकर बतायी जायगी।

६—अधिक कालकेलिए तथा अन्य बातें पत्र व्यवहार द्वारा तय करनी चाहिएँ।

निवेदक, मंत्री विज्ञान परिषत्,
प्रयाग।

विज्ञानका तीसरा, चौथा और पांचवां भाग

जो सज्जन विज्ञानके ग्राहक हैं, उन्हें प्रत्येक भाग केवल १।) रुपयेमें मिलेगा। केवल थोड़ी सी ही जिल्दें बाक़ी हैं। अतएव शीघ्र ही मंगाइये।

कुछ फुटकर अङ्क बचे हैं, =)॥ के टिकट आनेपर एक अङ्क भेजा जा सकता है।

पता—मंत्री विज्ञान परिषद्,
प्रयाग।

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग—दूधकी शुद्धता, बनावट, और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।), २-ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-), ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ॥), ४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -), ५-सनातनधर्म रत्नत्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धी ।), ६-कागज़ काम-रद्दीका उपयोग-) ७-केला—मूल्य -) ८-सुवर्णकारी—मूल्य ।)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छपरहे हैं। खेत (कृषिविद्या), कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगी सूत्र (ज्योतिष), रसरत्नागर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जारहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—गंगाशंकर पचौली—भरतपुर

हमारे शरीरकी रचना

कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसे अपने घरका पूरा पूरा हाल न मालूम होगा। पर ऐसे कितने मनुष्य हैं कि जिन्हें अपने असली घर (शरीर) का पूरा ज्ञान है। शरीरकी रचनासे पूरे परिचित न होनेके कारण हम अपने नित्य जीवनमें बड़ी बड़ी भूलें करते हैं और अपने स्वास्थ्यको बिगाड़ डालते हैं। अतएव यह परमावश्यक है कि हम अपने शरीरकी रचना भली भांति जानें। इसका सहज उपाय डा० त्रिलोकीनाथ रचित "हमारे शरीरकी रचना" नामक पुस्तक पढ़ना है।

पुस्तकमें २६८ पृष्ठ हैं और ५६ चित्र हैं। मूल्य केवल २।) ; विज्ञानके ग्राहकों और परिषद्के सदस्योंको २) रुपयेमें दी जायगी।

मिलने का पता—मंत्री—विज्ञानपरिषद्, प्रयाग।

सूचना

परिषद्का दूसरा साधारण अधिवेषण २६ जनवरी १९१८ को ५॥ बजे सायंकालको होगा।

प्रोफेसर प्रभू दास, एम. ए.,

'तार कोल और उससे बने पदार्थ' पर व्याख्यान देंगे। आशा है कि परिषद्के सभ्य, परिसभ्य और हितैषी पधारनेकी कृपा करेंगे।

निवेदक

सतीशचन्द्र देव, एम. ए.

महा मंत्री

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषद्- प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ३५   Reg. No. A- 708

भाग ६   कुम्भ, १९७४. February, 1918.   संख्या ५

Vol. VI.   No. 5

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)]   [१ प्रतिका मूल्य ।)

स्वर्गीय माननीय सर सुन्दर लाल, के-टी., बी. ए., एल-एल. डी., सी. आई. ई., राय बहादुर, विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रथम सभापति ।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग ६ } कुम्भ, संवत् १९७४। फरवरी, सन् १९१८। { संख्या ५

मंगलाचरण

जय जय वैज्ञानिक-भविष्य-भूषित भुवि भारत
सब-विधि-सुविधा-भरित, विविध विध भुवि-सेवा-रत
त्यों जगके सब सुजन सुखद-जीवन-पथ-नेता
वैज्ञानिक - साधन-सुयोग-प्रद उन्नत-चेता
त्यों अन्य अन्य भू-मातके धीर वीर गंभीर सुत
सब जीओ जयी जुगानजुग*जगत-अन्त लौं, जगत-नुत

श्रीपद्म-कोट
प्रयाग, २३-१-१८

—श्रीधर पाठक।

*जुगानजुग=युगानुयुग।

१—तेल क्या है?

[ले० श्री धीरेन्द्रनाथ सिंह एम० एस-सी०]
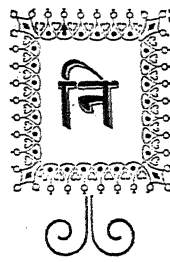
नित्य व्यवहारकी चीज़ोंमेंसे तेल भी एक ख़ास चीज़ है। भारतवर्षमें बहुत प्राचीन कालसे लोग तेलके विषयमें जानते और उसे काममें लाते हैं।

तिल शब्दसे ही तैल बना है। जान पड़ता है कि पहले पहल इसी तेलका व्यवहार अधिक हुआ। वानस्पतिक तेलोंके अतिरिक्त अन्य तेलोंसे यहांके लोग परिचित न रहे हों यह भी असंभव कल्पना है। मधुकैटभके मेदसे बननेके कारण इस धरतीको मेदिनी कहने लगे, यह पौराणिक कथा प्रसिद्ध ही है। संभव है कि इस कथाकी कल्पना पृथ्वीके गर्भमेंसे विविध मेदों और स्नेहोंके निकलनेसे की गई हो। आज भी मिट्टीके तेल और पाराफीन आदि पदार्थ खानिसे

Chemistry रसायन शास्त्र]

निकाले जाते हैं। निदान प्राचीन कालसे अब तक सभी तीन प्रकारके तेलोंसे परिचित हैं।

(१) खनिज जैसे मिट्टीका तेल, (२) वानस्पतिक जैसे नारियलका तेल, और (३) जान्तविक जैसे घी, धनेसका तेल आदि। यद्यपि जैसा आगे चल कर मालूम होगा, इन तेलों और स्नेहोंमें परस्पर बहुत अन्तर है, इनकी रचना भिन्न भिन्न है, इनमें अनेक पदार्थोंके बड़े विकट मिश्रण और यौगिक हैं, तथापि इनमें अधिकांश जलसे हलके, जलमें अत्यन्त कम घुलनेवाले, स्पर्शमें चिकने और प्रायः सहजमें ही जलनेवाले पदार्थ होते हैं। इन साधारण गुणोंको देख कर इन सबको तेल, स्नेह और मेद आदि नाम दिये गये।

वानस्पतिक स्नेह भी सब एक ही तरहके नहीं हैं। इनमें कमसे कम दो प्रकार तो अवश्य ही हैं। एक प्रकार है जैसे तारपीनका तेल कि काग़ज़पर टपकाकर धूपमें रखें तो चिकनाईका दाग़ मिट जाता है, दूसरा जैसे अलसीका तेल कि कितना ही धूप दिखाइये दाग़ नहीं मिटता। इस भेदका कारण दोनों वस्तुओंका भिन्न भिन्न रासायनिक संगठन है। इस निबंधमें वानस्पतिक तेलोंके उसी रूपकी चर्चा विस्तारसे की जायगी जिसका धब्बा धूपसे नहीं उड़ता। साथ ही जन्तुओंके शरीरसे निकलनेवाले स्नेहोंकी भी चर्चा होगी।

तेल कोई मौलिक पदार्थ नहीं है, वस्तुतः अनेक तत्वोंका यौगिक है। इसके संगठनमें अंगार (कोयला) वा कर्बनका भी अंश होनेसे इसे रासायनिक परिभाषामें "आंगारिक यौगिक" कहेंगे। प्रायः सभी तेल कोई एक विशेष यौगिक नहीं हैं वरन कई यौगिकोंके मिश्रण हैं।

इस निवन्धके पढ़नेवालोंके सुभीतेके लिए रसायनके कुछ अत्यावश्यक सिद्धान्त हम यहां संक्षेपसे वर्णन करते हैं।

परमाणुवाद और युयुत्ता

समस्त विश्व परमाणुओंसे बना हुआ है। परमाणु ऐसे छोटे अंशको कहते हैं जिसके टुकड़े नहीं हो सकते (और यदि हो सकें तो वस्तुकी सत्ता ही नहीं रह जाती)। परमाणु भिन्न भिन्न होते हैं। जिन पदार्थोंमें सभी परमाणु एक ही प्रकारके होते हैं, मौलिक कहलाते हैं, जैसे सोना, चांदी, गंधक आदि ठोस, पारा, ब्रम आदि द्रव तथा उज्जन, ओषजन आदि वायव्य वा गैस। जिन पदार्थोंमें दो या कई तरहके भिन्न भिन्न परमाणु ऐसे जुड़े होते हैं कि मिलनेवाले परमाणुओंके गुणोंसे एक दम भिन्न गुण उपस्थित होते हैं, यौगिक कहलाते हैं, जैसे मकरध्वज जो पारा और गंधकका यौगिक है परन्तु दोनोंमेंसे एकके गुण और धर्म्म भी मकरध्वजमें दिखाई नहीं पड़ते। स्पष्ट है कि मकरध्वजके छोटेसे छोटे टुकड़े किये जायं तो एक ऐसा छोटा टुकड़ा मिलेगा जिसमें एक परमाणु गंधकका और एक परमाणु पारेका रह जायगा। इस टुकड़े तक ही मकरध्वजकी सत्ता है। इसे मकरध्वजका एक अणु कहते हैं। इस अणुके टूटते ही मकरध्वजकी सत्ता नहीं रहती, वरन पारेका परमाणु अलग और गंधकका अलग हो जाता है। स्पष्ट हुआ कि यौगिकके सबसे छोटे कणका नाम अणु है।

आंगारिक यौगिकोंपर विचार करते समय इतना जान लेना आवश्यक है कि इन यौगिकोंमें प्रायः उज्जन, ओषजन और कर्बन इन्हीं तीन मौलिकोंका भिन्न भिन्न परिमाणोंमें योग रहता है। पहले दो प्रसिद्ध वायव्य हैं और कर्बनका लोकप्रसिद्ध रूप कोयला है और बहुत शुद्ध रूप हीरा है। रसायन शास्त्रियोंने अबतक चौरासीके लगभग मौलिकोंका पता लगाया है। इनमेंसे आंगारिक रसायनमें विशेषतः इन तीनका तथा गंधक, नत्रजन और स्फुरका काम पड़ा करता है। इनके लिए यदि क्रमशः उ, ओ, क, ग, न, फ इन अक्षरोंका व्यवहार करें तो $उ_2$ से उज्जनके दो परमाणु, $क_3$ से कर्बनके तीन परमाणु $न_3$ से नत्रजन के

तीन परमाणु समझे जायँगे। यदि अंक इन सांकेतिक अक्षरोंकी बायीं ओर बराबरमें रक्खे जायँ तो अणु की संख्या प्रकट करेंगे, जैसे २ $\text{उ}_{२}$ ओ का अर्थ हुआ ऐसे दो अणुओंका समूह जिनमें प्रत्येकमें उज्जन के दो और ओषजनका एक परमाणु हो। यह वस्तुतः जलके दो अणुओंका द्योतक है क्योंकि जलके प्रत्येक अणुमें दो परमाणु उज्जनके और एक ओषजनका युक्त है। इस लेखन रीतिसे समीकरण इस प्रकार लिख सकते हैं:--

$$२\,\text{उ}_{२} + \text{ओ}_{२} = २\,\text{उ}_{२}\,\text{ओ}$$

जिसका अर्थ यह हुआ "उज्जन के दो दो परमाणुवाले दो अणु, ओषजनके दो परमाणुवाले एक अणुसे युक्त हुए और २ $\text{उ}_{२}$ ओ अर्थात् जल के दो अणु बने जिन में से प्रत्येक में उज्जनके दो परमाणु और ओषजनका एक संयुक्त है।" रसायन शास्त्रमें इसी प्रकार सांकेतिक चिह्नों, गुरों और समीकरणोंसे विस्तारको संक्षेपमें व्यक्त किया करते हैं।

प्रकृतिमें एक अद्भुत चमत्कार है। परमाणुओंमें परस्पर मिलनेकी बड़ी प्रबल इच्छा होती है। सजातियों और विजातियों दोनोंमें ही मेल होता है। सजातियोंसे मिलनेकी इच्छा प्रायः उतनी प्रबल नहीं होती जितनी विजातियोंसे मिलनेकी। यह प्रत्येककी शक्तिपर निर्भर है, इस इच्छा वा प्रवृत्तिको हम "युयुत्सा" कहेंगे और शक्तिको "योग शक्ति"। कभी एक विशेष जातिका परमाणु किसी विशेष जातिके एक ही परमाणुसे मिल सकता है, किसी विशेष जातिके परमाणुमें दोसे मिलनेकी शक्ति होती है, किसीमें तीन, चार वा पांच से। निदान योगशक्ति भिन्न भिन्न परिमाणमें हुआ करती है। इस बातपर भी विचार करना आवश्यक है।

प्रत्येक परमाणुमें भार भी होता है। एक जातिके परमाणु भारमें समान होते हैं। उज्जनका परमाणुभार सबसे कम है, इसीलिए इसे ही परमाणुभारका प्रमाण मानते हैं। उज्जनका परमाणुभार एक हुआ तो कर्बनका १२, नत्रजनका १४, ओषजनका १६, स्फुरका ३१, गंधकका ३२। इसी प्रकार "योग शक्ति" की नाप भी उज्जनसे ही की जाती है। उज्जनकी योगशक्ति भी सबसे कम है। अतः इसकी योगशक्ति एक मानी गयी। ओषजनकी इस तरह दो हुई, क्योंकि ओषजनका एक ही परमाणु उज्जनके दो परमाणुओंको मिला लेता है, जिससे जलकी उत्पत्ति हो जाती है। नत्रजनकी तीन और पांच दो शक्तियां हैं। स्फुरकी भी तीन और पांच हैं। कर्बनकी योगशक्ति चार है। गंधककी २, ४ और ६ भी है।

आंगारिक रसायनमें कर्बनकी योगशक्ति बड़े महत्वकी है, अर्थात् कर्बनका एक परमाणु उज्जनके ही चारसे, ओषजनके ही दोसे अथवा उज्जनके दो और ओषजनके एकसे मिल सकता है, तात्पर्य यह कि उसकी योगशक्ति ४ है। अतः किन्हीं चार योगशक्तियोंसे उसका मेल संभव है। इस बातको रेखा बन्धनोंसे यों व्यक्त करते हैं।

```
      उ
      |
उ — क — उ
      |
      उ
```

$= \text{क}\,\text{उ}_{४}$ एक प्रकार की दलदलेकी गैस है जिसे कर्बन चतुरुज्जिद कहते हैं। यह मिट्टीके तेलका महापितामह है, जिसे मिथेन भी कहते हैं।

```
      उ    उ
      |    |
उ — क — क — उ
      |    |
      उ    उ
```

$= \text{क}_{२}\,\text{उ}_{६}$, यह मिथेनका पुत्र इथेन है।

इन दो उदाहरणोंसे स्पष्ट होगा कि अपनी योग शक्तिका प्रयोग कर्बन अपने सजातीय कर्बनसे भी उसी प्रकार करता है।

```
ओ ═ क ═ ओ
```

$= \text{क}\,\text{ओ}_{२}$, यह कर्बनद्विओषिद है, जिसे जलमें दबाकर घोलनेसे सोडावाटर बनता

है। ओषजनकी शक्ति दो है, कर्बनकी ४, अतः क के एक परमाणुसे ओ के दो परमाणु मिले।

आंगारिक यौगिकोंमें (hydrocarbons) कर्बोज्ज, (carbohydrates) कर्बोद, (carbolic acids) कर्बौषाम्ल, (hydroxides) उज्जौषिद आदि अनेक पदार्थोंका वर्णन इस निबन्धमें अधिक आवेगा। अतः इनकी व्याख्या भी कर देना आवश्यक है। मिथेन, इथेन आदि कर्बोज्जोंके उदाहरण हैं, इनमें कर्बन-उज्जन दोका ही मेल है। कर्बोदोंमें कर्बनके साथ उज्जन-ओषजन ऐसे मिले होते हैं कि उज्जन परमाणुओंकी संख्या ओषजनकी दूनी होती है, अर्थात् "उद" वा जल बन जानेकी योग्यता होती है। कर्बौषाम्ल आंगारिक अम्लोंको कहते हैं, जिनमें कर्बनके साथ दो ओषजन और एक उज्जन मिलकर असंयुक्त-समूह बनाते हैं जिनमें एक योगशक्ति असंपृक्त अर्थात् युज्य है। इन अम्लोंमें इस समूहकी संख्या कमसे कम एक अवश्य होती है।

जैसे सिरकाम्ल का संक्षिप्त रूप यह है—

क $उ_३$ क ओओउ,

निदान जितने कर्बौषाम्ल हैं सबमें—कओओउ का होना अत्यावश्यक है।

इसमें रासायनिक क $उ_३$ को भी असंयुक्त समूह मानते हैं क्योंकि इसमें कर्बनकी एक योगशक्ति किसी परमाणु वा समूहसे मिलनेको उत्सुक है। अतः क $उ_३$ और क ओ ओ उ यह दो समूह मिलकर सिरकाम्ल रचना करते हैं। इन समूहोंका संयोग वियोग हो सकता है, इसीलिए रासायनिकोंने इनकी कल्पना की है। वस्तुतः इन समूहों की कोई स्वाधीन सत्ता नहीं पायी गयी है।

थोड़ी देरकेलिए पाठक फिर मिथेन तथा इथेनकी रचनापर विचार करें।

```
   उ                                      उ
   |                                      |
उ— क —उ में अंतिम "उ" के स्थानमें क —उ समूह
   |                                      |
   उ           उ    उ                     उ
               |    |
जोड़ दें तो उ— क — क —उ वा (क उ₃)×२ वा
               |    |
               उ    उ
```

क₂ उ₆ बन जाता है जिसे हम इथेन कह आये हैं। अब इथेनकी शृङ्खलामें यदि हम अन्तिम "उ" के

```
              उ
              |
स्थानमें और एक —क— उ का समूह जोड़ दें तो
              |
              उ

     उ    उ    उ
     |    |    |
उ — क — क — क — उ
     |    |    |
     उ    उ    उ
```

प्रपेन नामक एक पदार्थका रूप बन जाता है जिसका संक्षिप्त रूप $क_३ उ_८$ है। इसी प्रकार शृङ्खला बढ़ाते जायँ तो $क_४ उ_{१०}$, $क_५ उ_{१२}$, $क_६ उ_{१४}$... इत्यादि असंख्य रूप बन सकते हैं, परन्तु असंख्य तो नहीं पर ६० की संख्या तकके पदार्थ जो मिट्टीके तेलोंके वंशके मोम हैं अबतक जाने गये हैं। गुरुके रूपमें बीज गणितकी रीतिसे हम इस वंशके प्रत्येक व्यक्तिके रूपको यों व्यक्त कर सकते हैं, यदि "न" को कर्बनके परमाणुकी संख्या मान लें

$$क_न \quad उ_{२न+२}$$

इस वंश मात्रका नाम पाराफीन है और इसका नामकरण "एनान्तक" है, अर्थात् मूल पुरुषका नाम मिथेन, उससे इथेन, इथेन से प्रपेन प्रपेन से मखेन, मखेन से पंचेन, पंचेन से षडेन, इसी प्रकार सप्तेन, अष्टेन, नवेन, दशेन, एकादशेन, द्वादशेन, त्रयादशेन ... ... विंशेन, ...

त्रिंशेन, एकत्रिंशेन, द्वात्रिंशेनादि नाम हैं जो कर्बन-परमाणुकी संख्याके द्योतक हैं, जैसे द्वात्रिंशेन-का रूप है $क_{32} उ_{66}$ ।

जैसे शृंखलाबद्ध पाराफेनकी वंशपरम्परा है उसी तरह तैलफीन्‌की भी वंशपरम्परा है ।

इसका मूलपुरुष एथिलीन है जिसका रूप $क_2 उ_4$ है। इस शृंखलामें मूल $क उ_2$ भी हो सकता था परन्तु वस्तुतः $क उ_2$ की कोई स्वाधीन सत्ता नहीं है। एथिलीन एक गैस वा वायव्य है, जो धुआं देकर जलता है। उसकी शृंखला-में एक कर्बन परमाणुकी दो योग शक्तियां दूसरे कर्बन परमाणु की दो योग शक्तियोंसे मिली होती हैं। इस शृंखला-मे भी बराबर $= क उ_2$ की वृद्धिसे उत्तरोत्तर वंशज बनते जाते हैं। इनका गुरु $क_न उ_{2न}$ है। अनेक स्नेहाम्ल इसी वंशके हैं। इनका नामकरण भी "ईनान्तक" होता है। अर्थात् एथीन, प्रपीन, मखीन, पंचीन, षडीन, सप्तीन, अष्टीन, इत्यादि। रूप रचना तो अनन्त हो सकती है पर ३० कर्बन परमाणुतकके तैलफीन जाने गये हैं।

```
उ   उ
|   |
क = क
|   |
उ   उ
```

इसी तरहकी वंश परम्पराएं और हैं—असिटलीन, बेंजीन, नफथलीन, अंथ्रसीन आदि जिनकी चर्चा करनेकी यहां आवश्यकता नहीं है।

इन वंशोंमें बड़े आश्चर्य्यजनक और अद्भुत गुण हैं। एक प्रकारके परमाणु वा समूह दूसरे प्रकारके परमाणु वा समूहसे सहज ही बदले भी जा सकते हैं और अन्य जातिके यौगिकोंकी उत्पत्ति हो सकती है, जैसे मिथेनके एक उज्जनके स्थानमें ओउ का समूह सन्निविष्ट कर दिया जाय तो अलकोहल जातिका मूल पुरुष बन जाता है जो विशेष प्रकारके गंधका एक द्रव होता है। इसे $क उ_3$ ओउ लिख सकते हैं और मेथिल अलकोहल कहते हैं। साधारण स्पिरिट वा शराब एथिल अलकोहल (मद्यसार) का जलीय मिश्रण है। उसका रूप है $क_2 उ_5$ ओउ

```
    उ   उ
    |   |
उ — क — क — ओ
    |   |
    उ   उ
```

इसी प्रकार ओउ समूहके ओउ के साथ विनिमयसे अनेक अलकोहल बनते हैं जिनमेंसे बहुतेरोंका निर्म्माण और प्रयोग रासायनिक किया करते हैं। ग्लिसरीन भी एक अलकोहल है जिसका रूप है $क_3 उ_5 (ओउ)_3$

मिथेनके किसी उज्जनको यदि ओउ के बदले क ओ ओउ समूहसे बदल दें तो कर्बौषाम्लों की जातिका एक यौगिक बन जाता है। इसका रूप होगा "$क उ_3$ क ओ ओउ" यही सिरकाम्ल है। इसी प्रकार अनेक कर्बौषाम्ल हैं जिनका वर्णन आगे आयेगा।

अलकोहल और कर्बौषाम्ल यदि मिल जायँ तो कर्बौषाम्लके अन्तिम "उ" का स्थान अलकोहलका मूल अंश ले लेता है और उसके "ओउ" के साथ स्थानच्युत "उ" मिलकर $उ_2$ओ अर्थात् जलकी रचना करता है।

$क उ_3$ क ओ ओ उ + $क_5 उ_5$ ओ उ
(सिरकाम्ल) (मद्यसार)

= $क उ_3$ क ओ ओ $क_2 उ_5$ + $उ_2$ ओ
(एथिलसिरकेत) (जल)

एथिलसिरकेत न तो अम्ल है न अलकोहल; वरन ऐक द्रव है जिसमेंसे फलोंका सा सुगन्ध निकलता है। इस प्रकारके यौगिकोंको एस्टर कहते हैं। कई तेल आदि एस्टर जातिके हैं जिनका अलकोहल "ग्लिसरीन" है अर्थात् जिनके साथ ग्लिसरीनका मूल अंश युक्त है।

जिस तरह क्षार और अम्ल मिलकर लवण बनाते हैं, (जैसे सज्जीक्षार और उज्जहरिद वा लवणाम्ल मिलकर साधारण नमक बन जाता है जो न क्षार है न अम्ल) उसी तरह अलकोहल और कर्बौषाम्ल मिल कर एस्टर बनते हैं। क्षार कर्बौषाम्लके मिलनेसे भी जो पदार्थ बनते हैं, लवण कहलाते हैं। इस तरह साबुन एक प्रकारका लवण है जो तैलाम्ल और सज्जीक्षारके संयोग बनता है।

आंगारिक रसायनका इतना अंश इस निबन्ध-के पढ़नेवालोंको समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि वैज्ञानिक विवरणमें इनकी चर्चा अनेक बार आवेगी।

सम्प्रति साधारण तेलोंके विषयमें जो वनस्पतियोंसे प्राप्त होते हैं स्थूलरूपसे हम यह कह सकते हैं कि यह सभी एस्टर जातिके हैं जिनमें अलकोहल मूल "ग्लिसरीनका" है और कर्बौषाम्ल भी कोई न कोई स्नेहजनक अम्ल होता है। स्नेहजनक अम्लोंमें (crotonic) कनिकाम्ल, (palmitic) खजूराम्ल, (Stearic) वसाम्ल आदि कर्बौ षाम्ल होते हैं। इनका नाम ग्लिसरिल कनिकेत आदि होते हैं।

यह विवेचना रासायनिक तैलोंकी हुई। प्राकृतिक अवस्थामें तेलोंमें कुछ रंग और गंध अवश्य पाया जाता है जो प्रायः सभी हालतोंमें कुछ और वस्तुओंके मिले जुले रहनेसे होता है। रासायनिक दृष्टिसे शुद्ध तैलमें गंध और रंग न पाये जाने चाहियें, पर यह बात सर्वथा ठीक नहीं। किसी किसी विशेष अवस्थामें यह तेल कुछ और यौगिकोंके भी मौजूद होनेके कारण गंधमय होते हैं;जैसे नीम और सरसोंके तैलमें गंधका कारण यह है कि उनके रासायनिक शरीरकी रचनामें गंधक भी एक आवश्यक अंग है।

क्या भूख भी नापी जा सकती है ?

एक अमेरिकन विज्ञानवेत्ताने एक बहुत ही सरल यन्त्र बनाया है जिससे इस बातका भली भांति पता लगाया जा सकता है कि भूख क्या है, क्यों लगती है और किन किन कारणोंसे यह तीक्ष्ण हो जाती है अथवा मन्द पड़ जाती है। आज हम विज्ञानके पाठकोंको इस यंत्र तथा इसके द्वारा की हुई परीक्षाओंके सम्बन्धमें कुछ बतलाना चाहते हैं। इसका विस्तार सहित वर्णन आविष्कारक महाशयने एक पुस्तकमें किया है जिसका नाम है The control of hunger in health and disease अर्थात् 'स्वास्थ्य तथा रोगमें क्षुधाका संयम'। यह पुस्तक शिकागोके विश्व-विद्यालयने प्रकाशित की है और इसके रचयिता तथा यंत्रके आविष्कारक हैं डाक्टर ए० जे० कार्लसन।

कार्लसन महाशयने अपने यंत्रके द्वारा भूखके सम्बन्धमें जो परिणाम निकाले हैं वह यह हैं—

(१) भोजनके अभावसे मनुष्योंको बे खाये पीये रहते हुए ज्यों ज्यों दिन बीतते हैं भूख मन्द पड़ती जाती है।

(२) पेट कस कर बांध दिया जाय तो भूख-की पीड़ा शान्त हो जाती है।

(३) तम्बाकू तथा सिगरेट इत्यादिके पीने-से भूख कम पड़ जाती है।

(४) व्यायाम करने तथा ठंडे पानीसे स्नान करनेपर भूख बढ़ती है। नीचे जो कुछ लिखा जाता है वह डाक्टर कार्लसनकी पुस्तक सम्बन्धी उस लेखसे लिया गया है जिसे डाक्टर हरमैन ड्यौशने (Deutsch) शिकागोसे प्रकाशित जूनके 'इलस्ट्रेटेड वर्ल्ड' (Illustrated world) में लिखा था। डाक्टर ड्यौश लिखते हैं—

डाक्टर कार्लसनने कुछ प्रयोगों द्वारा भूखके संकुचन प्रसारनको इतनी शुद्धतापूर्वक जान लिया है कि यदि वह गैलीलियोके समयमें जीवित होते तो जादूगरोंकी नाईं आगमें जला दिये जाते। इन्होंने बड़ी ही सावधानीसे मालूम कर लिया है कि पाकस्थलीके संकुचन प्रसारनका परिमाण और दबाव मानव शरीरकी भिन्न भिन्न अवस्थाओं-में जैसे सोते हुए, जागते हुए, स्वस्थ, अस्वस्थ, पेट भर खाये हुए अथवा भूखसे छटपटाते हुए मनुष्यों तथा अभीके पैदा हुए बच्चों, ऊंची और नीची श्रेणीके कुत्तों, खरगोशों, सूअरों, कबूतरों, कछुओं, मेढकों तथा सांपोंमें कितना होता है।

Physiology शारीर शास्त्र]

दोहरी दीवालोंवाली रबड़की थैलीकी दोनों दीवालोंके बीच विस्मथकी लेई (Bismuth paste) रख कर और थैलीको पाकस्थलीमें घुसेड़कर इन्होंने इसके हिलने डोलनेको सचमुच देख लिया है और 'एक्सरे' के द्वारा उसका चित्र भी उतार लिया है। यह जाननेकेलिए कि पाकस्थलीकी भीतरी दीवालमें छूनेकी चेतनता (sensitiveness) कहां-तक है डाक्टर महाशयने बड़े कड़े ब्रुशको पेटमें घुसेड़कर उसको अच्छी तरह पोंछडाला था और यह जाननेकेलिए कि कई दिनोंतक बिना अन्न-जल भूखा रहनेपर पाकस्थलीकी क्या दशा हो जाती है यह स्वयम् कई दिनोंतक भूखे प्यासे रहे।

ठंडे पानीसे नहानेपर शरीरकी दशा क्या होती है यह जाननेके लिए ऐसे पानीमें जिसका तापक्रम हिमांकसे कुछ ही अंश अधिक गरम था डाक्टर महाशय उतनी देरतक पड़े रहे जितनी देरतक डूबे रहनेमें विशेष हानिकी सम्भावना नहीं समझी गयी, यद्यपि ऐसा करनेमें उन्हें बड़ा कष्ट और पीड़ा सहनी पड़ी। शुद्धताके साथ इन्होंने यह भी नाप लिया है कि तम्बाकू पीनेसे भूखपर क्या प्रभाव पड़ता है और पेट कसकर बांध लेनेपर क्या दशा होती है।

ऐसी परीक्षा कैसे की जा सकती है? यदि भूख केवल एक प्रकारका क्षुधाज्ञान (feeling of hunger) ही है तो यह ठीक ठीक कैसे नापी जा सकती है? विविध प्रयोगोंके करनेमें डाक्टर कार्लसनने जिस साधारण रीतिको ग्रहण किया था वह यह है—

जिसको परीक्षा की जाती है उसको रबड़की एक थैली जिसमें रबड़की ही एक लचकदार नली लगी रहती है निगलना पड़ता है। जब थैली पाकस्थलीमें पहुंच जाती है तब हवा भर कर फुलायी जाती है और रबड़-नली U ('यू')के आकारकी कांचनलीके एक सिरेमें लगा दी जाती है। इस यू-नलीमें एक द्रव भरा रहता है जो साधारणतः क्लोरोफार्म अथवा ब्रोमोफार्म होता है। यू-नलीके दूसरे भुजमें द्रवतलपर एक प्लव (float) रहता है जिसपर एक सीधी डंडी खड़ी लगी रहती है और इस डंडीके ऊपरी सिरेपर एक अंकी (marker) लगा रहता है। यह अंकी एक कागज़को (recording surface) छूते हुए रखा जाता है जो घुमने (revolving) ढोलपर लपेटा रहता है। जैसे जैसे ढोल घूमता है अंकीसे कागज़पर सीधी भूतल-समानान्तर (horizontal) रेखा बनती जाती है। परन्तु जब पाकस्थली सिकुड़ती है थैली दब जाती है, जिससे इसके भीतरकी हवा बाहर निकलना चाहती है और यू-नलीका द्रव उस भुजमें चढ़ने लगता है जिसमें प्लव और अंकी लगे हुए हैं जिससे प्लव तथा अंकी उठ जाते हैं और ज्यों ज्यों ढोल घूमता है कागज़पर ऊपर चढ़ती हुई एक वक्र रेखा खिंचने लगती है। इस प्रकार पाकस्थलीके प्रत्येक संकुचनसे निश्चित चिन्ह बन जाते हैं जिनसे यह भी जान पड़ता है कि संकुचन कितनी देरतक रहा और धीमा था वा प्रबल।

डाक्टर कार्लसनका एक रोगी बचपनमें दैववश कास्टिक सोडेका गाढ़ा घोल अचानक पी गया। इससे उसकी अन्नवाहिनी नली (esophagus) बंद हो गयी और पेटमें भोजनका पहुंचना कठिन हो गया। इस कारण उसके पेटमें छेद्-करके तीन-चौथाई इंच मोटी लचकदार रबड़ नलीके द्वारा सारा भोजन पहुंचाया जाने लगा। इसी नलीके द्वारा डाक्टर कार्लसन उसके पेटके भीतर विद्युत प्रकाश डाल कर पेटकी अच्छी तरह जांच कर सके हैं। डाक्टर घोश कहते हैं—

'भूख लगने पर हमारी जो दशा होती है वह इन प्रयोगोंके अनुसार यों है—जैसे ही पेट खाली हो जाता है दुर्बल वा धीमे संकुचन होने लगते हैं जो धीरे धीरे प्रबल हो जाते हैं। साधारणतः प्रत्येक संकुचनमें तीस सेकंड लगते हैं और सारा संकुचन-काल तीससे पैंतालीस मिनटका होता है। पहले पहल प्रत्येक दो संकुचनके बीच २ से ५ मिनटका अन्तर पड़ता है पर अन्तमें

जब यह प्रबल हो जाते हैं तब एकके बाद दूसरा तुरन्त आरम्भ हो जाता है। प्रौढ़ और बलवान व्यक्तियोंमें यह संकुचन अन्तमें इतनी शीघ्रतासे होते हैं कि कई मिनटतक एक ही संकुचन अविच्छिन्न सा बना रहता है जिसको 'धनुष्टङ्कार' (tetanus वा cramp) कहते हैं। इसीको 'क्षुधावेदना' भी कहते हैं।

'यही संकुचनकाल क्षुधाकाल होता है और प्रत्येक संकुचनको क्षुधा-यातना (hunger pang) कहते हैं। स्वस्थ युवकोंमें यह क्षुधाकाल आध घंटेसे ढाई घंटेतकका अन्तर देकर आते हैं। बच्चोंके क्षुधाकालका भी निर्णय कार्लसन महोदयने इसी रीतिसे किया है, जिससे जाना गया है कि उनमें यह काल कई बार आते हैं और कभी कभी तो बच्चे बेचैन हो जाते हैं, जाग पड़ते हैं और रोने लगते हैं।'

इसमें तो कोई संदेह ही नहीं है कि पेटके इन्हीं संकुचनोंसे क्षुधाका बोध होता है। जिन मनुष्योंके साथ प्रयोग किया गया है उनसे मालूम हुआ है कि ठीक उसी समय घुमनेढोलमें संकुचनके अंक बनने लगते हैं जिस समय क्षुधाका बोध होना आरम्भ होता है और यह दोनों क्रियाएं साथ साथ होती रहती हैं। ऐसा भी हुआ है कि जब जब डाक्टर कार्लसनने कृत्रिम संकुचन उत्पन्न किये तब तब परीक्ष्य मनुष्यको जान पड़ता था कि भूख लग रही है।

डाक्टर कार्लसनने एक बात बड़े मार्केकी बतलायी है कि क्षुधा और क्षुधाकी लालसामें भेद है। क्षुधाकी लालसा तो यादकी बात है। अच्छी अच्छी स्वादिष्ट खायी हुई वस्तुओंकी याद आ जानेसे स्वभावतः यह इच्छा होती है कि वैसी ही वस्तुएं फिर खानेको मिलें। भोजनमें रुचि उत्पन्न करनेवाली वस्तुएं इसीके द्वारा अपना काम करती हैं। अब तक लोगोंका साधारण विश्वास यह रहा है कि इन वस्तुओंसे भूखके संकुचन प्रबल हो जाते हैं, परन्तु वास्तवमें बात उलटी है। डाक्टर कार्लसन तो कहते हैं कि इनसे संकुचन कुछ देरके लिए रुक जाते हैं परन्तु ऐसी रुचि उत्पन्न हो जाती है जिससे इच्छा होती है कि मिले तो और खायं।

प्रत्येक मनुष्यको क्षुधा पीड़ितोंके दुःखकी कहानी सुननेका अवसर मिला होगा और यह भी मालूम हुआ होगा कि ऐसी अवस्थामें भोजन पानेकी बड़ी ही प्रबल इच्छा होती है। डाक्टर कार्लसन और उनके एक सहायकने केवल यह जाननेकेलिए पांच दिन तक कुछ भोजन नहीं किया कि ऐसा करनेसे क्षुधाके संकुचनपर क्या प्रभाव पड़ता है। यह सच है कि भोजनाभावकी दशामें क्षुधाके संकुचन कुछ बढ़ जाते हैं क्योंकि प्रयोगोंके अंक ऐसा ही सिद्ध करते हैं। परन्तु पहले तीन दिनके बाद भोजनकी इच्छा कम हो जाती है और कभी कभी तो ऐसी दशा हो जाती है कि भोज्य पदार्थोंको देखनेसे ही घृणा होती है। प्रयोगके इस उपवास-कालमें जो कुछ कष्ट हुआ था वह पहले ही बारके भोजन करनेमें दूर हो गया और इसके बाद दूसरे ही दिन उनको मालूम पड़ता था मानो वह एक मासकी छुट्टीमें पहाड़ोंपर सैरके लिये गये हुए थे।

क्षुधाकी प्रबलताकी जांच यदि निश्चित रूपसे की जा सकती है तो इस बातका ठीक ठीक पता चलाना सम्भव हो जाता है कि विविध वस्तुओंका प्रभाव क्षुधाबोधके सम्बन्धमें कैसा पड़ता है। कार्लसनने यह देख लिया कि पेटके पुट्ठोंपर (abdominal muscles) दबाव डालनेसे पाकस्थलीके संकुचन रुक जाते हैं और भूख बुझ जाती है। यही कारण है कि लोग भूखकी असह्य वेदनाको कम करनेकेलिए पेट कसकर बांध लेते हैं। भूखके कम मालूम होनेका दूसरा कारण यह है कि पेट कसकर बांधनेसे और अंगोंमें जो पीड़ा होने लगती है उसकी ओर ध्यान चला जाता है; तथा पेटभर दबाव पड़नेसे ऐसा मालूम पड़ता है मानों पेट भरा हुआ है।

डाक्टर महोदयने यह भी देखा है कि तम्बाकू वा सिगरेट पीनेसे क्षुधाके संकुचन रुक जाते हैं। जिनको तम्बाकू पीनेका अभ्यास नहीं है उन लोगों-में ऐसा प्रभाव विशेषतः दीख पड़ता है। दिन रातके पीनेवालोंमें क्षुधाके संकुचन उस समय मन्द पड़ते हैं जिस समय इनका सेवन अत्याधिक मात्रामें किया जाता है।

इसी तरह यह भी जाना गया है कि व्यायामसे या देरतक ठंडे पानीमें स्नानसे भूख बढ़ जाती है यद्यपि वह आवश्यक नहीं है कि इनसे भूखके संकुचन भी बढ़ जायं। हां, इनसे स्नायविक उत्ते-जना अवश्य बढ़ जाती है जिससे मनुष्यको भूख-का बोध साफ़ साफ़ होने लगता है।"

इन प्रयोगोंके प्रकाशमें इसका ढूंढ़ निकालना सहज है जो लोगोंके मुखसे बहुधा कहते हुए सुना जाता है कि गरीबीमें भूख अधिक लगती है और खानेका सामान भरा रहनेपर भूख कम हो जाती है।

—महाबीरप्रसाद।

चन्द्रमाका आदि और अवसान

[अनु० श्रीयुत सत्यभक्त जी]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

इस विषयके भली भांति समझनेके-लिए गणितकी सहायताकी बहुत आवश्यकता है, पर यहांपर उस-की सहायताके विना जो कुछ समझा जा सकता है उसीका वर्णन किया जायगा। इस गम्भीर वैज्ञानिक अन्वेषणका मूल एक अत्यन्त साधारण घटना है। जो मनुष्य कभी समुद्रके किनारे गये हैं उन्होंने देखा होगा, कि समुद्रका जल प्रति बारह घंटेमें एक बार ऊंचा चढ़ता है, और दूसरी बार नीचे उतरता है। बोल चालमें उसको ज्वारभाटा कहते हैं। पानीका यह उतार चढ़ाव केवल समुद्रमें ही नहीं होता, वरन नदियों-में भी बहुत दूर तक मालूम पड़ता है।

इस ज्वार भाटेका कारण सूर्य्य और चन्द्रमा-का आकर्षण है। पर चन्द्रमा पृथ्वीके बहुत पास है, इसीलिए उसका आकर्षण सूर्य्यकी अपेक्षा बहुत अधिक है। पृथ्वी और उस परके जलको चन्द्रमा अपनी ओर खींचता है। पृथ्वीका स्थल भाग कठिन है अतः उस पर आक-र्षणका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। पर जलकी अवस्था भिन्न है, वह आकर्षणके कारण चन्द्रमाके नीचे इकट्ठा होकर ऊंचा उठ जाता है। उसके साथ ही ठीक उससे विपरीत दशाका जल भी उसी प्रमाणमें ऊंचा उठता है। जलके विपरीत दशामें बढ़नेका कारण यह है कि चन्द्रमा स्थल और जल दोनोंको खींचता है। पर स्थलका गुरुत्व अधिक है इससे उसको अधिक जोरसे खींचता है। उसके फलसे पृथ्वी चन्द्रमाकी ओर कुछ बढ़-कर उसके विपरीत ओरवाले जलको ऊंचा कर देती है।

इस प्रकार मालूम हुआ कि चन्द्रमाके आक-र्षणके कारण उसके नीचे दोनों ओरका जल ऊंचा चढ़ता है, और दोनों बगलोंका जल नीचा हो जाता है।

चन्द्रमाके खिचावके कारण जल एक स्थान-पर एकत्रित होनेकी चेष्टा करता है। पर पृथ्वी अपने नियमानुसार सदा घूमती ही रहती है। इसलिए पृथ्वीके साथ उसके ऊपरवाले जलका निरन्तर घर्षण होता रहता है, ठीक उसी प्रकार जैसे रेलके पहियेमें ब्रेक लगाई जाती है। जिस प्रकार रेलगाड़ीको ठहरानेके लिए उसके घूमने-वाले पहियेको दोनों ओरसे दो लौहखण्ड दबा देते हैं, और उसके कारण उसका घूमना बन्द हो जाता है, उसी प्रकार चन्द्रमा घूमती हुई पृथ्वी-पर जल रूपी ब्रेक कसा करता है। ऐसी अवस्था-में रेलगाड़ीके पहियेकी भांति पृथ्वीके घूमनेका

* सूर्यका प्रभाव चन्द्रमा की अपेक्षा प्रायः आधा है—सं०

वेग भी क्रमशः घटता जायगा। हां, दोनोंमें इतना अंतर अवश्य है कि रेलका पहिया कुछ मिनिटमें ही घूमनेसे रुक जाता है, और पृथ्वीका घूमना रुकनेके लिए करोड़ों वर्षकी आवश्यकता है।* इस कार्यमें कितने करोड़ वर्ष लगेंगे इसका ठीक ठीक निश्चय नहीं किया जा सकता, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसा समय अवश्य आयगा जब पृथ्वी घूमना बन्द कर देगी। आज पृथ्वी यदि चौबीस घंटेमें एक बार घूमती है, तो कल एक बार घूमनेमें उसे कुछ अधिक समय लगेगा और परसों कुछ और भी अधिक। पर दो चार दिन अथवा दस बीस वर्षमें यह अन्तर किसी प्रकार मालूम नहीं पड़ सकता। दस बीस हजार वर्ष पश्चात् यह अन्तर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।† इसी प्रकार यदि आज पृथ्वीको एक बार घूमनेमें चौबीस घंटे लगे हैं, तो आजसे एक दिन पहिले एक बार घूमनेमें चौबीस घन्टेसे कुछ कम समय लगा होगा। दश हजार वर्ष पूर्व वह तेईस घंटेमें एक बार घूमती होगी, और पच्चीस हजार वर्ष पहिले बीस घंटेमें। उससे भी पहिले समयमें क्रमशः पन्द्रह, दस, पांच घन्टेमें उसका एक आवर्तन समाप्त हो जाता था। उस अतीत कालमें सूर्य्यके उदय और अस्त होनेका समय केवल ढाई घन्टे था। उससे पूर्व पृथ्वीके घूमनेका वेग और भी अधिक था। उस समय दिन रातके समयका मिला हुआ परिमाण तीन चार घंन्टेसे अधिक नहीं था। उस समय अवश्य ही पृथ्वी कठिन नहीं थी, क्योंकि इस बातके अनेकों प्रमाण पाये जाते हैं, कि पृथ्वी पहिले गरम तथा तरल अवस्थामें थी, और क्रमशः शीतल तथा कठिन होती जाती है। तरल होनेकी अवस्थामें अधिक वेगसे घूमना पृथ्वीके लिए आशङ्का रहित न था। यदि गाड़ीका पहिया ज़ोरसे घूम रहा हो, और उसमें कहींपर कीचड़ लग जाय, तो वह उछल कर दूर जा गिरेगी। हां, यदि पहिया धीरे धीरे घूमे तो सम्भव है कि कीचड़ न भी उचाटे। इसी प्रकार यदि पृथ्वी अपनी तरलावस्थामें अधिक वेगसे घूमे तो उसके अंगसे किसी अंशका च्युत हो जाना असम्भव नहीं है। यदि यह मालूम हो जाय कि पृथ्वी अपने ऊपरके भागवाले तरल पदार्थको कितनी शक्तिसे खींचती है, तो यह सहजमें ही मालूम किया जा सकता है कि कितने जोरसे घूमनेपर उसका कोई अंश विच्युत हो सकता है। इस प्रकार एक मोटे हिसाबसे जाना गया है कि यदि पृथ्वी तीन घंटेमें एक बार घूमे तो उसके आकारमें परिवर्तन हो जाना सम्भव है। यह मालूम हो ही चुका है कि पृथ्वी अब चौबीस घंटेमें एक बार घूमती है, और इससे पहिले चौबीस घन्टेसे कममें घूमती थी। ऐसा भी एक समय था जब कि पृथ्वी तीन घंटेमें अपना पूरा चक्कर लगा जाती थी। उसी समय पृथ्वीके अंगसे कोई अंश विच्छिन्न हुआ था।

अब देखना है, कि चन्द्रमाका इससे क्या सम्बन्ध है। चन्द्रमा पृथ्वीपरके जलको अपने आकर्षणद्वारा खींच कर अपने नीचेवाले स्थानपर इकट्ठा कर देता है। चन्द्रमा जिस प्रकार जल राशिको खींचता है जलराशि भी ठीक उसी प्रकार चन्द्रमाको खींचती है। गतितत्वमें Action and Reaction अथवा कार्य और प्रतिकार्यका एक सिद्धांत्त है। आप यदि दीवारको अपने हाथसे दबायें तो दीवार भी आपके हाथको उतने ही जोरसे दबायेगी। दाहिनी हथेलीसे बायीं हथेलीको दबानेपर मालूम होगा कि बायीं हथेली भी दाहिनीको उतने ही जोरसे दबा रही है। इसी प्रकार चन्द्रमा पृथ्वीपरके जलको खींचकर बच

* रेलके पहियोंके वेगकेलिए ब्रेककी रोक काफी होती है, पर ज्वार भाटेकी रोक पृथ्वीके वेगके लिए अत्यन्त सूक्ष्म है। अभी तक ठीक ठीक नहीं मालूम हुआ है कि इस रोक का क्या परिमाण है, पर कुछ अनुमान करके गणना करली गई है। वि. सं.

† १०० वर्षमें लगभग २२ सेकण्डका अन्तर हो जाता है। वि० सं०

नहीं जाता वरन् उसको भी जलका खिचाव सहन करना पड़ता है। पर वह उसे सहै किस प्रकार? जिस दूरीपर वह है वहीं रहकर सहन किया नहीं जा सकता। खिचावके कारण पृथ्वीपर आ-पड़ना बहुत सम्भव है। इसी कारण खिचावको सहनेके लिए वह क्रमशः थोड़ा थोड़ा पीछेकी ओर हटता जाता है, अर्थात् उसकी दूरी पृथ्वीसे अधिक होती जाती है।

यदि किसी रबड़की डोरमें एक छोटा पत्थर बांधकर घुमाया जाय तो मालूम होगा, कि एक बार खूब घुमा देनेपर हाथ प्रायः स्थिर रहनेपर भी पत्थर उसी प्रकार घूमता रहता है। उस समय यदि पत्थरको हलके हाथसे झटके दिये जायं, तो स्पष्ट दिखाई देगा कि रबड़की डोर लम्बी हो-जाती है, और पत्थर अधिक दूर चला जाता है। चन्द्रमाकी दशा भी अधिकांश ऐसी ही है।

पृथ्वीकी जलराशि चन्द्रमाको अपनी ओर खींचती है, इससे चन्द्रमा बराबर दूर होता चला जाता है। तो भी इन दोनों बातोंमें कुछ अन्तर है। रबड़की डोरीमें बंधा हुआ पत्थर ज्यों ज्यों दूर जाता है, वैसेही अधिक वेगसे घूमता है। पर चन्द्रमा जलके खिंचावके कारण जितना दूर होता जाता है उसकी गति भी उतनी ही मन्द होती जाती है। इस भेदका एक कारण है। रबड़की डोरी-में बँधा पत्थर हाथसे अधिक जितना दूर होता है, डोरका खिंचाव भी उतना ही अधिक हो जाता है, अर्थात् हाथ और पत्थरके बीचकी दूरी बढ़नेसे खिंचाव भी बढ़ता है। पर चन्द्रमा और पृथ्वीके बीचके मध्याकर्षणका नियम इससे विपरीत है। वहां दूरी बढ़नेसे खिंचाव कम हो जाता है। भेदका कारण आकर्षण शक्तिका यही नियम है। इन सब बातोंपर ध्यान देनेसे पता लगता है कि पृथ्वीपरके जलके खिंचावके कारण चन्द्रमा क्रमशः दूर होता चला जाता है, और उसके, पृथ्वीके चारों ओर, घूमनेका समय बराबर बढ़ता जा रहा है।

इस समय पृथ्वीसे चन्द्रमाकी दूरी दो लाख चालीस हजार मीलके लगभग है। अबसे पूर्व किसी समय यह दूरी दो लाख मील थी। जब चन्द्रमा निकट था उस समय पृथ्वीपर ज्वार भाटे-का वेग भी बड़ा भीषण होगा, क्योंकि यह पहिले लिखा जा चुका है, कि ज्वारभाटेका प्रधान कारण चन्द्रमाका आकर्षण है। जब चन्द्रमा निकट था, तब उसके आकर्षणका प्रभाव भी अधिक पड़ता था। इस समय ज्वारका जल तीस चालीस फुटसे अधिक ऊंचा नहीं उठता है। जिस समय चन्द्रमा-की दूरी अबसे आधी थी, उस समय ज्वार भाटेकी लहर कमसेकम डेढ़ सौ फुट ऊंची उठती होगी। दूरी जब एक तिहाई थी, तब जलके उठनेकी ऊं-चाईका प्रमाण था छः सौ फुट। इसपरसे सब कोई उस समयके ज्वारकी भीषणताका अनुमान कर सकते हैं। कुछ समय पूर्व जहां सूखी पृथ्वी थी वहां थोड़ी ही देरमें छः सौ फुट ऊंचा नीलवर्ण जल हिलोरें मारने लगता था। उस समय दिन भी अबकी अपेक्षा बहुत छोटे थे, इससे छः घंटेके स्थानमें दो तीन घन्टेमें ही वह छः सौ फुट ऊंचा जल विलीन होकर पुनः भूमि जलशून्य हो जाती थी और कुछ समय उपरान्त जब फिर उसी भीषण वेगसे आ उपस्थित होता था, उस समय अवश्य ही पृथ्वीके बनने बिगड़नेका कार्य खूब शीघ्रतासे होता होगा। ज्वारके समय जल दूर दूर फैल कर वहांकी बहुतसी मिट्टी बहा कर समुद्रमें ला पटकता था। वैसी अवस्थामें पर्तपर पर्त जमकर बहुत शीघ्र विस्तीर्ण भूमि उत्पन्न हो जाती थी। भूतत्ववेत्ता विद्वान जो स्तरोंको शीघ्र-तासे बनानेवाली एक विशेष बलयुक्त प्राकृतिक शक्तिका अस्तित्व जानना चाहते हैं वह यही है। अतीत कालका यह भीषण ज्वारभाटा ही पृथ्वीके स्तर निर्म्माणके कार्यमें बड़ा सहायता करता था। पृथ्वीकी आयुके सम्बन्धमें भूतत्ववेत्ता और प-दार्थवेत्ता विद्वानोंमें जो विवाद चलता है, उसका निपटारा यदि सम्भव है तो इसी बातके द्वारा हो सकता।

अस्तु, अब भूतत्ववेत्ताओंकी बात जाने दो। पूर्व समयमें चन्द्रमा पृथ्वीके और भी समीप था। कितना समीप था? एक हजार मील, पांच सौ मील, सौ मील, एक मील! इतना ही क्यों, एक समय था जब कि चन्द्रमा पृथ्वीसे बिलकुल लगा हुआ था। चन्द्रमाका पृथ्वीके चारों ओर घूमनेका समय क्रमशः बढ़ता जा रहा है। आज उसे पृथ्वीका एक चक्कर लगानेमें साढ़े सत्ताईस दिन लगते हैं। पहिले बीस दिन लगते थे। और उससे भी पहिले दस दिन। गणितके हिसाबसे देखा जाता है कि जब वह पृथ्वीसे लगा हुआ था तब उसका परिभ्रमण-काल तीन घंटे था। यह लिखा जा चुका है कि दिन रातका परिमाण बराबर अधिक हो जाता है। जब उसका परिमाण तीन घन्टे था, उस समय उसके किसी अंशका उससे अलग हो जाना सम्भव था। उस समय चन्द्रमा और पृथ्वी दोनोंके घूमनेका समय तीन-घंटे होनेसे अनुमान होता है कि अवश्य ही उन-दोनोंमें किसी प्रकारका संयोग अथवा सम्बन्ध था। इसके जाननेके लिए यहांपर विज्ञानने एक दृढ़ सूत्र पालिया है।

विज्ञान अपने अन्वेषी उज्ज्वल नेत्रोंको भूतकालकी ओर फिराकर स्पष्ट देख रहा है कि एक समय, लगभग पचास करोड़ वर्ष पूर्व, चन्द्रमाका अस्तित्व नहीं था। केवल एक प्रकाण्ड वायु राशि थी। यह वायुराशि क्रमशः संकुचित होने लगी और उसका भार-केन्द्र चारों ओर आवर्तित होने लगा। वह ज्यों ज्यों संकुचित होती जाती थी वैसे ही उसके घूमनेका वेग बढ़ता जाता था। तरलावस्थाको प्राप्त होनेपर किसी समय उसके घूमनेका काल तीन घन्टे था। इस तीन घन्टेके आवर्तनके कारण उसकी केन्द्रप्रसारिणी शक्ति (centrifugal force) के सञ्चित होनेसे तरल पिन्ड दो भागोंमें विभाजित हो गया और दोनों मिलकर तीन घन्टेमें घूमने लगे। पर दो तरल पिन्डोंकी यह अवस्था चिरस्थायी नहीं रह सकती। इसीको गणितमें अस्थायी साम्यावस्था कहते हैं। अर्थात् या तो वह दोनों पिन्ड पुनः सम्मिलित हो जायंगे, अथवा एक दूसरेसे दूर होते चले जायंगे। इन दोनोंने, जिनमें एक दूसरेसे अस्सी गुना बड़ा था, किसी अज्ञात कारणवश दूसरे पथका अवलम्बन किया। इन दोनों जड़ पिन्डोंमें बड़ी हमारी पृथ्वी थी और छोटा चन्द्रमा। दोनों ज्यों-ही अलग अलग हुये कि उनमें परस्पर ज्वारभाटा होना आरम्भ हुआ। वह ज्वारभाटा अबके समान पानीकी बीस बीस फुट ऊंची लहर नहीं थी, वरन् गली हुई जलती धातुएँ तथा अंगारे सैकड़ों मील ऊंचे उठने और नीचे गिरने लगे। ज्वार भाटेके फलसे पृथ्वीके घूमनेका वेग कम होने लगा, चन्द्रमा और पृथ्वीके मध्यका अन्तर बढ़ने लगा और चन्द्रमाका पृथ्वीकी परिक्रमा करनेका समय अधिक होने लगा। ज्वारभाटेका प्रभाव पृथ्वीकी अपेक्षा चन्द्रमाके क्षुद्र कलेवरपर बहुत पड़ा और उसके घूमनेकी गति शीघ्रतासे कम होने लगी। धीरे धीरे उसकी परिक्रमा और पृथ्वीके आवर्तनका समय एक हो गया! अब चन्द्रमा अपने एक ओरके भागको पृथ्वीकी ओर करके साढ़े सत्ताईस दिनमें उसके चारों ओर एक बार घूमता है। इस बीचमें पृथ्वीके घूमनेका समय बढ़ते बढ़ते चौबीस घन्टे हो गया है। यही चन्द्रमा और पृथ्वीकी वर्तमान अवस्था है।

विज्ञान अपने प्रकाशमान दीपकको ले कर धीरे धीरे भविष्यतके अन्धकारको आलोकित करनेकी चेष्टा करता है। तब क्या दिखाई देता है, कि चन्द्रमा और पृथ्वीकी वर्तमान अवस्था जिसे हम देख रहे है, सदा इसी प्रकार नहीं बनी रहेगी। पृथ्वीके घूमनेका वेग घटते घटते क्रमशः उसके दिन और मास एक हो जायंगे। उस समय अहोरात्रिका परिमाण होगा चौंतीस सौ घंटे। इतने समयमें चन्द्रमा उसकी एक बार परिक्रमा करेगा। अर्थात् चन्द्रमा और पृथ्वी परस्परमें मुखवर्ती होकर घूमने लगेंगे। यह अवस्था लग-

भग डेढ़ सौ करोड़ वर्ष पीछे आवेगी। पर यह अवस्था भी अंतिम अवस्था न होगी। सूर्यका आकर्षण और ज्वारभाटा चन्द्रमाको उसके स्थानसे विचलित करेंगे। उसके फलसे उसका परिभ्रमण काल धीरे धीरे कम होना आरम्भ होगा, और वह पृथ्वीके निकट आने लगेगा। इस प्रकार निकट आते आते बहुत करोड़ वर्षोंके पश्चात् वह उसी स्थानपर गिरेगा, जहांसे उसका जन्म हुआ है। प्राकृतिक शक्तियोंके घात प्रतिघातके कारण कुछ समय तक ऊंचा उठकर इधर उधर घूम कर वह पुनः जननीकी गोदमें आश्रय लेगा। यही चन्द्रमाका अन्तिम परिणाम है। और सम्भवतः सम्पूर्ण ग्रहों उपग्रहोंका परिणाम भी यही है।

कांच और सिलकन

[लेखक—प्रोफ़ेसर रामदास गौड़, एम० ए०]

कांच या शीशा आजकल एक बहुत साधारण वस्तु है, जिसके बरतन, चिमनी, चूड़ी, आईना और नकली नग, नकली मोती, खिड़कियों और दरवाजोंके शीशे इत्यादि इत्यादि घरेलू चीजें देखनेमें आती हैं। करावा और करूरेकी शीशीसे लेकर उत्तमसे उत्तम ताल जिनसे कि परमात्माके "अणोऽणीयान् महतो महीयान्" वाले दृश्य देखे जाते हैं सब कांचकी महिमा है। ऐसी साधारण वस्तुकी पुरानी और नयी कथा पाठकोंके लिये अरोचक न होगी।

शाकटायन पाणिनिकी अपेक्षा पुराने वैयाकरण माने जाते हैं। पाणिनिका समय बिलकुल निश्चित न होनेपर भी दो सहस्र वर्षोंसे कम नहीं माना जा सकता। शाकटायनसा प्रसिद्ध वैयाकरण यदि पाणिनिसे कमसे कम चार या पांच सौ वर्ष पहलेका माना जाय तो लेखककी समझमें अनुचित न होगा। इन्हीं शाकटायनजीने अपने शब्दानुशासनमें मुखके अवयवोंद्वारा स्वरोंके उच्चारणकी व्याख्या करते हुए कांचके बरतन बनानेवालोंकी उपमा दी है। उनका अभिप्राय यह है कि मुखके अवयवोंमेंसे होकर उच्चारण कालमें जब वायु निकलती है, विशेष शब्दोंके लिये अवयवोंका विशेष आकार बन जाता है, और शब्द उसी तरह ढलकर निकलते हैं जिस तरह कांच ढालनेवालेके द्वारा बरतन ढलते हैं। किसी कठिन विषयको समझानेके लिये, उसे सुगम और सुबोध करनेके लिये, व्याख्याता उन्हीं उपमाओं और उदाहरणोंका प्रयोग करता है जो सर्वसाधारणमें प्रसिद्ध और भली भांति जाने हुए होते हैं। शाकटायनकी इस व्याख्यासे जान पड़ता है कि भारतवर्षके उस प्रान्तमें जहां शाकटायनका निवास था कांचके बरतन इतनी अधिकतासे बनते थे कि यह सर्वसाधारणकी जानी हुई बात थी। कांचको लोग एक प्रकारकी मृत्तिका समझकर और उसकी भञ्जनशीलता देखकर साधारण कामोंमें कम लाते थे और सम्भवतः यही बात है, कि यद्यपि भारतीय ढाई हजार वर्ष पहले कांच ढालते थे तथापि इस देशमें उसका अत्यधिक प्रचार नहीं था।

अरब, शाम और छोटी एशियामें भी कांचका व्यवहार बहुत पुराना है। उधरकी एक किम्बदन्ती है कि फिलस्तनि देशमें कर्मल पहाड़के पास बेलुस नदीके किनारे प्राचीन कालमें कुछ (Phonecian) वणिक देशके मल्लाह अपनी नावोंसे उतरे और रेतमें भोजन पकानेका प्रबन्ध किया। नावोंपर सज्जी खार लदा हुआ था। सज्जी खारके बड़े बड़े ढोकोंपर बरतन रख कर उन्होंने चूल्हेका काम लिया। खाना पकानेके बाद कांचके टुकड़े उनके चूल्होंके नीचे चमकते दिखाई पड़े। बस, कांच बनानेकी रीतिका पता लग गया अर्थात बालू और सज्जी खारको आंच देनेसे कांच बनता है।

यह कथा विश्वास योग्य नहीं है क्योंकि खाना पकानेमें न तो इतनी आंच होनी सम्भव है और न साधारण उपकरणोंसे हो सकती है। कांच

बनानेके लिये बहुत तेज़ आंच चाहिये। हमें जान पड़ता है कि यह कथा इसलिए प्रसिद्ध हो गई है कि बेलूस नदीके किनारेकी बालू इस कामके-लिए बहुत उत्तम है और सादन नगरके लोग, जो उसके निकट हैं, प्राचीन कालमें कांच बनाने-वालोंमें विख्यात थे। पाश्चात्य इतिहासकार योसफ़स लिखता है, कि इसराईलियोंने एक बार एक ऐसे जङ्गलमें आग लगादी जो एक रेतीले भूखण्डसे संलग्न था। वानस्पतिक क्षार और बालू दोनों मिलकर कांच बन गया। इसी प्रकार कांच बनानेकी रीति मालूम हो गई। यह कथा विश्वास योग्य है, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि कांच बनानेकी रीतिका आविष्कार एक ही जगह एक ही प्रकारसे हुआ हो।

भारतवर्षमें धातुओंका ज्ञान अत्यंत प्राचीन है। वेदके मन्त्रोंसे भी यह पता लगता है कि आर्य्योंकी कच्ची धातुसे शुद्ध धातु बनानेकी रीति कमसे कम आठ हजार वर्ष पहले मालूम थी। कच्ची धातुसे वा खनिजोंसे शुद्ध धातु निकालनेमें लकड़ीके ही भट्टोंसे काम लिया जाता था और यह सभी वैद्य जानते हैं कि वनस्पतियोंको जलानेसे ही क्षार मिलता है। किसी रेतीले स्थान-में अत्यन्त विशाल लकड़ीके भट्टेका अनुमान कीजिये जो सालमें सात आठ महीने बराबर जलता रहे और उस भट्टेसे लोहा वा तांबा निकलता रहे। ऐसी दशामें यह असम्भव नहीं है कि रेत और वानस्पतिक क्षार मिलकर भट्टेके पेंदेमें कांचकी रचना करें और धातुकार कांच बनानेकी रीति इसी तरह सीख जायें। अथवा यह बात कल्पनासे बाहर नहीं है कि कुम्हार, अन्य वस्तुओंकी नाईं, क्षार और बालूको गलाकर बरतन बनानेकी परीक्षा करे। साथ ही यह भी याद रहे कि कुम्हार ही नहीं बल्कि हमारे वैद्य लोग भी धातु फूंकने आदिकी परीक्षा अनेक कालसे करते आये हैं।

कुछ भी हो यह नहीं मालूम कि कांचके आविष्कारका यश किसे मिलना चाहिये। पाश्चात्य देशोंमें बाबुल राज्यमें, भव्यलूनपुरमें, कांचकी सामग्री बहुत काममें आती थी। चार हजार वर्ष पुराने बेनी हसनके समाधि स्थानोंमें कांच फूंकनेवालोंके चित्र यह सिद्ध करते हैं, कि पछाहीं देश भी कांचसे अनभिज्ञ न थे। यद्यपि साथ ही यह भी प्रसिद्ध है कि दर्पणका आविष्कार पहले पहल सिकन्दर बादशाहने किया था, जिससे जान पड़ता है कि कांचसे प्रकाशके प्रतिफलनके साधारण गुण की ओर पाश्चात्योंका ध्यान बहुत दिनों पीछे गया।

कांचके तय्यार करनेकी रीति प्राचीन कालमें यह थी कि विशेष विशेष प्रकारकी वनस्पतियोंकी राखसे क्षार निकाल कर बालूके साथ गलाते थे। पालककी जातिकी वनस्पतिसे जो क्षार निकलता है सज्जीकी जातिका होता है। केवल इस क्षार और बालूसे बना हुआ कांच अत्यन्त भञ्जनशील होता है, बहुत जल्दी टूट जाता है। इसके साथ बहुत थोड़ा अंश चूनेका मिला दिया जाय तो स्थायित्व बढ़ जाता है। आजकल क्षार और रेतके साथ साथ कुछ चूना मिला कर बोतलों और खिड़कियोंकेलिए कांच बनाया करते हैं। परन्तु इसमें वह चमक नहीं होती जो यवक-क्षार और रेतके साथ साथ सीसा मिलाकर बनानेसे होती है। इसे फ्लिन्ट ग्लास वा स्फटिक कांच कहते हैं, जो साधारण कांचसे अधिक नरम और अधिक चमकीला होता है। इसका नकली नगीना बनाते हैं, बहुत बारीक तार खींचते हैं जो रेशमके साथ बुना जा सकता है और जिसके न्यायाधीशोंके मुकुटोंके नकली श्वेत बाल भी बनते हैं।

कांचमें गलाते समय कुछ सोना डाल देनेसे गुलाबी लालके रङ्गका हो जाता है, जरासी चांदी डालनेसे गहरा पीला, लोहेसे नीलिमा युक्त हरा, कोबाल्टसे बैंगनी नीला और क्रोमियमसे शस्य श्यामल रङ्ग बनता है।

सिवाय भञ्जन शीलताके कांचमें साधारणतः कोई अवगुण नहीं जान पड़ता। भञ्जनशीलता-को कम करनेके अनेक उपाय किये गये हैं। इस सम्बन्धमें प्लैनी एक अद्भुत कथा कहता है। रोममें जब सीज़रका राज्य था, एक काठ बनाने-वाला उसके दरबारमें एक प्याला लाया और बोला, 'इस काचके प्यालेको मैं आपके सामने फर्शपर पटक देता हूं, देखिये यह न टूटेगा। मैंने कांचकी भञ्जनशीलता दूर करनेका मसाला जान लिया है।' इतना कहकर उसने प्यालेको पटक दिया। सीज़र इस डरमें था कि चूर चूर न हो जाय, किन्तु जरासा पिचकनेके सिवा और कुछ न हुआ। उस स्थलको उसने हथौड़ीसे पीटकर सीधा कर दिया, मानो कोई धातुका बरतन था। सीज़रने आश्चर्य्यसे चकित होकर पूछा 'क्या तेरे सिवा और कोई भी इस कलाको जानता है'। उसने कहा 'जी नहीं, मेरे सिवा कोई नहीं जानता।' इसपर सीजरने आज्ञा दी कि इस मनुष्यका सर काट लिया जाय, क्योंकि यह जीता रहेगा तो सोना मिट्टीके भाव हो जायगा।

यह कथा भी विश्वासके योग्य नहीं है। कांच-में ऐसी घन वर्धनीयता कल्पनाके बाहर है—विशेषतः साधारण दशामें। यदि कांचके ऊपर चारों ओर बराबर वातावरण या अन्य किसी आवरणका अधिकाधिक दबाव डाला जाय तो यह नितान्त असम्भव नहीं है। कांचका एक खंड हाथ दो हाथ गहरे जलके नीचे ले जा कर कैंचीसे काटा जा सकता है, ऐसी दशामें कच्चे गीले खपरेकी नाईं कांच टूटता जाता है। यदि दबाव इससे बहुत ज्यादा हो जैसे सौ, पचास फुट गहरे जलमें परीक्षा की जाय तो सम्भव है कि भञ्जनशीलता अत्यन्त कम हो जाय।

कांचकी भट्टी या कारखाना एक देखने लायक स्थान है। यहां कांच बनानेकी सामग्री भट्टेमें डालकर कैसी तेज़ आंचमें गलाई जाती है और किस प्रकार वायुके बुलबुले दूर कर देनेका प्रयत्न किया जाता है, कांच तय्यार हो गया, इस बात-को किस तरह पहचानते हैं और किस प्रकार लोहेकी लम्बी नलीके सिरेपर गले हुए कांचको उठाकर फूंकते और घुमाते जाते हैं और निर्दिष्ट पात्रका रूप देते हैं अथवा उसके सांचेमें फूंकते हैं—यह सब क्रियाएँ वर्णन करनेकी नहीं वरन् देखनेकी हैं। जिन देशोंमें यन्त्रोंका बड़ा विस्तार है वहां मनुष्य मुंहसे नहीं फूंकते वरन् यही काम मशीनसे लेते हैं। फूंकना भी सब जगह जरूरी नहीं है। कभी बेलनाकार कांच खंडको अत्यन्त गरम और नरम दशामें ही बीचसे चीर कर फैला देते हैं और कागजके तख्तेकी तरह बिछाकर बेलन फेर देते हैं। कभी कभी गले हुए कांचको ही लेकर बेलते बेलते लम्बे चौड़े समतल कांच-खंड बना लेते हैं।

कांचकी भञ्जनशीलता गिर कर टूटनेमें ही नहीं है। आंचपर रखनेमें गर्मीकी कमीवेशीसे भी कांच टूट जाता है। बोहोमिया और एनामें रासायनिक कामोंके लिये कांचके ऐसे बरतन बनते हैं जो आंच अधिक सह सकते हैं। और देशोंमें भी ऐसे बरतन बनने लगे हैं। अमेरिकाके संयुक्त राज्योंमें ही सोलह करोड़से अधिक बोतल सालमें बनते हैं। इनके सिवा खिड़कियों-के शीशे और कांचके बरतन आदिकी कोई गिनती ही नहीं। युरोपमें कांचका कारबार अमेरिकासे भी बढ़ा हुआ है। अब एशियामें जापानको छोड़ और कोई गिनाने लायक कांच बनानेवाला देश नहीं है, यद्यपि कांचके उद्भवका गौरव बूढ़े एशियाको ही प्राप्त है।

[असमाप्त]

जीवन संग्राममें छोटे छोटे प्राणियोंके उद्योग

कुछ धोखे बाज़ और मक्कारी करनेवाले कीड़े

[ले० प्रोफ़ेसर लज्जाशङ्कर झा, बी. ए.]

गताङ्कसे सम्मिलित

टहनीनुमा, घासनुमा और पत्तेनुमा कीड़े यथार्थमें निर्दोष हैं, भेष बनाकर वे धोखा अवश्य देते हैं; पर उनका अभिप्राय किसी जीवको हानि पहुंचानेका नहीं रहता। वे केवल अपने शत्रुओंकी छेड़छाड़से बचना, वनस्पति खा कर पेट भरना और किसी प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। परन्तु धोखा देने तथा अभिनय करनेवाले सभी जीव उनके समान सीधे और निर्दोष नहीं होते। हितोपदेशमें एक व्याघ्रकी कथा लिखी है, कि वह नदीमें स्नान कर, हाथमें माला ले, साधुओंके समान ईश्वर-भजन करता हुआ मार्गमें जा बैठता था और पथिकोंसे कहता था कि हे भाइयो इधर आओ और जो स्वर्ण मेरे पास है उसका दान ले जाओ। यदि कोई पथिक उसकी बातोंमें आकर व्याघ्रके निकट चला जाता था तो वह झपटकर बिचारे पथिकको खा जाता था। उसीके समान कई कीड़े भी ऐसे होते हैं, जिनका रूप देखनेमें शन्तिमय होता है और जिनका रहन सहन ऐसा सीधा दीखता है कि उनसे किसीको हानि हो सकती है ऐसा अनुमान करना कठिन होता है, परन्तु ज्योंही कोई निर्बल प्राणी उनके ढोंगसे धोखा खाकर पास पहुंचता है कि वह उस विचारेको पकड़ हड़प कर जाते हैं। इस प्रकार की दुष्टता करनेवालोंके तीन चार उदाहरण इस लेखमें दिये जायँगे।

एक अत्यन्त शुद्र तथा विचित्र कीड़ा घरोंमें धूल भरे और अंधेरे कोनोंमें पाया जाता है, जिसका शरीर पतला और चपटा होता है, परन्तु जिसका मुख बड़ा तीक्ष्ण और पैना होता है। यह धूर्त अपने शरीरको रेशों तथा धूलसे ऐसा आच्छादित कर लेता है कि देखनेमें धूलसे लिप्त रेशोंका एक छोटा गुच्छा सा मालूम होता है, जो हवा लगनेके कारण इधर उधर ढल जाता है। उसके इस रूपके कारण अनेक निर्बल कीड़े पास चले जाते हैं पर ज्योंही कोई पास पहुंचा कि उस दुष्ट कीड़ेने उसे धर दबाया और अपने तीक्ष्ण दांतोंसे उस बिचारेको टुकड़े टुकड़े कर डाला।

हिन्दुस्थानके कई भागोंमें एक जातिके कीड़े देखनेमें आते हैं जो देखनेमें अत्यन्त सुन्दर होते हैं और फूलका रूप धारण कर सकते हैं। यह गुलाबी, ऊदे, सफ़ेद, नीले आदि कई रंगके होते हैं, और जब हवाके कारण हिलती हुई डालियोंपर फूलका रूप धारण कर आनन्दसे बैठते हैं, तब रास्ता चलनेवालोंको यही भासता है कि डालियोंपर सुन्दर फूल लहलहा रहे हैं। अनेक पथिक इस जातिके कीड़ेके अभिनयसे धोखा खा फूल तोड़नेका प्रयत्न भी करते हैं, पर ज्योंही किसीने हाथ बढ़ाया कि वह धूर्त कीड़ा अपने गाछ रूपी सुन्दर पंख फैला रफ़ूचक्कर होता है। पाठकोंके मनमें यह प्रश्न अवश्य उठेगा कि फूलनुमा कीड़ा इस प्रकारका अभिनय क्यों करता है। उत्तर यह है कि फूलोंमें थोड़ा बहुत शहद अवश्य रहता है, उसका स्वाद लेनेके-लिये छोटे मोटे अनेक कीड़े फूलोंपर जा बैठा करते हैं। फूलनुमा कीड़ेका उपरोक्त अभिनय एक कपट यन्त्र है, ज्योंही कोई ग़रीब मक्खी वा तितली शहदके लालचसे पास पहुंची कि मक्कार कीड़ेने अपने ज़बरदस्त पैर बाहर निकाले और उसे शिकंजेमें धर दबाया। फिर वह बिचारी मक्खी या तितली उसके चुंगलमेंसे निकलनेका चाहे जितना प्रयत्न करे पर सब निष्फल जाता है, शत्रुके आरेके समान दांतोंवाले दोनों हाथोंके बीचमें पड़नेसे उसके टुकड़े टुकड़े हो जाते

हैं। फूलनुमा कीड़ोंका कैसा सुन्दर रूप है पर कैसा धूर्त चरित्र है—"विष रस भरा कनक घट जैसे"।

कीड़ोंका एक वर्ग-विशेष होता है जिसे अंग्रेज़ीमें मानटिस कहते हैं; फूलनुमा कीड़े उसी वर्गके होते हैं। सब मानटिस फूलका रूप-धारण नहीं कर सकते और न सब मानटिस एक रूप रंगके होते हैं। कोई दो तीन इंचसे भी अधिक लम्बे और कोई एक इंच से भी कम होते हैं। रूप रंग आकार आदिमें चाहे जो अन्तर हो, पर उन सबकी अगली टांगें बड़ी मज़बूत, आरे-के समान तीक्ष्ण दाँतोंसे युक्त और टूटवां होती हैं, जो चाकूके फलके समान मोड़ ली जा सकती हैं। मानटिस जाति क्रूरता, धूर्तता और मक्कारीके लिये बदनाम है। अन्य कीड़ोंके समान मानटिस-के भी छः पांव होते हैं, परन्तु अन्तर यह है कि

चित्र १—प्रार्थना करनेवाला मानटिस।

चलते समय वह केवल पिछले चार पावोंका उपयोग करता है और अगले पैरोंको हाथोंके समान नवा कर उन्हें हिलाता हुआ चलता है। इसलिये उन्हें पांव न कहकर हाथ कहना उचित जान पड़ता है।

हिन्दुस्थान, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, दक्षिण युरोपमें इस वर्गकी एक उपजाति मिलती है जिसे प्रार्थीमानटिस कहते हैं,यह इस देशमें बहुत करके घनी झाड़ियों तथा जंगलोंमें मिलती है। इस जातिके कीड़ोंका मुंह लम्बा त्रिकोणाकार, और आखें बड़ी बड़ी निकली हुई रहती हैं। जब वह बैठता है अथवा धरतीपर चलता है तब उसके पंख सिमटकर पादरी साहिबके लम्बे, गोलाई लिये, चुस्त कोटके समान दिखाई देते हैं, और वह अपने हाथ इस तरह जोड़े रहता है मानो कोई पादरी साहिब गिरजेघरमें हज़रत ईसा मसीह-से प्रार्थना कर रहे हों कि हे प्रभु ईसा मसीह मनुष्य जातिके पापोंको क्षमा कीजिये। पादरी साहिब और प्रार्थना करनेवाले मानटिसकी तुलना यहीं अंत करनी चाहिये। प्रार्थना करते समय पादरी साहिबके मनमें सचमुच दयाका भाव रहता है और उस समय तो यथार्थमें मनुष्य जातिका कल्याण चाहते हैं। पर प्रार्थना करनेवाले मानटिसका भाव इसके विपरीत रहता है—'मधुतिष्ठति जिव्हाग्रे हृदये तु हलाहलम्'।

उसके ढोंग देखकर वर्षोंतक लोगों-का यही अनुमान रहा कि वह कोई साधुजन है, जिसे तप भंग होने अथवा अन्य किसी कारण से इस क्षुद्र योनिमें जन्म लेना पड़ा है। छोटे छोटे बालकोंका यह विश्वास रहा कि उसके यहां वहां फिरनेका अभिप्राय यह रहता है कि भूले भटके बालकों तथा पथिकोंको हाथसे इशारा कर घरका रास्ता बतला दे।

देखनेमें तो वह ऐसा ग़रीब सीधा और निर्दोष दिखाई देता है कि लोगोंका यह मिथ्या विश्वास क्षम्य है। दुर्भिक्ष अथवा मलेरियासे पीड़ित मनुष्योंके समान दुबली देहवाला यह प्राणी जब हाथ जोड़े दिखाई देता है तब लोगों

को यही भासता है कि वह गिड़गिड़ा कर कह रहा है कि बाबा ! मुझे मत छेड़ो, मैं न किसीके लेनेमें न देनेमें, मेरी ज़िन्दगीका छोर आगया है मुझे आक़बतकी तो फ़िक्र कर लेने दो !!

पर यह सब मक्कारी है; वह इस प्रकार सीधा इसलिये खड़ा रहता है कि कोई मक्खी वा अन्य प्राणी धोखेमें आकर पास आजावे। अनेक आंख-के अन्धे और करमके फूटे उसके पास आ भी जाते हैं, पर उनके पास आने और मानटिसके शिकंजेमें फंसनेमें देर लगती ही नहीं। मानटिस-के भयंकर चुंगलसे निकल कर शिकारका बच भागना दुशवार है। पकड़े जानेपर उसके टुकड़े टुकड़े होनेमें देर नहीं लगती। फिर मानटिस अपने पैरोंपर बैठ, हाथोंको जोड़ ईश्वरको धन्यवाद सा देता हुआ ऐसे शान्तिपूर्वक भोजन करता है मानो कोई पंडित मांस भोजनसे पराङ्मुख होकर शुद्ध मनसे दाल रोटियां खा रहा है।

कदाचित् यह कहा जा सकता है कि उसका सारा उद्योग तो पेट पूजाके लिये है, यदि वह ऐसा न करे तो उसका काम भी कैसे चले। ठीक, परन्तु यह प्राणी केवल पेट पूजाके लिये ही जीव हत्या नहीं करता, उसे तो मारनेकी लत है। वह जिस प्राणीको पकड़ पाता है उसके थोड़ेसे अंश-को खा बाकीको फेंक दिया करता है; फिर दूसरे प्राणीकी खोजमें जाता है। इस प्रकार दिन भर-में वह कितने प्राणियोंकी हिंसा करता है। उसका ठीक पता लगाना कठिन है; पर यदि उन बिचारों-की संख्या दो सो तीन सो भी बतलाई जावे तो कदाचित अधिक न होगी।

आस्ट्रेलिया महाद्वीपमें सबसे प्रसिद्ध नगर मेलबोर्न है, वहां मानटिस बहुतायतसे मिलते हैं। मेलबोर्न निवासियोंने उसका एक अच्छा उपयोग निकाला है। जिस प्रकार हिन्दुस्थानमें आषाढ़ और श्रावण मासमें मक्खियोंका प्लेग सा हो जाता है, उसी तरह मेलबोर्नमें भी गर्मी और वर्षामें मक्खियां अंधाधुन्ध बढ़ जाती हैं। तब वहांके निवासी प्रत्येक खिड़कीके पर्देकी आड़-में दो चार मानटिस रख देते हैं। ये वहां विराज कर बाहरसे आनेवाली मक्खियोंको पकड़ लेते हैं और थोड़ी ही देरमें उनकी लाशोंका ढेर लगा देते हैं। इस तरह नाश होनेसे घरोंमें मक्खियोंकी संख्या बहुत कम हो जाती है। 'जिसने जीते लोक तीन सब वह भी हारा मक्खी से'—हिन्दु-स्थानकी यह कहावत, मेलबोर्न निवासियोंने मानटिसका उपयोग करके झूठी सिद्ध कर दी।

मनुष्यको इस प्रकार उपयोगी हो सकनेपर भी मानटिसके बारेमें यही कहना पड़ता है, कि वह बड़ा दुष्ट जीव है। मक्खी, तितली, पंखी आदि अक्षम प्राणी तो उसके भक्ष्य बनते ही हैं, परन्तु उसके हाथ ऐसे भयंकर तथा बलवान होते हैं कि वह छोटे मोटे सक्षम प्राणियों पर भी वार करनेमें नहीं चूकता। दक्षिण अमेरिकामें एक बड़ी जातिका मानटिस देखा गया गया है, जो लाल मुनैय्याके समान छोटी चिड़ियोंको भी झपट कर पकड़ लेता है। जब मानटिस आपस-में लड़ते हैं तब एक भयंकर दृश्य दिखलाई देता है। जिस तरह दसहरेके दिन रजवाड़ोंके नामी तलवार चलानेवाले अपने हाथका बल और कौशल बतला कर भैंसों तथा बकरोंके सिर भुट्टे-के समान काट उड़ाते हैं, उसी प्रकार क्रोधी मानटिस भी अपने शत्रुका सिर एक हाथमें काट गिराते हैं। क्रोध आनेपर न मियांके सामने बीबी-की इज़्ज़त है न बीबीके सामने मियांकी, एक दूसरेका सिर भी बेतहाशा उड़ा देते हैं। क्या अब भी कोई उनकी तरफ़दारी करेगा ?

मानटिसके सुन्दर रंग बिरंगे पंख होते हैं (चित्र १ देखो)। पर यह बहुत कम उड़ता है और इस कारण देखनेको जल्दी नहीं मिलता। इसके दुहरे पंख होते हैं; ऊपरी तथा आगेके पंख तो कुछ कड़े और ढक्कनके समान होते हैं और पीछेके तथा भीतरी मेम साहिबाके टूटदार पंखोंके समान तह होने योग्य होते हैं।

इनकी उत्पत्ति क्रियामें भी कुछ विशेषता रहती है। इनकी माताराम चमड़ेकी-सी थैलियोंमें अण्डे रखती है जो किसी डालमें लटका दी जाती है और प्रत्येक अण्डेकेलिये उस थैलीमें एक घर रहता है। जब अण्डे फूटनेका समय आता है तब थैलीके किसी किनारेसे मकड़ीके जालेके धागेके समान एक पतला धागा निकलता है। उस धागेके सहारे वह बच्चे नीचे उतरनेकी कोशिश करते हैं, पर उसे बढ़कर धरतीतक पहुंचनेको समय लगता है। दो तीन दिन तक यह बच्चे उस धागेको थामे हुए हवामें इधर उधर झूला करते हैं और इस समय उन्हें खानेको भी नहीं मिलता। परन्तु उतरनेकी चेष्टामें वे ऐसे निमग्न रहते हैं, कि उन्हें न खानेकी न पीनेकी सुध रहती है। धीरे धीरे वह धागा बढ़ कर पृथ्वीके निकट आ जाता है। तब अपनी कांचली छोड़ मानटिसका रूप ले धरतीपर कूद पड़ते हैं और थोड़ी ही देर उपरान्त यह भी बूढ़े मानटिसोंके समान हत्या कांडमें प्रवृत्त हो जाते हैं।

स्थाना-भावके कारण अन्य कई चमत्कारिक जीवोंका वर्णन इस लेखमें नहीं हो सकता। परन्तु आशा होती है कि जीवन संग्रामके विषयमें जो चार लेख दिये गये हैं उनसे संसार निर्माण करनेमें विधाताने जो विलक्षण चतुराई, विचित्रता और विचार गाम्भीर्य दिखलाया है उसका कुछ अन्दाज़ा पाठकोंको हो सकेगा। प्रकृतिका अवलोकन करतेसमय ईश्वरके सम्बन्धमें प्रतापनारायण मिश्रजीके कहे हुए निम्न लिखित शब्द बहुत याद आते हैं:—

'हर इक काम उसके ऐसे हैं, कि जिसको देख हैरत से। हर इक आक़िल ने अपनो दांत में उंगली दबाई है।'
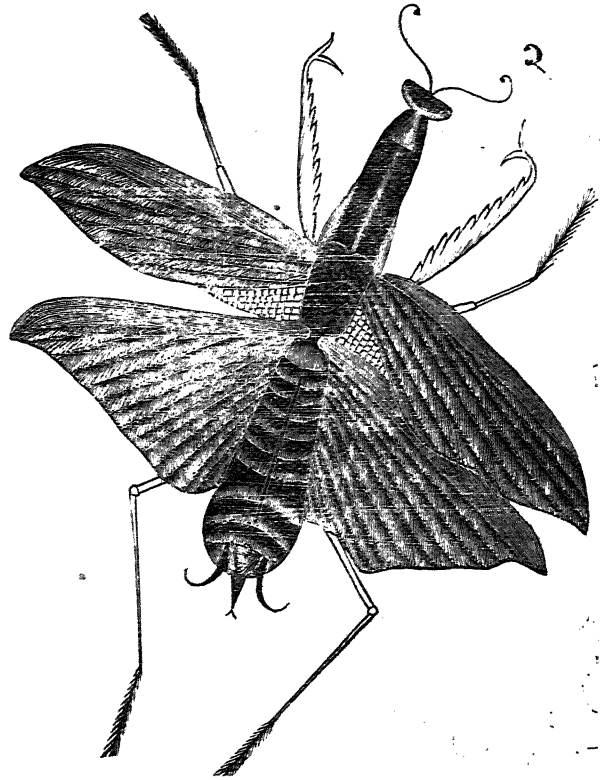
चित्र २—प्रार्थना करनेवाला मानटिस (उड़ता हुआ)

भारत-गीत-१६

ऐ प्यारे तेरा हाल आज यह क्या रे!
कल तक तू ख़ूब भला था; चिहरेपर नूर खिला था
क्या पड़ा आज दुख भारी; जो बिगड़ी सूरत प्यारी
दे अपनी सारी बात साफ़ बतला रे
ऐ प्यारे तेरा हाल आज यह क्या रे।

*

क्यों बार बार रोता है; रोता है, फिर सोता है
रोनेसे क्या होता है; सोता है सो खोता है
रोना और सोना ऐसा नहीं भला रे
ऐ प्यारे तेरा हाल आज यह क्या रे

श्रीपद्मकोट,
२० १२-१७.

—श्रीधर पाठक

भारत-गीत—६

तू प्यारे कहना मान अभी मत चलरे
गहरा दरिया नावपुरानी; चलरहाअंधड़ चढ़रहा पानी
औघट घाट थाह अनजानी; खेवट कर रहा आनाकानी
होवे मत नादान, ज़िद से टल रे
तू प्यारे कहना मान अभी मत चल रे

*

थका हुआ है कुछ सुस्ताले; पता पारका कुछ पुछवाले
अपना बेड़ा आप बनाले; क्यों पड़ता ग़ैरोंके पाले
होगा जल्द उतार आज या कल रे
तू प्यारे कहना मान अभी मत चल रे

श्रीपद्म कोट,
१६-१२-१७.

—श्रीधर पाठक

भुनगा पुराण

[लेखक-प्रोफेसर रामदास गौड़, एम. ए.]

कपाल-खण्ड

श्री भुनगेश्वर जी बोले, हे भुनगा नन्दनो, दैत्योंकी सेना बड़े उत्साह और वेगसे देवोंकी सेनापर जो बिलकुल पास आ गयी थी टूट पड़ी। बड़ा घोर द्वन्द्व युद्ध होने लगा। योद्धापर योद्धा और सैनिकपर सैनिक कट कट कर समर भूमिको पाटने लगे। एकपर एक गिरते जाते थे परन्तु उनकी तनिक भी परवाह न करके सैनिकोंका प्रबल प्रवाह उनको पददलित और मर्दित करते आगे बढ़ता जाता था। उधर क्षत्रिय देवताओंकी सेना भी छीजती जाती थी। परन्तु साथ ही वह अपनी सेनाकी संख्याको सद्यः जात सैनिकों द्वारा बढ़ाते जाते थे। यही दशा हमारी ओर भी थी। जीवन मरणका बड़ा विकट प्रश्न उपस्थित था। लोहूकी नदी बह रही थी, और रक्त-पान करनेवाले जीव ठट के ठट इकट्ठे हो रहे थे। शत शत जुंग और सहस्र सहस्र भुनगाके समान बलवाले योद्धा जब संग्राम भूमिमें मृत्युकी शय्यापर सो गये, उस समय दोनों ओर बड़ी चिन्ताजनक अवस्था हो रही थी। दोनों ओरसे नये नये उत्पन्न हुए योद्धाओंकी संख्या ज्योंही लड़नेको खड़ी होती थी, उसी समय प्रायः उतनीही संख्या कालके गालमें चली जाती थी। हमारी ओरकी संख्या भी छीजते छीजते क्षत्रिय देवताओंकी संख्याके बराबर हो गयी। अब हम लोगोंकी चिन्ता और भी बढ़ी क्योंकि हम लोग शत्रुओंके देशमें थे, जहां हमको सिवाय अपने पराक्रमके किसी और प्रकारकी सहायताकी आशा न थी और हमारे शत्रुओंको कुमकपर कुमक और मददपर मदद पहुंचायी जा रही थी। एकाएकी उनको कोई अदृष्ट और ईश्वरीय सहायता भी मिलने लगी, जिससे हम केवल वञ्चित ही न रहे वरन् हमारी बड़ी हानि होने लगी। एकाएकी संग्राम-भूमिका आकाश मण्डल बड़ी विषैली वायुसे संपृक्त हो गया। इस वायुके साथ साथ अन्य द्रव-विष भी थोड़ा थोड़ा बरसने लगे*। न जाने विष्णु पदामृत के प्रभावसे अथवा किसी विशेष दिव्य शक्तिके कारण देवताओंपर इन विषोंका असर बिलकुल नहीं होता था। परन्तु हमारी ओरके शूरवीर कितने ही इस विषसे गिर गिर कर निष्प्राण होने लगे, और कितने ही मतवाले हो कर परम क्रुद्ध भुनगाओंकी नाईं अपने शत्रुओंपर प्रहार कर और उन्हें मार कर मरने लगे। इस विषैली वायुसे हमारी जातिकी उत्पादन-शक्ति ऐसी नष्ट हो गयी कि सतत-वीर-प्रसवनी सेना इस समय बड़ी ही लाचार और शक्तिहीन हो गयी थी। देखते ही देखते हमारी संख्या बड़े वेगसे घटने

* मसूड़ों में एक फुड़िया हो जाने का यह आन्तरिक और सूक्ष्म दृश्य दिखाया गया है। टिंचर अयोडीन के लगाये जानेसे इन सैनिकोंपर जो प्रभाव पड़ा यहां उसी का वर्णन अभिमत है। ले०

लगी और छीजते छीजते हम लोग अत्यन्त थोड़े रह गये।

इसी बीच दोनों दलके सैनिकोंके शव, जो सद्गति न होनेके कारण सड़ गल कर द्रव-प्राय हो रहे थे बड़ी दुर्गन्धके साथ बह निकले और रक्त-खण्डके कड़े आवरणको भी भेदकर बाहर निकल पड़े[1]। उधर मैदान भी साफ होने लगा और जो कुछ क्षति मैदानको पहुंची थी उस क्षति-को दूर करनेकेलिए वैश्य और शूद्र जातिके देवता बड़े उत्साहसे प्रयत्न करने लगे[2]। जिस स्थानके ऊपर रक्तावरण फटकर छेद हो गया था वहां तक हम लोगोंको खदेड़ते हुए देवसेना बराबर चली आयी। यहां तक कि अन्तिम दृश्य देखनेकेलिए मेरे सिवाय एक भी सैनिक न बचा[3]। इतनेमें बड़े वेगसे वैश्य और शूद्र सेना की एक धारा मैदानको पूर्णतया साफ करती हुई उस आवरणके बाहरवाले मार्गके बाहर तक आ गयी। इस समय हमारे शत्रुओंकी सेना भी बड़े जोखिममें पड़ गयी क्योंकि रक्त-खण्ड छोड़कर आवरण के बाहर जानेमें समस्त सेनाकी निश्चय मृत्यु थी। मैं मार्गके एक कोनेपर दबका हुआ अपने आप ही शत्रुओंका नाश होते देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था। और पड़े पड़े मनसूबे बांध रहा था[4] कि शत्रुओंका सर्वनाश हो जाने-पर फिर रक्त-खण्डमें जाकर नयी सन्तान और सेनाकी उत्पत्ति करके भीषण पितामहका पद प्राप्त करूंगा और सारे रक्त खण्डपर अपना अखण्ड राज्य जमाऊँगा। मैंने देखा भी कि कई करोड़ देव गण उस मार्गसे बड़े वेगसे निकल कर कालके ग्रास हो गये, परन्तु मेरे दुर्भाग्यसे एकाएकी शूद्र देवताओंकी अपार सेना निकल पड़ी, जिसने अपने शरीरसे उस मार्गको पाट कर बन्द कर दिया। यद्यपि इस क्रियामें कई अरब शूद्र देवता काम आये, तथापि रक्त-खण्ड-की रक्षा हो ही गयी और यद्यपि कई पद्म देवता खेत रहे तो भी रक्त-खण्डकी आबादी जिसकी गणना कल्पनातीत थी सजीव और सुरक्षित ही रह गयी। यह दृश्य देखकर मुझे अत्यन्त खेद हुआ। फिर भी मैं हताश न हुआ। एक बार फिर रक्त-खण्डके राज्यको हस्तगत करनेके लिए जिस कोनेमें मैं दबका था वहांसे चुपकेसे निकल कर ज्योंही भीतर बढ़ना चाहा एक क्षत्रिय सन्तरीकी निगाह अचानक मुझपर पड़ गयी। शत्रुको देखते ही वह बड़े वेगसे मेरे ऊपर टूट पड़ा। मैं भी द्वन्द्व युद्धमें उससे लिपट गया। परन्तु उसका शरीर साहीकी नाईं भालों और बर्छोंसे ऐसा कसा हुआ था, कि प्रत्येक प्रहारमें मेरे शरीरके शत शत खण्ड होने लगे। मैं कह नहीं सकता कि इस योद्धाने मेरे शरीरके कितने टुकड़े किये। परन्तु अटकलसे वह टुकड़े कई लाखसे कम न होंगे। यह घटना अत्यन्त अद्भुत और विचित्र थी। मेरे जितने खण्ड हुए उतने ही अलग अलग आणविक शरीर बन गये जिनमें लगभग पचास हजार ऐसे शरीर हुए जिनमें मैं ही मैं था। अर्थात् पचास हजार शरीरोंमें मेरी ही अहन्ता, मेरी ही आत्मा विराज रही थी और जो कुछ घटना इन शरीरोंके सम्बन्धमें होती थी उन घटनाओंको मैं भले प्रकार अपनी ही अहन्ताके विषयमें समझता था। परन्तु उस अपरिमित बल और वेगवाले वीर सन्तरीने मुझे टुकड़े टुकड़े करते हुए एक दम रक्त-खण्ड के आवरणसे बाहर कर दिया और मेरे पचास

१–पीप त्वचाको भेद कर बह निकली। सं.

२–घाव पुरने लगा। सं.

३–रक्ताणुओंने रोगाणुओंको घावके मुंह द्वारा बाहर निकाल दिया। सं.

४–जो रक्ताणु घावके बाहर निकल आते हैं वह भी नष्ट हो जाते हैं। सं.

हजार पारमाणविक शरीर बड़े वेग से एक अद्भुत समुद्रमें लहराने लगे जिसकी कल्पना भी मुझे और किसी शरीरमें नहीं हुई थी। यह समुद्र था महतत्त्व आकाश जिसके भीतर आकर मैं हिलोरे लेने लगा और जो जो विचित्र घटनायें हुईं उनसे अत्यन्त आश्चर्य और आनन्द पाने लगा।

इत्यार्षे श्री भुनगा महापुराणे कपाल-खराडे देवासुर महासमर वर्णनो नाम सप्तमोऽध्यायः।

विमानोंसे बातचीत

संकेतकी विविध विधि

[ले०-श्रीयुत महावीरप्रसाद]

आकाशमें उड़ते हुए विमानको पहिचानना या यह जानना कि वह मित्रदलका है या शत्रुदलका बहुत ही कठिन है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस कठिनाईसे कितनी हानि हो सकती है, परन्तु इस प्रश्नपर यहां विचार करना उचित जान पड़ता है।

साधारणतया जर्मन विमान अपने पंखोंके नीचे लोहेका काला क्रास† लगाये रहते हैं और मित्रोंके विमान नीले, सफेद और लाल या काले, सफेद और लाल रंगोंकी एक ढाल रखते हैं। कहीं कहींपर यदि विमानपर नीचेसे काफी रोशनी पहुंचती हो तो, दूरबीनसे उपरोक्त चिन्ह दिखाई दे जाते हैं, क्योंकि प्रत्येक स्थानपर आकाश एकसा निर्मल या घनाच्छादित नहीं रहता। इस प्रकार जांचनेमें एक और कठिनाई है। वह यह कि जर्मन विमान भी हमारे निशानको लगा लेते हैं, उनको ऐसा करनेसे कौन रोक सकता है। अतएव कोई अच्छा उपाय निकाला जाना चाहिए। निस्सन्देह बेतारके यंत्रसे "पास वर्ड" पूछकर विमानकी जातीयताका पता लगाया जा सकता है, पर इस प्रकार 'पास वर्ड' बतलाकर किसी दलको परिचय देनेमें विमानीको समय लगता ही है। अस्तु कोई आश्चर्य नहीं है कि उड़नेवालोंको शत्रुकी अपेक्षा अपनी ही ओरवालोंसे हानि पहुंचनेकी सम्भावना अधिक रहती है क्योंकि उनको अपनी ही ओरवालोंमें प्रतिदिन घूमघाम कर वापिस आना पड़ता है और उतरतेमें वह निशानेकी सीधमें आ जाते हैं। परिश्रमसे बनाए हुए बन्धेजोंके कारण हमारे विमान अपने ही मित्रोंकी गोलियोंसे अधिक हानि नहीं उठाते। परन्तु यह भली भांति विदित है कि लड़ाईके आरंम्भमें रूस, फ्रांस, इङ्गलैंड, जर्मनी और आस्ट्रिया सभीके विमानोंको अपनी ओरके ही फौजियोंके जोशसे बहुत हानि उठानी पड़ी।

†कोई शब्द जो अपने पक्षमें कह देनेसे मनुष्य उसी पक्षका माना जायगा। यह गुप्त रहता है।

वायुमण्डलसे पृथवीपर संदेसा भेजना।

अब विमानोंसे बातचीत करनेके विषयपर विचार करना चाहिए। इसकी सैकड़ों विधि हैं, जिनसे कठिनाई थोड़ी बहुत अवश्य हल हो जाती है। विमानसे संकेत करना या संदेसा भेजना आसान है, जो पृथ्वीसे विमानको संदेसा भेजनेकी अपेक्षा बहुत आवश्यक भी है क्योंकि प्रायः विमान आकाशसे शत्रुकी स्थिति देखकर नीचेके गोलन्दाजोंसे ठीक दिशामें तोप चलवाया करते हैं, और कभी कभी अपनी पक्षके सिपाहियोंको इधर उधरकी खबरें दिया करते हैं। बार बार उतरने और फिर चढ़कर जानेमें बड़ी असुविधा होती है।

संकेतके कुछ नियम नीचे दिये जाते हैं:—

(१) खबरें, नक्शे, तसवीरें, हुक्म, प्रार्थनापत्र और प्रश्न थैलोंमें भर दिये जाते हैं। इन थैलोंमें झण्डियां लगी रहती हैं, जिनसे पृथ्वीपर गिरनेपर उनका पता लग सके। इनका बोझा कम होता है और सरलतासे ले जाये जा सकते हैं। इनके प्रयोग करनेमें यही दो सुविधाएं हैं। और यदि विमान ठहर सकता हो तो विमानी (विमान चलानेवाला) सन्देश स्वयं ही लिख सकता है। इस प्रकार

उसको किसी लेखककी आवश्यकता नहीं होती। परन्तु इनके प्रयोगमें यह आपत्ति होती है कि लिखे हुए समाचार शत्रुके हाथ वैसे ही या विमानके आहत होनेपर पड़ सकते हैं। उनके द्वारा संदेसा भेजनेमें, विमानको थैला फेंकनेकेलिए उस स्थानतक लौटा ले जाना पड़ता है, जहां खबर पहुंचानी होती है।

(२) बेतारके प्रयोगसे संदेसा भेजनेवालेको लौटना नहीं पड़ता। दूसरे तार गुप्त भाषा (कोड) में भेजा जाता है, इसलिए वैरीको उसका हाल नहीं मालूम हो सकता, पर असुविधाएं इसमें भी हैं। सुननेका यंत्र, यंत्रका भार, विद्युत संचायक घट और डायनमो या बेतार-उत्पादक (wireless generator) जो विमानके इंजनसे जोड़ दिया जाता है, आदि सामग्रीकी आवश्यकता होती है। यह सच है कि विमानी स्वयं ही बेतारके यंत्रपर काम कर सकता है, पर बहुत ठीक ठीक खबरें पहुंचानेकेलिए एक निरीक्षक रहना चाहिये जो देख कर बराबर समाचार भेजता रहे। बेतारकी चिनगारियों, या डायनमोसे गैसोलीन तेलमें आग लगनेसे बचानेकेलिये विशेष प्रबन्ध करना पड़ता है। कार्य्यकर्त्ताको मार्स (Morse) के संकेत भी जानने चाहियें, जो सभी अफ़सरोंको नहीं मालूम हो सकता यद्यपि इसको सीखना आसान है।

(३) लैम्पके प्रकाश द्वारा विमानसे संकेत करनेमें दो मनुष्योंकी आवश्यकता होती है। इस विधिसे भी बहुत कुछ बेतारका सा ही काम निकलता है, पर यह दिनमें बहुत ही कम काम दे सकती है। बादलोंके रहनेपर तो रातको भी इससे बहुत कम काम निकलता है, क्योंकि बादल प्रायः ६००० फीटसे नीचे रहते हैं और निरीक्षणके लिए गये हुये विमान शत्रुके ऊपर शायद ही ६००० फीटसे नीचे रहते हैं। गुप्त [illegible]ओंका प्रयोग किया जाता है। यदि शत्रुपर भेद खुल जानेका डर रहता है तो प्रकाशकी संकीर्ण किरणोंका प्रयोग किया जाता है।

(४) अबकी रीतिसे संकेत करनेकेलिए विमानपर परावर्तक रहते हैं। इनपर पृथ्वीसे तेज़ रोशनी फेंकी जाती है। संकेत या इशारे पूरे तौरसे गुप्त रहते हैं क्योंकि परावर्तकपर पड़नेके पीछे प्रकाश किरणें वहींपर लौट आतीं हैं, जहांसे फेंकी गई थीं। कई शीशोंको होशियारीसे लगानेके कारण परावर्तकको रोशनी भेजनेवालेकी ओर ही रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। इससे विमानीको किसी साथीको ज़रूरत नहीं पड़ती। इससे बड़ा लाभ होता है क्योंकि सवार, उसके जिरह बख्तर और उसके सामानके न रहनेसे सवा दो मनके लगभग बोझा कम हो जाता है, जिससे कि उसी शक्तिके इंजनसे विमान अधिक वेगसे ऊपर उठ सकता है। यदि "स्काउट" विमान काममें लाये जायं तो इस विधिसे विमान अधिक वेगसे उड़ सकता है, इस कारण (२) या (३) की अपेक्षा विमान अधिक सुरक्षित रहता है। इस विधिकी तुलना (१) से नहीं की जा सकती क्योंकि उसका तो उपयोग ही दूसरा है।

(५) बेतारका सा ही काम आवाज़से भी लिया जाता है। विमानके इंजनके ही 'शब्द' का प्रयोग किया जाता है। और उसको यंत्र द्वारा धीमी और तेज़ करके उससे इशारे करनेका काम लेते हैं। पृथ्वीपर विशेष प्रकारके ऐसे उपकरणोंकी आवश्यकता होती है जिनसे किसी विमान विशेषका अनुसरण करते रहें और उसके शब्दोंको सुनते रहें। इन उपकरणोंके बिना 'शब्द' सुनना और समझना शायद ही संभव हो परन्तु इस रीतसे थोड़ी दूर तक ही संदेसा भेजा जा सकता है, और तोपोंके चलनेपर तो इसका प्रयोग किया ही नहीं जा सकता।

(६) पहिलेसे तै की हुई विधिसे उड़नेसे बहुत अच्छी तरह सिगनल दे सकते हैं। इस प्रकार

न किसी उपकरणकी आवश्यकता है न किसी सवार की। विमानके बारंबार झुकने, चक्कर काटने, इत्यादिसे इशारे किये जाते हैं। असुविधा यह होती है कि शत्रु यदि पीछा करे तो सिगनलमें बाधा पड़ती है, परन्तु बेतारके तारसे या लैम्पसे या परावर्तक दर्पणसे उस समय भी सिगनल दे सकते हैं जब कि शत्रुका पीछा कर रहे हों या आवश्यकता पड़नेपर शत्रुसे भग रहे हैं। अपनी फौजकी पंक्तियोंके ऊपर तो पूर्व निश्चित विधिसे निर्विघ्न उड़ सकते हैं परन्तु तभी तक जब तक शत्रु उड़नेके भेदको न जान ले औ नक़ल करनेकी कोशिश न करे परन्तु चिन्होंके बदलनेसे इससे भी सहज ही बच सकते हैं।

(७) कभी कभी धुएंके सिगनलसे भी काम निकाला जाता है। घना धुआं पैदा करनेके लिये बहुत सी धुआं देनेवाली सामग्री चाहनी पड़ती है। अस्तु बहुतसे उपकरणोंको आवश्यकता पड़ती है और विमानके वेगके कारण धुआंके गल्ले यदि घने न हुए तो शीघ्र ही फैल जाते हैं। भेद छिपा रखनेके लिये विशेष 'कोड' बनाना पड़ता है। जब विमान हवामें और हवाके बहावकी ओर जा रहा हो तब यह विधि उपयुक्त होती है।

(८) बड़े बड़े तवे फैलाकर भी सिगनल देते हैं पर दूरतक दिखलाई पड़नेके लिये बड़े तवे रखने पड़ते हैं जिनको जलदी हटाना असंभव है। इनसे उड़नेमें भी बाधा पड़ती है इसलिये बहुत दूरसे संकेत करनेमें इनका प्रयोग नहीं कर सकते।

(९) तमंचोंमें विविध प्रकारके बने हुए कार्तूस चलाकर, कई रङ्गके प्रकाश या धुआं पैदा करके भी संकेत करते हैं, परन्तु तीव्र प्रकाश पैदा करनेके लिए बड़े बड़े कारतूस लेने पड़ते हैं, जिनको विमानपर रखनेसे बोझ बढ़ जाता है।

पृथ्वीसे विमानको संकेत करना

यह भी बड़े महत्वकी बात है। सीधा साधा काम यही होता है कि विमानको उतरनेकी जगह बतलाई जाय, ऐसा करने के लिए धरतीपर एक लम्बा सफेद टाट बिछा देते हैं जहांपर विमान उतर सके। इसके किनारेपर कोई चिन्ह भी बना सकते हैं जिससे वायुकी दिशा प्रकट हो जाय या किसी प्रश्नके उत्तरमें हां या नहीं कहा जा सके। रंगीन रोशनी भी यही काम देती है। रोशनी विमानपर डालते हैं और उसको वे मार्सकी विधिसे समझ लेते हैं कि इसका क्या तात्पर्य है। यह (३) का विपर्यय है। बेतारसे भी काम लेते हैं और जब सुननेका उपकरण विमानपर हो तब इस विधिसे बड़ी सफलता होती है। बहुत दूरतक इससे काम चल जाता है। जिस विमानसे बात करना चाहते हैं उसके सामने अग्न्यास्त्रोंसे प्रकाश करके उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं। जिस विमानको लौटाना होता है उसके पास एक वेगसे उड़नेवाला स्कौट (गुप्तचर) विमान भेज सकते हैं और लैम्पोंके द्वारा विमान आपसमें भी बातचीत कर सकते हैं।

और भी नियम हैं पर उनका वर्णन स्थानाभावसे नहीं किया जा सकता तथापि जो कुछ यहां लिखा गया है, उससे पाठक समझ लेंगे कि विमान केवल बेतारके बलपर नहीं रहते, उनके पास और भी साधन रहते हैं जिनसे वे अपने मित्रोंसे बातचीत कर सकते हैं।

(साइंटिफ़िक अमरीकन सप्लीमेण्टसे)

हिस्टीरिया (Hysteria)

औरतोंकी दौरेवाली बीमारी

[ले० पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव]

यह शब्द ग्रीक भाषाके शब्द "हिस्टीरा" से जिसका अर्थ गर्भाशय है निकला है। प्रायः समझा जाता है कि इस बीमारीकी जड़ गर्भाशयकी खराबी है यद्यपि इसके पैदा होनेके

Homeopathy होमियोपैथिक चिकित्सा]

और भी कारण हो सकते हैं। यह रोग क्वारी लड़कियोंसे ले कर बूढ़ी औरतोंतकको हो सकता है। यह रोग ऐसी औरतोंको भी होता है जिनको मासिकधर्म सम्बन्धी कोई रोग न हो और अन्य प्रकारसे भी स्वस्थ हों। स्त्रियोंकी नाईं पुरुषोंको भी यह बीमारी होती है, इसलिए यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस बीमारीकी जड़ गर्भाशयकी ख़राबी है बल्कि यह कहना ज़्यादा ठीक होगा कि कमज़ोरी, ख़ूनकी कमी और ख़राबी, दिमाग़की ख़राबी और मासिकधर्मका उचित रीतिसे न होना, पानीका निकलना, गर्भधारण करना, ज़्यादा दिनोंतक बच्चेको दूध पिलाना, रंज, डर, मान्सिक वेदना, जोश पैदा करनेवाली किताबोंका पढ़ना, नींदका न आना, अधिक आराममें रहना इत्यादि, इस रोगके कारण हो सकते हैं। जिस मांको यह बीमारी होती है उसकी लड़कियोंको भी हो जाती है। कभी कभी ऐसा भी देखा है कि जिस घरमें एक स्त्रीको यह बीमारी होती है तो दूसरी स्त्रियोंको भी हो जाती है। इस बीमारीमें और और बीमारियां भी मिलकर अपना असर दिखाती हैं। इसके लक्षण यह हैं:--

आवाज़का धीमा पड़ जाना, खांसी, दिलकी बीमारी, पेशाब करनेमें तकलीफ़ होना, जोड़ोंमें और नसोंमें तरावट और दर्द मालूम होना, बैठे बैठे बेहोश हो जाना, हंसने लगना, आप ही आप रोने लगना, गाने लगना, काटने और चबाने लगना, मुंहमें फेन आ जाना, बेहोश हो जाना, या पागलोंकी सी बात करना। इस मर्ज़के इलाजमें होशियार डाक्टर भी धोका खा जाते हैं, लेकिन नीचे लिखी हुई दवायें फ़ायदेमंद हैं।

ऐसाफेटीडा (Asafœtida)--**गलेमें खुश्की और जलन, पेटमें कटन और मड़ोड़का दर्द या गड़गड़ाहट और बायगोलेका दर्द होना, जी मिचलाना और उबकाई आना, दस्त होना, गहरे रंगका बूदार पेशाब, और बार बार करनेकी इच्छा होना, हवाकी नलीमें रुकावट जिससे ऐसा मालूम हो कि हलक़में कुछ अड़ा है, वक्तसे पहिले और दर्दके साथ मासिकधर्मका होना, धड़कन, मौतका डर मालूम हो, और ऐसे दौरे आयें कि जिसमें कभी हंसे और कभी रोवे।**

औरम (Aurum.)--**रजःस्राव अधिक हो, सिरमें दर्द और पागलपन हो, ज़रासे शोरमें घबरा जाय, मिज़ाजमें चिड़चिड़ापन आ जाय, मुंह और माथेपर छोटे दाने निकल आयें।**

बैलेडोना (Belladona)-**ख़ून सरकी तरफ़ ज़्यादा दौड़े और गलेकी रगें फूल आयें, चेहरा लाल पड़ जाय, रातको कम नींद आवे।**

कैलकेरिया कार्ब (Calcar. Carb.)--**जल्दी जल्दी और अधिक रजःस्राव हो, हाथ पैरमें मड़ोड़ और सूजन हो, सिरमें ठंडक मालूम हो, रोनेको जी चाहे।**

कौस्टिकम (Causticum)--**आवाज़का धीमा पड़ जाना, गलेमें या पेटमें दर्दका होना, परेशानीकी हालत रहना, ज़्यादा पेशाबका होना।**

सिमीसिफ़्यूजा (Cimicifuga)--**हिस्टीरियाका दौरा जब रहमकी ख़राबीकी वजहसे हो, बेचैनी हो, चिड़चिड़ापन हो बाईं तरफ़ और छातीके नीचे दर्द हो, पेटमें ऐसा मालूम हो कि बैठा जाता है।**

कौक्यूलस (Cocculus)--**जब दौरा मासिकधर्मके दर्दके साथ हो और बहुत ज्यादा पेशाब पीले रंगका होता हो, नीचेका धड़ हिल न सके और खांसी रहती हो।**

कौफ़ियाक्रूडा (Coffea Cruda)--**नींद न आनेकी वजहसे जब दौरा हो, परेशानी हो, ज़रा सी हरकतमें दिमाग़पर असर पड़े। डाक्टर लडलमकी यह राय है कि यह दवा ज़्यादा उम्रकी औरतोंको जल्द आराम करती है।**

इगनेशिया (Ignatia)--**गलेमें रुकावट हो, दम घुटे, निगलनेमें तकलीफ़ हो, रंज रहे, ठंडी सांस ले, बदनमें सनसनाहट और पेटमें गड़गड़ाहट हो।**

मौस्कस (Moschus)--**कभी कभी बेहोश हो जाय, धीमी नब्ज़ हो, बदन ठंडा रहे, मुंह खुश्क हो, सिरमें दर्द रहे।**

नक्सवोमिका (Nux. vomica)—कब्ज़के साथ दौरा रहे, खट्टी और कड़वी डकारें आवें, हिचकी आयें, पेटमें तनाव और दर्द रहे, सिरमें दर्द, घुमरी आएँ, और बेहोश हो जाय। जब ५ या ४ दिनतक यह दवा दी जाय और फ़ायदा मालूम हो तो एक खुराक सलफ़र देकर फिर यही दवा दी जाय।

प्लाटीना (Platina)—बेहोशी और मौतका डर दौरेके साथ मालूम हो, सांस घुटे, रज काले रंगका गाढ़ा और अधिक निकले। जब रहमके सिकुड़नेकी वजहसे हिस्टीरिया होता है तो यह दवा जल्द फ़ायदा करती है। ऐसी घटना होनेपर मरीज़का जी भोग करनेको चाहता है।

पलसैटिला (Pulsatilla)-जल्दी रोने या हँसने लगे, दौरेके वक्त चेहरा पीला पड़ जाय और कपकपी आवे, कोई चीज़ अच्छी न लगे, चुप रहे, चीजोंमें स्वाद न मालूम हो, सवेरे मुंह फीका फीका मालूम हो। मासिकधर्म बन्द हो जाय या बहुत कम हो। इस दवाके साथ सेबीना या सिलिसिया भी देते हैं।

सीपिया (Sepia)—दौरेके साथ पेटमें ऐंठन हो, गले और छातीमें ऐंठन हो, हाथ पैर ठंडे रहें, पसीना ज़्यादा आये, फिक्र और सुस्ती रहे, मासिकधर्म वक्तपर न हो।

वैलेरियेना (Veleriana)—दौरेके साथ ऐंठन ख़ासकर शामको हो, गलेमें कोई चीज़ अटकी मालूम हो, पेशाब ज़्यादा साफ़ और पतला हो, रोनेको जी चाहे, पेडूके नीचेकी नसें तनी हुई मालुम हों।

दौरेकी हालतमें डाक्टर हेयरकी यह राय है कि मरीज़को पकड़कर मुंह और नाक बन्द कर देना चाहिये और थोड़ी देर बाद छोड़ देना चाहिये। इससे यह फ़ायदा होगा कि वह साफ़ हवाको ज़्यादा खींचेगा। मड़ोड़ वगैराको भी फ़ायदा होगा। दूसरी राय यह है कि ठंडा पानी मुंह और गर्दनपर कुछ ऊंचाईसे डाला जाय। नाकपर भी पड़े तो कोई हर्ज नहीं क्योंकि इससे दम घुटेगा और तरावट पहुंचेगी और जो सांस दम घुटनेके बाद खींचकर लिया जायगा वह दौरेको फ़ायदा करेगा।

डाक्टर रेनौल्डसकी (Dr Reynolds) यह राय है कि हर तरहका डर मरीज़के दिलसे दूर हो जाय और उसको कोई फिक्र और तकलीफ़का ख़्याल न रहे। यही जल्दी अच्छे होनेकी सूरत है। अलावा अपने मामूली कामके टहलना, अच्छी बातें करना, दिमाग़ और बदनसे हल्का और अच्छा काम लेना, और हमेशा सब काम वक्तसे करना जल्दी तन्दुरुस्त करता है।

जिस मरीज़को घरकी, कुटुम्ब और बच्चोंकी फिक्र लगी रहती है वह देरमें अच्छा होता है। इसलिए ऐसे मरीज़को अकेलेमें रखनेसे, जहां उसको इन सब बातोंका ख़्याल न रहे, जल्दी फ़ायदा होता है।

गर्म चीजें, मसाले, शराब, चाय, काफ़ी और इसी तरहकी चीजें मरीज़को न खानी चाहियें।

ऊंचेसे गिरते हुए फव्वारे (shower both) के नीचे बैठ कर स्नान करना फायदा करता है क्योंकि जब ठंडा पानी फुव्वारेसे गिरता है तो नसोंका ख़ून दिल और फेंफड़ेकी तरफ़ हरकत करता है। लेकिन अगर ठंडे पानीसे जी घबरावे तो गुनगुना पानी करके तब इसी रीतिसे स्नान किया जाय। अगर सिरपर बड़े बाल हों तो यह तरकीब है कि एक रेशमी कपड़ा तेलमें भिगोकर सिरपर बांध लिया जाय ताकि सिरके बालोंपर पानी असर न करे।

भीड़भाड़में या तंग जगहमें जहां रोशनी और हवा कम हो या, ऐसी जगहमें बैठना जहां लैम्प वगैराकी रोशनी ज़्यादा हो, किस्से कहानीकी किताबें पढ़ना, थियेटर देखना, रातको ज़्यादा जागना, सूरज निकलनेके बाद तक सोते रहना, बेवक्त खाना, इस बीमारीको बहुत ही हानि पहुंचाता है। इसलिये हर मरीज़को इनसे बचना चाहिये। डाक्टर जे० डबलू० कुरन की यह राय है कि बहुत ज़्यादा ठंडे पानीमें कुछ देरतक हाथको

डुबोना और मलना जैसे कि हाथ धोते हैं, इस मर्ज़को फ़ायदा करता है। इससे दूसरा फ़ायदा यह होता है कि मसानेमें अगर पेशाब रुका होगा तो फौरन हाजत हो जायगी।

ऊपर लिखी हुई बीमारियां औरतोंके लिए बहुत ही दुखदायक हैं और उनके इलाजमें बेपरवाही करनेसे औरतोंकी ज़िन्दगी बेकाम हो जाती है। इसके अलावा रोगीका असर सन्तानपर पड़ता है और सन्तान भी कमज़ोर और बीमार होती है। कभी कभी यहां तक असर होता है कि ख़ानदानका ख़ानदान कमज़ोर हो जाता है, उनकी उम्र कम हो जाती है और तरह तरहकी बीमारियां पैदा हो जाती हैं। इन सब खराबियोंसे बचनेके लिए मां बापको चाहिये कि अपने बच्चोंकी आदत, रहन सहन, खाना पीना, पहनाव और तन्दुरुस्तीके जो सामान हैं उन सबको बचपनसे ही ठीक रक्खें। लड़के और लड़कियोंकी शादी छोटी उम्रमें भूल कर भी न करें, क्योंकि इसका भी सन्तानकी उत्पत्तिपर बुरा असर पड़ता है। हम पांचवें अध्यायमें विवाहकी अवस्था, उसकी खराबी और फ़ायदे, औरतोंके बांझ होनेकी वजह और जो जो बीमारियां गर्भधारण करनेपर या उसके बादमें हो जाती हैं लिखेंगे और साथ ही साथ उनका इलाज भी बतायेंगे ताकि घर गृहस्थकी औरतें और ऐसे लोग जो इलाज करवानेकी शक्ति नहीं रखते इससे फायदा उठा सकें।

खेतिहरोंकी खोज

[ले० पं० गङ्गाप्रसाद वाजपेयी, बी० एस-सी.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

(१)

पिछले लेखमें जो उगंडानिवासी बगंडोंका वर्णन किया गया है वह एफ्रिकाके सब पुराने निवासियोंपर घटित नहीं होता। बगंडा, यद्यपि आस्ट्रेलियन, फिलिपन, भीमनपुरी और संथालोंसे एक दर्जा बढ़े हुए हैं, तथापि उनकी कृषिक्रिया अत्यन्त साधारण और हीन है। प्रकृति उनके लिए सब कुछ करती है, वह स्वयं बहुत कम काम करते हैं। जब प्रकृति उनका भोजन पकाते पकाते शिथिल हो जाती है तो वह भी एक स्थानको छोड़ कर दूसरे स्थानपर चले जाते हैं। एफ्रिकाके बहुतसे हबशी 'याम' खा कर अपना पालन करते हैं। कुछ हबशी स्त्रियां, टिम्बकटूसे गिनीतटतक, खरपतवारोंसे ढके हुए गांवोंमें, सर्व भस्मकारी भास्करकी प्रखर किरणोंके नीचे अपनी लकड़ीकी उखली चला चलाकर मृदु झङ्कारसे दिशायें गुंजारित किया करती हैं।

आस्ट्रेलिया और एफ्रिका दोनों प्रदेशोंमें गोरे आदमीने आकर नई सृष्टि की है। यही युरोपीय गोरे, संसारके एक और प्रदेशमें भी पहुंचे हैं और वहां भी अपना साम्राज्य स्थापित कर प्राचीन वासियोंका नाम लगभग मिटा सा चुके हैं। पृथ्वीका यह बड़ा प्रदेश आजकल-अमेरिका या नई दुनियाके नामसे प्रख्यात है।

उत्तरीय अमेरिकाके पश्चिमीय भागमें पपैगो इंडियन्स नामकी एक जाति रहती थी। अमेरीकाका यह प्रदेश बालुकामय है। कहीं संभव है जल निकल आये इस आशासे इस जातिने सोनेरनकी चौरस भूमिको गढ्ढोंसे ढक दिया। यह जाति

Agriculture कृषि]

बड़े धार्म्मिक संस्कारोंसे शुद्ध और धार्म्मिक रीति-पर एकत्रित किये हुए बीजोंको साथ ले कर, जल पानेकी आशासे मैदानोंको खोदती हुई, ऊँचे ऊँचे पहाड़ोंसे दिखलाई पड़नेवाले बादलोंका सैकड़ों कोस पीछा करती हुई भागती थी। जहां कहीं इसे रुका हुआ अथवा बहता हुआ पानी मिल जाता या तर ज़मीन ही दिखलाई पड़ती, वहां झट यह बीज बोने प्रारंभ कर देती थी। उठते हुए पौदोंको असीम साहस, उत्साह और धैर्यसे सींचती, उगी हुई फ़सलको परिश्रमसे इकट्ठा करती और कुछ बीजोंको फिर बोनेकेलिए चुन लेती। इस प्रकार जबतक प्रकृति इसकी सहायता करती तबतक उसी स्थानपर आनन्द मनाती और भूमिकी उपज घटनेपर आगे चलती बनती।

इसी प्रदेशके आसपास दूसरी जातिके इंडियन अपने भाइयों तथा दूसरे देशके वासियोंसे कहीं चढ़े बढ़े थे। उन्होंने उस बालुकामय प्रदेशमें नहरें बनवाईं, अच्छे अच्छे महल खड़े किये और प्रकृतिसे लड़कर अच्छी खेती उपजाई। आज दिन वहांके निवासी गोरे भी इस जातिके कृत्योंको आश्चर्य्यसे देखते हैं। जब उनके पास लोहेके हथियार नहीं थे, तबकी बनी हुई नहरोंका सहारा लेकर गोरोंने उस मरुभूमिको स्वर्ग बना दिया है।

हम संसारकी असभ्य जातियोंके खेतिहरोंकी खोज कर चुके। इनके रङ्ग ढङ्ग और व्यवहारसे यह पता लगता है कि अमेरिकाके कुछ इंडियनोंको छोड़कर शेष जातियां केवल एक ही प्रकारसे खेती करती थीं।

(२)

इन असभ्य जातियोंकी खोज करते करते हम नई दुनिया पहुंच गये हैं। आजकल अमेरिकाका नाम लेते ही कला, कौशल और व्यवसाय लक्ष्मीकी आधुनिक क्रीड़ाभूमिका स्मरण हो आता है। वहांकी वैभव-लक्ष्मीको देखकर चित्त स्थगित हो जाता है। पाठको थोड़ी देरके लिए हम प्रकृति देवीके इस मनोहर उद्यानमें, सौंदर्य्य-सुखमाके इस अभिनय क्षेत्रमें, मानव देवताओंके इस नंदन-काननमें विश्राम लेंगे और यहांकी समृद्धि-लक्ष्मीका दर्शन कर कृतकृत्य होंगे। यदि आपको यह कार्य्य अरुचिकर न प्रतीत हो तो आप भी हमारा साथ दीजिये।

जिस समय हम रेड इंडियनोंकी खोज करनेके-लिए पूर्वीय समुद्रकी यात्रा कर रहे थे, उस समय हमारा जहाज़, सीलोन, रंगून, सिंगापुर, हांगकांग, शंघाई, याकोहामा होकर पैसिफ़िक महासागरके भयङ्कर तूफ़ानोंको झेलता हुआ अमेरिकाके सैन-फ़्रांसिसको नामक बंदरपर पहुंचा था। इस यात्रामें हमारा जहाज़ चीन और जापान सरीखे प्राचीन और उन्नत देशोंको छूता हुआ गया था। किसी समय संसारकी सभ्यतामें भारतवर्ष, चीन और जापान ही अग्रगण्य थे। यहांकी कृषिकला, यहांका व्यवसाय सबसे अधिक उन्नत दशामें था। परन्तु अब केवल जापान ही, जो किसी समय इन तीनों देशोंमें सबसे निखट्टू था और जहां पूर्वीय सभ्यताकी छाया सबसे पीछे पड़ी थी संसारके उन्नत देशोंमें गिना जाता है, भारतवर्ष और चीन तो विश्व ब्रह्मांडके कौतुकागारमें प्रकृति-नटीके रचे हुए दो सुंदर और प्राचीन खिलौने मात्र समझे जाते हैं। यह सब समयका फेर है। जिस समय हमारा जहाज़ इन देशोंसे होता हुआ जा रहा था उस समय हम संसारकी असभ्य जातियोंकी कृषि-कलाका अध्ययन कर रहे थे और तब तक हमारा ध्यान सभ्य जातियोंकी ओर आकर्षित नहीं हुआ था।

परन्तु अमेरिकाकी रमणीक भूमिपर पैर रखते ही चित्त विह्वल हो गया। ऋद्धि सिद्धियोंसे परिपूर्ण महालक्ष्मीके इस विलास स्थलमें आते ही हृदयके नेत्र खुल गये। कौनसा ऐसा मानव हृदय होगा, जो इस मायाके मोहमें न पड़ जाय! पाठको! हमें भय है कि यदि आप एक बार भी अमेरिका पहुंच गये तो आपका ब्रह्मज्ञान और आपका

वेदान्त भी नवीन रूप धारण कर लेगा, वहांसे लौट कर स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थके समान आपको भी वेदान्त केसरी ही बनना पड़ेगा ! अस्तु, आपके हृदयके भाव चाहे जो कुछ हों, किन्तु मनोरमाकी इस विशाल साकार मूर्तिको देखकर हमारे नैनोंसे अश्रु वर्षा होने लगी ! हृदय-नेत्रोंके सामने भारतकी दीन दशाका चित्र घूम रहा था, प्रत्यक्ष नेत्रोंके सामने, प्रकृति देवी अपने मनोहर वेष भूषा से, शतधा, सहस्रधा कोठिधा हास्य-छटा छोड़कर, नवयौवनाके रूप गर्वित मधुर कटाक्षोंका तिरस्कार करती हुई हृदय बेध रही थी। उस हास्य परिपूर्ण देशमें, जीवन-नदी, चंचल, चपल तरङ्गोंको अपने वक्षस्थलपर धारण किये हुए, नव विकसित यौवन कलिकाओंका आलिङ्गन करती हुई अनवरत मृदुल कलरवसे शान्ति सागर में लीन होती है। यहां न तो आर्त्त क्रन्दन है, न करुण विलाप, न तो मलीनता है, न दारिद्र न हृदयतिमिर है; न परिताप पीड़ना ! मैले कुचैले कृश शरीरपर एक मैली लंगोटी बांधे १४ घंटेके कठिन परिश्रमके बाद जठराग्निके प्रचंड दाहसे भस्मीभूत, महाजनके वाग्बाण और जमींदारोंके लट्ठ जूतोंका फलाहार करनेके उपरान्त, निर्लज्ज, निर्दयी जीवको शीतसे बचानेकेलिए मूषकोंकी भांति घासके गट्ठरोंमें छिपते हुए कोई प्राणी उस देशमें दिखलायी नहीं पड़ते ! वहां लाखों दुधमुहे बच्चे निराहारके कारण अपनी माताके दूधसे वंचित हो, बिन खिले कुसुमदलकी तरह, प्रति सप्ताह अपने माता पिताके हृदयपर बज्राघात कर मुरझा नहीं जाते। न तो प्लेग ही वहां करोड़ों प्राणियोंकाआहार कर पाता है, न विशूचिकाका प्रकोप ही कहीं देखनेको मिलता है। सरस्वती और लक्ष्मी एक दूसरेसे होड़ करती हुई उस देशको अपना रही हैं।

कितना शोक है कि जिस भारतकी देवी लक्ष्मी हों वह भारत तो मरभुक्खोंका देश बन बैठे और दूसरे देश लक्ष्मीवान हों ? पाठको, क्या इस कलङ्कको आप अपने मस्तकसे दूर न करेंगे ? क्या आपके कीर्ति—चन्द्रको भी यह अपयश—कलङ्क प्यारा ही बना रहेगा ?

(३)

यदि हम भारतकी इसी दुर्दशाका कारण, स्थिर चित्त हो ढूंढ़ें तो यह पता लगेगा कि इस देशमें बहुत दिनोंसे यह धारणा चली आती है और यह धारणा अब भी बहुतसे लोगोंमें पूर्ववत दृढ़ है कि विद्या और लक्ष्मीसे वैर है। इन लोगोंका मत है कि जो द्रव्योपार्जन करना ही अपना श्रेय समझते हैं उन्हें बचपनसे ही किसी व्यवसायमें लगना चाहिये। लोगोंकी यह धारणा हम लोगोंकी शिक्षा प्रणालीसे और भी दृढ़ हो जाती है। हमारे यूनिवर्सिटीके शिक्षित नवयुवक प्रोफ़ेसर, वकील और डाक्टर होनेके अतिरिक्त क्या हो सकते हैं ? देशकी सम्पत्ति बढ़ानेमें वह कुछ भी हाथ नहीं लगाते, हां दूसरोंकी उपार्जित द्रव्यको ही बांट बूंट कर अपना पेट भरते हैं।

परन्तु वास्तवमें यह बात ठीक नहीं है। युरोप और अमेरिकाके लोग सरस्वती उपासनाके कारण ही लक्ष्मीके दर्शन कर सके हैं। उनके यहां औद्योगिक और कला कौशलकी शिक्षा पाठशालाकी शिक्षाके साथ ही दी जाती है। उनकी विद्याका एक विभाग अर्थकरी विद्या भी है, जिसका अभाव हमारे देशमें प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त उन लोगोंमें वैज्ञानिक शिक्षाने हल चल मचा दी है। वैज्ञानिक अनुसंधान करना जिस प्रकार अपना जी जान होम कर, उन लोगोंने सीखा है उसका अनुकरण जिस दिन भारतमें होगा उस दिन भारतका गौरव-सूर्य्य फिर एक बार पूरबमें अपनी पूर्ण प्रभा से चमकेगा।

वैज्ञानिक शिक्षाके विषयमें भी इस देशमें बहुत भ्रम फैला हुआ है। लोगोंका अनुमान है कि वह मनुष्य जो नित्यके कामोंमें लगा हुआ है एक वैज्ञानिककी अपेक्षा अधिक काम करता है। वैज्ञानिक बैठा हुआ स्वर्ग पाताल एक कर देनेकी

सोचा करता है पर एक कारबारी आदमी, खेतसे नाज उगाता है, कारखानोंमें माल तैयार करता है और देश देशान्तरोंमें पहुंचा कर अपने देशको धनवान बनाता है। वैज्ञानिकोंकी पीढ़ियों पर पीढ़ियां साधरण विषयोंपर नुक्ता चीनी करते करते समाप्त हो जाती हैं और उनके प्रयत्नोंसे संसारके धन भंडारमें कोई उन्नति नहीं होती-हां विद्या भंडारमें चाहे कितनी अधिकता क्यों न हो। उनका यह कथन कुछ अंशमें बिलकुल ठीक है, नित्य व्यवहारमें लगे हुए मनुष्योंके बिना संसारका कोई काम नहीं चल सकता पर हमारी भूमि हमें अन्न दिये जाती है, इसलिए कृषिविद्याके हम पंडित हैं, हमें वैज्ञानिकोंसे कोई संबंध नहीं ऐसा समझना बड़ी भारी भूल है।

वैज्ञानिक लाखों रुपिया ताप फूंककर, सैकड़ों जानें गंवा कर, हज़ारों वर्षोंके सतत परिश्रमके बाद प्रकृतिके कुछ रहस्योंको जान सका है, किंतु जिन रहस्यों का पता उसे लगा है उनके सदुपयोगसे संसारकी कायापलट हो गई है।

वैज्ञानिकोंका नित्य-व्यवहार-दक्ष लोगोंसे क्या संबंध है इसे पाठक आगे चल कर समझेंगे।

अस्तु,—हम लोग रेड इंडियनोंका हाल जानकर अमेरिकामें नवागन्तुक युरोपियनोंका हाल जाननेको रुके थे, न कि व्याख्यान सुननेको। अतः पाठको चलिये कुछ इन लोगोंकी अवस्था भी देखिये।

पहले हम कह चुके हैं कि अमेरिकाके कुछ इंडियनोंने मरुभूमिमें नहरें खुद वाई थीं पर आजकलके अमेरिकनोंने उस मरुभूमिको स्वर्ग बना दिया है। चलिये इसी मरुभूमिके स्वर्गका आनंद लें। यह मरुभूमि का स्वर्ग सैनफ्रांसिसकोके निकट ही उत्तर अमेरिकाके पश्चिम प्रांतकी पर्वतमालाके पीछे अएरीज़ोना नामकी एक रियासत है। अगले अंशमें इसीका वर्णन किया जायेगा।

(४)

अरीज़ोना

मरुभूमिका स्वर्ग! तो वह कैसी मरुभूमि थी जिसका स्वर्ग बन गया? संभव है हमारे पाठक हमसे यह प्रश्न कर बैठें। अतः मैं पहलेसे उन्हें मरुभूमिकी कथा सुना रक्खूंगा। एरीज़ोनाको लोग "परमेश्वरका भूला हुआ देश" कहा करते थे, कोई कोई उसे औंधी रीतिवाला देश कहते थे। अच्छा इसका अर्थ क्या था? एरीज़ोना एक ऐसा विचत्र देश है कि जहां जलानेको लकड़ीकी यदि आवश्यकता हो तो कुआं खोदना पड़े और यदि जल लानेकी ज़रूरत हो तो आकाश चढ़नेकी नौबत आये! पानीकेलिए पर्वतोंपर चढ़ना और लकड़ीके लिए कुंआ खोदना, कहिये इससे अधिक और आश्चर्य्यकी क्या बात होगी।

तो फिर एरीज़ोनामें क्या पैदा होता था? बड़ी दूर दूर पर बालूके ढेरोंपर उगे हुए सेंठे, कहीं कहींपर छोटे, मोटे बिना पत्तीवाले भूरे या सुफ़ेदी लिए हुए वृक्ष। हां एरीज़ोनामें एक वृक्षराज भी होते हैं, इनका नाम है कैक्टस। कैक्टस दो प्रकारके होते हैं। एक तो "दानव कैक्टस" और दूसरे "पीपा-कैक्टस"। दानव कैक्स ४५ फ़ीट तक ऊंचा होता है, यह सूखा रूख सा खड़ा रहता है, इसकी डालें लम्बे डंडोंकी सी होती हैं। इस जातिके कुछ वृक्ष फल भी देते हैं, यह फल ऐसे बढ़िया और कांटेदार होते हैं कि अमेरिकाके प्राचीन निवासी अभीतक इनका उपयोग बुरुशके स्थानमें किया करते हैं।

पीपाकैक्टस केवल ५ फ़ीट लम्बा होता है पर इसका तना शराबके पीपेका सा बना होता है। प्यासे मुसाफिरोंकेलिये यह वृक्ष अमृत वृक्ष है। अमेरिकन इंडियन्स इसकी चोटी अंडेकी तरह चट उड़ा देते हैं, और भीतरका गूदा जिसमें पानी भरा रहता है एक लकड़ीसे मथते हैं। मथनेके बाद गूदा निचोड़ा जाता है। इस प्रकार पीपेमें पानी तैयार किया जाता है। यह पानी अवश्य ही

बहुत बढ़िया और मीठा होता होगा। लीजिये आप भी चखिये पर स्मरण रहे कि मुखसे कोई कटु शब्द न निकले। यहां आपकेलिए शरबत अनार और लेमनेड नहीं रक्खे हैं। जङ्गलमें इससे ही तृप्त हूजिये।

इन वृक्षोंके अतिरिक्त जो एरीज़ोनामें बहुत फैले हुए हैं उनमें एक 'मेस्काइ' (mesquite) नामका वृक्ष होता है। यह वृक्ष बबूल (acacia) वृक्षके समान होता है। यह दो तीन फुटसे अधिक लम्बा नहीं होता पर इसकी जड़ पृथ्वीमें पचास फुटके लगभग फैली होती है। इन्हीं जड़ोंको खोद कर ईंधनका काम निकाला जाता है।

एरीज़ोनामें कुछ और विशेषताएँ भी हैं। जगह जगहपर नमकके ढेर लगे हुए हैं और खार या रेहके ढेरोंका तो कहना ही क्या है। कहीं पानीमें रेह या खार मिल जाय तो कहिये कैसा आनंद आयेगा? वृक्ष, पशु और मनुष्य सभीकी आफ़त आ जाय, फिर भला एरीज़ोनाके वृक्ष विचित्र क्यों न हों? हमारे पौदे तो खारका स्पर्श भी बुरा समझते हैं।

तो फिर इस मरुभूमिकी विशेषताएँ क्या हैं? बालू, खार, कैक्टस, पीनेको पानी न दारद, जानवरोंकेलिए चारा न दारद। कहिये ऐसी भूमिको आप कैसा पसंद करेंगे? पर हमारे अमेरिकन भाईको क्या सूझी है, आप रेगिस्तानके बीचोंबीच अपने घर बारके साथ मकान बना रहे हैं। रेगिस्तानी वृक्ष, और नमकके ढेर आपका स्वागत कर रहे हैं, कुछ सोचिये तो मालूम होगा कि सूर्य्यकी प्रखर किरणें झुलसानेको तैयार हैं, गला सींचनेको पानी दुर्लभ है। आपकी इस वहशतको देख कर सींगवाला, कुबड़ा, मेंढ़क किड़किड़ाता है और अपने मित्र ज़हरीली छिपकलीसे (बस यही दो इस स्थानके प्रसिद्ध जन्तु हैं। कहता है "क्या बेवकूफी है?" पाठको आपमेंसे कितने इस बेवकूफीके लिये कहिये तैयार हैं?

थोड़ासा संतोष कीजिये, फिर देखेंगे कि यह भयानक भद्दे जन्तु मनुष्यपर हंसते हैं या मनुष्य उनपर। अमेरिकन भाई उत्तर देता है "मुझे पानी दो, फिर जहां बालूपर पड़े तुम धूपमें भुन रहे हो वहां मेरे जानवर घुटनोंतक चारेमें खड़े होंगे। तुम्हारे मित्र छिपकलीकी पीठपर जो सुनहली धारियां पड़ी हुई हैं, मेरे नारङ्गी और संतरोंके रङ्गको देख कर लज्जित होंगी। मेरे शफ़तालूके वृक्ष फलोंसे झुके दिखलाई पड़ेंगे। जहां मकईके दाने छिटकानेमें इंडियन व्यस्त घूमते होंगे वहां शश्य श्यामला पृथ्वी लहराती दिखलाई पड़ेगी। हमारे खजूर और अंजीर मिश्रके फलोंको मात करेंगे, हमारे यहां अंगूर ऐसे उपजेंगे जैसे कभी स्पेनमें न फले हों, बीघोंके बीघे कद्दू और तरबूज़ दिखलाई पड़ेंगे"। यदि हमारा भाई अपने मकान बनानेमें व्यस्त न होगा तो इसी प्रकारका कुछ उत्तर देगा।

शफतालू, नारंगी, अंगूर, बादाम, और अंजीर यह नंदनकाननका पद्यात्मक वर्णन है या इसी पृथ्वीका सूखा हाल! यदि एरीज़ोनामें संसारके भिन्न भागोंमें उत्पन्न होनेवाले फल एकत्र ही उत्पन्न होते हैं तो फिर सारा संसार एरीज़ोना क्यों नहीं दौड़ पड़ता? कमसे कम हममेंसे बहुतेरे मन चले तो अभी एरीज़ोना चल देनेके लिए तैयार होंगे। पर संयुक्तदेशोंकी सरकार हमारे इस जोशको स्थिर न रहने देगी। वह कहेगी कि हमारे राज्यके इस प्रदेशमें जानेके पहले हमें यह बतलाओ कि तुम्हारे पास कुछ पूंजी है या नहीं? यदि इस साल तुम्हारे अंगूर न फलें, बादाम तुम्हें धोखा दे जायं तो तुम भूखों तो न मरने लगोगे? क्या तुमने अपनी कमाईसे इतना रुपया बचा रक्खा है कि कुछ वर्षों तक आनंदके साथ अपना जीवननिर्वाह कर सको और अपने परिश्रमका मधुर फल पाने तक संतोष कर सको?

यह कैसे सवाल? हमें आशा थी कि एरी-

ज़ोना जाते ही जाते, हम चाहें जितने कङ्गाल क्यों न हों, धनाढ्य हो जायंगे पर यह संयुक्त-राज्यकी सरकार उलटे हमारे संचित धनपर आंखे लगाये है !

प्यारे पाठको ! सावधान हो ! मरुभूमिका स्वर्ग ऐसे ही नहीं बनता, ज्ञान, बुद्धि, द्रव्य,साहस और उत्साहके पानीने एरीज़ोनामें यह पानी चढ़ाया है ! परिश्रम, असफलता, और कष्टकी सीढ़ियोंपर चढ़कर हमारे अमेरिकन बंधुने सफलताको चोटीपर अपना विजय-केतु फहराया है। संसार-समरमें आलस्य और आनंदका जीवन बितानेवाले कभी विजयी नहीं हुए हैं।

(५)

केवल पानी पाकर ही अमेरिकनोंने एरीज़ोनाकी कायापलट कैसे कर दी ? उनसे पहले रेड इंडियन भी एरीज़ोनामें नहर बना चुका था पर वह अंगूर और बादाम न उगा सका। फिर अमेरिकनके सिरमें कौनसा सुर्खाबका पर लगा था ? संयुक्तराज्यकी सरकारने इंजीनियरोंका एक दल " (Reclamation Service) " एरीज़ोना भेज दिया। इन्होंने नहरें बना डालीं पर जिस नमक और खारके कारण मरुभूमि मरुभूमि थी उसका क्या हुआ ? वहां फल कैसे होने लगे ?

यह चमत्कार शताब्दियोंमें प्राप्त किये हुए ज्ञानके बलपर हुआ। पहले अध्यायोंमें हम असभ्य जातियोंकी खेतीका हाल पढ़ चुके हैं, सभ्य जातियां उनसे किस बातमें बढ़ी चढ़ी थीं ?

असभ्य जातियां केवल एक ही बीज बोया करती थीं। सभ्य जातियां कई प्रकारके वृक्ष उगाती हैं। सभ्यजातिके लोग हल चलाना जानते हैं। उन्हें खादका उपयोग मालूम है। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक और नई बात सीखी है। असभ्य जातिवाले भूमिकी उर्वरा शक्ति नाश करके एक स्थानसे दूसरी जगह भाग जाते हैं। विद्वानोंका अनुमान है कि किसी समय अफ्रीकाके कई प्रान्त जो अब ऊजड़ हैं जङ्गलोंसे ढके थे, हबशियोंने उनका नाश मारा है। पर सभ्य जातियोंमें हम देखते हैं कि वह भूमिके एक टुकड़ेको न मालूम कितनी पुश्तोंसे बराबर जोतते चले आते हैं। उनकी पृथवीकी उर्वरा शक्ति नष्ट क्यों नहीं होती ? यदि इस प्रश्नका उत्तर हम ध्यानपूर्वक सोचें तो हमें मालूम होगा कि इसका कारण भी बहुतसे बीजोंका बोना है। जिस खेतमें दो तीन साल गेहूं उग चुका है उसमें एक वर्ष चना बो देनेके बाद फिर ज्योंका त्यों गेहूं फल सकता है। अदल बदल कर फसलें उगानेकी प्रथा सभ्य जातियोंकी एक और विशेषता है।

सभ्य जातियोंको इन बातोंका ज्ञान एकदम ही नहीं हो गया ! पर परस्पर प्रेमभावसे इकट्ठा रहनेके कारण, उनकी सामाजिक धारणाके कारण एक पीढ़ीका ज्ञान दूसरी पीढ़ीको अनायास ही मिल गया और इस तरह उत्तरोत्तर उन्नति होती गई।

संसारमें कृषिकलाका विकास तीन केन्द्रोंमें हुआ—एक तो भारत चीन और जापान में, दूसरे मेडीटेरेनियन समुद्रके पूर्वीयतटकी भूमिपर, (एशिया माइनर, मिश्र, बेबीलन इत्यादि), तीसरे अमेरिकाके उष्ण प्रदेशमें विशेषतः मेक्सिको और पेरूमें। संसारके इन्हीं तीन केन्द्रोंमें कृषिका विकाश क्यों हुआ इस प्रश्नका उत्तर देना हम पाठकोंपर छोड़ते हैं। यदि वह भूगोलमें इन स्थानोंकी प्राकृतिक रचना और प्राकृतिक वर्णन पढ़ेंगे और साथ ही इस बातका भी ध्यान रक्खेंगे कि सूर्यकी गरमीके बिना पौधोंका होना असंभव है तो वह इस भेदका पता लगा लेंगे।

अच्छा, पाठको यह बतलाओ कि एरीज़ोनामें सबसे बढ़िया और महत्वपूर्ण फ़सल कौन है ? आप कहेंगे फल और अनाज। सच है, फल और अनाजसे खूब रुपया आता है पर फल और अनाज कहांसे आये ? इसी प्रश्नको उठा कर इस अध्यायमें हम लोग आगे बढ़े थे।

चलिये इस प्रश्नका उत्तर कहीं और ढूंढ़ें। हमें मालूम है कि फ़ारिस और एशिया माइनरमें कृषिकलाका बहुत विकास हुआ है। इन स्थानोंमें भी पानीकी कमी है और खार भी बहुत है। बहुत परिश्रम और खोजके बाद यहांके निवासी कुछ प्रकारकी दूबें उगानेमें सफलप्रयत्न हुए। इन पौधोंपर खारका कुछ असर नहीं होता और न इन्हें विशेष जलकी ही आवश्यकता है। यह दूब स्पेन पहुंची। वहांवाले इसे एल्फ़ैल्फ़ाके नामसे पुकारते हैं। एल्फ़ैल्फ़ा,में नीले फूल होते हैं और जहां अधिक पानी बरसता है वहां नहीं होता। स्पेनवाले इसे दक्षिण अमेरिकाके एक प्रान्तमें ले गये और वहांसे फिर स्पैनिश मिशनरियोंने इसे कैलीफोर्निया पहुंचाया। एरीज़ोनामें यही एक ऐसा पौदा है जो उग सकता है। हमारे अमेरिकन भाईने इसे वहां बोया और इसी एक पौदेके कारण मरुभूमि स्वर्ग बन गया।

यह कैसे? सुनिये! जहां अल्फ़ैल्फ़ा पैदा होगा- और यह नई सिंची हुई रेहिया मिट्टीमें होगा— वहां घोड़े और पशु उत्पन्न हो सकते हैं' कारण कि अल्फ़ैल्फ़ा पशुओंका सुन्दर चारा है। जहां घोड़े और पशु होते हैं वहां हल खींचने और गाड़ी खींचनेवाले पशु मिल सकते हैं और जहां पशु होंगे वहां खाद होगी। खादसे पृथ्वीकी उर्वरा शक्ति बढ़ेगी और इसकी सहायतासे दूसरे अनाज और फल उगाये जा सकेंगे।

इसके अतिरिक्त अल्फ़ैल्फ़ा स्वयं पृथ्वीकी उर्वरा शक्ति बढ़ाती है। अतः अल्फ़ैल्फ़ा ही एरीज़ोनाका कल्पवृक्ष है।

भगवतकी विचित्र लीला है, कौन कह सकता है कि दिव्य फल, फूल और अनाजोंके आगे एक तुच्छ दूबका इतना महत्व है। सृष्टिमें इतने उत्तम, सुस्वादु और हितकर पदार्थ होते हुए भी वैद्य लोग संखियाको ही संसारका अमृत बतलाते हैं।

विद्युत्तरङ्ग अथवा अदृश्य प्रकाशकी प्रकृति*

[ले० अध्यापक महावीरप्रसाद बी. एस-सी., एल. टी.]

लोहेके तारके एक टुकड़ेको लीजिये और इसके दोनों सिरोंको दो कीलोंमें कुछ ढीला बांध दीजिए। अब यदि इसको एक ओर खींचकर छोड़ दीजिए तो यह कांपने लगेगा और कुछ देर तक काम कर ठहर जायगा। ढीले बंधे तारके कांपनेसे कोई शब्द नहीं सुन पड़ेगा, किन्तु यदि इसी तारको कुछ कस कर बांध दीजिए तो अंगुलीसे एक ओर कुछ खींच कर छोड़ते ही वह भन्नाती हुई ध्वनिसे जल्दी जल्दी कांपने लगेगा। इसका कारण क्या है कि पहले तो कोई शब्द नहीं होता था परन्तु पीछे शब्द सुनाई पड़ने लगा?

इसका उत्तर विज्ञानवेत्ता यों देते हैं-किसी प्रकारके तारके कांपनेसे उसकी अगल बगलकी हवामें धक्के लगते हैं, जिनसे लहरें उठकर सुननेवालेके कानोंतक पहुंचती हैं और शब्दका बोध करती हैं। किन्तु मनुष्यकी सुननेकी इन्द्रियोंकी क्षमता बड़ी ही संकीर्ण होती है, इसलिए कानोंमें हवाकी लहरोंके पहुंचनेसे ही शब्दका बोध नहीं होता। ढीले बंधे तारमें कम्पन धीरे धीरे होता है, इसलिए इनसे हवाकी जो लहरें उठती हैं उनकी संख्या बहुत कम होती है और कानोंमें इनके प्रवेश करनेपर भी इनका ज्ञान नहीं होता। इसीलिए ढीले तारको खींचकर छोड़ देनेसे हमको कोई शब्द नहीं सुन पड़ता। हवाके बहुत द्रुत स्पन्दनसे भी उत्पन्न ऊंचे सुरको हमारी श्रवणेन्द्रिय नहीं ग्रहण कर सकती है। दो सीमाओंके बीच केवल ग्यारह 'ग्रामों' के पड़दों द्वारा

*श्री जगदानन्द राय प्रणीत 'जगदीश चन्द्रेर आविष्कार' नामक ग्रन्थके वैद्युतिक तरङ्ग वा अदृश्यालोकेर प्रकृति, शीर्षक लेखका भावानुवाद।

जो शब्द उत्पन्न होते हैं उन्हींको मनुष्यके कान ग्रहण कर सकते हैं। परीक्षा द्वारा देखा गया है कि वायुमें प्रति सेकंड ३० से कम तथा ३४८०० से अधिक कम्पन हों तो इनसे उत्पन्न हुए शब्दका ज्ञान मनुष्योंको नहीं होता।

वायुमें कम्पन होनेसे जिस प्रकार शब्दकी उत्पत्ति होती है, ईथर वा 'आकाश' नामक ब्रह्माण्डव्यापी एक बहुत ही सूक्ष्म तथा स्वच्छ पदार्थके कम्पनसे प्रकाशकी उत्पत्ति होती है। वायुकी लहरोंकी नाईं ईथरकी लहरें देखनेकी इन्द्रियोंमें प्रवेश करके हमको देखनेकी क्षमता प्रदान करती हैं। जैसे हमारी सुननेकी शक्ति परिमित है वैसी ही देखनेकी शक्ति भी है। हां, यह अवश्य है कि इसकी सीमा सुननेकी सीमासे भी संकीर्ण है।

अभी बतलाया गया है कि हमारे कान ग्यारह 'ग्रामों' के शब्द ग्रहण कर सकते हैं परन्तु आंखें तो आकाश-कम्पनसे उत्पन्न एक ही 'ग्राम' के लाल, पीले इत्यादि सात रंगोंके प्रकाशको ग्रहण कर सकती हैं। यदि 'आकाश' में प्रति सेकंड ४०, ००,००,००,००,००००० चालीस नील कम्पन हों तो हमको केवल लाल रंगके प्रकाशका बोध होता है। इससे आगे कम्पनकी संख्या क्रमसे बढ़ती जाय तो पीला, हरा, बैंजनी इत्यादि रंगवाले प्रकाशका अनुभव होने लगता है। परन्तु यदि कम्पनकी मात्रा पहली संख्याकी दूनी अर्थात ८० नील हो जाय तो उससे उत्पन्न प्रकाश-के ग्रहण करनेकी शक्ति मानवी नेत्रोंमें नहीं होती।

मोटी बात यह है कि लाल रंगका प्रकाश उत्पन्न करनेवाले कम्पनसे मन्द और बैंजनी (violet) रंगका प्रकाश उत्पन्न करनेवाले कम्पन से द्रुत 'आकाश' कम्पनके द्वारा जो प्रकाश उत्पन्न होता है उसे मनुष्य नहीं देख पाता। किसी चतुर बजानेवालेके पास एक 'सप्तक' युक्त एक ही हारमोनियम हो तो जैसे वह कुछ परदोंको दबाकर अपनी संगीत लालसा किसी प्रकार तृप्त करता है वैसे ही हम लोग भी परिमिति शक्तिवाली आंखोंकी सहायतासे लाल इत्यादि कई मौलिक रंग तथा इन्हींसे बने कई यौगिक रंगोंको देखकर तृप्त होते हैं।

ऊपर कहे गये जिस मन्द 'आकाश'-कम्पनसे उत्पन्न प्रकाशको हमारी आंखें तथा अन्य इन्द्रियां ग्रहण नहीं कर सकती हैं उस अदृश्य प्रकाशकी प्रकृतिके किसी तथ्यका पता नाना कारणोंसे अब तक नहीं लगा था। हां, इतना अवश्य मालूम हुआ था कि जिस 'आकाश'--कम्पनसे लाल रंग-का प्रकाश उत्पन्न होता है उससे कुछ मन्द कम्पन-से ताप उत्पन्न होता है। सुविख्यात विज्ञानवेत्ता अध्यापक हर्ज़ (Hertz) और इनके शिष्योंने उक्त इन्द्रियातीत मन्द आकाश स्पन्दनको विद्युत्तरङ्गका नाम देकर इसके सम्बन्धकी अनेक गवेषणाएं आरम्भ की थीं और इच्छानुसार 'आकाश' स्पन्दन उत्पन्न करनेका विद्युत् द्वारा एक अच्छा उपाय ढूंढ़ निकाला था, किन्तु इस महान् आविष्कारके साधनके मार्गमें एक बहुत बड़ा विघ्न आकर उपस्थित हो गया। गवेषणाका कार्य बहुत दूर तक नहीं पहुंचने पाया था कि अध्यापक हर्ज़की अचानक मृत्यु हो गयी जिससे सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया। निश्चित रूपसे विद्युत्तरङ्ग उत्पन्न करना तथा यन्त्रके द्वारा उसको इन्द्रियगोचर कराना बड़ा ही कठिन है, इसी कारण बहुत दिनोंतक अदृश्य प्रकाश अथवा विद्युत्तरङ्ग सम्बन्धी गवेषणामें विशेष उन्नति नहीं हुई। कई वर्ष हुए, भारतके सपूत, कलकत्ताके प्रेसीडेन्सी कालेजके अध्यापक डाक्टर जगदीश-चन्द्रवसुने अपने ही हाथोंसे बनाये हुए यन्त्रोंके सहारे इसके सम्बन्धकी अनेक जानने योग्य बातोंका आविष्कार करके सारे संसारको चकित कर दिया है। विविध बाधाओंके होते हुए, कलकत्ता जैसे स्थानमें रह कर एक महान् आविष्कार कर डालना सचमुच आश्चर्यकी

बात है। इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं कि इसमें आविष्कारकके अदम्य उत्साह तथा असाधारण प्रतिभाका परिचय मिलता है।

अध्यापक वसुका सारा यन्त्र साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त है और प्रत्येक भाग उद्भावकके असामान्य सूक्ष्मदर्शन तथा शिल्प कुशलताका चरमादर्श कहा जा सकता है। यन्त्र-के पहले भागसे विद्युत् प्रक्रिया द्वारा पहले कही गयी इन्द्रियातीत आकाश तरङ्गें अथवा विद्युत्तरङ्गें उत्पन्न की जाती हैं और दूसरे तथा तीसरे भागों-में उन तरङ्गोंके अस्तित्वका ज्ञान कराने तथा उसके सम्बन्धकी नाना परीक्षाओंको दिखाने-की व्यवस्था है।

तरङ्ग उत्पन्न करनेवाला पहला भाग ऐसी कुशलतापूर्वक बनाया गया है कि साधारण रीति-से दबाते ही यन्त्रकी एक कमानी हट जाती है और दर्शकोंको न दिखाई पड़नेवाले अदृश्य प्रकाश-की तरङ्गोंसे सारा परीक्षागार भर जाता है।

सामान्य प्रकाशमें बहुत ही मन्द आकाश क-म्पनसे लेकर बैंजनी रङ्ग उत्पन्न करनेवाली तरङ्गों-से भी द्रुत नाना श्रेणीके स्पन्दन सर्वदा वर्त्तमान रहते हैं, जिनमेंसे अदृश्य प्रकाश उत्पन्न करनेवाली मन्द तरङ्गोंको अलग करना बड़ा कठिन होता है। अध्यापक वसुने अपने यन्त्रका आविष्कार करके केवल अदृश्य प्रकाशोत्पादक 'विद्युत्तरङ्ग' के उत्पन्न करनेका बड़ा ही सुन्दर उपाय बतला दिया है।

इस यन्त्रके दूसरे भागकी गठन-निपुणता और कार्य और भी आश्चर्यजनक है।

यह पहले ही कहा गया है कि आंखोंकी बना-वट ऐसी नहीं है जिससे हमें विद्युत्तरङ्गके अस्ति-त्वका अनुभव हो सके-इसलिए मन्द विद्युत्तरंग-से उत्पन्न प्रकाशको देखनेकेलिए मानवचक्षु सदाके लिए अन्धे हैं। विद्युत्तरङ्गके अतिरिक्त कई प्रकारका अदृश्य प्रकाश विद्यमान है परन्तु हम लोग असीम प्रकाश सागरमें रहते हुए भी अंध-वत् अवस्थामें हैं।" अध्यापक वसुने एक कृत्रिम चक्षुका निर्माण करके उस असीम और अदृष्टपूर्व प्रकाश पुंजको इन्द्रियग्राह्य कर दिया है।

पाठक पाठिकाओंको मालूम होगा* कि हमारी आंखोंके गोलकके पिछले भागमें एक परदा होता है जिसपर बाहरी वस्तुओंकी प्रकाशमयी छवि पड़नेसे परदेमें कुछ परिवर्तन हो जाता है जिससे इसमें फैला हुआ स्नायुजाल उत्तेजित हो जाता है और सम्भवतः किसी विद्युत् प्रक्रिया द्वारा मस्तिष्कके अंश विशेषमें कुछ आघात हो जाता है। इस प्रकारकी उत्तेजना ही हमारे दृष्टिज्ञानका कारण है। अध्यापक वसुके दूसरे यन्त्रका कार्य अधिकतर आंखके परदेपर (retina) पड़े हुए प्रकाशके कार्यको तरह होता है।

अक्षि गोलकके पिछले भागमें स्थित परदे-की नाईं इस यन्त्रमें भी रासायनिक द्रव्योंका एक परदा लगा हुआ है जिसपर अदृश्य प्रकाश उत्पन्न करनेवाली विद्युत्तरङ्गोंके पड़ते ही दो तार द्वारा* विद्युत-धारा बहकर यन्त्रमें लगे हुए धारामापक यन्त्र (galvanometer) में आन्दोलन उत्पन्न कर देती है। किन्तु यह आन्दोलन बहुत ही मन्द होता है जिससे दर्शकगण इसको देख नहीं सकते। दर्शकोंको भी यह आन्दोलन दिखानेके लिए धारा-मापक यन्त्रमें एक छोटा दर्पण लगाया गया है जिसके बगलमें एक दीपक सजा हुआ रखा रहता है। परीक्षा आरम्भ करनेके पहले दीपकके प्रकाश-की किरणें दर्पणपर पड़ कर सामनेकी दीवाल अथवा परदेपर लौट जाती हैं और अचंचल दीख पड़ती हैं परन्तु परीक्षा करते समय धारामापक के साथ दर्पणका आन्दोलन आरम्भ होते ही दीवालपर पड़नेवाला प्रतिफलित प्रकाश दर्शकों-के सन्मुख इधर उधर हिलने लगता है।

विज्ञानवेत्ताओंने अबतक जिस इन्द्रियातीत आकाश तरङ्गकी कल्पना मात्र की थी अध्यापक

* देखिए विज्ञान भाग ३ संख्या ३ पृष्ठ २७५

वसुने पूर्वोक्त रीतिसे उसका अस्तित्व दर्शकों को प्रत्यक्ष दिखला दिया।

अब पाठक पाठिकागण यह प्रश्न कर सकते हैं कि यन्त्रसे उत्पन्न आकाश तरंग वास्तवमें धीरे आकाश कम्पनसे उत्पन्न अदृश्य प्रकाशकी तरङ्ग ही है, इसका प्रमाण क्या है, और इस रहस्यमयी प्रकृतिके अनन्त रहस्यमय भाण्डारसे अलग होकर कोई अपरिज्ञात और अदृष्टपूर्व व्यापार क्या हो नहीं सकता ? इस यन्त्रकी सहायतासे नाना परीक्षाओं द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि प्रकाश तरङ्गके साथ विद्युत्तरङ्गका सादृश्य सम्पूर्ण रूपसे है, जिसका प्रमाण अगले लेखमें पाठकों के सन्मुख उपस्थित किया जायगा।

त्वचा और जीवाणु।

[ले० पं० मुकुटबिहारीलाल दर, बी. एस-सी.]

त्वचाका महत्व

यदि हमारे शरीर ऊपरसे त्वचा द्वारा आच्छादित होकर सुरक्षित न होते तो सम्भवतः एक सप्ताहमें सारी मनुष्यजाति बैक्टीरियाके आक्रमणसे तबाह हो जाती। किसी ऐसे किलेकी कल्पना कीजिये जिसको शत्रुकी सेनाने चारों तरफसे घेर रखा हो। किलेके सिपाही फाटकोंको बन्द करके उनकी रक्षा कर सकते हैं, परन्तु यदि शत्रु दीवार तोड़ दे तो रक्षा करनेका काम बड़ा कठिन हो जाता है। दुर्भाग्यवश यदि चारों तरफस
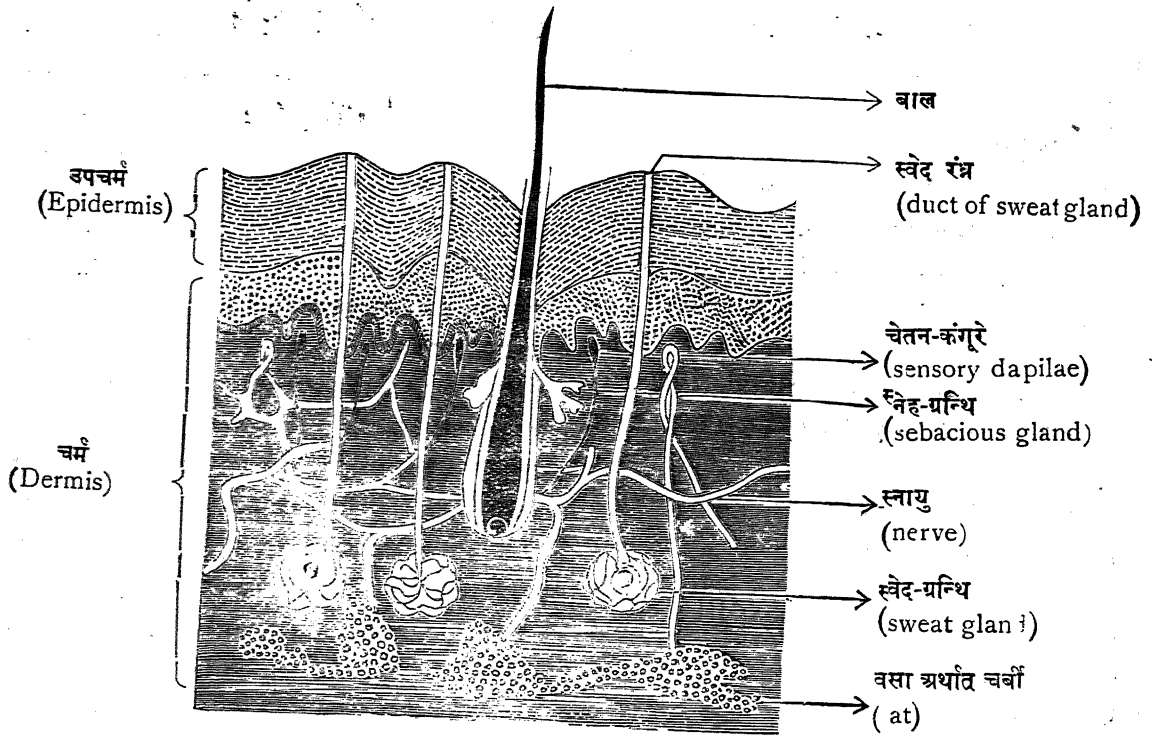
चित्र ३

Medical वैद्यक]

दीवार गिरा दे तो फिर किलेकी रक्षा करना असम्भव हो जाता है। मनुष्यके देहरूपी किलेकी भी यही दशा है। इसे बैक्टीरिया-शत्रु दिन रात घेरे रहते हैं। इसमें दो फाटक हैं, मुंह और नाक। जहां शत्रुओंने इनके द्वारा शरीरमें प्रवेश किया कि लड़ाई छिड़ गई—रक्ताणुओं और रोगाणुओंमें खूब ही ठनती है। रक्ताणुओंके जीते हमारी जीत है और उनके हारे हमारी हार।

अब यदि कहींसे खाल कट जाय, किलेकी दीवार कहींसे टूट जाय, तो शत्रुके आक्रमणकेलिए एक और राह निकल आती है। पर किलेकी दीवारका गिरना कोई साधारण घटना नहीं है। वहां पर फौरन सिपाही (श्वेत रक्ताणु) रक्षाकेलिए और इंजिनियर और बेलदार मरम्मतकेलिए (रक्त रक्ताणु) भेज दिये जाते हैं। सारे शरीरपरसे खाल उतर जानेसे जिस विकट समस्याका सामना सबको करना पड़े उसका अनुमान सहजमें ही लगाया जा सकता है। खाल इतनी पतली होनेपर भी हमारी कितनी रक्षा करती है!

त्वचाकी रचना।

त्वचाकी वास्तवमें दो तहें होती हैं, ऊपरीको जो बहुत पतली होती है और हलकी रगड़ खानेसे उपड़ आती है उपचर्म (Epidermis) और भीतरीको चर्म (dermis) कहते हैं। बालोंका कुछ अंश त्वचाके बाहर निकला रहता है और बाकी हिस्सा उसके नीचे छोटे छोटे गड्ढोंमें रहता है, जिन्हें रोम कूप (hair follicle) कहते हैं।

स्वेद पिंड (sweat glands) चर्ममेंसे होती हुई चर्म तलपर छोटे छोटे छिद्रों द्वारा खुलती हैं।

बक्टीरिया जो खालद्वारा शरीरमें प्रवेश करते हैं।

हम लोगोंके खाल रूपी कवचके अरक्षित स्थान यहां रोमकूप (hair follicle) और स्वेद पिंड (sweat gland) हैं। इन्हीं अरक्षित छिद्रों द्वारा कुछ बैक्टीरिया कभी कभी नीचे इकट्ठा होकर सूजन तथा फुड़िया, फुनसी, फोड़े, विस्फोट (carbuncle) और उदर्द (erysipiles) पैदा कर देते हैं और यही बैक्टीरिया इन घावों द्वारा शरीरमें भी प्रवेश करते हैं। अन्य रोगोत्पादक बैक्टीरिया घावों द्वारा अथवा कीड़ोंसे कटे हुए स्थान द्वारा शरीरमें प्रवेश करते हैं।

बैक्टीरिया वास्तवमें जीवित पौदे हैं।

हम त्वचा द्वारा शरीरमें घुसनेवाले जीवाणुओंका हाल किसी अगले लेखमें बतायेंगे। परन्तु यहां पर यह बात अच्छी तरह ध्यानमें आ जानी चाहिये कि बैक्टीरिया किस तरहके होते हैं जिसमें आगे समझनेमें सुविधा हो। अगर हम अपनी आंखोंसे उतना ही देख सकें जितना कि अनुवीक्षण यंत्र द्वारा तो हमें अपनी खालोंपर बैक्टीरियाके जंगलके जंगल दिखाई देंगे और झुंडके झुंड बैक्टीरिया धूलके कणों तथा मक्खीकी टांगोंमें चिपटे हुए मालूम होंगे।

चाहे हम उन्हें देख पावें वा नहीं वे वास्तवमें नन्हें नन्हें जीवित पौदे होते हैं।

चित्र ५—मुंहमेंसे निकाली हुई पेंसिल जीवाणुओंसे लदी हुई है।

चित्र ४ – मक्खीकी टांगोंपर कितने जीवाणु चिपटे हुए हैं।

अगर हम बैक्टीरियाको विना अनुवीक्षण यंत्रके देख सकें तो मुंहमेंसे निकाली हुई पेंसिल या किसी मक्खीकी टांग जीवाणुसे इस प्रकार लदी हुई दिखाई देगी, जैसा ऊपरके चित्रमें दिखलाया है।

तर्क विवेक

[ले० पं० सरयूप्रसाद सर्यूपारीण]

जो किसी एकका स्वरूप है, वह किसी दूसरेका जो उससे संसर्ग नहीं रखता है स्वरूप नहीं हो सकता है। यथा, जो हाथीकी सूंड़ हाथीका स्वरूप है, वह मक्खिकाकी जो हाथीसे संसर्ग नहीं रखती है सूंड़ नहीं हो सकती है। ऐसेही जानना चाहिये कि जो ज्ञान हमारा स्वरूप है तो वह हमसे न्यारे घट पट मठादिका,जो हमारे स्वरूप नहीं हैं, स्वरूप नहीं हो सकता है। परन्तु जैसा हमको स्वविषयक ज्ञान होता है लगभग वैसा घट पट मठादिका भी ज्ञान हमको होता है, और जो घटपट मठादिका ज्ञान उनका स्वरूप नहीं है तो ऐसेही संभव है कि हमारा भी स्वविषयक ज्ञान हमारा स्वरूप नहीं है। इस शङ्काके समाधानमें कहा जाता है कि घट पट मठादिका ज्ञान आवरण भङ्ग है। क्योंकि हमारे अस्तित्वसे सिद्ध एतादृश हमारे इन्द्रियोंका किसी न किसी अंशमें उन घटपट मठादिके साथ संयोग होनेसे उनके विषयमें हमारे मोहात्मक अज्ञानरूपी अन्धकार (आवरण) का तिरोभाव (छिप जाना) रूपी भङ्ग अवश्य स्वीकार करना पड़ता है। किसी वस्तुके रहते भी उसका तिरोभाव असंभव नहीं है। क्योंकि, अल्प प्रकाशवाली कोठरीमें, प्रकाशके रहते भी प्रकाशका तिरोभाव, घाममेंसे चले आये जनके पक्षमें प्रत्यक्ष होता है। हम विषयक हमारे ज्ञानमें आवरणका तिरोभाव तब माना जाता जब हमारा भी अज्ञान कभी घटपट मठादिके अज्ञानकी नाई उपस्थित हुआ होता, पर हम नित्य व्योहार (व्यवहार) गोचर हैं, इस कारण हमारा अज्ञान हमें कभी नहीं होता; अतएव हमारे ज्ञानमें हमें न आवरण है और न उसका तिरोभाव है। सुषुप्ति दशामें भी हमारा अज्ञान हमें नहीं होता–इसकी उपपत्ति आगे चलके की जायगी।

Philosophy दर्शन]

सबका निचोड़ यह निकला कि ज्ञानकी अन्यथानुपपत्तिसे हम अपनेको ज्ञान स्वरूप ही स्वीकार करें और जिस जिस विषयमें अपने मोहात्मक अज्ञानरूपी अन्धकारावरणका तिरोभाव करते हैं उस उस विषयकी ज्ञानक्रियाके हम कर्त्ता अर्थात् ज्ञाता होते हैं। स्वविषयक ज्ञानरूपी प्रकाशके साथ एक ही आधारपर अन्य विषयक अज्ञानरूपी अन्धकारका रहना असम्भव नहीं है। क्योंकि स्पष्ट पाया जाता है कि उसी स्थूल वस्तुके बोधके साथ उसी स्थूल वस्तुके सूक्ष्म अवयवोंका अज्ञान एक आधारपर रहता है। तात्पर्य यह है कि हममें हमारा स्वरूप, स्वविषयक ज्ञान रहके भी घटपट मठादि अन्य अन्य विषयोंका अज्ञान रहना असंभव नहीं है। ऐसेही एक आधारपर अनेक विषयोंका भान भी असंभव नहीं है। क्योंकि एकही हम, हमारा अनुसन्धान रखते हुए भी, नेत्र खोलते मात्र नाना मूर्त्तादि पदार्थोंके भानवान् होते हैं।

जानना चाहिये कि ऊपर जो तिरोभाव निर्दिष्ट किया गया, उसके हेतुको ज्ञानका बाधक कहते हैं। यथा अल्प प्रकाशवाली कोठरीमें घाममेंसे चले आये जनके पक्षमें जो प्रकाशका तिरोभाव प्रत्यक्ष होता है, उसका, उस जनके लोचन गोलकके साथ अधिक प्रकाशका योग हेतु है। इसलिये वही वहां प्रकाशके ज्ञानका बाधक है। बाधकके व्यापारको बाधा वा दोष कहते हैं। उक्तविध बाधाके निवारणमें हमारे सहकारीको गुण कहते हैं। यथा आंखोंमें उपनेत्र (चश्मा) लगानेसे स्थूल वस्तुके सूक्ष्म सूक्ष्म अवयव भी दृष्ट पड़ने लगते हैं। इसलिये उपनेत्र, स्थूल वस्तुके सूक्ष्म सूक्ष्म अवयवोंके ज्ञानकी बाधाके निवारणमें, हमारा सहकारी समझा जाके, गुण कहा जाता है।

तिरोभाव का निवारण होके वस्तुके स्वरूपके ज्ञानके होनेको आविर्भाव (प्रकट होना) कहते हैं। यथा उपनेत्रकी सहकारितासे स्थूल वस्तुके सूक्ष्म सूक्ष्म अवयवोंका जो हमको ज्ञान उदय होता है उसे आविर्भाव कहते हैं। वस्तुओंके स्वरूपके आ-

विर्भावसे और कुछ हमको हो अथवा न हो परन्तु अन्तमें आनन्द अवश्य होता है, इसमें संशय नहीं। यह हममें सहज स्वाभाविक बात पाई जाती है, और नियम है कि वस्तुके स्वभावमें तर्क वितर्क नहीं चल सकता है, जैसे अग्नि दाहक क्यों है इस प्रश्नके उत्तरमें स्वभावको छोड़ कर और क्या तर्क वितर्क किया जा सकता है ? निदान ज्ञानमें वस्तुओंके स्वरूपके आविर्भावके लिए प्रयत्न करनेको हम निष्फल नहीं कह सकते हैं।

जागनेकी दशामें हमको जैसा हमारा अनुसन्धान (ज्ञानका अनुबन्ध) रहता है, सुषुप्तिकी अवस्थामें (निद्राकी जिस अवस्थामें स्वप्न भी नहीं दिखाई देता है उस अवस्थाको सुषुप्तिकी अवस्था कहते हैं) हमको वैसा हमारा अनुसन्धान यद्यपि नहीं रहता है, सत्य है, तथापि सुषुप्तिकी अवस्थामें भी हमसे हमारे स्वरूप हमारे स्वविषयक ज्ञानके तिरोभावकी सम्भावना नहीं है; क्योंकि ज्ञान स्वरूपताके पक्षमें अपने लिये अपना तिरोभाव अपना अभाव ही समझा जाता है। यथा उसी ज्ञानके लिये उसी ज्ञानका तिरोभाव उसी प्रकाशके लिये उसी प्रकाशके तिरोभावकी ना॰ उसका अभाव ही है। पक्षान्तरमें हमारा स्वविषयक ज्ञान जो हमसे भिन्न समझा जावे (अर्थात् हमारा स्वरूप वह न समझा जावे) और सुषुप्तिके समयमें उसका हमसे वियोग माना जावे तो अभावसे किसी भाव पदार्थकी उत्पत्ति तो हो नहीं सकती है, क्योंकि जबलों जिसका अभाव है, तबलों वह आप भावापन्न हो नहीं सकता है और जबलों वह आप उपस्थित नहीं है, तबलों उसके बिना कोई दूसरा उसके अभावका नाश नहीं कर सकता है ; कारण अपने अभावका नाश अपनेको छोड़के दूसरा कोई कर नहीं सकता है। इससे मानना पड़ता है कि हमारे साथ फिर योग (सम्बन्ध) के पूर्वमें और हमसे वियोगके पश्चात् भी हमारा स्वविषयक ान अन्यत्र कहीं रहता होगा; क्योंकि ज्ञान, भावपदार्थ है। उसकी उत्पत्ति अथवा विनाश असंभव है।

यदि कोई आविर्भाव वा तिरोभावकी उत्पत्ति अथवा विनाश माने तो उत्तरमें हम कहेंगे कि जब किसी युक्तिसे किसी वस्तुकी उत्पत्ति अथवा विनाशकी सिद्धि हो ही नहीं सकती है, तब आविर्भाव वा तिरोभावकी भी उत्पत्ति अथवा विनाश नहीं हो सकता है। आविर्भाव वा तिरोभाव रहके भी जो क्रमसे वे फिर आविर्भूत वा तिरोभूत माने जावें तो अनवस्था दोष होगा। सत्य है। प्रामाणिक अनवस्थाको दोष नहीं मानते हैं। इस प्रकारकी अनवस्था तो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे सिद्ध है। पूर्वमें प्रमाणोंकी अनवस्थाको दोष इसलिए माना था कि वह किसी प्रमाणका स्वरूप ही सिद्ध नहीं होने देती थी। अन्तमें प्रमाणका स्वरूप सिद्ध होनेके अनन्तर उस प्रमाणसे सिद्ध अनवस्था दोष दोष नहीं कहा जा सकता है। निदान इन युक्तियोंसे जब हमारे स्वविषयक ज्ञानकी सत्ताका अवश्य स्वीकार करना पड़ता है तब कौन कह सकता है कि हमारी सुषुप्तिकी अवस्थामें वह कहां चला जाता है। हम में ही रहके जो वह हमसे भिन्न माना जावे, और भिन्न होनेके कारण हमारे प्रति उसका आविर्भाव वा तिरोभाव स्वीकार किया जावे तो ज्ञानकी सहायताके बिना हम किसीके आविर्भाव वा तिरोभावका अनुभव नहीं कर सकते हैं। सो जब सुषुप्तिकी अवस्थामें हमारा स्वविषयक ज्ञान हमसे तिरोहित है, तब उसकी सहायताके बिना उसके तिरोभावका अनुभव हम कैसे कर सकते हैं। हमारा स्वविषयक ज्ञान हमसे भिन्न होके भी हममें रहता है, सुषुप्तिकी अवस्थामें उसके सत्तामात्र संबन्धसे उसके तिरोभावका अनुभव हमको होता है; क्योंकि नैयायिकोंके मतमें निर्विकल्पक ज्ञान रहके भी प्रत्यक्ष नहीं होता है और अपने कार्यको उत्पन्न करता ही है। उसमें हमारे स्वविषयक ज्ञानकी उद्भुत रूपसे सहायताकी आवश्यकता नहीं है। यदि ऐसा कहा जावे तो सुषुप्तिकी अवस्थामें भी

तिरोभावोंका अनुभवात्मक ज्ञान हमको होता है, ऐसा कहना पड़ेगा। परन्तु हमारे स्वविषयक ज्ञानको हमसे भिन्न मानके आप किस प्रमाणसे हमको अथवा हमारे स्वभावको सिद्ध करते हैं? यदि हमारे स्वविषयक ज्ञानसे हमको अथवा हमारे स्वभावको आप सिद्ध करें तो हमारे सिद्ध होनेके पूर्व क्या प्रमाण है कि हमारा स्वविषयक ज्ञान भ्रमात्मक नहीं है ? हमारे स्वविषयक ज्ञानके संवाद वा विसंवादके विचारकी चर्चा जो आप चलावें तो कहिये पहिले नियामक किसको ठहरा लेते हैं ? क्योंकि नियामकके ठहराये बिना अनवस्था दोषसे किसी प्रमाणके स्वरूपकी भी सिद्धि नहीं हो सकेगी। (इसका प्रपञ्च पूर्वमें हो चुका है बार बार पिष्टपेषण व्यर्थ है)। "कुछ भी न सिद्ध हो तो न हो, जाने दो तर्क वितर्क छोड़ो"। ऐसा भी नहीं कह सकते हैं। क्योंकि किसी सत्यके स्वरूपकी सत्ताके बिना जगत्में कुछ भी व्यवहार न पाया जाता। इससे हमारे स्वविषयक ज्ञानको हमसे अभिन्न मानके सुषुप्तिकी अवस्थामें भी हमसे उसका स्वरूप सम्बन्धसे योग स्वीकार करना ही युक्तियुक्त है। सुषुप्तिकी अवस्थामें हमारा स्वविषयानुसंधान जो जागतेकी अवस्थाके तुल्य नहीं रहता है, तिसका हेतु हमारे स्वविषयक ज्ञानका तिरोभाव नहीं है किन्तु सुषुप्ति रूपी दोषसे अन्यान्य पदार्थोंके आवरण भङ्गमें बाधा हेतु है। क्योंकि सुषुप्तिकी दशामें हमको अन्यान्य पदार्थोंके आवरण भङ्गके तिरोभावका बोध होता है। यदि उक्त तिरोभावका बोध सुषुप्तिकी अवस्थामें हमको न होता तो जागनेके उपरान्त उस बोधके विषय अन्धकारमय उक्त तिरोभावका स्मरण भी हमको न होता। जागने अनन्तर आकाशमें व्याप्त अन्धकारके सदृश सुषुप्तिकी अवस्थामें अनुभूत उक्त तिरोभावका स्मरण तो हमको सचमुच होता है। इससे सिद्ध होता है कि उक्त तिरोभावका अन्धकारके रूपमें अनुभव सुषुप्तिकी अवस्थामें भी हमको होता ही है। उक्त तिरोभावके स्मरणको मिथ्या कल्पित वस्तु विषयक स्मरण नहीं कह सकते हैं क्योंकि स्वभावसे नियम करके वह (स्मरण) संवादी होता है।

कल्पित वस्तु विषयक स्मरण विसंवादके कारण नियमसे नहीं होता है। उक्त तिरोभावके स्मरणको, सुषुप्तिसे अनुमित उक्त तिरोभाव विषयक अनुमिति नहीं कह सकते हैं; क्योंकि सुषुप्तिके उत्तर व्याप्ति विचारपूर्वक अनुमान करनेके बिना ही वह (उक्त तिरोभाव) नियमसे स्मरणात्मक बुद्धिका विषय पाया जाता है। उस स्मरणको भ्रमात्मक भी नहीं कह सकते हैं, क्योंकि वह संवादी स्मरण है। निदान इन युक्तियोंसे सुषुप्तिकी अवस्थामें भी अन्य अन्य ज्ञान तिरोभावानुसन्धात हमारे स्वविषयक ज्ञानके स्वरूपमें हम स्वतः सिद्ध हैं। अर्थात् सुषुप्तिकी अवस्थामें भी हमारा खण्डन नहीं हुआ। जब सुषुप्तिकी अवस्थामें भी हम खण्डित नहीं हुये तब स्वप्नकी अवस्थामें हमारा, जो स्वप्नोंके साक्षात्कर्त्ता हैं, कौन खण्डन कर सकता है ?

वास्तवमें स्वप्न वा सुषुप्तिकी अवस्थामें भी निःसन्देह हम थे, तभी तो जागनेके उपरान्त स्वप्न वा सुषुप्तिके पूर्वके अनुभूत सब वृत्तान्तोंका फिर स्मरण कर सकते हैं और स्वप्नमें अनुभूत विषयोंका भी हमको स्मरण होता है। स्वप्न वा सुषुप्तिकी अवस्थामें हम न होते अथवा हम अन्य हो गये होते तो स्वप्न वा सुषुप्तिके पूर्वके अनुभूत वृत्तान्तोंका स्मरण हम न कर सकते और स्वप्नमें अनुभूत विषयोंका स्मरण भी हमको न होता; क्योंकि हम न होके फिर हों नहीं हो सकते हैं और न अन्यके अनुभव विषयका अन्य स्मरण कर सकता है।

इस प्रकारसे जबसे हम शरीरमें हैं और जब तक रहेंगे तबतक तो हमारी सत्ताका खण्डन कदापि किसी युक्तिसे हो नहीं सकता है।

[असमाप्त]

ठोसोंका प्रसार

[ले० प्रोफ़ेसर सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. तथा प्रोफ़ेसर ब्रजराज, बी. एस-सी. एल-एल. बी.]

लम्बप्रसार-गुणक

यह सभी जानते हैं कि गरमी पाकर ठोस पदार्थ फैलते हैं अथवा यों कहना चाहिये कि गरमीसे ठोसोंको लम्बाई चौड़ाई और मोटाई बढ़ जाती है। नीचे एक प्रयोग दिया जाता है जिससे जितनी लम्बाई बढ़ती है, ठीक ठीक नाप सकते हैं।
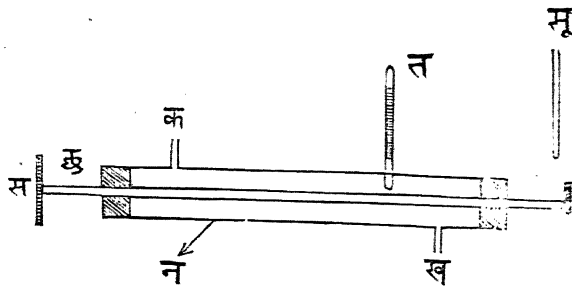
चित्र ६—स-पेच, छ-छड़, क, ख-नलियां, न-नली, त-तापमापक, सू-सूक्ष्मदर्शक।

प्रयोग—किसी धातुकी छड़ छ लेकर एक नली न में बन्द कर देते हैं। नली न के सिरे कागसे बंद रहते हैं, छड़ छ कागोंको छेदती इधर उधर निकली रहती है। क और ख दो नलियां न से जुड़ी रहती हैं। क द्वारा न के भीतर भाप भेजी जाती है, जो ख में होकर निकलती रहती है। इस भापसे छड़ छ गरम हो जाती है। प्रयोगके आरम्भमें छ की लम्बाई और तापक्रम देख लेते हैं। छ का सिरा स पेंचसे कस देते हैं जिससे छड़ उस ओर न हट सके। दूसरे सिरेके पास एक चिन्ह बना कर चिन्हपर सूक्ष्मदर्शक यंत्र इस प्रकार ठहराते हैं कि सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा यह चिन्ह दीखने लगे। क नलीसे भाप भेजते हैं तो छड़ गरम हो कर बढ़ती है। चिन्ह सूक्ष्म दर्शक यंत्रके सामनेसे हट जाता है। अब सूक्ष्म-दर्शकको हटा कर चिन्हपर फिर ले आते हैं। सूक्ष्मदर्शकके साथ ऐसा प्रबन्ध रहता है जिससे उसका हटाव नापा जा सकता है। यही हटाव छ की लम्बाईमें अधिकता अथवा प्रसार है। उसी समय त ताप-मापककी सहायतासे छ का तापक्रम देख लेते हैं।

मान लो

गरम करनेसे पहले छ की लम्बाई ल शतांशमीटर है।

" " " छ का तापक्रम त° श है

गरम करनेसे छ की लम्बाईमें अधिकता अ शतांशमीटर हुई।

" " छ का तापक्रम थ° श हुआ

अब ल शतांशमीटर लम्बाईमें (त-थ)° श तापक्रम बढ़नेसे लम्बाईमें प्रसार अ हुआ

∴ १ शतांशमीटर लम्बाईमें (त-थ)° श तापक्रम बढ़नेसे लम्बाईमें प्रसार $\frac{अ}{ल}$ हुआ

और १ शतांशमीटर लम्बाईमें १° श तापक्रम बढ़नेसे लम्बाईमें प्रसार $\frac{अ}{ल(त-थ)}$ हुआ।

परिभाषा—एक इकाई लम्बाईमें १° श तापक्रम बढ़ानेसे जो (प्रसार) अधिकता होती है उसे लम्बप्रसार-गुणक कहते हैं। यदि लम्ब-प्रसार-गुणक ग हो तो उक्त प्रयोगमें जिस धातुकी छड़ ली गई है उसका लम्बप्रसारगुणक ग $= \frac{अ}{ल(त-थ)}$। इसी प्रकार किसी ठोस पदार्थका लम्बप्रसारगुणक निकाला जा सकता है। कुछ पदार्थोंके लम्बप्रसारगुणक यह हैं:—

तांबा = ·००००१७१८	कांच = ·०००००८८४
पीतल = ·००००१८७८	प्लाटिनम = ·०००००८८४
	जस्ता = ·००००२९४
	सीसा = ·००००२८५

चांदी= ·००००१६१	गन्धक=·००००६४१
सोना= ·००००१४६६	अलूमिनम= ·००००२३१
सफ़ेद पत्थर=·०००००८५	हीरा=·०००००११८
	लोहा= ·००००११२५
कांसा=· ००००१८१६	नमक=· ००००४०४
	नौसादर=· ००००६३

उदाहरण १:—

२० मीटर लम्बी सोनेकी छड़, ४००° श तापक्रम बढ़ानेसे लम्बाईमें कितनोहो जायगी।

१ मीटर लम्बी छड़ १° श गरम करनेसे ·००००१४६६ मीटर बढ़ती है।

" ४००° श " ४००× · ०००० १४६६ मीटर बढ़ेगी

२० " " २०×४००× ·०००० १४६६ मीटर बढ़े गी

=· ११७२८ मीटर

= ११·७२८ शतांशमीटर

इसलिए छड़की लम्बाई गरम करनेके बाद २० मीटर ११· ७२८ शतांशमीटर होगी।

उदाहरण २—

१० गज़ लम्बी लोहेकी रेल तापक्रम १००° श बढ़ानेपर लम्बाईमें कितनी बढ़ जायगी।

१ गज़ लम्बी लोहेकी छड़ १° श गरम होनेसे ·०००० ११२५ गज़ बढ़ती है

१ गज़ " " १००° श " " १००× · ०००० १७२५

१० " " " " " १०×१७० ·०००० ११२५

= · ०११२५ गज़ बढ़ती है

=· ४०५ इंच

= लगभग आध इंच

२—क्षेत्रप्रसार गुणक

तांबे या लोहेकी कोई चौकोर तख़्ती गरम की जाय तो उसका क्षेत्रफल बढ़ जायगा। गरम करनेसे लम्बाई बढ़ती है इसलिए तख़्तीकी लम्बाई चौड़ाई बढ़ जायगी और लम्बाई चौड़ाईके बढ़नेसे क्षेत्रफल बढ़ा। किसी तापक्रमतक गरम करनेसे क्षेत्रफलमें जो अधिकता होगी इस प्रकार जान सकते हैं। पहले तख़्तीकी लम्बाई ल शतांशमीटर चौड़ाई च शतांशमीटर तापक्रम त° श हैं। गरम करके तख़्तीका तापक्रम थ° श कर दिया गया। यदि लम्बप्रसारगुणक ग माना जाय तो तख़्तीकी लम्बाईमें अधिकता=ल ×(थ-त) ग और कुल लम्बाई=ल+ल (थ-त) ग। मान लो कुल लम्बाई ला शतांशमीटर हो तो ला=ल+ल(थ-त) ग। यदि पहले तख़्ती ०° श पर होती तो त=० और ला=ल+ल. थ. ग=ल (१ +गथ)। इसी प्रकार कुल चौडाई चा=च (१ +गथ) गरम करनेसे पहले तख़्तीका क्षेत्रफल =ल. च वर्ग शतांशमीटर

गरम करनेपर तख़्तीका क्षेत्रफल=ला × चा

=ल (१+गथ). च (१+गथ)

=लच (१+गथ)²

=लच (१+२ गथ+ग² थ²)

=लच (१+२. गथ)

[पदार्थोंका लम्बप्रसारगुणक ग बहुत कम होता है (ऊपर देखो) ग² और भी कम होगा। ग² थ² को साधारण हिसाबमें छोड़ देते हैं।]

∴ क्षेत्रफलमें अधिकता

=लच (१+२ गथ)—लच

=लच. २ गथ

लच वर्ग शतांशमीटर थ° श गरम करनेसे

अधिकता = लच. २ गथ

∴ १ " थ° श "

अधिकता = २ ग थ

१ वर्ग शतांशमीटर १° श गरम करनेसे

अधिकता = २ ग

परिभाषा—१ इकाई क्षेत्रफलका १° तापक्रम बढ़ानेसे क्षेत्रफलमें जो अधिकता (प्रसार) होती है उसे क्षेत्रप्रसारगुणक कहते हैं।

ऊपरके उदाहरणमें जहां परिभाषानुसार क्षेत्रप्रसार गुणक क्ष=२ ग, ग लम्बप्रसार गुणक है। ∴ क्षेत्रप्रसारगुणक लम्बा-प्रसारगुणकका दुगना हुआ।

३—घन प्रसार गुणक

ठोसोंमें लम्बाई चौड़ाई और मोटाई तीनों होती हैं। गरम करनेसे तीनों बढ़ती हैं इसलिए घनफल बढ़ जाता है।

परिभाषा—१ इकाई घनफलको १° तापक्रम बढ़ानेसे घनफलमें जो अधिकता (प्रसार) होती है उसे घनप्रसारगुणक कहते हैं।

ऐसे पदार्थकी एक ईंट लीजिए जिसका घनप्रसार गुणक घ है जिसकी लम्बाई ल श. म. चौड़ाई च श. म. और मोटाई म श. म. और तापक्रम ०° श हैं। घनफल = ल × च × म घनशतांशमीटर। ईंटको थ° श तक गरम करनेसे लम्बाई चौड़ाई और मोटाई बढ़ कर ला, चा और मा हो गईं अब ईंटका घनफल = ला × चा × मा घन शताशमीटर

लेकिन, ला=ल [१ + गथ]

चा=च [१ + गथ]

मा=म [१ + गथ]

ला. चा. मा=ल. च. म [१ + गथ]^{३}

=लचम [१ + ३ गथ + ३$ग^{२}$ $थ^{२}$ + $ग^{३}$ $थ^{३}$]

($ग^{२}$ और $ग^{३}$ बहुत छोटे हैं इसलिए साधारणतः छोड़ दिये जाते हैं)

=ल. च. म [१ + ३ गथ]

थ° तक गरम करनेसे ईंटके घनफलमें

=अधिकता ला. चा. मा—ल. च. म

=ल च म. ३ गथ

ल च म में थ° श तक गरम करनेसे अधिकता

=ल च म.३. गथ

१ में थ° श तक गरम करनेसे

अधिकता = ३ गथ

१ मे १° श गरम करनेसे

अधिकता = ३ ग

परिभाषानुसार यह घनप्रसारगुणकके बराबर हुआ।

इसलिए घ=३ग अथवा घनप्रसार गुणक लम्बप्रसार गुणकका तिगुना होता है।

———

विकाशविधिकी कहानी

[ले०—करमनारायण, एम. एस-सी.,]

संसारमें जब हम किसी मनुष्यकी सामाजिक अवस्थाको जांचना चाहते हैं तो उसकी वर्तमान आमदनी, व्यापार तथा व्यवहारकी बाबत पूछते हैं, परन्तु ठीक ठीक अनुमान करनेकेलिए हम यह भी जानना ज़रूरी समझते हैं कि इसने यह वर्तमान अवस्था कैसे प्राप्त की है, इसके बाप दादा कौन थे और क्या काम किया करते थे। इस तरह हम उस मनुष्यका सारा इतिहास जानना चाहते हैं। इसी प्रकार किसी जीवको भली प्रकार जांचनेकेलिए चाहे वह बड़का वृक्ष हो या उसकी शाखाओंपर बैठा हुआ कोई पक्षी मेंढक हो या मछली तितली हो या स्पंज (sponge) उसकी बनावटका ज्ञान ही काफी नहीं है। अण्डकोष (egg-cell) से लेकर युवकावस्थातक उसकी सारी परिवृद्धकी कहानीका जानना भी ज़रूरी है। ठीक यही बात विकाशविधिकी है। केवल यह कह देना कि जीवोंकी वर्तमान अवस्था विकाशविधिसे प्राप्त हुई है काफ़ी नहीं है, परन्तु विकाशविधिके यथोचित् ज्ञानकेलिए उसका सारा इतिहास जानना चाहिए।

पृथ्वी और जीवनका आरम्भ।

ज्योतिष शास्त्र हमें बतलाता है कि अन्तरिक्ष (space) में सूर्य्य, पृथवी तथा अन्य ग्रह और तारागणका एक संप्रदाय है जिसे सूर्य्यसंप्रदाय (solar system) कहते हैं। इस संप्रदायके केन्द्रमें सूर्य्य है और उसके गिर्द आठ ग्रह हैं—(१) बुद्ध (Mercury), (२) शुक्र (Venus), (३) पृथवी (Earth), (४) मङ्गल (Mars), (५) बृहस्पति (Jupiter), (६) शनैश्चर (Saturn), (७) वारुणी (Uranus), (८) वरुण (Neptune)। यह ग्रह अपने अपने पथपर सूर्य्यकी परिक्रमा करते रहते हैं। हमारी पृथवी भी एक ग्रह है और सूर्य्यके गिर्द घूमती रहती है। सूर्य्यऔर ग्रहोंकी वर्तमान

Evolution विकाशवाद]

अवस्थाको छोड़कर हमको अब मालूम यह करना है कि यह सारा संप्रदाय किस प्रकार उत्पन्न हुआ और विशेष करके हमारी पृथवीका आरम्भ कैसे हुआ। क्या सारे ग्रह नक्षत्र, तारागणादि ऐसे-के ऐसेही बना दिये गये थे या प्रकृति (matter) की किसी और अवस्थासे विकसित हुए हैं?

आजकलका ज्योतिषशास्त्र सारे संप्रदायको एक अत्यन्त सूक्ष्म गैससे (gas), विकाशविधि द्वारा प्राप्त हुआ मानता है। इस सूक्ष्म गैसको नीहारिका (Nebula) कहते हैं और इस सिद्धान्त-का नाम नीहारिकावाद (नैबुलर हाईपैाथिसिज़ Nebular hypothesis), है। माना जाता है कि नैबुला बहुत सूक्ष्म और हलकी गैस थी यहांतक कि आजकलकी हलकीसे हलकी गैस उज्जन (hydrogen) भी नैबुला से २० करोड़ गुनी भारी मानी जाती है। यह नैबुला जिसका विस्तार आरम्भमें ६०० करोड़ मील माना जाता है बहुत समयतक अपने केन्द्रिक गुरुत्वआ कर्षण के (gravity) कारण सिकुड़ता रहा और इसके गुरुत्व (density) में परिवर्तन होता गया। कहीं नैबुला अधिक गाढ़ा और कहीं थोड़ा गाढ़ा रह गया और इसलिए नैबुला घूमने लगा। पहले घूमनेकी चाल बहुत तेज़ न थी परन्तु ज्यों ज्यों नैबुलाका पिण्ड परमाणुओंके परस्पर आकर्षणसे और भी सिकुड़ता गया त्यों त्यों चाल भी अधिक तेज़ होती गई। जिस प्रकार रस्सीके एक सिरेपर छोटा सा पत्थर बांध कर दूसरे सिरेको हाथमें लेकर रस्सीको पत्थर समेत हवामें घुमावें तो पत्थरमें भागनेका बल आ जाता है और यदि पत्थर ढीला ही बंधा हुआ हो तो रस्सीसे निकलकर बहुत दूर जा पड़ता है, उसी प्रकार नैबुलाके घूमनेकी चालमें बहुत तेज़ी आ जानेके कारण उसके भी बाहरके हिस्सेमें दूर भागनेका बल उत्पन्न हो गया। इस तरह नैबुलामें दो शक्तियां काम करने लगीं, एक तो परमाणुओंका परस्पर आकर्षण और दूसरी केन्द्रपराङ्मुखबल (केन्द्रसे दूर भागनेकी शक्ति centripetal force)। इन दो शक्तियोंके होनेसे नतीजा यह हुआ कि बाहरके तलमें केन्द्रपरांमुख बल प्रधान रहा, और अन्दरके पिण्डमें परस्पर आकर्षणकी शक्ति काम करती रही। अन्दरका पिण्ड सिकुड़ता गया और बाहरका तल न सिकुड़ सका और इसलिए वाह्य तल एक गैसीय वलय (छल्ला ring) के रूपमें असली पिण्डसे जुदा हो गया। यह छल्ला भी समय पाकर सुकड़ता सुकड़ता एक गोल पिण्ड बन गया और असली नैबुलाकी तरह घूमने लगा। असली नैबुला पहलेकी तरह घूमता गया और सुकड़ता गया। समय समयपर कई और वलय उसमेंसे प्रकट होते गये, जिनसे अन्य ग्रह और तारागण बने। सब वलयोंके फट चुकनेके पीछे जो केन्द्रमें बाकी नैबुला रह गया वह सूर्य्य हो गया। हमारी पृथ्वी भी नैबुलासे कटे हुए किसी गैसीय वलयके गाढ़े होनेसे (जम जाने) बनी हुई मानी जाती है। नीचे चित्रमें पृथ्वीके विकास-का नमूना बनानेका यत्न किया गया है। चित्र के केन्द्रमें एक गोल पिण्ड है जो सुकड़ते हुए नैबुलाका प्रतिरूपक है। इस पिण्डकी मध्य-

चित्र ७—फ्लेमेरियन रचित लापलेस के सिद्धान्त का प्रदर्शक चित्र।
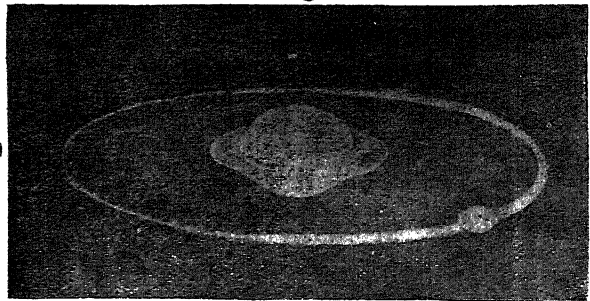
रेखा (equator) उभरी हुई है और यह प्रकट करती है कि गैसीय वलय किस प्रकार बनने आरम्भ होते हैं। बाहर एक और वलय है जो बहुत देरसे फट चुका है और अब बाईं ओर एक स्थान-पर जम रहा है और इकट्ठा हो रहा है। जमकर

यह ग्रह बन जावेगी और यह वलय ही वह पथ होगा जिसपर यह सूर्यकी परिक्रमा देगा।

सूर्यसंप्रदायकी उत्पत्तिका यह वर्णन कदाचित पाठकगणको बिलकुल कल्पित ही मालूम होगा, परन्तु याद रहे कि कांत (Kant) लापलेस (Laplace) और हर्षल (Herschal) तीन मनुष्योंने भिन्न भिन्न रीतियोंसे इस सिद्धान्तको मालूम किया और हरएकने इसके लिए साक्षी एकत्र की। लापलेसने गणितविद्या द्वारा इस सिद्धान्तको सिद्ध किया और हर्षलने आसमानके ग्रहों और नक्षत्रोंकी परीक्षा की और बतलाया कि सब तारागण नैबुलासे विकसित हुए हैं। आजकल भी ग्रहोंके गाढ़ेपनमें बहुत भेद है। वरुण वारुणी, शनि और बृहस्पति बहुत हलके हैं और मङ्गल पृथवी शुक्र और बुद्ध भारी हैं। इसका कारण हमारे सिद्धान्तके अनुसार यह है कि पहले चार ग्रह नैबुलासे पहले अलग हुए और उस समय नैबुला हलका था। ज्यों ज्यों नैबुला सुकड़ता गया त्यों त्यों अधिक गाढ़ा होता गया और चूंकि पिछले चार ग्रह नैबुलाकी गाढ़ी अवस्थामें उत्पन्न हुए इसलिए वह अधिक भारी हैं। साथ ही भिन्न भिन्न नक्षत्रों, पूंछवाले तारों और उलकाओं (shooting stars) में वही रासायनिक द्रव्य हमें मिलते हैं जिनसे पृथवी बनी हुई है और जो गैसीय अवस्थामें सूर्यमें भी विद्यमान हैं। शनिके गिर्द जैसे नीचेके चित्रसे प्रकट है अब भी वलय विद्यमान हैं और कदाचित् इन वलयोंसे कई चन्द्र बनेंगे, जैसे हमारा चांद पृथवीसे फटकर बना हुआ माना जाता है।
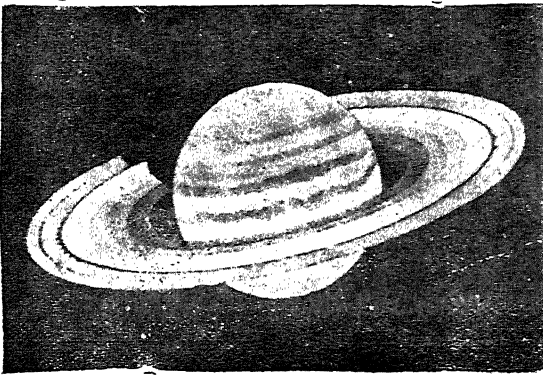
चित्र ८—शनि और उसके वलय।

स्पष्ट है कि नैबुलासे पृथक् होते समय हमारी पृथवी गैसीय थी। सुकड़ते सुकड़ते बहुत देर पीछे द्रव हुई और फिर ठोस हो गई। कदाचित् पृथवीके ठोस होनेपर पहले इसका तल बहुत उष्ण था, गर्म भाप पृथवीसे ऊंचे चढ़ती थी और कदाचित मेंह भी उष्ण पानीका ही बरसा करता था। शनैः शनैः पृथवीका तल ठंडा होता गया और अब भी पृथवी लगातार अपनी गर्मीको खो रही है। जबतक पृथवीका तल उष्ण था, और ठोस नहीं हुई थी तब तक किसी सजीव देहीका पृथवीपर रहना असम्भव था।

इस प्रश्नका उत्तर देना कि सूनी पृथवीपर सजीव देही किस प्रकारसे उत्पन्न हो गए बहुत कठिन है। कई वैज्ञानिकोंने इसपर विचार किया है परन्तु पर्याप्त ज्ञान किसीको भी नहीं है। लार्ड कैल्विन जो उन्नीसवीं सदीके अन्तमें और बीसवीं सदीके पहले पांच छः सालोंमें बड़े वैज्ञानिक माने जाते थे उनका विचार था कि आदिजीव इस पृथवीपर उल्काओं (meteorites) द्वारा आये। इस विचारकी बाबत इतना कहना ही काफी होगा कि इससे जीवके आरम्भका ज्ञान तो बिलकुल ही नहीं बढ़ता। केवल प्रश्न एक पद पीछे उल्काओंपर जा पड़ता है और यह भी मानना बहुत कठिन है कि जीवाद्यम (protoplasm प्रोटोप्लाज़म) किसी और ग्रहसे उल्काओंद्वारा जीता जागता इस पृथवीपर आ सकता है। हमारे वायुमण्डलमें प्रवेश करनेपर जो ताप उत्पन्न होगा वह उसमेंके समस्त जीवित पदार्थका नाश कर देगा।

दूसरा मत जो पिछले दो एक सालोंमें बहुत प्रसिद्ध हो गया है यह है कि सजीव देही कदाचित निर्जीव पदार्थोंसे विकसित हुए हैं। डाक्टर शेफर Dr. Schafer) ने ब्रिटिश ऐसोसिएशनके वार्षिक अधिवेशनपर १९१२ में इस मतकी सविस्तार व्याख्या की थी। वह कहते हैं कि "जीवित पदार्थोंकी उत्पत्तिके लिए भी वही कारण हमें मानने पड़ते हैं जिनके द्वारा जगतमें प्रकृतिकी और अवस्थाएँ प्राप्त हुई हैं और वह कारण विकाशकी मंद विधि है। विकाश सिद्धान्तके अनुसार जीवित पदार्थ किसी एकाएक परिवर्तनसे प्राप्त नहीं हुए परन्तु निर्जीव पदार्थोंसे धीरे धीरे परिवर्तन होनेसे प्राप्त हुए हैं"। पाठकगण जानते होंगे कि सौ वर्ष पहले रसायन विद्यामें दो प्रकारके पदार्थ माने जाते थे, एक तो वह जो अनैन्द्रिक (inorganic) हों अर्थात् पहाड़ोंमें अथवा खान (mine) में पाए जांए और प्रयोगशालामें (laboratry) भी तेज़ाबादिसे तय्यार कर लिए जांय जैसे लवण, और शोरा इत्यादि और दूसरे वह पदार्थ जिन्हें ऐन्द्रिक (organic) कहते थे और जो पौदों और जन्तुओंके शरीरोंमेंसे प्राप्त किये जाते थे और जिनकी बाबत यह भी विचार था कि वह प्रयोगशालामें तय्यार नहीं हो सकते, क्योंकि इनके बनानेके लिये जीवनशक्ति जरूरी है, जैसे खांड, शराब इत्यादि। परन्तु आजकल धातुक और ऐन्द्रिक पदार्थोंमें जो भेद था बिलकुल टूट गया है और अब रसायनवेत्ता प्रयोगशालामें अनैन्द्रिक पदार्थोंसे ऐन्द्रिक पदार्थ बना लेते हैं। इस आविष्कारपर कईयोंका यह विचार हुआ कि कदाचित् थोड़े ही समयमें जीते जागते जन्तु भी ऐन्द्रिक पदार्थोंसे बन जाएंगे, परन्तु इसमें अभीतक सफलता नहीं हुई है और प्राणिविद्याविशारद अबतक बड़े जोर शोरसे कहते हैं कि जीव जीवसे ही उत्पन्न होता है। परन्तु डाक्टर शेफर कहते हैं "कि जीवाद्यमका परीक्षा गृहमें बन जाना भी संभव है और कदाचित् कभी रासायनिक बना लेंगे"।

हम कह चुके हैं कि सजीव देही कदाचित् निर्जीव पदार्थोंसे विकाशविधि द्वारा प्राप्त हुए हैं परन्तु इस बातके लिए पृथ्वीके पिछले इतिहाससे साक्षी मिलना बहुत कठिन है, क्योंकि आदिजीवोंकी बनावट लसदार पानीकी सी थी और वह भूस्तरोंपर अपना निशान नहीं छोड़ सकते थे। बहुत वर्ष पीछे चूनेका (calcareous) या बालूका (siliceous) पिञ्जर विकसित हुआ जिनके निशान भूस्तरोंमें पाये जाते हैं। इसलिए स्पष्ट है कि जीवित पदार्थके विकाश और आरम्भकी साक्षीके लिए पृथ्वीके स्तरोंको ढूंढना निष्फल है। हम नहीं कह सकते कि जीवित पदार्थका विकाश केवल एक ही बार पृथ्वीके पिछले समय पर हुआ है। सम्भव है कि जीवित पदार्थ कई बार विकसित हुआ हो और कदाचित् अब भी हो रहा हो।

सजीवताके लक्षण।

यदि जीवित पदार्थ निर्जीव पदार्थोंसे विकसित हुए हैं तो हमें जानना चाहिए कि जीवित पदार्थोंमें क्या विशेष बातें उत्पन्न हुई हैं जिनसे कि वह जड़ पदार्थोंसे भिन्न समझे जाते हैं। यूं तो हम एक कुत्ते जैसे जीवको एक पत्थर जैसे जड़ पदार्थसे झट पहचान सकते हैं और दोनोंके गुणोंमें बहुत भेद भी बतला सकते हैं परन्तु हमें याद रखना चाहिए कि सब जीवि कुत्तेकी तरह चल फिर नहीं सकते और न सबमें कुत्ते की तरह जानने सूंघने, स्वाद लेने और सुननेकी शक्ति है। वैज्ञानिकोंने सजीव देहियोंके चार लक्षण बतलाये हैं, जिनका हम नीचे वर्णन करते हैं।

(१) परिपाचन और परिवृद्धि (assimilaton and growth)। हर एक जीव चाहे वह पौदा हो वा जन्तु, आहार खाता है और उससे बढ़ता है। पौदे पृथ्वीसे, पानी और भिन्न भिन्न प्रकारके पदार्थ अपनी जड़ों द्वारा खैंचते हैं और उनका

परिपाचन करके उनसे अपने अवयवोंको बनाते हैं। हम देखते हैं कि बीजसे बहुत छोटा सा पौदा उत्पन्न होता है और बढ़ते बढ़ते बड़ा वृक्ष बन जाता है। स्पष्ट है कि वृक्षका इतना लम्बा चौड़ा विस्तार उस आहारके परिपाचनका नतीजा है जो वह वायु और पृथ्वीसे प्राप्त करता रहता है। इसी प्रकार जन्तु भी घास, फल, फूल या मांस खा कर अपने शरीरकी वृद्धि और पुष्टि करते हैं। इसलिए सजीव देहियोंका पहला लक्षण यह है कि वह अपने स्वभावके अनुसार खाद्य (food materials) ग्रहण करते हैं, उनका परिपाचन करते हैं और उनसे अपने अवयव बनाते हैं अर्थात् जीवधारियोंमें आहारको अपने शरीरके अङ्गोंके रूपमें बदल लेनेकी शक्ति है।

(२) सन्तानोत्पत्ति। निर्जीव पदार्थों और सजीव देहियोंमें यह बड़ा भेद है कि जहां जीवधारी संतान उत्पन्न करते हैं निर्जीव पदार्थोंमें इस परम धर्म्मका निशान तक भी नहीं मिलता। पौदोंमें विवाहादिके नियम हिन्दुओंकेसे कड़े हैं। पाठकगण जानते होंगे कि उच्च पौदोंमें संतानोत्पत्तिके लिए विशेष अङ्ग फूल हैं और बहुधा एक फूलमें नर और मादा दोनों प्रकारकी व्यक्तियां होती हैं परन्तु फूलोंमें ऐसे प्राकृतिक नियम बरतते हैं कि एकही फूल अर्थात् परिवारके नर वा नारियोंका संयोग नहीं हो सकता और प्रायः एक फूलके नरोंका संयोग जरूर दूसरे फूलकी नारियोंके साथ ही होती है। दारुवीण (Darwin) ने अपनी परीक्षाओंसे यह सिद्ध किया है कि पौदोंमें एकही परिवारमें विवाह होनेसे जो बीज उत्पन्न होता है वह भिन्न भिन्न परिवारोंके संयोगसे पैदा हुए बीजकी अपेक्षा बहुत छोटा और दुर्बल होता है। कई जन्तुओंमें भी ऐसे नियम विद्यमान हैं परन्तु हमें यहां इतना ही बतलाना है कि पौदों और जन्तुओंमें संतानोत्पत्ति होती है और यह जीवधारियोंका प्रधान लक्षण है। *

* देखिये विज्ञान भाग ३, अङ्क २, पृष्ठ६८

(३) वाह्य शक्तियोंका अनुभव (irritability) किसी पत्थर जैसे निर्जीव पदार्थको ज्योति, अन्धेरा, शीत और गर्मीका पता नहीं लगता और यदि उसको छेड़ा जाए तो उसको भी अनुभव नहीं करता परन्तु विपरीत इसके जन्तु वाह्य शक्तियोंको अनुभव करते हैं। हमारी आंखोंपर यदि तेज़ रोशनी पड़े तो हम आंखें बन्द कर लेते हैं, शीत लगता है तो कपड़े ओढ़ लेते हैं और गर्मीमें पंखोंके नीचे बैठते हैं अर्थात् हम इन शक्तियोंको अनुभव करते हैं और अपने आपको इनके अनुकूल बनाते हैं। पौदोंमें भी अनुभवकी शक्ति विद्यमान है, पत्ते और शाखाएं रोशनीकी ओर जाती हैं, लाजवन्ती (Sensitive plant) का पौदा रातको सो जाता है और हाथ लगानेसे भी मुरझा जाता है।

(४) सजीव देहियोंका चौथा लक्षण यह है कि उनके सारे अङ्ग और अवयव एक दूसरेके लिए काम करते हैं और हर एक अङ्ग सारे शरीरकी भलाईके लिए यत्न करता है और साथ ही यह भी बड़ी बात है कि जीवजन्तु अनुभवसे लाभ उठाते हैं। पक्षियोंके विषयमें परीक्षासे देखा गया है कि बच्चा पहले सब प्रकारके कीड़ोंपर चोंच मारता है। कई इनमेंसे स्वादिष्ट होते हैं और कई खानेके लिए बहुत बुरे होते हैं। जब दूसरी बार किसी बुरे कीड़ेको देखता है तो कभी उसपर चोंच नहीं मारता क्योंकि इसको अनुभव हो जाता है कि यह कीड़ा बुरा है। पाठकगण जानते हैं कि रेलके इंजन जैसी मशीनके भी सब पुर्जे इकट्ठा काम करते हैं और इस बातमें मशीन एक सजीव देहीसे मिलती है परन्तु कोई मशीन भी अनुभवसे लाभ नहीं उठा सकती।

निर्जीव पदार्थों और सजीव देहियोंमें भेदका वर्णन करके अब हमें यह मालूम करना है कि आदिजीव किस प्रकारके थे और उनसे विकास होते होते कौनसे जीव उत्पन्न हुए। इस विषयपर फिर किसी लेखमें विचार किया जायगा।

स्व. माननीय डाक्टर सर सुन्दरलाल, के-टी., बी. ए., एल-एल. डी. सी. आई ई., राय बहादुर

विज्ञान परिषद्के जन्मदाता और प्रथम सभापति माननीय डाक्टर सर सुन्दर-लाल, के. टी., बी. ए., एल-एल-डी., सी. आई. ई, राय बहादुर, बुधवार, माघ शु० २७७४ (१३ फर्वरी, १८) की रात्रिमें ८ बजे इस असार संसारसे प्रयाण कर गये !!! जो व्यक्ति स्वप्नमें कभी रोग ग्रस्त नहीं हुआ था, जो ४० वर्षसे अधिकसे दिन रात कठिन परिश्रम करके अपनी, अपनी जाति और अपने देशकी उन्नतिके उद्योगोंमें तत्पर था, वह इस प्रकार हम सबको निस्सहाय छोड़ अचानक चल बसेगा, इसका किसीको ख्याल भी न था। वास्तवमें संसार असार है और यह जीवन क्षण भङ्गुर है!

आपका जन्म सं० १८५७ में हुआ था, आप जातिके गुजराती नागर ब्राह्मण थे। सं० १८८० में म्योर कालेजसे बी. ए. की परीक्षामें उत्तीर्ण हुए और उसी वर्ष वकालतकी परीक्षामें भी उत्तीर्ण हो, वकालत करने लगे।

दस बारह वर्षमें ही आप अपने परिश्रम और योग्यतासे प्रयागके हाईकोर्टके वकीलोंमें अग्रगण्य हो गये। तबसे आप निरन्तर वकालत करते रहे और बहुत कुछ धनोपार्जन किया।

अपने व्यवसायमें इतने दत्त चित्त रहते हुए भी, आपने सर्वसाधारणके लाभकेलिए अनेक काम किये और उपार्जित धनका सदुपयोग किया। इन प्रान्तोंमें शायद ही कोई ऐसी संस्था होगी, जिसमें आपने कुछ न कुछ सहायता न दी हो। जितने आप जनसाधारणके विश्वास पात्र थे, उतना ही गवर्मैंट भी आपको मानती थी। इसीसे आपको अनेक उपसमितियोंमें काम करना पड़ता था। जिन सज्जनोंने आपके साथ इन समितियोंमें काम किया है, वह आपकी योग्यता, उपयोगिता, और विस्तीर्ण अनुभवका सिक्का मानते थे। इसके कहनेमें अत्युक्ति न होगी कि इस प्रान्तके शिक्षा विभागमें जितना सुधार हुआ है, वह सब आपके ही निरन्तर परिश्रमका फल है।

आप इस प्रकार जितना प्रभाव गवर्मैंट पर डालते थे, और जितना काम निकाल लेते थे, उतना किसी अन्य व्यक्तिने आजतक नहीं निकाला।

जिस किसीको आपसे एक बार भी मिलनेका सौभाग्य प्राप्त होता था, आपके सरल स्वभाव, सादे रहन सहन शुद्ध आचार गूढ़ विचार, धर्मनिष्ठता, दयालुता आदि सद्गुणोंसे मुग्ध हो जाता था।

आपकी अचानक मृत्युसे जहां अन्य संस्थाओंको हानि पहुंची है, वहां विशेषतः विज्ञान परिषद्की विशेष हानि हुई है। परिषद्के कार्यकर्ताओंको आप सदा प्रोत्साहित किया करते थे और सदा सहायतामें तत्पर रहते थे।

हिन्दू विश्वविद्यालयको ऐसे समयमें जितना उनके पूर्ण अनुभव और दूरदर्शितासे लाभ होता, वह अकथनीय है, पर हमें पूर्ण आशा है कि उनकी आत्मा स्वर्गलोकसे इस संस्थाके कार्य कर्त्ताओंको उत्तेजित और उत्साहित करती रहेगी।

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

विज्ञानके हितैषियो !

सावधान ! !

लड़ाईके कारण कागज़ छपाई आदि सभी कुछ महंगा है। प्रायः सभी सामयिक पत्रोंने बादामी कागज़पर छापना शुरू कर दिया है। वार्षिक मूल्य भी बढ़ा दिया है। परिषत्‌ने भाषा और देशके हितके लिये घाटा सहकर भी कागज़ आदि ज्योंका त्यों रखा और चन्दा नहीं बढ़ाया। परन्तु चन्देसे पोषित संस्था कबतक और कहांतक घाटा सह सकेगी। अब अपने हितैषियोंसे

विनीत प्रार्थना है

कि ग्राहक-संख्या शीघ्रतासे बढ़ाएँ। यदि अगले अप्रेलतक ५०० ग्राहक भी और बढ़ जायँ तो हम चन्दा न बढ़ायेंगे, घटिया कागज़ न लगायेंगे। नहीं तो लाचार हो इन्हीं उपायोंका अवलम्बन करना पड़ेगा।

प्रार्थी—
मन्त्री, विज्ञान-परिषत्,
प्रयाग।

हा हन्त ! हा हन्त !

विज्ञान परिषत्का

एक असाधारण अधिवेशन

म्योरकालिजके फ़िज़िकल सायंस थियेटरमें होगा।

समय—शनिवार, २३ फरवरी, ६ बजे शामको

परिषत्के जन्मदाता सभापति डाक्टर सर सुन्दरलालकी आकस्मिक मृत्युपर शोक-प्रकाश।

परिषत्का साधारण वैज्ञानिक व्याख्यान और कार्य्य क्रम इस दिन बन्द रहेगा।

समस्त विद्यार्थियोंको और शिक्षा प्रेमियोंको इस अवसरपर शरीक होना चाहिए।

—मंत्री, विज्ञान परिषत्

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषद्- प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ३६
भाग ६
Vol. VI.

मीन, १९७४. March, 1918.

Reg. No. A-708
संख्या ६
No. 6

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)]

[एक प्रतिका मूल्य ।)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०।३।५।

भाग ६ } मीन, संवत् १९७४। मार्च, सन् १९१८। { संख्या ६

मंगलाचरण

जगहु सकल सुभ-स्रोत, विमल विज्ञान-ज्योति, जग
रँगहु बहोरि बहोरि त्रिजग सरबोरि, प्रेम-रँग
खुलहु सुलभ सुख-ओक, विसद बिन रोक, प्रेम मग
परहु सतत सब ओर, प्रेम-दृग-कोर, प्रेम-पग
अहो चलहु फिरहु बैठहु उठहु सोवहु जागहु चर
अचर
ह्वै अमर-प्रेम, नर-देह-धर, मूर्तिमान, विज्ञान वर

श्रीपद्मकोट,
प्रयाग, १६—२—१८

—श्रीधर पाठक

नम्र-निवेदन

मोहन अजहुँ दया हिय लावौ
मौन मुहर कबलौं टूटैगी हरे, न और सतावौ
खबर बसंतहुकी कछु तुम कों विरुद-बानि बिसराई
ऐसी फूल रही सरसों सी तव नयननुमें छाई
अचल भये सब अचल देखिये सरिसे अश्रु बहावें
सूरज पियरे परे मोह बस चिन्तत दौरे जावें
द्रुमतक हूके दृग नव किशलय रोइ भये अरुनारे
दारुन देश-दशा लखि बौरे ये रसाल चहुँ सारे
अबला लता कलेवर कोमल कम्पित भय दरसावें
लम्बी लेत उसास जानिये जबै हृदय लहरावें
कारी कोयल कूक कला कल यदपि गुहार मचावत
चहुँ अरण्य-रोदन सम सुनियत कछु न प्रभाव
जनावत
लखियत ना सद्भाव कमल अब कुसुमित मानस माहीं
कोरी प्रकृति-छटा बस सुन्दर तथा रही कछु नाहीं
जन्मभूमि निज जानि साँवरे याकों हित अभिलाखौ
अर्ध दग्धजड़-दशा बीच अब अधिक न याकों राखौ

—सत्यनारायण

कांच और सिलकन

[ले०—प्रोफेसर रामदास गौड़, एम. ए.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

विज्ञानके बलसे अब एक नये कांचकी सृष्टि आरम्भ हो गई है। बालू और स्फटिक वस्तुतः एक ही पदार्थ हैं। कांच बनानेमें बालूको अन्य वस्तुओंके साथ गलाते हैं। स्फटिक देखनेमें चमकीला और कांचकी नाईं होता है, किन्तु अकेला बालूकी नाईं साधारण तेज़ आंचमें गल नहीं सकता। ओषजन और उज्जन गैसोंको एक नलीमें जला कर २००० श तककी आंच की जा सकती है। ऐसी ही आंचमें स्फटिक गल सकता है और बिजलीकी आंचमें तो उसे उबाल भी सकते हैं। संवत् १९५७ से इसी भांति स्फटिकको गला कर तरह तरहके वैज्ञानिक उपकरण बनाये जा रहे हैं। देखनेमें यह बरतन बिलकुल साधारण कांचके से होते हैं, परन्तु उनमें यह विचित्रता होती है कि यदि आप उनको इतनी आंचमें डाल दें कि सूर्य्यकी नाईं उज्ज्वल चमकने लगें और उसी दम ठण्डे पानीमें छोड़ दें तो भी यह स्फटकीय कांच नहीं टूटेगा। साधारण कांचके ऐसी दशामें हज़ारों टुकड़े हो जायंगे। इसका क्या कारण है? इसका कारण यही है कि समस्त ज्ञात पदार्थोंमें यही गर्मी पाकर सबसे कम बढ़ता है। इतनी कम घट बढ़ होती है कि इसके पदार्थ कण इतने दूर दूर नहीं हो जाते कि बरतन टूट जाय। रासायनिक प्रयोग करनेवाले कांचके बरतनोंके इस प्रकार टूट जानेसे बहुधा हानि उठाया करते थे, परन्तु अब इस सिकता कांचके बरतनोंसे जब यह अधिक सस्ते हो जायंगे यह कठिनाई दूर हो जायगी।

स्फटिकको ओषोज्जनमें गलायें और तीरका एक सिरा गलित स्फटिकमें डुबो कर धनुषसे बड़ी शीघ्रतापूर्वक छोड़ें तो तीरके पीछे पीछे एक अत्यन्त पतला और सूक्ष्म स्फटिकका तागा बन जायगा, जो तीरकी दूरीके अनुसार लम्बा होगा। बारीकी और मज़बूतीके ख्यालसे यह तागे वैद्युत मापयन्त्रोंके झूलनेवाले अंगोंको लटकानेके लिये अधिक काममें आते हैं। यह मुड़नेसे नहीं टूटते। यदि इनके कपड़े बुने जायं तो कल्पना की जा सकती है कि यह रेशमकी अपेक्षा अधिक मज़बूत और टिकाऊ और गर्मी देनेवाले होंगे। बल्कि आग लगजानेपर इन कपड़ोंका बाल भी बांका न होगा। यह अनुमान ही अनुमान है, किसीने अबतक परीक्षा नहीं की है।

बालू और स्फटिक

कांचके वर्णनमें बालू और स्फटिककी चर्चा आ जानेसे इनका वर्णन करना भी आवश्यक जान पड़ता है। यह जो बड़े ऊंचे ऊंचे पहाड़, रेतीले मैदान, साधारण भूमि, ईंट, पत्थर और मिट्टी जो हमारी आंखोंके सामने सदैव नृत्य करते रहते हैं, इन सबमें बालू और स्फटिक जातिके पदार्थोंका बहुत बड़ा भाग है। हमारे पैरोंके नीचे लोहेके समान कड़ी चट्टान तह ब तह सैकड़ों मीलतक नीचे चली गयी है,यहांतक कि धरतीका ताप जहां इतना बढ़ गया है कि यही चट्टान केवल गले हुए नहीं वरन अत्यन्त तरल बल्कि वायव्य रूपमें हैं, वहां तक भी इसी सिकताका अधिक अंश मौजूद है। दूसरी ओर देखिये तो तहपर तह करोड़ों करोड़ मन चट्टानपर चट्टानकी तहें कई मील ऊंची और हज़ारों मील लम्बी और चौड़ी चली गई हैं, इनका भी अधिक भाग सिकताका ही है। मिट्टीके परीक्षक भी अनादिकालसे उसकी परीक्षा करते आये हैं। पुराणोंमें पृथ्वीकी रचनाके विषयमें अनुमान करते हुए कहा गया है कि मधुकैटभकी मृत्युके पश्चात् जलमें उसका मेद बहा, जिससे पृथ्वीका नाम मेदिनी पड़ गया। और यह सच भी है कि मिट्टीका तेल और पैराफीन मोम भूगर्भसे ही निकाले जाते हैं। यदि इस कथाकी और कोई वैज्ञानिक व्याख्या न हो तो कमसे कम

यह घटना कार्य्य कारणका सम्बन्ध बतानेमें सर्वथा अशक्य न समझी जायगी। समुद्रमें अब भी अनेक टापू हैं, जो मूंगा नामक क्षुद्र जन्तुके शवसे ही बन गये हैं। जो हो आजकल इसी सौ बरसके बीच भूगर्भकी खोज बहुत ज़ोरोंसे होने लगी है और यद्यपि अज्ञात विषयोंकी अपेक्षा ज्ञात विषयोंका आयतन अत्यन्त छोटा है, तथापि जो कुछ अब तक अवगत हुआ है उससे यह निश्चय है कि इस भू-पिण्डका बहुत बड़ा अंश सिलकन वा शिलाकण नामक मौलिक पदार्थका है. बालू और स्फटिक जिसके अत्यन्त साधारण और एक मात्र ओषिद हैं। परन्तु सिलकन अपने मौलिक रूपमें नहीं पाया जाता। ओषजनके सिवाय बहुधा और तत्वोंसे भी मिला जुला पाया जाता है। पृथ्वीपर ही नहीं वरन् चन्द्रमापरकी चट्टानोंकी भी यही दशा है। उल्कापातसे गिरी हुई शिलाओंमें भी सिलकन मिलता ही है। रश्मियंत्रसे तो सिलकन-का पता अत्यन्त दूरवर्ती नक्षत्रों और तारोंमें भी लगता है। निदान सिलकन एक विश्वव्यापी मौलिक है और सारे विश्व वा समस्त ब्रह्माण्डमें अचिन्त्य और अपरिमित मात्रामें फैला हुआ है। यद्यपि इस धरतीकी पूरी तोलका चौथाई अंश सिलकनका है, तथापि इस मात्राकी गिनती उस मात्राके सामने एक त्रसरेणुकी सी भी नहीं है, जो हमारी दूरबीनोंसे देखे जानेवाले ही तारोंमें अनुमान की जाती है।

मौलिक तत्वोंकी वंशावलीमें सिलकन भी उसी घरानेका समझा जाता है, जिस घरानेका कर्बन है। कर्बन और सिलकन दोनोंके ही कई रूपान्तर हैं। जैसे कर्बनका शुद्ध रूप हीरा इतना कठोर होता है कि कांचको काट सकता है, उसी तरह सिलकनका भी एक रूपान्तर यही गुण रखता है। जैसे कोयला, हीरा आदि कर्बन कड़ी-से कड़ी आंचसे भी न टिघलते हैं और न भाप बनते हैं, उसी तरह सिलकन भी इन दोनों बातोंमें अत्यन्त कठोर और दृढ़ प्रतिज्ञ है। हां बिजलीकी अत्यन्त कड़ी गर्मीमें कभी ज़रासे टिघलनेकी नौबत आ भी जाती है।

जैसा हम कह आये हैं सिलकन और ओषजन-का एक ही यौगिक है, जिसे सिलकन द्विओषिद कहते हैं और बालू स्फटिक आदि जिसके कई रूप हैं। चकमाक, सुलेमानी पत्थर, उपल आदि सिकताके ही रूपान्तर हैं।

साधारण बालू, जो नदी वा समुद्रके किनारे पाई जाती है, वह बहुत अशुद्ध और मिली जुली चीज है, तो भी उसमें सिकता वा सिलकन द्विओ-षिदका ही अंश सबसे ज़्यादा है। यह उन बड़े बड़े चट्टानोंका कूड़ा है, जो युगों पहले खाड़ियों और अन्तरीपोंके बड़े बड़े पर्वत शिखर थे, जिन्हें पानी-ने अरसे तक बहते बहते पीस डाला, उनके सभी घुलनशील अंशोंको धो बहाया और कठोर अन-घुल सिकता कणोंको धूलकी नाईं किनारेपर उड़ा दिया। इस बालूका वह अंश जो अत्यन्त दबावके कारण सट कर दृढ़ और ठोस हो गया बलुआ पत्थर कहलाने लगा, जिसकी अत्यंत विशाल मात्रा इस धरतीपर प्रायः पहाड़ोंके रूपमें देखी जाती है। बालूकी बड़ी लम्बी चौड़ी मरुभूमि एशिया, अफ़रीका, आस्ट्रेलिया अरबमें बहुत विस्तीर्ण है। यह सारी बालू बड़े बड़े पहाड़ोंके कई युगोंमें पिस घुल कर मैदा हो जानेका नतीजा है, परन्तु क्रिया यहीं समाप्त नहीं होती।

यह बालूके स्तर धीरे धीरे नीचे धंसते जाते हैं, जिनपर अधिकाधिक दबाव पड़ता जाता है। पृथ्वीमें बहुत नीचे जा कर दबा दबा कर इसी बालूसे पत्थर बन जाता है, जिनको हम पहाड़ोंपर-से घर बनानेको खुदवा मंगाते हैं और नीचे जाते जाते जब अन्तरालमें पहुंचते हैं जहां बड़वानल-की ज्वाला उन्हें गला कर पानी सा कर देती है वहां सिकताके रूपमें बहुत अन्तर पड़ जाता है। अनेक भौतिक कारणोंसे जब यह भूभाग पृथ्वीसे बाहर चट्टान या पहाड़के रूपमें निकलता है तो हम बहुत सुन्दर उज्ज्वल स्फटिककी शिला देख पाते

हैं। कभी कभी यही स्फटिक अपने पेटमें सोना चुराये पाया जाता है, जो पृथ्वी माताकी गोदसे लाया था। बालूमें जो सोनेके कण मिला करते हैं उनका रहस्य यही है। दक्षिणी अफरीका और आस्ट्रेलियामें स्फटिकके भूतलोंकी खुदाई सोनेके लिये ही हो रही है।

कहते हैं कि अफरीकाकी मरूभूमिकी बालूको यदि ताल द्वारा देखा जाय तो कोने घिसे हुए और आकार गोल उसी प्रकार दीखेगा, जैसे नदियोंमें पत्थरके घिसे हुए गोल गोल टुकड़े पाये जाते हैं। बालूके इन कणोंको भी घिसते घिसते यह दशा हो गयी है। इन बड़े बालूके मैदानोंमें कभी कभी बालूकी आंधी ऐसी चलती है कि शहरके शहर बरबाद हो जाते हैं, हज़ारों मीलकी हरी लहलहाती खड़ी खेती इन बालूके कणोंमें दब कर निर्जन मरूभूमि बन जाती है। मध्य-एशिया और इराकमें बड़े बड़े पुराने शहर बालूमें गड़ कर ऐसे लुप्त हो गये हैं कि लोगोंको उनके नाम तक याद नहीं हैं।

एक ओरसे बालूने मनुष्य और उसकी सभ्यताको नष्ट कर डाला वैसे ही दूसरी ओर उसकी और उसकी सभ्यताकी रक्षाका कारण भी हुई है। जंगली मनुष्यने चकमाक और सुलेमानी पत्थरके तेज़ टुकड़ोंको ले कर हिंस्र जन्तुओंसे प्राणरक्षाके लिये बड़े पैने अस्त्र बनाये और गांवमें इकट्ठे रह कर उस सभ्यताकी नींव डाली, जिसपर पाश्चात्यों और उनके अनुगामियोंकी अकड़की सीमा नहीं है।

चकमाक खड़िया मिट्टीके गर्भमें पाया जाता है। जब वर्षा या जलसे खटिक कट कर बह जाता है, चकमाक अधिक टिकाऊ होनेसे रह जाता है।

उपलके गर्भमें लाल नीला हरा रङ्ग चमकता रहता है, इस सुन्दर रङ्गीनीका कारण केवल जल है, जो विविध परिमाणोंमें भीतरी सिकतासे मिल गया है। उपलमें बहुत बारीक रेखाएँ होती हैं, जो यन्त्रसे ही दिखाई देती हैं, इनसे ही इन्द्र-धनुषके शुद्ध चटकीले रङ्ग रोशनी पड़नेपर चमकते हैं। हज़ारों वर्ष हुए सभ्य संसारमें उपलकी गिन्ती बड़े अनमोल रत्नोंमें थी। कहते हैं कि रोमकके राष्ट्रपति मार्क अन्टनीने नोनियस नामक राष्ट्र सभासदको इस अपराधपर देशसे निकाल दिया कि उसके पास एक अंगूठीमें जड़ा हुआ अनुपम सौन्दर्य्यका एक उपल था, जिसका मूल्य आजकलके तीन लाख रुपयोंके बराबर था और जिसे वह अलग नहीं करना चाहता था। राष्ट्र त्रिमूर्तिको यह पत्थर दे डालता तो देश निकालेसे बच जाता। रोममें निरुपल रहनेकी अपेक्षा देश बाहर सोपल रहना उसने अधिक पसंद किया। आस्ट्रियाके राजमुकुटमें एक अनुपम उपल है, जो लाल और हरा चमकता है और तोलमें आधसेरसे कम नहीं है। कई लाख रुपये मिलते थे परन्तु आस्ट्रिया-राजने नहीं बेचा। उपल हीरेके दामोंपर भी बिक चुके हैं। उपल काले रङ्गके भी होते हैं, जिनका मोल बहुत ऊंचा होता है, क्योंकि इसके पास लाल अजीब शानसे चमकने लगता है। उपलके सिवाय सिकताके ही रूपान्तर और अनेक रत्न हैं, जिनका सुन्दर रङ्ग किसी धातुके ओषिद्‌के बहुत थोड़े अंशमें मिल जानेके कारण होता है। जैसे गोमेद, सङ्गएशब, चालसीडोनी, इत्यादि। स्फटिक भी कई रङ्गोंका मिलता है और एक प्रकारका हीरा ही समझा जाता है। यह नग और ताल बनानेके काममें आता है, क्योंकि कांचसे भी अधिक कठोर होनेके कारण उसपर खरोंच या निशान नहीं पड़ता और उसका पालिश नष्ट नहीं होता। रश्मि-यन्त्रोंमें यह विशेषतः इसलिये लगाया जाता है कि बैंगनी प्रकाशसे भी ऊंचे दर्जेका प्रकाश इसमेंसे आर पार निकल जाता है। और भी उसके गुण हैं, जिनका वर्णन यहां क्लिष्ट विषय हो जायगा। स्फटिकके छोटे छोटे टुकड़ोंका दाम अत्यन्त थोड़ा होता है परन्तु बड़ोंका दाम अत्यन्त अधिक। युरोपके अल्पाचल-

में अकसर इसकी तलाश बहुत होती है। डेढ़ सौ बरस हुए झींकनमें एक स्फटिक कन्द्रा पाई गयी जिससे साढ़े पांच सौ मन स्फटिक निकला, जो आठ लाख रुपयेसे अधिकमें बिका। एक स्फटिक तोलमें दस मन था।

संवत् १९२४ को बात है कि अल्पाचलके एक निर्जन स्थानसे कुछ यात्री चले आ रहे थे। उन्होंने श्वेत स्फटिकके भीतर दूरसे कुछ काले विन्दु देखे। यह स्थान ऊंचे और बड़े ऊवड़ खाबड़ शिखरपर था, जहां जानेका साहस नहीं होता था। मार्गदर्शक पितर-सूल-छरने कहा कि काले काले विन्दु कन्दराएँ हैं,जिनमेंसे अमूल्य स्फटिक मणि प्राप्त हो सकती हैं। कुछ दिनों पीछे सूलछर अपने बेटेको साथ ले उस भयानक शिखरपर चढ़ गया और उन छिद्रोंतक पहुंचा। भीतर झांकनेसे मालूम हुआ कि बहुत गहरा है और इसमें श्याम स्फटिक मणिके टुकड़े भी हैं। वह अपनी कुबड़ीके सहारे कुछ टुकड़े निकाल भी लाये। दूसरे वर्ष गुटानन नामक स्थानसे कुछ मित्रोंको ले कर सूलछर फिर आया और कन्द्रामें घुसनेकी कोशिश होने लगी। कन्द्राके सामने खड़े होनेके लिये हाथ डेढ़ हाथ लम्बा और विलस्त ही भर चौड़ा शिखर खंड था। इसके नीचे सैकड़ों फ़ुट गहरा खड्ड था। पैर फिसलने-पर हड्डियोंका भी पता न लगता। यहां खड़े ही नहीं रहना था वरन् हथौड़ी, छेनी आदिसे बल पूर्वक-पहाड़ तोड़ना और कन्द्राके द्वारको बड़ा करना था। ऐसे जोखिमके स्थानमें निर्दयी प्रकृति भी रुष्ट हो गई, हवाके झोकोंका बड़ा डर था। शीतल जल और ओलोंकी वर्षासे उनके हाथ पैर अकड़ गये, पर तो भी वह धैर्य्यसे काममें लगे रहे। शाम हो गई, रात भर चट्टानसे चिपटे यह साहसी लोग वहीं रह गये। यहां तक कि तड़का हो गया। चोटीसे एड़ी तक पानीसे तर थे। सरदीसे दांत कट कटा रहे थे,परन्तु धन लिप्सा-ने ऐसी भयानक दशामें भी उन्हें काम करते रहनेके लिये लाचार किया। अन्तको उन्होंने मार्ग बना ही लिया और भीतर घुस गये। कन्द्रा बड़ी लम्बी चौड़ी थी। गिरी हुई चट्टान और बालूसे प्रायः भरी थी। इधर उधर कूड़ेमें कृष्ण स्फटिक चमक रहे थे, जिन्हें देख कर उनके जी-में जी आया। एक हज़ारसे ऊपर बड़े बड़े स्फटिक मिले,जिनमें बहुतेरे चार पसेरीसे ले कर पांच मन तकके थे। पहली बार सत्ताईस अट्ठाईस मन स्फटिक यह लोग अपने गांव लाये। क्या कहना था, कोलाहल मच गया, गुटानन गांवके जितने तगड़े लोग थे हथौड़ी, कुल्हाड़ी, टोकरी रस्सी ले ले कर कन्द्राकी ओर चल पड़े, स्फटिककी लूट मच गई। यह बात भी मशहूर हो गई कि ज़मीं-दार बहुत शीघ्र रोकनेके लिये आ रहा है, सो सभी मनुष्य बड़े वेगसे दिन रात मिहनत करके इस गड़े ख़ज़ानेको निकाल ले जाने लगे। एक अठवारेमें ख़ज़ाना खाली हो गया। खड्डमें हो कर यह रत्न ऐसे मार्गोंसे पहुंचाये गये, जहांका हाकिमोंको पता न था। सबसे अच्छे सात स्फटिक बर्नके अजायब घरके लिये पांच लाख रुपयेपर मोल लिये गये। सबसे बड़ा बत्तीस इंच ऊंचा और गज भर घेरेका है और तोलमें तीन मनसे ज्यादा है। सूल छरकी खोजसे सारा गांव माला माल हो गया।

[असमाप्त]

विद्युत् स्पन्दन

[ले० प्रोफेसर निहालकरण सेठी, एम. एस-सी.]

वैज्ञानिक उन्नति सदा एक सी नहीं होती रहती। इसमें भी कार्य और विश्रामके समय होते हैं। पांच दस वर्षमें कोई तीव्र बुद्धिवाला एक अद्भुत आविष्कार कर डालता है, जिससे खोजके अनेक नये मार्ग खुल जाते हैं। तब साधारण वैज्ञानिक इन्हीं आविष्कारोंके विषयमें अधिक ज्ञान प्राप्त करनेकेलिये परिश्रम करते रहते हैं।

Electricity विद्युत् शास्त्र]

वोल्टाके विद्युत्प्रवाह सम्बन्धी आविष्कारकी भी यही दशा हुई। द्रव पदार्थोंके विश्लेषणके अतिरिक्त प्रायः १० वर्षतक इस विद्युत्प्रवाहसे और कुछ काम न लिया गया। सं० १८६५ वि० में डेवीने (Davy) सबसे प्रथम वोल्टा द्वारा आविष्कृत एक बहुत बड़ी बैटरी के (battery) तारोंसे कर्बन की (carbon) दो छड़ोंको जोड़कर बहुत तीव्र प्रकाश उत्पन्न किया। इस बिजलीके दीपक में (electric arc) उष्णता भी बहुत थी और यहीं आधुनिक बिजलीकी रोशनीका प्रारम्भ हुआ।

इसके पश्चात् पुनः दस बारह वर्ष तक कोई अद्भुत बात न हुई। सं० १८७७ में ओर्स्टेड (Orsted) और विद्युत्के न्यूटन,फ्रांस देश निवासी, एम्पीयरके (Ampere) आविष्कार प्रकट हुए, जिनसे ज्ञात हुआ कि इस विद्युत्प्रवाहसे चुम्बकोंपर भी असर होता है और उससे नया चुम्बक बनाया भी जा सकता है। इसके बाद फाराडेको (Faraday) अपना विलक्षण और अत्यन्त उपयोगी आविष्कार करनेमें ११ वर्ष लग गये। ओर्स्टेड और एम्पीयरसे ठीक उलटी बातपर उन्होंने विचार किया था। जिस प्रकार विद्युत्प्रवाह चुम्बकीय शक्ति और क्षेत्र उत्पन्न कर सकता है, फाराडेने सिद्ध किया कि ठीक उसी प्रकार गतिमान् चुम्बक भी विद्युत्प्रवाह उत्पन्न कर देता है। तारकी एक रील ले कर उसमें चुम्बक शीघ्रतासे घुसा देनेसे विद्युत्प्रवाह उत्पन्न हो जाता है। किन्तु यह प्रवाह तभीतक रहता है जब तक कि चुम्बकमें गति रहती है। उसके स्थिर होते ही प्रवाह भी रुक जाता है। चुम्बकको पुनः बाहिर निकाल लेनेपर तारमें फिर प्रवाह होता है, किन्तु इस बार प्रवाहकी दिशा पहलेसे विपरीत होती है। अतः यदि एक चुम्बक बार बार शीघ्रतासे तारको बेठनके समीप आवे और दूर हटे तो तारमें एक विलक्षण प्रकारका विद्युत्प्रवाह होगा। साधारणतः विद्युत्प्रवाहका अर्थ यह समझा जाता है कि बिजली एक दिशामें बहती है। किन्तु इस चुम्बक द्वारा उत्पन्न हुए प्रवाहमें बिजली पहिले एक ओर बहती है, तब दूसरी ओर और इसी प्रकार बार बार दिशा परिवर्त्तन करती रहती है। ऐसे प्रवाहको सीधा प्रवाह न कह कर अन्योन्यान्तरगामी प्रवाह (alternating current) कहते हैं।

यह पहले दिखलाया जा चुका है कि ऋणविद्युत्के छोटे छोटे कण होते हैं जो परमाणुकी अपेक्षा भी बहुत सूक्ष्म हैं। बिजलीका प्रवाह वास्तवमें इन्हीं विद्युत्कणोंका प्रवाह है। इस सिद्धान्तके अनुसार प्रत्येक वाहक पदार्थमें कुछ ऐसे विद्युत्कण होते हैं, जो परमाणुके बन्धनसे मुक्त हैं, और इधर उधर आ जा सकते हैं, किन्तु उस वाहक पदार्थसे बाहर नहीं निकल सकते, क्योंकि परमाणुओंमें जो धन विद्युत् है वह उन्हें बलपूर्वक खींच रखता है किन्तु यह स्पष्ट है कि यदि बाहरसे कोई वैद्युत् शक्ति लगाई जावे तो यह सब विद्युत्कण इधर उधर न जा कर उस शक्तिकी दिशामें ही चलने लगेंगे। इन कणोंके इस प्रकार चलनेको ही विद्युत्प्रवाह कहते हैं।

किन्तु यदि यह कण थोड़ी दूर एक दिशामें चल चुकें और तब वैद्युत्शक्ति विपरीत दिशामें उन्हें खींचने लगे तो उन बेचारोंको उलटा लौट आना पड़ेगा। अन्योन्यान्तर गामी प्रवाहमें यही होता है। विद्युत्कण पहले एक ओर चलते हैं फिर उन्हें लौटना पड़ता है। फिर उसी दिशामें चलना पड़ता है। इसी प्रकार सीधे एक ओर चलनेके स्थानमें उन्हें घड़ीके दोलकके समान इधरसे उधर कूदते रहना पड़ता है। ऐसा करनेमें उनका वेग सदा एकसा नहीं रहता। कभी घट जाता है और कभी बढ़ जाता है। यदि उनके वेगमें यह परिवर्त्तन धीरे धीरे हुआ तब तो ठीक, नहीं तो जैसा पहले बतलाया जा चुका है उनके साथ साथ चलनेवाली वैद्युत् और चुम्बकीय शक्तिकी रेखाओंमें मोड़ पड़ जावेंगे और चारों ओरके ईथर समुद्रमें तरंगें चलने लगेंगी।

विद्युत्कणकी इस उपरोक्त वेगवती गतिको विद्युत्स्पन्दन कहते हैं। अब हमें यह देखना है कि यह स्पन्दन किस प्रकार उत्पन्न होते हैं। इसके लिये आवश्यक है कि इस विषयके इतिहासकी ओर थोड़ा सा ध्यान दिया जाय।

१८वीं शताब्दीके मध्यकालमें एक आविष्कार ऐसा हुआ था कि उसने उन दिनों जन साधारण-का ध्यान उतना ही आकर्षित कर लिया था जितना कि रेडियमके आविष्कारने इन दिनों किया है। यह आविष्कार लीडन जार का (Leyden jar) था।

सं० १८०१ में डीन क्लीस्ट(Dean Von Kleist) एक बोतलमें पानी भर कर उसे एक विद्युत्यंत्रसे विद्युन्मय करनेका प्रयत्न कर रहे थे। बोतलमें काग लगा था और उसमेंसे एक लोहेकी छड़ नीचे पानीतक गई थी। बोतलको हाथमें पकड़ कर उन्होंने पानीको विद्युन्मय बनाया। तब दूसरे हाथसे उस लोहेकी छड़को छूनेसे उन्हें बहुत ज़ोरसे धक्का लगा। हालैंड देशके लीडन विश्व-विद्यालयके एक अध्यापकको भी ऐसे ही ज़ोरका धक्का लगा था। अब इस प्रयोगको करनेकेलिये एक बोतलके बाहर और भीतर आधीसे कुछ अधिक ऊंचाईतक टीनका पत्तर चिपका देते हैं। और एक छोटी सी पीतलकी गोली-को तार द्वारा भीतरके टीनसे जोड़ देते हैं। (देखो चित्र१) इसे लीडन जार कहते हैं।
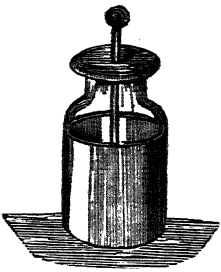
चित्र १—लीडिन जार

जब भीतरके टीनमें कुछ धन विद्युत् पहुंचा देते हैं, तब बाहरके टीनमें ऋण विद्युत् उत्पन्न हो जाता है। अब यदि मनुष्यके शरीर द्वारा भीतर और बाहरके टीनोंको जोड़ दिया जावे तो यह दोनों विद्युत् मिल जाते हैं और मनुष्यके शरीरमेंसे बड़ा प्रबल विद्युत्प्रवाह होता है। यह बहुत थोड़ी देर रहता है किन्तु फिर भी रगों और पट्ठोंको खींच कर धक्का लगा देनेको बहुत काफी होता है। अतः यदि यह धक्का न खाना हो तो भीतर और बाहरके टीनोंको तार द्वारा जोड़ना चाहिए। तब बड़ी ज़ोरकी चिनगारी निकलती हुई देख पड़ेगी और आवाज़ भी ठीक बिजलीकी कड़कके समान किन्तु धीमी सुनाई देगी।

बहुत समयके पश्चात् फाराडेने बतलाया कि इस लीडन जारमें जो इतनी शक्ति आ गई है वह वास्तवमें न भीतरके टीनमें है और न बाहरके टीनमें किन्तु वह तो बोतलके कांचमें भरी है। जो कांच अब तक सर्वथा अकर्मण्य समझा जाता था वही अंतमें सब कुछ निकला। अबतक यही समझा जाता था कि वह केवल बिजलीको इधर-से उधर जाने नहीं देता, अर्थात् वह वाहक नहीं है रोधक है, किन्तु अब ज्ञान हुआ कि वह चुप-चाप बड़े बड़े कार्य करता है।

यहां आधुनिक विद्युत्कण सिद्धान्तके अनु-सार वाहक और रोधक पदार्थोंमें क्या अन्तर है, यह बतला देना आवश्यक जान पड़ता है। ऊपर लिखा जा चुका है कि वाहक पदार्थमें बहुतसे विद्युत्कण इधर उधर आने जानेको स्वतन्त्र रहते हैं। वे एक परमाणुसे कूद कर दूसरे परमाणुमें जाते हैं, फिर वहांसे तीसरेमें। इसी प्रकार प्रायः ६० मील प्रति सैकंडके वेगसे चलते रहते हैं। वे ठीक उन व्यापारियोंके समान हैं, जो एक नगरसे दूसरेमें और दूसरेसे तीसरेमें जा कर अपना सामान बेचा करते हैं। वाहक पदार्थ उन्हें इस प्रकार यात्रा करनेसे नहीं रोकता।

साधारणतया तो यह सूक्ष्म यात्री इधरसे उधर, सभी सम्भव दिशाओंमें, आते जाते रहते हैं और इसी कारण किसी ख़ास स्थानपर इनकी भीड़ नहीं होती। किन्तु किसी वैद्युत शक्तिके लगनेपर यह सब एक ही दिशामें चलने लगते हैं, जिस प्रकार कहीं मेला लगनेपर सब व्यापारी मेलेके स्था-नकी तरफ ही जाना प्रारम्भ कर देते हैं।

किन्तु कांच आदि रोधक पदार्थोंमें इन विद्युत्कणोंको इतनी स्वतन्त्रता नहीं है। वह थोड़ा बहुत इधर उधर घूम सकते हैं,किन्तु अपने नियत स्थानसे बहुत दूर नहीं जा सकते। मानो वह सब रबड़की डोरियोंसे बंधे हैं। शक्ति द्वारा खींच कर उन्हें अपने स्थानसे हटा सकते हैं, किंतु ज्योंही शक्ति दूर हुई कि वह अपने स्थानपर लौट आते हैं। या यों कहिये कि वह स्वतंत्र व्यापारी न हो कर केवल नौकर हैं, जिन्हें जिस कामको भेजा है उसके समाप्त होते ही अपने स्वामीके पास लौट आना पड़ता है।

अतः दो वाहक पदार्थोंके बीचमें यदि एक रोधक पदार्थ रख दिया जावे, जैसा कि लीडन जारमें होता है, तब हमें तीन पदार्थोंका विचार करना है। भीतर और बाहरके टीनों अर्थात् वाहक पदार्थोंमें तो विद्युत्कण स्वतंत्रतासे किसी भी दिशामें गमन कर सकते हैं। किन्तु उनके बीचके कांचमें विद्युत्कण अपनी जगहसे कुछ खिसक सकते हैं किन्तु खिसकानेवाली शक्तिके हटतेही उन्हें पुनः अपने स्थानपर लौट आना पड़ता है।

अब यदि लीडनजारके भीतरके टीनको ऋण विद्युन्मय कर लिया जावे अर्थात् उसमें विद्युत्कणोंकी कुछ अधिकता हो जावे तो स्पष्ट है कि बाहरके टीनमेंसे कुछ विद्युत्कण इन नवागत कणोंकी निराकरण शक्ति द्वारा भगा दिये जावेंगे। अर्थात् वहां विद्युत्कणोंकी कमी हो जावेगी अर्थात् वह धन विद्युन्मय हो जायगा। इसी निराकरण शक्तिके कारण कांचमेंके विद्युत्कण भी बाहरकी ओर जानेकी चेष्टा करेंगे, किन्तु थोड़ी दूर हट कर उन्हें रुक जाना पड़ेगा। इस तनावकी दशामें वे बहुत समय तक रह सकते हैं। किन्तु यदि किसी वाहक पदार्थ द्वारा दोनों टीनोंको जोड़ दिया जाय तो भीतरके विद्युत्कणोंको बाहर जानेका मार्ग मिल जाता है और तब भीतरकी अधिकता और बाहरकी कमी दोनों दूर हो जाती हैं। साथ ही कांचमेंके विद्युत्कणोंको अपने नियत स्थानपर लौट आनेका अवसर मिलता है।

किन्तु यह कार्य इतना सरल नहीं है। जिस प्रकार घड़ीके दोलकको एक ओर खींच कर छोड़ देनेपर वह नियत स्थानपर पहुंच कर सहसा ठहर नहीं जाता और बहुत देरतक हिलता रहता है और जिस प्रकार सितारका तार भी एक बार हिला देनेपर बहुत देर तक कम्पन करता रहता है ठीक उसी प्रकार विद्युत्कण जब अपने स्थानपर पहुंच जाता है तब इच्छा रहनेपर भी वहां ठहर नहीं सकता। उसका वेग उसे आगे घसीट कर ले जाता है। उसे फिर लौटना पड़ता है, किन्तु इस बार भी आगे निकल जाता है। योंहीं उसे बहुत देरतक इधर उधर दौड़ना पड़ता है। इसी घटनाको विद्युत्स्पन्दन कहते हैं।

परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि इस स्पन्दनके लिये यह आवश्यक है कि विद्युत्कणका तनाव एक दम दूर हो जाय। अन्यथा जिस प्रकार दोलकको भी धीरे धीरे ला कर अपने स्थानपर पहुंचा सकते हैं उसी प्रकार विद्युत्कण भी धीरे धीरे अपने स्थानपर पहुंच सकता है। किन्तु दोनों टीनोंको मोटे और छोटे तार द्वारा जोड़नेपर उसमेंसे विद्युत्कणोंको जानेमें कोई आपत्ति नहीं होती और इसलिये कांचमेंका तनाव सहसा दूर हो जाता है और इसीलिये विद्युत्स्पन्दन भी होने लगता है।

यह भी स्पष्ट है कि जब कांचमेंके विद्युत्कण स्पन्दन करते हैं तो दोनों टीनोंको जोड़नेवाले तारमें भी स्पन्दन अवश्य होता है। नहीं तो कांचके विद्युत्कणोंको स्पन्दन करनेका अवसर ही नहीं मिल सकता। अतः जो चिनगारी हमें लीडन जारके दोनों टीनोंको आपसमें मिलाते समय दिखलाई देती है वह एक चिनगारी न हो कर कई

चिनगारियोंका समुदाय है, जो एकके पश्चात् एक इधरसे उधर और उधरसे इधर जाती रहती हैं।

यह बात गणितज्ञ वैज्ञानिकोंको तो बहुत पहले ज्ञात हो गई थी और जर्मनीके हेल्महोल्ट्ज़ और इंगलैंडके लार्ड केल्विनने इसपर बड़े महत्वके लेख भी लिख दिये थे। किन्तु फिर भी पांच वर्ष तक कोई इसे प्रयोग द्वारा सिद्ध न कर सका। सन् १८५८ या १८५९ में फेडरसनने(Fedderson) बतलाया कि एक दर्पणको वेगसे घुमानेपर उसमें इस चिनगारीका प्रतिविम्ब देखनेसे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि चिनगारी एक नहीं है, किन्तु वह कई चिनगारियोंका समुदाय है। यदि एक चिनगारी होती तो दर्पणमें भी एक ही प्रतिविम्ब दिखलाई पड़ता। यदि वह प्रकाश देर तक स्थायी रहता तो घूमते हुए दर्पणमें प्रकाशकी एक लम्बी अविच्छिन्न रेखा देख पड़ती, किन्तु वास्तवमें बहुतसे प्रतिविम्बोंकी एक शृंखला सी दिखलाई देती है। इससे स्पष्ट है कि लीडनजारकी चिनगारी एक नहीं होती।

इन चिनगारियोंका चित्र भी खींचा जा सकता है। छाया चित्रणसे लिया हुआ एक चित्र यहां दिया जाता है। जिससे ऊपर लिखी हुई बात अधिक स्पष्ट हो जायगी (चित्र २), किन्तु इस

चित्र २ लीडन घटकी चिंगारीका चित्र

चित्रसे यह स्पष्ट प्रकट नहीं होता कि चिनगारियां एकके पश्चात् एक विपरीत दिशाओंमें चलती हैं। इसके लिये एक और यंत्रका प्रयोग किया जाता है, जिसे स्पन्दन-चित्रक (oscillograph) कहते हैं। इसके द्वारा जो चित्र आते हैं वह चित्र ३ में दिये गये हैं। ये चित्र चिनगारियोंके नहीं हैं, किन्तु चिनगारियोंके द्वारा जो विद्युत्प्रवाह होता है उसके परिमाणके दर्शक हैं। अर्थात् विद्युत्कण कब कितने वेगसे चलते हैं यह इससे स्पष्ट होता है।
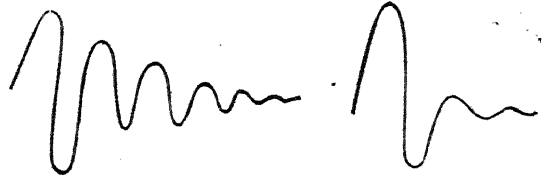
चित्र ३ (क) चित्र ३ (ख)

इन चित्रोंसे केवल यही प्रकट नहीं होता कि चिनगारियां विपरीत दिशाओंमें चलती हैं, किन्तु और भी कई बातें ज्ञात हो जाती हैं जिनमें मुख्य यह हैं:—

१—विद्युत्कण जितनी दूरसे अपने स्थानकी ओर चलता है वहां पहुंच कर आगे निकलनेपर फिर उतनी ही दूर दूसरी ओर नहीं जाता। अर्थात् धीरे धीरे उसके कम्पनका विस्तार घटता जाता है और अंतमें वह स्थिर हो जाता है। भिन्न भिन्न दिशाओंमें भिन्न भिन्न प्रकारका स्पन्दन होता है। कभी स्पन्दन कुछ देरतक होता रहता है और कभी बहुत शीघ्रतासे रुक जाता है, जैसा चित्र ३ (क) और (ख) में दिखलाया है।

२—विस्तार चाहे कितना ही कम हो, किन्तु स्पन्दनका समय नहीं बदलता, एक पूरा स्पन्दन करनेमें उतना ही समय लगता है। चाहे ४-५ ही स्पन्दन करके विद्युत्कण स्थिर हो जावे, किन्तु अंतिम स्पन्दनमें भी उतनी ही देर लगेगी जितनी कि पहलेमें।

जब स्पन्दनका समय नहीं बदलता तब स्पष्ट है कि यदि स्पन्दन एक सैकंड तक बराबर होते रहें तो एक सैकंडमें एक स्पन्दनके समयका भाग देनेसे जो फल आवेगा उतनी ही वार एक सैकंडमें स्पन्दन होवेंगे। इस संख्या को आवृत्ति (frequency) कह सकते हैं। यथा यदि एक

स्पन्दन एक सैकंडके हज़ारवें भागमें होता है तो स्पन्दन संख्या १००० हुई। यह स्पन्दन संख्या लीडनजारकी बड़ाई छुटाईपर और दोनों टीनोंको जोड़नेवाले तारकी लम्बाई और मोटाईपर निर्भर है।

यदि लीडनजार एक ऐसी बोतलसे बनाया जावे जिसमें प्रायः ५ सेर पानी आ सके और इसके भीतर और बाहरके टीनोंको प्रायः दो गज़ लम्बे और $\frac{1}{15}$ इंच मोटे तांबेके तार द्वारा जोड़ दें तो स्पन्दनका समय लगभग एक सैकंडके दस लाखवें भागका $\frac{3}{7}$ वां हिस्सा होगा, अर्थात् एक सैकंडमें लगभग २,६५०,००० बार स्पन्दन हो सकेंगे।

भुनगा पुराण

[ले०-प्रोफ़ेसर रामदास गौड़, एम. ए.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

आकाश-खण्ड

इतनी कथा सुनाय श्री भुनगेश जी बोले, हे मुनियो यह आकाश खण्ड अनन्त, अपार, अचिन्त्य और कल्पनातीत है। इसकी आदि विचारकी सीमासे बाहर और इसका अन्त मन और बुद्धिसे अतीत है। इस विश्वमें जितने पदार्थ इन्द्रियोंसे गोचर हैं उनके वास्तविक रूपको किसीने जाना नहीं। उनकी वास्तविक सत्ताकी किसीने कल्पना नहीं की। आंख, नाक, कान, जीभ और त्वचा केवल अपने अपने विषयके अनुभवसे पदार्थकी सत्ताकी कल्पना कर लेते हैं, परन्तु वास्तविक सत्ताकी कल्पना जब मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन चारों अन्तःकरणोंसे जो अत्यन्त सूक्ष्म और बड़े दूरगामी हैं नहीं हो सकती, तो श्रोत्रादि वाह्य उपकरणोंकी सामर्थ्य ही क्या है। साधारणसे साधारण पदार्थ, जो हमारे लिए हाथमें आमलेके समान हैं, जिनके ऊपर नीचे भीतर बाहर सभी अङ्गोंकी पूरी परीक्षा करनेमें हम अपनेको समर्थ समझते हैं. उन पदार्थोंको हम कितना कम जानते हैं, इस अल्पज्ञताका ज्ञान भी बहुत दुर्गम है, परन्तु तो भी बुद्धि ग्राह्य है। जिस आमलेका दृष्टान्त ले कर हम अपने ज्ञानको हस्तामलकवत कहनेका गौरव प्राप्त करते हैं, उसकी ही कितनी परीक्षा आजतक हो सकी है। वाह्य श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियोंसे हमने उसका रङ्ग, उसका आकार, उसका स्वाद उसकी नर्मी वा कड़ाई, उसका भारी या हलका होना ठंडा या गरम होना, उसकी गन्ध इत्यादिको जाना। काट कर उसका रस निकाला, उसकी रासायनिक परीक्षा की, उसके मौलिक तत्वोंको समझा। उसके एक अत्यन्त नन्हे टुकड़ेको ले कर अणुवीक्षण यन्त्रमें देखा। उसमेंके वानस्पतिक अणु देवताओंके दर्शन किये, उनकी पारस्परिक रासायनिक क्रिया समझी। इसी प्रकारकी अनेक परीक्षाओं द्वारा चैतन्य प्राणीने अपनेको सन्तुष्ट कर लिया कि हमने आमलेको जान लिया है। अहो अज्ञान! अहो मिथ्याभिमान! जिससे हम अपने आपको छलते हैं। धन्य धन्य हे धात्रीकी पुत्री आमलकी देवी, तेरे सुन्दर-श्यामल गोल सुचिक्कन लावण्य सम्पन्न रूपने कितने ज्ञानाभिमानियोंको छल रखा है। तेरे सङ्कोचक मधुर कषाय स्वादने कितने परीक्षाभिमानियोंके दांत खट्टे कर दिये हैं, तेरे चापल्य और सहजोपलब्धि-शीलताने कितने विज्ञानियोंको धोखा दिया है, तूने अपने नीलिमायुक्त हरित आभाके आवरणमें अखिलभुवनव्यापी आकाशकी कोटि कोटि तरङ्ग मालाओंको कैसी अद्भुत रीतिसे छिपा रखा है, तेरे गँभीर गर्भके भीतर असंख्य परमाणु ब्रह्मांड किस प्रकार कल्लोल कर रहे हैं, और उन एक एक ब्रह्मांडोंमें ग्रह सरीखे सहस्र सहस्र विद्युत्कण किस कल्पनातीत वेगसे

साधारण General]

परिभ्रमण कर रहे हैं। हे अखिल-ब्रह्मांड-गर्भ-धारिणी, धात्री, शाखा–पल्लवोत्संग-विहारिणी, अपने कर-पल्लवपर पधरा कर षोडशोपचार कर लेनेसे ही जो तेरे रहस्यविद् होनेका अभिमान करते हैं, क्या तू उनकी मूर्खताको अपने सहज वात्सल्य गुणसे सदा क्षमा न करती होगी ?

हे भुनगानन्दनो, जब तक मैं स्वयं भुनगाके शरीरमें था और जब तक यह अलौकिक ज्ञान और अव्याहत गति मुझे आत्मविकास द्वारा प्राप्त नहीं हुई थी, तब तक यह सब बातें मेरी कल्पनामें नहीं आ सकती थीं, परन्तु मुझे इन बातोंका मान एक मात्र अनुभवसे ही हुआ है। और मेरी दृढ़ धारणा है कि कोरी कथासे ऐसी सूक्ष्म बातोंका समझमें आना दूर, अत्यन्त दूर, प्रत्युत असम्भव है।

इतनी कथा सुनाय श्री भुनगेश जी चुप हो गये। यह दशा देख भुनगा ऋषियोंकी उत्कंठा और भी बढ़ गयी और उन्होंने बड़े उत्साह और आग्रहसे शीश नवाय, पर जोड़, विनय पूर्वक निवेदन किया "हे भगवन्, इस भुनगा संसारमें ऐसा कोई तपोधन देवर्षि नहीं, जिसपर वह रहस्य प्रकट हुए हों जिनकी आपने कृपा पूर्वक चर्चा की है, न कोई ऐसा महात्मा है, जिसके प्रत्यक्ष अनुभवमें ऐसी अद्भुत बातें आयी हों। निस्सन्देह जिस आकाशका अनुभव आपने किया है वही आकाश नहीं है, जिसमें बहुत दूर तक उड़ कर जानेका गौरव गृध्रादि ग्रहाकार पक्षियोंको प्राप्त है। निस्सन्देह वह बड़ा ही सूक्ष्म मूलतत्व होगा जो सब पदार्थोंमें व्याप रहा है, जिसमें सभी पदार्थोंकी स्थिति है। महाराज यह सच है कि हम सब लोग अन्तःकरणों और बाहरी इन्द्रियोंको भोतसे घिरे, शरीररूपी कारागारके बन्दी, इन रहस्योंको जाननेमें नितान्त असमर्थ और कल्पना करनेमें अत्यन्त अशक्य हैं। परन्तु हे गुरो आपने जो जो बातें इस सम्बन्धमें कहीं उनसे हमारा आश्चर्य उत्तरोत्तर बढ़ता है और आपके शब्दामृत पान करनेकी अधिकाधिक उत्कण्ठा होती जाती है। हे प्रभो, पहले आप यह वर्णन कीजिये कि आकाश क्या है, उसका रूप, उसका आकार, उसका भार, उसके स्पर्शादि गुण, निदान जो कुछ उसके विषयमें वक्तव्य हो सब कुछ वर्णन कीजिये। फिर यह बताइये कि परमाणु क्या है, उससे विद्युत् कणोंका क्या सम्बन्ध है, वे एक ही जातिके हैं वा भिन्न भिन्न जातियोंके हैं। उनकी गति किस प्रकार की है, और उनका आकाशसे किस प्रकारका सम्बन्ध है। और हे महामुने यह भी व्याख्या कीजिये कि आकाशकी तरङ्ग-मालाएँ क्या हैं, और उनसे क्या तात्पर्य्य है। क्या आकाश जलकी नाईं है कि उसमें लहर उठती हैं अथवा तरङ्ग शब्दका योग केवल समझानेके लिये है। हे महाराज, इन सब बातोंका पूरा वर्णन आप अवश्य कीजिये, क्योंकि आपके सिवा कोई दूसरा समर्थ नहीं है।

इत्यार्षे श्री भुनगा महापुराणे आकाश खण्डे हस्तामलकन्याय वर्णनो नाम अष्टमोऽध्यायः।

होमियोपैथिक चिकित्सा

[ले०—पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव,]
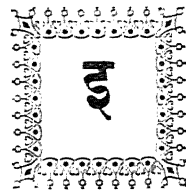
इस लेखमें हम बच्चोंकी उन बीमारियोंका ज़िक्र करेंगे जिनका विज्ञान भाग ५ अङ्क ? पृष्ठ २२ पर नहीं किया था।

१–अजीर्ण

इसका कारण खानेका ठीक तरहपर न पचना या पाचनशक्तिका कम हो जाना है। डकार आना, पेटमें हवाका घूमना और दर्द होना, आंतोंमें दर्द होना, कब्ज़ रहना, दस्तका लगना, इत्यादि इसके चिह्न हैं। बच्चोंको सादा ताक़त देनेवाला और शीघ्र पचनेवाला खाना देना चाहिये। ज़्यादा मीठी और घीकी चीज़ें नहीं देनी चाहिएं। समयपर ही खाना देना और साफ़ हवामें टहलाना भी

इस बीमारीका इलाज है। जब बदहजमीकी वजहसे यह बीमारी हो तो (nux vomica) नक्स वोमिका की ६ छोटी गोलियां या ४ बड़ी गोलियां पानीमें या वैसे ही सुबह और शाम देनी चाहियें। अगर दस्त आते हों तो पहिले एक खुराक (chamomilla) कैमोमिला और उसके बाद नक्स-वोमिका देना चाहिये। (china) चाइना भी दे सकते हैं। अगर दस्तके साथ कै भी होती हों तो कैमोमिला के साथ (pulsatilla) पलसैटिला देना उचित है।

२–पेचिश

दांत निकलनेके समय प्रायः बच्चोंको पसीनेमें सर्दी लग जानेसे हो जाती है। कभी उबकाई आना, कै होना, पेटमें दर्द होना, बुखार, बदनपर खुश्की, नींद न आना, कम पेशाब होना, पाखाने जाते समय रोना, पाखानेके साथ मवाद और खूनका जाना, बार बार पाखानेकी हाजत होना इत्यादि बातें भी पायी जाती हैं। ऐसी हालतमें ३ छोटी गोली ३,३ घंटे बाद (mercurious cor) मरक्यूरियस-कार्ब की देनेसे जल्दी फ़ायदा होगा। अगर कै होती हो तो (ipecacuanha) आईपीकैक देना चाहिये और अगर कुछ सूजन अंतरियोंमें आ गई हो तो (aconite) एकोनाइट देना उचित है।

गुनगुने पानीसे पेट सेकनेसे भी फ़ायदा होता है।

३–अंतरियोंमें सूजन

इसके लिये एकोनाइट का सेवन करना और गर्म पानीसे पेटका सेकना ऊपर बतला चुके हैं। इसके अलावा अलसीकी पुलटिस और राईका प्लास्तर भी लगाते हैं, लेकिन उचित यह है कि किसी डाकृरसे सलाह ले ली जाय, क्योंकि यह तकलीफ़ कभी कभी बहुत बढ़ जाती है।

४–हैज़ा

दस्तोंसे शुरू हो कर, जब सर्दी लग जाती है और कै आने लगती हैं तो यह समझना चाहिये कि हैज़ा हो गया है। इस बीमारीमें अंतरियोंमें मड़ोड़ होती है, और दस्त चांवलके माड़केसे होने लगते हैं। ऐसा कटनका दर्द होता है कि बच्चा टांग सिकोड़ लेता है, बच्चेका मुंह सफ़ेद हो जाता है, जीभ सूख जाती है, प्यास ज़्यादा लगती है, हाथ पैर ठंडे हो जाते हैं, ऐंठन होने लगती है, आंखें बैठ जाती हैं, सांसकी भापमें गर्मी कम हो जाती है, नब्ज़ धीमी चलने लगती है और तमाम बदन ठंडा हो जाता है, दस्त पानीकी शकलका और ज़्यादा होता है। यह ज़रूरी नहीं है कि यह सब चिह्न ज़रूर मिलें, क्योंकि कभी कभी कै बिलकुल नहीं होती या बहुत देर बाद होती है. दस्तकी रंगत पीली या भूरे रंगकी होती है। इसका कारण तो खाने पीनेकी और हवाकी खराबी, मैला पानी, सफ़ाईकी कमी, सड़ी चीज़ोंका पास रहना वगैरा हैं, लेकिन जब यह बीमारी शुरू हो तो चाहिये कि प्यासको बर्फसे बुझाया जाय और बच्चेको कम्बलमें खूब गर्म रखा जाय और गर्म पानीकी बोतल पैरके तलवेपर लगाई जाय। अगर पेटमें ज़्यादा दर्द हो तो सेका जाय और हर १०, १५ या २० मि० के बाद १ से लेकर ३ बूंद तक (camphor) कैंफ़र दिया जाय। अगर सर्दी लगती हो और ऐंठन हो तो (arsenic) आरसेनिक दिया जाय लेकिन अगर दर्द मड़ोड़के साथ हो तो (cuprum) क्यूप्रम और (veratrum alb.) विरेट्रम ल्ब देनेसे फ़ायदा होगा। जब बदनमें और सांसमें गर्मी आने लगे, दर्द कम हो, पेशाब उतरे, पाखानेकी रंगत बदले या कमी मालूम हो तो फ़ायदेकी सूरत समझना चाहिये, नहीं तो किसी होशियार डाकृरको बुला कर दिखलाना चाहिये।

५–जुकाम या नाकका बहना

यह ज़्यादा तर उत्तरपूर्वी हवाके लगनेसे या नमी या सर्दीमें बिना कपड़े पहिरे हुये जानेसे हो जाता है। इसके चिन्ह यह हैंः—नाक और आंखसे पतला पानी आवे, छींक आवें, नथनेके ऊपर रुकावट मालूम पड़े, सिर भारी मालूम हो,

बदनमें दर्द हो, गलेमें खुरखुराहट, बुखार, प्यास, जीभकी खुश्की, भूखका न लगना, कब्ज़, नब्ज़का तेज़ चलना, इत्यादि।

साधारण इलाज तो यह है कि सोते वक्त पैरके तलुओंको गर्म पानीमें कुछ देर रक्खे रहे और दूध दलिया, अरारोट आदि खा कर सो जाय। अगर इस इलाजसे फ़ायदा न हो तो दो दो तीन तीन घंटे बाद २,३ छोटी गोली (aconite एकोनाइट की खा लेनेसे होगा। अगर (aconite) एकोनाइटके बाद mercurious मरक्यूरियस दिया जाय तो बुख़ार और प्यास जाती रहेगी।

लड़कियोंको अगर दस्त भी आने शुरु हो गये हों तो (pulsatilla) पलसैटिला देना चाहिये।

अगर गर्मी या बरसातका मौसम हो और खांसी और दस्त भी हों तो (dulcamara) डंलकेमरा देना चाहिये।

कमज़ोर नाज़ुक लड़कोंको जिन्हें कब्ज़ भी रहता हो (nux vomica) नक्सवोमिका से फ़ायदा होगा।

दस्तके साथ अगर कमज़ोरी ज़्यादा हो तो (china) चाइना देना चाहिये।

इन सब ओषधियोंके साथ यदि आरम्भमें एक खुराक (aconite) एकोनाइट दे दिया जाय तो अच्छा है।

६-गलेमें खुरखुराहट

बच्चोंको यह बीमारी साधारण सर्दी लग जानेसे होती है। फुरेरी, गर्मी, बेचैनी, दूध पीनेमें तकलीफ़, सांस लेनेमें सां सांकी आवाज़ इसके चिन्ह हैं।

अगर मुंह खोल कर देखा जाय तो तालूमें सुर्खी, गलेमें सूजन, चेहरेपर सुर्खी और गलेकी गिलटियाँ मुलायम और बड़ी मालूम होंगी। इस बीमारीको अंग्रेज़ीमें "एन्जीना" (angina) कहते हैं और जब यह बढ़ जाती है तो खाँसी और पसलीका चलना शुरु हो जाता है। एकोनाइट, बेलेडोना और मरक्यूरियस देना चाहिये।

(belladona) बेलेडोना-इस मर्ज़की खास दवा है। अगर सिरमें दर्द हो और नींद न आती हो तो इसके साथ पहले या पीछे अगर एकोनाइट दिया जाय तो और भी अच्छा है।

(mercurius) मरक्यूरियस—उस वक्त देना चाहिये जब कि गलेमें (भीतर) दाने पड़ गये हों और सर्दीके कारण बीमारी हुई हो।

अगर बर्सातके मोसिममें यह बीमारी हो तो (dulcamara) डलकेमरा देना चाहिये।

७-गलेमें ऐंठन

गलेकी नलीमें एक रग होती है जिसको "रिमा ग्लोटिस" (rima glottis) कहते हैं। यह सिकुड़ जाती है और दम घुटने लगता है, सांस ठीक तरहसे नहीं आती। कभी कभी दौरेके बाद या सोते हुये जाग जानेपर या डर जानेमें एकबारगी गलेमें ऐंठन होने लगती है, चेहरा पीला और नीला हो जाता है, माथेपर ठंडा पसीना आ जाता है, बुख़ार वा खांसीका होना आवश्यक नहीं है। यह ऐंठन मिनट मिनट अधिकसे अधिक १० मिनटतक रहती है, पीछे चिनकवाई (?) होती है और दम घुट कर मर जानेका डर रहता है। गर्म पानीमें स्पन्ज डुबो कर गलेपर लगाना चाहिये और हाथको आगपर सेककर पैरके तलुवेपर मलना चाहिये और प्रति १० या १५ मिनटके बाद ३ छोटी गोली (sambucus) सेम्ब्यूकसकी बच्चेके मुंहमें डाल देनी चाहिये।

८—डिप्थीरिया (diptheria)

यह एक संक्रामक (उड़ना) रोग है, जो बुखारका सा विष खूनमें पैदा हो जानेसे होता है। इसमें गलेके अन्दर एक तरहका पसीना निकलता है और निगलनेमें तकलीफ़ होती है। कभी कभी गलेमें जख़्म भी पड़ जाते हैं, बदनमें जलन और जोड़ोंमें दर्द हो जाता है। उपरोक्त लक्षण रोगकी साधारण अवस्थामें पाये जाते हैं। पर कभी कभी रोग बिगड़ जाता है और नीचे दी हुई बातें पैदा होती हैं— बुखार, ऐंठन, कै या दस्त, बेचैनी, चेहरेपर

घबराहट, धीमी नाड़ी, सुस्तीके साथ तीव्र नाड़ी, बदनका जलना, भरभराया हुआ चेहरा, गलेमें खुरखुराहट, गलेकी नलियोंका सूजना और उनपर सफ़ेद चित्तियोंका पड़ जाना, जो बढ़ कर एक दूसरेमें मिल जाती और गलेके अन्दर झिल्ली सी बना लेती हैं, जिसके कारण निगलने और सांस लेनेमें कठिनाई पड़ती है। यह बनावटी झिल्ली मैले चमड़ेकी होती है। इसके और असली झिल्लीके बीचमें खून बहता है, जिससे मरीज़को सांस लेनेमें बास (दुर्गंध) आती है, गलेकी गिलटियोंका बढ़ना, गलेमें कड़ापन, और कान तक दर्द मालूम होना, (सूजनका बढ़ना मुंह, नाक, हवाकी नली और फेफड़ेकी नली तक सम्भव है), अगर मर्ज़ बढ़ जाय तो सांस लेना और निगलना बन्द हो जाता है, कभी कभी दम घुट कर मौत भी हो जाती है।

इस मर्ज़में अगर नीचे लिखे चिह्न पाये जायं तो ज़्यादा खराब और हानिकारक समझना चाहिये :—

नब्ज़ (नाड़ी) का धीमा और शीघ्र चलना, बराबर कै आना, नशेकी सी हालतमें रहना और सोतेमें बर्राना, नाकसे खूनका बहना, मर्ज़का नाककी तरफ़ बढ़ना, सांसका रुक कर आना, पेशाबमें अंडेकी सो सफ़ेदीका निकलना, कभी कभी लकुएकी हालत पैदा हो जाती है और गलेसे कोई चीज़ नहीं उतरती। कभी कभी दिलकी हरकतपर भी असर पड़ता है और कभी दिलकी हरकत बन्द भी हो जाती है।

जब यह बीमारी शुरु हो तो गाढ़ी गाढ़ी गर्म पुलटिस गलेके चारों तरफ़ बांधना चाहिये लेकिन अगर मर्ज़ बढ़ गया हो तो पुलटिसको कभी न बांधना चाहिये, क्योंकि इससे मर्ज़ बढ़ेगा और सड़नकी दुर्गंधि अधिक हो जायगी। मुंहके अन्दर गलेमें पानीकी गर्म भाप जिसमें (acetic acid) ऐसेटिक ऐसिड मिली हो पहुंचाना चाहिये या १ छटांक सिरकेको $\frac{1}{2}$ सेर पानीमें मिला कर उसकी भाप देनी चाहिये। गंधकको पीस कर आगपर डाला जाय, इसकी धुंआं जब मरीज़के गलेमें जायगी तो उस बनावटी झिल्लीको नष्ट कर देगी। जब गंधक सिलगाई जाय तो दर्वाज़े बन्द कर दिये जायं और जिस कमरेमें मरीज़ हो वह गर्म रखा जाय, स्पन्ज या तौलियाके द्वारा बदन पोंछा जाय। यदि मरीज़ न्हा सके तो न्हिलाया जाय।

मरीज़की ताक़तको बनाये रखनेकेलिये चाहे निगलनेमें उसे कष्ट हो खिलाना अवश्य चाहिये। अगर अंडेका सेवन कर सकता है तो दूधमें मथ कर पिलाना चाहिये या शोरवा देना चाहिये या ब्रान्डी पानीमें मिला कर देनी चाहिये या अरारोटके साथ पोर्टवाइन शैरीवाइन या उनको सावूदानेके साथ मिला कर अवश्य देना चाहिये, क्योंकि यह सर्दी दौड़ जानेको बचायेंगी।

अगर कै हो जाय तो बर्फ़का टुकड़ा चूसनेको दिया जा सकता है।

चूंकि हाथ पैर और बदनमें चमककी बीमारी इस मर्ज़के बाद हो सकती है इसलिये मरीज़के पेशाबकी भी जांच कर ली जाय।

शुरुमें अगर मर्ज़ साधारण है तो बैलेडोना या बेप्टेसिया और इसके बाद हैपरसल्फ़ या मरक्यूरियस आयोडाईड देनेसे फ़ायदा होगा। लेकिन अगर मर्ज़ बढ़ गया है तो किसी होशियार डाक्टरको बुला कर इलाज कराया जाय हालांकि बैलेडोना, एपिस, आरसेनिक, लैचेसिस और सलफ़र आदि देनेसे बढ़ी हुई हालतमें भी आराम हुआ है।

रेशमका कीड़ा।

[ले०—पं० कृष्णबिहारी वाजपेयी]

रेशमका कीड़ा कोष-कारी जातिका है। संसारमें हमको कीड़े मकोड़ोंसे जितनी हानि पहुंचती है, उस सबकी पूर्ति एक रेशमका कीड़ा ही कर देता है। यह कीड़ा काम तो अपने ही लिये करता है, परन्तु उस कार्यसे मनुष्यजातिकी बहुत कुछ सेवा होती है। रेशमी वस्त्र पहिननेका सौभाग्य हमको रेशमके कीड़ेकी ही बदौलत हुआ है। हां, अब ज़माना ऐसा आता जाता है कि विलासितासे प्रायः लोग दूर भाग रहे हैं; परन्तु फिर भी यदि रेशमका अभाव हो जाय, तो फिर उसकी पूर्ति करनेका और कौनसा द्वार है।

प्राचीन समयमें रोममें थोड़ा बहुत रेशम मिलता तो था; परन्तु तेज़ इतना था कि तोलमें सुवर्णके बराबर बिकता था। फिर भी वहां लोग इसकी कदर इतनी करते थे कि आधे रेशमी वस्त्र पहन कर भी बाहर निकलनेमें लोगोंको लज्जा मालूम होती थी। उन दिनों हिन्दुस्तान और चीनसे रोममें रेशम जाया करता था, क्योंकि जिस जमानेका यह जिक्र है उस जमानेमें फारिसवासियोंको रेशमका ज्ञान तक न था।

रेशम पहनते हुए भी रेशमके कीड़ेके विषयमें रोमवालोंको सच्चा ज्ञान न था। पूसीनस नामके एक विद्वान्ने लिखा है कि रेशमका कीड़ा, मकड़की शक्लका, गुबरीलेके बराबर होता है। उसके आठ टांगे होती हैं और उन्हींसे वह अपना जाला बनाता है। सर्दी और गर्मीसे बचा बचा कर लोग चार वर्षतक इसको एक तरहकी लेईसी खिलाते हैं, और पांचवीं सालके शुरूमें कीड़ा हरी हरी पत्तियां खा कर चर्बीके कारण फूल जाता है और फट पड़ता है। उसीकी अन्तड़ियोंको बुन बुन कर ऐसा मूल्यवान रेशम बना लेते हैं।

कीड़ोंके बारेमें रोमवालोंको सच्चा सच्चा ज्ञान ईसाकी छठवीं शताब्दीमें हुआ। ऐसा अनुमान किया जाता है कि युरोपमें सबसे पहिले ईसाकी बारहवीं शताब्दीमें रेशमके कीड़े पहुंचे। सिसलीके राजा रोजरने एशियामाइनरपर चढ़ाई की और लौटते समय अपने साथ वहांसे कुछ कारीगरोंको लेता गया। वे जाकर सिसलीमें बस गये और वहींसे युरोपके दूसरे देशनिवासियोंने हुनरको सीख लिया। अब तो युरोपके दक्षिणी भागमें इसका खूब व्यापार होता है।

रेशमका कीड़ा अब तो ठौर ठौरकी बात हो गई है। सफेदी लिये हुए यह बारह टांगका कीड़ा होता है और अन्तमें पतंगा बन जाता है। कोषस्थ दशामें अपने आपको ढांकनेकेलिये कीड़ा एक काकून बुनता है। बस, इन्हीं काकूनोंको इकट्ठा कर कई मिलाके ठीक ठीक जोड़ देनेसे रेशमके धागे बन जाते हैं।

रेशमके कीड़ोंको पैदा करनेका नियम एक तो यही है कि वृक्षोंपर जहां वे पैदा होते हैं वहीं छोड़ दिये जायँ और बढ़ते रहें।

दूसरी तरकीब यह भी है कि कीड़े किसी जगहपर रखे जावें और हर रोज उनको ताज़ी पत्तियां खिलाई जायं। चीन और टानकिनमें पहिली तरकीब ही काममें लाते हैं। दूसरी तरकीब उन देशोंमें इस्तैमाल की जाती है, जहां कीड़ेको अकृत्रिम रूपसे पैदा होना मुश्किल है। इसीलिये कीड़ोंकी कृत्रिम रूपसे रक्षा करके उनको वंशवृद्धि करना पड़ती है। गर्म देशोंमें नर और मादा पतंगोंके संयोगसे अंडे पैदा होते हैं और उन्हींमेंसे कीड़े निकलते हैं। शीतकाल भर तक शहतूतके वृक्षोंपर उसी दशामें ऐसे जमे रक्खे रहते हैं कि पालेसे वृक्षकी पत्तियांतक क्यों न उड़ जायं; परन्तु उनका बाल भी बांका नहीं होता। उनकी रखावट और जमावट ही इस किस्मकी होती है।

जब तक प्रकृति भोजनकी सामग्री तैयार नहीं कर देती, कीड़ा अंडेसे बाहर नहीं निकलता

Industry उद्योग]

है। हरी हरी कोमल पत्तियोंके उगते ही कीड़ा अंडा फोड़ कर बाहर निकल पड़ता है; और रेंग रेंगकर जी भरके उन हरी पत्तियोंको खाता है। धीरे धीरे कीड़ा बढ़ने लगता है, और कुछ ही महीनेके बाद एक रेशमकी थैली बना कर उसमें अपने आपको ढक लेता है। इसी रेशमी थैलीको काकून (कृमकोष) कहते हैं। एशियामें कीड़ा पालनेका यही नियम है, जो सब प्रकारसे कीड़ेको तो सुखप्रद है और साथ ही साथमें पोषकोंको कष्ट-प्रद भी नहीं है; परन्तु यह ढंग युरोपीय जल, वायुके अनुकूल नहीं। संध्या समय वहां ओस बहुत पड़ती है। मौसमसे कीड़ेको कष्ट बहुत पहुंचता है। कठिन शीत, घोर वर्षा, और तेज़ हवा, ये सब कीड़ोंकी नष्टकारी बन जाती हैं। इसी कारण युरोपमें इन रेशमके कीड़ोंको परवरिश करनेकेलिये उनकी बाहरी आपत्तियोंसे रक्षा करनी पड़ती है।

इस कामके लिये एक ऐसा कमरा छांटा जाता है जिसका मुख दक्षिण दिशाकी ओर हो और जिसमें शीशा पूरा पूरा इस तरह जड़ा हो कि जिससे हवा तनिक भी न आसके। कमरेकी सतहमें तख़्ते भी ऐसे मिले हुए हों, जिससे चूहे तथा और दूसरे प्रकारके कीड़े न आसकें। इस कमरेके बीचमें चार लकड़ीके खम्भे, वर्गाकार बनाते हुए, गाड़े जाते हैं। इन खम्भोंको कई मंजिलोंसे इस प्रकार पाट देते हैं कि हर एक मंजिलकी सतह और छत एक दूसरेसे भिन्न भिन्न रहें। ये मंजिलें गिर्रियोंके सहारे रखी रहती हैं और रस्सियोंसे कसी रहती हैं, जिससे चाहे जब उतारी और रखी जा सकती हैं।

जब कीड़े अंडेसे निकलते हैं तो शहतूतकी मुलायम पत्तियां उस कपड़े या काग़ज़के संदूकमें रख दी जाती हैं जिसमें अंडे पहिलेसे रखे हुए होते हैं। कुछ पत्तियां खाकर जब उनके शरीरमें शक्ति आ जाती है तो उनको उठा उठा कर उन चार खम्भोंके बीचवाले टट्टरोंपर एकसां करके रख देते हैं। चूंकि वे खम्भे कमरेके बीचमें गड़े हुए होते हैं, इसलिये उनके चारों तरफ आदमी मज़ेसे घूम सकता है। मंज़िलोंपर पहुंचके कीड़े पहिले तो पत्तियोंसे चिपट कर उनको खा जाते हैं और बादको टट्टरकी लकड़ियोंसे चिपटे रहते हैं। इस समय तक उनके शरीरमें एक धागा उत्पन्न हो जाता है, जिसके द्वारा वे धक्का खा कर भी गिरनेसे बच जाते हैं। परन्तु इसी धागेको रेशम समझ लेना भ्रम है; क्योंकि रेशम तो वे बादको बहुतायतसे बुनते हैं। हर रोज सबेरे ताज़ी पत्तियां ला कर मुलायमियतसे धीरे धीरे बिछा देना चाहिये। जब कीड़े बासी पत्तियोंकी जूंठनको छोड़ इन ताज़ी पत्तियोंसे जा चिपटें, तो उन बासी पत्तियोंके कूड़ा करकटको सावधानीसे अलग उठा लेना पड़ता है। नमी और मैलेपनसे इन कीड़ोंको बड़ी भारी हानि पहुंचती है। इसलिये स्वच्छ भोजन सफ़ाईके साथ उनको मिलना चाहिये। इन कीड़ोंका जीवन बहुत थोड़ा होता है। इसीलिये वे अपने समयका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोते हैं। जिस समय वे अपना चमड़ा बदलते हैं उस समयको छोड़ शेष समयमें वे खाते ही रहते हैं। यदि शहतूतकी पत्तियां न मिलें तो खस अथवा सिन्दूर वृक्ष (शाह बलूत) की पत्तियांसे भी काम चल सकता है; परन्तु ये पत्तियां कीड़ोंको विशेष रुचिकर नहीं और न वे इनको खा कर उत्तम और अधिक रेशम ही पैदा कर सकते हैं।

उनके भोजनके विषयमें सफ़ाईका ध्यान रखना तो निहायत जरूरी है ही; परन्तु इसके अलावा उनको स्वच्छ हवा भी काफी मिकदारमें मिलना चाहिये। इन बातोंसे कीड़ोंकी तन्दुरुस्ती अच्छी रहती है और उनकी वृद्धि भी शीघ्र होती है।

कीड़े जब अन्डोंसे निकलते हैं तब बहुत ही छोटे और काले रंगके होते हैं। सिर शरीरके शेष भागसे ज़्यादा चमकीला और कालापन लिये होता है। इसके बाद वे सफेदी देने लगते हैं। कुछ दिनों बाद जब उनका चमड़ा ज़्यादा तंग होने लगता है तो वे उस चमड़ेको फेंक कर

नवीन पोशाक ग्रहण कर लेते हैं। इसके पश्चात् वे ज़्यादा बड़े और सफेद होते जाते हैं; लेकिन फिर भी कुछ दिनोंतक उनमें हरियालीकी झांई मरती रहती है। इसके बाद कीड़े खाना त्याग देते हैं और लगातार दो दिन तक सोते हुए दिखाई देते हैं। जाग कर वे चलने फिरने लगते हैं और उछलकूद मचाते हैं, यहां तक कि दूसरी दफे फिर वे अपना चमड़ा बदलते हैं। यह त्यागा हुआ चमड़ा उनके पैरोंके नीचे आ कर गिर पड़ता है। ये सब परिवर्तन तीन हफ्ते या एक महीनेके अन्दर ही अन्दर हो जाते हैं। इसके बाद वे फिर भोजन करने लगते हैं। इस समय तक यह रहते तो कीड़े-की ही शक्लमें हैं, परन्तु पहले स्वरूप और अबमें बहुत अन्तर हो जाता है। कुछ दिनों बाद ये फिर सोते हुए मालूम देते हैं। जाग कर ये अपनी पोशाक फिर बदल कर पहलेकी तरह खानेमें लग जाते हैं। इस प्रकार पूर्ण भोजन पा कर जब इनके अंग कीट-स्वरूपके रखनेमें असमर्थसे हो जाते हैं, तो ये कीड़े फिर, आखरी मर्तबा, अपना खान पान त्याग कर,भीतरको सिकुड़ जाते हैं। उस समय देखनेमें ये बिलकुल निर्जीवसे प्रतीत होते हैं और छिपे छिपाये अन्दर बैठे रहते हैं।

इनके छिपनेकी जगह वे ही रेशमके थैले हैं, जिनका बनाना प्रकृति-माताने ही इनको सिखा दिया। जबतक इनके पर नहीं उग जाते तबतक, वे इन्हीं थैलोंमें बैठे रहते हैं। कीड़ोंकी आंतोंके ऊपर दोनों तरफ चमकीला, सुनहरी, चिपचिपा सा रस भरा होता है, और इसी रससे धागा बन जाता है। इस छोटेसे कीड़ेको परमात्माने एक ऐसा औजार प्रदान किया है जिसका सादृश्य सुनारके तार खींचनेवाले औजारसे किया जा सकता है। इसीमें हो कर कीड़े मोटा, पतला इच्छानुसार धागा खींच सकते हैं। ऊपर बताया जा चुका है कि दोनों ओरवाले गोंदीले रससे ही धागा उत्पन्न होता है तो यह सम्भव हो सकता है कि दोनों तरफसे एक एक धागा निकलता हो और आगे चल कर दोनों एक हो जाते हों। अगर हम धागेको खुर्दबीनसे देखें तो मालूम होता है कि वह एक सिरेपर चपटा है और फिर आगेको बराबर इठा हुआ सा चला गया है। इससे नतीजा निकालना पड़ता है कि शरीर-से निकलनेके पश्चात् धागा दुहरा हो गया है। चिपकीले रसके कारण वे एक दूसरेसे चिपट भी खूब जाते हैं।

इटलीके विद्वान् मालपीगीका यहांतक कहना है कि रेशमी थैली, जिसको कीड़े बुनते हैं, उसमें छः परत तक होते हैं। परन्तु बहुधा देखने-में यही आता है कि थैलीका बाह्य भाग कुछ सूत सदृश वस्तुका बना होता है। उसके भीतर साफ और मुलायम रेशमी धागे होते हैं। और उसके भीतर कीट अपनी मध्य अवस्थाको धारण किये हुए बैठा रहता है। उसकी उस पोशाकमें काग़ज़ सरीखी कुछ चीजका अस्तरसा लगा हुआ जान पड़ता है। रेशमके धागे सिलसिलेमें गेंदकी तरह नहीं लिपटे होते। एक सिरा यहां सुलझा तो आगे सुलझानेके लिये दूसरी ओर देखो। सब धागा नापनेमें लगभग ३०० गज़के लम्बा होता है। परन्तु फिर भी बारीक इतना होता है कि सौदागर लोग ऐसे आठ दस धागों-को मिला कर एक धागा बनाते हैं। इस थैलीकी शक्ल कबूतरके अन्डेकी तरहकी होती है और एक सिरेपर दूसरे सिरेकी अपेक्षा अधिक पतली होती है। इसी नुकीले हिस्सेकी तरफ कीड़ेका मुख रहता है और पतंगा बन जानेपर इसीको फाड़ कर निकल पड़ता है।

लगभग दो या तीन हफ्तेमें कीड़ा अपनी मध्य अवस्थासे पतंगा बन जाता है। जैसे ही पर उगे कि फिर इसको अपने बन्धनमें चैन नहीं पड़ता। अपनी खुरखुरी आंखोंको चुभो, छोटासा रास्ता बना उसीमें पिल पड़ता है और स्वतंत्र जीवनका सुख भोगता है।

इस प्रकार घोर परिश्रम करके दो बन्धनोंसे मुक्त हो कर जब कीड़ा बाहर निकलता है तो बिलकुल थका हुआ दिखाई देता है। न तो यह उड़ता है और न खाता है। उसका कार्य केवल वंशवृद्धि करनेपर खत्म है। नर मादाकी तलाश में फिरता है। संयोगके पश्चात् मादाके वियोगमें शीघ्र प्राण दे देता है। मादा भी अन्डे देने तक जीती रहती है और फिर चल बसती है। जब तक वसन्त नहीं आ जाती, अण्डोंसे कीड़े नहीं निकलते।

परन्तु विचारे रेशमके कीड़ोंको इतना बुढ़ापा आनेकी अब नौबत ही नहीं होती। जिस रेशमके थैलेको वे बुनते हैं, पतंगे बन जानेपर उसीको फाड़ कर वे निकलते हैं। इससे रेशमके धागे टूट फूट जाते हैं। इसी फायदेकोसोच कर व्यापारी लोग उनकी जान, पतंगा बननेके पहिले ही धूपमें सुखा सुखा कर, ले लेते हैं। ऐसा करनेके बाद वे रेशमके थैलेको गर्म पानीमें डाल देते हैं। फिर दृष्टिकी सहायतासे एक सिरा ढूंढ़कर धीरे धीरे सुलझाते जाते हैं। इसके नीचेके भागका रेशम कमज़ोर और बुरे रंगका होता है। रही वह कागज सरीखी वस्तु, उसको बहुतसे लोग तरह तरहसे रंग कर कृत्रिम फूल बना लेते हैं। कोई कोई उसको पानीमें पड़ा रहने देते हैं, जब तक कि उसका चिपकीला अंश ऊपरको आ जाता है। फिर वे उसको निकाल कर और बुन कर छोटे दर्जेका रेशमी सामान बना लेते हैं।

[जयाजी प्रताप से]

रसायनी विद्याका इतिहास

[ले०-डा० बी. के. मित्र, एल. एम. एस.]

पिछले अंकोंमें हम स्टालके फ्लोजिस्टनवाद, तथा प्रीसली द्वारा एक नवीन वायुके आविष्कार और लेवोसियर द्वारा उस वायुके नामकरण तथा फ्लोजिस्टनवादके खण्डनके विषयमें कुछ वर्णन कर चुके हैं। इस बार हम इसीके विषयमें वादविवाद करेंगे और एक और महाभूत जलके रासायनिक उपादानोंके विषयमें वर्णन करके, आधुनिक रासायनी विद्याकी क्रमोन्नतिका एक और अध्याय पाठकोंकी भेंट करेंगे।

प्रीसलीसे लगभग सौ वर्ष पहिले भी प्राचीन रासायनिकोंको यह बात मालूम थी कि यदि लौह आदि धातुओंको किसी बोतलमें रख कर उनपर कोई द्रावक, यथा गन्धक वा नमकका तेज़ाब, डाला जाय तो उसमें वह धातु गल कर लवणके सदृश एक नवीन पदार्थ उत्पन्न करती है, जिसमें धातुके कोई भी गुण नहीं रहते; अतएव वह मर जाती है। साथ ही उस बोतलमेंसे एक अत्यन्त लघु वायवीय पदार्थ निकलता है, जिसके गुण यह हैं कि यदि उसको विशुद्ध अवस्थामें जमा करके जलाया जाय तो वह दाह्य पदार्थोंके सदृश बड़े तीव्र उत्तापसे जलता है। इसीलिए प्राचीन उसको दाह्यवायु कहते थे। फ्लोजिस्टनवादी इसीको फ्लोजिस्टन भी कहा करते थे, कारण कि स्थूल दृष्टिसे इसीके निकल जानेसे तो धातुका लवण बन जाता है, अर्थात् वह मर जाती है, पर जब लेवोसियरने इसके उत्तरमें यह कहा कि वाह वायुके अत्यन्त लघु होनेपर भी उसका कुछ न कुछ भार है, अतएव इसके निकल जानेसे धातु भस्मका भार घट जाना चाहिये, पर वास्तवमें धातुभस्म मूलधातुसे अधिक भार रखती है, उस समय फ्लोजिस्टनवादियोंने हमारे देशके कूट तारकिकोंकी भांति यह उत्तर

रसायन शास्त्र Chemistry]

दिया था कि फ़्लोजिस्टन धातुका आत्मा-रूपी कोई सूक्ष्म भाग है । इसके निकल जानेसे ही मरी हुई धातुका भार बढ़ जाता है । क्या सुन्दर मीमांसा हुई ! पाठको ! हमारे देशमें अब भी इसी प्रकारकी युक्तियां दिखाई जाती हैं और एक शताब्दी पूर्व यही विचार युरोपके प्रतिष्ठित वैज्ञानिकोंकेलिए सन्तोषजनक थे ।

प्रीसली तो फ़्लोजिस्टनवादी था ही, उसने अपनी नवीन आविष्कृत वायु ओषजन द्वारा-जिसको वह फ़्लोजिस्टन विहीन वायु कहता था, एक ऐसा चमत्कारिक प्रयोग कर दिखाया कि जो स्थूल दृष्टिसे फ़्लोजिस्टनवादका और भी समर्थन करता था, वह यह है ।

एक चौड़े बर्त्तनमें कुछ पानी भर कर उसपर एक छोटीसी कुठाली जिसमें थोड़ासा मटिया सिन्दूर (शीशा और ओषजनका यौगिक) था तैरा कर उसको एक लम्बे वायु घटसे ढांक दिया, जिसमें पहिलेसे ही उपर्युक्त दाह्य वायु भरा हुआ था । इसके उपरान्त प्रीसलीने अपने प्रबल आतिशी कांचके द्वारा सूरजकी किरणोंको केन्द्रीभूत करके उस सिन्दूरपर डाला । उसने देखा कि

चित्र ४

मरी हुई धातु, शीशा, पुनर्जीवित हो रहा है और साथ ही दाह्य वायुका परिमाण घट कर उस पात्रमें नीचेसे जल चढ़ा चला आता है । (देखो चित्र ४)

प्रीसली ने इसी प्रकारका एक और भी प्रयोग किया, इस बार जलपात्रके स्थानमें उन्होंने पारद-का पात्र लिया और मटिया सिन्दूरके स्थानमें लोहित पारद भस्म लेकर पूर्वोक्त रीतिसे उसमें उत्ताप पहुंचाया । इस परीक्षामें भी यह बात देखनेमें आई कि ज्यों ज्यों उसको तपाया गया त्यों त्यों पारदभस्म पुनर्जीवित हो कर पारदमें परिणत होती रही और साथ ही वायु घटके अन्दर नीचेका पारद चढ़ आया ।

इन दोनों प्रयोगोंसे प्रीसलीकी पूर्व भ्रान्त धारणा और भी बद्धमूल हुई कि दाह्य वायु वा फ़्लोजिस्टन, जो कि धातुमारणसे उत्पन्न होता है, जिस समय धातु भस्मसे संयुक्त होता है तब मारित धातु पुनर्जीवित हो जाती है । साधारण दृष्टिसे यह घटना बड़ी सन्तोष-जनक होनेपर भी बिल्कुल असत्य है । विज्ञानके छात्रोंको कभी भी एक दो परीक्षासे किसी मतको स्थिर नहीं कर लेना चाहिये । हम पहिले बता चुके हैं कि वैज्ञानिक मत बड़ी सावधानीके साथ पर्य-वेक्षणोंके अनन्तर और बारम्बार प्रयोगोंसे सिद्ध करनेके उपरान्त स्थिर किये जाते हैं ।

वास्तवमें न तो उपरोक्त दाह्य वायु धातुओंसे उत्पन्न होता है और न उसके योगसे धातु भस्म पुनर्जीवित होती हैं । आजकल रस-शालाके प्रथम कक्षाके छात्रोंको भी इस वायुका यथार्थ मर्म विदित है । यह धातुसे नहीं निकलता बल्कि तेज़ाबसे निकलता है, जो कि धातुसे मिल कर एक नया पदार्थ (अर्थात् लवण) बनाता है । यथा जस्ता + नमकका द्रावक = जस्ता व नमकके द्राव-कका लवण + दाह्य वायु ।

प्रत्येक द्रावकमें यह पदार्थ (दाह्यवायु) रहता है परन्तु जलका भी एक प्रधान उपादान होनेके कारण आजकल इसको उज्जन (हाइड्रोजन) कहते हैं । इसी तरह पूर्वोक्त धातु भस्मोंसे मूल धातुओं

के साथ ऑक्सिजन वा ओषजन सम्मिलित रहता है, जो उत्तप्त करनेसे अलाहिदा हो जाता है, चाहें उसके चारों ओर उज्जन रहे या नहीं। यथा लोहित पारद भस्म (उत्तप्त करनेसे) = पारद + ओषजन।

प्रीसलीकी अन्य परीक्षाएँ जिनका वर्णन हम गताङ्कोंमें कर चुके हैं वह इसी बातकी साक्षी हैं। पर उज्जनको ओषजनके साथ मिलनेकी एक प्रबल आकांक्षा है, जिसको युयुक्षा कहते हैं। अतएव प्रीसलीकी इन परीक्षाओं द्वारा केवल यह प्रमाणित होता है कि धातु भस्मसे उत्पन्न ओषजन घटके अन्दरके उज्जनसे मिल कर जल बना लेता है, जिसका परिमाण अत्यन्त कम होनेके कारण नीचेका जल वा पारद वायु घटमें चढ़ जाता है।

प्रीसलीने भी अन्तिम बार यह बात देखी थी कि पारद पात्रपर वायु घट रखनेमें इसके अन्दर कुछ जलके कण भी लगे हैं, पर उसने इस विषयपर विचार नहीं किया बल्कि यह ख्याल कर लिया कि सम्भवतः यह जल पारद भस्म या दाह्य वायुके अन्दर पहलेसे होगा।

प्रीसलीने एक और परीक्षा भी इस विषयमें की थी कि एक कांच घटके अन्दर दाह्य वायु (उज्जन) और साधारण हवा मिला कर उसमें विद्युत स्फुल्लिङ्ग चलायें तो उसमें एक तीव्र स्फोटन हो कर नलिकाके अन्दर जल कण एकत्रित हो जाते हैं, विद्युत्‌के स्थानमें अग्नि संयोग करनेसे भी यही क्रिया होती है, जो कि आजकलके प्रथम कक्षाके छात्रोंके लिए बड़ा ही आमोदजनक प्रयोग है। इन प्रयोगोंमें जल क्यों उत्पन्न होता है यह आजकल सबको विदित है, परन्तु प्रीसली जैसे धुरन्धर रासायनिकको भी इसका कारण मालूम नहीं हुआ। प्रकृतिदेवी अपने तथ्योंको बड़ी ही मुश्किलसे अपने साधकोंको बताया करती है। हमारे रस-सिद्धोंकी भी यही अनुभूति है, परन्तु हम लोग समझते हैं कि प्रकृतिने मानों त्रिकालदर्शी ऋषियोंके कानोंमें अपने सारे रहस्योंको एक दफ़े ही फूंक दिया और आगेके लिये कुछ बाक़ी न रखा, परन्तु वास्तवमें बात इसके विपरीत है। ऋषियोंने भी ठोकरें खा खा कर प्रकृतिके एक एक गुह्य तथ्य आविष्कार किये थे और हमारे लिए वह उनको दिग्दर्शन रूपमें छोड़ गये हैं। यदि हम उन ऋषियोंसे उऋण होना चाहें तो हमें उचित है कि उसी रीतिपर नवीन तथ्योंका आविष्कार करें और इन भ्रान्त मतोंका संशोधन करें।

जिस समय प्रीसली इन जलकणोंको देख कर उलझ रहा था, उस समय विज्ञानकी रङ्ग-भूमिमें एक और रासायनिकका आविर्भाव हुआ। इनका नाम केवेण्डिश था। यह इङ्गलैण्ड देशके किसी धनी लौर्डके पुत्र थे। इनको अच्छी शिक्षा मिली थी, परन्तु बड़े विद्वान होनेपर भी इनका मस्तिष्क ईषद्विकृत था। जबसे अपने पैतृक धनके अधिकारी हुये, अपने घरकी प्रधान बैठकको प्रयोगशालामें परिणत कर दिया। ऊपरके कमरोंको मानमन्दिर बनाया। दिनरात विद्याओंकी आलोचनामें व्यतीत होता था। वह किसीसे मिलते मिलाते नहीं थे, यहां तक कि उनके अन्तिम कालमें जो एक मात्र नौकर उनके पास था उसको भी हुक्म दिया कि आध घण्टेके लिए चला जाय। जब वह वापिस आया तो देखता है कि प्रभु मरे पड़े हैं।

केवेण्डिश अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, उन्होंने अंकशास्त्र, ज्योतिष और रसायन विद्यामें अनेक मौलिक गवेषणाएँ की थीं। इन्होंने पृथ्वीका आपेक्षिक घनत्व निर्धारित किया था। वायुका परिमाणात्मक रासायनिक विश्लेषण किया था। ताप सम्बन्धी परिमाणात्मक विषय आविष्कार किया और जलका यौगिक होना भी सिद्ध किया। इस तरहसे क्षिति, अप, तेज और मरुत यह चतुर्भूत ही इनके सूक्ष्म विचार और परीक्षाके अन्तरगत थे। यह लेवोसियरकी तरह वैज्ञानिक परीक्षाओंमें तुला दण्डका भी व्यवहार करते रहे।

इसीलिए कोई कोई अङ्गरेज़ इन्हींको रासायनिक विद्याका जन्मदाता कह कर अहंकार किया करते हैं। पर रसायन विद्याके मूल सिद्धान्तोंमें यह प्रीसलीकी तरह भ्रान्त ही रहे। इनको जलके संश्लेषण करनेका गौरव है, तथापि यहां भी उसके यथार्थ मर्मको समझानेवाला पुरुष लेवोसियर है।

इस समय हम केवेण्डिशका केवल वह प्रयोग वर्णन करेंगे, जिससे जलका संश्लेषण हुआ था। उन्होंने एक प्रकारका (Eudiometer) वायु-परीक्षक यंत्र निकाला, जिसकी विशेषता यह थी कि मिश्रित वायुओंको एक घंटाकार कांचघटके अन्दर निर्धारित प्रमाणमें ले कर, काक खोल कर, उनको ऊपर लगे हुए स्फोटन घटके अन्दर ले जाया जा सकता है। इस स्फोटन घटको पहिलेसे ही वायु शून्य कर लेते हैं। इसके बाद दोनोंके काक खोल देनेसे ऊपरके घटमें थोड़ासा मिश्रित वायु चला जाता है। फिर काक बन्द करके ऊपरके घटमें विद्युत्स्फुल्लिङ्ग छोड़ एक बार स्फोटन करनेके उपरान्त, नीचेकी काक खोल कर दूसरी बार वायुको अन्दर ले जाया जा सकता है। इस तरहसे बारम्बार स्फोटन करनेपर बहुत सा जल एकत्रित किया जा सकता है। उन्होंने इस यंत्र द्वारा अनेक परीक्षाओंके अनन्तर यह सिद्ध किया कि दाह्य वायुके साथ साधारण हवाके मिश्रणके स्थानमें यदि विशुद्ध ओषजन ले लिया जाय और उनका अनुपात २ और १ का हो तो स्फोटनके अनन्तर वायवीय पदार्थ मिल कर केवल जल ही बनता है। अर्थात् जलके यह दो उपादान हैं। यद्यपि केवेण्डिशको परीक्षाओंसे यह प्रतिपन्न हुआ तथापि पूर्व संस्कार हेतु वह जलको मौलिक पदार्थ ही समझते रहे, कारण कि प्राचीन इसको एक महाभूत समझते थे। प्रकृतिमें यह कोई विचित्र बात नहीं है। हमारे अन्ध विश्वास ऐसे प्रबल होते हैं कि प्रत्यक्ष प्रमाणोंके सामने भी हम प्राचीनोंके अनुमानको ही सत्य समझते हैं। प्रीसली और केविण्डिशकी तरह कितने ही ज्ञानके प्यासे साक्षात् सरस्वतीके किनारेपर खड़े होते हुए भी हताश हो चुके हैं। परन्तु विद्वज्जगतमें उनकी कुछ कम प्रतिष्ठा नहीं है।
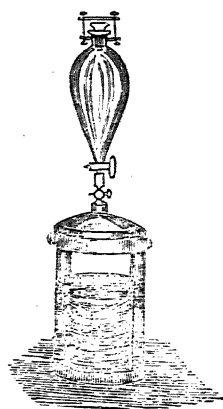
चित्र ५

' मरते हैं शह सवार ही मैदान जंग में '

यद्यपि आधुनिक रासायनी विद्या प्राचीन आर्य, मिश्र तथा यूनानी जातियोंने आरम्भ की और मध्ययुगमें जाबिर आदि अरबीय रस सिद्धोंके द्वारा परिपुष्ट होती रही, तथापि विज्ञान रूपमें इसका आरम्भ लेवोसियरके द्वारा ही हुआ है। हम एक बार और पाठकगणका ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं कि भारतमें भी इस विद्याके बड़े बड़े साधक नागार्जुन, व्रन्द, चक्र पाणि आदि हो चुके हैं। परन्तु शोकका विषय है कि भारत सन्तान आज जितना पश्चिमी रासायनिकोंके विषयमें जानती है (जाविर, पैरासेल्सस्, स्टाल आदि) उसका शतांश भी उनको भारतीय रससिद्धोंके विषयमें ज्ञात नहीं। हम आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय तथा अध्यापक पंचानन नियोगीको धन्यवाद देते हैं कि जिन्होंने अपने अनुसन्धानोंसे इस विषयपर थोड़ा प्रकाश डाला। इन्हींके ग्रन्थों के आधारपर यह लेख लिखे गये हैं।

(समाप्त)

अमेरिकामें कृषि सम्बन्धी प्रयोगशाला

[ले० पांडुरंग खानखोजे,]

छ समयके पहले अमेरिकाका नाम कोई जानता भी न था। वहां निरे जंगली असभ्य लोग बसते थे। अमेरिकाके मूलनिवासियोंको अरुण (लाल) इंडियन कहते हैं। परन्तु जबसे पश्चिमी

Agri culture कृषि शास्त्र]

लोगोंका-युरोपनिवासियोंका-यहां प्रवेश होने लगा तबसे इस भूमि-खण्डकी बहुत उन्नति होने लगी। इससे यह न समझना चाहिये कि अमेरिकाके मूलनिवासियोंकी बहुत उन्नति हो गई है। नहीं, उन्नति तो दूर रही, अब उनकी जाति ही यहांसे निर्मूल सो हो रही है। इस देशमें उन्नति करनेवाले और सुखका उपभोग करनेवाले, सबके सब, पश्चिमी देशोंके लोग ही हैं। अमेरिकाके उत्तरमें दो बड़े देश हैं-कनाडा और संयुक्त-राज्य (United States)। पहिलेमें अंग्रेजोंका राज्य है, दूसरेमें प्रजासत्ताक राज्य (republic) है। इस लेखमें अमेरिकाके संयुक्तराज्योंके कृषि-प्रयोगालयोंका कुछ वर्णन किया जायगा, क्योंकि इन प्रयोगालयोंके द्वारा इस देशमें खेतीकी बहुत उन्नति हुई है।

जिस समय यह देश आबाद हुआ उस समय यहांकी खेती बहुत बुरी दशामें थी। अरुण इंडियन तो खेती करना पसन्द ही नहीं करते थे। शिकारसे जो कुछ मिल जाय उसीसे वे सन्तुष्ट रहा करते थे। जंगली खेल, तमाशा, नाच इत्यादिमें आयु व्यतीत करनेके सिवाय वे और कोई लाभदायक व्यवसाय करना न चाहते थे। ऐसी अवस्थामें, विदेशियोंके लिए इस देशको आबाद करना कोई सहज काम न था। अतएव जब हम यह देखते हैं कि अमेरिकन लोगोंने, थोड़े ही समयमें और प्रतिकूल दशामें भी, बहुत उन्नति कर ली तब उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। इस समय, इस देशकी खेती दुनियाके सभी देशोंकी खेतीसे बढ़ी चढ़ी है। इस देशके कृषि यन्त्र तो सारे जगतमें प्रसिद्ध हैं। सोचनेकी बात है कि अमेरिका-निवासियोंने, अल्प समयमें ही, एक असभ्य और जंगली देशको सभ्य और सुप्रसिद्ध बना डाला; परन्तु भारतवर्ष, जो हजारों बरससे खेती किसानीका काम कर रहा है, अबतक केवल अपनी प्राचीन कीर्तिका सूखा डंका बजानेमें ही निमग्न है! इसमें सन्देह नहीं कि किसी समय हमारा देश पश्चिमी देशोंसे भी अधिक सभ्य था। परन्तु दुःखित हो कर कहना पड़ता है कि अब वह जमाना नहीं रहा। हम लोगोंने हजारों वर्षतक जो अनुभव प्राप्त किया, उससे कोई व्यवहारिक लाभ हमने नहीं उठाया। इसका कारण यही है कि हम लोगोंने सप्रयोग ज्ञान-प्राप्तिका कभी यत्न नहीं किया। इस विषयकी ओर उचित ध्यान देनेसे ही पश्चिमी लोगोंने इतनी उन्नति कर ली है।

अमेरिकामें अल्प समयमें ही, खेतीकी जो इतनी उन्नति हो गई है, उसका भी प्रधान कारण यही है कि उन लोगोंने अनेक प्रयोग करके कृषिकी पद्धतिमें सुधार किया। जब प्रयोगोंसे यह बात सिद्ध कर दी गई कि अमुक पद्धतिसे खेतीमें बहुत लाभ होता है तब किसान उसी पद्धतिके अनुसार काम करने लगे। उन लोगोंने पुराने हानिकारक तरीकोंका त्याग कर दिया। बस, थोड़े ही दिनोंमें उनकी खेती सुधर गई और वे उससे अपरिमित लाभ उठाने लगे। भारतवर्षकी बात कुछ और ही है। पहिले तो हमारे देशमें कृषि सम्बन्धी प्रयोग ही थोड़े किये जाते हैं। इससे सब लोगोंको सप्रयोग ज्ञानप्राप्ति हो ही नहीं सकती। दूसरी बात यह है कि जब कभी सरकारी प्रयोगालयोंके द्वारा कोई नई बात प्रकाशित की जाती है तब किसान न तो उधर ध्यान ही देते हैं और न उसके अनुसार काम करके लाभ उठानेका कोई यत्न ही करते हैं। एक बात और भी है। वह यह कि भारतके किसान मूर्ख हैं। अतएव उन्हें कृषि-विषयक नई नई बातोंकी खबर ही नहीं होती। भारतवासियोंकी अन्धपरम्परा और पुराणप्रियतासे देशकी बहुत हानि हो रही है। हम लोगोंको अमेरिका निवासियोंसे यह सीखना चाहिये कि सप्रयोग ज्ञान द्वारा सत्यका स्वीकार हम कैसे कर सकेंगे।

अपने देशकी उन्नति और कृषकोंके लाभके ही लिये अमेरिकाके कृषि-प्रयोगालयोंमें कृषि-सम्ब-

न्धी सब विषयोंपर प्रयोग किये जाते हैं। खेतीका नाश करनेवाले कीड़े, वनस्पतिरोग, अतिवृष्टि, इत्यादि अनेक कारणोंसे जब खेतीके बिगड़ जानेका भय होता है तब किसान तुरन्त ही अपने संस्थानके प्रयोगालयके अधिकारियोंको पत्र लिख कर सलाह पूछते हैं। कभी कभी किसानोंके घोड़े, बैल, गाय आदि जानवर बीमार हो जाते हैं। तब प्रयोगालयका पशुचिकित्सक वैद्य, रोगकी परीक्षा करके, दवा देता है। ऐसे ऐसे एक या दो नहीं, सैकड़ों लाभ कृषि प्रयोगालयके द्वारा कृषकोंको हुआ करते हैं। इन प्रयोगालयोंमें अनेक विषयोंकी परीक्षा, प्रयोग और आविष्कार होते रहते हैं-जैसे रसायन-शास्त्र, यन्त्र-विद्या, पशु-चिकित्सा, वनस्पति-शास्त्र, भूमि-विज्ञान, फल-विज्ञान, पुष्प-विद्या, जन्तु-विद्या, दूध दहीका व्यवसाय, इत्यादि। इन सब विषयोंपर छोटी छोटी पुस्तकें प्रत्येक संस्थानसे प्रकाशित हुआ करती हैं, जो उस संस्थानके कृषिकोंको बिना मूल्य दी जाती हैं। अन्य प्रांतोंके किसानोंको इनके लिये थोड़ीसी कीमत देनी पड़ती है। ऐसे प्रयोगालय अमेरिकाके सभी प्रांतोंमें हैं। इनके अतिरिक्त वाशिंगटनमें राष्ट्रीय कृषिप्रयोगालय भी है, जहाँ अत्यन्त प्रशंसनीय वैज्ञानिक आविष्कार (Research) हुआ करते हैं। इस प्रयोगालयकी प्रकाशित, अथवा सरकारके द्वारा प्रकाशित, कृषि-सम्बन्धी उपयोगी पुस्तकें अमेरिकाके सभी नागरिकों (Citizens) को मुफ़्त मिल सकती हैं। अन्य देशनिवासियोंको कीमत देनी पड़ती है। इन पुस्तकोंकी कीमत बहुत ही कम होती है, क्योंकि अमेरिकन सरकार इन पुस्तकोंके द्वारा कृषिसम्बन्धी उपयुक्त ज्ञानका प्रचार करना चाहती है; धन कमाना नहीं चाहती।

सन १८८७ ई० के कानूनके अनुसार अमेरिकामें कृषि-प्रयोगालय स्थापित किये गये हैं। इस कानूनका यह मतलब है कि वनस्पतिरोग, पशुविद्या इत्यादि कृषि-विषयक बातोंकी परीक्षा करके कृषकोंकी सहायताके लिये प्रयोगालय खोले जायं। प्रत्येक कृषि-विद्यालयके साथ एक प्रयोगालय अवश्य होना चाहिये और इन प्रयोगालयोंमें ऐसे प्रयोग किये जाने चाहियें जिनसे खेतीके सभी कामोंकी उन्नति हो सके। सन १९०६ ई० में दूसरा कानून बना, जिसके अनुसार कृषि-प्रयोगोंके लिये सरकारसे और भी अधिक द्रव्य मिलने लगा। अमेरिकाकी सरकार कृषिकी उन्नतिके लिये बहुत धन खर्च करती है। सन १९१० में, कृषि-प्रयोगोंके लिये, अमेरिकन सरकार ने १,०६,१३, १०० से भी कुछ अधिक रुपये दिये! इसके अतिरिक्त इमारतोंके बनवाने तथा आवश्यक सामान खरीदनेके लिये भी बहुतसा धन दिया गया है। सन १९१० ई० हीं में इमारतोंके लिये ६,६,५६२२ रुपया, पुस्तकालयोंके लिये २,[illegible]७,३[illegible]१ रु० प्रयोग-यन्त्रों (Aparatus) के लिये १,४२, ५१५ रुपया, कृषि-यन्त्रोंके लिये १,८८,८५० रु०, बैल, घोड़े, गाय इत्यादि जानवरोंके लिये [illegible],०५,३७२ रु० और अन्य प्रयोग वस्तुओंके लिये १ ,४६,२२७ रु० खर्च किये गये!!! क्या भारतमें कृषि-प्रयोगोंके लिये इसका शतांश भी व्यय किया जाता है?

(सरस्वती से)

शिल्प शिक्षा

[ले० अध्यापक गोपालनारायण सेन सिंह, बी, ए.]

अभी अपने होशकी बात है कि हमने देशावरी माल ख़रीद ख़रीद कर अपनी रुचि बिगाड़ डाली। फिर क्या था बाहरी चीज़ोंकी चटक मटकके आगे देशी टिकाऊ वस्तुएं भी नहीं सुहाने लगीं। जब हम खरीद करते ढूंढ ढूंढ कर विलायती माल। यहां तक कि गांवमें रहनेवाले बड़े आदमी भी दूरके शहर-बाज़ारोंसे साधारण चीज़ें, जैसे सन्दूक, ताला, कंघी आईना, बूताम, पेचक इत्यादि विलायती ही मंगवाने लगे थे। इससे देशी कारीगर

और मन्दे पड़ गये, उनके हाथकी रही-सही सफाई जाती रही और जो चीज़ें उनके हाथसे उतरतीं वह दिनोंदिन मोटी, भद्दी, रुखड़ी और और मंहगी होने लगीं। यह खेदका विषय समझना चाहिए कि जैसे जैसे हमारे शौक़ीनोंकी नुकताचीनी बढ़ती गई वैसेही देशी शिल्पकारोंका अनाड़ीपन भी बढ़ता गया। अबसे थोड़े दिन पहले वह मनुष्य बड़ा ही साहस करता जो यह कहता कि कभी इनके दिन भी फिरेंगे। पर भविष्यतकी कौन जानता है ? आज युरोपीय संग्रामके प्रभावसे हम फिर भी देशी मालकी ओर झुके हैं। विलायती मालसे बाज़ार ख़ाली हो रहा था, विवश हो कर हमने कहा—"अब क्या किया जाय, चलो, न से हां सही। देशी मालकी निकृष्टता आखोंमें बहुत खटकती है, पर केवल चीजोंकी भड़क और ख़ूबसूरतीके लिए कौन तिगुने चौगुने दाम खर्च करे, देशीमालसे काम निकाल लेंगे"।

इस समय मुख्य प्रश्न यह है कि कबतक इस तरह काम चलेगा ? हमारे देशमें ऐसे कितने आदमी हैं, जो केवल सादे मोटे मालसे ही सन्तुष्ट रहेंगे ? अपनी आवश्यकताकी चीज़ें अपने प्रबन्धसे बनवा लेनेका कष्ट सहन करेंगे ? धेला पैसा अपने पाससे देशी सौदेमें अधिक लगा कर भविष्यतमें भारतवर्षके शिल्प-वाणिज्यकी उन्नतिकी आशा करेंगे ? यदि ऐसे सज्जन कुछ हैं भी तो उनके सहारे अधिक दिन नहीं बैठना चाहिये।

अब समय आया है कि हम अपने कारीगरोंको शीघ्र ही सचेत कर दें। उनके सन्मुख भिन्न भिन्न देशोंके अच्छेसे अच्छे मालके नमूने रखें, और उनके काट, रंग, सफाई इत्यादिकी खूबियां बतावें। भांति भांतिके नये नये औज़ारोंके व्यवहारसे उनकी तैयारीमें जो आसानी पड़ती है उसका अनुमान करावें। यह स्मरण रखनेके योग्य बात है कि परम्परासे हमारे कारीगरोंकोजोशिल्पकारीका ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह वर्तमान समयके लिए यथेष्ट नहीं है, पुराने धुराने औज़ारोंसे अब हम लोगोंके पसंदकी चीज़ें नहीं बन सकतीं और यदि बनीं भी तो उनसे बनानेवालेको लाभ नहीं रहेगा। पुराने निकम्मे औज़ारोंसे जितनी देरमें एक चीज़ तैयार होगी, बढ़िया औज़ारसे चार बनेंगी। इसलिए जो कारीगर अपने ग्राहकोंको प्रसन्न रखना चाहता है और उनके हाथ अपना माल बेचना चाहता है उसे सब कामोंके लिए, अलग अलग, छोटे बड़े, सब तरहके बढ़िया औज़ार, देश विदेश जहांसे मिलें, चुन कर इकट्ठा करना चाहिये।

अब वह दिन नहीं रहा जब कारीगर छोटी छोटी चीजोंके बनानेमें छः महीने जान लड़ा कर अपने शिल्पकी अपूर्वताका परिचय दिया करते थे। अब कलकी बनाई चीज़ें इतनी फैल रही हैं हैं कि उनमें और हाथकी बनाई वस्तुओंमें कोई अन्तर देखनेवाला ही नहीं। ऐसी दशामें कारीगरोंके हुनरकी प्रशंसा करना व्यर्थ है। वास्तवमें औज़ारोंकी प्रशंसा होनी चाहिये। जिसके पास जितने अच्छे काटके औज़ार होंगे उसके कारख़ानेसे उतना ही सुडौल और सुथरा माल निकलेगा। पर केवल औज़ार पास होनेसे ही कुछ नहीं होता। उनका प्रयोग भी जानना चाहिये।

कलकत्ते, बम्बई और मद्रास इत्यादि बड़ी जगहोंमें थोड़ेसे कारीगरोंको इन औज़ारोंका ढंग मालूम होने लगा है। वे क्रमशः अपने पेशेवालोंके बीच उनका प्रचार कर रहे हैं, पर अन्यत्र सभी गांव और नगरोंमें बाप-दादेके समयके टूटे फूटे औज़ारोंका व्यवहार करना भी कठिन हो जाता है। इसका कारण यह है कि छुटपनेसे ही कारीगरके लड़के काममें जोत दिये जाते हैं। उन्हें साक्षर और शिक्षित बनानेकी आवश्यकता ही नहीं समझी जाती, फलतः उनकी बुद्धिका विकास नहीं होने पाता, जिससे अपने बाप-चचाकी कला की नकल उतारनेमें ही उनके दिन जाते हैं। उस में वह स्वतंत्ररूपसे कोई सुधार वा उन्नति नहीं

कर पाते। इस प्रकार अन्तमें देशके शिल्पमें कोई जान बाकी नहीं रहती और एक ही साँचे और ढर्रेपर माल उतरने लगता है। उन्हें खरीदनेवाले ग्राहक नहीं मिलते। मुनाफ़ेकी कौन कहे, लागत भी नहीं निकलती। इससे उनके पास अपने पुराने औज़ारोंको भी दुरुस्त रखनेकेलिए पैसा नहीं बचता। शिल्पकारीका यहीं अन्त समझिये।

इससे स्पष्ट है कि भारतीय उद्योग और वाणिज्यके लिए हमें भविष्यतमें कारीगरोंको अच्छी शिल्पशिक्षा प्रदान करनेका प्रबन्ध करना होगा। जो अपना गांव छोड़ नहीं सकते उनके लिये हमें अच्छे अच्छे मिस्त्री और उस्तादोंकी एक पर्य्यटक मण्डली (Peripatetic master artisans) बनाकर गांव गांव और कसबे कसबे भेजनी चाहियें। यह उस्ताद अपने साथ नये ढंगके सब औज़ार लेते आएँ और उनसे काम करके गांवके कारीगरोंको अच्छी तरह बतलावें, जिससे वह समझने लगें कि उतनी ही मिहनत और खर्चसे बढ़ियासे बढ़िया माल बनाया और उसकी बिकरी बढ़ा कर भरपूर लाभ उठाया जा सकता है।

अपने इलाक़ेके भीतर पढ़ेलिखे लोग कारीगरके बच्चोंको चुन कर चार छः महीनेके लिए ऐसे स्थानोंमें, जहां उन्हें शिल्पशिक्षाका अच्छा अवसर मिल सके, भेजनेके लिये उत्साहित किये जा सकते हैं। उनके मां बापको यह समझाया जा सकता है कि इतने ही दिनोंकी शिक्षासे उनके लड़कोंकी आय जीवनपर्यन्तकेलिये दुगुनी तिगुनी हो जायगी और आगे विशेष उन्नतिकी आशा भी हो सकती है। इसमें केवल कारीगरजातिवालोंकी ही कोई कैद नहीं है, मध्यम श्रेणीवालोंके लड़के भी अपनी जीविका कमा कर अपनी बहुत कुछ अवस्था सुधार सकते हैं।

अधिक नहीं, एक "फिटर" के वेतनको लीजिये। वह ३०) वा ४०) बंधे हुए मासिकके अतिरिक्त प्रतिदिन सहजमें ही ।=) ॥) का ऊपरसे काम बना सकता है। लड़का होशियार हुआ तो ३ सालके भीतर, दिनके कामके लिए ५०) वा ६०) और 'एक्स्टरा टैम" के लिए १०) वा १५) पा सकता है। कोई बड़ी कम्पनी हुई तो इससे भी अच्छी रकम बना सकता है।

क्या यह किसी दफ्तरके "बाबूसे" जो दस बारह सालतक २०) वा ३०) पर छः घंटे मेज़ पर झुके रहते हैं कम सुखी और सम्पन्न रहेंगे। यदि कहिये प्रतिष्ठाकी बात सो भी "जिसके हाथ दाम उसीका नाम"। अब क्लर्ककी स्थिति वा दर्जेमें क्या रखा है? अस्तु हमें अब शिल्पशिक्षा पानेका अवसर ढूंढ़ना चाहिये और इसका ध्यान रखना चाहिये कि किसी जाति वा कुलका लड़का पढ़नेमें मन नहीं लगाता तो उसके घरवालोंसे सलाह करके उसे व्यवहारकी ओर प्रवृत्त कराया जावे।

पपीता

[ले०—श्रीयुत रामप्रसाद पांडे]

इतिहास

यह तो ठीक ठीक ज्ञात नहीं कि यह फल भारतवर्षमें कबसे पैदा होता है, किन्तु १७४० वि० में नेपिल्स (Naples) भेजे जानेके कारण यह निश्चित् है कि कमसे कम यह साढ़े तीन सौ वर्ष पुराना अवश्य है। संस्कृतमें इसका पर्यायवाची शब्द न होनेके कारण इसकी विशेष प्राचीनता संदिग्ध है।

लगानेकी विधि

चार फुट गहरा गड़हा ऊपर नीचे समतल खोद कर एक फुट मिट्टी नीचे भर देनी चाहिये। गड़हेमें भरनेवाली मिट्टीको दो चार दिन धूपमें सुखा कर, खाद मिला, पुनः भर देना चाहिये। जब दो एक बार जल बरस जाय तो पेड़ लगा देना चाहिये। ध्यान इस बातका रहे कि बीज बहुत नीचे न गड़ने पावे। यदि बीज बहुत

नीचे गड़ जायगा तो पेड़ न लगेगा। पपीतेको सींचनेकी अत्यन्त आवश्यकता होती है, किन्तु ध्यान रहे कि आवश्यकतासे अधिक पानी देनेपर वृक्ष पीला पड़ जाता है। पेड़ १० या १५ फुटकी दूरीपर लगाने चाहियें। वे किसी चीज़की आड़में न पड़ने पावें; क्योंकि वृक्षको उष्णता, वायु और जलकी आवश्यकता प्रतिक्षण रहती है। यदि वृक्ष पास पास लगाये जायँगे तो वृक्षोंकी बाढ़ अच्छी न होगी। बीज अच्छा और बड़े फलका ले कर पहिले उसे किसी गमलेमें लगाते हैं। जब पेड़ कुछ बड़ा हो जाता है तो उसे उपरोक्त गड्हेमें लगा देते हैं। अधिक पानी पड़नेपर बीज सड़ जाता है।

आजकल जिस लापरवाहीसे यह वृक्ष लगाया जाता है उसमें परिवर्तन होना अत्यन्त आवश्यक है। यद्यपि इसका स्वाद अन्य बहुतसे फलोंसे अच्छा होता है तथापि यह दूसरे वृक्षोंकी अपेक्षा बहुत ही कम ध्यानसे लगाया जाता है। एवं उनकी अपेक्षा इसकी सेवा भी बहुत ही कम होती है। बगीचेके किसी कोनेमें खंभाटोंके बीच बिना सिञ्चन और खादके यह, इसीलिये, बेपरवाहीसे छोड़ दिया जाता है। यह स्वयं कुछ न कुछ फल अवश्य देता है, चाहे माली इसके पौधेपर परिश्रम करे वा न करे। किन्तु, ध्यान रहे कि परिश्रमका फल मीठा होता है, अतएव इसमेंभी परिश्रमसे अधिक अच्छे और बड़े फल लगेंगे।

यह साल भरमें ही फलने लगता है। इसका पेड़ १० से २० फुटतक लम्बा होता है। इसकी आकृति ताड़ या अरंडके पेड़के ऐसी होती है। इसकी पत्तियां भी अरण्डकी ही पत्तियोंकी सी होती हैं। इसके फूल कुछ हरियाली लिये सफेद होते हैं, एवं उनमें सुगन्ध भी चित्ताकर्षक होती है। यह बारह मासी वृक्ष है, तथापि ग्रीष्म ऋतुके फल विशेष स्वादिष्ट होते हैं। योंतो वृक्षमें अधिक फल लगते हैं, किन्तु कच्ची अवस्थामें कुछ फल तोड़ लेनेसे शेष फल बड़े और स्वादिष्ट होते हैं।

जिस प्रकार मनुष्यों एवं पशुओंमें नर मादा होते हैं, उसी प्रकार वृक्षोंमें भी यह अन्तर होता है। पपीतेके मादा पेड़में नर पेड़ोंसे अधिक फल लगते हैं। यह वृक्षमें पुष्प निकलनेपर ही ज्ञात होता है पहिले नहीं, क्योंकि नर और मादा वृक्षोंकी आकृतिमें भिन्नता नहीं होती।

मनुष्य आदि जीवोंकी उत्पत्ति, जिस प्राकृतिक नियमानुसार होती है वही नियम वृक्षोंके लिये भी है। इसके साधक भ्रमर पवनादि हैं, अतएव अच्छे और अधिक फल लगनेके लिये नर और मादा दोनों प्रकारके वृक्षोंकी आवश्कयता है, किन्तु समान संख्या आवश्यक नहीं है। एक ही नर पौदेसे कई मादा पौदोंका काम चल जायगा।

उपयोग

इसका फल कच्ची और पक्की दोनों दशाओंमें काम आता है। कच्चे फलकी तरकारी होती है और अचार डाला जाता है। पके फलको खाते हैं और तरकारी भी होती है। कच्चे फलका दूध अजीर्ण और मन्दाग्निके लिये उपयोगी है। त्वचाके रोगोंके लिये भी यह लाभदायक है। मांसको इसकी पत्तीमें लपेट कर गाड़ देनेसे वह बहुत शीघ्र गल जाता है। ग्रीष्मके प्रारम्भमें जब अन्य फल कम मिलते हैं, यह अपनी दोनों ही दशामें काममें आता है। यदि फल पेड़में ही पके तो अधिक स्वादिष्ट होता है। केवल इसकी लकड़ी काममें नहीं आती।

इसकी उम्र बहुत ही कम होती है। गई बीती दशामें यह अधिकसे अधिक ५ या ६ वर्षतक लगा रहता है, किन्तु अच्छे और अधिक फल तो दो तीन वर्ष ही लगते हैं।

अधिक उपजके स्थान

कैरीका पपीता जो अमेरिकाके गरम प्रदेशोंमें अधिक होता है और दिल्लीसे लंकातक भारतवर्षमें भी पाया जाता है उसकी २० जातियां हैं। उनका अलग अलग वर्णन फिर कभी करेंगे। संयु-

क्षप्रदेश, उट्कमण्ड, लूचू आदिमें इसके अधिक वृक्ष लगाये जाते हैं।

वृक्ष और फलकी रक्षा

यदि वृक्षके निकट बड़ी बड़ी घास पैदा हो जाती है तो बरसातमें एक प्रकारका कीड़ा पत्तियोंमें लग जाता है, जिससे हानि होती है। अतएव इससे वृक्षकी रक्षा आवश्यक है। ऊपर कह आये हैं कि फल वृक्षमें पकनेपर विशेष स्वादिष्ट होते हैं, किन्तु ध्यान रखना चाहिये कि ऐसी अवस्थामें कौवे फलोंको चोंच मार कर खराब कर देते हैं, जिनसे रक्षा करना कर्त्तव्य है।

ऊपर बताई गई तरकीबोंको काममें लानेपर आशा है कि इसकी उपजमें कुछ लाभ अवश्य होगा।

सूर्य

[ले० श्रीयुत बलदेव उपाध्याय]

जितने तारागण क्षितितलवासियोंका ध्यान आकर्षित करते हैं उनमें सबसे बड़ा और प्रकाशवान सूर्य है। यदि असंख्य नक्षत्रों तथा ग्रहोंका पूर्णतया अभाव हो जाय, तो भी हमारे दैनिक जीवनमें विशेष परिवर्तन न होगा। यदि चन्द्रमा चूर्ण चूर्ण कर दिया जाय, रात्रिके परिमाणमें वृद्धि हो जाय, तथापि हम लोग जीवित रह सकते हैं, परन्तु प्रकाशवान दिवाकरके अस्तित्व बिना जगतकी दशाको ध्यानमें लाना वास्तवमें अत्यन्त कठिन है।

आर्योंके लिए सूर्य एक दृश्य देव है और वैज्ञानिकोंके लिये वह शक्तिका केन्द्र है। हम लोग आगे देखेंगे कि वह दार्शनिकोंके लिये क्या है। स्मरणातीत समयसे संसार शक्ति, ताप और प्रकाशके उद्गमस्थानका पता लगानेके लिये यत्न कर रहा है। प्राचीन कालमें भी इस विषयमें विविध कल्पनाएँ की गई हैं और इस विषयका यत्न किया गया है कि सूर्यका हम यथोचित वर्णन कर सकें। वह हम लोगोंके लिए प्रत्येक वस्तुका उद्गम है। उसीके चारों ओर पृथ्वीके भ्रमणसे वर्ष और मास होते हैं। इन वर्षों तथा मासोंका निर्देश होमर (Homer) और हेसिअड (Hesiod) तकमें पाया जाता है।

Astronomy ज्योतिष]

सूर्य सौर जगतका केन्द्र है। पृथ्वी तथा अन्यान्य ग्रह उसके चारों ओर भ्रमण करते हैं। वह प्रज्वलित उष्णताका एक समूह है, जो बराबर इतनी उष्णता फैलाता रहता है कि उससे इतना बड़ा भू लोक भी जो उससे ९ करोड़ मीलसे भी अधिक दूर है, उष्ण होता रहता है। उसका तेज इतना प्रखर तथा प्रचुर है कि जब भूमण्डल उसके सम्मुख आ जाता है तब हमें आकाशवर्ती नक्षत्रों तथा ग्रहोंका दर्शन नहीं होता।

सूर्यका परिमाण

विक्रमके २५० बरस पहले अरिष्टार्कने (Aristarchus) पता लगाया कि चन्द्रमाकी अपेक्षा सूर्यकी पृथ्वीसे दूरी १९ गुनी अधिक है। यह कल्पना यद्यपि अशुद्ध है,पन्द्रह शताब्दियों तक इसी प्रकार रही। इसकी सत्यता पर किसीने शङ्का न की। परन्तु वास्तवमें सूर्यकी दूरी चन्द्रमाकी अपेक्षा ४०० गुनी अधिक है। आजतककी रीतियों तथा यन्त्रों द्वारा निश्चित की गई दूरी ९२,८३०, ००० मील है और प्रो० आदम के अन्वेषणके अनुसार पृथ्वी तथा चन्द्रके केन्द्रोंकी दूरी (Mean distance) २३८, ७९३ मील है। इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्यकी दूरी चन्द्रमाकी अपेक्षा ४०० गुनी ही अधिक है,न कि १९ गुनी। यद्यपि एरिस्टारकसकी कल्पना अशुद्ध निकली, तथापि वह इस प्रयत्नके साहससे उस प्राचीन कालका वीर है, जिस समयमें अपनी दृष्टिको विस्तृत करनेकी बात प्रायः असम्भव थी।

देखनेमें सूर्यका बिम्ब भी चन्द्रमाकी तरह वृत्ताकार जान पड़ता है, परन्तु वास्तवमें वह बहुत बड़ा गोला है। उसका व्यास (Diameter) प्रायः ८ ६४, ००० मीलके लगभग है। धरातलकी अपेक्षा सूर्यका घनफल १,४००,००० गुना अधिक है, किन्तु भार-परिमाण केवल ३,३२,००० गुना अधिक है। इसका यह कारण है कि सूर्य उत्तप्त वायवीय है, परन्तु पृथ्वी ठण्डी ठोस।

सूर्यका आलोक और ताप

सूर्यके ही द्वारा पृथ्वीको आलोक और उष्णता प्राप्त होती है। यह दोनों वस्तुएं हमारे बहुत काम आती हैं। हमारे भोजनके पदार्थ, घरकी सामग्री, कल कारखानोंके लिये धातु, रेल और जहाज़केलिए भाप, और जलानेके लिये कोयला आदि सभी वस्तुएं सूर्यकी ही उष्णतासे प्राप्त होती हैं। हमारा स्वास्थ्य भी सूर्यकी ही उष्णतापर अवलम्बित है।

सूर्य चिह्न (Sun-spots)

दूरवीक्षण यन्त्रके बिना यदि कोई मनुष्य सूर्यका दर्शन करे, तो उसे वह निर्मल प्रकाशवान् दीख पड़ेगा। सूर्य-तल पूर्णतया प्रकाशवान् ज्ञात होता है, परन्तु वास्तवमें यह बात नहीं है। यदि हम दूरबीनसे सूर्यको देखें, तो उसके तलपर भिन्न भिन्न आकारकी काली काली चकत्तियां देख पड़ती हैं। इन्हें सूर्य-चिह्न अथवा सूर्यके दाग कहते हैं। कभी तो इस प्रकारके बहुतसे चिह्न दिखलाई पड़ते हैं और कभी थोड़े। चिह्नका मध्य भाग अधिक काला दिखाई पड़ता है। उनके चारों तरफ एक प्रकारकी झालर होती है। कई चिह्न परिमाणमें बहुत ही बड़े दिखाई पड़ते हैं, जिनके व्यास हजारों मीलके होते हैं। इन चिह्नोंके विषयमें प्राचीनोंको बहुत ही कम ज्ञात था, क्योंकि वे बिना किसी यंत्रकी सहायताके उन्हें नहीं देख सकते थे।

दूरबीनके द्वारा सूर्यतलको देखनेमें अधिक सावधानीकी आवश्यकता है, नहीं तो नेत्रोंको हानि पहुंचनेका भय है। हम लोग जानते हैं कि किस प्रकार प्राचीन कालमें प्रख्यात ज्योतिषियोंके नेत्र नष्ट हो जाते थे। अतः जो कोई दूरबीनसे सूर्यतलका दर्शन करना चाहे उसे अपने नेत्रोंको बचानेका यत्न करना चाहिये।

खगोल-विज्ञान-वेत्ताओंने सूर्य चिह्नके अस्तित्वसे निश्चय किया है कि पृथ्वीकी भांति सूर्य भी अपनी अक्षपर घूमता है। दूरबीनके आविष्कारके कुछ ही काल बाद, १६६८ वि० में फ़ेब्रिटियस ने (Fabritius) पता लगाया कि सूर्यतलपर बहुतसे चिह्नोंका अस्तित्व है। इसके बाद गेलिलिओ (Galileo) और इस्कीनर ने (Scheiner) भी इसी कल्पनाको दृढ़ किया। स्कीनरका यह मत था कि यह चिह्न सूर्यके समीप स्थित नक्षत्र हैं। परन्तु गैलिलिओने इस कल्पनाकी असत्यता सिद्ध की। उसने यह दिखलाया कि यह सूर्यके तलपर ही स्थित हैं, न कि उसके समीपमें। परन्तु इस कल्पनाको कि सूर्य जैसे प्रकाशवान और तेजोमय वस्तुमें काले चिह्नोंका अस्तित्व है उस समयके धर्मगुरुओंने अस्वीकार किया। अतः इसका यथोचित स्वागत नहीं हुआ।

गेलिलिओके ऐसे ही अनुसन्धानके विषयमें कहा गया है—

"The meddlesome Galileo must be suppressed" so murmured the university fathers. For founding conclusion upon observation Galileo's reward in his old age was imprisonment by the Inquisition and a broken heart................"—Gregory

थोड़े समय तक लोगोंपर दार्शनिक प्रभाव जमा रहा, परन्तु धीरे धीरे मनुष्य अनुभूति मूलक विषयोंको मानकी दृष्टिसे देखने लगे और तब गेलिलिओके उस साहसिक अनुसन्धानकी शत मुखसे प्रशंसा की जाने लगी।

एक बार एक मुख्य चिह्न १२ दिन तक सूर्यतलपर दृष्टिगोचर हुआ, तदनन्तर लुप्त हो गया, और पुनः प्रकट हुआ। इससे ज्ञात हुआ कि सूर्य

भी अपनी अक्षपर घूमता है और वह भ्रमणकाल २५ दिनका है।

सूर्य-चिह्न-विषयक कल्पनाएं

सौर चिह्नोंके विषयमें समय समयपर दार्शनिकोंने भिन्न भिन्न कल्पनाएँ की हैं।

हर्बर्ट स्पेन्सर का (Herbert Spenser), जो इङ्गलैण्डका दार्शनिक शिरोमणि कहा जाता है, यह विश्वास था कि यह चिह्न सूर्यतलपर द्रवोंसे परिपूर्ण झील होते हैं। उसी प्रकार इस विद्वान दार्शनिकके मतानुसार ये चिह्न सूर्य-तलपर द्रव पदार्थोंसे पूर्ण बड़े बड़े झील हैं। श्रीमती ब्लैवेट्स्की (madame H. P. Blavatsky) के मतानुसार यह काले चिह्न सार्वदिक शान्ति और सुखके जगतमें प्रवेश करनेकेलिए द्वार हैं। यद्यपि सांसारिक मानी मनुष्य इस कल्पनाको अनादरकी दृष्टिसे देखेंगे तथापि जो इस विदुषी महिलाने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Secret Doctrines' के १५७ वें पृष्ठपर लिखा है, उसे बहुतसे बुद्धिमान् तथा विज्ञानवेत्ता (?) लोग सत्य मानते हैं। इस आश्चर्यजनक पुस्तकमें लिखा है-

The yogi leaves this body through Brahma randhra and through the rays enters the sun, whence through the dark spots enters the Parampada.

इसका अर्थ यह है कि योगी ब्रह्मरन्ध्रद्वारा इस शरीरका त्याग करता है और किरणों द्वारा सूर्यमें प्रवेश करता है, जहांसे काले चिह्नोंमेंसे हो कर परमपद प्राप्त करता है।

एक छोटेसे लेखमें सूर्यका सत्य वर्णन लिखना अत्यन्त कठिन है। उससेभी कठिन इस बातका वर्णन करना है कि आर्योंके सूर्य-विषयक कैसे कैसे सिद्धान्त थे।

ईशोपनिषद्में लिखा है कि सूर्य सत्य जगत्का द्वार है। यह वर्णन मिलता है कि सूर्य विम्ब हम लोगोंसे सृष्टिकी सत्यताको छिपाये हुये है और ईश्वरसे प्रार्थना की जाती है कि वह व्यवधानको हटाये और प्रार्थना करनेवालोंको जगत्की सत्यताको दिखलावे।

इस सुन्दर पुस्तकमें लिखा है-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।

सूर्य सिद्धान्तके द्वादश परिच्छेदमें इसी प्रकार आर्योंके सत्यभावानुसार सूर्यका एक बहुत ही सच्चा वर्णन दिया हुआ है।

कागज़के जूते और टोपियां

युरोप महाद्वीपके युद्धने संसारमें विचित्र घटनाएँ पैदा कर दी हैं। युद्धसे पहले जो वस्तु किसी काममें आती थी अब वह किसी और ही काममें आने लगी। युद्धकी सामग्रीमें काम आनेवाले पदार्थ तो अब और किसी काममें बहुत कम आते हैं; उनके स्थानपर अन्य पदार्थोंका प्रयोग होने लगा है। युद्धके कारण कागज़ भी अब ऐसे कामोंमें आने लगा है, जिनमें कभी नहीं आया था। (Board of Trade) बोर्ड आफ़ ट्रेडके प्रतिनिधिके कथनानुसार इंगलैंडमें कागज़की बहुत चीज़ें बनने लगीं हैं, मुख्यतः रस्सी और रेशा (fibre)। (Mr Headmore) हेडमोरने, जो बोर्ड आफ़ ट्रेडमें हैं (Daily graphic) डैली ग्राफिक पत्रके सम्वाददातासे कहा कि (krash) क्रेश प्रकारके कागज़से अच्छी मज़बूत रस्सियां व्यापारके लिए बन जाती हैं। (tissue paper) टिस्यू कागज़ भी इस काममें आ सकता है, परन्तु उसकी रस्सियां इतनी मज़बूत नहीं होतीं। कागज़की रस्सियां व्यापारमें बहुत चलती हैं।

बोरियां बनानेकेलिए कागज़ सबसे नया पदार्थ है। इसकी बोरियां टाटकी बोरियोंकी बराबरी करती हैं। हेडमोरका कथन है कि मेरी

सम्मतिमें तो कागज़की रस्सियां व बोरियां भली भांति प्रचलित हो जावेंगी।

जर्मनीमें तो कागज़के जूते बहुत काममें आते हैं। यह जूते गरम और सुन्दर होते हैं। अब इङ्गलैंडमें भी इनका प्रचार होने लगा है। यह जूते बटे हुए कागज़के बारीक बुनाईके, होते हैं। इनकी बुनावट लगभग वैसी ही होती है जैसी टोपियोंकी। जर्मनीने तो इस मामलेमें और भी ग़ज़ब ढाया है, लोहेकी नलीके स्थानपर कागज़की नलीका प्रयोग किया है और इनमें सफलता भी प्राप्त की है। इगलैंडमें अभी ऐसा नहीं हुआ है।

अमेरिकामें दरी व चटाइयोंकी सामग्री कम हो गई है। वहां बटे हुए कागज़की दरी व चटाइयां बनानेका प्रश्न उपस्थित है-कागज़की बनी हुई बिछोनेके ऊपरकी चद्दरोंका प्रयोग प्रायः होने लगा है।

कागज़को टोपियोंका प्रचार इगलैंडमें बहुत होता जाता है। यह बहुत सुन्दर होती हैं और कई प्रकारकी बनाई जाती हैं। चारों ओर तार लगा देते हैं कि जिससे उसकी शकल बनी रहे। कागज़को पहले तो लपेटते हैं, फिर बटते हैं। टोपीका ऊपरका भाग अलग बनाते हैं और हाशिया (घेरा) अलग, फिर उनको सी लेते हैं और सीवनपर फीता लगा देते हैं।

इस युद्धके कारण जर्मनीमें कपड़ा बहुत कम हो गया है। कपड़ेके स्थानपर कागज़ इत्यादिसे मिले हुए पदार्थ काममें लाये जाते हैं। इसमें संदेह नहीं कि रुईके बने हुए कपड़ेकी अपेक्षा कागज़के बने हुए वस्त्रोंमें गर्मी कम होती है, परंतु युद्धकी आवश्यकता इतनी कड़ी है कि उसके लिए यह तकलीफ़ भी सहते हैं।

—चिरञ्जीलाल माथुर

भगवानको भूल

[ले० अब्दुल्लाह]

नशा ज्ञानका ले के' आती है' होली,
करश्मे भी क्या क्या दिखाती है' होली।
जो हैं "मुस्करातुन् हरामिन्" के *क़ायल,
उन्हें देख कर मुस्कराती है' होली।

बधाई है, विज्ञानके सम्पादकजी महाभाग! बधाई है! वाह वाह, जो बात आजतक किसी विज्ञानीसे बन न आयी, तुमने कर दिखायी। शाबाश, "जो बात की खुदाकी क़सम ला जवाब की।" सोमदेवसे भंग, भंग भगवानसे धतूरा, उनसे मदिरा देवी, फिर लखनऊके नवाबोंकी बी चिनियां बेगम, अफ़ीना काली-भवानी, उनसे को-केन-कुमारतक दरजे बदरजे भांत भांतके नशे चढ़ते आये। चंडूसे तो आरामकी हद हो गयी थी कि लेटे लेटेही उड़ा रहे हैं। इधर उन्नीसवीं सदीके विज्ञान-बहादुरोंको भगवान युग युग जीता रखे कि वह कष्ट भी जाता रहा, आप लेटे रहिए जबान भी न हिलाइये, मुंह भी न डुलाइये, अफीमकी नवयौवना कन्या मारफीन पिचकारीकी राह आपके नसनसमें प्रवेश कर जाती है। पर इन सबोंसे बाज़ी ले जाना आपका ही हिस्सा था। हालमें नशोंकी रूह खींचकर "मादक-मूल" जो आपने तय्यार किया है, सचमुच गज़ब ही कर डाला। कायस्थोंकी पाठशालामें आपका होना सुफल हो गया। टेम्परेंसके भक्त कायस्थ लोग अब अपनेको धन्य कहेंगे। आबकारी उठ जायगी। मि० बी० एन० शर्म्मा जो कौंसिलमें न कर सके आपने प्रयोगशालामें कर डाला। "धन्योऽसि कृतविद्योऽसि"।

*"अल्मुस्करातुन् हरामिन" अरबीकी एक आयत है, मंत्र है। इसका अर्थ है—"समस्त मादक पदार्थ त्याज्य हैं"। इस प्रमाणके अनुसार नशेकी चीज़ोंसे परहेज़ लाज़िम है। ले०

General साधारण]

आपने अपने मादकमूलका नमूना जो मुझे भेजा बड़ी कृपा की, उसके बदले धन्यवादोंके केवल नौ सौ तिहत्तर बोरे भेजे, परन्तु खेद है कि आजकल अकसर माल प्लैटफार्मोंपर ही पड़ा रह जाता है, सुना है कि मालगाड़ियां भी लड़नेको चली गयी हैं। जो हो, उसे लौटा मंगाया कि रेलवाले बीचमें ही हज़म कर लेंगे। "यां टुक निगाह चूकी, औ' माल दोस्तों का"।

आपने मादकमूल बनाकर संसारका 'यत्परो नास्ति' उपकार किया है। सारी दुनिया आपकी ऋणी है। पर इतनी फजूलखर्ची क्यों? पांच रत्ती भेजनेकी ज़रूरत ही क्या थी, क्योंकि इसे खाने पीने छूने क्या बल्कि पिचकारीसे प्रवेश करानेकी भी ज़रूरत नहीं है। जब देखनेमात्रसे नशा होता है, तो यह तो अक्षय पदार्थ है। रेडियमका नगड़दादा और युरेनियमका पितामह है। वह कंजूस जो एक पैसेका घी अपने दादाके समयसे रखे हुए था और देखकर ही घीसे पेट भर लेता था, इस ज़मानेमें होता तो अपनी प्यारी कृपणताको ही आपपर वार देता। महा आश्चर्य! शीशीके भीतरसे इसके दर्शन हुए नहीं कि लाखों चिनियां बेगम मात, करोड़ों भंग भगवान निछावर। मारफीनकी पिचकारी अब पुराना फैशन है। बीसवीं सदीमें तो हज़रत! नशा है तो आपका पेटेंट मादकमूल, और बाकी सब खाक और धूल। कहीं प्रयागकी चुंगीके चतुर चेयरमेन साहबको पता लग जाय तो मारफीनको मारपीट कर बाहर निकाल दें और भूल जायँ, और मादकमूलको ही पड़े देखा करें। देखिये कैसे सरूर गठते हैं!

आपके मादकमूलकी शीशी खोलनेकी नौबत हो न आयी। हाथमें लेकर इस अद्भुत पदार्थपर निगाह डालते ही नशा चढ़ गया। एकाएकी शरीर फूलसा हलका हो गया। अजी,फूल भी नहीं, फूलमें तो कुछ न कुछ वज़न होता ही है। इधर हलकेपनपर चकित हो अपनी ओर देखता हूं तो शरीर ही नदारद और हूं कहां—बड़े वेगसे उड़ा जा रहा हूं। आकाशमें मैं स्वयं कोई ग्रह वा नक्षत्र हो गया हूं, सामने एक बड़ा गोला था जो अत्यन्त जल्दी जल्दी छोटा होता जा रहा है। इस गोलेपर अभी एशियाका नकशा सा दीखा था अब वह इतना छोटा हो गया कि दीखता नहीं। ओहो! यही हमारी धरती माता थीं। उफ़ और भी लीजिए, एक बड़ा भारी आगका गोला दिखाई दिया और वह भी छोटा हो चला, ओ हो! यह वृहस्पति जी महाराज थे! तो मैं क्या इस वक्त सूर्यमंडलसे बाहर उड़ा जा रहा हूं? ठीक है,मेरी गति बड़ी तेज़ है। रोशनी सेकंड पीछे केवल १ लाख ८६ हजार मील चलती है, परन्तु इस समय मेरी गति उससे भी कहीं ज़्यादा बढ़ गयी है। पहले नशा चढ़ते १० मील प्रति सेकंडकी चाल चला था, पर हर सेकंडमें मेरी गति दस गुनी होती जाती है। हिसाब लगानेकी फुरसत किसे है। १० वें सेकंडमें तो हम वरुण ग्रहके पार हो गये, सूर्य दूरसे चमकता हुआ तारा सा दीखने लगा। योगी लोग क्या खाक सूर्यचक्रवेध करेंगे। मादकमूलके दर्शनोंका प्रताप ही अद्भुत है। बीसवें सेकंडके बाद मैं उस दिव्य देशमें पहुँचूंगा, जहांसे पृथ्वीपर आनेमें रोशनीको एक हज़ार बरस लगते हैं। इतने सोचनेकी भी फुरसत कहां, देखता हूं कि मैं बड़े वेगसे एक महाप्रचंड सूर्य लुब्धककी ओर उड़ा जा रहा हूं। मैंने गति बदली। अगस्त्यकी ओर रुख किया पर बढ़ते हुए वेगके कारण इरादा करते करते ही अगस्त्यके आगे बढ़ गया था। सैकड़ों नीहारिकाओंमेंसे घुसकर मैंने मार्ग किया; कहीं किसी तरहकी रुकावट न हुई। मेरी गति अव्याहत थी। हर्शलके हजारों तारे और नीलों नभस्तूप मेरी निगाहके सामने नाच कर निकल गये। आकाशगंगाकी लहरें आयीं और चली गयीं। बहुतेरे भीमकाय तारे मेरे शरीरसे होते हुए ज़नसे निकल गये। सैकड़ों सूर्यमंडल, बहुतेरे ब्रह्मांड, बातकी बातमें मेरी नशीली निगाहके सामने नाच कर गुप्त

हो गये। मेरा वेग कल्पनातीत हो गया था। जिस आकाश और तारामंडलको धरतीपरसे देखकर चकराता था बालूकी रेणुकासे भी छोटा होकर गायब हो गया। बड़े बड़े अद्भुत देवलोक पार कर गया। भू भुव स्वर्लोक कहां छूट गये, पता नहीं। महर्लोक अभी अभी नज़रोंसे गायब हो गया। जन, तप और सत्यलोक इतने पीछे छूट गये कि अब धुंधली नीहारिकासे दीखते हैं। क्षण भरमें बड़े सूक्ष्म और विस्तृत आवरण भी भेद कर पार हो गया। ओहो, लीजिए इतनी लम्बी यात्रा हुई और पूरे दो घंटे भी न लगे और अब मैं पौराणिकोंके क्षीर समुद्रमें लहरें लेने लगा। आ, हा! बड़ा अच्छा अवसर मिला, शायद यहां ही इस विश्वके नायक विष्णु भगवानके दर्शन हो जायँ।

इतना सोचना था कि बड़े तेज़ झोंकेमें पड़कर एकाएकी धमसे एक बड़े अजगरके फनपर गिर पड़ा। जिस समय धरतीसे चला था मेरे शरीरका पता न था। शुद्ध चेतनरूप रवाना हुआ था। चैतन्य अहन्ता कुछ जड़ पदार्थ तो है नहीं कि उसमें बोझ हो, परन्तु बड़ी तेजीसे बढ़ते हुए वेगके कारण मेरी चैतन्य अहन्ता भारवती हो गयी थी। वैज्ञानिक कहते भी हैं कि आकाशतत्त्वमें प्रकाशसे अधिक वेगका स्फुरण होनेसे आकाशतत्त्वका स्थूल-जड़-पदार्थमें परिणत होना संभव है। मेरी अहन्ता तो आकाशसे भी कहीं सूक्ष्म प्रकृति थी। वेग ज्यों ज्यों बढ़ता जाता था त्यों त्यों उसमें स्थूलता बढ़ती जाती थी। *आधे मिनिटकी यात्रामें ही अहंकारसे मैं बुद्धि हुआ, फिर बुद्धिसे मन और मनसे आकाश, आकाशसे तेजोमय रूप होकर अब क्षीरसमुद्रमें आकर वायव्य रूप धारण कर चुका हूंगा। यही बात थी कि शरीर बोझल हो गया और मैं उस अजगरकी सांसके झोंकेसे खिंचकर उसके फनपर जा कर धमसे गिर पड़ा।

अहो! "अचरियं! अचरियं" यह कोई ऐसा वैसा अजगर नहीं था। यह तो शेषजी महाराज अनन्त जगदाधार स्वयं थे! ओ! अब्दुल्लाह! खुश नसीब! धन्य तेरे भाग! जो ज़रा निगाह नीचे की तो देखता हूं स्वयं नारायण शेषकी कुंडलीपर शयन कर रहे हैं। विशाल-विस्तृत-नवनीलोत्पल-संकाश-शरीर सूक्ष्म दिव्य क्षीरसागरमें प्रसरित दशों दिशाओंमें अनुपम शीतल तेज विकीरित कर रहा है। शेष भगवान अपने सहस्र सहस्र फणियोंसे छाया एवं मोरछल कर रहे हैं। परमा-सुषमा-सम्पूर्णा–अचंचला-अपरा प्रकृति* लक्ष्मी-विभूतिरूपा विभुपादपद्मानुरागिणी सेवामें एक भावसे लगी हुई है। परन्तु अखिल विश्वके नियन्ता सो रहे हैं। "प्राणस्य प्राणनं प्रोच्चैः परं जीवस्य जीवनं" "प्राण प्राणके जीवके जिय सुखके सुख राम" वही देवोंके देव सो रहे हैं। शायद यही बात थी कि शेष भगवानने बड़े वेगसे आते हुए नारद ऋषिके समान तेजवाला कोई देवर्षि समझ कर झट अपने फनपर खींच लिया कि ऐसा न हो कि ऊधम मचाकर मैं जगा दूं। सच है–

बालीं पे' जो' सौदाके' गया शोरे' क़यामत
खुद्दामे' अदब बोले' अभी आंख लगी है।

आतङ्कसे कुछ देर तो बोलनेका साहस न हुआ। जीमें भांत भांतके विचार लहराने लगे तबीयत ने कहा "देखो, म्यां अब्दुल्लाह, यह हज़रत खर्राटे ले रहे हैं और उधर करोड़ोंका कुश्तोखून हो रहा है। कहीं लड़ाईमें धर्म्म और न्यायके नामपर लाखों क़ुर्बान हो रहे हैं। हज़ारों प्लेग और हैज़ेके लुकमे बन रहे हैं। सैकड़ों फाक़ोंसे जान दे रहे हैं। मस्जिदोंमें, मन्दिरोंमें, गिरजोंमें नित्य आह और फर्याद है। भक्तपर भक्त आपको टेर रहा है। दुखिया गरीब आसरा लगाये अपने जीवनके दिन काट देते हैं। हमारे कवि उलाहनेपर उलाहने देते जाते हैं, जलीकटी भी सुनाते हैं। बहुतेरे

* भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेवच, अहंकार इतीयंमे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा। [गीता]

* अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे ऽपराम्
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्य्यते जगत्। [गीता]

लाचार हो कहते हैं कि भगवान बूढ़े होकर शायद मर गये कि कोई सुननेवाला नहीं। बहुतेरे केवल इनके होनेमें शुबहा ही नहीं करते, बल्कि तर्क और मंतिक़से साबित करते हैं कि यह न कभी थे न हैं न होंगे। अरगन, घंटा, शंख, धौंसा सब कुछ इनको जगानेको ही बजते हैं, पर आप हैं कि कानोंपर जूं भी नहीं रेंगती और आपके नाजबरदार लोग ज़रा भी इन पुकारोंकी ओर ध्यान नहीं दिलाते। ऐसे खुशामदियोंसे अल्लाह बचाये कि इकलौते बेटेको* लोग सूलीपर चढ़ा दें और इन मा बापको कानों कान खबर न हो! और होती कैसे। इनके मारे यहां तक उनकी पहुंच हो कैसे। वह तो कहिए कि मादकमूलके सहारे तुम पहुँच गये बड़ी बात हुई, अब कोई ढंग सोचो।" तबीयत इस तरह ज़ोर दे रही थी कि आपने करवट बदली। मैंने सोचा, मौका अच्छा है, किसी तरह मुख़ातिब करूं, कुरानके आयात किरअतके साथ पढ़ने शुरू किये कि किसी सूरेसे तो खुश होंगे। शुरूसे आखिरतक कुरान खतम मगर वही खर्राटे, वही नींद। सोचा कि शायद हज़रत ईसावाली दुआ काम आये। वह भी कई बार पढ़ी। सब बेकार। छन्द अवस्थाके[1] पद और गाथा गाये, कौन सुनता है। ताओतेहकिंग[2] के मंत्र ज़ोर ज़ोरसे पढ़े सब व्यर्थ। प्रज्ञापारमिता सूत्रसे[3] निर्विकल्पा देवीको मनाया कि कृपा करें, फ़ज़ूल। सबके बाद ख्याल आया कि शायद वेदके मंत्रपर रीझें तो ऋग्वेदके "ॐ अग्निमीड़े पुरोहितम्से" आरंभ करके अथर्ववेदतक गा गया। उधर ज्योंके त्यों। हैं! क्या वेद जैसी पुरानी भाषा ईश्वरीय मंत्र भी बेकार हो गया? सोचा कि शायद योगनिद्रा देवीकी विनती करनेसे काम चले। चंडीपाठ सात बार पढ़ गया। कोई असर नहीं। कहांतक कहूं, मैंने कोई बात उठा न रखी। एक हज़ार बार विष्णुसहस्रनाम पढ़ गया। जब "विष्णुर्विष्णुर्वषट्कारः" पर आता था अपने बूते भर कड़ककर कहता था, पर कौन सुनता है। आड़बन्दारुस्तोत्र सुना सुनाकर हार गया। सब तरह थक गया तो जीमें आयी कि खुशामदोंमें कोई नयापन हो नहीं सकता और इससे ज्यादा ज़बानी खुशामद क्या कोई करेगा। अब ज्यादा हिम्मत करके शिकायतें शुरू कीं, उलाहनोंके दफ़्तर खोल दिये।

"भगवन्, इस विश्वभरमें आपके रिझानेकी कोई युक्ति है इस बातकी आशा व्यर्थ है। सोतेको कोई जगाये भी पर जागतेको जगाना कैसे संभव है। दुनियांकी जितनी जुबानें थीं, जितने मत थे, सबके अनुसार आपको पुकारा पर आप हैं कि चुप। सुनते ही नहीं। यह निठुराई नहीं, जुलम है जुलम। गजब है, सितम है कि आपने बेचारे जानदारोंकी और मनुष्योंकी रचना तो कर दी पर उन्हें सुखसे वंचित रखा। चालाकी यह कि आप तो सर्वशक्तिमान और त्रिकालज्ञ बन बैठे, सारा भविष्य अपने हाथमें कर लिया। होनी बात स्थिर कर दी। मनुष्यको दुःख देनेका पहलेसे निश्चय कर लिया। भला कहिये तो सही उसने आपका बिगाड़ा क्या था? आदमको बागमें रखा पर ज्ञान और जीवनके फलसे वंचित रखा। मना कर दिया। भला आपको क्या ईर्षा थी कि बेचारेको इन लाभोंसे रोक रखा। जब अजाजीलने उनसे यह फल खिला दिये तो फिर दोनोंको बददुआ क्यों दी? यह डाह, यह ईर्षा, यह कोप? बड़ी लज्जाकी बात है कि सर्वशक्तिमान हो कर निर्बलोंकी तरह क्रोधके वश हो गये, और आदमकी भावी सन्तानको भी, जिसने आपका कुछ नहीं बिगाड़ा था, शाप दिया और सदाके लिए दुःखी और पापी कर दिया। तुम्हारे क्रोध और ईर्षाका भी कुछ ठिकाना है? जब इसराएलियोंने बछड़ा पूजा तुम्हारे क्रोधका अन्त न रहा। मुसलमानों-

* अर्थात् ईसामसीह को।

१. पारसी प्राचीन धर्म्म ग्रंथ। २. "पंथका ग्रंथ" नामक चीनका प्राचीनतम धर्म्मग्रन्थ। ३. बौद्धोंके महायान सम्प्रदायका एक स्तोत्र विशेष। कहते हैं कि बुद्ध भगवानकी रचना है।

को तुमने यह उपदेश दिलाया कि विधर्मी लोग सभी शत्रु हैं उन्हें मार डालना पुण्य है। युरोपमें पोपको अपना नायब बनाकर इतना अत्याचार फैलवाया कि अपने ही भक्तोंको अनेक अनेक यातनाएं दिलवायीं जीता जलवा दिया, जिनके कारण युरोपका इतिहास खूनसे रंगा हुआ है, जिनके कारण युरोपके ईसाई सभ्य संसारमें मुँह दिखाते लजाते हैं, तुम्हारीही काररवाईसे पारसियोंका घरबार सत्यानास हो गया, बौद्धोंमें मतभेद होगया और अपनी मातृभूमिसे निकाले गये, चीनियोंके प्राचीनमतका लोप हो गया, जैन लोग अनीश्वरवादी हो गये, कहां तक कहें तुम्हारी कुटिलाईका इतिहास और संसारका इतिहास दो विषय नहीं हैं। एक ओर मूर्त्ति[१] बनवाते, दूसरी ओर तुड़वाते हो। एक ओरसे पुस्तक बनवाते हो दूसरी ओरसे खंडन करवाते हो, एक ओरसे एक सिद्धान्त खड़ा कराते हो दूसरी ओरसे उसकी टांगे तोड़ कर अलग कर देते हो। जिस जातिपांति छूतछातसे तुमने पहले हिन्दुओंकी रक्षा करायी, उसीसे अब उनका नाश करा रहे हो, जिस चौकेसे तुमने उनके स्वास्थ्य और सुखको बढ़ाया उसी चौकेपर आज चौका लगा रहे हो। ठगीसे ही देवासुर संग्राम तुमने कराया, भलेमानस दैत्योंको बराबर धोखा देते रहे। बाप बेटोंमें,[१] भाई भाईमें[२] मा बेटेमें[३] गुरू चेलोंमें,[४] स्त्री पुरुष में[५] तुम्हो सदा लड़ाई लगाते और फूट डालते रहे। कालयवनको धोखा देकरही मार डाला। युधिष्ठिरसे झूठ बुलवाकर द्रोणाचार्य्यको मरवा डाला। जयद्रथकी भी ठगीसे हत्या करायी। अभिमन्यु तुम्हारा भांजा था न? उसे—बल्कि अपने बेटोंतकको नष्ट कर देनेका गौरव तुमने प्राप्त किया है। मनुष्योंको इतना बे अख़्तियार कर दिया कि वह तुम्हारे धोखा-जालसे कभी छुटकारा नहीं पा सकते। वेदोंने सच कहा "तस्कराणांपतये नमः" चोरोंके सरदार, ठगोंके लार्ड तुम्हें नमस्कार है। पंडित कैसाही बड़ा हो उसकी बुद्धिमें दीमक लगा देना तुम्हारा ही काम है। सिद्धान्त कैसा ही उत्तम हो उसे कच्चा कर दिखाना तुम्हारी ही करतूत है। रसायनशास्त्रमें आजतक एकभी नियम नहीं जिसमें नितान्त सत्यता हो, जिसमें लेशमात्र अन्तर न हो, जिसमें पूर्णताकी मुहर लगायी जा सके। पदार्थमात्राके स्थायित्वका प्रतिपादन भी कराया और उसे ध्वंस भी कर दिया। परमाणुवादको स्थिर भी कराया और परमाणुओंका खंडन भी कर दिया। गैसके नियम ठीक भी कराये और गणितके कांटेपर तुलवाकर उसे अशुद्ध भी कर दिया। कहांतक कहें भौतिक, जीव, भूगर्भ, ज्यौतिषादि सभी शास्त्रोंमें तुमने ऐसे गड़बड़ डाल दिये कि मनुष्य उन्हें उसी दिन पूरा कर सकेगा, जिस दिन तुम सृष्टिका अन्त करोगे। मनुष्य अपनी उन्नति और ज्ञान और जीवनके फल फिर भी दुनियांके बागमें चखने न पायेगा, क्योंकि तुम्हारी ईर्षा बाधक है।

भगवन्! तुमने जो कुछ रचना की उसमें कुछ न कुछ कच्चाई छोड़ दी। सर्व शक्तिमान हो, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि तुम उन्नति कर रहे हो, फिर कच्चाईका कारण सिवा तुम्हारी कुटिलताके और कुछ नहीं हो सकता। ब्राह्मणोंके बीच भले बननेका इतना बड़ा शौक था कि भृगुकी लात सहकर रह गये, परन्तु शिशुपालकी गालियाँ सहते न बना। दोनों पक्षोंको अपनी ओरसे खुश रखनेको कौरवोंको फौज दी और पांडवोंके यहां निहत्थे सईसी की। तुम्हारी इसी तरहकी पालिसी सृष्टिमें भी दीखती है। सूर्य्यके चारों ओर ग्रहोंको घुमाया पर सूर्य्यका भी कलेजा इतना पकाया जितना पकानेका हक है। ग्रहमण्डलके बीचवाले एक ग्रहको तोड़ कर

१. जैसे ध्रुव, प्रह्लाद। २. रावण विभीषण, कौरव पाण्डवादि। ३. भरत कैकेयी आदि। ४. बलि और शुक्राचार्य्यादि। ५. गोपियां, वृन्दा आदि।

प्रकृतिके खरलमें चूरा करडाला, उन्हें मंगल और बृहस्पतिके बीच वृथाही चक्करमें डाल रक्खा। ब्रह्मांडोंको ऐसा एक दूसरेके चक्करमें डाल रक्खा है कि किसीको पता नहीं कि अन्तिम उद्देश इन चक्करोंका क्या है। इनमें जितने जीव बनाये, ऐसे ऐसे कि जिनके रूपमें कोई पूर्णता और कोई परिपकता नहीं। सौंदर्य देनेमें जितनी कोताही की किसको मालूम नहीं। दृष्टि दी वह भी परिच्छिन्न। सुननेको शक्ति भी वाजबी। सूंघनेकी शक्ति कुत्तेमें हमसे कहीं ज्यादा। चखने और छूनेमें तुमने सबको पूरे धोखेमें डाल रखा है। शरीरको जन्मसे ही घुलाने लगते हो। जब मनुष्य बुद्धिका शुद्ध और अनुभवी हो जाता है जब संसारके कामका हो जाता है तुम उसे समाप्त कर देते हो। कहां तक कहें, तुमने कवियों और साहित्यिकोंको निर्धन और रोगी कर रक्खा है। धनवानोंको दुर्बुद्धि दे रखी है। आपकी पसन्दकी बलिहारी! बात तो यह है कि ईर्षाके वशीभूत हो सारे विश्वको बिगाड़ रखा है। और सब कुछ कर धरके, सारे खेल बना बिगाड़ कर ऐसी बेफिक्रीकी नींद सो रहे हो कि मानों तुमसे जगत्से कोई सम्बन्ध नहीं, कोई सरोकार नहीं। हो न हो! तुम्हारे शरीरका रंग इसीसे नीला दीखता है कि तुम्हारे घोर काले हृदयकी उस पर आभा पड़ती है। ब्रह्मा तुमसे हैरान हैं। शिव तुमसे परीशान हैं। ब्रह्माको रच कर उसके चारों सिरोंमें चार हज़ार सौदा लगाकर उसकी अकल चक्करमें डाल दी। शिवको बहकाकर ज़हर खिलाया, दैत्योंको शराब पिला दी और आप मणि और लक्ष्मी लेकर चम्पत हुए, सच है

असुर सुरा विष संकरहिं आपु रमामनिचारु।
स्वारथसाधक कुटिल तुम सदा कपट व्यवहारु॥

तुम्हारे मारे मनुष्योंकी नाकोंमें दम है। जिधर देखो उधर रोना धोना लगा है, कोई खुश नहीं। मनुष्यका कोई काम पूरा नहीं हो पाता। तुम बीचमें कोई न कोई विघ्न ज़रूर डाल देते हो। विघ्नेश्वर गणेश आदिके नामसे, ग्रह भूतप्रेत राक्षस पिशाचके नामसे, तुम्हें कितना ही मनाते, कितना ही रिझाते हैं पर तुम धोखा देनेसे बाज़ नहीं आते। तुम्हारा सारा हिसाब उलटा है, जिसे धन देतेहो संतान नहीं देते। सन्तानवान्को भूखों मार डालते हो। भला हिन्दू विश्वविद्यालयने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुमने उसे अधूरा ही छोड़वाकर सर सुन्दरलालको बुलवा लिया। गोखलेके बिना तुम्हारा कोई काम नहीं बिगड़ता था, पर भारतका हित होना तुमसे देखा नहीं गया। जिन्हें तुमने अभी नहीं बुलाया है उनकी भी दशा क्या अच्छी है। विज्ञानके लिए नित नये मंगलाचरण और गीत लिखनेवाले पाठकजीके इन दिनों ऐसे पीछे पड़े हो कि उनका दम बन्द नहीं, बल्कि सांस उखड़ गयी है। तुम कहीं अवैतनिक काम करनेवालोंके इस तरह पीछे न पड़ जाते तो परिषत्के प्रधान मंत्रीही नहीं सभी लोग परोपकारके कामोंमें चित्त लगाते। तुम्हारे प्रबन्धमें होम करते हाथ जलता है। भलाई करने चलो तो बुराई होती है। कुछ लोगोंने तुम्हारे इस विचित्र स्वभावको देखकर उलटी चाल चलनी प्रारंभ कर दी परन्तु तुमसे भला क्यों रहा जाय, तुम उलटी चालमें भी वह वह गोते देते हो कि उन्हें थाह नहीं मिलती। लेनेके देने पड़ जाते हैं।

सृष्टि रचनामें तुम्हारी भूलोंकी तो कोई गिनती ही नहीं, एक दो हों तो गिनाऊँ। पद पद पर, अणु अणु पर, तुमने गल्तियाँ की हैं करोड़ों बरससे मनुष्य-शरीर-रचनापर तुम हाथ बैठाते रहे पर आजतक कोई सर्वाङ्गपूर्ण सुन्दर और उपयोगी शरीर तुम्हारे हाथों न बना। इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि किसीको भी तुम पूर्ण बना सके? मनुष्यकी आंखकी शक्ति दूरबीन और खुर्दबीनसे अच्छी रखते तो क्या तुम्हारा कोई नुक्सान था? अगर मनुष्य तारोंतककी बातें बैठे बैठे सुना करता तो तुम्हारा क्या बिगड़ता?

माना कि शोरसे उसके कान फटते, पर कानके दोनों ओर जो तुमने अस्थिकल्पके दो लोथड़े लगा रक्खे हैं मनुष्योंके किस काम आते हैं, उन्हींसे ढकनेका काम लेते तो क्या बेजा था? क्योंकि इन कानोंसे तो मनुष्य मक्खी भी नहीं उड़ा सकता। उसके अङ्ग अङ्ग तुमने इतने बलहीन बनाये कि वह किसी कामका न रहा बल्कि सब पशुओंकी तरह मनुष्यके समान बुद्धिमान संभ्रान्त प्रशान्त गंभीर, श्रद्धास्पद, गौरवास्पद रोबीले प्राणीको भी विषयकी इन्द्रियां देकर सदाकेलिये होलीका भड़वा और पागल बना रखा है। सालमें दो एक दिनके लिये तुम यह दिल्लगी करते तो अनुचित न था पर हर घड़ीकी दिल्लगी, जिन्दगीभर मज़ाक क्या कोई अच्छी बात है? यह मनुष्यकी बुद्धिमत्तापर पानी फेरना है और उसके बड़प्पनका घोर अपमान है। क्या करे तुमसे बड़ा कोई होता तो वह तुमपर ज़रूर नालिश करता, फिर भी वह ग़ाफ़िल नहीं है, अपनी विद्याके बलसे वह तुम्हारी भूलोंको दुरुस्तकर रहा है और क्या अजब है कि वह आगे कोई ऐसा ईश्वर चुने जिसमें किसी गुणकी कमी न हो। क्योंकि हज़ारों बरससे वह तुम्हारी शिकायत करता आ रहा है कि ईश्वरमें कोई गुण नहीं, कोई रूप नहीं, कोई रेखा नहीं, उसका किसीसे सम्बन्ध नहीं; अकेला, निठल्ला, निकम्मा और सब तरहसे ज़बरदस्त है, चोर इतना बड़ा कि सब जगह है दिखाई नहीं देता, जो चाहे सो कर डालता है और कुछ पता नहीं लगता। जो कुछ हो याद रखना उसने जो कुछ तुम्हारा पता लगाया है उससे निश्चिन्त न रहो क्योंकि आजकल स्वतंत्र विचारके ज़माने हैं, सारे संसारमें सर्वसाधारणकी सम्मतिकी धूम है। कहीं ऐसा न हो कि सब मिलकर प्रस्ताव पास करें और तुम्हारी गद्दी छीनकर किसी और को हवाले कर दें। थोड़े से आदमियोंने ऐसा किया भी है और तुम्हारी गद्दी अपने गुरुओंको दे दी है। प्राचीन कालमें शैतान भी तुमसे आजिज़ आकर लड़ गया पर बेचारेके पास तोप बंदूक़ थी नहीं तुमने आगमें ढकेल दिया परन्तु अब उसके सहायकोंने लड़नेका सारा सामान इकट्ठा कर लिया है और यद्यपि फूट डालकर तुम आपस में ही झगड़ा कराते आये हो पर याद रहे ज्योंही वह चेते त्योंही तुम्हारी नाकोंमें दम कर देंगे। अगर हमारी नहीं सुनोगे तो हमको लाचार हो नारदका काम करना ही पड़ेगा।

ए ज़ालिम्, ए सितमगर! ए कःहार, ए जब्बार! अब भी अपने कियेसे बाज़ आ! वह दारुण दुःख जो तूने लाखोंको दे रखा है, भाई भाईको जो तूने लड़ा रखा है, युरोपभरमें जो युद्धकी आग तूने लगा रखी है, भारतमें जो रोग दुर्भिक्षादिकी विपदा फैला रखी है, भगवन् यह सब बहुत बड़ा निर्दयपन है। इसे बन्द करो, दूर करो, सुनो या न सुनो, हमने कह डाला। कानोंके पाससे चिल्ला चिल्ला कर दुहाई देनेपर न सुनोगे, तो क्या इलाज है, रक्षा करो, रक्षा करो। दया करो, दया करो"।

कहते कहते गला भर आया, बल्कि बैठ गया पर उधर आप टससे मस न हुए।

इतनेमें देखता क्या हूं कि उनके कानोंसे मैलकी धारा बही। शेषजी घबरा गये और मधुकैटभ! मधुकैटभ! चिल्ला उठे। दो बड़े विशालकाय ज्योतिष्मान् दैत्य दोनों ओरसे आ गये। यह भगवानके कानोंकी मैलसे उत्पन्न हुए थे। ओ हो! मेरे कहने सुननेके प्रभावसे वृद्ध भगवानके कान साफ हो गये। उन्होंने हमारी बिनती ज़रूर सुनी। मैं इतना विचार कर ही रहा था कि बड़े ज़ोरसे कड़ककी आवाज़ हुई, बिजली तड़पी। चमकमें एक बारगी महाप्रभु देवाधिदेवके प्रसन्न मुखारविन्दके दर्शनोंका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह मंदहास गजबका था। कभी भूलनेका नहीं। परन्तु उस हासके साथ ऐसी चकाचौंध हुई कि मेरी आंखें अंधी हो गयीं। मुझे अपने चारों ओर की खबर न रही आतंकसे आपसे आप यह स्तुति निकल पड़ी—

'यदंडमंडान्तर गोचरं च यद्दशोत्तराण्यावरणानि-यानिच, गुणाःप्रधानंपुरुषंपरं पदम्, परात्परं ब्रह्म-चते विभूतयः ।'

इस प्रकार स्तव-पाठ करते करते स्तब्धसा हो गया। सो सा गया, परन्तु मन्द मधुर मृदु स्वरोंमें जो सहस्र दिव्य गन्धर्वोंके गानके समान अत्यन्त दूरसे सुन पड़ता था यह शब्द मेरे कानमें गूंज उठे—

"मेरे प्यारे अपने आप! किसकी स्तुति? कैसी निन्दा! किसका धन्यवाद और किसका उलाहना? भोले भगवान! किसने सृष्टि रची, कब सृष्टि हुई, उसे किसने अपूर्ण किया, किसने सुख दुःख रचे, सबही अपने आपेकी कल्पना है, जलके स्तरपरके चिह्न हैं। सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान कौन और कहां है? अपना आप परांया नहीं हो सकता अतः जाननेवाला कौन है और जाना गया क्या है? दोनों अपना भ्रम है। अहन्ता, मन, बुद्धि आदि अपनी ही प्रकृति हैं, इनके द्वारा अपने आपेका जानना वैसे ही असंभव है जैसे हाथमें पकड़े हुए चीमटेके द्वारा अपने हाथको ही पकड़नेका प्रयत्न करना। सिवा अपने आपके अन्य कुछ है ही नहीं। जो कुछ गोचर जगत है तरंगोंके बीचके फेनके समान है। आत्माको यही स्वराज्य है, उसे चाहे बनावे चाहे बिगाड़े। आत्मा देशकालसे अपरिच्छिन्न और मन बुद्धि इन्द्रियोंसे अगोचर है। जगत्‌की अपूर्णता ही मादकमूल हैं यही प्रकृति है, जगत्‌का स्वभाव है, अपूर्णता ही उसकी अनित्यताका गवाह है, जैसे छायामात्रमें शरीरके सब गुण धर्म्मोंकी पूर्णता नहीं हो सकती, जगत् जो ब्रह्मके अधिष्ठानसे छायामात्रके तुल्य है, पूर्णताका प्रदर्शन नहीं कर सकता। भौतिक वा जगत्सम्बन्धी नियमोंकी अपूर्णताका कारण यही है। पूर्ण एक आत्मा ही है—

पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात्पूर्णमुदच्यते,
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।"

यह मनोहर शब्द कानोंमें गूंजते रह गये। एकाएकी आंख खुल गयी। देखता क्या हूँ कि होलीका सबेरा हो गया है, आंखें मलता उठ बैठा। झटपट आपके लिये यह विवरण लिख डाला कि ऐसा न हो कि इतनी भूलोंके बाद भगवानसे फिर कुछ भूल हो जाय। आप उनका बयान क़लमबन्द कर लीजिए, छपवा दीजिए। हाशियेपर गवाही लिखनेको बन्दा तय्यार है।

प्रयाग। होली, ७४ | आपका अब्दुल्लाह

चन्द्रमाके गूढ़ रहस्य

जिस सर्वशक्तिमान जगदीश्वरने अनन्त नीलाकाशरूपी नाटक भवनका निर्माण किया है, उसी अत्यन्त शौर्य्यशाली प्रभुने चन्द्र-रूपी ज्योतिपुञ्ज दीपकको प्रकाशित कर इस भवनकी शोभा शतगुनी कर दी है। या यों कहिये कि अमूल्य मणिरूपी तारागण युक्त आकाश मण्डलके खजानेको अन्धकार डाकूकी लूटसे बचानेकेलिए चन्द्ररूपी महातेजस्वी प्रहरी-को नियुक्त किया है। जिस रातको चन्द्रमाका पहरा नहीं पड़ता उस रात्रिको अन्धकार डाकू छापा मार कर तारागणके ज्योति धनको लूट लेता है और आकाश मण्डलपर अपना अखण्ड अधि-कार जमा लेता है। इसी सम्बन्धमें किसी कवि ने कहा है—

एकश्चन्द्रस्तमोहन्ति न च तारागणैरपि।

अर्थात्—जिस घोर अन्धकारको तारोंके झुण्डके झुण्ड दूर नहीं कर सकते, उसे एक ही चन्द्रमा नाश कर देता है। अवश्य, मुग्ध कविने अनन्त आकाशमें शुभ्र स्निग्ध किरणवर्षी पूर्ण चन्द्रकी ज्योतिका प्राधान्य देखकर ही उपरोक्त बात कही है। इसी प्रकार श्री महारानी सीताजी-ने चन्द्रमाके अनुपम प्रकाशवाले मुखकी ओर इङ्गित कर श्रीमहाराज रामचन्द्रसे कहा था—

Astronomy ज्योतिष]

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे
सरद विमल विधु बदन निहारे

परन्तु गुणोंके साथ ही साथ कुछ न कुछ अवगुणोंका भी समावेश होता ही है। जहां स्वच्छ जल रहता है वहां कीचड़ भी अवश्य रहती है। चन्द्रमामें सब गुण नहीं, बहुतसे अवगुण भी बताये गये हैं।

जनम सिन्धु पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलङ्क
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रङ्क।

घटै बढ़ै बिरहिन दुखदाई
ग्रसै राहु निज सन्धिहि पाई
कोक सोकप्रद पङ्कजद्रोही
अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही

अस्तु, अब आप चन्द्रमाको कवियोंकी आंखोंसे देखना छोड़ वैज्ञानिकों और ज्योतिषियोंकी आंखोंसे देखनेकी कृपा कीजिये। मेरे कहनेका यह आशय नहीं है कि कवि लोग ज्योतिष और विज्ञान शास्त्रसे अनभिज्ञ होते हैं। यह तो मैंने केवल उनके कवित्व लालित्यका एक सूक्ष्म उदाहरण मात्र दिया है।

पृथ्वीकी तरह चन्द्रमा भी एक ग्रह है। पृथ्वी केवल सूर्य्यकी परिक्रमा करती है, किन्तु चन्द्रमा सूर्य्य और पृथ्वी दोनोंकी परिक्रमा करता है। चन्द्रमा पृथ्वीसे उनंचास गुना छोटा है और पृथ्वीसे दो लाख चालीस हजार मीलकी दूरीपर है। चन्द्रमा सूर्य्यकी प्रतिविम्बित किरणोंके प्रकाशसे प्रकाशित होता है। चन्द्रमाको पृथ्वीके चारों ओर चक्कर लगानेमें कोई सत्ताइस दिन और आठ घण्टे लगते हैं। परन्तु चन्द्रमाको सूर्य्यके सामने अपने पूर्व स्थानपर वापिस आनेमें साढ़े उन्तीस दिन लग जाते हैं। इसका कारण यह है, कि जब चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओर चक्कर लगाता रहता है, तो पृथ्वी भी स्थिर नहीं रहती, यह भी अपने नियमानुसार चलती ही रहती है, और इसीलिए चन्द्रमाको अपने पूर्वके स्थानपर लौटनेमें पूरे एक चक्करसे कुछ अधिक लगाना पड़ता है।

पृथ्वीकी गति विधिसे और चन्द्रमाके अपनी अक्ष रेखापर भूप्रदक्षिण करनेसे चन्द्र मण्डलकी दशा बड़ी विचित्र हो जाती है। हर तिथिको चन्द्रमाके एक निर्दिष्ट गोलकार्द्ध यानी उसके उसी चिरपरिचित शशाङ्कित मण्डलका अंश विशेष दिखाई देता है। इसके अपरार्द्धकी आकृति कैसी है? वास्तवमें यह वही कवि कल्पित निष्कलङ्क वा कलङ्कित मण्डल है या नहीं इस सन्देहका कारण चन्द्रमाकी पूर्वोक्त जटिल गतिही है। पृथ्वीके चारों ओर घूमते घूमते जिस समय चन्द्रमा धरा सुन्दरीको देखनेका आयोजन करता है, उसी समय उसका कलङ्कित मुंह दिखाई देने लगता है।

[हमारे प्राचीन ज्योतिषियोंने यह देखकर कि चन्द्रमासे सूर्य्यकी किरणें प्रतिविम्बित हो कर यहां आती हैं, अनुमान किया था कि चन्द्रमा जलमय है। समुद्रसे उसकी उत्पत्तिसे इसकी पुष्टि भी होती थी। सं०] प्राचीन तथा नवीन ज्योतिषियोंने चन्द्रमाके इस कलङ्कापवादको छुड़ानेकेलिए कितनी ही चेष्टाएँ की थीं और करते चले आ रहे हैं। परन्तु अभीतक इसका कुछ फल नहीं हुआ है। कुछ दिन हुए कितने ही पण्डितोंने चन्द्रबिम्बके अदृश्यांशके कितनेही अंशोंके अन्न जल सम्पन्न होनेका अनुमान किया था। परन्तु चन्द्रमाकी अक्षावर्तन गतिकी जटिलताने इस सिद्धान्तपर पानी फेर दिया। अब कितने ही नये नये दूरवीक्षण यन्त्र भी आविष्कृत हुए हैं। परन्तु इन यन्त्रों द्वारा भी इस सन्देहके उत्तरोत्तर बढ़ते जानेकीही सम्भावना है, कम होनेकी नहीं। थोड़े दिन हुए कितनेही पण्डितोंने ग्रीनविच मानमन्दिर और अमेरिकाके लीकवेधालय सुप्रसिद्ध सुबृहत दूर वीक्षणोंकी सहायतासे चन्द्रमण्डलकी जांच की थी और इसकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंका चित्र भी खींचा था। इस जांचका यह फल हुआ, कि

विशेष सतर्कता पूर्वक वृहत दूरवीक्षणों द्वारा देखनेसे चन्द्रमण्डलके केवल एकार्द्धका ही नहीं बल्कि पक्षादार्द्धका भी एक पञ्चमांश अनायास ही दिखाई दे सकता है। इतनाही नहीं अन्यान्य कई प्रमाणों द्वारा इन महानुभावोंने उपरोक्त अभिनव उक्तिकी सत्यताको दर्शाया है।

भूप्रदक्षिणके समय चन्द्रमा अपनी अक्षरेखा-पर घूमता है, इसी कारण इसका केवल एक निर्दिष्ट अर्द्धांश दिखाई देता है। यदि ऐसा न होता तो धीरे धीरे पूरा चन्द्रमण्डल दिखाई देने लगता। इस अक्षावर्तन गतिमें एक विशेषता यह है कि यह सदा समवेग सम्पन्न रहती है। इसकी ह्रास वृद्धि नहीं होती। जान पड़ता है, कि चन्द्रमा सृष्टि कालके आरम्भसे इसी एक चालसे घूमकर पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता चला आता है। परन्तु जिस गतिसे डिम्बाकृति वा अंडाकार पथ द्वारा भू-प्रदक्षिण करता है उस गतिका प्रमाण सदा समान नहीं रहता। चन्द्रकक्षका जो भाग पृथ्वीके अति निकट होता है, आकर्षणके आधिक्य-से उस भागकी गति बहुत बढ़ जाती है और उसी वृत्ताभास पथका अवलम्बन कर पृथ्वीसे सर्व्वापेक्षा दूरवर्ती अंशाभिमुख चलनेसे चन्द्रमा-की गतिका प्रमाण धीरे धीरे घटने लगता है। कक्षावर्तन और भू-प्रदक्षिण इन दोनों गतियोंपर ध्यान देनेसे मालूम होता है कि चन्द्रमाके इनके द्वारा चल कर पृथ्वीके अति निकट होनेपर इन दोनों गतियोंकी साम्यता रक्षा असम्भव हो जाती है और साथही साथ चन्द्रमाके केवल एकही अंशका धराभिमुख उन्मुक्त रहना भी असम्भव हो जाता है। यही कारण है, कि ऐसे समयमें भू प्रदक्षिणी गतिके आतिशय्यसे चन्द्रमाके पश्चाद्भागका कुछ अंश हमें उन्मुक्त अवस्थामें दिखाई देता है। पृथ्वीसे सर्व्वाधिक दूरवर्ती स्थानपर ठीक पहलेकी तरह चन्द्रमाके चलनेसे चन्द्रमण्डलके पश्चाद्भागका कुछ प्रान्त दिखाई देने लगता है। मानमन्दिरके सुवृहत दूरवीक्षणकी सहायतासे चन्द्रमण्डलके पश्चादार्धके पूर्व्व और पश्चिम प्रान्तका कितनाही भाग आविष्कृत हुआ है।

चन्द्रमाके अदृश्यांशके उत्तरी और दक्षिणी भागका भी कुछ हाल जाना गया है। पृथ्वी एक समतल क्षेत्रमें हो कर सूर्य्यकी प्रदक्षिणा करती है। चन्द्रमा भी पृथ्वीके चारों ओर घूमता हुआ इसी समतल स्थानमें पहुंच जाता है, परन्तु चन्द्रमा यहां अधिक देर तक ठहर नहीं सकता। कारण; इसकी गति कभी उर्ध्व और कभी अधोगामिनी हो जाती है। चन्द्रमा जब उक्त स्थानके सबसे ऊंची जगहमें रहता है तो चन्द्रमण्डलके छिपे हुए दक्षिणी भागका कुछ अंश दिखाई देने लगता है। और जब सबसे नीचे स्थानमें आ जाता है तो कुछ कुछ उत्तरी भाग भी दिखाई देने लगता है।

चन्द्रमण्डलके पृष्ठांशके चित्रसे भी यही बात प्रगट होती है, कि उसमेंभी तरुलता शून्य ऊंचे ऊंचे पर्वतोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। चन्द्र-मण्डलके दोनों ही भाग जीवावास चिन्ह रहित हैं, यहां जल और वायुका भी अस्तित्व नहीं। सदा भयावह निस्तब्धता विराजती रहती है। यहां महीनेमें पन्द्रह दिनतक बराबर घोर अन्ध-कार मयी रात्रि विराजती रहती है, इसके उपरान्त सूर्य्यनारायण उदय हो कर पन्द्रह दिन-तक बराबर चमकते रहते हैं।

शिक्षितसमाज चाहे उपरोक्त बातोंको भले ही मान ले परन्तु हमारे सीधे सादे अशिक्षित ग्रामीण बन्धुवर्ग जल्दी माननेको तय्यार नहीं हो सकते। कारण, इन्होंने तो "रहटा रुई चमरख, लहसुन पियाज अदरख, और दण्ड मुग्दर कसरत" वाली उक्तियां तक सुन ली हैं। यदि इनके मनानेका कोई उपाय है, तो केवल अनिवार्य्य शिक्षा ही है।

—लक्ष्मी नारायण श्रीवास्तव।

ताताका लोहेका कारखाना

(गताङ्कसे सम्मिलित)

[ले०—अध्यापक दुर्गाप्रसाद, बी० ए०]

इस्पातके कारखानेमें तीन क्रियाएँ होती हैं। यहांपर (pig iron) ढला लोहा अथवा (liquid pig iron) द्रव लोहा धौंकनी भट्टे (blast furnace) से आते हैं और एक भट्टे (furnace) में रखे जाते हैं। इसका नाम 'मिक्सर' है। इसमें ३०० टन द्रवधातु अंटती है। यह मिक्सर ३०फुट लम्बा १२ फुट चौड़ा और पांच फुट गहरा है। इसकी बगलमें दोनों ओर (open hearth furnaces) खुले भट्टे हैं, जिनकी संख्या आजकल छः है, पहले केवल चार ही थी। इनमेंसे दो मिक्सरके पूरब और बाकी चार पश्चिम हैं। हरएक भट्टेमें ५० टनके लगभग द्रवधातु अंटती है और यहांपर द्रवधातु ३६०० फ० तक गरम होती है। हरएक भट्टे में पांच दरवाजे हैं, जिनमेंसे लोग द्रव धातुकी अवस्था तथा गुणकी परीक्षा करते रहते हैं। भट्टे में केवल गरम धातु अथवा केवल लोहेके पत्थर ही नहीं दिये जाते, वरन इस प्रकार पदार्थोंका मिश्रण दिया जाता हैः—

३० भाग इस्पातके टुकड़े, ८ भाग लोहेका पत्थर और ६० भाग गरम धातु। यहां ओषिदीभवन* जारी रहता है। पहले मिश्रण गलता है और उसमेंका आधा सिलकन और लगभग तिहाई मङ्गनीज ओषजनके साथ मिल कर ओषिद बना लेते हैं। यह ओषिद् लौह ओषिदके साथ मिल कर मैल (slag) बना लेते हैं। फिर उबाल आता है और बचे हुए सिलकन तथा मङ्गनीज अलग हो जाते हैं। कर्बनका अंश भी बहुत कम बच रहता है। अन्तमें उबाल समाप्त होनेपर कर्बन अधिकांश ओषजनसे मिल कर कर्बन एकौषिद, कर्बनद्विओषिद, (कओ तथा क ओ$_2$) बन जाते हैं। इस अवस्थामें लोहा लौह ओषिद्के (Ferric oxide Fe_2O_3)रूपमें रहता है और इसका ओषजन कर्बनको जलाता है $3\ C + Fe_2O_3 = 2\ Fe + 3CO$— जो कर्बन एकौषिद बनता है, नली द्वारा बाहर निकल जाता है और ओषजनसे मिले पदार्थ मैलमें चले जाते हैं। भट्टेसे धातु ढ़ारनेके समय जब धातुका $\frac{1}{3}$ भाग (ladle) डब्बेमें ढ़ाल दिया जाता है, तब (फेरोमङ्गनीज) लौहमंगनीज मिलाया जाता है, जिससे मंङ्गनीजका उचित अंश लोहेमें मिल जाय। और जब दो तिहाई ढल जाता है तब स्टील उचित परिमाणके कर्बन और मंङ्गनीज रखनेवाला हो जाता है। इस प्रकार ढ़ाला हुआ लोहा यदि Fiery या wild हुआ तो उसको शान्त करनेके लिये स्टीलमें अल्युमिनियम देते हैं। दूसरा उपाय शान्त करनेका यह है कि सांचोंको पूरा नहीं भरते। उसमें स्टीलके बदले बालू भरते हैं और उसके ऊपर एक भारी धातुका पत्तर रखते हैं। जब (ingots) सिलोंका बाहरी भाग कठिन हो जाता है और भीतरकी तरल धातु बहने योग्य नहीं रहती तब सांचेसे बाहर निकालते हैं। सिला इस अवस्थामें ठंडी हो जाती है और सब बचा हुआ मैल बीचमें जमा हो जाता है। इस प्रकार बीचमें कर्बन, फासफोरस तथा गन्धकका अंश अधिक रहता है। परन्तु इनसे पत्तर अथवा छड़ बनानेमें कोई दिक्कत नहीं होती, क्योंकि यह बीचमें रहते हैं जिससे ऊपरी भाग मुलायम और रीढ़ कड़ी हो जाती है। जिस डब्बेमें स्टील भट्टे से ढाला जाता है उसमें ५० टन अंटता है और सांचेसे निकाले जानेपर सिला १८" चौड़ी और २०" लम्बी होती है। सांचा एक प्रकारका आयताकार दोनों तरफ (ऊपर, नीचे) खुला थैलासा होता है, और ढलवां लोहेका बना होता है। इनमेंसे

---

* अर्थात् पदार्थोंका ओषजनसे मिलकर ओषिद बनानेकी क्रिया।

Industrial Chemistry औद्योगिक रसायन]

हरएकमें ३ टन धातु अंटती है। स्टीलकी सिलका ऊपरी भाग शीघ्र ठंडा हो कर जब मोटा छिलका बन जाता है तब इसको (Soaking pits) सोखनेवाले गड्ढ़ोंमें ले जाते हैं। यहां अधिक गर्मी नहीं पहुंचाई जाती, वरन सिलकी गर्मीको ऐसी युक्तिसे फैला देते हैं जिसमें सिलके बाहरी तथा भीतरी भाग समान गरम हो जायं। यह गड्ढ़े मिलकनकी ईंटोंसे बने होते हैं और साधारणतः सिलोंसे ६इञ्च अधिक गहरे और ३ इञ्च अधिक चौड़े होते हैं, परन्तु यहांके गड्ढ़े इतने बड़े होते हैं कि प्रत्येकमें चार सिल रखी जाती हैं। यह गड्ढ़े किसी गैसोत्पादक से (gasproducer) नहीं गरम किये जाते हैं। कभी कभी थोड़ी गर्मी गैसकी दी जाती है परन्तु प्रायः यह गड्ढ़े सिलोंकी गर्मीसेही गरम होते हैं। गड्ढ़े ी ईंटें सिलोंकी गर्मीको सोखती हैं, जिससे सिलोंमें हर जगह बराबर गर्मी पहुंच जाती है। इससे लाभ यह होता है कि जलावन बचता है, स्टीलका नुकसान नहीं होता और सिल चारों तरफसे बराबर गरम हो जाती हैं। प्रत्येक गड्ढ़ेमें सिल दो घंटेमें तैयार हो जाती हैं।

(steel furnace) इस्पात का भट्टा सन् १९१२ ईस्वीकी १६वीं फरवरीको चला था, किन्तु माल बहुत ही कम तैयार होता था, क्योंकि इस कार्य्यके लिये आरम्भसे ही बहुत विघ्न उठाने पड़ते थे,इसके लिये हुशियार आदमीकी ज़रूरत थी, परन्तु आजकल ब्रिटिश प्रमाण (British standard specification) के सहतीर, नाले तथा कोण तैयार होते हैं

गड्ढ़ोंसे सिल क्रेन द्वारा निकाली जाती हैं और विद्युतसे चलनेवाली गाड़ी या ट्रौलीपर एक एक करके रखी जाती हैं। फिर "ब्लूमिङ्ग मिल"में पहुंचनेपर भाप-यंत्र द्वारा दबायी जाती हैं। दबानेसे इनके कण दब जाते हैं परन्तु सिल आकारमें बड़ी हो जाती हैं। इसके अनन्तर लगभग एक एक हाथ दोनों छोरोंसे काटकर अलग कर देते हैं, जिससे ऊपर नीचे बैठे हुए मैलका अंश अलग हो जावे। बचे हुए भागके दो अथवा तीन टुकड़े आवश्यकतानुसार करते हैं। इन टुकड़ोंमेंसे एकको क्रेन सीधा बेलन-यंत्र (Rolling mill) तक पहुँचा देता है और बाकी टुकड़ोंको गरम रखनेकेलिये जलते हुए चूल्होंमें रखते हैं। १९१२ ईस्वोकी सातवीं फरवरीको पहली सिल बेली गयी थी और २० फरवरीको अंग्रेजी स्टीलसे जांचके लिये पहली रेल बनायी गयी थी और चालान की गयी थी, किन्तु कम्पनीके बनाये हुए इस्पातसे पहली रेल १९१२ की १२वीं मार्चको रौल हुई थी।

कारखानेके रौलिंगमिल विभागमें एक ४०" इञ्च व्यासका ब्लूमिंग मिल (Blooming mill), एक २८" इञ्च व्यासका रेल और स्ट्रकचरलमिल, एक १६" इञ्च व्यासका बार मिल और दो (एक नया, दूसरा पुराना) १०" इञ्च व्यासके बार मिल हैं।

४०" व्यासके मिल रौलसमें स्टीलकी सिल पीटी जाकर इच्छित विस्तार तथा परिमाणकी बनायी जाती हैं।

२८" व्यासकी रेल तथा स्ट्रकचरल मिल सन् १९१२ की ७वीं फरवरीको चली थी। इसमें रेलोंके खंड आवश्यक परिमाण तथा लम्बाईके बेले जा कर गोल आरेसे काटे जाते हैं। तदनन्तर एक स्थानपर रखे जाते हैं, जिसको 'होट बेड बिलडिङ्ग' *कहते हैं। इसके बाद खराद घरमें जाते हैं, जहां इनके छोरोंको खरादा जाता है। अन्तमें परिष्कार गृह में लाये जाते हैं, जहां रेलोंके जोड़ने, फिसप्लेटके बैठाने तथा खटका बैठानेके लिये छिद्र बनाये जाते हैं। यहांपर गज पीछे १०० पौण्डसे ३० पौण्ड तककी रेल बनायी जाती हैं। ३"×३" तथा ६"×६"तकके लोहेके कोण (angles) बनते हैं। १२"×६" तकके चेनल्स बनते हैं और १५"×६" तथा ५"×३" तकके बीम बनते हैं।

* अर्थात् ऐसा मकान जिसका फर्श गर्म रहता है।

बार मिल्स-सन् १९ २ ईस्वीके अक्टूबर मासमें खोली गयी थी। १६" इञ्चवाले मिलमें गज पीछे ३० पौण्डसे १४ पौण्डतकके हलके हलके रेल बनते हैं। ३" से १$\frac{१}{२}$" तकके समान तथा असमान कोण बनते हैं और ४"×१$\frac{१}{२}$" तकके नल (channels) बनते हैं। इसके अतिरिक्त रेलोंके लिये फिसप्लेट बनाये जाते हैं। २$\frac{१}{२}$" से २" तकके 'टीज' बनते हैं। ६" से ३" तथा १" से १" तकके लोहेके पत्तर (flat) बनते हैं। १३" से २" तककी वर्गाकार छड़ (squares) बनती हैं और १३$\frac{१}{२}$" से २" तककी गोल छड़ (rounds) बनती हैं।

१०" वाले मिलसे चौड़ी, वर्गाकर तथा गोल छड़ें बहुत हलकी बनायी जाती हैं। पुरानी १०" वाली मिल से $\frac{५}{८}$" से $\frac{१}{४}$" इञ्चतककी गोल छड़ें और $\frac{५}{२}$" से $\frac{१}{८}$" तककी वर्गाकार छड़ें बनायी जाती हैं। नये मिलसे कोण १$\frac{३}{४}$" से १" तकके बनते हैं। चपटी छड़ २" से १$\frac{१}{२}$" तककी और वर्गाकार छड़ १$\frac{३}{४}$" से $\frac{३}{४}$" तककी बनायी जाती हैं।

परिष्कार गृह (Finishing Department)-में रेलोंको छेदकर और खराद करके इन्सपेकशन बेन्चेज़ पर (Inspection Benches) रख छोड़ते हैं। यहां रेलोंके छोर हरे या पीले रंगे जाते हैं और तब (Shipping Department) चालान घर से अन्य देशोंको तथा सौदागरोंको चालान किये जाते हैं।

इन्सपेकशन बेञ्चोंसे दक्षिण-पश्चिम Drop-testing machine है, जहांपर रेलोंकी जांच होती है। बोझ गिरने से खराब रेलें टूट, फट तथा दब जाती हैं और अच्छी ज्योंकी त्यों रहती हैं। इसीके दक्षिण भागमें Shipping office अर्थात् चालान घर है, जहांसे रेल, बीम तथा बार सब गिन कर और निशान लगा कर भेजे जाते हैं।

बार मिल्स—यह स्थान ड्राप टेस्टिङ्ग मशीन* की कतारमें पूरब ओर है। इनसे पूरब 'बार मिल्स' के (Billetes) लोहेके टुकड़ोंको गरम करनेकेलिये भट्टी है जहां यह टुकड़े दो घण्टेतक गरम होकर 'रफिङ्ग रौल्स' में रौले जाते हैं। इसके बाद 'फिनिशिङ्ग रौल्स' में जाकर उनका आकार तथा विस्तार पूर्ण रूपसे प्राप्त हो जाते हैं। इस भट्टीसे पूरब (बिलेटयार्ड) है, जहां 'बार मिल्स' के टुकड़े पड़े रहते हैं। रौलिङ्ग तथा टर्निङ्ग मिल्स पुराने १० इञ्चके मिलसे पश्चिम हैं जहां रेलें सीधी की जाती हैं और खरादी जाती हैं। यहांकी गरम भट्टीसे ठीक दक्षिण बार मिलसके लिये गैसोत्पादक है जहांसे गैस इस भट्टीमें आता है।

कुट्टक (Scull cracker) यह स्थान बार मिल्ससे दक्खिन ओर पूरब तरफ है। यहां लोहेका एक बहुत बड़ा गोला है जो क्रेनसे ऊपर उठाया जाता है और उसके नीचे खराब सांचे अथवा उन्हींके टुकड़े रखे जाते हैं और ऊपरसे गोला गिरा गिरा कर चूर्ण किये जाते हैं और फिर धौंकनी भट्टे में देकर गला दिये जाते हैं।

चित्रकारी दफतर (Drawing Office)-यह स्थान चूर्ण करनेवाले यंत्र (scull cracker) से पूरब है। यहां हर प्रकार के यंत्र, कल तथा मकानोंके नकशे तैयार किये जाते हैं।

छन्ना हौज़ (Filter Bed)-यह स्थान नकशेके दफतरसे दक्खिन है। यहां तीन हौज़ बने हैं, जिनमें पानी साफ होता है और शहर भरमें भेजा जाता है। पानी यहां समीपके ही सटे हुए हौजसे आता है।

पानाका हौज वा तालाब (Cooling tank)-यह स्थान फिल्टर बेडसे पूरब है। समूचे शहर

*ऊपरसे बोझ पटककर जांचनेका यंत्र

तथा कारखानेके लिए पानी सुवर्णरेखा नदीसे आता है और यहीं इकट्ठा होता है। यह नदी यहांसे लगभग दो मीलकी दूरीपर है। पानी विद्युत्के द्वारा नलमें पम्प किया जाता है। जिस नलसे पानी नदीसे आता है उसका व्यास ३६ इंच है। नदीसे १७ लाख गैलनके लगभग पानी प्रतिदिन इस जलाशयमें गिरता है।

सरकारी प्रयोगशाला (Government Laboratory)–यह स्थान नक्शे घरसे उत्तर है। यहां सब सरकारी नौकर हैं और रेलोंकी रासायनिक जांच करते हैं और बतलाते हैं कि रेलें व्यवहार योग्य हैं या नहीं।

(Works Laboratory) कारखानेकी प्रयोगशाला—यह स्थान सरकारी प्रयोगशालासे उत्तर है। यहांपर वैज्ञानिक रीतिसे पत्थरके कोयले, डोलोमाइट, लोहेके पत्थर मंङ्गेनीज़ तथा क्रोम पत्थर इत्यादि कच्चे पदार्थोंकी परख होती है। ढाला हुआ लोहा, इस्पातका मैल, प्रोड्यूसर गैस, अमोनियाका घोल तथा अलकतरा इत्यादि व्यवहारिक पदार्थोंको जांच भी होती है।

भौतिक प्रयोगशाला (Physical Laboratory)–यह स्थान कारखानेकी प्रयोगशालासे उत्तर है और (Boiler) बैलरसे सटा हुआ है। यहां लोहे तथा इस्पातसे बने पदार्थोंके झुकाव, तनाव तथा विस्तारको जांच होती है। भार धारण करनेकी शक्तिकी भी जांच यहां हो होती है। यह यंत्र सौ टनतक जांच करता है। इसीसे सटा हुआ पूरब ओर (Boiler plant) बैलर है। यहां जलकी भाप तैयार होती है, जिससे बार मिल्स (छड़ कारख़ाना); बेलन यंत्र, विद्युत् भवन, ब्लूमिङ्ग मिल्स (Bar mills, rolling mills, power house तथा blooming mills) इत्यादि चलते हैं। यहां सोलह चिमनियां हैं और दो बैठाई जा रही हैं। बैलरके लिए पानी (Power House) विद्युत्भवनसे आता है।

द्रवोंका प्रसार

[ले०—प्रोफ़ेसर सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. तथा प्रोफ़ेसर ब्रजराज, बी. एस सी., एल-एल. बी.]

रमी पाकर द्रव पदार्थ फैलते हैं। द्रव पदार्थ बर्तनोंमें रखे जाते हैं। इनका स्वयं कोई आकार नहीं होता, जिस बर्तनमें रखे जाते हैं उसीके आकारके हो जाते हैं अर्थात् इनमें कोई निश्चित लम्बाई चौड़ाई नहीं होती, केवल घनफल होता है। गरम करनेसे घनफलमें जो अधिकता हो वह नाप ली जाय तो घनप्रसार गुणक निकाला जा सकता है, विधि और हिसाब वही होगा जैसा ठोसोंके घनप्रसारगुणक निकालनेकेलिए होता है।

पर एक बातका ध्यान रखना आवश्यक है। द्रव सदा बर्तनोंमें रहते हैं। गरम करनेसे बर्तन भी फलेंगे। द्रवके घनफलमें अधिकता हम तभी देखेंगे जब यह अधिकता बर्तनके प्रसारसे अधिक होगी। यदि बर्तन और द्रवमें बराबर प्रसार हुआ हो या यों कहिए कि द्रवका घनफल जितना बढ़े उतना ही बर्तनका भी बढ़ जाय तो द्रवके घनफलमें कुछ भी अधिकता न प्रतीत होगी। द्रवमें जो प्रसार प्रत्यक्ष होता है वह द्रवका असली प्रसार नहीं है। प्रत्यक्ष प्रसारमें बर्तनका प्रसार जोड़नेपर असली प्रसार मालूम होगा। बर्तन ठोस पदार्थके बने होते हैं, जिनका घनप्रसार गुणक मालूम होनेसे प्रसार निकाल लेते हैं। इसलिए साधारणतः द्रवका प्रत्यक्ष प्रसार (जो बर्तनमें रखनेसे दीखे) नापते हैं और फिर असली प्रसार निकाल लेते हैं।

प्रत्यक्ष प्रसार नापकर प्रत्यक्ष घनप्रसारगुणक, संक्षेपमें प्रत्यक्ष-गुणक, निकालते हैं क्योंकि १ तापक्रम गरम करनेसे इकाई घनफलमें प्रत्यक्ष प्रसारको, परिभाषानुसार, प्रत्यक्ष-गुणक कहेंगे।

Physics भौतिक शास्त्र]

प्रयोग—प्रत्यक्ष-प्रसार निकालनेकी विधि प्रत्यक्ष-प्रसार मापक द्वारा।

चित्र ६

इस यंत्रका रूप चित्र देखनेसे मालूम हो जायगा। यह कांच या बिल्लौरी पत्थर-का (quartz) होता है। इसका धड़ चार शतांश-मीटर लंबा और एक शतांशमीटर मोटा होता है, इसकी सूंड़ दो बार समकोणपर मुड़ी हुई सूक्ष्म छेदवाली नली होती है। कभी कभी गर्दन समकोणमें नहीं मुड़ी होती है। इसको तोल कर इस प्रकार लटकाते हैं कि इसकी सूंड़ बर्तनमें रखे द्रवमें डूबी रहे। यंत्रके धड़पर स्पिरिट लम्पकी (वह लम्प जिसमें शराब या स्पिरिट जलाई जाती है) ज्योति (जोत या लौ) ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर फेरते हैं। यंत्र गरम हो जाता है, भीतरकी हवा गरम होकर फैल जाती है, कुछ बुलबुले प बर्तनके द्रवमें होकर निकलते दीख भी पड़ते हैं। लम्पकी ज्योति हटानेसे यंत्र ठंडा होता है, भीतरकी हवा सिकुड़ती है, कुछ द्रव भीतर आ जाता है। इस प्रकार क्रमसे दो चार बार गरम और ठंडा करनेपर यंत्र सूंड़तक द्रव-से भर जाता है। यंत्र ठीक ऐसेही टंगे टंगे पानी भरे गिलासमें रख दिया जाता है। बिलकुल ठंडा हो जानेपर तापमापकसे तापक्रम पढ़ लेते हैं, मान लो यह त° श है। ध्यान रहे सूंड़ बराबर द्रवमें डूबी रहे जिससे ठंडी होते समय हवा न घुस सके। अब रुमाल या चिमटीसे यंत्रको पकड़कर तराजूके पलड़ेमें रखकर तोल लेते हैं। यंत्रको हाथसे न छूना चाहिये नहीं तो हाथकी गरमीसे गरम होकर कुछ द्रव निकल पड़ना सम्भव है। द्रव सहित यंत्रके बोझमेंसे यंत्र का बोझ घटाने से त° श तापक्रमपर यंत्र भर द्रवका बोझ व मालूम हुआ।
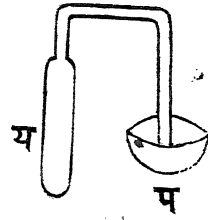
तराजूसे उठाकर फिर गिलासमें टांग देते हैं, पर सूंड़ द्रवमें नहीं रखते। इस गिलासको
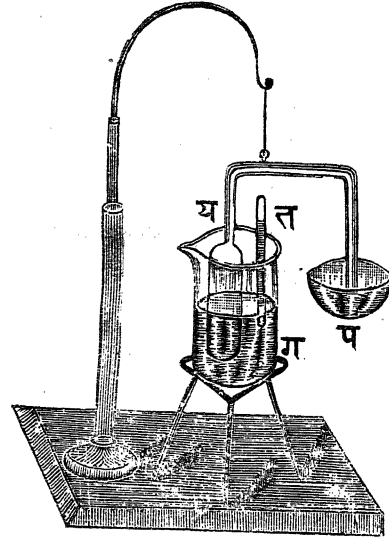
चित्र ७

तिपाई पर रखकर [चित्र ७] गरम करते हैं। गरम करनेसे कुछ द्रव सूंड़से टपक पड़ता है, इसे निकल जाने देते हैं। तापक्रम पढ़कर फिर तोल लेते हैं। मान लो यह तापक्रम थ°श है। द्रव-सहित यंत्रके बोझमेंसे ख़ाली यंत्रका बोझ घटानेसे थ°श तापक्रमपर यंत्र भर द्रवका बोझ बा मालुम हुआ।

व बोझ है य घन श० म० यंत्र भर द्रवका त°श पर। बा बोझ होगा य × बा / व घन श० म० का त° पर। बा बोझ है य घन श०मी०का थ°श पर। यदि $\frac{\text{य बा}}{\text{व}}$ घनश०मी० द्रव त° श पर लेकर थ°श तक गरम करें तो बोझ तो बा ही बना रहेगा पर प्रसारके कारण घनफल य घ०श० मी० हो जायगा। इसलिए $\frac{\text{य} \times \text{बा}}{\text{व}}$ घन श०मी० द्रवमें (थ-त)° श गरम करनेसे य-$\frac{\text{य} \times \text{बा}}{\text{व}}$ घन श० मी० प्रसार हुआ। १° श

गरम करनेसे प्रसार $\frac{१}{थ-त}\left(य-\frac{य \times बा}{ब}\right)$ हुआ । १ घन श० मी० को १° श गरम करनेसे प्रसार हुआ

$$\frac{१}{थ-त}\left(\frac{१-\frac{बा}{ब}}{\frac{बा}{ब}}\right) = \frac{१}{थ-त} \times \frac{ब-बा}{बा}$$

। यही प्रत्यक्ष प्रसार गुणक हुआ । प्रत्यक्ष प्रसारमें बर्तनका प्रसार जोड़ दिया जाय तो वास्तविक प्रसार ज्ञात हो जायगा ।

त° श तापक्रमपर किसी द्रवका घनफल व घन श० मी० है । उसे गरम करके थ° श तापक्रमपर ले आवें तो

वास्तविक प्रसार = प्रत्यक्ष प्रसार + बर्तनका प्रसार

$$\therefore \frac{\text{वास्तविक प्रसार}}{व \times (थ-त)} = \frac{\text{प्रत्यक्ष प्रसार}}{व \times (थ-त)} + \frac{\text{बर्तनका प्रसार}}{व \times (थ-त)}$$ ।

द्रवका और बर्तनके उस भागका जिसमें द्रव है घनफल गरम करनेसे पहले एक ही था, इसलिए परिभाषानुसार

वास्तविक प्रसार गुणक = प्रत्यक्ष प्रसार गुणक + बर्तनका प्रसार गुणक । इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रसार गुणक निकालकर वास्तविक प्रसार गुणक निकाल सकते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष प्रसार-मापक-यंत्र कांचके ही बने होते हैं और कांचका घन-प्रसार-गुणक निकालनेकी विधि पहले लिख आए हैं* ।

वास्तविक प्रसार-गुणक स्वयम् ही बिना प्रत्यक्ष प्रसार-गुणक निकाले भी निकाल सकते हैं । इस विधि का वर्णन नीचे किया जाता है ।

प्रयोग-चित्र ८ जैसी क और ख पर समकोणमें मुड़ी हुई कांचकी नलीको समतल स्थानपर खड़ी करके थोड़ा पारा भर दो । नलीकी दोनों भुजाओंमें पारा पहुंच कर उ और इ पर ठहरेगा । क ख समतलसे उ और इ की ऊंचाई बराबर होगी । यह ऊंचाई बराबर है क्योंकि दोनों भुजाओंमें पारेके ऊपर केवल वायु है और वायुका बोझ दोनों स्थानोंपर बराबर है । अब उ भुजामें पारेके ऊपर कड़ुवा तेल और इ भुजामें मिट्टीका तेल भर दो । क ख से उ और इ की ऊंचाई एक ही रखने केलिए तेलोंकी ऊंचाई भिन्न भिन्न होंगी । चूंकि उ और इ एक ही उंचाईपर हैं इसलिए इनके ऊपर बराबर बोझ है । एक ओर हवा और मिट्टीका तेल और दूसरी ओर हवा और कड़ुवा तेल है । हवा दोनों ओर एक ही बोझ डालती है इसलिए मिट्टीके तेलका बोझ = कड़ुवे तेलका बोझ । इनको निकालकर तोलें तो बोझमें बराबर ही होंगे ।
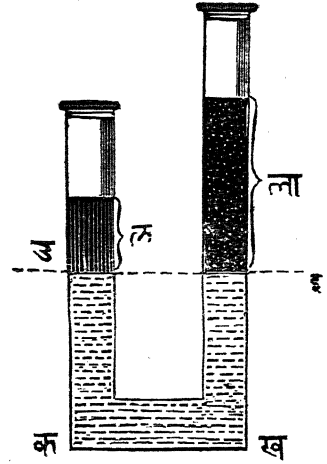
चित्र ८

कड़ुवे तेलका बोझ = घन फल × घनत्व

= ल × तेलके तलका क्षेत्रफल × घनत्व

कड़ुवे तेलका बोझ १ इकाई क्षेत्रफल पर = ल × घनत्व

मिट्टीके तेलका बोझ = घनफल × घनत्व

= ला × तेलके तलका क्षेत्रफल × घनत्व

मिट्टीके तेलका बोझ एक इकाई क्षेत्रफलपर = ला × घनत्व ।

∴ ल × कड़ुवे तेलका घनत्व = ला × मिट्टीके तेलका घनत्व ।

$$\therefore \frac{\text{मिट्टीके तेलका घनत्व}}{\text{कड़ुवे तेलका घनत्व}} = \frac{ल}{ला}$$

ध्यान रहे कि इकाई क्षेत्रफलपर बोझ लिया है, क्य़ोंकि यदि नलीकी भुजाएं समान न हों-एक कम और एक अधिक व्यासवाली हो तो भी घनत्वों और लम्बाइयोंमें यही सम्बन्ध पाया जायगा । सिद्ध हुआ कि किसी धरातलके ऊपर दोनों भुजाओंमें इकाई क्षेत्रफलपर द्रवोंका बोझ समान है ।

---

* विज्ञान भाग ६ संख्या ५ मास फरवरी में लेखकों का लिखा हुआ 'ठोसोंका प्रसार' नामक लेख देखिए ।

जिस द्रवका वास्तविक प्रसार-गुणक निकालना है ऊपर वर्णित नलीमें भर लो। इस नलीकी एक भुजाको गरम करो और बाकी नली और दूसरी भुजाको ठंडी रहने दो। द्रव गरम होकर फैलेगा और हलका हो जायगा। गरम द्रवका घनत्व ठंडेसे कम होगा, इसलिए गरम की हुई भुजामें द्रवकी ऊंचाई अधिक होगी। ठंडे द्रवका घनत्व न और गरम का ना मानें तो

$$\frac{\text{न}}{\text{ना}} = \frac{\text{ला}}{\text{ल}}$$

घनत्व × आयतन = मात्रा, अर्थात् न. अ = मात्रा। इसी मात्राको गरम किया जाय तो मात्रामें कुछ भेद न पड़ेगा पर घनफल बढ़ जायगा, घनत्व घट जायगा। अब भी घनत्व × आयतन = मात्रा अथवा ना × आ = मात्रा

$$\therefore \text{न} \times \text{अ} = \text{ना} \times \text{आ}$$

$$\text{या } \frac{\text{अ}}{\text{आ}} = \frac{\text{ना}}{\text{न}} = \frac{\text{ल}}{\text{ला}}$$

चित्र ६

अगर तापक्रम [थ-त] °श बढ़ाया गया हो तो आ=अ [१+घ. (थ-त)]

जहां घ वास्तविक घनप्रसार गुणक है।

$$\therefore \text{अ} [१+\text{घ} (\text{थ}-\text{त})] = \frac{\text{ला}}{\text{ल}} \times \text{अ}$$

$$\text{या ला} = \text{ल} [१+\text{घ} (\text{थ}-\text{त})]$$

$$\text{या घ} = \frac{\text{ला}-\text{ल}}{\text{ल} (\text{थ}-\text{त})}$$

। घ वास्तविक प्रसार-गुणक है। चित्र ६ में वह यंत्र दिखाया है जिसकी सहायतासे वास्तविक प्रसार-गुणक निकाला जाता है।
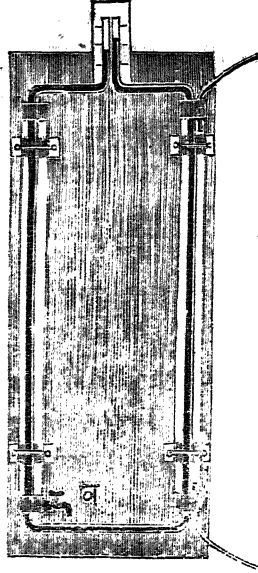
तर्क विवेक

[ले०—पं० सरयूप्रसाद मिश्र, सर्यूपारीण]

[गताङ्कसे सम्मिमित]

अब इस बातका विचार किया जाता है कि हम शरीरादि स्वरूप ही हैं, अथवा शरीरादिसे भिन्न है (आदि पदसे इन्द्रिय और अन्तः करणका ग्रहण करना)। यद्यपि जाग्रत्की दशाकी नाईं स्वप्न और सुषुप्तिकी अवस्थाओंमें भी हमारे समान, हमारे शरीरादि भी रहते हैं, तथापि हम जैसे हमारे लिये आप प्रमाण हैं, तैसे शरीरादि अपने लिये आप प्रमाण नहीं हैं; किन्तु उनको हम इन्द्रियादि प्रमाणोंसे जानते और पहिचानते हैं। परन्तु हम अपने स्वरूपको आप ही आप न जानें किन्तु किसी दूसरेसे जानें यह कौन सी बात है? जिसको हम दूसरेके द्वारा जानें, वह हमसे भिन्न क्यों न माना जावे? पूर्वमें हम स्वविषयक ज्ञान स्वरूप स्वतः सिद्ध होके चेतन सिद्ध हैं; परन्तु शरीरादि स्वतः सिद्ध स्वविषयक ज्ञान स्वरूप सिद्ध न होके चेतन सिद्ध नहीं होते हैं। जो चेतन नहीं है, वह जड़ है। जड़का चेतनसे आवरण भङ्ग होता है। जड़से चेतनका आवरणभङ्ग कहना वदतो व्याघात है। हां आवरणभङ्गके कर्त्ता चेतनकी आवरण भङ्ग रूपी क्रियामें करणादिके रूपमें जड़ सहायक होते हैं, सत्य है। पर जड़ ही आप आवरण भङ्गके कर्त्ता नहीं हो सकते हैं। यदि जड़ आवरणभङ्गका कर्त्ता हो तो वह जड़ पदवाच्य क्योंकर ठहरे। वह तो चेतन पदवाच्य होगा। जैसे प्रकाशके (निरोधके कारण) योगके बिना जड़ पदार्थ उपनेत्रादि केवल आप प्रकाशक नहीं हो सकते हैं, ऐसे ही चेतनके योगके बिना जड़ पदार्थ केवल आप आवरण भङ्ग नहीं कर सकते हैं। फिर यदि हम शरीरादि रूप ही होते तो शरीरादिको न जान

Philosophy दर्शन]

सकते, क्योंकि जो शरीरादिके रूपमें हम हो शरीरादिके ज्ञान रूपी क्रियाके कर्त्ता हों तो हम ही शरीरादिके रूपमें शरीरादिके ज्ञान रूपी क्रियाके कर्म नहीं हो सकते हैं; क्योंकि पूर्वोक्त युक्तिके बलसे कर्त्तासे कर्म भिन्न होना चाहिये। हम अपनेको शरीरादिके गुण (आश्रितधर्म) भी नहीं कह सकते हैं, क्योंकि पहिले जब प्रमाणोंसे शरीरादि पिण्ड पृथक् एक एक सिद्ध होलें, तब हम एक एक अपनेको उनके एक एक गुण होनेकी चर्चा होने दें। देखो, शरीरादि जो इस समय पिण्डके रूपमें भासमान हैं, उनके विषयमें यद्यपि उनके पिण्डके ऊपर एकत्वकी बुद्धि होती है कि यह शरीरादि पिण्ड एक है, तथापि तादृश एकत्वकी बुद्धि उनके पिण्डपर नहीं होती है। हमारे एकत्वकी बुद्धि हम (आत्मा) पर होती है कि हम एक हैं। शरीरादि तो अनेक अवयव मिलके एक अवयवी पिण्डके रूपमें बोध होते हैं, परन्तु हम अपनेको अनेक अवयव मिलके एक अवयवी पिण्डके रूपमें बोध नहीं करते हैं। यदि हम शरीरादि भौतिक पिण्डोंके गुण होते तो उनके पार्थक्यके अनुसार हमारे भी पार्थक्यकी बुद्धि होनी चाहिये थी कि इस अवयवके गुण रूप ज्ञान यह हम हैं। यथा घट पट मठादिके अवयवोंके पार्थक्यके अनुसार उनके रूपादि गुणोंके भी पार्थक्यकी बुद्धि होती है कि यह घटके कम्बुके और यह घटकी ग्रीवा के रूपादि गुण हैं। ऐसे ही शरीरादि पिण्डोंके हस्तपादादि अवयवोंके पार्थक्यके अनुसार हमारे जो शरीरादि पिण्डोंके चैतन्य गुण माने जायं तो अवश्य उनके पार्थक्यकी बुद्धि होनी चाहिये कि यह हम हस्तके चैतन्य गुण हैं और यह हम पांवके चैतन्य गुण हैं इत्यादि। परन्तु ऐसा तो कभी होता नहीं जचता है। हां एक शरीर भरमें हमारे एकत्वकी बुद्धि अखण्ड होती है, पर केवल इतने मात्रसे शरीरादिके चैतन्य गुण हम नहीं ठहर सकते हैं। अनेक अवयवोंके रहते भी शरीरादिको एक पिण्ड जो आप मानते हैं तिसके लिए तो भला कह सकते हैं कि उनपर एकत्वकी बुद्धि होती है, इसलिए उनके एक एक पिण्डको एक एक कहते हैं परन्तु बुद्धिसे ही जब हम खोजते हैं कि शरीरादि बनानेवाले पृथक् पृथक् एक एक अवयव वे कौन हैं, जिनके मेलसे शरीरादि वस्तु एक पिण्डो भावकी दशाको प्राप्त हुई हैं, तो ऐसा निरवयव कोई मूर्त्त द्रव्य बुद्धिमें नहीं समता है जिसके कि दश दिशाओंके भेदसे दश अवयव न हों।

परमाणुकी सिद्धिके लिये रसायन विद्यावाले जो प्रमाण उपन्यास करते थे कि अमुक अमुक रसायनीय द्रव्य अमुक अमुक नियत परिमाण विशिष्ट ही उपलब्ध होते हैं—यहां तक कि नियत परिमाणसे न्यूनाधिक परिमाण विशिष्ट उनके अवयवोंका परस्पर संयोग नहीं हो सकता है—उस प्रमाणका खण्डन अर्वाचीन पदार्थ विद्या वेदिताओंसे हो गया है कि निपट दो दूरवर्त्ती ग्रहोंमें प्रकाशकी अतिसूक्ष्म रेखाओंसे प्रतीति होती है कि पृथ्वीमें विभागका तादृश साधन न होनेसे नियत परिमाण विशिष्ट रसायनीय द्रव्योंका विभाग हम सब अन्न होना मान बैठे हैं। वास्तवमें विभाज्यताकी सीमा दुरूह है।

पूर्व मीमांसावाले द्रव्योंकी सूक्ष्मताकी अवधिकी दुरूहता द्रव्योंका नित्य संयोग मानके स्थूल पिण्डको ही तत्व माननेका यत्न करते हैं; पर नित्य भाव पदार्थका ध्वंस अशक्य है, यह व्यापक नियम है। संयोगभाव पदार्थ है, यदि वह नित्य है तो विभाग द्वारा उसका ध्वंस अशक्य है। इस कारण स्थूल तत्व मानके वे भी निर्वाह नहीं पासकते हैं।

[असमाप्त]

शब्द तापमापक

[ले० प्रो० चुन्नीलाल साहनी, एम. एस सी.]

तापक्रम नापनेकी कई रीति हैं, पर उन सबका सिद्धान्त यही है कि किसी पदार्थका कोई भौतिक गुण, बढ़ती घटती गर्मीके साथ (property) बढ़ता घटता है। उदाहरणके लिए साधारण तापमापक लीजिये, जिससे ज्वर नापा जाता है। जितना अधिक ज्वर होता है, इसमें उतना ही अधिक पारा चढ़ता है और इसीसे तापक्रम नाप सकते हैं। वायु-तापमापकमें भी तापक्रम, गैसोंके आयतनमें परिवृद्धि देखकर नापते हैं।

अवरोध-तापमापक (resistance thermometer) भी इसी नियमपर निर्भर है। इसमें तापक्रमके साथ वैद्युतिक अवरोध (electric resistance) बदलता है। ऐसे ही कई अन्य प्रकारसे तापक्रम नापा जाता है, जिसका वर्णन कभी फिर किया जावेगा।

हालमें इसी नियमसे तापक्रमके साथ शब्दके वेगके बदलनेसे तापक्रम नापा गया है। जैसे जैसे तापक्रम बढ़ता है, वैसेही शब्दका वेग भी बढ़ता है। जिस नियमसे यह बढ़ता है वह यह है :-

अगर $व_त$ शब्दका वेग त श तापक्रम पर है और $व_०$,, ,, ०° श पर ,, ,, ,,

तो $$व_त = व_० \sqrt{१ + \frac{त}{२७३}}$$

$$= व_० \sqrt{\frac{२७३ + त}{२७३}} = व_० \sqrt{\frac{थ}{२७३}}$$

जहां थ तापक्रम ऐसे तापमापकपर नापा गया है, जिसपर बरफका तापक्रम (०° श) २७३ पढ़ा जाता है। ऐसे तापमापकको निरपेक्ष ताप मापक कहते हैं।

$$\therefore \quad व_त = व_० \sqrt{\frac{थ}{२७३}} \quad \text{.........} (१)$$

अगर ल शब्दका तरंगान्तर हो और न स्वरकी आवृत्ति हो, तो एक सैकंडमें शब्द $ल \times न$ शतांशमीटर चलेगा और यह शब्दका वेग हुआ।

$$\therefore \quad व = ल \times न \quad \text{.....................} (२)$$

पस (१) और (२) मिलानेसे

$$\therefore \quad व^२ = ल^२ \times न^२ = व_०^२ \times \frac{थ}{२७३}$$

$$\therefore \quad न^२ = \frac{व^२}{ल^२} = \frac{व_०^२ \times थ}{ल^२ \times २७३} = थ \times स$$

जहां स कोई स्थिर संख्या है। अतएव सिद्ध हुआ कि $न^२$, थ के अनुसार बदलता है। अर्थात् स्वरकी आवृत्तिका वर्ग निरपेक्ष तापक्रमके अनुसार बदलता है। इस सम्बन्ध से तापक्रम ४०० श तक ठीक ठीक नापा गया है।

इसको (experiment) परीक्षा इस तरह की गई :-

एक उननादी (resonator) को भिन्न भिन्न तापक्रमोंपर रखा गया और प्रत्येक तापक्रमपर उसकी आवृत्ति हेल्मोल्ट्ज (Helmoltz) की सैरिन (Siren) से मिलान करके निकाली गई। उननादी के भीतर एक धातुयुग्म (Thermocouple) रखा गया था, जिससे उसका तापक्रम ठीक ठीक मालूम हो जाता था। परीक्षासे सिद्ध हुआ कि आवृत्तिमें परिवर्तन मालूम करके तापक्रम ४०० श तक ठीक ठीक जांचा जा सकता है, परन्तु ४००°श से अधिक नापना उद्वाह-धाराके (convection currents) कारण असम्भव है और ऊपरका सम्बन्ध ठीक नहीं रहता।

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी,

भाग—६

तुला—मीन १९७४

October 1917—March 1918.

प्रकाशक

विज्ञान—परिषत् प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

उद्योग और अर्थशास्त्र

[Economics or Industry]—

कीटाणु शास्त्र—(Bacteriology)

कृषि शास्त्र (Agriculture)—

गणित (Mathematics)—

जीवनी (Biography)—

ज्योतिष (Astronomy)—

दर्शन (Philosophy)—

साधारण (General)—

स्वास्थ्य रक्षा (Hygiene)—

विज्ञानके हितैषियो !

सावधान ! !

लड़ाईके कारण काग़ज़ छपाई आदि सभी कुछ महंगा है। प्रायः सभी सामयिक पत्रोंने बादामी काग़ज़पर छापना शुरू कर दिया है। वार्षिक मूल्य भी बढ़ा दिया है। परिषत्‌ने भाषा और देशके हितके लिये घाटा सहकर भी काग़ज़ आदि ज्योंका त्यों रखा और चन्दा नहीं बढ़ाया। परन्तु चन्देसे पोषित संस्था कबतक और कहांतक घाटा सह सकेगी। अब अपने हितैषियोंसे

विनीत प्रार्थना है

कि ग्राहक-संख्या शीघ्रतासे बढ़ाएँ। यदि अगले अप्रैलतक ५०० ग्राहक भी और बढ़ जायँ तो हम चन्दा न बढ़ायेंगे, घटिया काग़ज़ न लगायेंगे। नहीं तो लाचार हो इन्हीं उपायोंका अवलम्बन करना पड़ेगा।

प्रार्थी—
मन्त्री, विज्ञान-परिषत्,
प्रयाग।

उपयोगी पुस्तकें

१- दूध और उसका उपयोग—दूधकी शुद्धता, बनावट, और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।)। २-ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-)। ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ॥)। ४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -)। ५-सनातनधर्म रत्नत्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि ।)। ६-कागज़ काम-रद्दीका उपयोग-)। ७-केला—मूल्य -)। ८-सुवर्णकारी—मूल्य ।)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छपरहे हैं। खेत (कृषिविद्या), कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगी सूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जारहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—पं० गंगाशंकर पचौली—भरतपुर

हमारे शरीरकी रचना

कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसे अपने घरका पूरा पूरा हाल न मालूम होगा। पर ऐसे कितने मनुष्य हैं कि जिन्हें अपने असली घर का (शरीर) पूरा ज्ञान है। शरीरकी रचनासे पूरे परिचित न होनेके कारण हम अपने नित्य जीवनमें बड़ी बड़ी भूलें करते हैं और अपने स्वास्थ्यको बिगाड़ डालते हैं। अतएव यह परमावश्यक है कि हम अपने शरीरकी रचना भली भांति जानें। इसका सहज उपाय डा० त्रिलोकीनाथ रचित "हमारे शरीरकी रचना" नामक पुस्तक पढ़ना है।

पुस्तकमें २६८ पृष्ठ हैं और ५६ चित्र हैं। मूल्य केवल २।) ; विज्ञानके ग्राहकों और परिषद्के सदस्योंको २) रुपयेमें दी जायगी।

मिलने का पता—मंत्री—विज्ञानपरिषद्, प्रयाग।

यह दवा बालकोंको सब प्रकारके रोगोंसे बचा कर उनको मोटा ताज़ा बनाती है। क़ीमत फ़ी शीशी ॥)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा क़ीमत फ़ी शीशी ।)

मंगानेका पता—

सुख-संचारक कंपनी मथुरा

विज्ञान परिषत्का

साधारण अधिवेशन

म्योरकालिजके फ़िज़िकल सायंस थियेटरमें होगा।

समय—शनिवार, २३ मार्च, १८, ६ बजे शामको

व्याख्याता—प्रोफेसर ब्रजराज, बी. एस-सी., एल-एल. बी.

विषय—ब्रह्माण्डोंका बनना।

परिषद के सभ्यों, परि सभ्यों, हितैषियों से प्रार्थना है कि अपने मित्रों सहित पधारें।

नोट—व्याख्यान से पहले ५ बजे परिषद् की कौंसिल का अधिवेषन होगा।

मंत्री विज्ञान परिषद्
प्रयाग।

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषत्- प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा।